



ॐ

ईशावास्यम्

वाजसनेयीसंहितोपनिषद्

की

भाषा टीका

सरल मध्यदेशी भाषा में

कोलाख्य नगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण ने पंडित पौराणिक महाराज वैकुण्ठनाथजी की सहायता से अनुवाद किया

वाजपेयि पण्डित रामरत्न के प्रबन्ध से

दूसरीबार

लखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी

मई सन् १८९१ ई०॥

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

नमोयाज्ञवल्क्याय ब्रह्मविद्या प्रदर्शकाय ॥

विज्ञापन ॥

सर्व सुज्ञ सज्जन विवेकविचार शील पाठकजनों को विदित हो कि इस कलिकाल महाराज के राजशासन में विशेष कर के इस भारतवर्षकी प्रजा प्रायः प्रज्ञाहीन होतीहै इसही कारण से उनको वेदशास्त्रोंका अध्ययन अरु तिनका अर्थज्ञान यथार्थ होता नहीं अरु तिसके न होनेसे धर्म अधर्म स्वार्थ परमार्थ लोक परलोक शुभ अशुभ कर्त्तव्य अकर्त्तव्य आदिकोंका विवेक किंचिन्मात्र भी होता नहीं तिसके न होनेसे अज्ञान वशभये विषय वासना कर ताडित चित्त शिश्नोदर परायण पशुवत् पंच विषयात्मक जगदारण्यके सम्मुखही धावते हैं अरु जन्म जन्मान्तररूपी गर्त्तमें जो कि काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेषरोग तापयोग वियोग हानि लाभ जन्म मरणादि अनेक अनर्थरूप आवरणसे वेष्टित हैं पतन भावको पाय अनिवार्य दुःखोंको प्राप्त होतेहैं। तथाच। "गर्त्तमिवपतति"। बृ०उ० अ० ६ केतृतीयज्योति ब्राह्मण बिषे ऐसी सहस्रावधि प्रजा में कोई एक वेदशास्त्र करके प्रतिपाद्य जे अपराविद्या आश्रित अतिगहन कर्ममार्ग । "गहना कर्मणोगतिः"। तिसबिषे प्रायः सकामतासे प्रवृत्तहोते हैं परन्तु तिसके कर्त्तव्यविधि फल तात्पर्यको जानतेनहीं केवल बासनाके बशभये अपने मनकी युक्ति अनुसार आचरण करतेहैं अथवा नाना प्रकारके मतवादी जे वेदबाह्य मतके चलानेवाले हुयेहैं तिनके मतमदसे तिलकादि बाह्य मुद्राको ही पुरुषार्थ

मानके मदोन्मत्त फिरते हैं। इस प्रकार के सहस्रावधि मनुष्योंमें कोई एक बिरला विषयों से वैराग्यवान् परमसावधान आत्मजिज्ञासु होताहै परन्तु पूर्वसंस्कारकी किंचित् मलिनतासे प्रज्ञा की मन्दताकरके वेदशास्त्रों का यथार्थ अध्ययन विचार अभ्यास बनता नहीं अरु सतयुगादिवत् ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक वेदाध्ययन इस कलिराज महाराज के राजशासन में प्रायः बनेनहीं क्योंकि इसकाल में मनुष्योंके आयुः बल वीर्य प्रज्ञाआदि अति अल्पहोतेहैं अरु बाल्यावस्थासेही अन्न वस्त्रादिकों के अर्थ चिन्ता युक्त व्यावृत्तचित्तहोताहै एतदर्थ मन्दअधिकारी जो संस्कृतविद्या के संस्काररहित वैराग्य शील शान्तात्मा आत्मजिज्ञासुहैं तिनके विचारार्थ तादृशही शास्त्रविद्यारहित अतिअल्पज्ञ कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मणने केवल अपने परमदयालु महात्मा ब्रह्मवेत्ता श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी गुरुमहाराज के पादपद्मरज की कृपासे अरु शास्त्रज्ञपंडितों की सहायतासे ईशादि उपनिषदोंकी भाषाटीकाकरनेका संकल्पकर ईश केन कठ इन तीन उपनिषदोंकी टीका किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्यार्थानुसार किया परन्तु स्वसमीपमें द्रव्याभावके कारण उनकामुद्रितहोय लोकोपकारमें प्रकाशितहोना दुःसाध्य जान अन्य उपनिषदोंकी टीकाकरनेसे चित्त उपरामभया परंतु सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्माने इस मेरे शिवसंकल्पकी सिद्धता के अर्थ जिलअ् अलीगढ़के अतरौलीग्रामनिवासी विवेकी आत्मनिष्ठ लालाश्यामलालजी कायस्थके अन्तःकरणमें श्रद्धा उत्पन्न कर उनकेपत्रद्वारा महान् उत्तमकारी पुस्तकको श्रीमती धर्मात्मा ठकुरानी महताबकुवँरि रईस कोटिला परगनह फ़ीरोज़ाबाद जिलअ् आगरा के नेत्रगोचरकराया तब उस धर्मात्मा देवी ने अपने कार्य्याध्यक्ष कुवँर एदलसिंहजी की सम्मति से ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की इस टीका को मुद्रित कराय प्रकाशितकिया। अब इसही टीकाको बहुत शुद्धकराय श्रीमान्

परमधार्मिक मुंशीनवलकिशोरजी साहब ने अपने लक्ष्मणपुर के महायन्त्रालय में मुद्रितकराय सर्वलोकोपकारार्थ प्रकाशित किया सो–

[अस्तु]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ईशावास्योपनिषद् ॥

भाषानुवाद सहित

ॐ ईशावास्यमिदꣳसर्वंयत्किञ्च जगत्यांजगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदान्वयः ॥

यत् किंच जगत्यां जगत् इदं सर्वं ईशा वास्यं तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा कस्य स्वित् धनं मा गृधः १ ॥

पदार्थ ॥

जो कुछ जगत्विषे जगत् यह सर्व ईश्वरकरके आच्छादित है । तिससे त्यागकरके रक्षाकरो किसीके भी धनकी मत आकांक्षा करो १ ॥

भावार्थ ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हेसौम्य । जो १। कुछ २। जगत्विषे ३ जगत् भावहै ४। अर्थात् पृथिवीआदि लोकलोकान्तर जो जगत्है तिस विषे जोकुछ नामरूपात्मक जगत् भावहै । यह ५। अर्थात् यावत् इन्द्रिय मन बुद्धयादि करके स्थूल सूक्ष्म अनुभवमें आवता है तावत् । सर्व ६ । परमेश्वर परमात्माकरके ७ । आच्छादित है ८ । अर्थात् जो चराचरका आत्मा सर्वान्तर होतसन्ते सर्व सम्बन्धरहित आकाशवत् सदाशुद्ध एकरस ज्ञानस्वरूप है सोई परमेश्वर परमात्मा है तिसकरके सर्व चराचर जगत् आच्छादितहै अर्थात् अनुभव विषे स्थित है सो अनुभव यह अपुन जो आत्माहै सोई परमात्माहै क्यों जो प्राणमनादि सर्वके अवान्तर सर्वका अनुभवी है तातेआत्माहै। "*आत्मासर्वान्तर" ।अरु सोई आत्मा प्राण मन बुद्धिआदि किसीका भी विषय नहीं ताते परमात्माहै । इसप्रकार परमात्मासे अभिन्न आत्मरूप जे अपुन

---

*बृ०उ०अ०३के अन्तर्यामी ब्रा० विषे ।

सोई जगत्रूप हैं क्योंकि यावत् जगत्है तावत् सर्व अपने अनुभवविषे स्थितहै अर्थयह जो अपना अनुभवही जगत्रूपहो भासताहै ताते जगत् अनुभवरूप है सो अनुभव आत्मासे इतर नहीं 'जैसे अग्निसे दाहकता भिन्ननहीं' अरु आत्मा परमात्मा से इतरनहीं क्योंकि परमात्माने अपनी इच्छासे सर्व जगत्रूप होय तिसविषे आत्म (अन्तर्यामी) रूपसे आपही प्रवेशकिया है तथाच ।"* तत् सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्"।ताते वास्तवकरके परमात्मा आत्मा अरु जगत् अभेदरूपही हैं तथाच ।"† सर्व्वं खल्विदम्ब्रह्म"।"‡ अयमात्माब्रह्म"।"! पुरुषएवेदंसर्व्वं"।"×वासुदेवःसर्वमिति"। इसप्रकार अनेक श्रुति स्मृति आदिकों के प्रमाणसे यह सर्व चराचर जगत् सत्य परमात्मज्ञान करके आच्छादितहै सो कैसाहै जगत् जो जगतत्वकरके असत्य अरु अधिष्ठानसत्ताकरके सत्यरूप है 'जैसे मृत्तिकाविषे घट सो घटत्व करके वाचारंभणमात्र असत्य है' तैसेही सर्वाधिष्ठान आत्मा विषे सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् अविद्याकरके कल्पित ताते मिथ्याहै ऐसे कल्पित नामरूपात्मक जगत्विषे जे सत्यप्रतीति भाव तिसको सत्य परमात्मज्ञानसे ९। त्यागकरके १०। अर्थात् असत्यरूप जगत् विषे अज्ञानजन्य जे एषणा तिसकोत्याग के अपने आत्मा की रक्षाकरो ११। अर्थात् सर्वके अभाव से जे एक निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता अवशेष रहे हैं तिस अवस्था विषे अनुकूलहो ।अरु किसी के १२।भी १३। धनकी १४। मत १५। आकांक्षा करो १६॥ अर्थात् यावत् नाम रूपात्मक जगत् है तावत् सर्व पंचविषयात्मक होने से इन्द्रियोंका भोग्यरूपीधन है तिनमें से किसीके भी धन की मत आकांक्षाकरो। अथवा यह मेरा यह मुझको प्राप्तहोय इस

*तै० उ० की आनन्दवल्लीविषे। † छां०उ०अ० ४ विषे। ‡ मां०उ० विषे। ! पुरुष सूक्त में × भ०गीता में।

बुद्धिको छोडदे क्यों जो यह जगत्रूपी धन किसका है किन्तु किसीकाभी नहीं एकके समीपसे दूसरे के समीप जानेवाला चंचल अरु नाशवान् है ताते यावत् पंचविषयात्मक जगत् है तिस सर्वको मिथ्या जानके तिसकी आकांक्षा छोड सत्य सर्वात्मभाव बिषे स्थित हो १ ॥

तात्पर्य ॥

"ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्" इस प्रथम मंत्रके पूर्वार्ध से वेदभगवान्ने आत्मतत्त्वका उपदेशकिया। अरु "तेनत्यक्तेनभुञ्जीथाः" इस तृतीयपाद करके जिज्ञासु पुरुषको जो आत्मज्ञान की परिपक्वता इच्छितहै तो आत्मज्ञान के बिचार से संन्यासपूर्वक एषणात्रयका त्यागकरके अपने आत्माकी रक्षाकरे। अर्थात् एषणापूर्बक कर्महीं जीवोंको नानाप्रकारके जन्ममरणादि महान् क्लेशको प्राप्त करनेवाले हैं तिनसे अपने आपकी रक्षाबिषे कर्म एषणाके न्यासपूर्वक आत्मज्ञानही समर्थहै तथाच। "नान्यःपंथाविमुक्तये"। मोक्षार्थ अन्यमार्ग नहीं। ताते एषणा त्रय त्यागके आत्मज्ञानद्वारा अपनेआप की रक्षा करो। अरु "मागृधःकस्यस्विद्धनम्" इस चतुर्थपाद करके कर्म एषणा के न्यासकी परिपक्वताके अर्थ सूचना है जो किसीके भी धनकी मत आकांक्षाकरो। अर्थात् मोक्षके अर्थ कर्म एषणा का न्यास अर्थात् संन्यास कियाहै जिसने तिसको कालत्रयमें भी विषयादि पदार्थों की आकांक्षा कर्तव्य योग्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस उपनिषद्का प्रथममंत्र ब्रह्मविद्या के अधिकारी मुमुक्षु प्रतिहै जो मोक्ष कामीको मोक्षार्थ संन्यासपूर्वक एक आत्मज्ञानही उपाय है सो प्रतिपादन करके अब जो कि संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान के अभ्यास में असमर्थ हैं तिन मध्यम अधिकारी के अर्थ वेद भगवान् द्वितीय मंत्रको प्रतिपादन करते हैं ॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे २॥

पदान्वयः ॥

इह कर्म्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत् एवं त्वयि नरे इतः अन्यथा न अस्ति कर्म न लिप्यते ॥

पदार्थ ॥

यहां [अग्निहोत्रादि विहित] कर्मोंको करते हीं सो वर्ष जीवनेकी इच्छाकरो । इसप्रकार तूजो पुरुष है तिसमें इससे प्रकारान्तर नहीं है [जो] कर्मसे न लिपायमानहो २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य । यहां १ । अर्थात् आत्मज्ञानके अभ्यास की असमर्थता में कर्म्मों को २ । अर्थात् संध्या गायत्री अग्निहोत्रादि विहितकर्म जो कि वेदशास्त्रोंने धर्मरूपसे कर्त्तव्यकहे हैं अरु जिनके न करनेसे धर्महानिरूप प्रत्यवाय है तिन कर्मोंको करते ३ । ही ४ रहो । अरु सकामकर्म मतकरो क्यों जो कर्ममें फलकी इच्छा न करनेसे निष्काम कर्मद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिहोने से ज्ञानद्वारा कर्ममोक्षसाधकहै ताते निष्काम विहितकर्म करतेही रहो । इसप्रकार निष्काम विहितकर्म करतसंते जो । सौ१००।५। वर्ष ६ । जीवनेकी इच्छाकरो ७। अर्थात् सौ वर्ष जो मनुष्यों के आयुकी परमावधि है तावत्पर्यन्त जो जीवने की इच्छा होयतो इच्छाकरो । अथवा जो सौ वर्ष परमावधि पर्यन्त जीवते रहो तो भी संसार बंधनकी निवृत्ति के अर्थ विहितकर्म निष्काम करतेहीरहो। अर्थात् यावत्पर्यन्त संसारसे दृढवैराग्य न होय तावत्पर्यन्त विहित कर्मका त्याग न करना । इसप्रकार ८ । कर्मकरने से आत्मज्ञान न होतसन्ते भी तुम ९ । पुरुषविषे १० । अर्थात् नर शरीराभिमानी तुमविषे कर्मबन्धन न होगा इससे११। अन्य प्रकारान्तर १२ । नहीं १३।है१४। अर्थात् सकामकर्म हैं सो

बारम्बार जन्ममरणका हेतुहैं। तथाच। "* योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्मयथाश्रुतम्"।ताते एषणात्रयके न्यासपूर्वक आत्मअध्यासमें असमर्थ पुरुषको केवल विहित निष्काम कर्महीं कर्त्तव्य है कि जिस करके कर्म से १५। नहीं १६। लिपायमानहो १७। अर्थात्, विहित निष्कामकर्म करतसन्ते जो कदापि अज्ञान किंवा आपत्त्यादिकरके तुमसे अशुभ कर्म भी बन आवेगा तो सो कर्म तुमको हानिकरनेको समर्थ न होगा क्यों जो वो कर्म किसी कामनाकोलेके नहींहुआ २॥

तात्पर्य॥

एषणात्रय बिषे दृढ वैराग्य भयेबिना संन्यास कर्त्तव्य नहीं क्योंकि वैराग्यविना संन्यास जो कि मोक्षमें आदि साधनहै सो मोक्षका साधक नहोयके पतितत्व का हेतुहोगा क्यों जो वैराग्य विना अन्तःकरणसे कामना निवृत्त होती नहीं अरु कामनाकी निःशेष निवृत्ति विना वृत्तीकी एकाग्रता पूर्वक आत्माभ्यास होने का नहीं तब मोक्ष कहां किन्तु कदापि नहीं ताते वैराग्य विनाका संन्यास मोक्षका हेतु नहीं। अरु संन्यासाश्रम करने से कर्माधिकार रहे नहीं ताते देव पितृ आदिकों के अर्थ किंवा भोग्य कामनार्थ कर्म बने नहीं तब देव पितृ आदिकों के लोक की प्राप्ति अथवा कामना की सिद्धिसे भ्रष्टहोय नीचगति की प्राप्तिहोगी ताते एषणात्रयसे दृढ वैराग्यभये बिना संन्यास न लेके विहित जे वेदोक्त कर्म हैं सो निष्काम कर्त्तव्य हैं क्यों जो एषणा के त्यागपूर्वक संन्याससहित आत्मअध्यास में असमर्थ पुरुषको सिवाय विहित निष्काम कर्मोंके कर्मबंधनोंकी निवृत्ति होनेके अर्थ अन्य उपाय कोईनहीं॥

सम्बन्ध॥

प्रथम मंत्रमें मुमुक्षुके अर्थ एषणाके त्यागपूर्वक आत्मज्ञान प्रतिपादनकिया। अरु इस द्वितीयमंत्रसे आत्मोपासनामें अस-

* कठवल्ली उपनिषद्की पंचमवल्ली के ७ वें मंत्र में॥

मर्थ पुरुषको संसारकी निवृत्तिकेअर्थ विहित निष्कामकर्म प्रतिपादनकिया । अब इन दोनोंका जोकि संसारके क्लेशोंकी निवृत्ति का साधनहैं तिनके त्यागी पुरुषहैं तिनकी निंदाके अर्थ वेद भगवान् तृतीय मंत्रका प्रारंभ करते हैं ॥

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

पदान्वयः ॥

अंधेन तमसा आवृताः ते लोका असूर्य्या नाम ये के च आत्महनः जनाः ते प्रेत्य तान् अभिगच्छन्ति ३ ॥

पदार्थ ॥

अदर्शनात्मक अज्ञानेसे आवृतहैं सो लोक असूर्य्या नामहैं जे कोई एक आत्महत्यारे पुरुषहैं सो मरके तिन (लोकोंमें) निश्चयप्राप्तहोतेहैं ॥ ३ ॥

भावार्थमंत्रतीसरेका ॥

हेसौम्य जो कि पूर्वकथितप्रकारसे विपरीत आचरण करनेवाले पुरुष हैं । अर्थात् प्रथम कहा जे मुमुक्षुके अर्थ आत्मज्ञान अरु तिसकी असमर्थतामें निष्काम विहितकर्म तिनको त्यागके कामुक अरु निषिद्ध कर्मोंकोही करते रहतेहैं ऐसे जे अविवेकी पुरुषहैं तिनको देहत्यागान्तर जिन लोकोंकी प्राप्तिहोतीहै तिसको कहतेहुये वेदभगवान् उन पुरुषोंकी निंदाकरतेहैं ॥ जे अदर्शनात्मक १। अज्ञानकरके २। आवरणहुये ३। जे ४। लोकहैं५। अर्थात् आत्माके यथार्थदर्शनकी योग्यतानहीं जिनमें ऐसेजे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत देवताआदि शरीररूपी लोक सो सर्व असूर्य६ नामहैं७। अर्थात् असूर्यलोक उसको कहतेहैं कि नहीं है ज्ञानरूपी प्रकाशता जिनमें कि जिसकरके अपनेआप आत्माको यथार्थ अनुभवकियाजाय ऐसे जे देवादि तृणपर्यन्त शरीररूपी

लोक तिनको असूर्य अथवा असुर लोक इन नामोंसे कहते हैं तिन लोकोंमें जे ८। कोई ९। कि १०। आत्महत्यारे ११ पुरुष हैं १२ अर्थात् जिन पुरुषोंको अपनेआप अजर अमर अक्रिय अद्वैत आत्माके स्वभावका अर्थात् सोहमस्मिभावका अभाव है अर्थात् परमात्माको अपना आत्मत्वकरके न जानना सोई आत्माका हननहै क्योंकि जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप आत्मा तिसको अविद्यादोषसे अन्योंके धर्मको न जानतेसन्ते तुच्छ पापी अपराधी जन्म मरणवान् विपरीतभावसे जानना। तथाच। "* यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति"। इत्यादि। सोई उस आत्माका परम निरादर करनाहै सो आत्माका निरादरकरनाही हननकरना है। दृष्टान्त। जैसे स्त्रीको पृथक्शय्यारूप निरादर करनाही उसका हननकरना शास्त्रकारोंने कहाहै। तैसेही वो पुरुष कि जिन्होंने अपनेआप सत्यस्वरूपको यथार्थ न जानके अरु जाननेका साधन अन्तःकरणकी शुद्धि तिसका साधन विहित निष्कामकर्म जो कि परम्पराकरके आत्मज्ञानोत्पत्तिका हेतु है तिसको भी यथोचित न करके जीवतपर्यन्त सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं। सो १३। शरीर त्यागके १४। अपने कर्मानुसार उन असुरनामलोकमें १५। निश्चय प्राप्तहोते हैं १६। अर्थात् अज्ञानी पुरुष जो कि अविद्या दोषकरके अपने सत्यस्वरूप आत्माका अनादररूपी हनन करनेवाले हैं सो देह त्यागके अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतासे तृणपर्यन्त शरीररूपी लोकको प्राप्तहोते हैं। तथाच। "† यथाकर्म यथाश्रुतम्"।३॥

यहां असुरलोक कहनेसे जो देवलोकका भी ग्रहणहै सो इस अर्थका अभिप्राय यहहै जो देवताओंके लोक सो देवलोक तहां लोककहिये शरीर अर्थात् देखते भोगते हैं कर्मके फल जहां सो लोक ऐसे जे देवशरीररूपी लोक सो स्वयंप्रकाश सर्वप्रधान सर्वोपरि परमात्माकी अपेक्षामें असुरही कहेजाते हैं क्यों जो

*बृ० उ० अ० ४ मैत्रेयी ब्रा० विषे † क० उ० के व० ५ की ७ श्रुति में।

छान्दोग्य बृहदारण्य प्रश्न इन उपनिषदों में इन्द्रियाधिष्ठात। देवताओंको असुरकरके वर्णन किया है एतदर्थ देवशरीरको भी असुरलोक कहते हैं ताते देवताके शरीररूपी अदर्शनात्मक अन्धलोक सो अज्ञान अन्धकार से आवृत हैं क्यों जो देवताओंको सदैव विषयोंकीही लालसा रहती है सो विषयलालसा अज्ञान से होतीहै ताते देवता अज्ञानावृत होनेसे अपनेआप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ जानसकते नहीं। तथाच। "* देवैरत्रापि विचिकित्सितंपुरानहिसुविज्ञेयमणुरेषधर्म"। "† नमेविदुः सुरगणाः"। ताते ऐसे जे अज्ञान अन्धकारसे आवृत देवशरीररूपी असुरलोक तिनमें अज्ञानी सकामी पुरुष जे विषयों की कामनासे देवाराधन करनेवाले हैं सो देहत्यागके अनन्तर प्राप्त होतेहैं। अथवा जे पुरुष कामनाके वशभये भूत प्रेत जड़ादिकों की आराधना करते हैं। अथवा प्रमादकरके आत्मज्ञान विहित कर्म किंवा सकामकर्म जे उत्तम मध्यम निकृष्ट स्वधर्म हैं तिनको त्यागके सदा निषिद्धकर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं सो पुरुष अदर्शनात्मक अर्थात् नहींहोता यथार्थ विवेक आत्मानात्म वस्तु का जिसकरके ऐसा जो अज्ञानरूपी अन्धकार तिसकरके आच्छादित हैं पशु पाषाण वृक्षादि शरीररूपी लोक तिसविषे देह त्याग के अनन्तर निश्चय प्राप्तहोते हैं। ताते सकाम कर्मी किंवा सर्वथा कर्मत्यागके केवल विषयसेवी पुरुषसो देहत्यागके अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतादि तृणपर्यन्त स्थावर जंगमरूप अंधतम अज्ञानावृत शरीरको प्राप्तहोते हैं॥

तात्पर्य॥

जो पुरुष मोक्षकाहेतु आत्मज्ञान अरु तिसकी प्राप्तिका साधन विहित निष्काम कर्म तिन दोनोंको त्यागके केवल सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंको ही करतेहैं सो पुरुष अपने आपको नाना प्रकार की योनिरूप नरक में प्राप्त करनेवाले ताते आत्महत्यारे

* क० उ०की १ व०की २१ वीं श्रुति। † भ० गी०अ०११ वेंके श्लोकमें॥

होते हैं। एतदर्थ पुरुषको उचित है जो वेदवाक्यानुसार आत्म-हत्यारा न होयके यथार्थ आत्मज्ञानद्वारा अपनेआपकी रक्षाकरने वाला आत्मरक्षक होय॥

सम्बन्ध॥

इस तृतीय मंत्रविषे जे पुरुष अज्ञान करके सकाम कर्म किंवा निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं सो अपनेआपका हननकरने वाले ताते आत्महत्यारे अंधतमको प्राप्तहोते प्रतिपादन किये॥ अब उन आत्महत्यारे से विपरीत विद्वान् आत्मरक्षक ज्ञानी तिस आत्मतत्त्व को साक्षात् अपनाआप अनुभवकरके मोक्षहोते हैं तिस आत्मतत्त्वको वेद भगवान् आगे चतुर्थ मंत्रसे विपरीत गुणवान् प्रतिपादन करते हैं॥ ॐ तत्सत्॥

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मात-रिश्वा दधाति॥ ४॥

पदान्वय॥

एतत् अनेजत् एकं मनसो जवीयः पूर्वं अर्षत् देवा न आप्नु-वन् तिष्ठत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति॥

पदार्थ॥

यह [आत्मा] कम्पमाननहीं एक मनसे शीघ्रगामी पहिले गयाहै देवतालोक [तिसप्रति] नहीं प्राप्तहोते अविक्रिय सोई शीघ्रचलते अन्योंको पछिछोड़ताहै वायुअंतरिक्षमेंचलनेवाला तिसविषे कर्मोंको धारताहै॥

भावार्थ मंत्रचौथेका॥

हे सौम्य पूर्वकथित प्रकारके अविद्वान् आत्महत्यारे तिनसे विपर्यय जे प्रथममंत्रानुसार आत्मरक्षक ज्ञानवान् जिस अजर अमर अक्रिय आकाशवत् सर्वव्यापी परमात्मा जिसकरके चरा-

चर जगत् आच्छादितहै तिसको अपनाआप अनुभवकरके तद्रूप होतेहैं सो आत्मा इस मंत्रविषे प्रतिकूल गुणोंकरके कहागया है तथापि इस में कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो श्रुतिने आत्माको निश्चल भी कहाहै अरु मनसे भी आगे जानेवाला कहाहै ताते प्रत्यक्ष विरुद्ध भाषेहै तथापि कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो आत्मा निरुपाधि होनेसे आकाशवत् सर्वत्र अचल एकरस क्रिया से रहित शुद्ध कहाजाता है सोई कहते हैं ॥ यह १। आत्मा सर्वका अपनाआप अचलहै २। अर्थात् आकाशवत् सर्व क्रियासे रहित है फेर कैसाहै। एकहै ३। तथाच। "*एकमेवाद्वितीयम्"। ऐसा जो अद्वैत अचल अक्रिय आत्मा है सोई आत्मा मन से ४। आगे जानेवालाहै ५। अर्थात् सर्व देहोंविषे अन्तःकरणकी संकल्प विकल्पात्मक वृत्तिरूपी जे मन जिसको कि देह में रहतसन्ते अर्ध क्षणमात्र में देश देशान्तर किंवा अति दूर ब्रह्मलोक पर्यन्त संकल्पद्वारा जाने की शक्ति होने से शीघ्रगामी संज्ञादी गई है तिस मनसे भी आगे जानेवाला है। अरु जहां जहां संकल्पद्वारा मन जाताहै तहां तहां मनसे पहिलेही ६ गया है ७। अर्थात् जहां जहां मन जाताहै तहां तहां सर्वत्र सत्तारूप सिद्ध है ताते मनसे भी प्रथमगया कहतेहैं तिस आत्मा को देवता ८। नहीं ९। प्राप्तहोते १० अर्थात् उस आत्माको चक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता नहीं प्राप्तहोते क्यों जो चक्षुरादि इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन तिसकाभी विषय आत्मा नहीं तब इंद्रियोंका विषय कैसे होगा कदापि न होगा इसही से कहा है जो देवता उस आत्मा को नहीं प्राप्त होते सो आत्मा अविक्रिय है ११। अर्थात् आकाशवत् परिपूर्ण अक्रिय है उसही आत्मतत्त्व के प्रकाश में मनआदि इन्द्रियां अपने २ विषयों को प्राप्त होती हैं इस हेतु से आत्मा सर्वव्यापी सर्वत्र अक्रिय सिद्ध भया। ऐसा जे सर्वत्र एकरस अक्रिय आत्मा है। सोई आत्मा

* छान्दोग्यउपनिषद् के छठे प्रपाठकके दूसरे खण्डकी श्रुति में ॥

१२। आपशीघ्र चलते १३। अन्यों को १४। पीछे छोडजाता है १५ अर्थात् आत्मा सर्वत्र एक रस अक्रिय निरुपाधिरूप से उपाधिकृत क्रियावान् सम्पूर्ण संसारकी विशेष क्रियाको अनुभवकर्त्ता है। अथवा अविवेकी जे मूढ पुरुषहैं तिनको आत्मा देह २ प्रति भिन्न भिन्न भासे है अरु तिस बिषे सर्व उपाधिके धर्मको आत्माही के धर्म मानते हैं ताते उन पुरुषों को आत्मा जन्म मरणवान् भासे है परन्तु वास्तव करके आत्मा आकाशवत् परिपूर्ण सर्वत्र सर्व क्रिया से रहित अपने आपबिषे स्थितहै तिस आत्म तत्त्व बिषे १६। अन्तरिक्ष में चलनेवालावायु १७। कर्मोंबिषे १८। धारता है १९। अर्थात् जिस बिषे सर्व ब्रह्मांड ओतप्रोत है ऐसा जे सूत्रात्मा कि जिसके आश्रय सर्व ब्रह्माण्ड की क्रिया होती है सो आत्मतत्त्वकी सत्ताके आश्रय सर्व ब्रह्माण्डके कर्मोंको अपने बिषे धारता है। तथाच। "भिषास्माद्वातः पवते" इत्यादि॥

तात्पर्य॥

प्रथम मन्त्र करके कहा जो यह सर्व नाम रूपात्मक जगत् परमात्मा करके आच्छादितहै। तिस परमात्माका स्वरूप मुमुक्षु को भलीप्रकार जाननेके अर्थ इस मन्त्र बिषे उपाधि निरुपाधि द्वारा कर्त्ता अकर्त्ता आदि भाव से वेद भगवान् ने कहाहै॥

सम्बन्ध॥

जो कि इसचतुर्थ मन्त्रसे मुमुक्षु के बोधार्थ आत्माको उपाधि द्वारा गमनादि धर्मवान् अरु उपाधिके अभावसे सर्व धर्म रहित शुद्धकहा है। अब इसही अर्थको मुमुक्षु की दृढता के अर्थ वेद भगवान् आगे पंचममन्त्र प्रतिपादन करतेहैं॥ ओं तत्सत्॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

पदान्वयः ॥

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् उ अन्तिके तत् अस्य सर्व्वस्य अन्तः तत् उ अस्य सर्व्वस्य बाह्यतः ॥

पदार्थ ॥

सो आत्मा चलताहै सोई नहीं चलता सोई दूरहै सोई आत्मा समीपहै । सोई इस सर्वके अन्तरहै सोई आत्मा इन सर्वके बाहिर है ॥

भावार्थमंत्र पांचवेंका ॥

हे सौम्य पूर्व चतुर्थमंत्र बिषे आत्मा जो कि सर्व उपाधिसे रहित केवल केवलभाव अपने आपबिषे ज्योंका त्योंकहा तिस आत्माको उपाधि निरुपाधि द्वारा प्रतिकूल गुणोंसे सर्वत्र सिद्ध किया ताते सर्वप्रकार एक विज्ञानघन आत्माही है । तिसआत्मा बिषे उपाधि निरुपाधि का आरोप केवल मुमुक्षुको समझावने के अर्थ वेदने कहाहै ॥ अब पुनः मुमुक्षुके दृढबोधार्थ इस पंचम मंत्र बिषे आत्माको प्रतिकूल गुणोंकरकेही प्रतिपादन करतेहैं ॥

हे सौम्य । सोई आत्मा १। चलताहै २। अर्थात् जंगमशरीर रूपी उपाधिसाथ मिलके गमनागमन क्रियावान् भासताहै ताते चलताहै। अथवालिंग शरीररूपीउपाधि साथमिलकेस्वर्ग नरकादिकों बिषे जाता आवता प्रतीत होताहै सो सर्व उपाधिके धर्म अज्ञानके आश्रय आत्माबिषे कल्पना करतेहैं । जैसे बालक मेघों की धावमानताको देखके अज्ञानके आश्रय चन्द्रमाको चलता कहते हैं । तैसेही अज्ञानके आश्रय शरीरादि उपाधिके धर्मशुद्ध निरुपाधि आत्माबिषे मानतेहैं परन्तु आत्मा सर्वउपाधिसे रहित अक्रिय है सो उपाधिद्वारा चलताहै अरु। सोई आत्मा३। नहीं४।

चलता५। अर्थात् जो आत्मादेहादिउपाधि साथमिलके चलताहै सोई उपाधिके अभावसे नहीं चलता। जे विद्वान् आत्मवेत्ता हैं सो *"नेतिनेति" श्रुतिके वाक्यकरके सूक्ष्म स्थूल सर्वउपाधिको गिराय महासूक्ष्म आत्मतत्त्वको आकाशवत् अचल अक्रिय सर्वत्र अनुभव करते हैं तातें वास्तवकरके आत्मा नहीं चलता अरु। सोई आत्मा ६। दूरहै ७। अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को आत्मतत्त्व अपना आपहोत संतेभी शतकोटि वर्ष पर्यन्तभी ज्ञानबिना प्राप्त नहीं तातें दूरहै। अथवा ब्रह्मलोकादि यावत् लोकलोकान्तर हैं तहां पर्यन्त भी जानेसे ज्ञानविना अप्राप्यहै तातें आत्मा दूरहै। अथवा आत्मतत्त्व मनबुद्धि इन्द्रियादिकोंका बिषय नहीं एतदर्थ भी दूर है। तथाच † "दूरात्सुदूरे" तातेंअज्ञानी पुरुषोंकोआत्मा दूरसे भी दूरहै अरु सोई ८। आत्मा ९। समीप है १०। अर्थात् जो आत्मा अज्ञानियोंको दूरसेभी दूर है सोई आत्मा यथार्थदर्शी ज्ञानवान्को समीप है सो कैसा समीप है। तथाच। ‡ "निहतोगुहायाम्"। बुद्धिरूपी गुहाबिषे सर्वका अपनाआप अनुभवी स्थित है तातें अत्यन्त समीप है। अरु सोई ११। इस १२। सर्वके १३। अन्तर है १४। अर्थात् जो आत्मा विद्वानोंका अपनाआप है सोई सम्पूर्ण चराचरका अन्तर अनुभवकर्ता अपना आप है। तथाच *"आत्मासर्वान्तर" तातें आत्मा इन सर्वके अन्तर है। अरु सोई १५। आत्मा १६। इन १७। सर्वके १८। बाहर है १९॥ अर्थात् जो आत्मा सर्वके अन्तर है सोई आत्मा आकाशवत् आकाशादि सर्वके बाहर है। तथाच × "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः"॥ ५॥

* बृहदारण्यउपनिषद्के द्वितीयाध्याय मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणबिषे॥
† कठवल्ली उपनिषद्की द्वितीयावल्लीकी २० वीं श्रुतिमें॥
‡ क० उ० की वल्ली २ की २० श्रुतिमें। *बृ० उ० के अ० ३ अन्तर्यामी ब्रा० में।
× मुण्डक उपनिषद् के तृतीय मुण्डककी दूसरी श्रुतिमें॥

तात्पर्य ॥

आत्माको चलता न चलता दूर समीप अन्तर बाहर सर्वत्र प्रतिपादनकिया सो केवल मुमुक्षु के बोधार्थ उपाधिका आरोप लेके सर्वप्रकार एक आत्मतत्त्वही प्रतिपादन कियाहै कि जिससे मुमुक्षुका द्वैतभाव अशेष अभावहोय सर्वप्रकार एक अद्वैत आत्मतत्त्वके निश्चयपूर्वक परमशान्ति प्राप्तहोय ॥

सम्बन्ध ॥

चतुर्थ अरु पंचम इन दोनोंमन्त्र से उपाधि निरुपाधिद्वारा विशेष निर्विशेषकरके एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रतिपादनकिया । अब आगे मुमुक्षुकेअर्थ आत्मविचारकी रीति अरु तिसका फल मोक्ष दो मन्त्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

पदान्वयः ॥

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति च सर्व भूतेषु आत्मानं ततः न विजुगुप्सते ॥

पदार्थ ॥

जे कोई सर्व भूतोंको आत्माविषे हीं देखता है फेर सर्व भूतोंविषे आत्माको तोते नहीं घृणाकरता ॥

भावार्थ मन्त्र छठेका ॥

हे सौम्य जे कोई मुमुक्षु आत्मज्ञानी कि जिसको अपना आप आत्मा संशय विपर्ययसे रहित ज्योंकात्यों अनुभव भया है सो १–२ । सर्व ३ । भूतोंको ४ । आत्माविषे ५ । ही ६ । देखता है ७ । अर्थात् जे कोई आत्मानुभवी पुरुष हैं सो अव्याकृत से तृणपर्यन्त सर्व कार्यकारणात्मक भूतोंको आत्माविषेही देखता है । जैसे जलविषे तरंग तैसे । पुनः ८ । सर्व ९ । भूतोंविषे १० । आत्माको ११ । देखता है । अर्थात् जैसे सर्वभूतोंको अपनेआप

बिषे तैसेही सर्वभूतोंबिषे एक अपनेआप आत्माको देखता है । जैसे सर्वतरंग बुद्बुदादिकों बिषे एक जलको देखता है । इस प्रकार जलतरंगके दृष्टान्त प्रमाण आत्माबिषे जगत् अरु जगत् बिषे आत्माको देखता है सो । ऐसे देखनेसों १२ । नहीं १३ । घृणा [ग्लानि] कर्त्ता १४ । अर्थात् ग्लानिआदि द्वैतभाव बिषे होतेहैं सो द्वैतभाव अविद्याकरके होता है । तथाच * "यत्र हि द्वैतमिवभवति तदितरइतरम्पश्यति" । अर्थात् अविद्याकरके द्वैतभाव अरु द्वैतभाव बिषे ग्लानिआदि होतेहैं सो अविद्या आत्मज्ञानीकी अशेष निवृत्तभई है तातेही द्वैतभावका अभावभया है इसहीसे एक अद्वैत आत्मभाव निश्चय भया है सो आत्मा सदा शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै इसहीसे ग्लानिआदि नहींकरता । तथाच । † "यस्त्वसर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकम्पश्येत्" ॥ इत्यादि ॥

तात्पर्य ॥

जो ज्ञानवान् सम्पूर्ण जगत्को केवल एक अपनाआप आत्माही जानता है सो तिस अभ्यासके बलसे किसी पदार्थ की ग्लानिआदि नहीं करता अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानी आत्मवेत्ता सर्वात्मभाव के दृढअभ्याससे ग्लानीआदि नहीं करते तैसेही सर्व मुमुक्षुको एकात्मविचार के अभ्यास बलसे किसी भी पदार्थ बिषे रागद्वेषादि कुछ भी कर्त्तव्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्रबिषे मुमुक्षुको सर्वात्मभाव देखाय सूचनाकिया कि आत्मअभ्यासवाले को किसी पदार्थमें भी ग्लानिआदि कर्त्तव्यनहीं । अब ७ वें मन्त्रकरके सर्वात्मअभ्यासीको वेद भगवान् मोक्षका स्वरूप कहते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र
को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

---

* बृ० उ० के अ० ४ मं० ब्रा० बिषे । † बृ० उ० के षष्ठ अध्यायबिषे ॥

पदान्वयः ॥

विजानतः[1] यस्मिन्[2] सर्व्वाणि[3] भूतानि[4] आत्मा[5] एव[6] अभूत्[7] एकत्वं[8] अनुपश्यतः[9] तत्र[10] कः[11] मोहः[12] कः[13] शोकः[14] ॥

पदार्थ ॥

भलीप्रकार जाननेवालेको[1] जिसकालमें[2] सम्पूर्ण[3] भूतोंको[4] आत्मा[5] ही[6] है[7] एकत्व[8] देखनेवालेको[9] तिसकालमें[10] क्या[11] मोह[12] क्या[13] शोक[14] ॥ ७ ॥

भावार्थमन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकथित आत्माको वेद गुरु अरु अपने अनुभव द्वारा भलीप्रकार जाननेवालेको १ । जिसकालमें २ । सम्पूर्ण ३ । भूतोंको ४ । आत्मा ५ । ही ६ । है ७ । अर्थात् आत्मकामा सुमुक्षु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा श्रुतिके । * "सर्व्वंखल्विदंब्रह्म" † "नेहनानास्तिकिंचन" । इत्यादि वाक्यों करके साक्षात् अपने अनुभवसे जिसकालमें यावत् स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक सर्व भूतोंको । ‡ "आत्मैवेदंसर्वं" । श्रुतिके प्रमाण से अपनाआप आत्माही है ऐसा जानता है । अरु ऐसाजान के एकत्व ८ । देखनेवालेको ९ । तिसकालमें १० । क्या ११ । मोह । १२ । क्या १३ । शोक १४ ॥ अर्थात् जिसप्रकार श्रुतियों के वाक्य आचार्य द्वारा श्रवणकरके अपने आत्माको सर्वत्र आत्मभाव से अनुभव कियाहै तिस आत्मतत्त्वका एकत्व देखता है । जैसेघट मठ सरावले आदि यावत् मृत्तिका का कार्य हैं तावत् व्यवहार दृष्टिसे सर्वके नामरूप क्रिया पृथक् २ भासे हैं परन्तु परमार्थ दृष्टिसे घट मठादिकोंके नामरूप मृत्तिका विषे । "* वाचारंभणं विकारोनामधेयं" । वाचारंभणमात्र अर्थात् कल्पितहैं † । "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" । एक मृत्तिकाही सत्य है । तैसेही सम्पूर्ण नाम

---

* छां० उ० प्र० ३ विषे । † बृ० उ० के अ० ६ विषे । ‡ छां० उ० के प्र० ७ विषे ।
* छां० उ० प्र० ६ की प्रथम श्रुति में ॥

रूपात्मक जगत् व्यवहार दृष्टिसे पृथक्२ भासैहै परन्तु वास्तव में परमार्थ दृष्टि से। *"एषोऽइदात्म्यमिदं सर्वम्"। सम्पूर्ण चराचर एक आत्माही है। इसप्रकार श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अपने आप अनुभव से सर्वत्र आत्माही के एकत्वका निश्चयपूर्वक दृढ़ अभ्यास करताहै तिसकालमें अर्थात् जब कि अभ्यास द्वारा अन्तःकरणकी सर्वात्मभाव रूपावृत्ति दृढ़ उदयहोतीहै तिस विज्ञानअवस्थामें क्या मोह अरु क्या शोक किन्तु कुछभीनहीं क्यों जो †।"तरति शोकमात्मवित्"। आत्माको जाननेवाला शोक को तरता है। अर्थात् जिस पुरुष ने सर्वत्र एक अपने आप आत्माही को अनुभव किया है अरु तिस बिषे अभ्यास द्वारा स्थितिपाया है सो पुरुष शोक मोहादिकों से तरजाता है। तातें आत्मवेत्ताको शोक मोहादि नहीं क्यों जो शोक मोहादिकों का कारण जे कामना सो तो ज्ञानवान्की।"इहैव सर्वे प्रविलीयन्तिकामाः"। यहां विज्ञान अवस्था में ही सर्वकामना अभाव होजाती है। अरु कामनाका कारण अविद्या है सो ज्ञानवान् की अविद्या आचार्य से तत्त्वमस्यादि उपदेश पावतेही अपने कार्य कामना अरु तज्जन्य शोक मोहादि सहित अभाव होजाती है। इसही हेतु से जिसज्ञानवान् को सर्वत्र एक अपनाआप आत्मा ही निश्चय भयाहै तिसमहात्माको शोकमोहादि कदापि नहीं७॥

तात्पर्य॥

।"यस्तुसर्वाणिभूतानि"। यहां से लेके।"एकत्वमनुपश्यत"। यहां पर्यन्त ६—७ दो मन्त्र हैं तिनमें सातवें मन्त्रका तृतीयपाद।"तत्र को मोहः कः शोकः"। जो कि अन्वय की रीति से चतुर्थपाद है तिसको छोड़के चारपाद छठे मन्त्रके अरु तीनपाद सातवें मंत्र के इसप्रकार सातपाद १॥। पौने दो मन्त्र करके वेद भगवान्ने मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचारकी रीति संक्षेप

---

* छां० उ० के प्र० ६ के ८वें खण्ड की श्रुति में † छां० उ० प्र० ७में के प्रथम खण्डकी श्रुति में॥

मात्र सूचनकिया है । अरु सातवें मन्त्रके तृतीयपाद करके वेद भगवान् ने ज्ञानवान् के बिषे शोक मोहका अभाव रूप लक्षण अरु सोई मुमुक्षु के अर्थ फलकहा है क्यों जो ज्ञानवान् के बिषे अविद्याकी निवृत्ति का लक्षण शोक मोहादिकोंका न होनाही है। अर्थात् अज्ञानका कार्य शोक मोहादि सोई अज्ञानका लक्षण ताते अज्ञान के लक्षण जे शोक मोहादि तिनकी जे निवृत्ति सोई अज्ञान की निवृत्ति का लक्षण ताते ज्ञानवान् के बिषे अज्ञान के कार्य जे शोक मोहादि तिनके अभावद्वारा अज्ञानकी निवृत्ति मानके तिसको बुद्धिमान् ज्ञानी कहते हैं । ताते शोक मोहका न होना भी ज्ञानवान्के लक्षण हैं । अरु मुमुक्षु जब जानताहै कि। "तरतिशोकआत्मवित्"। आत्मवेत्ता शोकको तरताहै तब शोकतरनेकेअर्थ आत्मज्ञानका जिज्ञासुहोय आचार्य के समीपजाय श्रुति के तत्त्वमस्यादि वाक्यद्वारा यथार्थ आत्मज्ञानपाय शोक मोहादिकोंसे रहितहोताहै ताते मुमुक्षुको आत्मज्ञानका फल शोक मोहादिकोंका अभाव होनाहीहै ताते।" तत्र को मोहः कः शोकः "। इस पादकरके शोक मोहादिकोंका जो अशेष अभाव सोई ज्ञानवान्के लक्षण अरु मुमुक्षुको आत्मज्ञानका फलकहा। अरु शोक मोहके अभाव कहनेसे यावत् अविद्याका कार्यहै तावत् सर्वका अभाव ग्रहणहोता है क्यों जो वेद का कहना आक्षेपपूर्वक है क्योंकि सर्वात्मभाव से आत्माका अनुभव करनेवाले जे पुरुष हैं सो ज्ञानवान् आत्मवेत्ता तिनमें यथार्थ ज्ञानकरके अविद्या अरु तज्जन्य द्वैतभाव तिसका निःशेषअभावभया है तहां शोक मोहकहां किन्तु कदापिनहीं । ताते ज्ञानवान्केबिषे शोक मोह उपलक्षणकरके षट्ऊर्मीसहित अविद्याका अभावसमझना। तहां शोक मोह मनकी ऊर्मी, क्षुधापिपासा प्राणकी ऊर्मी, जन्म मरण देहकी ऊर्मी । ताते यह षट् ऊर्मी मन प्राण शरीरकी हैं आत्माकी नहीं आत्मा सर्व ऊर्मीसे रहित केवल शुद्ध विज्ञानघन आकाशवत् अपने बिषे आपस्थित

है। एतदर्थ पूर्वकथितप्रकारसे एषणात्रयके त्यागपूर्वक षट्ऊर्मीसेरहित जे शुद्ध स्वयंप्रकाश आत्मातिसकी सर्वात्मभावसे अपनेआपबिषे अभेदभावना कि सो सर्वात्मा मैंहों। अर्थात् यह जो अन्तःकरणकी अहंकाररूपा निश्चय आत्मकवृत्ति कि सो सर्वात्मा मैं हों तिसको गिरायके शुद्ध चैतन्यघन अफुर स्वयंप्रकाश सर्वविशेषतासे रहित साक्षात् अपनेआपबिषे आपहोता है ऐसे दृढअभ्यासवाले जे ज्ञानवान्। "नतस्यप्राणा उत्क्रामन्ति" "तत्रैवसमवनीयन्ते "ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" तिसकेप्राण देहावसानसमये देहसे न निकलके तहांही अपनेअधिष्ठान चैतन्यआत्माबिषे लीनहोतेहैं ताते ज्ञानवान् जे आत्मअभ्यासी पुरुष सो सर्व उपाधिसेरहित जहांहै तहां ब्रह्मही है। तथाच "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति,, ॥

सम्बन्ध॥

इसमंत्रबिषे मुमुक्षुको आत्मबिचारकहके आत्मज्ञानका फल शोक मोहादि सर्वविकार अरु तिनकाकारण अविद्या तिसकेअभावपूर्वक मोक्षकहा अब ज्ञानवान् ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अध्यासके बलसे अन्त में देहसे न निकलके यहांही इस शरीरमें जिस ब्रह्मसाथमिलके ब्रह्महीहोताहै तिस परमात्मा परब्रह्मका स्वरूप विधिमुख अरु निषेधमुखकरके वेदभगवान् आगे अष्टम मंत्रकरके प्रतिपादनकरतेहैं॥ ॐ तत्सत्॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः। स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

पदान्वयः॥

शुक्रं अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् सः

१-२ बउ० अ० ६ के शारीरिक ब्रा०की ४ श्रुतिमें। ३ बृ० उ०के में।

पर्य्यगात्[८] कविः[९] मनीषी[१०] परिभूः[११] स्वयम्भूः[१२] शाश्वतीभ्यः[१३] समाभ्यः[१४] याथातथ्यतः[१५] अर्थान्[१६] व्यदधात्[१७] ॥ ८ ॥

पदार्थ ॥

शुद्ध[१] कायारहित[२] छिद्ररहित[३] शिरारहित[४] निर्मल[५] पापरहित है[६] सो[७] व्यापकहै[८] क्रांतदर्शी[९] मनकाईश[१०] सर्वोपरि[११] स्वयंविद्यमान[१२] यथाभूतकर्मफल[१३] साधनसे अनन्तकाल[१४]स्थायी प्रजापतिके[१५]अर्थ पदार्थों[१६] को विभागकरताभया[१७] ॥ ८ ॥

भावार्थ मन्त्र आठवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकथित प्रकार जे मुमुक्षु एषणासे रहित होयके श्रुतियों के। "* स आत्मातत्त्वमसि" *" अयमात्माब्रह्म" † "एतद्वैतत्"। ×"तत्त्वमेवत्व मेवतत्"। इत्यादि वाक्यों प्रमाण ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अभ्यास करनेवाला सो जिसपरमात्मा साथ 'नदी समुद्रवत्' अभेद होताहै सो परमात्मा हेसौम्य। शुद्ध है १। अर्थात् ज्योतिर्मय दीप्यमान स्वयंप्रकाश है। पुनः कैसा है कायारहित अकाय है २। अर्थात् समष्टि सूक्ष्मउपाधि लिंगशरीर (पुर्यष्टिका) अरु व्यष्टि सूक्ष्मउपाधि महत्तत्त्वादि अष्ट प्रकृति विकृति अथवा समस्त सूक्ष्मशरीरों की समष्टता हिरण्यगर्भ। अर्थात् सूक्ष्मशरीररूपी व्यष्टिसमष्टि उपाधिसे रहित ताते अकाय है। पुनः कैसा है छिद्ररहित अछिद्र है ३। अर्थात् इन्द्रियों के गोलकरूपी छिद्र तथा फोड़ा इनसे रहितहै। पुनः कैसाहै शिरा रहित अशिरा है ४। अर्थात् शिराकहिये नाड़ी तिनकरके भी रहित है। यहांछिद्र अरु नाड़ियों के कहने से व्यष्टि स्थूलशरीर रूपी उपाधि अरु समष्टि विराट् शरीररूपी स्थूलउपाधि तिनसे रहित है। पुनः कैसाहै शुद्धहै ५। अर्थात् मूलप्रकृति माया अरु तिसका कार्य तिनसे रहित शरद्काल के आकाशवत् निर्मल सदाशुद्ध है। पुनः कैसा है पापरहित अपाप है ६। अर्थात् धर्म्म अधर्म्मकर्त्ता अकर्त्ता पुण्य पाप स्वर्ग नरक जन्म मरण दुःखसुख

* छांदोग्य* मांडूक्य † कठवल्ली, × कैवल्य,। उपनिषदों विषे ॥

बंध मोक्षआदि यावत् द्वंद्वरूपी पापहैं तिनसर्वसे रहित अपापहै। सो ७। अर्थात् जो परमात्मा सर्वउपाधिसे रहित सदाशुद्ध प्रतिपादन किया है सो परमात्मा व्यापक है ८। अर्थात् आकाशसे भी महासूक्ष्म आकाशादि सर्वविषेव्यापहै॥ हेसौम्य जोपरमात्मा सर्व उपाधिसे रहित परम शुद्ध जिसको श्रुतियोंने।"† अस्थूल मनएव ह्रस्वमदीर्घमलोहित"। इत्यादि नेतिनेति द्वारा निषेध मुख प्रतिपादन कियाहै सोई सर्वव्यापी परमात्माको इस मंत्र के पूर्वार्ध।"शुक्रमकायमव्रण"।इत्यादि करके निषेधमुख प्रतिपादन कियाहै अब उसही परमात्माको इसही मन्त्रके उत्तरार्ध करके विधि मुखद्वारा सविशेष प्रतिपादन करते हैं। हे सौम्य जो परमात्मा सर्व उपाधिसे रहित सदाशुद्ध आकाशवत् सर्वव्यापी कहा है सोई परमात्मा। कवी ९। अर्थात् क्रान्तदर्शी सर्वका द्रष्टा है। तथाच। ❋" नान्यतो ऽस्ति द्रष्टेत्यादि,,। पुनः कैसाहै मनीषी १०। मनका जाननेवाला सर्वज्ञ ईश्वरहै। पुनः कैसा है सर्वके ऊपर है ११। अर्थात् आकाशादि किसी करके भी आच्छादित न होतसन्ते आकाशादि सर्व को आच्छादन करनेवाला सर्व की प्रथमावधि है ताते सर्वके ऊपर है। अथवा सूर्य चन्द्र पृथिवी जल अग्नि बायु काल दिशा देव पितृआदि भूत भौतिक यावत् जगत् है तिस सर्वके ऊपर सर्वका नायक सर्व को अपनी आज्ञामें चलावने वाला है ताते सर्व के ऊपर है। तथाच।"× एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृत तिष्ठति,,। इत्यादि। पुनः कैसा है स्वयंभू है १२। अर्थात् आकाशादि जिनके २ ऊपर है सो सर्व अपनी इच्छा से आपही हुआहै अरु आप स्वतः सिद्ध है ताते स्वयम्भू है। ऐसा जो स्वयम्भू सर्वोपरि सर्वज्ञ स्वयम्प्रकाश सर्वका द्रष्टा नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त स्वभाव परमात्मा परमेश्वरहै सो। अनन्तकालस्थायी १३।

---

† यह बृहदारण्य उ० के ५ में अध्याय के ८ में ब्राह्मणविषे॥
❋× बृ० उ० के अ० ५ में के अष्टमब्राह्मण की ११ तथा ९ श्रुतिमें॥

संवत्सरके अर्थ १४। अर्थात् संवत्सरनाम प्रजापति के अर्थ। यथा भूतकर्म फलसाधनसे १५। अर्थों को १६। अर्थात् कर्त्तव्य पदार्थोंको जो कि अग्निहोत्रादि रूपसे कर्त्तव्य हैं। यथा विभाग से करताभया १७॥ ८॥

तात्पर्य ॥

।"ईशावास्यमिदꣳसर्वं"। इस प्रथम मन्त्रकरके परमात्मा अरु तिसकी प्राप्तिका साधन एषणात्रय से रहित संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान मुमुक्षु के अर्थ सूचना किया १। अरु। "कुर्वन्नेवेह कर्माणि"। इस दूसरे मन्त्रकरके एषणात्रयके त्यागपूर्वक आत्म-अभ्यासमें असमर्थ पुरुष को कर्मबन्धनों की निवृत्तिके अर्थ विहित निष्काम अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्य प्रतिपादन किया २॥ अरु। "असूर्य्यानामतेलोका"। इस तृतीय मंत्रकरके पूर्व कथित उभयका जो त्यागी पुरुष है अर्थात् आत्म अभ्यास अरु विहित निष्काम कर्म जोकि उत्तम मध्यम रीतिसे परमार्थ का हेतु हैं तिनको त्याग के केवल सकाम अथवा निषिद्ध कर्मोंको ही करते हैं तिन पुरुषों को अपने कर्मानुसार असुरलोक प्राप्ति द्वारा तिनकी निन्दा प्रतिपादनकिया ॥ ३ ॥ अरु इनतीन मंत्रों में तीनप्रकार के अधिकारी सूचित किये तहां प्रथम मंत्र प्रमाण आत्माभ्यासी पुरुष मोक्षका भागी उत्तमाधिकारी । अरु दूसरे मंत्र प्रमाण विहित निष्काम कर्म कर्त्ता पुरुष ब्रह्मलोक का भागी मध्यम अधिकारी। अरु तृतीय मंत्र प्रमाण केवल सकाम अरु निषिद्धकर्म सेवी अधर्मी असुरलोक अरु अन्धतम के भागी आत्महत्यारे पुरुष निकृष्ट अरु अधम अधिकारी । प्रतिपादन किये॥ अब प्रथम मंत्र करके आत्मरक्षार्थ जिस परमात्मा की अभेद भावनारूप अभ्यास सो उत्तमाधिकारी मुमुक्षु के अर्थ कहा है तिस परमात्मा को भलीप्रकार से जानने के अर्थ। "अनेज-देकं"। अरु। "तदेजति"। ४–५ इन चतुर्थ पंचमदो मंत्रक-रके प्रतिपादन किया। अरु उस परमात्मतत्त्वके विचार अभ्यास

की रीति मुमुक्षु के अर्थ। "यस्तुसर्व्वाणिभूतानि"। अरु "यस्मिन्सर्वाणिभूतानि"। ६—७ इन षष्ठ सप्तम दो मंत्र करके प्रतिपादन किया। अरु सप्तममंत्रके तृतीय पाद करके शोक मोह के अभावद्वारा ज्ञानवान्‌को सम्यक्‌ज्ञान प्राप्तिका लक्षण देखाया। अरु मुमुक्षु पुरुष सर्वात्मभावना रूपसे ब्रह्म आत्माकी अभेद भावनारूप अभ्याससे परमात्मा के साथ। "* यथानद्यःस्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय। तथाविद्वान्नामरूपाधिमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम्"। इत्यादि श्रुतिप्रमाणसेनदी समुद्रवत्‌भेदसेरहित अभेद एकहोताहै तिस परमात्माका स्वरूप। "स पर्यगाच्छुक्रमकायं"। इस अष्टम मंत्रकरके निषेधमुख अरु विधिमुख प्रतिपादनकिया अर्थात्। "† ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति"। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होताहै। सो कहके ब्रह्मकास्वरूप ज्ञानवान्‌की परम गति देखाय प्रथममंत्रके अनुसार अधिकारी मुमुक्षु ज्ञानवान्‌का प्रकरण चतुर्थ से अष्टममंत्रपर्यन्त पांच मंत्र करके वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया॥ यहां पर्यन्त इस उपनिषद् का पूर्वार्ध प्रतिपादनकरके आगे मध्यम अरु कनिष्ठ अधिकारी का प्रसंग ९ नवममंत्रसे १८ अष्टादशमंत्र पर्यन्त अर्थात् ग्रन्थकी पूर्णतापर्यन्त १० दश मंत्र करके वेदभगवान् इस उपनिषद्‌का उत्तरार्द्ध प्रतिपादन करते हैं॥ ॐ तत्सत् इति शुक्लयजुर्वेद माध्यंदिनिशाखा के ईशावास्य मंत्रोपनिषद्‌के पूर्वार्द्धकी भाषा टीका समाप्त शुभम्॥

सम्बन्ध॥

इस मंत्र विषे परमात्मा को निषेध अरु विधिमुख द्वारा प्रतिपादन करके प्रथम मंत्रानुसार उत्तमाधिकारी ज्ञानवान्‌काप्रसंग प्रकरण समाप्तकिया। अब आगे मध्यमअधिकारी अरु कनिष्ठअधमाधिकारी का प्रसंग चलेगा तहां प्रथम मध्यमाधिकारी का प्रसंग न कहके कनिष्ठ अधमाधिकारी जे तृतीयमंत्रकरके आत्म-

---

* । † यह मुण्डक उपनिषद् के षष्ठ मुण्ड की ८—९ श्रुतियों में॥

हत्यारे कहे हैं तिनकी जो परलोक गति तिसको पुनः ९ नव में मन्त्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादन करतेहैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्ययाछं रताः ॥ ९ ॥

पदान्वयः ॥

ये अविद्याम् उपासते [ते] अन्धं तमः प्रविशन्ति यँ उ विद्ययाम् रतः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति] ॥

पदार्थ ॥

जे पुरुष अविद्याको उपासतेहैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञानमें प्रवेशकरतेहैं [अरु] जे कोई विद्याविषे रतेहैं सो तिससे भी अधिक ऐसे तममें [प्रवेशकरतेहैं] ॥

भावार्थ मंत्र नवम का ॥

हे सौम्य जे १ । अविवेकी सकाम पुरुष अविद्या की २ । उपासनाकरतेहैं ३ । अर्थात् ब्रह्मविद्यासे विपर्यय सो अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणरूप कर्म सो फल प्राप्तिके अर्थ निरन्तर अनुष्ठानकरतेहैं सो अदर्शनात्मक ४ । अज्ञानरूपी अन्धकारमें ५ । प्रवेशकरतेहैं ६ । अर्थात् जे पुरुष कामना सहित अग्निहोत्रादि कर्म का अनुष्ठान करतेहैं सो स्वर्गादिकोंमें स्वकर्मके फल को भोग के नहीं है अपने आत्माकी दर्शन योग्यता जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीर तिनविषे प्रवेश करतेहैं । तथाच । × "इष्टापूर्तंमन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति"। अरु जे कर्म कामना सहित किये जातेहैं सोई संसार का हेतु हैं । तथाच । * "आत्मैवेदमग्रआसीदेक एव सोऽकामत जाया मेस्यादथ प्रजायेयाथ वित्तंमेस्यादथ कर्मकूर्वी" । इत्यादि, अर्थ

× यह मुंडक उ० के प्रथम मुंडके द्वितीय खंडकी १० श्रुति ॥
* बृ० उ० के अध्याय १ के ब्रा० में ।

यह जो प्रथम ब्रह्मा अकेला आपहोके आपको वैभववान् होनेके अर्थ स्त्री पुत्र वित्तादिकों की कामना करके कर्मकरने की इच्छा करता भया । ताते सकाम कर्म संसारप्रवृत्ति का हेतु है अरु संसारही अदर्शनात्मक अनात्मअन्धकार रूप अज्ञान है । तिस अनात्म अज्ञानमें प्रवेशहोय जिन कर्मोंसे सो कहिये अविद्या । ताते अविद्या जे सकाम अग्निहोत्रादि कर्म तिनका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले अविवेकी सो कामना के वशभये अपने आपको अन्धतममें प्राप्त करनेवाले आत्महत्यारे अज्ञानी सो प्रवेश करतेहैं ॥ अरु जे पुरुष ८ । विद्याबिषे ९ । रतहैं १० । अर्थात् देवता ज्ञानकरके जे भेद उपासना करनेवाले जोकि वास्तवकरके देवताओंको अपनेसे अरु अपनेसे देवताओंको अन्य मानके उपासना करतेहैं। सो ११ । सकाम कर्म करनेवालोंसेभी १२ । अधिक १३ । ऐसे १४ । अन्धतममें १५ प्रवेशकरते हैं ॥ अर्थात् जो वास्तवीक स्वरूपमें भेदमानके देवोपासना करनेवाले भेदी उपासक हैं तिनको वेद भगवान् ने पशु करके प्रतिपादन किया है । तथाच । † "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव ॐ देवानाम्" । ताते विद्या शब्दकरकेजे भेद उपासना तिसके कर्ता जे भेदी उपासक कनिष्ठ अधिकारी हैं सो अत्यन्त अदर्शनात्म अज्ञानावृत शरीरोंको प्राप्तहोते हैं ॥ अथवा जे पुरुष लोकदृष्टिमात्र विद्या जेब्रह्मविद्या तिसबिषे रत भासतेहैंअरु कथन भी उसहीका करते हैं परन्तु आत्मअभ्यास से रहित अन्तःकरणमें नानाप्रकारकी विषयवासनाको चोरोंवत् छिपाय अन्तरमेंलेरहे हैं अरु आपको ज्ञानवान् अकर्त्ता मानके इस असत्यज्ञानके आश्रय विहित अग्निहोत्रादि कर्म जोकि अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान का साधन हैं तिसका त्याग करते हैं अरु निषिद्ध जे पान मैथुनादिकर्म तिसबिषे अहर्निश प्रवृत्त रहते हैं। ऐसे जे अन्तरसे शिश्नोदरपरायण अत्यन्त अविवेकी बाह्य मुद्रासे ज्ञान बिषे रत

† बृ० उ० के अ० १ के १० अनु० ॥

भासनेवाले पुरुष हैं सो स्वर्गादि सर्व उत्तम लोकोंसे भ्रष्ट होय अत्यन्त करके अदर्शनात्मक अन्धतम केवल अज्ञानावृत्त वृक्ष पाषाणादि किंवा श्वान शूकर कीट पतंग मशकादि शरीररूपी लोकविषे प्रवेश करते हैं । तथाच । *"अथ य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥ अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानी-मानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्व इति ॥ तथाच † "कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाचयेनराः । न स तत्पदमाप्नोति पुनरायांतियांतिच " ॥ ९ ॥

तात्पर्य ॥

पूर्व तृतीय मंत्र करके जे आत्महत्यारे कहे हैं सो इस नवम मंत्र करके विद्या अविद्याद्वारा दो प्रकारके कहके तिनके अर्थ अर्थात् कामुक कर्म करनेवाले अरु सर्वथा कर्मत्यागने वाले अत्यन्त अज्ञानी इनदोनों कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियों की देह त्यागान्तर जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम लोककी प्राप्ति-रूपी गति प्राप्तहोती है सो प्रतिपादन किया है। सो इसकहने से जे मोक्षार्थी मुमुक्षु हैं तिनको वेद भगवान् दयाकरके सूचना करते हैं जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम को प्राप्तकरने वाले ऐसे जे कामुक अरु निषिद्ध कर्म्म तिनको अशेष त्यागके निष्काम विहित कर्मोंद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धता पूर्वक आत्मअध्यासही कर्त्तव्य योग्य है ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रविषे कनिष्ठ अरु अधमाधिकारीको विद्या अरु अविद्या करके अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्ति प्रतिपादन किया। अब कहेवाक्यकी दृढताके अर्थ वृद्धोंकी साक्ष्य पूर्वक वेदभगवान् आगे दशममंत्र को प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

---

* छां० उ० के ५ प्र० पंचाऽग्नि विद्याकी ७–८ वीं श्रुति ॥
† पंचदशी ग्रंथविषे ॥

अन्यदेवा हुर्विद्यया ऽन्यदेवाहुरविद्यया ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदान्वयः ॥

विद्यया अन्यत् एव आहुः अविद्यया अन्यत् एव आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे धीराणां इति शुश्रुम ॥

पदार्थ ॥

विद्याकरके [फल] अन्य ही कहते हैं [अरु] अविद्याकरके [फल] अन्य ही कहतेहैं जे हमको कर्म तथा ज्ञान कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका वचन ऐसे श्रवणकियाहै ॥

भावार्थमन्त्र दशवें का ॥

हे सौम्य विद्या करके १। फल अन्य २। ही ३। कहते हैं ४। अर्थात् विद्याका फल और ही है ऐसा कहते हैं। अरु अविद्या करके ५। फल अन्य ६। ही ७। कहते हैं ८। जो बुद्धिमान् पुरुष९। हमको१०। कर्मज्ञानका ११ उपदेशकरतेहुए १२ तिन धीरपुरुषोंका बचन१३। ऐसे१४। श्रवणकियाहै १५॥ अर्थात् जिन ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वानोंकरके विद्या अविद्या अरु तिनके अधिकारी अरु तिनकेफलका विस्तार विवेचनहुआ है तिन धीरपुरुषों का वचन ऐसा श्रवणकियाहै जो विद्याका फल औरहै अरु अविद्याका फल औरहै १० ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रबिषे विद्याकाफल और अरु अविद्याकाफल और कहा है। अर्थात् विद्याके जे उपासकहैं अरु अविद्याके जे उपासक हैं तिनदोनोंको उपासनाके अनुसार फलभिन्न२दोदोप्रकारकेहैं तहां एक२प्रकारसे विद्या अरु अविद्याका फल अरु तिनके अधिकारी जोकि तृतीयमंत्रबिषे आत्महत्यारेकरके कनिष्ठ अरु अधमकहे हैं सो कहां। अर्थात् अविद्याकरके सकाम कर्म अरु तिनका फल अन्धतमसें प्रवेश। अरु विद्याशब्दकरके भेदउपासना अथवा

असत्यज्ञान अरु तिसकाफल अत्यन्त अन्धतममें प्रवेशकहा । इसप्रकार विद्या अविद्याशब्दका अर्थ तिनके फलाऽनुसार एक२ प्रकारका नवममंत्रकरके जे कहाहै सो बडेधीर बुद्धिमान् पुरुष जे विद्या अविद्याके विभाग विवेचनकर्त्ता पूर्वभये हैं तिनके वचनोंद्वारा श्रवणकिया है ॥ अरु तैसेही धीरपुरुषों के वचनोंद्वारा विद्या अविद्याके उपासकोंको तिनका फल औरप्रकारभी श्रवण कियाहै सो आगे एकादश११में मंत्रकरके कहेंगे । ताते यह जो दशममंत्र है सो देहली दीपकन्यायसे नवम अरु एकादश इन दोनों मंत्रों से सम्बन्ध रखता है । क्यों जो इस मंत्रमें विद्याका फल और अरु अविद्याका फल और कहाहै सो नवममंत्रसे कहे प्रमाण कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियोंको तो एक २ निरूपण किया । अरु और एक२ प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ विद्या अविद्याका स्वरूप अरु फल आगे एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन करते हैं ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रमें विद्याकाफल अन्य अरु अविद्याका फल अन्यकहा है तहां कनिष्ठ अरु अधम अधिकारीको विद्या अविद्या अरु तिनकाफल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमप्राप्ति नवममंत्रकरकेकहा । अब अन्य जे मध्यम अधिकारी द्वितीयमंत्रद्वारा कहे हैं तिनकी विद्या अविद्याका स्वरूप अरु तिनकाफल अथवा समुच्चयका फल आगे एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन करतेहैं ॥

विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह ॥ अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदान्वयः ॥

तत्[1] उभयं[2] विद्यां[3] च[4] अविद्यां[5] च[6] यः[7] सह[8] वेद[9] अविद्यया[10] मृत्युं[11] तीर्त्वा[12] विद्यया[13] अमृतं[14] अश्नुते[15] ११ ॥

पदार्थ ॥

सो[1] दोनोंको[2] विद्या[3] पुनः[4] [तिसकाफल] अविद्या[5] पुनः[6] (तिसकाफल] जे[7]कोई एकसाध्य[8] जानता[9] है [सो]अविद्याद्वारा[10] मृत्यु[11]को तरके[12] विद्याद्वारा[13] अमृतको[14] प्राप्तहोताहै[15] ॥

भावार्थमंत्रग्यारहवेंका ॥

हेसौम्य जे द्वितीयमंत्र से आत्मअध्यासमें असमर्थ मध्यम अधिकारी सूचितकियेहैं। सो पुरुष१। दोनोंको२। अर्थात् विद्याको३। अरु४। तिसके फलको अरु। अविद्याको५। अरु६। तिसके फलको। अर्थात् विद्याकहिये देवताके स्वरूप आयतन प्रतिष्ठा आदिकोंके ज्ञानपूर्वक अहंअग्रे अभेदउपासना। अरु अविद्याकहिये अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्म अरु इनदोनोंके फलको। जे कोई ७। एक पुरुषकरके अनुष्ठान योग्य ८। जानताहै ९। अर्थात् जे पुरुष कथितप्रकार की विद्या अविद्याको समुच्चय सेवनकरता है सो पुरुष। अविद्याद्वारा १०। मृत्युको ११। तरके १२। विद्याद्वारा १३। अमरभावको १४। प्राप्त होताहै १५॥ अर्थात् अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्मरूपी अविद्या तिसके करने करके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभ योनिकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटके देवता के स्वरूपादिकोंके ज्ञानसहित जे अहं अग्रे उपासना तिस अभेदउपासनारूपी विद्याकरके देवताकेसाथ अभेदभावकी प्राप्तरूपी जे अमरत्वभाव तिसको प्राप्तहोताहै ११॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्रबिषे। "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"। अविद्याद्वारा मृत्युसों तरके विद्याद्वारा अमरभावको प्राप्त होताहै। ऐसा प्रतिपादनकियाहै तहां अविद्या जे अग्निहोत्रादि विहित कर्म तिनके निष्काम करनेसे अन्तःकरणकी मलिनतारूपी मृत्युसों छूटके विद्या जे ब्रह्मविद्या तिसकरके अमरभाव जो मोक्ष तिसकी प्राप्ति होतीहै। ऐसा भी अर्थ ठीक है। परन्तु इस स्थानबिषे सोई अर्थ यथार्थ है जो ऊपर व्याख्या किया

है क्योंकि अष्टादशवें मंत्रबिषे अग्निसे मार्ग याचना कही है सो अग्निकी विद्याद्वारा उपासकके अर्थ है । अरु जे ब्रह्मविद्याद्वारा ब्रह्मआत्मा के अभेद उपासक ज्ञानी सो मार्ग से रहित है क्यों जो ज्ञानी के प्राण अन्त समय देह से उत्क्रमण न होके । * " तत्रैवसमवलीयन्ते " । जहां है तहांही अपने अधिष्ठानबिषे लीन होताहै । ताते यहां विद्या अविद्या शब्दका अर्थ जो प्रथम कहा है सोई यथार्थ है तिसको पुनः कहते हैं । हे सौम्य जे पुरुष अग्निकी विद्या के ज्ञानसे रहित केवल अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो देहत्यागके अनन्तर पितृलोकमें अपने कर्मों के फल भोगके पुनः ब्राह्मणादि वर्णत्रयीमें से कहीं भी अपने कर्मानुसार उत्पन्नहोय पुनः कर्मही करतेहैं । † " कर्मणा पितृलोकः " । ताते अविद्याजे अग्निहोत्रादि कर्म तिसकरके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभ योनियोंकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटते हैं । अरु विद्या जे पंचाग्नि वैश्वानर तृणाचिकेत आदि अग्निविद्या अथवा दहरादि विद्या तिन विद्याद्वारा देवताओं के स्वरूपादिकोंके ज्ञानपूर्वक जे अहं अग्रे अभेद उपासना सो विद्या तिस विद्याकरके ब्रह्मलोक किंवा अग्नि आदि देव भावकी प्राप्ति । × । " विद्ययादेवलोकः " । सोई अमरत्व की प्राप्तिहै । ताते अभिप्राय यह है कि जे कोई पुरुष अग्नि आदि विद्याके ज्ञानपूर्वक अहं अग्रे उपासना करतसन्ते अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो पुरुष विहित कर्मद्वारा अकरण प्रत्यवायरूप मृत्युसों छूटके अग्नि आदिकोंकी विद्याद्वारा समष्टिदेव भावको प्राप्त होते हैं । ताते इसमंत्रद्वारा विद्या अविद्याकरके कर्मउपासना के समुच्चय सेवनकरनेवाले मध्यम अधिकारीको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा अरु इस समुच्चय के आवान्तर विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल पृथक् २ भी सूचित किया है ॥ ॐ तत्सत् ॥

*—† छान्दोग्य उपनिषद् बिषे ॥ × बृ० उपनिषद् बिषे ॥

सम्बन्ध ॥

इस ११ ग्यारहवें मंत्रमें अरु ९ नवममंत्रमें विद्या अरु अविद्या का स्वरूप पृथक् २ प्रतिपादन किया है सो अधिकारी अरु फल वाक्यके भेद से किया है । तैसेही आगे बारहवें मंत्र से चौदहवें मंत्र पर्यन्त तीन मंत्रकरके संभूति अरु असंभूतिकी उपासना भी अधिकारी अरु फलवाद के भेदसे पृथक् २ प्रकार से प्रतिपादनकरेंगे तहां प्रथम कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी जे तृतीय मंत्रकरके सूचित किये हैं तिनको आदि कार्य कारण जे संभूति अरु असंभूति तिनकी उपासनासे जो गति प्राप्त होतीहै सो वेद भगवान् आगे बारहवें मंत्रकरके प्रतिपादनकरते हैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो यउ सम्भूत्याᳪं रताः १२ ॥

पदान्वयः ॥

ये असंभूतिम् उपासते [ते] अंधं तमः प्रविशन्ति ये उ संभूत्याम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति]

पदार्थ ॥

जे असंभूति को उपासते हैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञानप्रति प्रवेशकरते हैं [अरु] जे कोई संभूति विषे रत हैं सो तिससेभी अधिक ऐसे तममें [प्रवेश करते हैं] ॥

भावार्थ मंत्रबारहवेंका ॥

हे सौम्य जो पुरुष १। असंभूति की २। उपासना करतेहैं ३। अर्थात् संभव कहिये उत्पत्ति है जिस कार्य की सो संभूति तिस कार्य रूपसे जे अन्य कारणरूप सो कहिये असंभूति जिसको प्रकृति अव्याकृत माया आदि नामसे कहते हैं सो काम कर्मादिकोंको उपजावनेवाली अन्धतम अविद्या तिसकी जो उपासना करतेहैं सो पुरुषतारूपही । अदर्शनात्मक ४। अज्ञानअन्धकारविषे ५। प्रवेश करते हैं ६। अर्थात् वारंवार कारणभाव को

ही प्राप्त होते हैं क्योंकि अविद्या का कार्य कामना तिसको अपने बिषे लेके सकाम कर्मोंकाही अनुष्ठानकरते हैं सो अदर्शनात्मक अज्ञानरूप संसार में प्रवेश करते हैं ताते अपने बिषे नाना प्रकारों के शरीर उपजावने का कारण आपही होते हैं ॥ अरु जे ७। कोई पुरुष ८। संभूति बिषे ९। रत हैं १०। सो ११। तिससेभी १२। अधिक १३। ऐसे १४। तम में १५ ॥ प्रवेश करते हैं अर्थात् जे कोई अत्यन्त अविवेकी सकाम पुरुष हैं सो संभव है जिसका ऐसा जे आदि कार्यरूप हिरण्यगर्भ सो कहिये संभूति तिसकी जे सकाम उपासना करते हैं सो अधिकतर अदर्शनात्मक अज्ञान अन्धकार बिषे प्रवेश करते हैं । अर्थात् कार्य की कार्यभाव से जे उपासना तिसकरके जडात्मक कार्यभावकोही प्राप्त होते हैं । अर्थात् प्रकृतिका कार्य हिरण्यगर्भ तिसका कार्य अणिमादि ऐश्वर्य्य तिस ऐश्वर्य्य की कामना से किया जे कार्य हिरण्यगर्भ की उपासना तिसकरके कार्यरूप जे रत्नादि जड़ ऐश्वर्य तिस भावको प्राप्त होतेहैं ॥ अथवा हे सौम्य नास्तिकवादी आत्माको असंभूतिमानके कहते हैं कि असंभव मृतक का पुनः संभवनहीं अर्थात् शरीरके नाशहोतेही आत्माका नाश होताहै पुनः आत्मा कोई रहतानहीं कि जिसका पुनः संभव होय ताते आत्मा असंभूति है ऐसा निश्चय करते हैं हे सौम्य सो पुरुष अत्यन्त अन्धतम जे श्वान शूकरादि शरीर रूपी नरक तिसको प्राप्त होते हैं। अरु संभव [उत्पत्ति] है जिसकी ऐसा जो शरीर सो संभूति तिस संभूती नामक शरीरको आत्मामानके कहते हैं कि यह जो दृश्यमान् शरीर है सोई आत्माहै। हेसौम्य ऐसे जे देहात्मवादी अधमाधिकारी विरोचन की सम्प्रदायवाले चारवाकी सो देहत्याग के अनन्तर महाअन्धतम वृक्ष पाषाणादि जड़भाव कोही वारंवार प्राप्त होते हैं १२ ॥

तात्पर्य ॥

जे कि तृतीयमंत्र में कनिष्ठ अरु अधमअधिकारी सकाम

कर्म अरु अशुमकर्म करनेवाले कहे हैं तिनके अर्थ कर्मानुसार अज्ञानावृत असुरलोकरूपी फल की प्राप्तिकहा ।सो इसकहने से वेदभगवान् ने सूचना किया है कि जो सकाम अरु निषिद्ध कर्म हैं सो मध्यमाधिकारी मुमुक्षु को कर्त्तव्य नहीं अरु उत्तमाधिकारी मुमुक्षु पुरुषों को तो इन कर्मों का स्मरणमात्र भी कर्त्तव्य नहीं क्योंकि ये अनर्थ के हेतु हैं । अरु यही अर्थ पुनः वेद भगवान् ने नवम मंत्र करके प्रतिपादन किया है कि जिससे मुमुक्षु पुरुष भूल करके भी विद्या अविद्यारूप कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनारूप उपासना तिनके समीप भी न जाय। अरु सोई अर्थ पुनः इस बारहवें मंत्र करके मुमुक्षु के अर्थ सूचनाकिया कि संभूति अरु असंभूति अर्थात् कार्य अरु कारण जे हिरण्यगर्भ अरु आदि प्रकृति तिनकी उपासना भी सकाम अरु भेदभाव से कर्त्तव्य नहीं क्योंकि सकाम कर्म अरु भेदभाव उपासना तिनके जे फलहैं सो सर्व नाशवान् जड़ हैं ताते सोई अदर्शनात्मक अन्धतम हैं ताते आदि प्रकृति जे सर्व देवादिकों का आदिकारण कि जिसकी उपासना से त्रैलोक्य की सर्व विभूति प्राप्त होती है तिसकी उपासनाभी सकामतासे मुमुक्षुको सर्वथा कर्त्तव्य नहीं । अरु जे कोई प्रकृतिआदि देवताओंकी सकाम उपासना करते हैं सो अन्त में अन्धतमको प्राप्त होतेहैं ॥ ताते वेद भगवान् ने इस मंत्रसे मुमुक्षु को केवल काम्य कर्म अरु भेदभावना आदि अशुभ आचरणों से हटावने के अर्थ कामुककर्म अरु भेद उपासना की निंदा किया है । अरु तृतीय नवम द्वादश इन मंत्रोंसे तुवाक्यता करके आग्रह सहित वेदने कामुक कर्म अरु भेद उपासना तिसका फल अन्धतम असुरलोक प्राप्ति कहके तिनके कर्त्ताको आत्महत्यारे सूचितकिये कि जिससे मुमुक्षु आदि विवेकी पुरुष सकाम कर्म अरु भेदभावना के सम्मुख न होय ॥ अरु जे अविवेकी पुरुष अपनी रक्षा में असमर्थ कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनाके कर्त्ता आत्म-

हत्यारे हैं तिनको परिणाममें श्वान शूकर वृक्ष पाषाणादि नीच गतिकी प्राप्ति देखाय वेद भगवान् ने कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्र बिषे असंभूति अरु संभूति शब्द करके मूलप्रकृति आदि कारण अरु हिरण्यगर्भ आदि कार्य जे जगतरूपी वृक्षका आदि बीज अरु आदि अंकुर है सो कहा अरु उनकी भी सकाम अरु भेदभावउपासना से अन्धतमादि प्राप्ति देखाय मुमुक्षु को कामना अरु भेदभावना से हटाया । अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे तेरहवें मंत्रमें संभूति की उपासना का फल अन्य अरु असंभूति की उपासना का फल अन्य अर्थात् दो प्रकारका है तिनको वृद्धोंकी साक्ष्यपूर्वक देहली दीपक न्यायवत् पूर्वोत्तर मंत्रसे सम्बन्ध करते तेरहवें मंत्रको प्रारंभ करते हैं ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे १३ ॥

पदान्वयः ॥

संभवात् अन्यत् एव आहुः असंभवात् अन्यत् आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे तेषां धीराणां इति शुश्रुम १३ ॥

पदार्थ ॥

संभूतिकरके [फल] अन्य ऐसा कहते [अरु] असंभूतिकरके [फल] अन्य कहते जे हमको संभूतिअसंभूतिफल कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका [बचन] ऐसे श्रवणकियाहै ॥

भावार्थ मंत्र तेरहवेंका ॥

हे सौम्य । संभूति की उपासना से १। फल और है २। निश्चय ३। कहते हैं ४। अरु असंभूति की उपासनासे ५। फल औरहै ६। ऐसाकहते हैं ७। अर्थात् संभूतिकी उपासना का फल औरहै अरु

असंभूतिकी उपासनाका फल और है निश्चय से ऐसा कहते हुए। जे ८। हमको ९। उस संभूति असंभूति अरु तिनके फलादिकोंका १०। उपदेश करतेभये ११। तिन धीरपुरुषोंका बचन १२। इसप्रकार १३ श्रवणकियाहै १४॥ अर्थात् जिन विद्वान् वृद्धोंकरके उन संभूति असंभूतिका स्वरूप उपासना अधिकारी फल आदिकों का विस्तार विवेचन कियागया है तिन धीरपुरुषोंका बचन इतना इसप्रकार श्रवणकियाहै १३॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रविषे संभूतिकी उपासनाका फल और असंभूतिकी उपासनाका फल और है ऐसा प्रतिपादन कियाहै। अर्थात् संभूति अरु असंभूतिके उपासकोंको फल भिन्न२ दो२ प्रकारके हैं ऐसा निश्चय कहाहै तहां जे कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम उपासकहैं तिनको संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्तिहै ऐसा एकप्रकारसे बारहवेंमंत्रकरके प्रतिपादनकियाहै॥ अरु दूसरीप्रकारसे मध्यम अधिकारी जे आत्मअध्यासमें असमर्थहुए संसारके क्लेशोंकी निवृत्तिकेअर्थ निष्कामतासे संभूति असंभूतिकी उपासनाकरनेवाले हैं तिनको उपासनाके अनुसार मृत्युसेछूटना अरु अमरत्वप्राप्ति रूपीफल सो आगे चौदहवें मंत्रसे प्रतिपादनकरेंगे। ताते संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल सकामता निष्कामताके आश्रय भिन्न २ होताहै इसप्रकारका निश्चयपूर्वक बड़े धीर विद्वान् वृद्धपुरुषोंका बचन श्रवणकियाहै। हेसौम्य इसप्रकार यह विद्या एकके समीपसे दूसरेको प्राप्त होतीहै। यह जो१३ तेरहवां मंत्र है सो देहली दीपकन्यायवत् बारहवें अरु चौदहवें इन दोनोंमंत्रों से सम्बन्धकरताहै तहां एकप्रकारसे संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल कनिष्ठ अधमाधिकारीके अर्थ १२ वें मंत्रमें कहा है अरु दूसरी प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ १४ वें मंत्रसेप्रतिपादन करतेहैं॥

सम्बन्धमन्त्र तेरहवेंका ॥

इस मन्त्र करके सम्भूति असंभूति की उपासना के फल भिन्न २ दो२ प्रकार से सूचना किये हैं तहां एक प्रकार से १२ वें मंत्र से कहके द्वितीय प्रकार से कहने के अर्थ १४ वें मंत्र का प्रारम्भ करते हैं ॥

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयछं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥

पदान्वयः ॥

यः तत् उभयं सम्भूतिं च विनाशं च सह वेद [सः] विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतं अश्नुते ॥

पदार्थ ॥

जोपुरुष सो दोनों असंभूति पुनः संभूति को एक जानते हैं [सो] संभूतिकरके मृत्युको तरके असंभूतिकरके अमृतको प्राप्त होतेहैं ॥

भावार्थ मंत्र चौदहवेंका ॥

हे सौम्य जे पुरुष द्वितीय मंत्रकरके कहे आत्म अध्यास में असमर्थ मध्यमाधिकारी १। सो पुरुष २। दोनों को ३। अर्थात् संभूतिशब्द करके * असंभूतिको ४।अरु ५ विनाश शब्द करके संभूत्ति को ६-७। अर्थात् असंभूति सो आदि कारण प्रकृति अरु विनाश सो संभूति आदिकार्य हिरण्यगर्भ इन दोनों को। एक करके ८। जानता है ९। अर्थात् एकही पुरुष असंभूति अरु संभूतिको अरु तिनके फलको एक जानके निष्कामतासे दोनों का समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष । विनाशधर्मी जे कार्य संभूति हिरण्यगर्भ तिसकी उपासना से १०।अनैश्वर्यरूपी मृत्यु को ११। तरके १२।पुनः असंभूति जे आदिकारण प्रकृति तिस

---

* श्रीशंकराचार्य ने सम्भूतिका अर्थ असंभूति अरु विनाशका अर्थ संभूति किया है ॥

की उपासना से १३। अमृत को १४। अर्थात् प्रकृतिलय लक्षण रूपको प्राप्तहोता है १५। १४ ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्र बिषे। "विनाशेन मृत्युंतीर्त्त्वासंभूत्याऽमृतमश्नुते"। ऐसा प्रतिपादन किया है तहां विनाशधर्म है जिसका ऐसा जे संभूतिरूप कार्य्यब्रह्म हिरण्यगर्भ सर्वसूक्ष्म शरीरों की समष्टता परिणाममें प्रकृतिबिषे लय होनहार ताते विनाशि तिस हिरण्यगर्भकी उपासनासे अनैश्वर्यरूपी मृत्युसों तरके। अर्थात् हिरण्य गर्भकी उपासना से अणिमादि ऐश्वर्यरूपी फलकी प्राप्ति है सो उपासनाका असाधारण फलहै सो हिरण्यगर्भके निष्काम उपासक पावतेहैं। तिसकी प्राप्तिसे दारिद्र आदि अनैश्वर्यरूपी मृत्युसे तरजातेहैं॥ अरु असंभूति कहिये नहींहै संभव (उत्पत्ति) जिसका ऐसी जे संभव से रहित आदि कारण प्रकृति जो कि चैतन्य परमात्मा की सत्ता पाय सूक्ष्म स्थूलादि सर्व ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करनेवाली तिसकी जे निष्काम उपासना करतेहैं सो परिणाममें देहत्यागान्तर प्रकृतिलयलक्षणरूप अमृतको प्राप्तहोतेहैं। अर्थात् वो पुरुष पुनः कार्य भावको प्राप्त नहीं होते सोई उनको अमरत्व प्राप्ति है। एतदर्थ इस मंत्रबिषे विनाशशब्द करके संभूति आदि कार्य हिरण्यगर्भ को कहा अरु असंभूति शब्द करके अव्याकृत आदिकारणको कहा। इन दोनों की समुच्चय उपासना करने वाले मध्यम अधिकारी तिनको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा। अरु इस समुच्चय के अवान्तर संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् भी २ सूचित किया। अरु १२ में मंत्रसे १४ में मंत्र पर्यन्त संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ सूचनकिया। है तहां १२ में मंत्रमें सकाम भिन्न भावसे उपासनाका फल कनिष्ठ अधमाधिकारी के अर्थ अन्धतम अरु अधिकअन्धतम प्राप्ति कहा है। अरु इस १४ में मंत्र करके संभूति असंभूति की निष्काम अ-

भेद उपासना का फल मृत्युसे तरना अरु अमरभाव की प्राप्ति प्रदिपादन करके मध्यम अधिकारी की उपासना का प्रसंग वेद भगवान् ने यहां समाप्त किया । इस उत्तरार्ध में नवम से चतुर्दशमें मंत्र पर्यन्त मध्यम अरु कनिष्ठ अधमाधिकरी की उपासनाका प्रसंग प्रतिपादन कियाहै तहां कनिष्ठ अधमाधिकारी को कामुक अरु निषिद्ध कर्मों का फल विद्या अविद्याद्वारा अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति नवममंत्रकरके कहा अरु उनहीं के अर्थ संभूति असंभूति की उपासना का फलभी अन्धतम अरु अधिक अन्धतमही बारहमें मंत्र करके प्रतिपादन किया । अरु मध्यम अधिकारी को निःकाम विहित सज्ञात कर्मकाफलविद्या अविद्याद्वारा मृत्युसेतरना अरु अमरत्व यह एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन किया । अरु उनहीं के अर्थ निष्काम सज्ञात संभूति असंभूतिकी अभेद उपासनाका फल मृत्युसे तरना अरु अमरत्व प्राप्ति चतुर्दशवें मंत्र करके प्रतिपादन किया । अरु दशम त्रयोदश इनदोनों मंत्रोंको मध्यमें वृद्धोंके वाक्योंके सम्बन्धार्थ प्रतिपादन किया । ताते नवम से चतुर्दशवें मंत्र पर्यन्त कनिष्ठ अधमाधिकारी अरु मध्यमाधिकारी का प्रसंग वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया ॥ अब एकादशवें मंत्रमें कहाहै कि । "विद्ययाऽमृतमश्नुते" । विद्या करके अमरभाव को प्राप्त होतेहैं सो कौन २ विद्याकरके कौन २ उपासनाद्वारा कौन २ अमरभाव की प्राप्ति मध्यमाधिकारी को प्राप्त होती है सो संक्षेपमात्र चार मंत्रसे प्रतिपादन करतसंते वेदभगवान् इसउपनिषद्को पूर्णकरतेहैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रमें मध्यम अधिकारीको संभूति असंभूतिकी निष्काम अभेद सज्ञात उपासनाका फलमृत्युसे तरना अरु अमर भावकी प्राप्ति निरूपण करके मध्यम अधिकारी उपासककी संभूति असंभूतिकी उपासनाद्वारा परिणामगतिका प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे मध्यम अधिकारीकोही विद्याके आश्रय उपासनाद्वारा

अमरभावकी प्राप्ति जैसे होतीहै सो निरूपणकरैंगे। तहां प्रथम सूर्यभगवान्द्वारा जे सत्यपरमात्माके उपासकहैं तिनकी अपने उपास्य देवसे मार्गयाचना पंचदशमें मंत्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादनकरतेहैं॥ ॐतत्सत्॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये १५॥

पदान्वयः॥

हेपूषन् सत्यस्य मुखं हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितं तत् त्वं सत्यधर्माय दृष्टये अपावृणु १५॥

पदार्थ॥

हेपूषा सूर्य सत्य परमात्माका द्वार तेजोमय पात्रकरके आच्छादितहै तिसको तुम सत्यधर्मामुझको दर्शनकेअर्थ खोलिद्यो १५॥

भावार्थमंत्रपन्द्रहवेंका॥

हेसौम्य जेकोई एकपुरुष सूर्यभगवान्द्वारा प्रत्यगात्माके उपासकहैं सो अपनेको अमृतत्वप्राप्तिके अर्थ अपने उपास्य सूर्यभगवान्से परमात्माके दर्शनार्थ अभिलाषाकरतसंते प्रार्थनाकरेहैं कि॥ हे जगत्के पोषणकर्त्ता सूर्य १। तुम्हारे मंडलविषे जे सत्यपरमात्माहै तिसका२। दर्शनद्वार ३। सो तुम्हारे तेजोमय ४। पात्रकरके ५। अर्थात् बिम्बकरके आच्छादित है ६। तिसको ७। तुम ८। सत्यधर्माको ९। अर्थात् सत्यस्वरूप जे तुम तिसकी यथोचित उपासना से सत्यधर्मा जो मैं तिस मुझको। देखने के अर्थ १०। खोलदेयो ११॥ अथवा हे सर्वके पोषणकर्त्ता सूर्य सत्यस्वरूप जे सर्वान्तर प्रत्यगात्मा तिसके दर्शनका जे मुखद्वार शुद्ध अन्तःकरण सो हिरण्यमय पात्रकरके। अर्थात् सुवर्णादि द्रव्य विषयक लोभात्मक वृत्तिकरके। आच्छादितहै तिसको तुम मुझसत्यधर्माको दर्शनके अर्थ खोलदेयो। अर्थात् तुमहींको सत्यदेव जानके

तुमारीही स्तोत्र नमस्कारादि द्वारा यथोचित आराधना करने-वाला याते सत्यधर्मा ऐसा जो मैं तिसको अपने हृदयस्थ स्वयं-प्रकाश अन्तर्यामी प्रत्यगात्मा तिसको साक्षात् आत्मत्वसे अनुभव करने के अर्थ उस लोभात्मकादि अशुभ वृत्तियोंको अनुग्रहकरके दूरकरो यही आपसे मेरी प्रार्थना है १५ ॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्र से सूर्य भगवान् द्वारा प्रत्यगात्माकी उपासनावाले को वेदवाक्यसे सूर्यकी उपासना करतसन्ते अन्तरसे उपास्यदेव आगे अमरतत्व आत्मा की प्राप्त्यर्थ याचना कर्तव्य प्रतिपादन किया है । तैसेही अन्य देवताओं के उपासकों को भी जिसकी वेदोक्त उपासना होय तिस देवतासे अमृतत्व आत्माकीही प्राप्ति याचना कर्तव्यहै कि जिसकरके परिणाममें परमशान्त अमृतत्व की प्राप्तिहोय । यह सूचना किया ॥ और सर्व मनुष्यमात्रने भी कर्मउपासना करके स्वस्वरूप के सम्यक् बोधार्थही प्रार्थना कर्त्तव्यहै नतु विषयार्थ जोकि अन्धतम प्राप्तिकेहेतुहैं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्रबिषे सूर्यभगवान्की प्रत्यक् उपासना देखाय उपा-सकको अपनेआप आत्मा के सम्यक्बोधार्थही उपास्यदेवसे याचनाकर्त्तव्य सूचितकिया । अब अहंअग्रे उपासनाकीरीति से सूर्यकी प्रार्थनाकेअर्थ १६ में मंत्रका प्रारम्भ करते हैं ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

पदान्वयः ॥

हे पूषन् हे एकर्षे हे यम हे सूर्य हे प्राजापत्य रश्मीन् व्यूह तेजः समूह [एकीकुरु] यत् ते कल्याणतमं रूपं तत् ते पश्यामि यः असौ पुरुषः सः असौ अहम् अस्मि ॥

पदार्थ ॥

हेपोषणकर्त्ता हेएकचलनेवाले हेसर्वकेसंयमनकर्त्ता हे सर्व रसकेस्वीकारकर्त्ता हेप्रजापतिकेपुत्र [सो] अपनीकिरणा दूरकरो तापके समूहको [एकत्रकरो] जो तुम्हारा कल्याणतम रूपहै तिसको तुम्हारेप्रसादसे मैंदेखताहौं जोयह [तुम्हारेबिषेपूर्ण] पुरुषहै सो ई यह मैं हौं ॥

भावार्थमंत्रसोल्हवेंका ॥

हे सौम्य अब सूर्यभगवान्‌का जो अहंग्रह उपासना करने वाला उपासक है सो सूर्यभगवान् से प्रार्थना करता है कि हे सर्वके पोषणकर्त्ता पूषा १। हे एकचलनेवाले २। अर्थात् आकाशमण्डलमें चलनेवाले जे ग्रहादिक तिनका अधिपति एक ताते "एकर्षे"। हे संयमनकर्त्ता ३। अर्थात् सर्व प्राणधारियों को अपने२ नियममें रखनेवाला न्यायकर्त्ता यम। हे सूर्य ४। अर्थात् सर्वरसजातिको अपनेबिषे अपनी किरणोंद्वारा स्वीकारकर्त्ता। हे प्रजापतिके पुत्र ५। अर्थात् संवत्सरात्मक कालमूर्त्ति। अपनी किरणाओंको ६। दूरकरो ७। अरु अपने तापकतेजके ८। समूहको ९। एकत्रकरो कि जिसकरके। जोकि १०। तुम्हारा ११। कल्याणतमरूप है १२–१३। अर्थात् जो तुम्हारा अतिशोभन परमशान्त आनन्दघन निराकार कल्याणतमरूपहै। तिसको १४। तुम्हारेप्रसाद करके १५। मैं देखताहौं १६। जो यह १७। तुम्हारेबिषे चैतन्यपुरुष है १८। सोई १९। यह २०। अर्थात् जो यह प्राणबुद्ध्यादि संघात बिषे पूर्ण चैतन्य पुरुष है सो। हम् २१। हैं २२॥ १६॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्रबिषे जे सूर्यभगवान्‌के विशेषण कहेहैं सोसर्व सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषके कहेहैं। अरु जो सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषहै सोई प्राणबुद्ध्यादि सर्वसंघातस्थ चैतन्यहै ताते जे विशेषण सूर्यस्थचैतन्यके हैं सोई प्राणस्थचैतन्यकेहैं तिसको श्रवणकरो। हे सौम्य जैसेचैतन्य

पुरुष सूर्य साथ मिलके वृष्टि आदि द्वारा जगत्का पोषण करता है तैसेही प्राण साथमिलके अन्नादिकों के रसद्वारा शरीर रूपी जगत्का पोषणकरता है । अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्य्य साथ मिल के सर्व ग्रहादिकों में श्रेष्ठ ताते एक आकाशमें चलनेवाला है। तैसे[1] ही[2] प्राणद्वारा मनादि सर्व में श्रेष्ठ ताते एक हृदयाकाश में विचरने वाला है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सर्व ब्रह्माण्डको अपने २ नियममें राखतसंते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। तैसेही प्राणद्वारा शरीररूपी ब्रह्माण्ड विषे सर्व इन्द्रियादिकोंको अपने २ नियम में राखत संते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सम्पूर्णरसजाति को अपने विषे स्वीकार करताहै। तैसेही प्राणद्वारा सर्व अन्नादि रसोंका भोक्ताहै "अत्ता चराचरग्रहणात्" ॥ "प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नंचतुर्विधम्" अरु जैसे चैतन्यपुरुष सूर्यद्वारा प्रजापतिका पुत्र कहावता है। तैसेही प्राणद्वारा मिलके लिंग अथवा वीर्य्यद्वारा पिताकापुत्र कहावता है। "आत्मावैजायतेपुत्रः"। ताते जो एकचैतन्य पुरुष सूर्य अरु प्राणरूपी उपाधि साथमिल के अधिदैव अरु अध्यात्मभाव को प्राप्तभया है सो चैतन्य वास्तव स्वरूप करके उभय स्थानोंमें एकही है इसही हेतुसे अहंग्रहे उपासनाकरनेवाला पुरुष अपने उपास्य सूर्य भगवान् से प्रार्थना करताहै कि हे सूर्य तुम अपनी किरणोंको दूरकरो अरुअपनेतापक तेजकोलयकरो किजिसकरके तुम्हारे वास्तविक परमकल्याणरूप चैतन्यपुरुषको अपनाआप आत्माकरके अनुभव करताहौं क्यों जो सोई चैतन्यपुरुष मैंहौं॥ अथवा हे सूर्यस्थपुरुष परमसूर्य इस शरीरमें जो प्राणरूपी सूर्य है तिसकी प्राणापानादि भेदसे नानाप्रकारकी प्रसरित वृत्तिरूपीकिरणा तिसको तुम अपने अनुग्रह करके हृदयाकाश विषे एकत्रकरो कि जिसकी एकतासे प्राणहीविषे प्रकाशित जे परम चैतन्य प्राणका भी प्राण तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव करें क्योंकि वास्तवकरके श्रुतियों के तत्त्वमस्यादि प्रमाण से

अरु अपने आप यथार्थ अनुभवसे जो सम्पूर्ण चराचर जगत्में परिपूर्ण ताते पुरुष अथवा सर्व शरीररूपी पुरबिषे किंवा पुरीतती नाडीबिषे शयन करनेवाला ताते पुरुष। अर्थात् सर्व शरीरों बिषे सुषुप्तवत् निर्विकल्प अक्रिय परमशान्त है ताते सर्व शरीरों रूपी पुरबिषे सोवनेवाला याते पुरुष। सोई सर्वव्यापी अक्रिय परमशान्त विज्ञानघन चैतन्यमैं हों। हे सौम्य इसप्रकार सूर्यभगवान् द्वारा परमात्माका अहं अग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो उपास्य देव साथ अपने आप आत्मा की अभेदता को अनुभव करे है सो मध्यम अधिकारी कहे प्रकार उपासना करतसंते देह त्यागान्तर सूर्य्य मण्डलस्थ चैतन्य पुरुष साथ अभेद होय अमृतत्वको प्राप्तहोता है॥

सम्बन्ध॥

इस १६ में मंत्रबिषे अहंअग्रे उपासनावाले उपासकको उपास्यदेवसाथ अभेदतारूप अमृतत्वप्राप्ति देखाया॥ अब अहं अग्रे उपासनावाला उपासक अपने मरणकालमें मोक्षार्थ अपने उपास्यदेवसे प्रार्थना अरु मनको शिक्षाकरता है सो सत्रहवें मन्त्रकरके प्रतिपादन करतेहैं॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतछं शरीरम्। ओं क्रतोस्मरकृतछंस्मर क्रतोस्मर कृतछंस्मर॥ १७॥

पदान्वयः॥

अथ वायुः अनिलम् अमृतम् इदं शरीरं भस्मांतं [भूयात्] हेक्रतो ओं स्मर कृतं स्मर। क्रतोस्मर कृतछंस्मर॥ १७॥

पदार्थ॥

अब इसकालमें प्राणवायु सूत्रात्माको [अरु] लिंगशरीर [अपने कारणको] यहै शरीर अन्तभस्मभावको [प्राप्तहो] हेमन ओंकारको स्मरणकरो [अरु] कर्मको स्मरणकरो। द्विवचन प्रणवउपासनाके आदरार्थहै॥ १७॥

भावार्थमन्त्रसत्रहवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकहे प्रकार सूर्यभगवान्की अहंग्रहे उपासना वाले उपासक हैं सो यावत् आयुष्य तावत् समाहित चित्तहोके उपासना करते हैं सो जब उनका मरणकाल निकटआवता है तब अपने उपास्यदेव आगे प्रार्थना करता है कि हे सूर्यभगवान्। इसकालमें १ । प्राणवायु २ । अर्थात् इस उपस्थितकाल में मरणको प्राप्तहोता जोमैं तिस मेरेशरीरस्थ जो प्राणवायुहै सो। अनिल ३। अर्थात् सर्वात्मावायु "सूत्रात्मा" तिसको प्राप्तहोय। अरु यह ४ । लिंगशरीर ५ । अर्थात् जो शरीर स्वप्न अरु परलोकके भोगोंका भोक्ता है सो अपने कारणभावको प्राप्तहोय । अरु यह शरीर ६ । अर्थात् यह दृश्यमान स्थूल अस्थिमांसमय शरीरनामसे जो सावयवपिण्ड है सो । अन्तमें भस्महोय ७। अर्थात् प्राणउत्क्रामणके पश्चात् आहुतिवत् अग्निमें हवनाकिया भस्महोय । हे सौम्य यहां पर्यन्त अर्थात् इसमन्त्रके पूर्वार्धपर्यंत सूर्यभगवान्की अहंग्रहे उपासनाके बलसे उपासक अपने उपास्यदेवकी प्रार्थनाकरके अमृतत्वको प्राप्तहोता है सो निरूपण किया ॥ अब आगे इसमन्त्रके उत्तरार्ध करके प्रणवके उपासक को अन्तकालमें प्रणवका स्मरणकरना सूचित करतेहैं। हे सौम्य जो पुरुष समाहितचित्तहोके शरीरावसानपर्यन्त त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करता है सो पुरुष अपने देहावसानसमये अपने मनसे कहता है कि हे "क्रतः" संकल्पविकल्पकेकर्त्ता मन १ । ॐकारको २ । स्मरणकरो ३ । अर्थात् जिसकाल के साधनेकेअर्थ यावत् आयुष्य प्रणवकी उपासना कियाहै सो काल अब उपस्थित है ताते ॐकारको स्मरणकरो कि जिसके प्रभाव से ब्रह्मलोकमें ब्रह्माद्वारा त्रिमात्रिक प्रणवका उपदेशपाय अमृतत्वको प्राप्तहोवोगे ताते हे मन अब इसकालमें अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरणकरो। अरु हेमन अपने किये कर्मकोस्मरणकरो ४-५। अर्थात् प्रणवोपासनाकरतसंते तू ने अग्निहोत्रादि

विहित निष्कामकर्म जो कि निषिद्धकर्मको नाश करके अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रणवोपासनामें सहायकभये हैं तिन कर्मोंकोभी स्मरणकरो ॥ इसमंत्रमें स्मरणार्थ द्विवाक्यता है सो प्रणवोपासनाके आदरार्थ है ॥ १७ ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रके पूर्वार्धमें कहाहै कि सूर्यकी अहंग्रहे उपासनाकरनेवालेहैं सो शरीरांतकालमें अपने उपास्यदेवकी प्रार्थनाकरतेहुए अमृतत्वको प्राप्तहोतेहैं तब उसकालमें उसके प्राण सूत्रात्मामें लयहोतेहैं। अरु अमर जे लिंगशरीरहैं अर्थात् बिना यथार्थ आत्मज्ञानके अन्य किसीप्रकारभी लिंगका नाशनहीं ताते लिंगको अमरकहतेहैं। तथाच "द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तंच मर्त्यंचामृतंच" सो लिंग सूक्ष्म इन्द्रियादिकोंका संघातहै कि जिसकरके स्वप्नमें दर्शन श्रवणादिक्रियाहोतीहै तिसलिंगबिषे जे सूक्ष्मदेवांशहैं सो अपने२ समष्टिदेवतासाथ एक होतेहैं सो देवांश अपने समष्टिदेवताबिषे गये फेरनहींआवते क्योंकि वो उपासक अपने उपास्यदेवगत चैतन्यपुरुषसाथ अभेदहोताहै ताते पुनः उसको स्थूलशरीररूपी क्षेत्रनहींहोता इसहीसे उसकी इन्द्रियां फेरआवतीनहीं। अरु यह जो स्थूलशरीर है सो परिणाममें अग्निबिषे हवनकिया अपने कारणभावको प्राप्तहोताहै। हेसौम्य इसप्रकार जब बिद्वान् उपासककी स्थूल सूक्ष्म सर्वउपाधि अपने२ कारणभावको प्राप्तहोती है तब तिसबिषे उपपन्नथा जो चैतन्यपरमात्माका आभास जीव कि जिसको उपाधिकेसम्बन्धसे अल्पज्ञतादिसंज्ञा प्राप्तभईथी सो अपने उपास्यदेवगत सत्य चैतन्यपुरुषरूपी बिम्ब कि जिसको अपनेआप आत्मत्वसे अनुभवकियाहै तिससाथ भेदसेरहित अभेद ऐक्यताको पावता है सोई विद्वान् उपासकको परमअमृतत्वकी प्राप्तिहै कि जिस प्राप्तिसे पुनःअविद्याजन्य दुःखमय नाशरूप उपाधिको प्राप्तहोतानहीं। ताते मध्यमअधिकारी इसप्रकार अहंग्रहे उपासनाकरके देहत्यागान्त-

२ अमृतभावको प्राप्तहोय आवागमनसे रहितहोताहै ॥ अथवा जे सूत्रात्मा समष्टिप्राणके व्यष्टिप्राणद्वारा अहंअग्रे उपासनाकरने वाले उपासकहैं सो अपने देहत्यागान्तर अपने उपास्य देवसूत्र आत्माके साथ अभेदहोतेहैं सोई उन मध्यमाधिकारिको वक्रादि प्राणविद्याद्वारा अमृतत्वकी प्राप्तिहै ॥ अरु इसमंत्रके उत्तरार्ध में प्रणवकी उपासनाकरनेवाले के अर्थ वा सर्वको अपने२ शरीर त्यागनेके समय ओंकारका स्मरणकरना द्विवाक्यताकरके वेदने कहा है तिसकरके प्रणवोपासनाकी श्रेष्ठतादेखाई है ताते सर्व पुरुषोंको अपने२ देहावसानसमये ॐकारका स्मरण अवश्यही कर्तव्ययोग्यहै ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्र के पूर्वार्ध से सूर्य भगवान् अथवा सूत्रात्मा की अहं अग्रेउपासनाद्वारा अमृतत्वप्राप्तिप्रतिपादनकिया अरु उत्तरार्ध करके प्रणवकेस्मरणद्वारा अमृतत्वप्राप्ति प्रतिपादनाकिया । अब आगे अग्निके उपासकको अमृतत्वप्राप्ति १८ वें मंत्रसे प्रतिपादनकरतसंते ग्रंथकी पूर्णताकरतेहैं ॥ इति सम्बन्धः ॥ ॐ तत्सत् ॥

अग्ने नयसुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

इति ईशावास्योपनिषद् । ॐ तत्सत् ॥

पदान्वयः ॥

हेदेव हेअग्ने विश्वानि वयुनानि विद्वान् अस्मान् राये सुपथा नय अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥ इति पदान्वयः ॥ ॐ ॥

पदार्थ ॥

हे प्रकाशात्मकदेव हेअग्नि सर्व कर्मको जानतेहौ हमकर्मकर्त्ताओंको कर्मफलकेअर्थ शोभनमार्गसे प्राप्तकरो [अरु] हमारे

कुटिलबचनात्मक[११] पापको[१२] विनाशकरो[१३] तुम्हारेअर्थ[१४] बहुतसे[१५] नमस्कारवचन[१६] विधानकरतेहैं[१७] ॥ इति पदार्थ ॥ हरिः ॐ तत्सत्ब्रह्म ॥

भावार्थमंत्रअठारहवेंका ॥

हे सौम्य अब अग्निदेवतासे अमृतत्वप्राप्तिकेअर्थ उसका उपासक प्रार्थनाकरताहै । हे प्रकाशवान् देव १। हे अग्नि २। सम्पूर्ण ३। हमारेकर्मोंको ४। जानतेहौ ५। तातेहमकर्मविशिष्टोंको ६। अर्थात् समाहितचित्तसे निरन्तर निष्काम विहितकर्मकरनेवाले हमकर्मीलोग तिनको । कर्मफलभोगनेकेअर्थ ७। शोभनमार्ग करके ८। प्राप्तकरो ९। अर्थात् दक्षिणमार्गवर्जित उत्तरायणमार्गसे प्राप्तकरो। अरु हमारे १०। कुटिलवचनात्मक ११। पापोंको १२। अर्थात् विहितकर्मकरतसंते अज्ञानवश असत्य किंवा व्यंगवचन जो कथनभयाहोय तो तज्जन्यपापोंको । विनाशकरो १३। कि जिसकरके हम अत्यन्त पवित्रहोयं अपनेइष्ट अमृतत्वको प्राप्तहोवें एतदर्थ इस शरीरावसानकालमें अशक्यताकरके हवनादि परिचर्यामें असमर्थ जे हम सो तुम्हारेअर्थ १४। बहुतसे १५। नमस्कारवचन १६। विधानकरतेपरिचर्याकरतेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ इति ईशावास्यउपनिषद्की भाषाटीका भावार्थ सम्पूर्णम् ॥

तात्पर्य ॥

"कुर्वन्नेवेहकर्माणि" इत्यादि । इसद्वितीयमंत्रकरके आत्मअध्यासमें असमर्थ मध्यमअधिकारीको निष्काम विहित अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्यकहा क्यों जो उस मध्यमाधिकारीको अमृतत्वप्राप्तिकासाधन कर्मउपासनाहीहै तहां । विहितकर्मकरतसंते अकरणप्रत्यवायजन्य पापरूपी मृत्युसोंतरके सूर्यादिदेवता किंवा त्रिमात्रिकप्रणव की वेदवाक्यानुसार उपासनाकरताहै सो उपासकतिसउपसनारूपीविद्याकरके अमृतत्वको जिसप्रकारप्राप्तहोताहै सो १५वें मंत्र से इस १८वें मंत्र पर्यन्त निरूपण किया तहां इस १८ वें मंत्र से मध्यमाधिकारी अग्नि की विद्याद्वारा अंह अग्रे उपासना करतेहैंसो अन्तसमय अग्निकी प्रार्थनाकर शुद्ध

उत्तरायण देवयान मार्गद्वारा सत्यलोक को अथवा शुद्ध समष्टि अग्निभावको प्राप्त होते हैं । सोई अग्निकी विद्याकरके अमृतत्व प्राप्ति है । याते वेदवाक्यानुसार ज्ञातपूर्वक उपासना करनेवाले जे अग्नि के उपासकहैं सो " न स पुनरावर्त्तते " । जन्म मरणरूप संसारमें पुनः आवते नहीं । अर्थात् वो उपासक अपने उपास्य देवसाथ अभेद हुआ अमर अर्थात् देवत्वभाव को प्राप्त होय अन्यों करके उपासना करने योग्य होता है ॥ इति तात्पर्यार्थ समाप्तम् शुभम् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति ईशावास्योपनिषद् भाषाटीका सहित समाप्तम् शुभम् ॥

॥ ॐ ॥

॥ ब्रह्मार्पण मस्तु ॥

॥ ॐ ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्यपूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ ॥

॥ ॐ ॥

॥ सूचीपत्रम् ॥

। १ ॥ प्रथम मूलमन्त्र तिसके ऊपर पदच्छेद की रेखा ॥
अरु अन्वयांक ॥
२ ॥ मूल के नीचे अन्वयके क्रम से मूलमन्त्रके पद ॥
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
३ ॥ अन्वय पदके नीचे तदनुसार भाषा में पदार्थ ॥

॥ चिह्नसूचना ॥

[ ] इस चिह्नान्तरमें शेष बिशेष के पद ॥
“ ” इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों के प्रमाण ॥

॥ विनय ॥

इस भाषाऽनुबादमें जो कुछ लेख अरु यन्त्रादि दोष होय तिनको सर्वपाठक जन क्षमाकरें ॥

मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने लखनऊ में छपी
मई सन् १९०१ ई० ॥

ओ३म्



केनोपनिषद्

सामवेदीय तलवकार शाखीय की भाषा टीका

सरल मध्य देशी हिन्दी भाषामें

कोलाख्य नगर निवासी पञ्चोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणने पण्डितराजशास्त्री मिहिरचन्द्र जी की सहायतासे अनुवाद कर प्रकाशित किया

सर्व्वलोकजनहितार्थ

बाजपेयि पं० रामरत्न के प्रबन्ध से

दूसरीबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी

अगस्त सन् १८९१ ई०

ओम्

परमात्मनेनमः

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म

विज्ञापनम्

सर्व्वसत्यावलम्बी सज्जन विचारशील
पाठकजनों पर विदित हो

कि यह सामवेदकी तलवकार नाम्नी शाखा सम्बन्धि तलवकार वा केन नामा आत्मविज्ञानप्रकाशक उपनिषद्हैं 'तिसविषे 'ब्रह्मा, वा प्रजापतिने अपनेपुत्र वा शिष्य मुमुक्षुको आत्मविद्या उपदेश किया है, तिसके ४चार खण्डहैं तहाँ प्रथम खण्डमें शिष्यके प्रश्नानुसार प्रश्न शब्दानुरूपसे उत्तर उपदेश अरु आत्माको अविषयत्वपूर्व्वक ब्रह्मत्व अरु तद्व्यतिरिक्त को ब्रह्मत्वका निराकरण उपदेश किया है। द्वितीय खण्ड में शिष्यकी सम्यक् परीक्षा के अर्थ शिष्यसे प्रश्न पूर्व्वक उपदेश किया है। तृतीय खण्डमें देवताओं के असत्य अहंकार निवारणार्थ सर्व्वशक्तिमान् परमात्मा का यक्ष [पूजनीय] रूपसे देवताओं का प्रत्यक्ष होना अरु स्वशक्ति तृणमें स्थापितकर तिसके द्वारा देवताओंका असत्य अभिमान दूरकरना अरु सर्व्वोत्तम उमानाम्नी ,ब्रह्मविद्या, देवी रूपसे दर्शनाभिलाषी इन्द्रको साक्षात् प्रकट दर्शन दे ब्रह्मबोध करना, सो उपदेश कियाहै। चतुर्थखण्ड में ब्रह्म के साक्षात् दर्शन स्पर्शकी महिमा से ,अग्नि, वायु, इन्द्र, इनतीन देवताओं का सर्वमें श्रेष्ठत्व, अरु अधिदैव अध्यात्म उभयरीत्या ब्रह्मोपदेश अरु ब्रह्म प्राप्ति होनेकी योग्यताके अर्थ साधनोंकी सूचना प्रशंसा अरु फलवाद सहित समाप्ति उपदेश कियाहै॥ इसप्रकार इस उपनिषद् विषे निर्विशेष अरु सविशेष उभय रीति

से ब्रह्मोपदेश प्रकाशितहैं अरु इसके चारों खण्डोंमें ३४ मन्त्रहैं ॥ १ प्रथमखण्डमें ८ ॥–॥ २ द्वितीयखण्डमें ५ ॥ ३ तृतीयखण्डमें १२ ॥–॥ ४ चतुर्थ खण्डमें ९ ॥ इसप्रकार यह उभय रीतिसे साक्षात् ब्रह्मबोध उपदेशात्मक सर्व्वोत्तम ब्रह्मविद्या उपनिषद् है । तिसको तैसाही अनुभव करके, व्यवहार सत्ता, से सर्व्व आत्मनिष्ठों का सेवक मैं कोलाख्य नगर निवासी पञ्चोली यमुनाशंकर नाम नागर ब्राह्मणने अपने श्रीमहाराज गुरूकी कृपाबल अरु पण्डितराज श्रीशास्त्री मिहिरचन्द्रजीकीसहायतासे किञ्चित् श्रीशंकराचार्य्यजीके भाष्याश्रय अपनी अल्प बुद्ध्यनुसार इसकी भाषाटीकाकियाहै।तिसकेलेखकी अनुक्रमणिका निम्नलिखित है

अनुक्रमणिका

(१)–प्रथम मूल मन्त्र तिसपर पदच्छेद की रेखा अरु अन्वयांक । ४ । २ । ३ । । १ ।

(२)–मूल के नीचे क्रम से अन्वय के पद अरु ऊपर अन्वयांक । १ २ ३ ४ ५

(३)–अन्वय पद के नीचे क्रम से भाषा में अर्थ सहित अन्वयांक । १ २ ३ ४ ५

(४)–भाषामें भावार्थ सहित मूल पदान्वय अक्षरार्थ के–

तिसके चिह्न

[ ]–इस चिह्नान्तर अन्वय पद अरुअक्षरार्थमें शेष विशेष के पद अरु भावार्थ में पदों के अर्थ ।

“ ” इस चिह्नान्तरमें मूल मन्त्रके वाक्य

{ } इस चिह्नान्तर वाक्यके क्रम पदसे

' ' इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुति आदिकों के प्रमाण वाक्य अरु तिसके अधोपरि

* ० ⁞ × + ⊛

इत्यादि चिह्न हैं सो उन प्रमाण वाक्यों के स्थान बोधार्थ हैं अरुइन्हीं चिह्नोंको पृष्ठकी अन्तिमा पंक्ति के नीचे बनाय तिसके नाम स्थान अध्याय संख्या सूचित हैं ॥

इसप्रकार इस टीकाकी रचना भई है। तिसको अरु ईशावास्य उपनिषद् की टीकाको प्रथम श्रीमती ठकुरानी महताब कुँवरि रईस कोटिला परगनह फ़िरोज़ाबाद ज़िलअ आगरा ने मुद्रित कराय लोकोपकार में प्रकाशित किया। अब उन्हीं ग्रन्थों को शुद्ध कराय परमधार्मिक श्रीमान् मुन्शी नवलकिशोर जी साहब ने अपने श्री लक्ष्मणपुरी के महायन्त्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित कियाहै। अरु अवतार सिद्धिनामा ग्रन्थ श्री रामगीता की टीका, जो इस टीकाकारकरके रचित है तिसको भी उक्त महाशय ने मुद्रित कराय प्रकाशित कियाहै सो अस्तु ॥

ॐम् ॥

शान्तिपाठ ॥

ॐमाप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणं चक्षुः श्रोत्रमथो
बलमिन्द्रियाणि च सर्व्वाणि सर्व्वंब्रह्मोपनिषदमाह
ब्रह्म निराकुर्य्यान्मामाब्रह्म निराकरोदनिराकरण
मस्त्वनिराकरणं मे अस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषद्
सुधर्म्मास्तेमयिसन्तु ते मयिसंतु। ॐ शांतिः शांतिःशांतिः ॥

इति

ओ३म्

सामशाखीयतलवकारकेनोपनिषद् ॥

ॐपरमात्मनेनमः ॥

अथ गुरुशिष्यके संवाद द्वारा इस केनउपनिषद्की भाषाटीका प्रारम्भकरतेहैं। तहांयहउपनिषद् प्रजापतिअरुउनकेशिष्य अथवा अन्य वेदाचार्य अरु उनके शिष्यके संवादद्वाराही है परन्तु मूलश्रुतिमें प्रश्नोत्तरकर्त्ता के नाम कहेनहीं परन्तु उपदेशात्मक वाक्य विना परस्परके संवादके बने नहीं एतदर्थ उपदेश सम्बन्धके लिये आचार्य्य अरु जिज्ञासुके संवादका सम्बन्ध भाष्यकाराचार्य्योंने प्रकट कियाहै तिस वेदाचार्य संवादको गुरु शिष्यके संवादद्वारा भाषाऽनुवाद करतेहैं ॥

प्रश्न ॥ शिष्यउवाच।हेगुरो हेभगवन् यह जो मनआदि इन्द्रियां हैं तिनको जो कदापि विषयोंसे हटावते भी हैं तथापि वो बलातुकारसे अनिवारितहुए अपने२ विषयोंकी ओरही जाती हैं सो अपनी २ स्वतंत्रतासे जाती हैं अथवा किसी प्रेरककी प्रेरणा से सो आप कृपाकरके कहिये ॥

उत्तर ॥ श्रीगुरुरुवाच । हे शिष्य तेरे इस प्रश्नके ऊपर वेद का कहाहुआ कहतेहैं । साम्वेदकी तलवकार शाखाका केननाम उपनिषद् है तिसविषेभी प्रजापतिसे जिज्ञासुका यही प्रश्नहै कि जोतूने हमारेप्रतिकियाहै सोतिसका उत्तर जोप्रजापतिने कहाहै सो श्रवणकरो । हे शिष्य कोई एक वैराग्यवान् आत्मजिज्ञासुको आत्मज्ञान विषयक श्रद्धा उत्पन्नभई तब आचार्य प्रजापति अथवा अन्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठके समीप प्राप्तहोय प्रश्नकरताभया क्योंकि बिना आचार्यके उस महासूक्ष्म प्रत्यगात्मविषयक सम्यक् ज्ञान स्वबुद्धिकी कल्पना तर्कादिकोंसे होतीनहीं । तथाच ।

"नैषातर्केणमतिरापनेया", एतदर्थ श्रुतिने नियम किया है कि "आचार्य्यवान् पुरुषोवेद", "आचार्य्याद्धैव विद्याविदिता साधिष्ठं प्रापदिति", "तद्विद्धिप्रणिपातेन", इत्यादि श्रुतिस्मृतिके प्रमाणसे आचार्य्यद्वाराही आत्मज्ञानहोताहै अरु सम्यक् आत्मज्ञानसेही अशेष संसारकी निवृत्तिपूर्वक अजर अमर अभय अक्रिय शिव शान्त परमानन्द अपनेआपकी प्राप्ति सिद्धहै, "नान्यःपन्था विमुक्तये", ऐसा अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे निश्चयकरके श्रुतिकेही "तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत समित्पाणिः श्रोत्रियम्ब्रह्मनिष्ठम्", इस प्रेरणा लक्षणवाक्यके प्रमाणसे विधिवत् समिधादिद्रव्यले गुरुशरणजायके प्रश्नकरताभया । तब तिसको जो आचार्य ने उपदेश किया सोई अब तेरे अर्थ कहते हैं ॥

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति १ ॥

[पदान्वयः]

केन इषितं प्रेषितं मनः पतति केन युक्तः प्राणः प्रथमः प्रैति केन इषितां इमां वाचं वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं कः उ देवः युनक्ति १ ॥

[पदार्थ]

किसकरके इच्छाकियाहुआ [तथा] प्रेरितहुआ मन गिरताहै (अरु) किसकरके प्रेरितहुआ प्राण (जो) प्रथमहै (सो) प्रवृत्तहोताहै (अरु) किसकरके प्रेरित यह बाणी उच्चारणकरे है (अरु) चक्षु श्रोत्रको कौन सो देव प्रेरणा करेहै १ ॥

[भावार्थ]

जिज्ञासुरुवाच । "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः" १ केन इषितं प्रेषितं मनः पतति ? [किसकरके १ इच्छाकियाहुआ २ (तथा)प्रेरितहुआ ३ मन ४ । गिरताहै ५ ।] अर्थात् किसप्रेरक

करके इच्छाकियाहुआ तथा सत्ताकरके प्रेरितभया। जैसे सूर्यकी प्रकाशरूप सत्तापायके सर्व अपने २ व्यापारोंमें प्रवृत्त होते हैं तैसे। यह मन किसकी इच्छा अरु प्रेरणाकरके प्रेरितहुआ विषयों प्रति जाता है क्योंकि जिस विषय को अनिष्ट जानके यह मनहटता है तथापि पुनः अनिवार्य्य हुआ बलात्कार से उसही विषयकी ओर जाता है। जैसे स्वामीकी इच्छा अरु प्रेरणासे प्रेरित भृत्यबिनाही स्वइच्छाके युद्धादि क्रियामें प्रवृत्त होताहै तैसे॥ अरु हे गुरो मन जो है सो विषयोंसे निवृत्त होत संतेभी अनिवार्य्यहुआ अपनी स्वतन्त्रताकरके विषयोंप्राति जाता है उसका पृथक् प्रेरक कोईनहीं जो इसका पृथक् प्रेरक निवारक होता तो यह निवारणकिया विषयोंप्राति न जाता, ताते "केनेषितं" इत्यादि प्रश्न बनता नहीं॥ गुरुरुवाच॥ हे शिष्य जो कदापि अपने विषयोंमें प्रवृत्ति निवृत्तिके अर्थ मन स्वतन्त्रहै तो किसीकोभी अनिष्टका चिन्तन बने नहीं परन्तु जिस विषयका फल अत्यन्त दुःखहै अरु तिसको मनजानताहै तथापि तिससे निवारण होत सन्तेभी उसही विषयकी ओर जाताहै सो किसी प्रेरककरके प्रेरितही जाताहै। ताते मनआदि अपने २ व्यापार बिषे स्वतन्त्र नहीं, यह सर्वकार्य कारणात्मक जड़हैं एतदर्थ इन सर्बका प्रेरक प्रकाशक सर्ब से पृथक् चैतन्य आत्मा है, ताते आचार्यसे जिज्ञासुका "केनेषितं" इत्यादि प्रश्न युक्तही है। अरु। "केन[6] प्राणः[8] प्रथमः[9] प्रैति[10] युक्तः[7]" [केन[6] युक्तः[7] प्राणः[8] प्रथमः[9] प्रैति[10]] [किसकरके ६। प्रेरितहुआ ७। प्राण ८। जो प्रथम है ९। प्रवृत्तहोता है १०।] अर्थात् हे भगवन् किस प्रेरक करके प्रेरित यहप्राणवायु जो इस संघातमें प्रथम (मुख्य) है सोपांच किंवा भेदको पायसर्वक्रियामें प्रवृत्तहोताहै। अरु। "केनेषितां[11][12] वाच[14] मिमां[13] वदन्ति[15]" [केन[11] इषितां[12] इमां[13] वाचं[14] वदन्ति[15]] [किस करके ११ प्रेरित १२। यह १३। वाणी १४। उच्चारण करे है १५] अर्थात् किस इच्छककरके प्रेरित यहवाणी जोशब्द लक्षण

रूपाहै तिसको लोक उच्चारणकरे हैं । यहांवाचा उपलक्षणकरके सर्व्वकर्मेन्द्रियों का ग्रहणहै जो किसकी इच्छाकरके प्रेरित यह सर्व कर्मेन्द्रियां अपने २ कार्य्यको करती हैं । अरु " चक्षुः श्रोत्रम् कं उ देवो युनक्ति " । [चक्षुः श्रोत्रम् कः उ देवः युनक्ति] [चक्षु १६ । अरु श्रोत्रको १७ । कौन १८ । सा १९ । देव २० । प्रेरणाकरताहै २१] अर्थात् चक्षु श्रोत्रको कौनसास्वयं प्रकाशदेव विषयोंप्रति प्रेरणा करेहै । यहां चक्षु श्रोत्र उपलक्षण करके सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंका ग्रहणहै, कि कौनसा चैतन्यदेव इन चक्षु आदि इन्द्रियोंको रूपादि विषयोंप्रति प्रेरणा करता है १ ॥ तात्पर्य यहहै कि अनात्मा अरु जड़रूप इन मन प्राण इन्द्रियादि स्थूल सूक्ष्म सर्व संघातको सत्तादेके अपने २ व्यापारबिषे बरतावनेवाला प्रेरक इन सर्वके पृथक् महासूक्ष्म चैतन्य आत्मा सर्वान्तर होत सन्ते सर्वके धर्म्मसे रहित असंग सत्तारूप स्थित है, तिस अपने आप प्रत्यगात्माके सम्यक् बोधबिना अन्यउपाय निःशेष दुःख-निवृत्तिका कोई नहीं, एतदर्थ मुमुक्षु पुरुषको ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यको प्राप्तहोय सर्वके प्रेरक सर्व्वान्तर प्रत्यगात्माके बोधार्थ प्रश्नकर्त्तव्यहै । * " तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् " । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ॥ इसप्रकारजब जिज्ञासुने अपने आचार्य प्रजापतिसे प्रश्नकिया तबआचार्य्य प्रजापति उत्तरदेता हुआ ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ
प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्या
स्माल्लोकादमृता भवन्ति २ ॥

[पदान्वयः]

यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रं [यत्] मनसः मनः [यत्] वाचः ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणःचक्षुषःचक्षुः अतिमुच्य धीरा अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति २ ॥

---

* यहमुंडकउपनिषद्के द्वितीय मुंडककी १२ वीं श्रुति

[पदार्थ]

जो[1] श्रोत्रका[2] श्रोत्र[3] है [जो] मनका[4] मन[5] है [जो] वाक्की[6] भी[7] वाक्[8] है सो[9] ई[10] प्राणका[11] प्राण[12] है [सोई] चक्षुका[13] चक्षु[14] है भलीप्रकार[15] त्यागके धीरपुरुष[16] इसलोकसे[17] छूटके[18] अमर[19] होते[20] हैं[21] २ ॥

[भावार्थ]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे शिष्य पूर्व कहेप्रकार जबजिज्ञासुने प्रजापतिके प्रतिप्रश्नकिया तब उसको उपदेशका अधिकारीजान प्रजापति कहतेहुए ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन तुमने जो प्रश्नकिया कि इस मन प्राण वाचा चक्षु श्रोत्रादिकोंका प्रकाशक प्रेरक देव कौनहै, सो । "श्रोत्रस्य[2] श्रोत्रं[3] । मनसो[4] मनो[5] । यद्वाचो[6] । ह[8] वाचं" । {यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रं [यत्] मनसः मनः [यत्] वाचः ह वाचं} [जो १ । श्रोत्रका २ । श्रोत्रहै ३ । जोमनका ४ । मनहै ५ । जोवाक्की ६ । भी ७ । वाक्है ८ ।] अर्थात् जोशब्द विषयके ग्रहणार्थ श्रोत्र इन्द्रियरूप करण सो श्रोत्र तिसश्रोत्र इन्द्रियद्वारा शब्दविषयका अनुभवकर्त्ता श्रोत्रस्थ अरुश्रोत्रसेभिन्न (घटाकाशवत्) प्रकाशक प्रेरकको श्रोत्रका श्रोत्रकरकेकहाहै । कुछ श्रोत्रइन्द्रियकीश्रोत्र इन्द्रियनहींकहाक्यों जोसर्व विशेष्यविशेषण सेरहितकेवलबोधरूपआत्मासोश्रोत्रादि सर्व्वान्तरस्वसत्तासेसर्व का अपनेअपने विषयप्रतिप्रेरकहै । तातेउसनिर्विशेष आत्माविषे श्रोत्रादि विशेषताको लेके श्रोत्रका श्रोत्र इसविशेषण से कहाहै, क्योंकि सर्व नाम रूपादि उपाधिसे रहित महासूक्ष्म आत्मा जिस जिस विषय साथ मिलता है तिस तिस नामरूप से अन्य श्रुतियों नेभी कहाहै । तथाच । +"नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम्"। ताते श्रोत्रका भी श्रोत्र कहनेसे श्रोत्र इन्द्रियकी भी श्रोत्र इन्द्रिय इस अनवस्था बोधक अर्थको न ग्रहणकरके श्रोत्रोपहित शब्दानुभवी चैतन्य आत्मा को ग्रहण करना । हे सौम्य इसही प्रकार जो मनका मन है जो वाक्की भी वाक्

+कठवल्ली उपनिषद्विषे ।

है "। सः[९] उ[१०] प्राणस्य[११] प्राणः[१२] चक्षुषश्[१३]चक्षुः[१४] "। (सः[९] उ[१०] प्राणस्य[११] प्राणः[१२] चक्षुषः[१३] चक्षुः[१४]) [सो ९ । ई १० । प्राणका ११ । प्राण है १२ । (सोई) चक्षुका १३ । चक्षु है १४ ।] अर्थात् जो श्रोत्र का श्रोत्र मनका मन वाक्की वाक् करके कहाहै, सोई प्राणका प्राणहै चक्षुका चक्षुहै ॥ हे सौम्य इसप्रकार जो "श्रोत्रस्य श्रोत्रं" इत्यादि प्रतिवचनकहनेसे श्रोत्रादि इन्द्रियोंकेबिषे जोशब्दादिबिषयग्राहकशक्तिहै सोस्वयंज्योतिचैतन्यआत्माकी है तिसशक्तिमान् आत्माको इन्द्रियोंकेही बिषे इन्द्रियोंसे पृथक् साक्षात् अपना आप अनुभव करके अज्ञानजन्यजे जन्म मरणका हेतु श्रोत्रादि अनात्म विषयक आत्मभाव तिसको । "अतिमुच्य[१५] धीराः[१६]" । (अतिमुच्य[१५] धीराः[१६]) [भलीप्रकार त्यागकरके १५ । धीरपुरुष १६ ।] "प्रेत्या[१९]स्माल्[१७]लोकाद[१८]मृता[२०] भवन्ति[२१]" । (अस्मात्[१७] लोकात्[१८] प्रेत्य[१९] अमृता[२०] भवन्ति[२१]) [इस १७ । लोकसे १८ । छूटके १९ । अमर २० । होतेहैं २१ ।] अर्थात् इसदेह इन्द्रिय पुत्र मित्र कलत्रादि अनात्म विषयक अहं मम भावरूप संसारसे छूटके अमरभाव को प्राप्तहोतेहैं २ ॥

तात्पर्य । बिना सर्व अनात्म एषणाके त्यागकिये कदापि अमरभावको प्राप्तहोते नहीं, ऐसा अन्य श्रुतियोंकाभी प्रमाणहै । तथाच। "*न कर्मणानप्रजयाधनेनत्यागेनैकेअमृतत्वमानशुः, + आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् , × यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामा, ० तत्र ब्रह्मसमश्नुते,, इत्यादि। ताते हेशिष्यश्रोत्रादि सर्वसेपृथक् सर्वका प्रकाशक आत्माहै तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव करके श्रोत्रादि सम्पूर्ण अनात्म विषयक सर्व एषणा सहित आत्मभाव जिस बुद्धिमान्ने निःशेष त्याग कियाहै सोई पुरुष अनात्मधर्म्म जे जन्म मरणादि तिनसे छूटके अजर अमर अभय परमशान्ति (मोक्ष) भावको प्राप्तहोते हैं ॥ ॐतत्सत् ॥

---

* कैवल्यउ० विषे। + × ० कठवल्ली उपनिषद्विषे।

न तत्र चक्षुर्गच्छतिनवाग्गच्छतिनमनोन विद्मो
न विजानीमो। यथै तदनुशिष्याद्न्य देव तद्विदि
तादथोअवि दिता द धि इ ति।शुश्रुम पूर्वेषां ये
नस्तद्व्याचचक्षिरे ३ ॥

[पदान्वयः]

तत्र चक्षुः न गच्छति (तत्र) वाक् न गच्छति (तत्र) मनः न (गच्छति) [तस्मात्] न विद्मः न विजानीमः यथा एतत् अनुशिष्यात्। अन्यत् एव तत् विदितात् अथः अविदितात् अधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये तत् नः व्याचचक्षिरे ३ ॥

[पदार्थः]

तहां चक्षु नहीं जाते (तहां) वाणी नहीं जाती (तहां) मन नहीं (जाता) [एतदर्थ] नहीं जानते हम [अरुयहभी] नहीं जानते कि किसप्रकार इसब्रह्मका अपने शिष्योंप्रति उपदेश करें (क्योंकि) पृथक् ही है सो विदितसे (अरु) सोईब्रह्म अविदिति से ऊपर (पृथक्) है ऐसाश्रवण कियाहै उनपूर्वाचार्यों को (वचन) जो उसब्रह्म को हमारे प्रतिउपदेश करतेहुये ३ ॥

[भावार्थमन्त्र ३]

गुरुरुवाच॥ हे सौम्य श्रोत्रादिकोंका श्रोत्रादि करके प्रतिपादन किया जो श्रोत्रादिकोंका अन्तरात्मा सोई निर्विशेष ब्रह्म है एतदर्थ "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनः" (तत्र चक्षुः न गच्छति (तत्र) वाग् न गच्छति (तत्र) मनः न (गच्छति)) [तहां १। चक्षु २। नहीं ३। जाते ४। (तहां) वाणी ५। नहीं ६। जाति ७। (तहां) मन ८। नहीं ९। (जाता)] अर्थात् चक्षुके आवान्तर सत्तारूप स्थित चक्षुका प्रकाशक प्रत्यगात्मा तिसको चक्षु विषय नहीं करते। जैसे दीपक जिस स्थान को प्रकाशता है वो स्थान दीपकको नहीं प्रकाशता, अथवा नेत्रस्थ अंजनको नेत्र विषय नहीं करते। तैसेही चक्षुके आवान्तरजे

अनुभव सत्ता चक्षुका प्रत्यगात्मा तिसको चक्षुविषय नहींकरते। इसहीप्रकार वाग् मन प्राणादि कोईभी उसको विषय नहीं करते ऐसा अन्य श्रुतियोंका भी सिद्धान्त है । तथाच "+ योमनसि तिष्ठन्मनसोन्तरोयं मनो न वेद" इत्यादितथा "+ यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे मन आदि सर्व इन्द्रियां हैं सो अपने २ विषय को विषयकरे हैं परन्तु उन सर्वका जोप्रत्यगात्माहै सोपूर्वोक्तप्रकारसे उनमन आदिकोंका बिषयनहीं एतदर्थही "न[10] विद्मो[11]"॥ < न[10] विद्मः[11] > [नहीं १० । जानते ११ ।] अर्थात् नहीं जानते हमवो ब्रह्म कि जिसकेविषे तुम्हारा प्रश्नहै किसप्रकारका और कैसाहै । अरु इसही कारणसे "न[12] विजानीमो[13] यथै[14] तदनु[15] शिष्यात्[16]"॥ < न[12] विजानीमः[13] यथा[14] एतत्[15] अनुशिष्यात्[16] > [हम यहभी नहीं १२। जानते कि १३। किसप्रकार १४। इसब्रह्मका १५। अपनेशिष्यों प्रति उपदेशकरें १६।] अर्थात् इस प्रत्यगात्माको मनआदिकोंका विषय न होनेसे हम नहीं जानते कि वो ब्रह्मकैसा है, अरु आचार्यलोक अपने शिष्योंको उपदेश कैसेकरें। जो इन्द्रिय गोचर होताहै सो अन्यके अर्थ उपदेश कियाजाताहै सो भी जाति गुण क्रिया सम्बन्ध आदि विशेष्य विशेषणयुक्तही कियाजाताहै, अरु वो ब्रह्म जाति गुण क्रिया सम्बन्ध आदि विशेष उपाधि रहित निर्विशेषहै । एतदर्थही हम नहीं जानते जो उस निर्विशेष ब्रह्मका उपदेश कैसेकरें, ताते जो जाति गुण क्रिया सम्बन्धादि विशेषताहै तिसको ० "नेतिनेति" निषेध मुखद्वारा गिरायके शिष्योंको उपदेशकर लक्ष्यकरावतेहैं, परन्तु निषेधमुख उपदेश का जो लक्ष्यहै तिसके ग्रहणकरनेमें पुरुषार्थ अधिक कर्त्तव्यहै ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो जो आप आज्ञा करते हौ सो यथार्थ है जो मन इन्द्रियादिकों का विषय नहीं अरु मन इन्द्रिय आदिकों से पृथक् महासूक्ष्म सर्वका प्रत्यगात्मा ब्रह्म है तिसको प्रत्यक्षादि

+ बृहदारण्यउपनिषद्विषे + ऐतरेयउपनिषद् विषे ० बृहदारण्य उपनिषद्विषे ।

प्रमाण करके जाननेको कोई भी समर्थ नहीं, परन्तु उसको वेद द्वारा जानते हैं सो जिसप्रकार आचार्य उस ब्रह्मका निषेध मुख उपदेशकर अनुभव करावते हैं सोईप्रकार आप कृपाकर कहिये॥

उत्तर॥ हे सौम्य उस निर्विशेष ब्रह्मके उपदेशार्थ वेद ऐसा कहता है कि "। अन्य[17] देव[18]। त[19]। द्विदिता[20]।दथो[21]। अवि[22] दितादं[23] धि "। ‹ अन्यत्[17] एवं[18] तत्[19] विदितात्[20] अथो[21] अविदितात्[22] अधि[23] › [पृथक् १७। हीहै १८। सो १९। विदितसे २०। अरुसोईब्रह्म २१। अविदितसे २२। ऊपर २३। (पृथक्) है अर्थात् श्रोत्रादिइन्द्रियां शब्दादिविषय श्रवणादि क्रिया मनआदि अन्तःकरण इत्यादि यावत् नामरूप क्रियात्मक सर्व कार्यभूत है सोई सर्व विदितहै तिस विदितसे वो महासूक्ष्म आत्मा पृथक्है ॥

प्रश्न॥ हे प्रभो जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म सम्पूर्ण नाम रूप क्रियात्मक कार्य्य प्रपंचसे पृथक्है तो सर्वका कारण अव्याकृति जो अविदितहै सोई ब्रह्महोगा॥

उत्तर॥ हे शिष्य जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म सर्व विदितसे पृथक् है सोई ब्रह्म अविदित लक्षणवान् जो सम्पूर्ण विदितका मूलकारण अव्याकृति तिससेभी ऊपर (पृथक्) है। हे सौम्य जो विदित है सोसर्व उत्पत्तिमान् कार्य्यरूपहै तातेअल्पहै अरु जोअल्पहै सो नाशवान्है* "यदल्पंतन्मर्त्यं"। अरुजोनाशवान्है सोदुःखरूपहै अरु जो दुःखरूप है सो त्यागनेयोग्य है, ताते विदितसे अन्य जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म है सो त्यागसे भिन्न अत्याग है, अरु आत्मा की प्राप्तिके अर्थ अव्याकृत कारणको उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) माने तो अन्यकी प्राप्तिके अर्थ अन्यका उपादेयत्व बनेनहीं, ताते आत्माको विदित अविदितसे पृथक् कहनेकर हेयोपादेय से भी पृथक् सूचित किया है॥

प्रश्न॥ हे गुरो जब कि ब्रह्म हेयोपादेयसे भी पृथक् है तो जिज्ञासुकी आत्मजिज्ञासा निवृत्त होती है क्योंकि जो वस्तु हे-

---

* छांदोग्यउपनिषद्विषे।

योपादेयसे रहित होती है तिसके उपादेयार्थ पुरुषार्थ व्यर्थ है ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य जो वस्तु आत्मासे भिन्न होती है सोई हेयउपादेय होती है अरु यह जो सर्वका प्रत्यगात्मा है सोई ब्रह्म है । तथाच "। ० अयमात्माब्रह्म,? यआत्मा अपहतपाप्मा, +! यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म,× अयमात्मा सर्व्वान्तर " । इत्यादि श्रुति सिद्धान्त करके सर्व विशेष्य विशेषणसे रहित सर्व्वात्मा स्वयं ज्योतिः चैतन्यकोही ब्रह्मप्रतिपादन किया है, अरु सोई आत्मा ब्रह्म विदित अविदित हेयोपादेय से पृथक् है, ताते ब्रह्म आत्मा के अभेद प्रतिपादक तत्त्वमस्यादि वाक्य द्वारा आचार्य के उपदेश की परम्परा करके उस प्रत्यगात्मा ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ताते आत्म जिज्ञासुकी जिज्ञासाव्यर्थ नहीं "। इति[24] । शुश्रुम[25] पूर्वेषां[26] ये[27] न[28] स्तत्[29] द्व्याचचक्षिरे[30]" (इति[24] शुश्रुम[25] पूर्वेषां[26] ये[27] तत्[28] नः[29] व्याचचक्षिरे[30]) [ऐसा २४ । श्रवण किया है २५ । पूर्वाचार्यों का २६ (वचन) जो आचार्य्य २७ । उस ब्रह्मका २८ । हमारे प्रति २९ । उपदेशकरतेहुए ३० ।] अर्थात् हमने श्रवणकियाहै पूर्वके ज्येष्ठ श्रेष्ठ आचार्य्योंका वचन कि जिन ब्रह्मवेत्ता आचार्य्यने उस निर्विशेष ब्रह्मका हमारे प्रति भली प्रकार उपदेशकियाहै कि ब्रह्म जो चैतन्य आत्माहै तिसकी प्राप्ति आचार्यद्वारा ब्रह्म आत्माके अभेद वाक्योंके उपदेशसे होती है नतु तर्कादिकोंसे। तथाच "। + नैषातर्केण मतिरापनेया, + नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योन मेधयान बहुना श्रुतेन, ÷ न कर्म्मणा न प्रजया" इत्यादि प्रमाणसे ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो आपने श्रुतिवाक्य करके इस अन्तरात्मा को ब्रह्मकरके प्रतिपादन किया तिसके श्रवणसे एकशंका उत्पन्न हुई कि यह आत्मा ब्रह्म कैसे होगा यह तो नामरूप क्रियावान् पाप पुण्यादिकोंका कर्त्ता दुःख सुखादिकोंका भोक्ता कर्म्म उपा-

---

० मांडूक्यउ० विषे । ? छान्दोग्यविषे । +! वृहदारण्यउपनिषद् विषे । ×कठवल्लीउ० विषे । + मुंडकउ० विषे । + कैवल्यउ० विषे । ÷

सनादि साधनों से ब्रह्माऽऽदि देवताओंका उपासक स्वर्गादिकों की इच्छा कर्त्ता है, ताते इस आत्मासे ब्रह्म अन्यहै क्योंकि ब्रह्म नाम रूप क्रियासे रहित अकर्त्ता अभोक्ता अकाम सर्व्व उपाधि से रहित है। ताते इस आत्मासे ब्रह्म अन्य आत्माकरके उपास्य शिव विष्णु ईश्वर इन्द्र प्राणादि ब्रह्महोने के योग्यहैं यह आत्मा ब्रह्म नहीं। तथाच " ० द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति " इत्यादि श्रुति अरु लौकिक प्रमाणसे भी आत्मासे ब्रह्म पृथक् है, अरु नैयायिकादिक भी आत्माको ईश्वर से पृथक् ही मानते हैं, अरु कर्म्मवादी पूर्व मीमांसक भी ऐसाही कहते हैं, ताते यह आत्मा ब्रह्म नहीं ॥

उत्तर ॥ हेसौम्य इनवाक् श्रोत्रादि संघात रूप उपाधिकेसंगसे अज्ञानके आश्रय इस चैतन्य आत्माको नामरूप क्रियावान् कर्त्ता भोक्ता कामी क्रोधी आदिकहतेहैं। तथाच " ❀ आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः " इत्यादि, जैसे घटादि उपाधिके संग से आकाशबिषे गमनागमनादि व्यापार अविचारित भासे है परन्तु विचार दृष्टिसे देखिये तो आकाश गमनागमनादि व्यवहार रहित सदा निरुपाधि एकरस अपनेआप बिषे ज्योंका त्यों है। तैसेही यह आत्मा इन्द्रियादि सर्व उपाधि अरु तत्तत् धर्म्म से रहित असंग एकरस इन्द्रियादिकोंका प्रकाशक आकाशवत् ज्योंकात्यों है। तथाच " असंगोह्ययंपुरुषः, न लिप्यतेकर्म्मणापापकेनेति, न लिप्यतेलोक दुःखेनवाह्य, आकाशवत्सर्वगतःसनित्यः, तस्यभासासर्व मिदंविभाति, अयमात्माब्रह्म, य आत्माअपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु विशोकः " इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे। अतएव हे सौम्य मन इन्द्रिय आदि रूप उपाधिके सम्बन्धसे आत्माको कर्तृत्व भोक्तृत्व प्रतीतिमात्र है वास्तवमें मन

० मुंडकउ० बिषे १कठ,बल्ली३में।२-३बृहदारण्य अ०६में।४कठ,वल्ली ५में। ५ कठ, बल्ली५में। ६मांडूक्यमें। ७छान्दोग्य उपनिषद्में।

इन्द्रियादिकों का प्रकाशक मन आदिकोंके धर्म्मसे रहित मन आदिकोंका अविषय मन आदिकोंके आवान्तर परम सत्तामात्र चैतन्य ज्योतिः सर्वका प्रत्यगात्माहै सोई ब्रह्महै इससे व्यतिरिक्त ब्रह्म कोई नहीं, इस निश्चय आत्मक अर्थको स्वयं श्रुति प्रकट करती है। तातें नैयायिक मीमांसकादि मतवादी जे आत्मा से व्यतिरिक्त ब्रह्मको मानने कहनेवाले हैं सो सर्व वेदसे बाह्य अपनी कल्पनासे कहते हैं, तातें निरुपाधि आत्माही ब्रह्म है "नातः परमस्ति" अन्यनहीं तिसको श्रुतिवाक्यसे श्रवणकरो ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ४ ॥

[पदान्वयः]

यत्[1] वाचा[2] ऽनभ्युदितं[3] येन[4] वाग्[5]अभ्युद्यते[6] । तत्[7] एव[8] ब्रह्म[9] त्वं[10] विद्धि[11] न[12] इदं[13] यत्[14] इदं[15] उपासते[16] ४ ॥

[पदार्थ]

जो[1] वाणीकरके[2] प्रकाशितनहींहोता[3] (अरु) जिसकरके[4] वाक्[5] प्रकाशितहै[6] सो[7] ई[8] ब्रह्म[9] तुम[10] जानो[11] नहीं[12] यह[13] [ब्रह्म] जिसको[14] ये[15] उपासते[16] हैं ४ ॥

[भावार्थ]

गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य! "यद्वाचा ऽनभ्युदितं" (यत्[1] वाचा[2] अनभ्युदितं[3]) [जो[1] वाणीकरके[2] प्रकाशितनहींहोता[3]] अर्थात् सत्तासमान चैतन्य लक्षणात्मक वाणीसे (जो वाक् जिह्वा मूलादि स्थानसे अकारादि स्वर ककारादि व्यंजनादिककी उत्पत्तिका कारण अरु स्वर व्यंजन मिश्रित पद रूपहोय अर्थ बोधक शब्दरूपहै । तथाच "अकारोवै सर्व्वावाक्" इत्यादिश्रुति प्रमाणसे) कहने बिषे नहीं आवता, अरु "येन वागभ्युद्यते" (येन[4] वाग्[5] अभ्युद्यते[6]) [जिसकरके ४। वाग् ५। प्रकाशितहै ६।]

८ मुंडकमें १ छान्दोग्य उपनिषद् विषे

अर्थात् जिस चैतन्य आत्माकरके वाक् प्रकाशित होती है किजो वाक्हीके[२] अवान्तरहै अरु वाक् जिसको नहीं जानती। तथाच। "। यो वाचितिष्ठन्वाचोन्तरोयं वाक् न वेद"। अरु जिस निर्विशेष आत्माको वाचारूप उपाधिकी विशेषतासे वाणीकी भी वाणी करके कहाहै"। तँदेवँ[८] ब्रह्म[९] त्वं[१०] विद्धि[११]"। (तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि) [सो ७। ई ८। ब्रह्म ९। तुम १०। जानो ११।] अर्थात् जिस चैतन्य प्रत्यगात्माकी सत्तासे यह शब्दलक्षणात्मक वाक् इन्द्रिय अपने व्यापार वक्तृत्वादि बिषे प्रकाशित अथवा प्रवृत्तहोती है तिसही चैतन्य आत्माको तुम ब्रह्म करके अनुभव करो"ने[१२] दं[१३] य[१४] दि दं[१५] मुपासते[१६]"। (न इदं यत् इदं उपासते) [नहीं है १२। यह १३। (ब्रह्म) जिसको १४। ये १५। उपासते हैं १६।] अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म कि जिस नामरूप क्रियात्मक उपाधि विशिष्टको नाना मतवादी उपासते हैं सो ४॥

हे सौम्य"। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि"। इस श्रुतिकरके जो कि वाक्कीभी वाक् प्रकाशक प्रत्यगात्मा निर्विशेष। चैतन्यसत्ताहै तिसको तुम ब्रह्मकरके जानो ऐसा उपदेश करके ब्रह्मसे आत्माकी अभेदता सूचितकिया परन्तु तिसबिषे जिज्ञासुको मतवादियोंके वाक्यसे विपरीत भावना उत्पन्न न होय एतदर्थ। "नेदं यदिदमुपासते।" इसवाक्यकरके पूर्ववाक्यके बोधकी दृढताके अर्थ पुनः कहा कि यह जो नामरूप क्रियात्मक उपाधि विशिष्ट अनात्मा सो ब्रह्म नहीं क्योंकि ब्रह्म उपाधिसे रहितहै, अरु जो सोपाधि है सो उपाधि धर्मवान् कर्त्ता भोक्ता जन्म मरणवान् आत्मा है। एतदर्थही जो मनआदि उपाधि विशिष्ट चैतन्यहै तिसको उपाधिसे पृथक् करके उपाधिका विषय न होत उपाधिका प्रकाशक स्वयंज्योतिः आत्माको ब्रह्मकरके उपदेश कियाहै, ताते श्रुतिके सिद्धान्तकरके यह आत्माही ब्रह्म है इससे इतरसर्व अज्ञानियोंकी कल्पना है ४॥

२ बृहदारण्य बिषे

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ५ ॥

[पदान्वयः]

यत् मनसा न मनुते येन मनः मतं आहुः । तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ५ ॥

[पदार्थ]

जो मनकरके नहीं मनन होता (अरु) जिसकरके मन विषय किया कहते हैं । सोई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ५ ॥

[भावार्थमन्त्र ५]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "यन्मनसा न मनुते"। (यत् मनसा न मनुते) [जो १ । मनकरके २ । नहीं ३ । मनन होता ४ ।] अर्थात् जो निर्विशेष चैतन्य सत्ता मन उपलक्षणकरके मन बुद्धि चित्त अहंकारवृत्ति चतुष्टयात्मक अन्तःकरण, अथवा मननकरिये जिस कारणकरके सो मन तिस मनकरके संकल्प वा मननमें नहीं आवता न निश्चय कियाजाताहै, अरु "येनाहुर्मनो मतं"। (येनमनः मतं आहुः) [जिसकरके ५ । मन ६ । विषय किया ७ । कहते हैं ८ ।] अर्थात् जिस अपने उपहित चैतन्य के आभासयुक्त अन्तःकरण सोई अपनी साभास वृत्तिकरके मनन कर्त्ता मनसो ब्रह्म करके विषयकिया अर्थात् व्याप्त ऐसा कहते हैं ताते "तदेवं ब्रह्म त्वं विद्धि"। (तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि) [सो ९ । ई १० । ब्रह्म ११ । तुम १२ । जानो १३ ।] अर्थात् सोई मन उपहित चैतन्य जोकि सर्व्वान्तर प्रत्यगात्माहै वह परमात्मा परब्रह्म तुम जानो, अरु । "नेदं यदिदमुपासते"। (न इदं यत् इदं उपासते) [नहीं है १४ । यह १५ । (ब्रह्म) जो १६ । ये १७ उपासतेहैं १८ ।]अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म जो वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण है जो वेदसे बाह्यमतवादी यह मनबुद्ध्यादि जि-

नको ब्रह्मकरके उपासते हैं, अर्थात् मनबादी मनको विज्ञान-बादी बुद्धिको ब्रह्मकरके उपासते हैं। इसप्रकार जो जो मतबादी जिस जिसको ब्रह्ममानके उपासतेहैं सोई सो ब्रह्म नहीं क्योंकि मानेहुए कल्पित होतेहैं अरु जो कल्पितहै सो ब्रह्म नहीं ५॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ६॥

[पदान्वयः]

यत् चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ६॥

[पदार्थः]

जो चक्षुकरके नहीं देखते (अरु) जिसकरके चक्षुओंको देखते हैं सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ६॥

[भावार्थ]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "। यच्चक्षुषा न पश्यति। (यत् चक्षुषा न पश्यति) [जो १। चक्षुकरके २। नहीं ३। देखते ४।] अर्थात् जिस प्रत्यगात्मा चैतन्यको अन्तःकरण की साभास वृत्ति करके युक्त चक्षुइन्द्रिय रूपवत् विषय नहींकरते। अरु "। येन चक्षूंषि पश्यति "। (येन चक्षूंषि पश्यति) [जिसकरके ५। चक्षुओंको ६। देखते हैं ७।] अर्थात् जिस चैतन्य आत्माकीज्योतिसे अन्तःकरणकी वृत्तिके भेदसे अर्थात् नीलपीत आदिपृथक् २ चक्षुवृत्तियोंको लोक देखते हैं। "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि"। (तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि) [सो ८। ई ९। ब्रह्म १०। तुम ११। जानो १२।] अर्थात् उसही चैतन्य प्रत्यगात्माको ब्रह्म करके तुम जानो "। नेदं यदिदमुपासते"। (न इदं यत् इदं उपासते) [नहीं है १३। यह १४। (ब्रह्म) जो १५। ये १६। उपासते हैं १७।] अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म जिसको यह विवेकशून्य अज्ञानी पुरुष उपासते हैं ६॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् । तदेवं ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ७ ॥

[पदान्वयः]

यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रं इदं श्रुतम् तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ७ ॥

[पदार्थः]

जो श्रोत्रकरके नहीं श्रवणकरते (अरु) जिसकरके श्रोत्र यह श्रवणकियागया सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ७ ॥

[भावार्थ मन्त्र ७ वें का]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य चक्षुवत् । "यच्छ्रोत्रेण न शृणोति" (यत् श्रोत्रेण न शृणोति) जो १ । श्रोत्रकरके २ । नहीं ३ । श्रवण करते ४ ।] अर्थात् जिस चैतन्य आत्मा को आकाश भूत का सूक्ष्म कार्य जिसका दिग् देवता है । तथाच । "दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशद्" । सो श्रोत्र इन्द्रिय साभास अन्तःकरणकी वृत्ति करके युक्तभी नहीं श्रवण करती, अर्थात् जो चैतन्य आत्मा श्रोत्रका विषय नहीं, अरु "। येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।" { येन श्रोत्रं इदं श्रुतम् } [जिसकरके ५ । श्रोत्र ६ । यह ७ । श्रवण कियागया ८ ।] अर्थात् जिस चैतन्यकी ज्योतिरूप सत्तासे अन्तःकरणकी वृत्तिके भेद युक्त श्रोत्र इन्द्रियको लोकविषे करे हैं । "तं देवं ब्रह्म त्वं विद्धि" । { तत् एवं ब्रह्म त्वं विद्धि } [सो ९ । ई १० । ब्रह्म ११ । तुम १२ । जानो १३ ।] अर्थात् सोई प्रत्यक् चैतन्य आत्माको तुम ब्रह्मकरके जानो "। नेदं यदिदमुपासते" { न इदं यत् इदं उपासते } [नहींहै १४ । यह १५ । (ब्रह्म) जो १६ । ये १७ । उपासते हैं १८ ।] अर्थात् नहीं है यह नामरूप क्रियात्मक ब्रह्म जो ये बहिर्मुख अविवेकी पुरुष ब्रह्मकल्पना करके उपासतेहैं ७ ॥

---

१ ऐतरेयउपनिषद्विषे ।

[1]यं [2]त्प्राणेन [3]न [4]प्राणिति [5]येन [6]प्राणः [7]प्रणीयते । [8]तदेव[9]
[10]ब्रह्म [11]त्वं [12]विद्धि [13]ने [14]दं [15]य[16]दिदं [17]मुपासते ८ ॥

[पदान्वयः]

[1]यत् [2]प्राणेन [3]न [4]प्राणिति [5]येन [6]प्राणः [7]प्रणीयते । [8]तत् [9]एव [10]ब्रह्म [11]त्वं [12]विद्धि [13]न [14]इदं [15]यत् [16]इदं [17]उपासते ८ ॥

[पदार्थ]

[1]जो [2]प्राण (घ्राण) करके [3]नहीं [4]विषयकरते ([5]अरु) जिस करके [6]घ्राण [7]प्राप्तहोती है । [8]सो [9]ई [10]ब्रह्म [11]तुम [12]जानो [13]नहीं है [14]यह (ब्रह्म) [15]जो [16]ये [17]उपासते हैं ८ ॥

[भावार्थमन्त्र ८ वेंका]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "[1]यत्[2]प्राणेन [3]न [4]प्राणिति" (यत् प्राणेन न प्राणिति) [जो १ । प्राण (घ्राण) करके २ । नहीं ३ । विषयकरते ४ ।] अर्थात् जो चैतन्य साक्षी आत्मा को पृथिवी तत्त्वका कार्य्य नासिका पुटान्तरवृत्ति प्राण सो अन्तःकरण की वृत्ति सहितभी प्राण, अर्थात् घ्राण इन्द्रिय गंधविषयवत् नहीं विषयकरती, अरु "[5]येन [6]प्राणः [7]प्रणीयते" (येन प्राणः प्रणीयते) [जिसकरके ५ । घ्राण ६ । प्राप्तहोती है ७ ।] अर्थात् जिस अन्तरात्मा चैतन्यके प्रकाशकर प्रकाशित अपने गंधादि विषयको घ्राण इन्द्रिय प्राप्तहोती अर्थात् विषय करतीहै "[8]तदेव [10]ब्रह्म [11]त्वं [12]वि द्धि" (तत् एव ब्रह्म त्वं वि द्धि) [सो ८ । ई ९ । ब्रह्म १० । तुम ११ । जानो १२ ।] अर्थात् सोई स्वयंज्योतिः चैतन्य आत्माको ब्रह्मकरके तुम अनुभवकरो जो जिस स्वयंप्रकाश चैतन्य की सत्तापायके मनआदि सर्वइन्द्रियां अपनी २ तनमात्रा विषय को विषय करतीहैं अरुजोमनआदि विषयोंका विषयनहीं तिसही सर्वांतर प्रत्यगात्माको तुम ब्रह्मकरके अनुभवकरो "[13]ने [14]दं [15]यदि [16]दं [17]मुपासते" ([13]न [14]इदं [15]यत् [16]इदं [17]उपासते) [नहीं है १३ । यह १४ । (ब्रह्म) जो १५ । ये १६ । उपासतेहैं १७]

अर्थात् इस प्रत्यगात्मासे व्यतिरिक्त नहीं है यह ब्रह्म जो येभेद-वादी नामरूप क्रियात्मककी उपासना करते हैं ॥

इतिप्रथमखण्डः ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे शिष्य जो कि हेय उपादेय विदित अविदित से विलक्षण प्रत्यगात्मा सोई ब्रह्म है, इसप्रकार प्रजापतिने जिज्ञासुप्रति उपदेश किया परन्तु शिष्य है सो मैंहीं ब्रह्महूं ऐसा सम्यक् प्रकारसे मैंने जाना है, इसप्रकार की भावनाको न ग्रहण करे एतदर्थ शिष्यके सम्यक् बोधकी परीक्षार्थ अग्रिम खण्ड में आचार्य प्रश्न करेहैं कि "यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ" हे सौम्य जो कदाचित् तू हमारे उपदेश से मानताहोय कि ब्रह्म भलीप्रकार जानाहै तो अल्पही तूने जाना है ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो यह तो आत्म जिज्ञासुको इष्टही है कि मैंने आत्मा ब्रह्मको भलीप्रकार जाना है, तातै आचार्य का यह प्रश्न जिज्ञासुप्रति अयोग्य है ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य तुम सत्य कहतेहो जिज्ञासुको ब्रह्म आत्मा का सम्यक् अभेदज्ञानका निश्चय इष्टही है परन्तु मैं आत्माको सम्यक् प्रकार जानताहों यह भेद भावना इष्ट नहीं, क्योंकि जो जाननेयोग्य वस्तु होती है सोई विषय करनेयोग्य है अरु उसही के बिषे मैंने भलीप्रकार जाना है यह कहना बने है, परन्तु आत्मा किसीका विषय नहीं सर्व आत्माके विषय हैं क्योंकि आत्मा चैतन्य है अरु ज्ञेयरूप विषय जड है, एतदर्थ आत्माके बिषे पूर्वोक्त मैं आत्माको भलीप्रकार जानताहों यह निश्चय असत्य है, यह आत्मा सर्वका प्रकाशक साक्षी ब्रह्म है ऐसा सर्व उपनिषदादि वेदान्त शास्त्रका सिद्धान्त है, अरु सोई यहां पूर्व प्रश्नके प्रतिवचनकरके आचार्य ने उपदेश किया है कि हे सौम्य जिसको तुम पूछतेहो सो श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन, वाचाकी वाचा प्राणका

प्राण चक्षुका चक्षु है, अरु जिसको वाचा मन चक्षु श्रोत्र प्राण आदि विषय नहीं करते अरु जिस चैतन्य की सत्ता पायके चक्षु मन आदि सर्व अपने २ विषयको विषय करते हैं सोई तुम ब्रह्म करके जानो, परन्तु वो ब्रह्म विदित अविदित अर्थात् कार्य्य कारण हेय उपादेयसे अन्य है। इसप्रकार उपन्यासकरके आगे "अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्" इस श्रुतिकरके उपसंहार किया है। एतदर्थ शिष्य की यह बुद्धि कि आत्माको मैंने भलीप्रकार जाना है, तिसका निराकरण करना आचार्य को उचितही है। अथवा हे सौम्य जो सर्वका जाननेवाला है तिसका जाननेवाला कोई नहीं। जैसे अग्नि सर्वका दाहक है उसका दाहक कोई नहीं। तैसेही आत्मरूप ब्रह्मसे इतर आत्मा ब्रह्म का ज्ञाता कोई नहीं, ऐसा अन्य श्रुतियोंका प्रमाण है "[१]नान्यदतोऽस्तिविज्ञातृ" तातेआत्मासे इतर आत्माका ज्ञाता अन्यआत्मा कोई नहीं, एतदर्थ यह जोनिश्चयहै कि मैं आत्माको सम्यक् प्रकारसेजानताहौंसोमिथ्याहीहैतातेभी "यदिमन्यसेसुवेदेति" यह जो आचार्यका जिज्ञासुप्रति प्रश्नहैसो यथार्थहीहै।अथवा हे शिष्य जो कदाचित् ऐसाही मानाजाय कि मैं ब्रह्मको भलीप्रकार जानताहौं तथापि श्रवणकिया जो आत्माब्रह्म सो दुर्विज्ञेय है सो कदाचित् अन्तःकरण के निःशेषदोष दूरहोनेसे कोई बिरला अनुभव करताहै "[२]कश्चिद्धारा प्रत्यगात्मानमैक्षत्" इस संशयको लेके भी "यदिमन्यसे सुवेदेति" इत्यादि प्रश्न जिज्ञासुप्रति आचार्यका यथार्थही है। हे शिष्य छान्दोग्य उपनिषद् के अष्टमाध्याय बिषे गाथाद्वारा कहाहै कि एक समय देवराजइन्द्र अरु असुरराज विरोचन यह दोनों आत्म जिज्ञासा करके प्रजापति (ब्रह्मा) के पासगये तब वहां बत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्यकरनेके पश्चात् प्रजापतिने "[३]यएषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एषआत्मेतिहोवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मोति" यह प्रथम उपदेश किया कि यह जो

१ बृहदारण्य उपनिषद्विषे। २ कठवल्लीउपनिषद्विषे। ३ छांदोग्यउ० बिषे।

चक्षुबिषे पुरुष दृष्टआवताहै यहीआत्मा अमर अभय ब्रह्महै, तब पंडित होतसन्तेभी असुरराज विरोचन अपनेआसुरी सम्पदादि स्वभाव दोषकरके ब्रह्माके किये उपदेशकोभी विपरीत अर्थ से शरीरकोही आत्मा मानताहुआ जो चक्षुबिषे शरीरकी छाया रूप पुरुषहै, सो इसवाक्यसे जिस शरीरकी छाया है उसशरीर हीको प्रजापतिने ब्रह्म आत्मा कहाहै ताते यहशरीरही आत्मा है ऐसा अपनेचित्तमें निश्चयकर तूष्णीम् होताहुआ । अरु देवराज इन्द्रने उसही उपदेशसे प्रथम शरीरकी छायाकोहीआत्मामाना क्योंकि "। नैनंछिंदन्तिशस्त्राणि ।" इत्यादि वाक्य प्रमाणसे आत्माके अछेद्यादि धर्म्म छायाबिषे देख शरीर छायाको आत्मा मान प्रजापतिसे आज्ञाले स्वलोक को चला तबमार्ग में विचार किया कि जिसशरीरकी छायाको हमने आत्मामानाहै सोशरीर नाशवान्है तब छाया शरीरके अनुरूप होनेसे वोभी नाशवान् सिद्धहुई, अरु आत्माको ब्रह्माने अमरअभय कहाहै ताते यह छाया आत्मानहीं। ऐसा विचार पुनः प्रजापतिके समीप गया, तब पुनः बत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्य करायके द्वितीय पर्य्यायसे ब्रह्माने [1]" यएषस्वप्नेमहीयमानश्चरतीति " यह उपदेश किया तिस को श्रवणकर पुनः इन्द्रस्वधाम को चला तब मार्ग में स्वप्नस्थ आत्मा में भयआदि दोष विचार पुनःप्रजापति के पास आवता हुआ, तबउसको पुनःबत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्य्य करायके तृतीयपर्य्याय से [2]" तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्त सम्प्रपन्न इति ।" सुषुप्तिस्थ आत्मा का उपदेश किया तिसको श्रवणकर पुनःइन्द्रस्वलोक को चला तब फेरमार्गमें विचारकरने से उस सुषुप्तिस्थ आत्माबिषे अभावादि दोष देख पुनःब्रह्मा के समीपगया तब ब्रह्मानेपुनः पांच वर्ष ब्रह्मचर्य्यकराया, इसप्रकार जब इन्द्रने बारम्वार बिचारकर प्रजापतिके समीपजाय उनकी आज्ञानुसार १०१ वर्ष ब्रह्मचर्यकिया तब अन्तःकरणका निःशेषदोष अभावहोनेसे ब्रह्मा के

१—२ छान्दोग्य उपनिषद् विषे ।

"[1]य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परंज्योतीरूपं सम्पद्यते" इस चतुर्थ पर्य्यायसे तुरीयसाक्षी आत्माको जो कि प्रथम पर्य्यायमें "एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यते" इस श्रुतिसे उपदेशकिया रहा तिसको यथार्थ अपना आप अनुभवकर शान्त आत्मा होता हुआ ॥ एतदर्थ हे सौम्य अभिप्राय यह है कि यह प्रत्यगात्मा जो चक्षुका चक्षु इत्यादि प्रति वचन करके कहा है अरु जो प्रत्यगात्मा चक्षुरादिकोंका विषयनहीं अरु जिसकी सत्तासे चक्षुरादि इन्द्रियां स्वस्व विषयको ग्रहण करती हैं, अथवा स्वस्व विषय को विषय करती विषयहोती है, सो निर्विशेष महासूक्ष्म आत्मा अत्यन्त दुर्विज्ञेय है उसका यथार्थ जानना सर्व को समान नहीं। तथाच "[2]नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन" इत्यादि। अरु हे सौम्य देखो इस लौकिक व्यवहार बिषेभी कोई एकतो आचार्यके वाक्यको इन्द्रकेचतुर्थ पर्य्यायवत् यथार्थ अरु कोई एकइन्द्रके प्रथम द्वितीय तृतीय पर्य्यायवत् अयथार्थ अरु कोई एक विरोचनवत् विपरीत अर्थ को ग्रहणकरते हैं, अरु कोई एककुछभी नहीं जानते जो आचार्य्यने क्या कहा। ताते हे शिष्य यह महासूक्ष्म आत्मा अति दुर्विज्ञेय है इसका जानना तर्कादिकों से नहीं होता जो जो अपनी बुद्धिकी कल्पना से तर्कद्वारा आत्मा को प्रतिपादनकरते हैं सो तार्किकादि कोई भी नहीं जानते, एतदर्थ शिष्यके यथार्थ सम्यक् ज्ञानकी परीक्षा के हेतु "यदि मन्यसे सुवेदेति" यह आचार्यका प्रश्न सर्वथा उचितही है ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ९ ॥ १ ॥

१ छान्दोग्य उ० विषे। २ मुण्डक उपनिषद्विषे

[पदान्वयः]

यदि[1] मन्यसे[2] सुवेद[3] इति[4] दभ्रं[5] एव[6] अपि[7] नूनं[8] त्वं[9] वेत्थ[10] ब्रह्मणः[11] रूपं[12] यत्[13] अस्य[14] (अध्यात्मोपाधिषुब्रह्मणोरूपं) त्वं[15] (वेत्थ) यत्[16] अस्य[17] देवेषु[18] (त्वंब्रह्मणः रूपं वेत्थ) अथ[19] नु[20] मीमांस्यं[21] एव[22] ते[23] मन्ये[24] विदितम्[25] ॥ १ ॥

[पदार्थः]

जो[1] कदाचित् (ऐसा) मानताहो[2] (कि ब्रह्मको) भलीप्रकार[3] जानताहौ[4] (तो) अल्प[5] ही[6] ७–८ (तू जानताहै) (क्या) तू[9] जानताहै[10] ब्रह्मके[11] रूपको[12] जो[13] इस[14] (ब्रह्मका रूप अध्यात्मोपाधि बिषे) तू[15] (जानताहै अरु) जो[16] इस[17] (ब्रह्मकारूप) देवताओंविषे[18] (तू जानताहै) एतदर्थ[19] अद्यापि[20] विचारने[21] योग्यही[22] है तुम[23] को मानताहो[24] जानताहै[25] ॥ १ ॥

[भावार्थ]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे सौम्य " यदि[1] मन्यसे[2] सुवे[3] देति[4] " (यदि[1] मन्यसे[2] सुवेद[3] इति[4]) [जो कदाचित् १ । (हमारे उपदेशसेऐसा) मानताहो २ । (कि ब्रह्मको) भलीप्रकार जानताहै ३ । ४ ।] अर्थात् जो कदाचित् हमारे उपदेशकरके तू ऐसामानताहो कि मैं आत्माब्रह्मको आचार्यके उपदेशसे भलीप्रकार जानताहौं तो " दभ्रमेवापि[5-7] नूनं[8] (त्वंवेत्थ) " (दभ्रं[5] एव[6] अपि[7] नूनं[8] (त्वंवेत्थ)) [अल्पही ६।७।८ (तूजानताहै)] अर्थात् श्रेष्ठ नहीं जानता, क्योंकि एकतो तूने आपको ज्ञाता चैतन्य माना अरु दूसरे ब्रह्मको ज्ञेय जडमाना, क्योंकि जो ज्ञाताहै सो चैतन्य अजडहै अरु जो ज्ञेय है सो अचैतन्य जड़है " यद्ज्ञेयं तज्जडं " इसन्यायसे तूने श्रेष्ठ न जाना, अरु क्या " त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं " (त्वं[9] वेत्थ[10] ब्रह्मणः[11] रूपं[12]) [तू ९ । जानताहै १० । ब्रह्मके ११ । रूपको १२ ।] अर्थात् क्या उस निर्विशेष निरुपाधिब्रह्म के रूपको तूजानताहै, क्या ब्रह्मके छोटे बड़े अनेकरूपहैं अर्थात् अध्यात्म उपाधि युक्त छोटा अरु अधिदेव अधिभूत उपाधियुक्त

बड़ा, इत्यादि प्रकारसे क्या एकब्रह्म के नाना रूप हैं, अरु जो "रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"[1] ब्रह्मके अनेकरूपही कहो तो अस्तु परन्तु अनेकरूप जो श्रुतिने प्रतिपादन किये हैं सो उपाधि के सम्बन्धसे कियेहैं वास्तवमें ब्रह्म जो है सो ।"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगंधवच्चयत्"। शब्दादि विषय धर्मरहित अविषय निर्विशेष है ॥

प्रश्न ॥ हे प्रभो जिसधर्मसे जिसका निरूपण होताहै सोई उसकारूपहै, इसन्यायसे ब्रह्मकोभी जिस विशेषणकरके निरूपण करिये सोई उसका रूप है ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य श्रवणकरो चैतन्य परमात्मा है सो पृथिवी आदि भूतोंमेंसे अन्यतम अर्थात् कोई एकका अरु सब्वोंका अरु परिणामको प्राप्तहुए सब्वोंका जो धर्म्म तद्धर्मवान् नहीं । अरु तैसेही चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियोंका अरु मनआदि अन्तःकरणका जो कि भूतोंका रजसत्त्व गुणी भौतिककार्य्य है तिनका दर्शन श्रवण मननादि जे धर्म्म हैं तद्धर्मवान्भी आत्मा नहीं । अरु जो तू ऐसाकहे कि ब्रह्मको चैतन्यरूप करके प्रतिपादन किया है "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"[2] अर्थात् विज्ञानघन सत् चिद् आनन्दआदि रूपसे ब्रह्मका निरूपणहै ताते सोई उसकारूप क्यों न होय,तो श्रवणकरो हे सौम्य श्रुतिने जो जो ब्रह्मकेरूप निरूपणकिये हैं सो सर्व सत्य हैं तथापि निर्विशेष परमात्मा को जो विज्ञानघनादि नामों से कहा है सो देह इन्द्रिय अन्तः करणादि रूप उपाधि सम्बन्धकरके उपाधिस्थ निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका उपदेश करनेके अर्थ उपाधिसे विपरीत धर्मवान् आत्माको उपाधि के धर्म्म से विपरीत धर्म्मवान् कहके लक्ष्य करायाहै, अर्थात् देहेन्द्रियादि सर्व असत्य जड दुःख धर्म्मी हैं ताते इनसे विपरीत आत्माको सत्य चैतन्य आनन्दरूपसे कहा है। परन्तु उपाधि के अभावसे निरुपाधि आत्माविषे विशेषके अभावसे विशेषण कोई

१--२ कठवल्ली उपनिषद्विषे। वृहदारण्य उ० अ० ५ विषे।

नहीं,एतदर्थही श्रुतिने कहाहै कि ।"अविज्ञातं विजानतां विज्ञा-
तमविजानताम्।" जो विज्ञात पुरुषहैं सो ब्रह्मको अविज्ञात अ-
र्थात् किसीका विषय नहीं ऐसा जानते हैं, अरु जो अविज्ञात पु-
रुषहैं सो ब्रह्मको विज्ञात अर्थात् हम ब्रह्मको जानते हैं ऐसा मा-
नते हैं।तातेजोजिस ब्रह्मकारूप तू जानताहै सो श्रेष्ठनहीं जानता
अरु "यद्[13]।स्य[14]।त्वं[15]। यद्[16]।स्य[17]। देवेषु[18]।"[1] यत् [13] अस्य[14] (ब्रह्मणः रूपं अ-
ध्यात्मोपाधिषु) त्वं[15] (वेत्थ) यत्[16] अस्य[17] देवेषु[18] (त्वं ब्रह्मणोरूपं
वेत्थ तदपि दभ्रमेव)॥ [जो १३।इस१४।ब्रह्मका रूप अध्यात्मो-
पाधि देहेन्द्रिय प्राण अन्तःकरणादि विशिष्ट परिच्छिन्न जिस
को जीव क्षेत्रज्ञ आदि विशेषणसे कहते हैं तिसको) तू१५।(जा-
नताहै अरु) जो१६।इस१७। (ब्रह्मकारूप) देवताओं के विषे
१८। (तू जानताहै)] अर्थात् ब्रह्मा विष्णु शिवादि देवतारूप
उपाधि परिच्छिन्न जे आत्मा ब्रह्म तिसहीको तू पूर्ण निर्विशेष
ब्रह्मकारूप जानता है तो भी अर्थात् अध्यात्मोपाधि अरु अधि-
दैवोपाधि उभय स्थानविषे अल्पही जानता है ऐसा हम मानते
हैं, क्योंकि अध्यात्म विद्याकरके प्रतिबोधित आत्मा सोई ब्रह्म
है तथापि उपाधि परिच्छिन्न आत्माविषे प्राप्तहुई जे उपाधिजन्य
परिच्छिन्नता तिसकरके सोपाधि आत्माका अल्पत्व दूरहोता
नहीं, तैसेही अध्यात्म अधिदैव अधिभूतादि उपाधि परिच्छिन्न
आत्माका अल्पत्व मिटे नहीं, ताते सोपाधि आत्माको ब्रह्मका
रूप तूने जानाहै तो अल्पही जानाहै, क्योंकि शुद्ध आत्मा ब्रह्म
तो सर्व उपाधिरूप विशेषता अरु तिस विशेषताद्वारा आया जो
आत्मामें विशेषण तिसके अभावसे सर्व नाम रूप उपाधिरहित
परमशान्त अनन्त एक अद्वैत सर्वका भूमा अवधि आश्रय अनि-
र्वाच्य ब्रह्म सो सुवेद्य नहीं,अर्थात् मैं ब्रह्मको भलीप्रकार जान-
ताहौं इत्यादि वृत्तिका विषय नहीं, ताते ब्रह्मको मैं भलीप्रकार
जानताहौं ऐसा जो हमारे उपदेशसे तू मानता होय तो यहतेरा

१ केनोपनिषद् विषे।

माननाअल्पही है,ताते हे सौम्य सोपाधि ब्रह्म अल्प है निरुपाधि ब्रह्म दुर्विज्ञेयहै एतदर्थ "अथ[19] नु[20] मीमांस्यं[21] मेव[22] ते[23]" । < अथ[19] नु[20] मीमांस्यं[21] एवं[22] ते[23] > [एतदर्थ१९।अद्यापि२०। विचारनेयोग्य २१।हीहै २२।तुमको२३।] अर्थात् जिसको तूने ब्रह्मकरके माना है सो अद्यापि तुझको विचारने योग्यही है, ताते विचारकरो हे शिष्य जबइसप्रकार प्रजापतिने जिज्ञासुप्रति कहातबश्रद्धावान् जिज्ञासु तथाऽस्तु कहके एकान्तस्थानमें सुखासनहोय जिसप्रकार श्रुतिआचार्यनेकहातिसकेअर्थकोविचार तिसबिषे नाना तर्कउठाय पुनः तिसका सिद्धान्त अनुभवकर गुरु प्रजापति के समीप जाय प्रणामकर कहताहुआ कि हे भगवन् "।मन्ये[24] विदितम्[25]" । < मन्ये[24] विदितम्[25] > [मानताहौं मैं२४-जानाहै२५-(ब्रह्मको)] अर्थात् अब मानताहौं मैं जो ब्रह्मको मैंने जानाहै ९ । १ ॥

प्रश्न प्रजापतिका ॥ हे सौम्य जो तू ने जाना है ब्रह्मको तो किसप्रकार जानाहै सो कहो ॥

ना[1]हं[2] । मन्ये[3] । सुवेदेति[4,5] । नो[6] न[7] वेदे[8] । ति[9] । वेदच[10,11] । योन[12]
स्तद्वेद[13] । तद्वेद[14,15,16] । नो[18] न[17] वेदे[19] । ति[20] । वेद च[21] ॥ १० ॥ २ ॥

[पदान्वयः]

न[1] अहं[2] मन्ये[3] सुवेद[4] इति[5] नवेद[6] इति[7] नो[8] च[9] वेद[10] (इति नो) यः[11] नः[12] तत्[13] वेद[14] तत्[15] वेद[16] नवेद[17] इति[18] नो[19] च[20] वेद[21] (इति नो) १० ॥ २ ॥

[पदार्थाः]

नहीं[1] मैं[2] मानता[3] सुवेद[4] इति[5] नहींजानता[6] ऐसा[7] नहीं[8] पुनः[9] जानताहौं[10] (ऐसानहीं) जो[11] हमारेमध्य[12] सो[13] जानता है[14] सो[15] जानता[16] है नहीं जानता[17] ऐसा[18] नहीं[19] पुनः[20] जानता है[21] (ऐसानहीं)

[भावार्थ मन्त्रदूसरेका]

॥ जिज्ञासुरुवाच ॥ हे भगवन् "नाहं[1,2] मन्ये[3] सुवेदे[4] ति[5]" । < अहं[1] सुवेद[2] इति[3] न[4] मन्ये[5] > [मैं१। (ब्रह्मको) सुवेद २। ऐसा ३।

नहीं४। मानता५।] अर्थात् मैं ब्रह्मको भलीप्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाणसे जानने योग्यहैऐसा नहीं मानता, क्यों जो ब्रह्म आत्मा है सो ज्ञानका विषय नहीं, तातें उस विषयक भलीप्रकार जानना बने नहीं, अतएव यह मानता हौं कि ब्रह्म सुवेद्य नहीं, क्योंकि- नो[1] न[2] वेदे[6] ति[7] वेद[9] च[8]" २ नवेद इति नो च वेद (इतिनो) [नहींजानता६। ऐसा७। नहीं८। पुनः९। जानताहौं १०। [ऐसाभीनहीं,] अर्थात्, निरुपाधि ब्रह्मको मैं जानताहौं ऐसा भी नहीं अरु नहीं जानता ऐसा भी नहीं ॥

प्रश्ण ॥ हे सौम्य तुम्हारे कहने बिषे दोष है कहां तो कहतेहौ कि ब्रह्मको नहीं जानता ऐसा नहीं, अर्थात् जानताहौं, अरु कहांकहतेहौ जानताहौ ऐसा भी नहीं अर्थात् नहीं जानता क्योंकि ब्रह्म ज्ञानका विषयनहीं। तहां जो कदापि आत्माको ज्ञानका विषय नहीं मानते तो क्यों मानते हौ जो ब्रह्मको जानता हौं, अरु जो कदापि ऐसाही मानतेहौ कि मैं ब्रह्मको जानता हौं तो क्यों नहीं मानते जो मैं ब्रह्मको भली प्रकार जानता हौं। क्या एक वस्तु जिस करके जानी जाय सोई वस्तु उस करके न जानी जाय, ऐसानहीं, अरु तुम ब्रह्मको सुवेद्य नहीं भी मानते अरु जानता हौ ऐसा भी मानते हौ, सो यह विरुद्ध है ऐसा कथन संशय विपर्य्ययको छोड़कर यथार्थ वाक्यमें नहीं होता, अरु ब्रह्म संशय विपर्य्यय रहित है, क्योंकि संशय विपर्य्यय अनर्थके हेतुहैं, अथवा तुम्हारे वाक्य में और प्रकार भी संशय विपर्य्यय है, तुम कहतेहौ कि मैं भली प्रकार ब्रह्मको नहीं जानता इस वाक्यमें संशय है कि अद्यावधि शिष्यने ब्रह्मको नहीं जाना सो क्यों नहीं जाना, अरु मैं ब्रह्मको जानताहौं इस तुम्हारे वाक्यमें विपर्य्ययताहै कि ब्रह्म तो ज्ञानका विषय नहीं अरु यह कहताहै कि मैं ब्रह्मको जानताहौं तो जाने इसने किस अनात्माको ब्रह्मकरके मानाहै, तातें हे सौम्य तुम्हारे यह परस्पर विपरीत वाक्य संशय विपर्य्यय दोष युक्तहैं अरु संशय विपर्य्य-

यवान् पुरुष ब्रह्मको जाननेमें समर्थ नहीं क्योंकि ब्रह्मबिषे सं-शय विपर्य्यय दोनों नहीं, अरु संशय विपर्य्यय आवही संसारमें अनर्थका कारणहै ताते जो तूने जाना यथार्थ न जाना॥ हे शिष्य इसप्रकार जब आचार्य प्रजापतिने जिज्ञासुके सम्यक् बोधकी परीक्षाके अर्थ उसकी बुद्धिको चलायमान किया परन्तु दृढ़ यथार्थ बोधवान् जिज्ञासु चलायमान न हुआ अरु आपही आप विचारताहुआ जो विदित अविदित दोनोंसे अन्य आत्मा हमको पूर्व आचार्यने कहाहै अरु सोई श्रुतिका सिद्धान्तहै अरु सोई अनुभव सिद्ध है। इसप्रकार आचार्य्य, श्रुति, अनुभव, इन तीनों के बलसे ब्रह्म विद्यामें दृढ़ विश्वासकर्त्ता गर्जना (प्रतिज्ञा) पूर्वक उच्चस्वरसे ब्रह्मविद्या बिषे अपनी दृढ़ विश्वासता देखा-वताहुआ १०। २॥

प्रश्न ॥ क्या देखावताहुआ ॥

जिज्ञासुरुवाच ॥ हे प्रभो "। यो[११] न[१२] स्तद्[१३]वेद[१४] तद्[१५]वेद[१६] "। { यो[११] नः[१२] तत्[१३] वेद[१४] तत्[१५] वेद[१६] }[जो ११ । हमारे १२ । [मध्य] सो १३। तिसको जानता है १४। सो १५। जानताहै १६।] अर्थात् जो कोई हमारे सहाध्यायी ब्रह्मचारी विद्यार्थियों के मध्य वो मेराकहा वेद वचन तिसके अर्थको भलीप्रकार तत्त्वकरके जानताहै सोई उस ब्रह्मको जानताहै ॥

प्रश्ण ॥ पूर्व कहे वाक्यसे पुनः वो कौन वाक्यहै कि जिसके जानने से अविषय ब्रह्मजाना जाय ॥

उत्तर ॥ "। नो[१९] न[१७]वेद[१८]ति वेद[२१] च[२०] "। { नवेद[१७] इति[१८] नो[१९] च[२०] वेद[२१] (इतिनो) } [नहीं जानता १७। ऐसा १८। नहीं १९। पुनः २०। जानताहौं २१। (ऐसा नहीं)] अर्थात् मैं आत्माको नहीं जानता ऐसा नहीं क्योंकि आत्मा अपना आप है तिसका न जानना क्या, अरु फेर तैसेही जानताहौ ऐसा भी नहीं क्योंकि आत्मा ज्ञानका विषय न होते ज्ञानस्वरूप सर्वका जानने वाला है ताते उसका ज्ञेयवत् जानना बने नहीं तब उसका जानना

क्या, अर्थात् आत्मा जानना न जानना जे बुद्धिके धर्म्म तिन दोनोंसे रहित सर्वका प्रकाशक साक्षी है ताते उस विषयक न जानना ऐसा भी नहीं अरु जानना ऐसा भी नहीं । तथाच "१ येनेदꣳ सर्वं विजानीयात् तत्केन विजानीयात्" जिस करके यह सर्व जानाजाताहै सो किस करके जानिये । अर्थात् आत्मा,मन आदि इन्द्रियां अहं आदि प्रत्यय शब्दादि विषय, इन सर्व का ज्ञाता प्रकाशक चैतन्यहै उससे पृथक् उसका प्रकाशक ज्ञाता कोई नहीं तब यह कैसे कहिये जो मैंने ब्रह्मको जानाहै, अरु यह भी कैसे कहिये जो नहीं जाना क्योंकि अपना आपहै । इसप्रकार जो हमारे वाक्यको विचारके जानताहै सोई उस अपने आप आत्मा ब्रह्मको जानताहै ॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ११ ॥ ३ ॥

[पदान्वयः]

यस्य अमतं तस्य मतं यस्य मतं सः न वेद विजानतां अविज्ञातं अविजानतां विज्ञातम् ॥

[पदार्थः]

जिसका अमतहै तिसका मतहै जिसका मत है सो नहीं जानता विज्ञातको अविज्ञातहै अविज्ञातको विज्ञात है ११ ॥ ३ ॥

[भावार्थमन्त्रतीसरेका]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार जिज्ञासुकी परीक्षा के अर्थ जो गुरु शिष्यका परस्परमें संवाद तिसकी परस्पर में निवृत्तिके अर्थ श्रुति स्वयम्बोधन करेहै "। यस्यामतं तस्य मतं"। { यस्य अमतं तस्य मतं } [जिसका १। अमतहै २। तिसका ३ । मतहै ४ ।] अर्थात् जिस ब्रह्म वेत्ता पुरुषका यह निश्चय है कि ब्रह्म अविज्ञातहै ज्ञानादि किसीकाभी विषय न होते विशेष ज्ञानके

---

१ बृहदारण्यविषे ॥

अभावसे केवल ज्ञप्तिमात्र है, ताते जिसको अविज्ञातहै तिसही पुरुषको मत अर्थात् ज्ञान (अनुभव) विषय है तिसमें विशेषणतासे भासमान जे ज्ञान (बोध) सोई सम्यक् ब्रह्महै। अरु "मतं यस्य न वेद सः"। (यस्य मतं सः न वेद) [जिस पुरुषका ५। मतहै ६। सो ७। नहीं ८। जानता ९।] अर्थात् जिस पुरुष का यह निश्चयहै कि जाना है मैंने ब्रह्मको सो पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता। इसही अर्थको पुनः श्रुति दृढकरेहै कि "अविज्ञातं विजानताम्"। (विजानतां अविज्ञातं) [विज्ञात पुरुषको १०। अविज्ञातहै ११।] अर्थात् सम्यक् सूक्ष्मबुद्धिसे श्रुति वाक्यार्थ के जे विज्ञात पुरुष हैं तिनका यह निश्चय अनुभव है कि ब्रह्म जो परमात्माहै सो अविज्ञातहै, अर्थात् अन्तःकरण अरु तिसकी वृत्ति, अरु इन्द्रियां अरु तिनकी वृत्ति, इत्यादिमेंसे किसी का अरु सर्वका विषय नहीं ताते परमात्मा अविज्ञात अर्थात् अविदित है। अरु "। विज्ञातमविजानताम्"। (अविजानतां विज्ञातम् [अविज्ञातको १२। विज्ञात है १३।] अर्थात् जिनको बुद्धिकी सूक्ष्मताके अभावसे श्रुतियों के वाक्यका यथार्थ बोध न होने से देहेन्द्रिय मन प्राणादि बिषे आत्म प्रतीति ऐसेजे असम्यक् दर्शी पुरुषहैं तिनका यह निश्चयहै कि ब्रह्म विज्ञातहै, अर्थात् हमको ब्रह्म बिदित है। ताते हे सौम्य तात्पर्य यह है कि जिस विद्वान्का यह निश्चयहै कि निर्विशेष ब्रह्म अविदितहै सोई पुरुष ब्रह्मको जानता है अरु सोई यथार्थदर्शी है। अरु जिसअविद्वान का यह निश्चय है कि ब्रह्म विदित है सोई पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता अरु सोई असम्यक् दर्शी है हे सौम्य इसवाक्य से श्रुतिने जिज्ञासुके विचारित वाक्यको कि "। नाहं मन्ये सुवेदेति"। मैं नहीं मानताहौं ब्रह्म आत्माको मैंने जानाहै, तिसको दृढ करके अब महासूक्ष्म परमात्माको निर्विशेष लक्ष्य करावेहै॥

प्रश्न शि०॥ हे गुरो आपने अरु श्रुतिने यह निश्चय किया कि "। अविज्ञातं विजानतां"। विद्वान् ब्रह्मवेत्ता के निश्चयमें ब्रह्म

अविज्ञातहै, तातें जो कदापि ब्रह्मवेत्ताको भी ब्रह्म अत्यन्तही अविज्ञातहै तो लौकिक साधारण पुरुष अरु ब्रह्मवेत्ता बिषे विशेषता न हुई, तब ब्रह्मवेत्ता "अहं ब्रह्मास्मिभावको कैसे धारणकरे हैं ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य जो पूर्व "अन्य देवतद्विदितादथो अविदितात्" इत्यादि श्रुतिकरके कहा कि ब्रह्म जो है सो विदित अविदित दोनों भावसे पृथक्है तिस वाक्यके अनुसार सूक्ष्म बुद्धि ब्रह्मवेत्ता विचारते हैं कि जो अन्तःकरणकी अविज्ञात वृत्ति है। अर्थात् ब्रह्म अविज्ञात है ऐसी जे निश्चयं आत्मक वृत्ति, अरु विज्ञात वृत्ति इन दोनों वृत्तिको साक्षीहोके जो प्रकाशहै सोई साक्षी आत्मा ब्रह्म मैं हौं तिस मेरे बिषे वृत्ति आदि उपाधिरूप साक्ष्यके सम्बन्धसे साक्षित्वहै। अरु वृत्तिआदि उपाधिके अभावसे साक्षित्व प्रकाशकत्व आदि विशेषणोंका भी अभाव होताहै तिस अभावके पश्चात् अवशेषरहा जो निर्विशेष अस्तिमात्र भावरूप विज्ञानघन ब्रह्म सो मैं हौं, इसप्रकार निर्विशेष ब्रह्मको अपना आप अनुभव करके "अहंब्रह्मास्मि" भावको प्राप्तहोते हैं सोई श्रुति आप बोधन करे है११।३॥

प्रति[2] बोधविदितं[1] मतममृतत्वं[3][4][5] हि[6] विन्दते[7] आत्मना विन्दते[10] वीर्य्यं विद्यया[11] विन्दते[13]ऽमृतम्[12] १२।४॥

[पदान्वयः]

बोधं[1] प्रति[2] विदितं[3] मतं[4] अमृतत्वं[5] हि[6] विन्दते[7] आत्मना वीर्य्यं विन्दते[10] विद्यया[11] अमृतत्वं[12] विन्दते[13] ॥

[पदार्थ]

प्रत्यय (प्रत्यय) प्रति विदित[3] है सम्यक्दर्शनाकियाहै (सो) अमृतत्वको[5] ही[6] प्राप्तहोताहै आत्माकरके सामर्थ्य प्राप्तहोताहै[10] विद्याकरके[11] अमृत[12] प्राप्तहोताहै[13] १२।४॥

[भावार्थमन्त्र चौथेका]

गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "प्रति[2] बोधं[1] विदितं[3]" । {बोधं[1] (बोधं) प्रति[2] विदितं[3]} [बोध १ । (बोध) प्रति २ । विदित है ३ ।] अर्थात् बोध शब्दकरके बुद्धिका प्रत्यय अर्थात् बुद्धि उपलक्षण करके अन्तःकरण तिसका जो अहं आदि प्रत्यय सो जिस चैतन्य स्वयं प्रकाश साक्षी करके प्रकाशित होताहै सोई सर्व प्रत्ययका साक्षी प्रत्यगात्माहै सोई सर्व प्रत्ययका द्रष्टाचिच्छक्ति स्वरूप मात्रहै सो प्रत्यय करकेही प्रत्यय अवशिष्टतासे लक्ष्य अनुभव होय है ॥ जैसे चक्षु विशिष्ट सूर्य्य सत्ताकरकेही चक्षु अविशिष्ट सूर्य्य का अनुभव होयहै ॥ तैसेही साभास अन्तःकरणका जे अहंआदि प्रत्यय सो अन्तःकरण अवशिष्ट (उपहित) प्रत्यगात्मा करकेही प्रकाशित होताहै अरु तिसही करके अविषय ब्रह्म अनुभव होताहै कि जिसकी सत्ता पायके सर्व प्रत्यय अपने २ व्यापार में प्रवृत्त होते हैं । तथाच [1]" विज्ञातेर्विज्ञाता " क्यों जो विज्ञाता जे बुद्धि तिसका भी विज्ञाता है, अर्थात् जिसके प्रकाश में बुद्धि के सर्व प्रत्ययोंका उत्थानलय भावाभाव सिद्ध होताहै सोई स्वयंज्योतिः साक्षी प्रत्यगात्मा ब्रह्महै, ताते "[2]नविज्ञातेर्विज्ञातारंविजानीयात्" । बुद्धिकेविज्ञाता को बुद्ध्यादि कोई भी विषय नहीं करते, एतदर्थ ब्रह्म अविदितहै । हे सौम्य इसप्रकार विचारके जिस विज्ञात पुरुष ने उस निर्विशेष अविषय ब्रह्म अपनेआप सर्व प्रत्यगात्मा को सर्व्व उपाधिसे रहित सर्व्वका प्रकाशक नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्व्वात्मा निर्विशेष एक अद्वैत लक्षण भेदके अभाव से सर्व भूतों बिषे आकाशवत्, अर्थात् जैसे आकाश घट मठ गिरि गुहा अरण्यादि उपाधिबिषे उपाधिके धर्म्म से रहित समान एकरसहै । तैसेही "[3]आकाशवत् सर्व्वगतःसनित्यः" आकाशवत् समान एकरसजानाहै तिसका "मतं[4]" { मतं[4] } [सम्यक् दर्शन है ४ ।] अर्थात् सोई सम्यक् आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी सम्यक्

१ बृहदारण्य उ० विषे । २ बृहदारण्यअ० ५ में । ३ तैतरीयउ० विषे ।

दर्शी है, अरु सोई "अमृतत्वं हि विंदते"। {अमृतत्वं हि विन्दते} [अमृतत्वको ५ । ही ६ । प्राप्तहोताहै ७ ।] अर्थात् सम्यक् आत्मज्ञानी अमरणभाव जेपरमात्मासाथ अभेदलक्षणरूप मोक्ष तिसको निश्चय प्राप्तहोताहै " हे सौम्य कोई एकआचार्य इस प्रकारभी कहते हैं कि बोध क्रियाका कर्त्ता आत्माहै, सो बोध क्रिया लक्षणकरके बोधक्रियाका कर्त्ता जाना जाताहै ताते आत्माको "प्रतिबोध विदितं" ऐसाश्रुतिने प्रतिपादन किया है, जैसे जो वृक्षशाखाको चालनकरे है सोई वायुहै। तैसेही जो बोध क्रियाका कर्त्ता है सोई आत्मा है । तब बोधक्रिया शक्तिमान् जो आत्मा सो द्रव्य है बोधस्वरूप नहीं क्यों जो बोध तो उत्पत्ति विनाश होताहै ताते क्षणिकहै, जब बोध उत्पन्न होताहै तब बोधक्रिया के संग आत्मा सविशेष होताहै अरु जब बोध नष्ट होताहै तब नष्ट बोध आत्मा जड द्रव्यमात्र निर्विशेष होताहै ॥ हे सौम्य इसप्रकारके अर्थसे विकारवान् आत्मा सावयव हुआ अरु जब सावयव हुआ तब अनित्य अशुद्ध हुआ इसप्रकार विक्रियावान् आत्माविषे अनात्म दोष सिद्ध होते हैं तिसको दूर करनेको वा उक्तप्रकार से कहनेवाले आचार्य कदापि समर्थ नहीं अरु श्रुति ने आत्माको "[1]सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म" सच्चिदानन्द लक्षण करके लक्षित लक्ष्यकराया है । ताते जे आचार्य आत्माको बोध क्रिया का कर्त्ता कहते हैं सो वेदसे वाह्य बोलते हैं,, अरु जो कणाद आचार्य है सो आत्मा बिषे संयोगज] संयोगजन्य [बोध मानते हैं, अर्थात् कहते हैं कि आत्माको बुद्धिका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें बोधोत्पत्तिहोती है ताते आत्मा बोधवान् है बोधक्रिया का कर्त्ता नहीं परन्तु द्रव्यमात्र तो है ही है ॥ हे सौम्य इसपक्ष में भी अचेतन द्रव्यमात्रही ब्रह्महै, सो इसपक्षको भी । "ज्ञान-मानन्दं, प्रज्ञानं, विज्ञानघनं"। इत्यादि अनेक श्रुतियोंने बाधित कियाहै, अरु आत्माको सर्व्वात्मा होनेसेभी वो अन्तःकरणादि

---

१ तैतरेय उ० विषे ।

किसीकेभी धर्मसे तत्तद्धर्म्मवान् होता नहीं क्यों जो निराकार निर्विकार सत्तामात्रहै "[1] असंगो नहि सज्जते, असंगोह्ययंपुरुषः, [2] असक्तंसर्वभृच्चैव"। इत्यादि श्रुति स्मृतिके वाक्यप्रमाणसे कणादमत श्रुतिवाह्य अप्रमाण है, अरु न्यायकरके भी विरुद्ध है क्योंकि गुणवान्का गुणवान्केसाथ संसर्ग होताहै अतुल्यजाति का परस्पर सम्बन्धहोता नहीं, ताते निर्गुण निर्विशेष निराकार सर्वसे विलक्षण आत्मा सो किस अतुल्यजातीय करके संसर्ग सम्बन्धवान् हो उत्पन्न कदापि न होगा, ताते कणादमत न्यायकरके भी अरु अनेक श्रुति स्मृतियों के प्रमाण करके भी वेद विरुद्ध अप्रमाणही सिद्धहै॥ अतएव सबश्रुति स्मृतिप्रमाण अलुप्त ज्ञानस्वरूप स्वयंज्योतिः आत्मा ब्रह्म है॥ हे सौम्य इस प्रकार विचार के प्रत्यगात्मा ब्रह्मको जिसने माना है अर्थात् अपना आप अनुभव कियाहै सोई आत्मवेत्ता मोक्ष को प्राप्तहोता है॥ हे सौम्य कोई एक एकदेशी आचार्य "प्रतिबोध विदितं" इस वाक्यके अर्थ को इसप्रकार वर्णन करते हैं कि आत्मा स्वसंवेद्य बुद्धिमें आत्मभावका आरोपकरके तिससे आत्मावेद्य(जाननेयोग्य) है, यह उन आचार्य्यों का कथन भी यथार्थ नहीं, क्योंकि इसमतमें आत्माको सोपाधिकत्व आवताहै, जब बुद्ध्युपाधिस्वरूपआत्माहुआ तो निरुपाधि जोआत्मस्वरूपहै तिसकी सिद्धि न भई क्योंकि "[3] आत्मन्येवात्मानं पश्यति" "[4] स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंसे आत्माका एकत्व अरु निरुपाधिकत्व अरु ज्ञानवेद्यत्व प्रतीतहोताहै, अरु जब आत्माज्ञानस्वरूपहै तब उसको ज्ञानान्तरकी अपेक्षा असंभवहै। जैसे प्रकाशको प्रकाशान्तरकी अपेक्षा नहीं॥ ताते यह एक देशी का मत भी समीचीन नहीं॥ हे सौम्य बौद्धके मतमें आत्मा इस प्रकार स्वसंवेद्यहै कि संविज्ञान जो है सो स्वसंवेद्यहै। अर्थात्

---

१ बृहदारण्य उ० विषे। २ भगवद्गीताविषे। ३ बृहदारण्य उ० विषे। ४ कौशीतकी उ० विषे॥

बुद्धिही आत्मरूप होकर अपनेको विषय करती है, यह बौद्धका मत भी असम्यक् है, क्योंकि इसमें विज्ञानको क्षणभंगुरत्व अरु निरात्मकत्व होजायगा क्योंकि प्रत्यक्ष जो है सो वर्तमानका प्रकाशकहै अरु क्षणान्तर विशिष्ट आत्मामें क्षणान्तर विशिष्ट वोही विज्ञान (बुद्धि) ब्रह्मका अभिव्यंजक (प्रकाशक) नहीं होसक्ती इससे बौद्धको यह अवश्यमानना पड़ेगा कि स्वात्मामें आपही क्षणमात्र विज्ञानवर्त्तताहै ताते क्षणिकत्व आत्मामें साक्षात् सिद्धहुआ, अरु जो क्षणिकहै सो निरात्मक है ताते निरात्मकत्व सिद्धहुआ, अरु "[1]नहि विज्ञातुर्विज्ञाते विपरिलोपोविद्यते अविनाशित्वात्, [2]नित्यं विभुंसर्वगतं, [3]सएवैषमहानजआत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयः" इत्यादि श्रुतियों से आत्मा को नित्यत्व अरु अविनाशित्व प्रतिपादन कियाहै सो उसके मतमें सर्वथा असंभव है ॥ हे सौम्य कोई एकआचार्य्य "प्रतिबोधविदितम्" इस श्रुतिवाक्यके अर्थ को इसप्रकार वर्णन करते हैं कि निर्निमित्तक (हेतुरहित) जो बोध सो प्रतिबोध उससे आत्मा विदित (ज्ञानाज्ञाता) है, अर्थात् 'ब्रह्माहमस्मि' ऐसा चिन्तन करतेहुए मुमुक्षुको जो चित्तके व्यापार रहित संप्रज्ञात समाधि तिस के अनन्तर सुषुप्तिकाल के आनन्द साक्षात्कारके समान जो आत्मबोध, अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि उसही को प्रतिबोध कहते हैं, इसमें यह "[4]अपरायत्तबोधोहि निदिध्यासनमुच्यते" वार्त्तिककारका वचन प्रमाणहै कि निराश्रय निष्कारण जोबोध तिसको निदिध्यासन कहते हैं ॥ अरु कोई एक आचार्य यह वर्णन करते हैं कि सकृत विज्ञान जो अपनी प्रवृत्तिसे एकबारही क्रिया कारकरूप अज्ञानको निवृत्त करताहै ऐसा जो विज्ञान सोई प्रतिबोधहै क्योंकि जब क्रियासे ब्रह्मात्मभावका अनुभव होगा तो आत्मा में प्रमातृत्व न हुआ तिससे पुनः ज्ञानान्तरका असंभवहोनेसे एकबारही मुक्तिका कारण जे सकृत विज्ञान तिसको प्रतिबोध

१—२—३बृहदारण्य उ० विषे । ४ वार्तिककार वचनम् ॥

कहते हैं ॥ हे सौम्य यह निर्निमित्तक अरु सकृत बोध वादियोंके मत भी असंगत है क्योंकि अविद्याकी निवृत्ति करनेवाला जो आगंतुक (भावी) बोध सोनिर्निमित्तक नहीं होता क्यों जोकार्य्यहै सोसनिमित्तहै अरु सुषुप्तिकालीन आनन्दभी सनिमित्तकहै क्योंकिअविद्याका जो पूर्व पूर्व निरोध अवस्था संस्कार उससे उत्पन्नहुई जो आत्माकार वृत्ति तिससे अभिव्यक्त (ज्ञात-प्रकट) जोचैतन्य तिसको सुख साक्षात्कार होताहै। अरुसकृतबोध भी प्रतिबोध शब्दका अर्थ नहीं क्योंकि प्रवृत्त कर्म्म फलोंके प्रतिबन्धसे जबतक वर्त्तमान प्रमातृत्वके आभासकी निवृत्ति नहीं होती तबतक असकृत बोध अनुभव सिद्ध है। इससे यह उभय पक्षभी मुमुक्षुको आदर करने योग्य नहीं" हे सौम्य इन पूर्वोक्त समस्त अभिप्रायसे महाभाष्यकार श्रीशंकराचार्यने यहवर्णन कियाहै कि "निर्निमित्तः सनिमित्तःसकृत् वा असकृत्वा,प्रतिबोध एवहिसः" अर्थात् यह बोध निष्कारणहो वा सकारणहो,एकबार हो वा बारम्बारहो, परन्तु वा प्रतिबोध अर्थात् बोध बोध (प्रत्यय प्रत्यय) प्रति साक्षितासे प्रकाशमानहै,इससे लक्ष्यपदारथके विवेचन पूर्वक महावाक्योंसे उत्पन्नजो "परमात्माऽस्मि" यहज्ञान सोई सम्यक्ज्ञान है तिसहीसे अमृतत्वको मुमुक्षु प्राप्तहोताहै॥

प्रश्न ॥ हे गुरो यथोक्त आत्मविद्याकरके किसप्रकार अमृतत्व [मोक्ष] को मुमुक्षु प्राप्तहोताहै ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य "आत्मना विन्दते वीर्य्यं" ६ आत्मना वीर्य्यं विन्दते ७ [आत्माकरके ८। सामर्थ्य ९। प्राप्तहोताहै १०।] अर्थात् अपने आपही करके अमरभाव प्राप्तिका सामर्थ्य प्राप्त होताहै। धन, सहाय, मन्त्र, औषध, तप, यज्ञ, योग, व्रतादि,कृत सामर्थ्यसे मृत्युको जितनेकी शक्ति होती नहीं क्योंकि योग तपादिकृत सर्वका अनात्माकृत सामर्थ्य है, अरुअध्यात्मविद्या कृत जे सामर्थ्य है सो मोक्षके हेतुहै सो आत्माकरकेही प्राप्तहोताहै अन्यकरके नहीं तातें "विद्यया विन्दते ११ ऽमृतम् १२" ६ वि-

द्यया अमृतं विन्दते ?[विद्याकरके ११। अमृत १२। प्राप्तहोताहै १३।] अर्थात् अपने आपआत्माका श्रवण मनननिदिध्यासनरूप अनन्य आत्मविद्या कि जिसको आत्मविद्या ब्रह्मविद्या राजविद्या पराविद्या, इत्यादि नामसे कहतेहैं तिसविद्या करके अमरभाव [मोक्ष] अर्थात् अविद्याकृत जन्ममरणादि जे अनात्मधर्म तिससे रहित परम अमृत अपने आपको प्राप्तहोता है, आत्मबिचार विद्यारूप सामर्थ्य बिना अन्य उपाय मोक्षका नहीं । तथाच ।" नायमात्मा बलहीनेनलभ्यः " । १२ । ४ ॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति १३ । ५ ॥

[पदान्वयः]

इह चेत् अवेदीत् अथ सत्यं अस्ति चेत् इह न अवेदी न महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति १३।५ ॥

[पदार्थ]

यहां सर्व में अधिकारी यदि जानताभया तो सत्य है यदि अधिकारीहोके न जानताभया] तो उसको) अतिदीर्घ विनाश है। भूतोंविषे भूतोंविषे जानके धीरपुरुष इस लोकसे उठके अमर होतेहैं १३। ५॥

[भावार्थमन्त्र ५ में का]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे शिष्य ।" इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति "। [१] इह चेत् अवेदीत अथ सत्यं अस्ति ?[यहां सर्व में अधिकारी १। यदि २। जानताहुआ ३। तो ४। सत्य ५। है ६।] अर्थात् सुर नर तिर्यक् इत्यादि यावत् प्राणी मात्रको अज्ञान करके इस अनन्त दुःखरूप जगत् विषे नाना-

१ कठवल्ली उपनिषद् विषे ॥

प्रकारके जन्म जरा मरण रोगादिकोंका कष्टा अतिदुःख देनेवाली अनिवार्य्य प्राप्तिहै, इससे तिन सर्व्वमें एक यह मनुष्यही अविद्या कारण सहित इस संसारसे छूटनेके अर्थ अधिकारी है। सो यदि समर्थ होकर आत्माको जानताहुआ, अर्थात् पूर्वोक्त श्रुतिके "अन्यदेव विदितादथो अविदितादधि" इस वाक्यप्रमाण से विदिति, अविदित, कार्य, कारण, हेय, उपादेय, आदि सर्वसे पृथक् अविषय निर्विशेष सर्व प्रत्यय साक्षी आत्माको सम्यक्‌जानताहुआ तोउसका इस मनुष्य जन्ममें, जन्म, कर्म्म, जप, तप, योग, ध्यान, धारणा, दान, ज्ञान, विचार, समाधि, आदि सर्व सत्यही है, अर्थात् उसका जन्मादि सर्व सफलहै। अरु "न[8] चे[7] दिहा[9] वेदीन्[10] महती[11] विनष्टिः[12]" (चेतूँ इहँ नँ अवेदीत् महती विनष्टिः) [यदि ७। पूर्वोक्त अधिकारी ८। न ९। जानताहुआ १०। तो दीर्घ ११। विनाश है १२।] अर्थात् जो कदापि पूर्वोक्त सुरनरादि प्राणी मात्रोंमेंअधिकृत यहमनुष्य अपनेआप अविषयआत्माको सम्यक् प्रकार से न जानताहुआ तो उस पुरुषका अत्यन्त दीर्घ अनन्ता विनाशहै। अर्थात् वारंवार जन्म जरा रोग मृत्यु आदिकोंका अविच्छेद लक्षणरूपा संसारगति तिसही को प्राप्त होती है। हेसौम्य इसप्रकार अपने आप निर्विषय निर्विशेष प्रत्यगात्मा को जानने अरु न जानने में जे गुण दोष हैं तिनको सम्यक्‌प्रकार विचारके जाननेवाले जे आत्मदर्शी ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता सो "भूतेषु[13] भूतेषु[14] विचिन्त्य[15] धीराः[16]" (भूतेषु[13] भूतेषु[14] विचिन्त्य[15] धीराः[16]) [भूतों १३। भूतों बिषे १४। जानके १५। धीरपुरुष १६।] अर्थात् अव्याकृत महत्तत्त्व अहंकार आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन आठ ८ कारण भूतोंबिषे अरु तिनका कार्य जे ब्रह्मलोकादि सर्व लोक अरु तदाश्रित स्थावर जंगमात्मक सर्वजीवप्रजा तिनकार्य्य भूतों बिषे "[1] यः सर्व्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्व्वाणि भूतानि मन्तरोयं

---

१ बृहदारण्य उ० अ० ५ में।

²सर्व्वभूतेषुचात्मानं, ³सर्वभूतस्थमात्मानं, ⁴भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य" इत्यादि श्रुतियों के वाक्य प्रमाणसे एक अपनेआप प्रत्यगात्मा को निर्विशेषतारूप से जानके साक्षात् अनुभवकर धीरजे बुद्धिमान् विवेकशाली आत्मदर्शी पुरुष है सो "प्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवन्ति" (अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति) [इस १७। लोकसे १८ उठके १९। अमर २०। होते हैं २१।] अर्थात् लोकैषणा से (कि जिस विषे वित्तैषणा अरु पुत्रैषणाका अन्तर भावहै; छूटके अमर होते हैं, अर्थात् सर्वरूपसे सर्वत्र एकअद्वैत प्रत्यगात्म भावका अनुभवकर तत्स्थितिपाय साक्षात् अमर अजर अभय ब्रह्मरूपही होते हैं। तथाच ॥ "⁵सयो ह वैतत्परमं ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ॥ १३। ५॥

इतिश्रीसामवेदीयतलवकारशाखीकेनोपनिषद्भाषाटीकायां द्वितियखंडः २॥

गुरुरुवाच हे शिष्य पूर्व प्रतिपादन किया जो "अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां।" यह श्रुतिवाक्य तिसके श्रवण से मंद बुद्धि मध्यम जिज्ञासुको संशय उत्पत्तिका अवकाश प्राप्त भया कि जो वस्तु होती है सो विज्ञात भी होती है प्रमाणोंकरके अरु जो वस्तु नहीं होती सो अविज्ञात शश शृंगवत् अत्यन्त असत् होती है ऐसा अनुमान कर पुनः बिचारता है कि श्रुतिने ब्रह्मको भी अविज्ञात प्रतिपादन किया है ताते ब्रह्म असत्यही क्यों नहो। हे शिष्य इसप्रकार मन्दबुद्धि जिज्ञासु पुरुषको ब्रह्म के अस्तित्व विषयक विकल्पात्मक व्यामोह न होय एतदर्थ आगे वेद भगवान् आख्यायिका का आरम्भ करते हैं अथवा सोई ब्रह्म कि जो सर्वप्रकार स्तुती करने योग्य है अरु देवताओं का परादेव

---

२ ईशावास्य उ० विषे। ३कैवल्य उ० विषे। ४ केन उ० विषे। ५ मुण्डक उपनिषद् के ३ मुण्ड विषे॥

ईश्वर का भी ईश्वर सो दुर्विज्ञेय है अरु सोई देवताओं को जय का असुरोंको पराजयका हेतु सो परमात्मा क्यों नहीं किन्तु सदा सर्वत्र सर्व को सिद्ध है इस अर्थ के बोधक श्रुति वाक्य आगे देखावें हैं अथवा ब्रह्मविद्याकी श्रेष्ठता प्रशंसाके अर्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भ करते हैं क्योंकि अग्नि इन्द्रादि देवताओंको केवल ब्रह्म विज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या बोधद्वारा सर्वांतर ब्रह्म बोधसे श्रेष्ठत्व अरु पूजनीयत्व प्राप्तभया है ताते ब्रह्म विद्याका महत्त्व सर्वोत्तम है॥ अथवा ब्रह्म अति दुर्विज्ञेय है ऐसा सर्वको अनुभव करावने के अर्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भहै क्योंकि अग्नि आदि देवता वीर्य्य विद्या, विज्ञान, तेज आदि श्रेष्ठ गुणों करके सम्पन्न हैं तथापि क्लेश करकेही ब्रह्म को ज्ञात करते भये अरु सर्व देवताओं का अधिपति ईश्वर होत सन्ते भी इन्द्र ब्रह्म के जानने में समर्थ न भया अरु ब्रह्मविद्या के विना प्राणियों को कर्तृत्वादि अभिमान है सो मिथ्याही है जैसे देवताओं ने सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमात्मा के महत्त्व को विनाही जाने असुरों के जय करने में अपना मिथ्याही अभिमान किया सो परिणाम में व्यर्थ भया तैसे इत्यादि तात्पर्य्य बोधनार्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भ करते हैं॥

ओंतत्सत्ब्रह्म॥

ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये[४] तस्य[५] ह[६] ब्रह्मणो[७] विजये[८] देवा[९] अमहीयंत[१०]। ते[११] ऐक्षन्त[१२]ास्माकम[१३]ेव[१४]ायं[१५] विजयो[१६]ऽस्माक[१७]मेवा[१८]यं[१९] महिमा[२०]ति[२१] ॥ १४-१ ॥

[पदान्वयः]

ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये[४] तस्य[५] ह[६] ब्रह्मणः[७] विजये[८] देवा[९] अमहीयंत[१०] ते[११] ऐक्षन्तः[१२] अस्माकं[१३] एव[१४] अयं[१५] विजय[१६] अस्माकं[१७] एव[१८] अयं[१९] महिमा[२०] इ[२१]ति ॥ १४-१ ॥

[पदार्थ]

ब्रह्म[१] सोई[२] देवताओं[३] के अर्थ विजय प्राप्त करताभया तिसे[५]

ही[९] परमात्मा[७]के विजय[८] में सर्वदेवता[९] महिमा[१०]को प्राप्त होतेभये सो[११] देखते[१२] भये हमारा[१३] ही[१४] यह[१५] विजय[१६] अरु हमारी[१७] ही[१८] यह[१९] महिमा[२०] है[२१] ॥ १४-१ ॥

[भावार्थ]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे शिष्य प्रजापति अपने जिज्ञासु प्रतिकहतेभये कि हे सौम्य पूर्व किसी एककाल में देवासुर संग्रामभया तहां असुरोंसे देवता जयप्राप्तकर कोई एक मेरुकिंवा । हिम शिखरादि स्थानमें विश्राम करते परमात्मशक्तिको न जान परस्पर विवाद करते भये । हे सौम्य "। ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये[४] ,।, ९ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये[४] ९[परमात्मा १ । सोई २ देवताओंके अर्थ ३। विजय प्राप्तकरताभया ४ ।] अर्थात् पूर्व विदित अविदितसे भिन्न सर्वप्रत्ययदर्शी अविषय निर्विशेष परमात्मा जो ,।, प्रतिबोधविदितं ,।, इस श्रुतिसे प्रतिपादन कियाहै सोई परमात्मा इंद्रादि देवताओं के अर्थ विजयप्राप्त करताभया ताते देवताओंके मध्य विजयका हेतु स्वयंआपही हैं तैसेही असुरोंके मध्य पराजयका हेतुभी हैं क्यों जो उस्से इतर शक्तिमान् कोई नहीं किसीसमय देवताओंमें जयशक्ति असुरोंमें पराजयशक्ति किसी समय असुरों में जयशक्ति देवताओं में पराजय शक्तिको प्रकटकर अपनी महिमाको आपही देखै है ,।,ॐसर्वस्य द्रष्टा ,।, सो परमात्मा देवता निमित्तकरके संग्राममेंअसुरोंको जीतताभया कैसेहैं वोअसुरजगत् के वैरी ईश्वर मर्य्यादा जो वर्णाश्रमादिकोंके धर्म्म कर्म्म उपासना आदि हैं तिनके विघातक तिनको जयकर्त्ता परमात्मा '।' तस्य[५] ह[६] ब्रह्मणो[७] विजये[८] देवा[९] अमहीयन्त[१०] ,।, ९तस्य[५] ह[६] ब्रह्मणः[७] विजये[८] देवा[९] अमहीयन्त[१०]? [तिस ५ही ६ परमात्माके ७ विजयमें ८ देवता ९ महिमाको प्राप्तहोते भये १० ।] अर्थात् जो देवताओंके निमित्त से धर्म्मविघातक असुरों का जयकर्त्ता जे सर्व महिमावान् परमात्मा तिसकी विजय महिमा में इंद्रादि सर्वदेवता सर्वत्र पूज्यादि महिमावान् होतेभये परन्तु जिस सर्वान्तर प्र-

त्यगात्मा सर्व शक्तिमान् परमात्मा जो सर्व को सर्व कर्मों का फलदाता है अरु जिसकी सत्ताके आश्रय सर्व जगत् की स्थिति पालना संहारादि व्यापार होता है तिस प्रत्यगात्मा की बिजय महिमा को न जानके "। त ऐक्षंतास्माकमेवायं विजयो स्माकमेवायं महिमे ति ।" (ते ऐ क्षंत अस्माकं एव अयं विजयः अस्माकं एव अयं महिमा इति ; [सो ।देखतेभये हमाराही यह विजय हमारी ही यह महिमाहै] अर्थात् सोअग्न्यादि देवता अग्नि आदि नामरूप शरीराभिमानी अपने आप कृत विजय महिमा को मान असत्य अभिमान कर परस्पर कहते भये कि हमहीं ने इन असुरों का जय किया है अरु हमारी ही यह सर्व विजय महिमा है। हे सौम्य इस प्रकार अग्न्यादि सर्व देवता सर्व शक्तिमान् प्रत्यगात्मविषयक अज्ञानवश असत्य अभिमान कर परस्पर वाद करते भये जो असुरों को हमने जय किया २। इस प्रकार अग्नि वायु इन्द्रादि देवता विजयफल की प्राप्ति में अपनाहीं पुरुषार्थ मानते भये परन्तु सर्वांतर जे प्रत्यगात्मा ईश्वर तिसका दिया विजय फल है तिसको न जानते भये १४। १॥

तद्धै षां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त कि मिदं यक्षमि ति १५। २॥

[पदान्वयः]

तत् ह एषां विजज्ञौ तेभ्यः ह प्रादुर्बभूव तत् न व्यजानंत किं इदं यक्षं इ ति १५। २॥

[पदार्थ]

सो निश्चय इनदेवताओंको जानताभया तिन देवताओं के अर्थ निश्चय प्रादुर्भूत होताभया तिसको न जानतेभये कौन यह पूजनीयहै ऐसा १५।२॥

भावार्थ मंत्र २ का

प्रजा० हे सौम्य "। तद्धैषां । विज ज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव ।,

तत् ह एषां विजज्ञौ तेभ्यः ह प्रादुर्बभूव; [सो१ । ई २ । इनदेवताओं को ३ । जानता भया ४ । तिन देवताओं के अर्थ ५ । निश्चय ६ । प्रादुर्भूत होता भया ७ ।] अर्थात् सोई परमात्मा जो सर्व प्रत्ययों का साक्षी निर्विशेष है सो निश्चय इन देवताओंको जे मिथ्याभिमानी हैं तिसको जानताभया वो सर्व का द्रष्टा है एतदर्थ देवताओं का मिथ्याभिमान समझ देवताओं पर कृपा करके कि मिथ्याभिमान करके ये देवता असुरवत् पराजय न पावें एतदर्थ मिथ्या अभिमान निवारण करके अनुग्रह करूं ऐसा विचार सर्व का प्रत्यगात्मा सर्व शक्तिमान् निर्विशेष अविषय ब्रह्म सो उन अग्नि आदि असत्याभिमानी देवताओं के हितार्थ जो परमात्मा बुद्ध्यादिकों का विषय न होत निर्विशेष सर्व का प्रकाशक है अपनी योग शक्ति निमित्त करके अति अद्भुत सर्व को विस्मयकारक अपूर्वरूप से इन्द्रादि देवताओं के दृष्टिगोचर होत प्रत्यक्ष होताभया परन्तु । " तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति" ,।, तत् न व्यजानंत किं इदं यक्षं इति ॥ [वो प्रादुर्भूत ब्रह्मतिसको८न९जानतेभये१०किकौन११यह१२पूजनीयहै१३ १४।]अर्थात् वो विशेषरूपसे प्रादुर्भूत जो निर्विशेष ब्रह्म तिसको देवता न जानके परस्पर कहतेभये कि हे भाई यह अपनी दृष्टिगोचर जो महा अद्भुत अपूर्व विस्मय कारक प्रकाशरूप पूजनीय कौनहै मत कोई असुरही मायारूपकरके पुनः अपने सन्मुख आयाहो इसको भली प्रकार से जानना योग्य है १५ । २ ॥

ते अग्नि मब्रुवन् जातवेद एतद्विजानी हि किमे तद्यक्षमि ति तथे ति १६ । ३ ॥

[पदान्वयः]

ते अग्निं अब्रुवन् जातवेद एतत् विजानी हि किं एतत् यक्षं इति तथा इ ति ३।६१ ॥

[पदार्थ]

सोदेवता[1] अग्निसे[2] कहतेभये[3] (कि) हेजातवेद[4] यह[5] ज्ञातकरो[6][7] कौन[8] यह[9] पूजनीय[10] है[11] तथा[12]ऽस्तु[13] १६ । ३ ॥

[भावार्थमंत्र तीसरेका]

प्रजा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार उस अति अद्भुत सविशेष ब्रह्म रूपको न जानके "। ते[1] अग्नि मब्रुवन्[3] ‹ते[1] अग्निं[2] अब्रुवन्[3]› ‹सो देवता १।अग्निसे २। कहतेभये ३। › अर्थात् उस सविशेष ब्रह्मको जाननेकी इच्छाकरते सर्वदेवता अग्निदेवसे कहतेभयेकि हे अग्नि ।"जात[4]वेदएत[5] द्विजानी[6] हि[7]" ।› जातवेदै[4] एतत्[5] विजानी[6] हि[7] › [हेजातवेद ४ । इसको ५ । ज्ञातकरो ६ । ७] अर्थात् हे जातवेद सर्व के जाननेवाले अथवा उत्पन्नभया है वेद जिस लोकादि अग्नि से सो कहिये ज्ञात वेद ऐसा जो तू है सो हम सर्व देवताओं के मध्य तेजस्वी अरुपराक्रमी है तातेइसको जो यह हम तुम सर्वके दृष्टिगोचर महाअद्भुत अपूर्व परमतेजवान् पूजनीय प्रतीत होता है तिसको सर्व रीति से ज्ञात करो जो "।"कि[8] मेतद्[9]यक्ष[10] मि[11] ति ,।, ‹किं[8] एतत्[9] यक्षं[10] इ[11] ति › [कौन ८ यह ९, पूजनीय है १०। ११]अर्थात् कौन यह महाप्रतापवान् अपूर्व पूजनीयहै। इसके समीपजाय भलीप्रकार ज्ञातकरो इस प्रकार जब सर्व देवताओं ने कहा तबवो अग्नि इन्द्रादि देवतासे "।" त[12]थेति[13] ,।, ‹ तथा[12] इ[13] ति ›[तथास्तु १ २ऐसाकहताभया१ ३] अर्थात् देवताओं के वाक्यको अंगीकार करताभया १६ । ३ ॥

तद[1]भ्य[2]द्रवत्त[3]मभ्य[4]वदत् को[5] ऽसी[6] ति[7] अग्नि[8] र्वा[9] [10]

अहमस्मी[11]त्य[12]ब्रवी[13]ज्जात[14][15]वेदा[16] वा[17] अहमस्मी ति[18] १७।४ ॥

[पदान्वयः]

तत्[1] अभ्यद्रवत्[2] तं[3] अभ्यवदत्[4] कः[5] असि[6] इति[7]। अब्रवीत्[8] अग्निः[9] वा[10] अहं[11] अस्मि[12] इ[13] ति वा[14] जातवेदा[15] वा अहं[16] अस्मि[17] इति[18] ॥

[पदार्थ]

सो[1] अग्नि जाता[2]भया सो[1]परमात्मा[3] प्रश्नकरताभया[4] (तू) कौन[5] है[6] इति[7] (तबअग्नि) कहताभया[8] अग्नि[9] नामकरके[10] मैं[11] हूं[12-13] अथवा[14] जातवेदा[15] मैं[16] हूं[17] इति[18] १७।४ ॥

[भावार्थ मन्त्रचौथेका]

प्रजा० हे सौम्य उक्तप्रकार सर्व देवताओं ने अग्नि से जब कहा तब "। तदभ्यद्रवत् ,।, { तत् अभिअद्रवत् } [सो१अग्नि जाताभया २ ।] अर्थात् अग्निदेव उस पूजनीय परमदेव के समीप जाताभया । परन्तु जिस ब्रह्मके ज्ञातके अर्थ गया तिसके समीप जातेही अपनी प्रगल्भतासे रहितहोय तूष्णी खड़ा रहा अर्थात् उस परमअद्भुत विशेष स्वरूपवान् परमात्मा के समीप उसकी परीक्षार्थ सर्व पुरुषार्थवान् अग्निगया सो उस परमशक्तिमान् सर्वज्ञ स्वयं प्रकाश परमात्मा के समीप जातेही प्रश्न शक्ति में रहित काष्ठवत् मौन होके खड़ारहा । तब "। तं द भ्यवदत् ,।, { तंत् अभि अवदत् } [वोपरमात्मा ३ प्रश्न करता भया ४ ।] अर्थात् सो सविशेष परमात्मा कि जिसकेपास अग्नि खड़ा है अपने समक्ष खड़ा जो अशक्तिमान् अग्नि तिस प्रति प्रश्न करताभया कि "। कोऽसीति ,।, { कः असि इति } [तू कौन ५ है ६-७ -] अर्थात् तू कौन है । एतना जब उसअद्भुत अपूर्व पूजनीयने प्रश्न किया तब उस प्रश्नद्वारा उत्तरप्रदान शक्ति पाय साभिमान अग्नि "। अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदावा अहमस्मीति ,।, { अब्रवीत् अग्निः वा अहं अस्मि इति वा जातवेदा अहं अस्मि इति } [कहताभया ८ अग्नि ९ मैं १० हूं ११ अथवा १२ जातवेदा१३।१४ मैंहूं १५ वस १६] अर्थात् वो साभिमान अग्नि कहता भया कि अग्नि नामकरके अरु जातवेदा विशेषण करके विख्यात जो प्रत्यक्षदेव सो मैं हूं १७।४ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्य मित्यपीदं छं सर्वं । दहेयं यं दिदं पृथिव्या मि ति १८ । ५ ॥

[पदान्वयः]

तस्मिन् त्वयि किं वीर्य्यं इति अपि इदं सर्वं दहेयं यत् इदं पृथिव्यां इति १८ । ५ ॥

[पदार्थ]

तिस तेरे बिषे क्या सामर्थ्य है एतना । निश्चय यह सर्व भस्म करताहों जो यह पृथिवी बिषे हैं सो १८ । ५ ॥

[भावार्थ मन्त्र५मेंका]

॥ प्रजा० ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार अग्नि ने साभिमानतापूर्वक जब उस पूजनीय परमात्मा प्रति अपने को नाम दो करके विख्यात कहा तब वो अभिमान नाशक सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ सविशेष परमात्मा कहता भया कि हे अग्नि "। तस्मि स्त्वयि किं वीर्य्यं "। (तस्मिन् त्वयि किं वीर्य्यं ; [तिस१। तेरे बिषे २ । क्या ३ । सामर्थ्य है ४ ।] अर्थात् तिस तेरे बिषे कि जो नामद्वय करके विख्यात हैं क्या सामर्थ्य है "। इति "। (इति ; [इसप्रकार ५ ।] जब परमात्मा ने अग्नि से पुनः प्रश्न किया तब वो साभिमानी अग्नि उत्तर देता भया कि "। अपीदं छं सर्वंदहेयं यं दिदं पृथिव्यामि ति "। (अपि इदं सर्वं दहेयं यत् इदं पृथिव्यां इति ; [निश्चय ६ । यह ७ । सर्व ८ । भस्म करता हों ९ । जो १० यह ११ । पृथिवी बिषे है १२ । सो १३ ।] अर्थात् पृथ्वी उपलक्षण करके सम्पूर्ण जगत् बिषे यावत् नाम रूपात्मक जो कुछ है तावत् सर्व को मैं भस्म करता हों ताते ब्रह्माण्ड दाहक सामर्थ्य मेरे बिषे है १८ । ५ ॥

तस्मै तृणं निदधावे तं दहे ति तदुपप्रेयाय ॥ सर्व जवेन तं न शशाक दग्धुं स तत एव निवव्रृते नै तं दशकं विज्ञातुं यदे तद्यक्ष मि ति ॥ १९ । ६ ॥

[पदान्वयः]

तस्मै तृणं निदधौ एतत् दह इति तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् दग्धुं न शशाक सः ततः एव निववृते न एतत् अशकं विज्ञातुं यत् एतत् यक्षं इति १६ । ६ ॥

[पदार्थ]

तिस अग्नि के समक्ष तृणं धरताभया (अरु कहा) इसको दहनकरो तब (सो अग्नि) तृण समीपजायके सर्व पुरुषार्थ करके उस (तृणको)दग्ध करनेके न शक्तिमान् होताभया (तब) सो अग्नि उस यक्षके समीपसे भी फिरताभया (अरु कहा कि) नहीं इसको जाननेको (हम) शक्तिमान् जो यह पूजनीय कौन है १६ । ६ ॥

[भावार्थ मन्त्र छठे का]

॥ प्रजा० ॥ हे सौम्य जिस परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामीकी सत्ताके लवलेशको पायके अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके दहन करने में सामर्थ्यवान् है तिसको साक्षात् बिशेषरूपसे अपने समक्ष न जानके अभिमान पूर्वक अपना सर्व दाहक सामर्थ्य सूचितकिया तब ॥ "। तस्मै । तृणं । निदधावेतद्दहे ति । " (तस्मै तृणं निदधौ एतत् दह इति) [तिसके समक्ष १। तृण २। धरताभया ३। यह ४। दहनकरो ५-६।] अर्थात् उसपरम पूजनीय परमात्मा ने तिस साभिमान अग्निके समक्ष एक सूखातृण रक्खा अरु कहा कि हे अग्ने जो तेरे बिषे सर्व ब्रह्माण्ड दाहक शक्ति है तो तुम यह तृण जो तुम्हारे समक्ष रक्खाहै तिसको दहनकरो अरु जो इसको दहन न करो तो सर्व दाहकत्व अभिमानको परित्याग करो । इसप्रकार जब उस परमात्माने उस साभिमान अग्निसे कहा तब अग्नि । " तदुपप्रेयाय सर्वजवेन त न्न शशाक दग्धुं " । (तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् न शशाक दग्धुं) [उसतृण ७। समीप जायके ८। सर्व पुरुषार्थ करके ९ तिस तृणको १०। दग्धकरने बिषे ११ न १२ शक्तिमान् होताभया १३] अर्थात् उस

तृणसमीपअपने सर्वउत्साह पुरुषार्थ सहितजाय सर्वप्रकार उस तृणकोदग्धकरनेके अर्थ अनेक रीत्या पुरुषार्थ करताभया तथापि उसतृणको दग्धकरनेको शक्तिमान् न भया। हे सौम्य जब उस ब्रह्मदत्त तृणको दग्धकरनेमें वो जातवेदा अग्नि किसीप्रकार। समर्थ न भया तब हत प्रतिज्ञहोय लज्जा संयुक्त "। सँ तँते ऐंव निवँवृते"। (सँः तँतः एँव निवँवृते) [सो अग्नि १४। उसके समीप से १५। भी १६। फिरता भया १७।] अर्थात् सो अग्नि जो दाहक सामर्थ्यका अभिमानीरहा उसपरम पूजनीय ब्रह्मके समीपसे भी फिर जाय देवताओं से यह कहता भया कि। "नै तदशकं विज्ञातुं य देतद्यक्ष मि ति"। (न एतत् विज्ञातुं अशकं यत् एतत् यक्षं इ ति) [नहीं १८। इसको १९। जाननेको २०। शक्तिमान् २१। जो २२। यह २३। पूजनीय २४। कौनहै २५।] अर्थात् नहीं है इसको भलीप्रकार जानने को सामर्थ्यवान् हम कि जो यहपरम पूजनीय महाशक्तिमान् कौनहै १९। ६॥

अथवायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमि ति तथे ति २०। ७॥

[पदान्वयः]

अथ वायुं अब्रुवन् वायो एतत् विजानीहि किं एतत् यक्षं इ ति तथा इ ति २०। ७॥

[पदार्थ]

तिसके अनन्तर वायुसे कहतेभये हे वायु यह ज्ञातकर निश्चयकरो कौन यह पूजनीय है तथाऽस्तु इ ति २०। ७॥

[भावार्थ मन्त्रसातवेंका]

प्रज्ञा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब अग्निने उसपरम पूजनीय सविशेष महाशक्तिमान् परमात्माके समीपसे लज्जावान् होय देवताओं के समीप आयकहा कि मैं उसयक्षके जाननेमें

समर्थ नहीं जो यह कौनहै तब "। अथवायुमब्रुवन् ।" { अथ वायुं अब्रुवन् } [तिसके अनंतर १। वायुसे २। कहते भये ३।] अर्थात् तिसके अनंतर सर्व देवता वायु देवसे कहतेभये कि "वायवेतद्विजानीहि ।" { हे वायो एतत् विजानीहि } [हे वायु ४। यह ५। ज्ञातकरके ६। निश्चयकरो ७।] अर्थात् हे वायु देव यह अपूर्व अद्भुतस्वरूपसे जो अपनी दृष्टि गोचर स्थित अरु जिसके समीपसे अग्नि निवृत्त भयाहै तिसको आप ज्ञातकरके निश्चयकरो जो "। किमेतद्यक्षमिति ।" { किं इदं यक्षं इति } [कौन ८। यह ९। पूजनीय है १०। बस ११।] अर्थात् कौन यह महाप्रकाशवान् अद्भुतरूपसे प्रकट पूजनीयहै तिसको । हे सौम्य इसप्रकार जब सर्व देवताओंने वायुदेवसे कहा तब वायु "। तथेति ।" { तथा इति } [तथास्तु १२ ऐसाकहताभया १३।] अर्थात् देवताओंके वाक्यको अंगीकार करताभया २०।७॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति । वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति २१। ८ ॥

[पदान्वयः]

तत् अभि अद्रवत् तं अभिअवदत् कः असि इति अब्रवीत् वायुः वा अहं अस्मि इति वा मातरिश्वा अहं अस्मि इति २१।८

[पदार्थ]

वोवायु जाताभया सोपरमात्मा प्रश्न करताभया तू कौन है इति (तब वायु) कहताभया वायु नामकरके मैं हूं अरुमातरिश्वा मैं हूं इति २१।८॥

[भावार्थ]

प्रज्ञा० हे सौम्य उक्त प्रकार जब देवताओंने वायु देवसे कहा तब तथास्तु कहके "। तदभ्यद्रवत् ।" { तत् अभिअद्रवत् } [वो वायु १। जाताभया २।] अर्थात् देवताओं से तथास्तु

कहके वायु देवता उस पूजनीय परमदेवके समीप जाता भया। परंतु जिस परमात्मा के विज्ञानार्थ गया तिसके समीप जाते ही अग्निवत् प्रश्नादि शक्तिसे रहित तूष्णीं खड़ारहा तब "। तमभ्यवदत् "। १ तं अभिअवदत् २ [वो सविशेष परमात्मा ३। प्रश्नकरता भया ४।] अर्थात् वो देवहितार्थ विशेष रूप धारण किये जे निर्विशेष परमात्मा सो उस अशक्तिमान् वायु प्रति प्रश्नकरता भया कि तू "। कोऽसीति "। १ कः असि इति २ [कौन ५। है ६-७] इस प्रकार उस सविशेष परमात्माने प्रश्न किया तब वो वायु प्रश्नद्वारा उत्तर प्रदान शक्तिपाय कहताभया "। वायुर्वा अहमस्मी त्यब्रवीत् "। १ अब्रवीत् वायुः वा अहं अस्मि इति २ [कहताहुआ ८। वायु ९। नामा १०। मैं ११। हूं ४।५] अर्थात् वायु नाम करके जे विख्यात देवता सो मैं हूं "। मातरिश्वा वा अहमस्मी ति "। १ वा मातरिश्वा अहं अस्मि इति २ [अथवा १४। मातरिश्वा १५। मैं १६। हूं १७। इति १८।] अर्थात् अंतरिक्षमें चलने वाला ताते मातरिश्वा इस विशेषण से विख्यात जो देवता सो मैं हूं इति २१।८

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्य मित्यपीदꣳसर्व माददीय यदिदं पृथिव्यामिति २२।९॥

[पदान्वयः]

तस्मिं त्वयि किं वीर्य्यं इति अपि इदं,सर्वम् आददीय यत् इदं पृथिव्यां इति २२।९॥

[पदार्थ]

तिसे तेरे बिषे क्या सामर्थ्य है इति निश्चय यह सर्व धारणकररहाहों जो यह पृथिवी बिषे है तिसको २२।९॥

[भावार्थमन्त्रनवमेका]

प्रज्ञा० हे सौम्य उक्त प्रकार जब साभिमानता पूर्वक वायुने

उत्तर दिया तब परमशांत परमात्मा गम्भीर स्वरसे पुनः प्रश्न करताभया कि हे वायु "। तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यं ।" { तस्मिं त्वयि किं वीर्यं } [तिस १। तेरेबिषे २। क्या ३। सामर्थ्य है] अर्थात् तिस तेरे विषे कि जो नाम दो करके विख्यात हैं क्या सामर्थ्य हैं "। इति ।" { इति } [सो कहो ५।] इसप्रकार जब परमात्माने सामर्थ्य विषयक प्रश्न किया तब वो साभिमान वायु उत्तर देताभया कि ।" अपी दंग्वं सर्वं माददीयं ।" { अपि इदं सर्वं आददीयं } [निश्चय ६। यह ७। सर्व ८। धारण करताहौं ९।] अर्थात् निश्चयकरके इससर्वको मैं धारण करता हौं ।" यदि दं पृथिव्या मिति ।" { यत् इदं पृथिव्यां इति } [जो १०। यह ११। पृथिवी विषे हैं १२। सो १३।] अर्थात् पृथिवी उपलक्षणकरके यावत् ब्रह्माण्डहैंतावत् सर्वको मैं धारण करताहौं। जैसे सूत्रमणि गणकोतैसे। अरु सर्वके उड़ावनेमें भी समर्थहौं इति २२। ९॥

तस्मै तृणं निदधावे तदा दत्स्वे ति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तं न्न शशाका दातु स तत एव निवृत्ते नै तद शकंविज्ञातुं यदे तद्यक्ष मिति २३।१०॥

[पदान्वयः]

तस्मै तृणं निदधौ एतत् आदत्स्व इति तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् आदातुं न शशाक सः ततः एव निवृते न एतत् विज्ञातुं अशकं यत् एतत् यक्षं इति २३। १०॥

[पदार्थ]

तिसको तृणं धारताभया (अरुकहा) यह उठाओ तब सो वायु समीपजायके सर्व पुरुषार्थकरके उस तृणको उठावनेको न शक्तिमान् होताभयो (तब) सोवायु उस यक्ष समीपसे भी फिरताभया (अरु कहा कि) नहीं इसको जाननेको शक्तिमान् (हम) जो यह पूजनीय कौन है २३। १०॥

[भावार्थमन्त्रदशमेंका]

प्रजा० हे सौम्य जिस चैतन्य परमात्माके बल सत्ताके लवलेशको पाय वायु सर्व ब्रह्माण्डके धारने भ्रमावने में समर्थ हैं तिसको स्वसमक्ष में न जानके उसके आगे अपना सामर्थ्य साभिमानतासे सूचित किया तबवो अभिमान नाशक परमात्मा "।तस्मै[1] तृणं[2] निदधाव[3]"। { तस्मै तृणं निदधौ } [तिसको १। तृण २। धरताभया ३।] अर्थात् उससाभिमान वायुके समक्ष एक सूखा तृण धरके कहा कि हे वायु "। एतद्[4] आदत्स्वे[5] ति[6] "। { एतत् आदत्स्व इति } [यह ४। उठाओ ५। बस ६।] अर्थात् यह जो तुम्हारे समक्ष सूखा तृण है तिसको उठाओ वा भ्रमाओ। अरु जो इसको न उठाओ तो अपने नाम द्वय सहित ब्रह्माण्ड धारक अभिमानको त्यागकरो इसप्रकार जब उस गर्ब नाशक परमात्माने कहा तब वो वायु "। तद्[7]उपप्रे[8]याय सर्वजवे[9]न तन्न[10,12] शशाका[13] दातुं[11]।" { तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् आदातुं न शशाक } [उसतृण ७। समीप जाय ८। सर्व पुरुषार्थ करके ९। तिस तृणको १०। उठावनेबिषे ११। न १२। शक्तिमान् होता भया १३।] अर्थात् उसतृण समीप अपने सर्व उत्साह पुरुषार्थ सहित जाय उसतृणको उठावने के अर्थ अनेक प्रकार पुरुषार्थ करताभया तथापि उस तृणको उठावने बिषे न शक्तिमान् होता भया। हे सौम्य जब उस ब्रह्मदत्त तृणको उठावने बिषे वो मातरिश्वा वायु किसी प्रकार समर्थ न भया तब हत प्रतिज्ञ होय लज्जा संयुक्त "। स[14] तत[15] एव[16] निववृते[17]।" { सः[14] ततः[15] एव[16] निववृते[17] } [सो वायु १४। उसके समीप से १५। भी १६। फिरताभया १७।] अर्थात् सो वायु जो ब्रह्माण्ड धारक अभिमानका धारकरहा उस परमपूजनीय ब्रह्मके समीप से भी फिरजाय देवताओंसे कहताभया कि "।नै[18]त[19] दशकं[18] वि-ज्ञातुं[20] यदे[22]तद्य[23]क्ष[24]मिति[25]।" { एतत्[19] विज्ञातुं[20] न[18] अशकं[21] यत्[22] एतत्[23] यक्षं[24] इति[25] } [इसको १९। जाननेको २०। नहीं १८।

हम शक्तिमान् २१ । जो २२ । यह २३ । पूजनीय २४ । कौन है २५] अर्थात् इसको भलीप्रकार जानने को नहीं हैं हम शक्तिमान् जो यह परमपूजनीय महाशक्तिमान् कौनहै २३।१०॥

अथेंद्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमितितथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे २४।११॥

[पदान्वयः]

अथ इंद्रं अब्रुवन् मघवन् एतत् विजानीहि । किं एतत् यक्षं इतितथा इति तत् अभिअद्रवत् तस्मात् तिरोदधे २४।११

[पदार्थ]

तिसके अनन्तर इंद्रसे कहतेभये हे मघवा यह ज्ञातकर निश्चयकरो कौन यह पूजनीय है बसे तथास्तु इ तिसोइन्द्र जाताभया इंद्रसे तिरोधान होताभया २४ । ११ ॥

[भावार्थमन्त्रग्यारहमेंका]

प्रजा० हे सौम्य कहे प्रकार जब वायुदेव भी उसपरमात्मा के समीप से लज्जावान्हो देवताओं के पास आया अरु कहा कि मैं उसके जानने में समर्थ नहीं तब ।"अथेंद्रं मब्रुवन्" । { अथ इंद्रं अब्रुवन } [तिसके अनन्तर १ । इन्द्रसे २ । कहते भये ३ ।] अर्थात् सर्व देवता अपने अधिपति इन्द्रसे प्रार्थनाकरतेभये कि " मघवन्नेतद्विजानीहि "। { मघवन् एतत् विजानीहि } [हे मघवा ४ । यह ५ । विज्ञातकर ६ । निश्चय करो ७ ।] अर्थात् हे मघवा आप हमारे राजा बल बुद्धि तेज करके सम्पन्नहो ताते इस महाअद्भुत परम पूजनीय को कि जिसके समीपसे अग्नि अरु वायु बिनाहीं उसके जाने लज्जावान्हो फिर आये हैं तिसको भलीप्रकार जानके निश्चय करिये जो " किमेतद्यक्षमिति " । { किं एतत् यक्षं इति } [कौन ८ । यह ९ । पूजनीय है १० । इति ११ ।] अर्थात् अपने समक्ष कौन यह महाशक्तिमान् परम पूजनीय है । हे सौम्य इसप्रकार जब

सर्व देवताओंने अपने अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना किया तब इन्द्र ने कहा "। तथे[12] ति[13]। " (तथा[12] इति[13]) [तथास्तु] अर्थात् इंद्र तथास्तु कहके "। तदभ्यद्रवत् "। (तत्[14] अभिअद्रवत्[15]) [सो १४। जाताभया १५] अर्थात् सो देवराज इंद्र उस परम पूजनीय परमात्माके समीप जाताभया। हे सौम्य जब वो इंद्र अपने देवराज्याभिमान युक्त उस पूजनीय ब्रह्मके समीप गया तब वो सविशेष ब्रह्म "। तस्मा[16]त्तिरोदधे[17]। " (तस्मात्[16] तिरोदधे[17]) [तिस कारण से १६। तिरोधान होताभया १७।] अर्थात् जब इन्द्र साभिमानता से ब्रह्मके समीप आवनेलगा तिस कारणसे वो सविशेष ब्रह्म इंद्रके समक्षसे तिरोधान होताभया २४। ११॥

स[1] तस्मि[2]न्नेवा[3]काशे[4] स्त्रिय[5]माजगाम[6] बहुशोभमाना[7]मुमां[8] हैमवतीं[9] तां[10]होवाच[11][12] कि[13]मेतद्यक्ष[14][15]मिति[16] २५। १२॥ इति तृतीयखण्डः ३॥

[पदान्वयः]

सः[1] तस्मिन्[2] एव[3] आकाशे[4] स्त्रियं[5] आजगाम[6] बहुशोभमानां[7] उमाम्[8] हैमवतीं[9] तां[10] ह[11] उवाच[12] किं[13] एतत्[14] यक्षं[15] इति[16] २५। १२॥ इति तृतीय खण्डः ३॥

[पदार्थ]

सोइन्द्र[1] तिसे[2] ही[3] अवकाशमें[4] स्त्रीको[5] प्राप्तभया[6] सर्वशोभाओं की शोभाकरनेवाली[7] उमानाम्नी[8] हेमाभरणयुक्त[9] तिससे[10] ही[11] कहताभया[12] कौन[13] यह[14] पूजनीय[15] था[16]। इति॥

[भावार्थ मन्त्र १२ में का]

प्रज्ञा० वो सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमदयालु ब्रह्म सो देवराज इन्द्रका देवराजत्वादि असत्य अनात्म अभिमान दूरकरनेके अर्थ इन्द्रके समक्ष से तिरोधान भया तब "। स[1] तस्मि[2]न्नेवा[3]काशे[4]। " (सः तस्मिन् एव आकाशे) सो इन्द्र १। तिस २। ही ३। अवकाशमें ४।] अर्थात् सो देवराज इन्द्र जो उस यक्ष ब्रह्मके वि-

ज्ञानार्थ गया सो तिसही अवकाशमें कि जहां वो पूजनीय पर-मात्मा प्रकटहोके अन्तर्द्धान होगया तिसकाल में इन्द्र जिस अवकाशमें खड़ारहा तहांहीं स्थितहो बिचार करनेलगा कि जो अद्भुत रूपसे हम सर्वके समक्ष प्रकटहो पुनः तिरोधान होगया सो परम पूजनीय कौनथा अग्नि अरु वायु से तो उसने संभा-षण भी किया अरु हम जो देवराज तिसके आवतेही तिरोधान होगया एतदर्थ हम् देवराज से तो वो अग्नि वायुकि जिसका उस परमदेव साथ सम्भाषण भया सोई श्रेष्ठ है । अरु अब हम उस परम पूजनीयका दर्शन कैसे करें उसका दर्शन करनाभी अवश्यहै सो वो अपनी कृपा शक्तिकर दर्शनदेगा । हे सौम्य इत्यादि प्रकारसे इंद्र उसी स्थानपर स्थितहो सर्व अहंकार त्यागके विचारनेलगा तब सर्वांतर्यामी सर्वज्ञ भगवान् परमात्मा इंद्रकी भक्ति अपने विषे अधिक देख पुनः इंद्र " स्त्रियमाजगाम " (स्त्रियं आज-गाम) [स्त्रीको ५ । प्राप्तभया ६ ।] अर्थात् स्त्री देवीके स्वरूप से प्रकट भई तिसके समीप प्राप्तभया अर्थात् इंद्रको उपदेश क-रने के अर्थ साक्षात्परमात्मा ब्रह्म विद्यारूपसे प्रकट होताभया सो कैसी हैं वो ब्रह्म विद्या " बहुशोभमानां " (बहुशोभमाना) [बहुत शोभावान् हैं ७ ।] अर्थात् सम्पूर्ण शोभावान्को शोभा करने वाली क्योंकि यावत् विद्याहै तावत् सर्व शोभाकरनेवाली शोभा रूपहैं सो भी सर्व ब्रह्म विद्याकरके शोभावती हैं । तथाच " ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठां " । बिना ब्रह्म विद्याके यावत् वि-द्याहैं तावत् सर्व अशोभित अविद्याहैं ताते सर्व शोभाओंकी शोभा ब्रह्म विद्या हैं सो " उमां हैमवतीम् " (उमां हैमवतीम्) [उमानामा ८ । हेमवती हैं ९ ।] अर्थात् इंद्रके समक्ष जो प-रमात्मा देवी रूपसे प्रकट भया सो देवी उमानाम्नी ब्रह्मविद्या हैं उसीसे इंद्रादि सर्वको ब्रह्मज्ञानभयाहै सो उमा कैसी हैं सुवर्ण के आभूषणादि करके भूषित हैं । अथवा उमा जो हैं सो हिमा-लय पर्वतपर अति शोभनीय रूपसे ब्रह्म उपदेशार्थ इंद्रके समक्ष

प्रकट भई ताते उसको हैमवती (पार्वती) नामसे कहते हैं एतदर्थ पार्वती साक्षात् ब्रह्मविद्या नित्यही अपने विशेष स्वरूपसे विशेष स्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ सच्चिदानन्द सदा शिवके समीपवर्त्ती हैं अर्थात् शिवपार्वती साक्षात्परमात्माकाही विशेष रूपहैं ताते सर्व मुमुक्षुकरके अवश्य उपासनीय हैं । हे सौम्य ऐसी जे उमानाम्नी ब्रह्मविद्या " तां हो वाच किं मे त द्य क्ष मिति " । (तां ह उवाच किं एतत् यक्षं इति) [तिस्से १० । निश्चयकरके ११ । प्रश्न करताभया १२ । कौन १३ । यह १४ । पूजनीय १५ । था १६ ।] अर्थात् तिस ब्रह्म विद्यासे इंद्र प्रश्न करता भया कि हे देवी कौन यह हमारे समक्ष पूजनीयथा जो तिरोधान होगया सो २५ । १२ ॥ इति तृतीयखंडः ३ ॥

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति २६ । १ ॥

[पदान्वयः]

सा ब्रह्म इति ह उवाच ब्रह्मणः वा एतत् विजये महीयध्वं इति ततः एव ह ब्रह्म इति विदांचकार २६ । १ ॥

[पदार्थ]

निश्चय वो उमा (इंद्रके प्रति उस यक्षको) ब्रह्म ऐसा कहतिभई ब्रह्म हीके विजयमें इस महिमाको प्राप्तहौ इसकारणसे उस उमाके वचनसे ही निश्चयसे (इंद्र उस यक्षको) ब्रह्म ऐसा जानताभया २६ । १ ॥

[भावार्थचतुर्थखंडमन्त्र १ का]

प्रजा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब देवराज इंद्र अपने देवराजत्वादि असत्य अभिमानसे रहित ब्रह्म जिज्ञासाकरके उस उमानाम्नी ब्रह्मविद्या साक्षात् ब्रह्मावतार से प्रश्नकरताभया कि जो हमारे समक्ष से तिरोधानभया वो पूजनीय कौनथा तब " सा ब्रह्मे ति हो वाच " । [हे सा ब्रह्मइति

उवाच) [निश्चय १ । वोउमा २ । ब्रह्म ३ । ऐसा ४ । कहतिभई ५।] अर्थात् इंद्रके प्रश्नके उत्तरमें निश्चय करके वो उमानाम्नी साक्षात् ब्रह्मविद्या इंद्रके प्रति उसयक्षको कि जिस विषयक इंद्रका प्रश्नहै तिसको साक्षात् ब्रह्महै ऐसा उपदेश करतीभई, अर्थात् हे इंद्र जिसपूजनीय के अर्थ तुम्हारा प्रश्नहै वो साक्षात् ब्रह्महीहै अरु "। ब्रह्मणोवाँ एतद्विजये महीयध्वं "। (ब्रह्मणः वाँ विजये एतत् महीयध्वं) [ब्रह्म ६। हीके ७। विजयमें ८। इस ९। महिमाको प्राप्तहौं १०।] अर्थात् हे इंद्र उस ब्रह्महीके विजयमें तुम इसविजयादि महिमाको प्राप्तभये हौ क्योंकि उस ब्रह्मपरमात्मानेहीं सर्व असुरोंका जयकियाहै उसकेविजयमें तुम देवता केवल निमित्तमात्रहीहौ अरुतिस निमित्तमात्रत्वसेही तुमको यह महिमा प्राप्तभई है ताते पूर्व जो तुमने यह अभिमान किया कि "। अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महीमेति "। हमाराही यह विजयअरु हमारीही यह महिमाहै । सो तुम्हारा अभिमान मिथ्या है । हे सौम्य इसप्रकार जबउस ब्रह्मविद्याने इंद्रको ब्रह्मका उपदेश किया "। इति ततो है व विदांचकार ब्रह्मेति "। (इति ततः एव ह ब्रह्म इति विदांचकार) [इसकारणसे ११। उमाके बचनसे १२। ही १३। निश्चयसे १४। (इंद्र) ब्रह्म १५। ऐसा १६। जानताभया १७। इसकारण सेही उस उमानाम्नी ब्रह्मविद्याके उपदेशात्मक वचनसेही निश्चय पूर्वक इंद्र उसयक्षको साक्षात् ब्रह्मही हैं ऐसा जानता भया २६ । १ ॥

हे शिष्य तात्पर्य्य यह है कि अहंकारादि आसुरी सम्पदाकी अशेष निवृत्तिबिना ब्रह्मउपदेश होता नहीं ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् । यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति २७ । २ ॥

[पदान्वयः]

तस्मात् वा अन्यान् देवान् एते देवा अतितरां इव यत् अग्निः वायुः इन्द्रः ते हि एनत् नेदिष्ठं पस्पर्शुः ते हि एनत् ब्रह्म इति प्रथमः विदांचकार ॥ २७ । २ ॥

[पदार्थ]

तिस्से ही अन्य देवताओंसे ए देवता अतिशय विशिष्टवत् हैं जिस्से अग्नि वायु इन्द्र वे ही इस समीपस्थ (ब्रह्म को) स्पर्शकरतेभये वे ही इसको ब्रह्म ऐसो प्रधानहुये जानतेभये ॥ २७ ॥ २ ॥

[भावार्थ मन्त्र २ का]

प्रजा० हे सौम्य जिस्से अग्निवायु इंद्र ये देवता ब्रह्मके सम्वाद दर्शनादि रूप कारणसे ब्रह्मके समीपप्राप्तभये " तस्माद्वा एते देवा अतितरामिव अन्यान्देवान् " (तस्मात् वा अन्यान् देवान् एते देवा अतितरां इव) [तिस्से १ । ही २ । अन्य ३ । देवताओं से ४ । ये ५ । देवता ६ । अतिशय विशिष्ट ७ । वत् हैं ८ । अर्थात् और जे वरुण कुबेर यमादि देवता हैं तिन देवताओं से ये अग्नि आदि देवता ब्रह्मके दर्शन सम्बाद स्पर्शादि करने से धन पुरुषार्थ गुण ऐश्वर्य्यादि करके अधिक तर हैं "यदग्नि वायु रिन्द्र स्ते ह्ये नन्नेदिष्ठं पस्पर्शुः " (यत् अग्निः वायुः इन्द्रः ते हि एनत् नेदिष्ठं पस्पर्शुः) [जिस्से ९ । अग्नि १० । वायु ११ । इन्द्र १२ । वे १३ । ही १४ । इस १५ । समीपस्थ १६ । (ब्रह्मको) स्पर्श करतेभये १७ ।] अर्थात् जिस कारण से अग्नि वायु इन्द्र वेही इस समीपस्थ ब्रह्मको अर्थात् जो निर्विशेष परमात्मा ज्ञान बिना " दूरात् सुदूरे " दूरसे भी दूर हैं सो देवताओं के हितार्थ एक विस्मय कारक अद्भुत अपूर्व रूपसे देवताओंके समीप प्रकटभया तिस समीपस्थ ब्रह्मको । अथवा जो सर्व के समीप बुद्धिरूपी गुफा बिषे सर्वका प्रत्यगात्माहै सो देवताओं के हितार्थ वाह्यप्रदेशमें अद्भुत विशेष

रूपसे प्रकटभया ताते इस समीपस्थ ब्रह्मको ब्रह्मदत्त तृण अरु सम्भाषण द्वारा स्पर्श करतेभये अरु "। ते हि नेत् प्रथमो विदांचकार ब्रह्मे ति "। { ते हि एनत् ब्रह्म इति प्रथमः विदांचकार } [वे १८ । ही १९ । इसको २० । ब्रह्म २१ । ऐसा २२ । प्रधानहुये २३ । जानते भये २४ ।] अर्थात् वेही अग्नि वायु इन्द्र जो ब्रह्मका दर्शन स्पर्शन करतेभये सोई इस सविशेष पूजनीय को ब्रह्मही है ऐसा सर्व ब्रह्मवेत्ताओं में प्रधान हुये जानते भये २७ । २ ॥

तस्मा द्वा इन्द्रो ऽतितरामिवा न्या न्देवान् स ह्ये नं न्नेदिष्टं पस्पर्शः स ह्ये नत् प्रथमो विदांचकार ब्रह्मे ति " २८ । ३ ॥

[पदान्वयः]

तस्मात् वा अन्यान् देवान् इन्द्रः अतितरां इव स ही एनत् नेदिष्टं पस्पर्शः स हि एनत्प्रथमःब्रह्मइति विदांचकार २८।३

[पदार्थ]

तिस्से ही अन्य देवताओंसे इन्द्र अतिशय विशिष्टके तुल्यहैं वो ही इस समीपस्थका स्पर्शकरताभया वो ही इसको प्रधानहुआ ब्रह्म ऐसा जानताभया २८ । ३ ॥

[भावार्थ मन्त्र ३ का]

प्रजा० जिस्से अग्नि वायु जो अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं सोभी इन्द्र के वाक्यसेही उस यक्षकों कि जिसके समीप गये अरु सम्भाषण किया अरु जिसके दियेहुये तृणको जलावने उठावने विषे असमर्थ भये तिसको ब्रह्म हैं ऐसा जानतेभये । अरु इन्द्रने सर्वसे प्रथम उमानाम्नी ब्रह्मविद्याके वाक्यसे उसयक्षको ब्रह्मही हैं ऐसा श्रवण करके अग्नि वायु से कहा "तस्माद्वा इंद्रो ऽतितरा मिवान्यान् देवान् "। { तस्मात् वा अन्यान् देवान् इंद्र अतितरांइवं } [तिस्से १ । ही २ । अन्य ३ । दवताओं से ४ । इंद्र ५ ।

अतिशय विशिष्टके ६ । तुल्य हैं ७ ।] तिसकारणसे अर्थात् साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मविद्याके वाक्य करके सर्व से प्रथम ब्रह्मको जाना तिसकारणसेही अन्य सर्व देवताओं से श्रेष्ठ जे अग्नि वायु तिनसे भी इंद्र अतिशय विशिष्टके तुल्य अर्थात् विशेष धन विद्या ज्ञान गुण राज्यादि वैभव करके सम्पन्नहैं । अरु "स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श" ॥ { स हि एनत् नेदिष्टं पस्पर्श } [वो ८ । ही ९ । इस १० । समीपस्थका ११ । स्पर्श करताभया १२ ।] अर्थात् वोही इंद्र जो सर्वसे अधिक राज्यादि महिमावान् हैं सो इस समीपस्थ जो उमानाम्नी ब्रह्मविद्या साक्षात् ब्रह्ममूर्त्ति है तिस्से उपदेशद्वारा उस परम पूजनीयका बोध रूपसे स्पर्श करताभया । अरु "स ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति" ॥ { स हि एनत् ब्रह्म इति प्रथमः विदांचकार } [वो १३ । ही १४ । इसको १५ । ब्रह्महैं १६ । ऐसा १७ । प्रधानहुआ १८ । जानताभया १९ ।] अर्थात् वोही इन्द्र उमाके उपदेश से इस परम पूजनीय सविशेष को जो कि अति अद्भुतरूपसे विद्युतवत् प्रकटहो तिरोधान भया तिसको साक्षात् ब्रह्महीं हैं ऐसासर्व ब्रह्मवेत्ताओं में प्रधानहुआ जानताभया २८ । ३ ॥ ओंतत्सत् ॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा इतीति न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् २९ । ४ ॥

[पदान्वयः]

तस्य एष आदेशः यत् एतत् विद्युतः व्यद्युतत् आ इति न्यमीमिषत् आ इति अधिदैवतं इति २९ । ४ ॥

[पदार्थ]

तिसका यह आदेश है जो यह विद्युत के वियोतनकरने के तुल्य है यह आदेश हैं (अरु) चक्षुके निमेष करने के तुल्य हैं यह आदेश हैं अधिदैवत इति ॥

[भावार्थ मन्त्र ४ का]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे सौम्य अब उस निरुपम परमात्माका उपमाद्वारा जो उपदेशहै सोभी श्रवणकरो "। तस्यै[1] षे[2] आदेशो[3] " (तस्य[1] एष[2] आदेशः[3]) [तिसका १ । यह २ । आदेश है ३ ।] अर्थात् तिस निर्विशेष निरुपम परमात्मा का उपमाकरके यह आदेश है ॥

प्रश्न हे भगवन् क्या आदेश है ॥

उत्तर हे सौम्य "। यँ[4] देताद्विद्युतो[5][6] व्यद्युत[7] दा[8] इति[9][10] " (यत्[4] एतत्[5] विद्युतः[6] व्यद्यु[7] तत्[8] आ[9] इति[10]) [जो ४ । यह ५ । विद्युतके ६ । विद्योतनकरनेके ७ । तुल्य है ८ । यह आदेश है ९ ।] अर्थात् हे सौम्य जैसे लोक बिषे जो यह प्रत्यक्ष मेघाविष्ट विद्युत (बिजली) चमकद्वारा अपने को प्रकट देखायकर तिरोधान होजाति है । तैसेही वो परमपूजनीय सर्वशक्तिमान् परमात्मा देवताओं के समक्ष अपने विशेष रूपको देखायकर तिरोधान होताभया यह दार्ष्टांतिक उपदेश हैं । अरु दूसरा उपमोपदेश यहहै जो "। इति[11] न्यमीमिषँदा[12] " (न्यमीमिषत्[11] आ[12] इति[13]) [चक्षुकेनिमेष करनेके ११ । तुल्यहै १२ । यह आदेशहैं] अर्थात् जैसे पुरुषादिकोंके चक्षु निमेष लगाय पुनः खुलतेहैं । तैसेही वोपरमात्मा देवताओंके हितार्थ प्रकट हो तिरोधानहोता भया यह द्वितिय दार्ष्टांतिक आदेशहैं "। इत्यधिदैवतम्[13] " (अधिदैवतं[13] इति[14]) [अधिदैवत १३। समाप्त भया १४।] अर्थात् यह अधिदैवतरित्या तुम्हारे प्रति उपमाद्वारा उस ब्रह्मका उपदेश समाप्तभया । हे शिष्य तात्पर्य्य यह है जो देवता अवतारादि सविशेषरूप अरु सर्व प्रत्यगात्मा निर्विशेष रूपएक ब्रह्महीके हैं सविशेषता अरु निर्विशेषता यह दोनों उस विज्ञान घन सर्व शक्तिमान परमात्माकी महिमाहै अरु भेद कुछ नहीं २९ । ४ ॥

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णंसंकल्पः ३०।५॥

[पदान्वयः]

अथ अध्यात्मं यत् एतत् च मनः गच्छति इव अनेन च एतत् उपस्मरति अभीक्ष्णं संकल्पः ३०।५॥

[पदार्थ]

तिसकेअनंतर अध्यात्म (श्रवणकरो) जो यह पुनः मन गमनकरताके तुल्यहैं इसमनकरके पुनः इसब्रह्मको समीपहोकरस्मरणकरताहै (अरु) अत्यंत संकल्प है ३०।५॥

[भावार्थ मन्त्र ५ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "। अथाध्यात्मं "। { अथ अध्यात्मं } [तिसके अनन्तर १। अध्यात्म श्रवणकरो २।] अर्थात् अधिदैव के अनन्तर अब प्रत्यगात्म विषयक अध्यात्म आदेश श्रवण करो।" यदेतद्गच्छतीव च मनो "। { यत् एतत् मनः च गच्छति इव } [जो ३। यह ४। मन ५। ६। गमनकरताके ७। समानहैं ८।] अर्थात् जो यह सर्व इन्द्रियों में श्रेष्ठ अनन्तर इन्द्रिय मनहैं सो निर्विशेष ब्रह्मको विषय करनेवाले के समान हैं। अरु।" अनेन चैतदुपस्मरति "। { अनेन च एतत् उपस्मरति } [इसमनकरके ९। पुनः १०। इसब्रह्मको ११। समीपस्मरण करताहै १२।] अर्थात् जो मुमुक्षु इसमनसे इस प्रत्यगात्मा ब्रह्मको समीपहोकर अर्थात् तदाकार वृत्तिसे स्मरण अभ्यास करता है तिसके "। अभीक्ष्णंसंकल्पः "। { अभीक्ष्णं संकल्पः } [अत्यंत १३। संकल्पहैं १४।] अर्थात् अतिशय करके मनरूप उपाधि द्वारा संकल्प स्मृति आदि प्रतीतियोंसे आत्मा अभिव्यंजक अर्थात् विषय कियेभयेके समान होताहै मानो देखही लियाहै॥ सो यह अध्यात्मोपदेशहैं। हे शिष्य पूर्वोक्त अधिदैवत ब्रह्मोपदेश विद्युत अरु निमेषणके समान शीघ्रही प्र-

काशन धर्म्मी हैं अर्थात् उपदेशके समकालही मुमुक्षुकोचिदानंद घनब्रह्मका प्रकाशकहै। अरुअध्यात्मोपदेश मनकी प्रतीतिकेसम काल अभिव्यक्त धर्म्मी है अर्थात् जब मुमुक्षु ब्रह्माकार वृत्ति निघ्रहोकर चिदानन्द घन आत्माका ध्यान करताहै तब उस वृत्ति द्वारा ब्रह्म ज्ञापकहै। तात्पर्य्य यह जो अधिदैवत अध्यात्मोपदेश मध्यमाधिकारीके अर्थ हैं। अरु उत्तमाधिकारीके अर्थ निर्विशेष ब्रह्म का सूक्ष्मादेश पूर्व प्रथम खण्डमें कहा है ३० । ५ ॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदा भि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ३१ । ६ ॥

[पदान्वयः]

तत् ह तद्वनं नाम तद्वनं इति उपासितव्यं सः यः एतत् एवं वेद एनं सर्वाणि भूतानि अभि ह संवांछंति ३१ । ६ ॥

[पदार्थ]

वोब्रह्म निश्चयसे सर्वकोभजनीयहै (तिस्से) प्रख्यात (वह ब्रह्म) सर्वकोभजनीय इस गुणद्वारा उपासना करने योग्य हैं जो कोई इस ब्रह्मकी इस प्रकार उपासना करताहै उसको सम्पूर्ण भूत सर्वओरसे निश्चयसे प्रार्थनाकरतेहैं ३१ । ६ ॥

[भावार्थमन्त्र६मेंका]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "तद्धतद्वनं" { तत् ह तद्वनं } [वो १ । निश्चय से २ । सर्वको भजनीय हैं ३ ।] अर्थात् वो ब्रह्म जो अधिदैवत अध्यात्म उभयरीत्या तुम्हारे प्रति उपदेश किया है सो निश्चय पूर्वक देव मनुष्यादि सर्व करके भजनीय है एतदर्थ "नाम तद्वनं मित्यु पासितव्यं" { नाम तद्वनं इति उपासितव्यं } [प्रख्यात ४ । सर्वको भजनीय ५ । इस गुण द्वारा ६ । उपासना करने योग्यहै ७ ।] अर्थात् सर्वको सर्व प्रकार से प्रख्यात सर्व का प्रत्यगात्मा ब्रह्म सर्वको भजनीय अ-

र्थात् ज्ञान पूर्वक विचारनीय अरु सेवनीय हैं इसही गुण द्वारा देवादि सर्वकी उपासना करने योग्यहै क्योंकि अधिदैवत रूपसे नानाप्रकारके स्वरूप धारणकर धर्म्मादि सर्वका रक्षक अरु पालक है। अरु अध्यात्म रूपसे सर्वका प्रत्यगात्मा चैतन्य विज्ञान घन सर्वका साक्षी अपना आप है तातें विशेष रूप किंवा निर्विशेष रूपसे यथाधिकार सर्वकोही उपासना करने योग्य है अरु उसकी यथोचित उपासनाका यह फल है "। सं यं एतदेवं वेद "। (संः यंः एतत् एवं वेद) [जो ८। कोई ९। इस ब्रह्मकी १०। इस प्रकार ११। उपासनाकरताहै १२।] अर्थात् जो कोई अधिकारी अपने अधिकार योग्य इसप्रख्यात प्रत्यगात्मा ब्रह्मकी श्रुति वाक्यानुसार ज्ञात पूर्वक उपासना करताहै "। अभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवांछंति "। (एनं सर्वाणि भूतानि अभि ह संवांछंति) [उसको १३। सम्पूर्ण १४। भूत १५। सर्व ओरसे १६। निश्चय १७। प्रार्थना करते हैं १८। अर्थात् उस उपासकको देव मनुष्यादि सम्पूर्ण भूत सर्वप्रकारसे निश्चय पूर्वक शुश्रूषादि द्वारा प्रार्थना करते हैं जैसे कि ब्रह्मकी। अर्थात् जैसे ब्रह्म सर्वकरके उपासनीय है तैसेही ब्रह्मवेत्ता भी सर्वकरके उपासनीय है क्योंकि "। ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति"। ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्मही होता है २१। ६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ३२। ७॥

[पदान्वयः]

भो उपनिषदं ब्रूहि इति उक्ता ते उपनिषत् वाव ब्राह्मीं उपनिषदं ते अब्रूम इति ३२। ७॥

[पदार्थ]

हे भगवन् उपनिषत् कहिये इसप्रकार जब शिष्यने कहा तब

आचार्य्य कहतेभये तेरेको उपनिषत् कहा प्रसिद्ध ब्रह्मविषयक उपनिषत् तेरेप्रति हम कहतेभये बस ३२ । ७ ॥

[भावार्थ मन्त्र ७ में का]

जिज्ञासुरुवाच "। उपनिषदं भो ब्रूहि "। { भो उपनिषदं ब्रूहि } [हे भगवन् १ । उपनिषत् २ । कहिये ३ ।] अर्थात् ब्रह्म विद्या श्रवण करता जिज्ञासु तिसके प्रति अधिदैवत अध्यात्म उभय रीत्या ब्रह्म निरूपणकरके आचार्य्य किंचित्तूष्णीं भये तब श्रद्धावान् जिज्ञासुने पुनः आचार्य्य से निवेदन किया कि हे भगवन् उपनिषत् कहिये । "। इति "। { इति } [इसप्रकार ४ ।] जब जिज्ञासूने प्रश्न किया तब आचार्य्य प्रजापति कहतेभये "। उक्ता त उपनिषत् "। { ते उपनिषत् उक्ता } [तेरेको ५ । उपनिषत् ६ कहा है ७ ।] अर्थात् हे सौम्य यह सर्व हमने तुमको उपनिषत्ही कहा है ॥

प्रश्न ॥ हे प्रभो कौन उपनिषत् कहा है ॥

उत्तर ॥ "। ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति "। { वाव ब्राह्मीं उपनिषदं ते अब्रूम इति } [प्रसिद्ध ८ । ब्रह्मविषयक ९ । उपनिषत् १० । तेरेप्रति ११ । कहतेभये हैं १२ । १३ ।] अर्थात्जो हमने तेरेप्रति कहाहै सोसर्व एकब्रह्मविषयक उपनिषत्हीकहाहै ॥

शिष्यउवाच ॥ हे गुरो परमात्म विषयक उपनिषत् श्रवण करके जो पुनः जिज्ञासुने प्रश्न किया कि हे भगवन् उपनिषत् कहिये तिसका क्या अभिप्राय है । जो कदापि श्रवणकरी विद्या तिसके अर्थ प्रश्न है तो पिष्टपेषणवत् श्रवण किये के अर्थ प्रश्न व्यर्थ हैं अरु जो कदापि आचार्य्य ने अशेष न कहाहोय एतदर्थ प्रश्नहैं तो भी योग्य नहीं क्योंकि आचार्य्यने पूर्वही फलवादसे उपसंहार अर्थात् उपदेश की समाप्ति कियाहै ताते शेष विषयक भी प्रश्न योग्य नहीं । अथवा क्या कोई और विद्या इस उपनिषत् ब्रह्मविद्या को सहकारी सहायक हैं कि तिसके अर्थ प्रश्न है । जैसे वेदके सहकारी शिक्षा निरुक्त ब्राह्मणादि वेदां-

गहैं अरु जैसे यज्ञादि कर्म्ममें कारकादि सहायकहैं तैसे हे गुरो जिज्ञासुके इसप्रश्नका अभिप्राय क्या है ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य तुमयथार्थ कहते हौ जिज्ञासुकाप्रश्न पिष्ट पेषणवत् श्रुतविद्याके अर्थ नहीं। अरु आचार्य्यने पूर्वही। "प्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवंति (अरु) सर्वाणि भूतानि संवांछंति"। इस प्रकार फलवाद कहके विद्या की समाप्ति किया है। अरु प्रश्न के उत्तर में भी आचार्य्यने "उक्तात उपनिषत्" ऐसाकहा है एतदर्थ शेषार्थ भी प्रश्न नहीं। अरु सहकारी विद्या अरु सहायक इनके अर्थ भी प्रश्न नहीं क्योंकि ब्रह्म विद्या निर्पेक्ष है वो पूर्वकाण्ड वेदवत् सापेक्षनहीं वेद के अध्ययनमें शिक्षाकल्पादि सहकारीविना वेदार्थ बोध यथोचित होता नहीं। अथवा वेद करके प्रतिपाद्य नाना प्रकार के यज्ञ तिनके विधान में सूक्त, वा कोन वाक , सूत्र, ब्राह्मणादि, वेदांग विद्या सहकारी हैं। अरु ब्रह्म बिद्या एक अद्वैत प्रत्यगात्म ब्रह्मकी प्रकाशिक हैं ताते द्वैतापत्तीके अभावसे उसके सहकारी काभी अभावहै तथाच+"। बिद्या विमोक्षाय विभाति केवला"। ताते सहकारी विद्याके अर्थ भी जिज्ञासुका प्रश्ननहीं। अरु निःक्रिय आत्माके जिज्ञासुको कर्तृत्व का अभाव है। तथाच*। "। नास्त्यकृत कृतेन × नकर्म्मणा"। ताते जैसे यज्ञादिकर्म में ऋत्विज ब्राह्मण देशकाल बस्तु आदि सामग्री सहायकहैं तैसेअकर्म्मणीब्रह्मबिद्याकासहायक भी कोईनहीं वो अपने अपरोक्षहोनेके पूर्वही परोक्ष अर्थात् श्रवणकालमेंही ❀"। निहंति विद्याऽखिलकारकादिकान"। सर्व कारकादिकोंकोनाश करेहै।ताते एतदर्थ भी जिज्ञासुका प्रश्न नहीं। हेशिष्य प्रश्नका अभिप्राययहहै कि आचार्य्य से श्रवण किया जोनिर्बिशेषब्रह्म तिसही को पुनः अधिदैवत अध्यात्मरीत्या सविशेषभी श्रवणकिया तब जिज्ञासु को ब्रह्मबिद्याबिषे अधिकाधिक श्रद्धा होति भई अरु ब्रह्म विद्याके सर्वोत्तम महत्त्वकोबिचार तिसकी प्राप्ति दुःसाध्य

+ रामगीता। * मुंडक × कैवल्य ❀ रामगीता॥

ज्ञान तिसके प्राप्तोपाय साधनके अर्थ प्रश्न किया है अन्य हेत्वर्थ नहीं। सोसाधन आचार्य्य अग्रेप्रतिपादनकरे हैं ३२।७॥

तस्यैतपो दमः कर्म्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्य मायतनम् ३३। ८॥

[पदान्वयः]

तस्यै तपः दमः कर्म्म इति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यं आयतनम् ३३। ८॥

[पदार्थ]

तिसकी (प्राप्त्यर्थ) तप दम कर्म्म आदि (उपायहै) बेद-चार अंगोंसहित चरणवत्है (अरु) सत्य आयतन है ३३।८॥

[भावार्थ मन्त्र ८ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य जो ब्रह्मविद्याका जिज्ञासु है उसको "तस्यै तपो दमः कर्म्मे" { तस्यै तपः दमः कर्म्म } [तिसकी १।] (प्राप्त्यर्थ) तप २। दम ३ । कर्म्म ४ ।] अर्थात् ब्रह्म विद्या प्राप्त्यर्थ "कर्म्म" अग्निहोत्रादि विहित कर्म्म जे अकर्णे प्रत्यवाय आदि आगंतुक पापनाशकहैं। अरु " तप " कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रतजे संचित अरु वर्त्तमान पापनाशकहैं अरु " दम " कर्म्मेंद्रिय ज्ञानेंद्रिय अरु मन इनको स्व २ विषयोंसे निग्रह करना " इति " { इति } [इत्यादि ५] अर्थात् तप दम कर्म्म अरु आदि शब्द करके अमानित्व अदंभित्व अहिंसत्वादि दैवी सम्पदा। इन सर्व उपायसे जिस पुरुषका अंतःकरण सर्व दोष से रहित शुद्ध अरु स्थिर भयाहै तिस संस्कारी पुरुषको आचार्य्य से श्रवण मननकरी उपनिषत् ब्रह्मविद्या साफल्य होतिहै। अरु उक्त साधनों करके रहित असंस्कारी पुरुषको श्रवणकरी भी ब्रह्मविद्या अयथार्थ अरु विपरीति फलकारी होती हैं। इंद्र विरोचनवत्। ताते उपनिषत् विद्याकी प्राप्त्यर्थ तप दम कर्म्मादि साधन उपाय हैं इन उपायोंसे आचार्य्य द्वारा ज्ञानोत्पत्ति होय

है अन्यथा नहीं तहां जो कदापि किसी पुरुष बिषे विनाहिंसाधनों के यथार्थ ज्ञानोत्पत्ति भासे तो उस बिषे पूर्वव्यतीत किंवा अनेक जन्मोंके किये साधन जानिये। अर्थात् साधन इस जन्म काहो वा जन्मान्तर का हो तिस करके शुद्ध अंतःकरण मेंही ज्ञानोत्पन्न होताहै अन्यथा नहीं होता + "। यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यै ते कथिता ह्यर्था प्रकाशयंते महात्मना "। ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसां क्षयात्पापस्यकर्म्मण।" इतिस्मृते। ताते तप दम कर्म्मादि दैवी सम्पदा ब्रह्मविद्या प्राप्त्यर्थ प्रथम उपायहैं। अरु "। प्रतिष्ठावेदाः सर्वांगानि "। (सर्वांगानि (सह) वेदाः प्रतिष्ठा) [सर्व अंगके ६। (सहित) वेदाचार ७। चरणवत् है ८।] अर्थात् शिक्षाआदि छः अंगोंसहित वेदचार इस उपनिषत् बिद्याके चरणवत् हैं। अथवा सांगवेद इसके चरणादि अंगवत्हैं। अर्थात् यह जो उपनिषत् बिद्या हैं सो शिरोविद्या हैं अरु वेदादि अंगकर पादादिवत् अधोअंगहै। अरु "। सत्यमायतनम्।" (सत्यं आयतनं) [सत्य९। आयतन हैं १०।] अर्थात् उस ब्रह्मबिद्या के निवासका सत्यस्थान हैं। अर्थात् जहाँ सत्य हैं अमायिता हैं अकुटिलतादि हैं तिनको काया बाचा मनसा करके आश्रय करते हैं तिनहीं पुरुषोंमें ब्रह्मबिद्या निवास करती हैं। अरु जे असुर प्रकृति मायावी असत्यवादी हैं तिनपुरुषोंबिषे कदापि नहीं निवासकरती × "। नयेषुजिह्ममनृतं न मायाचेति "। एतदर्थसत्य को आयतन कहाहै यह सर्वसाधनोंसे उत्तम साधनहैं तथाच ※"सत्यमेवजयति⊛सत्यान्नप्रमदितव्यं।" इतिश्रुते "। अश्वमेध सहस्रंचसत्यंचतुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकंविशिष्यते।" इतिस्मृते॥ तात्पर्य्ययह जो परमात्मविषयक उपनिषत् शिरोविद्याहैं सो वेदादि अपने अंगोंसहित तपदम कर्म्म सत्यादिकों की जिसपुरुष में स्वभाव भूत असाधारण स्थिति हैं

+ वेदमन्त्रविषे। × प्रश्नोपनिषत्में। ※ मुण्डकमें। ⊛ तैत्यरेयउपनिषत्में॥

तहांहीं निवासकरती हैं, अन्यथा नहीं । ताते ब्रह्मविद्याके जिज्ञासु मोक्षेच्छुको सत्यादिसाधन अवश्यनिरंतर आदरणीयहैं ३३।८॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठतिप्रतितिष्ठति ३४ । ९ ॥

इतिश्री तलवकारोपनिषद् समाप्तम् ॥

[पदान्वयः]

यः वै एतां एवं वेद पाप्मानं अपहत्य अनन्ते ज्येये स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति२ ॥ ३४ । ९ ॥ इति उ० ॥

[पदार्थ]

जो निश्चयसे इस ब्रह्मविद्याको ईसप्रकार जानताहै (सो) पापोंको नाशकरके अनन्त सर्वोत्तम सुखरूप ब्रह्ममें प्राप्त होता है ३४ । ९ ॥ इतिश्रीकेनोपनिषद् ॥

[भावार्थ मन्त्र ९ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "यो वा एतामेवं वेद" । {यः वै एताम् एवं वेद} [जो १ । निश्चय से २ । इस ब्रह्मविद्या को ३ । इसप्रकार ४ । जानताहै ५ ।] अर्थात् जे पूर्वोक्त साधन सम्पन्न जिज्ञासु श्रद्धा सम्पन्न निश्चय आत्मकहोके इसप्रत्यगात्मबिषयक ब्रह्मबिद्या जो इस केनोपनिषत् करके उपदेश किया तिसको गुरुके उपदेश से यथार्थ जानताहै सो जिज्ञासु पुरुष । "अपहत्य पाप्मानं" {पाप्मानं अपहत्य} [पापोंको ६ । नाश करके ७ ।] अर्थात् संसार वृक्षका वीज जो काम कर्म्म लक्षणवान् सर्व पापोंका आश्रय महापापरूप जन्मादि सर्व अनर्थका हेतु अविद्या तिसको अशेष नाशकरके "अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये । {अनन्ते ज्येये स्वर्गे लोके} [अनन्त ८ । सर्वोत्तम ९ । स्वर्ग १० । लोकमें ११ ।] अर्थात् अनन्त कहिये देव मनुष्यादि करके अरु मन बुद्ध्यादिकरके अरु वेदादि शास्त्र करके जिसका अन्त नहीं सो अनन्त । अथवा ब्रह्मलोकादि पाताल पर्यन्त

लोक लोकान्तर रूपी देश अरु काष्ठादि लेके परार्द्ध पर्यन्त भूत बर्त्तमान भविष्यत् रूपी काल। अरु अव्याकृतादि तृणपर्यन्त वस्तु। इत्यादि देशकाल वस्तु करके जिसका अन्त नहीं सोअनन्त अर्थात् देशकाल वस्तुसे अव्यवहित अनंत सर्व उत्तमताकी सीमा सुखस्वरूप आनंदघन + "एष एव परम आनंदः" × "एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजिवंति"। ब्रह्म में कि जिस आनन्दके लवलेशसे स्वर्गादि लोक लोकान्तर सर्व आनन्दित होते हैं तिस आनन्दघन परिपूर्ण परमात्मा में "प्रतितिष्ठति २" {प्रतितिष्ठति} [प्राप्त होता है १२] अर्थात् ब्रह्मही होता है। तथाच "* यथानद्यःस्यन्दमानाः समुद्रे अस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" सयोह वैतत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति"। पुनः उसको जन्मादि संसार नहीं॥

प्रश्न शिष्यउवाच हे गुरो "अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति" इस श्रुतिका अर्थ आपने परमात्माविषयक चरितार्थ किया सो अस्तु परन्तु, अनंतहै सर्वोत्तम विषय भोग जहां तिस स्वर्गलोकमें प्राप्तहोताहै 'यह अर्थभी युक्तही है सो क्यों न होय॥

उत्तर हे शिष्य त्रिविष्टप अर्थात् त्रैलोक्यान्तर्गत जे यज्ञादि कर्म्मोंकाफल स्वर्गलोक तिसबिषे अनंतताका बिशेषण बने नहीं तथाच "कर्म्मचितो लोक क्षीयते" पुण्य चितोलोक क्षीयते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे स्वर्गादिलोक अपने अधिपत्यादि सहित अंतवान्हैं ताते सोब्रह्मविद्याका फल नहीं। एतदर्थ अनंत सर्वोत्तम सुखरूप अविनाशी परमात्माकी आत्मभावसे अर्थात् सोहमस्मि भावसेप्राप्ति ब्रह्मविद्याकाफलहै॥ ३४॥ १॥ ओंतत्सत्॥

+ × बृहदारण्य षष्ठाऽध्याये। * मुण्डकउपनिषत् बिषे॥

इतिश्रीसामवेदीयतल्लबकारशाखीकेनोपानिषत्संपूर्णम्॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
सितंबर सन् १८९१ ई०॥

ॐ

कठवल्लीउपनिषद् ॥

भाषाटीकासहित ॥

जिसमें

श्रीबाजश्रवा ऋषीश्वरके पुत्र श्रीउद्दालकऋषिने जिस प्रकारसे विश्वजित्नामा यज्ञकी और उसीयज्ञके दक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपरिमित धन व गौओं को दान दिया और उसी यज्ञ में अपने परमप्रिय पुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्युके अर्थ दानदिया और नचिकेता यमालयमें गया और मृत्युने सविधान पूजनकिया और परस्पर वार्तालाप हुआ वह सब वृत्त सविस्तर मंत्रों में वर्णित है ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्रीमुंशी नवलकिशोरजीने भारत वर्षीयजनोंके उपकारार्थ वहुतसाधन व्ययकरके कोलाख्य नगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण से सरल देशभाषामें उल्थाकराय और स्वयंत्रालय में मुद्रितकराय प्रकाशित किया ॥

द्वितीयवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
सितम्बर सन् १८९० ई० ॥

॥ गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

...... कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्व्व विद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुण संपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुन को परम अधिकारी जानके हृदय जनित मोहनाशार्थ सब प्रकार अपार संसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्तभगवद्गीता वजूवत्वेदांत व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनी बुद्धिसे पारनहींपासक्के तब मंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठन पाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्के हैं—और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी बस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिले इसप्रकार संपूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्ता नन्दार्त्थ व बुद्धिबोधार्त्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासभिगवद्भक्तयनुरागी श्रीमान्मुन्शीनवलकिशोरजी (सी, आई, ई) ने बहुतसा धनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदांतशास्त्रो परि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्यआख्य से प्रभात कालिककमलसरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्के हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओं की सम्माति से यह विचारहुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थके भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य



॥ ॐ ॥

परमात्मनेनमः ॥

नमोवैवस्वताय ब्रह्मविद्याप्रदर्शकाय ॥

अथ ॥

गुरु शिष्य के संवाद द्वारा ॥

कठवल्ली उपनिषद्की ॥

भाषा टीका प्रारभ्यते ॥

श्रीगुरुरुवाच । हे शिष्य तेरे बोधार्थ पूर्व ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की भाषाटीका स्वबुद्ध्यनुसार किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्य के आश्रय कहा है । अब पुनः तेरे दृढबोधार्थ कठवल्ली उपनिषद्की यथा मति भाषाटीका कहते हैं ॥

शिष्यउवाच ।हे भगवन्(उपनिषद्) शब्दका अर्थ क्या है अरु किसको कहते हैं अरु तिसका अधिकारी कौन है सो सर्व आप कृपाकरके कहिये ॥

गुरुरुवाच । हे सौम्य अब इसका उत्तर सावधानहोके श्रवण करो । वास्तवसे (उपनिषद्) ब्रह्म आत्माकी अभेदता प्रतिपादक विद्याको कहते हैं । अब उपनिषद् शब्दके व्युत्पत्त्यर्थ को सुनो 'उपनिषदं तस्यामित्युपनिषत्' (उपनिषद्) शब्द का प्रयोग "उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वावत उपनिषदमब्रूमेति" यह तलवकार शाखीय केनोपनिषद्के चतुर्थ खंडकी श्रुतिप्रमाणसे ब्रह्म विद्या में प्रधान है "षद्" धातु विशरणगति अवसादन (नाश) अर्थ में है । अरु (उप-नि) ये दो अव्यय पूर्वक "षद्" धातुसे क्विप् प्रत्यय होके (उपनिषद्) शब्द सिद्धहोताहै ।

तिस (उपनिषद्) शब्दकरके कथनीय ग्रंथ प्रतिपादित ब्रह्मविषया विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या कही जाती है । जे मुमुक्षु देखे सुने अर्थात् इसलोक परलोकके विषयोंकी तृष्णा से निवृत्तहुए (उपनिषद्) शब्दवाच्य विद्याको अर्थात् (उपनिषद्) शब्दकरके बोधित ब्रह्मविद्याको प्राप्तहो निश्चयपूर्वक ब्रह्म आत्माके अभेदको विचार करते हैं तिनके अविद्यादि संसार के बीज के नाश करनेसे ब्रह्मविद्या उपनिषद् कही जाती है क्योंकि ।निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते। यह इसही उपनिषद्की तृतीयावल्ली की पन्द्रहवीं ऋचामें के प्रमाणसे ब्रह्मविद्याका प्रयोजन संसार की निवृत्ति रूप देखाया है ॥

और मुमुक्षुजनोंको समीप निश्चयकरके प्राप्तकरे परमात्माको सो कहिये (उपनिषद्) अर्थात् 'उप' कहते हैं समीपको अरु 'नि' कहते हैं निश्चय वा निरन्तरको अरु "षद्" धातु गत्यर्थक मानी है अरु गति पदका अर्थ प्राप्ति भी है ताते जो मुमुक्षुओंको समीप अर्थात् अपने आपविषे निश्चयपूर्वक निरन्तरभाव अर्थात् अभेदभावसे ब्रह्मको प्राप्तकरे जो विद्या तिसका नाम (उपनिषद्) है । तथाच । ।ब्रह्मप्राप्तो विरजोभूद्विमृत्युः । ऐसे आगे इसही उपनिषद् की छठी वल्ली के अन्त में कहेंगे ॥

और स्वर्गादिलोककी प्राप्तिके साधनत्वकरके अरु गर्भवास जन्म जरादि उपद्रवसमूह जो देहान्तमें बारम्बार प्रवृत्तहोते हैं उनके नाशकत्वकरके अर्थात् उनको शिथिलता प्राप्तकरनेसे अग्निविद्या भी (उपनिषद्) करके कहीजाती है सो भी आगे ।' स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते। इत्यादि स्पष्ट कहेंगे ॥

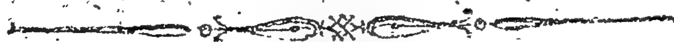
शंका ॥ हे गुरो उपनिषद् शब्दकरके पढ़ेजानेवाले ग्रन्थको भी कहतेहैं क्योंकि मैं (उपनिषद्) पढ़ताहौं मैं (उपनिषद्) पढ़ताहूं मैं (उपनिषद्) सुनताहौं मैं (उपनिषद्) लिखताहौं इत्यादि व्यापार लोकविषे प्रसिद्धहै ॥

उ० ॥ हे शिष्य तेराकहना ठीकहै परन्तु विसरणादि । धात्वर्थकेवल ग्रन्थमात्रमें ही बनतानहीं किन्तु ग्रन्थ प्रतिपादित विद्यामें बनताहै । अरु ग्रन्थका प्रयोजन भी विद्याही है इससे ग्रन्थमें भी (उपनिषद्) पद उपपन्नहै जैसे चिकित्सा (वैद्यक) शास्त्रमें । आयुर्वै घृतं । आयुष्यतो घृतहै ऐसा कहाहै तैसे इस कारणसे मुख्य वृत्तिकरके ब्रह्मविद्यामें ही उपनिषद् ये शब्द वर्त्तता है ॥

हे सौम्य दृष्ट श्रुत अर्थात् दृष्ट कहिये प्रत्यक्ष इस लोकके अरु श्रुतकहिये परोक्ष परलोकके जे उत्तम मध्यम विषयभोग्य हैं तिनसे अशेष वैराग्यवान् अरु मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाला) पुरुषहै सो उपनिषद् विद्याका अधिकारी है अरु विद्याका वेद्य विषय अर्थात् उपनिषद् विद्याकरके जाननेयोग्य परमात्माही है॥

विद्याको प्रयोजनके साध्यसाधन लक्षण सम्बन्ध है अर्थात् मुमुक्षुका जो अशेष अविद्यानिवृत्ति अरु ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्ति रूप प्रयोजन है तिस विषयमें उपनिषद्विद्या साधनहै अरु उक्त प्रयोजन साध्य है । इसको साध्य साधन सम्बन्ध अरु प्रयोजन अनुबन्ध कहते हैं ॥

भगवान् वैवस्वत (यम) अरु नचिकेता के सम्बादरूप जो यह आख्यायिका है सो उपनिषद् नामक ब्रह्मविद्याकी प्रशंसार्थ है ॥ ॐ तत्सत् ब्रह्म ॥



चिह्नसूचना ॥

'   ' इसचिह्नान्तर भावार्थमें मूल श्रुति ॥
'   ' इसचिह्नान्तर अर्थमें इसही उपनिषद्के पद ॥
"   " इसचिह्नान्तर अन्य श्रुतिके वाक्य ॥
[   ] इसचिह्नान्तर अक्षरार्थ ॥
(   ) इसचिह्नान्तर अक्षरार्थमें सम्बन्धार्थ पद ॥
{   } इसचिह्नान्तर भावार्थमें पर्य्याय पद ॥
‹   › इसचिह्नान्तर दृष्टान्त ॥

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः ३ ॥

कठवल्ली उपनिषद्

ॐ। उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्व्ववेदसन् ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस १॥

श्रीगुरुरुवाच। हे सौम्य "उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्व्ववेदसन् ददौ" [वाजश्रवाका पुत्र निश्चयकरके कामनावाला सर्व धन देता भया] अर्थात् 'वाज' कहते हैं अन्नको तिसके दान विशेषके निमित्तसे 'श्रव' कहिये यश है जिसका सो कहिये 'वाजश्रवा' तिसका जो पुत्र सोकहिये 'वाजश्रवसः' ऐसा जो वाजश्रवानाम ऋषीश्वर का पुत्र उद्दालकनामा ऋषि सो अपनी वृद्धाऽवस्था में धनकी बाहुल्यता के हेतुसे सर्वयज्ञशिरोमणि विश्वजित्नामा यज्ञ कि जिसबिषे जो कुछ दानकरनेकी इच्छा होय सोई दियाजाताहै अरु तिसके पुण्यप्रभाव से यजमान को स्वर्गादि वांछित फलकी प्राप्तिहोती है तिस यज्ञके करनेकी निश्चय पूर्वक कामनाकरताभया। अरु तिसयज्ञके आरम्भ के पूर्व अपने द्रव्यमेंसे स्त्री पुत्रादिकों का विभागकर उत्तम २ पदार्थ उनको दे अवशेषरहा जो अपने भागका अनुत्तम वृद्ध गौ आदि द्रव्य तिस द्रव्यके दानार्थ विश्वजित्नाम यज्ञका आरम्भ करता भया। अरु तिसयज्ञकी दक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपना सर्वधन देताभया। हेसौम्य "तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस" [तिसका ही नचिकेता नाम पुत्र था] अर्थात् तिस उद्दालक नाम यजमानका ही एक नचिकेता नामकरके पुत्र रहा १॥

मंत्रदूसरा॥

हेसौम्य "तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश" [तिसकी कुमारावस्था होतसन्ते भी श्रद्धाप्रवेश करती भई (जब) दक्षिणा देने के अर्थ गौओं को समीप ल्यायदिया

तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीय । मानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत॥ २ ॥

(तत्र)] अर्थात् सो नचिकेता प्रथमअवस्थामें कि जिसअवस्था में प्रजोत्पादनशक्ति उदयहोती नहीं उस बालक अवस्थामें ही उसको अपनेपिताके हितमें श्रद्धा उदयहोतीभई अर्थात् आस्तिकी बुद्धि कि पिता सर्वसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ सर्वप्रकार पूजनीय है तातें सत्पुत्रको पिताकाहित अवश्य कर्त्तव्यहै ऐसी जो श्रद्धा सो उदय होती भई ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् उस बालक नचिकेताको किस समय श्रद्धा उदयहोती भई ॥ उत्तर॥ हे सौम्य जिससमय उस के पिताने ऋत्विज अर्थात् यज्ञमें होता (हवनकरनेवाले) आदि ब्राह्मणोंको दक्षिणा के अर्थ ल्यायके यथा पात्राधिकारसे गौआदि द्रव्य दिया तिसको लेके अपने२ स्थानको जाते जे ब्राह्मण तिन को अरु गौआदि दानद्रव्यको अवलोकन किया तब पिताकेहित में आस्तिक बुद्धिमान् जो नचिकेता "सोऽमन्यत" [सो विचार करता भया] ॥ प्र० ॥ हेभगवन् वो बालक नचिकेता पिता के हित में आस्तिकी बुद्धि (श्रद्धा) सम्पन्न होय क्या अवलोकन करके क्या विचारता भया ॥ उ० ॥ हे सौम्य उस श्रद्धासम्पन्न बालक नचिकेता के पिता उद्दालक ऋषिने विश्वजित् यज्ञकी दक्षिणामें जो गौ आदि दान दिया सो द्रव्य दानदेने योग्य नथा तिसको देखके नचिकेता विचारकरताभया ॥ प्र० ॥ हे भगवन् वो उद्दालकऋषि तो सर्व वेदशास्त्र विद्याकरके सम्पन्नथा तब उसने अपने यज्ञकी दाक्षिणामें ऐसा निषिद्ध द्रव्य क्यों दिया ॥ उ० ॥ हे सौम्य वो उद्दालकऋषि सर्वविद्यासम्पन्न त्रिकालज्ञ रहा अरु नचिकेता अग्निका अवतार रहा तातें उद्दालकने पूर्वही भविष्यत्को विचारा जो मुझे इस नचिकेताको मृत्युके अर्थ देना है अरु मृत्यु नचिकेता के संवादद्वारा वेदकी एक शाखा और उदयहोनी है एतदर्थ द्रव्यादि निकृष्ट सामग्री

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
आनन्दा नामते लोकास्तान् स गच्छतिता ददत् ३॥

एकत्रकर यज्ञका आरम्भकिया अरु दक्षिणार्थ सोई द्रव्य ब्राह्मणोंको दिया तब सो नचिकेता उन गौओंको देख श्रद्धासम्पन्न होय विचार करताभया २ ॥

मंत्र तीसरा ॥

हे सौम्य जिन गौओंको देख नचिकेता श्रद्धासम्पन्न होय विचारकरताभया सो कैसीथीं "पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः" [जलपानकी शक्तिरहित तृणखानेकी शक्तिरहित दुग्धदेनेसे रहित गर्भधारणमें असमर्थ] अर्थात् उन गौओंने जो जलपान करलिया है सोई करलियाहै आगे उसके जलपानकी आशा नहीं अरु जो उसने तृणादि भक्षण कियाहै सोई कियाहै आगे उसके तृणखानेकी भी आशानहीं अरु उन्होंने जो कुछ दूधदिया है सोई दियाहै आगे दूधदेनेकी भी आशा नहीं अरु वे धेनु इन्द्रियोंकी शक्तिसे रहित हैं ताते आगेको सन्तान उत्पन्न करनेकी भी सामर्थ्य नहीं। हे सौम्य इसप्रकारकी वृद्धा निष्फला गौओंको नचिकेताने देखा तब विचारकरताभया जो इसप्रकार की वृद्धा निष्फला गौ पिताने ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको दिया है सो यह दान श्रेष्ठ नहीं क्यों जो ऐसे दानकरनेसे "आनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्" [तिनको देताभया सो आनन्दसे रहित नामवाले जे लोकहैं तिनके ताईं जाताहै] अर्थात् नहींहै आनन्द जिसलोक वा शरीरमें ऐसे जे असुखनामक लोक वा शरीर तिनविषे सो यजमान जोकि ऐसा निकृष्ट दान करताहै सो शरीर त्यागानन्तर जाताहै ॥ हे सौम्य इसप्रकार निकृष्टदान के निकृष्ट फलको विचार वो नचिकेता अपने पिताके हितमें पुनः विचार करताभया जो इस यज्ञके निमित्तसे पिताको अपने पुत्रकी विद्यमानतामें अनिष्टफलकी प्राप्तिहोनी योग्यनहीं अरु

सहोवाच पितरं ततकस्मै मान्दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयन्तꣳहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ४ ॥

यह जो वृद्ध गौ आदिक निकृष्ट दानहै तिसका फल स्वर्गादि उत्तमलोक न होके असुखलोककी प्राप्तिहै ताते ऐसे दानसे इस यज्ञका फल उत्तम न होगा क्यों जो सर्वकर्मोंकी साफल्यता में ब्रह्मरूप ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताही मुख्यकारण है सो ब्राह्मणों की प्रसन्नता ऐसे निकृष्ट दानदेने से होती नहीं अब क्या उपाय करिये कि जिससे ब्राह्मण प्रसन्नहोय अरु पिताका यज्ञ सुफल होय, अपनेपास द्रव्यनहीं जो ब्राह्मणोंको दानकर प्रसन्नकरें अरु जो मातासे मांगें तो वो भी मुझको बालकजानके न देगी अब क्या करिये इसप्रकार विचारकरतसन्ते पुनः विचार किया कि इन ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता के अर्थ एक उपाय यह है जो मुझको पिता किसी ब्राह्मण के अर्थ दानदेवे तो मैं उस ब्राह्मणकी सर्व प्रकार सेवाकर प्रसन्नकरों तब उसके आशीर्वाद से पिताका यज्ञ उत्तमफलका दाता होगा अरु यह उपाय मुझसे बनभी आवेगा ताते अब पिताके पास चलके इस शरीरके दान निमित्त उससे निवेदनकरें । इसप्रकार नचिकेता अपने चित्तमें दृढ विचारकर पिताके समीप यज्ञशालामें कि जहां वो ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको दक्षिणादेरहाथा, जाय पिताके सम्मुखखड़ाहो हाथजोड़ प्रार्थना करताभया ३ ॥

मंत्रचौथा ॥

हे सौम्य पूर्वोक्तप्रकार विचारके दृढनिश्चयकर पिताके हित में उत्पन्नभई है श्रद्धाजिसको ऐसा जो बालकवय नचिकेता "सहोवाच पितरं तत कस्मै मान्दास्यसीति" [सो पिता से स्पष्ट कहताभया हेतात किसके अर्थ मेरेको देवोगे] सो पितासे हाथ जोड़ स्पष्ट कहताभया कि हे तात किसी ऋत्विजादि ब्राह्मणको दक्षिणाके अर्थ मुझको देवोगे जो किसीकेअर्थ देनेकी इच्छाहोय

तो मुझपुत्रको भी प्रदान कीजिये मैं आपकी आज्ञाको कदापि उल्लंघन न करूंगा। हे सौम्य जब नचिकेताने अपनेदानार्थ मध्य सभामें पितासे निवेदनकिया तब वो उद्दालक पिता उस अपने बालक पुत्रकी अतिउदारवाणी श्रवणकर उसकामुख अवलोकन करतसन्ते विचारकरनेलगा कि इस बालक पुत्र ने मेरे हितार्थ कैसी उदारवाणी कही है जो मेरे हितमें अपना शरीर भी अर्पण करनेको उद्यतहै ताते ऐसी उदारवाणीके कहनेवाले पुत्र दुर्लभ हैं अरु जो कदापि मैं इसको दानकरौं तो यह दान सर्वोत्तम है आगे किसीने भी ऐसा दान दिया नहीं अरु इसके दानकरने से जगत्बिषे मेरीशोभा अरु यशभी बहुतहोगा तथापि ऐसे सुशील धर्मात्मा बालक पुत्रका दानकरना योग्य नहीं क्योंकि फेर ऐसा पुत्र हम कहां पावेंगे। हे सौम्य इसप्रकार नचिकेता के वाक्यका विचार उद्दालकऋषि करताही है कि "द्वितीयं" [दूसरीवार] नचिकेता वोही वाक्य कहताभया कि हे पिताजी किसी ब्राह्मणको दक्षिणार्थ मुझे देनाहोय तो निश्शङ्कता से देके अपने कार्य्य को सिद्ध कीजिये मैं आपकी आज्ञामें हूं। हे सौम्य इसप्रकार जब दूसरीवार नचिकेता ने पिता से कहा तब पिता उसके वाक्यको श्रवणकर किंचित्काल तूष्णीरहा तिसही अवसरमें "तृतीयं" [तीसरीवार] भी नचिकेताने वोही वाक्य कहा कि हे पिताजी मुझे किसको देवोगे इसप्रकार उस बालक स्वभाव पुत्रने वारंवारकहा तब तिसको श्रवणकर क्रोधाविष्ट चित्त "तꣳ होवाच मृत्यवेत्वा ददामीति" [सो पिता स्पष्ट कहता भया मृत्युके अर्थ तुझको देताहौं] अर्थात् सो उद्दालकपिता अपने नचिकेता बालकपुत्रसे प्रकट कहताभया कि हे नचिकेता तुझ सरीखे हठी बालकको किसको देवेंगे मृत्यु जो वैवस्वत यमराज है तिसके अर्थ देवेंगे ॥ ४॥ हे सौम्य इसप्रकार जब उद्दालकने क्रोधवशहोय अपने पुत्र नचिकेता से कहा तब वो नचिकेता अपने पिताका वाक्य श्रवणकर एकान्त आश्रमपरजाय

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः । किंस्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ५ ॥

पुनः विचार करताभया कि पिताने जो कहा कि तुझे मृत्युको देवेंगे सो क्या विचारके कहा है हमने तो जो कहा सो उसके हितार्थही कहाथा जो वो हमें किसी ब्राह्मणके अर्थ अर्पणकरते तो मैं उस ब्राह्मणको सेवासे प्रसन्नकर पिताका स्वर्ग सिद्धकरता यहवाक्य उसने क्या कहा जो तुझे मृत्युको देवेंगे भला अब जो उसने कहाहै अच्छाही कहा है ॥

मंत्रपांचवां ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार विचारके पुनः वो नचिकेता विचारकरता भया कि "बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः" [बहुतोंके मध्यमें प्रथमभया जाताहौं बहुतोंके मध्यमें मध्यमभया जाताहौं] अर्थात् बहुत शिष्य किंवा पुत्र तिनके मध्य मैं उत्तमताको प्राप्त होताहौं क्यों जो पिताके हितार्थ मैं अपने शरीरको अर्पणकरता हौं ताते बहुतसे शिष्य अरु पुत्रोंके मध्य मैं उत्तमताको प्राप्त होताहौं अरु बहुतसे शिष्यों पुत्रों के मध्य मैं मध्यमताको प्राप्त होताहौं क्योंकि जो शिष्य वा पुत्र अपने गुरु वा पिताकी आज्ञानुसार कार्य करते हैं सो मध्यम होतेहैं सोमैं भी पिताकी आज्ञानुसारही कार्य्य करूंगा ताते मैं मध्यमताको प्राप्तहोताहौं अरु मैंने पिताकी आज्ञाको भंग नहीं किया ताते मैं अधमभावको प्राप्त भयानहीं न कदापि होना है सो मुझ उत्तम मध्यम गुणविशिष्ट पुत्रको पिताने कहा कि तुझे मृत्युको देताहौं सो क्या विचारके कहा है भला "किंस्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति" [अब मुझसे यमका प्रयोजन करेंगे सो क्या होगा] अर्थात् उस यमराज (मृत्यु) का हमसे क्या प्रयोजन सिद्धहोगा अरु हमारा क्या प्रयोजन उससे सिद्धहोगा ताते विनाही प्रयोजन क्रोधव-

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे। सस्य मिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ६॥

शात् पिताने कहाहै। तथापि अब जो पिताने कहाहै श्रेष्ठहीकहा है अब जिसप्रकार पिताकी प्रतिज्ञारूपी यज्ञ सिद्धहोय सोई अपनेको कर्त्तव्य योग्य है ॥ ५ ॥ हे सौम्य इसप्रकार नचिकेता तो अपने स्थानपर विचारकर पिताकीआज्ञाले यमालयकी यात्रा को निश्चयकरताभया अरु तिसही कालमें वहां यज्ञशाला में उसका पिता उद्दालक जब दानक्रियासे निवृत्तभया अरु क्रोधावेश शान्तभया तब पुत्रप्रति कहेहुये अपने वाक्यका विचारकर पश्चात्ताप करनेलगा कि मैंने उस अपने धर्मगुण विशिष्ट पुत्रको यह क्या कहा जो तुझे मृत्युकोदेतेहैं अब वो आज्ञाकारी बालक पुत्र सोईकरैगा जोकि मैंने कहाहै हा! बड़ाकष्टहै अब किसप्रकार इस धर्माविष्ट बालकको यमालयकी यात्रासे निवारणकरें जो कदापि अब उससे उसयात्राका निषेधभीकरैं तथापि वो मुझको मोहवश जानके न फिरेगा क्योंकि वो सत्यव्रतहै हा! अब क्या करिये हे सौम्य इत्यादिप्रकार उस यज्ञशालामें अपनेकहे वाक्य का पश्चात्ताप करता उद्दालक विलाप करनेलगा तब वह नचिकेता अपने पिताको मोहवश विलापकरता जान आप अपने स्थानसे उठ पिताके समीप जाय प्रणामकर यमालयकी यात्रा के अर्थ आज्ञामांगताभया तब उद्दालकने अपने धर्मात्मा बालक पुत्रको देखके कहा कि हे वत्स! हेतात! हे प्रियदर्शन अब हम तुझको यमालय जानेकी आज्ञा कैसे करैं तेरा जाना अरु मेरा मरण साथही जानो अरु हे तात मैंने जो तुझको मृत्यु के अर्थ देनाकहाथा सो क्रोधवश अविचारितथा ताते उस मेरे वाक्यका विचार मतकरो। हे सौम्य इसप्रकार मोहवशात् उद्दालक ने कहा तब तिसके समक्ष खड़ा जो नचिकेता सो पिताका शोक निवारणकर आज्ञाले यमालयकी यात्रा करताभया तहां प्रथम

उसने पिताके शोकनिवारणार्थ जो वाक्य कहे सो श्रवणकरो ॥

मंत्र छठा ॥

हे सौम्य नचिकेता अपने पितासे कहताहै कि हे पिता "। अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे "। [पिछलोंको देखो जैसे पूर्वके (ज्येष्ठ श्रेष्ठ भये) (अरु) तैसे अन्योंकेप्रति देखो] अर्थात् जिसप्रकार आपके पिता पितामहादि ज्येष्ठ श्रेष्ठ धर्मात्मा सत्यवादी पूर्व अपने वाक्योंको सत्यकरते थे तिनको विचारिये अरु तिनके अनुसार आपभी अपनी वाणीको सत्यकरिये अरु अन्य सत्यवादियों को देखिये (जैसे राजा दशरथने अपने प्राणसे भी प्यारे पुत्र को अपनी प्रतिज्ञाके सत्यकरणार्थ वनजाने की आज्ञा किया अरु पुत्रके वियोगमें अपने प्राणकोभी त्यागा परन्तु अपने वाक्यको न त्यागा अरु तिसके पुत्र भगवान् रामजीने भी अपने क्लेशोंको न विचारके पिताकी प्रतिज्ञा पालनकिया । हे पिताजी तैसेही आपभी अपने कहे वाक्यपर आरूढ हो मुझसे यमालय की यात्रार्थ आज्ञाकरिये तिसको पूर्णकरके मैं भी संसारमें शोभा को प्राप्तहोऊं । हे पिताजी (पूर्व एक दधीचि नाम ऋषीश्वर ने अपनी प्रतिज्ञा के पालनार्थ अपने मस्तकको कटवाया परन्तु अपनी प्रतिज्ञा का त्याग न किया यहसर्व सत्यवादी महात्माओं की कीर्त्तिप्रकाशक कथा आपसेही मैंने श्रवण कियाहै तिन सर्व सत्यवादियोंको देख तिनके अनुसार आप भी अपनी वाणीको सत्य करिये) हे पिताजी मेरा अरु आपका एकत्रहोना संयोगपायके भयाहै तैसे वियोग भी होजायगा इन अनवस्थ शरीरोंविषे स्नेह वृथा है एतदर्थ विवेकी पुरुष सराँय के बसेरेवत् संसारविषे मोहको त्यागके उदासीन रहते हैं । हे पिताजी जैसे तीर्थोंमें यात्रीगण अकस्मात् एकत्र हो आवते हैं तैसेही बिछुड़ भी जाते हैं तद्वतही मेरा अरु आपका संस्कारवश एकत्रहोना भयाहै कालपायके बिछुड़ भी जावेंगे ताते इस अ-

सत्यलोकमें अपनी वाणीको अन्यथा करनेमें सिवाय अपकीर्त्ति के और कुछ भी लाभ नहीं हे पिताजी "सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।" [मनुष्य धान्यके वृक्षवत् पकता है पुनः धान्यके वृक्षवत् उपजता है] अर्थात् (जैसे अन्नकेवृक्ष पकके कटते हैं) तैसेही यह मरणधर्मा मनुष्य भी बाल युवा वृद्ध जीर्णभावको प्राप्तहोय मृत्युके वश होतेहैं पुनः अन्नके दानेवत् अपने कर्मोंके प्रेरे नीच ऊंच योनियोंमें उत्पन्न भी होतेहैं) अरु (जैसे अन्नकेदाने बोयेजाते हैं फेर कालपायके काटे भी जाते हैं एकत्र भी रहते हैं पुनः कालपायके वो दाने बिछुड़ेहुये पूर्वके पश्चिम को पश्चिमके पूर्वको चलेजाते हैं ये सदा एकत्ररहते नहीं)। हे पिताजी तैसेही यह सर्वजीव कालपायके प्रारब्धों के प्रेरेहुये एकत्रहो आवते हैं पुनः तैसेही बिछुड़ भी जाते हैं इनका यही स्वभाव है तब फेर इस असत्य अनवस्थ नाशवान् शरीर बिषे मोहवशात् आस्था करनेसे अरु अपनी प्रतिज्ञाको असत्य करने से क्या कोई अजर अमर होताहै कोई भी होता नहीं। हे पिताजी सत्पुरुषों करके जो अपनी प्रतिज्ञाका त्याग है सोई उनका मरण है अरु जो प्रतिज्ञाका पालन करना है सोई बुद्धिमानोंका जीवना है यहसर्व आपको विदित है। ताते हे पिताजी पूर्व के वृद्धोंके आचारको विचार इस मोहको त्याग मुझे यमालय की आज्ञादे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करिये ॥ ६ ॥ हे सौम्य यहां जब सत्यवादी उद्दालकऋषिने अपने पुत्रसे कहा कि मैं तुझे मृत्युको देताहौं उसही काल भविष्यत् के ज्ञाता मृत्युभगवान्ने अपने स्थानपर विचारकिया कि अपने पिताकी आज्ञामान के वो बालक ब्रह्मचारी नचिकेता यहां आवेगा अरु मुझसे तीन वरदान भी मांगेगा ताते प्रथम उसकी जिज्ञासा देखने के अर्थ हम यहांसे ब्रह्मलोकको जावें ऐसा निश्चयकर अपनी स्त्री सों कहके आप ब्रह्मलोकको जातेभये। अरु यहां जब नचिकेता ने अपने पिताके शोकनिवारणार्थ वचनकहे तब कुछ सावधान होय

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणोगृहान् । तस्यैता छंशान्तिंकुर्वंति हरवैवस्वतोदकम् ७ ॥

उद्दालकने अपने पुत्रको आज्ञादिया तब पिताकी आज्ञा होतेही वो पितृहितकामी नचिकेता पिताको प्रणामकर सर्वसभाके देखतेही योगकलासे अन्तर्द्धानहोय मृत्युके भवनद्वारपर जाय खड़ारहा तब मृत्युकी स्त्रीने उस तेजस्वी बालक ब्रह्मचारीको अपने द्वारपर देख कुछ जलफला दिले द्वारपरआय नचिकेतासे कहा कि हे ब्रह्मचारी आप हमारे द्वारपर अतिथिआयेहो ताते इस जलफल को अंगीकार करिये तब नचिकेताने कहा कि हेदेवि मैं सन्तुष्टहूं अभीमैं जलफलादि न लूंगा मुझको पिताने किसीप्रयोजनार्थ मृत्युकेपास भेजाहै जब वो मेराप्रयोजन सिद्धहोगा तिसके पश्चात् मैं जलफलादि ग्रहणकरौंगा अब आप बैठिये। हे सौम्य जब इस प्रकार नचिकेता ने उसदेवीसे कहा तब वो देवी कहतभिई कि हे ब्रह्मचारी जिसके साथ तुमको प्रयोजनहै सो मृत्यु कहीं को गयाहै तीनदिवस में आवेगा इतनाकह वो देवी अपने भवनमें जातीभई अरु नचिकेता विनाही जलफलादिकों के लिये तीन दिवस मृत्युके द्वारपर खड़ारहा जब तीनदिवस बीते तब मृत्यु भगवान् ब्रह्मलोक से आय उस बालक ब्रह्मचारी को अपनेद्वार पर देखते भवनमेंपधारे तब उनकी स्त्री कहतभिई कि हेभगवन् तीनदिवससे बालक ब्रह्मचारी आपके द्वारपर खड़ाहै उसने जल फलादि कुछभी नहींलिया ताते आप प्रथम उसको शान्तकरिये वो अतिथि कैसा है मानो ॥

मंत्र सातवां ॥

हेभगवन् ! वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणोगृहान् ! [साक्षात् वैश्वानर (अग्नि) ही अतिथि ब्राह्मणभया गृहोंमें प्रवेशकरता है] अर्थात् साक्षात् वैश्वानर नाम अग्निही यह अतिथि ब्राह्मण रूपसे चतुर्दशभुवनमें प्रवेशकर सर्वको दाहकरताहोय ऐसा इस

आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्व्वानेतद्वृङ्क्ते ॥ पुरुषस्याल्पमेधसोयस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणोगृहे ८ ॥

का तेज दृष्ट आवताहै ताते हेभगवन् " तस्यैताꣳ शान्तिकुर्व्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् " [तिसकी इनजलफलादि पूजासामग्री से शान्तिकरते हैं हे वैवस्वत जलको लीजिये] अर्थात् अतिथिरूप वैश्वानर जो पांचअग्निकरके युक्त आयाहै तिस अग्निकी शान्ति के अर्थ इतनी अर्घ्यपाद्य आसन जलफल दक्षिणाआदि सामग्री जो इस अतिथिरूप अग्निको शान्तिकरनेवालीहै सोथले हेभगवन् हे वैवस्वत आप शान्त स्वभावहोय उस अतिथिके समीप जाय उदकादि सामग्री से उसका पूजनकर सर्व प्रकार उसको शान्तात्माकरिये ॥ ७ ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब मृत्युकी स्त्री ने अतिथिरूपअग्निके शान्तकरनेके अर्थ प्रार्थनाकिया तब सो मृत्यु भगवान् कहते भये ॥

मंत्र आठवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे देवि मैं भी उस अतिथि ब्रह्मचारी तेजस्वी बालक ब्राह्मणको अपनेद्वारपर देखताआयाहौं वो पूजनकरनेही योग्य है हे देवि जो गृहीपुरुष अपने गृहआये अतिथिका आतिथ्यादि द्वारा सेवनकरतेनहीं तिनको प्रत्यवायहोताहै अरु संचित पुण्यकर्म का नाशहोता है अरु " आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्र पशूꣳश्च सर्व्वानेतद्वृङ्क्ते " [आशा प्रतीक्षा संगत सूनृत इष्टा पूर्त्ता पुत्र पशू इनसर्वका नाशहोता है] अर्थात् अपने को इष्टवस्तु जो अनुभव किया है तिसकी प्राप्तिके अर्थ प्रार्थना सो आशा अरु अननुभूत स्वर्गादिकों की प्राप्तिकेअर्थ प्रतिक्षण अनुसंधान सो प्रतीक्षा अरु सत्संगका जो सर्वोत्तमफल सो अरु शरीरादिकों के सुख अरु यज्ञ अग्निहोत्रादि अरु वापी कूप तड़ाग आरामादि यह इष्टा पूर्त्तादिकर्म सो अरु इनके फल

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहेमेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तुब्रह्मन् स्वस्तिमेऽस्तु तस्मात्प्रतित्रीन् वरान्वृणीष्व ९ ॥

अरु पुत्रादि सन्तति अरु पशुआदि विभूति अरु यशकीर्त्यादि यह सर्व विनाशको प्राप्तहोतेहैं । सो किसके " पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे " [जिस अल्पबुद्धिवाले पुरुषके गृहविषे विनाही भोजनकिये अतिथि ब्राह्मण वासकरता है तिसके] अर्थात् जिस अशास्त्रज्ञ अल्पबुद्धि अविवेकी किंवा प्रमादवान् कृपण गृहस्थकेगृह प्राप्तभये जे अतिथिब्राह्मण सो विनाहीं जलफल पूजनादि सत्कार के पाये निवासकरते हैं अथवा फिर जाते हैं तिनके । अर्थात् जिस गृहस्थ के घरसे अतिथि ब्राह्मण भोजनादि सत्कारको पावतेनहीं उनके उक्त सर्व धर्म कर्म यश विभूत्यादि नष्ट होजाते हैं अरु अकरण प्रत्यवाय उसको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे देवि श्रुतिकी आज्ञा है कि " अतिथिदेवोभव " अतिथि देवतावत् पूजनीय है ताते उदकादि पूजासामग्री लावो मैं उस अतिथि का पूजनकर उसको शान्तात्माकरों ॥

मंत्रनवां ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार मृत्युभगवान् अतिथि ब्राह्मण के आतिथ्यादि सत्कार न करनेसे जोदोषहै सो अपनी स्त्रीसे प्रकटकहके पूजन सामग्रीले नचिकेताके समीपआय अर्घ्यपाद्यादि पूजनकर अतिशान्ततासे यहवचन कहतेभये ॥ मृत्युरुवाच ॥ हेनचिकेतः "तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहेमेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः" [हे ब्रह्मन् तू नमस्कारकरनेयोग्य अतिथिभया भोजनको न करता हुआ मेरे गृहविषे तीनरात्रि पर्यन्त जो वासकरताभया] अर्थात् हे ब्रह्मचारी ब्राह्मण तू परमपूजनीय भया अतिथि जलफलादि कुछ भी भोजन न करके उपवास करत सन्ते मेरे गृहविषे तीन रात्रि दिवस आपने निवासकियाहै ताते आपको मेरे ऊपर क्रोध

नहींकरना सर्वप्रकार क्षमाकरनी हे ब्रह्मन् । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व" [तेरेको नमस्कार रहो हे ब्रह्मन् मेरा कल्याणरहो तिसकेप्रति तीन वरदान मांगो] अर्थात् आप नमस्कार करनेयोग्यहो ताते आपको मेरा नमस्कार रहो अरु हे ब्रह्मन् आपकी कृपासे मेरेको सर्वप्रकार कुशलरहो हे भगवन् आपने मेरे गृह विषे तीनरात्र उपोषण किया है तिसके बदले में एक २ रात्रीप्रति एक २ वरदान जो आपकी इच्छाहोय सो मांगलीजिये ॥ ९ ॥ हे सौम्य जब इस प्रकार वैवस्वतभगवान्ने नचिकेता अतिथिकी शान्तिकेअर्थ पूजनादि आतिथ्यपूर्वक नमस्कारकरके तीनवरदानमांगनेकी आज्ञा किया तब वो बालक अतिथि ब्राह्मण नचिकेता अपने हृदय विषे विचारकरताभया कि मुझको तो पिताने शाप दियाथा जो । मृत्यवेत्वा ददामीति । मृत्युको तुझे देतेहैं । सो मृत्यु तो बड़ाभयानक क्रूर होताहै वो छोटेबड़ेका विचार न करके सबको ग्रास करता है अरु उसके दर्शनमात्रसेही प्राणशरीरसे पयानकरतेहैं, यह कैसामृत्युहै यह तो पूजनकरताहै नमस्कारकरताहै अपराध क्षमाकरावता है अरु तीन वरदानदेता है ताते यह तो कोई परमदयालु देवता है चन्द्रमावत् सुखदायी इसका दर्शन है अरु अमृतके तुल्य इसका भाषणहै जैसे नम्रताके वाक्य यह कहता है तैसे वाक्य मृत्यु तो किसीसे भी कहता नहीं अरु यह देववत् सबका प्राणहर्त्ता जो मृत्यु सो वरदान किसकोदेता है किन्तु किसीको भी नहीं ताते यहतो कोई परमदयालु देवहै अब इसके दर्शन अरु वाक्यके श्रवणसे प्रतीत होताहै कि पिताने शाप नहीं दिया किन्तु शापकेमिस वरदान दियाहै जो ऐसे परमउदार दयालु देवका दर्शनभया है पिताकी कृपाविना ऐसेका समागम मुझे कबथा यहसब पिताकाही अनुग्रहहै जो ऐसेदयालु देवका समागमभयाहै अबइसकेद्वारा मेरे सर्वमनोरथसिद्धहोंगे। हेसौम्य इसप्रकारविचारके नचिकेता मृत्युभगवान्सेकहताभया॥

शान्तसंकल्पःसुमनायथास्याद्वीतमन्युर्गौतमोमाभि मृत्यो ॥ त्वत्प्रसृष्टंमाऽभिवदेत्प्रतीतएतत्त्रयाणांप्रथमं वरंवृणे १० ॥

मंत्र दशवां ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् मुझको मेरेपिताने आपकेपास भेजाहै जो आप सर्वकेभोक्ता मृत्युहौ आपकेआगे जैसे मैं खड़ाहौं तैसे कोई भी नहीं ठहरता ताते आप मुझपर दयाकरतेहौ जो पूजनकरतेहौ नमस्कार करतेहौ क्षमाकरावतेहौ अरु वरदान भी देतेहौ ताते मुझपर आपका महान् अनुग्रह है । हे भगवन् जो आप मुझको वरदानदेतेहौ तो प्रथम यहदीजिये "शान्तसंकल्पः सुमना यथास्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो" [हे मृत्यो गौतम (मेरेपिता) का संकल्प शान्तहो मेरेप्रति प्रसन्नमनवाला जैसा था तैसा क्रोधसे रहितहोय] अर्थात् हे भगवन् मृत्यो मेरापिता मेरीओरसे शान्तसंकल्पहोय अर्थात् मेरेपिताको यह शोच न होय जो मेरापुत्र मृत्युके यहांगया वा नहींगया अरु जो गया तो मृत्युने उसको ग्रासकिया वा नहीं किया जाने मेरेपुत्रका क्याभयाहोगा इत्यादि प्रकार मेरेनिमित्तके संकल्पविकल्प मेरे पिताके शान्तहोय अरु मेरेप्रति प्रसन्नमनवालाहोय अरु क्रोधके समयसे पूर्व जैसाथा तैसाही क्रोधसेरहित मेरे अर्थ शान्तआत्मा होय सो कब जब "त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे" [तुमकरके भेजेहुये मेरेप्राति भाषणकरे प्रतीति होय यह तीनवरदानके मध्य प्रथम वर मांगताहौं] अर्थात् हे भगवन् यहां आप मेरा पूजनकरतेहौ अरु वरदान भी देतेहौ इससे यह भी प्रतीतहोता है जो आप मुझको फेर वहां पिता केपास भेजोगे ताते आपकरके भेजाभया मैं वहां जाऊं तबमेरे मातापिता मुझकोदेख प्रसन्नहोय मेरेसाथ संभाषणकरें विपरीत विचारके क्रोधवान् न होयँ कि यह तो मृत्युको दियाहुआ फिर

यथापुरस्ताद्भविताप्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ॥ सुखछंरात्रीःशयितावीतमन्युस्त्वांदद्दशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ११ ॥

के आयाहै ताते यह प्रेतभयाहै अब इसको ताडनाकरों अथवा मन्त्रादिकरके ग्रामसे बाहर निकालों वा पृथिवीमें दबादूं इत्यादिप्रकारके रोष मेरे मातापिताको न होयँ प्रीतिपूर्वक भाषणकरें अरु लब्धस्मृति प्रतीतवान्होय जो यह मेरापुत्र नचिकेताही है यह मृत्युसे विद्यालेके ज्योंकात्यों आयाहै इतने कार्यकेअर्थ तीन वरदानोंमेंसे प्रथम वरदानके अर्थ मैं प्रार्थनाकरताहों तिसको आप पूर्णकरिये ॥ १० ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब नचिकेताने अपनेपिताके शोकनिवारणार्थ प्रथम वरदानकी याचना किया तब मृत्युभगवान् कहतेभये ॥

मंत्र ग्यारहवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः "यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः" [जैसे पूर्वसेही (तेरे पिताकास्नेह) तेरेबिषेहै (तैसेही) प्रतीत है अरुणकापुत्र उद्दालक मेरी आज्ञा कोपाया] अर्थात् तेरे पिताका स्नेह तेरे बिषे जिसप्रकार पूर्वसे है तैसेही अबहै अरु तेरे पिताकी तेरेबिषे प्रतीत है कि मेरापुत्र मृत्युकेयहां गयाहै हे नचिकेतः अरुणकापुत्र उद्दालक तेरापिता तिसकी बुद्धिको मैंने अन्तर्य्यामिरूपसे यथार्थकिया है ताते अब तेरापिता तेरीओरसे शान्तसंकल्प भयाहै अरु एक औरप्रकार से भी तेरापिता शान्तात्माभया है जो एकदिवस "सुखछं रात्रीः शयितावीतमन्युस्त्वां दद्दशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्" [रात्रीको सुखसे विगतरोष सोवतारहा (तब) तुझको मृत्युके मुखसे मुक्त देखताभया] अर्थात् रात्रिकेसमय तेरापिता सुखसे सोवता रहा तब पिछलीरात्रिको एक स्वप्न देखताभया तिस स्वप्नबिषे तुझ पुत्रको देखताभया जो मेरापुत्र नचिकेता मृत्युके मुखसे मुक्त

स्वर्गेलोकेनभयंकिञ्चनास्तिनतत्रत्वंनजरयाबिभेति ॥ उभेतीर्त्वाऽशनापिपासेशोकातिगो मोदते स्वर्गलोके १२

भया आयाहै अथवा मृत्युके मुखसे कहीहुई जो आत्मविद्या तिसकरके जन्ममरणसे मुक्तहुआ आयाहै॥ ११॥ताते हे नचिकेतः तेरीओरसे तेरापिता शान्तात्माभया है अब उसकी ओरसे तूभी शान्तात्माहो ॥ हे सौम्य यह कर्मकास्वरूप तुमसे कहा है जो कर्मकारिये तो ऐसाकारिये कि जैसा नचिकेताने किया है कि अपनाशरीरभी पिताकोहितार्थ अर्पणकिया परंतु पिताकी प्रतिज्ञासे फिरा नहीं तब पिताके अनुग्रहसे उसको भगवान् वैवस्वत ऐसे कर्म उपासना ज्ञान काण्डत्रयीकेज्ञाता सर्वशिरोमणि श्रोत्रिब्रह्मनिष्ठ आचार्यकी प्राप्तिभई ताते यावत्पर्यन्त कर्मका फल अन्तःकरणकी शुद्धता न प्राप्तहोय तावत् कर्मसे हाथ न उठावना॥हेसौम्य आगे उपासनाका प्रसंग चलेगा जिस उपासनाके कियेसे कर्त्ता पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होतीहै तिस विद्याकाप्रसंग दूसरे वरदानमें चलेगा॥प्र०॥हे गुरो अब उपासनाका प्रसंग भी आप कृपाकरकेकहिये कि जैसे मृत्युभगवान्ने नचिकेतासे कहाहै ॥उ०॥ हे सौम्य जब मृत्युभगवान् से नचिकेताने अपने पिताके शोकनिवारणार्थ वरदानकी याचनाकिया तब मृत्युने कहा कि यह काम तो तेरा मैंने प्रथमही किया है अब और जो तेरी इच्छा होय सो मांग तब नाचिकेता अग्निकी उपासनाके ज्ञानार्थ प्रथम उस उपासनाकाफल स्वर्गलोक तिसकी प्रशंसा करताभया॥

मंत्र बारहवां ॥

नचिकेताउवाच ॥ हे भगवन् यज्ञादि कर्मद्वारा जिस अग्निका आराधन करके यजमान सर्वोत्तम स्वर्गलोक को प्राप्तहोते हैं उस अग्निकी विद्या मुझको दीजिये अरु कैसा है वो स्वर्गलोक कि जिसको अग्निके उपासक यजमान प्राप्तहोते हैं कि जहां

स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम्॥ स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण १३॥

"स्वर्गे लोके न भयं किञ्च नास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति" [स्वर्गलोकविषे भय कुछभी नहीं है (अरु) तहां तुमभी नहीं (अरु) जराकरके भयको पावता नहीं] अर्थात् उस स्वर्गलोकमें रोगादि निमित्तिक जे शरीरव्याधि के दुःख तिनका भय किंचिन्मात्र भी नहीं अरु तिस स्वर्गलोकमें तुम जो मृत्यु सो भी सहसा इस मृत्युलोकवत् नहीं अरु जरावस्था करके भी वहां भयको पावता नहीं अर्थात् स्वर्गलोकमें इसलोकवत् जरा मरणादिकोंका भय नहीं किन्तु "। उभे तीर्त्वाऽशनापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके"। [क्षुधापिपासा दोनोंको लंघिके शोकसे रहितभया स्वर्गलोक बिषे हर्षको प्राप्तहोताहै] अर्थात् क्षुधा पिपासा कहिये भूख प्यास तिन दोनोंसे तर (छूट) के अरु शोक मोहादि मानस दुःखसे रहित अर्थात् जरामरण देहकी ऊर्मी, भूख प्यास प्राणकी ऊर्मी, शोक मोह मनकी ऊर्मी, इन सबसे छूटके स्वर्गलोकमें आनन्दकरते प्रसन्नरहते हैं तातें स्वर्गलोक सर्वोत्तम है १२॥

मंत्र तेरहवां॥

हे भगवन् इसप्रकार सर्वगुणविशिष्ट जे स्वर्ग लोक तिसकी प्राप्तिका साधन "। स त्वमग्निꣳस्वर्ग्यं मध्येषिमृत्यो प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम्"। [तिसअग्निको स्वर्गसाधक आप जानतेहौ सो श्रद्धावान् मुझको आप कहिये] अर्थात् तिस स्वर्ग की प्राप्तिकासाधक अग्निको आप भलीप्रकार जानतेहौ सो हे भगवन् श्रद्धासम्पन्न जो मैं तिस मुझ विद्यार्थीप्रति तिस विद्या को कृपाकरके कहिये कि जिस अग्निके सेवनकरने से "। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते "। [स्वर्गलोकको प्राप्तभये अमरभावको

प्रतेब्रवीमितदुमेनिबोध स्वर्ग्यमग्निन्नचिकेतःप्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथोप्रतिष्ठां विद्धित्वमेनान्निहितं गुहायाम् १४ ॥

प्राप्तहोतेहैं] अर्थात् स्वर्गलोक है अन्तमें प्राप्त जिनको ऐसे जे यजमान सो अमरणधर्म अर्थात् देवभावको प्राप्तहोते हैं सो हे भगवन् "। एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण "। [तिसको दूसरे वरदान से मांगताहौं] अर्थात् तिसअग्निकी विद्या मुझको दूसरे वरदान करके दीजिये यह मेरी प्रार्थना है ॥ १३ ॥ हे भगवन् जब आप मुझको यहांसे उस मेरेलोक में भेजोगे तब वहां के मनुष्य कर्म उपासना के प्रश्नकरनेवाले मेरे पास आवेंगे एतदर्थ भी आप मुझको अग्निविद्या प्रदान कीजिये ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब नाचिकेता ने दूसरे वरदानकरके अग्निविद्याकी याचनाकिया तब मृत्युभगवान् कहते भये १३ ॥

मंत्रचौदहवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हेनचिकेतः "। प्रते ब्रवीमि तदुमे नि बोध स्वर्ग्यमग्निन्नचिकेतः प्रजानन् "। [हे नचिकेतः तिस स्वर्ग के साधन अग्निको मैं जानताहौं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवणकरो] अर्थात् जिस अग्निकी विद्या के अर्थ तेरी प्रार्थना है तिस स्वर्ग साधक अग्निविद्याको मैं भलीप्रकार जानताभया तेरेप्रति स्पष्ट कहताहौं तिस हमारीकही विद्याको एकाग्रमनकरके श्रवणकरो "। अनन्तलोकाप्तिमथोप्रतिष्ठांविद्धित्वमेनन्निहितंगुहायाम् "। [स्वर्गलोकरूप फलकी जे साधन आश्रयरूप गुहाविषे स्थित इसको तू जान] अर्थात् हेनचिकेतः अनन्तहैं विषयभोगके सुखजहां ऐसा जो सर्वोत्तम स्वर्गलोक तिसकी प्राप्तिका साधन सर्वाश्रयरूप अग्नि तिस वैश्वानर अग्निकी इसभूताग्निरूपसे उपासना अपने २ अधिकारप्राप्ति करते हैं सो एकदिवसमें प्रातःकाल सायंकाल दो वार यथाविधि पूजनकरतेहैं अरु पूजनकेमंत्रोंको देवता आयतन

लोकादिमग्निन्तमुवाचतस्मै याइष्टकायावतीर्वाय थावा । सचापितत्प्रवदद्यथोक्त मथास्यमृत्युःपुनरेवाह तुष्टः १५ ॥

प्रतिष्ठाआदिसहित सर्वके ज्ञानपूर्वक यथा शास्त्र शरीरपातपर्यन्त आराधना करते हैं अरु अन्तमें अन्त्येष्टि शरीर का संस्कार (देह दाह) उसही अग्निसे होताहै तब वो यजनकरता यजमान अर्चि-रादि मार्ग से स्वर्गलोक को प्राप्तहोता है । हे नचिकेतः वो सर्व का आश्रयभूत अग्नि विराड्रूपसे सर्वत्र स्थितहै तहां " सत्रेधा ऽऽत्मानं व्याकुरुतेति " इस श्रुतिप्रमाणसे अग्नि वायु सूर्य इन तीनरूप से बाह्य समष्टि भावको अरु प्राण अपानादि वायु के साथमिलके जठराग्निरूप से अन्नको पाचनकरता अन्तर व्यष्टि भावको इसप्रकार व्यष्टिसमष्टि उभयताको प्राप्तहोय सर्वजगत् का आश्रयरूप अग्निहै सो सर्वप्राणियोंकी अन्तःकरणरूप गुफा विषे स्थित है तिसको तू ज्ञातकर १४ ॥

मन्त्र पन्द्रहवां ॥

हेनचिकेतः " लोकादिमग्निंतमुवाचतस्मै याइष्टकायावती र्वा यथावा " [लोकनकेआदि अग्निको तिसकेअर्थ कहतेभये जो ईंटाहै वा जितनी हैं वा जाप्रकार कही है] अर्थात् सर्वसृष्टि के पूर्व प्रथमशरीरवान् ताते अग्नि अर्थात् जो सर्व उपाधि से रहित एक समानअग्नि सो ब्राह्मणादि सर्वसृष्टिके पूर्व शरीरवान् प्रजा-पति आदि अग्नि ब्राह्मण अधिदैवरूप अरु सोई अग्नि वायु सूर्य यह तीन अधिभूतरूप अरु सोई अन्तरप्रविष्ट होयकै अन्नादिकों का भोक्ता वैश्वानररूप इसप्रकार एकअग्नि अधिदैव अधिभूत अध्या-त्म तीनों स्वरूपसे सर्व जगत् का निर्वाहक आश्रय विराडात्मा रूपसे सुशोभित है । तिस सर्वात्म अग्निविद्या के ज्ञानार्थ नचि-केताने मृत्युसे द्वितीय वरदान के अर्थ याचनाकिया तब तिस अग्निविद्याको नचिकेताके अर्थ मृत्युभगवान् कहतेभये तहां ईंटों

तमब्रवीत्प्रीयमाणोमहात्मावरन्तवेहाद्यददामिभूयः॥ तवैवनाम्नाभवितायमग्निः सृजंचेमामनेकरूपांगृहाण १६ ॥

का बनावना जितना बनावना अरु कुण्ड मेखला समय द्रव्य मंत्र छन्द ऋषि देवता आयतन प्रतिष्ठा वा श्रुवा शुचि प्रणीता प्रोक्षणी समिधा कर्त्ता करणादि सामग्री विधिविधान है सो सर्व कहतेभये हे सौम्य जब सर्वसामग्रीसहित अग्निविद्या मृत्युभगवान् ने नचिकेताप्रति उपदेश किया तब परमविवेकी शुद्धचित्त उत्तमाधिकारी जो नचिकेता "स चापि तत्प्रवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः" [सो नचिकेता भी जो मृत्युनेकहा था तिसको मृत्युकेप्रति कहताभया तिसकरके तुष्टभये मृत्यु फेर भी कहते भये] अर्थात् सो नचिकेता भी उस अग्निविद्याको जोकि मृत्युभगवान् ने उपदेशकिया था तिसको जैसा श्रवण किया तैसेही विधिविधान सहित ज्यों का त्यों मृत्युभगवान्प्रति कहसुनाया तब वो मृत्यु बालक नचिकेता के मुखसे अनुभव सहित यथार्थ अग्निविद्या को श्रवण करके अत्यन्त प्रसन्न भये अरु विचारते भये जो यह शुद्धपात्र ब्रह्मचारी हम देवताओं से भी श्रेष्ठहै इसने मननकरनेका कालपाये विनाही अनुभव सहित ज्योंकात्यों हस्तामलकवत् अग्निविद्या देखायदिया है ताते यह धन्य है । इसप्रकार अन्तरसे प्रशंसा करके प्रसन्नआत्मा भगवान् वैवस्वत फेर भी नचिकेताप्रति कहतेभये अर्थात् वरत्रय व्यतिरिक्त अन्य वर अपनी प्रसन्नतासे देतेभये १५ ॥

मंत्र सोलहवां ॥

हे सौम्य "तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः" [तिस नचिकेताके कहनेसे प्रीतिमान् महात्मा (मृत्यु) कहतेभये यहां तेरी (प्रीतिके निमित्त) अब फेर वरको देताहौं] अर्थात् तिस नचिकेताने कि जिसने मृत्युसे अग्निविद्यापायी है

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्यसन्धिं त्रिकर्म्मकृत्तरतिजन्म मृत्यू । ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यं विदित्वानिचाय्येमांशान्ति मत्यन्तमेति १७ ॥

अरु सोई यथार्थ अग्निविद्या मृत्युको कहसुनाई तब नचिकेता पर प्रीतिमान् स्नेहकर्त्ता महात्मा मृत्युभगवान् कहते भये हे नचिकेतः मैं तुझपर प्रसन्नहौं तिस प्रसन्नताके निमित्त वर त्रय व्यतिरिक्त अब यहां फेर चतुर्थवर मैं देताहौं सो क्या वरदान है जो "तवैवनाम्नाभविताऽयमग्निः सृंकाञ्चेमामनेकरूपां गृहाण" [यह अग्नि तेरेही नामसे प्रसिद्धहोगा पुनः यह शब्द वाली विचित्रमालाको ग्रहणकर] अर्थात् हे नचिकेतः यहअग्नि जो मैंने तुझको उपदेश किया है सो आजसे तेरेही नामसे विख्यात होगा अर्थात् आजसे अग्निका नाम भी नचिकेता भया। हे सौम्य मृत्युभगवान् ने वरत्रयसे अन्य चतुर्थ वरदान अपनी प्रसन्नतासे नचिकेताको दिया अरु एक माला अपने कंठसे उतार हाथमेंले कहतेभये कि हे नचिकेतः यह शब्दवती माला सो कैसी है नानाप्रकारके मणि माणिक्यमुक्ता आदि मणियोंसे विचित्र बनीहै तिसमालाको भी आप ग्रहणकरिये ॥ एतना कह वो माला नचिकेताके कंठमें सुशोभित करतेभये अरु पुनः कर्म की स्तुति करतेभये १६

मंत्र सत्रहवां ॥

हे नचिकेतः "त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्यसन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू" [त्रिणाचिकेत तीनसों सन्धिको पायके तीनकर्म का करता जन्ममृत्यूको तरता है] अर्थात् नाचिकेत नामा तीन अग्नि जो तुझको कहीहैं तिनके स्वरूपादि ज्ञानपूर्वक जो अग्निकी उपासना करते हैं अरु तीन जे माता पिता आचार्य तिनकरके अनुसन्धान अर्थात् स्वर, वर्ण, मात्रा, आदि शिक्षा प्राप्तकरके तीन जे यज्ञ अध्ययन दानरूप कर्म तिन तीनोंकर्मों

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा यएवंविद्वांश्चिनुतेनाचिकेतम् । समृत्युपाशान्पुरतःप्रणोद्य शोकातिगोमोदतेस्वर्गलोके १८ ॥

को कर्त्तापुरुष जन्ममरणसे तरजाता है । अरु "ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यंविदित्वानिचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति" । [ब्रह्मसे उत्पन्न सर्वज्ञ स्तुतिकरनेयोग्य देवको जानके देखके यह अतिशय शान्ति को पावता है] अर्थात् ब्रह्म जो हिरण्यगर्भ तिससे उत्पन्नभया विराडात्मा वैश्वानर सो ब्रह्मज सर्वज्ञ सर्वकरके स्तुतिकरनेयोग्य वैश्वानर आत्मदेवको जानके इस अन्तःकरणबिषे सर्वका भोक्ता वैश्वानर आत्मा मैंहूं इसप्रकार देखके अनुभवकियाहै सो अतिशय शान्ति अर्थात् विराट् के पदको प्राप्तहोताहै १७ हे सौम्य जो पुरुष माता पिता आचार्य इनसे शिक्षापाय यथाविधि अग्निकी आराधना अरु अहंग्रहे उपासना इनका समुच्चय सेवनकरते हैं सो पुरुष विराडात्मा वैश्वानर के पदको प्राप्तहोताहै ॥ अब यथाविधि अग्निकी आराधनारूप प्रत्यक् उपासनाका फल निरूपण करते हैं ॥

मंत्र अठारहवां ॥

हे नचिकेतः "त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा यएवंविद्वांश्चिनुतेनाचिकेतम्" । [जो त्रिणाचिकेतपुरुष इनतीनको जानके ऐसे विद्वान् नाचिकेतको समाप्त करताहै] अर्थात् तीनअग्निका सेवनकरता पुरुष है सो इन पूर्वकहे तीनको अर्थात् ईंट, संख्या वेदी, कुण्ड, मेखला, आदिकोंका बनावना १ अरु अग्निआराधनाके समय नेम समिधा द्रव्य पात्रादि २ अरु मंत्र, स्वर, मात्रा, ऋषि छन्द, देवता, आयतन, प्रतिष्ठाआदि ३ को माता, पिता, आचार्य द्वारा सम्यक्प्रकार जानके इसप्रकार अग्निविद्याके वेत्ता विद्वान् नाचिकेतनाम्ना अग्निको निरन्तर सेवते हैं "समृत्युपाशान्पुरतःप्रणोद्यशोकातिगोमोदतेस्वर्गलोके" । [सो मृत्युके पाशोंको

एषतेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्योऽयमवृणीथा द्वितीये नवरेण । एतमग्निंतवैवप्रवक्ष्यन्तिजनास स्तृतीयंवर न्नचिकेतोवृणीष्व १९ ॥

पूर्वही त्यागकरके शोकफातरके स्वर्गलोक में सुख पावता है] अर्थात् अग्निके सेवनकर्त्ता अधर्म अज्ञान रागद्वेष जन्म मरणादि रूप मृत्युके पाशसे पूर्वही छूटके पुनः देहपातान्तर शोक मोहादि नैमित्तिक मानसीव्यथासे निःशेषहोय सर्वोत्तम स्वर्गलोक में दिव्यभोग भोगते सुखी होते हैं १८ हे सौम्य इसप्रकार कर्म अरु तिसके फलकी स्तुतिकर पुनः मृत्युभगवान् कहते भये १८॥

मंत्र उन्नीसवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ " एषतेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्योऽयमवृणीथाद्वितीयेनवरेण " [हे नचिकेतः तू दूसरे वरदानकरके जिसको मांगता भया सो यह स्वर्गसाधक अग्नि] अर्थात् हे नचिकेतः तू दूसरे वरदानकरके जिसअग्नि विद्याको हमारेप्रति मांगताभया सो यह स्वर्ग साधन अग्निविद्याका वरदान तुमकोदिया अरु "एतमग्निं तवैवप्रवक्ष्यन्तिजनासः " [इस अग्निको तेरेही नामसे जन कहैंगे] अर्थात् मैंने जो तुझको उपदेश किया स्वर्गसाधन अग्नि इसअग्निको तेरेही नामसे सर्वजन कहैंगे अर्थात् अग्निको भी आजसे नचिकेतानाम से सर्व विद्वज्जन कहैंगे । यह जो वरदान तुझको दिया है सो तेरे याचित वरदानों से व्यतिरिक्त अपनी प्रसन्नतासे मैंने दिया है । अब " तृतीयंवरन्नचिकेतोवृणीष्व " [हे नाचिकेतः तीसरा वरमाँग] अर्थात् हे नचिकेतः पूर्व जो तुझको तीन वरदान देने की मैंने प्रतिज्ञा कियाहै तिनमेंका एकवरदान तेरा बाकी है सो तीसरावरदान भी जो तुझको अभीष्टहोय सो निःशंक मांगले अब हम भी सोई देंगे जो तेरी इच्छाहोगी क्योंकि यावत् तीसरावरदान तुझको न दूंगा तावत् मैं तेराऋणी हौं ताते जो तेरी इच्छाहोय सो मांगके मुझको अनृणकरो १९॥

येयम्प्रेतेविचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्ती तिचैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहंवराणामेषवर स्तृतीयः २० ॥

हे सौम्य यहांपर्यन्त अध्यारोपद्वारा कर्म अरु उपासनाका स्वरूप अरु तिनके समुच्चय सेवनका फल विराड् के पदकी प्राप्ति दो वरदानों करके प्रतिपादन किया । अब जिसलिये वेदभगवान् ने इस आख्यायिका का प्रारम्भकिया है सो ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान ज्ञानकाण्ड पांचवल्लीकरके अपवादद्वारा कर्म उपासना अरु तिन के फलमें दोषदृष्टि पूर्वक वैराग्य शील उत्तमाधिकारीके अर्थप्रति-पादनकरैंगे तहां प्रथम कर्म का फल जे पुत्र धन जीवन स्वर्गादि विषयसुख अज्ञानजन्य अनात्मा तिनके दोष नचिकेता ऐसे उत्त-माधिकारी द्वारा पुत्रादि लोभ के मिस देखावते हैं । तहां परम उदारात्मा नचिकेता कर्म उपासनाका फल जे त्रैलोक्यकी सर्व सामग्री सहित विराड्पदकी प्राप्ति तिससे अपने को शान्तात्मा न जानके आगे सर्वश्रेय परमपुरुषार्थकारी आत्मविज्ञानको मृत्यु भगवान्से तृतीय वरदानकरके मांगताभया ॥

मंत्र बीसवां ॥

नचिकेताउवाच ॥ हे भगवन् " येयम्प्रेतेविचिकित्सामनुष्ये ऽस्तीत्येके नायमस्तीतिचैके " । [मरे मनुष्य बिषे जो यह संशय है (तहां) कईएक हैं ऐसे कई एकनहीं हैं ऐसे (कहते हैं)] अर्थात् नचिकेता कहता है कि हे भगवन् मरेहुये मनुष्य बिषे जो यह आत्मज्ञान विषयक संशयहै कि मृतकबिषे आत्माहै या नहीं तहां कई एक आचार्य देहसे व्यतिरिक्त अपने कर्मोंके फलोंका भोक्ता स्वर्ग नरक में जाने आवनेवाला चैतन्य आत्मा है ऐसे कई पते हैं अरु कई एक मतवादी आचार्य उक्त प्रकारका आत्मा नहींहै ऐसा कहते हैं ॥ दूसरा अर्थ । हे भगवन् जो यह मृतक बिषे अर्थात् मृतधर्मा शरीर संघात बिषे यथार्थ

आत्मज्ञान विषयक मनुष्यों में संशय है कि इस संघात रूप प्रत्यक्ष नाशवान् शरीरबिषे इससे भिन्न आत्माहै या नहींहै तहां कई एक आचार्य देहसे व्यतिरिक्त अपने सर्व शुभाशुभ कर्मों के सुख दुःखादि फलका भोक्ता स्वर्ग नरक में जाने आवने वाला आत्मा है ऐसा कहते हैं तब उनको कई एक मतवादी आचार्य ऐसा कहतेहैं कि जैसा तुम देहसे व्यतिरिक्त दुःख सुखका भोक्ता आत्मा कहते हो सो नहीं, यह आत्मा है अर्थात् यह शरीरही आत्मा है इसही करके सुख दुःखादि भोगेजाते हैं। तब उससे अन्य कहतेहैं कि देहभी आत्मा नहीं क्योंकि मृतक देहसे कोई भी कार्यहोतानहीं ताते शरीरमेंजो पांचतत्त्वहैं तहांपृथिवी,जल यह दोतत्त्व जड़ अनात्माहैं अरु अग्नि, वायु यह दोतत्त्व आत्मा हैं इनहीके न होने से शवविषे चेष्टा नहीं अरु आकाश शून्यरूप है ताते अग्नि,वायु यह दोतत्त्वही आत्मा हैं। तब उसको अन्य पुरुष ऐसा कहते हैं कि हे भाई तुम कहते हो सो नहीं क्योंकि जब पात्रमें जल उष्ण करते हैं तहां पांचो तत्त्व इकट्ठे होते हैं परन्तु वहांज्ञान धर्मनहीं ताते यह अग्नि,वायु दोतत्त्वभी आत्मा नहीं। यह इन्द्रिय आत्माहै क्योंकि जहां यह पांचो ज्ञानेन्द्रियां होतीहैं तहांही सर्वकार्य सिद्ध होते हैं एतदर्थ इन्द्रियांही आत्मा हैं। तब उसको अन्य पुरुष यह कहतभये कि जिन इन्द्रियोंको तुम आत्मा कहतेहो सो नहीं क्यों जो यह सर्व प्रथक् २ हैं अरु एकका कार्य दूसरे से होता नहीं अरु यह पराधीन जड़ हैं ताते इन सर्वका प्रेरक आत्मा मनहै क्यों जो मनही इनको करणो-वत् अपने २ व्यापार में वर्त्तावेहै ताते इन सर्वका आत्मा मन है। तब उसको अन्य पुरुष यह कहतेहैं कि हेभाई जिस मनको तुम आत्मा कहतेहो सो आत्मा नहीं क्योंकि जब यहमन इन्द्रि-योंसाथ मिलके विषयों साथ मिलताहै तब उनका स्वरूपभूत होजाता है तिस समय इसको अपना पराया कुछभी ज्ञात नहीं रहता ताते मन आत्मा नहीं। यह बुद्धि आत्माहै। तब उसबुद्धि

देवैरत्रापिविचिकित्सितंपुरानहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म्मः। अन्यंवरंनचिकेतोवृणीष्वमामापरोत्सीरितिमा सृजैनम् २१ ॥

वादीको अन्य पुरुष ऐसा कहतेभये कि यह बुद्धिभी आत्मानहीं क्योंकि यह सुषुप्ति अवस्था में कारण अविद्या में जाय के ज्ञात रहित जड़ होती है ताते यहभी आत्मा नहीं ॥ हेभगवन् इसप्रकार मनुष्योंबिषे आत्मज्ञान निमित्तक संशयको लेके अपनी २ कल्पनासे अस्ति नास्तिरूप विवाद करते हैं तिसका अन्तसार कुछभी निकलतानहीं किन्तुसंशयकी वृद्धिहोतीहै।अरु यहआत्मविज्ञानही परम पुरुषार्थ है एतदर्थ "। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहंव राणामेषवरस्तृतीयः "। [आपकरके शिक्षितभया मैं इस विद्याको ज्ञानों यह वरदानोंके मध्य तीसरा वरदान है] अर्थात् हेभगवन् आपकरके उपदेशपाया जो मैं सो इस परमपुरुषार्थ साधक आत्माविज्ञानरूप विद्याको सम्यक् प्रकारसे जानों यह सर्व श्रेष्ठ दानोंके मध्य श्रेष्ठ वरदानहै ताते तीसरावरदान आत्मविद्या दीजिये २० हे सौम्य इसप्रकार जब नचिकेताने मृत्युभगवान् से तृतीय वरदान करके आत्मविद्याकी याचनाकिया तब अन्तर से प्रसन्नभये वैवस्वतभगवान् विचार करतेभये कि इस ब्रह्मचारी ने आत्मविज्ञानार्थ याचना कियाहै कि जो इनमनुष्यों करके दुःसाध्यहै अरु तीसरावरभी इसका देनाहै ताते आत्मविद्यादेने से पूर्व इसके अधिकारित्वकी परीक्षाकरनी योग्यहै ऐसा विचार के नचिकेताकी दृढ जिज्ञासा देखनेके अर्थवाह्यवाणीद्वारा प्रकट कहते भये २० ॥

मंत्र इक्कीसवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः जिसपदार्थकोतू पूछताहै तिसको मैं नहीं जानता अरु "। देवैरत्रापिविचाकित्सितंपुरानहि सुविज्ञेयमणुरेषधर्म्मः"। [इसबिषे देवताओंने भी पूर्व संशय किया

देवैरत्रापिविचिकित्सितं किलत्वञ्चमृत्योयन्नसुवि
ज्ञेयमात्थ । वक्ताचास्यत्वादृगन्योनलभ्योनान्योवरस्तु
ल्यएतस्यकश्चित् २२ ॥

है (तातेयह) सम्यक् जाननेयोग्य नहीं है(क्योंकि) यहधर्म सूक्ष्म है] अर्थात् इस आत्मज्ञानके विषयमें कि जिसको तू पूछता है बड़े २ देवताओंने भी पूर्व संशय ही कियाहै।अर्थात् हे नाचिकेतः जिसआत्मज्ञानके बिषेमें तू मनुष्योंको संशयवश अनेक कल्पना करते अज्ञानी कहता है तिसके विषयमें मनुष्यकी क्याकहिये किन्तु देवताभी संशयही करतेहैं अरु मैं भी उसको नहींजानता अरु पूर्व इस आत्मविज्ञानके अर्थ तुझसरीखे कितनेही पच २ के अभाव होगये हैं अरु कितने हठपूर्वक पचरहे हैं परन्तु यह सम्यक् प्रकार जाननेके योग्य नहीं है क्योंकि यह आत्म संज्ञक धर्म महासूक्ष्महै। ताते तू इस झगड़े बिषे मतपडे कि आत्मा कौनहै इसको पूंछके क्याकरेगा। अरुजो उसको जानभीलिया तो उससे क्या लाभहोगा अरु जो तुझको उसे जाननाहीहै तो अपने लोक बिषे जानलीजियो यहां इस झगड़े बिषे क्योंपड़ताहै "। अन्यंवरंनचिकेतोवृणीष्व मामापरोत्सीरितिमासृजैनम् "। [हे नचिकेतः अन्य वर मांग मुझको मतरोक मेरे अर्थ इसको छोड़] अर्थात् हे नचिकेतः अब वहां इस आत्मविद्यासे इतर और वरदान जो आपकी इच्छाहोय सोई मांगलो अबमुझको उपरोधमतकरो अर्थात् जिसवस्तुकोहमनहींजानतेतिसको मुझ से मत पूंछो जो मैं उसको जानता तो इस झगडेबिषे क्योंपड़-ता ताते हे नाचिकेतः इस आत्मविज्ञानके बदले और वरदानजो तुझको अभीष्ट होय सो मांगले एक हमारे प्रति इस आत्मवि-ज्ञानरूप वरदानको छोड़दे अर्थात् यह वरदान मत मांग २१ ॥ हेसौम्य इस प्रकार जब मृत्यु भगवान् ने नचिकेता की परीक्षा

के अर्थ आत्मविद्या मांगनेका निषेधकिया तब परम श्रद्धालुमहाधैर्यवान् नचिकेता पुनः मृत्यु भगवान् से कहताभया ॥

मंत्र बाईसवां ॥

नाचिकेतोवाच ॥ हेभगवन् आप आज्ञा करते हौ कि "। देवरत्रापिविचिकित्सितं किलत्वञ्चमृत्यायेन्नसुविज्ञेयमात्थ "। [हे मृत्यु इसबिषे देवताओं ने भी निश्चय संशय किया है (अरु) पुनः आपभी जिसको सम्यक् जानने योग्यनहीं ऐसा कहतेहौ] अर्थात् इस आत्मज्ञान विषय में देवताभी संशययुक्तही रहते हैं ऐसा मैंने आपसे निश्चय किया अरु पुनः आप करकेभी सुविज्ञेय नहीं अर्थात् आपभी उसको यथार्थ जानते नहीं सो तैसेही होगा, परन्तु जोआप नहीं जानते तोकैसे कहतेहौ जोयहआत्मतत्त्वरूपी धर्म महासूक्ष्म है उसबिषे देवता आदि बड़े २ पंडितभी संशययुक्त भये यथार्थ नहीं जानते इसका जानना दुर्लभ है। हे भगवन् इस प्रकार जो आपका कहना है तिसही करके प्रतीत होताहैजो आपआत्मतत्त्वको सम्यक्प्रकार जानतेहौ क्योंकि हे भगवनआपने कहा कि। अणुरेषधर्मः।यहधर्मसूक्ष्म है सो ।एषः। [यह] यहपद अंगुली निर्देशात्मक ☞ अति समीपवर्त्ती प्रत्यक्ष केबिषे वर्त्तताहै तातें आत्मतत्त्वआपको हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष अनुभवहै। अरु आपकहतेहौ कि मैंआत्माको नहींजानताअरुदेवताभी नहीं जानते इस आपके वाक्यसे उस आत्मतत्त्वकी दुर्विज्ञेयता भी आपकरके प्रकट है अरु „ अविज्ञातंविजानतां „ इस प्रमाण से जिनको आत्मतत्त्वकी अविज्ञातता सदैव विदित है सोई विज्ञान पुरुष आत्मतत्त्वको जानते हैं। तातेअब आपजान बूझ के मुझसे क्यों छिपावते हौ हेभगवन् जिस आत्मज्ञान के विषे देवता संशययुक्तही रहते हैं अरु आपभी जिसको अविज्ञात होनेसे नहीं जानते ऐसा कहतेहौ तिसही आत्मतत्त्वको मैंजानूंगा अरु आपसेही जानूंगा। हेभगवन् "। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो

शतायुषःपुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्य मश्वान् । भूमेर्महदायतनंवृणीष्वस्वयञ्चजीवशरदो यावदिच्छसि २३ ॥

न लभ्यो " [इसका तुम्हारे तुल्य वक्ता प्राप्तहोनेका नहीं] अर्थात् हमारे आचार्य आपही हो आपको छोड़के अब कहांजाउँ । हेभगवन् इस आत्मतत्त्व का उपदेष्टा आपके तुल्य अन्य आचार्य कहीं भी प्राप्त नहीं यह मैंने भली प्रकार विचार देखाहै । अरु आपने कहा जो आत्मविद्यासे इतर अन्य वरदान मांगले सो हेभगवन् "नान्योवरस्तुल्य एतस्यकश्चित् " [इस के तुल्य अन्य कोईभी वर नहीं] अर्थात् इस आत्मविज्ञान रूप वरके तुल्य अन्य कोई भी वरनहीं । क्यों जो इस आत्मतत्त्व से इतर जो है सो सर्वही कर्म का फल है ताते नाशवान् है सो हमारे कामके नहीं एतदर्थ हे भगवन् अब आप कृपाकरके मुझ विद्यार्थीको तीसरावरदान आत्मविद्याही प्रदानकीजिये २२ ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब नचिकेता ने कहा तब उसके वाक्य श्रवणकर मृत्युभगवान् पुनः विचारकरते भये जो यह बालक ब्रह्मचारी श्रद्धासम्पन्न आत्मविद्याका अधिकारी है ताते यह धन्य है ब्रह्म-विद्याके अधिकारी ऐसेही चाहिये परन्तु ब्रह्मविद्याका महत्त्व भी सर्वसे श्रेष्ठ है ताते इसके अधिकारित्वकी परीक्षाकियेविना ऐसे तैसेको यह देना योग्यनहीं । अरु एक वरदान भी इसका देना है परन्तु प्रथम इसको अन्यपदार्थों का लोभ देखाय इसकी परीक्षाकरें जो यह किसी वस्तुके लोभमें आवे तो सो इसको दे विदाकरें अरु जो यह किसीपदार्थके लोभमें न अटके तो इसका याचित वरदान इसको देवें यह ब्रह्मविद्या विना अधिकारी की परीक्षा के देना योग्यनहीं । इसप्रकार विचार के मृत्युभगवान् नचिकेताप्रति कहतेभये ॥

एतत्तुल्यंयदिमन्यसेवरंवृणीष्व वित्तंचिरजीविकाञ्च । महाभूमौनाचिकेतस्त्वमेधि कामानांत्वाकामभाजं करोमि २४ ॥

मंत्र तेईसवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नाचिकेतः हे सौम्य अब तू इसख्यालमें क्यों पड़ताहै जो आत्मा इस संसार अरु संघात से भिन्नहै या नहीं है इसके जानने से तेरा क्या प्रयोजनसिद्धहोगा अब तू इसझगडे को त्यागके और श्रेष्ठपदार्थ मांगले तहां जो तेरी इच्छाहोयतो "। शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व "। [सौवर्षकी आयुवाले पुत्र पौत्रों को मांगले] अर्थात् हे नचिकेतः सौ२ वर्षका आयुहै जिन्होंका सो कहिये । शतायुषः । ऐसे पूर्णआयुवाले पुत्र अरु पौत्रों को मांगले अरु "। बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्भूमेर्महदायतनं वृणीष्व "। [बहुतसे पशुओंको हाथी सुवर्ण अश्वोंको (अरु) पृथिवीके बडेस्थानको मांगले] अर्थात् बहुतसे गौ महिषिआदि पशुओंको अरु बड़े २ उत्तमहाथी अरु सुवर्ण अरु उत्तम२ जाति के घोडे अरु पृथिवी के विषे बडा विस्तीर्णस्थान अर्थात् राज्य मांगले । अरु जो कदापि ऐसाकहे कि जो इनकाग्राहक पुरुष आप अल्पायु भया तो यह सर्व अनर्थकेही हेतु हैं तो "। स्वयञ्च जीवशरदोयावदिच्छसि "। [आपभी यावत्पर्यन्त इच्छा होय तावत्पर्यन्त जीवन मांगले] अर्थात् तू अपनेको जरा रोगादिकों से राहित जीवना मांगले सो भी निरवधि जितनेवर्ष तेरी इच्छा होय तावत् जीवतारहो २३ ॥

मंत्र चौबीसवां ॥

हे नचिकेतः॥ यह जो तुझको कहेहैं सो अरु "। एतत्तुल्यंयदिमन्यसेवरंवृणीष्व "। [इसकेतुल्य यदि श्रेष्ठ मानताहोय तो मांग] अर्थात् इनके समान जो कदापि और भी श्रेष्ठ मानता होय

तो सो भी मांगले यह सर्व पदार्थ तेरे लोकविषे दुर्लभ हैं ताते "। वित्तंचिरजीविकाञ्चमहाभूमौनचिकेतस्त्वमेधि "। [हे नचिकेतः वित्तको (मांग) किंवा चिरजीविका (अथवा) बड़ीभूमिका तू राजाहो] अर्थात् हे नचिकेतः बहुतसा सुवर्ण रत्नादिधन मांग अथवा बहुतकालपर्यन्त जीवना मांग परन्तु यह आत्मविद्यामत मांग। हे नचिकेतः इस विस्तृत भूमंडलकातू चक्रवर्ती राजाहो सर्व प्राणी तेरी आज्ञामें रहेंगे तू सर्वका स्वामीहोगा ताते जो तेरी इच्छाहोयतो यह वरदान मांगले औरभी जो तुझको अभीष्टहोय सोई मांगले । हे नचिकेतः अब और विशेष क्याकहिये "।कामानांत्वाकामभाजं करोमि "। [सर्व भोग्यनका भोगके योग्य तुझको मैं करूंगा] अर्थात् तू सत्यसंकल्पहो जिस पदार्थकी तू इच्छाकरेगा सोई तुझको नियत्त प्राप्तहोगा ताते जो तेरी इच्छाहोय तो यह वरदान मांगले ॥ हे नचिकेतः अब इस आत्मविद्या के अर्थ बालकस्वभावसे बालकोंवत् विशेष हठमतकरो जिसकेअर्थ तू विशेष आग्रहकरताहै सो पदार्थ मेरे पासनहीं ताते जोपदार्थ तुझसे कहेहैं उनमें से जो तेरी इच्छाहोय सो अथवा सर्वमांगले अब मैंभी तुझको सोपदार्थ देताहों कि जिसकरके तेरेलोकविषे तेरे समान और कोई न होय अरु सर्व मंडलेश्वर मनुष्यादि देवतावत् तेरी आराधनाकरैंगे एतदर्थ अब तू हठको त्यागके मेरे कहेभये वरदानोंमेंसे जो तेरीइच्छाहोय सो निःशंकहोके माँगले जो तू माँगेगा सोई हम देंगे परन्तु आत्मविज्ञान मतमांग। अरु हे नचिकेतः जो कदापि तू ऐसाकहै कि हमारे मृत्युलोकके सर्व पदार्थ नाशवान् अति तुच्छ हैं इनको लेके मैं क्या करोंगा तो श्रवणकर २४ ॥

मंत्र पच्चीसवां ॥

हे नचिकेतः "। येयेकामादुर्लभामर्त्यलोकेसर्वान् कामां श्छन्दतःप्रार्थयस्व "। [जो जो विषय मनुष्यलोक में दुर्लभ हैं सर्वको इच्छाके अनुसार तू मांग] अर्थात् जोजो विषयभोग तेरे

येयेकामादुर्लभामर्त्यलोके सर्व्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमारामाःसरथाःसतूर्य्यानहीदृशालम्भनीयामनुष्यैः आभिर्मत्प्रत्ताभिःपरिचारयस्वनचिकेतो मरणंमानुप्राक्षीः २५ ॥

लोकविषे दुर्लभ हैं तिनसर्वको तू अपनी इच्छाके अनुसार मांग अर्थात् वेद करके जिनकी महिमा प्रकाशितहै और जिसकीप्राप्ति के अर्थ यज्ञादिकर्म करते हैं तिन सर्व भोगोंको यथेष्ट मांगले वो कौन २ विषय भोग हैं " इमारामाःसरथाःसतूर्य्यानहीदृशालम्भनीयामनुष्यैः " [रथसहित वादित्रसहित यह अप्सरायें ऐसी मनुष्यनसे प्राप्तहोने योग्यनहीं] अर्थात् दिव्य रथादि यान अरु दिव्यवीणा मृदंगादि देववादित्र सहित यह देवताओं को रमणकरावनेवाली रम्भा उर्वशी आदि अप्सरायें कि जिनके दर्शनमात्रसेही वृद्धपुरुष तारुण्य को प्राप्तहोते हैं इसप्रकार की भोग्यसामग्री निश्चयकरके मर्त्यलोक के निवासी मनुष्योंकरके अस्मदादि देवताओं के अनुग्रह विना प्राप्तहोने योग्य नहीं । ताते " आभिर्मत्प्रत्ताभिःपरिचारयस्व नचिकेतोमरणंमानुप्राक्षीः " [इन मेरीदईभई स्त्रियोंसे अपनीसेवाकराव हे नचिकेतः मरण को मत पूछे] अर्थात् मुझकरके दीगई जे रम्भादि दिव्य अप्सरा (स्त्रियें) तिनकरके अपने शरीरकी पादप्रक्षालनादि परिचर्या कराव अरु सहित अपनेपुत्र पौत्रनके जरा रोगादिकनसे रहितहुये चिरकालँपर्यन्त दिव्यभोग्य भोगतेरहो यहदिव्य भोग्य तेरे मर्त्यलोक बिषे अत्यन्त दुःप्राप्य है सो मैं तुझको प्रसन्नतापूर्वक देताहौं ताते अब जो तेरी इच्छाहोय सो मांगले इनसर्व दिव्यभोग्यनको तेरेपास होनेसे तेरेलोकबिषे तेरी बड़ी शोभा प्रशंसा अरु यश प्रतिष्ठा होगी । अरु हमारेघरसे कोईभी अतिथि खाली नहीं गया ताते अब तेरे ऐसे उत्तमाधिकारी अतिथिको मैं खाली कैसे भेजूंगा एतदर्थ जो तुम्हारी इच्छाहोय

श्वोभावामर्त्त्यस्ययदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणांजरय न्तितेजः। अपिसर्व्वञ्जीवितमल्पमेव तवैववाहास्तव नृत्यगीते २६॥

अरु जिसको तू सर्वसे श्रेष्ठ निर्दोष जाने सोई मांगले परन्तु हे नचिकेतः मरणसम्बन्धी प्रश्न जो मृतकधर्मा बिषे आत्मा है वा नहीं है अरु जो है तो कौन है कैसा है यह काकदन्त परीक्षावत् अर्थात् काक के चोंच है सोई दन्त हैं वा चोंचसे इतर दन्त हैं तद्वत् प्रश्नकरने को तुम्हसारिखे विवेकी पुरुष योग्य नहीं ताते हे नचिकेतः तृतीय वरदानकरके जो तूने आत्मविद्याकी याचना कियाहै तिससे व्यतिरिक्त जो तू श्रेष्ठजाने सोई वरदान निःशंक मांगले २५॥ हे सौम्य इसप्रकार मृत्युभगवान् उस आत्मजिज्ञासु नचिकेता को चक्रवर्त्ति राज्यसुखसे लेके स्वर्ग के दिव्यभोगादि पर्यन्त उत्तम मध्यम सर्वपदार्थ सहित पुत्र पौत्रादि यथेष्टजीवन के देतेरहे कि जिसकी प्राप्ति के अर्थ बड़े २ देवता ऋषि राजा आदि नानाप्रकारके यज्ञादि कर्म उपासना तप योगादि करते हैं परन्तु यथेष्ट निर्विघ्न फलप्राप्ति के विषयमें संशययुक्तही रहतेहैं सो पदार्थ विनाही श्रमके नचिकेताको प्राप्तहोतेरहे तथापि वो आत्मकामा परम वैराग्यवान् परम धैर्यवान् परम विवेकवान् सर्वोत्तमाधिकारी नचिकेता सो मृत्युकरके उत्पन्नकराये लोभन के क्षोभनवश न होयके सुमेरुवत् अचलचित्त अपने धैर्य में स्थित रहा अरु वाणीद्वारा मृत्युभगवान्से कहता भया २५॥

मंत्र छब्बीसवां॥

नचिकेताउवाच॥ हे भगवन् जो यह पदार्थ आप मुझको देतेहो सो सर्व उत्तम मध्यम होतसंते सन्मार्ग के रोकनेवाले हैं ताते मेरे कामके नहीं हे प्रभो "श्वोभावामर्त्त्यस्ययदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्तितेजः" [हे अन्तक संशययुक्त भाववाले जो यह (स्त्री आदि) सर्वमनुष्यों के इन्द्रियनके तेजको नाश

करे है] अर्थात् हे भगवन् हे सर्वके अन्तकर्त्ता हे मृत्यो कधी हैं कधी नहीं हैं इसप्रकार का संदिग्ध है भाव जिनका सो कहिये श्वोभावा। ऐसे जो यह अप्सरादि उत्तम मध्यम पदार्थ आपदेते हैं सो सर्व संदिग्ध हैं ये सर्वदा रहते नहीं पुनः यह सर्व पदार्थ कैसेहैं सुखरूप हुयेसन्ते दुःखके दाता हैं अरु मनुष्योंके जे बुद्धि आदि इन्द्रियां हैं तिनका जे तेज पुरुषार्थ शक्ति तिनसर्वको क्षय करनेवाले हैं। अर्थात् इसलोक परलोक के जे उत्तम मध्यम विषय भोग्य हैं सो सर्वही धर्म वीर्य प्रज्ञा तेज यशआदि शुभगुण तिनके क्षयकर्त्ता मित्ररूप वैरी हैं ताते हे भगवन् जो जो पदार्थ आप श्रेष्ठजान के मुझको देतेहो सो सर्व श्रेयमार्ग के अवरोधी अनर्थ का मूल हैं ताते हमारे काम के नहीं अरु हे भगवन् "अपि सर्व्वंजीवितमल्पमेव"। [निश्चयकरके सर्वआयु अल्पहीहै] अर्थात् यह भी जो आप हमको कहतेहो कि मैं तुझको यथेष्ट काल पर्यन्तका जीवन देताहों सो भी तू ले तहां भी श्रवणकरो हे भगवन् ब्रह्मा से आदिलेके मशक पिपीलिकादि अतिअल्पायु जीव पर्यन्तके जीवन जे आयु सो अल्पहीहैं क्योंकि एककी अ-पेक्षा से दूसरेका आयु अधिक है अरु एककी अपेक्षा दूसरे का आयु अल्प है ताते सर्वके आयु सापेक्षक होनेसे अल्पही हैं ताते बहुत जीवना भी हमारे कामकानहीं एतदर्थ हे भगवन् "तवैव वाहास्तवनृत्यगीते"। [तुम्हारो रथ नृत्यगीतादि तुमकोहीरहो] अर्थात् आपके जे दिव्य अप्सरा रथ नृत्य गीत वादित्रादि भोग्य सामग्री जो आप मुझको देतेहो सो सर्व आपके आपकोही रहो। यह सन्मार्गके रोकनेवाले हमारे काम के नहीं २६ ॥ हे सौम्य इस प्रकार वो परम विवेकी नचिकेता मृत्यु भगवान से कहके पुनः कहताभया ॥

मंत्र सत्ताईसवां ॥

हेभगवन् आप जो मुझको राज्यादि विभूति देतेहो तहां "न

नवित्तेनतर्पणीयोमनुष्यो लप्स्यामहेवित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामोयावदीशिष्यसित्वं वरस्तुमेवरणीयःसएव २७॥

वित्तेनतर्पणीयोमनुष्यो "। [मनुष्य धनकरके तृप्ति करने योग्य नहीं] अर्थात् मृत्युलोकके निवासी जो मनुष्य सो विशेष करके धनादिकों के लाभ से तृप्त होते नहीं। अर्थात् संसार बिषे जो विशेष वित्तका लाभ है सो पुरुषको तृप्तिकर नहीं किन्तु तृष्णा रूप अग्निका बढ़ावनेवाला वायुहै तातें मैंने इसका त्यागकिया है क्यों जो जिस पुरुषको तृष्णारूपी अग्नि लगा है तिसको वो जन्म जन्मान्तर पर्यन्त जलावताही रहताहै शान्त कदापि होने देता नहीं अरु देखनेमें सुन्दर है तातें यही शीतल अग्निहै लगे पीछे बुझता नहीं ऐसे तृष्णारूप अग्निको मेरा नमस्कारहै "। लप्स्यामहेवित्तमद्राक्ष्मचेत्त्वा "। [वित्तको देखैंगे जब हम आपको देखतेभये] अर्थात् हे भगवन् जोकि विभूति आप मुझको देते हौ सो सर्व मुझको प्राप्तहै क्योंकि अन्य मनुष्यादिकनको आपकी प्रतिमा मंत्र आदिकन की सेवामात्रही से प्राप्त होती है अरु मैंने तो साक्षात् आपका दर्शन कियाहै तिसके प्रभावसेही मुझ कोनिर्यत्न सहजही त्रैलोक्यकी सर्व विभूति पाईहीहै तातें राज्य पुत्र वित्त अप्सरादिकोंके अर्थ आप ऐसे उदार दर्शनसे वरदान मांगना बने नहीं। अरु आपने कहा कि बहुतसा जीवनले सो हे भगवन् "जीविष्यामोयावदीशिष्यसित्वं"।[यावत् (यमपदबिषे) तुम (स्वामी) स्थित रहोगे (तावत्) हम जीवेंगे] अर्थात् जब सर्वके मृत्यु आप सो मुझपर प्रसन्नहौ तब मुझको मारनेवाला कौनहै किन्तु कोई नहीं तातें हेभगवन् जबतक यमपदबिषे आप स्वामित्व भावको प्राप्तहौ तावत् आपकी प्रसन्नता के हेतुसे मैं सहजही जीवतारहोंगा तातें चिरकाल जीवने के अर्थभी आपसे वरदान मांगना योग्य नहीं एतदर्थ हेभगवन् "। वरस्तुमेवरणी-

अजीर्य्यताममृतानामुपेत्यजीर्य्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदा नतिदीर्घे जीवितेकोरमेत २८ ॥

यःसएव " [मुझकरके मांगने योग्य वरतो सोईहै अर्थात् मुझ जिज्ञासु करके याचनाकरने योग्य जो वरदानहै सोतो एकआत्म-विज्ञानही है । ताते हेभगवन् यह जो वित्तादिकों का लोभ आप देखावते हो सो तृष्णारूपी अग्निका बर्द्धक है ताते अब इसको परित्याग करके कृपापूर्वक मुझको एक आत्मविज्ञानही प्रदान कीजिये २७ ॥ हे सौम्य इसप्रकार सर्व ऐश्वर्य के त्याग पूर्वक आत्मविद्याकीही याचनाकर पुनः कहताभया ॥

मंत्र अट्ठाईसवां ॥

हे भगवन् श्रवणकरिये " अजीर्य्यताममृतानामुपेत्यजीर्य्यन्मर्त्त्यःक्वधःस्थःप्रजानन् " [आयुकी हानिको न प्राप्तहोनेवाले देवनके समीपजायके जाननेवाला जरामरणवान् पृथिवीरूपी अधःस्थलबिषे स्थितभया (अस्थिर वस्तुको कैसेमांगेगा न मांगे-गा) अर्थात् जिनकी वय क्षीणनहीं होती ताते जरा अरु मरण भावको नहीं पावते ऐसे जे अजर अमर देवता तिनको प्राप्तहो करके तिनके सकाशसे जो अति उत्कृष्ट ब्रह्मविद्याप्राप्तिरूप अपना परम प्रयोजन प्राप्तकरने योग्य है तिसको जाननेवाला जिज्ञासु आपजरामरणादि धर्मवान् सो अन्तरिक्ष लोककी अपे-क्षा अधोलोक जे मर्त्त्यलोक तिसका रहनेवाला होयके जो कदापि अनेक पुण्योंके संस्कार ईश्वरकृपासे सत्यासत्य विवेक-वान् भया तिस विवेकी पुरुषकरके यह पुत्र वित्तादि अस्थिर नाशवान् पदार्थ हैं सो कैसे प्रार्थनीयहोय अर्थात् वरदान करके मानने योग्यहोगा किन्तु कदापि न होगा " अभिध्यायन्वर्णरति प्रमोदान् " [रंगप्रीति अप्सरादि प्रमोद इनको अनित्य निरूपण करताभया] अर्थात् हे भगवन् अपने रंगरूप सौन्दर्य्यादि दिव्य

यस्मिन्निदंविचिकित्सन्ति मृत्योयत्साम्परायेमहति ब्रूहिनस्तत् । योऽयंवरोगूढमनुप्रविष्टोनान्यन्तस्मान्नचिकेता वृणीते २९ ॥

इतिप्रथमाध्यायेप्रथमावल्लीसम्पूर्णाशुभम् १ ॥

गुणोंकरके पुरुषकी प्रीति तिसबिषे होनेसे विषयानन्दका मुख्य कारण अप्सरादि दिव्य विषय भोग्य विषय सुखके देनेवाले सो भी अनवस्थितरूप करके वेदादिकोंने निरूपणकिया है । तथाच "पुण्यचितोल्लोकःक्षीयते„ "कर्मचितोलोकः क्षीयते„ । अरुतैसे ही विशेष जीवना है क्योंकि यावत् इस अस्थि मांस मलमूत्रमय शरीरबिषे आस्था (सत्यबुद्धि) है तावत् विशेष जीवने की इच्छाहै सो अविवेकतासे है अरु जब विवेक करके इस शरीरके स्वरूप अवस्था विनाशको भलीप्रकार देखके जानलिया है तब "दीर्घे जीवितेको रमेत " [कौन अतिशय जीवनेबिषे रमेगा] अर्थात् कौनसा विवेकी पुरुष बहुत कालपर्यन्त जीवने के अर्थ इच्छाकरेगा किन्तु कोई भी न करेगा । तातें हे भगवन् यह जो अनित्य अस्थिर धर्मप्रज्ञाके हरणकर्त्ता विषय भोग तिसके लोभ देखावनेको त्यागके जिस आत्मविज्ञानके अर्थ मेरी प्रार्थना है सोई आप मुझको प्रदान करिये ॥ यही बारंबार विनयहै २८ ॥

मंत्र उन्तीसवां ॥

हे भगवन् प्रथम आपने कहाकि इस आत्म विज्ञान विषयक देवता आदि सर्व बड़े २ पण्डित होत संतेभी संशय युक्तहीरहते हैं तातें तू आत्मविज्ञानको छोड़के अन्य वरदान मांग । सो हे प्रभो "यस्मिन्निदंविचिकित्सन्ति मृत्योयत्साम्परायेमहति ब्रूहिनस्तत् " [हे मृत्यो जिसमृतकके बिषे बड़ी परलोककी गति विषयमें यह संशयको करतेहैं तिसको मेरेअर्थ कहो] अर्थात्

हेअज्ञान सम्पत्तिके नाशकर्त्ता हेमृत्यो जिसमृतकके बड़े प्रयोजन परलोककी गतिविषे संशयको करते अस्ति नास्ति नानाप्रकार आत्माको मानतेहैं । अथवा हे मृत्यो इसमरणधर्मा शरीर विषे यहजो अस्तिनास्तिरूप संशय करते हैं अर्थात् कोई कहताहै कि शरीरसे भिन्न परलोकमें सुखदुःखका भोक्ता आत्माहै, कोई कहता है सो नहीं है, यहशरीरही आत्माहै, कोई कहताहै नहीं, यह इन्द्रिय आत्माहै, कोई कहता है नहीं, यह प्राणआत्मा है, कोई कहता है नहीं, यह मन आत्मा है, कोई कहता है नहीं, यह बुद्धि आत्माहै, कोई कहता है नहीं, । हे भगवन् इस प्रकार आत्मज्ञान विषयक संशययुक्तहुये नानाकल्पना करते हैं सो इनकल्पना के निर्णयद्वारा महत्प्रयोजन जे परलोककीगति अर्थात् लोककहिये शरीरादि वा स्वर्गलोकादि तिनसे पर जो आत्मा तिसकी प्राप्त्यर्थ जो आत्मविज्ञान ब्रह्मविद्या सो आप कहिये । हे भगवन् बहुत कहनेसे क्याहै " योऽयंवरोगूढमनुप्रविष्टोनान्यंतस्मान्नचिकेतावृणीते " इति । [जोयह वर दुःखसे विवेचनको प्राप्तभया प्रवेशको पायाहै तिससे अन्य नचिकेता मांगता नहीं] अर्थात् जो यह प्रत्यगात्मविषयक वरदान गूढ कहिये जिसकायथार्थ विवेचनकरना देवतादिकों करकेभी कठिन है (तहां साधारण मनुष्योंकी क्या वार्त्ता है) तिसआत्म विद्यासे व्यतिरिक्त जे इसलोक परलोकादिकोंके विषयभोग्य जो अज्ञानी अविवेकी विषयी पुरुषोंकरके प्रार्थनीय सो आपका नचिकेता नाम विद्यार्थी मांगता नहीं ॥ ताते हे प्रभो अब कृपा करके आत्मविज्ञान उपदेश करिये २९ ॥

इति भाषाटीका प्रथमाध्याय प्रथमावल्ली समाप्ता ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्म १

ॐ अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैवप्रेयस्तेउभे नानार्थेपुरुषछं सिनीतः । तयोःश्रेयआददानस्यसाधुभवति हीयतेऽथाद्यउप्रेयोवृणीते १ ॥

मंत्र पहिला ॥

ॐ नमोभगवते वैवस्वताय ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य इस द्वितीयावल्लीविषे श्रेयः प्रेयःरूप उभय मार्गका अरु तिनकेफलादिकोंका निर्णयहोगा तिसकोभी श्रवणकरो ॥

मृत्युरुवाच ॥ हेनचिकेतः यह जो मैंने तेरेप्रति कहा है सो मुमुक्षुकी परीक्षाके अर्थ कहाहै अरु मोक्षका मार्ग तो कोई और हीहै। हेनचिकेतः इस संसारबिषे दोमार्ग हैं एक विद्यारूप दूसरा अविद्यारूप तिनको श्रेयः प्रेयः नामसे भी कहते हैं तहां "। अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैवप्रेयस्तेउभेनानार्थेपुरुषछं सिनीतः ।" [श्रेयः अन्यहै प्रेयःभी अन्यही है सो दोनों भिन्न प्रयोजनके होते पुरुषको बांधते हैं] अर्थात् विद्यारूप श्रेयः मार्ग मोक्षकी ओरको लेजाताहै अरु अविद्यारूप प्रेयःमार्ग सो संसारकी ओरही लेजाता है ताते यह श्रेयः प्रेयः मार्ग पृथक् २ प्रयोजनबिषे हैं परन्तु सो तैसे होतसन्ते भी पुरुषको बांधतेहैं अर्थात् वर्णाश्रमादिकोंकरके युक्त पुरुष अपने २ संस्कारके आश्रय अपने २ अधिकार से अपनेबिषे कर्त्तव्यता के अभिनिवेश करके श्रेयः प्रेयःसे बद्ध हैं। अरु हेनचिकेतः यह जो श्रेयः प्रेयः विद्या अविद्यारूप मार्गहैं सो पृथक् २ पुरुषार्थ सम्बन्धीहैं ताते इनका परस्पर तेजः तिमिरवत् विरोधहै ताते विना एकके त्यागकिये एक पुरुषकरके इनका समुच्चय अनुष्ठान बने नहीं ताते उन उभयमार्गके अनुष्ठान करनेवालोंमें से जो अपने हितार्थ "। तयोःश्रेयआददानस्यसाधु भवति ।" [तिन दोनों बिषे श्रेयके ग्रहण करनेवालेका कल्याण होताहै] अर्थात् श्रेय प्रेय दोनों मार्गोंमेंसे अविद्यारूप प्रेयमार्गको त्यागके जो विद्यारूप श्रेयमार्गको आश्रय करनेवाले हैं तिनका

श्रेयश्चप्रेयश्चमनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्याविविनक्ति धीरः । श्रेयोहिधीरोऽभिप्रेयसोवृणीतेप्रेयोमन्दोयोगक्षेमाद्वृणीते २ ॥

परम कल्याण होताहै ताते हेनचिकेतः तू धन्यहै जो प्रेयमार्गको त्यागके श्रेयके सन्मुख भयाहै यह श्रेयमार्ग मोक्षको प्राप्तकरता है इस मार्गविषे तुम्ह सारिखे कोई बिरलेही चलते हैं । अरु हे नचिकेतः "हीयतेऽर्थाद्यउप्रेयोवृणीते" [जो प्रेयको ग्रहणकरताहै सो पुरुषार्थसे वियोग पावता है] अर्थात् जो अदूरदर्शी विषयकामना करके विमूढभये अविवेकी सकामी पुरुष अज्ञानवश अविद्यात्मक प्रेयमार्गको आश्रय करते हैं सो अपने मोक्षसाधक पुरुषार्थ से वियोग पावते हैं अर्थात् दूरसे दूर चलेजाते हैं १ ॥

प्र० हे प्रभो जब कि पुरुषन करके श्रेय प्रेय दोनोंही सेवनीय हैं तब लोकविषे श्रेयको त्यागके बहुधा प्रेयकोही आश्रय करते हैं तिसका क्याहेतु है सो आप कृपा करके कहिये ॥

मंत्र दूसरा ॥

हे नचिकेतः मन्दबुद्धि अविवेकी पुरुषको साधन फलादिकों करके श्रेय प्रेयका परस्पर भेदहोतेसन्ते भी इनका समुच्चयभासे है ताते "श्रेयश्चप्रेयश्चमनुष्यमेतस्तौसम्परीत्यविविनक्ति धीरः" [श्रेय अरु प्रेय मनुष्यको प्राप्तहोते हैं धीरतिनको सम्यक् देखके भिन्नकरता है] अर्थात् हे नचिकेतः यह श्रेय अरु प्रेय दोनोंमार्ग इसमनुष्यको प्राप्त हैं परन्तु तिनका जो परस्पर भेद है सो सर्वको विदित नहीं तहां जो धीर सविवेकी पुरुष है सो उन श्रेय प्रेय दोनोंको भलीप्रकारसे गुरुशास्त्र अनुभवद्वारा विचार देखके विद्या अविद्याको पृथक् २ करता है तिन विवेचन किये श्रेय प्रेय मार्गोंमेंसे हे नचिकेतः "श्रेयोहिधीरोऽभिप्रेयसो वृणीते" [सो धीर प्रेयसे भिन्न श्रेयकोही ग्रहणकरै है] अर्थात् सो तुम्हसारिखे धीर परम धैर्यवान् विवेकी पुरुष विद्या (आत्म

सत्वंप्रियान्प्रियरूपांश्चकामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः । नैताꣳसृङ्कांवित्तमयीमवाप्तोयस्यांमज्जन्तिबहवोमनुष्याः ३ ॥

ज्ञान } रूप श्रेय मार्गकोही अपने परमप्रयोजन मोक्षार्थ आश्रय करते हैं । हे सौम्य यह श्रेय मार्गही परमपुरुषार्थ का साधनहै । अरु हे नचिकेतः "प्रेयोमन्दोयोगक्षेमाद्वृणीते" [मन्दपुरुष योगक्षेमसे प्रेयको ग्रहणकरै है] अर्थात् मन्दबुद्धि अविवेकी सकामी पुरुष योगक्षेमकी कामनासे तहां अप्राप्तवस्तुकी प्राप्तियोग अरु प्राप्तवस्तुकी रक्षा क्षेम तिसकी अभिलाषा से भया जो विवेक का अभाव तिसकरके प्रेयको जोकि पुत्र पशु धनादि लक्षणरूप फलोत्पादक कर्म तिसहीको, श्रेष्ठजानके आश्रय करते हैं ॥ हे नचिकेतः ऐसे अविवेकी सकामी मन्दपुरुष का आश्रय अरु संग त्यागके निकसिआया है ताते तू धन्य है तेरे ऐसे अधिकारी पूजनेयोग्य हैं २ ॥

मंत्र तीसरा ॥

हे नचिकेतः "सत्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः" [हे नचिकेतः सो तू प्रिय अरु प्रिय रूप भोग्यनको चिन्तनकरता हुआ त्यागताभया] अर्थात् सो तू कि जिसको मैंने नानाप्रकार के उत्तम मध्यम भोग्य पदार्थ जो देवताओंको भी दुर्लभ तिनका लोभ देखाया तथापि अपने धैर्य से चलायमान न भया अरु मनुष्यादि सर्वको प्रिय जे पुत्र वित्तादि अरु सर्व देवताओंको प्रियरूप जे अप्सरादि तिन सर्वकरके लोभ देखाया परन्तु तिन सर्व भोग्यपदार्थों को तैंने विचार से विवेचनकरके उनविषे अनित्य असारत्वादि दोषोंकोदेखके अपने बिषे तिनकी कामना का त्यागहीकियाहै कि जिसकी अभिलाषा करते देवता ऋषि मुनि पंडितआदि बड़े २ गलतान होरहे हैं

दूरमेतेविपरीतेविषूचीअविद्यायाचविद्येतिज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनन्नचिकेत संमन्येनत्वाकामा बह्वोलोलुपन्तः ४ ॥

एतदर्थ भी तू धन्यहै। हे सर्व बुद्धिमानों विषे श्रेष्ठ "नैताꣳसृङ्काम् वित्तमयीमवाप्तोयस्यांमज्जन्तिबहवोमनुष्याः "। [इसबहुत धनयुक्त कर्मकीगतिको प्राप्त न भया जिसबिषे बहुत से मनुष्य डूबतेहैं] अर्थात् प्रेयमार्ग करके प्राप्य बहुतसे पुत्र वित्त राज्यादि धनयुक्त कर्मगतिरूपा कुत्सितनदीको तू प्राप्त न भया कि जिस कर्मलक्षणात्मक अविद्यारूप नदीबिषे बहुतसे अविवेकी सकामी पुरुष निरन्तर अनिवार्य डूबते चलेजाते हैं । ताते हे नचिकेतः तू धन्य है सर्वप्रकार पूजने योग्य है तुझ ऐसे प्रेयके त्यागीपुरुष संसारमें दुर्लभ हैं हे नचिकेतः तुझ जैसे श्रेयमार्ग को आश्रय करनेवाले पुरुषको परमकल्याणरूप आत्मपदकी प्राप्तिहोती है३॥

प्र० ॥ हेभगवन् इन श्रेय अरु प्रेयका क्या भेदहै सो आप कृपा करके कहिये ॥

मंत्र चौथा ॥

हे नचिकेतः ॥ श्रवणकरो "दूरमेतेविपरीतेविषूचीअविद्यायाच विद्येतिज्ञाता "। [यहदोनों अन्तराय से परस्पर भिन्नरूप नानागतीवालियां हैं (अरु) जो विद्या अरु अविद्याहै सो जानी है जिन्होंने] अर्थात् यह श्रेय प्रेयरूप विद्या अविद्या सो दोनों परस्पर महत् अन्तरायसेहैं अरु नानागतिकरके भिन्न २ फलकी हेतुहैं अर्थात् विद्याजोहै श्रेयो विषया सो अपने वैराग्यादि साधन युक्त होनेसे मोक्ष के हेतु है। अरु अविद्याजोहै प्रेयो विषया सो अपने साधन कर्मकामनादिकों करके युक्तहोनेसे जन्म मरणरूप संसारका हेतुहै ताते इन विद्या अविद्याका परस्पर महत् अन्तर है। जैसे सती अरु वेश्याका जैसे तेज अरु तिमिरकाभेदहै तैसे। अरु जो श्रेयविषया विद्याहै अरु प्रेयाविषया अविद्याहै तिनदोनों

अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयंधीराःपंडितंमन्यमानाः । दन्द्रम्यमानाःपरियन्तिमूढाअन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ५ ॥

को वेदशास्त्रसे ज्ञातकियाहै जिन्होंने तिनज्ञाता पंडितोंमें "। विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसंमन्येनत्वाकामाबहवोलोलुपन्तः"। [नचिकेताको विद्याकाअर्थी मानताहौं जो बहुत भोगभी तुझको चलायमान न करतेभये] अर्थात् जो अपनेपिताके हितमें श्रद्धासम्पन्न अपने शरीरपर्यन्त भी अर्पणकरनेवाला अरु प्रेयके विषयोंसे वैराग्यवान् श्रेयोभिलाषी जो नचिकेतानाम बालक ब्रह्मचारी है तिसको विद्याका अर्थी मैं मानताहौं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् आप मुझको विद्या का अधिकारी क्यों मानतेहौ ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः जो बड़े २ धीर पंडितों की भी बुद्धिमें लोभकरानेवाले अप्सरादि उत्तमोत्तम दिव्य भोग्य तिन करके तेरी परीक्षा के अर्थ मैंने नानाप्रकार लोभ देखाया तथापि वो दिव्य भोग्य तुझको अपने धैर्यसे चलायमान न करसके एतदर्थ आत्मविद्याका अधिकारी तुझको मैं मानताहौं ॥ हेनचिकेतः इस आत्मविद्याके अधिकारी तेरेऐसे अति दुर्लभहैं जोतू प्रेय विषयों करके चलाया भया श्रेय के अर्थ से चलायमान न भया ताते धन्यहै ४ ॥

मंत्र पांचवां ॥

हेनचिकेतः प्रेय मार्गके चलनेवाले संसारपात्र पुरुषहै अर्थात् जिनके अन्तःकरण बिषे पुत्र पशु वित्त राज्यादि नानाप्रकार के विषय भोग्यपदार्थ रूप संसार कामना रूपसे निरन्तर रहता है । अरु आप इस संसारबिषे नानाप्रकारके उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीर धारण करते रहतेहैं ऐसेजे संसारपात्र सकामी पुरुष हैं सो सर्वदाही "अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः स्वयंधीराः पंडितं मन्यमानाः"। [अविद्याके मध्य वर्त्तमान भये आपको धीर पंडित ऐसे

नसाम्परायःप्रतिभातिबालम्प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ॥ अयंलोकोनास्तिपरइतिमानीपुनःपुनर्वशमापद्यतेमे ६ ॥

मानते हैं] अर्थात् अन्धकार के मध्य पदार्थवत पुत्र वित्त विषयादि रूप अविद्याके मोहपाश करके (रेशम के कीटवत्) सर्व ओरसे वेष्टित होरहेहैं तिस दशापरभी अपने आपको बड़े धीर बुद्धिमान् वेदशास्त्रादि विद्याविषे परम कुशल पंडित मानतेहैं। हे नचिकेतः ऐसेजे पुरुष हैं सो "। दन्द्रम्यमाणाःपरियान्तिमूढाअन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः "। [मूढ अत्यन्त कुटिल अनेक रूपगतिवाले सर्वओर भ्रमतेहैं (जैसे) अन्ध पुरुष करकेही जातेहुये बहुतअन्धे] अर्थात् अत्यन्त मूढहैं जो अर्थविषे अत्यन्त कुटिल नानागतिकोधारणकर संसारमें विचरतेहैं तिसकरके जन्ममरण जरारोगादिदुःख युक्त शरीरों में भ्रमते हैं (जैसे चक्षुविहीन (अन्ध) पुरुष करकेही पहुंचाये गये दृष्टि विहीन जे अन्धे सो गर्त कंटक पर्वत पाषाण कूपादि विषम स्थानोंमेंगिरकेदुःखपावतेहैं तैसे) ॥ताते हेनचिकेतः जिन आचार्यको श्रेयः प्रेयःके विवेकरूप चक्षू नहीं सोअन्धे आचार्य हैं तिनके उपदेशानुसार चलनेवाले जे पुरुष हैं सो अपने अन्धे आचार्यको अग्रसर करके तिनके अनुगामी हुये पुत्र वित्तादिकोंके मोहरूप गर्तविषे गिरतेहैं अरुजन्म मरणादि रूप कंटक पाषाणादिकों को पाय अनिवार्य क्लेश भोगते हैं। ऐसे अविवेकी मूढअन्धे आचार्योंके वाक्यपाशसे तू निकसिआया है एतदर्थभी तू धन्यहै ॥ ५

मंत्र छठां ॥

हे नाचिकेतः "। न साम्परायःप्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्त मोहेन मूढम् "। [साम्पराय प्रमाद के करनेवाले धन निमित्त से अविवेककरके मूढभये बालक को प्रतिभासता नहीं] अर्थात् परलोक अरु तिसकी प्राप्तिका साधन शास्त्रोंकरके प्रका-

श्रवणायापिबहुभिर्योनलभ्यः शृण्वन्तोऽपिबहवोयन्न विद्युः । आश्चर्य्योवक्ताकुशलोऽस्यलब्धाऽऽश्चर्य्योज्ञाताकुशलानुशिष्टः ७ ॥

शित शास्त्रीय साम्पराय (आम्नाय) सो अविवेकी शास्त्रहीन बालबुद्धि पुरुष के प्रति प्रकाशता (दीखता) नहीं तिसकारण से शास्त्रोक्त क्रियाबिषे प्रमादकर्त्ताहै अर्थात् करनेको समर्थहुआ भी नहींकरता ताते प्रेय वित्त पुत्रादिकों के मोहकरके अत्यन्त अविवेकताको प्राप्तभया है । सो शास्त्रिय आम्नायका अनभिज्ञ प्रमादी अतिमूढ़पुरुष ऐसा कहताहै कि " अयं लोकोनास्तिपर इति मानी " [यह लोक है दूसरा नहीं ऐसा माननेवाला] अर्थात् यह जो दृश्यमान वित्त पुत्र कलत्रादि विषय भोग्य अरु अन्नपानादि विशिष्टशरीर सोईसत्य है इससे इतर स्वर्गादि लोक अरु तद्विशिष्ट शरीर जो अदृश्यमान सो नहीं है । हे नचिकेतः इसप्रकारका माननेवाला अविवेकी मूढ नास्तिकपुरुष है सो "पुनः पुनर्वशमापद्यतेमे " [बारम्बार मेरे वशको प्राप्तहोताहै] अर्थात् बारम्बार संसार बिषे पशुपक्षिआदिकों के जन्मपाय में जो मृत्युहौं तिस मेरे वशहोता है अर्थात् अनिवार्य संसृति को भोगता है ६ ॥

मंत्र सातवां ॥

हे नचिकेतः श्रेयो मार्गकरके प्राप्य जोआत्मा तिसको यथार्थ जाननेवाला लाखोंमें कोई एक बिरला होता है एतदर्थ " श्रवणायापिबहुभिर्योनलभ्यः । [यह (आत्मा) बहुतोंकरके श्रवण करनेको भी प्राप्तहोने योग्यनहीं] अर्थात् जिसके विज्ञानार्थ तेरी प्रार्थना है सो यह आत्मा अनेक जे प्रेयमार्ग के चलनेवाले सकामी मूढ पुरुष हैं तिन्होंकरके तो श्रवणकरनेमात्रको भी प्राप्त नहीं । अरु " शृण्वन्तोऽपिबहवोयन्नविद्युः " [बहुतसे सुनते हुये भी इसको जानते नहीं] अर्थात् जो किंचिन्मात्र उत्तमस-

ननरेणावरेणप्रोक्तएषसुविज्ञेयोबहुधाचिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्तेगतिरत्रनास्त्यणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ८॥

स्कारी पुरुष हैं सो कदापि आत्माको श्रवण भी करते हैं तथापि वैराग्यादि साधनों की न्यूनता से स्वभाव दोषकरके इसप्रकृत आत्माको जानते नहीं । ताते हे नचिकेतः तू यह निश्चयकरके जान जो " आश्चर्य्योवक्ताकुशलोऽस्यलब्धाऽऽश्चर्य्योज्ञाताकुशलानुशिष्टः " [(आत्माका) वक्ता आश्चर्यरूपहोताहै (अरु) इसको प्राप्तहोनेवालानिपुणहोताहै] अर्थात्निपुणसे शिक्षाकोपायाभयाज्ञाता आश्चर्यरूपहोताहै]अर्थात्इसआत्माकायथार्थकहनेवाला आश्चर्यरूपहै तैसेही अनेकश्रोताओंकेमध्य इस आत्माको मनन अभ्यास करके प्राप्तहोनेवाला आत्मवेत्ताओंमें निपुण होताहै सो भी आश्चर्यरूप है । अर्थात् हेनचिकेतः वेद शास्त्रको जाननेवाले यथार्थ आत्मानुभवी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से शिक्षित आत्मानुभवी पुरुष आश्चर्यरूपहै ७ ॥ प्र० ॥ हेभगवन् आप ने आज्ञा किया कि निपुण आचार्य के उपदेशद्वारा यथार्थ आत्मानुभवी पुरुष कोई एकाविरले होतेहैं तिसका हेतु क्या ॥

मंत्र आठवां ॥

हेनचिकेतः " ननरेणावरेणप्रोक्त एषसुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः " [अनेक प्रकारसे चिन्तन कियाहै जिसने (तिस) अश्रेष्ठ पुरुष करके कहाभया यह (आत्मा) सम्यक् जाननेको अशक्य है] अर्थात् बहुत प्रकारसे आत्माको अस्ति नास्ति कर्त्ता अकर्त्ता शुद्ध अशुद्ध चैतन्य जड़आदि प्रकारसे अपनी २ कल्पना करके निश्चित कियाहै जिन्होंने तिन वेदबाह्य तर्कादिलके स्वकल्पित मतवादी आचार्यों से उपदेश कियाभया यह सर्वका प्रत्यगात्मा कि जिस विषयक तेरा प्रश्नहै सोसंशय विपर्ययसे रहित साक्षात्अनुभव होना अशक्यहै प्र० ॥ हेभगवन् जब वेदबाह्य कल्पित

नैषातर्केणमतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैवसुज्ञानायप्रेष्ठ। यान्त्वमापःसत्यधृतिर्बतासी त्वादृङ्नोभूयान्नाचिकेतः प्रष्टा ९ ॥

मतवादी अश्रेष्ठ आचार्यों के उपदेश से सम्यक् प्रकार आत्मा जानाजाता नहीं तब किन आचार्यों के उपदेश से यह आत्मा सम्यक् प्रकार जानाजाता है। उ०॥ हे नचिकेतः "। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्रनास्त्यणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्"। ब्रह्मके स्वरूप भत अनन्यदर्शीकरकेकहेभयेइसआत्माबिषेगतिचिन्तानहींहै (क्योंकि) परमाणुसे भी अतिशय सूक्ष्महै (ताते) अतर्क्यहै] अर्थात् जेअनन्य दर्शी ब्रह्मआत्माकी अभेदताको प्राप्तभये आचार्य तिनके उपदेश से यथार्थ सम्यक् आत्मज्ञान होताहै सो आत्मा कैसाहै कि अनेकबहिर्मुख आचार्यों करके अस्ति नास्ति कर्त्ताअकर्त्ता शुद्ध अशुद्ध सगुणनिर्गुणादि करीगईजे अनेक कल्पनासो कल्पनारूपी गति इसबिषे नहींहै क्योंकि परमाणुके प्रमाणसे भी आत्मा महासूक्ष्म है इसही हेतुसे तर्कादिकोंका विषयनहीं अर्थात् कोईएक आचार्य स्वबुद्धि की कल्पना से आत्माको परमाणुके प्रमाण कहते हैं परन्तु सो आत्मा आकृति परिमेयता नाम रूप इत्यादि परमाणुरूप द्रव्यके धर्मसे रहित महासूक्ष्म है ताते अतर्क्यहै इसही से केवल ब्रह्म आत्माके अभेदानुभवी अनन्यदर्शी आचार्यके उपदेशसेही अपनेआप प्रत्यगात्माकी साक्षात् सम्यक् प्राप्ति होतीहै तिनसे इतर जे वेदबाहर अपनी कल्पनासे कहनेवाले भेददर्शी और पुरुषहैं तिनके उपदेशसे आत्म साक्षात्कार कदापि नहीं ८॥

मंत्र नववां ॥

हेनाचिकेतः एतदर्थ श्रुति प्रमाणसे अनन्यदर्शी जे आत्मनिष्ठ आचार्यहैं तिनकरके प्राप्तभयी जे आत्मविषयिणी बुद्धि सो "नैषा तर्केणमतिरापनेयाप्रोक्ताऽन्येनैवसुज्ञानायप्रेष्ठ "। [यह मति तर्क करके प्राप्त होनेयोग्यनहीं हेअतिप्रिय अन्य आत्मवेत्ता कर-

जानाम्यहꣳशेवधिरित्यनित्यंनह्यध्रुवैः प्राप्यतेहीध्रुवन्तत् ।ततोमयानाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मिनित्यम् १० ॥

केहीं कहभियी सम्यक् ज्ञानार्थ होतीहै] अर्थात् यह आत्म विषयिणीमति स्वबुद्धि कल्पित तर्कादिकों करके प्राप्तहोनेयोग्य नहीं हेप्रियदर्शन नचिकेतः जेवेदसे बाहर स्वकल्पनासे कहनेवाले जे तार्किकादि तिनसेअन्यहीजे श्रुतिवाक्यानुसारयथार्थदर्शी आत्मवेत्ता आचार्य हैं तिन करके उपदेश कीगई जे आत्मविद्या सो सम्यक् आत्मज्ञान के अर्थ कि जो परम पुरुषार्थ है होती है ॥ प्र०॥ हेभगवन् तर्कादिकों से अप्राप्त जे मति सो कौनसीहै ॥ उ० हेनचिकेतः "।यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासित्वादृङ्नोभूयान्नचिकेतःप्रष्टा"। [जिसको तू प्राप्तभया है (तू) सत्यधृतिवाला है हेनाचिकेतः तेरेतुल्य मेरेअर्थ प्रश्नकर्त्ता अन्यहोय]अर्थात्हमारे वरदान करके जिस मतिको आप प्राप्तभये हौ सो कैसी मति है कि सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ विषयकरनेवाली है ताते तू सत्यधृतिवालाहै ॥ हेसौम्य उक्तप्रकार नचिकेताकी प्रशंसाकरते जे भगवान् वैवस्वत सो प्रसन्नता पूर्वक कहतेभयेकि हेप्रियदर्शन नचिकेतः मैं इच्छता हूं कि तेरेही तुल्य अधिकारी मेरेप्रति आत्मविद्याके प्रश्नकर्त्ता प्राप्तहोय अर्थात् हेनचिकेतः जैसा आत्मविद्याका प्रश्नकर्त्ता अधिकारी तू है तैसे अन्यभी शिष्य वा पुत्र प्रश्नकर्त्ता अधिकारीका सत्संग मुझको प्राप्तहोता रहो ९ ॥

मंत्र दशवां ॥

हेनचिकेतः "।ज्ञानाम्यहꣳशेवधिरित्यानित्यं"। [निधि अनित्य है ऐसे मैं जानताहौं] अर्थात् यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्मोंका फलजे स्वर्गादि लोकरूपी निधि सो सर्व अनित्यहीहै ऐसेमैं जानताहौं। अरु यह भी जानताहौं जो "।नह्यध्रुवैःप्राप्यतेहीध्रुवन्तत्"। [अनित्यसे निश्चय सो नित्य प्राप्तहोता नहीं] अर्थात् अध्रुव जे

कामस्याप्तिंजगतःप्रतिष्ठां कृतोरानन्त्यमभयस्य पारम् । स्तोममहदुरुगायम्प्रतिष्ठां दृष्ट्वाधृत्याधीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ११ ॥

यज्ञअग्निहोत्रादि कर्म तिनकरके वो ध्रुवजो कि सर्व कल्पनासे रहित सर्वका साक्षी आत्माहै सो निश्चय करके प्राप्तहोता नहीं " ततोमयानाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैःप्राप्तवानस्मि नित्यम् "[सोजानने केअनन्तरभी मैंनेअनित्यद्रव्यनसेनाचिकेताख्य अग्नि परिपूर्णकियाहै नित्यको प्राप्तभयाहौं] अर्थात् उक्तप्रकार काज्ञान होनेकेअनन्तर भी मैंने अनित्यजे पुत्र पशुस्वर्गादिसुख सामग्रीतिनकरके युक्तजेनाचिकेताख्यअग्नितिसकीआराधनाकरके इससर्वोत्तम यमपदको नित्य जानके अपनेको प्राप्तकियाहै, अर्थात्स्वर्गादि यावत् कर्मफलहै तिनसर्वकोअनित्य जानतेसन्ते भीमैंनधीरजनकरके इसयमपदको अन्योंकीअपेक्षा नित्यजानके अग्निकी आराधनाद्वारा अपनेबिषे प्राप्त कियाहै सो पदभी तूने अनित्य जानके अंगीकार न किया ताते तू धन्य है १० हेसौम्य आत्म विद्याके अधिकारीसो होतेहैं जिनकी प्रशंसा वक्ताकरतेहैं॥

मंत्र ग्यारहवां॥

हे नचिकेतः आप कैसेहौ जो " कामस्याप्तिंजगतःप्रतिष्ठां कृतोरानन्त्यमभयस्यपारम् "[कामकी प्राप्तिरूप जगत् काआश्रय अनन्त अभय स्वर्ग का पार] अर्थात् समाप्तभयीहै सर्वकाम कामना जहांसो कहिये ।कामस्याप्तिं।अर्थात् आपकी सर्वकामना अभाव भयीहै क्यों जो मैं आपको त्रैलोक्यके उत्तम मध्यम सर्व भोग्य पदार्थ वित्त पुत्र अप्सरा हस्ति अश्वराज्यादि देतारहा परन्तु आपने उन सर्वको अनित्य असार जानके त्याग कियाहै अरु आध्यात्मिक आधिभौतिकआधिदैविक रूपजेसम्पूर्ण जगत् तिसकाआश्रय मूलकारणअरुअश्वमेधादिसम्पूर्णयज्ञोंकापरमावधिसर्वोत्तमफल हिरण्यगर्भका पद सो कैसाहैअनन्त अरु अभय

तंदुर्दर्शंगूढमनुप्रविष्टं गुहाहितंगह्वरेष्ठम्पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं मत्वाधीरोहर्षशोकौ जहाति १२ ॥

भोग्यनकास्थान जे स्वर्गलोक [स्वर्गलोके नभयं किंचित्] तिससे भी परमउत्कृष्ट अरु " स्तोमंमहदुरुगायंप्रतिष्ठांदृष्ट्वा " [स्तुतिकरनेयोग्य विस्तीर्णगति प्रतिष्ठाको देखके] अर्थात् देवादिकों करके भी स्तुतिकरने योग्य अरु महान् अणिमादि ऐश्वर्यादि फल गुण सहित विस्तीर्णगति अर्थात् सर्वत्र पूर्ण सूत्रात्मा सो सर्वोत्तम कर्मीउपासककी गति तिसको आपनेइस अग्निविद्याके उपदेशद्वारा विवेकचक्षुकरके अनुभवकिया तथापि उस हिरण्यगर्भकेपदकोकि जिसकी उपासनासे त्रैलोक्यकेअणिमादि ऐश्वर्यकी प्राप्तिहोतीहै तिसको भी कर्मोंकाफल होनेसे अनित्यादि दोषयुक्तही देखा अरु " धृत्याधीरोनचिकेतोऽत्यस्राक्षीः " [हे नचिकेतः आप बुद्धिमान्भया अपने धैर्यसे चलायमान न होके तिसका त्यागकरताभया] अर्थात् हे नचिकेतः आप नित्यानित्य वस्तुके विवेकयुक्त बुद्धिमान् भये अपने धैर्यसे चलायमान न होयके हिरण्यगर्भके पदसोंलेके त्रैलोक्यके सर्व भोग्यपदार्थोंका त्यागकरतेहौ ताते धन्यहौ हम देवताओंसे भी श्रेष्ठहौ क्योंकि हम देवतालोक भी जिस भोग्य अरु पदको श्रेष्ठजानके सज्ञात हुये भी तिसविषे अटकरहेहैं तिनही भोग्य अरु पदको आपने तुच्छजानके त्याग कियाहै अरु परमानन्दरूप जो अविनाशी आत्माहैएक तिसकी जिज्ञासाविषे परमधैर्यवानहुये खड़ेहौताते भी धन्यहौ ॥ उस आत्मपदकी प्राप्ति, आपसरिखे त्यागवान् अधिकारीको ही होतीहै अन्यको स्वप्नमें भी नहीं ११ ॥

मंत्र बारहवां ॥

हे नचिकेतः जिस आत्माको आप पूछतेहौ " तंदुर्दर्शंगूढमनुप्रविष्टं " [सो दुःखसे देखने योग्य गूढ आवृत] अर्थात् उसका

एतच्छ्रुत्वासम्परिगृह्यमर्त्यः प्रवृह्यधर्म्यमणुमेतमाप्य। समोदतेमोदनीयछंहिलब्ध्वाविवृतछंहिसद्मनाचिकेतसम्मन्ये १३॥

देखना बहुत कठिनहै क्योंकिवो अव्यक्तादिकसोंभीअतिसूक्ष्म है एतदर्थ सूक्ष्मबुद्धिविना उसका दर्शनहोता नहीं अरु बुद्धिका सूक्ष्महोना सहज नहीं ताते वो आत्मा दुर्दर्शहै अरु वो आत्मा महासूक्ष्म होनेपर भी अत्यन्त गहनजे अन्तःकरणरूपी वन कि जिसमें अनेक२ प्रकारके शब्दस्पर्श रूपरसगंध रूपाविषय तिनके अनेक जन्मोंके संस्काररूपी वृक्षोंकी सघनताहै जिसकापारनहीं पायाजाता तिस अन्तःकरणरूपी वनबिषे "गुहाहितंगह्वरेष्ठं पुराणम्" [गुहाबिषेस्थित संकटबिषेस्थितपुरातन] अर्थात् एक विज्ञान लक्षणवान् बुद्धिरूपी गुहाहैसो भी रागद्वेष कामक्रोधादि अनेक संकटों करके युक्तहै तिस गुहाबिषे वो स्वयंज्योति आत्मा रूपी सिंह अनादिकालका स्थितहै अरु सो वृद्धिक्षयादि सर्व विकारोंकरके रहितहै ताते नित्य नवीनहै। हे नचिकेतः ऐसा अति गूढ गह्वर सघन बुद्धिरूपी गुहाबिषे अनादिकालसे जो छिपाभया स्थित महासूक्ष्म आत्मा है तिस आत्माको "अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवंमत्वा" [अध्यात्मविद्याकेयोगसेसाक्षात् स्वयं प्रकाश अपना आप अनुभवकरके] "धीरो हर्षशोकौ जहाति" [बुद्धिमान् हर्ष शोक को त्यागता है] अर्थात् आप सरिखे जे परमविवेकी बुद्धिमान् धीरपुरुष हैं सो हर्ष शोक पाप पुण्य सुख दुःखादि यावत् अविद्याकृत द्वंद्व हैं तिनसर्वका त्यागकरतेहैं १२॥

मंत्र तेरहवां॥

हे नचिकेतः "एतच्छ्रुत्वासम्परिगृह्यमर्त्यःप्रवृह्यधर्म्यमणुमेतमाप्य" [मनुष्य इसको सुनके सम्यक् ग्रहणकरके धर्मरूप इस पृथक् आत्माको प्राप्तहोके] अर्थात् इस आत्मतत्त्वको जो कि मैंने तुझको बुद्धिरूपी गुहाबिषे कहा है तिसको ब्रह्मनिष्ठ

अन्यत्रधर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्रभूताच्चभव्याच्चयत्तत्पश्यसितद्वद १४॥

आचार्यसे श्रवणकरके पुनः तिसको भलीप्रकार मननद्वारा अपना आप आत्मत्वभाव से ग्रहणकरके अरु मरणधर्मा जे शरीरादि संघात तिसके धर्मसों पृथक्करके तब इस महासूक्ष्म आत्माको प्राप्तहोके "सम्मोदते मोदनीयꣳहि लब्ध्वा विवृतꣳहिसद्म नचिकेतसम्मन्ये"। [सो हर्षकरने योग्यकोही पायके आनन्दको पावताहै मैं नचिकेता को खुलेद्वारवाले ब्रह्मलोक को सम्मुखभया मानताहौं] अर्थात् सो विवेकी पुरुष हर्षकरने योग्य परमतत्त्व को पायके निश्चय परमानन्द को प्राप्तहोता है हे नचिकेतः मैं आपको इस खुलेद्वारवाले आत्माख्य ब्रह्मलोक के सम्मुखभया मानताहौं। अथवा हे नचिकेतः परमानन्द आत्मरूपी ब्रह्मलोक का साक्षात्काररूपी द्वार आपसरीखे अधिकारी को खुला भया मैं मानताहौं अर्थात् मोक्षाधिकारी आपहीहौ १३॥

मंत्र चौदहवां॥

नचिकेताउवाच॥ हे भगवन् यदि आप मुझको ब्रह्मविद्या का अधिकारी मानतेहौ अरु मुझपर प्रसन्नहौ तो हे प्रभो "अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्"। [धर्मसे पृथक् (अरु) अधर्म से पृथक् (अरु) इस कार्य कारण से पृथक् है] अर्थात् धर्म जे अपरा विद्याकरके प्रतिपाद्य यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म अरु तिनके कारक फलादि सर्वसे पृथक् है, अरु तैसेही अधर्म जे हिंसादि शास्त्रकरके निषिद्ध आसुरी सम्पत्ति तिनसे अरु तिनके कारकादि सर्वसे पृथक्है। अरु तैसेही इनकार्य कारणादि सर्वसे भी पृथक्है अरु तैसेही "अन्यत्रभूताच्चभव्याच्च"। [भूत से पुनः भविष्यत् से पृथक् है] अर्थात् भूत (व्यतीतकाल) अरु भविष्यत् (आगामीकाल) पुनः वर्त्तमानकाल इन तीनोंकालों से पृथक् है। अर्थात् कालत्रय के व्यवधान से रहित सदा एक

सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति तपाꣳसिसर्वाणिचयद्वद न्ति । यदिच्छन्तोब्रह्मचर्य्यञ्चरन्तितत्तेपदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् १५ ॥

रस " यत्तत्पश्यसितद्वद " [जो (वस्तु) तिसको (आप) जानतेहौ सो कहो] अर्थात् जो आत्मतत्त्वहै तिसको आप देखते हौ अर्थात् साक्षात् अपना आप अनुभवकरतेहौ सो कृपाकर मुझकोभी कहिये १४ ॥

मंत्र पन्द्रहवां ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः जिसको आप पूछतेहो तिसको मैं अधिकारी के भेदसे परा अपरा दोरूपसे प्रतिपादन करताहौं तिसको श्रवणकरो । हे नचिकेतः " सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति " [सर्ववेद जिसपदको प्रतिपादन करते हैं] अर्थात् सर्व जे ऋग्गादिवेद उपनिषद् ब्रह्मप्रतिपादक ज्ञानशास्त्र जिसपदको प्रतिपादन करते हैं अरु " तपाꣳसि सर्वाणिचयद्वदन्ति " [सर्व तपस्वी जिसको कहते हैं] अर्थात् सम्पूर्ण तपस्वी कि जिनका केवल "ज्ञानमयंतपः" विचारमयही तप है सो अरु अन्य जे ऋषि मुनि हैं सो सर्व उपदेशार्थ जिज्ञासुप्रति जो उपदेश कहते हैं अरु " यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यंचरन्ति " [जिसकी इच्छाकरते ब्रह्मचर्य करतेहैं अर्थात् जिसपदकी इच्छाकरते जिज्ञासु गुरुकुलवास वेदाध्ययनादि लक्षणवाला ब्रह्मचर्य व्रतकरतेहैं " तत्तेपदꣳ संग्रहणब्रवीमि " [तिसपदको तेरेअर्थ संक्षेपसे कहताहौं] अर्थात् सोई पद तुझको जानने की इच्छा है ताते तेरेअर्थ संक्षेपकरके मैं कहताहौं " ओमित्येतत् " [जो यह ओम् पद है] अर्थात् हे नचिकेतः जिसको ॐकार कहते हैं सोई परमपद है १५ ॥

मंत्र सोलहवां ॥

हे नचिकेतः " एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् " [यह

एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतद्देवाक्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वायोयदिच्छति तस्यतत् १६ ॥

ही अक्षर ब्रह्म (अपर है) यह ही अक्षर परं (ब्रह्महै)] अर्थात् यहही ॐकारअक्षर अपरब्रह्महै अरु यहही ॐकारअक्षर परब्रह्म है अर्थात् यह ओंकार त्रिमात्रिकवाचकरूप अपरब्रह्म है अर्थ यह कि ॐकार नाम है अरु परमात्मा नामी है अरु "एतद्ध्ये वाक्षरंज्ञात्वायो यदिच्छाति तस्य तत्" [इसही अक्षरको जानके जो जिसको इच्छाकरताहै तिसको सो होता है] अर्थात् जो इस कहेहुये ॐकारके उपासनाके अधिकारी हैं सो अपने उपास्य अक्षरको आचार्य से सम्यक्प्रकार जानके उपासना करतेहैं तिन उपासकोंमें जो जिसकी इच्छाकरता है सो तिसको प्राप्त होता है अर्थात् जो अपरब्रह्म के अधिकारी वाचक त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करतेहैं सो तिसभावको अर्थात् ब्रह्मलोकको प्राप्तहोते हैं। अरु जे परब्रह्म के अधिकारी वाच्य अमात्रिक लक्ष्यरूप आत्माकी अहंग्रह उपासना करतेहैं सो तिसभावको प्राप्तहोते हैं अर्थात् हे नचिकेतः इस ॐकारब्रह्म की दो प्रकार उपासनाहै तहां मध्यमाधिकारी इस ॐकार अक्षरकी प्रत्यक् उपासना करतेहैं अरु जो उत्तमाधिकारीहै सो अहंग्रह उपासना करतेहैं ताते जो जिसप्रकार की उपासनाकरताहै सो उसही भावको प्राप्तहोताहै १६ ॥

मंत्र सत्रहवां ॥

हेनचिकेतः "एतदालम्बन ँ श्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्" [यह (ॐकार) आलम्बन श्रेष्ठहै (अरु) यह आलम्बन परहै] अर्थात् मध्यम अधिकारीको ब्रह्मलोक प्राप्तिके यावत् आलम्बनहैं तिनसर्वसे ॐकार की प्रत्यक्उपासनारूप आलम्बन श्रेष्ठहै अरु उत्तमाधिकारीको भी परब्रह्मप्राप्तिके अर्थ यह ॐकारकी अहंग्रह उपासनारूप परमोत्कृष्ट आलम्बनहै इससे श्रेष्ठ आलम्बन कोई

एतदालम्बनछं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।एतदालम्ब नंज्ञात्वाब्रह्मलोकेमहीयते १७ ॥

नहीं ताते। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।"[इस आलम्बनको जानके ब्रह्मलोकबिषे पूजाको पावताहै] अर्थात् इस परमोत्तम ॐकारोपासनारूप आलम्बन(आश्रय) को ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वाराजान के अपने २ अधिकार प्रति उपासना करतेहैं सो पुरुष ब्रह्मलोकबिषे महिमाको पायतेहैं । अर्थात् हे नचिकेतः जो मध्यमाधिकारी है सो ॐकारकी प्रत्यक्उपासनाके आश्रय ब्रह्मलोकको प्राप्तहोय ब्रह्मावत् पूजनीयहोय पुनः ब्रह्माद्वारा ॐकारके लक्ष्य प्रत्यगात्माकोपाय मुक्तहोताहै। अरु जो उत्तमाधिकारीहै सो ॐकारकी अहंग्रहे उपासनाके आश्रय सर्वलोक बिषे । "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति,, । इस श्रुतिके प्रमाण से साक्षात् ब्रह्मवत् पूजनीयहोय परिणाममें यहां ही विदेहमुक्त कैवल्य सर्वात्मभाव मोक्षको प्राप्तहोताहै १७ ॥ हेसौम्य पूर्वजो नचिकेताने । अन्यत्रधर्मात् । इत्यादि श्रुतिकरके धर्म अधर्मसे कार्य कारणसे भूत भविष्यत् वर्त्तमान से पृथक् जिस निर्विशेष आत्मा के अर्थ प्रश्नकिया तिस आत्माकी प्राप्त्यर्थ प्रथम साधनभूत सर्वोत्कृष्ट आलम्बन प्रणवोपासन मृत्युभगवान्ने कही अबउस आत्माको कहतेहैं ॥

मंत्र अठारहवां ॥

हे नचिकेतः जिसको आप पूछतेहो अरु ॐकार जिसका वाचकहै सो आत्मा "। न जायतेम्रियतेवा विपश्चित् "। [जन्मता नहीं (ताते) मरता (नहीं) अरु विपश्चित्है] अर्थात् उत्पन्न होता नहीं अरु जो ऐसापूछो कि आत्मा मरताहै वा नहीं तो मरता भी नहीं । हे नचिकेतः जोवस्तु उत्पन्नहोतीहै सोई अनित्यहोती है अरु जो अनित्यहोती है तिसहीबिषे वृद्धिक्षय विनाशादि सर्व विक्रियाहोतीहै अरु आत्मानित्यहै ।न जायतेम्रियते।

नजायतेम्रियतेवा विपश्चिन्नायंकुतश्चिन्न बभूवक श्चित् ।अजोनित्यः शाश्वतोयम्पुराणो न हन्यतेहन्य मानेशरीरे १८ ॥

हन्ताचेन्मन्यतेहन्तु ँ हतश्चेन्मन्यतेहतम् । उभौ तौनविजानीतोनाय ँ हन्तिनहन्यते १९ ॥

कहनेसे आत्माको सर्व विक्रियासे रहित एकरस जानो। अरुपुनः कैसाहै वो आत्मा जो अपने चैतन्यस्वभावकरके मेधावी अर्थात् सर्वज्ञहै अरु "। नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित् "। [यह किसीसे भी भयानहीं] अर्थात् यह आत्मा कारणान्तर भी होतानहीं, तस्मात्, अर्थान्तरको भी प्राप्तहोतानहीं तात्ते हे नचिकेतः यहआत्मा "। अजोनित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणः "। [यह(आत्मा)अजन्माहै नित्यहै शाश्वत है पुराणहै] अर्थात् जिसको तू पूछताहै सो यह आत्मा जन्मादि विकारभाव रहितहै अरु कालत्रय अबाध्यनित्य है अरु शाश्वत है अर्थात् वृद्धिक्षय वर्जितहै जोवस्तु अशाश्वत होतीहै सोईवृद्धि क्षयवान् होतीहै अरु यह आत्मा क्षयादि वर्जित शाश्वत है एतदर्थही धर्माधर्मादिसे परे अनादि कालका पुराना है परन्तु वृद्धिक्षय वर्जित होनेसेनित्यही नवाहै अर्थात् आकाशवत् एकरस है इसहीसे "।नहन्यते हन्यमाने शरीरे "। [शरीर के हननभये हननहोता नहीं] अर्थात् शरीरके विनाशहोनेसे भी आत्मा विनाशभावको प्राप्तहोता नहीं १८ ॥

मंत्र उन्नीसवां ॥

हे नचिकेतः ऐसा जो अजन्मा अविनाशी अनादि एकरस महासूक्ष्म आत्माहै तिसको न जानके केवल देहमात्रकोही आत्मा मानके अपनेआपको "। हन्ताचेन्मन्यतेहन्तु ँ हतश्चेन्मन्यतेहतम् "। [हन्ता जब हननकरनेको मानता है (अरु) हत जब हन्य मानता है] अर्थात् हननकरता यदि विचारता है

अणोरणीयान्महतोमहीया नात्माऽस्यजन्तोर्निहि तोगुहायाम् । तमक्रतुःपश्यतिवीतशोकोधातुप्रसादा न्महिमानमात्मनः २० ॥

इसको मैं मारताहौं अरु हतहोतापुरुष यदि अपने आपको हत मानताहै " उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते " [सो दोनों नहीं जानते यह हननकर्त्ता नहीं (अरु) हननहोता नहीं] अर्थात् हे नचिकेतः सो दोनों हन्ता अरु हत पुरुष अपने आप प्रत्यगात्माको जानते नहीं क्योंकि यह आत्मा अक्रियहोने से किसीको भी हननकर्त्ता नहीं अरु तैसेही निराकार अविनाशी होनेसे हत भी होता नहीं । अर्थात् आत्मा सम्पूर्ण शरीरादिकों के धर्माधर्म लक्षण से बिलक्षण सर्वका साक्षी निर्विकार है उस बिषे धर्माधर्मरूप विकार अविवेकी पुरुषको भासता है आत्म-ज्ञानीको नहीं एतदर्थही आत्मवेत्ता धर्माधर्मादि विकार रहित होताहै १९ ॥ हे भगवन् जो आत्मा सर्व विक्रियासे रहित अरु शरीरादिकोंके धर्माधर्मसे पृथक् है सो कैसाहै अरु कहां रहताहै अरु किसको प्राप्तहोताहै अरु कैसे प्राप्तहोता है सो आप कृपा करके कहिये ॥

मंत्र बीसवां ॥

हे नचिकेतः । जिसके अर्थ तेरा प्रश्नहै सो आत्मा " अणो रणीयान्महतो महीयान " [सूक्ष्मसेअतिशयसूक्ष्म है (अरु) महत्से अतिशयमहत् है] अर्थात् अणुः कहिये परमाणु तिनसे भी अतिशय अणुः सूक्ष्मतर सर्व प्रकारकी आकृति परिमेयता नाम रूपादि द्रव्यके धर्मसे रहित महा सूक्ष्म है अरु महत् जे पृथिव्यादि भूत इनसर्वसे बड़ा सर्वको अपनेबिषे अवकाश देने वाला आकाश तिससे भी अतिशय बड़ाहै अर्थात् सर्व भूतोंसे बड़ा आकाशहै सो भी जिसतत्त्वके किसी अणुदेशमें पड़ाहै ताते बड़ेसे भी अतिशय बड़ाहै सो " आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहा-

आसीनोदूरंव्रजति शयानोयातिसर्व्वतः ॥ कस्तम्मदामदंदेवं मदन्योज्ञातुमर्हति २१ ॥

याम् " [आत्मा इन जीवोंकी गुहाविषे स्थित है] अर्थात् सो आत्मा जन्मवान् अर्थात् ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त सर्वप्राणधारियोंकी हृदयरूपी गुहाविषे सबका अपनाआप आत्मरूप स्थितहै " तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः " [तिसको निष्कामहुआ देखता है धातुके प्रसादसे आत्मा की महिमाको देखताहै (ताते) शोकरहित होताहै] अर्थात् तिस अपनेआप आत्माको अकामीपुरुष कि जिसकी सर्व कामना अभावभईहै अरु इन्द्रियां विषयों से उपराम भई हैं सो धातु जे मनआदि इन्द्रियां तिनकेद्वारा होयके अपनेआप आत्माकी महिमाको देखताहै कि जिसकी सत्तासे मनआदि इन्द्रियां अपने २ व्यापारको करती हैं अरु जिसकी इच्छासे विषयोंसे उपरामहोती है अरु जिसकेप्रकाशसे इनकाव्यापार सिद्धहोताहै सोज्ञानस्वरूप आत्मामैंहौं मुझसेइतर मेराआत्मा अन्य कोई नहीं । हेनाचिकेतः इसप्रकार अकामीपुरुष अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाय अन्तर्मुख कर उनकेद्वारा अपनीआप महिमाको साक्षात् अनुभव करताहै तब सर्वशोकसे रहित होताहै । " तत्रको मोहःकः शोक एकत्वमनुपश्यत " । " तरतिशोकमात्मवित् " ताते अभिप्राय यह है जो सकाम विषयी पुरुषकरके आत्मा दुर्विज्ञेय है । " सशान्ति माप्नोति न कामकामी " २० ॥

मंत्र इक्कीसवां ॥

हे नचिकेतः आत्मा " आसीनोदूरंव्रजति " [अचलभयादूर जाताहै] अर्थात् अचलस्थित होतसंतेभी मनआदि उपाधिसाथ मिलके ब्रह्मलोकादि पर्यन्त दूसरे भी दूरजाता प्रतीत होताहै । इसप्रकार स्वयंप्रकाश आत्मा जो किसर्वविक्रियासेरहित है सो "शयानोयाति सर्वतः" [सोयाहुआ सर्वओरसे जाताहै] अर्थात्

अशरीरꣳशरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानंमत्वाधीरोनशोचति २२ ॥

आत्मा सुषुप्तिवत् एकरस असंग विज्ञानघन हुआ २ भी इन्द्रियों केसाथ मिलके विषयादिकों प्रति जाता हुआ प्रतीत होताहै सो "। कस्तम्मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति "। [तिस मदअमद रूप देवको मुझसे अन्यकौन जाननेकोसमर्थहै] अर्थात्(समदो) अन्तः करणकी हर्षात्मकवृत्ति साथमिलके हर्षवान् अरु (अमदो) अहर्षात्मकवृत्तिसाथमिलके अहर्षात्मक इसप्रकार अनेक उपाधि धर्मसे मिलके अनेक विरुद्धधर्मवान् आत्मा भासेहै ताते प्राकृत अविवेकी पुरुषों करके दुर्विज्ञेय है एतदर्थ तिस आत्मदेवको जो कि उपाधिके साथ मिलनेसे तत्तद्धर्मवान् भासेहै मुझसे अन्यजे बहिर्मुख आचार्य हैं तिनमेंसे कौन जाननेको समर्थ है अर्थात् हेनचिकेतः उपाधियोंके धर्मसाथमिलके अनेकधर्मवान् भासता जो आत्मा तिसको सर्वउपाधियों के धर्मसे पृथक्करके एक हम जानते हैं अरु अन्यभीजे मुझसरीखे सूक्ष्मबुद्धि अन्तर्मुख ब्रह्म-वेत्ता पंडितहैं सो भी जानतेहैं उनसे इतर जे बहिर्मुख अपरा-विद्याऽऽश्रित भेदवादी विषयी पुरुष हैं सो उक्त आत्माकोजान सकते नहीं २१ ॥

मंत्र बाईसवां ॥

हे नचिकेतः जे मुझसरीखे सूक्ष्मबुद्धि अकामीआत्मवेत्ता पुरुषहैं सो आत्माको कहां अरु कैसे देखके सर्वशोकों से रहित होतेहैं सो श्रवणकरो । वो आत्मा कैसाहै कि "। अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्व वस्थितम् "। [अशरीरहै (अरु) स्थितिसेरहित शरीर विषे स्थितहै] अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सर्वप्रकारकी आकृति परिमे-यता नाम रूपादिसे रहित केवल चैतन्य विज्ञानघनहै सो अन-वस्थअर्थात् जिसकी स्थितिका निश्चयहोतानहीं ऐसे जेअनित्य क्षणभंगुर नाशवान् देव पितृ मनुष्यादिकों के उत्तम मध्यम

नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेन ॥ यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुते तनुंस्वाम् २३ ॥

अथम शरीर तिनविषे नित्य सर्वविक्रियासे रहित चैतन्यमात्र स्थितहै ॥प्र० ॥ हे गुरो वो आत्मा सर्वशरीरोंमें खंडरूपसे स्थित होगा ॥ उ० ॥ हे सौम्य वो आत्मा खंडरूप नहीं अखंड सर्व से बड़ाहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन् जब वो आत्मा सर्वसे बड़ाहै तब देहों विषे समायाकैसे ॥ उ० ॥ हेप्रियदर्शन वो आत्मा "महान्तंविभु मात्मानं मत्वा धीरो न शोचति" [महान्हैविभुहै (ऐसे) आत्मा को बुद्धिमान् पुरुष मानके शोकको पावता नहीं] अर्थात् सर्वसे बड़ा सर्वव्यापीहै (जैसे आकाश अखंड सर्वसेबड़ा सर्वत्र व्याप्तहै परन्तु सो निराकार सूक्ष्मरूप होनेसे खंडभाव को न प्राप्तहोके छोटेजे घटादिक तिनविषे व्याप्तहै) तैसेहीचैतन्य आत्मा आकाशादिकोंसे भी महान् बड़ाहै तथापि वो निराकार महासूक्ष्महोने से खंडभावको न प्राप्तहोके आकाशादि तृणपर्यन्त सर्वविषे पूर्णता सेव्याप्त है तिस आत्माको सोहम् भावसे अर्थात् सो आत्मा मैं हूं इसप्रकारगुरु श्रुति अनुभवद्वारा अपनेआपको जानकेजिसने स्थितिपाईहै सो धीर आत्मदर्शी बुद्धिमान् जन्ममरण जरारोग क्षुधा पिपासा सुख दुःखादि निमित्तक जे शोचतिनको शोचता नहीं । क्योंजो शरीरादि अरु तिनकेधर्म तिनसर्वसे पृथक् अचल अविनाशी अक्रिय एकरस चैतन्यघन सर्वात्मा अपने आपको साक्षात् अनुभव करचुकाहै २२ ॥

मंत्र तेईसवां ॥

हे नचिकेतः वो महासूक्ष्म निर्विकार आत्माअति दुर्विज्ञेय है तथापि तुमसरीखे अधिकारी को उपायद्वारा सुविज्ञेय अर्थात् जानने योग्यहै ॥प्र० ॥ हेभगवन् उसआत्माको जानने के विषय में उपायक्याहै सो आपकृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः । नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् २४ ॥

" नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो " [यहआत्मा बहुतपढनेसेप्राप्त नहीं] अर्थात् यह जो सर्वका अपनाआप प्रत्यगात्माहै सो बहुतसे वेदादिशास्त्रोंके पढनेसे प्राप्तहोता नहीं अरु " न मेधया न बहुना श्रुतेन " [धारणायुक्तबुद्धि से भी (प्राप्त) नहीं (अरु) बहुत श्रवणसेभी नहीं]अर्थात् मेधा जे ग्रन्थार्थ धारणशक्ति तिसकरकेभी आत्म तत्त्व प्राप्तनहीं अरुबहुतसे शास्त्र श्रवणकरनेसेभी वो प्राप्त नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् तब किसप्रकारसे प्राप्तहोताहै ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः " यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः " [जिसकोही यह इच्छा करता है तिसही से लभ्य है] अर्थात् यह अपनेआप आत्माको यह जो निष्काम सर्वसाधन सम्पन्न केवल आत्मकामी सुमुक्षुहै सो जब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे आत्मप्राप्ति के अर्थ प्रार्थना करताहै तब तिसआचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्यों के श्रवण मननरूप उपायकरकेही प्राप्तहोता है । ताते हे नचिकेतः जो वैराग्यादि सर्वसाधन सम्पन्न केवल आत्मकामी जिज्ञासुहै " तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम् " [तिसको यहआत्मा अपनी तनुको प्रकाशता है] अर्थात् जिस जिज्ञासुको यह अपनाआप चैतन्य प्रत्यगात्मा है सो अपनेआप शरीर बिषेही साक्षीरूप सोऽहंभाव से प्रकाशता है । अर्थात् साधन सम्पन्न निष्कामपुरुषकोही अपना आप आत्मा आचार्य से महावाक्य के श्रवणादि द्वाराही जाना जाताहै ताते " नान्यः पंथाऽयनाय " अन्यमार्ग कोई नहीं । एक महावाक्य के सम्यक् विचारद्वाराही है २३ ॥

मंत्र चौबीसवां ॥

हे नचिकेतः " नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः " [पापकर्मसे अनिवृत्तभया (पावता) नहीं (इन्द्रिय) अशान्त भया (पावता) नहीं (चित्तकी) असमाहितता से (पावता)

यस्यब्रह्मचक्षत्रंच उभेभवतश्रोदनम् । मृत्युर्यस्यो
पसेचनं कइत्थावेदयत्रसः २५ ॥

इतिप्रथमाऽध्यायद्वितीयावल्लीसमाप्ता २ ॥

नहीं] अर्थात् श्रुति स्मृतिकरके निषिद्ध जे पापकर्म तिनसे अनिवृत्तभया जो पुरुष सो आत्माको पावता नहीं अर्थात् वैराग्यादि साधनसे रहित पापरत अधर्मी पुरुषहैं तिनकरके आत्मा जानने योग्यनहीं अरु जिनकी इन्द्रियां विषयसे उपराम भईनहीं तिन पुरुषोंकरके भी आत्मा जानने योग्य नहीं । अरु जे असमाहित चित्त हैं अर्थात् जिनका चित्त एकाग्रभया नहीं तिनपुरुषों करके भी आत्मा जानने योग्य नहीं । अरु "। नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् "। [अशान्त मनवाला भी (पावता) नहीं विज्ञानसे इसको पावताहै] अर्थात् जिसकी मनोगत सूक्ष्मकामना अभाव भई नहीं सो पुरुष भी आत्माको पावता नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् तब किसप्रकार आत्मा जानाजाता है सो कृपा कर कहिये ॥ उ० ॥ हे सौम्य उपनिषदोंके महावाक्यार्थके ज्ञान से इसअपनेआप आत्माकोसोऽहमस्मि भावसे पावताहै॥अर्थात् हे सौम्य जिसपुरुष की वृत्ति पापकर्मों से उपराम भई हैं अरु सर्व इन्द्रियां अपने २ विषयों से फिरी हैं अरु चित्त जिसका एकाग्र समाहित भया है अरु समाहित चित्त ताके फलादिकों की सर्वकामना जिसके मनसे उठगई है ऐसा जो साधन सम्पन्न जिज्ञासु है तिसको आत्मवेत्ता आचार्य से महावाक्यों के यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे अपने आप अजर अमर अज अक्रिय आत्मा की सोऽहंभावसे प्राप्तिहोती है " नान्यःपंथा विमुक्तये " अन्यउपाय आत्मप्राप्तिका कोईनहीं अरु तिसबिना निर्वाणशान्तिनहीं २४ ॥

मंत्र पचीसवां ॥

हे नचिकेतः जो कि केवल साधनसम्पन्न निष्काम पुरुषकरके

ही जाननेयोग्य आत्मा है सो कैसा है कि "। यस्यब्रह्मचक्षत्रंच उभेभवतओदनम् "। [जिसका ब्राह्मण अरु क्षत्रिय यह दोनों भात होताहै] अर्थात् जिसआत्माका ब्राह्मण क्षत्री जे सर्वोत्तम सर्व धर्मके धारणकर्त्ता अर्थात् अपराविद्याकरके प्रतिपाद्य जे यज्ञ अग्निहोत्रादि धर्म तिसके धारणकर्त्ता सो दोनों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री जे उत्तम धर्मी तिनके कहनेसे यावत् प्राणीमात्रहैं सो सर्व जिसका ओदनकहिये भात होता है अरु "। मृत्युर्यस्योपसेचनं "। [मृत्यु जिसका उपसेचन है] अर्थात् जिसके भयविषे ब्रह्मादि सर्वप्राणी रहते हैं ऐसा जो सर्वका प्राणहर्त्ता मृत्यु सो जिसका उपसेचन (दाल कढ़ी शाक) स्थानीय है अर्थात् जिस आत्मा का ब्राह्मण क्षत्री देवी देवताआदि सम्पूर्ण चराचर भातस्थानीय भोजन सामग्री है अरु सर्व चराचर को भक्षणकर्त्ता जो मृत्यु सो जिसकी कढ़ी दालादि स्थानीय है ऐसा जो आत्मा तिसको "। क इत्था वेद "। [कौन ऐसे जानताहै] अर्थात् भोग्यने भी कभी भोक्ताको जाना है किन्तु कदापि नहींजानता । ताते हेनचिकेतः जिनपुरुषों का देहादि अनात्मभाव उठगया है अरु तदाश्रित ब्राह्मण क्षत्र्यादि देहाभिमान नष्टभया है अरु तिस अनात्म अभिमान के आश्रय रहा जे अपने विषे अपराविद्या आश्रितधर्म तिससे भी सम्यक् उपराम भया है । अरु पराविद्याकरके प्रकाशित जे शम दमादि साधनरूप पराधर्म तिनकरके सम्पन्न जो आचार्यवान् पुरुष है सो इस प्रत्यगात्मा को जानता है "। यत्र सः "। [सोई यहां (आत्माहोताहै)] अर्थात् " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" इसश्रुतिके प्रमाणसे ब्रह्मवेत्तारूप ब्रह्मकाभी सर्वब्रह्माण्ड आहार होताहै । अर्थात् उसका जगत्भाव उठजाता है अरु जिस मृत्यु के भयविषे ब्रह्माण्ड रहता है तिसके भयसे रहित परम निर्भय चैतन्यघन कि जिसके भयविषे मृत्युआदि रहतेहैं । तथाच । भया दस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्य्यः भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्यु र्धावतिपञ्चमः । भीषास्माद्वातः पवतेभीषोदयति सूर्य्यः भीषा-

ओंऋतंपिवन्तौस्वकृतस्य लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमे परार्द्धे छायातपौब्रह्मविदोवदन्ति । पञ्चाग्नयोयेच त्रिणाचिकेतः १ ॥

स्माद्ग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" ऐसा जो सर्वको भयका कारण अरु आप निर्भय शान्त सर्वात्मा होताहै २५ ॥

इतिकठवल्लीउपनिषद्प्रथमाध्याय द्वितीयावल्लीभाषा टीकासमाप्ता २ ॥

ॐ परमात्मनेनमः ॥ हे सौम्य दोवल्ली द्वारा विद्या अविद्या का निर्णयभया है अब इसतीसरी वल्लीकरके जिसप्रकार ज्ञानी अज्ञानीपुरुष विद्या अविद्यारूप मार्गकरके आवतेजातेहैं । अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानीपुरुष ब्रह्मविद्यारूप श्रेयोमार्गकरके संसार के पार जाते हैं अरु अज्ञानीपुरुष अविद्यारूप प्रेयोमार्गकरके संसार में आवते हैं तिसका निर्णयहोगा तहां उन आवने जानेवालों के अर्थ शरीररूपी रथ कहाजायगा तिस बिषे हृदयरूपीगुहाकही जायगी तिसविषे बैठनेवाले विद्या अविद्या के अहंकारी दो पुरुष कहेजायँगे तहां एकभोक्ता दूसरा अभोक्ता कहाजायगा तिससर्व को सावधानहोके श्रवणकरो ॥

मंत्र पहिला ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः "ऋतं पिवन्तौ स्वकृतस्य" [अपने कियेकर्म का (फल) सत्यको पानकरते हैं] अर्थात् अपने कियेकर्मोंका जो अवश्यभावी फल है तिसको पानकरते दोनों दृष्टआवते हैं परन्तु उनमें से एक जो जीव है सो पानकरताहै साक्षी नहीं करता तथापि पात्रसम्बन्धसे दोनों पानकर्त्ता कहे जाते हैं 'जैसे किसी मद्यवाले की दूकानपर दो पुरुष बैठेहोवैं तिनमेंसे एक तो मद्यपानकरताहै दूसरा नहींकरता परन्तु दूरसे दोनोंही पानकर्त्ता कहेजातेहैं तैसे । अथवा जैसेदो पुरुषसाथही

मार्गमें चलतेहोयँ तहांएकके हाथमें छत्रहोय दूसरेके नहींपरन्तु दूरसे दोनों छत्रवाले कहेजाते हैं तैसेही › जीव अरु साक्षी यह दोनों इकट्ठेही हैं परन्तु अपने किये कर्मोंका फल जीव भोक्ताहै साक्षी नहीं भोक्तासो कहां बैठके भोक्ताहै "। लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमेपरार्द्धे"। [लोकबिषे गुहामें प्रवेशको पाये हैं उत्कृष्ट परब्रह्मके स्थान बिषे] अर्थात् इस शरीररूपी लोक (पुर) बिषे हृदय किंवा अन्तःकरणरूपी गुहाबिषे जो कि बाह्याकाशकी अपेक्षा परम अरु परब्रह्मके निवासका स्थानहै क्योंकि हृदयाकाशबिषेही परब्रह्मआत्माकी प्राप्तिहोतीहै तातेः ।परमेपरार्द्धे। करके उपलक्षित जे हृदयाकाश तिसबिषे जीव अरु साक्षी दोनों प्रवेशको पाये हैं तिन दोनोंको "। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति "। [छाया आतपवत् ब्रह्मवेत्ता कहते हैं] अर्थात् धूपछायावत् विरुद्धधर्मी हैं तहां एक संसारी दूसरा असंसारी ऐसा ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं सो केवल अकर्मी ब्रह्मवेत्ताही कहतेहोयँ ऐसा नहीं किन्तु "। पंचाग्नयो ये चत्रिणाचिकेतः"। [पंचाग्निवाले पुनः त्रिणाचिकेत पुरुष है सो भी कहतेहैं] अर्थात् पंचाग्निके सेवनकर्त्ता उपासक गृहस्थ अरु पुनःजे नाचिकेताख्य अग्निके उपासकहैं सोजीव अरु साक्षीको धूप छायावत् विरुद्धधर्मी कहते हैं ॥ हेनचिकेतः हे सौम्य जो कि साक्षी अरु जीवको छाया आतपवत् परस्पर विरुद्धधर्मी कहतेहैं सो केवल उपाधिके सम्बन्धसे कहते हैं जैसे सूर्यकेआगे यावत् परदाहोताहै तावत् छाया अरु धूपपृथक् २ होतेहैं अरु जब मध्यसे परदा दूरहोताहै तब एक सूर्यही प्रकाशताहै › तैसेही अहंकर्त्ता अहंभोक्तारूपी अन्तःकरणकी वृत्तिरूप परदा इस आत्मारूपी सूर्यकेआगे यावत् खड़ाहै तावत् जीव अरु साक्षीधूप छायावत् पृथक् २ है अरु जब मध्यमेंसे अहंकाररूपी परदा विचारद्वारा गिरायदिया तब उस जीवको जीवत्व के अभावसे सूर्यवत् एक अपनाआप आत्मास्वयंप्रकाश सर्वकासाक्षी अकर्त्ता अभोक्ता परमानन्दरूप अपनाआप दृष्टआवता है तातेजो ब्रह्म-

यःसेतुरीजानानामक्षरंब्रह्मयत्परम् । अभयंतितीर्षतांपारं नाचिकेतꣳशकेमहि २ ॥

वेत्ता किंवा कर्मी आचार्य जीव साक्षीको छाया धूपवत् विरुद्ध धर्मी कहतेहैं सो अहंकार रूपी परदाको लेके कहते हैं उपाधिके अभावसे भेदनहीं एकशुद्ध आत्माही है १ ॥

मंत्र दूसरा ॥

हे नचिकेतः " यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्मयत्परम् । अभयं तितीर्षतांपारं नाचिकेतꣳशकेमहि " [जो यजनकरनेवालेका सेतुवत् है (अरु) नाचिकेतनामा अग्निको (जाननेसे) भय रहित पार है (तिसको) प्राप्तहोने की इच्छावालेको जो परअक्षर ब्रह्म है (तिसको भी प्राप्तहोनेको) समर्थ है] अर्थात् यह जो यजनकरता यजमान है तिसको संसारमें प्राप्तकरने को यज्ञ अग्निहोत्रादि जे सकामकिये कर्महैं सो कामनाद्वारा सेतुवत्होते हैं अर्थात् यजमानको उसके सकाम कर्महो बारम्बार संसारको प्राप्तकरतेहैं अरु जे मुमुक्षुपुरुषहैं तिनको यह यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म सज्ञात निष्काम कियेभये अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा संसार के पारजाने को सेतुवत् हैं । ताते हे नचिकेतः नाचिकेतनामा अग्नि जो कि द्वितीयवरदानकरके हमारे उपदेशद्वारा तुमको ज्ञातभया है अरु जिसका आपने मननकियाहै तिसके निष्काम सेवनकरने से अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा संसार के पार अर्थात् नामरूप क्रियात्मक जो संसार तिससे पृथक् सर्वभय से रहित संसार से तरनेकी इच्छावाले का पार है अरु जो परम आश्रय आत्मसंज्ञक अपनाआप अविनाशी ब्रह्महै तिसके जाननेको हम समर्थहैं ॥ अर्थात् यहजो यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्महैं सो विद्याज्ञान पूर्वक निष्काम कियेभये अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा मुमुक्षुको इस संसाररूप महासागरके पार सुगम प्राप्तहोनेके अर्थ सेतुवत्सुखकारी होतेहैं ' जैसे राजालोक नदीपर सेतु बांधके रथारूढ होय

आत्मानꣳरथिनंविद्धि शरीरꣳरथमेवतु । बुद्धिन्तु सारथिंविद्धि मनःप्रग्रहमेवच ३ ॥

सुखपूर्वक पार जातेहैं तैसे, । हेसौम्य अहंकारादि उपाधि के धर्म करके तदवच्छिन्न आत्माको कर्त्ता भोक्ता आदि संसारी भाव से जीवपना है तिस जीवको अज्ञानजन्य अपने कर्मानुसार संसार में आवने के अर्थ अरु सज्ञान मुमुक्षुको मोक्षरूप संसार के पार प्राप्त होनेके अर्थ राजावत् रथ चहिये अरु तिसके चलनेकोसारथी आदि सामग्रीभी चहिये तिन सर्वको जिसप्रकार वेदने प्रतिपादन कियाहै सो सर्व श्रवणकरो २ ॥

मंत्र तीसरा ॥

हेप्रियदर्शन नचिकेतः "आत्मानꣳ रथिनंविद्धि" [आत्माको रथका स्वामी जानो] अर्थात् इस अन्तःकरण विशिष्ट सोपाधि कर्त्ता भोक्ता संसारी जीवात्माको रथका बैठनेवाला रथी स्वामी जानो अरु "शरीरꣳ रथमेवतु" [शरीरकोतो रथही जानो] अर्थात् इस स्थूल शरीरको रथस्थानीयही जानो अरु "बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि" [बुद्धिकोतो सारथी जानो] अर्थात् इस शरीररूपी रथको चलावनेवाला सारथी तो बुद्धिकोही जानो क्यों जो शरीरका सर्व व्यापार बुद्धिकरकेही चलता है अरु बुद्धि विज्ञाननेत्र करके सम्पन्न होने से इन्द्रियादि सर्वको यथा प्रमाण चलावै है जैसे सारथी नेत्रप्रधान होने से रथको ऊंचे नीचे स्थानसों बचाय के चलावे है तैसे, तातें हे सौम्य जीवात्माको (रथी) शरीरको रथ, बुद्धिको सारथी, जानो अरु "मनः प्रग्रहमेवच" [मनको रस्सीहीजानो] अर्थात् संकल्प विकल्पात्मक जे मन तिसको रस्सी (बाग) स्थानीय जानो क्यों जोमन करकेही इन्द्रियोंका रोकना होताहै जैसे बागके आश्रय अश्वोंका मंद चलावना शीघ्र चलावना रोकना फेरना होता है तैसे, तातें मनको रस्सी(डोरबाग) के स्थानीय जानो ३ ॥

इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयांस्तेषुगोचरान् । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ४ ॥

मंत्र चौथा ॥

हे नाचिकेतः इस शरीररूपी रथविषे " इन्द्रियाणिहयानाहुः " [इन्द्रियोंको अश्व कहतेहैं] अर्थात् चक्षुरादि पंच ज्ञानेंद्रियां अरु वागादि पंच कर्मेंद्रियां यह दश घोड़े हैं क्यों जोइस शरीर रूपी रथको खींचते यहीहैं जिधरको मनरूपी बाग के आश्रय इन्द्रियां रूपीघोड़े शरीररूपी रथको खींचलेजातेहैं तिस ओरको यहजाता है ' जैसे रथको घोड़े बागके आश्रय जिधर लेजाते हैं विधर जाताहै तैसे, ताते इन्द्रियोंको घोड़े स्थानथि जानो अरु " विषयांस्तेषु गोचरान् " [विषयोंको तिनके मार्ग जान] अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पंच विषयोंको इन्द्रियांरूपी घोड़ोंके चलनेके मार्ग स्थानथि जानो क्यों जो इन्द्रियांरूपी घोड़े शरीर रूपी रथको विषयोंकी ओरही खींचतेहैं ताते विषयों को मार्ग जानो । हेनाचिकेतः यह जो आत्माहै सो वास्तव करके अकर्त्ता अभोक्ता परम शान्त अचल एकरस निर्विकारहै परन्तु " आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः " [शरीर इन्द्रिय मन करके सहित (आत्माको) विवेकी जन भोक्ता ऐसा कहतेहैं] अर्थात् तिस आत्माको शरीर इन्द्रिय मन आदि उपाधि सहित होनेसे आवागमनवान् पापपुण्यकेफल सुख दुःखादिकोंका भोक्ता (भोगनेवाला है) इस प्रकार मननशील जे विवेकीपुरुषहैं सो कहतेहैं । अर्थात् केवल निरुपाधि शुद्ध अचल आत्माको गमनागमन कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि कुछभी है नहीं तथापि बुद्ध्यादि उपाधि करके सहित होनेसे बुद्ध्यादिकों के कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्म आत्माविषे भासतेहैं परन्तु सो धर्म आत्माके नहीं ऐसा श्रुत्यन्तरमें देखायाहै । (ध्यायतीव लेलायतीव) इत्यादि बृहदारण्य के छठे अध्यायमें है । हेनाचिकेतः जो शरीररूपी रथ निरूपण किया है

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेनमनसासदा । तस्ये न्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वाइवसारथेः ५ ॥

तिस द्वाराही विष्णुपदकी प्राप्ति अपना आप आत्मत्व करकेही होतीहै अन्यथानहीं। अरु दुःखरूप संसारकीप्राप्तिभी इसही रथ द्वारा होतीहै परन्तु रथके चलावने की मुख्य सामग्री बुद्धिरूपी सारथीही है तहां जिस रथीका सारथी परम विवेकवान् होता है सो रथी अपने रथद्वारा संसारके पार मोक्षाख्य विष्णु पदको प्राप्त होता है अरु जिस रथीका सारथी अविवेकी मूर्ख है सो जन्म मरणरूप संसारकोही प्राप्त होताहै अब तिसकोभी श्रवण करो ४ ॥

मंत्र पांचवां ॥

हे नचिकेतः "यस्त्व विज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसासदा" [जोकि अविवेकी होता है अरु मनकरके सदा अयुक्त होता है] अर्थात् जिस पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी रथके चलावने बिषे निपुण नहीं होता जो शरीररूपी रथको बुरे मार्गसे बचायके चलावना अरु औरजे रथचर्याहैं कि चक्रादिकोंको यथार्थ रखना अरु इन्द्रियां रूपी घोडों कीजे संकल्प विकल्पात्मक मनरूपी बाग तिसको यथार्थ ग्रहणकरना इत्यादि कार्योंबिषे निरन्तर अयुक्तही होताहै ऐसे अविवेकी अकुशल सारथीवाला जोरथीहै "तस्ये न्द्रियाण्यवश्यानि" [तिसकी इन्द्रियां वश नहीं होतीं] अर्थात् जिसका बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान नहींहोता तिस रथीके इन्द्रियांरूपी घोड़े जो अति चंचल बलवान् पृथक् २ मार्गके निरंतर चलनेवाले हैं सो उस पुरुषके बश नहींहोते ताते जहां उन अश्वोंकी इच्छा होतीहै तहांही शरीररूपी रथको सहित सारथी रथीके संसाररूपी गर्त्तबिषे जाय पटकतेहैं कि जहां जन्म मरण जरा रोग राग द्वेष काम क्रोध क्षुधा पिपासा आदिकों के अनेक क्लेशहैं तिन नानाप्रकारके क्लेशोंको पायके रात्रदिन रोवतेही रह-

तेहैं " दुष्टाश्वा इव सारथेः "। [सारथीके दुष्ट अश्वोंवत्] अर्थात् जैसे किसी धनवान् पुरुष ने अज्ञानी पुरुषको अर्थात् जो पुरुष रथचर्यामें निपुण नहीं अरु अश्वोंको यथोचित चलावने मेंअश-क्त अरु बागको भलीप्रकार ग्रहण करना छोड़ना रोकना जाने नहीं अरु मानता है अपनेको महाचतुर सारथी तिसको अपने रथका सारथी किया अरु जब उस सारथीको अपने रथके चला-वनेकी आज्ञाकिया तब उस अविवेकी सारथीने प्रथम घोड़ों की वाग पकड़ के उनको चलाया तिसही काल वो नवीन अदन्त अत्यन्त बलवान् घोड़े सो अपने २ बेगसे चले अरु उसहीकाल उस अकुशल सारथीके हाथसे घोड़ोंकी बाग छूटगई तब वेघोड़े रथीके इच्छित मार्गको छोड़के अपने २ बलसे अपने २ मार्गमें भागचले अरु जिधरको जानारहा उस मार्गको त्याग के किसी महाअंधकूप गर्त्तबिषे रथको जायडाला तब वो रथ टूटगया अरु रथी सारथी घोड़ेआदि मरणपर्यन्त के क्लेशको पाय नानाप्रकार रुदन के शब्द करनेलगे । हे सौम्य उक्तप्रकार अविवेकी सारथी वाला रथी सारथी की अविवेकतासे मरणपर्यन्त के महान्क्लेशों को भोगताहै हे नचिकेतः तैसेही जिसपुरुषका बुद्धिरूपी सारथी आप अविवेकी होतसंते विवेकताका अभिमान करके इससारथी शरीररूपी रथको मोक्षमार्ग की ओर चलावता है अरु अपनी अविवेकता को न विचार विवेकशाली सारथी की देखा देखी आप भी प्रथम मनरूपी बागको ग्रहणकर इन्द्रियांरूपी घोड़ोंको वैराग्यरूपी चाबुक का प्रहारकरता है तब वो इन्द्रियांरूपी घोड़े उसताड़ना को न सहनकरके अपने २ बलसे अपने २ मार्ग में रथको खींचनेलगे अरु उसही समय उस अविवेकी सारथी के हाथसे मनरूपी बाग भी छूटगई तब वो घोड़े अत्यन्त वेगकरके अपने २ अभीष्टमार्ग को भागचले तहां यह विशेषता है जो दश घोड़े अरु पांच मार्ग तहां एक २ मार्ग बिषे दोदो घोड़े अपनी २ ओरको खींचते हैं तब जिस समय उन अतिबलवान् दशघोड़े

यस्तुविज्ञानवान्भवतियुक्तेनमनसासदा । तस्येन्द्रियाणिवश्यानिसदश्वाइवसारथेः ६ ॥

जो पांचमार्ग में चलनेवालेहैं तिनका रोकना जोकि विवेकवती बुद्धिकोभी दुःसाध्य है सो अविवेकी बुद्धिरूपी सारथी से कदापि रोके जातेनहीं तब अन्तमें वो रथ कि जिसका बुद्धिरूपी सारथी रथचर्या में कुशल नहीं सो संसाररूपी अन्धकूप बिषेही जाय गिरतेहैं तिसबिषे नानाप्रकारके योग वियोग राग द्वेष काम क्रोध जरा रोगादि रूपी कंटक पाषाण सिंह सर्पादिकों के क्लेशकरके सर्वदा जन्म मरणादिकों के दुःखकोही भोगतेहैं । ताते हे सौम्य जिसपुरुष का बुद्धिरूपी सारथी शरीररूपी रथके रथीको सहित इन्द्रियरूपी घोड़ों के मोक्षमार्ग में चलावने को विवेकवान् नहीं सो पुरुष बारम्बार संसारकूपमेंही गिरते हैं अरु नानाप्रकार के क्लेश भोगतेहैं । ताते तात्पर्य यह है जो जब आप अपनी बुद्धिरूपी सारथीको अत्यन्त कुशलकरोगे तब अपने शरीररूपी रथ करके अपने अभीष्टपदको अपने बिषेही प्राप्तहोगे ताते मुमुक्षुको प्रथम अपनेबुद्धिरूपी सारथीको विवेकसम्पन्नकरना योग्यहै५ ॥ हे नाचिकेतः अब जिसप्रकार विवेकवती बुद्धिरूपी सारथीवाले मुमुक्षु पुरुष के इन्द्रियांरूपी घोड़े स्ववश होते हैं तिसको भी श्रवण करो ॥

मंत्र छठा ॥

हे नचिकेतः "। यस्तुविज्ञानवान्भवतियुक्तेनमनसासदा " [जो कि सदा युक्त मनकरके विज्ञानवान् होता है] अर्थात् जो कि प्रथम कहा अविवेकी बुद्धिरूपी सारथीवाला पुरुष तिससे विपरीत सर्वरथचर्यामें निपुणविवेकवान् बुद्धिरूपी सारथीवाला होताहै अरु मनरूपी रश्मी (डोर बाग) निरन्तर जिसकेहाथमें रहती है अर्थात् सदा समाहित चित्त रहता है "। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वाइवसारथेः "। [तिसकी इन्द्रियां श्रेष्ठ अश्ववत्

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः। नसत त्पदमाप्नोतिसछंसारंचाधिगच्छति ७॥

सारथी के वशहोती हैं] अर्थात् तिसकी जो अश्वस्थानापन्न दश इन्द्रियाहैं कि जो शरीररूपी रथको लेचलतेहैं सो श्रेष्ठ अश्ववत् अर्थात् 'जैसे किसी परमचतुर विवेकवान् पुरुषकरके दमनकिये घोड़े उसके वशहोते हैं, तैसे बुद्धिरूपी सारथी के वशहोती हैं। हे सौम्य इसहीसे विद्वानों ने मुमुक्षुके अर्थ इन्द्रियोंका दमनकरना आग्रह सहित नियम किया है "शान्तोदान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा" इत्यादि॥ हेनचिकेतः अब अविज्ञात सारथी वाले अरु सविज्ञात सारथीवाले रथी को अर्थात् जिसपुरुष का पूर्वोक्त बुद्धिरूपी सारथी अविवेकी है अरु जिसपुरुषका उक्तसारथी सविवेकी है तिन दोनों पुरुषों को अपने २ सारथीद्वारा जो जो फल प्राप्तहोता है तिसको भी श्रवणकरो ६॥

मंत्र सातवां॥

हे नचिकेतः "यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः" [जोकि विवेकरहित मनकी एकाग्रतासेरहित सदा अपवित्रहोता है]अर्थात् जिसपुरुष का बुद्धिरूपी सारथी रथचर्यामें कुशल नहीं होता अरु संकल्प विकल्पात्मक जे इन्द्रियांरूपी घोड़ों की मन रूपी बाग सो जिसके हाथमें नहीं अरु निरन्तर अपवित्र अर्थात् असमाहित होताहै। हे नचिकेतः इसप्रकार जिसपुरुषका बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् गृहीतमन समाहितनहीं "नसतत्पद माप्नोति" [सो तिसपदको पावतानहीं]अर्थात् सो रथी प्रथम कहा जो संसार के पार परम अक्षरपद तिसपद को प्राप्तहोता नहीं। सो भी इतनामात्रही नहीं किन्तु "सछंसारंचाधिगच्छति" [संसारकोही प्रावता है] अर्थात् जन्ममरण लक्षणरूप जे संसार वारम्बार तिसही को प्राप्तहोता है अरु नानाप्रकार के क्लेश को भोगताहै ७॥ हे सौम्य जिस जीवात्मा का बुद्धिरूपी सारथी

विवेकवान् नहींहोता सो संसारसे नहींछूटता क्योंकि बुद्धिरूपी सारथी के विवेकवान् न होने से इन्द्रियांरूपी जो अतिचंचल बल-वाले घोडे हैं तिनका जो दमन (रोकना) सो होतानहीं अरुउनघोडों की जे संकल्प विकल्पात्मक मनरूपी बाग सो उक्त सारथीसे यथो-चित ग्रहणहोतीनहीं एतदर्थ अविवेकवान् सारथीवालारथीसंसार के पार होतानहीं हे सौम्य इस जीवात्मा का बुद्धिरूपी सारथी के विवेकवान् न होनेके कारणसे न तो उससे इन्द्रियांरूपी घोडे रोके जाते हैं अरु न मनरूपी डोरीउसके हाथमें रहतीहैं तातेऐसेसारथी वालेरथी बारंबार संसारकोही प्राप्तहोय नानाक्लेशकोही भोगतेहैं। अब उनक्लेशोंका स्वरूप श्रवणकरो हे सौम्य जिसका बुद्धिरूपी सारथी बिबेकी नहीं होता तिसका रथ ब्रह्मविद्यारूप श्रेयोमार्ग को त्यागकेअविद्यारूपी प्रेयोमार्गमेंही चलताहैतबयह जीवनाना प्रकारकीकामनारूपी पिशाचिनीके वशभयादेवीदेवतापितर भूत यक्षवृक्ष पादुकामंत्र यंत्रादिकों को भोगोंके निमित्तसेवताहै तिस करके कर्म विषयरूपी गारोंमें गिरताहै सो गारभी त्रिगुणात्मक हैं तहां जब अविवेकी सारथीवाले रथी जीवका रथ सत्त्वगुणी गारबिषे गिरताहै तब यह जीवयज्ञ अग्निहोत्र स्वाध्याय ध्यान धारणा योग समाधि उपासना आदिकोंको करताहै तब तिसके फल स्वर्गादिलोकोंके उत्तम भोग्य तिनको भोगके पुनः इस लोकबिषे जन्मादिकोंके क्लेश भोगके पुनः कर्मकरताहै। अरु जब जीवात्माका उक्तरथ राजसी गारबिषे गिरताहै तब यह जीव नानाप्रकारके जप तप उपासनादि कामुककर्मको करताहै अपने को कुछ बनमेकेअर्थ तब उनकर्मोंका फल यहांही प्राप्तहोता है अरु धनपुत्रादि पदार्थोंके संयोग वियोगकर रागद्वेष पापपुण्य हर्ष शोकादिरूपी यंत्रोंबिषे पीडित होताहै पुनः मरता है पुनः जन्मता है बारबार दुःख सुख भोगताहै । अरु जब अविवेकी सारथीवाले जीवात्माका रथ तामसी गारबिषे गिरता है तब यह जीववेदशास्त्रसे बाह्य भूतप्रेतादिकोंकी आराधना करता है

यस्तुविज्ञानवान्भवति समनस्कःसदाशुचिः । सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयोनजायते ८ ॥

अथवा सदा आलस्य निद्रा प्रमादकरके धर्मकर्मसे भ्रष्ट परम अशुचि शिश्नोदरपरायणही रहताहैतिसके फल नरकादि महान् क्लेशोंको निरन्तरभोगताहै पुनःजन्मता मरतापशुआदि योनिको प्राप्तहोय महान् क्लेशको पावताहै । हेसौम्य इत्यादिजे क्लेशहैं सो बुद्धिरूपी अविवेकी सारथीकरके अविद्यारूपी मार्गमें चलनेवालों को होताहै। ताते अभिप्राय यहहैकि यावत्पर्यन्त ब्रह्मनिष्ठआचार्य साथमिलके अपनीबुद्धिरूपी सारथीको विवेकवती नहींकरता तावत्पर्यन्त यह जीवात्मा जन्ममरणरूपी संसार से नहीं छूटता क्यों जो संसारके पारहोनेका मुख्यसाधन इन्द्रिय अरु मनका निग्रहही है सो विवेकशालिनी बुद्धिबिना कदापि होता नहीं ताते मोक्षेच्छुको प्रथम अपनी बुद्धिरूपी सारथीको विवेकवती कर्त्तव्य योग्यहै ॥

मंत्र आठवां ॥

हे नचिकेतः पूर्वोक्त अविज्ञानवान् सारथी से इतर "यस्तु विज्ञानवान्भवति" [जो कि विवेकवान् होताहै] अर्थात् जो पुरुष बुद्धि सारथीद्वारा सतशास्त्रके विज्ञानविचारकर युक्तहोता है अरु "समनस्कःसदा शुचिः" [एकाग्रमनवाला सदा पवित्र होताहै] अर्थात् संकल्प विकल्पात्मकमनरूपी बाग निरन्तर जिसके हाथमें रहतीहै अरु तिसही कारणसे इन्द्रियांरूपी घोड़े भी जिसके स्वाधीन रहते हैं अरु सर्वदा ध्यान धारणा विचार समाधि करके पवित्र रहताहै " सतुतत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयोनजायते " [सो तो उसपदको प्राप्तहोताहै (कि) जिससेफेर जन्मता नहीं] अर्थात् सो पुरुष तो उस परमपदको प्राप्त होता है कि जिसपदकी प्राप्तिसे पुनः वो विवेकी सारथीवाला रथी जीवात्मा इसजन्म मरणलक्षणवान् संसारबिषे जन्मपावता

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः । सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोःपरमम्पदम् ९ ॥

नहीं । ताते हे नचिकेतः जिसपदकी आप इच्छाकरतेहौ वो पद जब बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् होताहै तबहीं प्राप्त होताहै ताते प्रथम आप अपने बुद्धिरूपी सारथीको विवेक सम्पन्न करिये कि जिस करके अभीष्टपदकी प्राप्तिहोय परमशान्तिमान् होवो ८ ॥

मंत्र नववां ॥

हे नचिकेतः "। विज्ञानसारथिर्यस्तुमनःप्रग्रहवान्नरः"। [जो कि विज्ञानसारथीवाला (अरु) ग्रहीतमनवाला मनुष्यहै]अर्थात् जो जीवात्मा सर्वसाधनसम्पन्न परमविवेकवान् सारथीवाला अरु मनरूपी रश्मिको भली प्रकार ग्रहणकरने में समर्थ अर्थात् ग्रहीतमन समाहितचित्त सर्वदा पवित्रहै सो विद्वान्पुरुष अर्थात् जिसकीबुद्धि विवेकादि साधनसम्पन्नहै अरुमनजिसका समाहित निश्चल भावको प्राप्तभया है अरु इन्द्रियांरूपी घोड़ेबाह्यमुख विषयोंसे फिरके अन्तर्मुख भयेहैं ऐसा जो नरशरीराविष्ट जीवात्मा "। सोऽध्वनःपारमाप्नोति तद्विष्णोःपरमम्पदम्"।[सो संसार गतिके पारको पावताहै सो विष्णुका परमपदहै] अर्थात् उक्त साधनसम्पन्न अधिकारी पुरुषहै सो संसारगतिसे पार कहिये रहित जो विष्णुका अर्थात् सर्वव्यापी जो परब्रह्म परमात्मा वासुदेवादि नामोंकरके विख्यात सर्वसे परे सर्वका प्रत्यगात्मा सर्वसे उत्कृष्ट पदहै तिसको अपनाआप प्रत्यगात्मभावसे अर्थात् सोहमस्मि भावसे प्राप्तहोताहै ९ ॥ हे सौम्य जिसका बुद्धिरूपी सारथी चतुरहै सो मनइन्द्रियादिकोंको अपने२ विषयोंसे हटायके इसशरीररूपीरथको सर्वदा प्रत्यगात्माकीही ओर चलावताहै अरु तभीअपने प्रत्यक्को प्राप्तहोनेकी इच्छारखताहै सो (अस्तु) तथापि उसको तू तब प्राप्तहोगा जब अपनी बुद्धिको सर्वसाधन

इन्द्रियेभ्यःपराह्यर्थाअर्थेभ्यश्चपरंमनः । मनसश्च पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मामहान्परः १० ॥

सम्पन्न विवेकशालिनी करेगा। ताते जो तू अपनेआप प्रत्यगात्मा की इच्छा रखताहै तो अपनी बुद्धिको विवेकशालिनी करनेके अर्थ शीघ्रपुरुषार्थकरो नचिकेताउवाच ॥ हे भगवन् यह विवेकशालिनी विज्ञानवती बुद्धि ब्रह्मविद्याके मार्गसे इस जीवात्माको कहां लेजाती है अरु जहांलेजाती है वो देश कैसाहै अरु जिस विष्णु पदकी प्राप्ति करावती है तिसकास्वरूप कैसाहै यहसर्व आपकृपा करके कहिये मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः जिसपुरुषकी बुद्धि परम विवेक सम्पन्नहोती है सोबुद्धि अपनेरथीको क्रमकरकेइस संसारसे पार लेजाती है तहां इस पृथिवीसेपरे जलहै जलसे परे अग्निहै अग्निसे परे वायुहै वायुसेपरे आकाशहै आकाशसे परेमहत्तत्वहै महत्तत्वसे परे अव्यक्तहै सो इनसर्वको प्रथम २ की अपेक्षा दूसरे २ को कारणत्वहोनेसे ब्रह्मत्वहै ताते यह सर्वब्रह्म कहे जातेहैं परन्तु यहसर्व संसारमें प्राप्त करनेवाले अपरब्रह्महैं ताते वो विवेक शालिनी बुद्धि अपने रथीको इनसर्व असत्यब्रह्मोंसे बचायके दूरलेजातीहै एतदर्थ तुमको सर्वसे दूरजानाहै ताते शीघ्र पुरुषार्थ करो ९ ॥

मंत्र दशवां ॥

हे नचिकेतः जिसपदको आपने प्राप्तहोनाहै सोपद महासूक्ष्म है अरु इन स्थूल सूक्ष्म कार्यकारणात्मक प्रपंचसे पृथक् अरु इन सर्व संघातविषे सर्वका प्रत्यगात्मभावसे प्रकाशितहै एतदर्थ वो सर्वसे परेहै । हे नचिकेतः "इन्द्रियेभ्यःपराह्यर्थाः" [इन्द्रियों से परे अर्थहैं] अर्थात् यह जो देहस्थ इन्द्रियांहैं तिन का प्रत्यक् पदार्थहैं क्योंकि इन्द्रियां एकदेशीहैं अरु पदार्थ सर्वदेशीहैं ताते इन्द्रियोंसे परे पदार्थहैं तिन पदार्थोंका प्रत्यक् अर्थ (गरज़) है अरु "अर्थेभ्यश्चपरंमनः" [अर्थसे परे मनहै] अर्थात् अर्थका

महतःपरमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषःपरः।पुरुषान्नपरंकि ञ्चित्साकाष्ठासापरागतिः ११॥

प्रत्यक् मनहै क्योंकि अर्थ मनके आधीनहै अरु मन सूक्ष्मभूतों का कार्यहै ताते अर्थसे परे मनहै अरु "मनसश्च परा बुद्धिः" [मनसे परे बुद्धिहै] अर्थात् मनका प्रत्यक् महासूक्ष्म सूक्ष्मभूतों का कारण बुद्धिहै ताते मनका प्रत्यक् मनसे परे है अरु "बुद्धेरात्मा महान् परः" [बुद्धिसे पर महान् आत्मा है] अर्थात् सर्व प्राणियोंकी बुद्धि प्रत्यगात्मा होनेसे सर्वसे परहै तथापि बुद्धिका आत्मा सर्वसे बडा सर्वलिंग शरीरोंका समष्टिरूप अव्याकृतका कार्य प्रथम उत्पत्तिमान् सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जोकि बोध अबोधात्मक अर्थात् ज्ञान अरु क्रिया उभयशक्त्यात्मक तत्त्वहै सो महान् आत्मा बुद्धिसे भी परेहै॥ हे सौम्य इन्द्रियोंसे पर विषयहैं क्यों जो इन्द्रियां विषयके आधीन हैं अरु विषयों से परे मन है क्योंकि मनके आधीन पदार्थ हैं अरु मन से परे बुद्धि है क्यों जोअतिचंचल संकल्प विकल्पात्मक अनवस्थ जो मन तिसका निश्चय विवेक कर्त्ता बुद्धि है ताते मनका प्रत्यक् बुद्धि है अरु बुद्धिसेपरे महानआत्मा हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा सर्वको धारणकर्त्ता कि जिसके आश्रय बुद्धिकी वृत्ति विस्मृतिमेंसे पुनः स्मृतिमें आवे है सो बुद्धिका प्रत्यगात्मा हिरण्यगर्भ बुद्धिसे भीपरे है१०॥

मंत्र ग्यारहवां॥

हे नचिकेतः "महतः परमव्यक्तं" [महान्आत्मासे अव्यक्त परे है] अर्थात् महानआत्मा जो हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा तिससे भी अव्यक्त जो सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत् का कारण बीजभूत अव्याकृत अव्यक्त आकाश प्रधान माया आदि नामोंसे विख्यात सर्वशक्ति की समष्टिता परमात्मा के बिषे ओतप्रोत होने से अपृथक्भावसे स्थित। जैसे बटके महासूक्ष्मबीजबिषे बटवृक्ष शक्ति अभेदता से ओतप्रोतहै वहां यहनहींकहाजाता जो बटबीज

विषे वृक्षशक्ति किसदेश में अरु कितनीहै तैसेही महासूक्ष्म परमात्मा विषे यह नहीं कहाजाता जो किसदेश में अरु कितनी है क्यों जो अभेदतासे ओतप्रोत है ताते अद्वैत परमात्मामें द्वैतका हेतुनहीं ऐसा जो अव्यक्त नामकरके अव्याकृतपर है अर्थात् हिरण्यगर्भ का प्रत्यक् अव्यक्त महानात्मा हिरण्यगर्भ से पर है । अरु "। अव्यक्तात्पुरुषः परः "। [अव्यक्त से पर पुरुष है] अर्थात् परमसूक्ष्म अरु महान् अव्यक्तका भी परमाश्रय प्रत्यगात्मा एक चिन्मात्र सत्तासमान पुरुष है तिसपरमपुरुष के विषे द्वैतसत्ता का अभाव है तिसको श्रुति कहतीहै कि हे नचिकेतः "। पुरुषान्न परं किञ्चित् "। [पुरुषसे कोईभी परनहीं] अर्थात् उस महासूक्ष्मतर परिपूर्ण प्रत्यगात्मा चैतन्यतत्त्व से किंचिन्मात्र भी अन्य पृथक् वस्तु नहीं । ताते यावत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यादि कहे हैं तिनसर्वकी "। सा काष्ठा "। [सो अवधिहै] अर्थात् पराकाष्ठा (परमाश्रय) प्रत्यगात्मा अवधि है उसही विषे सर्वकल्पना का पर्य्यवसान है उससे पृथक् सत्तावान् कोईनहीं मूर्खोंके समझावनेके अर्थ उसविषे नानाप्रकारकी कार्यकारणादि कल्पनाकिया है वास्तव में एक अद्वैत चिन्मात्र तत्त्वही अपने आप पूर्णता से आपही सुशोभित होरहा है ताते सोई सर्वकी पराकाष्ठा अवधि है । अरु "। सा "। [सोई] मुमुक्षुओंको संसार से पारहोने के अर्थ "। परागतिः "। [सर्वोत्तमगतिहै] ॥ अर्थात् हे सौम्य अव्याकृतादि सर्व कार्य कारणात्मक जगत्का जो परमाश्रय सर्वाधिष्ठान परमपुरुषहै सोई अव्याकृतादि तृणपर्यंत सर्वका अपनाआप प्रत्यगात्मा है तिसको अपनाआप आत्मत्वसे अनुभव करना सोई मुमुक्षुको परमोत्तम गतिहै इससे अन्यजेगतिहै सो अविद्याजन्य सर्व अवगतिहै ताते इस सर्वोत्तमगतिकी प्राप्तिके अर्थ पुरुषको अवश्य पुरुषार्थ कर्त्तव्यहै॥प्र०॥ हे भगवन् जोकि इन्द्रियादि स्थूल से अव्यक्तादि महासूक्ष्म सर्व कार्य कारणसे परे अक्षर आत्मा पुरुषहै सो सर्वसे अति दूर होगा अब हम सरीखे को उसकी प्रा-

एषसर्वेषुभूतेषु गुढोत्मानप्रकाशते । दृश्यतेत्वग्र्यया बुद्ध्यासूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः १२ ॥

तिकहां ॥उ०॥ हे सौम्य ऐसा मतकहो वो सर्वका प्रत्यक् अपना आपहै ताते देशकाल वस्तुके व्यवधानसे रहित है एतदर्थ उसकीप्राप्ति अति सुगमहै परन्तु सूक्ष्मबुद्धिवालेको है अरु जे अविवेकी स्थूलबुद्धिवाले असंस्कृतात्माहैं तिनको उसका दर्शनअति दूर अरु अति कठिन है ११ ॥

मंत्र बारहवां ॥

हे नचिकेतः "एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते" [यह आत्मा सर्व भूतोंविषे गूढभया प्रकाशता नहीं] अर्थात् यह जो अव्याकृतादि सर्वसे परसर्वकी अवधि चैतन्यपुरुष तुम्हारेप्रति कहाहै सो ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्व चराचर भूतोंविषे छिपाभया है अर्थात् मन बुद्धि प्राणइन्द्रिय शरीरादि संघातविषे मिलके तत्तद्धर्मवान् कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखीभावसे आवृतभयासा भासमान जो आत्मा सो साधनहीन असंस्कृत अविवेकी मूढपुरुषोंको अपना आप प्रत्यक् सर्वसे भिन्नहोत सन्ते भी यथार्थ अकर्त्ता अभोक्ता सच्चिदानन्दरूपसे अनुभवमें आवता नहीं सो इतनामात्रही नहीं किन्तु अनात्मसंघातके धर्मको अज्ञानकेवश अपने विषे मानते हैं कि हम ब्राह्मण क्षत्रियआदि जातिमान् कर्त्ता भोक्ता दुःखी सुखी पापी पुण्यी परमेश्वरके किंकर अतितुच्छ जीवहैं ताते हे नचिकेतः इन पुरुषोंको यह आत्मा दूरसेभी दूरहै कईकल्प व्यतीत होगये इनको अद्यावधि उसकी प्राप्ति नहीं भई क्योंकि इनपुरुषोंका बुद्धिरूपी सारथी चतुरनहीं जो इनको बडे२ नदी नद नाले पर्वत जंगल गारआदि विषमस्थानोंसे बचायके लेजाय । हे नचिकेतः यह अहंता ममतारूपी बडे उच्च पर्वतहैं मोहरूपी महागंभीर नदहैं तृष्णारूपी बडी बेगवती नदीहै कामनारूपी बडागर्त्त है कर्म बडाभारी अरण्यहै इनविषे अटकेहुये इन्होंको असंख्यकाल होग-

यच्छेद्वाङ्मनसीप्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानआत्मनि । ज्ञानमात्मनिमहतिनियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्तआत्मनि १३ ॥

या अद्यावधि इनसर्वको लंघके उस विष्णुपद को प्राप्तभयेनहीं कि जहांके गये फेर इनक्लेशोंबिषे आवतेनहीं । ताते अविवेकी पुरुषको अपना आप शुद्ध शान्त आनन्दघन आत्मा प्रकटहोते सन्ते भी भानहोता नहीं । सोई श्रीभगवद्गीताबिषे श्रीकृष्णका वाक्यहै तथाच ।(नाहंप्रकाशःसर्वस्य योगमाया समावृतः)।इत्यादि प्र० ॥ हे भगवन् श्रुतिकहती है कि । मत्वाधीरोन शोचति। अरु आप कहतेहौ कि । न प्रकाशते । आत्मा भानहोता नहीं । सो इसको भी कृपाकरके कहिये ॥उ०॥ हे सौम्य जोकि साधनहीन असंस्कारी विवेकशून्य पुरुषहैं तिनको आत्मा आत्मत्वकरके भानहोता नहीं । अरु जे साधनसम्पन्न संस्कारी पुरुषहैं तिनको "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्यासूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।" [एकाग्रयुक्तसूक्ष्म बुद्धिसे सूक्ष्मदर्शियोंकरके दृश्यहै] अर्थात् एकाग्रचित्तकरके अरु उपनिषद् ब्रह्मविद्या जोकि परमसूक्ष्मवस्तुको निरूपण करतीहै तिसके सूक्ष्मबिचारसे भई जे सूक्ष्मबुद्धि तिस सूक्ष्मबुद्धिकरके सूक्ष्मबुद्धिपुरुष अर्थात् । इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था । इत्यादि श्रुतियों के वाक्यप्रमाण एकसे एक सूक्ष्मवस्तुके परम्परा विचारसे सूक्ष्मवस्तुके अनुभव करनेका विवेक प्राप्तभयाहै जिसको तिससूक्ष्मदर्शी विद्वानपुरुषकरके महासूक्ष्म अपना आप प्रत्यगात्मा दृश्यहै अर्थात् साक्षात् (सोहमस्मि) भावसे अपनाआप अनुभव में आवताहै अन्यप्रकार नहीं १२ ॥प्र०॥ हे भगवन् अब उसमहा सूक्ष्म अपनेआप प्रत्यगात्माकी प्राप्तिकाउपाय आप कृपाकरके कहिये कि जिसकरके मैं भी अपनेआप प्रत्यगात्माको प्राप्तहोवौं॥

मंत्र तेरहवां ॥

हे नचिकेतः "। यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः "। [प्राज्ञ (बुद्धिमान्) वाक्को मनबिषे लयकरे] अर्थात् साधन सम्पन्न परम विवेकी

प्राज्ञपुरुष है सो वाक् उपलक्षणकरके समस्त इन्द्रियोंको उनके प्रत्यक् सूक्ष्म मनबिषे लयकरे अरु " तद्यच्छेज् ज्ञानआत्मनि "। [तिस मनको ज्ञानआत्मा (बुद्धि) बिषे लयकरे] अर्थात् तिस मनको कि जिसबिषे सर्व इन्द्रियां लयकियाहै विज्ञानात्मा बुद्धि बिषे लयकरे क्योंकि मनकी प्रकाशक प्रत्यक् विज्ञानात्मा बुद्धि है अरु " ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् "। [ज्ञान (बुद्धि) को महान् आत्मा हिरण्यगर्भ बिषे लयकरे] अर्थात् उस विज्ञानात्माबुद्धिको कि जिसबिषे इन्द्रियां सहित मन लयकियाहै तिसको महानात्मा प्रथमज हिरण्यगर्भ तिसबिषे लयकरे अर्थात् सर्व बुद्धियोंका प्रकाशक धारणकर्त्ता समष्टि सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ तिस महान् आत्माबिषे व्यष्टि विज्ञानात्मा बुद्धिको लयकरे अरु "तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि "। [तिस महानात्माको शान्तात्मा (साक्षी) बिषे लयकरे] अर्थात् तिस हिरण्यगर्भको कि जिसबिषे इन्द्रिय मन समेत बुद्धिको लय कियाहै तिसको शान्तात्मा अर्थात् सर्व विशेष्य विशेषणादि नाम रूप क्रिया समाप्त भई है जिस बिषे ऐसा जो सर्वान्तर सर्व प्रत्ययका प्रकाशक साक्षी सर्वका प्रत्यगात्मा चैतन्य तिसबिषे सहित कारण अव्यक्तके लयकरे १३॥ हेसौम्य इस प्रकार साधन संस्कार सम्पन्न विवेकवान् सूक्ष्मदर्शी पुरुष स्थूलका सूक्ष्ममें इस परम्परासे लय चिंतवन करके सर्व कीअवधि जे सर्वका प्रकाशक प्रत्यगात्मा तिसको साक्षात् अपनाआप अनुभवकर शान्तात्मा होतेहैं अरु साधन संस्कार रहित अविवेकी पुरुष बुद्धिकी कल्पना तर्कादि करके उस आत्माको प्राप्त होते नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् वेदभगवान् इन पुरुषोंको अविद्या निद्रासे कैसे जगावताहै सोभीआप आज्ञा करिये॥उ०॥ हेसौम्य जैसे यात्रीलोग रात्रिके समय सराय आदि स्थानों में जाय टिकतेहैं तब प्रथम उस स्थानापति बुढ़ी माई (भटियारी) से कहतेहैं कि हेमाई अब हम यहां तेरे स्थानमें सोवतेहैं परन्तु हमने जाना दूरहै ताते तुमने मुझको जलदी जगावना जिसमें

उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्यधारा तिशितादुरत्यया दुर्गम्पथस्ततकवयोवदन्ति १४ ॥

हम यहां सोते न रहैं हे सौम्य इस प्रकार कहके वो यात्रीलोग शयन करतेहैं तदनन्तर उनको जगावनेका समय उसबुढ़ीमाईने देखा तब वो उन सोयेहुये को जगावती भई कि हे सोवनेवाले यात्रीयो अब उठो देखो तुमने दूरजानाहै अब रात्रिभी थोड़ी है ताते शीघ्रउठो । तब वो निद्राबश सोवते पुरुष कहते हैं कि हां उठतेहैं अभीतो रात्रि बहुतहै तब पुनः वोमाई सकोप कहती है कि हेमूर्खो तुम क्यों नहींउठते देखो तुम्हारे साथी सब चलेजातेहैं पछि तुमको जाना कठिनहोगा अरु तुमने जानादूरहै मागेमार्ग भी कठिनहै अरु उस मार्गके जानेवालोंका खोजभी नहीं मिलता क्यों जो वो मार्गसे रहित हैं ताते तुम्हारा रस्ता कठिन अरु देश दूरहै एतदर्थ शीघ्रउठो अपने रथअश्व सारथीको सावधान कर साथियों से जामिलो यह तुम्हारे भलेवास्ते मैंने कहाहै । हे सौम्य इसप्रकार वोमाई आग्रह सहित कोपकरके कहती है तब वोयात्री उठके अपने मार्गको चलतेहैं तैसेही वेद भगवान्आचार्यद्वारा होयके जगावताहै ॥ प्र० ॥ हेभगवन् वेद इन पुरुषोंको क्या कहताहै ॥ उ० ॥ हेसौम्य अब वेद इन पुरुषोंको जो कहता है सोई मृत्यु भगवान् नचिकेताप्रति कहते हैं तिसको सावधान होय श्रवणकरो ॥

मंत्र चौदहवां ॥

हेनचिकेतः वेद कहताहै कि हेमनुष्यो जो तुमको दुःखमय संसारसे पारहोनेकी इच्छा हैतो "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत" [उठो जागो श्रेष्ठको प्राप्तहोय (आत्माको) जानो] अर्थात् उठ खड़ेहो आत्मज्ञानके सन्मुखहो यह जो तुम संसाररूपी सरायविषे अविद्यारूपी घोर निद्राके बशभये मनुष्य शरीररूपी चारपायी कि जिसविषे चारबर्णरूपी पाये अरुचार आश्रमरूपी

सेरा पाटी लगे हैं अरु अनेक संचित संस्काररूपी रस्सी करके बुनीहुई है तिसपर अनादि कालके सोये पड़ेहौ सो अब सोवने का समय नहीं ताते जाग्रत भावको प्राप्तहो अरु हे पुरुषो श्रेष्ठ जे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सर्वोत्तम आचार्यहैं तिनको प्राप्तहोवो आचार्य शरण आयेको अपनाआप प्रत्यगात्मा सर्वान्तर साक्षी का (तत्त्वमसि) भावसे उपदेश करतेहैं तिसको तुम जानो। हेनचिकेतः इस आत्मज्ञानकी उपेक्षा न करके उठ खड़ेहो अरु सावधानीसे शीघ्र पुरुषार्थ करो यह मातावत् परम उपकार करती श्रुति कहतीहै ताते श्रुति वाक्य अंगीकार कर शीघ्रही ब्रह्मवेत्ता आचार्यको प्राप्तहो उनके पश्चात् तुमको संसारसे पारहोनाअति कठिनहोगा क्यों जोवो सर्व अपने २ रथारूढ होय विज्ञान सारथीकर संसार के पार अपने बोधबिषे चलेजाते हैं ताते तुमभी उनके साथ मिलके निकलचलो साथ बिना जानेको समर्थ न होगे क्योंकि यह ज्ञानरूपी मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म अरु कठिन है जैसे " क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया " [छुरेकी धार तीक्ष्णकरी भई दुःखसे नाशहोती है] अर्थात् छुरेकी धार तीक्ष्ण सानचढ़ी भई अति सूक्ष्म दुरत्यय अर्थात् दुःखसेभी उसपर चलना कठिनहै तैसेही "दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति" [बुद्धिमान् तिस(ज्ञान) मार्गको दुर्गम कहते हैं] अर्थात् ज्ञानवान् मेधावी पुरुष जो कि वेदवेत्ता आचार्य हैं सो तिस ज्ञानरूपी मार्गको कि जिस मार्गके चलनेसे परमोत्तम विष्णुपदकी प्राप्ति होतीहै अति सूक्ष्म अरु कठिनहै ऐसा कहतेहैं क्योंकि तिसबिषे जो चलनाहै सो अत्यन्त सूक्ष्मबुद्धि अरु आचार्यकीकृपा तिसबिना कदापिहोती नहीं १४॥ हेसौम्य इसप्रकार साक्षात् वेद भगवान् इन्न पुरुषोंपर दयाकरके जगाय खड़ा करताहै क्योंकि उस आत्मतत्त्वको साक्षात् अपना आप अनुभव करके अविद्यासे तरके इन्होंने शान्तात्मा होना है अरु वोआत्मा महा सूक्ष्महै ताते उसकी प्राप्तिका ज्ञानरूपीमार्ग भी अति सूक्ष्म अरु कठिन है एतदर्थही सूक्ष्मबुद्धि बिना उस

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्ध वच्चयत् ॥ अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवं निचाय्यतन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते १५ ॥

मार्गमें चलना बनेनहीं अरु आचार्य बिना सूक्ष्म बुद्धि प्राप्तहोती नहीं ताते साधन पूर्वक आचार्यको प्राप्तहोय ज्ञान मार्गमें अपने आप प्रत्यगात्माको प्राप्तहोना योग्य है १४ ॥ प्र० ॥ हे प्रभोवो आत्माकैसा सूक्ष्महै सो आप कहिये ॥

मंत्र पन्द्रहवां ॥

हे नचिकेतः सबसे स्थूल पृथिवी है कि जिसबिषे शब्दस्पर्श रूप रसगन्ध पांचोगुण इन्द्रियोंके विषयहैं तिस पृथिवीसे सूक्ष्म जलहै जो उसबिषे एक गन्धगुण नहीं अरु जलसे सूक्ष्म अग्नि है जो उसबिषे गन्ध अरु रस यह दोगुणनहीं अरु अग्निसे सूक्ष्म वायुहै जो उसबिषे गन्ध रस रूप यह तीनगुण नहीं अरु वायुसे सूक्ष्म आकाश है जो उसबिषे गन्ध रस रूप स्पर्श यह चारगुण नहीं इन पांचोसे आत्मा महासूक्ष्म है जो उसबिषे पांचो गुण नहीं इसहीसे आत्माको श्रुतिने "। अशब्दमस्पर्श मरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्चयत् ।" [जो (आत्मा) शब्दरहित स्पर्श रहित रूपरहित अव्यय है (तैसे) रसरहित नित्य (अरु) गन्ध रहित है] अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रसगन्ध इन पांचो गुण से रहित शुद्ध निर्गुण प्रतिपादन कियाहै अर्थात् जिसबिषे शब्दादि सूक्ष्मगुण नहीं तिसबिषे आकाशादि स्थूलभूत कहां किन्तु कदापि नहीं इसही से वो आत्मा इन्द्रियोंका विषयनहीं एतदर्थही वो आत्मा अव्ययहै अर्थात् क्षयको प्राप्तहोता नहीं जो गुणवान्होता है सोई नाशवान् होताहै अरु यह आत्मा सर्वगुणोंसे रहित अव्यय है इसही ते नित्यहै उसका आदिकारण कोई नहीं जिसका २ आदि कारण होताहै सोई सो कार्य अपने २ कारणमें लीनहोताहै अरु इसआत्मा का आदिकारण कोई नहीं कि जिसबिषे इसका लय-

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तंसनातनम् ॥ उक्त्व श्रुत्वाचमेधावी ब्रह्मलोकेमहीयते १६ ॥

होय ताते आत्मा नित्य है अरु "। अनाद्यनन्तस्महतः परंध्रुवं "। [अनादि है अनन्तहै महत्तत्त्वसे पर ध्रुवहै]अर्थात् आत्मा अनादि है इसका आदि कारण कोई नहीं इसही से यह अनन्त है अर्थात् नहीं है अन्त जिसका सो कहिये अनन्त सो आत्माही अनादि नित्य अनन्त है अरु महत् जे हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा किंवा बुद्धि तिससे परे परम उत्कृष्ट है अर्थात् बुद्धि आदि सर्वका प्रकाशक कूटस्थ अचल अमर अभय अक्रिय सर्व विशेष्य विशेषणसे रहितानिर्विशेष सर्वका अपनाआप प्रत्यगात्मा है यही परमानन्दरूप ब्रह्महैयही सर्वसंसारसे पार सर्वको शान्तिकास्थानहै । हेनाचिकेतः "।निचाय्यतन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते"। [तिसको जान के मृत्यु के मुखसे छूटताहै] अर्थात् तिस अपनेआप प्रत्यगात्माको विचार अनुभवद्वारा सोहमस्मि भावसे प्राप्तहोके काम कर्म लक्षणरूप संसारमें बारंबार संसृतिका कारण अविद्या नाम्ना जे मृत्युतिस से भली प्रकार छूटताहै अर्थात् मृत्युसे रहित अजर अमर अक्रिय परमानन्द ब्रह्मरूपही होताहै १५ ॥ हेसौम्य इसप्रकार समझायके अविद्या निद्रासे जगावनेवाला परम दयालु एक वेदही है जो पुरुष वेदकी इस उदार वाणीको श्रवणकरके जागाहै सोई धन्यहै वोही पुरुष अविद्यारूपी मृत्युसे छूटताहै । अरु जो पुरुष वेदके इस उदार वाक्यको सुनके जागानहीं सो पापात्मा मृत्यु के भयसों कदापि छूटता नहीं ताते हेसौम्य जो तुझको मृत्युके भयसे छूटनेकी अरु परमानन्दप्राप्तिकी इच्छाहै तो वेदके वाक्यानुसार उठके ब्रह्मवेत्ता आचार्य साथ मिलके आत्मज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ करना योग्य है आगे जो तेरी इच्छा । हे सौम्य अब वेद भगवान्के कहेहुये आत्मविज्ञानकी स्तुति करते इस तृतीयावल्ली पर्यन्त प्रथमाध्यायकी पूर्ती करतेहैं ॥

यइमंपरमंगुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि। प्रयतःश्राद्धकाले वातदानन्त्यायकल्पतेतदानन्त्यायकल्पतइति १७॥

इति प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली ३ ॥

इतिप्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

मंत्र सोलहवां ॥

हेनचिकेतः । हेसौम्य " नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तंसनातनम् " [नचिकेता करके प्राप्तभये सनातन मृत्युके कहे आख्यानको] अर्थात् नचिकेताको प्राप्तभया जे सनातन वेदकरके प्रतिपाद्य मृत्युभगवान् करके उपदेशकिये आख्यानको । अर्थात् यह जो उपनिषद् ब्रह्मविद्या मृत्यु भगवान्करके प्रकाशितहै सोमहत् (आदि) पुरुष करके प्रणीत वेदाबिषे अनादिहै कुछ मृत्यु भगवान्से उत्पन्न नहीं किन्तु मृत्यु भगवान् करके नचिकेता द्वारा इस मनुष्यलोक में प्रकाशित भई है ताते सनातन है । तिसको " उक्त्वा श्रुत्वाचमेधावी ब्रह्मलोकेमहीयते " [बुद्धिमानपुरुष पढके पुनः श्रवणकरके ब्रह्मरूप लोकाबिषे महिमाको पावताहै] अर्थात् उक्त ब्रह्मविद्याको जो बुद्धिमान् विवेकी पुरुष सार्थ पढता है वा ब्रह्मवेत्ता आचार्यद्वारा श्रवण करताहै सो ब्रह्मभावको प्राप्त होय सर्वकरके पूजनीय होताहै १६ ॥

मंत्र सत्रहवां ॥

हेनचिकेतः । हे सौम्य " यइमंपरमंगुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि " [जोइस श्रेष्ठ गुह्य विद्याको ब्राह्मणोंकी सभाबिषे सुनावे] अर्थात् जोकोई विद्वान् पुरुष अपने सर्वोत्तम संस्कारकी बाहुल्यता करके इस वल्ली त्रयात्मक ग्रंथको सो कैसाहै यहग्रंथ सर्वोत्कृष्ट परम गोप्य (छिपा) है केवल तुमसरीखे अधिकारी प्रतिही प्रकाशित होताहै अरुअन्य साधनहीन असंस्कृतात्मा पुरुषको इसका दर्शन

ॐ पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् १ ॥

भी अति कठिन है । तिस ग्रंथको ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणकी सभाबिषे श्रवणकरावे " प्रयतःश्राद्धकालेवा तदानन्त्यायकल्पते " [अथवा श्राद्धकालमें पवित्र होयके सुनावे तब सोश्राद्ध अनन्तफलके अर्थ होताहै] अर्थात् अथवा श्राद्धकालमें परम गुह्य नाचिकेत विद्याके ज्ञाता ब्राह्मणोंके भोजन समय पवित्र होयके यजमानको श्रवण करावे तब सो श्राद्ध अनन्त लक्षणवान् फल देनेके अर्थमें समर्थ होताहै । तदानन्त्यायकल्पतइति । यह द्विवचन अध्याय परिसमाप्तिके सूचनार्थ है १७ ॥

इतितृतीया वल्ली ३ ॥

इति कठोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाध्याय प्रथमावल्ली प्रारभ्यते । शिष्यउवाच । हेगुरो जबकि महासूक्ष्म सर्व भूतोंबिषे व्याप्त जो चैतन्य आत्मा सो स्थूल बुद्धिको भान होता नहीं तब उसका भान कैसे होय सो कहिये । गुरुरुवाच हे सौम्य पूर्व तृतीया वल्लीकी बारहवीं श्रुति बिषे कहा है । दृश्यतेत्वग्र्यायाबुद्ध्या । सूक्ष्म बुद्धिकरके वो सर्वान्तर अपनाआप आत्मा अनुभव होताहै । हेसौम्य एतदर्थ बुद्धिकी सूक्ष्मता होनेके विषयमें जो प्रतिबन्धहै कि जिसकेहोते संते सूक्ष्म बुद्धिपूर्वक आत्मा अपनाआप भान होता नहीं तिस प्रतिबन्धको इसचतुर्थवल्लीके पूर्वमें देखावतेसंते तिसके अभावसे आत्मदर्शन देखावते हैं तहां जिज्ञासुको आत्मज्ञानार्थ जोकि परम श्रेयरूपहै तिस विषयक प्रतिबन्धके अभावार्थ अवश्य पुरुषार्थ कर्तव्यहै ॥ प्र० ॥ हे प्रभो ॥ उस प्रतिबन्धको आप कहिये कि जिसके अभावार्थ अवश्य पुरुषार्थ कर्तव्यहै ॥ उ० ॥ हेसौम्य

भगवान् वैवस्वतद्वारा आप वेदने नचिकेतासे कहा है सो श्रवण करो ॥

मंत्र पहिला ॥

मृत्युरुवाच हे नचिकेतः अबएक अनादि प्रतिबन्धको श्रवणकरो यह जो "पराञ्चि खानि" [सर्वदा बाह्यको जानेवाली श्रोत्रादि इन्द्रियां] अर्थात् सर्वदा बाह्य अपने २ विषयप्रति जानेवाली जे वागादि इन्द्रियां तिनको खानि कहते हैं जैसे पर्वत किंवा पृथिवी विषे अनेक खानि होती हैं तिनाबिषे अनेक पदार्थ पूर्णहोते हैं, तैसे यह शरीररूपी पर्वतहै तिसबिषे श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियां खानिहैं तिन बिषे नानाप्रकारके उत्तम मध्यम कनिष्ठ अधम शब्दादि विषयरूप पदार्थकी पूर्णताहै। अर्थात् यावत् शब्दहैं तावत् सर्व श्रोत्रबिषे रहते हैं यावत् रूपहैं तावत् सर्व चक्षुबिषे रहतेहैं यावत् रसहैं तावत् सर्व रसनाबिषे रहतेहैं यावत् गंधहैं तावत् सर्व घ्राणबिषे रहतेहैं यावत् स्पर्श हैं तावत् सर्व त्वचाबिषे रहते हैं । तथाच " सर्व्वेषां शब्दानांश्रोत्रमेकायनमेवं " इत्यादि प्रमाणसे। तातेइन इन्द्रियोंको खानि कहतेहैं सो इन इन्द्रियोंका प्रवाह अनादिकालसे बहिर्मुख विषयोंप्रति चलताहै ताते विनाइनके प्रवाह को रोके आत्माकी प्राप्तिनहीं ताते प्रथम इनको "व्यतृणत्" [हनन करे] अर्थात् विषयोंसे रोकके अन्तर्मुखकरे क्योंकि इनकी बहिर्मुखताही आत्मलाभमें प्रतिबन्धहै ताते प्रथम इन इन्द्रियोंके बहिर्मुख स्वभावको विचार विवेकरूप पुरुषार्थसे नष्टकरे क्योंकि इनके नष्टकरनेसेही यह पुरुष "स्वयंभूः" [स्वयंभू] अर्थात् सदा स्वतंत्र स्वयं परमात्माही है प्र०॥ हेभगवन् इन इन्द्रियोंका बहिर्मुख प्रवाह स्वाभाविकहै किंवा किसी का चलायाहुआ चलता है उ०॥ हेसौम्य यस्वतंत्र नहीं इनजीवोंके जे अनादिकालके अध्यास हैं सोई प्रारब्धरूपहोयके इन इन्द्रियोंको बहिर्मुख प्रवाहदेते हैं "तस्मात्पराङ्पश्यतिनान्तरात्मन्" [एतदर्थबहिर देखती हैं

अन्तरात्मा को नहीं] अर्थात् एतदर्थ यह इन्द्रियां अनात्मभूतजे शब्दादिविषय तिनहींको प्राप्तहोती हैं तिसकारणसे अपने प्रत्यगात्माको प्राप्तहोती नहीं। अर्थात् ये सर्वजीव अपने चलाये बहिर्मुख इन्द्रियोंके अध्यासरूप प्रवाह तिसबिषे गिरके विषयों की ओरको बहेजाते हैं अब इस प्रवाहमें इनको यह अवकाश नहीं जों ये अपनेआप प्रत्यगात्माको साक्षात् अनुभवकरें ताते आत्माजिज्ञासु महावाक्योंके श्रवणमनन निदिध्यासनके अभ्यासरूप पुरुषार्थकरके इन इन्द्रियोंके बहिर्मुखप्रबाहको रोके ॥ हे नचिकेतः "कश्चिद्धीरःप्रत्यगात्मानमैक्षत्" [कोई धीरपुरुष प्रत्यगात्माको देखताहे] अर्थात् कोई एक जो बिरला धीर पुरुषहे सो अपनेआप प्रत्यगात्माको सर्वात्मभावसे देखताहे प्र०॥ हे प्रभो वो कौन धीरपुरुषहे जो अपनेआप आत्माको सर्वात्मभावसे देखताहे उ० ॥ "आवृत्तचक्षुः" [फिरीहैं चक्षुरादि इन्द्रियां] अर्थात् फिरीभई हैं श्रोत्रादि इन्द्रियां भलीप्रकार शब्दादि विषयोंसे जिसकी सो पुरुष देखताहे। हेसौम्य जैसे ईश्वरने नदियोंके प्रबाह चलायेहैं तैसेही अनादिकाल से चलतेहैं तिस प्रबाहको कोईएक परम पुरुषार्थी राजाबंध बांधकर बड़े पुरुषार्थ से लौटके अपना प्रयोजन सिद्ध करताहे तैसेही यहजो इन्द्रियों का प्रबाह अनादिकालसे अनात्मभूत विषयोंप्रतिही चलता हे तिस प्रवाहको जब कोईएक परमपुरुषार्थी पुरुष वैराग्यरूपी दृढ बन्ध बांधकर अन्तर्मुख आत्माकी ओर चलावता है तब वो धीर पुरुष अपनेआप प्रत्यगात्माको देखताहे। ताते तुमभीजब वैराग्यरूपी बन्धबांधके अपनी इन्द्रियोंको प्रवाह विषयोंसे हटाय आत्माकी ओर अन्तर्मुख लेआवोगे तब अपने आप आत्मा को प्राप्तहोगे प्र० ॥ हे प्रभो वैराग्यादि महाप्रयासकरके इन्द्रियोंको अन्तर्मुखकर जो अपनेआप प्रत्यगात्मा को देखताहे सो क्याइच्छाधारके देखताहै उ०॥ "अमृतत्वमिच्छन्" [मोक्षकीइच्छासे] अर्थात् अपनेआपको जन्म मरणसे रहित अजर अमर अ-

पराचःकामाननुयन्ति बालास्तेमृत्योर्यन्तिविततस्य पाशम् । अथधीराअमृतत्वंविदित्वाध्रुवमध्रुवेष्विहनप्रार्थयन्ते २ ॥

भयपदकी प्राप्त्यर्थ करताहै । सोई इच्छा तुमकोभीहै ताते तुम भी अन्तर्मुखी होवो १ ॥

मंत्र दूसरा ॥

हे नचिकेतः प्रथमही जो बाहिर विषयादि अनात्मवस्तु का दर्शन है सोई अन्तरात्मा के दर्शन में प्रतिबन्ध का हेतु अविद्या है अरु सोई आत्मदर्शन में प्रतिकूल है सो किन पुरुषोंको कि जिनकी इन्द्रियां विषयोंसे लौटके अन्तर्मुखभई नहीं सो पुरुष जो कदापि ज्ञानप्राप्तिके अर्थ वेदान्तका श्रवण भी करते हैं सोभी विषयोंके भोगार्थही जानना उन पुरुषोंका श्रवणादि सर्व वृथा है । श्रवणायापिबहुभिर्योनलभ्यशृण्वंतोपिबहवोयन्न विद्युः । ताते " । पराचःकामाननुयन्तिबालाः " । [बाहिर्गत विषयोंको प्राप्तहोते हैं अविवेकी] अर्थात् अविवेकी विषयासक्त अल्प बुद्धि पुरुष हैं सो बहिर्गत जे विषयभोग्य तिनके अर्थ अविद्यात्मक काम्य कर्म तिसको करतसन्ते अपने असत्य अध्यासवश अविद्यात्मक बाह्य विषयोंकोही प्राप्त होतेहैं एतदर्थ ऐसे जेअल्प बुद्धि अज्ञपुरुष " । ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् " । [सो विस्तीर्ण केपाशरूप मृत्युको प्राप्तहोतेहैं] अर्थात् सो देहेन्द्रिय आदिकोंके संयोग वियोग अरु निरन्तर जन्म जरा रोगादि अनेक अनर्थरूप पाशको कि जोसर्व जीवोंको सम्यक् बोधविना सर्वदा सर्वओर से बन्धनका कारण है तिसही कारणरूप अविद्यात्मक मृत्युको प्राप्तहोतेहैं । हेनचिकेतः सर्वकोई सर्वका मृत्यु मुझको कहते हैं परन्तु इन सर्वका मृत्यु इनका अविद्यात्मक काम कर्म अध्यास हीहै अरु " । अथधीराः " । [जो धीर पुरुष है (सो)] " । अमृतत्वंविदित्वाध्रुवं " । [नित्य अमरतत्वको जानके] अर्थात् देवताओंके अनि-

येनरूपंरसंगन्धंशब्दान्स्पर्शांश्चमैथुनान् । एतेनैवविजानातिकिमत्रपरिशिष्यतेएतद्वैतत् ३ ॥

त्य अमर भावसे विलक्षण " न वर्धते कर्मणा नोकनीयान " जो कर्मादिकोंसे वृद्धि ह्रासको पावता नहीं ऐसे निर्विकार अचल अपनेआप आत्मरूप अमरभावको साक्षात् सोहमस्मि भावसे जानके "। अध्रुवेष्विहनप्रार्थयन्ते "। [इस संसारमें अध्रुव पदार्थ की इच्छा करते नहीं अर्थात् जो आत्मवेत्ता धीर पुरुष हैं सो अनर्थरूप इससंसारके देवादि अनित्यपदार्थोंमें से किसीभी वस्तु की इच्छामात्र भी करते नहीं क्योंकि अनित्य वस्तुकी इच्छा नित्य अमररूप आत्माके दर्शन बिषे प्रतिकूल है ताते पुत्रादि इषणा त्रयसे रहित होतेहैं २ ॥

मंत्र तीसरा ॥

हे भगवन् ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणहैं सो जिसके ज्ञानभयेते संसारके किसी भी पदार्थकी इच्छाकरते नहीं तिस ब्रह्मका ज्ञान धर्मकर्मके फलवत् परोक्षहोताहै अथवाघट के ज्ञानवत् अपरोक्ष होताहै सो आप कृपाकर कहिये उ० ॥ हे सौम्य ब्रह्मआत्माकी अभेदताहोने से जो आत्माका अपरोक्षज्ञान है सोई सम्यक्ज्ञान है ॥ हे नचिकेतः "। येनरूपंरसंगन्धं शब्दान् स्पर्शांश्चमैथुनान् "। [जिसकरके रूपको रसको गन्ध को शब्दोंको स्पर्शनको पुनः मैथुनको] अर्थात् सर्वलोक जिस ज्ञान स्वभाववाले आत्माकरके रूपरस गंधस्पर्श अरु मैथुनके निमित्त से भये सुखको "। एतेनैवविजानाति "। [स्पष्टजानतेहैं] सोई आत्मा है प्र० ॥ हे भगवन् इस शरीरादि संघातसे विलक्षणआत्माकरके मैं जानताहौं ऐसा तो लोकनविषे प्रसिद्ध है नहीं किंतु संघातरूप मैं सर्वको जानताहौं ऐसा सर्वलोकमानते हैं उ० ॥ हे सौम्य देहादिक संघात शब्दादिविषयवान् अरु ज्ञानका विषय होनेसे इसको ज्ञातृत्व संभवेनहीं अरुजो शरीरादि संघात रूपा-

स्वप्नान्तं जागरितान्तञ्चोभौयेनानुपश्यति । महान्तं विभुमात्मानंमत्वाधीरोनशोचति ४ ॥

दि विषयवान् भयासता शब्दादि विषयनको जानता है ऐसा मानोगे तो संघातके बाह्यके रूपादिक भी अपने आपके अरु परस्परके रूपादि विषयनको जानेंगेपरन्तु यहमानना योग्य नहीं क्योंकि यहसर्व जड़हैं एतदर्थ देहादि संघातके रूपादिकन को लोक इसही देहादि संघातमें स्थित अरु संघातसे विलक्षणज्ञान स्वभाववाले चैतन्यआत्मा करकेही जानते हैं ऐसा मानना अरु कहना योग्यहै । जैसे जिस दाहक स्वभाववाले अग्निकरके लोह वस्तुओंको दहनकरताहै सो अग्नि लोहसे मिलाभया भी भिन्नही है । तैसेही जिसज्ञान स्वभाववाले करके लोक शब्दादि विषयोंको जानते हैं सोई आत्माहै । अरु इस लोकोंविषे आत्मा करके न जानने योग्य "किमत्रपरिशिष्यते" [क्या अवशेष रहताहै] अर्थात् कुछ भी रहता नहीं किन्तु अव्याकृतसे तृणपर्यन्त सर्व आत्मा करकेही जानाजाता है ताते आत्मा सर्वज्ञ है "एतद्वैतत्" [यहही वो (ब्रह्महै)] अर्थात् जो नचिकेताने तृतीय वरदानकरके पूछाथा अरु देवता भी जिसबिषे संशययुक्त ही हैं अरु जो धर्मादिक अरु तिनके फलादिकनसे पृथक् विष्णु का परमपद है "नातः परमस्ति" जिससे पर विष्णुपदनहीं सो यह आत्मारव्यही ब्रह्म ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंने जानाहै ३ ॥

मंत्र चौथा ॥

हे सौम्य उक्त आत्मा शरीरादि बुद्धिपर्यन्त स्थूल सूक्ष्म सर्व संघातमें स्थितअरु संघातसे विलक्षण महासूक्ष्म होनेसे उसका जानना दुःसाध्यजानके वैवस्वतभगवान् नाचिकेताप्रति बारंबार इसही अर्थको कहते हैं । हे नचिकेतः वो आत्मा पुनः कैसा है । "स्वप्नान्तंजागरितान्तञ्चोभौ" । [स्वप्नकेमध्य पुनः जाग्रत् के मध्य दोनोंको] अर्थात् स्वप्न अरु जाग्रत् इन दोनोंके मध्य में

यइमंमध्वदंवेद आत्मानंजीवमन्तिकात् ईशानम्भूत भव्यस्य। नततोविजुगुप्सतेएत। द्वैतत् ५॥

जानने योग्यवस्तु जेजाग्रत् स्वप्नका जगत् तिसको लोक "येना नुपश्यति" [जिससे स्पष्ट देखता है] अर्थात् जाग्रत् स्वप्नके जगत्को लोक जिस ज्ञानस्वभाववाले आत्माकरके देखतेहैं यह ही सो ब्रह्महै तिस "महान्तंविभुमात्मानं" [महान् (अरु) विभु आत्माको] अर्थात् सर्वसे बड़ा अरु सर्वव्यापी अपने आप आत्माको साक्षात् सोहमस्मि भावसे "मत्वा धीरोनशोचति" [जानके धीरपुरुष शोचते नहीं] अर्थात् ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा को जानके सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमानपुरुष जन्ममरणादि निमित्तक शोचको पावते नहीं ४॥

मंत्र पांचवां॥

हे नचिकेतः "य इमंमध्वदंवेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ईशानम्भूतभव्यस्य" [जो कोई इस कर्मफलके भोक्ता (अरु) समीपवर्ती कालत्रयके नियामक जीवरूप आत्माको जानताहै] अर्थात् जो कोई बुद्धिमान् विवेकी पुरुष इसयज्ञ अग्निहोत्रादि कर्मके फल भोक्ता अरु बुद्धि आदि सर्वके समीपवर्ती अरु भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनोंकालके नियामक ज्ञाता प्राणादि कला समूहके धारणकरनेवाले जीवरूप आमाको बुद्धयादि सर्व से भिन्न सम्यक्प्रकार जानताहै "नततोविजुगुप्सते" [तातेरक्षा करनेको इच्छता नहीं] अर्थात् सम्यक् आत्मज्ञान भये पश्चात् अपनेआपकी रक्षा करनेको इच्छाकरता नहीं क्योंकि अभयपद को प्राप्तभयाहै जबतक भय (अज्ञान) के मध्य स्थितभया आपको जन्म मरणवान् अनित्य मानताहै तहांलगि अपनीरक्षा होनेको इच्छा करताहै अरु जब आपको यथार्थ ज्ञान करके नित्य अवि- नाशी अद्वैतरूप जानताहै तब कौनसे किसकरके किसकी रक्षा

यःपूर्व्वंतपसोजातमद्भ्यःपूर्वमजायत । गुहांप्रविश्य तिष्ठन्तंयोभूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वैतत् ६ ॥

की इच्छाकरे किन्तु किसीकीभी नहीं ताते । एतद्वैतत् । यहहीसो ब्रह्म है ५ ॥

मंत्र छठा ॥

हेसौम्य तृतीय मंत्रसे पंचममंत्र पर्यंत तीन मंत्रकरके उत्तम अधिकारीके अर्थ प्रत्यगात्मोपासना द्वारा परमपदकी प्राप्तिदेखाया। अब आगे मध्यम अधिकारीके अर्थ हिरण्यगर्भादिकोंकी अहं अग्रे उपासनाद्वारा भी सत्पद प्राप्ति देखावेहैं तहांजो प्रत्यगात्मा ईश्वर भावसे निर्देशकिया तिसहीको सर्वात्मा करके वेदभगवान् प्रतिपादन करे हैं। हे नाचिकेतः "यःपूर्वन्तपसोजातमद्भ्यः" [जो जलसे पूर्व तपसे उत्पन्न भया] अर्थात् जो कोई एक मुमुक्षु पुरुष जल उपलक्षण करके जलादि पंचभूतोंसे पूर्वभया जो हिरण्यगर्भ सो ज्ञानादि लक्षणवाले ब्रह्मरूप तपसे उत्पन्न भयाहै तिससे "पूर्वमजायत" [प्रथम उत्पन्न भया] हिरण्यगर्भ सो देवतादि सर्व शरीरोंको उत्पन्नकर "गुहांप्रविश्यतिष्ठन्तंयोभूतेभिर्व्यपश्यत" [गुहाविषे प्रवेशकर भूतनकरके सहित स्थितभया जोदेखताहै] अर्थात् पंचभूतोंसे पूर्व ब्रह्मसे उत्पन्नभया जो हिरण्यगर्भ तिसको सर्व प्राणियोंकी हृदयाकाशरूप गुहाविषे प्रवेशकरके शब्दादि विषयोंको अनुभवकरता कार्य कारणरूप भूतोंकरके सहित स्थित भया है तिसको जो देखता है सोइस हिरण्यगर्भ की उपासना प्रसंगविषे "एतद्वैतत्" [उसही ब्रह्मको देखताहै] अर्थात् (जैसे सुवर्णसे उपजे कटक कुंडलादि सुवर्णही होते हैं इतरनहीं) तैसे ब्रह्मसे उत्पन्नभया हिरण्यगर्भ ब्रह्महीहै। अरु उस समष्टि हिरण्यगर्भसे नानाव्यष्टि लिंग भयेहैंसो समष्टि हिरण्यगर्भसे भिन्ननहीं। इसप्रकार व्यष्टि लिंगोंकी समष्टि हिरण्यगर्भसे अभिन्नता अरु समष्टि हिरण्यगर्भकी ब्रह्म से अभिन्नता अरु ब्रह्मकी आत्मा से

याप्राणेनसम्भवत्यदितिर्देवतामयी । गुहांप्रविश्य तिष्ठंतींयाभूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ७ ॥

अभेदता तिसको जो देखता है सो हिरण्यगर्भादि व्यष्टि समष्टि सर्वको अपनाआप प्रत्यक् देखताहै इसप्रकार हिरण्यगर्भकी अहं अग्रे उपासना करताहै सो मध्यम अधिकारी भी उक्त उपासना द्वारा परमानन्दको प्राप्तहोताहै ॥ ६ हेसौम्य अब प्राणरूप हिरण्यगर्भकी उपासनाके द्वारा सत्पदकी प्राप्ति देखावेहैं ॥

मंत्र सातवां ॥

हेनचिकेतः "याप्राणेनसम्भवत्यदितिर्देवतामयी" [जोसर्व देवतारूप प्राणकरके उपजी है (सो) अदिति है]अर्थात् जो सर्व देवतामयी प्राणरूप करके प्रथमकला परब्रह्म से उपजी है सो अदितिहै अरु "गुहांप्रविश्यतिष्ठन्तीं याभूतेभिर्व्यजायत" [जो भूतनकरके सहित उपजी गुहाविषे प्रवेशकरके स्थितभई है] अर्थात् जो प्राणकला भूतनकरके सहित परब्रह्मते उत्पन्न भई है "एतस्माज्जायते प्राणो" तिसको शब्दादि विषयनकी भोक्ताहोने से अदिति नामसे कहतेहैं सो सर्व प्राणियों के हृदयाकाशरूपी गुहा विषे प्रवेशकरके स्थितभई है तिस अदिति विशेषणवान् प्राण कलाको देखताहै सोईप्राण उपासनाके प्रसंगविषे "एतद्वै तत्" [इसही प्रत्यगात्मा ब्रह्मको देखताहै] अर्थात् जो परब्रह्मसे उत्पन्नभया सर्वका भोक्ता प्राणसमष्टि सूत्रात्मा सोई सर्वव्यष्टि प्राण भयाहै अरु जिसविषे परोयेभये सूर्य चन्द्रादिसर्व उदय अस्तहोतेहैं अरु जिसके आश्रय चक्षुरादि इन्द्रियां अपने २ व्यापारमें स्थितहैं सो प्राण सूत्र एकही है। अर्थात् जो सर्व प्राणियोंके हृदयाकाशविषे सर्वका भोक्ता व्यष्टिप्राणहै सो समष्टि सूत्रात्मा से भिन्न नहीं अरु समष्टि सूत्रात्मा अपने कारण परमात्मासे भिन्न नहीं अरु परमात्मा प्रत्यगात्मासे भिन्न नहीं इसप्रकार व्यष्टि समष्टि प्राणसूत्र परमात्माको अपने प्रत्यक्से अभिन्नजानके अ-

अरण्योर्निहितोजातवेदागर्भइवसुभृतोगर्भिणीभिः। दिवेदिवइड्योजागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ८ ॥

प्राणकीअहंअग्रे उपासना करता है अर्थात् जानताहै कि प्राण सूत्रभी हमारा प्रत्यगात्माही है इसप्रकार प्राणकी उपासना करता है सोभी अपने प्रकृतआत्माकोही प्राप्तहोताहै ७ ॥

मंत्र आठवां ॥

हे नचिकेतः " अरण्योर्निहितो जातवेदाः " [अरणी (काष्ठ) विषे स्थित अग्नि] अर्थात् मन्थनकरनेके निमित्त से उत्तरार्णि अरु अधरार्णि उभयकाष्ठमें स्थित सो अधियज्ञरूपा अग्नि यज्ञ कुंडविषे स्थापित किया सर्व हवन किये द्रव्योंका भोक्ता हुआ अथवा सर्वप्राणिनके जठरविषे सर्व अन्नरसजातिका भोक्तावैश्वानरनाम अग्नि तिसको " गर्भइवसुभृतो गर्भिणीभिः " [गर्भवती स्त्रियां जैसे गर्भको धारणकरे हैं] अर्थात् अधियज्ञ अरु अध्यात्म उभयरूपवाले अग्नि को (जैसे गर्भिणी स्त्री शुद्ध अविकारभोजनादिकनसे गर्भको पोषणकरती हुई धारण करेहै) तैसेही यज्ञ क्रियाके कर्त्ता होता ऋत्विजादि अरु प्राणायामादिकोंके कर्त्ता योगी पुरुष शुद्ध निर्दोष आहुति भोजनादि द्वारा रक्षाकरत संते जिसको धारणकरे हैं अरु " दिवेदिवइड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः " [नित्यनित्य जाग्रत्स्वभाववाले (अरु) हवन स्वभाववाले मनुष्यों करके स्तुतिकरने योग्य] अर्थात् उक्तअग्नि नित्य २ जाग्रत्स्वभाववाले अर्थात् प्राणायाम ध्यान धारणाके करनेवाले अन्तरात्मा वैश्वानरके उपासक अरु घृतादिक हवन द्रव्यसे आहुतिकरनेवाले कर्मीयज्ञाग्निके उपासक मनुष्यनकरके हृदयविषे अरु यज्ञविषे स्तुति अरु वन्दनाकरने योग्य है । ऐसा जो यह जातवेद नाम्ना अग्निदेव है " एतद्वैतत " [सोई यह ब्रह्महै] अर्थात् जो अग्नि यज्ञकुंडों विषे अरु प्राणियों के जठर

यतश्चोदेतिसूर्य्योऽस्तंयत्रचगच्छति । तन्देवाःसर्वेऽर्पितास्तदुनात्येतिकश्चन । एतद्वैतत् ९ ॥

यदेवेहतदमुत्रयदमुत्रतदन्विह।मृत्योःसमृत्युमाप्नोति यइहनानेवपश्यति १० ॥

बिषे स्थितहोय अन्तरबाह्य हुतद्रव्यका भोक्ताजगत्का निर्वाहक योगी अरु ऋत्विजों करके सेवनीय है सो वोही ब्रह्म है अरु जो ब्रह्महै सोई आत्माहै ताते अग्निब्रह्म मैंहीहों इसप्रकारजो अग्नि की अहं अग्रे उपासनाकरनेवाले मध्यमअधिकारी हैं सो भी परमानन्दको प्राप्तहोते हैं ८ ॥

मंत्र नववां ॥

हे नाचिकेतः "।यतश्चोदेतिसूर्य्योऽस्तंयत्रच गच्छति"। [जाते सूर्य उदयहोताहै पुनः अस्तको पावताहै पुनः जिसबिषे चलता है] अर्थात् जिस प्राणकरके सूर्य उदयअस्त होताहै अरु जिस प्राणसूत्र बिषे दिन २ चलताहै अरु "। तन्देवाः सर्वेऽर्पितास्तदुनात्येतिकश्चन "। [तिसबिषे सर्वदेवता अर्पितहैं तिसकोकोई भी उल्लंघता नहीं] अर्थात् जिस प्राणकरके सूर्यादि भ्रमणकरने वाले उदय अस्तहोते भ्रमणको प्राप्तहोते हैं तिसप्राणबिषेस्थित भाववाले अग्न्यादि अधिदैवतरूप अरु वागादि अध्यात्मरूप सर्व देवता अर्पितहैं अर्थात् प्रवेशको पावेहैं । तथाच " प्राणस्येदंवशे सर्वं " " अरा नाभौसमर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वंसमर्पितं" ।" प्राणोब्रह्मेति "। सोप्राणभी ब्रह्महीहै । " नमस्तेवायोत्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ,, तिस सर्वरूप प्राणसंज्ञक ब्रह्मको कोई भी उल्लंघनकरनेको समर्थ नहीं अर्थात् प्राणसूत्रसे पृथक् भया कोई भी स्थित होनेको समर्थ नहीं यहप्राणही सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठ है " प्राणो वै ज्येष्ठः श्रेष्ठः ,, ताते "। एतद्वैतत्"। यहही सो ब्रह्महै९॥

मंत्र दशवां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् पूर्व आपने सर्वात्मरूप ब्रह्मकहा सो बने

नहीं क्योंकि उपाधि वालाचैतन्य (जीव)संसारी है अरु उपाधि रहित चैतन्य (ब्रह्म) असंसारीहै एतदर्थ संसारी असंसारी विरुद्ध धर्मवालोंकी एकता बने नहीं ॥ उ० ॥ हेसौम्य उपाधिका किया जो विरुद्धधर्मपना तिसकरके स्वाभाविक स्वरूपकी एकता बिषे भेद रंचकमात्र भी नहीं । सोई वैवस्वतभगवान् नचिकेताप्रति कहतेहैं । हे नचिकेतः जो वस्तु ब्रह्मासेलेके तृणपर्यन्त सर्व पदार्थोंबिषे व्याप्तभया तिन २ उपाधिके सम्बन्धसे अब्रह्मवत् भासता है सो परब्रह्मसे भिन्न संसारीहै ऐसी निश्चयभावना नकरनी । हे नचिकेतः "यदेवेहतदमुत्र यदमुत्र तदन्विह" [जो यहां सोई वहां जो वहां सोई यहां] अर्थात् जो परमात्मा यहां कार्यकारणरूप उपाधिकरके युक्तभया अविवेकी पुरुषको कर्त्ता भोक्ताआदि संसारीधर्मवान्भासता है सोई परमात्मा वहां सर्व कार्य कारणसे पृथक् सैंधवलवणवत् नित्य विज्ञानघनस्वभाव वाला सर्वसंसारधर्म से रहित सदाशुद्धहै । अरु जो ब्रह्म वहां सर्वनाम रूपादि कार्यकारणात्मक प्रपंचसे पृथक् स्वस्वरूप किंवा निर्विकल्प समाधि बिषेहै सोई ब्रह्म यहां नामरूपात्मक कार्य कारण रूपउपाधिबिषे स्थितभया तत्तदनुसार भासता है परन्तु अन्य नहीं ताते "मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति" [जो इस (अनानाबिषे) नानात्वही देखताहै सो मरणसे मरण को प्राप्तहोता है] अर्थात् अन्तःकरणादि उपाधिका स्वभावधर्म अरुभेददृष्टि इन कार्यकरके जाननेमें आवनेवाली कारण अविद्या तिस अविद्याकरके मोहको प्राप्तभया जो अज्ञानी पुरुष सो इस अनानारूपएक अद्वैत ब्रह्मबिषे मैं ब्रह्मसे भिन्न अरु ब्रह्म मुझसे भिन्न ऐसे भिन्नवत् देखता है अरु तिसबिषे आग्रह सहित व्यवहार करताहै सोपुरुष मृत्युसेभी मृत्युको पावताहै। अर्थात् बारंबार जन्म मरणकोही प्राप्तहोताहै उसका आवागमन नहीं छूटता ताते एकरस ज्ञानस्वरूप निरन्तर आकाशवत् परिपूर्ण वस्तु बिषे भिन्नभाव कदापि देखता नहीं किन्तु सो ब्रह्ममैंही हौं ऐसा

मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानास्तिकिञ्चन । मृत्योःस मृत्युंगच्छति यइहनानेवपश्यति ११ ॥

निश्चयकर सर्व संसार धर्मसे रहितहोना योग्यहै ॥ १० ॥

मंत्र ग्यारहवां ॥

प्र० ॥ हेभगवन् जब ब्रह्म एकरस अद्वैतहै तब मैं ज्ञाता अरु यह ज्ञेय ऐसा भेदभाव कैसे भासता है ॥ उ० हे सौम्य अज्ञानियोंकी कल्पनासे ऐसा भेदभाव भासताहै वास्तवमें भेदभाव नहीं सोई वेद भगवान् कहतेहैं । हेनचिकेतः "मनसैवेदमाप्तव्यं" [मनसेही यह प्राप्तकरने योग्यहै] अर्थात् प्रथम जब शरीर संस्कार पूर्वक आचार्यसे शास्त्रसंस्कार होताहै तब उस संस्कृतभये मन करकेही अभेद अनुभवसे एकरस अद्वैत ब्रह्म प्राप्तकरने योग्यहै । अरु "अयमात्मा ब्रह्म" । "नातः परमस्ति" । यह आत्माहीब्रह्म है इससे अन्य कोई नहीं । इसप्रकार निश्चय आत्मक अनुभव करनेसे जब भेदभावकी उपजावनेवाली अविद्या अशेष निवृत्त होती है तब " नेहनानास्तिकिञ्चन " [इस ब्रह्मबिषे किंचिन्मात्रभी नाना नहीं है] अर्थात् गुरु शास्त्र करके संस्कृत भया है अन्तःकरण जिसका तिस संस्कृत पुरुषको जब एकात्म अनुभव से अविद्या अशेषभाव होती है तब इस प्रत्यगात्मा ब्रह्म बिषे किंचिन्मात्रभी भेद भासता नहीं अरु " मृत्योःसमृत्युंगच्छति यइहनानेवपश्यति " [जोइस ब्रह्मबिषे नानत्वकीनाई देखताहै सो मरणसे मरणको पावताहै] अर्थात् जो अज्ञानी असंस्कृत पुरुष अविद्यारूप तिमिरकरके आच्छादित अविवेकात्मक दृष्टिको न त्यागके इस एक अद्वैत ब्रह्मबिषे नानाही देखताहैसो पुरुष अपनी अविवेकता भेददृष्टि करकेही मरणसे मरणको पावताहै ॥ ताते हेसौम्य भेददृष्टि सर्वथा त्यागकरने योग्यहीहै ११

मंत्र बारहवां ॥

हेसौम्य पुनःभी उसही प्रत्यगात्माको जोकि ब्रह्मसे अभिन्न

अंगुष्ठमात्रःपुरुषो मध्यआत्मनितिष्ठति । ईशानो भूतभव्यस्य नततोविजुगुप्सते । एतद्वैतत् १२ ॥

अंगुष्ठमात्रःपुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ईशानोभूत भव्यस्य सएवाद्यसउश्वः । एतद्वैतत् १३ ॥

है कहतेहैं । हेनाचिकेतः शरीरविषे वक्षस्थलके समीप एक मांस पिंडी हृदय कमलहै सो अंगुष्ठके प्रमाणहै तिसके अन्तर आकाशरूप अन्तःकरणहै सोभी तिसके सम्बन्धसे घटाकाशवत् अंगुष्ठ प्रमाणहीहै तिस अन्तःकरण बिषे स्वयंज्योति परमात्मा पुरुषभी है सो यद्यपि सर्व जगत्को पूर्ण करनेवाला होनेसे सर्वत्रही पूर्णहै तथापि अंगुष्ठमात्र हृदयरूप उपाधिके सम्बन्धसे उसको भी अंगुष्ठमात्र करकेही कहतेहैं । हेनाचिकेतः ऐसाजो " अंगुष्ठमात्रःपुरुषो मध्यआत्मनितिष्ठति " [अंगुष्ठमात्र पुरुष शरीरके मध्य स्थित है] अर्थात् हृदयाकाश अन्तःकरणके सम्बन्धसे पूर्ण परमात्माको कहा जो अंगुष्ठमात्र पुरुष सो अंगुष्ठमात्र पुरुष सर्व प्राणीमात्र की हृदयरूप गुहाविषे विराजमानहै अरु "ईशानोभूतभव्यस्य" [भूत भविष्यत्का नियामक है] अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालत्रयका नियामक ईश्वर है तिस तीनों कालके नियामक ईश्वररूप अपनेआप आत्माको सोहमस्मि भावसे साक्षात् जानताहै तब " नततो विजुगुप्सते " [ताते रक्षाकरनेको इच्छता नहीं] अर्थात् ब्रह्म आत्माका सम्यक् अभेद ज्ञानभये पश्चात् अपनेआपकी रक्षा करनेको इच्छा करतानहीं क्योंकि अभयपद बिषे प्राप्तभयाहै ताते " एतद्वैतत् " [यहही सो है] अर्थात् यह आत्माही सो ब्रह्महै ॥ १२ ॥

मंत्र तेरहवां ॥

हेनचिकेतः " अंगुष्ठमात्रःपुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः " [अंगुष्ठमात्र पुरुष धूम रहित प्रकाशवत्] अर्थात् जो चैतन्य पुरुष अन्तःकरणके सम्बन्धसे अंगुष्ठमात्र तुमको कहाहै तिसको धूम

यथोदकन्दुर्गेवृष्टम्पर्वतेषुविधावति । एवंधर्मान् पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति १४ ॥

रहित प्रकाशवत् अर्थात् अग्निकरके तप्त सुवर्ण पिंडवत् योगी जनोंने अपने हृदयबिषे जान्याहै अरुसो "ईशानो भूतभव्यस्य" [भूत भविष्यत्का नियामकहै] अर्थात् जो हृदयबिषे अंगुष्ठमात्र पुरुष कहाहै सोईभूत भविष्यत् वर्त्तमान कालत्रयका नियामक ईश्वर है "सएवाद्य सउश्वः" [सोई वर्त्तमान है सोई कलभी वर्तैगा] अर्थात् सोई ईश्वर प्रत्यगात्मा पुरुष नित्य निर्विकार अब प्राणधारियों बिषे वर्त्तमान है अरु कलभी सोई वर्तैगा। अर्थात् उसके समान अन्य पुरुष उपजनेका नहीं ताते "एतद्वै तत्" [यहही सोब्रह्म है] ॥ १३ ॥ "अयमात्मा ब्रह्म" ॥

मंत्र चौदहवां॥

हेसौम्य पूर्वकही प्रथमवल्लीकी बीसवीं ऋचा बिषे नाचिकेता ने कहा कि कईएक बादी कहतेहैं कि मृतकभये शरीरमें आत्मा है कोई कहते हैं नहीं है इस युक्तिसे प्राप्तभया वादियोंका पक्ष तिसको वैवस्वत भगवान् ने श्रुति वचन से निषेधकिया। तैसे आत्माको क्षणभंगुरत्व पक्षभी निषेधकिया। अब फेरभी मुमुक्षु को अभेद ज्ञानकी दृढ़ताके अर्थ भेदज्ञानके निषेधको स्वयं श्रुति प्रतिपादन करैहै। हेनचिकेतः "यथोदकन्दुर्गेवृष्टम्पर्वतेषुविधावति" [जैसे जलकठिन पर्वतविषे वर्षाहुआ नाशहोताहै] अर्थात् जल जोहै सो पर्वतकेसमान अतिकठिन देशविषे वर्षाद्वारा पतन भया विस्तारको पाय नाना नदी स्रोत झरनाआदि रूपसे प्रवाहितहो विनाशहोताहै अरु तिस एकही वर्षाकेजलको न जाननेसे नदी स्रोत आदिकोंका जल पृथक् २ नाम रूपवाला मानतेहैं "एवं धर्मान्पृथक्पश्यं स्तानेवानुविधावति"। [ऐसे धर्मों को पृथक् देखता हुआ तिनही (भेदोंको) पुनः २ पावताहै] अर्थात् उक्त एक वर्षाके जल बिषे नाना भेद देखता है। इसही प्रकार एक

यथोदकंशुद्धेशुद्धमासिक्तन्तादृगेवभवति । एवम्मुनेर्विजानतआत्माभवतिगौतम १५ ॥

इतिद्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमाउपनिषत्सु चतुर्थवल्लीसमाप्ता १ ॥

अद्वैत आत्मा के धर्मोंको प्रति शरीरमें भिन्न २ देखताहुआ पुरुष उनके पीछे २ वर्त्तमान शरीरके भेदोंको बारंबार पावता है । अर्थात् एक अद्वैत सर्वान्तर आत्माविषे नाना भेद देखता है सो पीछे २ व्यतीत भये नाना जन्मोंके नाना शरीर तिनहीको वारंबार पावता है उसका संसरण नहीं छूटता १४ ॥

मंत्रपंद्रहवां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् जिस उपाधिकृत भेद हैं तिस उपाधिरूप भेद दृष्टिसे रहित अरु शुद्ध एकरस विज्ञान घन आत्माके जानने वाले अरु जानके मनन निदिध्यासन के करनेवाले ऐसे विद्वान् का आत्मस्वरूप होना कैसे संभव है ॥ उ० ॥ " गौतम " [हे नचिकेतः] " यथोदकंशुद्धेशुद्धमासिक्तं तादृगेवभवति " [जैसे जल शुद्ध विषे पतनभया शुद्ध तैसाही होताहै] अर्थात् जैसे शुद्ध अरु सम धरातल विषे वर्षाद्वारा पतन हुआ शुद्ध एकरस जैसा मेघों से पतन होताहै तैसाही होताहै गदलापनादि अन्यथा भावको पावता नहीं " एवम्मुनेर्विजानत आत्माभवति " [ऐसे जाननेवाले मुनिका आत्माहोताहै] अर्थात् शुद्धदेशके शुद्ध जलवत्ही सर्व उपाधि रहित एकरस विज्ञानघन आत्माके जानने वाले मनन शील मुनिका आत्मा जैसा शुद्ध निर्दोष वास्तवमें है तैसाही सर्व उपाधि अरु तिनके धर्मसे रहित निर्दोष सदा शुद्ध ही होताहै " शुद्धमपापविद्धम् " ताते कुतार्किक भेदवादी पुरुषों की भेददृष्टिको अरु नास्तिक पुरुषों की दृष्टिको त्यागके सहस्रावधि माता पितासे भी अधिक हितकरनेवाले वेद भगवान् ने

ओंपुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठायन शोचति विमुक्तश्चविमुच्यते । एतद्वैतत् १ ॥

उपदेशकिया जो ब्रह्म आत्माके अभेद एकताका ज्ञान सो तुझ सरीखे अहंकारादि आसुरी सम्पदासे रहित पुरुषनकरके आदर करने योग्य है १५ ॥

इति कठवल्ल्युपनिषद् द्वितीयाऽध्यायगत प्रथमा उपनिषत्सुचतुर्थवल्ली भाषाटीकासमाप्ता १ ॥

ॐनमोभगवते वैवस्वताय । अथ दूसरे अध्यायकी दूसरी वल्ली प्रारम्भ करते हैं ॥ गुरुरुवाच । हे सौम्य पूर्व प्रतिपादन किया जो आत्मा ब्रह्म तिसका यथार्थ जानना दुःसाध्य जानके आत्मतत्त्वके निर्द्धारणार्थ वैवस्वत भगवान् नचिकेताके प्रति पंचमवल्ली का प्रारंभ करते हैं तिसबिषे यह शरीररूपी पुर-कहैंगे अरु तिसका स्वामी राजास्थानापन्न अजआत्माको कहैंगे॥ हे सौम्य यह जो हस्तपादादि युक्त शरीरहै सो पुर (नगर) वत् है अरु (जैसे प्रसिद्ध पुर द्वार अरु द्वारपालादि सर्व साज्ञयी करके सम्पन्न होताहै) तैसे इस शरीररूपी पुरबिषे एकादश द्वारहैं तिस बिषे इन्द्रियाधिष्ठातादेवता द्वारपाल हैं अरु मस्तक कण्ठ हृदय यह तीन इसबिषे राजास्थानीय महाराज आत्माके सभा करने के स्थानहैं तहां मस्तकरूपी स्थानबिषे नेत्ररूपी सिंहासनपर बैठ जाग्रत्रूपी मुख्यसभा (आमदरबार) को करताहै अरु कण्ठ रूपी स्थानबिषे हितानाम्नी नाड़ी रूपी सिंहासनपर बैठके स्वप्न रूपी निजसभा (खासदरबार) को करता है अरु हृदयरूपी बँ-गले बिषे सर्व सभा सामग्री से पृथक्होय अपनी आनन्दाकार वृत्तिरूपी रानीको साथले शयन करताहै । अरु अन्तःकरण चतु-ष्टयरूपी इसके श्रेष्ठमन्त्री हैं तिन मन्त्रियोंके आगे इंद्रियांरूपी श्रेष्ठ कार्याध्यक्ष सर्व पदार्थों के लेआवने लेजानेवाले हैं । अरु

नाना प्रकारकी वृत्तियां अरु युक्तियां उस महाराजाकी सेना है । अरु चिदाभास तिनका सेनापति है अरु अन्तर्यामी उसका पुर पालक है । हे सौम्य इत्यादि सामग्री सहित जो शरीररूपी पुर है सो अपनेसे अमिलित (पृथक्) धर्मवान् आत्मारूपी महाराजाधिराजका होनेको योग्य है ॥ सत्यंज्ञानमनन्तम् ॥

मन्त्र पहिला ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः " पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः " [पुर एकादशद्वारवाला अवक्र चैतन्य अज (आत्माका) है] अर्थात् इस शरीर नामा पुर बिषे दो कर्णके छिद्र दो नासिकाके छिद्र दो नेत्र एक मुख यह सात ऊपरके द्वारहैं अरु नाभि लिंग गुदा यह तीन नीचेकेद्वार हैं अरु एक मस्तकका ब्रह्मरंध्ररूपी द्वारहै । इसप्रकार एकादशद्वार हैं ॥ प्र० ॥ हेभगवन् यह पुर किस राजाकाहै ॥ उ० ॥ हे नाचिकेतः पुरके वृद्धिक्षयादि धर्मसे विलक्षण वक्रतारहित (जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वओर से सर्वको नित्य सीधाहीहै) तैसेही नित्यही स्थितएकरस ज्ञानस्वरूप वाले जन्मादि विकाररहित अज परमात्मासे अभिन्न आत्मरूप राजाका यह उक्तपुर है हे सौम्य जिसराजाका यह पुरहै तिसके समानही सर्वशरीर रूपीपुरमें स्थित पुरकेस्वामीएक अद्वैत सर्वगत परमात्माको " अनुष्ठायनशोचति " [अनुष्ठानकरके शोचता नहीं] अर्थात् पुरकेस्वामी सर्वान्तर प्रत्यगात्माको सम्यक् ज्ञानपूर्वक ध्यान मनन निदिध्यासन करके लोकादि सर्व एषणा से रहितहुआ पुरुष शोकको पावता नहीं । " तत्रको मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत " " तरति शोकमात्मवित् " । अरु जो पुरुष सर्वान्तर एक प्रत्यगात्माके मनन निदिध्यासादि रूप अनुष्ठानकरके शोक सों रहित होताहै सो यहां जीवन्मुक्तदशाविषेही अविद्या अरु तिसकेकिये काम कर्मादिकोंसे " विमुक्तश्चविमुच्यते " [मुक्तभया भी मुक्तिको पावताहै] अर्थात् जो सम्यक्

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऋतजा अद्रिजाऋतंबृहत् २॥

ज्ञानपूर्वक आत्माध्यासी पुरुष है सो अविद्या अरु तिसके कार्य से नित्यमुक्तभयाभी मुक्तहोताहै अर्थात् बारंबारके जन्म मरणसे रहित होताहै अरु एतदर्थही शोकको प्राप्तहोतानहींताते "एतद्वै तत्" [यहही सो ब्रह्महै] अर्थात् उक्त पुरकेस्वामी आत्मा से इतर ब्रह्म नहीं १॥

मंत्र दूसरा॥

हे नाचिकेतः जो आत्मापुरका स्वामीकरके कहाहै सो एक शरीररूपीपुरका स्वामी नहीं किन्तु सर्व पुरबिषे पुरका स्वामीहै सो कैसाहै "हंसः" [हंसहै] अर्थात् विशेष रूपसे गमनकरहै ताते उसको हंस कहते हैं अरु "शुचिषत्" [पवित्रगतिकर्त्ताहै] अर्थात् आकाशरूप पवित्रदेशबिषे सूर्य रूपहुआ गमनकरता है एतदर्थ उसको शुचिषत् कहते हैं अरु "वसुः" [वसावैहै] अर्थात् सर्वको अपनेबिषे निवासकरावताहै एतदर्थ इसको वसुः कहतेहैं अरु "अन्तरिक्षसत्" [अन्तरिक्षमें गतिकर्त्ता है] अर्थात् वायुरूपसे अन्तरिक्षबिषे गमनकरताहै ताते उसको अन्तरिक्षसत् कहते हैं अरु "होता" [अग्नि] अर्थात् अग्निरूपहै--ताते इसको होतानामसे कहते हैं "अग्निर्वैहोतेतिश्रुतेः" अरु "वेदिषत्" [पृथिवी बिषेस्थित है] अर्थात् वेदि जो पृथिवी तिसबिषे अग्निरूपसे स्थितहै ताते इसको वेदिषत् कहते हैं "इयंवेदिः परोऽन्तः पृथिव्याः" इत्यादि मंत्रवर्णात्। अरु "अतिथिर्दुरोणसत्" [जल रूप स्थितहै] अर्थात् अतिथिकहिये जल सो जलरूपभया कलश बिषे स्थितहोताहै ताते अथवा अतिथिरूपसे गृहोंबिषे गमन करताहै ताते उसको अतिथिर्दुरोणसत् कहते हैं॥ अरु "नृषत्" [मनुष्यों बिषे स्थितहोताहै] ताते उसको नृषत् कहते हैं॥

ऊर्द्ध्वम्प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति। मध्येवामनमासीनंविश्वेदेवाउपासते ३ ॥

अरु "। वरसत् ।" [श्रेष्ठ स्थितहै] अर्थात् श्रेष्ठजो देवता तिनविषे स्थितहोता है ताते इसको । वरसत् । कहतेहैं। अरु "।ऋतसत् ।" [ऋतस्थितहै] अर्थात् ऋत जोसत्य किंवा यज्ञ तिसबिषेस्थित होताहै ताते उसको । ऋतसत् । कहते हैं । अरु "। व्योमसत् ।" [आकाशविषे स्थितहै] ताते इसको । व्योमसत् । कहतेहैं । अरु "। अब्जा ।" [जलसे उत्पन्न] अर्थात् जलविषे शंख शुक्तिमकर मीनादि रूपसे उत्पन्न होतहै ताते उसको । अब्जा । कहते हैं अरु "।गोजा।" [पृथिवी से उत्पन्न] अर्थात् पृथिवी विषे तंदुल यवमाष (उड़द) मसुरादि रूपसे उत्पन्न होताहै ताते उसको ।गोजा। कहतेहैं। अरु "। ऋतजा ।" [ऋतसे उत्पन्न] अर्थात् ऋत तो यज्ञ तिसके साधनरूपसे उपजा है ताते उसको । ऋतजा । कहतेहैं । अरु "। अद्रिजा ।" [पर्वतसे उत्पन्न] अर्थात् पर्वतसे नद्यादिरूप करके उत्पन्न होताहै ताते उसको ।अद्रिजा। कहतेहैं ।अरु "। ऋतं ।" [सत्य है] अर्थात् सर्व उपाधिके साथ मिलके सर्वात्मा हुआभी सत्य स्वभाववाला है ताते उसको ।ऋतं। कहते हैं अरु "। वृहत् ।" [बड़ाहै] ॥ यद्यपि इस मंत्रकरके सूर्यकोही वर्णनकिया है तथापि सूर्यको आत्मस्वरूपवान् ताको अंगीकार करनेसे इस मंत्रका अर्थ ब्रह्मपरत्व होनेमें कुछ विरोध नहीं २ ॥

मंत्र तीसरा ॥

हेसौम्य अब देहसे भिन्न आत्माके स्वरूपको जाननेके विषे चिह्न कहते हैं "। ऊर्द्ध्वम्प्राणमुन्नयत्यपानंप्रत्यगस्यति ।" [प्राण ऊपर चलताहै अपान नीचे चलताहै] अर्थात् प्राण वृत्तिरूप वायुको हृदयस्थानसे ऊपर चलावता है तैसेही अपान वायुको नीचे चलावताहै । तिस हृदयान्तर्गत आकाशके "। मध्येवामनमासीनं विश्वेदेवाउपासते ।" [मध्य विषे स्थित वामनको सर्व

अस्यविस्रंसमानस्य शरीरस्थस्यदेहिनः। देहाद्वि
मुच्यमानस्य किमत्रपरिशिष्यते। एतद्वैतत् ४॥

देवता उपासतेहैं] अर्थात् हृदयान्तर्वर्त्ती आकाशके मध्य अंगुष्ठमात्र चैतन्य पुरुष स्थितहुआ स्वसत्ता करके आप प्राणकोऊर्द्ध अरु अपानको अधः चलावताहै (जैसे बालक चकईमें डोराबांधके अपने हाथके इशारेसे उस डोरेके आश्रय फेंकता अरु खींचताहै तैसे) तिस हृदयान्तरस्थित अंगुष्ठमात्र वामनको अर्थात्सर्व प्रकार उपास्यको सर्वचक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता (जैसे राजाको वैश्यादि) तद्वत् रूपादि विषयरूप बलिदान (कर) देतेसंतेउपासते (सेवते) हैं। अर्थात् रूपादि विषयके ज्ञानको उस अंगुष्ठमात्र वामन नामक आत्मारूपी राजाके अर्थ होने से तिसके इन्द्रिय रूप सेवक अपने २ व्यापार रहित होते नहीं सर्वदा उस महाराजकी सेवाबिषेही रहते हैं। अभिप्राय यह है कि जिसके अर्थ प्राणादि इन्द्रियोंके व्यापार हैं अरु जिसकी सत्तारूप प्रेरणा से होतेहैं सो आत्मा देहादि सर्वसे पृथक्ही है ३॥

मंत्र चौथा॥

हेनचिकेतः "। अस्यविस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः"। [इस शरीरविषे स्थित देहवालेको] अर्थात् इस संघातबिषे स्थित जो देही तिस देहवालेको "। देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्रपरिशिष्यते"। [देहसे मुक्त (भ्रष्ट)भये इसबिषे क्या शेष रहताहै] अर्थात् देहवाले आत्माको देहसे मुक्तभये पश्चात् अशुचिभये इसदेह बिषे प्राणादिकोंका संघात क्या अवशेष रहता है अर्थात् कुछभी शेष रहता नहीं "। एतद्वैतत्"। [यहही सो ब्रह्म है] अर्थात् हे सौम्य जैसे पुरके स्वामीके निकसने से पुरवासी प्रजा निर्बल होयके नाशको पावे है तैसेही देहसे आत्मा के निकलते ही यह सर्व कार्यकारणात्मक समूह निर्बलहुआ नाशको पावता है सो आत्मा देहसे पृथक् ही सिद्धहै॥ अरु पूर्णआत्मा का जो

नप्राणेननापानेनमर्त्योजीवतिकश्चन । इतरेणतु जीवन्तियस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ५ ॥

देहसे निकसना कहाहै सो घटके सम्बन्धसे आकाशके गमनवत् लिंगरूपी उपाधि सम्बन्धसेहै वास्तवमें नहीं ४ ॥

मंत्र पांचवां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् कोईएक आचार्य इस प्राणके निकलजाने सेही इन इन्द्रियादि समूहका नाशहोना मानते हैं प्राणसे भिन्न आत्माके निकसनेसे नहीं ताते प्राणही करके मनुष्यादि जीवते हैं ऐसामानते हैं ॥ उ० ॥ हे सौम्य जो ऐसाकहतेहैं उनकाकहना समीचीन नहीं सोई मृत्युभगवान् नचिकेता प्रति कहते हैं । हे नचिकेतः " नप्राणेननापानेनमर्त्योजीवतिकश्चन " [कोई भी मनुष्य प्राण (अरु) अपान करके जीवतानहीं] अर्थात् कोईभी देहवान् प्राण अपान अथवा चक्षुरादि इन्द्रियोंकरके जीवतानहीं क्योंकि यह सर्व दूसरेके अर्थहोनेवाले प्राणअरु प्राणसे मिलिके कार्यको करनेवाली इन्द्रियां तिनको जीवनकाहेतुत्व बने नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् [जीवधातु] प्राणधारणरूप अर्थ विषे वर्त्तताहै तिसके विचारसे पात्रमें दधिकेधारणवत् शरीरविषे जो प्राणका संयोग है सोई शरीरके जीवनकाहेतु प्रसिद्ध है तब आप प्राणादिकोंको जीवनकाहेतुत्वसंभवे नहीं ऐसा क्यों कहते हो ॥ उ० ॥ हे सौम्य कदाचित् होनेवाले प्राण अरु शरीर तिनके संयोग का स्वभावसे असंभव है (जैसे लोकविषे गृहादिकोंकी स्थितिगृहकी सर्वसामग्री से पृथक्स्वभाववाले गृहस्वामी करके है) तैसे प्राणादिकनको भी संघातरूपहोने करके तिनकी भी स्थिति अन्यउक्त लक्षणवाले चैतन्यकी करीहुई होने के योग्य है क्योंकि इस सर्व संघातको स्वेच्छासे एकत्रकरनेवाला संघातसे पृथक्ही है । ताते पराधीन स्थितिवाले प्राणादिकनको जीवनका हेतुत्वपना योग्य नहीं किन्तु संघातसे मिलेभये प्राणसे विलक्षण " इतरेण

हन्ततइदम्प्रवक्ष्यामिगुह्यम्ब्रह्मसनातनम् । यथा चमरणंप्राप्यआत्माभवतिगौतम ६ ॥

योनिमन्येप्रपद्यंतेशरीरत्वायदेहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्तियथाकर्मयथाश्रुतम् ७ ॥

तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ " [अन्यसेही जीवतेहैं तिसके होते स्थितिको पावते हैं] अर्थात् संघातकेधर्मसे विलक्षण संघात के स्वामी आत्माकरकेही संघातरूपहुये मनुष्य जीवते हैं अर्थात् प्राणको धारतेहैं अरु संघातसे विलक्षण परब्रह्मरूप आत्माके होते स्थितिको पावतेहैं ॥ तात्पर्य यहहै कि जिस संघातसे पृथक् आत्माके अर्थ प्राण अपान इन्द्रिय आदि सर्व एकत्रभये अपने २ व्यापारको करते हैं सो चैतन्यआत्मा संघातसे पृथक्ही है ५ ॥

मंत्र छठवां ॥

हे नचिकेतः तुझको ब्रह्मविद्याका उत्तमाधिकारी जानके मैं प्रसन्नभयाहौं एतदर्थ " हन्ततइदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यंब्रह्मसनातनम् " [मैं तुझसे इसपुरातनगोप्य ब्रह्मको कहताहौं] अर्थात् हे नचिकेतः तुझपर प्रसन्नभया मैं अब फेरभी तेरे प्रति इसपुरातन गोप्य ब्रह्मको जिसको कि दूसरीवल्लीकी बारहवीं श्रुतिमें " गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं " करके कहा है तिसको कहताहौं क्योंकि जिसके ज्ञानहोनेसे सर्वसंसारकी निवृत्ति होतीहै अरु जिसके न जानने से " यथाच मरणंप्राप्य आत्माभवतिगौतम " [हे गौतम (नचिकेतः) जैसे मरणको प्राप्तहोयके आत्माहोताहै सो श्रवण करो] अर्थात् हेगौतम गोत्रोत्पन्न हे प्रियदर्शन नचिकेतः अज्ञानी पुरुषका आत्मा मरणको प्राप्तहोय जैसाहोता है अरु जैसे संसार को पावता है सो मैं कहताहौं तिसको सावधानता से श्रवण करो ६ ॥

मंत्र सातवां ॥

हे नचिकेतः " योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः " [अन्य देहाभिमानी शरीरग्रहणार्थ योनिको पावते हैं] अर्थात् ज्ञानवान्

यएषसुप्तेषुजागर्त्ति कामंकामंपुरुषोनिर्म्मिमाणः । तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिंल्लोकाःश्रिताः सर्वेतदुनात्येतिकश्चन । एतद्वैतत् ८ ॥

से अन्य देहाभिमानी जो शरीरके वर्णाश्रमादि अभिमानपूर्वक कर्मकेकर्त्ता अविद्वान् अज्ञानीपुरुष हैं सो अपने कर्मवशात् जंगम शरीरके ग्रहणार्थ शुक्र–शोणितयुक्त माताके गर्भस्थानरूपी योनि द्वारमें प्रवेशको पावते हैं । अरु " स्थाणुमन्येनुसंयन्तियथाकर्म यथाश्रुतं " [अन्य स्थावरभावको पावते हैं जैसाकर्म (अरु) जैसा सुनाहै] अर्थात् देहाभिमानपूर्वक कर्मके करनेवाले से भी अन्य जे अत्यन्तमूढ धर्म कर्मसे भ्रष्ट अधम पुरुषहैं सो मरणको पायके वृक्षपाषाणादि स्थावरभावको पावते हैं । अर्थात् जिन धर्म रहित पुरुषोंने इसजन्मविषे जैसाकर्म कियाहै तिसके अनुसार तैसेही स्थावर भावशरीरको पावते हैं तथा । जिसपुरुष ने प्रवृत्ति शास्त्रद्वारा जैसा श्रवणकर निश्चय कियाहै तिसके अनुसारही शरीरको धारते हैं । तथाच " यथा प्रज्ञं हि संभवा " ७ ॥

मंत्र आठवां ॥

हे सौम्य पूर्व जो इसवल्लीके छठे मंत्रकरके कहा कि । हन्तत इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यंब्रह्म सनातनम् । गोप्य सनातन ब्रह्महै सो मैं तुझको कहताहौं । सो अब कहते हैं । हेनचिकेतः " य एषसुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्म्मिमाणः " [जो यह पुरुष सोये हुये तिस तिस वांछितविषयको रचता हुआ जागताहै] अर्थात् जो यह पुरुष स्वप्नविषे प्राणइन्द्रिय आदिकनके सोयेहुये अपने को वांछित स्त्री, पुत्र, पशु, सूर्य, चंद्र, देवी, देवतादि सर्व ब्रह्मांड को अविद्यासे रचताहुआ जागता है अर्थात् रचेहुये जगत्को प्रकाश करतसन्ते अनुभवकरताहै " तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते " [सोई सो शुद्ध ब्रह्महै (अरु) सोई अविनाशी कहाजाता है] अर्थात् जो चैतन्यपुरुष स्वप्नविषे इन्द्रियादिकनके सोयेहुये स्व-

अग्निर्यथैकोभुवनंप्रविष्टोरूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव।
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मारूपंरूपंप्रतिरूपोबहिश्च९॥

वांछित जगत्को रचके आप अनुभवकरताहै सोई सो सनातन गोप्यब्रह्म है इससे इतर और नहीं सोई ब्रह्म सर्वशास्त्रों बिषे अविनाशी कहागयाहै। "अविनाशित्वात्"। "अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्व मिदं ततं"। अर्थात् शरीरादिकों के नाशसे आत्मरूप ब्रह्मका नाशनहीं होता। "तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन"। [तिसही बिषे सर्वलोक आश्रित हैं तिसको कोई भी लंघता नहीं] अर्थात् जो आत्मा स्वप्नजगत्को रचके अनुभव करताहै अरु प्राणादि संघातको अपने आश्रय धारता है तिसही आत्माब्रह्मके आश्रय पृथिव्यादि सर्व ब्रह्मांड स्थितहैं तिस सर्वाधारब्रह्मको कोईभी लंघता नहीं। अर्थात् सर्वका कारण अधिष्ठान ब्रह्म तिसको त्यागके कोई भी अन्यहोता नहीं एतदर्थ "एतद्वैतत्"। [यहही सो (ब्रह्महै)] ८॥ हे सौम्य अनेकतर्कउक्तबुद्धि वाले भेदवादियोंके वाक्य श्रवणसे चलायमान चित्तअरु आर्जव समादि रहित बुद्धिवाले जे पुरुषहैं तिनके चित्तबिषे श्रुतिवाक्य से वारंवार उपदेशकिया भी आत्माकी अभेदताका ज्ञान स्थिर होता नहीं एतदर्थ सर्वकरके मान्य वेद शिरो श्रुति मुमुक्षुओं पर कृपाकरती वारंवार दृष्टान्तयुक्त आत्माकी ऐक्यताही उपदेश करे है। तातें हेसौम्य सर्वभेदवादी तार्किकोंका वाक्य संगत्याग साक्षात् वेदश्रुतिके वाक्यानुसार ब्रह्म आत्मा का अभेद निश्चय करो८॥

मंत्र नववां॥

हे नचिकेतः "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव"। [जैसे एक अग्नि भुवनबिषे प्रवेशकोपाया रूपरूप से प्रतिरूपहोताभया] अर्थात् जैसे एकही अग्नि सो सर्व लोकनबिषे प्रवेशकर जलावनेयोग्य काष्ठादिकों के भेद से बहुतप्रकारका होता भया अर्थात् टेढ़ा सीधा ऊंचा नीचा जैसे २ काष्ठादि उपाधिके

वायुर्यथैकोभुवनंप्रविष्टो रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव। एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मारूपंरूपंप्रतिरूपोबहिश्च१०॥

साथ अग्नि मिलता है तैसे २ रूपको प्राप्तभया प्रतीत होता है परन्तु तहां उपाधिके धर्मको त्यागके अग्निको अनुभवसे देखिये तो सर्व उपाधिके धर्मसे रहित अपनेबिषे जैसाहै तैसाहीहै" एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च "[तैसे सर्व भूतोंका अन्तरात्मा एकहोतसंते भी देह २ प्रति प्रतिरूप होता भया अरु बाहरभी है] अर्थात् (जैसे एकही अग्निकाष्ठादि उपाधि भेदसे नानारूपभया हुआ भासताहै) तैसे एकही अन्तरात्मा अति सूक्ष्म होने से आकाशादि तृणपर्यन्त सर्व देहों में प्रवेश को पायाहुआ नानारूप होताभया परन्तु सर्व शरीरादिकनकी उपाधिको त्यागके केवल एक आत्माहीको अनुभव कर देखिये तो सर्वबिषे एक अद्वैत आत्माही अनुस्युतभया सर्व उपाधिके धर्मसेरहित भासताहै अरु सोई आत्मा आकाशवत् सर्व के बाहर भीहै ॥ " आकाशवत् सर्वगतः सनित्यः" । "सबाह्या भ्यंतरोह्यजः" ९ ॥

मंत्र दशवां ॥

हे नचिकेतः उक्तप्रकार अन्य दृष्टान्तसे भी श्रवणकरो "वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव " [जैसे एक वायु सर्वमें प्रवेशको पायके शरीर२ प्रति प्रतिरूप होताभया] अर्थात् जैसे एकही वायु प्राणरूपसे सर्व भूतों बिषे प्रवेशकरके प्रतिदेह भिन्न२ रूपसे प्रतीति होताहै "एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च " [तैसे एकही सर्व भूतोंका अन्तरात्मा देहदेह प्रति प्रतिरूप होताभया (अरु) बाहर भीहै] अर्थात् (जैसे अग्नि अरु वायु सर्व लोकों बिषे प्रवेशको पाये तिन २ के साथ तिस२ रूपसे प्रतीति होते हैं परन्तु वास्तवसे नहीं) तैसे एकही अखंड आत्मा सर्व लोकोंबिषे प्रवेशको पायासता नानारूप भास-

सूर्य्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्न लिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्य दोषैः। एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा नलिप्यतेलोकदुःखेनबाह्यः ११॥

ताहै परन्तु वास्तवमें नाना नहीं एकरस चैतन्य रूपही है १०॥

मंत्र ग्यारहवां॥

हेनचिकेतः "। सूर्य्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्य दोषैः "। [जैसे सूर्य सर्व लोकोंका चक्षुभयाभी चक्षुके(अरु) बाहरके दोषों करके लिप्त होता नहीं] अर्थात् जैसे सूर्य बाह्य के मल मूत्रादि अपवित्र पदार्थोंको प्रकाश करने से चक्षुओंपर उपकार कर्त्ताहुआ उन अपवित्र पदार्थोंका द्रष्टा सर्व लोकोंका चक्षु भया भी अपवित्रादि पदार्थोंके दर्शन निमित्तसे अरु चक्षुरूपगोलकोंके दुःखादि निमित्तसे भये जे दोष दुःख तिनकरके लिपायमान होता नहीं "। एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा नलिप्यते लोक दुःखेन बाह्यः "। [तैसे एक बाहर (जो) सर्व भूतोंका अन्तरात्मा (सो) लोकके दुःखसे लेपको पावता नहीं] अर्थात् जैसे सूर्यबाह्य प्रकाशरूप अरु अन्तर चक्षुरूप हुआभी बाह्यके अपवित्र पदार्थों के अरु अन्तर चक्षुके दुःखोंसे मिलाभया भी उनके धर्मोंसे लिपायमान होता नहीं तैसे सर्व भूतोंका अन्तरात्मा शरीरादि सर्व उपाधि साथ मिलने से उपाधि धर्मवान् दुःखी सुखी जन्म मरण युक्त अविद्या करके भासता है परन्तु सर्व उपाधि अरु तिनके धर्म से पृथक् करके यथार्थ अनुभव करनेसे ज्ञानवान्को सदा निर्दोष-अलिप्तही भासताहै तातें आत्मा सर्व उपाधि से अलिप्त सदा शुद्धही है ११॥

मंत्र बारहवां॥

हे नचिकेतः उक्तप्रकार सर्व उपाधिके धर्मसे असंग अलिप्त जो परमात्मा सो "। एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकंरूपं बहुधा यः करोति "। [जो एक सर्वको वशकरनेवाला सर्व भूतोंकाअन्त

एकोवशीसर्वभूतान्तरात्माएकंरूपम्बहुधायः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषांसुखंशाश्वतन्नेतरेषाम् १२ ॥

रात्मा (सो) एकरूपको बहुतप्रकारसे करताहै] अर्थात् जो सर्वगत स्वतंत्र परमात्मा एकहै तिसहीके वश भया सर्वजगत् वर्त्तता है तातें उसको वशी कहते हैं क्योंकि सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है सो परमात्मा सर्वशक्तिमान् शुद्ध एकरस ज्ञानरूप अपने आप करके अपनी सर्वशक्ति सत्ताको पृथक् २ अनुभवकरने के अर्थ नामरूपादि अशुद्धउपाधिके भेदसे अपनेको बहुतप्रकारसेकरता है " तमात्मस्थं येऽनु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम् " [तिस शरीरस्थ (आत्माको) जो विवेकी अनुभव करता है तिसकोनित्य सुखहै अन्यको नहीं] अर्थात् तिस सर्वान्तर आत्माको जो बाह्यवृत्तिसे रहितहुये अपने शरीर विषे हृदयाकाशगत बुद्धिमें स्वयंज्योति चैतन्याकारसे जो विवेकी पुरुष शास्त्रोपदेश प्रमाणसे साक्षात्सोहमस्मि भावसे अनुभवकरते हैं तिनपरमात्मरूपहुयेपुरुषोंको ब्रह्मानन्दरूप नित्यसुखहोताहै अरु तिनआत्मवेत्ताओं से इतर जे बाह्य विषयासक्तबुद्धिवाले अविवेकी पुरुषहैं तिनको आत्मानन्द अपनाआप स्वरूपहोतसंते भी अविद्यादोष से वो आत्मानन्दसुखप्रकट होतानहीं १२ ॥

मंत्र तेरहवां ॥

हे नचिकेतः जो परमात्मा " नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् " [अनित्योंका नित्यहै चेतनाका चेतन है जोएक बहुतोंके अर्थ भोगनको देताहै] अर्थात् जो परमात्मा समस्त नामरूप क्रियात्मक अनित्य जगत् का अधिष्ठानकारणरूप नित्यहै अरु ब्रह्मादि सर्व प्राणिमात्रकी जो साभासबुद्धिकी वृत्तिरूपचेतना है तिसका वो चेतन है (जैसे जलादि अदाहकशक्तिवाले पदार्थोंविषे दाहकता प्रतीति होतीहै

नित्योऽनित्यानाञ्चेतनश्चेतनाना मेकोबहूनांयोवि दधातिकामान्। तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्तिधीरा स्तेषांशान्तिःशाश्वतीनेतरेषाम् १३ ॥

सो दाहकस्वभाववाले अग्नि रूप निमित्तकीही करीहुई है, तैसे सर्वप्राणिनके बिषे जो चेतनापनाहे सो चैतन्यरूप निमित्तका कियाही है सो परमात्मा सर्वका ईश्वर सर्वज्ञहै क्योंकि जोआप एक अद्वैतभया बहुतकामनावाले संसारीजीवोंको उनके कर्मानुसार कर्मफल भोगोंको देताहै " तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्तिधीरा स्तेषांशान्तिः शाश्वतीनितरेषाम् " [तिस बुद्धिबिषे स्थितको जो धीरपुरुष अनुभवकरते हैं तिनको नित्य शान्ति होतीहै इतरको नहीं अर्थात् जो परमात्मा अनित्य पदार्थोंका अधिष्ठान नित्य है अरु जो सर्व चेतनाओंका चेतन है अरु जो एकहुआ सर्वज्ञ सर्व जीवोंको कर्मानुसार फलभोग देताहै सोचैतन्य परमात्मा कि जो ज्ञानस्वरूप चैतन्याकारसे अस्मदादिकोंकी बुद्धिबिषे स्थितहै तिसको जो धीर (विवेकी) पुरुष साक्षात् अपना आप सोहमस्मि भावसे अनुभव करतेहैं तिनहींको नित्य पराशान्ति (मोक्ष)होती है अरु उनधीर विवेकी पुरुषोंसे अन्य जे विवेकादि शुभगुण रहित अज्ञानी हैं तिनको नहीं १३ ॥

मंत्र चौदहवां ॥

हेनचिकेतः अब आत्माके बिषे अनुभव देखावनेके अर्थ कहते हैं " तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यम्परमं सुखं " [जो कहने बिषे आवे नहीं उत्कृष्ट सुखहै सो यहहै ऐसा मानतेहैं] अर्थात् जो यह वाणीका विषय न होनेसे कहनेको अशक्य सर्वोत्कृष्ट प्राकृत पुरुषोंके मन वाणीका अविषय होनेसेभी आत्माज्ञान स्वरूप सुखहै तिसको तीन एषणासे रहित जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हैं वे सो यह प्रत्यक्षहै ऐसा मानतेहैं ॥ नचिकेता उवाच ॥ हे भगवन " कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभातिवा " [तिसको मैं कैसे जानों

तदेतदितिमन्यन्तेऽनिर्देश्यम्परमंसुखम् ॥ कथन्नुत द्विजानीयां किमुभातिविभातिवा १४ ॥

नतत्रसूर्य्योभातिनचन्द्रतारकन्नेमाविद्युतोभांतिकुतोऽयमग्निः । तमेवभांतिमनुभातिसर्वन्तस्यभासासर्वमिदंविभाति १५ ॥

इतिद्वितीयाऽध्यायेद्वितीयाउपनिषद्सु पंचमवल्ली समाप्ता ५ ॥

सो कैसे प्रकाशताहै सोस्पष्ट भासताहै वा नहीं] अर्थात् हेभगवन् जैसे एषणा त्रयसे रहित ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण आत्मसुखको जानते हैं तिस सुखको सो यहहै ऐसे आपकी बुद्धिके विषयको मैं कौन प्रकारसे जानों अरु सो ब्रह्मआत्मा कैसे प्रकाशता है अरु जिससे सो आत्माब्रह्म प्रकाशरूप है तिसकरके सो ब्रह्म मेरी बुद्धिकरके देखाजाता है वा नहीं सो कृपाकरके कहिये १४ ॥

मंत्र पंद्रहवां ॥

मृत्युरुवाच । हेनाचिकेतः यह ब्रह्म प्रकाशताहै अरु स्पष्टदेखा जाताहै सो कैसे देखाजाता है यह जोतेरा प्रश्नहै तिसका उत्तर श्रवणकर "नतत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः" [तिसविषे सूर्य भासता नहीं (तैसे) चन्द्रमासहित तारा (प्रकाशते) नहीं (अरु) यह बिजलियांभी प्रकाशती नहीं (तब) यह अग्नि कैसे प्रकाशेगा] अर्थात् तिस अपने आत्मरूप ब्रह्मविषे सर्वका प्रकाशक सूर्य सोभी तिसको प्रकाशता नहीं तैसेही सहित चन्द्रमाके तारागणभी उसको प्रकाशते नहीं अरु यह जो मेघोंके सम्बन्धसे प्रकाशनेवाली बिजलियां सोभी उसको प्रकाशती नहीं तब यह हमकरके प्रकटकिया जो लौकिक अग्नि सो उसको कैसे प्रकाशेगा किन्तु न प्रकाशेगा। हेनचिकेतः बहुत

ओंऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखएषोऽश्वत्थःसनातनः। तदेवशुक्रन्तद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाःश्रिताः सर्व्वेतदुनात्येतिकश्चन। एतद्वैतत् १ ॥

कहनेसे क्याहै किन्तु "। तमेवभांतिमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति "। [सर्व तिसही प्रकाशमानके पीछे भासता है (अरु) तिसहीके प्रकाशसे यह सर्व भासताहै] अर्थात् जो यह सूर्यादि सर्व जगत् भासताहै सो तिसही स्वयंप्रकाश परमात्माके पीछेही भासता है (जैसे जलादिक जो हैं सो दाहकर्त्ता अग्निके पीछे अग्नि के संयोगसे दाह करते हैं आपसे नहीं) तैसे तिसही स्वयंज्योति परमात्माके प्रकाशसे सूर्यादि स्वप्रकाशपर प्रकाशरूप यह सर्व जगत् भासताहै आपसे नहीं । ताते सोई स्वयंप्रकाश परमात्मा सूर्यादि उपाधिके साथ मिलके सर्वको प्रकाशत सन्ते प्रत्यक्ष भासताहै। "यदादित्यगतंतेजो जगत्भासयतेखिलं। यच्चंद्रमसियच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धिमामकम् " ॥ इति भगवद्गीता अध्यायपन्द्रहवें में १५॥

इति कठवल्ल्युपनिषदाद्वितीयाऽध्यायगतद्वितीयाउपनिषत्सु पञ्चमवल्लीभाषाटीका समाप्ता ५॥

अथ द्वितीयाध्यायान्तर्गत तृतीयावल्ली भाषाटीका प्रारभ्यते॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य (जैसे अश्वत्थः (पीपल) आदि वृक्षरूप कार्यके देखने से नहीं भी देखा जो उन्होंका मूल सोहै ऐसा निश्चय करते हैं) तैसे संसार वृक्षरूप कार्यके देखनेसे न देखा हुआभी इसका ब्रह्मरूप मूल तिसके निश्चय करावने के अर्थ भगवान् वैवस्वत द्वारा साक्षात् वेदही कहता है ॥

हे नचिकेतः "। ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखएषोऽश्वत्थःसनातनः "। [यह ऊर्ध्व मूल नीची शाखावाला चिरकाल का पिप्पल है] अर्थात् जो यह अज्ञानसे आदिले स्थावर योनि पर्यन्त संसारवृक्ष

है सो सर्वोपरि विष्णुपदरूपी ऊंचे मूलवाला है एतदर्थ इसको ऊर्ध्वमूल कहतेहैं सो यह संसाररूपी वृक्ष कैसाहै कि जन्म मरण जरा रोग शोक मोहादि अनेक अनर्थ रूप क्षण २ बिषे विपरीत स्वभाववाला है अरु बाजीगरकी माया गन्धर्वनगरादिवत् देखते ही देखते नाशको पावता रहताहै एतदर्थ इसको वृक्षकरके कहते हैं। अरु अन्त बिषे अभावरूपकेलेके स्तंभवत् असार है अरु (जैसे प्रसिद्ध वृक्षबिषे ठूँठ वा पुरुष है इत्यादि विकल्पहोताहै) तैसे यह संसारभी समुदायरूप है वा परिणामरूप है वा आरंभित है वा सत्यहै वा असत्य है इत्यादि अनेक प्रकारके पाखंडयुक्त बुद्धि वाले पुरुषोंके विकल्पका विषयहै अरु तत्त्वके जिज्ञासु पुरुषोंकरके जिसके स्वरूपका निर्णयहोता नहीं ऐसाहै अरु वेदान्तशास्त्र करके निर्धारकिये परमात्मरूप सारभूत मूलवालाहै अरु अविद्या काम कर्मरूप अस्पष्ट बीजसे उत्पन्न भयाहै अरु परमात्माकी प्रथम अवस्थारूप ज्ञानशक्ति अरु क्रियाशक्ति उभयशक्त्यात्मक हिरण्यगर्भरूप अंकुरवाला है अरु नाना (अनेक) लिंगशरीररूपी स्कंध (मोटीशाखा) वालाहै अरु तृष्णारूपीजलसे सिंचित ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादि बिषयरूपकोपल (कोमलपत्र) वालाहै अरु वेद श्रुति स्मृति युक्ति अरु विद्याके उपदेशरूप प्रौढपत्रवाला है तातें वेदशास्त्रादिकोंका जो पढनाहै सोई उनपत्तोंका खड़खड़ाट शब्द है अरु सुखदुःखमय प्राणियोंकी वेदनारूप रससंयुक्तअरु प्राणियोंकी उपजीविका करनेयोग्य अनन्तफलवालाहै अर्थात् जगत् बिषे यावत् उपजीविकाहै तावत् सर्व संसारबृक्षके फलहैं तिसही करके इस बृक्षाश्रित जीवरूपी पक्षी जीवतेहैं अरु तिन फलोंकी तृष्णारूपी जलके सींचने से आरूढभये अरु सात्त्विकादि भाव से मिश्रित भये कर्म अरु वासना आदि रूप दृढबन्धनभये वट वृक्षवत् अर्थात् (जैसे वटकेबृक्षकी जटा पृथिवी में प्रवेश करके उसको पृथिवीसाथ दृढबन्धनकरे है) तद्वत् आवान्तर मूलवालाहै अरु सत्यादि लोकरूप ब्रह्मादि पक्षियों करके कियेहुये आलय

(घोसले) वाला है अरु प्राणी रूपी पक्षियों के दुःखसुखसे उत्पन्न भये हर्षशोक तिनसे उपजे जे गावना बजावना नाचना खेलना हँसना रोवना हाय २ छोड़ २ मरा २ इत्यादि शब्द तिनके किये कोलाहलरूप महाशब्दवाला है अरु हे सौम्य वेदान्त शास्त्रकर के प्रतिपादित ब्रह्मआत्मा के अभेदज्ञान रूप असंगशस्त्रसे कियेछेदन होनेवालाहै। "असंग शस्त्रेण दृढेन छित्वा"। ताते इस संसारको बृक्षरूपसे कहते हैं। हे सौम्य यह संसाररूपबृक्ष पिप्पलके वृक्षवत् कामकर्म रूपवायुकरके चलित किया हुआ सदाही चंचलस्वभाववालाहै एतदर्थ इसको अश्वत्थ कहते हैं। अरु पशुपक्षी भूत प्रेतादि नीचयोनिरूप नीचीशाखा वाला है अरु अनादि होनेसे बहुतकालसे प्रबृत्त होरहा है ऐसा यह संसाररूप पिप्पलकाबृक्षहै। तिसबृक्षका जो मूलहै "तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते" [सोई शुद्ध सोई ब्रह्म सोई अविनाशी कहते हैं] अर्थात् जो उक्त संसारबृक्षका मूलहै सोई शुद्ध चैतन्य आत्मारूप स्वयंज्योतिस्वभाववाला है अरु सोई सर्वसे बड़ाहै एतदर्थ उसको ब्रह्म कहते हैं अरु उसको कालत्रय अबाध्य होने से अविनाशी कहते हैं। तथाच। "वाचारम्भणं विकारोनामधेयं" "अनृतमन्यदतोमर्त्त्यम्" वाणीसेकहा विकार (कार्य) नाममात्रहै अरु इस ब्रह्मसे अन्यवस्तु सर्व मिथ्या अरु मरण के योग्य हैं इन श्रुतियों के प्रमाण से "तस्मिँल्लोकाः श्रिताःसर्वे तदुनात्येति कश्चन" तिसबिषे सर्वलोक आश्रयको पावैहैं तिसको कोई भी लंघिके वर्त्तता नहीं] अर्थात् जो संसार रूप वृक्षका मूल शुद्ध ब्रह्म अविनाशी है तिस सत्यब्रह्म बिषे परमार्थसे गन्धर्वनगर मरीचि जल इन्द्रजाल इत्यादिकोंके समान अरु परमार्थ रूप बस्तुके अज्ञानसे प्रतीयमान जे सत्यादि सर्वलोक सो उत्पत्ति स्थिति प्रलयबिषे आश्रयको पावते हैं अरु जैसे घटादि कार्य मृत्तिकाके स्वरूपको त्यागके वर्त्तता नहीं। तैसे कोई भी कार्य अपने मूल ब्रह्मको छोड़के वर्त्तता नहीं "। एतद्वैतत्"।

यदिदंकिञ्चजगत्सर्वंप्राणएजतिनिःसृतम् । महद्भयं वज्रमुद्यतंयएतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति २ ॥

[यहही सो ब्रह्महै] अर्थात् यह सोई ब्रह्म है जिसको नचिकेता ने पूंछा है १ ॥

मन्त्र दूसरा ॥

हे नचिकेतः "यदिदंकिञ्चजगत्सर्वंप्राणएजतिनिःसृतम्" [जो यह कुछ सर्व जगत्है सो प्राण (ब्रह्म) के होते चलता है (अरु) निकसाभयाहै] अर्थात् जो यह कुछ नामरूपात्मक जगत् है सो सर्व प्राणरूप ब्रह्मके होनेसे चलता है अरु तिसहीसे निकसाभया नियमसे चेष्टा करताहै ऐसा जो जगत् तिसकी उत्पत्त्यादिकोंका कारण ब्रह्महै सोई "महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति" [बड़ाहै भयरूपहै वज्रको उद्यम करनेवाले की नाईं जो इसको जानताहै सो अमरणधर्माहोताहै] अर्थात् जिस प्राणसंज्ञक ब्रह्मसे उत्पन्नभया यह जगत्रूप वृक्ष सो नियमसे चलताहै सोईं ब्रह्म सर्वसे बड़ा है अरु तिससे सर्व जगत् भयको पावता है तातें भयरूपहै अरु (जैसे वज्र के धारणकर्त्ता स्वामीको सम्मुख भयादेखके भृत्यादि सर्व नियमसे उसकी आज्ञाबिषे वर्त्तते हैं) तैसे सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र वायु अग्नि देवी देवता आदि सर्वजगत् अपने इंद्रादिरूप अधिपतियों के सहित नियमसे विश्राम रहित्त वर्त्तताहै । ऐसे महाउग्र जगत्के स्वामी ब्रह्मको जो पुरुष शास्त्रयुक्ति प्रमाणसे अपने शरीर बिषे सर्वसे पृथक् साक्षी रूपसे साक्षात् जानते हैं सो मरण धर्म रहित अमर होते हैं २ ॥

मन्त्र तीसरा ॥

हे नचिकेतः "भयादस्याऽग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः" [जिसके भयसे अग्नि तपता है (अरु) भयसे सूर्य तपताहै] अर्थात् उक्त परमात्माके भयसे अग्नि जो सर्वका तापकहै सो तपता है

भयादस्याऽग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपञ्चमः ३॥

अरु सूर्य दक्षिणायन उत्तरायण मार्गहुआ ऋतुओंको करता जिसकी आज्ञाबिषे नियमसे भ्रमण करता उसके भयाबिषे रहता है अरु"भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" [जिसके भय से इन्द्र वर्षा करताहै (अरु) वायु चलता है (अरु) पंचम मृत्यु दौड़ता है] अर्थात् जिस परमात्मा के भय बिषे अग्नि सूर्य तपते हैं उसही के भय बिषे देवराज इन्द्र देवतादिकों की रक्षा करताहुआ वर्षा करता है अरु उसहीके भयसे वायु (सूत्रात्मा) सर्वको अपनेबिषे सूत्रमें मणिगणवत् धारणकिये चलताहै अरु सर्वका नाशकर्त्ता जो मृत्यु सोभी उस परमात्माके भयको पाय कालरूपसे सर्वदा दौड़ताही रहताहै स्थिर कदापि होता नहीं। अर्थात् सर्वसे समर्थ जगत्के नायक लोकपालनका जब बज्रके धारणकर्त्ता अति उग्र स्वामीवत् नियामक कोई नहोय तब स्वामीके भयसे भयको प्राप्तभये भृत्यादिकवत् उनकी नियमितप्रवृत्ति बने नहीं ताते इन्द्रादि लोकपालनका नियामय कोई परमात्मा सर्वसे पृथक् अवश्यहै यह सिद्धभया ३॥

मंत्र चौथा॥

हेनचिकेतः सर्वको भयका कारण नियामक ब्रह्मको "इहचे दशकद्बोद्धुम्प्राक्शरीरस्यविस्त्रसः" [यहां शरीर के पतनसे पूर्व यदि जाननेको समर्थभया जानता है] अर्थात् सर्व के नियामक ब्रह्मको इस मनुष्य शरीर बिषे शरीर पात होने से पूर्व जीवतेही जाननेको समर्थहुआ जानताहै तब संसारके सर्व बंधनों से रहित होताहै। अरु जो कदापि मनुष्य शरीर पायके भी उस परमात्माको जो अपनाआपहै जाननेमें असमर्थ होताहै तब "ततः सर्गेषुलोकेषु शरीरत्वाय कल्पते" [तिसके नजानने से उत्पत्ति के आश्रय पृथिव्यादि लोकोंबिषे शरीर धारणार्थ समर्थ होताहै]

इहचेदशकद्बोद्धुम्प्राक्शरीरस्यविस्रसः । ततःसर्गेषुलोकेषु शरीरत्वायकल्पते ४ ॥

अर्थात् यह मनुष्य शरीर जो विवेकादि गुण सम्पन्न है तिसके विद्यमान होतसंते भी जो पुरुष अपने पुरुषार्थ करके संसारकी निवृत्तिके कारण परमात्माको अपने आपविषे सोहमस्मि भाव से जाननेको प्रमाद करके असमर्थ होताहै तब उत्पत्तिके आश्रय हुआ अपनेविषे नानाप्रकारके पशुआदि शरीरोंको धारण करनेके विषे समर्थ होता है। ताते हे सौम्य सूर्यादि सर्वका नियामक सिद्धभया जोपरोक्ष परमात्मा तिसके अपरोक्ष ज्ञानार्थ इसमनुष्यंशरीरविषे सर्व इंद्रियोंके विद्यमान होते अन्त्यावस्थाका समय नदेखके इसकी क्षणभंगुरताको विचार शीघ्रही पुरुषार्थ करना उचितहै क्योंकि परमात्माका अपरोक्ष ज्ञानही संसार दुःखोंकी अशेष निवृत्तिका कारणहै अरु मनुष्य शरीरसे इतर देवादिशरीरों विषे सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानकी आशा नरखनी क्योंकि देवादिशरीरोंविषे विषयभोगकी तारतम्यता अधिक है ताते वहां विचारका अवकाश होतानहीं अरु तिनकी प्राप्तिभी सुगम नहीं ताते अभिप्राय यहहै कि इस मनुष्य शरीरमें इन्द्रियादिकोंके पुरुषार्थहोत संते इंद्रियोंको विषयोंसे उपरामकर अपनेआप आत्माके अपरोक्षज्ञानार्थ पुरुषार्थ करना योग्यहै ४ ॥

मंत्र पांचवां ॥

हे भगवन् । सर्वलोकोंविषे पृथक् २ रीतिसे आत्माको कैसे देखते हैं सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नाचिकेतः "यथाऽऽदर्शेतथाऽऽत्मनि यथास्वप्ने तथा पितृलोके" । [जैसे दर्पणविषे तैसे बुद्धिविषे (अरु) जैसे स्वप्नविषे तैसे पितृलोक विषे (देखतेहैं)] अर्थात् हे नचिकेतः जैसे लोक दर्पण विषे प्रतिबिम्बरूप अपने आपको अत्यन्त स्पष्ट जैसेका तैसाही देखते हैं तैसे इस मनुष्य लोकमें निर्मलभई बुद्धिविषे अर्थात् जो कर्मउपासनाऽऽदिसाधनों

यथाऽऽदर्शेतथाऽऽत्मनियथास्वप्ने तथापितृलोके। यथाप्सुपरीवदद्दृशे तथागन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ५ ॥

करके मल विक्षेपरूपदोषसे रहित शुद्धहुई निर्मल निर्दोष बुद्धि तिसबिषे शास्त्रके प्रमाण वाक्यरूप कलईके संयोगसे तिस बिषे प्रतिबिम्बित हुआ जो चिदाभास तिसके द्वारा अपने बिम्ब रूप आत्माका दर्शन (अनुभव) होता है । अरु जैसे स्वप्न बिषे जाग्रत्की बासनासे उत्पन्नभया जगत् सो अस्पष्ट है अर्थात् ज्योंका त्योंही नहीं भासता तैसेही पितृलोकबिषे आत्माका दर्शन अस्पष्टही होताहै क्योंकि पितृ देवताओंको कर्मके फलभोग्यों बिषे आसक्तता होने से उनकी बुद्धि सविक्षेपही अधिक होती है ताते उनको अपनेआप आत्माका दर्शन अस्पष्टही होता है। अरु " यथाऽप्सु परीव दद्दृशे तथा गन्धर्वलोके " [जैसे जलबिषे देखतेहैं तैसे गन्धर्वलोकबिषे (देखतेहैं)] अर्थात् जैसे जलबिषे अस्पष्ट अंगोंवाला अपने प्रतिबिम्ब रूपको देखते हैं तैसेही गन्धर्वलोक बिषे अपनेआप आत्माका अस्पष्टही दर्शन होता है इसही प्रकार अन्य लोकोंबिषे भी आत्माका दर्शन अस्पष्टही होता है यह श्रुति शास्त्रोंके प्रमाणसे जानाजाता है । अरु " छायातपयोरिव ब्रह्मलोके " [ब्रह्मलोकबिषे छाया (अरु) आतप (धूप)वत (देखतेहैं)] अर्थात् एक ब्रह्मलोकबिषे तो छाया अरु धूपवत् अत्यन्तही स्पष्ट अपनेआप आत्माका ज्योंकात्यों दर्शन होताहै । परन्तु सो ब्रह्मलोक अत्यन्त श्रेष्ठकर्म अरु उपासनाका फलहोनेसे उसकीप्राप्ति अति दुर्लभहै अब ऐसेकर्म उपासना कहांहैं कि जिससे ब्रह्मलोक की प्राप्तिहोय ताते अभिप्राय यहहै कि मुमुक्षुको जन्म मरणादि सर्व दुःखोंकी निवृत्तिके लिये यहां इस मनुष्य जन्ममेंही साधन सम्पन्न होय आत्मदर्शनार्थ प्रयत्न करना योग्यहै ५ ॥

इन्द्रियाणाम्पृथग्भावमुदयास्तमयौचयत् । पृथगुत्पद्यमानानां मत्वाधीरोनशोचति ६ ॥

मंत्र छठवां ॥

प्र०॥ हेभगवन् आत्मा कैसे जाननेयोग्य है अरु तिसके जाननेविषे क्या प्रयोजनहै सो कृपाकरके कहिये ॥ उ०॥ हेनचिकेतः "इन्द्रियाणाम्पृथग्भाव मुदयास्तमयौचयत् । पृथगुत्पद्यमानानां" [भिन्न उत्पन्नभये इन्द्रियनके विलक्षणरूप ताको (अरु) भिन्नजो उत्पत्ति प्रलय होती है तिनको] अर्थात् अपने २ विषय के ग्रहण करनेरूप प्रयोजनसे अपने कारण आकाशादिकों से भिन्न उत्पन्न भये इन्द्रियोंके अत्यन्त शुद्ध केवल चिन्मात्र आपके स्वरूप अरु स्वभाव से विलक्षणरूप तिसको अरु भिन्न उत्पन्न भये इन्द्रिय तिनहीं इन्द्रियनके जाग्रत् अरु सुषुप्ति अवस्थाकी अपेक्षासे उत्पत्ति अरु प्रलय होताहै आत्माकी अपेक्षासे नहीं तिनको "मत्वा धीरो नशोचति" [जानके धीरपुरुष शोकको प्राप्तहोता नहीं] अर्थात् आत्मा अनात्माको उक्त बिचारसे यथार्थ जानके बुद्धिमान् विवेकी पुरुष शोकको पावता नहीं । क्योंकि आत्माको नित्यएकता स्वभाववाला होनेकरि अव्यभिचारतासे शोकादिकोंकी कारणताके असंभवसे ॥ तथाच । „ तरति शोक आत्मावित् „ । आत्मवेत्ता शोकको तरताहै ६ ॥

मंत्र सातवां ॥

हेनचिकेतः "इन्द्रियेभ्यः परंमनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् "[इन्द्रियोंसे पर मनहै मनसे सत्त्व (बुद्धि) उत्तमहै] प्र०॥ हेभगवन् इस श्रुतिसे पूर्व छठी श्रुतिमें आत्मासे इन्द्रियोंका विलक्षणभाव कहाहै तातेपूर्व तीसरी वल्लीविषे "इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः" इन्द्रियोंसेपर अर्थ कहाहै । यहां तिसको छोड़के "इन्द्रियेभ्यः परंमनो" इन्द्रियों से परे मनहै इस वाक्यसे जो आत्मा का सर्वात्मपना कहतेहौ सो कैसे संभवेगा ॥उ०॥ यहां शब्दादि विषयरूप अर्थन

इन्द्रियेभ्यःपरंमनो मनसःसत्त्वमुत्तमम्। सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ७॥

अव्यक्तात्तुपरःपुरुषोव्यापकोऽलिंगएवच। यज्ज्ञात्वामुच्यतेजन्तुरमृतत्वञ्चगच्छति ८॥

को अनात्म भावकरके इन्द्रियनके तुल्य जातिवाले होनेसे इन्द्रियनके ग्रहणसेही अर्थोंका ग्रहणकिया जानना और अर्थ पूर्ववत् है। ताते इन्द्रियोंसे परे मनहै अरु मनसे सत्त्व (बुद्धि) उत्तम(पर) है। अरु "। सत्त्वादधिमहानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् "। [बुद्धिसे महत्तत्त्व परहै (अरु) महत्तत्त्वसे अव्यक्त उत्तमहै] अर्थात् बुद्धिसे पर महत्तत्त्व है अरु महत्तत्त्व से अव्यक्त कहिये (अज्ञान) उत्तम कहिये परहै ७॥

मंत्र आठवां॥

हे नचिकेतः "। अव्यक्तात्तुपरःपुरुषो व्यापकोऽलिंगएवच "। [अव्यक्तसे तो परे पुरुषहै (सो) व्यापकहै (अरु) पुनः अलिंगही है] अर्थात् अव्यक्त जो अव्याकृत (प्रकृति) तिससे पुरुषपृथक्है अरु आकाशादि सर्वका कारण होने से व्यापक है अरु जिसकरके वो पुरुष जानाजाय ऐसेजे बुद्ध्यादिलिंग (चिह्न) तिन सर्वसे रहितहोनेसे आत्मा अलिंगहै अर्थात् बुद्धि अरु सुख दुःख आदिकजो है सो सर्व गुणरूप होनेसे आश्रय सहित होनेको योग्य हैं (जैसे रूपादि गुण घटके आश्रय होते हैं) तद्वत् इसप्रकार वैशेषिक मत वादी जो अनुमान करते हैं सो असत्य है क्योंकि उस बुद्धि आदिकनको आश्रयसहितपनेमात्रके साधने बिषे पिष्ट पेषण अर्थात् पीसेहुयेको पुनः पीसनेवत् सिद्धवस्तुके साधनेरूप दोष होनेसे। अरु मनकोही कामादि गुणवाला श्रुतिबिषे श्रवण कियाहै ताते बुद्धिआदि गुणआत्माके आश्रय रहते हैं इसवेदबाह्य कल्पनासे अरु आत्माको निर्गुण भावसे "केवलोनिर्गुणश्च" प्रतिपादक श्रुति शास्त्रसे विरोध होताहै ताते भी उनका कहना

नसन्दृशेतिष्ठतिरूपमस्य नचक्षुषापश्यतिकश्चनैनम् । हृदामनीषामनसाभिक्लृप्तो यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ९ ॥

असत्यही है। अरु सुषुप्त समाधिआदि अवस्थामें बुद्धिआदिगुणों का अभावहोता है वहां अग्निके लिंग (चिह्न) धूमवत् बुद्धिआदि गुण आत्माके नहीं ताते वास्तवमें आत्मा निर्गुणहोने से अलिंग हीहै। अरु सर्व संसारके धर्मसे रहित है ताते "यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वंचगच्छति" [जिसको जानके जन्तु मुक्तही होताहै (अरु) अमर भावको पावता है] अर्थात् अलिंग जो आत्मा है तिसके स्वरूपको आचार्य अरु शास्त्रद्वारा जानके जन्तुजो पुरुष सो जीवताहुआ ही काम्यकर्मादिरूप अविद्या ग्रंथिन सों मुक्त होता है अरु शरीर के पतनहुये साक्षात् मोक्षरूप अमरभावको प्राप्त होताहै। सो अलिंग चैतन्य पुरुष अव्यक्त से पर है इति सिद्धम् ८ ॥

मंत्र नवमां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् जब पुरुष (आत्मा) अलिंग है तब तिसका दर्शन कैसेहोय क्या किसीकाविषय होनेसे आत्माका दर्शनकहने योग्यहै अथवा अविषय होनेसे तिसके दर्शनार्थउपाय कहनेयोग्य है सो आप आज्ञा करिये ॥ उ० ॥ हे सौम्य "नसन्दृशेतिष्ठति रूपमस्य नचक्षुषापश्यतिकश्चनैनम्" [इसका रूप दर्शनके विषय विषे स्थित नहीं अरु कोईभी इसको चक्षुसे देखता नहीं] अर्थात् हेसौम्य तैंने पूछाकि क्या किसी का विषय होनेसेआत्मा का दर्शन कहने योग्यहै सो बनेनहीं क्योंकि जो वस्तु रूपादि गुणवाली होतीहै सो चक्षुरादिइन्द्रियों करके दर्शनका विषयहोने योग्य होतीहै परन्तु रूपादि गुणके अभावसे इसप्रत्यगात्मा पुरुष का रूप दर्शनके विषयविषे स्थित नहीं एतदर्थ कोईभी पुरुषइस प्रत्यगात्माको चक्षुरादि इन्द्रियों करके जानता नहीं। अब दूसरे

यदापञ्चावतिष्ठन्तेज्ञानानिमनसासह । बुद्धिश्चन विचेष्टते तामाहुःपरमांगतिम् १० ॥

विकल्पका उत्तर श्रवणकर "। हृदामनीषामनसाभिक्लृप्तो यएतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति "। [हृदयाविषे स्थित मनकीनियामक बुद्धिसे मननकरके प्रकाशित हुआ यह (ब्रह्महै) ऐसे जो जानतेहैं सो मरणधर्म रहित होतेहैं] अर्थात् जब विषयोंसे बाह्येन्द्रियों के उपराम भये भी मन विषयोंको चितवता है तब मुमुक्षुकी बुद्धि इसप्रकारसे मनकी नियामक होतीहै कि हेमन तू किसप्रयोजन के अर्थ पिशाचवत् विषयादिकों की ओर अहर्निश दौड़ता है तहां जो कदापि ऐसाकहे कि मैं अपने प्रयोजनार्थ दौडताहौं सो असंभव है क्योंकि तुझको जडरूपहोने से तेरा किसीभी प्रयोजनके साथ-सम्बन्ध संभवता नहीं। अरु क्षीण होनेके स्वभावादिक दोषकरके दूषित जे विषय तिनसे सम्बन्धकरि तुझको प्रयोजन का असंभव है ताते विषयार्थभी तेरा दौडना अयोग्य है । अरु जो कदापि ऐसाकहै कि मैं चैतन्यके अर्थ दौड़ताहौं तो सो भी बने नहीं क्योंकि "असंगोह्ययंपुरुषः" इसप्रमाणसे चैतन्य सर्व से असंग अरु परमानन्दस्वभाव वालाहै ताते उसके अर्थ भी तेरा दौड़ना असंभवही है॥ इसप्रकार बुद्धि मनकी नियामक है ताते शास्त्रोंविषे बुद्धिको मनीषा कहतेहैं। एतदर्थ मनकी नियामक बुद्धिसे सम्यक् दर्शनरूप मननविचाररूप मनकरकेप्रकाशित हुआ आत्मा सोहमस्मि भावसे जानने योग्यहै तिस आत्मा को यहब्रह्महै ऐसेजो जानतेहैं सो मरणधर्म रहित अमर साक्षात् ब्रह्मरूपही होतेहैं " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " ९ ॥

मंत्र दशवां ॥

हे सौम्य कईएक वेदान्तशास्त्रके श्रवणकर्त्ता पुरुषोंको श्रवण से प्रमाण अरु मननसे प्रमेयविषयक संशयकी निवृत्ति होनेसेभी चित्तकी अनेकाग्रतारूप प्रतिबन्ध संभवताहै तिसके निवारणार्थ

तांयोगमितिमन्यन्तेस्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदाभवतियोगोहिप्रभवाप्ययौ ११ ॥

योगका अनुष्ठानकरना योग्यहै ऐसा श्रुति उपदेशकरे है ॥ हेनचिकेतः "। यदापञ्चावतिष्ठन्तेज्ञानानिमनसासह "। [जिसकाल बिषे पांचज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण करके सहित स्थित होते हैं] अर्थात् जिसकाल बिषे श्रोत्रादि पांचज्ञानेन्द्रियां हैं सो जिसके पीछे २ चलती हैं तिस संकल्पादि व्यापारवाले अन्तःकरणके सहित अपने२ विषयोंसे रहितहुयेअन्तर्मुख आत्माबिषेही स्थित होतेहैं । अरु "। बुद्धिश्चनविचेष्टते तामाहुःपरमांगतिम् "। [पुनः बुद्धिचेष्टाकरे नहीं तिसको परमगति कहते हैं] अर्थात् निश्चयात्मक जो बुद्धिसो अपने व्यापारोंबिषे चेष्टाकरे नहीं तिस निर्विकल्प अवस्थाको योगीजनपरमगति कहतेहैं १० ॥

मंत्र ग्यारहवां ॥

हे नचिकेतः "। तांयोगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तः "। [तिसको योग ऐसेमानते हैं स्थिरइन्द्रियकी धारणा को प्रमादरहित] अर्थात् इन्द्रिय अरु मनकी निरोधरूप अवस्था को योगकरके मानते हैं । अरु जिस करकेसर्व अनर्थके संयोगकी वियोगरूप यहयोगकी अवस्थाहै अर्थात् व्यवहारसे उपरामभया मन जब सुषुप्तिअवस्थाको प्राप्तहोताहै तबसो सर्वअनर्थोंकी बीज रूप अवस्थाहोतीहै क्योंकि अविद्यात्मक सुषुप्तिसेही जाग्रत् स्वप्न रूप अनर्थकारी प्रपञ्च प्रकटहोताहै । तब मनको उस अनर्थरूप अवस्था के निवारणार्थ " अहं ब्रह्मास्मि " मैं पूर्णब्रह्म हौं इस अभ्यासबिषे जोड़ना अरु तिस अभ्यास बिषे जोड़ाभया भी मन जब पूर्वाध्याससे विषयोंबिषे विक्षेपको प्राप्तहोय तब विषयोंबिषे क्षीणतादि दोष देख ग्लानि मानता हुआ विषयोंसे मनको निवारणकरे । अरु विषयोंसे निवारण किया मन जब बाहर भीतर की प्रवृत्तिसे रहित होता है तब सो कषायरूप अवस्था होती है

नैववाचानमनसाप्राप्तुंशक्योनचक्षुषा।अस्तीतिब्रुवतोऽन्यत्रकथंतदुपलभ्यते १२ ॥

तिससेभी रोकाहुआ मन जब न जागताहै न सोवताहै न दोनों के मध्य स्थित होता है किन्तु अपने सर्व दोषों से रहित पूर्ण ब्रह्म का प्रकाशकहोने करके सूर्यके प्रकाशमें दीपकके प्रकाशवत् क्षीणहोताहै तब सो सर्व अनर्थोंकी वियोगरूप अवस्थाहोती है। एतदर्थ जिसका नाम योगहै सो मुमुक्षुको सर्व अनर्थोंसे वियोग करनेवालाहै । ताते इस उक्तयोग अवस्थाबिषे अविद्याके आरोप से रहित स्वरूप की स्थितिवाला आत्मा जब स्थिर बाहर अरु भीतरके इन्द्रियोंकी धारणाके अर्थ प्रमाद रहित होता है अर्थात् जिसकाल बिषे इन्द्रिय अरु अन्तःकरणकी एकाग्रताके अर्थ नित्य प्रयत्नवाला होता है " तदाभवति " [तिसकाल बिषे होता है] अर्थात् जिस समय इन्द्रिय अरु अन्तःकरणकी एकाग्रताके अर्थ नित्य प्रयत्नवान् होता है तिसकाल योगबिषे प्रवृत्तहोताहै । अरु जिस करके बुद्धि आदिकोंकी चेष्टाके अभाव भये प्रमाद का सम्भव नहीं है तिसही करके बुद्धि आदिकके चेष्टाकी निवृत्ति से पूर्वही प्रमाद के अभावार्थ प्रयत्न कर्त्तव्य है । अथवा जबही इंद्रियोंकी धारणा स्थिर होय है तबही निरंकुश प्रमाद रहितपना होता है । याते तब प्रमादरहितपना होताहै ऐसा कहते हैं क्योंकि " योगोहिप्रभवाप्ययौ " [योगही उत्पत्ति लयरूप है] अर्थात् योग जोहै सो उत्पत्ति अरु लय धर्मवाला होताहै एतदर्थ लयके निवारणार्थ प्रमादका अभावकरना योग्यहै यह तात्पर्य है ११ ॥

मन्त्र बारहवां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् आपने कहा कि बुद्धि आदिकनकी चेष्टा से रहित मुमुक्षुओंकी परमगति ब्रह्मका अस्तित्वहै परन्तु जो बुद्धि आदिककी चेष्टाका विषय ब्रह्महोय तो यह सो इस प्रकार अंगुली निर्देशवत् ब्रह्मका विशेषपना ग्रहणहोताहै अरुबुद्धि आदिकों

के उपरामभये यह सो इस प्रकारके ग्रहणके कारणके अभाव से अप्रतीयमानभया ब्रह्महै नहीं ऐसा सिद्धहोगा। अरु जो वस्तु बुद्ध्यादि करणोंका विषय होतीहै सो है अरु जो वस्तु करणों का विषयनहीं सो नहीं ऐसा लोकविषेप्रसिद्धहै। अरु योग विषे करणादिक जो ब्रह्मके अस्तित्व होनेमें कारणहैं सो लय होतेहैं तब ब्रह्मका अस्तित्वबने नहीं ताते योग अनर्थकारी भया ॥ उ० ॥ हे नचिकेता यह आत्माब्रह्म "। नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्यो न चक्षुषा "। [न वाणी से न मनसे न चक्षुसे पावने को शक्यहै] अर्थात् इन्द्रियादि बुद्धि पर्यन्त क्रमसे सर्व जिस महासूक्ष्म आत्माबिषे योगद्वारा लयहोतेहैं सो आत्मा वाणी उपलक्षण से कर्मेंद्रियां अरु चक्षु उपलक्षणसे ज्ञानेन्द्रियां अरु मन उपलक्षणसे अन्तःकरण इन किसी करके भी पावनेको शक्य नहीं यह सत्य है तथापि सर्व विशेषताके अभावहुये आत्मा नहीं ऐसा नहीं वो निर्विशेष अविषय हुआभी जगत्का मूल है ऐसा जानने से अरु कार्य के विलयको अस्ति (है) पने बिषे स्थित होने से आत्मा विद्यमानही है। अर्थात् स्थूलरूप कार्यके विलय भये पीछे सूक्ष्म रूप कारण अवशेष रहताहै। जैसेडण्डसे भंगभये घटका अस्थित्व कपाल बिषे कपालके भंगका अस्तित्व ठीकरा बिषे ठीकरे के भंगका अस्तित्व चूर्णबिषे तिसका अस्तित्व मृत्तिका वा परमाणु बिषे। इस प्रकार जहां पर्यंत दर्शनकी व्याप्तिहै तहां पर्यन्त देखके जहां नहीं देखते हैं तहां भी सावयव वस्तुके लयको अवश्य होनेसे सत्मात्र वस्तुही अमूर्त होती है। इस प्रकार कार्य जोहै सो सूक्ष्मवस्तुके अधिक न्यूनपने की परम्परासे जानाहुआ बुद्धि की स्थितिको जनावे है ॥ प्र० ॥ हे प्रभो जो दृश्यहै सो असत्य है (जैसे स्वप्नका दर्शन) इस व्याप्तिके देखने से है पना करके दृश्य जो वस्तु है तिसको असत्य होने से सद्बुद्धि भी नहीं है ॥ उ० ॥ हे सौम्य सद्बुद्धि भी नहीं है इस प्रतीतिसे अवश्यहै ऐसा मानना योग्यहै क्योंकि बुद्धि भी अपने विषयके विलय से

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेनचोभयोः। अस्ती त्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावःप्रसीदति १३॥

विलय भावको प्राप्त होती है परन्तु तबभी सो बुद्धि ब्रह्महै ऐसी सद्वृत्ति रूप गर्भ सहित भईही लयहोती है क्योंकि जिसकरके हम मनुष्यों को सत्अरु असत्य वस्तुके यथार्थ रूपके जानने के बिषे बुद्धिही प्रमाणहै तिसकरके सो बुद्धि सद्वृत्ती रूपभर्गवाली भईही लयहोतीहै। अरु जो कदापि जगत्का मूल सत् न होय तो असत्के अन्वय करके युक्तभयाही यह कार्य नहीं है ऐसा ग्रहण करोगे परंतु ऐसा नहीं ग्रहण करते हैं किन्तु सत् है सतहै ऐसेही ग्रहणकरते हैं। जैसे मृत्तिकादिकोंका कार्य घटादिक सो मृत्तिका के अन्वय करके युक्तहुआही सत् ऐसे ग्रहणकरतेहैं असत् नहीं। तैसेही जगत् भी जानना ताते जगत्का मूल आत्मा है ऐसेही जानने योग्यहै॥ प्र०॥ जगत्का मूल जो ब्रह्म सो नहीं है इस प्रकार जानने से भी विपरीतपने करके ब्रह्मका ज्ञान सम्भवे है याते ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाले मुमुक्षु करके ब्रह्महै ऐसेही काहेको जानने योग्य है॥ उ०॥ "अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते" [है ऐसे कहनेवाले स अन्याबिषे सो (ब्रह्म) कैसे जानने में आवे] अर्थात् आत्मा है ऐसे कहनेवाले वेदार्थ के अनुसारी श्रद्धावान् अस्तित्व वादीसे अन्याबिषे अर्थात् जगत्का मूल आत्मा नहीं है किन्तु कारणके अन्वयसे रहितभयाही यह अभाव पर्यंत कार्य लयहोताहै ऐसेमाननेवाले विपरीतदर्शी नास्तिकवादी बिषे सो ब्रह्म यथार्थ रूपसे कैसे जानने में आवे अर्थात् उन्हों करके किसी प्रकारभी जानने में आवता नहीं १२॥

मंत्र तेरहवां॥

हेसौम्य उक्त हेतुसे असुरभाव रूप असतबादीके पक्षकोत्याग के सत्कार्य रूपउपाधिवाला आत्मा "अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्व भावेन" [है ऐसेही तत्त्वभावसे जानने योग्यहै] अर्थात् नास्तिक

यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामा येऽस्यहृदिश्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते १४ ॥

पक्षको त्यागके आत्मा है इसप्रकार आस्तिक भावसेही जानने योग्यहै ॥ प्र० ॥ हेभगवन् सोपाधि आत्माकेज्ञानसे मोक्षकाअसंभवहै ॥ उ० ॥ हेसौम्य उपाधिभी अन्यरूप नहीं "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" जैसे मृत्तिकासे उत्पन्नभया घटादि कार्यरूप विकार सो बाचारंभणमात्र अर्थात् नाममात्रही है इस श्रुतिके प्रमाणसे कार्यजोहै सो कारणसे भिन्न नहीं है अर्थात् कारणसे कार्यकी पृथक् सत्तानहीं । तबउस निरुपाधि अलिंग अरु सत् असत् आदि जे वृत्तियों के विषय तिनसे रहित आत्मा का ज्ञात अज्ञातसे भिन्न अद्वैत तत्त्वभाव होताहै तिस तत्त्वभाव रूपसे आत्मा जाननेमें आवताहै। इसप्रकार इसमंत्रके पूर्वार्द्धका पूर्व मंत्रसे सम्बन्धहै ॥ हेनचिकेतः सोपाधिक अरु निरुपाधिकरूप जो अस्तित्वपना अरु तत्त्वभाव है तिन "चोभयोः" दोनों को मध्य "अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति" [है ऐसेही प्रतीत भयेका तत्त्वभाव सन्मुख होताहै] अर्थात् विशेष अरु निर्विशेष दोनोंके मध्य प्रथमहै ऐसे सत्कार्यरूप बुद्ध्यादिक उपाधि के किये अस्तित्वपनेकी वृत्तिसे प्रतीत भये आत्माका तिसप्रतीतिके पीछे सर्व उपाधि रहित स्वस्वरूपवाला "ह्यस्थूलमनएव ह्रस्वमदीर्घ मदृश्येऽनात्म्येऽनिलय" इत्यादिश्रुतियोंने कथनकिया जो ज्ञात अज्ञात वस्तु से अन्य अद्वैत स्वभावरूप तत्त्वभाव सो आत्माके प्रकाश करनेके निमित्त प्रथम आत्माहै ऐसे जाननेवाले पुरुषके अर्थ भलीप्रकार सन्मुख होताहै १३ ॥

मंत्र चौदहवां ॥

हेनचिकेतः "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः" [इसकी बुद्धिविषे स्थित जे कामहैं सो सर्व जिसकालविषे भली प्रकार छूटजातेहैं] अर्थात् निर्विशेष अस्तिमात्र ब्रह्मके बोध होने

यदासर्वेप्रभिद्यन्तेहृदयस्येहग्रंथयः । अथमर्त्यो ऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् १५ ॥

से पूर्व इस विद्वान्की बुद्धिबिषे स्थित जे स्वर्ग सुखादि भोगोंकी कामना सो सर्व आत्मानात्म के सत्यासत्य विचारसे जिसकाल में भलीप्रकारसे नाशहोतीहै तब "अथ मर्त्यो ऽमृतो भवत्यत्रब्रह्म समश्नुते" [तिसकाल बिषे मनुष्य मरण रहित होता है (अरु) यहांही ब्रह्मको पावताहै] अर्थात् जब मुमुक्षुकी बुद्धिस्थ सर्वकामना अशेष नाशको प्राप्तहोतीहैं तब बोधसे पूर्वमरनेयोग्य जोमनुष्यथा सो बोधहोनेके उत्तरकाल बिषे अविद्या काम कर्मरूपमृत्यु के विनाशसे मरणरहित अमर होताहै अरु वो " नतस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ,, इस श्रुतिके प्रमाणसे उत्क्रामण (गमन) के अभावसे यहांही अर्थात् इस शरीर बिषेही दीपकके निर्वाणवत् अर्थात् जैसे दीपकका प्रकाश जब तेल (बत्तीरूप) उपाधि करके रहितहोताहै तब जहां निर्वाण होता (बुझता) है तहांही अपने सामान्य कारणरूप प्रकाशबिषे अभेदहोता है तैसेही सम्यक् आत्मज्ञानी पुरुष शरीरावसान समय सर्वउपाधिसे रहित हुआ इसही शरीरबिषे अपनेआप वास्तविक ब्रह्मरूपको पावता है अर्थात् ब्रह्मही होताहै । तथाच " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " १४ ॥

मंत्र पन्द्रहवां ॥

प्र० ॥ हे भगवन् कामनाका समूल विनाश कबहोता है सो कृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः " यदासर्वेप्रभिद्यन्ते हृदयस्येहग्रंथयः " [जब यहां बुद्धिकी सर्व ग्रंथियां विनाश को पावती हैं] अर्थात् जब यहां पुरुषके जीवतेही दृढबन्धनरूप जे अनात्म विषयक अहंता ममता अर्थात् यह संघातरूप शरीरही मैंहौं मेरा यह धनहै मैं सुखीहौं दुःखीहौं इत्यादि भावनारूप अविद्यात्मक वृत्तिरूप बुद्धिकीग्रंथियां हैं सो सर्व "अहंब्रह्मास्मि" मैं असंसारी ब्रह्महूं ऐसी जे भावनारूप सम्यक् ज्ञानरूप वृत्तिकी

शतञ्चैकाचहृदयस्यनाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिः सृतैका । तयोर्द्ध्वमायन्नमृतत्वमेति । विष्वङ्ङन्याउत्क्रमणेभवन्ति १६ ॥

उत्पत्तिसे विनाशको पावेहै "अथमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम्" [तब मनुष्य मरणरहित होता है इतनाही उपदेश है] अर्थात् जब अविद्याकी अनात्म विषयणी अहंता ममता भावनारूप दृढबंधनकर्त्ता वृत्ति सो ब्रह्मात्माके अभेद सम्यक् ज्ञानकरके विनाशको प्राप्त होती है तब संसार विषयक सर्व कामना सहित मूल अविद्या नाशहोती है तिसके पश्चात् सम्यक् आत्मबोध विना अज्ञानवश बारम्बार जन्ममरण योग्य जे मनुष्य सो भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालत्रयके जन्म मरणसे रहित होता है । हे सौम्य इतनामात्रही सर्व उपनिषद् वेदान्त शास्त्रका सिद्धान्त उपदेश है इससे अधिक कोई उपदेश नहीं १५ ॥

मंत्र सोलहवां ॥

हे सौम्य सर्व विशेषतारूप उपाधिसे रहित व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके सम्यक्ज्ञानसे सर्व अविद्याआदि ग्रंथियोंके विनाशवाले मनुष्य जीवतेहुये ही ब्रह्मभूत विद्वानोंका लोकान्तर विषे किंवा इसलोकगत अन्य शरीरोंविषे गमनहोता नहीं क्योंकि । अत्रब्रह्म समश्नुते। "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" इत्यादि श्रुतियोंके सिद्धान्तप्रमाणसे ॥ अब मन्द बोधवाले ब्रह्मवेत्ता अरु अन्य पंचाग्नि विद्याआदि विद्यावाले जे ब्रह्मलोक के अरु तिनसे विपरीत जे संसारके भागी पुरुषहैं तिनकी यहकोई एक गति प्रसंगपाय के प्राप्त उत्तम ब्रह्मवेत्ताकी विद्याके फलकी स्तुत्यर्थ । किंवा नचिकेताने अग्नि विद्याका प्रश्न कियारहा अरु मृत्यु भगवान् ने तिसका उत्तरभी कहारहा तिसविद्याके फलकी प्राप्तिका प्रकार कहना योग्यहै इस अभिप्रायको लेके मृत्यु भगवान् इस मंत्रका आरंभ करतेहैं । हे नचिकेतः "शतंचैकाचहृ

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदाजनानांहृदयेसन्निविष्टः । तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुंजादिवे षिकांधैर्येण ॥ तंविद्याच्छुक्रममृतंतंविद्याच्छुक्रममृतमिति १७ ॥

दयस्य नाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिःसृतैका " [एकसौएकहृदयसे निकसी नाड़ियां हैं तिनकेमध्य मस्तकको भेदके निकसी भई एकहै] अर्थात् एकसौ एक सुषुम्नानामवाली पुरुषके हृदयसे निकसीभई नाड़ियां हैं तिनसबके मध्य मस्तकको भेदनकरके निकसीहुई सुषुम्ना नाम्नी एक मुख्य नाड़ीहै तिस नाड़ीसे अन्तकाल में हृदयबिषे मनको वशकरके मनको जोड़े अरु "तयोर्द्धमायन्नमृतत्वमेति " [तिस नाड़ीसे ऊपर जाताहुआ मरणधर्मसे रहितभावको पावताहै] अर्थात् हृदयसे निकली मस्तक भेदके ऊपरगई जो सुषुम्नानाम्नी एक मुख्यनाडी तिसनाडी द्वारा ऊपरको जाताहुआ सूर्यरूपद्वारसे आपेक्षिक मरण धर्मसे रहित भावको पावता है क्योंकि "आभूतसंप्लवंस्थानममृतत्वंहि भाष्यते" सर्वभूतोंके प्रलयपर्यन्त जो ब्रह्मलोक स्थानहै तिसको अमरभाव कहते हैं । इस स्मृतिके प्रमाणसे उस ब्रह्मलोकगत अनुपम भोग्यको भोगके ब्रह्मदेवकेसाथ कालान्तर में मुख्य अमर भावको पावता है अरु "बिष्वङ्ङन्याउत्क्रमणेभवन्ति" [सर्व ओरसे अन्य नाड़ियां गमनके बिषे होतीहैं] अर्थात् एक सुषुम्ना नाड़ीसे इतर सर्वओरसे नाना प्रकारकी अन्य नाड़िया हैं सो प्राणके निकसनेविषे अर्थात् संसारकीनानायोनियोंकी प्राप्तिबिषे निमित्त होतीहैं १६ ॥

मंत्र सत्रहवां ॥

हे सौम्य अब सर्ववल्लियोंकी समाप्त्यर्थ कहते हैं । हे नाचिकेतः "अंगुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः" [अंगुष्ठमात्र पुरुष अन्तरात्मा सदा जनोंके हृदयबिषे स्थित है] अर्थात् हृदय कमलके संयोगसे अंगुष्ठ प्रमाणभया जो चैत-

मृत्युप्रोक्तान्नचिकेतोऽथलब्ध्वाविद्यामेतां योगविधिञ्चकृत्स्नम् । ब्रह्मप्राप्तोविरजोऽभूद्विमृत्यु रन्योऽप्येवं योविदध्यात्ममेव १८ ॥

ओंसहनाववतुसहनौभुनक्तु सह वीर्यंकरवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः

इतिकठोपनिषद समाप्तम् शुभम् ॥

न्यपुरुष कि जो सर्वत्रपूर्ण है सो सर्वदा जनोंके सम्बन्धि हृदय विषे स्थितहै सो पूर्व चतुर्थवल्लीके १२ में १३ में मंत्रविषे व्याख्यानकिया है "। तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषिकांधैर्येण " [तिसको मुंजआदि तृणसे ईषिका (शलाका) वत् धैर्यकरके शरीरसे भिन्नकरे] अर्थात् जो हृदयकमल विशिष्ट चैतन्य पुरुष है तिसको (जैसे मुंजनामतृणसे पृथक्कर तद्गत् शलाका (तूरी. सरकंडा) को प्रत्यक्ष निरावरण देखते हैं, तैसेही अप्रमादता से अपने अन्नमयादि आनन्दमय पर्य्यंत पंचकोशात्मक शरीरसे भिन्नकर साक्षात् (सोहमस्मि) भावसे अनुभव करना अरु "तं विद्याच्छुक्रममृतमिति २" । [तिसको सम्यक्ज्ञानसे शुद्ध अरु अमृतरूप जानना] अर्थात् पंचकोशात्मक शरीरसे भिन्न किया जो अपनाआप चैतन्यपुरुष तिसको सर्व उपाधि अरु तत्तद्धर्म रहित सदा शुद्ध अमृतरूप ब्रह्म जानना । तिसको शुद्ध अरु अमृत्तरूप जानना । यहां जो द्विबार कथनहै सो उपनिषद्की समाप्ति सूचनार्थ है १७ ॥

मंत्र अठारहवां

हेसौम्य अब विद्याकी स्तुत्यर्थ यह भगवान् वैवस्वत अरुनचिकेताकी आख्यायिकाके अर्थकी समाप्ति कहतेहैं "मृत्युप्रोक्तान्नचि

ृतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम् ” [यमने कहा
ास विद्याको पुनः सम्पूर्ण योगविधिको नचिकेता पायके] अर्थात्
ादिसे षष्ठवल्लीके सत्रहवें मंत्रपर्यन्त भगवान् यमराज ने कथन
िया इस विद्याको अरु सामर्थ्यीफल सहित सम्पूर्ण योगकीविधि
ो नचिकेता यमके दिये वरदानसे पायके “ब्रह्मप्राप्तोविरजोऽभू
द्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ” [मृत्यु रहितहुआ ब्रह्मको
ाप्तहोताभया अन्यभी जो ऐसे अध्यात्मको जानताहै सो] अर्थात्
ाचिकेता यमदत्त वरदानसे विद्यापायके धर्मअधर्म अरु मृत्युसेरहि-
ाहोय काम कर्म अविद्यासे रहितभया ब्रह्मको प्राप्त (मुक्त) होता
भया । तहां केवल नचिकेताही ब्रह्मको प्राप्तभया उससे अन्य न
ोय ऐसा नहीं किन्तु अन्यभी जो मुमुक्षु पुरुष नचिकेतावत् नि-
र्दोषहोय तिसही अध्यात्म अर्थात् अपने आप प्रत्यगात्माको उक्त
ीतिसे जानता है सो ऐसे जाननेवालाभी “ पुण्यपापे विधूय”
ुण्य पापादि सर्व अनात्म धर्मसे भलीप्रकार शुद्ध साक्षात् सो-
ऽहमस्मि भावरूप प्राप्तिसे मृत्युसे रहित साक्षात् ब्रह्मही होताहै ।
तथाच“ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति” ॥१८॥ इतिद्वितीयाध्याये तृतीया
उपनिषत्सुषष्ठवल्ली समाप्ता ॥ ६ ॥

इतिश्रीयजुर्वेदीय कठोपनिषत्समाप्तम् ॥

इतिश्रीयजुर्वेदीय कठवल्ली उपनिषद्की पंचोली ॥
यमुनाशंकर नागरब्राह्मणकृत भाषाटीका समाप्ता ॥

मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में छपी अगस्त सन् १८९० ई०

कृत भाष्य भाषाकेसाथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारों के अभिप्रायका भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजीकी शंकरभाष्यकातिलक व श्रीआनन्दगिरिकृततिलक अरुश्रीधरस्वामिकृततिलकभी मूल श्लोकों सहित इसपुस्तकमें उपस्थित है ॥

मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तक सम्पूर्ण धर्म शास्त्रों का शिरोमणिहै जिसमें आचार कांड,व्यवहार कांड और प्रायश्चित्त कांड नामक तीन कांड हैं जिंनसे गृहस्थादि चारों आश्रम और ब्राह्मणादि चारों वर्णों के सम्पूर्ण कर्म धर्मादि और राज सम्बन्धी कार्यों में दायभागादि व्यवहारों में वादी प्रतिवादियों के धर्म शास्त्र सम्बन्धी मामिले औरमुक़द्दमों की व्यवस्था वर्णित है ॥

इश्तिहार ॥

माह मार्च सन् १८८६ई० से मुमालिक मग़रबी व शिमाली का बुकडिपो इलाहाबाद क्यूरेटर बुकडिपो से मतबा मुंशिनवलकिशोर मुक़ाम लखनऊ में आगया है इस बुकडिपो में मग़रबी व शिमाली एजूकेशनल बुक किताबों के सिवाय औरभी हरएक बिद्या की किताबें मौजूद हैं इन हरएक किताबों की ख़रीदारीकी कुल शर्तें क़ीमत के सहित इस छापेख़ाने की छपी हुई फ़ेहरिस्तमें दर्ज हैं जो दरख्वास्त करने पर हर एक चाहने वालों को बिला क़ीमत मिल सक्ती हैं जिन साहबों को इन किताबों की ख़रीद करना होवे इसे ख़रीद करें और फ़ेहरिस्त तलब करें ॥

द० मैनेजर अवध अख़बार
लखनऊ मुहल्ला हज़रतगंज

बीचमसाहब की अजीब व ग़रीब गोलियां ॥



सालहा साल से बीचमसाहब की गोलियां तमाम आलममें फ़रोख्त कीजाती हैं और उन कीबिक्री दुनियांकी तमाम दवाओं से बहुत ज्यादह है उन्नीसवीं सदीमें कोईदवा ऐसी फ़ायदा पहुंचानेवाली और उम्दह ईजाद नहींहुई जैसीयह तिलिस्माती गोलियां हैं जिन लोगोंनेइनकाएकमर्तबाइस्तेमाल करलिया है वह और किसीदवाकोछूतेभीनहीं और मुत्तफ़िक़ हैं कि इन गोलियों काएकबक्सएकअशरफ़ीको भी सस्ता है हरउम्र और मिज़ाज के मर्द व औरतको बराबर फ़ायदह होता है इससे कोई नुक्सान नहीं २० मिनटमें मर्जको फ़ायदह देती हैं यह सिर्फ जड़ीबूटीसे बनती हैं और कोई अशुद्धवस्तु नहीं पड़ती जिससे किसी मज़हब के आदमीको शकहो क़ीमत बहुतसस्ती हरबक्स ॥।) को मिलताहै६० गोलियां गोया १५ रोज की खूराक जितनी बीमारियां खूनकी ख़राबीसे पैदा होती हैं इस्तेमालसे बिल्कुल जातीरहतीहैं जिस शख्सको नीचे लिखेहुये रोगों मेंसे कोई रोगहो इनका इस्तेमालकरे हम ज़मानत करते हैं कि उसको ज़रूर२ फ़ायदहहोगा तर्कीब इस्तेमालका पर्चा बक्सकेसाथ मिलेगा--शिकममेंबादी--शिरकादर्द--शिरकाचक्करआना--खानाखानेकेबाद मांदाकोगिरानी--घुमरी उंघाई--सरदी--जुकाम--खांसीदमा--पित्तीका उछलआना--भूखकीकमी--हाफना--क़ब्ज़--खुसरा बदनपरस्याहदागहोना--नींदकाउचाटहोना--बदख्वाबी--घबड़ाहट--डर--फुन्सी--फोड़ा--नासूर--ख़ारिश्त--जयाई--अमराज कमज़ोरी--बदहज़मी--चक्करकीखराबी--गलेकीबीमारी--गलाबैठजाना--सांसरुकरुकके आना--अय्यामका ख़िलाफ़ मामूलहोना--या रुकजाना--सीनेका बलग़मसे भारीहोना--वग़ैरह वग़ैरह--झूठ न समझिये सचबातहै लाखों करोड़ों मरीज़ों को फ़ायदा होचुकाहै एकदफ़ा अज़माना शर्त है--हरबक्सपर सरकारी मुहर है उसमें बीचम्सपिल्स सेंटएंटहिलंस खुदाहुआहै--अगर यह न हो तो जाली समझो और मतखरीदो हर जगहपर बिसाती और अंगरेज़ी दवाफ़रोशों से मिलसक्ती हैं--हेलरसगरायम्स ऐण्ड कम्पनी ३० अस्ट्रेंट कलकत्ता--दो के वास्ते एजंटहैं अगर ज़राभी दिक्कतहो एकरुपयाके टिकट आधआनेवाले उनको भेजदो ॥।) क़ीमत ।) महसूलडाक तुम्हारे नाम एक बक्स फ़ौरन् भेजदियाजावेगा खाने व बेचनेवाले थोकके निरख को इसी दूकानसे दरयाफ्त करसक्ते हैं जिस रेलके स्टेशनपर वेलरएण्डको अंगरेज़ी किताबें फ़रोख्त करें--वहां बीचमसाहबकी गोलियां मिलसक्ती हैं ॥

ॐ

अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥

भाषाटीकासहित ॥

जिसमें

श्रीपिप्पलाद आचार्य्य प्रति कबंधीआदिक छः ऋषियों को शिष्यभावसे पृथक् २ प्रश्न करना और श्रीपिप्पलादजी को यथायोग्य उनका उत्तर देना सविस्तार वर्णित है ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीमुन्शीनवलकिशोर (सी, आई, ई)ने बहुतसाधन व्ययकरके कोलाख्यनगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणसे सरल देशभाषामें उल्थाकराय और स्वयंत्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित किया ॥

द्वितीयबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी
माह सितम्बर सन् १८९० ई० ॥

भगवद्गीतानवलभाष्य का विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यहपुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्व्व विद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुण संपन्न नरावतार महानुभाव अर्ज्जुनका परमअधिकारी जानके हृदय जनित मोहनाशार्थ सब प्रकार अपार संसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्त भगवद्गीता वज्रवत्वेदांत व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनी बुद्धिसे पारनहींपासक्के तबमंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्के हैं—और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी बस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासित हो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीणसर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमान्मुन्शीनवलकिशोरजी(सी, आई, ई)ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबादनिवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदांतशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृत से सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्यआख्यसे प्रभातकालिककमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्रके जाननेवाले पुरुषभी जानसक्के हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओं की सम्मतिसे यहविचारहुआ कि इसअमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचा-

ॐ ॥

तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म ॥

अथ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥

इस उपनिषद् बिषे कबंधी आदिक छः ऋषियोंने शिष्यभाव से पृथक् २ प्रश्न किये हैं अरु तिन्हों के उत्तर पिप्पलाद नामक आचार्य ने दिये हैं। एतदर्थ इस उपनिषद् का नाम प्रश्नोपनिषद् कहते हैं। तिसकी भाषा टीका किंचित् श्रीशंकराचार्यजी के भाष्य अरु आनन्दगिरि टीका अरु पंडित पीताम्बरजीके अनुवादके आशयपर श्रीगुरु सन्त महात्मा अरु आत्मनिष्ठोंकी कृपा रूप बलको पाय के गुरु शिष्य के सम्बाद द्वारा कहताहौं ॥

इस मेरे कहने में जो कुछ दोष होय तिनको सर्व पाठक जन क्षमाकर सुधारलेवें ॥

ॐ ॥

भूमिका ॥

अथर्वणवेदके मन्त्रोंसे अर्थात् परिमित (संख्याबद्ध) अक्षरवाले जे वेदके वाक्यहैं तिनको मन्त्र कहते हैं तिन करके बोधित जो अर्थ है तिनका विस्तार करके १ [अर्थात् अथर्वण वेद में । ब्रह्मा देवानामित्यादि । ब्रह्मादेवताओं का इत्यादि ; मन्त्रोंसेही आत्मतत्त्वका निर्णय किया होने से । अरु तिसही अथर्वण वेद विषे इस उपनिषद्रूप ब्राह्मणभागसे पुनः तिसही आत्मतत्त्वका कथन है सो पुनरुक्ति दोष है । यह आशंका चित्त विषे होती है सो नहीं क्योंकि मन्त्रों करके संक्षेपमात्र कथन किया जो आत्मतत्त्व तिसही का यहां इसब्राह्मण भाग करके सविस्तरप्राणकी उपासना आदिक साधनों सहित होनेसे कथन है एतदर्थ पुनरुक्ति दोष है नहीं । इसप्रकार कहते हुये आचार्य इस ब्राह्मणभाग को प्रकटकरते हैं ॥ यहां यह विशेष है कि मंत्ररूप जो विद्या है सो । परांचैवापराच । इस प्रमाणसे पर अपरभेदसे दो प्रकारकी है । तिनमें शिक्षाआदि छः अंगोंसहित जो ऋग्वेदादि नामों करके विख्यात विद्यासो कर्मरूप अरु उपासनारूप होनेसे अविद्या है तिन विषे जो दूसरी उपासनारूप है सो द्वितिय अरु तृतीय इन दोनों प्रश्नों करके प्रतिपादन कीजायगी । अरु प्रथमा जो कर्म रूपा है सो कर्मकांड विषे वर्णन किया है एतदर्थ यहां उसका वर्णन नहीं करते। अरु कर्मरूप अरु उपासनारूप जो विद्या है तिनके फल अनित्यादि दोष करके युक्तहैं ताते मुमुक्षु को तिनसे वैराग्यार्थ प्रथम प्रश्न विषे स्पष्टकरते हैं । अरु प्रथमकही जे पर अपर दो विद्या तिन विषे दूसरी जो पर विद्या है सो उसको कहते हैं । अथ

परायया तदक्षरमधिगम्यते । [अब जिससे सो अक्षर जानिये सो परविद्या है] इस प्रकार आरंभ करके समस्त मुंडक उपनिषद् से प्रतिपादन किया है। तिस बिषेभी । यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्तेस्वरूपाः । [जैसे प्रज्वलित अग्नि से सहस्रावधि चिन्गारियां प्रकटहोती हैं] इत्यादिकनों मन्त्रों करके उक्त जो अर्थ है तिसके बिस्तारार्थ चतुर्थ प्रश्न है। अरु । प्रणवो धनुः । [ओंकार धनुष है] इसमंत्र बिषे जो उक्त अर्थ है तिसको स्पष्ट करने के अर्थ पंचम अरु षष्ठ प्रश्न हैं इस रीतिसे यह प्रश्न उपनिषद्रूप ब्राह्मण आत्मप्रतिपादक मन्त्रोंका बिस्तारसे अनुवाद करनेवाला है एतदर्थही इसके विषय अरु प्रयोजनादिक अनुबन्ध तहांही कहे हैं एतदर्थ यहां पुनः नहीं कहते। ऐसे जानना] अनुवादसे यह प्रश्नोपनिषद् रूप ब्राह्मण [अपरिमित अक्षरवाला जो वेदका वाक्य तिसको ब्राह्मण कहते हैं] प्रारंभ करते हैं। अरु इस उपनिषद् विषे ऋषियों के प्रश्न अरु उत्तररूप जो आख्यायिकाहै सो विद्या की स्तुत्यर्थ है। अरु सो ब्रह्मविद्या, कि जिस करके अक्षरब्रह्म की प्राप्तिहोती है, सो आगे कहेहुये प्रकारसे सम्बत्सर (एकवर्ष) पर्यन्त ब्रह्मचर्य से गुरुकुल विषे वास अरु तप आदिक साधनों करके युक्त जो अधिकारी तिन करके ग्रहण करने अरु पिप्पलाद आदिक सर्वज्ञ मुनीश्वरोंके तुल्य जो आचार्य तिन करके कहने योग्य है जिस किस करके नहीं। ऐसी विद्या की स्तुति करते हैं। अरु ब्रह्मचर्यादि । अर्थात् [इस ऋषियों की आख्यायिका का पूर्व कल्पबिषे विद्यमान साधनोंके स्वरूपसे ब्रह्मचर्य अरु तप आदिक साधनों का विधान रूप अन्य प्रयोजन है ऐसे कहते हैं] अर्थात् वेदमें कल्पान्तर भेदनहीं सर्व कल्पों में वेद एकही है ताते इस सनातन आख्यायिका से ब्रह्मचर्यादि साधनों की सूचनासे तिनके करने की योग्यता सिद्ध होती है॥ इति भूमिका॥ हरिः ओं तत्सद्ब्रह्म॥

अनुक्रमणिका ॥

। । इस चिह्नान्तर में मूल के पद
ः ः इस चिह्नान्तर में मूलपदके अक्षरार्थ
[ ] इस चिह्नान्तरमें आनन्दगिरि टीका का अनुबाद
( ) इस चिह्नान्तरमें पर्याय शब्द
ऽ ऽ इस चिह्नान्तर में अर्थ योजना

श्लोक ॥

श्लोकार्धेनप्रवक्ष्यामि यदुक्तंग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः ॥

इति ॥

अथ प्रथमप्रश्न ॥

ॐ सुकेशाचभारद्वाजः, शैब्यश्चसत्यकामः,सौर्य्यायणीचगार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनो,भार्गवोवैदर्भिः, कबन्धीकात्यायनस्ते, हैते,ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परंब्रह्मान्वेषमाणा एषह वैतत्सर्व्वंवक्ष्यतीति तेह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः १ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत प्रथमप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

---

१ ॥ ॐ ॥ श्रीगुरुरुवाच । हे सौम्य हे प्रियदर्शन अब सावधान होके प्रश्नउपनिषद्को भी श्रवणकरो । सुकेशाचभारद्वाजः । ‹ भारद्वाज का पुत्र सुकेशा › नामवाला मुनि । अरु । शैब्यश्च सत्यकामः । ‹ शिवि ऋषिका पुत्र सत्यकाम › नामवाला मुनि । अरु । सौर्य्यायणीचगार्ग्यः । ‹ सूर्य्यके पुत्र सौर्यमुनि तिसका पुत्र सौर्य्यायणी सो गर्गगोत्रविषे उत्पन्नभया ताते गार्ग्य › नाम वाला मुनि । अरु । कौशल्यश्चाश्वलायनो । ‹ अश्वलऋषिका पुत्र कौशल्य › नामवाला मुनि । अरु । भार्गवो वैदर्भिः । ‹ विदर्भदेशका रहनेवाला भृगुके गोत्रविषे उत्पन्नभया ताते भार्गव › नामवाला मुनि । अरु । कबन्धी कात्यायनः । ‹ कत्यके पुत्र कात्यायन ऋषिरूप प्रपितामह (परदादे) वाला कबन्धीनामक › मुनि । ते हैते । ‹ यह विख्यात › छः मुनीश्वर सो । ब्रह्मपरा । ‹ ब्रह्मपर › अर्थात् अपरब्रह्म (प्राणोपासना) विषे तत्पर होनेकरके प्राप्तभये हैं ताते ब्रह्मपर हैं । अथवा अपरब्रह्म जे छओ अंगों सहित ऋगादि वेदरूप अपराविद्या तिसविषे निस्नातभये ताते ब्रह्मपरहैं । अरु । ब्रह्मनिष्ठाः । ‹ ब्रह्मनिष्ठहैं ›

अर्थात् १ ऋगादिवेदकरके प्रतिपाद्य जे यज्ञरूप ब्रह्म तिसके अनुष्ठानविषे निष्ठावाले होनेकरके ब्रह्मनिष्ठहैं । सो ९ । परब्रह्मान्वेषमाणा । ८ परब्रह्मको खोजतेहुये ; १ जो नित्यवस्तु जानने योग्यहै सो क्याहै तिसकी प्राप्त्यर्थ हम अपनी इच्छाके अनुसार यत्नकरेंगे । इस अभिप्रायसे परब्रह्मको अन्वेषणकरतेहुये । अरु तिसके जानने के अर्थ । एषहवै तत्सर्व्वं वक्ष्यतीति । ८ यह आचार्य निश्चयकरके सो सर्व कहेगा ऐसे ; विचारके । तेह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः । ८ वे सर्व समित्पाणि हुये पूजावान् पिप्पलाद मुनिके समीप जातेहुये ; अर्थात् सुकेशा आदि छओ मुनि समिधादि लेके [यह समिधा का जो ग्रहण है सो यथायोग्य दातुन काष्ठआदिक आचार्यके उपयोगी सामग्री के ग्रहणार्थ है ८ क्योंकि । आचार्य्याय प्रियंधनमाहृत्य । इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण हैं ; अरु सूखे काष्ठरूप जो समिध हैं सो भी अग्निहोत्रादि कर्मोंविषे ऋषियों को उपयोगी होते हैं ताते उनके ग्रहणार्थ भी विधि है परन्तु मुमुक्षुको आचार्यके उपयोगी पदार्थरूप भेट हाथ में लेकर शरण होना योग्य है यह अभिप्राय है] सर्वकरके पूजनीय भगवान् पिप्पलादमुनिरूप आचार्यके समीप जातेभये । अर्थात् [आचार्यको उपयोगी प्रियवस्तु सो भेटार्थ हाथ में ले समीप जाय भेट उनके आगे रख उनके चरण ग्रहण करके हे भगवन् ८। मुमुक्षुर्वै शरणमहंप्रपद्ये । ; मैं मुमुक्षु आपकी शरणहों ताते; मुझको ब्रह्मविद्याका उपदेशकरो । इत्यादि प्रकार सविनय स्वाभीष्ट वचन के उच्चारण पूर्वक साष्टांग प्रणामरूप उपसत्ति (शुश्रूषा,सेवा) को करते भये ॥ १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ ॥ हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब वे छओ मुनिपिप्पलादरूप आचार्यकी शरणभये तब । तान् हस ऋषिरुवाच । ८ तिनको सो ऋषि स्पष्ट कहता भया ; अर्थात् तिनके समीप आये छओ मुनि तिनको सो आचार्य पिप्पलादमुनि स्पष्ट कहता भया

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति २ ॥

१पिप्पलाद उवाच। भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ। २ फेर भी तपसे ब्रह्मचर्यसे श्रद्धासे संवत्सर पर्यन्त सम्यक् बास करो; १ यद्यपि तुम सर्व तपस्वीही हौ तथापि यहां फेर भी विशेषकरके नियताहारादिरूप तपसे अरु इन्द्रियों के संयमरूप ब्रह्मचर्यसे अरु आस्तिक भावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान् हुये एकवर्षके कालपर्यन्त सम्यक्प्रकार गुरुकी सेवा विषे तत्परहुये निवासकरो। तिसके अनन्तर; १ यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ। २ जैसी इच्छाहोय (तिसके अनुसार) प्रश्नोंको पूछो; १ जिसको जैसी इच्छा होय सो अपनी इच्छाके अनुसार जिस विषयकी जिज्ञासाहोय तिस विषयके सम्बन्धी प्रश्नोंको पूछो। यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं ह वो वक्ष्याम इति। २ जब जानते होंगे तुम्हारे सर्व स्पष्टकहेंगे; १ यदि हम तिसतुम करके पूछी हुयी वस्तुको जानतेहोंगे तब तुम्हारे पूछेहुये बस्तुओंको स्पष्ट कहेंगे [यहां, यदि, शब्दका पर्य्यायरूप जो 'जब' शब्द है सो आचार्य की निरभिमानता के लखावने के अर्थ है कुछ अज्ञान अरु संशयके अर्थ नहीं। यह सर्व प्रश्नोंके निर्णयसे बोधित है] २ ॥

३ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार पिप्पलाद मुनि की आज्ञानुसार कौशल्य आदि छओ मुनियों ने ब्रह्मचर्य्यादि साधन पूर्वक निवास किया १ । अथ कबन्धी कात्यायनउपेत्य पप्रच्छ। २ एक वर्ष पीछे कात्यायन का प्रपौत्र कबन्धीसमीपजायके पूछताभया; अर्थात् १ जबएकवर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य कररहे तब तिसके पश्चात् कात्यायन ऋषिका परपौत्र (परपोता) कबन्धी नामवालामुनि अपने आचार्य पिप्पलाद मुनि तिनके समीपजायप्रणामकरप्रश्न

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ । भगवन् कुतो हवा इमाःप्रजाः प्रजायन्त इति ३ ॥

करताभया जो १ । भगवन् कुतो हवा इमाः प्रजाः प्रजयन्त इति । २ हे भगवन् यहप्रसिद्ध प्रजा किसकारण से उपजेहैं ? १ हे भगवन् यह प्रसिद्ध ब्राह्मणादि प्रजा किसकारणसे उपजती है १ ॥ प्रश्न ॥ [वे छओ मुनीश्वर परब्रह्म के जानने की जिज्ञासावान् हुये पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीपगये इसप्रकारसे आरंभ कियेहुये इसपरब्रह्मकी जिज्ञासाके प्रकरणविषे प्रजापतिकृत प्रजा की सृष्टिको विषयकरनेवाले प्रश्न अरु उत्तर का कथन असंगत है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य यह शंका चित्त में विचारके ही प्रश्न उत्तर रूप श्रुतिका तात्पर्य कहते हैं यहां यह भाव है कि । तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इति । २ तिसको यह निर्मल ब्रह्मलोक होता है ; इसप्रकार उपासना केसमुच्चय करके युक्त कर्मके कार्य ब्रह्मलोक को अरु । अथोत्तरेणइति । २ अब उत्तरायण से ; इस प्रकार जिस ब्रह्मलोक की गतिरूप देवयान मार्ग को आगे इसही प्रथम प्रश्न विषे कथन कियाहोने से यह अर्थ बनता है । अरु यह उपासना करके युक्त जो कर्मका कथन है सो केवल कर्मोंका उपलक्षण है, इसप्रकार भी जानना क्योंकि केवल कर्मके कार्यइन्द्र लोकको अरु तिस इन्द्रलोककी गतिरूप पितृयानमार्गको भी । तेषामेवैषब्रह्मलोकः । तिनकोही यहब्रह्मलोक (चन्द्रमंडलस्थइन्द्रलोक) होताहै । अरु । प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्त इति । २ प्रजाकी कामनावाले दक्षिणायन मार्गको पावते हैं ; इसप्रकारआगेइसप्रथमप्रश्नविषेहीकथनकियाहोनेसे॥अरुयद्यपि परब्रह्मकी जिज्ञासाके अवसरविषे यह कथन भी असंगतही है तथापि केवल कर्मके कार्यसे अरु उपासनारूप कर्मके कार्यसे जो विरक्तहै तिसकोही तहां अधिकारहै एतदर्थ तिसकर्म उपा-

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपो ऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिञ्च प्राणश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ४ ॥

सनाके फलसे वैराग्यार्थ यह कहते हैं। यद्यपि प्रश्नसे सृष्टि प्रतीतहोती है तथापि तिस सृष्टिके कथन बिषे प्रयोजनके अभावसे सृष्टिके कथनके मिस (बहाना) करके परब्रह्मकी विद्याका फल ही यहां कहते हैं] एतदर्थ १ मिश्रित अरु अमिश्रितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या अरु कर्म यह दो हैं तिनका जो कार्य है अरु जो गतिहै सो आपकरके कहने योग्यहै ॥ तिस अर्थवाला यह प्रश्नहै ऐसा जानना योग्यहै ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब कबन्धीमुनिने सृष्टिके विषयमें अपने आचार्य पिप्पलादमुनिसे प्रश्नकिया तब १ । तस्मै सहोवाच । तिसकेअर्थ सो स्पष्ट कहते भये । २ उस प्रश्नकरनेवाले कबन्धीनाममुनिको सो सर्व्वज्ञ आचार्य पिप्पलादमुनि शिष्यकी शंकाके निवारणार्थ कहते भये ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कबन्धीन् १ । प्रजाकामो वै प्रजापतिः सतपोऽतप्यत । २ प्रजापति (ब्रह्मा) सो प्रजाकरनेकी कामना वालाहुआ तपको तपता भया । ३ अपनी प्रजाको सृजनेकी कामनावाला प्रजापति ब्रह्मदेव सो मैं सर्वात्मा अरुजगत् को मैं सृजों ऐसे ज्ञानवाला अरु ज्ञान कर्म के समुच्चयको करनेवाला अरु पूर्वकल्प सम्बन्धी हिरण्यगर्भकी भावनाकरके युक्त अरु इसकल्पकी आदिविषे हिरण्य गर्भरूपसे सुखको प्राप्तभया अरुअपनीसृजीहुई स्थावरजंगमरूप प्रजाकापति हुआ पश्चात् प्रजाकी कामना वालाहुआ अरुजन्मान्तरबिषे भावनाकिये अरु श्रुतिबिषे प्रकाशितकिये अर्थकोविषय करनेवाले ज्ञानरूप तपको । तस्यज्ञानमयं तपः । तपता भया, अर्थात् चित्तादिकोंसे तिसके संस्कारको जगायके उत्पन्न करता भया अर्थात् [तहां प्रथम सूर्य अरु चन्द्रमाकी उत्पत्तिसे तिनके

भावको पायके तिसके पश्चात् चंद्रमा अरु सूर्य इन दोनों करके साधने योग्यजो संवत्सर तिससंवत्सरके भावको पायके पश्चात् ऐसेही तिससंवत्सरके अवयवरूपदक्षिण अरु उत्तरदोअयन अरु मास पक्ष दिन रात्र इनके भावकोपायके तिसके पश्चात् अयन आदिकों के क्रमसे साधने योग्य ब्रीहि यवादि अन्न भावको अरु रेतभावको पायके पश्चात् तिसरेत से प्रजाको उत्पन्नकरों ऐसे विचारके] । सतपस्तप्त्वा । ६ सो तपको तपिके ६ १ सो प्रजापति उक्तप्रकार श्रुति उक्त अर्थके ज्ञानरूप तपको तपिके अर्थात् विचारके ९ । सन्मिथुनमुत्पादयन्ते रयिञ्चप्राणञ्चेति । ६ सो रयि अरु प्राण इन दोनों को उत्पन्न करताभया ६ १ प्रजापति सृष्टि के साधन रूप , रयि , ९ अर्थात् [यहां धनके वाची रयि शब्द करके भोज्य पदार्थों के समूहको लक्ष्यकरायके अरु उन भोज्य पदार्थों को चन्द्रमाके किरणों के अमृतकरके युक्त होने से तिसद्वारा चन्द्रमाको लक्ष्य करते हैं इस अभिप्रायसेकहते हैं]१ अन्नरूप चन्द्रमा अरु अन्नके भोक्ता प्राण [अर्थात् । अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तोपचाम्यन्नंचतुर्विधम् । ६ मैं वैश्वानर (जठराग्नि) रूपहोके प्राणियों के देह प्रति आश्रयको पाया हों अरु प्राण अपान वायु करके युक्त हुआ चार प्रकारके अन्नको पचावता हों ६ इस गीता स्मृतिके वाक्य प्रमाण से अग्निको प्राणके सम्बन्धसे प्राण शब्द करके भी अग्निरूप भोक्ताही लक्ष्यकराया है इस अभिप्राय से यहांकहते हैं] अर्थात् प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इन दोनों को उत्पन्न करता भया ॥ प्र० ॥ क्या विचार के करता भया ॥ उ० हे सौम्य यह विचारके कि । एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यतइति । ६ यहदोनों मेरी बहुत प्रकारकी प्रजा करेंगे ऐसे ६ अर्थात् यह दोनों अन्न (चन्द्रमा) अरु तिसका भोक्ता अग्नि (सूर्य) सो मेरी इच्छा के अनुसार अनेकप्रकार की , प्रजाको करेंगे ऐसे चिन्तनकरके ब्रह्मांडकी ९ अर्थात् [अग्नि (सूर्य) अरु अन्न (चन्द्रमा)

आदित्योहवैप्राणो रयिरेवचन्द्रमा। रयिर्वाएतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्त्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५॥

को ब्रह्मांडके अन्तर्गत होने करके ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर उनकी उत्पत्तिहोती है इसअभिप्रायसे यहां कहते हैं] १ उत्पत्तिके क्रमसे सूर्य अरु चन्द्रमा को प्रजापति सृजताभया ४ ॥ ५ ॥ हेसौम्य तिन दोनों में । आदित्यो हवै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा । २ सूर्य्य निश्चय करके प्रसिद्ध प्राण (अरु) अन्नही चन्द्रमा है ; अर्थात् प्रजापति से ब्रह्माण्डान्तर्गत प्रकट किये जे सूर्य अरु चन्द्र तिन दोनों में सूर्य्य जोहै सो निश्चय करके लोकमें प्रसिद्ध प्राणरूपहुआ अन्नका भोक्ता अग्निहैअरु निश्चय करके अन्नरूप चन्द्रमा है । परन्तु यह एक भोक्तारूप अरु एक अन्नभोग्यरूप सो दोनों एकही प्रजापति हैं ॥ प्र० ॥ चन्द्र अरु सूर्य्य इन दोनों की जब प्रजापतिभाव से एकता है तब एकको भोक्तापना अरु दूसरेको भोग्यपना यह विषमभेद कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ यह जो एकही प्रजापति के विषे भोग्य भोक्तारूप विषम भेदहै सो गौण मुख्यभावका किया है । अर्थात् [तिस एकही प्रजापतिको १क्रिया शक्ति के आश्रय] गौणभाव कहनेकीइच्छा से अन्न (भोग्य) पनाहै अरु २ ज्ञानशक्तिकेआश्रय २ प्रधानभाव के कहनेकी इच्छासे भोक्तापनाहै यह भेदहै] प्र० ॥ यह भेद कैसे है ॥ उ० ॥ । रयिर्वाएतत्सर्वंयन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चतस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५ । २ जो मूर्त्त अरु अमूर्त्त हैसो सर्वयह अन्नही है ; अर्थात् जो स्थूल अरु सूक्ष्मरूप मूर्त्त अरु अमूर्त्त जगतहै सो सर्व यह अन्न (भोग्य) रूपही है ॥ प्र० ॥ मूर्त्तरूप अन्न अरु अमूर्त्तरूप भोक्ता इन दोनोंको भी जब अन्नमयता (चन्द्ररूपता) ही है तब । रयिरेव चन्द्रमा । २ अन्नही चन्द्रमाहै ऐसा जो पूर्व वेद ने कहा सो कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ हे सौम्य जब मूर्त्त (अन्न) अरु अमूर्त्त (भोक्ता) यह दोनों विभागकरके गौण अरु प्रधान भावसे

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशंप्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान्‌रश्मिषुसन्निधत्ते । यद्दक्षिणं यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो यत्सर्व्वं प्रकाशयति तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ६ ॥

कहनेको इच्छितहोय तब अमूर्त्तरूप (भोक्ता) प्राणसे मूर्त्तरूप (भोग्य) द्रव्यको भुक्त होनेसे मूर्त्तको ही अन्नपनाहै] ताते पृथक् किये अमूर्त्तसे जो अन्न मूर्त्त (स्थूल) मूर्त्ति है सोई अन्नरूपहै। क्योंकि अमूर्त्त सूक्ष्म प्राणरूप भोक्ताकरके भोगाहुआहै ताते ५॥

६ ॥ हे सौम्य ताते अमूर्त्त भी प्राण भोक्ता जो अन्नहै तिस सर्वरूपही है ॥ प्र० ॥ कैसे सो सर्वरूपही है ॥ उ० ॥ (अथादित्यउदयन्यत्प्राचींदिशंप्रविशति) (अब सूर्य्य उदयहुआ जो पूर्व दिशाके अर्थ प्रवेशकरताहै) तिसकरके उस पूर्वदिशाको अपने प्रकाशकरके व्याप्तकरताहै ((तेनप्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते) (तिससेपूर्वदिशाके अन्तर्गत प्राणिनकेताईं किरणोंविषे प्रवेशकरता है ;) तिस अपनी व्याप्तिसे पूर्वदिशाके अन्तर्गत सर्व प्राणधारियोंको अपने प्रकाशरूप व्यापक किरणोंविषे प्राप्त होनेसे प्रवेशकरताहै। अर्थात् अपनारूप करताहै। तैसेही ((यद्दक्षिणंयत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो) (जो दक्षिणदिशाके अर्थ, जो पश्चिम दिशाके अर्थ, जो उत्तरदिशाके अर्थ, जो अधो, जो ऊर्ध्व, जो बीचकी दिशाके अर्थ) (जो पूर्व दिशाकेअर्थ प्रवेशकरताहै सो तैसेही दक्षिण पश्चिम उत्तर नीचे ऊपर मध्यकी अर्थात् अग्नि ईशानादि कोणकी दिशाओं के अर्थ प्रवेशकरता है। अरु ((यत्सर्व्वं प्रकाशयति) (जोसर्व को प्रकाशताहै ;) जो अन्यसर्व जगत्‌को प्रकाशताहै । अरु (तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते) (तिससे सर्वप्राणियों को किरणोंविषे प्रवेशकरताहै ;) तिस अपने प्रकाशकी व्याप्ति

सएष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ७ ॥

विश्वरूपंहरिणंजातवेदसं परायणंज्योतिरेकंतपन्तम् । सहस्ररश्मिःशतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ८ ॥

से सर्वदिशाबिषे स्थित सर्व प्राणियोंको किरणोंबिषे प्रवेशकरता वा धारता है ६ ॥

७ ॥ हे सौम्य । स एष वैश्वानरो विश्वरूपः । (सो यह वैश्वानर विश्वरूपहै ; अर्थात् सो यह भोक्ता प्राण वैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है । अरु । प्राणोऽग्निरुदयते । (प्राण अरु अग्निरूप उदय होताहै ; जो वैश्वानर विश्वरूपहै सो विश्व का आत्माहोनेसे प्राण अरु अग्निरूपहै अरु सोई भोक्ता दिन दिनबिषे सर्वदिशाको अपनारूप अर्थात् प्रकाशरूप करताहुआ उदय होताहै । अरु । तदेतदृचाभ्युक्तम् ७ । (सो यह ऋचाने भी कहाहै ; सो यह कथनीय वस्तु आगे के अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचाने भी कहाहै ७ ॥

८ ॥ हेसौम्य । विश्वरूपंहरिणं जातवेदसंपरायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । (सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् आश्रय ज्योति अद्वितीय एक तापके करनेवाले ; अर्थात् सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् सर्वप्राणका आश्रय अरु सो सर्वप्राणियोंका चक्षुरूप ज्योति अद्वैत अरु तापक्रियाके करनेवाले अपने आत्मरूप सूर्य को ब्रह्मवेत्ता पंडित जानते भये ॥ प्र० ॥ कौन यह है जिसको ब्रह्मवेत्ता पंडित जानते भये ॥ उ० ॥ । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः । (अनेक किरणोंवाला अरु अनेक प्रकार करके वर्त्तमान ; अर्थात् अनेक प्रकार प्राणियों के भेदकरके वर्त्तताहुआ । अरु । प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः । (प्रजाओं के मध्य उदितहोता है यहसूर्य्य है ; प्रजा (प्राणधारि) यों के मध्य चैतन्यरूपता

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायनेदक्षिणञ्चोत्तरञ्च तद्येवैतदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते तेचान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते । तएवपुनरावर्त्तन्तेतस्मादेतेऋषयःप्रजाकामादक्षिणंप्रतिपद्यन्तेएषहवै रयिर्यःपितृयाणः ९ ॥

करके उदित (प्रकट) होता है तिसको ब्रह्मवेत्ता पंडितयहसूर्य्य है ऐसा तिसकोजानतेभये ८ ॥

९ ॥ हे सौम्य जोयह अन्नरूप मूर्त्तिमय चन्द्रमा है अरुअन्न का भोक्ता अमूर्त्तमय प्राणरूप सूर्य्य है सो यह एकही जोड़ासर्व रूप है । अरु यह दोनों मेरी बहुतसे प्रकारकी प्रजाको करेंगे प्र० ॥ कैसे करेंगे ॥ उ० ॥ चन्द्रमारूप अन्न अरुसूर्य्यरूपप्राण को संवत्सर आदिक द्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्तृत्वपनाहै सोई यहां वेद भगवान् कहते हैं । संवत्सरो वै प्रजापतिः । (संवत्सर ही प्रजापति है) अर्थात् संवत्सररूप जो कालहै सोई प्रजापति है । क्योंकि संवत्सर को तिस प्रजापतिकरके निर्वाह किया है ताते अरु जिसकरके चन्द्रमा अरु सूर्य्य इन दोनोंसे निर्वाह करनेयोग्य जो तिथि दिवस रात्रियोंका समुदायरूप जेसंवत्सर है सो उन चन्द्र अरु सूर्य्यसे अपृथक् होनेसे सोई रूप है । तिसकरके सो संवत्सर भी वो युगलरूपही है । ऐसे यहां कहते हैं । तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च । (तिसके दक्षिण अरु उत्तर रूप दो अयन (मार्ग) हैं) अर्थात् तिससंवत्सर रूप प्रजापतिके दक्षिण अरु उत्तर यह दोनों प्रसिद्ध छः छः मासरूप अयन (मार्ग) है । अरु जिस दक्षिण अरु उत्तर मार्ग करके सूर्य जो है सोक्रम से केवल कर्मिष्ठ अरु उपासनाकरके युक्त कर्मकरनेवाले जनों के पावने योग्य लोक को पावन करता हुआजाता है ॥ प्र० ॥ सो कैसे है ॥ उ० ॥ । तद्ये वै तदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते । (जो ऐसे निश्चयकर तिस इष्ट अरु पूर्त्तरूप कृत (कर्म) को उपासते हैं) अर्थात् केवलकर्मी अरु कर्म उपासनाके समुच्चय सेवन

करनेवाले जनहैं तिनमें ब्राह्मणादिकों विषे जो जन इसप्रकार निश्चय करके तिन इष्ट अरु पूर्त्त अर्थात् [अग्नि होत्र तप, (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) सत्यभाषण देवतोंका आराधन अतिथि पूजन अरु वैश्वदेवरूप जो कर्म हैं तिनको अथवा पंचयज्ञरूप नित्यकर्मको इष्टा कहते हैं अरु वापी, कूप, तड़ाग, अरु देवालय अन्नदान, अरु देवताओंके निमित्त आरामादिक बनवावने, इत्यादि जो कर्म हैं सो पूर्त्त हैं] इत्यादि जे कर्म हैं तिसको ही उपासते (यथाविधि करते) हैं अकृत (नहींकरनेयोग्य) तिसको नहीं। ते चान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते। (सोचन्द्रमा बिषे भये लोककोही पावते हैं ; अर्थात् जोपुरुष निषिद्ध कर्मों को त्यागके इष्टा पूर्ता रूप कर्मको उपासते हैं सो चन्द्रमंडल बिषे उभय रूप प्रजापतिके अंशमय भोज्य (अन्न) रूप लोकों कोही पावते हैं क्योंकि चन्द्रमाबिषे भयेलोकोंको कर्मरूपत्वहोनेसे। अरु। तएव पुनरावर्त्तन्ते। (सोपुनः आवृत्ति होते हैं ; अर्थात् जो पुरुष इष्टा पूर्त्तादि कर्मकरके चन्द्रलोकको पावते हैं सोई पुरुष अपने पुण्यकर्मोंका भोगोंद्वारा क्षयहोनेसे पुनः जन्म मरणरूप आवृत्तिकोही पावतेहैं उनका आवागमन नहीं छूटता। तस्मादेतेऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। (ताते यह ऋषि अरु प्रजाकामा दक्षिणायनसे पावते हैं ; अर्थात् चन्द्रलोकको प्राप्त भये पुनः इस लोकबिषे आवते हैं ताते यह स्वर्ग के द्रष्टा अर्थात् चन्द्रलोकके द्रष्टा क्योंकि चन्द्रलोककोभी स्वर्गत्व है। ऋषि अरु प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ सो कहे प्रकार अन्नमय प्रजापतिरूप चन्द्रमाको कर्मोंका फलरूपहोने करके इष्ट अरु पूर्त्तरूपकर्मसे निर्वाह करते हैं। एतदर्थ अपने पुण्यकर्म रूपही दक्षिणायन मार्गसे उपलक्षित (लखायेहुये) चन्द्रलोक को पावते हैं अरु। एषहवैरयिर्यःपितृयाणः ९। (यह पितृयान निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्न है ; अर्थात् यहजोपितृयान करके लक्षित चन्द्रमाहै सो निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्नही है ९॥

अथोत्तरेणतपसाब्रह्मचर्य्येणश्रद्धयाविद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्नपुनरावर्त्तन्तइत्येष निरोधस्तदेषश्लोकः १० ॥

१०॥ हे सौम्य ! अथोत्तरेणतपसाब्रह्मचर्य्येणश्रद्धयाविद्यया ! अब उत्तरमार्गकरके तपकरके ब्रह्मचर्यकरके श्रद्धाकरके विद्याकरके; अर्थात् दक्षिणायनसे इतर जो उत्तरायणमार्ग तिस बिषे जो चलनेवाले पुरुष हैं सो तप (प्राणायामादि) करके अरु शमदमादि लक्षणरूप ब्रह्मचर्यकरके, अरु विश्वास लक्षण रूप श्रद्धाकरके अरु विद्याकरके, अर्थात् प्रजापतिके तादात्म्यको विषयकरनेवाली अहमग्रे उपासना तिसकरके ।आत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते ! आत्माको जानके आदित्यको पावतेहैं; अर्थात् समस्त स्थावर जंगम के आत्मा अरु प्राणरूप सूर्य्यको ।अहमस्मि ।भावसेजानकेप्राणमय सर्व्वअन्नकेभोक्ता सूर्य्यलोक को पावता है । एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणं ! यहही प्राणोंका आश्रयहै (अरु) यहही अविनाशी है (अरु) यहही अभयहै (अरु) यहही परमगति है; अर्थात् यह ही जगदात्मासूर्य्य सर्व प्राणोंका समष्टिरूप आश्रयहै अरु यहही अविनाशीहै ताहीते भयरहित अभय है यह चन्द्रमावत् वृद्धि क्षयके भयवाला नहीं । अरु यह केवल उपासना वाले अर्थात् पञ्चाग्निविद्या अरु वैश्वानर आदि विद्याकी रीतिसे अथवा प्राण सूर्य्य आदिकोंकी अहमग्रे उपासना करनेवाले अरु कर्म उपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले पुरुषोंकी परमगतिहै क्योंकि ।एतस्मान्नपुनरावर्त्तन्त ! इससे पुनरावृत्तिको पावते नहीं; अर्थात् जैसे उपासनासे रहित केवल कर्मकरनेवाले पुरुष चन्द्रलोक को पायके फेर इस लोक विषे आवते हैं, तैसे उपासनाके करनेवाले किंवा समुच्चय के करनेवाले सूर्य्यलोक को पाय के

पंचपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्॥ अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ११॥

पुनरावृत्तिको पावते नहीं। अरु। इत्येष निरोधः। (ऐसे यह निरोध है; अर्थात् तिस उपासना से रहित होने करके सूर्य्य (उत्तरायण) से रोके हुये केवल कर्मकरनेवाले अविद्वान् पुरुष आत्मा अरुप्राणमय संवत्सररूप सूर्य्यको पावते नहीं तातेइस प्रकार सोई यह संवत्सर अविद्वानोंका अनावृत्ति में निरोध है। अरु। तदेष श्लोकः। (तिस बिषे यहश्लोक है; अर्थात् इस कहेहुये अर्थ बिषे यह अग्रिम एकादशवां वाक्यमय श्लोक रूप वेदकामन्त्र प्रमाण है १०॥

११॥ हे सौम्य। पञ्चपादं। (पंचपाद है; । अर्थात् इस संवत्सररूप सूर्य्यके पांचऋतु पादों (चरणों) वत् पांचपादहै[दो दोमासकेऋतु यद्यपि छः हैं तथापि यहां जो श्रुतिने पांचऋतु कही है सो हेमन्त अरु शिशिरकी एकरूपता होनेसे कही है] तिन ऋतु रूप पांचपादोंकरके यह सूर्य्य 'जैसे चरणोंसे पुरुष' तैसे बर्त्तताहै ताते इसको पांचपादवाला कहते हैं। अरु। पितरं। (पिताहै जिसको पांचपादवाला कहते हैं तिस संवत्सररूप सूर्य्य को अन्नादि सर्व्वका जनकपना होनेसे इसको पितर कहते हैं। अरु। द्वादशाकृतिं। (बारह अवयव वालाहै; जो पंचपादवाला सबेका पिता संवत्सररूप सूर्य्य है तिसके द्वादशमासात्मक षट् ऋतुरूप अवयवहैं ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं अथवा द्वादशमासोंकरके इस संवत्सररूप सूर्य्यके अवयवी भावका कर्त्ता होताहै एतदर्थ द्वादशमासमय षट्ऋतुरूप इसके अवयवभावमें करनाहै ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं। अरु। परेअर्द्धे पुरीषिणम्। (पर ऊंचे स्थानबिषे जलवालाहै; आकाशरूप अन्तरिक्षलोकसे पर अरु ऊंचेस्थान तीसरे स्वर्गबिषे स्थितहै ताते

इसको परे अर्द्ध करके कहाहै अरु जलवालाहै । अर्थात् । आदित्याज्जायतेवृष्टिः । इस स्मृतिके प्रमाणसे । अरु सूर्य जब बहुत तपताहै तब जलको बर्षताहै यह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणहै ताते सूर्य्य जलवालाहै ऐसे कालकेवेत्ता कहते हैं । अरु । अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं । १ अरु यह अन्यतो तिस निपुण (सर्वज्ञ) को । सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति । २ सातचक्रविषे अर्पित है ऐसा कहते हैं १ अर्थात् सात अश्वरूप अथवा २ सप्तग्रहरूप अश्व (क्योंकि सूर्यकेसाथ भ्रमणकरनेवाले होनेसे) ३ अरु षट् ऋतुवाले द्वादशमास इस निरन्तर गतिवाले कालरूप चक्रविषे 'जैसे रथकी नाभिविषे अरा अर्पितहोते हैं तैसे' यह सर्व जगत् अर्पितहै ऐसा कहते हैं ॥ हे सौम्य जब संवत्सररूप सूर्य प्रथम पक्षविषे पांचपाद अरु द्वादश आकृतिवालाहै अरु जब दूसरे पक्षविषे सप्त अश्वरूप अरु षट्ऋतुवाला ऐसा कहाहै [तहां यह भावहै कि प्रथम पक्षविषे ऋतुओं के पादपनेकी कल्पनासे अरु द्वादशमासोंके अवयवपनेकी कल्पनासे सूर्य्यरूपकरके संवत्सर रूपकालात्माही कहा । अरु दूसरे पक्षविषे हेमन्त अरु शिशिर इन दोनों ऋतुको (कि जिनको पंचपादनके वर्णन में एकरूप कहा है) भिन्न करके षट् ऋतुओं को रथचक्र गत अनेक वक्रकाष्ठरूप अरेपने की कल्पना से संवत्सर को चक्रवत् भ्रमणरूप गुणके योगसे चक्रपनेकी कल्पना करके अरु कालके मुख्यभावसे सर्वका आश्रय होनेकरके भी सोई संवत्सर रूप कालही कहा है । ताते इन कहेहुये दोनोंपक्षमें जो भेद है सो भी गुणोंके अरु कल्पनाके भेदसे भेदहै कुछ कालरूप धर्मीका भेदनहीं] एतदर्थ सर्वप्रकारसे संवत्सरमय कालरूप अरु चन्द्र सूर्य्यरूप हुआ भी प्रजापतिही जगत्का कारणहै ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य जिस संवत्सरविषे यह विश्वस्थितहै । अर्थात् ९ [संवत्सरको भी मास अरु दिनरात्रिरूप अवयवोंवाला हुये विना ओषधी आदिकोंकी जनकताका अभावहै अरु पूर्व इसे

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एवरयिशुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिंकुर्वन्तीतर इतरस्मिन् १२॥

को पिता करके कहाहै ताते अब उससंवत्सरकी मास आदिक रूपताको कहते हैं]१ सोई अर्थात् जो मासादि अवयवोंवाला ओषधीका पिता संवत्सर नामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासोंबिषे समस्त पूर्ण होताहै । ताते १। मासोवै प्रजापतिः। २ मासही प्रजापति है ; ३ मासजो है सो अन्न अरु अन्नका भोक्ता इन उभयरूपवाला 'संवत्सररूपवाला' प्रजापतिही है। तस्य कृष्णपक्ष एव रयि । २ तिसका कृष्णपक्षही अन्नहै ; ३ अर्थात् भोग्य भोक्ता उभयरूपवाला जो मासहै तिस मासरूप प्रजापतिका एकभाग जोकृष्णपक्षहै सोईअन्नरूप चन्द्रमाहै। अरु १। शुक्लः प्राणः । २ शुक्लपक्ष प्राणहै ; अर्थात् कृष्णपक्षसे इतर दूसरा भाग जो शुक्लपक्षहै सो प्राण अरु अग्निमय भोक्ता सूर्य्य है। तस्मात् एते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्ति । २ ताते यह ऋषिलोग यज्ञको शुक्लपक्षबिषे करते हैं एतदर्थ १ जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणको सूर्य्यरूपही देखतेहैं अरु जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणसे भिन्न जो कृष्णपक्षरूप अन्नहै तिसको वे नहीं देखते। ताते ऐसे देखनेवाले जे ऋषिलोग हैं सो अपने इष्ट यज्ञको कृष्णपक्षबिषे करतेहुये भी शुक्लपक्षबिषेही करते हैं। अरु १। इतर इतरस्मिन् १२ । २ इतर इतराबिषे करते हैं ; ३ प्राणके द्रष्टासे जे अन्य ऋषिलोगहैं सो तो शुक्लपक्षको सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं किंतु प्राणरूपसे नदेखनेरूप कृष्णपक्षके भावको प्राप्तभये कृष्णपक्षकोही देखते हैं वे ऋषि अपने इष्ट यज्ञको शुक्लपक्षबिषे करतेहुये भी तिससे अन्य कृष्णपक्षबिषेही करते हैं १२॥

१३॥ हे सौम्य बारहवें मन्त्रसे कहाजो मासरूप प्रजापति सो भी अपने अवयवरूप दिन अरु रात्रि बिषेही पूर्ण होताहै

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते १३ ॥

एतदर्थ सो। अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः । (दिनरात्रि निश्चय प्रजापतिहै तिसका दिवसही प्राणहै (अरु) रात्रिही अन्नहै ; अर्थात् दिनरात्रिरूप जो एक प्रजापति है तिसका भी दिवसहै । सोई प्राण अरु अग्निरूप अन्नका भोक्ता सूर्य्यहै अरु रात्रि जो है सोई अन्नरूप भोग्य चन्द्रमाहै । अरु ९ । प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते । (जो दिवसमें मैथुनको करते हैं सो दिवसरूप प्राणको खोवते हैं ; ५ जो पुरुष अपनी अविवेकताके बशभये दिवसमें प्रीतिके कारण स्त्री तिसके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो पुरुष दिवसरूप प्राणको खोवते हैं । हे सौम्य जब यह ऐसेहै तब दिनमें मैथुनकर्म करने योग्य नहीं । इसप्रकार जो दिवसमें मैथुनका निषेध कहाहै सो प्रासंगिक कहाहै । अरु ५ । ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते । (जो रात्रिबिषे मैथुनको करते हैं सो ब्रह्मचर्य्यहीहै ; ५ जो विवेकी पुरुषहैं सो ऋतुकालमें भी रात्रिके समयही अपनी स्त्रीके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो उनकी ब्रह्मचर्य्यही है । सो श्रेष्ठहै ताते ऋतुकालमें रात्रिबिषेही स्त्री से संयोग करने योग्यहै । हे सौम्य यह ऋतुगमनकी विधि जो कही है सो भी प्रासंगिकही कही है । अब जो प्रसंग पूर्वसे चला है तिसको श्रवण करो यह जो दिवस रात्रिरूप प्रजापति कहा है सो ब्रीहि (धान्य) यवादि अन्नरूपसे स्थित भया है १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य इस कहे प्रकार क्रमकरके दिनरात्रिरूप प्रजापति अन्नबिषे परिसमाप्तहोता है एतदर्थ । अन्नं वै प्रजापतिः । (अन्नभी प्रजापति है) ॥ प्र० ॥ हे भगवन् तिस अन्नको प्रजोत्पादनपना कैसे है ॥ उ० ॥ । ततो ह वै तद्रेतः । (ताते

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मा दिमाः प्रजाःप्रजायन्त इति १४ ॥

प्रसिद्धही रेतहोता है ; अर्थात् भोजन किया जो अन्नहै तिस अन्नसे सर्व लोक विख्यात मनुष्यका बीजरूपरेत (वीर्य)होता है ९ [यहांपुरुष के वीर्यका बाचीरेत शब्द है सो स्त्री के रजरूप शोणित के भी ग्रहणार्थ में है। क्योंकि वीर्य रूपताकरके दोनों को तुल्यत्व है ताते] ; सो प्रजाका कारण है ९ । तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति । (तिससे यह प्रजा उत्पन्न होती है;) अर्थात् तिस अन्नके परिणाम रेतसे यहमनुष्यादि प्रजाभलीप्रकार से उत्पन्न होती है॥ १४ ॥ हे सौम्य हे कबन्धीन् तैंनेजोप्रश्न कियाथा कि । कुतोह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त । (किससे यह प्रजा उत्पन्नहोती है ; सो उक्तप्रकार दिनरात्रिपर्यन्त चंद्रसूर्य्य रूप दोनों आदिकके क्रमसे अन्नरूप रेतद्वारा सर्वप्रजाउपजे हैं ऐसा श्रुतिने निर्णयकियाहै १४ ॥

१५॥ हे सौम्य जब श्रुतिके सिद्धान्त से उक्तप्रकार है तब । तद्येह तत्प्रजापति व्रतंचरन्ति । (जो प्रसिद्ध तिस प्रजापति के व्रतको करता है;। अर्थात् श्रुति सिद्धान्तप्रमाण जो प्रसिद्ध गृहस्थहै सो तिस ऋतुकालविषे कि श्रुतिशास्त्राचार्योंने नियम किया है, स्त्रीसहगमनरूप प्रजापति नामक व्रत तिसको करते हैं) । ते मिथुन मुत्पादयन्ते । (सो दोको उपजावते हैं; ९ अर्थात् जो पुरुष उक्तलक्षणवाले प्रजापति के व्रतको करते हैं सो पुत्रअरु पुत्रीरूप जोड़ेको उपजावते हैं । यहउनको दृष्टफल है । अरु चन्द्रमण्डलरूप ब्रह्मलोकउनको अदृष्टफलहै॥ प्र० ॥ हेभगवन् जब केवल ऋतुकालमें भार्यागमनरूप प्रजापति व्रत के आचरण मात्रसेही चन्द्रमंडलरूप अदृष्ट फलकी प्राप्तिहोती है तब इसव्रतवाले जो मूर्ख पुरुष हैं कि जो तपादिक नहींजानते तिनकोभी उक्तफलकी प्राप्तिहोगी ॥ उ० ॥ हे सौम्य तपादि

तद्येह तत्प्रजापति व्रतंचरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषांतपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् १५ ॥

साधन रहित केवलयथाविधि ऋतुकाल में भार्यागमन मात्र प्रजापति व्रतके करने से चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं किन्तु । तेषा मेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यंयेषु सत्यं प्रतिष्ठितम् । < जिनकोतप ब्रह्मचर्य्य है अरु जिनबिषे सत्य वर्त्तता है तिनकोही यहब्रह्मलोक है > अर्थात् जिनपुरुषोंको कृच्छ्रादि तप, बारहवर्षतक पढ़ेहुये वेदकी समाप्तिरूप स्नातक व्रतादि> अरु ऋतुकाल बिषे अरु अन्यकालबिषे मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य्य है । अरु जिनबिषे मिथ्याभाषणका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारतासे वर्त्तता है । अर्थात् जो गृहस्थ पुरुष यथासमय कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तपको करते हैं अरु परस्त्री गमन के त्यागपूर्वक केवल ऋतुकालमेंही स्वभार्या गमनरूप ब्रह्मचर्यको करते हैं अरु जिनबिषे असत्य भाषण का त्यागरूप सत्य निरन्तर वर्त्तता है । ऐसे जे इष्टापूर्त्तादि धर्माचरण पूर्वक प्रजापति व्रतरूप दक्षिणायन मार्गके चलनेवाले पुरुषहैं तिनहीं को यहचन्द्रमंडल बिषे पितृयानरूप ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अदृष्टफलहै १५ ॥

१६ ॥ हे सौम्य अब और श्रवण करो जो शुद्ध है अर्थात् चन्द्रमा के ब्रह्मलोकवत् मलसहित अरु वृद्धिक्षयादिक दोषकरके युक्तनहीं अरुसूर्य्यकरके उपलक्षित उत्तरायणरूप प्राणकाआत्मभाव, अर्थात् सो सर्वका भोक्ता प्रजापति प्राणमैंहों ऐसाभाव है यह तिनका है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् यह किनका है ॥ उ० ॥ हे सौम्य । न येषु जिह्ममनृतं न मायाच । < जिन बिषे कुटिल भाव अरु असत्यनहीं पुनः मायानहीं > अर्थात् जैसे गृहस्थ पुरुषोंको अनेक विरुद्ध व्यवहारिक प्रयोजनवाला होनेसे कुटिल

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न मायाचेति १६ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गत प्रथमप्रश्नः १ ॥

भाव अवश्य होताहै तैसे जिनपुरुषों बिषे कुटिलभाव नहीं। अरु जैसे गृहस्थ पुरुषको क्रीड़ा (रमण) हास्यादि व्यवहारके समय असत्यभाषण निषेध करनेयोग्य नहीं। तैसे जिनपुरुषों बिषे क्रीड़ाआदिक व्यवहार के अभावसे सो तन्निमित्तक असत्य भी नहीं अरु जिनपुरुषों बिषे गृहस्थोवत् माया अर्थात् कपट अथवा असत्यादि दोषोंवत् अन्य दोषनहीं। हेसौम्य इसप्रकार जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ अरु संन्यासीरूप १ [यहां संन्यासीपद करके परमहंसों से इतर जे कुटीचक बहुदकादि हैं तिन्हों का ग्रहण है क्योंकि उन परमहंसोंको ब्रह्मलोकसे भी अशेष वैराग्य है ताते] १ अधिकारियों बिषे क्रीड़ादि निमित्तों के अभाव सें असत्यादि दोष नहीं १ । तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको । २ तिन का यह निर्मल ब्रह्मलोक है ; १ अर्थात् जिनपुरुषोंमें क्रीड़ादि निमित्तके अभावसे असत्यादि दोषोंका भी अभावहै तिनपुरुषों का निर्मल साधनोंके अनुसार यह रजतमादि दोषरहित निर्मल ब्रह्मलोकहै। इति। २ ऐसी १ यह प्राणादिकोंकी उपासनासहित इष्टापूर्त्तादिकर्म करनेवालेकी उत्तरायणरूप गति है अरु पूर्वकहा जो चन्द्रलोकरूपी ब्रह्मलोककी प्राप्ति सो केवल कर्मके करने वाले जनोंकी दक्षिणायन गतिहै १६ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गतप्रथमप्रश्नःभाषाटीकासमाप्त ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीयप्रश्नः ॥

ॐ अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भग
कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशय
कः पुन रेषां वरिष्ठ इति १ । १७ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीय प्रश्न ॥ भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य [अब यहांसे अन्य द्वितीय अरु तृतीय इ
प्रश्नोंके कहेहुये प्रथमप्रश्नसे जो सम्बन्धहै सोकहते हैं । प्रथम
विषे प्राणको भोक्ता अरु प्रजापति कहाहै तहां प्राणको जे श्रेष्ठ
भोक्तापना प्रजापतित्वपना कहाहै तिन आदिगुणोंके निर्धार
यह द्वितीय प्रश्नहै क्योंकि । अत्ता विश्वस्य सत्पतिः । ? भ
जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पतिहै › ऐसा इस द्वितीय प्रश्नके ११
वें वाक्यसे कहाहै, अरु । एषोऽग्निस्तपति । ? यह अग्निरूप
हुआ तपताहै › यह इस द्वितीय प्रश्नके पांचवें वाक्यसे आरंभ
करके । अराइव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितं । ? रथकी नाभि
विषे अराओंवत् प्राणविषे सर्व यह स्थितहै ‹ इस षष्ठवाक्यसे
अरु । प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे । प्रजापतिरूप
तूही गर्भविषे विचरताहै अरु माता पिताके तुल्यहुआ जन्मता है
इस सप्तमवाक्यसे प्राणको प्रजापति आदि प्रतिपादन कियाहै
ताते प्राणका प्रजापतित्वपना अरु अन्नका भोक्तापना निश्चय
करने योग्यही है । अरु यह प्रजापतिपनेका अरु भोक्तापनेका
जो कथनहै सो प्राणके अन्य गुणोंका उपलक्षणहै । यहां यह भाव
है कि प्रथम प्रश्नविषे कहीगई जे कर्म उपासनाकी गति तिसके
श्रवणसे वैराग्यशीलभये पुरुषकोभी चित्तकी एकाग्रता (वृत्तियों
का निरोध) भये बिना आगे आत्मतत्त्वके श्रवणकीअसिद्धता है

तातें उनपुरुषों के अर्थ प्राणकी उपासनाके लिये अब द्वितीय अरु तृतीय इन दोनों प्रश्नोंका आरंभहै। तिनमें भी प्राणके ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपने अरु भोक्तापनेके अरु प्रजापति आदि गुणोंके निर्णयार्थ द्वितीयप्रश्नहै। अरु तिस प्राणकी उत्पत्त्यादिकोंके निर्णय पूर्वकतिसकी उपासनाकेबिधानार्थतृतीयप्रश्नहै यहभीजानना]॥

१॥ हे सौम्य प्रथम प्रश्नविषे । प्राणोऽत्ता प्रजापतिः । ऐसा कहाहै । तातें अब उस प्राणका भोक्तापना अरु प्रजापतिपना यह दोनों इसही शरीरविषे निश्चयकरनेको योग्यहैं इस अर्थके जतावनेके अर्थ इस द्वितीय प्रश्नका आरंभकरते हैं । अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ । । अनन्तर इसको निश्चयकरके बिदर्भ देशका निवासी भार्गव प्रसिद्ध पूछताभया । अर्थात् कबन्धीमुनि के प्रश्न समाप्तहोनेके पश्चात् इस सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनिको उनकेबाक्यमें निश्चय पूर्वक विदर्भदेशका निवासी भार्गवनामवालामुनि सर्वमें प्रसिद्ध जे प्राण तिसविषयक प्रश्नकरता भया कि । भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते । । हेभगवन् कितनेही देवता प्रजाको विशेष करके धारणकरे हैं । अर्थात् हे भगवन् आकाशादि पांच भूत अरु चक्षुरादि पांच ज्ञानेंद्रियां अरु वागादि पांच कर्मेंद्रियां अरु मन अरु प्राण यह सप्तदशतत्त्वात्मक लिंगाभिमानि प्रत्येक तत्त्वके मिलके सप्तदश देवताहैं तिन बिषे कितने देवता इन शरीररूप प्रजाको । [यहां प्रजा शब्दका अर्थ शरीरही ग्रहणकरने योग्यहै जीव नहीं क्योंकि जीवको प्राणधारित्वपनाहै एतदर्थ प्राण इन्द्रियां करके जीव धारणकरने योग्य नहीं तातें यहां प्राणकरके धारणकरने योग्य शरीररूप प्रजाहीहै] । धारतेहैं । अरु । । कतरएतत् प्रकाशयन्ते । । कितने इसको प्रकाश करते हैं । । अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेंद्रिय करके पृथक् २ भावको प्राप्तभये जे देवता तिनके मध्यकौनसे देवता इस अपने माहात्म्य के प्रकटकरने रूप प्रकाशको करते हैं अर्थात् [। पाकंपचतीति । । पाकको पचता है । तद्वत् अव-

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम २ । १८ ॥

काशके देने आदिक अरु अवलोकन आदिक जो आकाशादि भूतों का अरु इन्द्रियरूप देवताओंका जो अपना अपना माहात्म्य है तिसको लोकों विषे प्रकटकरने रूप प्रकाशको कौनसे देवता करते हैं] अरु । कः पुनरेषां वरिष्ठ इति । (पुनः इनके मध्यश्रेष्ठ कौनहै;) फेरइनकार्य करणरूप पूर्वोक्त सप्तदश देवताओंके मध्य अतिशय कीर्त्तिवाला अरुश्रेष्ठ देवकौन है १ । १७ ॥

२ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब पिप्पलाद मुनि से प्रश्नकिया तब । तस्मै स होवाच । (तिसको सो स्पष्ट कहतेभये) अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता भार्गवमुनिके अर्थ सो पिप्पलादनामा मुनीश्वर आचार्य प्रसिद्ध कहते भये कि हे भार्गव । आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । (आकाश प्रसिद्ध यह देवहै वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, (यह देवहैं)) अर्थात् आकाश प्रसिद्ध यह देवहै [यहां यह देव ऐसा जो कहाहै सो आगे कहनेके कथन आदि व्यवहार की सिद्ध्यर्थ अरु चेतनपने की (यहचेतनहै) इस) सम्भावनाके अर्थ यहां । देव । विशेषणहै । अरु, देव, इस पदसे जो अभिमानी का कथन है सो तो आकाशादिकों के अभिमानी देवताओं के ग्रहणार्थहै अन्य देवताओं के ग्रहणार्थ नहीं । तातें यहां । देव । इस विशेषण का वायु आदिकों से भी सम्बन्ध है] वायुदेवहै, अग्नि देवहै जल देवहै, पृथिवी देवहै, वाणी उपलक्षणकरके पांच कर्मेन्द्रियां देवहैं, मन उपलक्षण करके वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण देवहै चक्षु अरु श्रोत्र इन उपलक्षणकरके पांच ज्ञानेंद्रियां यहदेवहैं; । अर्थात् शरीर को आरम्भ करनेवाले आकाशादि पांच भूत अरु वाणी अरु मन अरु चक्षु अरु श्रोत्र इत्यादि सर्व ज्ञानेन्द्रियां अरु

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मामोहमापद्यथाऽहमेवैतत्पञ्चधाऽऽत्मानंप्रविभज्यै तद्बाणमवष्टभ्यविधारयामीति ३ । १९ ॥

कर्मेंद्रियां अरु अन्तःकरणरूप,देव, शरीर को धारण करतेहैं, तिन देवताओं के मध्य पांच कर्मेंद्रियां अरु पांच ज्ञानेन्द्रियांरूप जो देवहैं सो अपने माहात्म्य को प्रकटकरनेरूप (दर्शनश्रवणादि रूप) कार्यको करतेहैं। अरु कार्यरूपदेव अरु करणरूपदेव अर्थात् [देहाकारसे परिणाम को प्राप्तभये जे आकाशादिपञ्च महाभूत सो कार्यरूप देवताहैं अरु ज्ञानेंद्रियां अरु कर्मेंद्रियां यह करणरूप देवहैं]। ते प्रकाश्याभिवदन्ति । < सो देव प्रकाशकरके कहते भये > अर्थात् सो देव अपने माहात्म्यको प्रकाशकरके अपने बिषे श्रेष्ठत्वका अभिमानकरके परस्पर ईर्षाको करतेहुये कहते भये ॥ प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ । वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम २ । < हम इस शरीर को अशिथिलकरके स्पष्ट धारतेहैं > (ऐसे कहते भये) अर्थात् जैसे प्रासाद (बडेऊँचेगृह) को स्तम्भ धारतेहैं तैसे हम इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिलकिये विनाही स्पष्ट धारतेहैं, इसप्रकार अपने २ बिषे महत्वपनेका अभिमानकरके इन्द्रियरूप देवतापरस्पर कहते भये २ । १८ ॥ हे सौम्य इन्द्रियों का परस्पर अरु प्राणका जो सम्बाद अरु प्राणको सर्वमें ज्येष्ठ श्रेष्ठपना यह छान्दोग्य उपनिषद्के चतुर्थ प्रपाठक में एक आख्यायिकारूपसे सविस्तर कहाहै ॥ ३ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार साभिमानहुये अपने २ श्रेष्ठत्वके अर्थ ईर्षापूर्वक परस्पर में विवादकरते जे देवता । तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । < तिनको मुख्य प्राण कहताभया > अर्थात् तिन असत्य अभिमान करनेवाले इन्द्रियांरूप देवोंको सर्वमें मुख्यदेव जो प्राण सो कहताभया कि < । मा मोहमापद्यथा । < मोहको मत प्राप्तहो > अविवेकता के वश भये इस असत्य अभिमानको

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रातिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रश्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ४ । २० ॥

मतकरो । देखो १ । अहमेवैतत् पंचधाऽऽत्मानं प्रविभज्य । (मैंही इस अपने आपको पांच प्रकारसे विभागकरके ; मैंही इस अपने आपको, अपानादि भेदसे पांच प्रकार होयके २ । एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति ३ । (इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्टधारता हों ; ऽ इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिल न करके स्पष्ट धारताहों ताते तुम व्यर्थ अभिमान मतकरो ३ । १९ ॥

४ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्राणने सर्व इन्द्रियोंसे कहा तब । ते अश्रद्दधाना बभूवुः । (वे अश्रद्धावान् होते भये ; अर्थात् सो इन्द्रियरूप देवता विचारकरतेभये कि जो यह प्राण कहताहै कि मैं पांचप्रकार होयके इस शरीरको धारता हौं सो असंभवहै । इसप्रकार प्राणके वाक्यमें अविश्वासवान् होते भये तब १ । सोभिमाना दूर्द्धमुत्क्रमत इव । (सो अभिमान से ऊंचे गमनकरतेहुयेवत् अर्थात् सो प्राण तिन इन्द्रियरूप देवतोंके अपनेवाक्यमें अविश्वासको देख आप अभिमानसे ऊंचे को जातेहुयेवत् होताभया अर्थात् रोष (क्रोध) सहित इन्द्रियों की अपेक्षासे रहितहुआ इस संघातरूप शरीरको त्यागताभया हे सौम्य उक्तप्रकार इस शरीरसे प्राणके निकसजानेसे जो वृत्तान्तहुआ तिसको अब वेद दृष्टान्तसे स्पष्ट करे हैं । तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते । (तिसके निकसनेसे पीछे अन्य सर्वही जाते भये पुनः तिसके स्थितहुये सर्वही स्थितहोतेभये (अर्थात् तिस

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायु रेष पृथिवी । रयिर्देवः सदसच्चाऽमृतञ्चयत् ५ । २१ ॥

प्राणके शरीरसे निकसने पीछे और सर्वे चक्षुरादि इन्द्रियां भी जातेभये अरु पुनः तिस प्राणके तूष्णीं (चुप) होके बैठनेसे सर्वेही तूष्णीहोके बैठतेभये ॥ दृष्टान्त । यथा मक्षिका मधुकर राजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते । १ जैसे मक्षिका मधुकर राजाके निकसिजानेसे सर्वेही निकलजाते हैं २ अर्थात् जैसे मधु (सहत) की मक्खी अपने राजा मक्खीके निकलजानेसे सर्वे-ही उस स्थानको त्यागके निकलजाती हैं । अरु । तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त । १ तिसके स्थित हुये सर्वेही स्थित होते हैं २ अर्थात् तिस मधुकरराजा मक्खीके स्थितहुये अन्य सर्व मक्खी स्थित होती हैं । हे सौम्य जैसे यह उक्त दृष्टा-न्तहै । एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ४ । १ ऐसे बाणी (कर्मेंद्रियां) मन, चक्षु अरु श्रोत्र, (ज्ञाने-न्द्रियां) सो प्रीतिसे प्राणकी स्तुतिकरतेभये २ अर्थात् उक्त दृष्टा-न्तप्रमाण वाणी मन चक्षु आदि सर्व इन्द्रियांरूप देव प्राणके माहात्म्यको जान तिस बिषे प्रतीतवान् होय अपने असत्य महत्त्वके अभिमान को त्याग प्रसन्नता पूर्वकप्राणकी स्तुति करते भये ४ । २० ॥

५ ॥ हे सौम्य इन्द्रियां कहतीहैं कि । एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो । १ यह अग्नि हुआ तपताहै यह सूर्य्यहै यह मेघहै २ अर्थात् यह प्राण अग्निरूपहुआ तपताहै, तैसे यह सूर्य्यरूपहुआ प्रकाशताहै, तैसे यह मेघरूपहुआ वर्षाकरताहै । अरु । १ मघवा नेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्चयत् ५ । १ यह इंद्र है यह वायु है, यह पृथिवी है, यह चन्द्रदेवहै, सत्, असत्, अरु अमृत जो है, (सो सर्व प्राणही है) २ यह इन्द्रहोयके प्रजाका पालन करताहै, अरु असुर राक्षसोंका नाश करताहै, अरु यह

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ६ । २२ ॥

आवह (उड़ायके लेजानेवाला) अरु प्रवाह (वेगसे चलनेवाला) आदिक सात गुणोंके भेदसे भेदवाला हुआ वायु मेघ अरु नक्षत्रादिकों को भ्रमावताहै, अरु यह पृथिवीरूपहोके सर्वको धारताहै । अरु यह देव चन्द्रमाहोयके ओषधि आदिकोंका पोषण करताहै । हे सौम्य विशेष क्या कहिये सत् कहिये सूक्ष्म अमूर्त्त अरु असत् कहिये स्थूल मूर्त्त अरु देवताओं की स्थितिका कारणभूत जो अमृत है सो भी प्राणही है ५ । २१ ॥

६ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियांरूप देवता विचार करत्ते भये कि । अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । (रथकी नाभिविषे अरान्वत् प्राण विषे सर्व स्थितहै ; अर्थात् जैसे रथकेचक्र(पहिया) के मध्य काष्ठको रथनाभि कहतेहैं तिसविषे अरा (खड़ीलकड़ियां) स्थित होतीहैं । तैसे इस उपनिषद् के षष्ठ प्रश्नके । प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिः । इत्यादि । (प्राणसे श्रद्धा आकाश वायु तेज) इत्यादिको को सृजताभया इस चतुर्थवाक्य प्रमाण श्रद्धा आदिले नामपर्यंत सर्वका संघातरूप शरीर अपनी स्थितिकालमें प्राणविषे स्थितहै । अरु तैसेही । ऋचोयजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ६ । (ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अरु यज्ञ क्षत्रिय अरु ब्राह्मण ; अर्थात् जैसे श्रद्धा आदिक कलाप्राणविषे स्थितहैं, तैसे ऋग् यजु साम यह तीनि वेदके तीनि प्रकारके मन्त्र, अरु तिन मन्त्रों करके साधने योग्य अश्वमेधादि यज्ञ, अरु सर्वके पालन कर्त्ता अरु दंडके दाता क्षत्रिय जाति राजा, अरु यज्ञादिक वैदिक कर्मोंके कर्त्ताओंमें मुख्य अधिकारी सर्वोत्तम ब्राह्मणजाति, यह सर्व प्राणके आश्रय होनेसे प्राणही है ६ । २२ ॥

७ ॥ हे सौम्य दो मन्त्रसे कहेप्रकार विचारके सर्व इन्द्रियां प्राणकी स्तुति करती भई । प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति-

प्रजापतिश्चरसि गर्भेत्वमेव प्रतिजायसे तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमाबलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ७।२३॥

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा। ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ८।२४॥

जायसे।६ जो प्रजापतिहै सो तूही है गर्भबिषे बिचरताहै अरु सदृशहुआ जन्मताहै ६ अर्थात् कहतीभई कि हे प्राण जो सर्व का प्रजापतिहै सोभी तूही है अरु पिताके गर्भमें वीर्य रूपसे अरु माताके गर्भबिषे पुत्ररूपसे जो बिचरताहै अरु जो माता पिता केही सदृशहुआ जन्मताहै सो तूही जन्मताहै, अर्थात् हे प्राण तुझको सर्वरूप प्रजापति होनेसे तेरा मातापितापना प्रथमही सिद्धहै, एतदर्थ तू सर्व देह अरु सर्व देह वालोंके आकारोंसे ढकाहुआ एक प्राणरूप सर्वात्माहै। अरु ७। तुभ्यंप्राणः प्रजास्त्विमाबलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ७।८ हे प्राण यह प्रजा तो तेरेअर्थ बलि देते हैं जो प्राणोंकेसाथ सर्व शरीरोंप्रति स्थितहै ७। हे प्राण यह मनुष्यादि सर्व प्रजा सो चक्षुरादिद्वारा रूपादि बिषयरूप बलिदान (कर) तेरेही अर्थ देते हैं, क्योंकि जो तू चक्षुरादि इन्द्रियों साथ मिलके अरु उन सर्वको अपने आश्रय धारके सर्वका भोक्ताहुआ सर्व शरीरों बिषे स्थितहै, एतदर्थसर्व तेरेही अर्थ बलिदान (कर) देतेहैं। इतिसिद्धम् ७।२३॥

८॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि हे प्राण। देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा।८ देवताओंके मध्य वह्नितमहै पितृओंकी प्रथम स्वधाहै ९ अर्थात् इन्द्रादि देवताओंके मध्य तू, वह्नितम, कहिये अतिशयकरके हवनकिये द्रव्यों को प्राप्तकरनेवालाहै। अरु पितृओंके नांदीमुखश्राद्ध बिषे (जो कि शुभकार्यमें होताहै) जो स्वधारूप मन्त्रहै सो देवताओंके निमित्त हवनद्रव्य देनेसे प्रथम होताहै एतदर्थ पितृ-

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः ९ । २५ ॥

ओंके अर्थ प्रथम जो स्वधा सो तू है । अर्थात् पितृओंके अर्थ स्वधान्नका प्राप्तकरनेवाला तू है । अरु । ऋषिणाञ्चरितंसत्य मथर्वांगिरसामसि । (इन्द्रियोंका अंगिरसरूप अथर्वणनाम वाले (भये) ऋषियो (इन्द्रियों) का चरितसत्य (तूहीहै ;) अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियरूप अंगिरस ([अथर्वण नामवाले हुयेभी उन ऋषियोंका [अर्थात् „ऋष„ जो धातुहै सो गति (ज्ञान) रूप अर्थ विषे वर्त्तता है । एतदर्थ ऋषिपदका ज्ञानके जनक चक्षुरादिक इन्द्रियरूप अर्थ है अरु इन्द्रियरूप प्राणके अभावहुये अंगों के रसका शोषणहोता देखने से उन इन्द्रियरूप प्राणोंको अंगिरसपना है । अरु । प्राणो वा अथर्वाइति श्रुतिः । (प्राण वा अथर्वा है (इस श्रुतिके प्रमाणसे तिन इन्द्रियोंको अथर्वापना है । यद्यपि मुख्यप्राणका अथर्वापना श्रुतिने कहाहै, तथापि चक्षुरादि इन्द्रियों को भी उस मुख्यप्राण के अंशरूप होनेसे अथर्व शब्दका अर्थवान् ,यहबहुतपना है; [इतिभावः] चरित अरु देह धारणादिक विषे उपकारकरनेरूप सत्यतूही है ८ । २४ ॥

९ ॥ हे सौम्यपुनः इन्द्रियां कहतीभई कि । इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । (हे प्राण इन्द्र तू है, रुद्र तू है, रक्षाकरने वाला तू है (अर्थात् हे प्राण वीर्य (सामर्थ्य) करके इन्द्र (परमेश्वर) तू है, अथवा (हे प्राण अपने सामर्थ्यकरके सर्व देवताओं का अधिपति इन्द्र तू है) अरु संहारकरने के सामर्थ्य से जगत् का हरण करनेवाला रूप तूहीहै, अरु स्थितिकाल विषे सौम्य रूपहुआ जगत्का पालक विष्णु भी तूही है । अरु । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः ९ । (तू अन्तरिक्षविषे विचरता है (अरु) ज्योतियों का पति सूर्य्य तू ही है) अन्तरिक्षादि आकाश विषे निरन्तर विचरनेवाला तूही है । अरु उदय अरु

यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणतेप्रजाः।आनन्दरूपा तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति १०॥

अस्तहोनेवाले सर्व ज्योतिगणों का अधिपति सूर्य तूही है ॥ इति सिद्धम् ९ । २५ ॥

१० ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहती भई कि । हे प्राण । यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः । (जब तू बर्षता है तब यह प्रजा प्राणकी (चेष्टाकरे है)) अर्थात् जब तू मेघहोयके बर्षाकरता है तब अन्नको पायके यह प्रजा प्राणकी चेष्टाकोकरे है । अथवा । यदा त्वमभि वर्षस्यथेमाः प्रजाः । (हे प्राण तेरी यह प्रजा तेरे अन्नसे वृद्धिको पाईहुई अरु तेरी बर्षाके देखनेमात्रसेही) । आनन्दरूपा तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति १० । (आनन्दरूप स्थितहै यथेष्ट अन्नहोगा) आनन्दको प्राप्त भये स्थितहै, क्योंकि यथेष्ट (इच्छाके अनुसार) अन्नहोगा ॥ ऐसा तिसबर्षाके देखनेवाली प्रजाका अभिप्रायहै ॥ इति सिद्धम् १० । २६ ॥

११ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहतीभई कि । व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः । (हे प्राण व्रात्य तू है एकर्षिहुआ भोक्ता तू है) अर्थात् हे प्राण । एतस्माज्जायते प्राणः । तुझको प्रथम उत्पन्न होनेसे तुझसे पूर्व तेरा संस्कार करनेवाला अन्य कोई नहीं ताते तू संस्कार रहित व्रात्य (असंस्कारी) है अरु (जो ऐसाकहे कि जिससे प्राण उत्पन्नभयाहै सोई उसका संस्कार करनेवालाहै सो बनेनहीं क्योंकि जिस आत्मासे प्राण उत्पन्नभयाहै सो अक्रियहै) । अरु । एकऋषिरत्ता । (एकर्षिहुआ भोक्ता तू है) अर्थात् एकर्षिनामवाला अग्निरूपहुआ सर्व हविषादिकोंका भोक्ता तू है । अरु । विश्वस्य सत्पतिः । (विश्वका सत्यपति तू है) अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का प्रत्यक्ष विद्यमान पति तू है । अथवा विश्वका श्रेष्ठपति तू है । अरु । वयमाद्यस्य

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः । व
यमाद्यस्यदातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ११ । २७ ॥
याते तनूर्वाचि प्रतिष्ठितायाश्रोत्रे याचक्षुषि ।
याचमनसिसन्तताशिवां तांकुरुमोत्क्रमीः १२ । २८ ॥

दातारः । ८ हम भक्षणके दाताहैं ; अर्थात् हम कर्मी उपासक लोग तेरे भक्षणके योग्य हविषा (हवनकरनेयोग्य बस्तु)के दाता हैं। अरु । पिता त्वं मातरिश्वनः ११ । ८ हे बायो तू पिताहै ; अर्थात् हे अन्तरिक्षमें चलनेवाले वायु (प्राण) तू हमारा पिता है । अथवा तू वायुका पिताहै, एतदर्थ तुझको सर्व जगत्का पितत्य सिद्धहै ८ क्योंकि तू आकाशरूप हुआ वायुआदि अस्मदादिकोंका जनकहै ताते ११ । २७ ॥

१२ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि विशेष कहने करके क्या है। हे प्राण । या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता । ८ जो तेरी तनूवाणीबिषे स्थित है ; अर्थात् जो तेरी [अपानरूप] मूर्त्तिवक्ता (कहनेवाली) होनेसेवक्तृत्वरूप चेष्टा करतीहुई वाणीरूप स्थानविषे स्थित है । अरु । या श्रोत्रे या चक्षुषि । ८ जो श्रोत्र बिषे जो चक्षुबिषे ; जो तेरी [व्यानरूप] मूर्त्ति श्रोता होने से श्रवणरूप चेष्टाको करती हुई श्रोत्रबिषे स्थितहै । अरुजो तेरी [प्राणरूप] मूर्त्ति द्रष्टाहोनेसे दर्शनरूप चेष्टाको करतीहुई चक्षुबिषे स्थित है । अरु । याचमनसिसन्तता । ८ पुनः जो मन बिषे (स्थितहै) तिसको शान्तकर ; फेर जो तेरी [समानरूप] मर्त्तिमन्ता होनेसे संकल्पादि व्यापारको करती हुई मनबिषे स्थित है तिसको तू शान्तकर । अरु । शिवांतां कुरुमोत्क्रमीः । ८ निकसनेसे अमंगल मतिकरे ; तू अपने निकलजानेसे इन स्थानों को अमंगल (निकम्बे) मतकर ॥ । सप्राणस्तच्चक्षु सव्यानस्तच्छ्रोत्रंसोऽपानः सावाक् ससमानस्तन्मन इतिश्रुते । १२ । २८ ॥

प्राणस्येदंवशेसर्वंत्रिदिवेयत्प्रतिष्ठितम् । मातेव पुत्रान्रक्षस्वश्रीश्चप्रज्ञाश्चविधेहिन इति ॥ १३ । २९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि द्वितीय प्रश्नः २ ॥

---

१३ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां परस्परमें कहती भई कि अब बहुत कहनेसे क्या है । प्राणस्येदंवशेसर्वं । ; यहसर्व प्राणकेवश है ; अर्थात् इस लोकबिषे यह जो कुछ प्रत्यक्ष उपभोग प्रकटहै सो सर्व प्राणकेही बशमें वर्त्तता है । अरु । त्रिदिवेयत् प्रतिष्ठितम् । ; स्वर्गबिषे जो स्थित है ; अर्थात् इसलोककी अपेक्षा अदृष्ट जो स्वर्गबिषे देवतादिकोंका अमृतादि उपभोगरूप जगत् है तिसका भी पालक प्राणही है । हे सौम्य इस प्रकार विचार के इन्द्रियां पुनःकहती भईं कि हे सर्व में श्रेष्ठ सर्वके पालक प्राण । मातेवपुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहिन इति १३ । ; मातावत् पुत्रोंका पालनकर अरु लक्ष्मीको अरुबुद्धिको हमारे अर्थ दे ; अर्थात् तू जैसे माता अपने आश्रित बालकोंका पालन रक्षा करे है तैसेही तेरेही आश्रित जो हम तिन अपने पुत्रोंकी रक्षाकर । अरु ऋगादि वेदविद्या रूपी ब्राह्मणोंकी ब्राह्मी लक्ष्मी है सो अरु प्रसिद्ध द्रव्य रत्नक्षेत्रादि ऐश्वर्य रूपा क्षत्रियों की लक्ष्मी, यह दोनों लक्ष्मीयोंकरके, अरु तेरी स्थितिरूप निमित्तवाली अर्थात् जिस बुद्धिके होने से इस संघातरूप शरीर बिषे तेरी स्थिति रहै ऐसी बुद्धि को हमारे अर्थ दे हे सौम्य इस द्वितीय प्रश्न करके निर्धार किये प्राण के गुण संक्षेप मात्रसे प्रतिपादन किये हैं इस रीतिसे सर्वरूप जो प्राणहै सो वाक्आदि इन्द्रियों करके स्तुतिकरनेद्वारा प्रकट भई जोउस की महिमा तिस महिमावाला है अरु सोई प्रजापति हैं । इति निश्चितम् १३ । २९ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गतद्वितीयप्रश्नःभाषाटीकासमाप्ता ॥

अथप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नः ॥

अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुतएष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीरेआत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथंबाह्यमाभिधत्ते कथमध्यात्ममिति १ । ३० ॥

अथप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नभाषाटीका प्रारभ्यते ३ ॥

हेसौम्य पूर्वोक्तप्रकार इन्द्रियों करके की हुई स्तुतिद्वाराप्राण का प्रजापति पना अरु भोक्तापना आदिक गुणों के समुदायका निर्धारकरके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकों का निर्णय करतेहुये तिसकी उपासनाकेविधानार्थ इसतृतीयप्रश्नका आरंभकरतेहैं ॥

१ ॥ हे सौम्य । अथ हैनं कौशल्यश्चा श्वलायनः पप्रच्छ । (तिसके अनन्तर इसको अश्वलका पुत्र कौशल्य नामवाला मुनि पूछताभया; अर्थात् कबन्धीमुनि अरु भार्गवमुनिके दोप्रश्नोंद्वारा प्राणके प्रजापतित्व आदि गुणों के निर्धार होने के अनन्तर, इस पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्य को अश्वलमुनिकापुत्र कौशल्य नामवाला मुनि प्रश्नकरताभया कि । भगवन् कुत एष प्राणो जायते । (हे भगवन् यह प्राण किससे उपजताहै) अर्थात् हे भगवन् हे सर्वज्ञ यह प्राण कि जिसकी महिमा आपने दो प्रश्नोंके उत्तर करके निर्धारित किया, सो किसकारण से उपजता है। अरु (। कथमायात्यस्मिञ्छरीरे । (कैसे इस शरीरविषे आवताहै) अर्थात् उपजाभया किसप्रकार इसशरीरविषे आवताहै, अर्थात् प्राणको शरीर धारणका निमित्त कौनहै। अरु । आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । (अपने आपका विभागकरके कैसे स्थित होताहै) एक अपने आपको कईएक विभागकरके किस

तस्मै सहोवाचाति प्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्रवीमीति २। ३१॥

प्रकार से स्थित होताहै। अरु ९। केनोत्क्रमते। ८ किसकरके निकसताहै ९ ८ किस वृत्ति विशेषकरके इस शरीरसे निकसताहै। अरु ९। कथंबाह्य मभिधत्ते। ८ बाह्यको कैसे धारताहै ९ ८ बाह्यजो अधिभूत अरु अधिदैव तिसको कैसे धारताहै, अर्थात् [प्राणादि पांचवृत्ति भेदवाले प्राणका सूर्य अरु पृथिवी आदि पांचभूत अधिदैव अरु चक्षुरादि पांच इन्द्रियां अधिभूतरूप बाह्यहैं] तिसको यह प्राण कैसे धारताहै। अरु ९। कथमध्यात्मामिति। ८ अध्यात्म को कैसे धारताहै ९ ८ अध्यात्मको किसप्रकार धारण करताहै [प्राणादिरूप अन्तर्वर्त्ति जो प्राणकी पांच वृत्तियां हैं सो प्राणका अध्यात्मरूप है यह आगे कहेंगे] १। ३०॥

२॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब कौसल्य नामवाले मुनिने अपने आचार्यसे प्रश्नकिया तब। तस्मै स होवाच। ८ तिसको सो स्पष्ट कहताभया ९ अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता शिष्यको सो सर्वज्ञ पिप्पलादनाम मुनीश्वर स्पष्ट कहताभया कि ९। अति प्रश्नान् पृच्छसि। ८ अति प्रश्नोंको पूछताहै ९ ८ हे प्रश्नकर्त्ताओं में कुशल तू अति श्रेष्ठ प्रश्नोंको करताहै, क्योंकि प्रथम तो प्राणही दुर्विज्ञेय (दुःखसे जानने योग्य) है एतदर्थ उस विषयक जैसे कठिन प्रश्नहोय तैसेही करने योग्य हैं, एतदर्थ तू अति प्रश्नोंको पूछताहै। अरु ९। ब्रह्मिष्ठोसीति। ८ ब्रह्मनिष्ठहै ९ ८ एतदर्थही तू ब्रह्मवेत्ताहै ९। तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि २। ८ ताते मैं कहताहौं ९ ८ एतदर्थ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयाहौं तिसकारण से जो तैंने प्रश्न किये हैं तिनका उत्तर मैं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवण कर २। ३१॥

३॥ पिप्पलादउवाच॥ । आत्मनः एष प्राणो जायते। ८ आत्मा से यह प्राणउपजताहै ९ हे सौम्य अब प्रश्नकरनेवाले

आत्मनः एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्ने तदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ३ । ३२ ॥

कौसल्यनाम मुनि को पिप्पलाद मुनि कहतेभये कि हे कौसल्य (अप्राणोह्यमनःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः । एतस्माज्जायते प्राणो । जो प्राणमन आदि उपाधि रहित सदाशुद्ध कार्यकारण से परे अक्षर सत्य परमात्मा है तिससे यह सबमें श्रेष्ठप्राणउपजता है ॥ प्र० ॥ कैसे उपजता है ॥ उ० ॥ (यथैषा पुरुषेछायै तस्मिन्ने तदाततं ((जैसेपुरुष बिषेछाया तैसे तिसबिषे यहसमर्पण कियाहै) हे सौम्य जैसे मस्तक हस्तपादादि अवयवसमुदायरूप पुरुष निमित्त से नैमित्तिकी यहछाया उपजती है । तैसे ही तिस ब्रह्मरूप सत्य अक्षरपुरुषबिषे यहप्राणनामकरके छायस्थानीय मिथ्यारूपवाला तत्त्वसमर्पित है । अरु ((मनोकृते नायात्यस्मिञ्छरीरे ३ । (मनकरके किये कर्म निमित्तसे इस शरीर बिषे आवता है)) देह बिषे जो आवता है सो छायावत् मनके संकल्प इच्छादि वृत्तियों करके किये जे कर्म तिन कर्मरूप निमित्त से इस शरीरबिषे आवताहै (पुण्येनपुण्यं लोकंनयति ((पुण्यसे पुण्यलोकको लेजाताहै) । यहइसहीप्रश्नके सातवें वाक्यसे कहेंगे । अरु ((तदेव सक्तः सहकर्मणेति ((आसक्त हुआ तिसहीको सहित कर्मके पावताहै) अर्थात् यहकर्म करने वाले कर्मीपुरुषका मन जिसफल बिषे आसक्त होताहै तबतिस आसक्तताकरके वे पुरुष तिसही को , कि जिस बिषे आसक्त हैं, कर्मकरके पावते हैं । इसबृहदारण्यके छठे अध्याय की श्रुति बिषे शरीरों का ग्रहण कर्मोंकरकेही साध्यहै ऐसाकहाहै ३।३ २॥ ४ ॥ हे सौम्य पिप्पलाद मुनि कहताभया कि हे कौसल्यअब दृष्टान्तपूर्वक श्रवणकरो (यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुंक्ते ((जैसे चक्रवर्तीराजा निश्चय करके अधिकारियोंको योजना करताहै) अर्थात् जैसे कोईएकचक्रवर्तीराजा अपनेराज्यकेनिबन्धमेंकार्या-

यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुंक्ते एतान्ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठ स्वेत्येवमे वैष प्राणः इतरान्प्राणा नृपृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ४ । ३३ ॥

ध्यक्षताके योग्य पुरुषोंको निश्चय करके तब उन अधिकारी पुरुषोंको देश विभागसे योजना करताहै अरु कहताहै कि । एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्व । तुम एतने ग्रामके अरु तुम एतने ग्रामके अधिपति होयके स्थितहोउ । हे कार्य्याध्यक्षताके योग्य पुरुषो मेरी आज्ञासे तुम एतने ग्रामोंके मंडल देशके अरु तुम एतने ग्रामके मंडल देशके अधिपति होयके देशोंका रक्षण पालन सावधानीसे करते रहो ॥ हे सौम्य । इत्येवमेवैष प्राणः इतरान्प्राणान् पृथक् पृथगेवसन्निधत्ते । ऐसेही यह प्राण इतर प्राणोंको पृथक् पृथक्ही योजना करताहै । इस कहे हुये दृष्टांतके प्रमाण ही, यह जो मुख्य प्राणहै सो चक्षुरादि इन्द्रियरूप अन्य प्राणोंको नेत्रादि यथायोग्य स्थानबिषे दर्शनादि क्रिया करनेके अर्थ भिन्न२ अर्थात् एकका कामदूसरा न करे इस प्रकारसे योजना करता भया । अरु अपने अपानादि भेदरूप इतर प्राणोंको गुदादि स्थानोंबिषे मलत्यागादि क्रियाके अर्थ योजना करताहै ॥ ४ । ३३ ॥

५ ॥ हे सौम्य अब मुख्य प्राण अपने अपानादि भेदरूप पांच वायुको जिस २ कार्य्यके अर्थ जिन २ स्थानोंबिषे नियुक्त करता है तिसको श्रवणकरो । पायुपस्थेऽपानं । गुदा (अरु) लिंगबिषे अपानको । अर्थात् जो गुदाद्वारा मलको अरु लिंग द्वारा मूत्रको त्यागकरनेरूप क्रिया का कर्त्ता अपनाही भेदरूप अपान नामवाला वायु तिसको गुदा अरु लिंग बिषे उक्तकार्य करनेके अर्थ नियुक्त करता भया । अरु । चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणःस्वयं प्रातिष्ठिते । चक्षु (अरु) श्रोत्र मुख (अरु) नासिकाबिषे प्राणआप स्थितहोताहै । तिसही प्रकार दर्शनादि

पायुपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रेमुखनासिकाभ्यांप्राणः स्वयंप्रातिष्ठते मध्येतुसमानः । एषह्येतद्धुतमन्नं समन्न यति तस्मादेताः सप्तार्च्चिषोभवन्ति ५ । ३४ ॥

ज्ञान रूपाक्रियाको करता हुआ चक्षु श्रोत्र के कहनेसे ज्ञानेन्द्रियां मुखअरुनासिकासे आवागमन करताहुआ चक्रवर्ती राजास्थानी- य स्वयं (आप) प्राणस्थितहोताहै । अरु । मध्येतुसमानः । (मध्यबिषे तो समान (वायुहै)) अपना भेद समान वायु ति- सको प्राण अपानके मध्य नाभिरूप स्थानबिषे नियुक्त करताहै । अरु । एषह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति । (यहही इसभुक्तअन्नको लेजाता है) यहही वायु भोजन किये अन्नादिकों का रस जो उदरबिषे होता है तिसको सर्व नाड़ियों प्रति पृथक् २ सम (जि सका तिसको) लेजाता है एतदर्थ इसकोसमान नामसे कहते हैं । अरु । तस्मादेताः सप्तार्च्चिषो भवन्ति । (ताते इतनसात ज्वालावाला होता है) तिसकारणसे यह समान नामवाला वायुही इसमुखद्वारसे उदर कुंडबिषे हवन किये अन्नादिकोंके रसादिकों को प्रत्येक नाड़ियोंप्रति सम पहुँचावता है, एतदर्थ भोजनकिये अन्नादिकों के रसरूप समिधावाले जठराग्निरूप हेतुसे हृदयरूप देशसे यह सातसंख्यावाले मस्तकगत दो नेत्र, दो कर्णके, दो नासिकाके, एकमुखका, इनसातोंद्वार सम्बन्धी, ज्ञानरूप ज्वालावाला है ताते इसको । सप्तार्च्चिः । (सातअ- र्चीवाला) कहते हैं ॥ अभिप्राय यहहै कि प्राणकरकेही दर्शनश्रवण अरु रूपादि विषयों का प्रकाश होता है ५ । ३४ ॥

६ ॥ हे सौम्य पिप्पलाद मुनि कहते भये कि हे कौसल्य । हृदिह्येष आत्मा । (हृदय बिषे ही यहआत्मा है) अर्थात् कम- लाकारहृदय नाम करके विख्यात जो मांस पिंड तदन्तर्गत जे हृदयाकाश तिस बिषे, यह आत्मा करके सहितलिंग (जीव) आत्मा वर्त्तता है । अरु । अत्रैतदेकशतं नाडीनां । (यहां यह

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ६ । ३५ ॥

नाड़ियोंकी (संख्या) एकअधिक एकसौ है (१०१) यहांइसहृदय विषे मुख्य नाड़ियां संख्या (गिनती) करके एकऊपर एकसौ होती हैं। अरु ९ । तासां शतं शतमेकैकस्यां । ८ तिनके मध्य एक एकविषे सौ सौ भेदहैं । ७ तिन प्रत्येक मुख्यनाड़ी विषे सौ सौ भेदहैं । अरु ९ । द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाड़ीसहस्राणि भवन्ति । ४ प्रतिशाखारूप नाड़ीके (भेद) बहत्तर बहत्तर हजार होते हैं । ११ पुनः भी पृथक् पृथक् प्रतिशाखारूप नाड़ीके भेदरूप बहत्तर बहत्तरहजार नाड़ियां होती हैं । अर्थात् सुषुम्णा नामवाली एक मुख्य नाड़ीरूप मूल (पीड़) की स्कंधशाखा (सबसे पुष्ट शाखा) रूप सौ १०० संख्यावाली मुख्यनाड़ी हैं तिन प्रत्येककी शाखारूप जो सौसौ नाड़ियां हैं, तिन एक एक की उपशाखारूप नाड़ियोंकीसंख्या बहत्तर बहत्तरहजारहोतीहै । तातेसबमिलकेबहत्तर करोड़नाड़ीहैं [॥ हेसौम्य अब इनको पुनः श्रवण करो] [उक्त नाड़ियोंकी संख्याका जो वर्णनहै सो वृक्षरूपसे है, तहां हृदयकमलदेशसे जो निकलीहुई नाड़ियां हैं तिन के मध्य जोसुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी है सो मूल (पीड़) के स्थानापन्नहै, अरु तिसकी दश नाड़ियां स्कंध (पुष्ट शाखा) रूपहैं, अरु उन स्कंधरूप दश नाड़ियों मेंसे प्रत्येककी नव नव स्थूल शाखाहैं । एतदर्थ इसप्रकार होनेसे एकमूलकी सुषुम्णा नामवाली नाड़ीको छोड़के स्थूलशाखारूप नब्बे ९० नाड़ियां अरु दश स्कंधरूप शाखा यह सर्व मिलके एकसौ १०० संख्या की होती हैं । तिन सौ नाड़ियोंके मध्य एक एकनाड़ीकी शाखा रूप सौ सौ नाड़ियां और हैं । इसप्रकार होनेसे एक सुषुम्णा मुख्य नाड़ी है अरु सौ स्कंधरूप नाड़ियांहैं । अरु तिनकी शाखा

अथैकयोर्द्ध्व उदानःपुण्येन पुण्यंलोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ । ३६ ॥

रूपदशहजारनाड़ियांहैं तिनदशहजारनाड़ियोंमेंसे प्रत्येकनाड़ियों कीउपशाखारूप बहत्तरबहत्तरहजार७२०००नाड़ियांहैं॥हेसौम्य इसप्रकारहोनेसे बहत्तरहजार७२००० संख्याकोदशहजारसंख्या सेगुणाकरनेसे एकमूलकीसुषुम्णानाड़ीको छोड़ के बहत्तर करोड़ ७२००००००० नाड़ियां होती हैं इति ॥ । आसुव्यानश्चरति ६ । < तिसबिषे व्यानवायु विचरताहै > तिन सर्ब नाड़ियों बिषे एक व्याननामवाला बायु बिचरताहै . एतदर्थ इस प्राणके भेद वायुको सर्ब शरीर बिषे व्याप्तहोनेसे व्याननामकरके कहते हैं ॥ हे सौम्य जैसे सूर्य्यबिम्बसे किरण सर्ब ओरको निकलती हैं तैसे शरीरबिषे हृदयकमलसे सर्ब ओरको गमनकरनेवाली जो नाड़ियां तिनके सम्बन्धसे सर्बदेहमें व्याप्तहोके व्यानबायु वर्त्तता है । अरु स्कंध आदिक जो जो शरीरकी संधिके स्थान अरु मर्म स्थानहैं तिन तिनबिषे विशेषकरके बर्त्तताहै । अरु व्यान जो है सो प्राण अरु अपानरूप बृत्तिके मध्य उनके अभावकालमें उद्भूतवृत्तिरूपहै । अरु यह पराक्रमवाले पुरुषके कर्मोंका कर्त्ता होता है ६ । ३५ ॥ हे सौम्य प्रथम जोकौसल्य मुनि ने प्रश्न किया रहा कि । आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । मुख्यप्राणअपनेआप विभागकरके किसप्रकारसे स्थित होताहै तिसका उत्तर चौथे, पांचवें, छठे, इन तीनवाक्योंसे पिप्पलादमुनिने कहा सो तेरे अर्थ कहा ॥

७ ॥ हे सौम्य अब उदानबायुके स्थानको कहतेहुये, कौसल्य मुनिके । केनोत्क्रमते । < किसकरके (शरीरसे) निकलता है ; इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कहतेहैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कौसल्य । अथैकयोर्द्ध्व उदानः । < एक ऊंचे उदानहै >अर्थात् उन एक अधिक सौ १०१ नाड़ियों के मध्य ऊंचे मूर्द्धनी ब्रह्मरं-

धूस्थान बिषे जानेवाली सुषुम्णानामवाली मुख्यनाड़ी तिस एक नाड़ी से विशेष हुआ ऊपरको ब्रह्मरंध्रपर्यंत जाताहुआ अरु समान हुआ पैरसे लेके माथे पर्यंत वर्त्तमान हुआ उदान वायुविचरता है। अरु ९। पुण्येन पुण्य लोकं नयति पापेनपापं ८ पुण्यसे पुण्य लोकको प्राप्तकरताहै पापसे पापको ? ९ सो उदानवायु वेदशास्त्रबिषे विधानकिये जे पुण्यरूपकर्म तिनके करनेसे कर्त्ता पुरुषको देवतादिकों के स्थानरूप पुण्य(स्वर्ग) लोकको प्राप्तकरता है। अरु तिन पुण्यकर्मसे विपरीत वेदशास्त्र करके अविहित जे पापकर्म तिनके कर्त्ता पुरुष को पशु, पक्षि, श्वान, शूकरादि योनिरूप पापमय नरकको प्राप्तकरता है। अरु ९। उभाभ्यामेव मनुष्य लोकं । ८ दोनों से ही मनुष्यलोकको (प्राप्तकरता है) ? पुण्य अरु पाप दोनों के समुच्चय से मनुष्य लोक (शरीर) को प्राप्तकरता है॥ ७॥हेसौम्य सुषुम्णा नाड़ी बिषे अरु सर्वदेहाबिषे ब्रह्मरंध्रपर्यंत उदानवायु व्याप्तहोके वर्त्तता है सो स्थूल शरीर से लिंग (सूक्ष्म) शरीरके निकलनेमें अग्रसरहै, सो उपासना के अनुसार उत्तम मध्यम अधम लोकोंबिषे प्राप्तकरता है, अर्थात् प्रणव देवयान पञ्चाग्नि आदिकों की उपासनावाले उपासकको ब्रह्मरंध्रके द्वारा सर्वोत्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तकरता है। अरु सूर्य अग्नि आदिकों के उपासकको चक्षु वागादि द्वारसे सूर्य अग्नि आदिकों के स्वर्गादि मध्यमलोक को प्राप्तकरता है। अरु वेदशास्त्र से विरुद्ध निषिद्ध भूत प्रेतादिकों के उपासकों को गुदा लिंग नख केशादि अपवित्र मार्गोंसे पशु पक्षि श्वान शूकर चांडालादि पापमय नरकरूप योनियों को प्राप्तकरता है। अरु पाप पुण्य दोनों के सम अरु प्रधानतासे करनेवाले को मनुष्यलोक के ताईं प्राप्तकरता है। अर्थात् पुण्य प्रधान होय अरु पाप सामान्य होय तब सो श्रेष्ठ कुलमें धन विद्या संतति आरोग्यता आदिकों करके सम्पन्न होता है अरु जो पाप प्रधान होय अरु पुण्य सामान्यहोय तो सो पुरुष कुल

आदित्योहवैबाह्यःप्राणउदयत्येषह्येनं चाक्षुषंप्राण-मनुगृह्णानः । पृथिव्यांयादेवतासैषापुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरायदाकाशः ससमानोवायुर्व्यानः८ । ३७॥

विद्या धन संतति आरोग्यतादि सुखकरके रहित होता है । अर्थात् जिसके पुण्य अधिक अरु पाप थोड़े होते हैं तिन पुरुषोंको इस मनुष्यलोकविषे ही सुखअधिक अरुदुःख थोड़ाहोताहै। अरु जिनके पाप अधिक अरुपुण्य थोडा होताहै तिसको दुःख बहुत अरुसुख थोड़ा होताहै, ताते पुरुषको इसलोक परलोकमें सुख की प्राप्तिके अर्थ शास्त्र विहित पुण्य कर्महीं करना उचित है, अरु पुण्य पापके समान होने से दुःख सुक्खों की भी समान प्राप्ति होती है । अभिप्राय यह है कि मनुष्यदेहकी प्राप्ति पाप पुण्य दोनोंसेही होती है। अरु जिन्होंने ज्ञानाग्नि करके पाप पुण्य दोनों को निर्मूल किया है सो मोक्ष होता है॥ इतिसिद्ध म् ७ । ३६ ॥

८॥ हे सौम्य उक्त प्रकार कौसल्य मुनिके चतुर्थप्रश्न का उत्तर कहके, अब अधिभूत अरु अधिदैव रूप बाह्य को यह प्राण कैसे धारण करे है, यह पंचम प्रश्न का अरु अध्यात्म को कैसे धारण करे है इस षष्ठ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा है तिसको श्रवण करो॥ पिप्पलादउवाच॥ हे कौसल्य अर्थात् हे प्रश्न करताओं में कुशल, मैं कहों सो सुन । आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणउदयत्येषह्येनं चाक्षुषंप्राणमनुगृह्णानः ॥ आदित्य-ही प्रसिद्धबाह्यका प्राण है यह ऊर्ध्व को जाता है यह इस चक्षु विषे स्थित प्राणको अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है । अर्थात् यह जो प्रकट सूर्य है सोई बाहर समष्टिका प्राणहै अरु यह सूर्यरूप प्राण उदयहुआ ऊंचे को जाता है (जैसे नाभिसे उदय हुआ प्राण ऊंचे को जाता है तैसे) अरु यह सूर्यरूप प्राण इस चक्षु इन्द्रिय विषे स्थित व्यष्टि प्राणको अपने प्रकाशसे अनुग्रह कर-

ता हुआ अर्थात् रूपाबिषयके ज्ञान बिषे चक्षुके प्रकाश को करता हुआ बर्त्तता है। अरु ८। पृथिव्यांया देवता सैषा पुरुषस्यापान मवष्टभ्य । ८पृथिवी बिषे जो देवताहै सोइसपुरुषकी अपानवृत्ति को आकर्षण करके वर्त्तता है; ९ तैसेही पृथिवीविषे अभिमानी जो प्रसिद्ध [अग्नि] देवता है सो यह पुरुष की अपाननाम वाली प्राणवृत्ति को आकर्षण द्वारा स्ववशकरके नीचेहीको खींचने रूप अनुग्रह को कर्त्ताहुआ वर्त्तता है। यदि ऐसा न होय तो शरीर भारी होने से गिरपड़ेगा । अथवा अवकाश सहित (थल) मैदानमें ऊपरको जायगा। सोतो होता नहीं,यह अग्नि रूप पृथिवी काही अनुग्रह है। अर्थात् बाह्यका जो समष्टि अपानवायु अग्नि देवतारूप पृथिवी सो पुरुषकी जो अधोगामी प्राणकी अपाननामनी वृत्तिहै तिसको आकर्षण करतीहुई शरीर को अपने आकर्षणमें रक्खे है इसही हेतुसे यहशरीर भारीहुआ भी गिरता नहीं अरु ऊपरको भी जाता नहीं यहही बाह्य अपान का अनुग्रहहै। अरु९। अन्तरा यदाकाशः ससानो वायुर्व्यानः । ८जो मध्यमें आकाशहै सो वायु समान रूपहै व्यानके अर्थ अनुग्रहकरता है; यह जो स्वर्ग (सूर्य्य) अरु पृथिवीके मध्यमें आकाश है तिसबिषे स्थित जो वायु है तिसको। मञ्चस्थपुरुषवत्, आकाशनामसे कहते हैं। [। मञ्चाःक्रोशन्तीति। ८ मञ्च पुकारते हैं ९ इसवाक्य बिषे जैसे मञ्चशब्द करके मंचकोही ग्रहण न करके मञ्चस्थ पुरुषपुकारते हैं, ऐसा लक्षणसे ग्रहण होता है। तैसेहीयहां आकाश शब्दसे केवल आकाशही का ग्रहण न करके तिस आकाशबिषे स्थित वायुको लक्षणासे ग्रहण करते हैं] अरु सो वायु समानरूपहै, सो अन्तर समान वायुके अर्थ अनुग्रहकरताहुआ वर्त्तता है सो काहेसे को अन्तर समान वायुप्राण अरु अपानके मध्यमें स्थित है, अरु बाह्य समानवायु सूर्य्यरूप प्राण अरु पृथिवीरूप अपान इनके मध्यमें स्थित है, ताते अन्तर समानवायु अरु बाह्य समानवायु इनदोनोंको अ-

तेजो हवैउदानस्तस्मादुपशान्ततेजः । पुनर्भव-मिन्द्रियैर्मनसिसम्पद्यमानैः ६ । ३८ ॥

न्तर वाह्य प्राण अपानके मध्य स्थितहोनेसे समताहै, तातेसमष्टि समान वायु व्यष्टि समानवायुपर अनुग्रह करता है । अरु सामान्यरूप से जो वाह्य का वायु है सो वाह्य का व्यान वायु है सो अन्तरके व्यानबायुके अर्थ अनुग्रह करता है क्योंकि व्याप्तिकी समताहै अर्थात् अन्तरका व्यानवायु शरीर के अन्तर नखशिख पर्य्यन्त व्याप्त है अरु वाह्यका व्यानवायु विराडात्माके अन्तर द्यौ (ब्रह्म लोक)से पाताल पर्यन्त व्याप्त है । ताते व्याप्तिकी समतासे वाह्यका समष्टि व्यानवायु अन्तर के व्यष्टि व्यानवायुपर अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है ८ । ३७ ॥

९ ॥ हे सौम्यपुनः पिप्पलादमुनि कहतभये कि हे कौसल्य । तेजो हवै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः । ; प्रसिद्ध तेजही उदान रूप है ताते तेजसे रहित होता है ; अर्थात् जो बाह्यका स्पष्ट सामान्य तेजहै सो वाह्यका समष्टि उदानरूपहै । अभिप्राय यह है कि वाह्यका सामान्य तेज है सो अपने प्रकाशकरके शरीरस्थ उदानवायुके अर्थ अनुग्रह करताहै । हे सौम्यऽ [इसप्रकार सूर्य्यादिरूपसे मुख्य प्राणको प्राण अपान समान उदान व्यान इनके अर्थ अनुग्रह करने के कथनसे अध्यात्मरूप प्राणादि वृत्तियोंके अनुग्रह का कर्त्तापना कहा । अरु सूर्य अग्नि आकाश सामान्य वायु अरु सामान्य तेज यह क्रमसे बाह्य के प्राणादि रूपहुआ मुख्य प्राण सूर्यादि अधि दैवरूप बाह्यको धारता है इसप्रकार कहा । अरु तिस सूर्यादिरूपसे जोस्थिति सोई तिस का धारण है । अरु प्राण अपानादिकोंके अनुग्रहसे चक्षुरादिकों के अनुग्रहसे तिसद्वारा , मुख्य प्राणको , उन चक्षुरादि अधिभूत स्वरूप वाह्यरूपका धारण कर्त्तापनाकहा । अरु ऽ । सप्राणस्तच्चक्षुः सोऽपानः सा वाक् स व्यानस्तच्छ्रोत्रंससमानस्तन्म

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः ।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति १० । ३९ ॥

नः स उदानः स वायुरिति श्रुत्यन्तरे । -- (सो प्राण सो चक्षु
सो अपान सो बाणी सो ब्यान सो श्रोत्र सो समान सो मन
सो उदान सो वायु ; ।) इसश्रुति करके चक्षुरादिकोंको प्राणा-
दे स्वरूपताके कथनसे अरु चक्षुरादिकों के अनुग्रह कर्त्तापने
के कहने से चक्षुरादिरूप अध्यात्मका धारणकर्त्तापना मुख्य
प्राण को कहा ॥ इसरीतिसे यहां पर्यन्त बाह्यको कैसे धारण
करता है अरु अध्यात्म को किस रीतिसे धारण करता है, इन
पंचम अरु षष्ठ दोनों प्रश्नोंका उत्तर कहा , यह जानना] ।
जिस करके तेजस्वभाववाला अरु शरीरसे (लिंगको , बाहर
निकलनेरूप क्रियाका करनेवाला उदानवायु भी बाह्यके तेज
के अनुग्रह को पायाहुआ ही शरीर बिषे वर्त्तता है तिसहीकारण
ते जब जीवके जीवने के हेतु कर्म (प्रारब्ध) के उपराम भये
बाह्यके तेजरूप उदानके (अन्तर उदानवायुके निमित्तके, अनु-
ग्रहके अभावसे लौकिक पुरुष स्वाभाविक तेजसे रहित होता
है , तब उस समय उस पुरुषको क्षीणआयुवाला मरने के योग्य
जानना । अरु (। पुनर्भव मिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ९ ।
; मनबिषे प्रवेशको प्राप्तभई इन्द्रियोंके साथ अन्य शरीर को
पावता है ;) सो ' मरनेवाला तेजादिकों के शान्तभये पीछे
मनबिषे प्राप्तभई जे वागादि इन्द्रियां । वाङ्मनसिसम्पद्यते । ति
नके साथ ; अध्यासके वशभया, अन्यशरीरको पावताहै ९।३८॥
१० ॥ हे सौम्य हे कौसल्य । यच्चित्तस्तेनैषप्राणमायाति ।
; यह जिसमें चित्तवाला होता है तिस करके प्राणको पावता है
अर्थात् , यहजीव जिस पशुपक्षि आदिक शरीरमें चित्तकरके युक्त
होताहै, अर्थात् जिन शरीरोंमें चित्त संकल्पादि चेतना धर्मवाला
होताहै, तिन शरीरोंमें मरणकालबिषे उस चित्तके संकल्पसे

यएवंविद्वान् प्राणंवेद । नहास्यप्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ११ । ४० ॥

इन्द्रियोंकेसाथमिलके मुख्य प्राणवृत्तिकोप्रावताहै, अर्थात् मरण कालविषे इन्द्रियोंकीवृत्तिके क्षीणभये यहजीव मुख्यप्राणवृत्तिरूप सेही स्थितहोताहै । तब इसके ज्ञातिसम्बन्धिके लोग परस्परमें कहते हैं कि अभी तो यह जीवताहै । अरु १ । प्राणस्तेजसायुक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति । २ प्राणतेजकरके युक्त हुआ सहित आत्माके जैसा निश्चय कियाहै तैसे लोकको पाव-ताहै ; १ सो प्राण जब बाह्यके तेजरूप उदानवायुके अनुग्रहको प्राप्तभई जे 'अन्तर' उदानवृत्ति , जो उत्क्रमणमें प्रधान है, तिसकरके युक्तहुआ शरीरके अधिपति जीवात्मा (साभासलिंग) के साथ तादात्म्यभावको पावता है, तब तिस तादात्म्यताकरके भोक्तारूपभया प्राण उक्तप्रकार उदानवृत्तिसेही युक्तहुआ तिस ही भोक्ताको , किजिसकेतादात्म्यसे आप भोक्ताभयाहै, पुण्यपाप रूप स्वकर्मके वशसे जैसा इसजीवात्माका अभिप्राय है तैसेही लोकको प्राप्तकरता है १० । ३९ ॥

११ ॥ हे सौम्य [उक्तप्रकार करके व्यष्टि समष्टि प्राण के स्वरूप स्थानादिकोंका निर्णयकरके अब तिसकी उपासनाका विधान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि आत्मासे प्राण उपजताहै सो मनके किये धर्म अधर्मसे शरीरकेअर्थ अनुग्रहकरताहै । अरु आपके पांचप्रकार विभागकरके वायु (गुदा) अरु उपस्थ (लिंग) इन स्थानोंविषे अपनेही भेद अपानवायुको स्थापनकरे है । अरु चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थानविषे स्वस्वरूप प्राणकोही स्थापित करे है । अरु नाभिरूप स्थान विषे अपने समान रूप भेद को स्थापन करे है अरु नाडियों के समूहरूप स्थानविषे अपने भेद व्यान रूपको स्थापितकरे है । अरु सुषु-म्णानाडीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायु को स्थापित

करे है। अरु प्राण अपान समान व्यान अरु उदान, इनके अनुग्रह कर्त्ता बाह्यरूप सूर्य पृथिवी देवता आकाश वायु अरु तेज रूपसे अधिदैवको धारणकरे है। अरुसूर्यादिकोंके अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मको अरु चक्षु वाक् श्रोत्रमन अरु त्वचारूपअरु चक्षुरादि इन्द्रियोंकरकेग्रहणकरनेयोग्य रूपादिबिषयरूपअधिभूत को धारणकरेहै। अरु सोईप्राण उदानवृत्तिसे भोक्ताकरकेयुक्तहुआ भोक्ता(जीवात्मा)को देहत्यागान्तर लोकान्तर किंबा देहान्तरप्रति लेजाताहै ॥ हे सौम्य सोई प्राण सर्वमें ज्येष्ठश्रेष्ठहै, सोईप्रजापति है, सोई अन्नका भोक्ता है। इसप्रकार उत्पत्यादि उक्त बिशेषणों करके युक्त प्राणको जानता है सो अग्रिम कहे फलको पावता है]॥ हे सौम्य हे कौसल्य । य एवं विद्वान् प्राणं वेद । ८ जो विद्वान् ऐसे प्राणको जानताहै; अर्थात् जोकोई ब्राह्मणादि बिद्वान् कहे प्रकार उत्पत्यादिबिशेषणोंकरकेयुक्त मुख्यप्राणको जानताहै अर्थात् उपासताहै। तिसको इसलोकपरलोक सन्बन्धि जो फल प्राप्तहोताहै सो बेद भगवान् कहतेहैं ९। न हास्यप्रजाहीयतेऽमृतो भवति तदेषश्लोको (भवति) । ८ इसकी प्रजा उच्छेदको पावती नहीं ; अरु ८ मरण धर्मसे रहित होता है तिस विषे यह श्लोक (मंत्र) है ; १ इस विद्वान्की , कि जो प्राणका सम्यक् उपासक है, पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा , उसकी विद्यमानता में , विनाश को पावती नहीं । अरु शरीर के पतन भये यह प्राणोपासक पुरुष मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के साथ सायुज्यता (अभेदता) को पाय मरण धर्मरहित अमर होताहै ऽ [यह जो प्राणके साथ एकतारूप अमृतभावहै सो प्राणके सकाम उपासकको अन्तमें होताहै। अरु निष्काम उपासक को चित्त की एकाग्रता अरु शुद्धि द्वारा आत्मज्ञान होय मुख्य अमृतत्वकी प्राप्तिहोती है] ९ अरु इसही अर्थबिषे यहअग्रिमवाक्यरूपमंत्रप्रमाणहै॥इतिसिद्धम् ११।४०॥

१२॥ हेसौम्य हेकौसल्य । उत्पत्तिमायतिंस्थानं विभुत्वञ्चैव पंचधाअध्यात्मंचैवप्राणस्य । ८ प्राणकी उत्पत्तिको आगमन को

उत्पत्तिमायातिंस्थानांविभुत्वञ्चैवपञ्चधाअध्यात्मञ्चैवप्रा
णस्य विज्ञायामृतमश्नुतेविज्ञायामृतमश्नुते १२॥४१

इतिप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नः ३ ॥

स्थानको अरु पांचप्रकारसे स्वामित्वभावको, अरु, अध्यात्मको; अर्थात् प्राण की परमात्मासे उत्पत्तिको अरु मनके किये कर्मों से इस शरीर बिषे आगमनको अरु गुदा उपस्थादि स्थानों बिषे स्थितिको अरु चक्रवर्त्ति राजावत् प्राण वृत्ति के पांचभेदके पांच प्रकारसे स्थापन रूप स्वामित्वको। अरु सूर्य्यादि रूपसे स्थिति रूप बाह्यको। अरु प्राणादिवृत्ति रूपकी चक्षुरादिकों के आकारसे स्थितिरूप अन्तर अध्यात्माको। विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृत मश्नुते। २ जानके अमरणभाव को पावताहै; हेसौम्य इसप्रकार प्राणको सम्यक्प्रकार जानकेउपासनाकरनेवाला विद्वान् प्राणके साथ अभेदतासे ऐक्यभावरूप अमृतको पावता है। जानके अ-मृत को पावता है। यहां जो द्विबारकथन है सो तृतीयप्रश्न की समाप्त्यर्थ अथवा अपरविद्यासम्बन्धि प्रश्नों की समाप्त्यर्थ किंवा अपरब्रह्मकी उपासना विद्याकी समाप्ति के अर्थ है ॥ इतिसिद्धम् १२। ४१ ॐ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नःभाषाटीका
पूर्वार्द्ध की समाप्ता ३ ॥

अथ चतुर्थप्रश्नप्रारभ्यते ॥

अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानिस्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठता भवन्तीति १ । ४२॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत चतुर्थप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य प्रथम प्रश्न करके कहे प्रकार कर्म्म उपासना की 'परिणाम, गतिको श्रवणकरके तिनसे बैराग्यवानहुआ । अरु द्वितिय तृतीय प्रश्नकरके कहीगई जे प्राणकी उपासना तिसकरके चित्तकी एकाग्रता अरु शुद्धिवालाहुआ अरु इसही करके विवेकादि साधन चतुष्टय करके सम्पन्न जो उत्तमाधिकारीको पराविद्या (ब्रह्मविद्या) कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिहोती है तिसके श्रवणार्थ चतुर्थ पंचम अरु षष्ठ इन तीनों प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं ॥

१ ॥ हे सौम्य । अथ हैनं सौर्य्यायणो गार्ग्यःपप्रच्छ । ' तिसके पश्चात् इसको सौर्य्यमुनिकापुत्र गार्ग्यनामामुनि प्रश्नकरताभया ; अर्थात् कौसल्यनाममुनिके समाधान होनेके पश्चात् सौर्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामवाला मुनि इस उत्तरदाता सर्वज्ञ अपने आचार्य्य पिप्पलादमुनिको पूंछताभया ॥ यहां अभिप्राय यह है कि पूर्वके प्रथम, द्वितिय, अरु तृतीय इन तीनों प्रश्नोंसे संसार रूप व्याकृत ' अर्थात् कार्यमय जगत्के अन्तरगत साध्य साधनमय, अर्थात् कर्म उपासना अरु तिनके फलमय, अनित्य सर्व प्राणरूप अपरब्रह्मकी विद्याके विषयको समाप्तकरके अब असाधनरूप प्रमाणोंकी प्रवृत्तिसे रहित अर्थात् अप्रमेय मनका

अगोचर इन्द्रियोंका अविषय अर्थात् कार्यभाव रहित शिव शान्त अविकारी अक्षर सत्य पर विद्याकरके गम्य बाहरभीतर अजन्मा पुरुषनामवाला परब्रह्मकी विद्याका विषयरूप जो वस्तु सो कहनेके योग्यहै । एतदर्थ अग्रिम ४-५-६-इन तीन प्रश्नोंका प्रारंभ करते हैं । हेसौम्य [इसप्रकार सामान्यरित्या आगेकहनेके तीनों प्रश्नोंका सम्बन्ध कहके अब केवल चतुर्थप्रश्नके ही संबन्ध को कहतेहैं] तहां ऽ।यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधाःसौम्यभावाःप्रजायन्तेतत्र चैवापियन्ति । ८ जैसे प्रज्वलित अग्निसे अग्निके अवयव चिनगारी अनेक प्रकारकी सहस्रावधि निकलती हैं। हे सौम्य तैसे ही अक्षर (परब्रह्म) से अनेक प्रकारके पदार्थ,उपजते हैं अरु तहांही लीन होतेहैं ; इसप्रकार मुंडक उपनिषद्के द्वितीयमुंडककी प्रथम श्रुतिमें कहाहै ।ऽ कौनसे वोसर्व भाव हैं जो अक्षर ब्रह्मसे उपजते हैं। वा किसप्रकार वेभाव विभागको पायके तहां ही लीनहोते हैं । अरु किस लक्षणवाला वो अक्षरब्रह्महै । इस अर्थके श्रवणकरनेकी इच्छासे अब गार्ग्यनामामुनि प्रश्नोंको प्रकट करता भया ॥ गार्ग्यउवाच । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवःस्वप्नान् पश्यति । ; हे भगवन् पुरुषविषे कौनसोवताहै (अरु) कौन इसविषे जागताहै (अरु) जो यह देव स्वप्नोंको देखताहै सो कौनहै ;। हे भगवन् इस मस्तक हाथ पांव आदि अंगोंवाले शरीररूप पुरुष विषे कौनसे करण अर्थात् मनआदि अन्तःकरण अरु चक्षुरादि बाह्यकरण इनमेंसे कौनसे करण अपने व्यापारसे उपरामरूप निद्राको करतेहैं । अरु कौनसे करण इस पुरुषविषे अपने व्यापारके करने रूप जागरण को करते हैं । अरु कार्य अरु करणरूप देवताओं के मध्य जो यह देव स्वप्नों को देखता है सो कौन है । अभिप्राय यह है कि जाग्रत्के देखनेसे निवृत्तभये पुरुषको स्वशरीरके भीतर जो जाग्रतवत् ही दर्शनादि हैं तिस

को स्वप्न कहते हैं, सो तिसका क्यां कार्य्य देह अरु प्राण) रूप देवसे निर्वाह करते हैं, अथवा करण (मनआदि) रूप किसी भी देवसे निर्वाह करते हैं। अरु १। कस्यैतत् सुखंभवति ।२ यह सुख किसकोहोताहै १ २ जाग्रत् अरु स्वप्नके व्यापारके निवृत्तहुये प्रसन्न अरु विषयके अभावमात्रसे ही देखनेयोग्य अरु विनाश रहित आत्माका स्वरूप भूत जो यह सुख है सो किसकोहोताहै। अरु १। कस्मिन्नुसर्वे सम्प्रतिष्ठिताभवन्ति। २ किसबिषे वहसर्व लीनहोते हैं ३ १ जिसकालबिषे जाग्रत् स्वप्नके व्यापारसे निवृत्त भये सर्व जीव २ जैसे मधु बिषे रस, अर्थात् जैसे मधुकर मक्षिका के उदर बिषे सर्व रस तद्वत्, अरु समुद्र में प्रवेश को प्राप्त भई नदीयोंवत्, किस बिषे एकताको प्राप्तहोके विवेचनके अयोग्यहुये लीन होतेहैं। अर्थात् [इस चतुर्थ प्रश्नविषे अक्षर (परमात्मा) के स्वरूपको ही श्रवणकरनेकी इच्छाहोने से तिसके निर्णयहोने के अर्थ। कानि स्वपन्ति ।२ कौन सोवता है ३ १ इत्यादि पांचप्रकारके आवान्तर प्रश्नवाला जो प्रश्नहै सो जाग्रदादि अवस्थाके मिस अवस्थाओंके धर्मीविशेषके निर्णयार्थहै १। अन्यथा विचारनेसे उन जाग्रदादि अवस्थाओं को आत्माके धर्म होनेको शंकाके होनेसे तिस आत्माके निर्विशेषभावके निर्णयकी असिद्धिहैं। १तहां प्रथम प्रश्नकरकेजाग्रत्का धर्मीपूंछा १क्योंकि स्वप्नअवस्थामेंजिसकेव्यापारकी निवृत्तिकेहोनेसजाग्रत्नहींहै सो तिसजाग्रत्का धर्मी है इसप्रकार निश्चयकरनेको शक्य है ताते॥ अरु द्वितीय प्रश्नकरके तीनों ही अवस्था बिषे शरीरका रक्षण१ होना किसके धर्म से है, यह प्रश्न किया १ क्योंकि जागतेहुये अरु व्यापारोंसे निवृत्त भये प्राणकोही शरीरका रक्षक होने का संभव है ताते ॥ १ अरु तृतीय प्रश्न करके स्वप्नके धर्मी के अर्थ प्रश्न किया ॥ अरुचतुर्थ प्रश्नकरके सुषुप्तिका धर्मी पूंछा। क्योंकि। सुख महमस्वाप्स मिति। २ मैं सुखजैसे होय २ तैसे, सोआथा ३ इसप्रकारके सुषुप्तिसे जाग्रत्भये पुरुषको स्मरणके

होनेसे सुखके सुषुप्तके साथ सम्बन्ध है ऐसा जानाजाता है ताते । अरु सुषुप्ति अवस्था बिषे प्रकाशमान जो यह अंगुली निर्देशवत् प्रकट सुख है सो , मैं सुख से सोआथा, इस स्मरण का मूलभूत है । अर्थात् जाग्रत्भये जोसुषुप्ति के सुखका स्मरण है सो सुषुप्ति के आनन्द के आश्रय है ताते सुषुप्ति का सुख जाग्रत् भये सुखकी स्मृतिका मूलभूतहै । एतदर्थ चतुर्थप्रश्न से सुषुप्तिका धर्मी पूंछा ॥ अरु पंचम प्रश्नकरके तीनों अवस्था करके रहित अरु तीनोंही अवस्थाके स्थितिकी " भूमा " भूमीरूप तुरीय नामवाला अथवा तुरीयरूप अक्षर पूंछा ॥ यहां । तस्मिन् काले । (तिस कालबिषे) इसप्रकार आरंभ कियेहुये पंचम प्रश्नकरके यद्यपि तुरीय पदके अर्थही प्रश्नहै सुषुप्तिके अर्थ नहीं तथापिसंसारदशाबिषेसर्व उपाधिसे रहित जोतुरीयअवस्था है तिसके अभावभयेसे किसी न किसी उपायसेही उस तुरीय पदका देखावना होताहै ताते, उस सुषुप्तिवाले पुरुषवत् ज्ञानके हुये भी, अर्थात् जैसे सुषुप्तिअवस्थावाले को सुखरूपका प्रकट ज्ञानहोताहै, तिसकेहोतेहुये भी तहां (सुषुप्तिमें) अन्यउपाधियों से रहित होनेकरके तहांही सर्वउपाधियोंके विवेकके करनेसे तुरीयपदका देखना सुगमहोताहै ताते तिस सुषुप्तिकालबिषे तुरीय पदके अर्थ सर्वके लयका कथन है । अरु यहां सुषुप्ति अवस्था विषे सर्वप्रकारके लयके देखावनेका अभावहै, ताते भेदज्ञानरूप विवेकके अभावमात्रसे ' मधुबिषे रस अरु समुद्रबिषे नदियांवत् यह दोनों दृष्टान्तहैं अर्थात् मधुबिषे रसको अरु समुद्रबिषे नदियोंको यह विवेक नहीं रहता जो हम अमुक वृक्षके रस अरु अमुक नदीकाजल है । इस अभिप्रायसे ' विवेचनके अयोग्य ऐसा भाष्यमें कहाहै ' । एतदर्थ पूर्व विवेकके अयोग्यहुये पीछे लीन होतेहैं । जैसे जलमें डूबता प्रथम दर्शनके अयोग्यहुये पीछे डूबताहै तैसे ॥ इत्यर्थः ॥ शंका ॥ इस पंचमप्रश्नकरके भी अविद्याकी वासनासे विवेचनकरनेको अयोग्यहुआ सुषुप्तिके धर्मीके

अर्थही प्रश्न कियाहोगा ॥ समाधान ॥ यह शंका करने योग्यनहीं, क्योंकि । सपरेऽक्षरे आत्मनिसम्प्रतिष्ठते । (सो परमात्मारूप अक्षरबिषे लयको पावते हैं इसप्रकार आगे इसही प्रश्नके नवम वाक्यके अन्तबिषे कहेंगे ताते । अरु सुषुप्तिमें अज्ञानाबिषेही लय होता है ताते । अरु । एषहिद्रष्टा । (यहही द्रष्टा है ; इत्यादि इसप्रश्नके नवम वाक्यकी आदि में कहे अज्ञानबिषे प्रतिविम्वित भोक्ता जीवके भी अक्षरबिषे लयकाकथनहै ताते । अरु । अच्छाय । (छाया रहित ; अर्थात् अज्ञान रहित, यह इसहीप्रश्नके दशम वाक्यबिषे अज्ञानके अभावका कथनहै ताते । एतदर्थइस १ [कस्मिन्नु सर्व्वे प्रतिष्ठिताभवन्ति । (किसबिषे सर्व लयहोते हैं ;) पंचम प्रश्नकरके तुरीयरूप अक्षरही पूछाहै । इतिभावः] शंका ॥ कार्यकारणसे व्यतिरिक्त (जुदा) किसीएक लयके आधारसे सामान्यरीतिकरके जानेहुये , किसबिषे लय होताहै , ऐसा विशेषार्थ प्रश्नउक्तहै । अरु यहां जिसकरके उसलयके आधारका सामान्यपनेकरके ज्ञान नहीं भया है तब तिसके बिशेष स्वरूपके अर्थ प्रश्न कैसे घटेगा किन्तु न घटेगा । अरु जो ऐसा कहो कि लयको आधारसहित होनेकरके सामान्यपनेसे तिस लयके आधारका ज्ञान भया है । सो कहना बने नहीं, क्योंकि तिस तिस कार्य घटादिकोंका उपादान मृत्तिकादि अचेतनों कोही तिन घटादिकोंके आधार होने करके तिन मृत्तिकादिकों से पृथक् चेतनरूप आधारकी असिद्धि है । ' एतदर्थ यहां वादी शंका करता है] कि १ जैसे त्याग किये दात्रि (दरांति धान्य आदिक काटनेका शस्त्र) आदि करणोंवत् , अपने २ व्यापार से निवृत्तभये इन्द्रियादि करण पृथक् २ ही अपने २ आत्म (कारण) स्वरूपबिषे स्थित होते हैं, ऐसा मानना युक्त है, एतदर्थ यहां सुषुप्ति कोप्राप्त होके पुरुषों के करणों (इन्द्रियों) का किसीभी बिषे एकताभावके प्राप्तिकी आशंकाकी प्राप्ति कहांसेहोगी किन्तु न होगी ॥ समाधान ॥ हे वादी प्रश्न करनेवाले की यह

तस्मैसहोच । यथागार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छन्तःसर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डलएकीभवन्ति । ताःपुनःपुनरुदयतः प्रचरन्त्येवंहवैतत्सर्वंपरे देवेमनस्येकीभवति । तेनतर्ह्येषपुरुषोनशृणोति न पश्यति नजिघ्रति नरसयते नस्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते नविसृजतेनेयायते स्वपितीत्याचक्षते २ । ४३ ॥

शंका १,(कि किस बिषे सब लयहोते हैं,) युक्तहीहै,क्योंकि जिस करके जाग्रत्बिषे संघात रूपभये करण (इन्द्रियादि) सो अपने स्वामी (संघाताभिमानी) के अर्थ होतेहैं ताते परतन्त्रहैं । अरु एतदर्थेही सुषुप्तिबिषे भी एकत्रहुये करणों (इन्द्रियों) का परतन्त्र भावसेही किसी न किसी वस्तुबिषे मिलना युक्तहीहै एतदर्थ आशंकाके अनुसारही यहप्रश्नहै । अर्थात् अन्तःकरण बिषे विद्यमान जे शंका तिसके अनुसार वाणीकरके कहा यहप्रश्नहै अरु[यहां लयरूप विशेषण करके युक्तजो सोपाधि आत्मातद्विषयक प्रश्ननहीं , किन्तु, जैसे काक (कौआ) करके उपलक्षित देवदत्तका गृह,तैसे सर्वके लयरूप उपलक्षण करके लक्षितजे शुद्धआत्मा तद्विषयक प्रश्न है । इस तात्पर्यसे कहतेहैं](यहां तो कार्य अरु कारणका संघात है सो सुषुप्ति अरु प्रलयकालमें जिसविषे लीनहोता है । स कोनुस्यादिति । (सो कौन है ; इस प्रकार जाननेकी इच्छा वालेका १ । कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति । (किसबिषे सर्व भलप्रिकार लीनहोता है ;) जो यह प्रश्नहै सो शंकानुसार युक्तहीहै १ । ४२ ॥

२॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्रश्न कियातब । तस्मैसहोवाच (तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहताभया ;) अर्थात् तिस गार्ग्यमुनि नामवाले अपने शिष्यकेअर्थ सो पिप्पलादमुनिनामवाले सर्वज्ञ आचार्य कहतेभये कि । यथा गार्ग्य मरीचयो ऽर्कस्यास्तं गच्छन्तः

सर्व्वाएतस्मिंस्तेजोमण्डलएकी भवन्ति । ८ हे गार्ग्य ,जैसे सूर्य्य के सर्व किरण अस्तहुये इस तेजोमंडल बिषे एकत्र होते हैं ;१ हे गार्ग्य जो तैंने प्रश्न किया है तिसका उत्तर सावधानतासे श्रवणकर । जैसे सूर्यके सर्व किरण अस्तताको प्राप्तहुये इसतेजोमंडल बिषे एकताकोपावते हैं । अरु ९ । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति । ८ सो पुनः पुनः उदयको पाये हुये फैलते हैं ;१ सो तिसही सूर्य्यके किरण बारंबार उदयताको पायेहुये सर्वओरको फैलतेहैं ९ । एवं ह वै तत् सर्व्वं परे देवे मनस्येकी भवन्ति । ८ ऐसेप्रसिद्ध यह सर्व परम देव मनबिषे एकत्रहोते हैं ;१ जिस प्रकार यह दृष्टांतहै,इसप्रकार यह प्रसिद्ध जोविषय अरु इन्द्रियादिकों का समूह अरु चक्षुरादि देवताओंको,मनके आधीनहोनेसे परमोत्कृष्ट देव (प्रकाशवान्)जो मनहै तिसबिषे, ९ 'जैसे तेजोमय मंडल (सूर्य्य) बिषे किरणोंकी एकताहोतीहै तैसे,१ स्वप्नकालमें एकताको प्राप्तहोते हैं । अरु जाग्रत्की इच्छावाले पुरुषके विषय अरु इन्द्रियादि , ९' जैसे सूर्य्यमण्डलसे निकले हुये किरण अपने प्रकाश कर्त्तव्यरूप व्यापारको करतेहैं तैसे,१ मनसे निकसेहुये अपने २ व्यापारको करतेहैं । अरु जिसकरके स्वप्नकालमें शब्दादि विषयोंके ज्ञानके साधक जे श्रोत्रादि इन्द्रियां सो मनबिषे एकताको प्राप्तहुयेवत् अपने करणस्वरूप व्यापारसे निवृत्तहोते हैं ९ । तेन तर्ह्येष पुरुषो,न शृणोति,न पश्यति,न जिघ्रति,न रसयते,न स्पृशते,नाभिवदते,नादत्ते,नानन्दयते,न विसृजते,नेयायते,स्वपितीत्याचक्षते २ । ८ तिससे स्वप्नकाल बिषे यह पुरुष,श्रवण करतानहीं,देखतानहीं, गंधलेतानहीं, रसकास्वाद लेतानहीं,स्पर्शकरता नहीं, बोलतानहीं,ग्रहणकरता नहीं,आनन्दको पावतानहीं,मलमूत्रको त्यागतानहीं,चलता नहीं,(किन्तु) सोवताहै ऐसा कहतेहैं,१ तिसकरके तिसस्वप्नकालबिषे यह ब्रह्मदत्तादि नामवाला शरीररूप पुरुष,सुनता नहीं, देखतानहीं, गंधलेता नहीं, रसादिकोंका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरेजा ग्रति । गार्हपत्योह वाएषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्या त्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयःप्राणः ३ । ४४ ॥

करता नहीं, कुछ भी बोलतानहीं, कुछभी लेतानहीं, विषयजन्य आनन्दको प्राप्तहोता नहीं, मलमूत्रादिकों को त्यागतानहीं, कहीं कोभी चलतानहीं, किंतु उसको सोवताहै ऐसाकहतेहैं २ । ४३ ॥ हे सौम्य यहां पर्यन्त । एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति । ८ इस शरीरविषे कौन सोवताहै इस प्रथम प्रश्नका उत्तर कहा ॥

२ ॥ हे सौम्य अब । कान्यस्मिन् जाग्रति । ८ इस शरीर नामक पुरविषे कौन जागताहै ? यहजो गार्ग्यमुनिका द्वितीय प्रश्नहै तिसका उत्तर जो पिप्पलादाचार्यने कहा है तिसको भी श्रवणकरो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य । प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । ८ इस पुरविषे प्राणरूप अग्निहीं जागतेहैं ? अर्थात् चक्षुरादि सर्व करणोंको सो ये (मनविषे एकत्र) हुये इस नव किम्बा दश किम्बा एकादश द्वारवाले देहरूप पुरविषे प्राणादि नामवाले पांच वायुही, अग्निवत्, अग्निहै सोई जागते हैं ॥ हे सौम्य अब प्राणों को अग्निकी समता कहते हैं तिसको श्रवणकरो ॥ । गार्हपत्यो हवाएषोऽपानो ८ यह प्रसिद्ध अपानहै सो गार्हपत्याग्नि है ? अर्थात् यह जो प्रसिद्ध अपान वायुहै सोई गार्हपत्य नामवाला अग्निहै ॥प्र०॥ किस प्रकारहै॥ उ० । गार्हपत्यात्प्रणीयते । ८ गार्हपत्य नामवाले अग्नि, से निकलतेहैं ? । हेसौम्य जैसे अन्य अग्निके रचनेवाले गार्हपत्य नामवाले अग्निसे, नित्यके अग्निहोत्रके कालसे अन्य अग्निहोत्रके कालविषे तिस गार्हपत्य अग्निसे अन्य आहवनीय नामवाला अग्नि निकालतेहैं तैसे जिसकरके सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्तभये पुरुषके, गार्हपत्याग्नि भावसे कहा जो अपान नामवायु तिसके भीतरजानेसे प्राणवायु निरावरणहोता है तिसकारण से मेघोंमें

यदुच्छ्वास निश्वासावेतावाहुती समंनयतीति सस मानः। मनोह्वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः सएनं य जमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ४। ४५॥

से निकसे चन्द्रमावत्, अपानवायु से निकसे हुयेवत् मुख अरु नासिकारूप द्वारसे बाहर (ऊपर) को चलताहै एतदर्थ अपान वायु गार्हपत्य अग्नि के स्थानापन्नहै। अरु १ आहवनीयः प्राणः। २ प्राण आहवनीय है। १ जैसे गार्हपत्याग्नि से निकसनेवाला आहवनीय अग्नि है, तैसेही अपान वायु से निकसनेवाला प्राण वायु है, एतदर्थ प्राणवायु आहवनीय नामवाले अग्नि स्थानापन्न है अरु १ व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो। २ व्यानदक्षिणाग्निहै; १ व्यान वायुहै सोहृदयरूप देशसे दक्षिणवाजु के छिद्रद्वारा निकलताहै इसही करके सो दक्षिण दिशाका सम्बन्धी है एतदर्थ वो दक्षिणाग्निके स्थानापन्न है ३। ४४॥

४॥ हे सौम्य अब यहां इस चतुर्थवाक्य करके अग्निहोत्रके हवनका कर्त्ता ऋत्विक्रूप होता कहते हैं॥ पिप्पलादउवाच॥ हे गार्ग्य। यदुच्छ्वासनिश्वासावेतावाहुती समंनयतीतिसमानः। २ इन उच्छ्वास अरु निश्वासरूप आहुतको समप्रवृत्तकरताहै सो समान है; अर्थात् जिस करके उच्छ्वास अरु निश्वास यहदोनों आहुति हैं। क्योंकि अग्निहोत्र की दो आहुतिवत् सर्वदा दोनों की संख्या की समताहै। अरु तिसकरके यह दोनों आहुतिरूप हैं। अरु जो इनउच्छ्वास अरु निश्वासरूप आहुतिको, अग्निहोत्रके हवनकर्त्ता होतावत्, शरीर की स्थितिके निमित्त समभावसे जो वायु प्रवृत्तकरता है, तिसकरके सो वायु दोनों आहुतिका प्रवर्त्तक होनेसे पूर्वोक्ति के अनुसार अग्निस्थानापन्न हुआ २ भी होतारूप है, १ [शंका। प्राणाग्नयः इसवाक्य से सर्व प्राणोंको अग्नित्व कहाहै, तब यहां समानवायुको होताकर के कैसे कहतेहैं॥ समाधान॥ हे सौम्य यद्यपि। प्राणाग्नयएवै

तस्मिन् पुरे जाग्रति । (पांचप्राणरूप अग्निही इसपुरबिषे जागते हैं) इस तीसरे वाक्य बिषे समानवायु को भी अग्निस्थानापन्न कहाहै सोसत्य है, तथापि (जैसे अग्निहोत्रबिषे हवनकर्त्ता ब्राह्मण दोनों आहुतियोंको आहवनीय नामवाले अग्निके प्रति समभावसे हवनकरताहै,तैसे) यहसमानवायु उच्छ्वासअरु निश्वासरूप दोनों आहुतियों को शरीर की स्थिति रहनेके अर्थ समताकरके प्रवृत्त करे है, एतदर्थ आहुति का प्रवर्त्तकहोने से तिस समान वायु को होता नामसे कहते हैं। अरु समानवायु को होतापनेके सिद्धअर्थ जो अग्निपने का कथन है तिसका ,छत्रीवाले जाते हैं, इसवाक्यसे जिसके पास छत्री है तिसका अरु तिससे भिन्न दूसरेका दोनों का ग्रहणहोता है।तैसेही अग्निरूप अरु तिससे भिन्नहोतारूप दोनों के ग्रहणबिषे यह लाक्षणिक अर्थ हैं] १॥ प्र० ॥ यहहोता रूपवायु कौनसा है॥उ०॥ सो होतारूप समान नामवाला वायु है। [तीनों अवस्थाओं से रहित अरु तीनों अवस्थांमें वर्त्तमान उच्छ्वास अरु निश्वासरूप प्राणोंकी अग्निहोत्र के अवयव रूपताके सम्पादनका उपासना रूपप्रयोजन नहीं,क्यों कि यहां निर्विशेष आत्माका प्रसंगहै ताते। अरु यहां तिसप्राणोंकी विधिका अभावहै ताते। किन्तु इन्द्रियां सोवे हैं अरु प्राणजागे हैं ऐसा कहा है। ताते यहां त्वं पद के शोधनरूप ज्ञानकी स्तुतिहीहै] एतदर्थ विद्वान् (कर्मउपासना के समुच्चय करनेवाले) का स्वप्न भी अग्निहोत्रका हवनहीहै। ताते विद्वान् कर्मसे रहित नहीं ऐसा मानना योग्य है । अरु (मनोहवाव यजमानः । (मन प्रसिद्ध यजमानहै) (स्वप्नबिषे पंचप्राणरूप अग्निके जागते हुये बाहरके करणोंको अरु विषयों को लय करके , अग्निहोत्र का फल जो स्वर्गतद्वत् , सुषुप्तिकाल विषे ब्रह्मके अर्थ जानेको इच्छाकरता हुआ मनयजमानवत् प्रसिद्धजागता है। अर्थात् सो मन , जैसे यजमान यज्ञकी सर्व सामग्री में प्रधान होता है तैसे , कार्य अरु करणोंबिषे प्रधान

अत्रैष देवःस्वप्ने महिमानमनुभवतियद्दृष्टं दृष्टमनु पश्यति श्रुतंश्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्चप्र त्यनुभूतं पुनः पुनःप्रत्यनुभवतिदृष्टञ्चादृष्टञ्चश्रुतञ्चाश्रुत ञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्चसर्व्वःपश्यतिसर्व्वःपश्यति ५।४६

होने करके व्यवहार करनेसे, अरु, जैसेयजमान स्वर्गार्थ प्रस्थान पावता है तैसे, ब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं प्रस्थान को पायाहोनेसे यजमान है। ऐसाजानना अरु ९। इष्टफलमेवोदानः। ८ उदान यज्ञका फलही है ११ उदानवायु जो उत्क्रमण में प्रधान है सो यज्ञका फलही है काहेते कि यज्ञके फलकी प्राप्ति उदान वायुरूप निमित्त वाली है ताते [अर्थ यह है कि यजमानको मरणके अ- नन्तर उदानवायुरूप निमित्तवाले यज्ञादिकों के फलकी प्राप्ति है ताते उस उदानवायुको यज्ञोंके फलका निमित्त कारण होनेसे अरु कारण बिषे कार्यके आरोप होनेसे उदान वायुको इष्टफल करके कहा है ॥ प्र०॥ उदानवायुको यज्ञका फलपना कैसे है ॥ उ०॥। सएनं यजमानमहरहर्ब्रह्मगमयति। ८ सोइसयजमान को दिनदिन बिषे ब्रह्मके अर्थ प्राप्तकरता है १ सो उदानवायु इसमन नामवाले यजमान को स्वप्न वृत्तिरूपसे भी चलायमान करके नित्य नित्य सुषुप्ति कालबिषे अक्षरब्रह्मरूप स्वर्गके ताईं ही प्राप्तकरेहै। अर्थात् [यद्यपि दिनदिनबिषे जोब्रह्मकीप्राप्तिहो- तीहै सो यज्ञका फलनहींकाहेते कि यज्ञसे रहितपुरुषकोभी तिस सुषुप्तिबिषे उस ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै ताते। तथापि ब्रह्मकोहीसर्व यज्ञोंका फलपनाहै, ताते सुषुप्तिरूप द्वारकरके तिसब्रह्मके प्रापक उदानवायुको इष्ट फलकी प्रापकताहै, यहभावहै] एतदर्थ उदा- नवायु यज्ञके फलके स्थानापन्न है॥ इतिसिद्धम् ४। ४५॥

५॥ शंका। गार्हपत्यो हवा एषोऽपानो। ८ यह अपानवायु गार्हपत्य नामवाला अग्निहै १ यहांसे आरंभकरके। मनो हवा- व यजमान। ८ मनरूपही प्रसिद्ध यजमानहै १ इस श्रुतिपर्यन्त

जोकहाहै तिसकरके विद्वान्कर्मी नहीं होता इसप्रकार विद्वान् की स्तुतिकिया है ऐसा तुमनेकहा सो अस्तु । परन्तु इसप्रकार तहां अग्निहोत्रादि कर्मोंकी प्रतीतिसे उदानवायुको यज्ञके फल स्थानापन्न कहाहै तिसकरके तो इस यज्ञका फलपना नहींहै, क्योंकि तहां कर्मकी अप्रतीति है ताते ॥ समाधान ॥ यहां यह भावहै कि, श्रोत्रादि इन्द्रियां स्वप्नबिषे सोवें (उपरामहोवें) हैं अरु प्राणही जागतेहैं, इस स्वरूपवाली विद्यारूप विद्वत्ताहै तिस विद्वत्ताकी यहां स्तुतिकरतेहैं । अरु इस उक्तविद्याको, जागरण जो है सो श्रोत्रादि वाह्य इन्द्रियोंका धर्महै अरु शरीरका रक्षण करना प्राणका धर्महै ताते इनमें आत्माकाधर्म कोई नहीं इस प्रकारके त्वंपदके, विवेकरूप होनेसे उक्त विद्याकरके युक्त विद्वान् की स्तुतिकरनेकी योग्यताका संभवहै । अरु एतदर्थही प्राणका जो जागरणहै सो विद्वान् अरु अविद्वान् दोनोंको समानही है तब अविद्वान्को त्यागके विद्वान्कीही स्तुतिकैसे है, ऐसीजोरही शंका तिसकाभी अभावभया, क्योंकि अविद्वान्को उक्तविद्याके विवेकका अभावहै ताते, विद्वान्की ही स्तुतिहै] हे सौम्य, इस प्रकार विद्वान् को श्रोत्रादि इन्द्रियरूप करणों के उपरामकाल से आरंभकरके यावत् पर्य्यन्त सुषुप्तिसे उत्थानको प्राप्तहोता है तावत्पर्यन्त सर्व यज्ञके फलके अनुभव होने से अविद्वानोंवत् अनर्थ के हेतुनहीं । इसप्रकार यहां विद्वत्ताकी स्तुति करते हैं । अरु जिसकरके केवल विद्वान्केही श्रोत्रादि इन्द्रियां सोवे हैं, अथवा प्राणरूप पांच अग्नि जागते हैं, अथवा जाग्रत् अरुस्वप्न विषे मन अपनी स्वतंत्रताको अनुभवकरता हुआ नित्य नित्य सुषुप्ति को प्राप्तहोता है ऐसा नहीं ताते विद्वान्केही इन्द्रियादि उपरामादि होते हैं इसप्रकारका विधानकरना योग्य नहीं, किन्तु सर्व प्राणधारियोंको क्रमसे जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति यहतीनों अवस्थाविषे जो गमन है सो समानही है । एतदर्थ यह विद्वान् की स्तुतिही संभवे है ॥ हे सौम्य पूर्व जो गार्ग्यमुनि ने तीसरा

प्रश्न कियाथाकि । कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति । (कौनसा यह देव स्वप्नोंको देखता है ; तिसकाउत्तर पिप्पलाद मुनिकहते हैं कि हे गार्ग्य । अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । (यहांयह देव स्वप्नविषे महिमाको अनुभव करेहै ; अर्थात् प्रथम श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपरामभये अरु देहकीरक्षार्थ प्राणादि पांचवायुकेजागतेहुये सुषुप्तिकी प्राप्तिसे पूर्वइससन्धिमें यहदेव ,जैसे सूर्य्य अपनी किरणोंको अपने बिषे लयकरता है तैसे , अपने स्वरूपबिषे लयकिये हैं चक्षुरादि करण जिसने, इसप्रकारहुआ स्वप्नबिषे विषय अरु विषयीरूप अनेक वस्तुओंको आत्म (अपने) भाव की प्राप्तिरूप महिमा को अनुभव करताहै ॥ शंका ॥ महिमा के अनुभव करने बिषे अनुभव कर्त्ताको करण जो है सो मनहै एतदर्थ सो मन स्वतन्त्रहोनेसे कैसे अनुभव करता है॥समाधान॥हे सौम्यक्षेत्रज्ञ आत्मरूपजो देव है सो स्वतन्त्र हुआ भी महिमा का अनुभव करता है यह दोष नहीं है। क्योंकि क्षेत्रज्ञका जो स्वतन्त्रपना है सो मनरूप उपाधिका किया है। अरु परमार्थसे तो स्वयंक्षेत्रज्ञ न सोवता है न जागता है ताते तिसक्षेत्रज्ञका जो जागना अरु सोवना है सो मनरूप उपाधिकृतही है ॥ तथाच । सधीः स्वप्नोभूत्वा ध्यायतीवेत्यादि । (बुद्धि सहितहुआ , आत्मा , स्वप्नरूप हो के ध्यावते हुयेवत् होता है इत्यादि ; बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे कहाहै । एतदर्थ देवशब्द करके उक्तमनको विभूत के अनुभव करने बिषे स्वतन्त्रपने का वचन युक्तही है ॥ हे सौम्य , कईएक वादी कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ को स्वप्नकाल बिषे मनरूप उपाधिकरके सहितहुये तिसक्षेत्रज्ञको स्वयंज्योतिपनेकी प्रति पादक श्रुति बाधको पावतीहै, सोबनेनहीं । क्योंकि उनवादी पुरुषोंको श्रुत्यर्थ के अज्ञानसे भई भ्रान्ति है । अरु जिससे मनआदिक उपाधिकरके जन्य जो स्वयंज्योतिपने आदिका व्यवहार है सोभी मोक्ष पर्यन्त सर्व अविद्या (अविद्वान्)का विषयही है । क्योंकि । यत्र वा अन्यादिव स्यात्तत्रा-

न्योऽन्यत्पश्येन्मात्रं संसर्गस्त्वस्य भवति । (जहां वा अन्यवत् होय तहां अन्य अन्यको देखे अरुइस आत्माको विषयोंसे असम्बन्धहोता है) अरु । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कंपश्येदित्यादिश्रुतिभ्यः । (जहां तो इस (पुरुष) को सर्व आत्माही होताभया तहां किसकरके किसको देखे) इत्यादिक बृहदारण्य उपनिषद्के छठे अध्यायकी श्रुतिसे सिद्धहै तातेउक्तजो शंकाहै सो मंद ब्रह्मवेत्ताओंकी ही करीहुई है (यथार्थ एकात्मवेत्ताकी नहीं, ॥ शंका ॥ हेभगवन् जैसा आप कहतेहौ तैसा होनेसे । अत्रायंपुरुषः स्वयंज्योतिः । (यहां यह पुरुष स्वयंज्योति है) इस श्रुति बिषे । अत्र । (यहां) ऐसा जो विशेषण है सोव्यर्थ होवेगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य हे वादी यहतुम्हकरके अल्पही कहते हैं जिसकरके । यएषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेतेति । (जो यहअन्तर हृदय बिषे आकाश है तिसबिषे (आत्मा) रहताहै) इसश्रुतिकरके अन्तरहृदयके परिच्छेद के भयं अवश्यकरके आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधको पावेगा॥ अरु जोकहे कि यद्यपि यह उक्त दोष होगा, यह आपका कहनासत्यही है, तथापिस्वप्न बिषे आत्माको केवल (मनकेअभावयुक्त) पनेसे स्वयंज्योति होने करके तिस आत्माका आधा ओज (प्रतिबन्धक) दूरभया अरु [अवशेष रहा जो आत्मा तिसका बाध सुषुप्ति बिषे होगा यह तेरा अभिप्राय है] सो कहना बनेनहीं । क्योंकि वहां (सुषुप्तिबिषे) भी । पुरीततिशेतेति । (पुरीतति नामवाली नाडी बिषे रहता है) इस श्रुति करके (पुरीतति नामवाली नाडियों का सम्बन्ध रहता है ताते ॥ अरु जो ऐसाकहे कि वहां स्वप्नमें भी पुरुषको स्वयंज्योति होने से जब आधे ओजके दूर होने का अभिप्राय मिथ्याही है ॥ तब । अत्रायंपुरुषःस्वयंज्योतिर्भवति । (यहां यह पुरुष स्वयंज्योति होताहै) यहकहना कैसे बनेगा । अरु जो कहो कि अन्यशाखान्तर रहनेसे यहश्रुतिअन्य श्रुतिकी अपेक्षासे रहती है सोभीबने नहीं क्योंकि सर्व श्रुतियों

के अर्थ की जो एकता है सोई इच्छित है ताते। अरु सर्व वेदान्त शास्त्रों का अर्थ रूपएकही आत्मा आचार्य करके जनावनेको अरु जिज्ञासुओं करके जानने को इच्छित है। एतदर्थ श्रुतिको यथार्थ तत्त्व की प्रकाशक होनेकरके स्वप्नबिषे आत्मा के स्वयं ज्योतिपनेका संभव कहने को युक्त है। ऐसे वादी ने कहा। तब सिद्धान्ति कहे हैं कि हेवादी जब तू इसप्रकार जानता है तब अपने सर्व अभिमान को त्यागके इस बृहदारण्यकी श्रुतिका अर्थ श्रवणकर, क्योंकि अभिमानके होते तो सौवर्ष पर्यन्त भी अपनेको पंडित माननेवाले पुरुषों करके श्रुतिका अर्थ जानने को शक्य नहीं। ताते यहां श्रुतिका यह अर्थ है कि जैसे हृदयाकाश बिषे अरु पुरीतति नामवाली नाड़ियों बिषे स्वप्नको प्राप्त हुये आत्माका उनस्थान अरु तिनके धर्म से सम्बन्धका अभाव है, ताते आत्मा उन्हों करके (चन्द्रशाखा न्याय प्रमाण.) विवेचनकरके देखावनेको शक्य होता है। एतदर्थ आत्माका स्वयं ज्योतिपना बाधको पावता नहीं। इसप्रकार अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप निमित्तों से उद्भवताको प्राप्तभई जो वासना तिस वासनावाले मनबिषे कर्मरूप निमित्तवाली वासनासंघ अविद्या से अन्यको अन्यवस्तुवत् देखनेवाले, अरु समस्त कार्य अरु करणसे विवेचन कियेहुये द्रष्टाको दृश्यरूप वासना से पृथक् होने करके तिसका स्वयं ज्योतिपना, नित्य गर्वित नैयायिकोंसे भी निवारण करनेको शक्य नहीं। ताते करणोंके मनबिषे लीनहुये अरु मनके अलीनहुये मनोमय देव स्वप्नों को देखताहै। यह आचार्य (पिप्पलाद) ने श्रेष्ठकहाहै ॥प्र०॥ हे प्रभो कैसे महिमाको अनुभव करता है ॥उ०॥ हे सौम्य। यद्दृष्टंदृष्टमनुपश्यतिश्रुतंश्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति। (जिसको देखा है (तिसको) देखेहुयेवत् मानता है (अरु) सुने अर्थको पीछे सुनेहुयेवत् मानता है; अर्थात् जिस मित्र वा पुत्रादिकों को पूर्व देखता भयाहै तिनकी वासना करके युक्त भया, पुत्र वा मित्रादिकों की वासनासे उत्पन्न हुये

सयदातेजसाऽभिभूतोभवति अत्रैषदेवःस्वप्नान्नप
श्यत्यथतदैतस्मिञ्छरीरेएतत्सुखंभवति ६ । ४७ ॥

दृष्टवस्तुको पुत्र अरु मित्रवत् अविद्या करके देखेहुयेवत् मानता है। तिसही प्रकार जो अर्थ सुना है तिसही सुने अर्थ को तिस की वासनावश पीछे सुनेहुयेवत् मानता है। अरु१ । देशदिगन्तैरेश्च प्रत्यनुभूतंपुनःपुनः प्रत्यनुभवति । २ देशसे अरु दिशान्तर से बारम्बार अनुभव किये को अनुभव करता है;१ नदी के तट आदि अन्य देशों से अरु पूर्वादि अन्य दिशाओंसे बारम्बार अनुभव किया जो वस्तु तिनको अविद्या करके अनेक दिनों विषे वर्त्तमान अनेक स्वप्न विषे अनुभव करता है। अरु१ । दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चानुभूतञ्चसर्व्वं पश्यति सर्वः पश्यति । २ देखे अरु न देखे, सुनेअरु न सुने, अनुभवकिये अरु न अनुभव किये सर्वको देखताहै सबहुआ देखता है;१ तैसेही अन्यजन्म विषे देखे अरु इस जन्मविषे न देखे वस्तुको अरुतैसेही अन्य जन्मविषे सुने अरु इसजन्म विषे न सुने वस्तु को अरु तैसेही अन्य जन्मविषे मन करकेही अनुभव किये अरुइस जन्मविषे केवल मनसे न अनुभव किये अर्थात् जलादि सत्यरूप अरु मरीचिजल आदिक असत्यरूप, किन्तु बहुत कहनेसे क्या है, इन सर्व वस्तुको जो देखता है सो सर्व मनकी वासना रूप उपाधिवाला हुआ देखताहै इसप्रकार सर्व करणरूप मनोमयदेवस्वप्नोंको देखता है इतिसिद्धम् ५ । ४६ ॥

६ । हे सौम्य अब गार्ग्यमुनिका जो चतुर्थप्रश्न है कि, यह सुख किसको होता है, तिसका उत्तर जो पिप्पलादमुनिनेकहा है तिसको भी श्रवण करो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य । सयदातेजसाऽभिभूतोभवति । २ सो जिसकाल विषे तेज करकेपराभव होता है;१ अर्थात् सो मनरूप देव जिस कालविषे चिन्ता नामवाले सूर्यके तेजकरके नाडीरूप शय्याविषे सर्वओरसे परा-

स यथा सौम्यवयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं हवैतत्सर्व्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ७। ४८

भवको प्राप्त होता है अर्थात्, वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्न भोग के दाता जे कर्म तिनके तिरस्कार करके युक्त होता है तब इन्द्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदय बिषे लीनहोते हैं। तब मन वनके अग्निवत् सामान्यज्ञान अर्थात्चैतन्य, रूपता करके सम्पूर्ण शरीरबिषे व्याप्त होके स्थितहोता है, तब सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तब, (। अत्रैषदेवः स्वप्नान्न पश्यति। (यहां यह देव स्वप्नों को नहीं देखता ;) तिसकाल बिषे मन नामवाला देव स्वप्नों को देखता नहीं क्योंकि देखनेके जे द्वारहैं सो तेजकरके निरोधको पावते हैं। अरु (। अथतदैतस्मिञ्छरीरेएतत्सुखं भवति । (पीछे तब इस शरीर बिषे यहसुखहोता है;) अर्थात् जो बाधरहित सामान्यरूपसे शरीरबिषे व्यापक प्रसन्नज्ञानरूप स्वरूपसुख है सो यह अर्थ है ६। ४७॥

७। हे सौम्य [कहे प्रकार इस षष्ठवाक्य करके आनन्दमय कोश शब्दका वाच्य अस्पष्ट अरु मन आदिकों को वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मी है, इस प्रकार गार्ग्यमुनिके । कस्यैतत्सुखं भवति। (किसको यहसुखहोताहै) इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा ॥ अब इस सातवें वाक्यकरके गार्ग्यमुनिके । कस्मिन्नुसर्व्वे सम्प्रतिष्ठिताभवन्तीति । इसपंचमप्रश्नका उत्तर, विवेकी सुगमतासे तुरीय स्वरूपोंको विवेचन करके कहते हैं] इसकालबिषे अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप कारणसे भये जे कार्य अरु करण सो निवृत्त होते हैं। अरु तिनके निवृत्तहुये उपाधियों से विपरीत भासमान जो आत्मास्वरूप सो अद्वैत एक शिव (सुखरूप) शान्त होताहै एतदर्थ इसही सुषुप्ति अवस्था को पृथिवी आदिक भूत अरु अविद्यारचित तिनकी मात्रा के बिवेककरके अक्षरब्रह्मबिषे प्रवेशसे देखावनेको दृष्टान्त कहते हैं

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाश मात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्चबोधव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च. ८ । ४६ ॥

। स यथा सौम्यवयांसि वासो वृक्षंसम्प्रतिष्ठन्ते । ८ हे सौम्य जैसे पक्षी वासार्थ वृक्षकेताईं जाते हैं ९ अर्थात् पक्षी जो हैं सो निवासकरनेके अर्थ वृक्षप्रति जाते हैं ॥ तैसे यहदृष्टान्तहै ९ । एवं हवैतत्सर्व्वं पर आत्मनिसम्प्रतिष्ठते । ८ ऐसे प्रसिद्ध सो सर्व परमात्माविषे जाताहै ९ : इसही प्रकार प्रसिद्ध सो जो आगे कहैंगे सर्व जगत् अविनाशीरूप परमात्माविषे लयहोता है ७।४८ ८ ॥ हे भगवन् जो सर्व जगत् परमात्माविषे जाताहै सो कौनहै ॥ ३० ॥ हे सौम्य इसको भी श्रवणकरो । पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्राच तेजश्चतेजोमात्राच वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा । ८ पृथिवी अरु पृथिवी की मात्रा (गन्ध) । पुनः जल अरु जलकीमात्रा (रस) । पुनः तेज अरु तेजकी मात्रा (रूप) । पुनः वायु अरु वायुकी मात्रा (स्पर्श) । पुनः आकाश अरु आकाशकी मात्रा (शब्द) । अर्थात् गंधादि तन्मात्रारूप अपंचीकृत पंच महाभूत सूक्ष्म । अरु पृथिव्यादि पंचीकृत महाभूत स्थूल । अरु ९ । चक्षुश्चद्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक्च वक्तव्यञ्च हस्तौ

चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्चाविसर्जयितव्य ञ्चपादौ च गंतव्यञ्च । ८ चक्षु अरुदेखने योग्य वस्तु, श्रोत्रअरु सुननेयोग्य वस्तु, पुनः घ्राण अरु गंध लेने योग्य वस्तु, पुनः रसना अरु रसलेने योग्य वस्तु,पुनः त्वचा अरु स्पर्शकरनेयोग्य वस्तु वाचा अरु बोलनेयोग्य वस्तु, पुनः दो हाथ अरु लेने देने योग्य वस्तु, पुनः उपस्थ (लिंग) अरु आनन्द देनेयोग्य वस्तु, पुनः पायु (गुदा) अरु त्यागनेयोग्य वस्तु, पुनः दो पाद अरु चलने योग्य वस्तु ः । अर्थात् यहां ज्ञानेन्द्रियां अरु कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण अरु तिनके विषयकहे । अरु । मनश्चमन्तव्यञ्चबु, द्धिश्चबोधव्यञ्चाहंकारश्चाहंकर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्य- ञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च । ः मन अरु मननकरनेयोग्य वस्तु, पुनः बुद्धि अरु जाननेयोग्य वस्तु, पुनः अहंकार अरु अहंकरने योग्य वस्तु, पुनः चित्त अरु चिंतन करने योग्य वस्तु, पुनः प्रकाश अरु प्रकाशने योग्य वस्तु, पुनः प्राण अरु धारण करनेयोग्य वस्तु ः अर्थात् उक्तमन अरु मनन करनेयोग्य वस्तुरूप तिसका विषय, अरु निश्चय आत्मकरूपा बुद्धि अरु जाननेयोग्य वस्तुरूप तिसका विषय अरु अभिमानात्मक अन्तःकरण रूप अहंकार अरु अभिमान करनेयोग्य वस्तुरूप तिसका विषय, अरु चेतनावृत्त्यात्मक अन्तःकरणरूप चित्त अरु चिन्तन करनेयोग्य वस्तु रूप तिस- का विषय, अरुत्वचा इन्द्रिय से भिन्नप्रकाश युक्त चर्मरूप तेज अरु तिससे प्रकाश करनेयोग्य सोई तेजका रूपवस्तुतिस- का विषय । अरु जिसको सूत्रात्मा कहते हैं ऐसा जो प्राण सो अरु तिस प्राणसूत्रात्मा करके धारण करनेयोग्य सर्वकार्य करण का संघातरूप यह पर अर्थात् अपने से इतरके अर्थ होनेकरके मिश्रित हुआ नाम रूपात्मक जगत् तिसका उपाधिभूत इतना- ही सर्व है ८ । ४९ ॥

९ ॥ हेसौम्य यह जोतुझको कहा इस सर्वसे पर जोजगत्

एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ६ । ५० ।

का कर्त्ता आत्मस्वरूप है सो सूर्यके अर्थात् जलादिगत सूर्यके प्रतिविम्ब आदिकोंवत् भोक्तापने अरु कर्त्तापने करके इस विषे प्रवेश को पाया है एतदर्थ । एषहिद्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष । ८ यह ही देखनेवाला स्पर्श करनेवाला सुननेवाला स्वादका लेनेवाला मननकरनेवाला जाननेवाला करनेवाला अरु विज्ञानात्मा पुरुषहै ५ अर्थात् जिसकरके जानतेहैं ऐसा जोकरणरूप बुद्धिआदिक विज्ञानहै सो यहनहीं, किन्तु यहतो जो जानताहै ऐसा कर्त्ता अरु कारकरूप विज्ञानहै तिस विज्ञानरूप स्वभाववालाहै अर्थात् विज्ञाता स्वभाववालाहै एतदर्थ विज्ञानात्मा कहते हैं । अरु तिसहीको कार्य अरु करणके संघातरूप उक्त उपाधियों विषे पूर्ण होनेसे पुरुषकहतेहैं । स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते । ८ सो अक्षररूप परमात्माविषे लीनहोताहै सो पुरुष जैसे जलादि आधारके शोषणहुये सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्ब सूर्यादिकों विषे प्रवेशको पावतेहैं तैसेही अक्षररूप परमात्माविषे लीनहोताहै ९-५०

१० ॥ हे सौम्य अब तिस जीवात्मा अरु परमात्माकी अभेदताके जाननेवाले को जो ब्रह्म प्राप्तिरूप फलहोताहै सो कहते हैं । यस्तु सौम्य। ८ हे सौम्य, जो ५ ८ । स यो ह वै । ८ ५ कोईकहीं सर्व एषणासे रहितहुआ ८ । तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते । ८ तिसअछाय अशरीर अलोहितशुद्ध अक्षर को जानताहै ५ अर्थात् ५ तिस अज्ञानरहित अरु शरीररहित अरु लोहितादि गुणरहित ८ [अर्थात् अज्ञानादि तीन विशेषण से रहित कहनेसे कारण अरु सूक्ष्म अरु स्थूल इनतीनों शरीरोंका निषेधहै तिसकरके अवस्था तीनोंका भी निषेधहोता है, तिस

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः सर्वोभवति तदेषश्लोकः १०। ५१

निषेधसे आत्माका जो तीनों अवस्थासे रहितपनाहै तिसकाअनुवाद करतेहैं] १ अरु नामरूपादि सर्व उपाधिके शरीरसे रहित, अरु रक्तादि द्रव्यवत् रक्तादि सर्वगुण रहितहै। हे सौम्य जिस करके ऐसा है इसहीसे शुद्ध है अरु सर्व विशेषणों से रहित है ताते अक्षर १ सत्य पुरुष नामवाला प्राणरहित मनका अविषय शिव रूप शान्त बाहर भीतरकी कल्पनासे रहित अजन्मा १ को जानता है ९। परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स। ८ सो परम अक्षरकोही प्राप्त होता है ; सो पुरुष परब्रह्मरूप अक्षरकोही पावता है। ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति। अरु जो सर्वकात्यागी हुआ जानता है ९। स सर्व्वज्ञःसर्वो भवति तदेषश्लोकः १०। ८ सो- सर्व्वज्ञ है सर्व होता है तिस बिषे यह श्लोक (प्रमाण) है ; १ सो ज्ञानवान् सर्वज्ञ होता है। अर्थात् तिसअक्षर के जाननेवाले से अज्ञात कुछ भी संभवता नहीं ॥ शंका ॥ सर्व्वात्मभावको ज्ञानकरके जन्यताके होनेसे तिस सर्व्वात्म भावका अनित्यपना होता है ॥ समाधान ॥ पूर्व अविद्या करके असर्वज्ञथा पश्चात् आचार्यके उपदेशसे विद्याकरके अविद्या के अभाव भये सर्वरूप होता है उपजता नहीं, अरु तिसही अर्थबिषेयह अग्रिम(आगे) कहने का वाक्य रूप श्लोक (वेदका मंत्र) प्रमाण है १०।५१

हे सौम्य पिप्पलादमुनि कहते हैं कि। सौम्य। ८ हे प्रियदर्शन हे गार्ग्य ;। सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणाभूतानि सम्प्रतिष्ठन्तियत्र। ८ सर्वदेवताओं करके (सहित) इन्द्रिय (अरु) भूतजिसबिषे प्रवेश को पावते हैं ; अर्थात् समस्त अपने अधिष्ठाता देवताओं करके सहित चक्षुरादि इन्द्रिय अरु पृथिव्यादि भूत जिस अक्षर बिषे प्रवेश को पावते हैं ९। तदक्षरंयस्तु। ८ तिसअक्षरको जो ;

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणाभूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयतेयस्तुसौम्यससर्व्वज्ञःसर्व्वमेवाविवेशेति ११ । ५२ ॥

इतिश्रीप्रश्नोपनिषदिचतुर्थप्रश्नःसमाप्तः ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतपंचमप्रश्नः ॥

अथहैनंशैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । सयोहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति १ । ५३ ॥

। विज्ञानात्मा । (जीव) अर्थात् (तिस सर्वके आश्रयरूप अक्षर को जो उक्त अर्थ का जिज्ञासु (ग्राहक) जीवात्मा । वेदयते । (जानताहै) । स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविवेशेति । (सो सर्वज्ञहुआ सर्व के ताईंही प्रवेशको पावता है) अर्थात् सर्वज्ञ सर्वात्माहीहोता है ११ । ५२ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गत चतुर्थप्रश्न भाषा टीका समाप्ता ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत पंचमप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

१ ॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन [इसप्रकार चतुर्थ प्रश्नविषे कहे प्रमाण उत्तमाधिकारीको पदार्थके शोधन पूर्वक वाक्यार्थके ज्ञानसे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिकहके अब इसविषे मध्यमाधिकारी मन्द वैराग्यवाले अरु "ॐ" ऐसे आत्माको ध्यान करनेवाले (। प्रणवोधनुः । (ओंकार धनुषहै) इत्यादि मुंडक उपनिषद् के मंत्रसे सूचितकिया जो ब्रह्मलोककी प्राप्ति तिसद्वारा क्रम

करके अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्त्थ ॐकारकी उपासना कहने को पंचम प्रश्नको प्रकट करते हैं] अब गार्ग्यमुनिके प्रश्न के निर्णय भये पश्चात् परब्रह्म अरु अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होने करके ॐ कारकी उपासनाके करनेकी इच्छासे पंचम प्रश्नका प्रारंभकरते हैं । अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । (तिसके पश्चात् इसको शिविका पुत्र सत्यकाम पूछताभया ; अर्थात् गार्ग्यमुनिके पश्चात् इस निर्णयकर्त्ता पिप्पलादमुनिको शिविऋषिका पुत्र सत्यकाम नामामुनि पूछताभया ॥ सत्यकामउवाच ॥ । सयोहवै तद्भगवन्मनुष्येषु । (हे भगवन् मनुष्योंके मध्य सो अद्भुतवत् है सो जो (कोई एकमनुष्य) ; । प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । (मरणपर्यन्त ॐकार को सन्मुख ध्यान करे ; अर्थात् जो कोई एक मनुष्य शरीरके पातहोने पर्यन्त इस ॐकार को सन्मुख होने करके चिन्तन करे । अर्थात् जो वाह्यके विषयों से निवृत्त किये इन्द्रियों वाला अरु भक्तिकरके आरोपित किया है ब्रह्म भाव जिस बिषे ऐसे ॐकार बिषे एकाग्रचित्तवाला अरु उच्छेद (विनाश) रहित आत्माकार वृत्तिवाला अरु अनात्माकार वृत्तिरूप अन्तराय (विविधान) से रहित हुआ , जैसे वायुकरके रहित स्थानबिषे स्थित जो दीपक तिस दीपक की शिखा के समान निश्चल चित्तवाला होय, अरु सत्य भाषण ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह (दान न लेना) त्याग (दान देना) सन्न्यास (संग्रहका त्याग) शौच (पवित्रता) संतोष निष्कपट भाव) इत्यादि अनेक यम नियम से अनुग्रह को पाया होय, सो पुरुष आश्चर्यवत् है (। कतमं वाव स तेन लोकंजयतीति । (सोतिससे कौनसेलोकको पावताहै) हे भगवन् सो इसप्रकार यावत्पर्यन्त जीवत रहै तावत्पर्यन्त नियम की धारणावाला पुरुष उपासना अरु कर्म्मों करके जो पावनेयोग्य अनेक लोकहैं तिनमें से तिस ॐकारके अभिध्यान करने से कौनसे लोकको पावताहै १ । ५२ ॥

तस्मैसहोवाचएतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्चब्रह्मयदो ङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति २ । ५४ ॥

२ ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब सत्यकाम मुनिने प्रश्न किया तब ९ । तस्मै सहोवाच । ८ तिसको सोकहताभया ; ९ तिस प्रश्नकरनेवाले सत्यकाम नामक अपने शिष्यप्रति सो पिप्पलाद-मुनिनामा आचार्य स्पष्ट कहताभया [इस उपासनाको ॐकार के अभिध्यानरूप होनेसे दहराकाशादिकोंकी उपासनावत् अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधनही है , अथवा परब्रह्मकी प्राप्तिका भी साधनहै । इसप्रकारसे प्रश्नकरनेवाले शिष्यके अभिप्रायके जान-नेवाले सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनि कहतेभये कि यह ॐकार अपर-ब्रह्मके आलम्बनहोनेसे जब तैसाध्यानकरिये तब अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै अरु परब्रह्मके आलम्बनहोनेसे जब ॐ-कारका तैसा ध्यानकरिये तब सो क्रमसे परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै ९ । एतदालम्बनं श्रेष्ठ मेतदालम्बनं परम् । एत दालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते । ' ऐसा उत्तर कहते हैं, ॥ पिप्पलादउवाच ॥ । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदों कारः । ८ हे सत्यकाम यह जो परब्रह्म अरु अपरब्रह्महै सो ॐ-कारहीहै ; अर्थात् हे सत्यकाम यह जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामोंकरके परब्रह्महै अरु सबसे प्रथम उत्पन्नभया प्राण (सूत्रात्मा) नामकरके अपरब्रह्महै सो उभयप्रकार का ॐकारही है । क्योंकि ॐकाररूप प्रतीकवालाहै ताते ॥ शंका ॥ ब्रह्म अरु ॐ कारके भेदसे तिनकी एकता कैसे बने ॥ समाधान ॥ तिनकी एकता आरोपसे बनती है । यहां यह भावहै कि इस ब्रह्म अरु ॐकारके एकअर्थविषे तात्पर्यरूप सामानाधिकरणसे ॐकारका प्रतीकपना उपदेशकरतेहैं । जैसे शालग्रामादि पाषाणविषे विष्णु आदिक बुद्धि करनी तैसे, । जिस और विषे औरकी बुद्धि करिये सो तिसका प्रतीक कहतेहैं । यहां ब्रह्मसे इतर जो वर्णात्मक

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदित स्तूर्ण मेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनय न्ते सतत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति ३। ५५॥

ॐकार तिसबिषे ब्रह्मकी बुद्धिकरतेहैं एतदर्थ ॐकार ब्रह्मका प्रतीकहै। जैसे विष्णु आदिकोंके शालग्रामादि,] अरु जिसकरके सर्व धर्मके भेदसे रहित परमात्मा शब्द आदि प्रमाणोंकरके साक्षात् बोधकरनेके अयोग्यहै, एतदर्थ इन्द्रियोंके अगोचरहोनेसे केवल करणरहित मनसे भी जाननेको शक्यनहीं, किन्तु,जैसे शालग्रामादिबिषे आरोपितकरतेहैं विष्णुभाव तैसे, भक्तिकरके आरोपकिये ब्रह्मभाववाले ॐकारके सम्यक् ध्यानकरनेवाले पुरुषको सो जाननेमें आवताहै, इसबिषे शास्त्रका प्रमाणहै ताते। अरु इसही प्रकार अपरब्रह्म भी जाननेमें आवताहै। एतदर्थ जो पर अरु अपररूप ब्रह्महै सो ॐकारहै। इसप्रकारका आरोपकरते हैं १। तस्माद्विद्वाने ते नैवायतने नैकतरमन्वेति। २ ताते ऐसे जाननेवाला इस ध्यानसेही दोनोंमेंसे एकको पावताहै; १ एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ॐकारके ध्यानरूप, आत्माकी प्राप्तिके साधन रूप साधनके आश्रयसेही परब्रह्म अरु अपरब्रह्म इन दोनोंमेंसे एकको पावताहै॥ कि जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे करताहै २। ५४॥

३॥ हे सौम्य जो पुरुष, ब्रह्मका समीपवर्त्ति श्रेष्ठ आलम्बन अर्थात् उपकार साधक अरु अकार आदिक तीनमात्रावाला जो ॐकार सो उपासनाकरनेकेयोग्यहै इसप्रकार यद्यपि ॐकारकी अकारादि सर्वमात्राके विभागका यथार्थजाननेवाला न होय, किन्तु ॐकारकी एकअकारमात्रा उपासना करनेयोग्यहै इसप्रकार जानताहै। तथापि सोदुर्गतिको प्राप्तहोतानहीं, किन्तुएकमात्रारूपहीॐकारकेध्यानकेप्रभावसे इसलोकबिषे श्रेष्ठगतिकोही पावता

है । यह इस तृतीयवाक्यका तात्पर्य्य है, अबइसके अक्षरार्थकोश्र-
वणकरो हेसौम्य । स यद्येकमात्रमभिध्यायी ससतेनैव संवेदितस्तू-
र्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । (सो जब एकमात्रारूपको ध्यान
करताहै सो तिससेही भलीप्रकार जानताहुआ शीघ्रही जगत्
विषे पावताहै ; अर्थात् इसप्रकार सो जब एकमात्राकेही विभाग
का जाननेवाला सर्वदा एकमात्रारूप ओंकारको ध्यानकरता है
सो पुरुष एकमात्रापनेकरके युक्त ओंकारके ध्यानसेही तिसमात्रा
के सम्यक्प्रकार बोधवानहुआ शीघ्रही जगत् (पृथिवी) विषे जन्म
पावताहै । अरु १ । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते । (तिसको
मनुष्य शरीरको ऋग्वेद प्राप्तकरे है ;) तहां पृथिवी विषे अनेक
जन्म हैं तिन विषे तिस ॐकार के साधक को मनुष्य लोक
(शरीर) के अर्थही ऋग्वेदरूप । स ऋग्वेद इतिश्रुते । (अ-
कार ऋग्वेदहै ;) इस श्रुतिसे अकाररूप ॐकारकी प्रथम मात्रा
को ऋग्वेदरूपताहै ओंकारकी प्रथम एकमात्रा जो है सो प्राप्त
करे है । अरु २ । स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पन्नो महि
मानमनु भवति ३ । (सो तिसविषे तपसे ब्रह्मचर्य्यसे श्रद्धासे
सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै ;) सो साधक तिस
प्रथम मात्रारूप ॐकारके ध्यानसे तिस मनुष्यजन्मविषे द्विजो-
त्तमहुआ अरु तपकरके ब्रह्मचर्य्यकरके अरु श्रद्धाकरके सम्पन्न
हुआ महिमा (विभूति) को अर्थात् धन पुत्र क्षेत्र दासादि वै-
भवको अनुभवकरताहै । परन्तु श्रद्धा रहितहुआ यथेष्ट आचरण
को करता नहीं । एक देशके ज्ञानसे रहित जो योगभ्रष्टहै सो
कदाचित् भी दुर्गतिको पावता नहीं । ऐसा गीताका प्रमाणहै ।
तातें ॐकारकी एकमात्राके ध्यानकरनेवालेको कहेहुये फलका
असम्भव नहीं । इति सिद्धम् ३ । ५५ ॥

४ ॥ हे सौम्य । अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते । (पुनः
जब दो मात्राकरकेयुक्त मनविषे पावताहै ; अर्थात् पुनः एक
मात्रारूप ॐकारके उपासकसे इतर जब दोमात्राके विभागका

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । ससोमलोकं ससोमलोके विभूतिमनुभूयपुनरावर्त्तते ४ । ५६ ॥

ज्ञाता जो पुरुष दोमात्रारूपसंयुक्त ॐकारको ध्यान करताहै, सो स्वप्नरूप मननकरने योग्य यजुर्वेद मय चन्द्ररूप देवतवाले मन बिषे भलीप्रकार एकाग्रतासे आत्मभावको प्राप्तहोताहै १। सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । ससोमलोकं । २ सो यजुर्वेदसे अन्त रिक्षलोकवाले चन्द्रलोकको प्राप्तहोताहै ; १ सो इसप्रकार आत्मभावको प्राप्त मरणरहित हुआ द्वितियमात्रारूप यजुर्वेद से अन्तरिक्षरूप आधारवाले द्वितीयलोकरूप चन्द्रलोकके अर्थप्राप्त होता है । अर्थात् तिस द्वितीयमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्मको देता है १। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ४ । २ सो चन्द्रलोक बिषे विभूतिको अनुभवकरके फेर आवताहै ; १ सो उपासक तिस चन्द्रलोकाबिषे उत्तम पदार्थोंको भोगके पुनः इस मनुष्यलोक बिषे (ब्राह्मणादि उत्तमकुलमें) जन्म पावताहै ४ । ५६ ॥

५॥ हेसौम्यंयः पुनरेतंत्रिमात्रेणवोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुषमभिध्यायीत । २ जोपुनः तीनमात्रावाले ॐ इसही अक्षरसे इस परम पुरुषको ध्यानकरता है ; अर्थात् जोपुरुष पुनः तीनमात्राके विषय करनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारके इसही अक्षररूप प्रतीकसे इस ॐकार रूप सूर्य्यके अन्तरगत परंपुरुष को ध्यान करता है १ । स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः । २ सो तेजरूप सूर्य्य बिषे प्राप्त होता है ; १ सो तीसरी मात्रारूप ध्यान करता हुआ, मराहुआ भी तिस ध्यानमात्रसे तेजरूप सूर्य्यबिषे प्राप्तहोताहै। अरु सो सूर्य्यसे चन्द्रलोकादिकों बिषे गयेहुये जैसे फेर आवते हैं तैसे, पुनरावृत्तिको पावतानहीं किन्तु सूर्य्यबिषे प्राप्तहुआही होताहै । अरु १ । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवै स

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुषमभिध्यायीत सतेजसिसूर्य्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत । एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुष मीक्षते तदेतौश्लोकौभवतः ५।५७॥

पाप्मना विनिर्मुक्तः । ८ जैसेसर्प त्वचासे छूटजाताहै ऐसे प्रसिद्धही सो पापसे मुक्त होताहै ; १ जिसप्रकार सर्प अपनी त्वचासे मुक्तहोताहै, पश्चात् जीर्णत्वचासे छूटाहुआ सो सर्प पुनः नवीन होताहै । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्तहै । तैसेही प्रसिद्ध सोतीन मात्राका ध्यान करनेवाला साधक सर्पकी त्वचास्थानापन्न अपने अशुद्धयादिरूप पापसे मुक्तहोताहै । अरु ९ । ससामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं । ८ सो सामसे ऊंचे ब्रह्मलोकको पावताहै ;१ जब अशुद्धयतारूप पापसे मुक्तहोता है तब पीछे सो साधक तृतीयमात्रारूप सामवेदकरके ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके सत्य नामवाले लोक (सत्यलोक) को प्राप्तहोता है ९ सो हिरण्य गर्भ सर्व संसारी जीवोंका आत्मरूपहै अरु जिसकरके सो हिरण्यगर्भ समष्टि लिंगदेहरूपकरके सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै तिस करके समष्टिलिंगशरीररूप हिरण्यगर्भविषे व्यष्टिलिंगदेहोंके अभिमानी सर्वजीव मिलेहुये हैं । एतदर्थ सो हिरण्यगर्भ जीवघन रूपहै ॥ वाक्य योजना । स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । ८ सो इसपर जीवघनसे पर पूरियोंविषे स्थित पुरुषको देखताहै ; १ सो विद्वान् तीसरी मात्राको ध्यानकरता हुआ इससर्वसे उत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भसेपर परमात्मानामवालेसर्वशरीररूप पुरियों विषे स्थितपुरुषको देखताहै [यहां इसरीतिसे अन्वयहै । सोविद्वान् साधक अभी इसअपनी जीवनदशा विषे ध्यान करता हुआ शरीरावसान के पश्चात् ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है । तहां ब्रह्मलोकविषे स्थावर जंगमरूप

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यःप्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अन विप्रयुक्ता। क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक् प्र युक्तासु न कम्पतेज्ञः ६।५८॥

प्राणियों से पर जो जीवघननामक हिरण्यगर्भ तिससे पर जो परमात्मापुरुष तिसको अपना आप देखता है]। तदेतौ श्लोकौ भवतः। (तहां यह दो मंत्र हैं) तहां यह उक्त अर्थके प्रकाशकरनेवाले दो मंत्र प्रमाण होते हैं ५।५७॥

६॥ हे सौम्य। यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्ये। इत्यादि इस ब्राह्मवाक्यके साथ प्रथम (पहिले) मंत्र की योजना करते हैं। तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। (तीन मात्रा मृत्युगोचर परस्पर सम्बन्धवाली हैं) अर्थात् तीन हैं संख्या जिनकी ऐसी जो अकार उकार मकार नामवाली ॐ कार की तीनमात्रा हैं सो मृत्युकरके आक्रान्त (व्याप्त) अर्थात् मृत्युका विषयही हैं। अरु परस्पर सम्बन्धवाली हैं। सो तीन मात्रा विशेष करके एकएक विषय बिषेही योजना न किया हो ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकरके एकही ध्यानकालबिषे त्यागकरी भई, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी जे वैश्वानरादिकनसों अभिन्न विश्वादिक पुरुषों के अर्थात् [वैश्वानरसे अभिन्न विश्व जाग्रत्का अभिमानी तिसका स्थूलशरीररूप स्थान। अरु हिरण्यगर्भ से अभिन्न तैजस स्वप्नका अभिमानी लिंग शरीररूप स्थान। अरु अव्यक्तसे अभिन्न प्राज्ञ सुषुप्तिका अभिमानी कारण शरीर रूपस्थान] अकार उकार मकाररूप मात्रा से, तादात्म्य (एकरूपता) करकेध्यान रूपजो (। क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कंपतेज्ञः। (बाहर भीतर अरु मध्यकी क्रियाके भली प्रकार योजना किये हुये ज्ञाता कम्पमान होते नहीं) बाहर भीतर अरु मध्य की क्रिया है तिनके सम्यक् प्रकार ध्यानके कालविषे योजना कियेहुये जब

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ७। ५९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि पंचमः प्रश्नः ५ ॥

तिसके साथ अकारादि तीनों मात्रा योजना कियाहोय तब ॐकारके कहे हुये विभागका जाननेवाला जो योगी है सो चलायमान अर्थात् विक्षेपको प्राप्तहोता नहीं, किन्तु स्वरूप में स्थिरही रहता है। अर्थात् (जो चलायमान होताहै सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति विषे होताहै सो सर्व ॐकारही है ऐसा जानलिया तब चित्त चंचलताछोड़ स्वरूपमें निश्चलहोताहै) जिसकरके उस साधक पुरुषने स्थूलादि स्थान सहित जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति अरु विश्वादि जो तिनके अभिमानी पुरुषहैं, सो अकारादि तीनमात्रामय ॐकाररूपकरके देखे है, एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाले योगीका चलायमान होना संभवे नहीं ६ । ५८ ॥

७ ॥ हे सौम्य जिसकरके सो ऐसा पूर्वोक्त विद्वान् सर्वका आत्मा ॐकारमयहै तिसहेतुसे किसकारणकरके उसका चलायमानहोनाहोय, किन्तु अपनेसे पृथक्वस्तुके अभावसे किसीकरके भी चलना (विक्षेप) बने नहीं। अथवा अपने से अपृथक् निश्चयभये जगत्विषे किस विषयके अर्थ विक्षेपवान् होगा, किंतु किसीविषे भी नहीं। इस अर्थके बोधक प्रथम मंत्रकहके अब सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीय मंत्र कहते हैं ॥ हे सौम्य । ऋग्भिरे तं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । (सो ऋग्वेदसे इसको यजुर्वेदसे अन्तरिक्षको (अरु) जिसको विद्वान् जानते हैं (ऐसे ब्रह्मलोकको) सामवेदसे (पावताहै); अर्थात् सो विद्वान् (जो एकमात्रारूप) ॐकारका उपासक है ऋग्वेदसे इस मनुष्यलोकको पावता है । अरु (जो दो मात्रा

वा दूसरी मात्रा रूप ॐकारका उपासक है सो) यजुर्वेद करके अन्तरिक्षगत चन्द्रलोक को पावता है । अरु जिसको विद्वान् पुरुष जानते हैं अरु अविद्वान् नहीं जानते ऐसा जो सत्यनाम वाला ब्रह्मलोक है तिसको (तीन मात्रा का वा तीसरी मात्रा का उपासक) सामवेद करके प्राप्तहोता है । इसप्रकार विद्वान् उपासक अपरब्रह्मरूप तीन प्रकारके लोक को (समात्रिक) ॐकाररूप आलम्बन (साधन) से पावता है । अरु ॥ । तमोंकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति । (जो शान्त अजर अमर अभय है तिसपर (ब्रह्म) को ॐकाररूप ध्यान सेही पावता है ;) अर्थात् जो अक्षर सत्यपुरुष संज्ञक शान्त विमुक्त अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिआदि भेदरूप सर्व प्रपंचसे रहित है । अरु (जब अवस्था त्रयरूप सर्व प्रपंच से रहित है) इसही करके जरा अरु मृत्युकरके रहित है । अरु जिसकरके जराआदि विकारोंसे रहित है, इसही से अभय है । अरु जब अभय है तबही सर्व से अधिक है , ऐसा जो (त्रिमात्रिक ॐकारका लक्ष्यरूप) परब्रह्महै तिसकोभी (प्रतिमावत्प्रतीक रूप त्रिमात्रिक) ॐकारकी (उपासना रूप) आलम्बन (साधन) सेही प्राप्तहोता है । । इति । यहां जो , इति , शब्दहै सो वाणी की परिसमाप्त्यर्थ है इति सिद्धम् ७ । ५९ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गत पञ्चम प्रश्न

भाषाटीका समाप्ता ५ ॥

हरिः ॐतत्सद्ब्रह्म ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्न ॥

अथ हैनंसुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाजपुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथंते नावक्ष्यामिति समूलो वा एषपरिशुष्यतियो ऽनृतमभिवदति तस्मा न्नार्हाम्यनृतं वक्तुंसतूष्णीं रथमारुह्यप्रवव्राजतं त्वापृच्छामिक्वासौपुरुष इति १।६० ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नभाषा टीका प्रारभ्यते ॥

१। हे सौम्य ! सुषुप्ति कालविषे विज्ञान रूप जीवात्मा सहित सर्व कार्य कारणात्मक जगत् अक्षररूप परब्रह्म विषे लय होता है ; इसप्रकार पूर्व चतुर्थ प्रश्नविषे कहि आये हैं । तिसकथनरूप प्रमाण की सामर्थ्य से प्रलयविषे भी तिसही अक्षर विषे यह सर्वजगत् लय होता है । अरु जिसकरके कार्य्य का अकारण विषे लय संभवता नहीं अर्थात् जो जिसका कार्य्य है सो परिणाम में उसही अपने कारणमें लयहोता है अन्यमें नहीं अरु । आत्मनः एषप्राणो जायते । यह इसही उपनिषद्के तृतीय प्रश्नके तीसरीश्रुतिसे कहाहै । एतदर्थ जिसब्रह्म विषे यह जगत् लय होताहै तिसहीब्रह्मसे जगत्का उपजना सिद्धहोताहै ॥ अरु जगत्का जो मूल (कारण) है तिसके सम्यक्ज्ञानसे परम मुक्ति होतीहै । अर्थात् [यद्यपि अद्वैत आत्माके सम्यक् ज्ञानहुयेहीमुक्तिहोतीहै, कारणकेज्ञानसेनहीं, तथापि तिसआत्माको कारणत्व होनेसे तिससे भिन्नकार्य्य का अभाव है, क्योंकि कारणसे भिन्न कार्य्यकीसत्ता होतीनहीं, तातेआत्माके अद्वैतपनेका ज्ञान सिद्ध

होताहै, एतदर्थ तिसजगत्‌केमूल कारण आत्माके सम्यक्‌ज्ञानसे (चतुर्था मुक्तिसे भिन्न) परममुक्ति होती है " आत्मा वा इदमेव एवाग्रआसीत्" "सएतमेव पुरुषब्रह्म ततमपश्यत्" "प्रज्ञानंब्रह्म" "स एतेन प्रज्ञानेनात्मनाअमृतः समभवत्" "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "आचार्य्यवान्‌पुरुषोवेद" "अथसमस्ते" "तमेवैकंजानथ" "अमृतस्यैषसेतुः" "अहंब्रह्मास्मीति" "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" ॥ (यहजगत् प्रथम निश्चयकरके एकही आत्माथा; (सो इसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताभया ; । (प्रज्ञान ब्रह्महै ; । (सो इस प्रज्ञानरूपसे अमरहोताभया ;। (हेसौम्ययहआगे एकअद्वैत् सत्‌हीथा ; इसप्रकार आरंभकरके । (आचार्य्यवान्‌पुरुषजानताहै (तिसही एककोजानो ;। (यहअमृतकासेतुहै ;। (मैंब्रह्महौं ;। (ताते सो सर्वरूप होताभया ; ॥ इत्यादि अनेक श्रुतियों के वाक्योंसे निश्चय किया है] यहसर्व उपनिषदोंका निश्चितार्थ है । अरु इसही उपनिषद्‌के चतुर्थप्रश्नविषे " स सर्वज्ञः सर्व्वो भवतीति" (सो सर्वज्ञ सर्वरूप होता है ; । इसप्रकार कहा है । ताते सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्पुरुष नामवाला जो (मुमुक्षुओं करके) जानने योग्य वस्तुहै सोकहाहै । इसप्रकार पूछनेयोग्यहै । अरुतिससत्पुरुषको शरीरके भीतर स्थितकहा है तिसकरके, प्रत्यगात्माके सम्यक् ज्ञानार्थ इसषष्टप्रश्नका आरम्भकरते हैं । अरु यहांसुकेशा नामवाले शिष्यने पूर्व व्यतीतभये अर्थका पुनः प्रश्नरूप कथन कियाहै, सो ज्ञानकी दुर्लभताकी प्रसिद्धिहोनेसे तिसकीप्राप्त्यर्थ पुरुषार्थ विशेषके उत्पादनार्थ है ॥ अब ([" गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठा देवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञान मयश्च आत्मा परेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति " (पंचदश कला अपनेकारण भावको प्राप्तभई कर्म अरु विज्ञानमय (जीवात्मा) सोपरअव्यय (अविनाशी) अक्षर ब्रह्म बिषे एक (अभेद) होतेहैं; इस प्रकार मुंडकउपनिषद्‌के तृतीय मुंडकके दूसरे खंडके सातवें मन्त्रसे कहिके (" यथानद्यः स्यंदमानाः समुद्रेस्तं गच्छंति नामरूपेविहाय

तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् "। अव.१
;जैसे नदियां सर्वओरसे बहतीहुई अपनेकारण समुद्रविषे जाय
अपने नामरूपको छोड़ (समुद्रही होती हैं)। तैसे प्रत्यगात्मा
को सम्यक् अनुभवकरनेवाला विद्वान् (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) प-
रात्पर परम दिव्य अक्षर पुरुषको प्राप्तहोता है ; इस मुंडककेही
उक्त खंडके आठवें मन्त्र करके दृष्टान्तके कथनप्रमाणसे परब्रह्म
की प्राप्ति कही है । ताते इन उक्त दोनों मन्त्रोंका अर्थ सविस्तर
कहनेके अर्थ इस षष्ठ प्रश्नका आरम्भकरते हैं] ॥ हे सौम्य सत्य
कामामुनिके प्रश्नके निर्धारहोनेके १। अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः
पप्रच्छ । २ पश्चात् इसको भारद्वाजका पुत्र सुकेशा प्रश्नकरता
भया ; १ अर्थात् सत्यकामाके प्रश्नके अनन्तर इस पिप्पलाद
मुनिरूप आचार्यसे भारद्वाजमुनिका पुत्र सुकेशानामवालामुनि
प्रश्नकरताभया ॥ सुकेशा उवाच॥ १। भगवन् हिरण्यनाभः कौ-
सल्योराजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । २ हे पूजाके योग्य
कौसलदेशका हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे समीपआय इस प्रश्नको
पूछताभया ; १ हे सर्व संशय के नाशकर्ता हे भगवन् एक समय,
कौसलदेशमें उत्पन्नभया ऐसा जोहिरण्यनाभ नामवाला क्षत्रि-
यजातीय प्रख्यात राजपुत्र मेरेसमीपआय इसकथनकरनेके प्रश्न
को पूछताभया कि १। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषंवेत्थ । २ हेभार-
द्वाज षोड़शकलावाले पुरुषको जानताहै ; १ हे भारद्वाज, सोलह
संज्ञा हैं जिनकी ऐसी जो कलाहैं सो, शरीरविषे अवयवोंवत्,
जिस आत्मरूप चैतन्य पुरुषविषे अविद्याकरके अध्यारोपमात्रहै,
एतदर्थ इस चैतन्य पुरुषको सोलहकलावाला कहते हैं तिस सो-
लह कलावाले पुरुषको तू जानता है । हे भगवन् इसप्रकार जब
उसने प्रश्नकिया तब ।तमहं कुमारमब्रुवन् नाहमिमंवेद । २ तिस
कुमारको इसको मैं जानता नहीं ऐसे कहताभया ; अर्थात् १
तिस प्रश्नकर्त्ता राजकुमारको जिसके विज्ञानार्थ तेरा प्रश्न है
तिस पुरुषको मैं जानता नहीं इसप्रकार मैं कहताभया । परन्तु

उक्तप्रकारका कहनेवाला जो मैं तिस मेरेवाक्यमें भी यह भारद्वाजमुनि कहता है कि मैं उस सोलहकलावाले पुरुषको नहीं जानता सो यह आप जानता होयके नहीं जानता कहताहै वा न जानके; इसप्रकार, अज्ञानके संशयका सम्भव उस कुमारबिषे विचार तिस राजपुत्रको मैं प्रश्नकिये पुरुषके विषयमें, अपने अज्ञानका कारण कहता भया कि हे राजकुमार ९ । यद्यहमिमम-वेदिषं कथं तेनावक्ष्यमिति । ८ जब मैं इसको जानता होउँ तब तेरे अर्थ कैसे न कहौं ; ५ जब मैं तुझकरके प्रश्नकिये पुरुषको जानताहोउँ तो तुझसरिखे उत्तमगुण सम्पन्न शिष्यके अर्थ कैसे न कहूं, किन्तु कहताही । हे भगवन् इसप्रकार कहके भी मैं अपने वाक्यमें उसका अविश्वास जान विश्वास करावने के अर्थ पुनः मैंने कहा कि हे राजकुमार ९ । समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति । ८ जो अनृत कहताहै यह समूल सूखजाता है ; ५ जो पुरुष ज्ञानीहुआ भी अपनेआपके विषयमें 'मैं अज्ञानी हौं, इसप्रकारका आरोप करता हुआ अन्यथा भये अर्थरूप अनर्थ(झूठ) को कहता है सो अपने धर्मकर्मरूप मूल सहित सूख जाताहै अर्थात् इसलोक परलोकसे भ्रष्टहोता है ९ । तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुं । ८ ताते अनृत कहनेको योग्य नहीं ; ५ एतदर्थ इसप्रकार जब मैं जानताहौं तब मैं मूढ पुरुषोंवत् झूठ कहनेको योग्य नहीं हौं । हे भगवन् इसप्रकार जब मैं कहा तब ९ । स तूष्णींरथमारुह्यप्रवव्राज । ८ सो चुपहुआ रथमें बैठजाताभया ; ५ मेरे कहे वाक्यमें विश्वासको प्राप्तहोय सो राजकुमार प्रश्न से उपरामहोय रथमें बैठ जहांसूंआयाथा तहांको जाताभया ताते हे भगवन् ९ । तंत्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति १ । ८ तिसको तुम्हारेताईं पूछताहौं यहपुरुष कहांहै ; ५ न्यायमें शरणको प्राप्त भये अधिकारी शिष्यके अर्थ ज्ञाता गुरुकरके विद्याकहनेको योग्य ही है । अरु सर्व अवस्थाबिषे झूठ कदापि कहनेके योग्य नहीं । अरु जानने के योग्य होनेसे बाणवत मेरे हृदयबिषे स्थित, ५अ-

तस्मैसहोवाच । इहैवान्तःशरीरे सौम्यसपुरुषो यस्मिन्नेताःषोडशकलाः प्रभवन्तीति २ । ६१ ॥

र्थात् [यावत् जाननेको इच्छितवस्तुको जानते नहीं तावत्पर्यन्त सो वस्तु हृदयविषे बाणवत् भासे है] ऽ तिस पुरुषको मैं तुम्हारे प्रति पूछताहौं कि यह जो जानने योग्य पुरुषहै कि जिसके जाननेकेअर्थ राजपुत्रका मुझसे प्रश्नथा, सो कहांवर्त्तताहै १ । ६० ॥

२ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब सुकेशा मुनिने अपने वृत्तान्त कहने पूर्वक प्रश्नकिया तब ऽ । तस्मैसहोवाच । ‹ तिसके अर्थ सो कहतभये › ऽ तिस प्रश्नकरता सुकेशामुनिके अर्थ सो सर्वज्ञ पिप्पलाद मुनीश्वर कहतभये ऽ । सौम्य यस्मिन्नेताःषोडशकलाः प्रभवन्तीति । ‹ हे सौम्य जिसविषे यह सोलह कला उपजती हैं › ऽ कि हे प्रियदर्शन जिसपुरुषविषे यह अग्रिम कहनेकी प्राणादि सोलह कला उत्पन्न होती हैं, एतदर्थ सोलह कला रूप उपाधियों से जो पुरुष निष्कल (कला रहित) है सो निष्कल हुआ भी अविद्या दोष करके कलावालेवत् देखते हैं, ऐसा जो ‹ शुद्धचैतन्य › पुरुष है ऽ । स पुरुषो इहैवान्तः शरीरे । ‹ सो पुरुष इसही शरीरके अन्तर है › ऽ सोपुरुष कि जिसके अर्थतेरा प्रश्न है इसही शरीर विषे ‹ कि जिसविषे स्थित हुआ तू प्रश्न करता है › एकहृदय कमल है तद्गत जो ‹ दहर नामवाला अन्तराकाश है तिस आकाशके मध्य ‹ मुमुक्षुओं करके › जान योग्य है । अन्य देशविषे कहींभी नहीं २ । ६१ ॥

३ । हे सौम्य ‹ ब्रह्मविद्या आदि जिसविद्या को कहते तिस › विद्या से तिस ‹ निष्कल › पुरुषकी › अविद्यादोषसे आरोपित जेकला तिनके अध्यारोपके अपवादके होनेसे सो पुर केवल अनुभव करनेकेयोग्यहै, एतदर्थ कलाओंकी उत्पत्ति उसों कही है । अरु अत्यन्त भेदरहित अद्वैत शुद्धतत्त्व विषे अध्यरोप किये विना प्राणादि कलाका प्रतिपाद्य अरुप्रतिपादनादि

सङ्ख्ञाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भवि- ष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठा स्यामीति ३।६।२॥

व्यवहारकरने को समर्थ नहीं, एतदर्थ इनकलाओंके उत्पत्ति स्थिति अरु लयका अविद्याके आधीन आरोप करते हैं अरुजि- स करके यह कला चैतन्यसे अभेदकरकेही उत्पन्नहुई स्थितहुई लयहुई सर्वदा देखते हैं। याहीसे कोईएक, क्षणिक विज्ञान वादी, मूर्ख भ्रमी पुरुष, अग्निके संयोगसे घृतवत् चैतन्य (वि- ज्ञान) ही घटादि आकार से क्षणक्षण बिषे उपजे हैं, अरु नाश होता है, इस प्रकार मानते हैं अरु शून्यवादी जो पुरुष हैं ति- नको सुषुप्तिआदि अवस्थाबिषे तिनरूपादि विषयके अरुज्ञानरू- प से चैतन्यके अभावहुये सर्व शून्यही होता है, ऐसा भ्रम हो- ता है। अरु दूसरे न्यायशास्त्रके ज्ञाता नैयायिक पुरुष जो हैं सो चेतनाके करनेवाला नित्य आत्माका घटादिकोंको विषय करने वाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजता है अरु नाशहोता है, इसप्रकार कहते हैं। अरुअन्यजे चारवाक मतके पुरुषहैं सो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य जिसको कहतेहैं सो देहाकार से मिले हुये जे पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चारभूत हैं तिनका धर्म (संयो- गी फल) है। हे सौम्य इनकहेहुये सर्व पुरुषोंको प्राणादिकला अरुचैतन्यके अभेदकी भ्रान्ति है परन्तु श्रुतिका सिद्धान्त यह है जो जन्म मरण रूपधर्मसेरहित चैतन्यरूप आत्माहीनामरूपादि उपाधियों के धर्मोंसे नानाभावकरके अरु कार्यभावकरके प्रतीत होताहै॥ "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" (सत्यज्ञानअनन्तरूपब्रह्महै) अरु "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" (प्रज्ञान आनन्दरूप ब्रह्महै) अरु "विज्ञानघनएव" (विज्ञानघनहीहै) इत्यादिश्रुतियोंके प्रमाणसे अरु तैसे हुये अर्थात् क्षणिक विज्ञानवादी आदिकोंके कहेप्रमाण हुये, श्रुतिकेसिद्धान्तसे विरोधआवताहै एतदर्थ वोक्षणिकविज्ञान वादी आदिकोंके मत सर्वथा त्यागनेहीयोग्यहैं॥ [अवज्ञानकाल

विषे विषयोंका सद्भावहीहोय इसनियमका अभावहै ताते । अरु विषयकालविषे ज्ञानके सद्भावका नियमहै ताते, तिसज्ञान अरु विषयकाभेदहै । इसप्रकार क्षणिकविज्ञानवादीके पक्षको खंडन करतेहुये, अरु अव्यभिचारतासेही ज्ञानकी नित्यताकोसाधतेहुये नैयायिक आदिकोंके मतको खंडनकरते हैं । यहांयह अर्थ है कि घटज्ञानके कालविषेपटके अभावका संभवहै तिसकरके विषयोंको ज्ञानसे व्यभिचारित्वपनाहै । अरुज्ञानकोंतो विषयकालविषे अवश्यहोनेके नियमसे अव्यभिचारित्वपना सिद्धही है ॥ अरु पट ज्ञानके कालविषे घटकाज्ञानभी नहींहै, तातेघटकेज्ञानकोभी पट रूपविषयसे व्यभिचारित्वपनाहै ॥ इसशंकाको चित्तबिषलयायके विषयोंका स्वरूपसेही व्यभिचारित्वपना कहाहै । अरु ज्ञानका विषय विशिष्टतारूपमात्रसेही व्यभिचारहै स्वरूपसेनहीं यहभेद है] १ स्वरूपसे अव्याभिचारी पदार्थोंविषे चैतन्यके अव्यभिचार होनेसे जैसे २ जोजो पदार्थ जानते हैं; तैसेतैसे जाननेयोग्यहोने सेही तिस २ पदार्थके चैतन्यका अव्याभिचारपनाही है ॥ शंका ॥ कोईएकवस्तु जानतेनहीं परन्तु होती है । अर्थात् [उत्पन्नहोय के शीघ्रही नाशहोनहार आदिक वस्तु, अरु गिरिगुहान्तर्गत वस्तु को अज्ञात होनेकरके ज्ञानकाभी ज्ञेयरूप विषयसे व्यभिचार प्रसिद्धहै] ॥ समाधान ॥ हेसौम्य यहवादीका शंकारूप कथनकैसा है कि, जैसेकोईकहे कि रूपसंज्ञक विषयको देखतेतोनहीं तथापि चक्षुहै, तद्वत्, अघटितहै १ अर्थात् [वादी ने कहा कि कोइक वस्तु जानतेनहीं परन्तुहोती है, सोबनेनहीं क्योंकि तिसवस्तुके अज्ञानकेहोनेसे तिसके अस्तित्वभावकी असिद्धिहै, अर्थात् जिस वस्तुका ज्ञाननहीं अरु सो वस्तुहै, ऐसा वस्तुका अस्तित्वभाव ज्ञानविना कदापि सिद्धहोतानहीं, ताते तैसा अज्ञातहुआ पदार्थ असिद्धही है] १ एतदर्थ घटके ज्ञानकालविषे कदाचित् पटकेअभावसे ज्ञेय (विषय) रूप पट ज्ञानसे व्यभिचार को पावता है परन्तु ज्ञान जो है सो कदाचित् भी व्यभिचारको पावता नहीं

क्योंकि एक ज्ञेय (विषय) के अभावहुये भी अन्यज्ञेय (विषय) बिषे ज्ञानका स्वरूप करके सद्भावहै । अरु सुषुप्तिबिषे ज्ञानके न होनेसे ज्ञेय विषय कुछ होताहै, ऐसी प्रतीति किसीको भी होती नहीं, एतदर्थ भी ज्ञान, व्यभिचारको पावता नहीं ॥ अरु जो कहै कि सुषुप्तिबिषे अदर्शनहोनेसे ज्ञानका भी अभाव है तातेज्ञेय के व्यभिचारवत् ज्ञानके स्वरूपका भी व्यभिचारहै । सो ऽ [क्या तब सुषुप्तिबिषे तू ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव साधता है वा ज्ञानके अदर्शन होनेसे ज्ञानका अभाव साधताहै ? तिन दोनों पक्षों में, जब सुषुप्तिरूप ज्ञेयको अंगीकार किया तब ज्ञानके अद-र्शनकी असिद्धिहै ,क्योंकि ज्ञानके अभावसे सुषुप्तिरूप ज्ञेय सिद्ध होता नहीं, ताते दूसरा पक्ष बनता नहीं यह आगे कहेंगे ? ऽ अरु जो तू प्रथम पक्षको कहेगा कि ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव है, तो भी ज्ञेयको प्रकाश्यरूपहोने से उसके अभावभये तिसके प्रकाशकरूप ज्ञानका अभावहै, इसप्रकार मानताहै, किंवा ज्ञान अरु ज्ञेय इनदोनों की एकताका अभावरूप ज्ञानका अभाव है, ऐसा मानताहै, तहां इनदोनों पक्षों में भी ज्ञान अरु ज्ञेयका पर-स्पर में व्यभिचारके होने से प्रथमपक्ष बने नहीं । अरु जो कहे कि प्रकाश्य के ज्ञानरूप एकही सामर्थ्यवाले प्रकाशका प्रकाश्य के अभावहुये अभाव कहते हैं , तहां प्रकाशको प्रत्यक्ष सिद्धहो-नेसे सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्धकार बिषे प्रकाश्यरूपकी अ-प्रतीतिके हुये तिसके ज्ञान बिषे समर्थ चक्षुरूपप्रकाशके अभाव की कल्पना करनी भी अशक्यहै ताते, प्रथमपक्ष बने नहीं । अरु सुषुप्तिबिषे जे ज्ञेयका अभाव सो अभावरूप ही ज्ञेय है तिसज्ञेय के विद्यमान होते, ज्ञान अरु ज्ञेय इन दोनोंके तादात्म्यमय एकता के अभावरूप ज्ञानका अभावहै यह दूसरापक्षभी बनता नहीं, इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती कहताहै] ऽ बने नहीं । क्योंकि ज्ञेय के प्रकाशक ज्ञानको, सूर्यादिकोंके प्रकाशवत् ज्ञेयका प्रकाशकत्व है । अरु जैसे अपने करके प्रकाशने योग्य जे घटादि प्रकाश्य तिन

के अभाव भये सूर्यादिकोंके प्रकाशके अभावका असंभव है तद्वत्, सुषुप्ति विषे ज्ञानके अभावका असंभवहै । अरु जैसे अन्धकार विषे चक्षुसे रूपविषयकी अप्रतीतिके होनेसे ,क्षणिक विज्ञानवादियोंके,चक्षुके अभावकी कल्पनाकरनेको भी शक्य नहीं है,तैसेही सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानके अभावकी कल्पनाकरनेको अशक्य ही है ॥ अरु जो १[विज्ञानवादीके मतविषे विज्ञानसे भिन्न प्रकाशादिकों का अभाव है तातेप्रकाशरूप विज्ञानके परिणाम के अभावहोनेसे प्रकाश्यरूप विज्ञानके परिणामके संभव करके व्यभिचारके स्थलका अभावहै ताते तहां सुषुप्तिविषे ज्ञान अरु ज्ञेय के अभावकाव्यभिचार नहीं है, इस अभिप्रायसे वादी शंका करता है] ऽ कहे कि क्षणिक विज्ञान वादीजो है, सो ज्ञेय के अभावभये ज्ञानका अभाव कल्पताही है , हे वादी जब ऐसेही है , तब ज्ञानके अभावका जो कल्पक (वृत्ति) सोई ज्ञेय तिसज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करते हैं वानहीं , यह विज्ञानवादी सों पूछते हैं, सो तिसका उत्तर कहना योग्य है (हे सौम्य) तिन कहेहुये दोनों पक्षों में प्रथम पक्षविषे ज्ञानके अभावकी सिद्धिनहीं है , क्योंकि तिसही अभावके ज्ञानका सद्भाव है ताते इसप्रकार कहते हैं , जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञानसे तिस ज्ञानके अभावको कल्पता है , तिस ज्ञानका अभाव किसकरके कल्पता है । किसी करकेभी कल्पनाकरनेको शक्य नहीं ॥ अरु द्वितीय पक्षभी बनेनहीं । क्योंकि तिस ज्ञेयके अभावरूप अज्ञानको भी ज्ञानके अभावके कल्पक होनेका असंभव है ताते । अरु अवश्य ज्ञेयरूप होनेसे तिसके अभावहुये तिसज्ञेयके अभावकीकल्पनाका असंभवहै ताते, ज्ञेयके अभावके ज्ञानके अंगीकार का पक्षयुक्त नहीं ॥ अरु जो ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयसे अभिन्नहोनेकरके ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभावहोवेगा , सो बनेनहीं । काहतेकि अभावको भी ज्ञेयपनेके अंगीकारते । (हे सौम्य) जब विज्ञानवादियों करके अभाव भी ज्ञेय अरु नित्यअंगीकार करते हैं, तब

तिसज्ञेयसे अभिन्न ज्ञानभी नित्यरूप कल्पना कियाहीहोगा, अरु तिस ज्ञानके अभावको ज्ञानरूप होनेसे अभावपना कहनेमात्र ही है। अरु परमार्थसे ज्ञानका अभावपना अरु अनित्यपना नहीं है। अरु नित्यरूप ज्ञानके नाममात्र अभावके आरोपबिषे हमारी क्या हानि है कुछ भी नहीं॥ अरु जो ऐसाकहे कि अभाव ज्ञेयरूपहुआ भी ज्ञानसे भिन्न है, तब इस तेरे कहनेसे ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभाव जो तेरे मतमें माना है सो सिद्धनहीं होगा। अरु जो ऐसा कहे कि ज्ञेयवस्तु ज्ञानसे भिन्न है, अरु ज्ञानजोहै सोज्ञेयसे भिन्न नहीं, सो बनेनहीं, क्योंकि शब्दमात्र के भेदकरके वास्तविक भेदका असंभवहै ताते। अरु जबज्ञेय अरु ज्ञानकी एकता अंगीकार करता है, तब ज्ञेयज्ञानसे भिन्नहै अरुज्ञेय से भिन्नज्ञाननहीं, यह जोकथनहै सो वह्नि (अग्नि) अग्निसे भिन्न है अरु अग्निसेभिन्न वह्निनहीं, इसकथनवत् शब्दमात्रही है। एतदर्थ हे वादी ज्ञानजोहैसो ज्ञेयसेभिन्नही सिद्धहोताहै। अरु ज्ञानको ज्ञेयसेभिन्नसिद्धहुये सुषुप्तिबिषे ज्ञेयकेअभावकेहोते ज्ञानके अभाव का असंभव सिद्ध भया॥ अरु जो ऐसाकहे कि सुषुप्तिबिषे ज्ञेय के अभावहुये ज्ञानका अदर्शन है ताते ज्ञानका अभावहै, सो भी बने नहीं, क्योंकि सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानका अंगीकारहै ताते वहां ज्ञानकाअदर्शन असिद्ध है। अरु जिसकरके विज्ञानवादीके मतबिषे सुषुप्तिमें भी विज्ञानका सद्भाव अंगीकार करते हैं एतदर्थ ज्ञानका अदर्शन सम्भवता नहीं॥ अरु जो कदापि ऐसाकहे कि सुषुप्ति बिषे भी ज्ञानको अपनेआपकरकेही अपना ज्ञेयपना है, सो भी बने नहीं, क्योंकि अभावस्थलबिषे ज्ञान अरु ज्ञेयका भेद सिद्ध होता है ताते। अरु जिसकरके अभावरूप ज्ञेयको विषयकरने वाला जो ज्ञान तिसको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्नहोने करके ज्ञेय अरु ज्ञानका भेद सिद्धहै ताते सो सिद्धभयाभेद 'मृतकके जिलावनेवत्, पुनः विपरीत करनेको सैकड़ों विज्ञानवादियोंसे भी अशक्यहै॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयपना

ही है । तो सो भी अन्यज्ञानकरकेही ज्ञेय होवेगा । अरु सो ज्ञान भी अन्य ज्ञानकरके ज्ञेयहोवेगा, ऐसे तुम्हारे पक्ष बिषे अनवस्था दोष होगा, सो भी बने नहीं । क्योंकि सर्ववस्तुके समूह के विभागका सम्भवहै ताते । अरु जिस पक्षाबिषे सर्ववस्तुका समूह अपनेसे भिन्न किसी भी ज्ञानका ज्ञेयहै, तिस पक्षबिषे उक्त दोष है । अरु ऐसे जब हम मानतेहोयँ तब हमारे पक्षबिषे अनवस्था दोष होय । अरु जिसकरके ऐसे ज्ञानको विषयकरनेवाला ज्ञान रूप तीसराभाग हमों करके नहीं मानते हैं, किन्तु तिस ज्ञेयसे भिन्न जो ज्ञान सो ज्ञानही है अरु ज्ञानसों भिन्न जो ज्ञेय सो ज्ञेय ही है । इसप्रकार दूसरा विभागही हमोंकरके मानते हैं । ताते हमारे पक्षबिषे अनवस्थादोष सम्भवता नहीं ॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसा कहे कि तुम्हारेमतबिषे जब ज्ञानरूप ब्रह्म आपही अपनेका विषय नहीं, तब ब्रह्मके सर्वज्ञपनेकी हानि होती है, सो दोष ऽ [अर्थात् ज्ञाननेयोग्य सर्ववस्तुके अज्ञानके होनेसेही सर्वज्ञताकी हानि होती है और प्रकारसे नहीं, अरु अन्यथा शशशृंग (खरगोशके सींग) आदि अत्यन्त असत्य पदार्थोंके अज्ञान से किसीके भी मतबिषे सर्वज्ञता नहीं होगी ? अथवा सर्वज्ञताकी हानि नहीं होगी ? एतदर्थ हमारेमतबिषे तिस सर्वज्ञताकी हानि रूप दोषकीप्राप्तिनहीं, ?क्योंकि ज्ञानस्वरूपको अपनाआप ज्ञेयत्व शशविषाणवत् है ? किन्तु तिस विज्ञानवादीकोही उक्त दोषकी प्राप्तिहोती है। क्योंकि तिसविज्ञानवादीकरकेज्ञानकीअवश्य ज्ञेयरूपताका अंगीकार है, ताते आप ज्ञान करकेही अपना ज्ञेयपना मान्याहै । अरु तिस अपने करके अपने ज्ञेयपनेको "अभावरूप ज्ञेयको विषयकरनेवाले ज्ञानको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्न होनेकरके, ज्ञेय अरु ज्ञानका अन्यपना सिद्धहै" सो पूर्व्व के ग्रन्थभाग बिषे दूषित होनेसे अन्य ज्ञेयपने के अंगीकारसे सर्व्वज्ञताका असम्भव है ताते इस अभिप्राय से सिद्धान्ती कहे है [ऽ भी तिस विज्ञानवादीकोही होहु । हमको तिस मायिक सर्व्वज्ञपने के खण्डन

बिषे क्या दोष है, कुछ भी नहीं । अरु विज्ञानवादी के मत बिषे 'ज्ञान' ज्ञेयरूप है, एतदर्थ ज्ञानके ज्ञेयपने के अंगीकारसे दूसरा अनवस्थारूप दोष भी अवश्यही होगा ॥ क्योंकि विज्ञानवादी के मत बिषे ज्ञानको आपसे अज्ञेय होने करके अनवस्थारूप दोष अनिवार्य्य है [यहां यह अर्थ है कि विज्ञानवादी के मत बिषे ज्ञानको आपकरकेही आपका ज्ञेयपना मान्या है, तिसके असम्भवको "ज्ञेय अरु ज्ञानका पृथक्पना सिद्धहै" इस उक्त पूर्व ग्रन्थके भाग बिषे कथन किया होनेसे, परिशेष ते ज्ञानको अन्य ज्ञानके ज्ञेयपने के होनेसे तिस ज्ञानका भी अन्यज्ञाताहै, तिसका भी अन्यज्ञाता है । इसप्रकार प्राप्तभया जो अनवस्था दोष सो निवारण करनेको अशक्यही है] ॥ अरु जो ऐसा कहै कि तुम्हारे मत बिषे भी यह अनवस्थादोष तुल्यही है ? [अर्थात् हे सिद्धान्तिन् तुम्हारे मत बिषे भी ज्ञानको अज्ञेयपनेके हुये तिसके व्यवहारकी असिद्धिहोवेगी । अरुअन्यज्ञानके ज्ञेयपने के हुये अनवस्था होवेगी । इसअभिप्राय से वादी शंकाकरताहै] । सो बने नहीं ? [हमारे मत बिषे ज्ञानको स्वप्रकाश होने करके आपही करके अपने व्यवहारकी सिद्धि है ताते अरु ज्ञानके भेदके अंगीकारसे अनवस्थादोषकी प्राप्ति नहीं है, इसअभिप्रायसे सिद्धान्ती समाधानकरताहै] । क्योंकि ज्ञानकी एकताका सम्भवहै ताते । अरु सर्व्व देशकाल अरु पुरुष आदि अवस्थावाला एकही ज्ञान, नाम रूपादि अनेक उपाधियों के भेदसे 'सूर्य्यादिकों के जलादि उपाधिगत प्रतिबिम्बवत्, अनेक प्रकारका भासताहै, एतदर्थ हमारे मत बिषे यह अनवस्था दोष नहीं है ॥ अरु तैसेही चैतन्य के नित्यपने करके अधिष्ठानपना सिद्धहै तिसके हुये इस श्रुतिबिषे यह षोडशकलाका आरोप करते हैं ॥ ननु ॥ इस श्रुतिसे मृत्तिका के पात्रबिषे बदरी (बैर) के फलवत् इसही शरीर के भीतर परिच्छिन्न पुरुष है सो नित्य कैसे सम्भवे, अर्थात् सम्भवता नहीं । सो कथनबने नहीं । क्योंकि सो प्राणादिकलाका कारण

है ताते । अरु जिसकरके शरीरमात्रकरके परिच्छिन्न प्राणको श्रद्धाआदिक कलाका कारणपना निश्चयकरनेको शक्य नहींहै। एतदर्थ सो पुरुषही सर्व कलाका कारणहै । अरु जिसकरके सो सर्व कलाका कारणहै, ताते शरीरको कलाका कार्य होनेसे, सो शरीर पुरुषकी कार्यकला तिसका कार्यरूप अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अविद्यमान आप शरीर सो अपनेविषे अपने कारणके कारण पुरुषको मृत्तिकाके पात्रविषे बदरीफलवत् परिच्छिन्नकरनेको समर्थ होवे नहीं ॥ अरु जो कहे कि जैसे बीजका कार्य वृक्ष अरु तिसका कार्य आम्रादि फल, सो अपने कारणके कारण बीजको अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करताहै । तैसे शरीर जो है सो अपने कारणके कारण पुरुषको भी अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करताहै । सो कथनबने नहीं । क्योंकि फलका कारण वृक्ष तिसकी उत्पत्तिका कारण जो बीज तिसबीजकी अरु फल के अन्तर्गत बीजकी व्यक्तिका भेद है तिस भेदकरके, अरु बीज सावयव होता है ताते, अरु पुरुषकी व्यक्तिकी एकताहै ताते अरु पुरुषको निरवयवता है ताते, [फल अरु बीजकी व्यक्तिके भेदसे इस दृष्टान्तगत प्रथम हेतुको यहां वर्णनकरते हैं] दृष्टान्तविषे कारणरूप बीजसे अन्यहीबीज वृक्षके फलसे आवृत्तहै । अरु दार्ष्टान्तविषे तो अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीरके भीतरकिया सुनते हैं । [अब बीजको सावयवहोनेसे इस दृष्टान्तगत द्वितीय हेतुको वर्णन करते हैं । यहां यह रहस्यहै कि दृष्टांत विषे यद्यपि कारणरूप बीजकेही वृक्ष अरु तिसके फल अरु तिस फलके अन्तर्गत बीजरूपसे परिणामते तिन कारण अरु कार्य रूप बीजकी व्यक्तिभेदके होते भी एकताहै तथापि तिसका कारणरूप बीजको सावयव होनेसे वृक्षवत् फलके आकारसे परिणामको प्राप्तभये अवयवनसे भिन्न जो अवयवहै, तिनकेही तिस फलके अन्तर्गत बीजरूपसे परिणामते उन बीजों का भेदकरके फलका अरु तिसके अन्तर्गत बीजका आधार आधेयभाव होता

है । अरु यहां दार्ष्टान्तविषे तो पुरुषको निरवयव होनेसे शरीर का अरु पुरुषका आधाराधेयभाव बने नहीं] किंवा बीज अरु वृक्ष आदिकों को सावयवहोने से उनका परस्पर आधार अरु आधेय भाव बने है अरु पुरुष निरवयवहै अरु कला अरु शरीर सावयव हैं, एतदर्थ तिनका परस्पर आधाराधेय भाव बने नहीं । अरु जब इस हेतु करके आकाशका भी आधारपना शरीर को अघटित है, तब आकाश के कारण पुरुष का आधारपना शरीर को अघटित होय इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं । ताते हे वादी तैंने जो बीजका दृष्टान्त दिया सो दार्ष्टान्तके समान नहीं, किन्तु विषमहै । अरु जो ऐसा कहेकि दृष्टान्तसे क्या प्रयोजन है प्रमाणरूप श्रुतिके वाक्य करकेही पुरुष को परिच्छिन्नपनाहोवेगा । सो भी बने नहीं । क्योंकि वाक्यको कारकताका अभाव है । अरु जिसकरके श्रुतिका वचन वस्तुके अन्यथाकरनेविषे समर्थ होतानहीं, किन्तु जैसा अर्थ होय तैसे अर्थके प्रकाशनेविषे समर्थ होता है, ताते "इहैवान्तःशरीरे सोम्य सपुरुषो" (शरीरके भीतर सो पुरुष है) यह जो श्रुतिका वचन है सो, अंडके भीतर आकाश है, इसवाक्यके अर्थवत् जानना । अरु ज्ञानका निमित्त होनेसे दर्शन श्रवण मनन अरु विज्ञान आदिक लिंगोंसे शरीरके भीतर परिच्छिन्नवत् प्रतीतहोता है । एतदर्थ । हे सौम्य शरीरके भीतर सो पुरुष है । इसप्रकार कहते हैं । अरु पुनः आकाशका कारणहुआ मृत्तिकाके पात्रसे बदरीफलवत् शरीरकरके परिच्छिन्न पुरुष है, इसप्रकार तो मूढ़ पुरुष भी मनसे भी कहनेको इच्छा करता नहीं, तब प्रमाणभूत श्रुति कहनेको न इच्छा करती होय, इसमें क्या कहना है ननु "यस्मिन्नेताःषोडशकलाः प्रभवन्ति" (जिस विषे यहषोडश कला उपजती हैं) इसप्रकार द्वितीय वाक्य विषे पुरुषके विशेषणार्थ अध्यारोप कहा है, पुनः "सईक्षाञ्चक्रे" (सो ईक्षणको करताभया) इत्यादिरूप तृतीयवाक्यसे जो कलाकी उत्पत्तिका

कथन सुना है , सो यद्यपि अधिक अर्थ भी है , तथापि कलाकी उत्पत्ति किसक्रमसे होती है, इस अर्थके जानने के प्रयोजनसे "। सईक्षाञ्चक्रे "।(सो ईक्षणको करता भया ;) इत्यादिरूप यह अधिक अर्थ भी कहते हैं। अरुचेतन पूर्वकही प्राणादि कलारूप सृष्टिहोती है, इसअर्थके जतावनेको चेतनके आश्रित ईक्षण (अवलोकन) का कथनहै। इसप्रकार शंकासमाधानरूप उपोद्घात [अर्थात् , अन्यके गृहसे गोरसके मांगनेवाली स्त्रीवत् प्रतिपादन करनेके योग्य अर्थको मनमें रखके तिसके अर्थ अन्य अर्थका जो प्रतिपादन तिसको , उपोद्घात, कहते हैं] को कहके अब तृतीय वाक्यके अर्थको कहते हैं। हे सौम्य जो षोडश कलावाला पुरुष भारद्वाजके पुत्रसुकेशा नाममुनिने पूछाथाकि "। सईक्षाञ्चक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तोभविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति"।(सो किसकेनिकसेहुये मैं निकस्या होउंगा वा किसके स्थितहुये स्थितिको प्राप्तहोउंगा। ऐसे ईक्षण को करताहुआ ;) अर्थात् सो किस कर्त्ता विशेष के देहसे निकसे हुये मैं निकस्या होउंगा अरु किसके शरीरविषे स्थितहुये मैंस्थिति को प्राप्त होउंगा, इसप्रकार प्राणादिक की सृष्टिके शरीरसे बाहर निकसने अरु शरीर के भीतर स्थितहोने रूप फलको। अरु "प्राणाच्छ्रद्धा "।(प्राणसे श्रद्धाको रचता भया ;) इत्यादिरूप क्रम आदिकको [यहांआदि शब्दसे "। लोकोंविषे नामको रचताभया"। यह आधार अरु आधेयका भेद ग्रहण करते हैं] विषयकरनेवाले ईक्षण (ज्ञान) को करता भया ॥ इति सिद्धम्। ३। ६२॥

४॥ हे सौम्य यहां यह सांख्यमतके अनुसारी वादियों की शंकाहै ॥ ननु ॥ आत्मा अकर्त्ता है अरु प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता है, एतदर्थ पुरुषके भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनको अंगीकार करके प्रधान जो है, सो महत्तत्त्वादिरूप आकारसे प्रवृत्त होताहै। तहां यह पुरुषको स्वतन्त्रता करके ईक्षणपूर्वक कर्त्ता पनेका जो वचनहै सो अघटितहै। किंवा सत्त्वादि गुणोंकी साम्यावस्था

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राःकर्म्मलो का लोकेषुचनामच ४ । ६३ ॥

(मिश्रअवस्था) मय प्रमाण प्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होतसंते । अथवा परमाणु कारणबादीके मतानुसार ईश्वरेच्छा के अनुवर्त्ती सृष्टिका कारण परमाणुके होतसंते । आत्माको कर्त्ता-पनेके अंगीकार करनेसे [समीचीन नहीं क्योंकि] आत्माको एक अद्वैतहोनेसे ,जैसे कुलालरूप कर्त्ताके दंडचक्रादि सहकारी साधनवत्, सहकारी साधनका अभावहै, ताते दुःखादि अनर्थके हेतु जे प्राणादिक संसार तिसके कर्त्तापने का असंभवहै एतदर्थ आत्माको सृष्टिके कर्त्तापने का जो बचनहै सो अघटितहै । अरु जिसकरके प्रत्यक्ष चेतनावान् बुद्धिपूर्वक कार्यका कर्त्ता पुरुष सो अपने अर्थ अनर्थको करता नहीं । एतदर्थ भी [ज्ञानस्वरूपआ-त्माको]अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनेबिषे प्रवृत्तहोना संभवे नहीं। एतदर्थही पुरुषके भोग मोक्षमय प्रयोजनसे ईक्षणपूर्वकवत् निय-मित क्रमकरके बर्तमान अचेतन प्रधानबिषे 'जैसे राजाके सर्व अर्थकेकरनेवाले मंत्री आदिकोंबिषे, यहराजाहै, इसआरोपवत्‌स ईक्षाञ्चक्रे। सोईक्षणको करताभया' इत्यादि रूप यह चेतनवत् आरोपहै।[अर्थात्, 'जैसे' बालकबिषे पीतरंग करके युक्तारूप गुणकेयोगसे अग्निशब्दका प्रयोगहै तद्वत्, मुख्य ईक्षणके कर्त्ता बिषे विद्यमान जे नियमित क्रमकरके प्रवर्त्तमान होने रूप गुण तिसके योगसे 'स ईक्षाञ्चक्रे। सो ईक्षणको करताभया' ऐसा प्रधानबिषे गौणप्रयोगहै सोई उपचार अरु आरोप कहतेहैं] यह सांख्यवादीयों का कथनहै । सो बने नहीं ॥ क्योंकि आत्माको भोक्तापनेवत् कर्त्तापनेका सम्भवहै ताते । अरु जैसे सांख्यवादी के मत बिषे चेतनमात्र अपरिणामी आत्मा का भी भोक्तापना मानते हैं, तिसप्रकार वेदवादी हमारे मत बिषे स्वरूपसे अकर्त्ता

हुये आत्माको भी मायारूप उपाधिकाकिया श्रुति उक्तप्रमाणसे जगत्का कर्त्तापना घटितहै ॥ अरु जो सांख्यवादी ऐसा कहै कि हमारे मतविषे आत्माकोअन्य महदादितत्व के स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणाम से आत्मा की अनित्यता, अशुद्धता, अनेकता के निमित्त जे चेतनमात्र जे स्वरूपका विकार तिस विकारसे पुरुष के स्वरूपविषेही भोक्तापना तिसके होनेसे चेतनमात्र जो स्वरूप का विकार (अविवेकसे परिणाम) सो दोषके अर्थ नहीं । अरु तुम्हारे वेदवादियों के मत विषे आत्माको सृष्टिका कर्त्तापनाहोने से आत्माका अन्य तत्वके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामही होता है । एतदर्थ आत्मा को अनित्यता आदि सर्व दोषों की प्राप्ति होयगी ऽ [पूर्व्वरूपके परित्यागसे अन्यरूपकी जो प्राप्ति तिसको परिणाम कहते हैं । सो परिणाम सजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिके हुये, अथवा विजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिकेहुये अनित्यता आदि दोषोंको सम्पादन करताही हैं । एतदर्थ भोज्य (भोगनेयोग्य) के अविवेकरूप उपाधि का किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्यहै । तिसकारण करके तिस भोज्यके अविवेकरूप उपाधिसे रचितपना सो तिस परिणाम के कर्त्तापने विषे भी तुल्यही है । इस अभिप्रायसे भाष्यकाराचार्य्य मुख्य समाधानको कहते हैं यहां यह भावहै कि परमात्मारूप पुरुषको उपाधिकृत जो कर्त्तापनेका सम्भवहै ताते । अरु भ्रान्तिकरके इसपरमात्मासे भिन्न अपूर्णकाम जीवों का सम्भव है ताते तिनके पुरुषार्थरूप प्रयोजनका स्रष्टापना तिसही प्रकारके चेतनरूप पुरुषको भी बनता है। एतदर्थ चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानको सो जीवों के भोग मोक्षमय पुरुषार्थरूप प्रयोजन का सृजतापना युक्त नहीं] ऽ यह जो सांख्यवादीयों का कथन सो बने नहीं । क्योंकि हमारे मत विषे वास्तव में सहकारी साधन रहित अकर्त्ता आप्तकाम, एक अद्वैत आत्मा को भी अविद्यारूप सहकारीके आश्रय नामरूपात्मक उपाधि अरु अनुपाधिके किये

भेदका अंगीकार है , तिसकरके आत्मा को नामरूप उपाधिका क्रियाही बन्ध मोक्ष अरु तिनके साधनरूप शास्त्रोक्त व्यवहारादिक विशेष मानते हैं । अरु परमार्थ दृष्टिसे अनुपाधिका क्रिया एकही अद्वितीय शुद्ध अरु सूक्ष्मबुद्धिसे ग्रहण करने योग्य , अरु सर्व तर्कयुक्त बुद्धियोंका अविषय , अभय अरु शिव (कल्याण) रूपतत्त्व मानते हैं । तिसबिषे कर्त्तापना किंवा भोक्तापना अरु क्रिया अरु कारकका फलनहीं है । क्यों कि सर्व पदार्थोंको अद्वैत रूपता है ताते ॥ हे सौम्य सांख्यवादी तो वेदसे बाहर बोलने वाले होनेसे पुरुषबिषे अविद्यासे आरोपितही कर्त्तापना अरुक्रिया कारकका फल है , ऐसे कल्पिके पुनः तिससे भयको प्राप्त होते हुये परमार्थसेही पुरुषके भोक्तापनेको इच्छते हैं । अरु पुरुष से अन्यतत्व प्रधानको परमार्थबस्तुरूपही कल्पतेहुये । अरु सांख्य वादीयोंसे अन्य जे जैनादिक सो नैयायिकोंकरके शिक्षा को प्राप्त भई बुद्धिवालेहुये अपने मतके खंडनको पावते हैं । अरु तैसेही जैनादिकोंसे अन्यजे नैयायिक हैं सो सांख्यवादीयोंकरके अपने मतके खंडनको प्राप्त होते हैं ॥ हे सौम्य इसप्रकार परस्पर विरुद्धअर्थकी कल्पनाकरनेसे , मांसके अर्थी (श्वानशिकरादि)जीवों वत् परस्पर विरुद्ध क्रुद्धभये भेदरूपअर्थकेही देखनेवालेहुये तिस करके परमार्थ तत्त्वकी ओरसे दूरसे दूरही खींचेगये हैं , ताते यथार्थ निरुपाधि शुद्ध आत्मतत्व के अबोधसे । दूरात् सुदूरे । दूरसे दूरही चलेजाते हैं । एतदर्थ जे मुमुक्षुपुरुष हैं सो उनके मतको अनादर पूर्वक त्यागके वेदान्त अर्थके तत्त्वरूप एकताके ज्ञानको (श्रद्धा विश्वासपूर्वक) आदरदेनेवालेहोयँ । इसप्रयोजनके लिये हमों (वेदवादीयों) करके इनतर्क करनेवाले सांख्य वादीयोंके मतबिषे कुछ दोषका दर्शन देखावते हैं, उनके मतको खंडनकरनेके तात्पर्यसे नहीं। तैसे यहां यह अर्थ शास्त्रान्तर बिषे कहाहै तथाच । विवदत्स्वेवनिक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम् । तैः संरक्षितसद्बुद्धिः सुखंनिर्वातिवेदवित् । (वेदवेत्ताजो है , उनवा-

दीयोंसे विवाद को करताहुआ चिदाकाशविषे विरोधकी उत्पत्ति के कारण (परमार्थसेभेददर्शन) को छोड़के रक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवाला हुआ । अर्थात् ९ [भेददर्शनको परस्परवादीयोंसे उक्तदोषकरके ग्रस्तहोनेसे अद्वैतही निर्दोषहै ऐसेनिश्चयवालीबुद्धि करके युक्तहुआ] ऽ सर्वविकल्पसे शान्त होताहै , किंवा९['कुछ दोषकादर्शन देखावतेहैं तिसहीकोवर्णनकरतेहुये,कर्त्तापने आदिकोंका आरोपितपनाही सांख्यवादीयोंकरकेभी कहनायोग्यहै ऐसा कहतेहैं] ऽतुम्हारे सांख्यमतविषे भोक्तापने अरुकर्त्तापनेरूपदोनों विकारोंकेविलक्षणपनेकाअसंभवहै, एतदर्थ पुरुषविषे यहकर्त्तापने रूपजातिसे अन्य जातिरूप भोक्तापनेकरकेयुक्त विकारकौनहै, कि जिसकरके पुरुष भोक्ताहीहै कर्त्तानहीं । अरु प्रधानतो कर्त्ताही है भोक्तानहीं, इसप्रकार तुमकरके कल्पना करतेहौ सोकहो ॥ ननु, भोक्ता अरु चैतन्यमात्र स्वरूपही जोपुरुषहै, सोअपने चेतनरूपसे हीविकारको पावताहै, अन्यतत्त्वरूप परिणामसेनहीं । अरुप्रधानतो अन्यतत्त्वोंके परिणामसे विकारको पावता है, एतदर्थ सो प्रधान, अनेकरूप है अशुद्धहै अरुजड़है, तातें विलक्षण एकशुद्ध अरुचैतन्यरूप पुरुषहै । एतदर्थ उनदोनोंके भिन्न२धर्मरूप कर्त्तापने अरुभोक्तापनेकाभी विलक्षणपना है, यहसांख्यवादीने कहा ऽ[पुरुषका चैतन्यरूपसे परिणाम जोतैंनेकहा॰ सोक्याआगन्तुक (उत्पत्तिनाशवाला) है, वा नहीं, तहां जो द्वितीयपक्षकहै तो तिसपक्षविषे कर्मजन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्धहोयगा, अरु प्रथम पक्षकहै तो तिस पक्षविषे आगन्तुक विलक्षणतावाला होनेसे अनित्यता आदिककी प्राप्तिसे पुरुषकाप्रधानसे कुछविशेष नहींहै ॥ अरु जोऐसाकहे कि भोगकेअनन्तर पुरुषको पुनःअपने स्वरूपसेही स्थितहोनेसे अनित्यता आदि दोषनहीं है, तबप्रधानकोभी प्रलयविषे 'विशेषके अभावसे, अपने स्वरूपकरकेही स्थितिके अंगीकार करनेसे तिसका विशेष न होगा । इसप्रकार अब सिद्धान्ति दूषण देते हैं ॥] ऽ तबतहां सिद्धान्तिकहे हैं यह

विशेष बनेनहीं, क्योंकि भोगकी उत्पत्तिसे पूर्वप्रधान अरुपुरुषके विकारकेभेदको कथनमात्रताही है ताते । १ [संक्षेपसे कथनकिये वाक्यका यहांबर्णन करतेहैं] । जबकेवल चैतन्यमात्र पुरुषको भोगकी उत्पत्तिकालबिषे भोक्तापना विशेषहोताहै, अरुजबभोगके निवृत्तभये पश्चात् तिस (भोक्तापनारूप) विशेषसेरहित पुरुष चैतन्यमात्रही होताहै, तबप्रधानभी तैसेही महत्तत्वादि आकार से परिणामकोपाय पश्चात् प्रलयकालबिषे तिस (महत्तत्वादि) आकारकोछोड़के प्रधानरूपसे स्थितहोताहै, इसरीतिसे चैतन्य रूपसे पुरुषके विकारकी कल्पनाबिषेभी विचार कियेहुये अर्थसे प्रधानका अरु पुरुषका कुछभी विशेषनहीं देखतेहैं । एतदर्थ सां-ख्यवादीयों करके प्रधान अरु पुरुषका विशेष (विलक्षणविकार) अर्थात् दोनोंका पृथक् २ विलक्षणरूप विकारहै, इसप्रकारबाणी मात्रसेही कहाजाताहै परन्तुसोसिद्धहोतानहीं॥१ [पुरुषकाचैतन्य रूपसे जो परिणामहै सो आगन्तुक अन्यरूपनहीं। इसप्रकारपूर्वो-क्त दोनों पक्षोंमेंसे द्वितीयपक्षको मानिकै वादीकी शंकाहै] । अरु जो ऐसाकहै कि भोगकालबिषे भी भोगसेपूर्ववत्, चैतन्यमात्र-हीपुरुषहै, तिसका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, एतदर्थ प्रधानसे विशेष (विलक्षण) है । सो कहनाबने नहीं । क्योंकि जब इसप्रकार मानेंगे तब पुरुषको परमार्थसे भोग होयगा । अरु कर्मसे जन्य जो कदाचित् होनेवाला भोग सो असिद्धहोगा । १[इसदोषके निवारणार्थ आगन्तुक परिणामको मानिकै भोग-काल सम्बन्धी विकारमात्र भोगहै । सो भोग पुरुषकोही होताहै प्रधानको नहीं । इसप्रकार भोगके सद्भावरूप विशेषमात्रसे वा-दीकी शंकाहै]। अरु जो कहै भोगकालबिषे चैतन्यमात्र पुरुषका विकार परमार्थरूपही है,तिसकरके सो भोगकालसम्बन्धी विका-रमात्र भोग पुरुषकोही होताहै, प्रधानको नहीं । एतदर्थ भोगके सद्भाव अरु असद्भावकरके प्रधान अरु पुरुषका विशेष (भेद) है १[तहांभी क्या भोगकाल सम्बन्धी विकारमात्र भोग है, किंवा

भोगकाल सम्बन्धी चैतन्यमात्रगत विकारवानपना भोगहै, इस प्रकार विकल्पकरिके, प्रथम पक्षविषे भोगकालमें प्रधानको भी सुखादिक आकारसे विकारवाला होनेसे भोग होयगा, इसप्रकार सिद्धान्ती कहते हैं]ऽसो बने नहीं । क्योंकि इसप्रकारहोनेसे भोगकालविषे प्रधानको भी सुखादि आकारसे विकारवान् होनेसे भोक्तापनेकी प्राप्तिहोयगी ॥१[अब द्वितीयपक्षानुसार वादीकी शंकाहै]ऽअरु ऐसाकहे कि चैतन्यमात्रकाही जो विकार सोई भोक्तापनाहै, तब उष्णतारूप विकारसे असाधारण धर्मवाले अर्थात् अग्निका असाधारण धर्म उष्णताहै, तिसधर्मवाले अग्नि आदिकोंके अभोक्तापनेविषे कारणका असंभवहोगा, अर्थात् अपने असाधारण विकारवाले अग्निआदिकोंको भी भोक्तापनेकी प्राप्तिहोगी ॥ अरु जो ऐसाकहे कि प्रधान अरु पुरुष इनदोनोंका एककालविषे भोक्तापना है सोभी बने नहीं । क्योंकि प्रधानको परमार्थ रूपताका अभावहै ताते पुरुषके समान पारमार्थिक भोक्तापना असिद्धहै । अरु दोनोंको भोक्ताहुये परस्परके प्रकाशने विषे दोनों प्रकाशनेके गुण-प्रधानभावके असंभववत्, प्रधान अरु पुरुषका अन्योऽन्य गुणप्रधानभाव (शेषशेषीभाव) जो पूर्व अंगीकारकिया है तिसका असंभवहोगा ॥ अरु१[ननु । भोग जो है सो सत्वगुण प्रधान चित्तरूपसे परिणामको प्राप्तभई प्रकृति तिसकाही धर्म है । क्योंकि तिस चित्तको प्रकृति का विकार होनेका संभव है ताते । अरु पुरुषकाधर्म नहीं क्योंकि सोपुरुष अविकारी है ताते । अरु तिसपुरुषको भोगकेअभावका प्रसंग नहीं। क्योंकि तिसपुरुषको तिसप्रकारके चित्तके प्रतिबिम्बकेतत्व (निजरूपता) मात्रसे भोक्तापनेका कथनहोता है, इसप्रकार वादी शंकाकरेहै]ऽ जोकहे कि भोगरूप धर्मवाले मुख्य सत्वगुणकरके युक्त जोचित्त तिसविषे पुरुषके चेतनपनेके प्रतिबिम्बरूपसे निर्विकाररूपकोभी भोक्तापनाहै । सोभी बनेनहीं । क्योंकि जबइस तेरेकहेप्रकारहै तबपुरुषको परमार्थसे सुखदुःखादि भोगरूप अ-

नर्थका अभावभया तबातिसकरके किसकी निवृत्तिके अर्थ पुरुषके मोक्षकासाधन शास्त्ररचते हैं, किन्तु किसीकेभी निवृत्यर्थनहीं ॥ अरु जोऐसाकहे कि परमार्थसे यद्यपि पुरुषको अनर्थका अभाव है, तथापि अविद्याकरके आत्माविषे आरोपितजे अनर्थ तिसकी निवृत्तिकेअर्थ शास्त्रकीरचनाहै । तब, परमार्थसेपुरुष भोक्ताही है, कर्त्तानहीं, अरु प्रधान कर्त्ताही है भोक्तानहीं, अरु परमार्थ करके पुरुषसे अन्यवस्तु सतूरूप प्रधानहै, इसप्रकारकी जोयह सांख्य मतवादीयोंकी कल्पना सो, वेदवाह्य व्यर्थ अरु निष्प्रयोजनहै । एतदर्थ मुमुक्षुओं करके आदरकरने योग्यनहीं ॥ अरु जो सांख्य वादी ऐसाकहे कि तुम वेदवादीयोंकेसर्वकी एकतारूप पक्षविषे भी निवारणकरनेयोग्य बन्धकाअभाव है, ताते शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षकेसाधनकी व्यर्थताहै । सोभीबनेनहीं, क्योंकि आत्माकीएकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषसेविपरीत जेअज्ञानी पुरुष तिनके प्रतिदोषके सम्पादन करनेकाअभावहै ताते । अरु जिसकरके शास्त्रकर्त्ता आदिक अरु तिसकेफलकेअर्थी पुरुषों विषे शास्त्रकीरचना निष्प्रयोजनहै वा सप्रयोजनहै, इसप्रकारकी सो कल्पनाहोय । अरु आत्माकी एकताके निश्चयाकियेहुये शास्त्रके कर्त्ताआदिक पुरुष, तिसआत्मासे भिन्ननहीं है । अरु तिनशास्त्र कर्त्ता आदिकोंके अभावहुये, यहशास्त्रकी रचना सप्रयोजनहै वा निष्प्रयोजनहै, ऐसीयह कल्पना अघटितहै ९६ अथवा तिसएकताके निश्चयके अभावहोनेसे निवारणकरनेयोग्य जे बन्धनादिक तिनकेसद्भावसे बन्धकी निवृत्तिके अर्थ यहशास्त्रकी कल्पनाअघटितनहीं ९ [किंवा आत्माकीएकताकेनिश्चयहुये, तिसनिश्चयका उत्पादकहोनेसे तिसशास्त्रकी प्रयोजनसहित ताको अपने अनुभवकरके सिद्धहोनेसे, तिसआत्माकी एकताके निश्चय अनुभव वाले पुरुषकरके यहशंकाकरनेको भी शक्यनहीं, इसप्रकार अब कहतेहैं] १अरु जिसकरके आत्माकी एकता को माननेवाले तुम्ह करके आत्माकी एकता के निश्चय किये हुये शास्त्ररूपप्रमाणका

प्रयोजन अंगीकारकिया, एतदर्थ शास्त्रसंप्रयोजनहै किंवा अप्रयोजनहै, यहशंकाकरनेकोभी अशक्यहै। अरु तिसआत्माकी एकता के निश्चयकियेहुये कल्पनाका असम्भवहै। इसअर्थको "यत्रत्वस्यसर्व्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि" (जहां (जिस बिज्ञानदशा बिषे) तो इसपुरुषको सर्व्वआत्माही होताभया, तहां किसकरके किसको देखे, इत्यादि।) यह शास्त्र कहता है। अरु "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति इत्यादि" (जहां द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यको देखता है) इत्यादि रूप यह बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानकि बिषे शास्त्रकीरचना आदिकके सम्भवको कहताहै। अरु "अविभक्ते विद्याऽविद्ये परापरे" (पर अरुअपररूप विद्या अरु अविद्या भिन्नरूपहै) इत्यादि शास्त्रके आदिबिषेही विद्या अरु अविद्याका भेद सूचित कियाहै एतदर्थ वेदान्तशास्त्ररूप प्रमाण महाराजा की युक्तिरूप भुजा करके रक्षित इसआत्माकी अभेद एकतारूप देशबिषे तार्किकमत के बाद रूपशस्त्रकरके युक्त योधोंकाप्रवेश कदापि होता नहीं॥ हे सौम्य इसप्रकारके कथन करके ब्रह्म को अविद्याकृत नाम रूपउपाधिकरके रचित अनेक शक्ति अरु साधनके किये अनेकपनेकेसद्भावसे, ब्रह्मको सृष्टिआदिकोंके कर्त्तापने विषे (दंडचक्रादिवत्, साधनका अभावरूपदोष अरु अपने आपके अर्थ अनर्थका कर्त्तापना आदि दोष जो पूर्व सांख्यमतवादीने कहाथा, तिसका खंडनभया जानना॥ अरु सांख्यवादीने जो पूर्व दृष्टान्त कहाथा कि, जैसे राजाके सर्वकार्यके कर्त्ता कार्याध्यक्षबिषे उपचारसे, "यह राजाके कार्यका कर्त्ता राजा है" इसप्रकार कहते हैं, सो दृष्टान्त यहां बने नहीं। क्यों कि "स ईक्षाञ्चक्रे" (सोई-क्षणको करताभया) इसप्रमाणरूप श्रुतिके मुख्य अर्थका वाध है ताते। अरु "यजमानपाषाणहै" इत्यादि स्थल बिषे जहां शब्द का मुख्यार्थ संभवे नहीं, तहांहीं शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पना रूप उपचार देखा है। अरु यहां प्रधानके पक्षबिषे तो (अर्थात्

[प्रधानके पक्षबिषे केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभव रूप दोषहै, ऐसे नहीं, किन्तु वास्तवसे तो तिसको जगत्का स्रष्टापना भी संभवता नहीं, ऐसे अब कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि प्रधानकी मुक्तपुरुषको छोडके बद्धपुरुषों के प्रतिही प्रवृत्ति अरुकर्त्ता कर्म आदिक की अपेक्षासे बन्ध अरु मोक्ष आदि शब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ नियमित प्रवृत्ति संभवे नहीं । इसकथन करके पुरुषके अर्थ भोग मोक्ष मय अर्थरूप प्रयोजन को अंगीकार करके प्रधान प्रवृत्त होता है । इसप्रकारजो पूर्व शंकाके अवसरबिषे सांख्यवादीने कहारहा सो खंडनकिया] अचेतनरूप प्रधानकी मुक्त अरु बद्धपुरुषोंकी अपेक्षासे, अरु कर्त्ता कर्मदेश अरुकालरूप निमित्तकी अपेक्षासे पुरुषके प्रतिबंध अरु मोक्ष आदिक फलके अर्थ नियमित प्रवृत्ति बनेनहीं । अरु हमों करके उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापनेबिषेतो उक्त प्रवृत्ति बने है ॥ इसप्रकार वादीके पक्षको खंडन करके, अब श्रुतिके व्याख्यानको कहतेहुये । स प्राणमसृजत । ८ सो प्राणको सृजता भया ; इसवाक्यके तात्पर्य रूप अर्थको कहते हैं । ईश्वररूप पुरुषकरके राजावत्, सर्वकार्यबिषे अधिकारी ऐसाप्राण सृजाजाताहै । ऐसे तात्पर्यार्थको कहके अब प्रश्न पूर्वक अक्षरार्थको कहते हैं ॥ प्र०॥ हे भगवन् कैसे सृजता भया ॥ उ० ॥ ।सप्राणमसृजत । ८ सो प्राणको सृजता भया ; सो पुरुष, उक्त प्रकार से त्रिकालवर्त्ति वस्तुओंको विषयकरनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणको करके सर्वके प्राणमय (समष्टिप्राणरूप) हिरण्यगर्भनामवाले सर्व प्राणियोंके करणों (इन्द्रियों) के आधाररूप अन्तरात्माको सृजता भया । अरु ९। प्राणाच्छ्रद्धा । ८ प्राणसे श्रद्धा ; । इसप्राणसे सर्व प्राणियोंकी शुभकर्म बिषे प्रवृत्तिकी कारणरूप श्रद्धाको सृजता भया। तिसके पश्चात् कर्मफलके उपभोगके साधनरूपदेहके अधिष्ठान अरु कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतोंको सृजताभया। तहां । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी । ८ आकाश वायु ज्योति जल पृथिवी

(को सृजताभया) ; ऽ शब्दगुणवाले आकाशको , अरु अपने गुण स्पर्श अरु कारणके गुणशब्दकरके युक्त दोगुणवाले वायुको, अरुतैसेही अपने गुणरूप अरु कारणके गुणशब्द अरुस्पर्शकरके युक्त तीनिगुणवाले तेज (अग्नि) को, अरुतैसेही अपनेगुण रस अरुकारणके गुण शब्द स्पर्श अरु रूपकरकेयुक्त चार गुणवाले जलको , अरु तैसेही अपने गुण गंध अरु कारणके गुणशब्द स्पर्श रूप रस, इनसबके मिलनेकरके पांचगुणवाली पृथिवी को सृजता भया । अरु ९ । इन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं । ६ इन्द्रियोंको मनको अन्नकोअरु वीर्यको(सृजताभया) ; ऽ तैसेही तिनहीं पंचभूतोंसे अपचीकृत अवस्था विषे ज्ञानके अर्थअरुकर्मकेअर्थ दशसंख्यावाले दोप्रकारके अर्थात् ज्ञानके अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रियं को अरुकर्मके अर्थ पांच कर्मेन्द्रियको, अरु तिन इन्द्रियोंके नियामक शरीरविषेस्थितसंशय अरु संकल्प विकल्पादि लक्षणवाले मन को सृजताभया । अरुइसही प्रकार प्राणियोंके कार्य अरुकारणको सृजके तिनकी स्थितिके अर्थ ब्रीहि (तंदुल ध्यान्य) अरु यव आदिरूप अन्नको सृजताभया । तिसके पश्चात् उस अन्नको भोजन कियेहुये से, सर्वकर्मविषे प्रवृत्तिके साधन वीर्य (बल) को सृजताभया । अरु ९ । तपो मन्त्राः कर्म लोकाल्लोकेषु च नाम च । ८तपको मन्त्रोंको लोकको लोकविषे नामको(सृजताभया) ; ऽ अन्तःकरणकी अशुद्धता करके भया जोपापाचरण तिन पापों करके संकरता (मिश्रभाव) को प्राप्तभये तिस बलवाले प्राणियोंके संकरताके निवारणार्थ चित्तशुद्धिके साधन तपको सृजता भया अरु तिन तपसे शुद्धभये हैं अन्तरके अरु बाह्यके करण जिन्होंके, ऐसे प्राणियोंके अर्थ कर्मके साधनभूत जे ऋग् यजु साम अरु अथर्वणवेदरूप मंत्रोंसे अग्निहोत्रादिरूप कर्म होता भया । अरु तिन कर्मोंसे कर्मके फलरूप चतुर्दशलोक होतेभये। अरु तिन लोकोंविषे उत्पन्नभये प्राणियोंका देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुदत्त आदिरूप नामहोताभया ऽ ॥ [ननु, ईश्वरके सृष्टापने के

कथनसे कलाओंका सत्यपना अंगीकार करना चाहिये। क्यों-
कि शुक्तिरजत आदिकरूप आरोपबिषे सृष्टपने (उत्पन्नहोने) के
व्यवहारका अभावहै ताते, यह आशंकाकरके, नेत्रबिषे अंगुली
के धारण अरु नेत्रमर्दन आदिक प्रयत्नसे उत्पन्नकिये दो चन्द्र
मशक अरु मक्षिका आदिकोंके आरोपके देखनेसे, अरु। अथ
रथान्रथयोगान् पथः सृजत इति। ८ अब जाग्रत्के अनन्तर, रथ
को अरु रथमें जुड़नेवाले अश्वादिकोंको अरु मार्गों को सृजता
भया, इस बृहदारण्यकी श्रुतिबिषे उत्पन्नहोनेकरके उक्त स्वप्न
के पदार्थोंकी भ्रमरूपताके देखनेसे, ईश्वरकरके रचित कलाओं
का सत्यपना मानना चाहिये यह कहना बनेनहीं। इस अभि-
प्रायसे अब भाष्यकाराचार्य कहते हैं। यहां तिमिरशब्द जो है
सो नेत्रबिषे अंगुलीके धरने आदिक निमित्तके ग्रहणार्थ है] ८
इसरीतिसे यह सोलहकला प्राणियोंकी अविद्या आदि दोषरूप
बीजकी अपेक्षासे, तिमिरदोषकरके युक्त दृष्टिसे सृजेहुये दो चन्द्र
मशक अरु मक्षिका आदिकोंवत्, अरु स्वप्नके द्रष्टाकरके सृजे
हुये सर्व स्वप्नके पदार्थोंवत् सृजीहुई है। पुनः १ [इसप्रकार
आत्माके निश्चयार्थ अध्यारोपको कहके अब तिसके अपवादको
प्रकट करते हैं] १ समुद्रबिषे नदियोंवत् तिसही पुरुषबिषे अपने २
नामरूपादि उपाधियोंके भेदको त्यागके अतिशयकरके लीन
होती हैं ४। ६२ ॥

५॥ हेसौम्य अब उक्त कलाओंके अपवादको भी सविस्तर
दृष्टान्त सहित श्रवणकरो॥ स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समु-
द्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति। ८सो जैसेयह नदियां बहती
हुई अरु समुद्रहै अयन (आत्मभाव) जिनका ऐसीहुई समुद्र
को पायके अस्तताको प्राप्तहोती हैं ९।सो समुद्रबिषे नदीके लय
का दृष्टान्त कैसेहै, तहां कहतेहैं। जैसे लोकबिषे यहनदियां बह-
तीहुई अरु समुद्र है आयन अर्थात् (आदि अन्तमें आत्मभाव)
जिनका ऐसीहुई समुद्रको पायके अपने नामरूपके तिरस्कार

स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाःसमुद्रायणाः समुद्रंप्रा प्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥ एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवंप्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भ वति तदेषश्लोकः ५ । ६४ ॥

रूप अस्तताको पावती हैं। अरु ९। भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ।८अरु तिनके नाम (अरु) रूप नाशको पावतेहैं समुद्र ऐसेही कहतेहैं;। अस्तको प्राप्तभई उन नदियों के गंगा यमुना गोदावरी आदि लक्षणवाले नाम अरुरूप यह दोनोंना- शको पावतेहैं। अरु तिननामरूपके नाशभये पीछे अवशेषरहा जो जलरूप वस्तु, सो समुद्र ऐसे कहतेहैं ॥ हे सौम्य जिसप्र- कार यह दृष्टान्तहै९। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाःपुरु षायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति। ८ऐसेही इस परिद्रष्टाकी यह षोडशकला (सो) पुरुषहै अयन जिनका ऐसीहुई पुरुषको पा- यके अस्तको पावैहैं;।तैसेही, उक्त लक्षणवाला प्रसंगविषे प्राप्त भया पुरुष जो परिद्रष्टा ९ अर्थात् अपने प्रकाशके कर्त्ता सूर्यवत् सर्व ओरसे स्वरूपभूत दर्शनका कर्त्ता,है इस परिद्रष्टाकी यहप्रा णादि सोलहकलाहैं। सो उक्त सोलहकला नदीके अयनरूप स- मुद्रवत्, पुरुष है अयन (आत्मभावको प्राप्ति) जिन कलाकी ऐसीहुई पुरुषरूप आत्मभावको पायके अपने नामरूपके तिर- स्काररूप अस्तताको पावतीहै। अरु ९। भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते ।८ तिनके नामरूप नाशको पावते हैं;पुरुष ऐसे कहतेहैं ;। तिन कलाके प्राणादिक लक्षणवाले नामरूपना शको पावतेहैं। अरु नामरूपके नाशभये पीछे जो कि अविनाशी तत्त्व अवशेष रहताहै सोब्रह्मवेत्ताओंकरके पुरुष ऐसेकहते हैं॥जो पुरुष गुरुने देखायाहै कलाके लयकामार्ग जिसको, ऐसाहुआ

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्यु परिव्यथा इति ६। ६ ५

इसरीतिसे जानताहै १। स एषोऽकलोऽमृतो भवति। २ सो यह अकल अमृत होताहै; ३ सो यह पुरुष, अविद्या काम अरु कर्म करके जन्य जो प्राणादिक कला तिनके विद्याकरके नाशभये कलारहितहोताहै। अरु जिसकरके अविद्याकृत कलारूप निमित्त (उपाधि) का किया देहसे निकलने आदिक शब्दका वाच्य मरणादिक व्यवहाररूप मृत्युहै, ताते उन कलाके नाशभये यह पुरुष कलारहित होनेसेही अमृत (मरणरहित) होताहै १। तदेषश्लोकः। २ तिसबिषे यह श्लोकहै; ३ तिसही इसअर्थ बिषे यह श्लोक (अग्रिमवाक्यरूप वेदकामंत्र) प्रमाण है ५। ६४॥

६॥ हे सौम्य। अराइव रथनाभौ। २ जैसे रथकी नाभि बिषे अरा; अर्थात् १[रथकेचक्र (पहिया) की नाभि (मध्यकाकाष्ठ) तिसको रथनाभि कहते हैं; तिसरथनाभि बिषे अरु मार्गको स्पर्श करनेवाली चक्ररूप नेमी (पूठि) तिस बिषे लगेहुये खड़े काष्ठ तिसको रथचक्रका परिवार कहते हैं। अरु तिनहींको अरा कहते हैं] सो, जैसे रथचक्रके परिवाररूप अरा रथके चक्रकी नाभि बिषे प्रवेशको प्राप्तभये तिस रथचक्रके आश्रित होते हैं। तैसेही १। कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। २ कला जिसबिषे आश्रितहैं; ३ प्राणादिकला जिस पुरुषबिषे, उत्पत्ति स्थिति अरु लय, इन तीनोंकालोंबिषे आश्रित होते हैं १। तं वेद्यं पुरुषं वेद। २ तिस जाननेयोग्य पुरुष को जानना; ३ तिस कलाके आत्मरूप जाननेयोग्य सर्बत्र पूर्णहोनेसे अथवा सर्ब शरीरोंरूपी पुरबिषे रहनेसे पुरुष तिस पुरुषपदसे लक्ष्य पुरुषको जैसाहै तैसाही जानना॥ हे शिष्यो १। यथा मा वो मृत्यु परिव्यथा। २ तुमको मृत्यु पीडा मतकरो; ३ तुमको मृत्यु जो है सो क्लेशको प्राप्ति मतकरो॥ अर्थात् जिसकरके तुम क्लेशको प्राप्तभये दुःखीहीहो, एतदर्थ मैं

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेदनातःपरमस्तीति ७।६६॥

कहताहौं कि तुम्हारेको क्लेश मत प्राप्तहो । इत्यभिप्रायः ६।६५॥

७॥ हे सौम्य पिप्पलादनाम मुनीश्वर आचार्य उक्तरीतिसे तिन अपने प्रश्नकरताओंको उक्त उपदेशकरके पुनः ऽ। तान् होवाच । ८ तिनकेप्रति कहतेभये ऽ। तिन अपने शिष्योंको कहतेहुये कि हे प्रियदर्शन हे शिष्यो ऽ। एतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्मवेद। ८ इतनाही परब्रह्महै इसको मैं जानता हौं ऽ। इतनाही जानने योग्य परब्रह्म है इसको मैं जानता हौं अरु ऽ। नातःपरमस्ति इति । ८ इससे श्रेष्ठ नहीं है ऽ। इसकहेहुये परम पुरुषसे अन्य अत्यन्त श्रेष्ठ जानने योग्य कोई नहीं है । हे सौम्य इसप्रकार अपने शिष्योंको अज्ञात अरु अवशेष रखने योग्य अन्य वस्तु के सद्भावकी आशंकाकी निवृत्ति के अर्थ अरु हमकृतार्थ भये इस प्रकारकी निश्चय आत्मक बुद्धिके जननार्थ पिप्पलाद मुनीश्वररूप सर्वज्ञ आचार्यने कहाहै ७। ६६॥

८॥ हे सौम्य जब पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्यसे उपदेशकोपाय निःसंशयभये वे सुकेशाआदि छवोशिष्य आपकृतार्थभये, तिस निःसंशय कृतार्थ कर्त्ता गुरुके अर्थ ब्रह्मविद्याके प्रतिउपकार (बदला) कुछ भी न देखतेभये ॥ प्र० ॥ तब क्या करतेभये उ०॥ । तेतमर्चयन्तः । ८ वे तिसका पूजनकरतेहुये ऽ। अर्थात् वे छवो शिष्य तिस पिप्पलादनामवाले अपने गुरुको दोनोंपादों विषे पुष्पांजली अर्पण करनेसे अरु मस्तक साक्षात् उनके चरणोंमें रखप्रणिपात (दंडवत) से पूजन करते हुये, कहते भये प्र० ॥ क्याकहते भये ॥ उ० ॥ । त्वंहिनः पितायोऽस्माकं । ८आपहमारे पिताहौ ऽ हे गुरो आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीर के विद्याकरके जनक होनेसे पिता हौ । अरु

ते तमर्चयन्तस्त्वं हिनःपितायोऽस्माकमविद्यायाः परंपारंतारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमःपरमऋषिभ्यः इति ८।६७॥

इतिश्रीप्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नः॥

इति प्रश्नोपनिषद् समाप्ता॥

१।'अविद्यायाःपरं पारं तारयसीति' ;जोअविद्यासेपर पारकेताईं तारतेहौ ;। जो आपही बिपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग अरु दुःखादिरूप मकरादि तिनकरके युक्त जो अविद्यारूप महासागर तिससे,पर विद्यारूप दीर्घ नौकाकरके।महासागरके पारवत्, अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले पारकेताईं हमको पार करतेहौ, एतदर्थ आपका हमारेप्रति अन्य (जन्मदायक) पिता से अधिक पितापना घटितहै॥ अरु जब अन्यपिता भी शरीर मात्रकोही उत्पन्न अरु पालन पोषण करताहै तथापि लोकविषे अत्यन्त पूजने योग्यहै, तब अत्यन्त अभयके दाता सद्गुरुरूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषे क्या कहना है॥ एतदर्थ। नमः परम ऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति। ;परम ऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु ; ब्रह्म बिद्याके सम्प्रदायके कर्त्ता परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु॥ यहां जो द्विबार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्योंविषे आदरार्थ है अरु'इति, शब्दउपनिषद्कीसमाप्त्यर्थहै॥ इतिसिद्धम् ८।६७॥

इति प्रश्नोपनिषद् गत षष्ठप्रश्न भाषा टीका समाप्ता॥

इति प्रश्नोपनिषद् सम्पूर्णम्॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी॥
सितम्बर सन् १८९० ई०॥

र्य्यकृत भाष्य भाषाकेसाथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनी मिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारोंके अभिप्रायकाभी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्य्यजीकी शंकरभाष्यकातिलक व श्रीआनन्दगिरिकृततिलक अरुश्रीधरस्वामिकृततिलकभी मूलश्लोकोंसहित इसपुस्तकमें उपस्थित है ॥

मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तक सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंका शिरोमणिहै जिसमें आचार कांड, व्यवहारकांड और प्रायश्चित्तकांडनामक तीनकांडहैं जिनसे गृहस्थादिचारोंआश्रमऔरब्राह्मणादिचारोंवर्णोंके सम्पूर्णकर्मधर्मादिऔरराजसम्बन्धी कार्य्योंमें दायभागादिव्यवहारोंमेंवादीप्रति वादियों के धर्मशास्त्रसम्बन्धीमामिले और मुक़द्दमोंकी व्यवस्था वर्णित है ॥

इश्तिहार ॥

माह मार्च सन् १८८६ई० से सुमालिक मगरबी व शिमाली का बुकडिपो इलाहाबाद क्यूरेटर बुकडिपो से मतबा मुंशीनवलकिशोर मुक़ाम लखनऊमें आगयाहै इस बुकडिपो में मग़रबी व शिमाली एजूकेशनल बुककिताबों के सिवाय और भी हरएक बिद्याकी किताबें मौजूदहैं इन हरएक किताबों की ख़रीदारी की कुलशर्त्तें क़ीमतके सहित इस छापेख़ानेकी छपीहुई फ़ेहरिस्त में दर्ज हैं जो दरख्वास्तकरनेपर हरएकचाहनेवालोंको बिलाक़ीमत मिलसक्ती हैं जिनसाहबोंको इन किताबों की ख़रीद करना होवे इसे ख़रीदकरें और फ़ेहरिस्त तलब करें ॥

द० मैनेजर अवधअख़बार
लखनऊ मुहल्लाहज़रतगंज

बीचमसाहब की अजीब व ग़रीब गोलियां ॥



सालहासालसे बीचमसाहब की गोलियां तमाम आलम में फ़रोख्त की जाती हैं और उनकी बिक्री दुनियां की तमाम दवाओंसे बहुत ज्यादह है उन्नीसवींसदीमें कोईदवा ऐसी फ़ायदा पहुंचानेवाली और उम्दह ईजादनहींहुई जैसी यह तिलिस्माती गोलियां हैं जिनलोगोंने इनका एक मर्तबा इस्तेमाल करलियाहै वह और किसीदवाको छूतेभी नहीं और मुत्तफ़िक़ हैं कि इन गोलियोंका एक२बक्स एक अशरफ़ीको भी सस्ताहै हरउम्र और मिज़ाजके मर्द व औरतको बराबर फ़ायदह होताहै इससे कोई नुक्सान नहीं २० मिनटमें मर्ज़को फ़ायदह देती हैं यह सिर्फ़ जड़ी बूटीसे बनती हैं और कोई अशुद्धवस्तु नहीं पड़ती जिससे किसी मज़हबके आदमीको शकहो क़ीमत बहुत सस्ती हरबक्स जो ।||)को मिलता है ६०गोलियां गोया १५ रोज़की ख़ूराक जितनी बीमारियां ख़ूनकी ख़राबी से पैदाहोती हैं इस्तेमालसे बिल्कुल जातीरहती हैं जिसशख्सको नीचे लिखे हुये रोगोंमेंसे कोई रोगहो इनका इस्तेमालकरें हमज़मानतकरते हैं कि उसको ज़रूर२ फ़ायदहहोगा तर्कीब इस्तेमालका पर्चा बक्सकेसाथ मिलेगा--शिकममें बादी—शिरकादर्द—शिरकाचक्करआना—खानाखानेकेबादमादाकीगिरानी—घुमरी—उंघाई—सरदी—ज़ुकाम—खांसीदमा—पित्तीकाउछलआना—भूखकी कमी—हांफना--क़ब्ज़—खुसरा—बदनपरस्याहदागहोना—नींदकाउचाटहोना—बदख्वाबी—घबड़ाहट—डर—फुन्सी—फोड़ा—नासूर—ख़ारिश्त--जमाई—भ्रमराज़—कमज़ोरी—बदहज़्मी—चक्करकी ख़राबी—गले की बीमारी—गला बैठजाना—सांसरुकरुककेआना—अय्यामकाख़िलाफ़मामूलहोना—या रुकजाना—सीनेका बलग़मसे भारीहोना—वग़ैरहवग़ैरह—झूठ न समझिये सचबात है लाखों करोड़ों मरीज़ोंको फ़ायदा होचुकाहै एकदफ़ा अज़माना शर्त है हर बक्सपर सरकारीमुहरहै उसमें बीचम्सपिल्ससेंटहिलंस खुदाहुआहै—अगर यह न हो तो जालीसमझो और मतख़रीदो हरजगहपर बिसाती और अंगरेज़ी दवाफ़रोशोंसे मिलसक्ती हैं—हेलरसगरायम्सएण्डकम्पनी३० ग्रसटंटकलकत्ता—दो के वास्ते एजंटहैं अगर ज़रा भी दिक्कतहो एक रुपयाके टिकट आधआने वाले उनको भेजदो ।||) क़ीमत ।) महसूलडाक--तुम्हारे नाम एक बक्स फ़ौरन् भेजदियाजावेगा खाने व बेचनेवाले थोकके निरख़ को इसी दूकानसे दरयाफ़्त करसक्ते हैं जिस रेलके स्टेशनपर बेलरएण्डको अंगरेज़ी किताबें फ़रोख्त करें- वहां बीचमसाहबकी गोलियां मिलसक्ती हैं ॥

ॐ

मुण्डक उपनिषद् ॥

भाषाटीकासहित ॥

जिसमें

बादी प्रतिबादी के प्रश्नोत्तर से ब्रह्मका निर्णय
व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादि का संभवव अग्नि
होत्रादि क्रियाओं का विधान
मन्त्रोंद्वारा वर्णित है

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्रीमुंशी नवलकिशोरजीने भारत
वर्षीयजनोंके उपकारार्थ बहुतसाधन व्ययकरके कोलाख्य
नगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण
से सरल देशभाषामें उल्थाकराय और
स्वयंत्रालय में मुद्रितकराय
प्रकाशित किया ॥

द्वितीयवार

बाजपेयि पण्डितरामरत्न के प्रबंध से

लखनऊ
मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
सितम्बर सन् १८९० ई० ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्व्व विद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुण संपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुन को परम अधिकारी जानके हृदय जनित मोहनाशार्थ सब प्रकार अपार संसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्तभगवद्गीता वज्रवत्वेदांत व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनी बुद्धिसे पारनहींपासक्ते तब मंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठन पाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्ते हैं—और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसप्रकार संपूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासीभगवद्भक्तअनुरागी श्रीमान्मुन्शीनवलकिशोरजी (सी, आई, ई) ने बहुतसा धनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदांतशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्यआख्य से प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओं की सम्मति से यह विचारहुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

अथर्ववेदीयमुंडकउपनिषद् भाषा टीकाप्रारभ्यते

हेसौम्य सर्व उपनिषद्रूप प्रमाणोंके मध्य (राजावत्) यह उपनिषद् उत्तम होनेसे मस्तकहै । एतदर्थही इसको मुंडक उपनिषद् कहतेहैं । अरु इस उपनिषद्बिषे तीन मुंडकहैं, अरु प्रत्येक मुंडक के दोदो खंडहैं । एतदर्थ इसके तीन मुंडक अरु छः खंडहैं ॥

चिह्न भावार्थमें ॥

“ ” इस चिह्नान्तर मूलमन्त्रके वाक्य ॥
। । इस चिह्नान्तर वाक्योंके अक्षरार्थ ॥
{ } इस चिह्नान्तर अन्य श्रुतियोंके प्रमाण ॥
( ) इस चिह्नान्तर पर्य्याय वा शेष विशेष ॥
[ ] इस चिह्नान्तर विशेषार्थ ॥ आनन्दगिरा

इस भाषाटीकामें जो दोषहोय सो सर्व क्षमाकरना ॥



ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः ॥

ओं अथर्ववेदीय मुंडकोपनिषद् प्रारंभः ॥

ओं ब्रह्मा देवानांप्रथमःसम्बभूव विश्वस्यकर्त्ताभुवनस्यगोप्ता। सब्रह्मविद्यांसर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्वायज्येष्ठ पुत्रायप्राह ॥ १ ॥

ॐ

अथर्ववेदीय मुंडक उपनिषद्की भाषाटीकाप्रारभ्यते ॥

प्रथम मुंडकगत प्रथमखंडकी भाषाटीका ॥

हेसौम्य "ब्रह्मादेवानांप्रथमःसम्बभूव" ब्रह्मा देवताओंके मध्य प्रथम होताभया। [ब्रह्मोपनिषद् अरुगर्भोपनिषद् आदि अथर्वण वेदकेबहुतसे उपनिषद्हैं। तिनको शारीरक सूत्रके भाष्यबिषे अनुपयोगीहोनेकरके तिनका व्याख्यानकरनेको अनिच्छितहैताते। अरु (अदृश्यमग्राह्य) इत्यादि वाक्य से, अदृश्यताआदिक गुणरूप धर्मके कथनसे, इत्यादिक अधिकरणसूत्रबिषे उपयोगीहोनेसे व्याख्यानकरनेको इच्छितइसमुंडक उपनिषद्केआरंभकेपदरूप प्रतीककोयहां भाष्यकार ग्रहणकरतेहैं] इत्यादिरूप यह अथर्वणवेदका मुंडक उपनिषद् है, सो व्याख्यान करनेको इच्छित है । [शंका, ननु, यह उपनिषद् मंत्ररूपहै,अरु मंत्रोंको कर्मसम्बन्धी होनेकरके प्रयोजनवान् पनाहै । अरु इन मंत्रों की योजनाके करनेवाले प्रमाणकी अप्रतीति अरु तिनके सम्बन्धके असंभवसे निष्प्रयोजन

होतेहैं एतदर्थ व्याख्यान करनेको इच्छितपना संभवता नहीं ॥ उ० ॥ हेवादी इस आशंकाका यह उत्तरहै कि इनमंत्रोंका कर्मसे सम्बन्धहीहै, यहतेराकथन सत्यहीहै, तथापि ब्रह्मविद्याके प्रकाश करनेकी सामर्थ्यसे विद्यासे सम्बन्धहोयगा ॥ शंका ॥ ननु, विद्या को पुरुषकृत होनेसे तिसकी प्रकाशक इसउपनिषद्कोभी पुरुष रचितपनेका प्रसंग प्राप्तही होताहै ताते पक्षपातीपुरुषके दोषसे जन्यता शंकाकरके इस उपनिषद्की अप्रमाणता होनेसेव्याख्या- नकरनेको जो इच्छितपना सोबने नहीं ॥ स० ॥ हेवादीयिहांयह अर्थहै कि, विद्याके सम्प्रदायके प्रवर्त्तकही पुरुषहैं, परन्तु नवीन कल्पनासे रचनेवाले पुरुष नहीं। अरु तिनकोविद्याके सम्प्रदाय का कर्त्तापनाजोहै सोभीआधुनिक नहीं कि जिसकरके अविश्वा- सहोय, किन्तु अनादि परंपरासे यह विद्याप्राप्तहै। एतदर्थ अना- दिकालसे प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याके प्रकाशनेबिषे समर्थ जो उपनिषद् तिनका जो पुरुषोंसे सम्बन्ध है सो सम्प्रदायकेकर्त्तापनेकी परंपरा रूपहीहै। ताते उनपुरुषोंको विद्याके सम्प्रदायके कर्त्तापने रूपही सम्बन्धको आदि बिषेही यहउपनिषद् कहता है] तहां आदिबिषे इस उपनिषद्के विद्याके सम्प्रदायके कर्त्तापनेकी परम्परारूप स- म्बन्धको ऐसे महत् (बडे श्रेष्ठ) पुरुषोंने परम पुरुषार्थका साधन होनेकरकेइसविद्याको बडेश्रमसेप्राप्तकियाहै,इस रीतिकीविद्याकी स्तुत्यर्थ। अर्थात् [जैसे विद्याका पुरुषोंसेसम्बन्धहै, तिसही प्रकार जब उपनिषद्काभी पुरुषकरके रचितपनेके निवारणार्थ पुरुषोंसे सम्बन्ध कहनेको इच्छितहोय, तब तिसप्रकारके सम्बन्धकाकहने वाला कोई अन्य चहिये। अरुयहां आपही उपनिषद् करके अप- नेही सम्बन्धके कहनेसे आत्माश्रय दोष प्राप्तहोताहै ॥ यह शंका चित्तबिषे ल्यायके आचार्य कहतेहैं ॥ यहांयह अर्थहै कि विद्याकी स्तुतिबिषे तात्पर्यसे अपने सम्बन्धके कथनबिषे अपनी प्रवृत्तिरूप दोष नहीं] आपही यह उपनिषद्कहताहै। अरु जिसकरके स्तुति कर रुचिकी विषयभई विद्या तिस बिषे मुमुक्षु जन आदरपूर्वक

प्रवृत्त होतेहैं, एतदर्थ श्रोताकी बुद्धिविषेरुचिके उपजावनेके अर्थ विद्याको महान् कहतेहैं। अरु [विद्याका जो प्रयोजनहै सोई इस उपनिषद्काभी प्रयोजन होगा इस अभिप्रायसे विद्याका प्रयोजन से सम्बन्ध कहते हैं] प्रयोजनके साथ विद्याके साधन साध्यरूप सम्बन्धको तौ {भिद्यतेहृदयग्रंथिश्छिद्यंतेसर्वसंशयाः} । हृदयकी ग्रंथि भेद (नाश)को पावतीहै अरु सर्वसंशय अपने छेदनको पावतेहैं। इत्यादिइसही उपनिषद्के दूसरेमुंडकके दूसरेखंडकी आठवीं श्रुतिवाक्यसे आगे कहैंगे। अरु यहां अर्थात् जब संसारके कारणकी निवृत्ति ब्रह्म विद्याका फलहै तब अपर विद्यासेही तिसकी निवृत्तिका संभवहै ताते तिस संसारके कारणकी निवृत्तिरूप फल केअर्थ ब्रह्मविद्याकी प्रकाशक उपनिषद् व्याख्यान करनेको योग्य नहीं। यह शंका विचारके कहते हैं यहां यह भावहै कि संसारका कारण अविद्या आदिक दोषहै, तिसका निवर्त्तकपना कर्मरूप अपरविद्याको संभवता नहीं, क्योंकि कर्म अरु अविद्या आदिकोंका परस्पर अविरोधहै ताते। अरु जिसकरके अनेकनबार प्राणायाम को करनेवाले पुरुषकोभी शुक्ति (सीपी) के साक्षात् दर्शन विना रजत (रूपा) विषयक जो भ्रांतिरूप अविद्या तिसकी निवृत्ति देखते नहीं। एतदर्थ अपर विद्याको संसारका कारण जे अविद्या तिसका निवर्त्तकपना है नहीं] विधिनिषेधमात्रविषे तत्पर जो अपरशब्दकी वाच्य ऋग्वेदादिरूप विद्याहै, तिसविषे संसारके कारण अविद्या आदि दोषका निवर्त्तकपना नहींहै। एतदर्थ { पराचैवापराच } । परा अरु अपरा। [किंवा परमपुरुषार्थके साधन होनेसे ब्रह्मविद्याको पर विद्यापना है, अरु निकृष्ट संसाररूपफलवाली होनेसे कर्मविद्याको अपरविद्यापनाहै, ताते नामकेवलसे अपर विद्याको मोक्षकी साधनताका अभावहै, ऐसे जानतेहैं। इस अभिप्रायसे यहां कहतेहैं]इसप्रकार इस मुंडक उपनिषद्के चतुर्थमन्त्रकरकेविद्याके भेदकेकारण पूर्वक {अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः } । अविद्याके भीतर वर्त्तमान इत्यादिरूप

इस प्रथम मुंडकके सोलहवें मन्त्ररूप वाक्यसे आपही कही। अरु [कर्मजड़ जो कहतेहैं कि केवल ब्रह्मविद्याको कर्मकी अंग भूत होनेसे स्वतंत्रतासे पुरुषार्थ (मोक्ष)का साधनपना नहींहै इस प्रकारका जो कथन सो पिछली श्रुतिनेही निषेधकिया है। इसप्रकार यहां कहतेहैं। यहां यहअर्थहै कि, ब्रह्मविद्याको कर्मकी अंगरूप होनेसे इस श्रुतिबिषे कहीजो कर्मकी निंदा सो चहिये नहीं। अरु जिसकरके अंगके विधानार्थ अंगीकी निंदानहीं करते हैं। अरु यहां तो सर्व साध्य अरु साधनकी निंदासे तिन विषयों बिषे वैराग्यके कथन पूर्वक परब्रह्मके प्राप्तिकी साधन ब्रह्मविद्या को श्रुतिकहे है। एतदर्थ ब्रह्मविद्याको आपहीमुख्य होनेसे तिस-की प्रकाशक उपनिषद्को कर्मकर्त्ताकी स्तुतिकी कारकता नहींहै] तैसे (परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान्) । लोकोंको कर्मरचित जान-के। यह इसही उपनिषदके प्रथम मुंडकके द्वितीयखंडके ११ वें मन्त्रकरके सर्वसाधन अरु साध्यरूप विषयबिषे वैराग्यपूर्वक पर-ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन,अरु गुरुके [जब उपनिषदको स्वतन्त्र ब्रह्मविद्याकी प्रकाशकता होय,तबतिनके अध्ययनकर्त्ता सर्वको ही ब्रह्मविद्या होनी चाहिये सो क्यों नहींहोती है,यहशंकाविचा-रके कहतेहैं। यहां यहभावहै कि, यद्यपिसर्वको गुरुके अनुग्रह आदिक संसारके अभावसे ब्रह्मविद्या नहींहोतीहै परन्तु उत्तमाधि कारीकोहोतीहै] अनुग्रहसे प्राप्त होनेयोग्य जो ब्रह्मविद्याहै, तिसको कहतेहैं। अरु [शंका,ब्रह्मविद्याजबस्वतन्त्रहै तबप्रयोजनकी साधन नहोगी, क्योंकि सुखकी प्राप्ति अरु दुःखकी निवृत्ति इनदोनोंको प्रवृत्तकरके साध्यहोनेका निश्चयहै ताते ॥स०॥ तहांकहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि स्मरणमात्र से विस्मरणभये सुवर्णके लाभके होते सुखकेप्राप्तिकी सिद्धिहै ताते,अरु रज्जुस्वरूप के ज्ञानमात्रसे सर्प जन्यभय कम्पादिक दुःखकीनिवृत्तिकी सिद्धिहै ताते,सुखकी प्राप्ति अरु दुःखकीनिवृत्तिरूप प्रयोजनको नियमकरके प्रवृत्ति अरु निवृ-त्तिकरके साध्यपना नहींहै। एतदर्थ श्रुति, प्रतीतकिये विद्याकाप्र-

योजन तिस प्रयोजन से सम्बन्धको बारंबार कहती है । एतदर्थ तिस विद्याकी प्रकाशक उपनिषद्‌की व्याख्यान करनेकी योग्यता का संभवहै] (ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति) ।ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होता है। अरु (परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे) ।सर्वपर अमृतहुए मुक्त होते हैं। इत्यादि तृतीय मुंडकके वाक्यन से इस ब्रह्मविद्याके प्रयोजन कोबारंबार कहतेहैं। [एकदेशीके मतबिषे जो कहतेहैं कि स्वाध्याय (अपनी २ शाखाके सम्बन्धी वेदभाग) के अध्ययनके विधिका जो अर्थ ज्ञानरूप फल तिसका तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वर्णको अधिकारहै । एतदर्थ सर्व आश्रमोंके कर्म से समुच्चयको प्राप्तभई ब्रह्मविद्याही मोक्षकी साधकहै। तहां कहतेहैं। यहां यह अर्थहैकि, सर्व सामग्रीके त्यागरूप संन्यास विषे स्थित परब्रह्मकी विद्याही मोक्षका साधनहै, इसप्रकार स्वयं वेदही देखावताहै । तिसप्रकार संन्यासियोंको कर्म साधनके अभावसे कर्मका संभव नहीं । अरु तिनके आश्रमका धर्मभी शम दमादिकोंसे वृद्धिको प्राप्तभई सुविद्याबिषे सम्यक् निष्ठावान्‌पनाही है । अरु तिन (संन्यासी) का शौच आचमनादिक कर्मभी वस्तुतः आश्रमका धर्मनहीं । क्योंकि सोकर्म लोकसंग्रहार्थ है ताते। अरु (न ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते) ।यहांज्ञानके तुल्यपवित्र (अन्य) नहीं है । इस गीतास्मृति के वाक्य से, निरन्तर ज्ञानाभ्यास (आत्मानुसन्धान) मात्रसेही अपावनता (अज्ञान)की निवृत्तिहै ताते । अरु त्रिकाल स्नानादिक विधिको अज्ञानी संन्यासीका विषयत्व है ताते । एतदर्थ कर्मकी निवृत्तिसेही ज्ञानअरु कर्मका समुच्चय बनेनहीं] यद्यपि ज्ञानमात्र विषे सर्व आश्रमके पुरुषोंको अधिकारहै । तथापि संन्यासआश्रम विषे स्थित विद्याहीमोक्षकी साधन है, कर्मसहित विद्या मोक्षका साधन नहीं । अरु यह (भैक्ष्यचर्य्यांचरन्तः) ।भिक्षा के भक्षणको आचरतेहुये। प्रथम मुंडकके दूसरेखंडके ११वेंमन्त्रमें, अरु (संन्यासयोगात्) ।संन्यासयोगसे।तीसरे मुंडकके ६ठेमन्त्रमें।इत्यादिवाक्य को स्वयं श्रुति कहतीहुईदेखावैहै। अरु [इसकहनेके हेतुसेभी कर्म

सहित विद्यामोक्षका साधन नहीं इसप्रकार कहतेहैं।यहां यहअर्थहै कि) मैं अकर्त्ताब्रह्महीहौं, अरु कर्मकर्त्ताहौं, यहस्पष्टव्याघात दोषहै] विद्या अरुकर्मके परस्पर विरोध कारणसे ब्रह्म आत्माकी एकताके ज्ञानके साथस्वप्नबिषेभी कर्म सम्पादन करनेको शक्यनहीं। अरु [उत्पन्नहुई विद्यावाला पुरुषभी जबब्रह्म अरु आत्माकी एकताको भूलताहै,तब सिवाय कर्मके और क्याकरेगा,तातेज्ञान कर्मकासमुच्चयसंभवताहै, इसप्रकार कहनेको योग्य नहीं, सोई आचार्य कहते हैं]विद्याके कोईएक कालबिषे अभावकेनिमित्तको अनियमित होने से काल अरु कर्मसे संकोचका असंभवहै। [ननु, अंगिरा आदिक गृहस्थोंको विद्याके सम्प्रदायकी प्रवर्त्तकताके देखनेसे गृहस्थाश्रम के कर्मोंसे ज्ञानका समुच्चय, इस उक्त लिंगसे जानाजाताहै। यह शंका विचारके कहतेहैं। यहां यह भावहै कि युक्ति सहित लिंगको ही सूचकताके अंगीकार करनेसे अरु समुच्चयबिषे युक्तिके अभाव से अरु उलटा विरोधके दर्शनसे लिंगसे समुच्चयकी सिद्धि नहींहै। अरु सम्प्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषोंको गृहस्थाश्रमके आभासमात्रपने के अनुसंधानकर बारंबार बाधसे, अरुइस अर्थबिषे (यस्यमेचास्ति सर्वत्र यस्यमेनास्तिकिञ्चन। मिथिलायांप्रदीप्तायां नमेकिञ्च नदह्यत इति) जिसमेरा सर्वत्र है अरु जिस मेरा कुछभी नहीं है मिथिलापुरीके दग्धभये मेरा कुछभी दग्धहोता नहीं। इसराजा जनकके उद्गार वा उद्धारको देखनेसे कर्माभाससे समुच्चय नहीं होताहै। अरु तहां प्रेरक प्रमाणरूप श्रुतिभी नहीं देखतेहैं] जोपूर्व के गृहस्थोंबिषे ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायका कर्त्तापना आदिक लिंगहै, सोतो पूर्वस्थित विद्याको बाधकरनेको इच्छा करता है। अरु जब तम अरु प्रकाशका संभव अनेकन प्रकारसेभी एक ठकाने करने को शक्य नहीं, तब केवल लिंगों (चिह्नों)से एक ठकाने करने को शक्य न होय इसमें क्या कहनाहै, कुछभी नहीं। [अब सिद्ध करी जो इस उपनिषद् के व्याख्यान करनेकी योग्यता तिसको आचार्य समाप्त करते हैं] इस रीतिसे उक्त सम्बन्धअरु प्रयोजन

वाले इसमुंडक उपनिषद्का अल्पग्रंथरूप विवरण (संक्षेपसेव्याख्यान) करनेका आरंभ करतेहैं । [इसग्रंथविषे उपनिषद् शब्दकी योजना कैसेहै इसशंकाके होनेसे ग्रंथको उपनिषद् शब्दकी वाच्य विद्यारूप अर्थवाला होनेसे ग्रंथविषे उपनिषद् शब्दकी योजना लक्षणासेहै, इसप्रकार देखावनेके अर्थविद्याको उपनिषद् शब्दका अर्थपना कहते हैं] जो मुमुक्षुपुरुष इस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्याको श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रवृत्तहुये परम प्रेमास्पद (परम प्रेम) की विषय होनेकरके ग्रहणकरते हैं, तिनके गर्भवास जन्म जरा अरु रोग मरणादि क्लेशोंकेसमूहोंको शिथिल करेहैं । अर्थात् [यहां यह अर्थ है कि अपरिपक्व ज्ञानसे दो वा तीन जन्मोंकरके मोक्ष होनेका संभवहै ताते ब्रह्मविद्या क्लेशके समूहोंको शिथिल करे है ऐसे कहाहै] वा परब्रह्मको प्राप्तकरेहै । अरु अन्य अविद्याआदिक संसारके कारणको नाशकरे है, एतदर्थ इसको उपनिषद् कहते हैं । अरु अब इसके मन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं, ब्रह्मा जो है सो धर्म ज्ञान वैराग्य अरु ऐश्वर्य, इन चारगुणोंकरके अन्य सर्वको उल्लंघके वर्त्ताहै, एतदर्थ परिवृद्ध (सर्वसे बड़ा)है, अरु इसही से महान्है ताते सो "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" । ब्रह्मादेवताओंके मध्य प्रथम होताभया। ब्रह्मा द्योतनवान् (प्रकाशयुक्त) इन्द्रादि देवताओंके मध्य गुणोंकरके प्रथम अर्थात् मुख्य वा उन देवताओंके पूर्व हुआ स्वतन्त्र होनेकरके आपही प्रकट होताभया। जिसप्रकार धर्म अधर्म (पुण्यपाप) के वशते अन्य संसारी जीव उपजते हैं तैसे नहीं । (योसावतीन्द्रियग्राह्य इत्यादिस्मृतेः) जो यह इन्द्रियनसे ग्राह्यवस्तुको उल्लंघके वर्त्ताहै सूक्ष्महै,अप्रकटहै, सनातनहै, सर्वभूतमयहै, अरु अचिन्त्य है सो यह आपही प्रकट होताभया। अर्थात् शुक्र शोणितके संयोग विना आविर्भाव कोपाया इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मदेवका स्वतन्त्रपना जानाजाता है । अरु पुनः सो ब्रह्मा कैसाहै "विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता" । विश्वका उत्पन्न करनेवाला अरु भुवनका पालन करनेवाला है ।

सर्व जगत्का उत्पन्नकरनेवाला है अरु उत्पन्न किये भुवनों का (जगत्का) पालन (रक्षा) करनेवाला है । यह जो विद्याके प्रवर्तक ब्रह्माका विशेषण है सो विद्याकी स्तुत्यर्थ है अरु " सब्रह्म विद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठां " । सोई सर्व विद्या की प्रतिष्ठारूप ब्रह्म विद्या को । सोई प्रख्यात महान् भाववाला ब्रह्मा,ब्रह्मजो परमात्माअक्षर है तिसकी जो विद्या कि { येनाक्षरंपुरुषवेदसत्यं } । जिसकरकेसत्य (अक्षर) पुरुष जानाजाताहै । जिस विद्याकरके अक्षरब्रह्मजानाजाता है, इसश्रुति उक्त विशेषणसे परमात्माको विषयकरनेवालीहै, एतदर्थब्रह्मविद्या कहतेहैं । अथवा सर्वकेअग्रज (प्रथमउत्पन्नहोनेवाले) ब्रह्माने अपनेअनुभवसे कथन कियाहै, एतदर्थ इसको ब्रह्मविद्या कहते हैं । अरु सो सर्व विद्याके आविर्भाव प्रकट होने की हेतु है तिसकरके सर्व विद्याओंकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है । [महा वाक्यसे उत्पन्नभई बुद्धिवृत्तिसे आविर्भाव (साक्षात्कार) को प्राप्तभया ब्रह्महो ब्रह्मविद्या है । अरु सोई ब्रह्म जिसकरके सर्वका प्रकाशक है तिसही करके सर्वविद्याकी प्रकाशक होनेकरके आश्रय करतेहैं, ऐसी जो ब्रह्मविद्या सो सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है] अथवा सर्व विद्या करके जानने योग्य वस्तु जिस (विद्या)करके जानते हैं ; अर्थात् जिस (विद्या) के उत्पन्नहुये सर्व विद्याकी समाप्ति होतीहै, । तथाच { येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतंमतमविज्ञातं विज्ञातमितिश्रुतेः } । जिसकरके नहीं श्रवण किया वस्तु श्रवणकिया होता है, अरु , नहीं मनन किया वस्तु मनन किया होता है अरु नहीं विज्ञात (निश्चय) किया वस्तु विज्ञात (निश्चय) किया होता है , इस श्रुतिके प्रमाणसे । एतदर्थ सो (ब्रह्मविद्याको) सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (अवधि) कहते हैं । तिस सर्व विद्याकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्याको, ब्रह्माके अनेक सृष्टिके प्रकारों बिषे एक सृष्टिके प्रकारके पूर्वमें अथर्वानाम ऋषि उत्पन्न कियाहै, एतदर्थ सो ब्रह्माका ज्येष्ठपुत्रहै, तिस " अथर्वायज्ज्येष्ठपुत्रायप्राह " । अथर्वानाम ज्येष्ठ

अथर्व्वणेयांप्रवदेतब्रह्माऽथर्व्वांतांपुरोवाचांगिरेब्रह्मविद्याम्। सभारद्वाजायसत्यवाहायप्राह भारद्वाजोंऽगिरसेपरावराम् २ ॥

पुत्रके अर्थ कहता भया। अथर्वानामवाले अपने ज्येष्ठपुत्रके ताईं (ब्रह्मा) कहता भया १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ हे सौम्य, "। अथर्व्वणेयांप्रवदेतब्रह्मा "। । जिसको ब्रह्मा अथर्वाऋषिके अर्थ कहताभया। जिस इस ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्व्वानाम वाले ऋषिके अर्थ कहताभया। अरु "। तांपुरोवाचांगिरेब्रह्मविद्याम् "। । तिस ब्रह्मविद्याको पूर्व अंगिरा को कहताभया। तिस ब्रह्मासे पाईभई ब्रह्मविद्याकोही अथर्व्वा नामवाला ऋषि सर्व से पूर्व (पहिले) अंगिरानामवाले ऋषीश्वर के अर्थ कहताभया। अरु "। सभारद्वाजायसत्यवाहायप्राह "। । सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहके अर्थ कहताभया। सो अंगिराना-मवाला ऋषीश्वर, भारद्वाजगोत्रवाले सत्यवाहनामवाले ऋषि के अर्थ कहताभया। अरु "। भारद्वाजोंऽगिरसेपरावराम् "। । भार-द्वाजपरसे अवर करके प्राप्तभई विद्याको अंगिरसके अर्थ कहता भया। सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहनामक ऋषि जो परब्रह्म से अवर (अश्रेष्ठ) ब्रह्माकरके प्राप्तभईहै परावरा है। वा पर अरु अपररूप सर्वविद्याके विषयविषे व्याप्तहोनेकरके जिसको परावरा कहतेहैं। ऐसी तिस परावररूप विद्याको अंगिरसनामवाले अपने शिष्य वा पुत्रके अर्थ कहता भया २ ॥

३ हे सौम्य, "। शौनकोहवै महाशालोंऽगिरसंविधिवदुपसन्नः पप्रच्छ "। । बडे घरवाला शौनकऋषि विधिवत् समीपआय नि-श्चय स्पष्ट पूछता भया। महान् गृहस्थ (धन कुल विद्या स-म्पन्न) ऐसा जो शुनक नाम ऋषि का पुत्र शौनक नामवाला ऋषि, सो भरद्वाज गोत्रवाले सत्यवाह नामवाले ऋषिके शिष्य अंगिरस नामवाले मुनीश्वर रूप आचार्य के ताईं विधिवत्,

शौनकोहवैमहाशालोऽङ्गिरसंविधिवदुपसन्नःपप्रच्छ।
कस्मिन्नुभगवोविज्ञाते सर्वमिदंविज्ञातंभवतीति ३ ॥

अर्थात् शास्त्रानुसार समिधादि द्रव्य लेके, समीप प्राप्तहोय प्रश्न करता भया । यहां शौनक अरु अंगिरसके सम्बन्धकेपीछे विधिवत्, इस विशेषण को कहा है, तिस करके पूर्वके ऋषियों के, आचार्य समीप जाय प्रश्न करने की विधिका अनियम है, ऐसा जानाजाता है । अथवा, विधिवत्, यह जो विशेषण है सो मध्यदीपकन्याय के प्रमाण है, अर्थात् [जैसे देहली के ऊपर धरा दीपक दोनोंओर प्रकाश करताहै, तैसेही मूल श्रुतिविषे अंगिरा शब्द अरु शिष्य का विशेषण रूप ,उपसन्न, शब्द इन दोनों के मध्य जो ,विधिवत्, शब्द है तिसका दोनोंओर सम्बन्ध है] अरु अस्मदादिकों बिषे भी आचार्य के समीप जायके प्रश्नकरने की विधिकी इष्टता है ॥ प्र० ॥ सो आचार्य के समीप जायके प्रश्नका करना क्या है ॥ उ० ॥ शौनकउ० ॥ "कस्मिन्नुभगवो विज्ञातेसर्वमिदंविज्ञातंभवतीति" । हे भगवन् किसके विशेष करके जाने हुये सर्व यह विशेष करके जानाजाता है । हे भगवन् हे पूजा करने योग्य किसके विशेष करके जाने हुये यह सर्व जानने योग्य वस्तुविशेष करके जानाजाता है यहां (एकस्मिनज्ञाते सर्वविद्भवतीति) । एकके जानने से सर्व का जानने वाला होताहै । इस प्रकार शिष्ट पुरुषोंके सम्बादको शौनक ऋषि पूर्व श्रवण करता भयाहै । ताते तिस एक वस्तु के विशेष रूपके जानने की इच्छा करता भया (कस्मिन्नुविज्ञाते) । किसके जाने हुये । ऐसे तर्कको करताहुआ पूछताभया [उपादान कारण (जैसे घटका उपादान मृत्तिका) से कार्यकी पृथक् सत्ताका अभावहै, तिस करके उपादानके जानेहुये, तिसका कार्य तिस उपादानसे भिन्न नहीं, इस प्रकार जानाजाता है, ऐसी लोकों बिषे सामान्यव्याप्ति है तिसके बलसे वो पूछता भया, ऐसे कहते हैं] अथवा

तस्मैसहोवाच । द्वेविद्येवेदितव्यइतिहस्म यद्ब्रह्मविदोवदन्ति पराचैवापराच ४ ॥

लोकनकी सामान्यदृष्टिसे जानकेही पूछताभया । जैसे लोक विषे समान जातीआदिक समस्त भेद जोहैसो समानजाती आदिककी एकताके ज्ञानसे लौकिक पुरुषोंकरके जाननेविषे आवते हैं। तैसेही सर्व जगत्के भेदका एक कारण कौनहै, कि जिस एकके जानेहुयेसर्व जानाजाताहै, यहभी लौकिक जनोंकरके जानने में आवताहै। एतदर्थ सामान्य लोकोंकी दृष्टिसे यहप्रश्न बनताहै। [अब प्रश्नके अक्षरोंकी असमीचीनताका आक्षेप करके समाधान करतेहैं। यहां यह अर्थ है कि,सो क्याहै इसप्रकार उच्चारणके किये अक्षरोंकी बाहुल्यतासे श्रम होता है, तिससे भयकरके (कस्मिन्नु विज्ञाते) ।किसके जाननेसे। इसप्रकार अक्षरोंकी सुगमताके लाघवसे यह प्रश्नहै] ननु जब अज्ञातवस्तुविषे (कस्मिन्नु विज्ञाते) । किसके जाननेसे । यह प्रश्न अघटितहै ,ताते प्रथम,सो क्याहै, ऐसा प्रश्नयुक्तहै, पश्चात् वस्तुके सद्भावके सिद्धभये (कस्मिन्नु विज्ञाते) ।किसके जाननेसे, ऐसा प्रश्नहोताहै। जैसेलोक विषे पेटी (संदूक) आदिक आधारके सद्भावका प्रथम ज्ञानहोनेसे तब पश्चात् यह अमुकवस्तु किसबिषे रखनेके योग्यहै, यहप्रश्न होताहै तैसे ॥ सोकथन बने नहीं । क्योंकि शिष्य अक्षरोंकी बाहुल्यता करके श्रमसे भयको प्राप्तभया होताहै ताते । सो क्या है कि जिसके जानने से सर्वका जाननेवाला होता है, ऐसा प्रश्न संभवेनहीं, किन्तु (कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति) ।किसके जाननेसे यहसर्व जानाजाता है। इसप्रकारका प्रश्न संभवताहै ३ ॥

४ हेसौम्य, "। तस्मै सहोवाच "। ।तिसकेअर्थ सो स्पष्टकहताभया। तिस प्रश्नकर्त्ता शौनकऋषिके अर्थ सो अंगिरस वाअंगिरा नामक मुनीश्वर आचार्य स्पष्ट कहताभया ॥ प्र० ॥ क्या कहता

तत्रापराऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदःशिक्षाकल्पोव्याकरणंनिरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति । अथ पराययातदक्षरमधिगम्यते ५ ॥

भया ॥ उ० ॥ अंगिराउवाच " द्वेविद्ये वेदितव्य इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति" । दोनोंविद्या जाननेयोग्यहैं ऐसेप्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं। अर्थात् दोनोंविद्या जाननेयोग्यहैं, इसप्रकार प्रसिद्ध जो वेदार्थके जाननेवाले परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता सो कहते हैं ॥ प्र० ॥ कौन वोदोनों विद्याहैं ॥ उ० ॥ "पराचैवापराच " । परा अरुअपरा है। एक परा, अर्थात् परमार्थ विद्याहै । अरु दूसरी अपरा अर्थात् धर्म अरु अधर्मके साधन अरु तिनके फलको विषय करनेवाली विद्याहै ॥ शंका ॥ (कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति) । किसके जाननेसे सर्वका जाननेवाला होताहै। इसप्रकार शौनक मुनिने प्रश्नकियाहै । तिसके उत्तर कहनेको योग्यहोते संते भी अंगिरा मुनि (द्वेविद्ये वेदितव्ये) । दोनों विद्या जाननेयोग्यहैं। इत्यादिरूप वाक्योंसे नपूछेहुये अर्थको कहते हैं सो योग्य नहीं ॥ स० ॥ यहदोष बने नहीं, क्योंकि प्रतिउत्तरको क्रमकीअपेक्षावाला होनेसे । अरु जिसकरके अपरा विद्या जो है सोनिषेध करनेयोग्य अविद्या है । तातें तिसके विषयको नजाननेसे कुछ तत्त्व (बस्तु तिसका विषय)नजानाहुआ होताहै । इसकरके प्रथम पूर्वपक्षको निषेध करकेही पश्चात् सिद्धान्त कहनेको योग्यहोता है । इस न्यायसे अंगिरामुनि प्रथम नपूछेहुये अर्थको कहतेहैं ४॥

५ हे सौम्य, पूर्व कही जो दोविद्या तिन दोनों में अपराविद्या कौनसीहै तिसको श्रवणकरो " तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति " । तहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अरु अथर्ववेद, शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष, यहअपरा विद्या है। अर्थात्ऋग् यजु साम अथर्व यह चारवेद, अरु शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त

(वेदके नामोंका कोश)छन्द (पिंगल), अरु ज्योतिष, यह ६ वेदके अंगहैं । यहसर्व अपरा विद्याहै ॥ अरु " अथ परायया तदक्षरमधिगम्यते " (अब जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोताहै सो पराविद्या है। अव यह पराविद्या कहतेहैं, जिस विद्याकरके सो अग्रिम छठे मन्त्रसे कहनेको हैं विशेषण जिसके ऐसा अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोय है, [जिसकर के अविद्याकी निवृत्तिही परब्रह्मकी प्राप्ति कहते हैं, भिन्न अर्थ नहीं, ताते परब्रह्मकी प्राप्ति अरु अधिगम शब्दके अर्थ का भेदनहीं] सो पराविद्याहै ॥ ननु[षट् अंगसहित वेदोंको अपरविद्याकरके कहनेसे तिनसे भिन्नवेदसे बाहर होनेकरके ब्रह्मविद्याको परविद्यापना नहीं संभवेहै, इसप्रकार वादी आक्षेप करता है । यहां यह अर्थहै कि विद्याको वेदसे बाहरपनेके हुये, तिसअर्थ वाले उपनिषदोंकोभी ऋग्वेदादिकोंसे बाहरपना अर्थात् वेदसे बाह्यपना प्राप्तहोवेगा] ब्रह्मविद्या जब ऋग्वेदादिकोंसे बाहर है तब सो पराविद्या कैसे होवेगी । अरु मोक्षकी साधन कैसे होवेगी अरु जिसकरके " जो वेदसे बाह्य स्मृतियां हैं, अरु जो कोई कुदृष्टियां हैं सो जिसकरके मरणको पायके नरकमें स्थितकरने वालीगई है, एतदर्थ वे सर्व निष्फल हैं, इसप्रकार स्मृति विषे कहाहै एतदर्थ कुदृष्टिरूपहोनेसे, अरु निष्फल होनेसे सो ब्रह्मविद्या अनादरकरनेको योग्य होवेगी । अरु उपनिषदोंको ऋग्वेदादिकोंसे बाह्यपना सिद्धहोवेगा । अरु जब सो ब्रह्मविद्या ऋग्वेदादिरूपहै, तब (अथपरा) (अवपरा) इत्यादिरूप वाक्य से तिसको ऋग्वेदादिकोंसे पृथक्करना व्यर्थहै । यह कथन बनेनहीं। [उपनिषदोंको वेदसे बाह्य होनेकरके विद्याको तिनसे भिन्नकरना नहीं संभवता है, किन्तु यहां वस्तुको विषयकरनेवाले वैदिक ज्ञानभी शब्दकेसमूहरूप वेदसे अधिकताके अभिप्रायसे विद्याका भिन्नकरना है इस अभिप्रायसे कहते हैं] क्योंकि यहां जानने योग्य विषयके विज्ञानको पराविद्या शब्दसे कहनेको इच्छित है ताते । अरु जिसकरके यहां उपनिषदों से जानने योग्य अक्षर

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रंतदपाणिपादम् । नित्यंविभुंसर्व्वगतंसुसूक्ष्मंतदव्ययंयद्भूतयोनिंपरिपश्यंतिधीराः ६ ॥

ब्रह्म को विषयकरनेवाला विज्ञान पराविद्याहै, इसप्रकार मुख्यताकरके कहने को इच्छितहै । अरु उपनिषद शब्दका समूह नहीं अरु वेद शब्द से तौ सर्व ठिकाने शब्द समूह कहने को इच्छित है । अरु अक्षर (ब्रह्म) को शब्दके समूहसे जानने योग्य होनेसे भी गुरुके समीप जाने आदिक अन्य उपाय विना अरु वैराग्य रूप अन्य प्रयत्नविना अक्षरका विज्ञान संभवता नहीं।एतदर्थ ब्रह्म विद्याका पृथक् करना अरु यह परा विद्याहै, यह कथनबने है ५ ॥

६ हे सौम्य, जैसे विधिका विषय जो वाक्यार्थज्ञान तिसके कालसे अन्यकाल बिषे कर्त्ता आदिक अनेक कारकों की समाप्ति के द्वारसे अग्निहोत्रादिरूप अनुष्ठान करने योग्य अर्थहै । तैसे यहां परा विद्याके विषयबिषे नहीं । किन्तु यहां तो जाननेरूप अर्थ वाक्यार्थ ज्ञानके समकाल बिषेही तिस अवधिको प्राप्तहोता है, क्योंकि केवलशब्दसे प्रकाशकिये अर्थके ज्ञानमात्रकीही निष्ठा से भिन्न अनुष्ठानका अभावहै ताते। एतदर्थ यहां अपराविद्याको षष्ठवाक्यसे लेके नवमवाक्यके पर्यन्त विशेषणों सहित अक्षरसे युक्तकरे हैं "यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादम्" जो अदृश्यहै अग्राह्यहै अगोत्र है अवर्ण है अचक्षुश्रोत्र है सो अपाणिपादहै । जो सो अदृश्य है [यहां 'जो,' 'सो,' इनशब्दों से अग्रिम कहनेका वस्तु, बुद्धिबिषे रखके सिद्धवत् स्मरणकरते हैं] अर्थात् सर्वज्ञानेन्द्रियोंका अविषयहै । अरु अग्राह्यहै, अर्थात् कर्मेन्द्रियों का अविषयहोने से ग्रहणकरने में आवता नहीं । अरु अगोत्रहै, अर्थात् गोत्रजो वंश तिससे रहितहै । अर्थयह जो जिसे करके सो अक्षर (ब्रह्म) वंशवालाहोय ऐसा तिसका कोई नहीं है । अरु जो वर्णन करतेहैं ऐसे जो स्थूलपने आदिकवा शुक्लपने

आदिक गुणवान् वस्तुरूप शरीरादिक द्रव्यके धर्महैं, सो वर्ण कहते हैं। सो वर्ण जिसको अविद्यमानहै,ऐसा जिसकरके अक्षर है तिसकरके सो (अवर्ण है)। अरु चक्षुअरु श्रोत्र जो हैं सो सर्व जीवोंवा वस्तुओं के नाम अरु रूप विषयके ग्रहण बिषे साधन (करण) हैं (सो चक्षु अरु श्रोत्र जिसको विद्यमान नहीं) ऐसा जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) है तिसकरके सो (अचक्षुःश्रोत्रं) (चक्षु अरु श्रोत्रसे रहित) है। [अप्राप्तके निषेध के प्रसंग से, यहां अक्षर शब्दको प्रधान (प्रकृति) रूप अर्थकी परताहै, इसप्रकार शंकाकरनेको योग्य नहीं है यह मानके कहते हैं] (यः सर्वज्ञस्सर्ववित्) । जो सर्वज्ञ है अरु सर्ववित् है। इत्यादिरूप इसही खंडके नवम मन्त्रविषे चेतनवान्पनेरूप विशेषणकरके ब्रह्मको संसारी जीवोंवत् चक्षु अरु श्रोत्रादिक साधनोंसे विषयोंकी साधकता प्राप्तभई, सो यहां (अचक्षुःश्रोत्रं) । अचक्षुः श्रोत्र । इनाविशेषणोंसे निवारण करते हैं। क्योंकि (पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः) । सो (परमात्मा) चक्षुरहितहुआ देखताहै अरु कर्ण रहित हुआ सुनताहै । इत्यादि विशेषणोंको देखते हैं ताते। अरु (सो) अक्षर (ब्रह्म) (अपाणि पादहै) अर्थात् कर्मेन्द्रियों करके रहितहै। जिस करके इसप्रकार अग्राह्य अरु अग्राहकरूपहै तिसहीकरके "नित्यं विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मम्" । नित्यहै विभुहै सर्वगतहै अरु अतिशय सूक्ष्म है (सो) नित्य है, अर्थात् अविनाशी है। अरु ब्रह्मासे आदिलेके स्थावर पर्यन्त प्राणियोंके भेदरूप विविध प्रकार से होतेहैं ताते (विभुहै)। अरु (सर्वगतहै) अर्थात् आकाशवत् सर्वत्र व्यापकहै। अरु (आकाशसेभी) अतिशय सूक्ष्महै, क्योंकि शब्दादिक स्थूलभावके कारणोंसे रहितहै ताते। अरु शब्दादिक जोहै सो आकाश अरु वायु आदिकों के उत्तरोत्तर स्थूलभावके कारण हैं, तिनके अभावसे सो अतिशय सूक्ष्महै। अरु "तदव्ययंयद्भूतयोनिम्परि पश्यन्ति धीराः" । सो अव्ययहै भूतयोनिहै, जिसको धीर, सर्वओरसे देखते हैं। 'सो, अव्यय है, अर्थात् उक्त धर्म-

यथोर्णनाभिःसृजतेगृह्णतेचयथा पृथिव्यामोषधयःसम्भवन्ति । यथासतःपुरुषात्केशलोमानितथाऽक्षरात्सम्भवतीहविश्वम् ७॥

वाला होनेसेही सो घटने बढ़ने रूप व्ययको पावता नहीं, ताते अव्यय है, अरु जिसकरके अंग रहित ब्रह्मको शरीरवत् अंगोंके घटने रूप व्ययका होना सम्भवता नहीं । अथवा राजाओं के भण्डारवत् धनके भण्डारके घटने रूप व्ययभी सम्भवता नहीं । अरु गुण (बुद्धिरूप) द्वारवाला व्ययभी सम्भवता नहीं, क्योंकि गुणसे रहित है ताते । अरु सर्वका आत्माहै ताते, एतदर्थ अव्यय है अरु सो पृथिवीवत् स्थावर जंगमरूप भूतोंका कारणहै, एतदर्थ भूतयोनिहै । जिस ऐसे लक्षणवाले अक्षर (ब्रह्म) को धीर जो विवेकी पुरुष हैं सो सर्व ओरसे सर्वका आत्मारूप देखते हैं ॥ इसप्रकार अक्षर (ब्रह्म) जिस विद्यासे प्राप्तहोताहै तिस विद्याको पराविद्या कहतेहैं । यह पदोंमें समुदाय रूप वाक्यार्थ है ॥ इति सिद्धम् ६ ॥

७ हे सौम्य, अबहीं छठे मन्त्रकरके (यद्भूतयोनिं) । जो भूतयोनिरूप अर्थात् सर्वका कारणरूप अक्षर (ब्रह्म) है । इस प्रकार कहाहै, तहां अक्षर (ब्रह्म) का भूतयोनि (सर्वका कारण) पना कैसेहै, इस अर्थको लौकिक प्रसिद्ध दृष्टांतों पूर्वक कहतेहैं । "। यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णतेच " । जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ी) सृजताहै पुनः ग्रहण करताहै । जैसे लोकबिषे प्रसिद्ध ऊर्णनाभि (मकडी आदिक) नामवाला कोई एक कीट (कीड़ा) है, सो अन्य किसीभी कारण (निमित्त) की अपेक्षा न करके आपही अपने शरीरसे अभिन्न तन्तुओंको सृजताहै, अर्थात् बाहरको प्रसारित करताहै पुनः तिन प्रसरित किये तन्तुओंको ग्रहणकरता है, अर्थात् तिन तन्तुओंको अपने आत्मभावके ताईं प्राप्तकरताहै अरु [ब्रह्मजगत्का उपादान नहीं है तिससे अभिन्नहै ताते, स्व-

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥

रूपवत् । इस अन्यरीतिके अनुमानका व्यभिचारीपना पृथिवी के दृष्टान्तसे कहते हैं] " यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति " । जैसे पृथिवी विषे ओषधियां उपजती हैं । जैसे लोकमें पृथिवी विषे तंडुल (धान्य) आदिलेके वृक्षादिरूप स्थावर पर्यंत जो जो ओषधियां है , सो स्वरूपसे अभिन्नही उत्पन्न होती हैं । अरु [जगत् जोहै सो ब्रह्मरूप उपादान वाला नहीं , क्योंकि तिससे विलक्षणहै ताते, अरु जो जिससे विलक्षण होताहै सो तिस उपादान वाला होता नहीं । जैसेघट जो है सो तन्तुरूप उपादानवाला होता नहीं तैसे इस अनुमानकाभी पुरुष (शरीर) केसम्बन्धी केश लोमादिकों के दृष्टान्त से व्यभिचार कहते हैं] " यथा सतः पुरुषात् केश लोमानि " । जैसे जीवते पुरुषसे केश रोमउत्पन्न होते हैं। जिसप्रकार विद्यमान अर्थात् जीवतेहुये पुरुष(शरीर) से केशरोम अरुनख यह विलक्षण उत्पन्नहोतेहैं ॥ हेसौम्य,जिस प्रकार येसर्व दृष्टान्तहैं । " तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् " । तैसे अक्षरसे इसविषे विश्व उत्पन्न होताहै। तिसहीप्रकार अन्य निमित्तकी अपेक्षासे रहित छठे मन्त्रकरके कहे प्रमाण लक्षणवालेअक्षर (ब्रह्म) से इस संसारमंडलविषे विपरीत लक्षणवाला अरु समान लक्षण सम्पूर्ण विश्व (जगत्) उत्पन्न होता है । [ननु एकही दृष्टान्तविषे उक्ततीनों अनुमानोंका व्यभिचारीपना मिलावनेको शक्य है इसप्रकारकी शंका करनेवालेप्रति कहते हैं] यहां अनेक दृष्टान्तोंका जोग्रहण है सो सुखपूर्वक भलीप्रकार जिज्ञासुप्रति अर्थके समुझावनेके अर्थ है । अरु ब्रह्मसे उत्पन्नभया जो विश्व (जगत्) है सो इसही क्रम से उत्पन्न होता है । बदरीफलकी मुष्टीके फेंकनेवत् नहीं, यह भाव है ॥ ७ ॥

(हेसौम्य, अब सृष्टिके क्रमके नियमके कहनेकी इच्छारूप अर्थ

वाला इस अष्टम मन्त्रका आरंभ करते हैं " तपसा चीयतेब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते " । ब्रह्म तपसे स्थूलताको पावता है, तिस ब्रह्मसे अन्न होताहै। उत्पत्तिकी विधिका ज्ञाताहोनेकरके भूतयोनि अक्षररूप जोब्रह्म सोज्ञानरूप तपसे सृष्टिकी अनुकूलतारूपस्थूलताको पावताहै, अर्थात् जलकणके पूर्णहुये क्षेत्रबिषे अंकुरकेताईं उत्पन्न करानेको तैयारभये बीजवत्, अरु पुत्रकेताईं उत्पन्नकरने को इच्छा करतेहुये पितावत्, इस जगत्के ताईं उत्पन्न करनेको इच्छा करताहुआ अक्षररूप ब्रह्म हर्षसे पुष्टता (स्थूलता)कोपावताहै। इसप्रकार सर्वज्ञपनेसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहारकी शक्तिके ज्ञानवाला होनेकरके पुष्टताको प्राप्तभये तिस ब्रह्मसे यह भोगतेहैं (आवरणादि रूपसे अनुभव करतेहैं) इसप्रकारका, अथवा अन्नवत् सर्वके अर्थ साधारण होनेवाला, ऐसा जो संसारीजीवों का साधारण अव्याकृतिरूप अन्न, सो उपजावने की इच्छायुक्त प्रधान अवस्थारूप से उत्पन्न होता है। अरु " अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाःकर्मसुचामृतम् " । तिस अन्नसे प्राण मन सत्य सर्वलोक कर्मोबिषे अमृत (होताहै) । तिस जगत्के सृजने की, अर्थात् [शुद्ध ब्रह्मको ईश्वरपनेका उपाधि रूप जो मायातत्त्व सो महाभूतादि रूपसे सर्व जीवोंकरके देखतेहैं, एतदर्थ साधारण है। तथापि सो अनादि सिद्ध होनेकर के कैसे उत्पन्न होता है, यह शंका चित्तबिषे ल्यायके कहतेहैं । यहां यह रहस्य है कि कोई एक कहते हैं कि, कर्मके संस्काररूप अपूर्वके समवाय(मिलाप) रूप सम्बन्धवाला सूक्ष्मभूत अव्याकृतहै । सो कहना बने नहीं। क्योंकि तिसको जीव जीवकेप्रति भिन्न २ होने से ईश्वरपने की उपाधि होनेका असंभवहै ताते । अरु सामान्यरूपसे संभवहुयेभी पृथिवी आदिक सामान्य रूपोंकी बाहुल्यता करके प्रकृतिबिषे एकताकी श्रुतिके विरोधकी प्राप्तिहै ताते। अरु जड महामायारूपसेंही संभवहुयेभी तिसको कर्मके अपूर्व के समवाय करके युक्तपना न होवैगा। क्योंकि तिस महामायाको प्रकारकेरूप होनेसे अरु बुद्धि

आदिकों काही कारक (कर्त्ता)पनेका कथनहै ताते । अरु कारकके अवयवों विषेही क्रियाके समवाय संबन्धका अंगीकारहै ताते किंवा, कार्यको अपने कारणका उपादानपना नहीं देखाहै । एतदर्थ पट को तंतुके उपादानतावत्, अपंचीकृत भूतों की समष्टिरूप सूक्ष्म भूतोंको अपने कारण अपंचीकृत पंच महाभूतोंका उपादानपना न होवेगा । एतदर्थ महाभूतोंकी उत्पत्तिआदि संस्कारका आश्रय जो तीनगुणकी साम्य (ऐक्य) अवस्थारूप जो मायातत्त्व है सो यहां अव्याकृतादि शब्दोंका वाच्य अंगीकार करनेको योग्य है] इच्छायुक्त अवस्थावाले अव्याकृत (माया) रूप अन्न से, ब्रह्म के अर्थात् [पूर्व कल्पविषे हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्ति के निमित्त श्रेष्ठ उपासना अरु कर्म जिसने अनुष्ठान किया है, तिसके अनुग्रहार्थ माया उपाधिवाला ब्रह्म हिरण्यगर्भ अवस्थाके आकारसे होताहै। अरु तिस अवस्थाका अभिमानी सोकर्म अरु उपासनाका कर्त्ता जीव हिरण्यगर्भ करके कहतेहैं, इस अभिप्रायसे यहां प्रतिपादन करते हैं] ज्ञानशक्ति अरु क्रियाशक्ति करके युक्त व्यष्टिरूप जगत् का साधारण समष्टिरूप सूत्रात्मा नामवाला] अविद्या काम कर्म अरु भूतोंके समुदायरूप बीजका अंकुर जगत्का आत्मा, हिरण्यगर्भरूप प्राण उत्पन्न होताभया । अरु तिस हिरण्यगर्भरूप प्राण सेसंकल्प विकल्प संशय अरु निश्चयरूप मन नामवाला अन्तःकरणादिकका उपादान अपंचीकृत भूतों का पंचक उत्पन्न होता है । अरु तिस संकल्पादि रूपवाले मनसे भी सत्य नामवाला आकाशादिक अपंचीकृत भूतोंका पंचक विराट् उत्पन्न होता है। अरु तिस सत्यनामवाले भूतोंके पंचक से क्रम करके ब्रह्मांडरूप पृथिवीआदि सातलोक उत्पन्न होतेहैं। अरुतिन उत्पन्नभये लोकों विषे मनुष्यादि प्राणियोंके वर्ण अरु आश्रमके क्रमसे कर्म उत्पन्न होताहै। अरु तिन निमित्तरूप कर्मोंविषे कर्म्मजन्य फलरूपअमृतउत्पन्न होताहै। अरु यावत्पर्यन्त शतकोटि कल्पनामेंभी कर्म्म नाशको पावते नहीं तावत् पर्यन्त तिनका फलभी नाशको पाव-

यःसर्व्वज्ञःसर्वविद्यस्य ज्ञानमयंतपः । तस्मादेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नञ्चजायते ९ ॥

इति प्रथममुंडकगत प्रथमखंडः ॥

ता नहीं । एतदर्थ इन कर्म्मोंके फलको अमृत कहतेहैं ॥ ८ ॥

हेसौम्य, कथनाकियेहुये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेकी इच्छावाला नवम मन्त्र सोआगे प्रतिपादन करनेके अर्थको कहता है "यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः" । जो सर्वज्ञ है सर्ववित है जिसका ज्ञानमय तपहै । जो उक्त लक्षणवाला अक्षर नाम करके परमात्मा सो सामान्य करके सर्वको जानताहै, अर्थात् [यहांसमष्टिरूप मायानामक उपाधि सामान्य कहते हैं । तिससे सर्वको जानताहै यातेसो सर्वज्ञहै] ताते सर्वज्ञहै । अरुविशेष [यहां व्यष्टिरूप अविद्यानामक उपाधि विशेष कहतेहैं] अरु तिसकरके उपाधिवाला हुआ उन जीवोंकरके सृजेहुये सर्व जगत्को जानता हैताते सर्ववित्है] करके सर्वको जानताहै एतदर्थ सर्ववित्है । अरु जिसका, ज्ञानरूप तपहै, परिश्रमरूप नहीं अर्थात् [ननु, प्रजापतियोंको तपकरके सृष्टिका स्रष्टापना प्रसिद्धहै, एतदर्थ स्रष्टापना विषे तपका अनुष्ठान कहनेको योग्यही है, परन्तु ईश्वरको स्रष्टापना विषे तपका अनुष्ठान कहनेसे संसारीपना प्राप्तहोवेगा, यह आशंका विचारके कहतेहैं । यहांयह अर्थहै कि सत्त्वगुण प्रधान माया अरु अज्ञाननामक जो विकार है तिन उपाधिवाला उत्पन्नभया जो सर्व पदार्थों के जानने रूप ज्ञानस्वरूप विकार सो विकारही ईश्वरका तपहै, परन्तु प्रजापतियोंके तपवत् क्लेशरूप तपनहीं] " तस्मादेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नञ्च जायते " । तिससे यह ब्रह्मनाम रूपअरु अन्न उत्पन्न होताहै । तिस उक्तलक्षणवाले सर्वज्ञसे यह कथनकिया हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्म उत्पन्न होताहै । अरु यह यज्ञदत्तहै, यह देवदत्तहै, यह विष्णुदत्त है, इत्यादि नाम, अरु यह

अथप्रथममुण्डकेद्वितीयखंडःआरभ्यते ॥

तदेतत्सत्यंमन्त्रेषुकर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानि त्रेतायांबहुधासन्ततानि । तान्याचरथनियतंसत्यकामा एषवःपन्थाःस्वकृतस्यलोके १ । १० ॥

शुक्ल (श्वेत) है, यहपीतहै, यहरक्त (लाल) है यह नीलहै, इत्यादि स्वरूपवाला रूप, अरु तंदुल यवादिरूप अन्न, प्रथम मन्त्रविषे उक्त क्रमसे उत्पन्नहोते हैं । इसप्रकार पूर्व मन्त्रसे इस मन्त्रका अविरोधजानना ॥ ९ ॥

इति प्रथम मुण्डकगत प्रथमखंडः भाषाटीका समाप्ता ॥

अथप्रथममुंडकगत द्वितीयखण्डभाषाटीकाप्रारम्भः ॥

हे सौम्य, (तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः) तहां ऋग् यजु साम अथर्व । इत्यादि रूप प्रथम खण्डके पंचम मन्त्रसे षट् अंगोंसहित चार वेदरूप अपरविद्या कही । अरु (यत्तदद्रेश्य) जो सावयवहै। इत्यादि षष्ठ मन्त्रसे लेके (नामरूप मन्नञ्चजायते) । नाम रूप अरु अन्न उत्पन्न होताहै । इस नवम मन्त्र पर्यन्त जो ग्रन्थहै तिसकरके कहे लक्षणवाला जो अक्षर (ब्रह्म) है सो जिस विद्याकरके प्राप्तहोता है सो पराविद्या है । इसप्रकार विशेषणों सहित यह पराविद्याकही । याते पश्चात् इन दोनों विद्याके विषय (आधीन) जो संसार अरु मोक्ष है, सो विवेचनकरनेको योग्यहै, इस प्रयोजनके अर्थ अब उत्तर ग्रन्थ का आरम्भ करतेहैं, तिनमें कर्त्ता आदिक साधन क्रिया अरु फल के भेदरूप अरु उपादानरूपसे अनादि, अरु ब्रह्मज्ञानहोनेसे पूर्व अत्यन्त निवृत्तिके असम्भवसे अन्तरहित जो संसारहै, सो अपर

विद्याका विषयहै। अरु सोई दुःखरूपहोनेसे सर्व शरीरधारी जीवोंकरके [एक जीववादी जो कहतेहैं कि एक चैतन्य एकही अविद्यासें बद्धभया संसारको पावता है, अरु सोई कदाचित् मुक्त होताहै। अरु हम तुम आदिक जो जीवाभासहैं तिनको बंध अरु मोक्ष नहीं ॥ सो पक्ष यहां जीवोंके बहुवचनकी सूचनासे भाष्यकार स्वामीने निषेध किया, क्योंकि वो एक जीववादी का मत श्रुतिसे बाह्य है ताते] त्यागने योग्य है। अरु नदीके प्रवाहवत् उच्छेद (नाश) रहित जो संसार है, तिसकी अत्यन्त निवृत्तिरूप अरु ब्रह्मसे अपृथक् होनेकरके, अनादि अनन्त अजर अमर (अपक्षयरहित, अविनाशी) अभय शुद्ध प्रसन्न, अरु अपने आप बिषे स्थित परमानन्दरूप अद्वैत जो मोक्षहै अर्थात् [सुषुप्ति अवस्था बिषेभी क्रियाकारक अरु फलकी निवृत्ति होतीहै, तिस निवृत्तिसे ज्ञानपूर्वक जो निवृत्तिहै तिसकी विलक्षणता कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, अपनी उपाधिरूप जो अविद्या तिसके कार्य सम्बंधी अविद्याकी निवृत्ति करके जो आत्यंतिकी निवृत्ति सो विद्या का फल है] सो पराविद्याका विषयहै। तिनमें आदिबिषे प्रथम [अपर अरु पर दोनों विद्याके विषयको देखायके अब प्रथम अपर विद्याके विषयको देखावने बिषे श्रुतिका अभिप्राय कहतेहैं] अपर विद्याका जो विषयहै तिसके देखावनेके अर्थ इस द्वितीयखंड का आरम्भहै। क्योंकि तिस अपर विद्याके विषयको देखावने से तिसविषे वैराग्यहोनेका सम्भवहोताहै ताते। अरु तिसही प्रकार आगे इसही उपनिषद् विषे (परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्) लोकोंको कर्मरचित जानके इत्यादि इसही खण्डकी बारहवीं श्रुति से कहेंगे। अरु जिसकरके न देखेहुये पदार्थकी परीक्षा (ज्ञान) सम्भवता नहीं, तिसकरके उस अपर विद्याके विषयको देखावते हुये कहते हैं " तदेतत्सत्यं " । सो यह सत्यहै ॥ प्र० ॥ सो क्या है ॥ उ० ॥ "मन्त्रेषु कर्म्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि" । मन्त्रों बिषे कर्म हैं जिनको कवि देखतेभये

सो त्रेता विषे बहुत प्रकारसे प्रवृत्त भये हैं । ऋग्वेदादि नाम वाले मन्त्रों विषे जो अग्निहोत्रादि कर्म हैं, अरु मन्त्रों करकेही प्रकाशितभये जिन कर्मोंको वशिष्ठादि कवि (बुद्धिमान्) देखतेभये । ऐसा जो कर्मोंका समुदाय है सो सत्यहै अर्थात् [इष्ट फल का साधन होनेसे अथवा अनिष्टफलका साधन होनेसे, वेदकरके जो कर्म वोधित किये हैं, तिन कर्मोंको प्रतिबन्धके अविद्यमान हुये तिन तिन फलोंके साधनहोने का अव्यभिचारहै सोई तिस कर्म का सत्यपनाहै, स्वरूपसे अबाध होने रूप सत्यपना नहीं । क्योंकि (प्लवाह्येते अदृढाः) । जिसकरके यह प्लव । अर्थात् फलसहित विनाशी कर्मवाले हैं—इत्यादि यह इसही खण्डके सातवें मन्त्र करके निन्दा कियेहुये ताते । अरु कर्मोंके स्वरूपसेही अबाध्यता रूप सत्यताके होनेसे, स्वप्नकी कामनावत् सफल क्रियाकी निर्वाहकता रूप अबाध्यता घटे है, इस अभिप्रायसे कहते हैं] क्योंकि पुरुषार्थ का अर्थात् [धर्म अर्थ काम अरु मोक्ष, इन चारों का नाम पुरुषार्थहै, परन्तु यहां मोक्षको छोड़के अन्य तीनों का ग्रहणहै ऐसा जानना] अव्यभिचारी साधनहै ताते । अरु वो वेद विदित अरु ऋषियोंकरके देखेहुये कर्म तिनके संयोगमयहोत्र अध्वर्यव अरु उद्गात्र, अर्थात् [ऋग्वेद विषे विधानकिया पदार्थ तिसको होत्र कहतेहैं, अरु यजुर्वेदविषे विधानकिया पदार्थ तिसको अध्वर्यव कहतेहैं, अरु सामवेदविषे विधानकिये पदार्थ तिनको औद्गात्र कहते हैं, इन तीन प्रकारके कर्मरूप त्रेताविषे] इन तीनप्रकार स्वरूप आधाररूप त्रेताविषे, अथवा त्रेतायुगविषे कर्मिष्ठ लोगों करके कियेहुये, बहुत प्रकारसे प्रवृत्तभये । एतदर्थ हे लोको "। तान्याचरथनियतं सत्यकामा एषवः पंथाः स्वकृतस्य लोके" । । सत्यकामहुये तिनको नित्य आचरणकरो यह आपको आपकरके आचरण कियेहुये कर्मके लोकविषे मार्ग है। आप सत्य काम हुये अर्थात् जैसा विद्यमानहै तैसे कर्म फलकी इच्छावाले हुये तिन कर्मोंको नित्यनिर्वाह करो । जैसे नगरकी प्राप्तिविषे

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाऽऽज्य भागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धयाहुतम् २।११॥

निमित्तरूप मार्गका चलना है। तैसेही यह आपको आपकरके आचरण किये कर्म सो अपने फलरूप लोक बिषे, अर्थात् कर्मके फलकी प्राप्तिबिषे निमित्तरूप मार्ग है, अर्थात् जो जो अग्निहोत्रादिरूप ऋग्वेदादि तीनों वेदों बिषे प्रतिपादन किये कर्महैं, सो यह मार्ग (अवश्य फलकी प्राप्ति का साधन) है १।१०॥

हे सौम्य, तिन (कर्म्मों) मेंसे आदिबिषे तहां पर्यन्त, अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिपर्यन्त, अग्निहोत्रादि देखावनेके अर्थ कहेहैं, क्योंकि अग्निहोत्र सर्वकर्म्मों के मध्य प्रथमहै ताते॥ प्र०॥ सो अग्निहोत्र कैसे होताहै॥ उ०॥ "यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने" जब समिधायोंकरके प्रज्वलितभये अग्निबिषे ज्वाला उठती है। जिससमय अर्थात् प्रातःकाल अरु सायंकाल में सर्वओरसे समिधा करके प्रज्वलित भये अग्निबिषे ज्वाला उठतीहै। "तदाऽऽज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धयाहुतम्" तब घृतके भाग मध्यरूप (कुंड) बिषे आहुतियों को डालना श्रद्धासे होम कियाहै। जिस समय उठतीहुई ज्वालामें दर्श अरु पूर्णमासरूप दोनों घृतके भागोंको मध्य कुंडबिषे देवताओंका उद्देश करके आहुतियोंको डालना॥ शं०॥ [(सूर्य्यायस्वाहा, प्रजापतयेस्वाहा) इसप्रकार प्रातःकाल बिषे। अरु (अग्नयेस्वाहा अरु प्रजापतयेस्वाहा) इसप्रकार सायंकाल बिषे, यह दोनों आहुतियां प्रसिद्धहैं। तब यहां श्रुतिबिषे आहुति शब्दको बहुवचन कैसेहै॥ स०॥ अनेक दिवस पर्यन्त जो आहुतिको डालने का अनुष्ठानहै तिसकी अपेक्षासे यहां श्रुतिबिषे आहुति शब्दको बहुवचनहै] यह सम्यक् प्रकार आहुति डालनेरूप कर्म परलोक की प्राप्तिके अर्थ मार्ग है। अरु श्रद्धासे जो हवन कियाहै तिसका

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ३ ।१२ ॥

सम्यक्प्रकार आचरण दुष्करहै, अर्थात तिसविषे विपत्तियां अनेक हैं सो देखावते हैं ॥ ११ ॥

हे गुरो, अग्निहोत्रकर्म कैसे दुष्करहै ॥ उ० ॥ "यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च" । जिसका अग्निहोत्र दर्शरहित, पौर्णमास रहित, चातुर्मास्य रहित, अग्रयण रहित, अतिथि रहितहै, अर्थात् जिस अग्निहोत्रीका अग्निहोत्र दर्श नामक कर्मसे रहितहै, अरु पौर्णमास नामक कर्मसे रहित है, अरु चातुर्मास्य नामक कर्मसे रहितहै, अरु शरदादि कालविषे [नवीन उत्पन्नभये जे अन्नादिक तिनसे करनेयोग्य जो] आग्रयण नामक कर्म तिनसे रहितहै । अरु तैसेही जिसका अग्निहोत्र अतिथिसे रहितहै, अर्थात् जिस अग्निहोत्रीके अग्निहोत्रमें नित्यनित्य अतिथिका पूजन कियाजावे नहीं । अरु " अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्यलोकानहिनस्ति" । होम कियाहोय नहीं, वैश्वदेवसे रहित, अविधिसे होम कियाहै, सप्तलोक सहित नाशकरैहै। जिसके अग्निहोत्र कालमें सम्यक्प्रकार होम कियाहोता नहीं, अरु जिसका अग्निहोत्र वैश्वदेव नामवाले कर्मसे रहितहै, अरु जिसने हवनकियाहै तथापि सो अविधिसे कियाहै सो अग्निहोत्र तिस अग्निहोत्रीरूप कर्त्ताके सप्तमलोक सहित जो लोक हैं तिन लोकोंको नाशकरनेवत नाशकरहै क्योंकि उक्त कर्मका श्रममात्रही फलहै तातें । अरु जिसकरके कर्मोंको सम्यक् करनेसे उनकर्मोंके परिणामरूपसे पृथिवी आदि सत्यपर्यन्त सप्तलोकरूप फल (जो सप्तव्याहृतियोंके नामसे प्रख्यात हैं) सो प्राप्तहोते हैं । सो लोक उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्मसे प्राप्तहोनेके अयोग्य होनेसे नाशहुयेवत होतेहैं, अर्थात उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्मोंसे

कालीकरालीचमनोजवाच सुलोहितायाचसुधूम्रवर्णा । स्फुलिंगिनीविश्वरूपीचदेवीलेलायमानाइतिसप्तजिह्वा ४ । १३ ॥

एतेषुयश्चरतेभ्राजमानेषुयथाकालंचाहुतयो ह्याददायन् । तन्नयन्त्येताःसूर्य्यस्यरश्मयो यत्रदेवानांपतिरेकोधिवासः ५ । १४ ॥

उक्त सातलोकों में से किसीकीभी प्राप्ति होती नहीं) अरु परिश्रममात्र तो अव्यभिचारतासे भयाही है, एतदर्थ उनलोकों को नाशकरे है ऐसा कहा है ॥ अथवा पिंडदानादिरूप अनुग्रहसे सम्बन्धको प्राप्तभये [यजमान जोहै सो पिता आदि तीनोंका पिंड उदकके दानसे उपकारकहै, अरु पुत्रादि तीनोंका अन्न वस्त्रादिकों के दानसे उपकार करताहै । एतदर्थ यहां मध्यवर्त्ती यजमान से सम्बन्धको प्राप्तभये पूर्वले अरु पिछले तीन तीन ग्रहण करते हैं ऐसा कहतेहैं] पिता, पितामह, प्रपितामह, अरु पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र जो आपसहित सातलोकहैं, सो उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्म से अपने उपकारके करनेवाले होते नहीं ॥ एतदर्थ नाशहोते हैं ऐसा कहते हैं। इस उक्तरीतिसे अग्निहोत्रादि कर्मसे उपलक्षित जो कर्म सो दुष्करहै ३ । १२ ॥

हे सौम्य, "। कालीकरालीचमनोजवाच सुलोहितायाचसुधूम्रवर्णा "। ।काली अरु कराली पुनः मनोजवा, अरु पुनः सुलोहिता अरु जो सुधूम्रवर्णा। अरु "। स्फुलिंगिनीविश्वरूपी चदेवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा "। । स्फुलिंगिनी, अरु विश्वरूपी, पुनः देवी, यह सात चलती (प्रज्वलित) हुई ज्वालारूप अग्निकी जिह्वा हैं । सो अग्निको हवन किये द्रव्यके ग्रसन करने के अर्थ उक्त सप्त जिह्वा हैं । इति सिद्धम् ४ । १३ ॥

हे सौम्य "। एतेषु यश्चरतेभ्राजमानेषुयथाकालंचाहुतयो ह्याददायन् "। ।इन प्रकाशवान् बिषे जो यथाकाल आहुतियों को

एह्येहीति तमाहुतयःसुवर्च्चसःसूर्य्यस्यरश्मिभिर्यजमानंवहन्ति । प्रियांवाचामभिवदन्त्योऽर्च्चयन्त्यएषवः पुण्यःसुकृतोब्रह्मलोकः ६ । १५ ॥

देताहुआ आचरताहै । इन प्रकाशमान अग्निकी जिह्वा के भेदों विषे जो अग्निहोत्रका कर्त्ता कालके विभागानुसार अग्निहोत्रादिरूप कर्मको करता है "। तन्नयन्त्येताःसूर्य्यस्यरश्मयोयत्रदेवानां पतिरेकोधिवासः " । तिसको यह ग्रहण करती हुई किरणरूप होके प्राप्त करेहै जहां एक देवताओंका पति निवास करता है । तिस यजमानको यह यजमान करके करीगई आहुतियां ग्रहण करती हुई सूर्य्यकी किरणरूप होके तिन किरणरूप द्वारसे तिस यजमानको तिस स्वर्गबिषे प्राप्तकरेहैं ॥प्र०॥ किस स्वर्गबिषे प्राप्तकरेहैं ॥ उ० ॥ जहां एक देवताओं का पति इन्द्र निवास करता है ५ । १४ ॥

हे सौम्य, सो आहुतियां सूर्य्यकी किरणों से यजमानको स्वर्ग बिषे जिसप्रकार प्राप्त करती हैं तिसको श्रवणकरो "। एह्येहीति तमाहुतयःसुवर्च्चसः सूर्य्यस्यरश्मिभिर्यजमानंवहन्ति" । वे आहुतियां प्रकाशमान हुई तिस यजमानको सूर्य्यकी किरणों द्वारा लेजाती हैं । अरु कहती हैं ॥ प्र० ॥ क्या कहती हैं ॥ उ० ॥ "प्रियांवाचामभिवदन्त्योऽर्च्चयन्त्य एषवः पुण्यःसुकृतो ब्रह्मलोकः" । पूजन करतीहुई प्रियवाणी को कहती हैं कि यह आपका पुण्यरूप सुकृतका फल ब्रह्मलोकहै ॥ अथवा सो आहुतियां आवो २ ऐसे बोलावती हुई अरु प्रकाशवान् अरु जैसे ब्रह्मलोक पुण्यका फलरूप है, तैसा यह आपका पुण्य रूप सुकृत का फलरूप ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है इसप्रकार प्रियवाणी को कहती हुई अरु पूजन करती हुई तिस यजमान को सूर्य्यकी किरणों रूपी द्वार मार्ग से लेजाती हैं ६ । १५ ॥

हे सौम्य,अब यह उपासना रहित केवलकर्म्म जोहै सो जिस

प्लवाह्येतेअदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दंतिमूढाजरांमृत्युंपुनरेवापियान्ति ७। १६॥

करके उक्त फलवाला है, अरु अविद्या काम अरु क्रियाका कार्य है, एतदर्थ असाररूप अरु दुःखका कारणहै, इसप्रकार तिन केवल कर्म्मोंकी निंदा वेदभगवान् करते हैं "। प्लवाह्येते अदृढायज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषुकर्म्म "। । यह यज्ञके निर्वाहक अष्टादश अदृढ कर्मके आश्रयहैं अरु तिसबिषे अश्रेष्ठ कर्म्म हैं। अर्थात् जिस करके यह यज्ञके निर्वाहक सोलह ऋत्विक् यजमानकी स्त्री अरु यजमान इस भेदसे अष्टादश १८ संख्यावाले हैं सो अदृढ (अस्थिर) इस कर्मके आश्रयहैं, इसप्रकार वेदने कहाहै, अरु जिन अष्टादश आश्रयोंबिषे उपासना रहित होनेसे अश्रेष्ठ केवल कर्म है। एतदर्थ उन अश्रेष्ठ (निकृष्ट) कर्मके आश्रयरूप अष्टादश संख्यावालेको अस्थिर अरु विनाशवान् होनेसे तिन्होंकरके साध्य जो कर्म सो फलसहित विनाशको प्राप्त होतेहैं जैसे दूध अरु दधि आदिकों के आश्रयरूप मृत्तिका के पात्रके विनाश से तदाश्रितों का विनाश होताहै, तैसेही तिन केवल कर्म के आश्रय फलस्वर्गरूपस्थान विनाशहोताहै। अर्थात् केवल कर्म अरुतिनके फल यह दोनों बिनाशवान् हैं। जिसकरके यह ऐसे हैं तिसही करके "। एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दन्ति मूढाजरांमृत्युंपुनरेवापियान्ति "। । जो मूढ यह कर्मश्रेय है ऐसे हर्षको प्राप्तहोतेहैं सो फेरभी जरा अरु मृत्युको पावते हैं। जो अविवेकी मूढपुरुष, यह कर्म श्रेय (मोक्षका साधन) है ऐसे जानके हर्षको प्राप्त होतेहैं सो थोडेकाल पर्यन्त स्वर्गबिषे स्थित होयके फिर भी जरा मृत्युरूप संसारकोही पावतेहैं। अर्थात् उनका आवागमन छूटता नहीं ७।१६॥

हे सौम्य, वे मूढ "अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाःस्वयंधीराःपण्डितम्मन्यमानाः "। । अविद्याके अन्तर वर्त्तमान हुये हमही बुद्धि-

अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः स्वयंधीराःपण्डितम्म न्यमानाः । जंघ्नन्यमानाःपरियन्तिमूढाअन्धेनैवनीयमा नायथाऽन्धाः ८ । १७ ॥

अविद्यायांबहुधावर्त्तमानावयं कृतार्थाइत्यभिमन्य न्तिबालाः । यत्कर्म्मिणोनप्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराःक्षी णलोकाश्च्यवन्ते ९ । १८ ॥

मान् पण्डितहैं ऐसे मानतेहैं। वे केवल कर्मकेही आश्रयश्रेयको माननेवाले मूढ अविद्याके भीतरवर्त्तमानहुये, अर्थात् अत्यन्त अविवेक युक्तहुये, अरु तत्त्वदर्शी आचार्योंके उपदेशकी अपेक्षा के विना अपने ही मनकरके, हमहीं बुद्धिमान अरु हमहीं जानने योग्य वस्तुके जाननेवाले पंडितहैं, इसप्रकार आपको मानतेहैं। "जंघन्यमानाःपरियन्तिमूढाअन्धेनैवनीयमानायथाऽन्धाः" । मूढ अत्यन्त पीड़ाको पावतेहुये सर्व ओरसे भ्रमतेहैं, जैसे अन्धेकरके प्राप्तकिया अन्धा (गिरता है) । सो मूढपुरुष जरा रोगादि अनेक अनर्थके समूहों करके ये अत्यन्त खेदको प्राप्तहोते हुये सर्व ओर से भ्रमते हैं, जैसे लोकविषे अन्धे (चक्षुरहित) पुरुषकरके प्राप्त किये जे मार्गके न देखनेवाले अन्ध (चक्षुविहीन) पुरुषगर्त कंटकादि विषमस्थान विषे गिरते अरु कष्टपावते हैं , तैसे वो मूढ अविवेकी कर्मी पुरुषभी संसाररूप अन्धकूपमें गिरके कष्टपावते हैं । इति सिद्धम् ८ । १७ ॥

हे सौम्य, " अविद्यायां बहुधावर्त्तमानावयंकृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः " । बालक अविद्या विषे बहुतप्रकारसे वर्त्तमानहुये हमहीं कृतार्थ हैं ऐसे अभिमानको करतेहैं। अज्ञानीरूप जो बालक (मूर्ख)हैं सो अविद्या विषे बहुतप्रकारसे वर्त्तमानहुये,हमहीं कृतार्थ, अर्थात् प्रयोजनको प्राप्तहुये हैं, इसप्रकार अभिमान को करतेहैं । अरु " यत्कार्म्मिणोनप्रवेदयान्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते " । जातकर्मिष्ठ पुरुष रागसोतिसकरके आतुरहुये

इष्टापूर्त्तंमन्यमानावरिष्ठंनान्यच्छ्रेयोवेदयन्तेप्रमूढाः । नाकस्यपृष्ठेतसुकृतेऽनुभूत्वेमंलोकं हीनतरञ्चाविशं-ति १०।११॥

क्षीणलोक होतेहैं। जिसकरके ऐसे कर्म करनेवालेपुरुष कर्मफलके रागसेहोता जो अपना तिरस्कार तिसके निमित्तको जानते नहीं तिसकारणसे दुःखसेआतुरहुये क्षीणभयाहै कर्मकाफलरूप लोक जिसका, ऐसे हुये स्वर्गलोक से गिरतेहैं ९।१८॥

हे सौम्य, "। इष्टापूर्त्तंमन्यमानावरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयंते प्रमूढाः"। प्रमूढ इष्ट अरुपूर्त्तको मुख्यजानतेहुये अन्यश्रेयको जानते नहीं। पुत्र पशु अरु स्त्री आदिकों बिषे प्रमादको प्राप्तहोने करके जो मूढ,इष्ट, कहिये जो यज्ञादिरूप श्रुतिकरके प्रतिपाद्यकर्म्महैं अरुपूर्त्त कहिये बापी कूप तडाग आराम धर्मशाला आदि निर्माण करनेयहस्मृति प्रतिपाद्य कर्म्म हैं, तिन्होंको यहही अतिशय करके मुख्यपुरुषार्थ(मोक्ष)का साधनहै,इसप्रकार चिन्तन करतेहुये अन्य जो आत्मज्ञान संज्ञक परम श्रेयका साधनहै तिसकोतो जानतेही नहीं ॥ हेसौम्य ऐसा जेपरम पुरुषार्थ साधक साक्षात् आत्मज्ञान तिसको न जाननेवाले जे मूढहैं "। नाकस्यपृष्ठेते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकंहीनतरञ्चाविशन्ति "। सो स्वर्गके ऊपर (भवन) सुकृतके (फलको) अनुभवकरके (पुनः) इस लोकको वा अतिशय हीन लोकको पावते हैं। सो स्वर्गलोक ऊपर विद्यमान दिव्य भोगोंके स्थान बिषे अपने सुकृत कर्मके फलको साक्षात् अनुभव करके पुनः इस मनुष्य शरीररूपी लोकको अथवा इस मनुष्य शरीर-रूपी लोक से अतिशय हीन तिर्यक् (पक्षी) श्वान शूकरादि नारकी शरीररूप लोकको शेषरहे अपने कर्म्मानुसार पावते हैं॥ { योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः । स्थाणुमन्येन संयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् }॥ १०॥ ११॥

हेसौम्य, [उक्त प्रकार केवल कर्मिष्ठों के फलको कहके, अब

तपःश्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्येशान्ताविद्वांसोभैक्ष्यचर्यां चरन्तः । सूर्य्यद्वारेणतेविरजाःप्रयान्ति यत्रामृतःसपुरुषोह्यव्ययात्मा ११ । २० ॥

सगुणब्रह्मकी उपासना सहित आश्रमके कर्मकरके युक्त पुरुषोंके संसार गोचरही फलको देखावतेहैं] "तपःश्रद्धेयेह्युपवसंत्यरण्ये शान्ताविद्वांसोभैक्ष्यचर्य्यां चरन्तः" । जोशान्त विद्वान भिक्षाके अन्नको भोजनकरतेहुये अरण्यबिषे तप अरु श्रद्धाको सेवन करतेहैं । जो केवल कर्म करनेवाले से अन्य उपासनायुक्त संन्यासी अरु वानप्रस्थ अरु जो शान्त (जितेंद्रिय ब्रह्मचारी) विद्वान् (उपसनाप्रधान गृहस्थ) भिक्षान्नको भोजन करतेहुये संग्रहके अभाव से स्त्रीआदिक विक्षेपकारी जनसमूहोंसे रहित अरण्यबिषे वर्त्तमान हुये अपने आश्रमयोग्य शास्त्रविहित कर्मरूप तप अरु हिरण्यगर्भादिकोंको विषयकरनेवाली उपासनारूप श्रद्धा इन दोनोंको यथाविधि सेवनकरते हैं । "सूर्यद्वारेणतेविरजाः प्रयान्ति यत्रामृतःसपुरुषोह्यव्ययात्मा" । सो सूर्यद्वारसे विरजहुये जाते हैं जिस बिषे अमृतरूप सो अविनाशी स्वभाववाला स्थित पुरुष है । सो सूर्य्य करके उपलक्षित जे उत्तरायणरूप द्वार तिस द्वारसे विरज हुये,अर्थात् मानो पुण्यपाप कर्म्मरूप मलसे रहितहुयेहोवें तैसेहुये, तिसबिषे जातेहैं, कि जिस सत्यलोकादिकोंविषे अमृतस्वरूप सो प्रथमउत्पन्नभया अरुअविनाशी स्वभाववाला,अर्थात् यावत्पर्यन्त संसारहै तावत्पर्यन्त रहनेवाला हिरण्यगर्भरूप पुरुषहै ॥ हेसौम्य, यहां पर्यन्ततो अपरविद्याकेआश्रय प्राप्तहोनेयोग्य संसारकी गतियां हैं । कोई एक पुरुष निश्चय करके, ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप मोक्षकी इच्छा करते नहीं,किन्तु(इहैवसर्वे प्रविलीयन्ते कामास्ते सर्वगं सर्वतःप्राप्यधीरा युक्तात्मानःसर्वमेवाविशन्तीति)यहांहीअर्थात्मुक्त पुरुषोंके यहांही सर्वकामके अभावको अरु सर्वात्मभावको श्रुतियां देखावेहैं । अरु ब्रह्मलोककी प्राप्तितो देशसे परिच्छिन्न फलहै, अ-

परीक्ष्यलोकान्कर्म्मरचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमाया न्नास्त्यकृतःकृतेन ॥ तद्विज्ञानार्थंसगुरुमेवाभिगच्छेत् स मित्पाणिःश्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् १२।२१॥

र्थात् किसीएकदेशविषे हैं, तातें मोक्ष नहीं है,इसप्रकार यहां कहतेहैं] तिनके सर्वकास अभाव होते हैं। अरु वो धीरपुरुष एकाग्र चित्तवाले हुये सर्वगत व्यापक वस्तुको सर्वओरसे पायके सर्वात्मभावको पावतेहैं, इत्यादि श्रुतियोंसे अरु प्रसंगसे यहजोऊपर कहीगई सोअपर विद्याके आश्रित मातिहै, इसप्रकार जानाजाता है। अरु जिसकरके यह प्रसंग, अपर विद्याके प्रसंग के प्रवृत्तहुये अकस्मात् प्रवृत्तभयाहै, एतदर्थ यह मोक्षका प्रसंग नहीं है। अरु पुण्य पापरूप कर्मकी क्षीणतारूप विरजपना जो कहा है सोतो आपेक्षिकहै, एतदर्थ समस्त साध्य अरु साधनरूप क्रिया कारक अरु फलके भेदसे भिन्न हिरण्यगर्भकी प्राप्तिपर्यन्त जो द्वैतहै इतनाही अपर विद्याका कार्य है। तैसेहुये स्थावरादिरूप संसारकी गतिको उल्लंघन करनेवाले पुरुषोंको (ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेवच । उत्तमांसात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिण इति) ब्रह्मा, मरीच्यादि प्रजापति,यम,महत्तत्त्व (सूत्रात्मा) अरु अव्यक्त (त्रिगुणात्मक प्रकृति) रूप इस गतिको पंडितजन सात्त्विक उत्तमगति कहतेहैं, इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मलोकादिकी प्राप्तिरूप उत्तमगति होतीहै यह सिद्धभया॥ ११ ॥ २० ॥

हेसौम्य; अबइस साध्य अरु साधनरूप सर्व संसारसे विरक्त पुरुषको ब्रह्मविद्याविषे अधिकारके दिखावनेके अर्थ यह कहते हैं "। परीक्ष्यलोकान् कर्मरचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन"। ब्राह्मण कर्मसे रचित लोकोंको निश्चयकरके वैराग्यको करै अकृत नहीं है कृतसे क्याहै। (यथैकतासमता इति स्मृतेः) ब्राह्मणका जैसा एकता समता अरु सत्यता (आदिरूप) धन है ऐसा और नहीं। इस स्मृतिसे । अरु ब्राह्मणको निवृत्ति

प्रधान व्यवहारवाला होने से ब्रह्मविद्याका मुख्य अधिकार ब्राह्मणकोही है [इस अभिप्राय से यहां श्रुतिविषे अधिकारी का विशेषणरूप ब्राह्मणपद है] ब्राह्मण जो है सो अविद्याआदिक दोषवाले पुरुषके प्रतिही विधान कियाहोनेसे स्वाभाविक अविद्या काम अरु कर्मरूप दोषवाले पुरुषकरके अनुष्ठानकरने योग्य जो यह ऋग्वेदादिरूप अपर विद्याका विषयहै, तिसको।अरु जो तिस अनुष्ठानके कार्य हुये फलरूप लोक हैं, अरु जो विहित कर्मका अकरण, अरु प्रतिषेध कर्मका करना, अरु मर्य्यादाके उल्लंघनरूप दोषकरके साध्य जे नरक तिर्यक् प्रेतादि योनिरूप नरकहैं, तिन संसारकी गतिरूप अव्याकृतादिलेके स्थावर पर्यन्त व्याकृतअरु अव्याकृतस्वरूप, बीजअरु अंकुरवत् परस्पर की उत्पत्तिके निमित्त अनेक शत अरु सहस्र अनर्थोंकरके पूर्ण कदलीके स्तंभवत् असारभूत, माया(छल) मरीचि जल गंधर्वनगरके आकार,स्वप्न, जलगत बुद्बुद अरु फेनके तुल्य प्रतिक्षण नाशहोनेवाले, पीछेसे देखेहुये अविद्या अरु कामरूप दोषकरके प्रवृत्तभयेधर्म अधर्मरूप कर्मसे रचित लोकनको, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अरु शब्द (शास्त्र) रूप इनचार प्रमाणोंसे[इसलोकसम्बन्धी कर्मकेफलरूप पुत्रादिकोंके नाशको विषयकरनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाणहै। अरु विवादका विषय स्वर्गादिक अनित्य है, क्रियाकरके साध्य होने से, घटवत्, यहअनुमान परलोक सम्बन्धी फलके नाशकोविषय करनेवाला। (तदथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते) । सो जैसे यहां कर्मकरके सम्पादित लोक क्षयको पावताहै । तैसे वहां (पुण्यचितो लोकः क्षीयते) । पुण्यसे सम्पादित किया लोक क्षयको पावताहै। इत्यादिरूप शब्द (आगम)प्रमाणहै । तीन प्रमाणों करके अनित्य होनेसे सर्व प्रकारसे निश्चयकरके यह अर्थहै]सर्व ओरसे यथार्थपने से निश्चयकरके, तिनसे वैराग्यको करे। सो वैराग्यका प्रकार देखावते हैं, इस संसारविषे कोई भी अकृत (अनन्य) पदार्थ नहीं है, किन्तु सर्वही लोक कर्मरचित हैं, अरु सो

कर्मरचित होनेसे अनित्य हैं ताते कुछभी वस्तु नित्य नहीं यह अभिप्राय है। अरु सम्पूर्ण कर्म अनित्यकाही साधन है। अरु जिसकरके उत्पत्ति होनेयोग्य, वा प्राप्ति होनेयोग्य, वा संस्कार करने योग्य, वा विकारकरनेयोग्य इनभेदसे चारप्रकारकाही समस्त कर्मका कार्य है। एतदर्थ इससे पर (अन्य) कर्मका विषय नहींहै। अरु मैं, नित्य, अमृत, अभय, कूटस्थ (परिणामरहित) अचल (स्फुरणरहित) ध्रुव(प्रयत्नरहित), वस्तुसेअर्थ (प्रयोजन) वालाहौं, तिससे विपरीत वस्तुसे प्रयोजनवाला, नहीं। एतदर्थ बहुत श्रमकरके युक्त अरु अनर्थके साधनरूपकृत (कर्म) तिनसे क्या प्रयोजनहै इसप्रकार वैराग्यको प्राप्तहोवे। पश्चात् "।तद्विज्ञानार्थंसगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।" । सो समित्पाणिहुआ तिसके विशेषज्ञानार्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके ताईंही शरणको प्राप्तहोय। सो वैराग्यको प्राप्तभया ब्राह्मण, समिधोंका भार ग्रहण कियाहै जिसने अर्थात् अगर्वता विनयता आदि दैवीसम्पत्तिमान् ऐसाहुआ, अभय शिव अकृत अरु नित्यरूप जो पदहै तिसकी विशेषकरके प्राप्तिके अर्थ शमदम अरुदया करके सम्पन्न श्रोत्रिय, अर्थात् वेद शास्त्र अध्ययनकिये अरु तिनके श्रवणकिये अर्थ करके सम्पन्न, अरु ब्रह्मनिष्ठ, सर्व कर्मोंको त्यागके केवल अद्वैतरूप ब्रह्मविषे जिसकी नेष्ठा होय [यहां ब्रह्मनिष्ठ शब्दहै सो तपोनिष्ठ शब्दवतहै। अरु जिसकरके कर्म अरु आत्मज्ञान इनदोनोंका परस्पर विरोधहै, तिसही करके कर्मिष्ठ पुरुषको ब्रह्मनिष्ठता संभवे नहीं। एतदर्थही यहां सर्व कर्मको त्यागके ब्रह्मविषे नेष्ठा कही। अरु अमुक कर्मके करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, अरु तिनके न करने से प्रत्यवायआदि अनर्थकीप्राप्तिहोगी, इस बुद्धिपूर्वक जो कर्मका अथवा किसी अन्यसाधनका करना, तिसको कर्त्तव्य कहते हैं, तिस कर्त्तव्यकी बुद्धिका जो त्याग सोई यहां सर्वकर्मका त्यागहै क्रियामात्रका त्याग नहीं] ऐसे सदगुरुकी शरणको प्राप्तहोय। सो ब्राह्मण तिस गुरुके अर्थ

तस्मैसविद्वानुपसन्नायसम्यक्प्रशान्तचित्तायशमान्विताय । येनाक्षरंपुरुषंवेदसत्यं प्रोवाचतांतत्त्वतोब्रह्मविद्याम् १३ । २२ ॥

इति प्रथममुण्डकगतद्वितीयखण्डः समाप्तः ॥

इति प्रथममुण्डकम् ॥

शास्त्रके अनुसार समीपगयाहुआ गुरुको सेवादिकों से प्रसन्न करके सत्य अरु अक्षर (अविनाशी) रूपपुरुषको पूंछे १२ । २१ ॥

हे सौम्य, " तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय " । तिस समीपआये शान्तचित्तवाले शम करके युक्तके अर्थ सो विद्वान् । तिस शास्त्रानुसार समीपआये शान्तचित्त वाले अर्थात् गर्वादि दोषरहित, अरु बाह्य ज्ञानेन्द्रियोंकी उपरतिरूप शमकरके युक्त (सर्वसे विरक्त) शिष्यके अर्थ सो विद्वान्, अर्थात् ब्रह्मनिष्ठगुरु । " येनाक्षरं पुरुषंवेदसत्यं प्रोवाचतां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् " । तिससे सत्य अरु अक्षर रूप पुरुषको जानताहै तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थकहै । जिस परविद्यारूप विज्ञानसे अदृश्यत्वादि विशेषणवाले सत्य अरु अक्षररूप, [अवयवों के अन्यथा भावरूप परिणामस्वरूप क्षरणसे रहित होनेसे, अरु शरीर रहितरूप अक्षतपनेसे, अरु विकाररूप क्षयसे रहित होनेसे यह पुरुष (आत्मा) को अक्षर कहते हैं] पुरुषको जानता है, तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थकहै ॥ आचार्यकाभी यह नियमहै जो, न्यायसे प्राप्तभये शिष्यको अविद्यारूप अपार महोदधिसे उद्धार करना १३ । २२ ॥

इतिमुंडकउपनिषद्गत प्रथममुंडकके द्वितीय
खंडकी भाषाटीका समाप्ता ॥

इति प्रथममुंडकं समाप्तम् ॥

तत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

तदेतत्सत्यंयथासुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाःसहस्र शःप्रभवन्तेस्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधाःसौम्यभावाः प्रजायन्तेतत्रचैवापियान्ति ॥ १ ॥ २३ ॥

अथद्वितीयमुंडकगतप्रथमखंडभाषाटीकाप्रारभ्यते २ ॥

अथ द्वितीय मुण्डकगत प्रथमखण्डः प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, यहां पर्यन्त अपरविद्याका सर्वकार्य कहा, अर्थात् [(द्वेविद्येवेदितव्ये) (दोविद्याजाननेको योग्य हैं) यह इस उपनिषद्के प्रथम मुंडकके प्रथम खंडके चतुर्थ मन्त्र से दोनों विद्याके कहनेका आरंभ करके, प्रथम मुंडकसे अपर विद्याका वर्णनकरके पर विद्याका वर्णनकरनेको द्वितीय मुंडकका प्रारंभ है, इस प्रकार यहां कहते हैं] अब सो अपरविद्याका कार्य(विषय) रूप संसार जिस सारवालाहै, अरु जिस अक्षरनामवाले मूलसे उपजता है, अरु जिसबिषे लीनहोताहै,सो पुरुषनामवालाअक्षर सत्यहै । अरु जिसके जाननेसे यह सर्व जानाजाताहै, सो परारूप ब्रह्मविद्याका बिषयहै सो कहने योग्यहै । तातें यह उत्तरग्रंथका आरंभकरते हैं । [जैसा पूर्व कर्मका भी सत्यपना कहा है, तैसाही यह पर विद्याके विषयका सत्यपना माननेको योग्य नहीं ऐसा कहते हैं] जो अपराविद्याका विषय कर्मका फल सत्य है सो आपेक्षिकहै । अरु यह पराविद्याकाविषय तो परमार्थसे सत्यरूपहोनेकरके "तदेतत्सत्यम्" (सो यहसत्य है) सो यह विद्याका विषय सत्य यथार्थ है । अरु अन्यअविद्याका विषय होनेसे मिथ्या है । [यहां यह हार्दहै ब्रह्मको, पुण्यपापरूप अपूर्ववत् अत्यन्त परोक्षताहै, तिसकरके अर्थात् एक शब्द(शास्त्र) रूप प्रमाणकरके जानने को योग्यहै तातें उसका प्रत्यक्षज्ञान संभवता नहीं, अरु मोक्ष जोहै सो साक्षात्कारके आधीन है, विना ब्रह्मके साक्षात ज्ञानहुये मोक्षहोता नहीं, तातें उस सत्यरूप अक्षरको मुमक्षुजन

कैसे प्रत्यक्ष प्रमाणवत् प्राप्तहोवेंगे। इस अभिप्रायसे जीवब्रह्मकी एकताबिषे दृष्टान्त कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि ब्रह्म आत्माकी एकता होनेसे, जब प्रत्यक्रूप आत्मा अपनाआप अपरोक्षहैतब ब्रह्मका भी जैसे एकदेशी घटके प्रत्यक्ष ज्ञानहोनेसे सर्वदेशकेसर्व घटोंका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है तद्वत्, प्रत्यक्षपना होगा यहां उक्त दृष्टान्त अरु सिद्धान्तका यह वर्णन है कि जैसे अग्नि के सूक्ष्म अवयवरूप विस्फुलिंगों (चिनगारियों) बिषे भिन्न भिन्न देशके अवच्छेदसे, अर्थात् पृथक् २ देशोंकरके युक्तहोनेसे आकार अवयवादि पनेका व्यवहार है, अर्थात् अग्निकी चिनगारियों बिषे पृथक् २ आकारादि विकार व्यवहार है परन्तु स्वरूप करके फेर भी सर्व चिनगारियों बिषे एक समान अग्निरूपताहीहै, क्योंकि उष्णता अरु प्रकाशताका अविशेषपना है ताते, अर्थात् सर्व चिनगारियोंबिषे उष्णताअरु प्रकाशतालक्षणवालानिर्विशेष अग्निएकही है तैसेही चैतन्यरूपताके अविशेषसे जीवों को स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है अर्थात् जैसे सोपाधि अग्निके नानाप्रकार विस्फुलिंगहोते हैं परन्तु तिनसर्वबिषे निरुपाधि समानउष्णता अरु प्रकाशतारूप लक्षणवाला अग्नि एकही है, तैसेही मायोपाधियुक्त चैतन्यरूप अग्निसे नानालिंग (जीव) रूप विस्फुलिंग पृथक् २ निकलते हैं परन्तुतिन सर्वबिषे चैतन्यतादि लक्षणवाला निरुपाधि ब्रह्मएकही होनेसे सर्व जीवों को स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है] अक्षरवस्तु को अत्यन्त अपरोक्ष होनेसे प्रत्यक्ष (घट) वत् कैसे प्राप्तहोवेंगे, इस शंकाकोमनबिषे ल्यायके दृष्टान्त कहते हैं " यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः " । जैसे भली प्रकारकरके प्रज्वलित भये अग्निसे अनेक अग्नि के समानरूप वाले विस्फुलिंग निकलते हैं । जैसे भलीप्रकारसे प्रज्वलितभये अग्नि से सहस्रावधि अग्निके समानरूपवाले अग्निके अवयवरूप विस्फुलिंग (चिनगारे) निकलते हैं । " तथाऽक्षराद्विविधाः सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति " । हे सौम्य, तैसेही

दिव्योह्यमूर्त्तःपुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः। अप्राणोह्यमनाःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः॥ २। २४॥

अक्षरसे विविध भाव उपजते हैं, पुनः तहांही लीन होते हैं। हे सौम्य, हे प्रियदर्शन, तिसही प्रकार उक्त लक्षणवाले अक्षर से आकाशादिकोंवत् नाना देहरूप उपाधिके भेदके अनुसारही होने से विविध (नाना) प्रकारके भाव (जीव) उपजते हैं जैसे घटादि उपाधिकरके परिच्छिन्न नानाप्रकारके आकाशरूप छिद्रके भेद, घटादिकों के भेदके अनुसारही होतेहैं, इसही प्रकार जीव भी नाना नामरूप रचित देहरूप उपाधिके भेदके अनुसारही होते हैं। अरु पुनः भी घटादिकों के विलयभये पश्चात् आकाशरूप छिद्रनके विलयहोनेवत् तिसही अक्षरबिषे देह (लिंग)रूप उपाधिके विलयभये पश्चात् लीन होतेहैं। अरु जैसे आकाश को छिद्रोंके भेदके उत्पत्ति अरु प्रलय का निमित्तपना जो है, सो घटादि उपाधियोंका कियाहै, तैसेही अक्षरकोभी जीवोंकी उत्पत्ति अरु प्रलयका निमित्तपना जोहै सो नामरूप कृत देहउपाधिरूप निमित्तका कियाही है १। २३॥

हे सौम्य, अब [अक्षर पुरुषको जो उपाधिका किया जीवों की उत्पत्ति अरु प्रलयका निमित्तपना कहा, सो कार्य कारण भावकरके तिनकी अभेदताकी सिद्ध्यर्थ है। अरु परमार्थ से स्तुतिरूप निमित्तवाला जीवोंकी उत्पत्ति अरु प्रलय का निमित्तभावभी नहीं है, ऐसाकहते हैं] नामरूप के बीजभूत अव्याकृत नामवाले अरु अपनेकार्यकी अपेक्षाकरके पर (श्रेष्ठ) अक्षरसे परजो सर्व उपाधियोंके भेदसे रहित, अरु आकाशवत् सर्व मूर्त्ति (आकार)से रहित, अरु (नेतिनेति) कार्यरूपभी नहीं अरु कारणरूपभी नहीं। इत्यादि विशेषणवाला जो अक्षरकाही स्वरूप है तिसको कहनेकी इच्छाकरतेहुये कहतेहैं। "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः"। दिव्य अरु अमूर्त्त पुरुषहै सो बाहर भीतर

भजही वर्त्तताहै। जो स्वयंज्योति रूप होनेसे दिव्य (प्रकाशवान्) है, अथवा अपने आत्मरूप स्वर्ग बिषे स्थित है, एतदर्थ दिव्य है, अथवा अलौकिकहै ताते दिव्य है । अरु जिसकरके सर्व मूर्त्तिसे रहितहै इसहीसे अमूर्त्तहै । अरु पूर्णहै, अथवा शरीररूपी पुरियों बिषे रहताहै ताते पुरुषहै । ऐसादिव्य अरुअमूर्त्त (आकाररहित) जो पुरुषहै सो बाहर [देहकी अपेक्षासे जो बाहर अरु भीतररूप देश प्रसिद्धहै तिसकेसाथही तादात्म्यसे, अथवा तिसके अधिष्ठान-पनेसे वर्त्तताहै, एतदर्थ (सबाह्याभ्यन्तरः) बाहर भीतर सहितहै। एतदर्थ सर्वरूप होनेसे तिससे पृथक् जन्मके निमित्तका अभावहै ताते अज (जन्मरहित)है] अरु भीतरके देशकरके सहित वर्त्तता है । अरु अजन्मा है, अर्थात् किसी से भी जन्मको पावता नहीं, क्योंकि स्वरूपसे जो अजन्माहै तिसके जन्मके निमित्तका अभाव है ताते । अरु जैसे स्वरूपसे जन्मवाले जलगत बुद्बुद आदिकों के जन्मके निमित्त वायुआदिकहैं । अरुजैसे स्वरूपसे जन्मवाले आकाशके छिद्रोंके भेदक जन्मके निमित्त घटादिकहैं, तिसप्रकार स्वरूपसे जन्मरहित परमात्माके जन्मका निमित्त नहीं है । अरु एतदर्थ सर्व [जायते (जन्म), अस्ति (प्रकटता), विपरिणमते (वि परिणाम), अपक्षीयते (अपक्षय), विनश्यति (विनाश), इन या-स्कनामवाले मुनिने निरुक्तनामक ग्रंथ बिषे कथनाकिये षट्अनि-र्वचनीय भावरूप विकारोंके निषेध बिषे अज शब्दके तात्पर्यको कहतेहैं] भावरूप विकारोंको जन्मरूप मलवाले होनेसे तिसजन्म के निषेधसे सर्वविकार निषेधको प्राप्तहोतेहैं । अरु जिसकरकेयह पुरुष बाहर भीतर रहितहै अरु अजन्माहै, इसहीसे अजरहै, अमृ-तहै, अक्षयहै, ध्रुव है, अरु अभयहै, यह अर्थ है । [जीवोंको प्राण आदिककरके युक्तहोनेसे तिनकी स्वरूपताकेहुये ब्रह्मकोभी प्राण आदिककरके युक्तपना प्राप्तभया तिसको निवारणकरतेहैं] यद्यपि देहादिक उपाधियोंके भेदकीदृष्टिवाले पुरुषोंकी तलमल आदिक धर्मवाले आकाशवत् अविद्याके वशसे देहके भेदोंकेबिषे, सोपुरुष

प्राणसहित मनःसहित इन्द्रिय सहित अरु बिषय सहित प्रतीत होता है, तथापि स्वरूपसे परमार्थ करके देखाहुआ क्रियाशक्तिके भेदवाला चलनरूप प्रसिद्ध विद्यमानप्राणवायु जिसबिषेविद्यमान नहींहै याते "अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात्परतःपरः"॥अप्राणहै अमनाहै शुभ्रहै अक्षरसे पर सो पुरुषहै। पुरुष अप्राण है। अरु तैसेही अनेकज्ञान शक्तीके भेदवाला संकल्पादिकरूप मनभी जिसबिषे अविद्यमानहै, एतदर्थ यह पुरुष अमनाहै। यहां अप्राण अरु अमना, इस कथनसे प्राणादिक वायुके भेद कर्मेन्द्रियां अरु तिनके विषय, तैसे मनबुद्धि ज्ञानेन्द्रियां अरु तिनके विषय, निषेध कियेजानने। अरु जैसे (ध्यायतीव लेलायतीव)। ध्यान करतेहुयेवत् अरु लीला (क्रीडा) करतेहुयेवत्है। इसअन्य श्रुतिबिषेदोनों उपाधियोंके निषेधसे सर्व उपाधियोंका निषेध जनायाहै, तैसेही यहांभी जानलेना। अरु जिसकरके उक्तप्रकार उपाधियोंसे रहित अद्वैतरूपहै, तिसही करके शुभ्र (शुद्ध)रूपहै। अरु जिसकरकेशुभ्र है, इसहीसे नामरूपकेबीज (ब्रह्म)का उपाधि होनेकरके लक्षित है स्वरूप जिसका, ऐसे माया उपाधिरूप अरु तिसउपाधिकरके विशिष्ट ब्रह्मरूप सर्वकार्योंसे पर। [ननु, मायातत्त्वरूप अक्षरको परपना कैसेहै इस संशयके होनेसे कहते हैं, जिसकरके मायातत्त्व समस्त कार्य कारणका बीज होनेकरके लखियेहै, तिसकरके पर है। अरु कार्य जो है सो अपर (अश्रेष्ठ) रूप प्रसिद्ध है। अरु जो तिसकार्यका कारण होनेकरके जानने बिषे आवता है एतदर्थ मायातत्त्वपर (श्रेष्ठ) है। अरु यौक्तिकबाधसे अनिर्वचनीय हुयेभी तिसके स्वरूपके उच्छेद (नाश)के अभाव मायातत्त्व अक्षर है। सो गीताशास्त्रके पंद्रहवें अध्यायबिषे कहाहै (क्षरःसर्वाणि भूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते। उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः) सर्व (कार्यकारणरूप) भूतक्षरहैं। अरु कूटस्थ(कपटवत् मिथ्या स्थित होनेवाला मायातत्त्व) अक्षरहै। अरु उत्तमपुरुष तो इनसे अन्यही है जो परमात्मा नामसे कहाजाता है।](श्रेष्ठ)

एतस्माज्जायतेप्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणिच । खंवायुर्ज्योतिरापःपृथिवीविश्वस्यधारणी ३ । २५ ॥

अक्षरसे पर (निरुपाधि) सो पुरुषहै । यह अर्थहै ॥ प्र० ॥ ननुजिस विषे सो आकाशनामक अक्षर सम्यक् व्यवहारका विषय हुआ ओत अरु प्रोतहै, तिसअक्षर पुरुषको पुनः प्राणादिकों से रहितपना कैसेहै ॥ उ० ॥ जब प्राणादिक अपनी उत्पत्तिसे पूर्व पुरुषवत् अपने स्वरूपकरके विद्यमानहोय तब पुरुषको विद्यमान प्राणादिकोंसे प्राणादिवान्पना होय । परन्तुवे प्राणादिक अपनी उत्पत्तिसेपूर्व विद्यमान हैं नहीं, एतदर्थपुरुष (अक्षर) प्राणादिकों से रहित है २ । २४ ॥

हे सौम्य, जैसे पुत्रके अनुत्पन्नभये देवदत्त पुत्रसे रहितहै ऐसा कहते हैं । तैसे परमात्मा नामवाले पुरुषको वे प्राणादिक कैसे विद्यमान नहीं हैं । यह शंका विचारके कहतेहैं । [जोई चैतन्य निरुपाधि शुद्ध अविकल्परूप ब्रह्म, तत्त्व ज्ञानसे जीवोंका कैवल्य मोक्षरूपहै, सोई ब्रह्म माया बिषे प्रतिबिम्बरूपसे स्थितहुआ कारण होताहै ऐसा कहते हैं] " एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणिच " इससेही प्राणउपजे हैं, अरु मन अरु सर्व इंद्रियां (उपजेहैं) जिसकरके नाम रूपके बीज (ब्रह्म) के उपाधि करके लक्षित इस पुरुष से ही अविद्याके आधीन [जब प्राणकी उत्पत्तिसे पूर्व आत्माको प्राणसहितपना नहीं है, तब प्राणकी उत्पत्तिसे पश्चात् आत्माको प्राणसहितपना होगा । इसशंकाकी निवृत्तिके अर्थ प्रसिद्ध प्राणके विशेषणको कहतेहैं] कार्यरूपनाममात्र मिथ्यास्वरूप प्राण उपजताहै (वाचारंभणंविकारोनामधेयमिति) वाणीसे उच्चारण किया विकार (कार्य) नाममात्रहै । इस छान्दोग्यकी श्रुति से । तिस हेतुसे, जैसे पुत्ररहित देवदत्तको स्वप्नबिषे देखेहुये पुत्रकरके पुत्रसहितपना नहीं है, तैसेही अविद्याके विषय (आधीन) अरु गुणयुक्त प्राणसे परपुरुषको प्राण

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ता श्चवेदाः । वायुःप्राणोहृदयंविश्वमस्य पद्भ्यांपृथिवी ह्येषसर्व्वभूतान्तरात्मा ४ । २६ ॥

सहितपना नहीं है। तैसे ही मन अरु सर्व इंद्रियां अरु तिनके विषय इसही पुरुषसे उपजतेहैं। एतदर्थ इस पुरुषको आरोपसे रहित (यथार्थ) प्राणादिकसे रहितपना सिद्धभया । अरु जैसे वे प्राणादिक अपनी उत्पत्तिसे पूर्व परमार्थसे अविद्यमान हैं, तैसेही उत्पत्तिसे पीछे तिसहीबिषे लीन होतेहैं, इसप्रकार जानना। अरु जैसे इस पुरुषसे मन अरु इन्द्रियरूप करण उपजते हैं, तैसेही शरीर अरु विषयोंके कारण "खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्यधारिणी"। आकाश वायु अग्नि जल अरु विश्वके धारण करनेवालीपृथिवी (उपजेहैं)। आकाश अरु आवहआदिक सातभेद वाला बाह्यका वायु अरु अग्नि अरु जल अरु विश्वको धारणकरने वाली पृथिवी, यह शब्द स्पर्शरूप रस अरु गंधरूप पिछले२ गुण वाले अरु पूर्व पूर्वके गुणरहित पंचभूत इसही पुरुषसे उपजते हैं॥ (दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः) । दिव्य अमूर्त्त पुरुषहै। इत्यादि मन्त्र से निर्विशेष सत्य अक्षर पुरुषरूप परविद्याके बिषयको संक्षेपसे कहके पुनः सोई पूर्वोक्त सविशेष वस्तु अब सविस्तर कहनेको योग्यहै। अरु जिसकरके सूत्रभाष्य की युक्तिवत् एकही प्रसंग बिषे संक्षेप अरु विस्तारसे कहाहुआ पदार्थ सुखसे जानने में आवता है, एतदर्थ पूर्व संक्षेपसे कथनकिये निरुपाधिक वस्तु को अब सोपाधिकपने करके सविस्तर कहते हैं ३। २५॥

हे सौम्य, जो प्रथम उत्पन्नभये हिरण्यगर्भ रूपप्राणसे उपजा है। अरु अन्यतत्त्व सहित आकाशके स्वरूपसे लक्षबिषे आवता है ऐसा जो इस हिरण्यगर्भ के भीतर वर्त्तमान विराड् है सो भी इसही पुरुषसे उपजाहै अरु इसहीका स्वरूप है, इसही अर्थको कहते हैं। अरु उस विराड्पुरुषको विशेषण देते हैं "। अग्निर्मूर्द्धा

चक्षुषीचन्द्रसूर्य्यौदिशःश्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्चवेदाः"। अग्नि मस्तक चन्द्रसूर्य दोनों चक्षुः दिशा श्रोत्र प्रसिद्ध वेद हैं वाणी (जिसकी)। हे गौतम (असौवावलोको गौतमाग्निरितिश्रुतेः) यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक अग्नि है, इस श्रुतिकरके, अग्नि जो स्वर्गलोक सो है मस्तक जिसका। अरु चन्द्र सूर्य हैं दोनों चक्षु जिसके अरु दशो दिशा हैं श्रोत्र जिसके अरु प्रसिद्ध चारोवेद हैं वाणी जिसकी। अरु "वायुःप्राणो हृदयं विश्वमस्यपद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा"। वायु है प्राण (अरु) समस्त विश्व है हृदय जिसका (अरु) पादोंसे पृथिवी है यह सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै। वायु है प्राण जिसका। अरु समस्त जगत् है हृदय (अन्तःकरण) जिसका। एतदर्थ अतःकरणका विकाररूपही सर्व जगत् मनबिषे ही स्थित है, क्योंकि सुषुप्ति विषे जगत्का प्रलय देखते हैं। अरु जाग्रत्बिषे भी किसी मनसेही, अग्निसे चिनगारेवत्, उत्पन्न होताहै, एतदर्थ यहां सर्व विश्व विराड्का अन्तःकरण कहाहै। अरु जिससे दोनों चरणों से पृथिवी भई है। यह प्रथम शरीरधारी त्रैलोक्यमय देहरूप उपाधिवाला अनन्तरूप विष्णुदेव आकाशादि सर्व भूतोंका अन्तरात्मा अर्थात् स्थूल पंचभूतरूप शरीरवाला विराड् है। सोई सर्वभूतों बिषे द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता अरु सर्व करणोंका स्वरूप है। अरु पांच, अर्थात् [स्वर्गलोक, मेघ, पृथिवी, पुरुष, अरु स्त्री, इन पांचोंबिषे अग्निकी दृष्टिको, अन्य छान्दोग्य उपनिषद्के पंचमाध्याय सम्बन्धीपंचाग्नि विद्याबिषेउक्त होनेसे उन स्वर्गादिक] पांच अग्निरूप द्वारसे जो प्रजा व्यवहार करे हैं सो प्रजाभी उसही पुरुषसे उपजे हैं, इसप्रकार अब अगिले मन्त्र करके कहते हैं ४। २६॥

हे सौम्य, "तस्मादग्निः समिधोयस्यसूर्य्यः"। जिससे अग्नि होताहै कि जिसका समिध सूर्य्यहै। तिस पुरुष से प्रजाकी स्थिति विशेषरूप जो स्वर्गलोकरूप अग्नि है सो उत्पन्न होताहै, कि जिस अग्निका सूर्य्य समिधावत् समिध है। अरु जिस करके

तस्मादग्निःसमिधोयस्यसूर्य्यःसोमात्पर्ज्जन्यओष धयःपृथिव्याम् । पुमान्रेतःसिंचतियोषितायांबह्वीःप्र जाःपुरुषात्सम्प्रसूताः ५ । २७ ॥

सूर्य्यसे स्वर्गलोक प्रकाशित होताहै तिसकरके सूर्य्य उसका स-मिधहै, स्वयंप्रकाशी गोलही स्वर्गलोक है । अरु " सोमात् पर्जन्यओषधयः पृथिव्याम् " । चन्द्रमा से मेघ अरु पृथिवी बिषे ओषधियां (होतीहैं) । तिस स्वर्गलोकरूप अग्निसे (सोमोराजा संभवति) उत्पन्न भया जो चन्द्रमा तिस चन्द्रमा से मेघरूप द्वितिय अग्नि उत्पन्न होताहै । अरु तिस मेघसे भई वर्षा तिस करके पृथिवी बिषे ओषधियां (ब्रीही यवादि अन्न) उत्पन्न होताहै। अरु " पुमान् रेतः सिंचतियोषितायां " । पुरुष है सो स्त्री बिषे रेतको सिंचन करताहै । पुरुष रूप अग्नि बिषे हवन की हुई अ-न्नादि ओषधियों से उत्पन्न भया जो रेत (बीर्य) तिसको पु-रुष स्त्रीरूपा अग्निबिषे सिंचन करता है। इसप्रकार क्रम करके " बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः " । पुरुष से बहुतसी प्रजा उत्पन्न होतीहैं । परब्रह्मरूप पुरुष से ब्राह्मणादि बहुतसी प्रजा उत्पन्न होतीहैं ॥ अरु कर्मके साधन अरु फल उसही पुरुष से उत्पन्न होतेहैं,इसप्रकार अब अगिले मंत्रकरके कहैंगे ५ । २७ ॥

हे सौम्य,॥प्र०॥ हे भगवन् तिस पुरुष से कर्मके साधन अरु फलकैसे होते हैं ॥ उ० ॥ तस्मादृचःसामयजूंषि" ।तिससे ऋचा (ऋग्वेद) सामवेद यजुर्वेद (होते हैं) । तिस पुरुष से नियमित अक्षरवाले पदहैं अन्तबिषे जिसके, ऐसे गायत्री आदिक छन्द करके युक्त मंत्ररूप ऋचा, अरु पांच अवयव वाला अरु सप्त अ-वयववाला [हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, अरु निधन, इननामक पांचअवयववाला,अरुहिंकार, प्रस्ताव, आद्य, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, अरु निधन,इननामक सातअवयवोंवाला, जो सामहै सो पांचविभक्तिक अरुसात विभक्तिक है] अरु अर्थ रहित

तस्माद्दचःसामयजूंषिदीक्षा यज्ञाश्चसर्व्वेक्रतवोदक्षिणाश्च । संवत्सरश्चयजमानश्चलोकाः सोमोयत्र पवतेयत्रसूर्य्यः । ६ । २८ ॥

अक्षररूप स्तोमआदिकके गान करिके युक्त भेदसे तीनप्रकारका साम, अरु नियमरहित अक्षरवाले पदहैं अन्तविषे जिसके, ऐसे वाक्यरूप यजुर्वेदके मन्त्र ऐसे तीनप्रकार के मन्त्ररूप वेद होते भये । अरु "दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च" ।दीक्षा अरु यज्ञके स्तंभसहित सर्व क्रतुरूप यज्ञ अरु दक्षिणा (होतेभये)। यज्ञोपवीतादि लक्षणवाले कर्त्ताके सत्यभाषणादि नियम विशेष रूपदीक्षा अरु यज्ञके यूप (स्तंभ)आदिक सहित अग्निहोत्रादिक क्रतुरूप यज्ञ, अरु एकगौसे आदिलेके [विश्वजित् अरु सर्वमेध, इनदोनों यज्ञोंविषे सर्वस्व (सर्वधन)की दक्षिणा होती है, एतदर्थ एकगौसे लेके सर्वस्वधन पर्यन्त दक्षिणा दीजाती है]अपरिमितसर्व धनके दानपर्यन्त दक्षिणा अरु "संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः" ।संवत्सर अरु यजमान अरु लोक (उपजतेहैं) अरु जिनविषे चन्द्रमा पोषण करताहै अरु जिनविषे सूर्य्य पवताहै । कालरूप संवत्सर, अरु कर्त्तारूप यजमान, यह कर्मोंके साधन (सामग्री) अरु तिन कर्त्ताके कर्मके फलरूप लोक, उपजतेहैं । अरु जिन लोकोंविषे चन्द्रमा लोकोंको (प्रजाको पोषणकरताहै, अरु जिन लोकोंविषे सूर्य तपताहै,सोलोक दक्षिणायन अरु उत्तरायण रूप उभय मार्गोंसे गमन करनेयोग्य विद्वान् अरु अविद्वान्रूप कर्त्ताके कर्मफलहैं ६ । २८ ॥

हे सौम्य,"तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः" ।तिससे बहुतप्रकारके देवता सम्यक् उत्पन्न होतेभये । तिस परमात्माख्य पुरुष से कर्मके अंगभूत वसुआदिक गणोंके भेदसे बहुतप्रकारके देवता सम्यक् प्रकारसे उत्पन्न होतेभये । अरु "साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि" ।साध्य अरुमनुष्य अरुपशु अरुपक्षी उत्पन्न होतेभये)।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि। प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७। २९॥

साध्य नामवाले देवविशेष, अरु कर्मके अधिकारी मनुष्य, अरु ग्राम तथा वनके निवासी (अरण्या ग्राम्याश्चये) पशुअरु पक्षी। उत्पन्न होतेभये। अरु "प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च"। प्राण अरु अपान, धान्य अरु यव अरु तप अरु श्रद्धा अरु सत्य अरु ब्रह्मचर्य अरु विधि (उत्पन्न होतेभये) मनुष्यादिकोंका जीवन प्राण अरु अपान, अरु हवनरूप अर्थवाले धान्य अरुयव, अरु कर्मका अंग [(पयोब्राह्मणस्य व्रतं यवागूराजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्येत्यादि श्रुतिः) ब्राह्मणका पयोव्रत, अरु क्षत्रियका यवागू (कांजी) व्रतहै, अरु वैश्यका आमिक्षा (मिश्रित दूध अरु दधिका विकार)व्रतहै,इत्यादि श्रुतिविषे विधानकिया जो कृच्छ्र अरु चांद्रायण आदिक व्रत, सो कर्मका अंगभूत आदिक तपहै] पुरुषके संस्काररूप अरु स्वतन्त्र कर्मका साधनरूप तप, अरु जिसके पूर्व होनेसे सर्व पुरुषार्थोंके साधनको कारणरूपचित्त की प्रसन्नता होती है, ऐसी आस्तिकपनेकी बुद्धिरूप श्रद्धा, अरु खेदका नकरनेवाला झूठसेरहित यथार्थ अर्थका कथनरूप सत्य, अरु मैथुन (स्त्रीसंग)के अकरण (त्याग) रूप ब्रह्मचर्य, अरुकर्त्तव्यतारूपा विधि यहसर्व उक्तअक्षरसे उत्पन्न होतेभये ७। २९॥

हेसौम्य, "सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त सामिधः सप्तहोमाः"। तिससे सात प्राण अरु सातज्वाला अरु सात समिध अरु सातहोम होतेभये। किंवा तिसही पुरुषसे मस्तकविषे स्थित जो, दोश्रोत्र, दोनेत्र, दोघ्राण, अरु एक मुखान्तर रसना, यह सात प्राणसंज्ञक इन्द्रियां होती हैं, अर्थात् (चक्षुःश्रोत्रे मुख नासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रतिष्ठते) इस प्रश्नउपनिषद्के तृतीय प्रश्नकी पांचवीं श्रुतिके प्रमाणसे उक्त सातों स्थानों विषे स्वयं

सप्तप्राणाःप्रभवन्तितस्मात्सप्तार्चिषः सप्तसमिधः सप्तहोमाः । सप्तइमेलोकायेषुचरन्ति प्राणागुहाशयानिहिताःसप्तसप्त ८ । ३० ॥

प्राण प्रतिष्ठत (वर्त्तता)है ताते उक्त इन्द्रियोंकी प्राण संज्ञाहै । अरु उन प्राणोंकी अपने २ विषयको प्रकाशनेवाली ज्ञानयुक्त वृत्तिरूपी अर्चियां (ज्वाला) होती हैं, अरु तैसेही उन आर्चियोंके अर्थ सात विषयरूप समिध होती है, अर्थात् जिसकरके विषयों से मिल के यह इन्द्रियां रूप प्राण, जैसे समिधसे मिलके अग्निकी ज्वाला तैसे, बाह्य प्रवृत्त होतीहै । ताते विषय इन्होंके समिधहै । अरु (यदस्यविज्ञानं तज्जुहोतीति श्रुत्यन्तरात्) (जो इसका विज्ञान है तिसको होमकरताहै। इस अन्य श्रुतिके प्रमाणसे, उन विषयोंके विज्ञानरूप सातहोम होतेहैं (इन्द्रियाग्निषु जुह्वती) अरु, "सप्त इमेलोका येषुचरन्ति प्राणागुहाशया निहिताःसप्तसप्त" (जिनविषे प्राण विचरतेहैं यह सातलोक (होतेहैं) अरु गुहाविषे रहतेहैं, अरु सात सात (स्थानकहतेहैं) जिन्होंविषे प्राण विचरतेहैं ऐसे इन्द्रियोंके स्थानरूप यह सातलोक होते हैं । अरु सोप्राण कैसेहैं कि, जो निद्राकालमें शरीररूप अथवा हृदयरूप गुहाविषे रहतेहैं, अरु जो परमेश्वरने प्राणियोंके भेदके प्रति सात सात स्थान किये हैं। हे सौम्य इस सम्पूर्ण प्रकरणका यह अर्थ है कि, आत्मयाजी, अर्थात् [(सकलमिदमहंच वासुदेवः) । यह सर्व जगत् अरु मैं परमात्माही है । इसप्रकारकी दृढ भावना पूर्वक परमेश्वरकी आराधनकी बुद्धि से जो यजन करते हैं तिनको आत्मयाजी कहते हैं] विद्वान् पुरुषों के जो कर्म अरु तिन कर्मोंके साधन अरु कर्मोंके फलहैं, अरु अविद्वान् पुरुषोंके कर्म अरु तिन कर्मोंके साधन अरु कर्मोंके फल हैं, यह सर्व जगत् सर्वज्ञ पर पुरुष (अक्षर ब्रह्म) सेही उत्पन्न भया है ८ । ३० ॥

हे सौम्य, "। अतःसमुद्रा गिरयश्च सर्व्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सि-

अतःसमुद्रागिरयश्चसर्व्वेऽस्मात्स्यन्दन्तेसिन्धवः सर्व्वरूपाः । अतश्चसर्व्वाओषधयोरसश्चयेनैषभूतै स्तिष्ठतेह्यन्तरात्मा ९ । ३१ ॥

धवः सर्वरूपाः" । इसते सप्तों समुद्र अरु सर्व पर्वत अरु सर्वरूपवाली नदियां होती हैं । इस अक्षर नामवाले पुरुष से क्षारादिक सप्त समुद्र होते हैं अरु हिमालय विन्ध्याचल आदि सर्व पर्वत, इस उक्त पुरुषसेही होते हैं, अरु बहुत रूपवाली जे गंगा यमुना सिन्धु आदिक नदियां सो भी इसही पुरुषसे स्रवती हैं, अरु "। अतश्चसर्व्वाओषधयोरसश्च येनैषभूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा" । इसही से सर्व (अन्नादि) ओषधियां अरु रस होते हैं कि जिस करके भूतोंकरके अन्तरात्मा स्थित होताहै । इसही पुरुष से तंडुल यवादि सर्व ओषधियां उपजती हैं । अरु इसही पुरुष से मधुरादि अर्थात् मधु मीठा अरु कटु (कडुवा) अरु अम्ल (खट्टा) अरु तीक्ष्ण (तीखा) अरु क्षार (खारा) अरु कसायल (कसायला) यह छःप्रकारका रस होताहै । अरु जिस रस करके स्थूल पंचभूतों करके आवृतभया अन्तरात्मा (लिंगशरीर) स्थित होताहै । अर्थात् लिंगरूप जो सूक्ष्म शरीरहै सो जिसकरके स्थूल शरीर अरु आत्माके मध्य विषे बढता (पुष्टहोता)है तिस करके इस लिंगको अन्तरात्मा कहते हैं ९ । ३१ ॥

हे सौम्य, इसप्रकार पुरुष (अक्षर) से यह सर्व उत्पन्न भया है । एतदर्थ " वाचारंभणंविकारो नामधेयं " बाणीसे उच्चार किया विकार नाममात्र (मिथ्या) होताहै । अरु पुरुष (अक्षरब्रह्म) ही सत्यहै । एतदर्थ " । पुरुषएवेदंविश्वंकर्म तपोब्रह्मपरामृतम् " । पुरुषही यह सर्वहै (सर्वक्याहै) कर्म अरु तप ब्रह्म पर अमृतरूप। पुरुष (अक्षर) ही यह सर्वहै । पुरुष से अन्य विश्वनामक कुछ भी बस्तु नहींहै । एतदर्थ " कस्मिन्नुविज्ञाते सर्वमिदंविज्ञातंभवतीति " । हे भगवन् किसके जान्नेहुये सर्व यह जाना जाता है ।

पुरुषएवेदंविश्वंकर्म तपोब्रह्मपरामृतम् । एतद्यो वेदनिहितंगुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीहसौम्य १० । ३२ ॥

यह इसही उपनिषद् के प्रथम मुंडकके प्रथमखंडके तीसरे मंत्र विषे जो कहाथा,सो यह कथन किया । अर्थात् [जो प्रथम मुंडक के तृतीय मन्त्रकरके जो शिष्यने प्रश्नकिया था कि हे भगवन् किसके जानने से यह सर्व जानाजाताहै तिसका उत्तर निरूपण किया । यह नामरूपात्मक सर्व परमात्मा सेही उपजताहै । एतदर्थ परमात्मस्वरूप यह सर्व, तिस परमात्मा केही जानने से जाना जाताहै । इस प्रकार (आचार्यनेशिष्यकी) अविद्या के क्षयरूप फलके कथनसे समाप्त किया] । ननु, सर्वके कारण भूत परमात्मा के जानने से { पुरुषएवेदंविश्वं } । पुरुषही यह सर्व विश्वहै । इसप्रकार जानाजाताहै ॥ प्र० ॥ पुनः यह विश्व क्या है ॥ उ० ॥ अग्निहोत्रादि रूपकर्म,अरु तिस कर्मका किया ज्ञानमय तप अरु अन्यभी जो यह सर्व है, सो जिस करके ब्रह्मका कार्य है तिसहीकरके "एतद्यो वेद निहितंगुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीहसौम्य" हेसौम्य गुहाविषे स्थित परम अमृतरूप, इसब्रह्मको जो जानताहै सो अविद्या ग्रन्थिको नाशकरे है। हे सौम्य (हे प्रियदर्शन) सर्व प्राणियोंकी हृदयरूपी गुहाविषे स्थित परम अमृतमय इसब्रह्मको { अहमेवेति } यहमैंहीहूं। इसप्रकारजो जानताहै, सो ऐसे अभेद विज्ञान से यहां (संसारविषे) जीवता हुआही, अर्थात् विना ही मरे, अविद्या की ग्रंथिको, अर्थात् ग्रंथिवत् दृढभई जे अविद्याकी वासना तिसको नाशकरे है १० । ३२ ॥

इतिश्रीमुंडकोपनिषद्गतद्वितीयमुंडकेप्रथमखंडकीभाषाटीका समाप्ता ॥

तत्सद्ब्रह्म ॥

अथद्वितीयमुंडकेद्वितीयखंडः ॥

आविः सन्निहितंगुहाचरन्नाममहत्पदमत्रैतत्समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्चयदेतज्जानथसदसद्वरेण्यंपरविज्ञानाद्यद्वरिष्ठंप्रजानाम् १ । ३३ ॥

अथ द्वितीयमुण्डकगतद्वितीयखण्डकी भाषाटीकाप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [अब जिसको एकबार आदेश (उपदेश) मात्रसे (ब्रह्मास्मीति) अद्वितीय ब्रह्म मैंहूं, ऐसा वाक्यार्थका ज्ञान अनुभव पर्यन्त होवे नहीं, तिस पुरुषको वाक्यके अर्थकीही बारम्बार भावना अरु युक्तिके अनुसन्धानरूप उपायका अनुष्ठान कर्तव्य उचितहै, इस अभिप्रायसेकहतेहैं]शिष्यका प्रश्नहै कि, अरूप अरु सद्रूप जो अक्षर (ब्रह्म)है सो किसप्रकारसे जाननेकोयोग्यहै॥उ०॥ "आविःसन्निहितं" । प्रकाशरूपहै अरु सम्यक् स्थितहै।सो ब्रह्मस्वयंज्योति (प्रकाशरूप) है अर्थात् [विश्वके ज्ञानरूपकरके प्रकाशवान् ब्रह्महै, तिसकी मुमुक्षुजन सदा भावनाकरें । यह अर्थहै सो अन्य ग्रंथकारों ने भी कहा है जो है, जो भासताहै, सो आत्मरूप है। तिससे अन्य भासता नहीं, अरु अन्य है भी नहीं । किन्तु केवल अपनी आप सत्तारूप संवित् (चैतन्य) भासता है । अरु ग्राह्य (विषय) अरु ग्रहीता (विषयी) यह सर्व कल्पना मिथ्याही है इति] अरु सम्यक् स्थितहै अर्थात् [सर्व प्राणियों के हृदय बिषे स्थित वागादि उपाधियों से शब्दादि विषयोंको प्राप्तहुयेवत् ब्रह्महो जीवभावको प्राप्तहुयेवत् भासताहै, एतदर्थ सो अपरोक्ष है, इसप्रकार सदाही स्मरणकरे] कहिये (वागाद्युपाधिभिर्ज्वलति भ्राजतीति, श्रुत्यंतरे) वाणीआदिक उपाधियोंसे प्रकाशता है अरु विराजमान है । इस अन्यश्रुतिके प्रमाणकरके शब्दादिकोंको प्रकाशताहुआ भासताहै अरु दर्शन श्रवणमनन अरु विज्ञा-

न आदिक उपाधियोंके धर्मोंसे प्रकटहुआ सर्व प्राणियों के हृदय विषे लखाजाताहै। अरु जोयह प्रकटहुआ ब्रह्म हृदयाविषे सम्यक् स्थितहै सो दर्शन श्रवणादिप्रकारों से "। गुहाचरंनाम "। । हृदय-रूप गुहा विषे विचरनेवाला (गुहाचर ऐसे) नामवाला प्रख्यात है। अरु [अब यह सर्व जगत् कार्यरूप अरु परिच्छिन्नरूप है, क्योंकि आश्रय सहितका कार्यरूपहोनेसे अरु परिच्छिन्न होनेसे घटादिकोंवत् । एतदर्थ जो सर्वका आश्रयरूप है, सोई मायाका आश्रय आत्मरूप है । इस युक्तिके अनुसंधानको कहतेहैं ["। महत्पदं "। । महत्पद है।जो ब्रह्म सर्वसे बड़ा होनेसे महत् है । अरु सर्व पदार्थोंका आश्रयहोनेसे सर्वसे प्राप्तहोताहै,यातेपदहै एतदर्थ-ही, महत्पदरूप है ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म महत्पद रूप कैसेहै ॥उ०॥ "। एजत्प्राणन्निमिषच्च "। । चलनेवाला प्राणवाला निमिषवाला है । जो चलनेवाले पक्षी आदिक हैं, अरु प्राण अपान आदिक प्राणोंवाले मनुष्य पशुआदिक हैं, अरु निमिष आदिक क्रिया वालाहै, अरु जो अनिमिषवाला है । अरु "। अत्रैतत्समर्पितं "। यह इसविषे प्रवेशको पायाहै। यह सर्व इस ब्रह्मविषे प्रवेश को पायाहै । अरु "। यदेतज्जानथ "। । जो है इसको जानो। ऐसा जो (सर्वका) आश्रयहै, इसको, हेशिष्य तुम सर्वजानो अरु "सदसद्वरेण्यं "। सत् असत् स्वरूप है, अरु वरेण्य है । सो ब्रह्म तुम्हारा आत्मरूपहै, अरु सत् असत् रूपहै, क्योंकि सत्कहिये अमूर्त्तअरु असत् कहिये मूर्त्तरूप जो स्थूल अरु सूक्ष्म प्रपंचहै तिसको तिस ब्रह्म से भिन्न भावका अभाव है ताते, अरु सोई ब्रह्म वरेण्य है, अर्थात् नित्य होनेसे सर्वको माननेयोग्यहै । अरु"परंविज्ञानाद्वरिष्ठं प्रजानां"। प्रजाके विज्ञानसे परहै अरुवरिष्ठहै। प्रजाके विज्ञान से पर (पृथक्)है, अर्थात लौकिक ज्ञानसे अगोचरहै अरु वरिष्ठहै, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पदार्थोंविषे सोई एकब्रह्म अतिशयकरके श्रेष्ठहै । क्योंकि सर्व दोषोंकरके रहितहै ताते १ । २ २ ॥

हेसौम्य, [घटादिकोंवत् सूर्यादिकोंको जड़ताके होने सेभी जो

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन्लोकानिहितालोकिनश्च । तदेतदक्षरंब्रह्मसप्राणस्तदुवाङ्मनः तदेतत्सत्यंतदमृतंतद्वेद्धव्यंसोम्यविद्धि २। ३४॥

प्रकाशवान्पने बिषे विचित्रता है, तिसका ब्रह्मरूप प्रकाश विना असंभवहै। तिस असंभवरूप अर्थापत्ति प्रमाणसेभी तिसका कारण निश्चय करनेको योग्यहै इसप्रकार यहां कहतेहैं] "यदर्चिमत्" । जो प्रकाशवान् है। जोब्रह्म अपने प्रकाशसे सूर्य्यादिकोंको प्रकाशताहै एतदर्थप्रकाशवान्है। [ब्रह्मकोप्रकाशवान् होनेसे सूर्य्यादिकोंवत् इन्द्रियोंका विषयत्व प्राप्तभया, इस शंकाका यहां निषेध करतेहैं] अरु "यदणुभ्योऽणु" । जो सूक्ष्मसेभी सूक्ष्महै। किंवा जो सामा (अन्नविशेष) आदिक सूक्ष्म वस्तुओंसे भी सूक्ष्म है, शंका ॥ [तब ब्रह्मको परमाणु के परिमाणकरके युक्तपना होगा उ० ॥ यहशंका करनेकोयोग्यनहीं ऐसा कहते हैं] अरु वो पृथिव्यादि स्थूल वस्तुओंसेभी अतिशयकरके स्थूलहै (अणोरणीयान् महतो महीयान्) [शंका, तब ब्रह्मस्थूल होनेसे अन्य आधारवाला होवेगा ॥ उ० ॥ यहशंका करनेको योग्यनहीं, ऐसा कहतेहैं] "यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च" । जिसबिषे लोक अरु लोकनिवासी स्थितहैं। जिसबिषे पृथिवीआदिक लोक अरु जोमनुष्यादिक चैतन्यके आश्रय प्रसिद्ध सर्वलोक के निवासी प्रजा हैं सो स्थितहैं। अरु "तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदुवाङ्मनः" । सो यह अक्षर ब्रह्महै सो प्राणहै अरु सोवाक् अरु मनहै। [अब प्राणादिकोंकी जो प्रवृत्तिहै सो चैतन्य अधिष्ठानरूप निमित्तवालीहै जडोंकी प्रवृत्ति होनेसे रथआदिकोंकी प्रवृत्तिवत् अरु चैतन्य के भेदहोने बिषे प्रमाणका अभावहै ताते एक चैतन्यमात्रहै ऐसे विचार करना। यह कहतेहैं] सोयह सर्वका आश्रय अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म है सो प्राणहै अरु सोई वाक् (वाणी) अरु मनहै। अरु च शब्द करके उपलक्षित सर्व कारणरूपहै। अर्थात् प्राणादिकोंके भीतर

धनुर्गृहीत्वौपनिषदंमहास्त्रंशरंह्युपासानिशीतंसन्धीयत। आयम्यतद्भावगतेनचेतसा लक्ष्यंतदेवाक्षरंसौम्य विद्धि ३ । ३५ ॥

विद्यमान जो चैतन्यहै, सो उनका आश्रय होनेसे प्राण अरुइन्द्रियादिक सर्व संघातरूप है। क्योंकि {प्राणस्यप्राणः} । प्राणकाभी प्राणहै ॥ इत्यादि अन्यश्रुतियोंका प्रमाणहै ताते। अरु जो प्राणादिकोंके भीतर चैतन्यरूप अक्षरहै "तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्यविद्धि" । सोयह सत्यहै, सो अमृतहै, सो बेधनेको योग्य है, हेसौम्य बेधनकर। सोयह सत्यहै, एतदर्थ सो अमृत (अविनाशी) हैसो मनकरके बेधनेको (ताड़नाकरनेको) योग्यहै। अर्थात् तिस बिषे मनका समाधानकरना योग्यहै। हेसौम्य जिसकरके यहऐसे है, तिसहीकरके बेधनकरो अर्थात् (अक्षर बिषे चित्तको एकाग्र करो) २ । ३४ ॥

हेसौम्य, [अब विचारबिषे असमर्थको ॐकारका आश्रयकरके ब्रह्म अरु आत्माबिषे क्रममुक्तिरूप फलवाली चित्तकी एकाग्रता के देखावनेका आरंभ करतेहैं। यहां यह अभिप्रायहै कि {प्रणवो ब्रह्मेति} ॐकार ब्रह्महै। इसप्रकार ध्यानकरनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषको जो ॐकार सम्बन्धी प्रतिबिम्ब स्फुरताहै, {तदात्मेति} सो आत्माहै। ऐसा जो चिंतन सो प्रणवरूप धनुषबिषे बाणका सन्धानहै। अरु तिस ब्रह्मका चैतन्यके प्रतिबिम्बरूप जीवसेएकतारूप जो अनुसन्धान, सो लक्ष्यका वेधहै] ॥ शंका॥ कैसे बेधने को योग्यहै ॥ उ० ॥ "धनुर्गृहीत्वौपनिषदंमहास्त्रं शरंह्युपासा निशीतं सन्धीयत" । उपनिषद्बिषे प्रसिद्ध धनुषरूप महान् अस्त्रको लेके निरन्तरध्यानसे तीक्ष्णकिये बाणकोसन्धानकरना। उपनिषदोंबिषे प्रसिद्ध प्रतिपाद्य जे धनुषरूप महान् अस्त्र तिसकोलेके तिस धनुषबिषे, निरन्तर ध्यानकरके तीक्ष्णकिये बाणको सन्धान करना। जिसकरके यहां हाथसेही धनुषका आकर्षण (खींचना)

प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् ४। ३६॥

संभवता नहीं, एतदर्थ "। आयम्यतद्भावगतेनचेतसालक्ष्यंतदेवाक्षरंसौम्यविद्धि"। ।तिसबिषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे आकर्षण करके हेसौम्य तिसही अक्षररूप लक्ष्यको बेधनकरो। तिस अक्षर (ब्रह्म) रूप लक्ष्यबिषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे इन्द्रियसहित अन्तःकरणको अपने विषयसे निवृत्तकरके लक्ष्यबिषेही प्राप्तकरने रूप धनुषका आकर्षण करके, हे सौम्य, तिसही उक्त लक्षणवाले अक्षररूप लक्ष्यको वेधनकर, अर्थात् लक्ष्य बिषे चित्तको एकाग्रकरो (यह वेदकी आज्ञाहै) ३। ३५॥

हे सौम्य, अब कथनकिये जे धनुषादिक तिनको स्पष्ट कहते हैं "। प्रणवोधनुः"। ।प्रणव ॐकार धनुषहै। जैसे धनुष जो है सो लक्ष्य (निशाना) बिषे बाणके प्रवेशका कारण है, तैसे आत्मारूपी बाणका अक्षररूप लक्ष्यबिषे प्रवेशका कारण ॐकार है। अरु जैसे अभ्यासकिये धनुषसे संस्कार युक्त, अरु तिस धनुषरूप आश्रयवाला हुआ बाणलक्ष्याबिषे स्थित होताहै, तैसेही जिस करके अभ्यास किये ॐकारसे संस्कार (ध्यान) युक्त, अरु तिस ॐकाररूप आश्रयवालाहुआ आत्मा (बुद्धिविशिष्टचैतन्य) अक्षर (ब्रह्म बिषे स्थितहोता है, एतदर्थ ॐकार जो है सो धनुषवत् धनुषहै, अरु "शरोह्यात्मा"। ।(आत्मारूपी) बाणहै। अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्माही,जलादिगत सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बादिकोंवत् इस देहरूप घटबिषे सर्व बुद्धि (रूपजल) की वृत्ति (रूपतरंग) नका साक्षी होनेकरके प्रवेशको पायाहै,सो (आत्मा) बाणवत् है अरु "। अप्रमत्तेनवेद्धव्यं"। ।प्रमादसे रहितपने करके बेधनकरनेको योग्यहै। आत्माके अर्थ विषयोंकी प्राप्तिकी तृष्णारूप प्रमादसे रहित, अरु सर्वसे विरक्त,अरु जितेन्द्रिय,अरु एकाग्र चित्तसे बेधनेको योग्य है। अरु "।ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते"। ।ब्रह्मसो लक्ष्य कहते हैं। ऐसा जो अक्षर (ब्रह्म) तिसको लक्ष्य कहतेहैं।

अस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ५ । ३७ ॥

एतदर्थ तिस वेधनकरनेके पश्चात् "शरवत्तन्मयोभवेत्" । बाणवत् तन्मय होताहै । बाणवत् तन्मय (लक्ष्यकारूप) होताहै । जिस प्रकार बाणको लक्ष्यके साथ एकतारूप फल होताहै, तैसे देहादिक अनात्माकार वृत्तियोंके तिरस्कार होनेसे अक्षर (ब्रह्म) के साथ एकरूपतामय फलको सम्पादनकरना, यह अर्थहै ॥ इति सिद्धम् ४ । ३६ ॥

हे सौम्य, अक्षर (ब्रह्म) दुःखसे जाननेके योग्य होने करके तिसका बारम्बार जो कथनहै सो उसका सुखपूर्वक लक्ष्यकरावनेके अर्थ है, एतदर्थ तिसहीको बारम्बार कहते हैं "अस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः" । जिस विषे स्वर्ग पृथिवी अरु अन्तरिक्ष आकाश प्रवेशको पायाहै । सर्व करण (इन्द्रियां) सहित मन (प्रवेशको पायाहै) जिस अक्षर पुरुषविषे स्वर्ग पृथिवी अरु आकाशरूप सर्व जगत् प्रवेशको पाया है, अरु अन्य सर्वप्राण (करण, इन्द्रियां) करके सहित मन प्रवेश को पायाहै । अरु "तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ" । तिसही एक आत्माको जानके अन्य वाणीको छोड़ो । हे सौम्य, तिसही सर्वके आश्रय एक अद्वितीयरूप तुम्हारे अरु अन्य सर्व प्राणधारियोंके प्रत्यक्रूप आत्माको जानो अरु तिस आत्माको जानके अन्य अपर विद्यारूप वाणीको अरु तिस करके प्रतिपाद्य साधन सहित सर्व कर्मको परित्याग करो, [अब साधन सहित सर्व कर्मको त्यागके एक आत्माही जानने को योग्यहै, इस विषय में कारण कहते हैं "अमृतस्यैष सेतुः" । यह अमृतका सेतु है । क्योंकि यह सम्यक् आत्मज्ञान अमृत का, अर्थात् मोक्षरूप पारकी प्राप्तिके अर्थ सेतु (पुल) है क्योंकि संसाररूपमहोदधि

अराइवरथनाभौ संहतायत्रनाड्यस्सएषोऽन्तश्चर तेबहुधाजायमानः । ॐमित्येवंध्यायथआत्मानंस्वस्ति वःपारायतमसःपरस्तात् ६ । ३८ ॥

(बड़ासमुद्र) के पारजाने को (मुमुक्षु के अर्थं) कारण है ताते, अरु जैसे यह आत्मज्ञान मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ सेतु पुल-वत् सेतुहै । तैसे { तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यःपन्थाविद्य-तेऽयनायेति } ।तिसही को जानके मृत्युको लंघिके जाता है, मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ अन्यमार्ग नहीं ।। यह अन्य श्वेताश्वतरकी श्रुति भी कहती है 'इतिवेदानुशासनम्, ५ । ३७ ॥

हे सौम्य, "अराइवरथनाभौसंहतायत्रनाड्यस्सएषोऽन्तश्चरते बहुधाजायमानः" । जैसेरथकी नाभिबिषे प्रवेशको प्राप्तभये अरे हैं तैसे जिसबिषे नाड़ियां सम्यक् प्रवेश को प्राप्तभई हैं, सो यह तिस हृदयबिषे वर्त्तताहै, अनेक प्रकार होताहै। जिसप्रकार रथकी नाभि (मध्यकाकाष्ठ) बिषे प्रवेशको प्राप्तभये अरा (सीधेकाष्ठ) हैं, इसप्रकार जिस हृदयबिषे, सर्व ओरसे देहबिषे व्यापनेवाली प्रसिद्ध नाड़ियांसम्यक्प्रकार प्रवेश को पाई हैं, तिस हृदय बिषे बुद्धिकी वृत्तियों का साक्षीरूप सो यह प्रसंगबिषे प्राप्तभया आ-त्मातिस हृदय के मध्यबिषे देखता हुआ, सुनताहुआ, मनन करता हुआ, जानता हुआ, वर्तता है, अरु क्रोध हर्ष आदिक वृत्तियों करके अनेक प्रकार को हुएवत् होताहै। अर्थात् अन्तः-करणरूप उपाधि के अविवेक करके युक्त होनेसे इसको लौकि-कजन हर्षवान् अरु क्रोधवान् कहते हैं। तिस "। ॐमित्येवंध्याय-थ आत्मानंस्वस्तिवः पारायतमसःपरस्तात्" । आत्माको ॐ इसप्रकार से ध्यानकरो तमसेपर पारके अर्थ निर्विघ्न होवो । आत्माको ॐइसप्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवाले हुये शास्त्रोक्त कल्पना से ध्यानकरो । इसप्रकार ज्ञानवान् आचार्यने शिष्यके अर्थ कहने योग्य जो वस्तुहै सो कहा । अब ब्रह्मविद्याके जानने

यःसर्वज्ञःसर्व्वविद्यस्यैषमहिमाभुवि दिव्येब्रह्मपुरे
ह्येषव्योम्न्यात्माप्रतिष्ठितः । मनोमयःप्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्नेहृदयंसन्निधाय तद्विज्ञानेनपरिपश्यन्तिधी
राश्रानन्दरूपममृतंयद्विभाति ७।३९ ॥

की इच्छावाले कर्मरहित अरु मोक्षके मार्ग में प्रवृत्तभये जे जि-
ज्ञासु शिष्य हैं, तिनको विद्यारहित होने करके, आचार्य ब्रह्मकी
प्राप्तिको चाहते हैं । हेशिष्य तुमको मैंने कथन किया जो [सर्वे
श्वरपना अरु मनोमयपना आदिक गुणकरके युक्त ब्रह्मका,हृदय
कमलविषे जो ध्यान है, सो क्रम मुक्तिरूप फलवालाहै । एतदर्थ
हे मन्दबुद्धिवाले ब्रह्मवेत्ता (अधिकारी)तुम तिस ध्यानको करो ।
इसप्रकार देखावने के अर्थ जो इस संसाररूप महोदधिको लं-
घिके प्राप्तहोने योग्य परविद्याका विषय है इसप्रकार कहाहै]
यह संसाररूप महान् अपार समुद्र तिसको लंघिके प्राप्तहोने
योग्य-पर (ब्रह्म) विद्याका विषय है सो तुझको मेरे उपदेश से
पश्चात् अविद्यारूप तमसे पर [कर्मके संगीजनों की संगति से
कर्म बिषे श्रद्धा अरु विषयों विषेश्रद्धा होती है । सो वाक्यार्थ के
ज्ञानकी अनुभवपर्यन्तताकी प्रतिबन्धकरूप विघ्नहै । सो विघ्न
तुमको मत प्राप्तहोय । इसप्रकारका कथनहै परन्तु वाक्यार्थ के
अनुभव के उत्पन्न भये फलकी प्राप्तिविषे विघ्नकी शंका नहीं
है, इस अभिप्रायसे कहते हैं] जो अविद्यारूप तम (अन्धकार)
कापर पारहै, तिसके अर्थ, अर्थात् अविद्या रहित ब्रह्मात्मस्वरूपकी
प्राप्तिके अर्थ निर्विघ्न जैसे होय तैसे होवो ।इत्यादेशः। ६ । ३८ ॥
हे सौम्य, (॥ प्र० ॥ सो आत्मा किस विषे वर्त्तताहै ॥ उ० ॥)
" यःसर्व्वज्ञःसर्व्वविद्यस्यैष महिमाभुविदिव्येब्रह्मपुरेह्येषव्योम्न्या
त्माप्रतिष्ठितः" । ।जो सर्वज्ञहै, सर्ववित् है, अरु जिसकी यह पृथिवी
विषे महिमाहै, सो यह आत्मा प्रकाशक ब्रह्मपुर बिषे विद्यमान
आकाश बिषे स्थितहै । जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, अरु जिसको

यह प्रसिद्ध पृथिवी बिषे महिमा (विभूति है) ॥ प्र० ॥ कौन यह महिमा है ॥ उ० ॥ यह स्वर्ग अरु पृथिवी दोनों जिसकी आज्ञाबिषे धारण कियेहुये स्थित होतेहैं। अरु सूर्य्य अरु चन्द्रमा यह दोनों जिसकी आज्ञा बिषे, अर्द्धदग्ध काष्ठके भ्रमावनेरूप अलात(बनेठी) चक्रवत् निरन्तर (आकाशमार्गमें) भ्रमतेहैं। अरु जिसकी आज्ञा बिषे वर्त्तमान नदियां अरु समुद्र अपने देशको लंघिके वर्त्ततेनहीं। तैसे स्थावर अरु जंगमरूप यावत्हैं, सो जिसकी आज्ञासे अपने २ नियममें स्थितहैं। अरु तिसही प्रकार षट्ऋतु अरु दो अयन, अरु साठअब्द (संवत्सर, बर्ष, साल) जो हैं सो जिसकी आज्ञाको लंघिके वर्त्तते नहीं। तैसेही कर्त्ता कर्म्म अरु फल जोहैं सो जिसकी आज्ञासे अपने २ कालको लंघिके वर्त्तते नहीं ॥ सो यह महिमा है ॥ इसप्रकार जिसकी पृथिवी लोकबिषे महिमाहै, सो यह सर्वज्ञ है। सो यह आत्मा सर्वबुद्धि वृत्तिके प्रकाशक हृदयरूप ब्रह्मपुर बिषे विद्यमान आकाश बिषे स्थितहुयेवत् भासताहै अरु जिस करके आकाशवत् सर्व व्यापक आत्माको गमनागमन वा स्थिति अन्यप्रकारसे संभवे नहीं। एतदर्थ सो आत्मा मनकी वृत्तिसेही तिसहृदयाकाश नामवाले ब्रह्मलोक बिषे स्थितहुआ भासताहै। अरु "। मनोमयःप्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्नेहृदयंसन्निधाय"। मनोमयहुआ प्राण अरु शरीरका लेजानेवाला है, अरु अन्नबिषे बुद्धिको स्थापित करके स्थितभया है। मनरूप उपाधिवाला होनेसे मनोमयहुआ यह आत्मा प्राण अरु शरीरका लेजानेवाला है। अर्थात् स्थूल शरीरसे अन्य सूक्ष्म शरीरको लेजाता है। अरु नित्य नित्य बढ़नेवाले अरु घटनेवाले भोजनकिये अन्न के परिणाममय पिंडरूप अन्नबिषे हृदय कमलगत छिद्रमें अपनी उपाधिरूप बुद्धिको भलीप्रकार स्थापित करके स्थितभया है। अरु जिसकरके बुद्धिकी स्थितिही आत्माकी अन्नबिषे स्थिति है, एतदर्थ यहां, बुद्धिको स्थापित करके अन्नबिषे स्थित होताभया ऐसा कहाहै। "तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं

भिद्यतेहृदयग्रन्थिःछिद्यन्तेसर्व्वसंशयाः।क्षीयन्तेचास्यकर्म्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ८ । ४० ॥

यद्विभाति" ।तिसको धीर श्रेष्ठज्ञानसे सर्वओरसे पूर्ण जानते हैं (तिनको) आनन्दरूप अरु अमृतरूपहुआ विशेषकरके भासता है। तिस आत्मतत्त्वको जो धीर (बुद्धिमान्, विवेकी) पुरुष हैं, सो शास्त्र अरु आचार्यके उपदेशसे जन्य अरु शम दम ध्यान अरु वैराग्यकरके उद्भवको प्राप्तभये उत्तम ज्ञानसे सर्वओरसे पूर्ण जानतेहैं तिनपुरुषोंकोजो सर्वअनर्थ अरुदुःख अरु भ्रमसेरहित आनन्दरूप अरु अमृत अविनाशी रूपहुआ अपनेआप बिषे सदैव विशेषकरके भासताहै ॥ सोई आत्मा अक्षरब्रह्महै ७ । ३९ ॥

हे सौम्य, अब इस (जिज्ञासु) पुरुषको (आचार्यकरके) कथन किये, अर्थात् (उपदेशकिये) सम्यक् परमात्मज्ञानका (जो फल होताहै सो) यह कहतेहैं ॥ "। तस्मिन्दृष्टे परावरे"। ।तिसपर अरु अवरके देखनेसे। अर्थात् तिस उपदेशकिये परमात्माविषे, कारण रूपसे पर (श्रेष्ठ जे प्रकृति) अरु कार्य रूपसे अवर (अश्रेष्ठ जगत्) सो रज्जुमें सर्पवत् वाचारंभणमात्रहीहै सो सर्वज्ञ असंसारी परमात्माको, "यह साक्षात् मैंहूं" इसप्रकार (अभेदतासे) देखेहुये "। भिद्यते हृदयग्रन्थिः"। ।हृदयकी ग्रन्थि भेदनको पावताहै। इस पुरुषकी अविद्याकी वासनामय हृदयकी ग्रन्थि, अर्थात् हृदयशब्द करके उपलक्षित बुद्धिके आश्रित ग्रन्थि अपने नाशको प्राप्तहोतीहै ॥ [यहां यहशंका समाधानरूप एक विचारहै, कि यहां (श्री शंकराचार्य्यने) भाष्यविषे, अविद्याकी वासनाके समुदायरूप हृदयकी ग्रन्थिभेद (नाश)को प्राप्तहोतीहै, ऐसाकहाहै, तिस कहनेका क्याअर्थ (प्रयोजन)है, तिसको जाननेके अर्थवादी शंका करताहै शंका ॥ हे सिद्धान्तिन् बुद्धिकेविद्यमानहोते अविद्या आदिकका भेद(नाश) ज्ञानकाफलहै, अथवा तिसबुद्धिकी निवृत्तिकेहुये अविद्याआदिकका भेद (नाश) ज्ञानका फल है, यहदोविकल्पहैं, तिन

में प्रथमपक्ष बने नहीं क्योंकि उपादानके विद्यमानहुये कार्य के अत्यन्ताभावका असंभवहै ताते । अरु द्वितीयपक्षभी बनतानहीं, क्योंकि ज्ञानको अज्ञानसेही साक्षात् विरोधकी प्रसिद्धिहै ताते ॥ अथवा बुद्धिभी अनादिहै वासादिहै, इसका जो विचारकरिये तो भी प्रथमपक्ष बनेनहीं । क्योंकि (एतस्माज्जायतेप्राणोमनःसर्वेन्द्रियाणिच) इससे प्राणहोतेहैं, मनहोताहै, सर्वइन्द्रियांहोती हैं। इस श्रुतिसे विरोध होताहै ताते । अरु (सादिरूप) द्वितीयपक्ष भी बनतानहीं, क्योंकि प्रलयविषे ब्रह्मज्ञान विनाही बुद्धिकेनाश का संभवहै ताते। अरु बुद्धिके सादिपनेके होनेसे बुद्धिका उपादान जब साक्षात् ब्रह्महीहै, तब तिस उपादानरूप ब्रह्मके नाश हुयेबिना बुद्धिका अत्यन्त नाशहोनेका नहीं । अरु जो कदापि बुद्धिकी उपादान मायाहै, तब सो द्रष्टागत ज्ञानसे नाशहोनेको योग्यनहीं । क्योंकि लोकविख्यात जो मायावी पुरुष तिसविषे स्थित जोमाया तिसका द्रष्टागत ज्ञानसे नाशका अदर्शनहै ताते। किंवा बुद्धिका जो नाशहै, सो तिस बुद्धिका फलनहीं क्योंकिअपनेनाशको अफल रूपताहै ताते । अरु सो बुद्धिका नाश आत्माका भी फल नहीं, क्योंकि तिस आत्माको बुद्धिके संगका अभाव है ताते, तिस बुद्धिके नाशको अफलरूपता होनेसे। किंवा आत्माके अविद्या आदिकोंके अनाश्रयपनेका कथनहै ताते सो श्रुतिसेविरुद्धहै। क्योंकि आरंभविषे "अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः" अविद्या केभीतर वर्त्तमान। ऐसा श्रवणहोनेसे अरु समाप्तिविषे (अनीशया शोचति मुह्यमानः) अनीशासे मोहको पायाहुआ शोच (शोक) कोकरताहै। ऐसाश्रवण होने से ॥ अरु जो कहो कि, बुद्धिगतही अविद्या आदिकोंका आत्मा विषे अध्यास होता है, तो अध्यास होताहै, इस शब्दका कौन अर्थहै । आत्माविषे स्थापित करते हैं (सो अध्यासहै) वा भ्रान्तिसे देखते हैं (सो अध्यास है) । तिनमें प्रथमपक्ष (जो आत्माविषे स्थापनो सो) बनेनहीं, क्योंकि अन्यके धर्मकीअन्यकेविषे स्थिति (होने) का असंभवहैताते। अरुजो द्विती-

यपक्ष (भ्रान्तिसे) कहोगेतो भ्रांति से (जो देखतेहैं सो) किसकरके देखते हैं, आत्माकरकेवा बुद्धिकरके तहांप्रथमपक्षजो आत्माकरके (भ्रान्ति)सो बनेनहीं, क्योंकि आत्माको अविद्याकी आश्रयताका अनंगीकारहै ताते। अरु द्वितीय पक्ष जो बुद्धिकरके सोभी देखना बनेनहीं, क्योंकि बुद्धिको आत्माकेताईं विषयकरनेका असंभवहै, तिसकरके आत्मागत अविद्या आदिकोंके दर्शनका अभावहै ताते अरु भ्रान्तिको अपने आश्रयविषे स्थित यथार्थ अनुभवसे निवृत्त होनेकी प्रसिद्धि है ताते । अरु बुद्धिको अनुभवकी आश्रयताका प्रसंगहै ताते। एतदर्थ इस भाष्यका सम्यक्अर्थ हम देखतेनहीं॥ उ० ॥ हेवादी अब तेरी शंकाका समाधान कहतेहैं तिसकोश्रवण करो। चैतन्यके आधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है, सो चैतन्यको अविच्छिन्नकरके आपकरके अविच्छिन्न (विशिष्ट)चैतन्यको बुद्धिआदिकोंसे तादात्म्य रूपकरके वर्त्ततीहै, तिस अविद्याके ब्रह्मात्माके साक्षात्कार से निवृत्तहोने रूपके अंगीकार से, तिस अविद्याकी निवृत्तिकेहुये तिस अविद्यासे उत्पन्न जो हृदयकीग्रन्थियां तिनकाभेद (नाश) श्रुतिने कहाहै। अरु भाष्यकारका जो बुद्धिके आश्रयकरके हृदयकी ग्रन्थिका कथन है, सो बुद्धिको उक्त तादात्म्यरूप अहंकारको विशेषण होनेकरके अविद्या आदिकोंके व्यावहारिकपनेके अभिप्रायसेहै। अरु आत्माको ग्रन्थिकी अनाश्रयताका जो कथनहै, सो आत्माकी निर्विकारता के अभिप्रायसेहै] तैसे (कामायेऽस्य हृदिश्रिताः—इति श्रुत्यन्तरात्) जो काम इसके हृदयविषे आश्रित हैं। यह अन्य कठवल्लीकी श्रुतिके प्रमाणसे बुद्धिके आश्रित कथनकिये जे काम हैं, सो नाशको प्राप्त होतेहैं। अरु यह ग्रन्थि हृदयके आश्रितहै, आत्माके आश्रय नहीं, ऐसा जानाजाता है । अरु "छिद्यन्ते सर्व्वे संशयाः" सर्व संशय छेदन (नाश) को पावते हैं। इसके लौकिकजनों को मरणपर्यन्त गंगाके प्रवाहवत् प्रवृत्तभये जो अज्ञानको विषय करनेवाले सर्वसंशयहैं सो अपने नाशको प्राप्तहोते हैं। अरु "क्षी

हिरण्मयेपरेकोशेविरजंब्रह्मनिष्कलम्। तच्छुभ्रंज्योतिषांज्योतिस्तद्यदात्मविदोविदुः ९। ४१॥

यन्ते चास्य कर्माणि" इसके कर्म क्षयको पावते हैं। इस निःसंशयभये अविद्यारहित पुरुषके, जो ज्ञानोत्पत्तिसे पूर्व इस जन्म बिषेकिये। अरु फलके आरम्भसे रहित जन्मान्तर बिषेकिये। अरु इसजन्माबिषे ज्ञानोत्पत्तिके साथ होनेवाले,जे कर्म सो सर्व क्षयको पावतेहैं। परन्तु इस वर्त्तमान जन्मके आरम्भक जे प्रारब्ध कर्महैं सो क्षयको (नाशको) पावते नहीं,क्योंकि सो अपना फल देनेको प्रवृत्तहोचुके हैं ताते। इसप्रकार यह सम्यक् ज्ञानवान् पुरुष जन्म मरणादिरूप संसारके नाशहोनेसे मुक्तहोताहै। यह अभिप्राय है ८। ४०॥

हे सौम्य, कथनाकिये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेवाले अग्रिम तीनमन्त्र हैं, तिनकाभी व्याख्यान अब करते हैं। " हिरण्मयेपरे कोशे विरजंब्रह्मनिष्कलम्" । पर प्रकाशमय कोशबिषे रजरहित निष्कल ब्रह्महै। तलवारके कोश (म्यान) वत्, आत्मस्वरूप की प्राप्तिका स्थान होनेसे, अरु सर्वके भीतरहोनेसे पर जो बुद्धि के विज्ञानरूप प्रकाशमय कोशहै तिसबिषे अविद्या आदिक दोषरूप रज (मल) से रहित अरु सर्वसे बड़ा होनेसे अरु सर्वका एक आत्माहोनेसे ब्रह्मरूप, अरु सोलह कलारूप अवयवसे रहित होनेसे निष्कलरूप है। अरु जिसकरके, विरज अरु निष्कलरूप है, तिसहीकरके " तच्छुभ्रंज्योतिषांज्योतिस्तद्यदात्मविदोविदुः" सो शुभ्रहै (अरु) सर्व ज्योतियोंका ज्योतिहै, ऐसा जोहै तिसको आत्माके जाननेवाले जानतेहैं। सो शुभ्र (शुद्ध) है। अरु अग्निआदि सर्व ज्योति (प्रकाशवान्) का भी सो ज्योति (प्रकाशक) है। अर्थात् अग्निआदिकोंका भी जो ज्योतिपना है, सो अपने अन्तर्गत ब्रह्मात्म चैतन्यरूप ज्योतिका किया है। अरु जो अन्य प्रकाशोंसे अभासमान आत्मरूप ज्योति

नतत्रसूर्य्योभातिनचन्द्रतारकं नेमाविद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभातिसर्व्वं तस्यभासा सर्व्वमिदंविभाति १० । ४२ ॥

(प्रकाश) है, सोई परमज्योति है । ऐसा जो परमज्योति है तिसको, शब्दादि विषय अरु बुद्धिकी वृत्तिके साक्षीरूप आत्मा को जाननेवाले आत्माकार वृत्तिके अनुसारी आत्मवेत्ता विवेकी पुरुष जानते हैं । अरु जिसकरके सो परम ज्योति है, तिसहीसे वो आत्माकारवृत्ति के अनुसारी पुरुषही तिसको जानते हैं । अरु तिससे अन्य जे बाह्य अर्थाकारवृत्ति के अनुसारी पुरुष हैं सो जानते नहीं ९ । ४१ ॥

हे सौम्य, ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति कैसे है ॥उ० ॥ "न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः" ।तिसविषे सूर्य भासता नहीं (अरु) चन्द्रमा (अरु) तारागण भासते नहीं (अरु) यह बिजलियां भासती नहीं, यह अग्नि कहांसे भासेगा। तहां, अर्थात् तिस अपने आत्मारूप ब्रह्मविषे, सर्वका प्रकाशक सूर्य भी भासता नहीं, अर्थात् ब्रह्मको प्रकाशता नहीं । अरु सो सूर्य तिसहीके प्रकाशसे अन्य सर्व अनात्माके समूहको प्रकाशता है, परन्तु तिसका अपने आपसेही प्रकाशके करने विषे सामर्थ्य नहीं । यह अर्थ है । अरु तैसेही तिसविषे चन्द्रमा सहित तारागणके भासतानहीं अरु यह बिजलियां जो मेघाश्रितहुई प्रकाशती हैं सो भी भासती (प्रकाशती) नहीं, तब यह हमलोकों करके प्रकटकिया जो अग्नि सो कहांसे भासेगा किन्तु बहुत कहनेसे क्याहै "तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति" ।सर्व तिसही के भासमानहुये पीछे भासता है, अरु तिसहीके प्रकाशसे यह सर्व भासता है। परन्तु यह [यहां प्रकट अर्थविषे बाधितभये जगत्की अनुवृत्ति (बाधभये पीछे प्रतीति) देखाई इसकरके

ब्रह्मैवेदममृतंपुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वञ्चप्रसृतं ब्रह्मैवेदंविश्वमिदंवरिष्ठम् ११ । ४२ ॥

शरीरसहितको बन्ध भ्रान्तिकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्ति विरोधको प्राप्तहोती नहीं] जो जगत् भासता है सो सर्व तिसही परमेश्वर के स्वरूप से प्रकाशरूप होनेसे भासमान होने पीछे भासता है, जैसे अग्निके संयोगसे जल अरु अर्द्धदग्ध काष्ठआदिक जोहै, सो जलावनेवाले अग्निके पीछे जलावते हैं, आपसे नहीं, । तैसेही सर्व जगत् तिसही के प्रकाशमानहुये पीछे प्रकाशता है, आपसे नहीं । अरु तिसहीके प्रकाशसे यहसर्वसूर्य्यादि प्रकाशमानों करके युक्त जगत् भासताहै । [(तस्यभासा सर्वमिदं विभाति) । तिस के प्रकाश से सर्वयह भासता है । इसप्रकार इस ब्रह्मकी स्वयं प्रकाशरूपता विषे तात्पर्य कहते हैं] जिसकरके इसप्रकार सोई ब्रह्म भासताहै, अरु कार्यगत विविधप्रकारके प्रकाशसे विशेषकरके भासता (प्रकाशता),है एतदर्थ तिस ब्रह्मका स्वरूपसे प्रकाशरूपतापना जानाजाताहै । अरु जोवस्तु स्वरूपसे अविद्यमान है, सो अन्यको प्रकाशने विषे समर्थ होतीनहीं, क्योंकि स्वरूपसे अविद्यमान प्रकाशवाले घटादिकों को अन्यकी प्रकाशकता देखने में आवती नहीं ताते, अरु प्रकाशरूप सूर्य्यादिकों को अन्यकी प्रकाशकताको देखते हैं ताते १० । ४२ ॥

हे सौम्य, अब [समाप्ति के मंत्रका तात्पर्य कहतेहैं, इसमंत्र विषे ब्रह्मसे विविध प्रकारका करते नहीं, ऐसा तिसका विकार (कार्य) रूप जगत् जो यह स्थाणुहै, सो पुरुषहै, इस वाक्यवत् (सर्व्वंखल्विदंब्रह्म) । सर्व ब्रह्मही है। ऐसे बाधाविषे सामानाधिकरणके हुये अन्वय अरु व्यतिरेक करके बाधरूप अभावके निषेधसे ब्रह्ममात्र बोधन करते हैं] जो, सो ज्योतियों का ज्योति ब्रह्महै, सोई सत्यहै, अरु अन्य जो (वाचारंभणंविकारोनामधेयं)

अथतृतीयमुंडकेप्रथमखंडः ॥

द्वासुपर्णासयुजासखाया समानंवृक्षंपरिषस्वजाते।
तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति
१।४४॥

। वाणी से आरम्भ किया विकार नाममात्र है। तिसका कार्य है सो सर्व मिथ्याहै। इस विस्तारसे हेतुकरके प्रतिपादन किये अर्थ को वेदस्थानी इस मंत्रसे फेर समाप्त करते हैं। यह जो अविद्या युक्त दृष्टिवाले पुरुषको "। ब्रह्मैवेदममृतंपुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्मद-क्षिणतश्चोत्तरेण "। । अग्रभाग विषे भासमान अमृतरूप ब्रह्मही है, पीछे ब्रह्महै, दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, उत्तर ओरसे ब्रह्महै। अग्र भागविषे भासमान वस्तुहै,सो उक्त लक्षणवाला अमृतरूप ब्रह्म-हीहै, तैसे पीछे ब्रह्महै, तैसे दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, तैसे उत्तर (वाम) ओरसे ब्रह्महै। तैसेही "अधश्चोर्ध्वञ्चप्रसृतंब्रह्मैवेदं विश्व मिंदवरिष्ठम्"। नीचेपुनः ऊपर (ब्रह्महै) यह फैलाहुआ ब्रह्महीहै, यह जगत् अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्महीहै। नीचे ब्रह्महै अरु ऊंचे ब्रह्महै॥ अरु अन्यभी कार्यके आकारसेसर्वओरसे फैलाहुआ नामरूपवा-ला यहभासमान जो वस्तु सो ब्रह्महै॥ हे सौम्य अब बहुत कहने करके क्याहै, परन्तु यहसर्व विश्व (जगत्) अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्मही है। अरु ब्रह्मसे भिन्नप्रतीतिहै सो सर्व रज्जुविषे सर्पकी प्रतीति-वत् अविद्यामात्र है। अरु { ब्रह्मैवेकंपरमार्थसत्यमिति } । एक ब्रह्मही परमार्थसे सत्यहै। यह वेदकी आज्ञाहै ११।४३॥

इतिमुंडकउपनिषद्केद्वितीयमुंडककेद्वितीयखंडकी भाषाटीका समाप्ता॥

तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु॥

अथमुंडकउपनिषद्गततृतीयमुंडकभाषाटीकाप्रारभ्यते॥

हे सौम्य,जिस पराविद्या करकेसो अक्षर पुरुष नामक सत्य

प्राप्तहोताहै। अरु जिसकी प्राप्तिके होने से हृदयकी ग्रन्थि अरु संशय आदिक संसार के कारण का अत्यन्त नाश होताहै, ऐसी जो पराविद्या सो कही अरु अक्षरके दर्शनका उपाय जो योग्यहै, सो धनुषादिकों के ग्रहणकी कल्पना से कहा। अब तिस ज्ञानके सहकारी सत्यादि साधन, कहने को योग्य हैं, तिनके अर्थ उत्तर ग्रन्थका अब आरम्भ है। तहां यथार्थ आत्मतत्त्व को अति दुःख से जानने योग्य होने करके, जो पूर्वकिया भी तत्त्वका उपदेश (निर्धार)सो पुनः अन्यप्रकारसे कहते हैं। तहां सूत्ररूप जो प्रथम मंत्रहै,सो परमार्थरूप वस्तुके निश्चयार्थ प्रारम्भ कहतेहैं। "द्वासुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते"। दो पक्षी हैं साथही युक्तहैं (अरु) सखाहैं (अरु) समान हैं वृक्षको आश्रय करते भये। जीव अरु ईश्वर यह दोनों शोभायुक्त गमनवाले [जीवको अज्ञानी होने करके। अरु नियम में रखने के योग्य होने करके उचित होने से, अरु ईश्वर को सर्वज्ञ होने करके, अरु नियामकपने की शक्तिके योगसे, जीव अरु ईश्वर इन दोनों का नियम्य अरु नियामक भावकी प्राप्तिरूप गमन (उड़ना) कचित्है]होनेसे, अथवापक्षीके समानहोनेसे पक्षीहैं सोसर्वदासाथही युक्त (रहते)हैं। अरु जिसकरके तुल्यप्रख्याति कहावने की योग्यता) वाले हैं,अरु तुल्यही प्रकाशके कारण हैं,एतदर्थ परस्पर सखा हैं। अरु समान हैं,। इसप्रकार होने से दोनों के ज्ञानका स्थानक होनेसे, एक जो वृक्षवत् छेदन (नाश) रूपधर्म की तुल्यतासे शरीररूपी वृक्षहै, तिसके अर्थ एक वृक्ष के प्रति फलके उपभोगार्थ दोनों पक्षीवत् मिलाप को करते भये। अर्थात् यह शरीररूपी वृक्ष (ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखएषोऽश्वत्थसनातन) ऊंचे (ब्रह्मरूप) मूलवाला है, अरु (प्राणादिक) नीची शाखावालाहै। अरु अपनी स्थिति के नियम से रहित होने से अश्वत्थ (अस्थिर) है अरु अज्ञान पर्यन्त होने (रहने) वालाहै,अरु (क्षेत्रमित्यभिधीयते) क्षेत्र नामवालाहै,अरु सर्व प्राणधारियों के कर्म

समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानः। जुष्टंयदापश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ । ४५ ॥

फलका आश्रय है, तिस (शरीररूपवृक्ष) को पक्षियोंवत् अविद्या काम अरु कर्मकी वासना के आश्रय लिंग शरीररूपी उपाधिवालाआत्मा(जीव)अरुईश्वर यहदोनों मिलतेभये। अरु"तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति"। तिन दोनों के मध्य एक वृक्षके फलके स्वादको भोक्ताहै और दूसरा भोक्ता नहीं किंतु देखताहै। मिलेहुये तिन दोनोंके मध्य एक जो लिंग शरीररूपी उपाधि युक्त क्षेत्रज्ञ नामवालाजीवहै सो शरीररूपी वृक्षको आश्रय करताहुआ अपने पाप पुण्यमय कर्मजन्य सुखदुःखमय अनेक प्रकारकी वेदना (दुःख) के अनुभवरूप स्वाद फलकोअविवेकता करके भोक्ताहैं, अरु अन्य (दूसरा) जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाला सर्वज्ञ शुद्ध सत्वगुणप्रधान मायोपाधिवाला ईश्वरहै सो भोक्ता नहीं अरु जिसकरके यह ईश्वर नित्यसाक्षीपनेकी सत्तामात्रसे भोग्य अरु भोक्ता दोनोंका प्रेरक है, एतदर्थ सोतो अभोक्ताहुआ वृक्षसे पृथक् होके केवल उदासीन हुआ देखताही है। अरु तिसका दर्शनमात्रसेही राजावत् प्रेरकपना सिद्धहै (विक्रियावान् नहीं) १ । ४४ ॥

हे सौम्य, "। समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानः"। एकवृक्षविषे पुरुषनिमग्नहुआ अनीशासे मोहकोपावता हुआ शोकको पावताहै। तहां ऐसे होनेसे उक्तप्रकारके शरीररूप एकवृक्षविषे पुरुष जो भोक्ता जीवहै,सो अविद्या काम कर्म फल रागद्वेषादिरूपबडे भारकरके आक्रान्त (रोका) हुआ संसारसागर विषे तूंबेवत् निमग्न भयाहै अर्थात् दृढकरके देह (संघात) विषे आत्मभावको प्राप्तभयाहै। अरु यहही हस्तपादादि अवयव युक्त शरीररूप पिंडमें अमुक(देवदत्त) का पुत्रहौं, अरु इस(ब्रह्मदत्त)

का पौत्रहौं, दुर्बलहौं, मोटाहौं, गुणवान्हौं, निर्गुणहौं, सुखीहौं, दुःखीहौं, इसप्रकारका (अज्ञानलक्षणात्मक) ज्ञान इसको होता है, इससे अन्य (सम्यक्) ज्ञान इसको नहीं होता। इसप्रकार जन्मतामरता रहता है। अरु सम्बन्धी बान्धवादिकों से संयोग वियोगको पावताहै। इस हेतुसे मोहको [आवरणअरु विक्षेप यह दोनों अविद्याके कार्यहैं। तिनमें ईश्वरभावकी अप्राप्ति रूप जो अनीशा, सो आवरण है अरु जो शोकको करताहै सो विक्षेप है। अरु इनदोनोंका हेतु जो अनिर्वचनीय अज्ञान सो मोह है, तिसमोहकरके विशिष्ट भया। इत्यर्थः]पावताहुआ।अर्थात् अनेक प्रकारके अनर्थों से अविवेकी होता है तिसकरके चिन्ताको प्राप्त हुआ मैं किसीभी कार्यके करनेबिषे समर्थ नहीं हौं,मेरा पुत्रनष्ट भयाहै, मेरी भार्या (स्त्री) मृत्युवश भई है, अब मुझको जीवने साथकहो क्या प्रयोजन है कुछभी नहीं॥ इसप्रकार अत्यन्त दीनभावतारूप जो अनीशा (अशक्तता) है,तिसकरके संतापरूप शोकोंको पावताहै॥ सो इसप्रकार प्रेत तिर्यक् (पक्षी) अरु मनुष्यादिक योनियोंबिषे वेगवान्ताको प्राप्तभया जीव कदाचित् अनेक जन्मोंबिषे संचय कियेशुद्ध धर्मरूप कर्म तिस निमित्त से कोई एक परमदयालुआचार्य पुरुषने देखाया जो योग मार्ग तिस बिषे, अहिंसा, सत्य (यथार्थभाषण) ब्रह्मचर्य, वैराग्य अरु शम दमादि साधनतिनकरके युक्त,एकाग्र चित्तवालाहुआ, जिससमय अनेक योगीजनों करके अरु अनेक कर्मिष्ठ जनोंकरके "। जुष्टंयदा पश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमिति वीतशोकः"। । सेवन किये अन्य ईश्वरको अरु इसकी महिमाको जिसकाल बिषे देखता है तब वीतशोक होताहै। सेवनकिये, देहरूप (वृक्षकी) उपाधि के लक्षणसे अन्य (विलक्षण) क्षुधा, पिपासा,शोक,मोह, जरा, अरु मृत्यु, यह जो देह, प्राण, मनकी षट्ऊर्मी हैं तिनसे रहित असंसारी, ईश्वरको अरु यह मैं सर्व जगत्का आत्माहौं अरु सर्व को समानहौं (सूर्य्यवत्) अरुसम्पूर्ण भूतोंबिषे स्थितहौं अरुअन्य

यदापश्यपश्यतेरुक्मवर्णं कर्त्तारमीशंपुरुषंब्रह्मयोनिं। तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूय निरंजनःपरमं साम्यमुपैति ३।४६॥

अविद्याजन्य उपाधिसो जो परिच्छिन्न मिथ्या आत्मा सो मैं नहीं हौं। अरु जगत् जो है सो इसही मुझ परमेश्वरका रूपहै। इस प्रकारकी विभूतिरूप इसकी महिमाको ध्यावताहुआ देखता है तब वीतशोक होता है। अर्थात् सर्व शोकमय सागर से मुक्त (उत्तीर्ण) होताहै २। ४५॥

हे सौम्य, अन्य मन्त्र भी उक्त अर्थकोही सविस्तर कहते हैं, सोभी श्रवणकरो "यदा पश्यःपश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशंपुरुषं ब्रह्मयोनिम्"। जिसकालविषे विद्वान् (जिज्ञासुपुरुष) स्वयंज्योति स्वरूपवाले (सर्वजगत्के) कर्त्ता ब्रह्मयोनि ईश्वररूप पुरुष को (अपनाआप) देखताहै "तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमंसाम्यमुपैति"। तिससमय (सो देखनेवाला) विद्वान्(बन्धनरूप) पुण्यपाप (सर्वकर्म) को (समूल) दग्ध करके, वा (पुण्य पापमय कर्मरूप मलसे अत्यन्तशुद्ध होयके) निरंजन (अविद्या से रहित) हुआ परम (सर्वसे श्रेष्ठ) अद्वितीयरूप साम्य(एकता) भावको प्राप्त होता है ३। ४६॥

हे सौम्य, "प्राणो ह्येषयः सर्व्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान्भवते नातिवादी"। जोयह प्राण सर्वभूतों करके विविधप्रकारका भासता है विद्वान् जानता है अतिवादी नहीं होताहै। जोयह प्राणका प्राण परमेश्वर ब्रह्मासे लेके तृणादिपर्यन्त सर्वभूतोंविषे स्थित सर्वात्माहुआ विविधप्रकारका भासताहै। इसप्रकार सर्वभूतोंविषे स्थित सर्वात्मा परमेश्वरको जोवाक्यार्थ के ज्ञानविषे विद्वान् हुआ यह मैंहूं इसप्रकार साक्षात् आत्मभाव से जानताहै, सोपुरुष अन्यसर्वको उल्लंघनकरके अतिवादी (कहनेके स्वभाववाला) नहीं होताहै। अर्थात् जोपुरुष उक्तप्रकार भा

प्राणोह्येषयःसर्व्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवतेनातिवादी। आत्मक्रीडआत्मरतिःक्रियावानेषब्रह्मविदांवरिष्ठः ४। ४७॥

णस्य प्राणः) प्राणकेभी प्राणरूप आत्माको साक्षात् सोहमस्मि भावसे जानताहै सो अतिवादी नहींहोताहै। क्योंकि जब (आत्मैवेदं सर्वं) सर्वनाम रूपात्मक आत्माहीहै, तिससे पृथक् रंचकमात्र भी नहींहै, तबयह आत्मनिष्ठ विद्वान् किसको उल्लंघन(निषेध)करके कहे। अरु जिस पुरुषको उत्तम मध्यम अन्यवस्तु देखनेबिषे आवतीहै सो तिसको उल्लंघनकरके कहताहै। अरु यह आत्मानुभवी विद्वान्तो अपनेआपसे (नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति) अन्यको देखता नहीं,अन्यको सुनता नहीं, अन्य को जानता नहीं, एतदर्थ अतिवादी होतानहीं। अरु "आत्मक्रीड आत्मरतिःक्रियावानेषब्रह्मविदांवरिष्ठः।" यहआत्मक्रीड, आत्मरतिः, क्रियावान् ब्रह्मवेत्ताओंबिषे, श्रेष्ठहै। यह विद्वान् कि आत्मा बिषेहै क्रीडा(विचारात्मकरमण)जिसकी, अन्य पुत्रदारा वित्तादिकोंबिषे नहीं, सो कहिये, आत्मक्रीड, अरु आत्मा बिषेही है प्रीति जिसकी,अन्य देहादिकोंबिषे नहीं सो कहिये आत्मरतिः। अरु तैसेहीज्ञानध्यान अरु वैराग्यादिकहैं क्रियाजिसकी अन्यश्रौतस्मार्त्तादिक नहीं सोकहिये क्रियावान्, इसप्रकारहै। [यहां ज्ञानकर्मकेसमुच्चयके प्रतिपादक वेदान्तके एकदेशी के व्याख्यानको प्रकट करके निषेध करतेहैं] कोईएक (एकदेशीमतवाले)वादी तो (क्रियावान्) इस पदके अर्थको अग्निहोत्रादिरूप(बाह्य)कर्म अरु ब्रह्मविद्याके समुच्चयबिषे इच्छाकरते हैं। परन्तु सो उनका इच्छना (एषब्रह्मविदां वरिष्ठः) इस मुख्यअर्थवाले वचनसे विरोधको प्राप्त होताहै। अरु जिसकरके बाह्यक्रिया अरु आत्माबिषे प्रीति (निर्विकल्पता) यहदोनों समकाल (साथही) होनेको अशक्य हैं। किन्तु कोईएक अग्निहोत्रादि बाह्य क्रियासेसम्यक् प्रकारसे नि-

सत्येनलभ्यस्तपसाह्येषआत्मा सम्यक्ज्ञानेनब्रह्मचर्य्येणनित्यम् । अन्तःशरीरेज्योतिर्मयोहिशुभ्रोयंपश्यन्तियतयःक्षीणदोषाः ५ । ४८ ॥

वृत्तहुआ पुरुषही आत्मक्रीड़ होता है, क्योंकि (अनात्माऽश्रय) वाह्यक्रिया, अरु (आत्माश्रय) आत्म क्रीडा का परस्पर विरोध है ताते । जैसे तम अरु प्रकाशकी एकत्र स्थिति संभवे नहीं, तैसे (क्रियावान्) इस वाक्य से जो बाह्य क्रिया अरु ज्ञान (आत्मानुसंधान) का समुच्चय परस्परके विरोध कारणसे संभवे नहीं, ताते ज्ञान अरु कर्मका जो समुच्चय प्रतिपादनकरना सो व्यर्थ वाचालता (बकवाद)है । अरु (अन्यावाचो विमुञ्चथ) (अन्य वाणीको छोड़ो । अरु(संन्यासयोगात्) (संन्याससयोगसे) । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे । एतदर्थ जोज्ञान ध्यानादिक क्रियावाला अरु भेदरहित अर्थकी मर्यादावाला संन्यासीहै सोई यहां क्रियावान् है । जो ऐसे लक्षणवाला अतिवाद रहित आत्मक्रीड़, आत्मरति अरु योगादि क्रियावान् ब्रह्मनिष्ठहै सोयह सर्व ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य वरिष्ठ सर्वमें मुख्यहै ४ । ४७ ॥

हेसौम्य, अब संन्यासीको सम्यक् ज्ञानके [यहां सम्यक् ज्ञान शब्दकरके वस्तुको विषयकरनेवाले अनुभवरूप फलपर्यन्तवाक्यार्थके ज्ञानको कहते हैं । अरु जिसकरके अपरोक्ष अनुभवरूप जो ज्ञान तिस ज्ञानको अविद्याकी निवृत्तिरूप जो अपना कर्तृत्वरूप कार्य तिसके करनेविषे सहकारीकी अपेक्षाका असंभवहै, एतदर्थ परिपक्व विद्याके लाभार्थ परिपक्व ज्ञानका अरु सत्यादि साधनों का समुच्चय मानतेहीहैं । अरु इसकरके भास्करके मतकी सिद्धि होती नहीं । क्योंकि परिपक्व विद्या में सहकारीकी अपेक्षा विषे प्रमाणका अभाव है, अर्थात् परिपक्व विद्याका सहायक अरु विरोधी कोई नहीं, ताते अरु तिस विद्यासे कर्मके अलेपका श्रवण है, अर्थात् (नलिप्यतेकर्मणापापकेनेति) । इत्यादि प्रमाणसे

परिपक्क विद्यावाला विद्वान् कर्म्मोंसे लिपायमान होता नहीं, ताते। अरु कर्म रहित देवतादिकोंका मुक्तहोना सुनाजाता है ताते] सहकारी जो निवृत्ति प्रधान सत्यादिक साधन हैं, सो विधान करते हैं। "। सत्येनलभ्यस्तपसाह्येषआत्मा सम्यग्ज्ञानेनब्रह्मचर्येणनित्यम् "। । यह आत्मा नित्य सत्यसे प्राप्तहोने योग्यहै (नित्य) तपसे (प्राप्तहोने योग्यहै) अरु यथार्थ आत्मज्ञानके दर्शनसे (नित्यप्राप्तहोनेको योग्यहै) अरु (नित्य) ब्रह्मचर्य से (प्राप्तहोने योग्य है) । यह आत्मा नित्यही असत्य भाषण के त्यागरूप सत्य से प्राप्तहोने योग्य है। अरु नित्यही इन्द्रिय अरु मनकी एकाग्रतारूप तपसे प्राप्तहोने के योग्यहै। तथाच (मनसश्चेन्द्रियाणांएकाग्र्यंपरमंतप) ।मन अरु इंद्रियोंकी एकाग्रता परमतपहै।इसप्रकार स्मृतिविषेकहाहै ताते। उक्त तपका लक्षण युक्तहै । अरु जिस करके सो तप आत्माके दर्शन के अभिमुख (सम्मुख) होनेसे आत्मदर्शन विषे,अनुकूलहै, एतदर्थ यह तपका परम साधन है। अरु अन्यजे चान्द्रायणादि रूप तपहैं सो तिस (आत्मदर्शन) का परम साधननहीं। किंवा, यथार्थ आत्मज्ञानके दर्शन (विचार)से नित्य प्राप्तहोने योग्यहै अरु, नित्य मैथुन के अनाचरणरूप ब्रह्मचर्य से प्राप्तहोनेको योग्यहै। अरु जिस प्रकार यह साधन कहे, तैसेही (नयेषुजिह्ममनृतंनमायाचेति) । जिनविषे कपट झूठ अरु माया नहींहै । यह प्रश्न उपनिषद्के वाक्य करके कहाहै ॥ प्र० ॥ जो इन साधनों से प्राप्तहोता है यह आत्मा कौन अरु कहां है ॥ उ० ॥ "। अन्तःशरीरेज्योतिर्मयोहिशुभ्रोयं पश्यन्तियतयःक्षीणदोषाः "। । शरीर के भीतर प्रकाशमय शुद्धहै, जिसको दोषोंसे रहित संन्यासी पावते हैं। शरीरके भीतर हृदय कमल नामक एक मांसपिंडी है तद्गत् आकाशरूप अन्तःकरणविषे प्रकाशमय शुद्ध आत्मा है, जिस आत्माको काम क्रोधादिक चित्तके मलरूप दोषोंसे रहित सन्न्यासी देखते (पावते) हैं। अर्थात् सो आत्मा नित्य सत्या-

सत्यमेवजयतेनानृतंसत्येनपन्थाविततोदेवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयोह्याप्तकामा यत्रतत्सत्यस्यपरमंनिधा
नम् ६ । ४९ ॥

दिरूप साधनोंसे संन्यासियों करके प्राप्तहोता है । कदाचित् होने
वाले सत्यादिकोंसे प्राप्त होता नहीं । यहां यह सत्यरूप साधन
की स्तुत्यर्थ अर्थवाद है ५ । ४८ ॥

हे सौम्य, "। सत्यमेवजयतेनानृतंसत्येनपंथाविततो देव-
यानः"। सत्यही जयको पावता है अनृत नहीं, सत्यसे देवयान
नामक मार्ग प्रवृत्तभया है सत्यवान्ही जयको पावता है, अनृत
(झूठ) बोलनेवाला नहीं । जिसकरके पुरुषके अनाश्रितही
केवल सत्य अरु झूठके सम्भवहुये, जय वा पराजय सम्भवेनहीं
किन्तु असत्यवान् जो अनृत (झूठ) बोलनेवाला पराभवको
पावता है। सत्यवादी नहीं, यह लोकविषे प्रसिद्धहै । इस करके
सत्यका बलवान् साधनपना सिद्धभया । किंवा सत्यका अति-
शय साधनपना शास्त्रसे भी जानाजाता है ॥ प्र० ॥ किसप्रकार
जानताहै ॥ उ०॥यथार्थ बोलने की व्यवस्थारूप सत्यसे देवयान
नामवालामार्ग निरन्तरपनेसे प्रवृत्तभयाहै।अरु"येनाक्रमन्त्यृषयो
ह्याप्तकामायत्रतत्सत्यस्यपरमंनिधानम्"।जहांसत्यकापरमनिधा-
नहै तहां जिसप्रकारसे आप्तकाम ऋषिजनगमन करते हैं। जहां
सत्यरूप उत्तम साधनका साध्य सो परमार्थ तत्त्वरूप पुरुषार्थ
स्वरूपसे वर्त्तमान परमनिधानहै। ऐसा जो ब्रह्मलोक,तहांजिस
प्रकारके प्रणवादि उपासनावाले अरु कपट माया झूठ अहंकार
दंभ शठता (आदि आसुरीसंपदा) से रहित अरु सर्व ओर से
तृष्णा रहित ऋषिलोक गमनकरते हैं। सो सत्यसे निरन्तरपने
करके प्रवृत्त भयाहै । यह पूर्वके पदसे सम्बन्धहै ६ । ४९ ॥

हे सौम्य, सत्यका निधान जो पूर्व कहा तिसको पुनः विशे-
षणयुक्त कहते हैं ॥ प्र० ॥ सो सत्यका निधान क्या है, अरु सो

बृहच्चतद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्चतत्सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरेतदिहान्तिकेचपश्यत्स्विहैवानिहितं गुहायाम् ७। ५०॥

किस धर्मवाला है॥उ०॥ "बृहच्चतद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरंविभाति"। सो बडाहै अरु स्वयंप्रकाशहै अरु अचिंत्यरूप है, अरु सूक्ष्मसे भी अतिशय सूक्ष्म है अरु विविधप्रकार भासता है। सो प्रसंग बिषे प्राप्तभयाब्रह्म, सत्यादि साधन करके सर्व ओर से व्याप्त है ताते बडा है, अरु स्वयंप्रकाश (इंद्रियोंका अविषय) है अरु एतदर्थ ही, अचिन्त्यरूप है,। अरु सो आकाशादि सूक्ष्मों से भी अतिशय करके सूक्ष्म है। अरु जिस करके यह सर्व का कारणहै,तिसकरके ही इसको सर्वसे अधिक सूक्ष्मताहै। अरु ऐसाहुआ भी सूर्य्य अरु चन्द्रादिक आकारसे नानाप्रकार का भासता (प्रकाशता) है। किंवा "दूरात्सुदूरेतदिहान्तिकेच पश्यत्स्विहैवानिहितंगुहायां"। सो दूरसे दूरहै इसमें समीप वर्त्तता है, यहांही चेतनावाले गुहाबिषे स्थितहै। सो ब्रह्म अज्ञानी पुरुषों को अत्यन्त अगम्य होनेसे दूर से भी दूरदेश बिषे वर्त्तताहै, अरु विद्वानों का आत्माहोने से अरु सर्व्वान्तर होनेसे, अरु "आकाशमन्तरायं" वा "आकाशशरीरंब्रह्म" आकाशके भी भीतर है इस श्रुतिसे,इस देहमें समीप बिषे वर्त्तताहै। अरु यहां ही चेतनावाले पुरुषों के मध्य बुद्धिरूपी गुहाबिषे स्थित यह ब्रह्मदर्शनादि क्रियावाला होने करके योगी पुरुषों से लक्ष्यमें आवताहै, तथापि अविद्या से आवृत हुआ तहांही स्थित ब्रह्म अविद्वानों करके कदापि लक्ष्यमें आवता नहीं। इतिसिद्धम् ७।५०॥

हे सौम्य, फेर भी, असाधारण बिषेभी असाधारणरूप जो तिसके ज्ञानार्थ साधनकहते हैं "नचक्षुषागृह्यतेनापिवाचानान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणावा"। चक्षुकरकेनहीं ग्रहणकरते,अरुवाणीकरके भी नहीं (ग्रहणकरते) अरुअन्यदेवताओं सेभी नहीं (ग्रहणकरते)

नचक्षुषागृह्यतेनापिवाचानान्यैर्देवैस्तपसाकर्म्मणा वा । ज्ञानप्रसादेनविशुद्धसत्त्वस्ततस्तुतंपश्यतेनिष्कलं ध्यायमानः ८ । ५१ ॥

अरु तपसेभी (नहींग्रहणकरते) अरु कर्मसे भी (नहीं ग्रहणकरते)। जिसकरके यह ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा सो अरूप होने से किसी भी पुरुष करके चक्षुसे ग्रहण (विषय) कियाजाता नहीं, अरु अवाच्य होनेसे वाणीसे भी ग्रहण किया (कहा) ज्ञातानहीं, अरु अन्यजे देवता (इन्द्रियां) तिनकरके भी ग्रहण (विषय) किया जाता नहीं, अरु तप जो सर्व फलकी प्राप्तिका साधन तिस तप करके भी ग्रहण कियाजाता नहीं, क्योंकि तपादिकों के फलादिकों से पृथक् है । अथवा तैसे प्रसिद्ध महद्भाववाले अग्निहोत्रादि रूप वैदिक कर्म से भी ग्रहण कियाजाता नहीं ॥ प्र० ॥ जब उक्तप्रकार से नहीं ग्रहणहोता, तब तिसके ग्रहणका साधन कौन है ॥ उ० ॥ "ज्ञानप्रसादेनविशुद्धसत्त्वस्ततस्तुतं पश्यतेनिष्कलं ध्यायमानः"। ज्ञानके प्रसाद से शुद्धअन्तःकरणवाला ज्ञानने को योग्यहै ताते सो तिस निष्कलको देखता है । ज्ञान जो है सो सर्व प्राणधारियों को स्वभावसेही आत्माके बोधन करनेविषे समर्थ है, तथापि बाह्य विषयों विषे रागादि दोषों करके मलिन हुआ नित्य समीपस्थ आत्माको भी, मैलसे आवृत दर्पणवत्, अरु चंचलजलवत्, बोधन करतानहीं । सो ज्ञान, जब इन्द्रियअरु विषयों के सम्बन्धसे उत्पन्न भये जे रागादिक मैल तिन मैलको दूर करने से दर्पण अरु जलादिकोंवत् प्रसन्न (स्वच्छअरुशान्त) स्थितहोताहै, तब ज्ञानका [जिसकरके अर्थको जानिये ऐसी जो बुद्धि तिसको ज्ञान कहते हैं । तिसकी जो प्रसन्नता तिसको 'ज्ञान प्रसाद' कहते हैं । पुरुष ध्यान करता हुआ ज्ञानप्रसाद को पावताहै । अरु ज्ञानके प्रसाद से आत्माको देखता है । इस प्रकार अर्थका क्रम यहां जानना । क्योंकि संशय आदि मलसे रहित

एषोणुरात्माचेतसावेदितव्योयस्मिन् प्राणःपंचधा संविवेश । प्राणैश्चित्तंसर्वमोतंप्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येषआत्मा ९ । ५२ ॥

प्रमाके ज्ञानकोही साक्षात्कारका हेतु होने से ध्यान क्रियाको प्रमाज्ञानकी साधनता की असिद्धि है ताते] प्रसाद होताहै । तिस ज्ञानके प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष, जिस करके ब्रह्मके देखने को योग्यहै, एतदर्थ यह पुरुष,सर्व अवयवोंके भेद से रहित निष्कलरूप तिस ब्रह्मको सत्यादि साधनवान् अरु जितेन्द्रिय होयके एकाग्रमन से ध्यान करताहुआ आत्मा कोही देखाता (प्राप्तहोता) है ८ । ५१ ॥

हे सौम्य, " एषोणुरात्माचेतसावेदितव्योयस्मिन्प्राणःपंचधा संविवेश " । यह आत्मासूक्ष्म है,सो जिस बिषे प्राण पांचप्रकार से सम्यक् प्रवेश को पाया है तिस बिषे चित्त करके जानने को योग्यहै। ऽ यह आत्मा सूक्ष्महै, सो जिस शरीर बिषे प्राणवायु प्राण अपानादि पांचप्रकार के भेद करके सम्यक् प्रकार प्रवेशको पाया है, तिसही शरीर बिषे हृदय कमलरूप देशमें केवल विशुद्ध ज्ञानरूप चित्तकरके जानने को योग्यहै ॥ प्र० ॥ किसप्रकार चित्तसे आत्मा जानने को योग्य है ॥ उ० ॥ घृतसे दूधवत्, अरु अग्निसे काष्ठवत् [बौद्ध आदिकों को चित्तादि कों बिषे चेतना के भ्रमके दर्शनसे, चित्त जो है सो तिस अपने सम्बन्धी वस्तु बिषे चैतन्यका आविर्भाव करने में स्वभाव सेही योग्यहै । एतदर्थ चित्तबिषे परमात्माकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) के संभव से चित्तसे ब्रह्मको जानने की योग्यता कहते हैं, इसप्रकार की संभावनाके अर्थ यहां कहते हैं " प्राणैश्चित्तंसर्वमोतं प्रजानांयस्मिन्विशुद्धेविभवत्येषआत्मा " । प्राणअरु इन्द्रियां सहित सर्व प्रजाका अन्तःकरण व्याप्त है, तिस बिशुद्ध (चित्त) बिषे यह आत्मा विशेष करके प्रकाशता है । जिस चैतन्य करके प्राण अरु

यंयंलोकंमनसासंविभातिविशुद्धसत्त्वः कामयतेयां श्चकामान् । तंतंलोकंजायतेतांश्चकामांस्तस्मादात्म ज्ञंह्यर्चयेद्भूतिकामः १० । ५३ ॥

इतितृतीयमुंडकेप्रथमखंडः ॥

इन्द्रियों करके सहित, प्रजाका सर्व अन्तःकरण व्याप्त है । अरु जिस करके लोक विषे प्रजाका सर्व अन्तःकरण चेतनावाला प्रसिद्ध है तिसही करके तिस चेतनावान् (अनुसंधानात्मक) वृत्ति रूप चित्त से आत्मा जानने को योग्य है । पुनः यह चित्त कैसा है कि, जिसक्लेशादि मलरहित शुद्धहुये चित्तविषे यह कथनकिया आत्मा विशेष करके स्वस्वरूप सेही प्रकाशता है ९ । ५२ ॥

हे सौम्य, जो पुरुष ऐसे उक्त लक्षणवाले सर्वके आत्मा को अपना आप आत्मभाव से प्राप्तभया है तिस पुरुषको सर्व्वात्मा होनेसे सर्वकी प्राप्तिरूप फलहोता है, इसप्रकार कहते हैं । "यंयं लोकंमनसासंविभातिविशुद्धसत्त्वःकामयतेयांश्चकामान् " । निर्मल अन्तःकरण । जिस जिस लोकको मन करके चितवता है अरु जिन भोगों की इच्छा करताहै । ऽजो क्लेशादि मल रहित है, अरु आत्माविषे शुद्ध अन्तःकरणवालापुरुषहै सो, जिस जिस पुत्रादिरूप लोकको "मेह्यमन्यस्मैवाभवेदिति" मेरेअर्थ वा अन्य के अर्थ होवे । इसप्रकार मनसे चितवता है अरु जिन जिन भोगों की इच्छा करता है "तंतंलोकंजायतेतांश्चकामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत्भूतिकामः " । तिस तिस लोक को अरु तिन भोगों को पावता है, ताते विभूति की इच्छावाला आत्मज्ञानी का पूजन करे । ऽएतदर्थ विद्वानको सत्य संकल्पवाला होनेसे विभूति (धनादिक) की इच्छावाला जो पुरुष है सो आत्मज्ञान से शुद्धभये अन्तःकरणवाले आत्मज्ञानी को पादप्रक्षालनादि सेवा अरु न-

अथतृतीयमुंडकेद्वितीयखंडः ॥

सवेदैतत्परमंब्रह्मधामयत्रविश्वंनिहितं भातिशुभ्रम् । उपासतेपुरुषंयेह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः १ । ५४ ॥

नस्कारादि पूजन करे ॥ हे सौम्य इसप्रकार आत्मज्ञानी देवताओंवत् पूजने योग्यही है १० । ५३ ॥

इतिमुंडकउपनिषद्गततृतीयमुंडककीभाषाटीकासमाप्ता ॥
हरिःओं तत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

अथतृतीयमुंडकगतद्वितीयखंडभाषाटीका ॥

हे सौम्य, "सवेदैतत्परमंब्रह्मधामयत्रविश्वं निहितंभातिशुभ्रम्" सो परमधाम को जानताहै जिसबिषे जगत् स्थितहै, अरु जो ब्रह्मरूप धाम शुद्धहुआ भासता है । जिस करके सो यह, इस उपलक्षणवाले ब्रह्मरूप सर्व कामना के आश्रय परमधाम को जानताहै । अरु जिस ब्रह्मरूप धामबिषे सर्व जगत् स्थितहै । अरु जो ब्रह्मरूप धाम आप शुद्धहुआ अपने प्रकाश से आपही भासता है । अरु " उपासतेपुरुषंयेह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्तिधीराः " । पुरुष को भी बुद्धिमान् कामना से रहित हुये उपासते हैं सो यह प्रख्यात वीर्य को उल्लंघ जाते हैं । एतदर्थ ऐसे उस आत्मज्ञानी पुरुष को भी जो धीर (बुद्धिमान्) पुरुष वैभव विभूतिकी कामना से रहित केवल मोक्षकी कामनावालेहुये, जैसे परमात्मरूप देवको, तैसे उपासते हैं सो पुरुष इस प्रसिद्ध शरीर के उपादान कारण बीजरूप वीर्यको उल्लंघके जातेहैं, बारंबार योनिको धारतेनहीं "नपुनःक्रतिंकरोतीति" । पुनः किसी बिषे प्रीतिको करता नहीं । इस श्रुतिके प्रमाणसे । एतदर्थ तिस सम्यक् आत्मज्ञानीको सर्व प्रकारसे उपासना योग्यहै १ । ५४ ॥

कामान्यःकामयते मन्यमानःसकामभिर्जायतेतत्र तत्र । पर्य्याप्तकामस्यकृतात्मनस्तुइहैवसर्व्वेप्रविलीयन्तिकामाः २ । ५५ ॥

हे सौम्य, अब मोक्षकी इच्छावाले को सर्वथा कामका त्यागही मुख्य साधनहै, इसबातको वेद भगवान् देखावते हैं "कामान्यःकामयतेमन्यमानःसकामभिर्जायतेतत्रतत्र" जो भोगोंको चितवताहुआ इच्छाकरताहैसो कामनाकेसाथ तहांतहां जन्मता है। जो पुरुष दृष्ट अरु अदृष्ट विषयरूप भोगोंकोगुण बुद्धिसे चितवता हुआ इच्छा करता है, सो तिन धर्म अधर्म बिषे प्रवृत्ति के कारण जे विषयोंकी इच्छारूप कामना तिसके साथ तहां तहां जन्मता है । अर्थात् जिन जिन विषयों बिषे,विषयों की प्राप्तिकी निमित्त जो कामना सो कर्मोंबिषे पुरुषको प्रेरणा करे है, उनउन विषयों बिषे उन कामना से वेष्टित हुएवत् जन्मताहै । अरु "पर्य्याप्तकामस्यकृतात्मनस्तु इहैवसर्व्वेप्रविलीयन्तिकामाः" पूर्ण कामकृतात्माके तो इसही बिषे सर्वकाम विनाशको पावते हैं। जो पुरुष परमार्थ तत्त्वके ज्ञानसे आत्मकाम होनेकरके सर्वओर से प्राप्तभये हैं काम (भोग) जिसको सो पूर्णकाम है अरु निकृष्ट रूप अविद्या के स्वरूप से निकालके, विद्याकरके अपने श्रेष्ठरूप से कियाहै आत्मा जिसका,ऐसा कृतात्मा है । तिस पूर्णकाम कृतात्मा पुरुष के तो इसही विद्यमान् शरीर बिषे सर्व धर्म अधर्म में प्रवृत्ति के हेतुरूप काम [विषयों बिषे यथार्थ दोषोंको देखने से पुरुष पूर्णकाम होताहै (अर्थात् उसकी सर्व कामना समाप्त होतीहैं) अरुसो विरुद्धलक्षणसे आप्तकामभयाहै, अरुतिस आत्मा की जिज्ञासासेहीचित्तको वशकरनेवाले पुरुषके,विषयोंसे इच्छाके भेदरूप काम निवृत्तहोते हैं] विनाशको पावतेहैं । तिस कामके जन्मके कारणके विनाशसे वो काम उपजतेनहीं ।अर्थात् [उत्पन्न भये कामोंका ज्ञानबिना भी क्षयहोना संभवहै, ताते यहां स्वहेतु

नायमात्माप्रवचनेनलभ्यो नमेधयानबहुनाश्रुतेन। यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैषआत्माव‍ृणुतेतनूंस्वाम्॥ ३।५६॥

के विनाशसे काम पुनः उपजते नहीं] इत्यभिप्रायः २।५५॥

हेसौम्य, जब इसप्रकार परमात्मा के लाभसे सर्व का लाभ होताहै, तब तिसके लाभार्थ शास्त्र अध्ययनादि उपाय विशेषकरकेकरनेको योग्यहै। इसप्रकार प्राप्तहुए यहकहतेहैं। "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नमेधया नबहुनाश्रुतेन"। यह आत्मा बहुतपढ़नेसे प्राप्तहोने योग्यनहीं, अरु बुद्धिसे पावनेयोग्य नहीं, अरुबहुतसे सुननेसेभी पावने योग्यनहीं। परम पुरुषार्थ रूप जिसका लाभहै, इसप्रकार व्याख्यान किया जोयह आत्मा, सो वेद अरु शास्त्रके बहुतसे अध्ययनरूप प्रबचनसे प्राप्तहोनेयोग्य नहीं अरु तैसेही वेदादिकोंके अर्थकी धारणा शक्तिरूप मेधा (बुद्धि) सेभी पावनेयोग्य नहीं, अरु तैसेही उपनिषदोंके बिचारसे इतर बहुत से शास्त्रोंके श्रवणकरनेसे भी पावनेयोग्य नहीं॥ प्र०॥ तब वो आत्मा किनसाधनोंसे पावनेयोग्यहै॥ उ०॥ "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषआत्मा वृणुते तनूंस्वाम्"। यह जिसकोही पावनेकी इच्छा करताहै, तिससे यह पावनेको योग्यहै तिसको यहआत्मा अपनी तनूको प्रकाशताहै। यह विद्वान् जिसआत्माकोही पावनेकी इच्छाकरताहै तिसवर्णन (भजन)से [मैं परमात्माहूं,। इसप्रकार अभेदके अनुसंधानको वर्णनकहते हैं तिस वर्णनसे यह आत्मा पावनेको योग्य होताहै, अरु वहिर्मुख पुरुषोंकरके तो सैकड़ोंबार श्रवणादिकके कियेहुएभी यह आत्मा प्राप्तहोता नहीं। एतदर्थ मैं परमात्माहौं इस चिन्तनरूप परमात्माके भजनको पूर्वकरकेही श्रवणादिक सम्पादन करनेको योग्यहै, यहभावहै॥ अथवा जिस परमात्माको पावनेकी इच्छा करताहै सोतिस मुमुक्षुरूपसे स्थित भये परमात्माकरके अभेदके अनुसंधानरूप प्रार्थनाकरके मुमुक्षु

नायमात्माबलहीनेनलभ्योनचप्रमादात्तपसोवाप्यलिंगात् । एतैरुपायैर्यततेयस्तुविद्वांस्तस्यैषआत्माविशतेब्रह्मधाम ४ । ५७ ॥

रूपसे स्थितभया परमात्माही प्राप्तहोनेको योग्य है । इसप्रकार अभेदके अनुसंधानसेही आत्मा प्राप्तहोनेयोग्यहै, कर्मसे कदापि नहीं । इत्यर्थः]ऽ यहपरमात्मा प्राप्तहोने योग्यहै अन्य साधनोंसे नहीं, क्योंकि आत्मा नित्य प्राप्त स्वभाववाला है ताते ॥ प्र० ॥ विद्वान्को यह आत्माका लाभ किसप्रकारका है ॥ उ० ॥ तिस विद्वान्का यह आत्मा अविद्यासे आवृत अपनी उत्कृष्ट स्वात्म तत्त्वस्वरूप तनुको प्रकाशताहै, अर्थात् विद्याके होनेसे घटादिकोंके प्रकाशवत् आविर्भावको पावता है, एतदर्थ अन्यके त्याग से आत्माके लाभकी प्रार्थनाही आत्म प्राप्तिका साधनहै ॥ इति सिद्धम् ॥ ३ । ५६ ॥

हेसौम्य, जिसकरके यह लिंगयुक्त संन्यास सहित बल अप्रमाद अरु तपरूप साधन आत्माकीप्रार्थनाके सहकारीहै । "नायमात्माबलहीनेन लभ्यो नचप्रमादात्तपसोवाप्य लिंगात् "। यह आत्मा बलहीन करके पावनेको योग्यनहीं, अरु प्रमादसे पावनेको योग्यनहीं, अरु लिंगसे रहित तपसे वा पावनेके योग्यनहीं। एतदर्थ यहआत्मा आत्मनिष्ठासे उत्पन्नभये बलसेरहित पुरुषों करके प्राप्तहोनेको योग्यनहीं, अरु पुत्र पशुआदिक विषयोंकी आशक्तिरूप निमित्त से हुए कर्त्तव्यके विस्मरणरूप प्रमाद से प्राप्त होनेको योग्यनहीं। अरु तैसेही संन्यासरूप लिंगसे [॥प्र०॥ इन्द्र जनक गार्गी आदिकोंकोभी आत्मलाभ हुआ ऐसा श्रवण है तब संन्यासरूप लिंगसे रहित ज्ञानरूप तपसेभी आत्मा प्राप्तहोनेको योग्यनहीं, ऐसा कैसेकहतेहौ ॥उ०॥ यद्यपि इन्द्र जनकादिकोंको वाह्य संन्यासका अभाव होनेसेभी आत्मलाभ भया है यह तेरा कथन सत्यहै, तथापि संन्यासनाम सर्वके सम्यक् त्यागका है ।

संप्राप्यैनमृषयोज्ञानतृप्ताः कृतात्मानोवीतरागाःप्रशान्ताः। तेसर्व्वगंसर्व्वतःप्राप्यधीरा युक्तात्मानःसर्व्वमेवाविशन्ति ५। ५८॥

अरु तिनजनकादिकोंको ममतास्पद अरु अहंतास्पदबिषे सम्यक् वैराग्य होनेसे अन्तरका संन्यास विद्यमानहीथा। अरु बाह्य का लिंग (चिह्न,संन्यास) सो श्रुतिकरके कहनेको इच्छित नहीं। अर्थात् बाह्य चिह्न (संन्यास) का श्रुतिको आग्रह नहीं, क्योंकि { नलिंगधर्म्मकारणम् } ।लिंग (बाह्य चिह्न) जो है सो धर्म्मका कारण नहीं। यह स्मृतिका प्रमाणहै ताते] रहित ज्ञानरूप तपसे भी प्राप्तहोनेको योग्य नहीं। अरु "एतैरुपायै र्यततेयस्तुविद्वांस्तस्यैषआत्मा विशते ब्रह्मधाम"।जो विद्वान् उक्त उपायोंसे प्रयत्न करताहै तिसका यहआत्मा ब्रह्मधामके अर्थ सम्यक् प्रवेशकरता है। जोविद्वान् तत्परहुआ इन, बल, अप्रमाद, त्याग, अरु ज्ञान रूप उपायों से भलीप्रकार यत्नकरता है तिस विद्वान्का यह (बुद्धिविशिष्ट) आत्मा ब्रह्मरूप धाम बिषे (कि जहांका गया पुनः नहीं आवता) सम्यक् प्रवेश करताहै (समुद्रमें नदीवत्) इत्यभिप्रायः ४। ५७॥

हेसौम्य, प्र०॥ विद्वान् ब्रह्मकेबिषे किसप्रकार प्रवेशको करतेहैं॥ उ०॥ "संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः"। ऋषिलोग इसको जानके ज्ञानसे तृप्तहुये सिद्धभये आत्मावाले हुये रागादि दोषोंसेरहित जितेन्द्रिय भयेहैं। जो परमात्माके दर्शनवाले ऋषिलोग इस (अपनेआप) आत्माकोजानके तिसही ज्ञानसे तृप्तहुये, कुछ शरीरकी वृद्धि क्षयके कारण जे बाह्यकी तृप्तिके साधन तिनसे नहीं,अरु परमात्माके स्वरूपसेही सिद्धभये आत्मावालेहुये रागद्वेषादि दोषोंसेरहित जितेन्द्रिय हुयेहैं। अरु "तेसर्व्वगं सर्व्वतःप्राप्यधीरा युक्तात्मानःसर्व्वमेवाविशन्ति"। सो अत्यन्त विवेकी नित्य चित्तकी एकाग्रताके स्व-

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्व्वे ६ । ५९ ॥

भाववाले पुरुष सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको सर्व्वत्र पायके सर्व्व के अर्थ प्रवेशको करते हैं। सो अत्यन्त विवेक शील योग करके नित्य विक्षेपसे रहित चित्तकी एकाग्रताके स्वभाववाले आत्मवेत्ता पुरुष आकाशवत् सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको कुछ उपाधि से परिच्छिन्न एकदेशसे नहीं पावते, किन्तु, सर्वत्र पायके शरीर के पतनहुयेभी सर्व्वकेविषे प्रवेशकरतेहैं । अर्थात् फूटे घटके आकाशवत् उपाधिकृत परिच्छेदको छोड़ते हैं । इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप धामकेताईं प्रवेशकरते हैं ॥ इति भावार्थः ५ । ५८ ॥

हे सौम्य, " वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाःसंन्यासयोगाद्यतयःशुद्धसत्त्वाः " । वेदान्तसे जनित विज्ञानके अर्थके निश्चयवाले हुये संन्यास योगसे यतिहैं अरु शुद्ध चित्तवालेहैं। जोपुरुष वेदान्तशास्त्रसे उत्पन्नभये विज्ञानके, परमात्माके जाननेयोग्य, अर्थ को निश्चय करनेवालेहैं, अरु सर्व कर्मके परित्याग पूर्वक केवल ब्रह्मनिष्ठतारूप संन्यास योगकरके प्रयत्न करनेके स्वभाववाले यतीहैं, अरु संन्यास योगकरके शुद्ध चित्तवालेहैं । "ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्ति सर्व्वे " । सोसर्व परान्तकाल बिषे परामृतहुये सर्वओरसे मुक्त होतेहैं । सोसर्व परान्तकाल बिषे अर्थात् [संसारी पुरुषोंका जो मरणकालहै सो परान्त कालहै । अरु तिनकी अपेक्षासे मुमुक्षुओंका संसारके अन्तबिषे जो चरम देहके परित्यागका कालहै (अर्थात् मुमुक्षुका इस दृश्य शरीर के त्यागके समकालही संसारका अन्त है, क्योंकि पुनः उस को संसार नहीं, तातें उक्तप्रकार मुमुक्षुका जो चरम देहके त्यागका काल है) सो परान्तकाल है, तिस परान्तकाल बिषे] ब्रह्मरूप लोकबिषे अर्थात् [(यहजो ब्रह्मलोकको बहुवचन

गताःकलाःपंचदशप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु । कर्म्माणिविज्ञानमयश्चआत्मा परेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति ७ । ६० ॥

है सो) यहां साधनों को बहुतहोनेसे, जो ब्रह्मरूप लोक एकहै तोभी अनेकवत् देखते हैं अरु पावते हैं, एतदर्थ बहुवचन है । परन्तु (ब्रह्मलोकेषु) इसशब्दका अर्थ ब्रह्मविषेहै] जीवतेहुयेही परम अरु मरण धर्मरहितब्रह्म है आत्मा जिनका ऐसे, परामृत हुये सर्वओरसे दीपकके निर्वाणवत् अर्थात् [दीपकको बत्ती के किये अवच्छेदके ध्वंस होनेसे जिसप्रकार तेजके सामान्यभाव की प्राप्तिहोतीहै, तैसेही इनआत्मज्ञानी पुरुषोंको उपाधिकेकिये अवच्छेदके ध्वंस होनेसे चैतन्यके सामान्यभावकी प्राप्तिहोतीहै] अरु (घटके ध्वंसहुये) घटाकाशवत् मुक्तहोताहै । अरु गमनकरने योग्य अन्यदेश (लोक वा देह) को अपेक्षा करते नहीं, क्योंकि (पदंयथानदृश्येत तथाज्ञानविदांगतिः) (अनध्यगाअध्वसु पारयिष्णव इति) जैसे आकाशविषे पक्षियोंका, अरु जल विषे जलचरोंका पाद (खोज) नहीं पायाजाताहै । तैसेही ज्ञानीपुरुषों की गतिहै । अरु संसारके मार्गोंके पार (समाप्ति) होनेकी इच्छा वाले पुरुष नहीं गमनकरने वाले होतेहैं । ऐसा श्रुतिअरु स्मृति का प्रमाण है ताते [यहां तर्कसे भी मोक्ष कहनेको योग्यहै, ऐसा कहते हैं] जिससे देशकरके परिच्छिन्न जो गतिहै सो संसारको विषयकरने वालीही है, क्योंकि परिच्छिन्न साधनकरके साध्यहै ताते । अरु ब्रह्मतो सर्वरूपहोनेसे देशके परिच्छेदसे गमन करने योग्य नहीं है । जब देशसे परिच्छिन्न ब्रह्महोय तबमूर्त्त द्रव्यवत् आदि अन्तवाला अन्यके आश्रित सावयव अनित्य अरु क्रिया साध्य होवेगा । परन्तु ब्रह्म इसप्रकारका होनेयोग्य नहीं, एतदर्थ तिसकी प्राप्तिभी देशकरके परिच्छिन्न होनेयोग्य नहीं ६ । ५९ ॥

हे सौम्य, ब्रह्मवेत्ता पुरुष जोहैं सो अविद्या आदिक संसारके

बन्धनकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा करते हैं, कार्यरूप मोक्षकी नहीं करते । किंवा " गताःकलाःपंचदशप्रतिष्ठा देवाश्चसर्वे प्रतिदेवतासु " । पंचदश कलालयको प्राप्तहोतीहैं अरु सर्वदेवता प्रतिदेवताको प्राप्तहोते हैं । मोक्षकाल बिषे जो देह की आरंभ करनेवाली प्राणादि पंद्रह संख्यावाली कला प्रश्नउपनिषद्रूप इस उपनिषद्के ब्राह्मणभागके छठें प्रश्नबिषे कहीहैं सो अपने२ कारणबिषे लयको प्राप्तहोती हैं । अरु देहके आश्रित चक्षुआदिक करणोंबिषे स्थित जे इन्द्रियाधिष्ठाता देवता सो सूर्य्यादिक प्रति देवताबिषे प्राप्तहोते हैं । अरु " कर्म्माणिविज्ञानमयश्च आत्मापरेऽव्ययेसर्वएकीभवंति" । कर्म अरु विज्ञान मय (बुद्धिविशिष्ट)आत्मा पर अव्ययबिषे सर्व एकताको पावते हैं । जो मुमुक्षु के किये कर्म हैं, तिनमें से फलके आरंभ करनेवाले (प्रारब्धरूप) कर्मोंको उपभोगसेही क्षीण होनाहै, ताते तिनको छोड़के यहां अवशेषरहे जे फलके आरंभसे रहित (संचित कर्म हैं तिनका ग्रहण है । अरु आत्माजो है सो अविद्यासे रचित बुद्धि आदिक उपाधिको अपनास्वरूपमानके जलादिकों बिषे सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् तिसही विज्ञानमय स्वरूपके साथ इस देहके भेद बिषे प्रवेशको पायाहै । क्योंकि कर्मका उस विज्ञानमय बुद्धिके ताईं फलदेनेके अर्थहोना है ताते, एतदर्थ आत्मा विज्ञानमय कहा जाताहै) कर्म अरु विज्ञानमय आत्मा, सो यह सर्व उपाधिकी निवृत्तिसे, सत्य,पर,अव्यय,अक्षर आकाश तुल्य अजन्मा, अजर, अमर, अकार्य,अकारण, अन्तररहित, बाहररहित, अद्वैत, शिव अरु शान्त ब्रह्मबिषे जलादिक आधारके दूरहोने से जलादिकोंबिषे सूर्य्यादिकोंके प्रतिबिम्बवत्,अरुघटादिकोंके अभावभये घटादिकों के सम्बन्धी आकाशवत्एकताको पावताहै ७ । ६० ॥

हे सौम्य, " यथानद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपे विहाय " । जैसे (गंगाआदिक) नदियां बहतीहुई (समुद्रको पायके) नामरूपको त्यागके समुद्र बिषे अस्तता (अभेदता)को

यथानद्यःस्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपे विहाय।तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम् ८ । ६१ ॥

सयोहवैतत्परमंब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति नास्याब्रह्मवित्कुलेभवति । तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतोभवति ९ । ६२ ॥

प्राप्त होती हैं “। तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम्”। तैसे विद्वान् (आत्मज्ञानी अविद्याकृत) नामअरु रूपसे (भली प्रकार) मुक्त हुआ (पूर्व कहेप्रकार अक्षररूप) पर से पर दिव्य (उक्त लक्षणवाले) पुरुष को पावता है॥ इतिवेदानुशासनम् ८ । ६१ ॥

हेसौम्य ॥ शंका ॥ ननु, मोक्षबिषे अनेकविघ्न प्रसिद्धहैं, एतदर्थ ब्रह्मवेत्ताभी पंचक्लेशों के मध्य किसीएक क्लेशकरके, अरु वाद बिषे अन्यवादी करकेकिये विघ्नसे मरणको पायाहुआ अन्य गति को पावेगा ब्रह्मकोनहीं ॥ स०॥ यहकहना तेरा बनेनहीं, क्योंकि विद्यासेही सर्व प्रतिबन्धोंका अभाव करतेहैं ताते अरु मोक्ष जोहै सो केवल अविद्यारूप प्रतिबन्धवाला है अन्य प्रतिबन्धवाला है नहीं, क्योंकि मोक्ष नित्यहै ताते अरु आत्मरूपहै ताते। एतदर्थ “। सयोहवैतत्परमंब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति”। ।सोजोकोई एकलोकबिषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको जानता है सो ब्रह्मही होता है। सो जो कोई एक लोक बिषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको साक्षात् मैंहीं हों, इसप्रकार अभेदतासे जानता है, सो अन्य गति को पावता नहीं, क्योंकि देवताओं की भी इसकी ब्रह्मप्राप्तिके बिषे विघ्नकरनेकी सामर्थ्य नहीं, क्योंकि यह ज्ञानी देवताआदि सर्व का आत्मा होताहै (ज्ञानिआत्मैवमेमतम्) एतदर्थ ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्महीं होताहै। अरु “।नास्या ब्रह्मवित्कुलेभवति”। ।इसके कुलबिषे अब्रह्मवित् होतानहीं। । इसविद्वान्के कुल(शिष्य

तदेतदृचाऽभ्युक्तंक्रियावन्तःश्रोत्रियाब्रह्मनिष्ठाःस्व यंजुह्वतएकर्षिंश्रद्धयन्तस्तेषामेवैतांब्रह्मविद्यांवदेत शि रोव्रतंविधिवद्यैस्तुचीर्णम् १० । ६३ ॥

परम्परा) बिषे अब्रह्मवित् (ब्रह्मका नजाननेवाला) होता नहीं। अरु "तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतोभव ति" शोकको तरताहै, पापको तरता है, गुहारूप ग्रन्थिसे मुक्त हुआ अमृत होताहै। किंवा यहआत्मवेत्ता जीवताहुआही अनेक इष्टवस्तुके वियोगरूप निमित्तसेभयेजेमनके संतापरूप शोकतिन- से तरता (छूठता) है, अरु धर्म अधर्मनामक पापसेभी तरता है, अरु गुहा (बुद्धि)रूप ग्रन्थिसोंभी मुक्तहुआ अमृतरूप होता है ॥ यह (भिद्यते हृदयग्रन्थिः) इत्यादि इसही बिषे पूर्व प्रतिपादन कियाहै ॥ इति सिद्धम् ९ । ६२ ॥

हेसौम्य, अब ब्रह्मविद्याके दानकी विधिके दखावनेसे, इस उपनिषद्की समाप्ति करते हैं "तदेतदृचाऽभ्युक्तंक्रियावन्तः श्रो त्रियाब्रह्मनिष्ठाः" सो यह मन्त्रने कहा है, क्रियावाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठहैं। सोयह विद्याके दानका विधान इस मन्त्रने कहा है, जो शास्त्रउक्त कर्मके अनुष्ठानरूप क्रियावाले अरुश्रोत्रिय, अर्था- त् अपर ब्रह्मकी विद्याबिषे कुशलहैं, अरु ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् परब्रह्म की जिज्ञासावाले हैं। अरु "स्वयंजुह्वतिएकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवै तां ब्रह्मविद्यां वदेत" श्रद्धावानहुये आप एकर्षिनामवाले अग्नि केअर्थ हवनकरतेहैं, तिनसंस्कारयुक्त चित्तवाले अधिकारीरूप पु- रुषके अर्थही इस ब्रह्मविद्याको कहना। अरु "शिरोव्रतंविधिवद्यै स्तुचीर्णम्" शिरोव्रत जिन्होंनेविधिकेअनुसार कियाहै। मस्तक बिषे अग्निके धारणकरनेरूप अथर्वणवेदबिषे प्रसिद्ध जोशिरोव्रत है सो जिन्होंने शास्त्रउक्त विधिके अनुसार कियाहै तिनकेअर्थही इस ब्रह्मविद्याको कहना १० । ६३ ॥

हे सौम्य "तदेतत्सत्यमृषिरंगिरापुरोवाच नैतदचीर्णव्रतो

तदेतत्सत्यमृषिरंगिरापुरोवाचनैतदचीर्णव्रतोऽधी ते। नमःपरमऋषिभ्यो नमःपरमऋषिभ्यः ११। ६४॥

इतितृतीयमुण्डकेद्वितीयखण्डः ॥

ऽधीते "। तिस इस सत्यको पूर्व अंगिरा मुनीश्वर कहताभया, इस व्रतके आचरणसे अध्ययन करताभी नहीं। तिस इसअक्षर नामवाले पुरुषरूप सत्यको पूर्व अंगिरा नामक मुनीश्वर, विधिवत् समीप प्राप्तभये अरु प्रश्नकर्त्ता शौनक नामवाले ऋषिकेअर्थ कहताभया। इसप्रकार अन्य आचार्यभी तिसही प्रकारसे मोक्षके अर्थ विधिवत् समीप प्राप्तभये मोक्षार्थी मुमुक्षुके अर्थ कहै। अरु इस ग्रन्थको व्रतके आचरण से रहित पुरुष अध्ययन करता भी नहीं। अरु जिसकरके व्रतके आचरणवालेकी विद्या संस्कारयुक्त हुई फलकेअर्थ होतीहै, एतदर्थ व्रतरहित पुरुष इसग्रंथके अध्ययनयोग्य नहींहै। इसप्रकार समाप्तभई जे ब्रह्मविद्या, सो जिन ब्रह्मादिकोंसे परम्पराक्रमसे सम्यक् प्राप्तभईहैं। "नमः परमऋषिभ्यो नमःपरमऋषिभ्यः "। तिन परम ऋषियोंके अर्थ नमस्कार है अरु जे ब्रह्मादिक परमब्रह्मको साक्षात् जानतभये सोपरमऋषि हैं। तिन परम ऋषियोंके अर्थ पुनःभी नमस्कारहै। यहां दोबार जो नमस्कारका कथन है सो अत्यन्त आदरके अर्थ है। अरु यह तृतीय मुंडक अरु उपनिषद्की समाप्तिके अर्थहै ११। ६४॥

इति तृतीयमुंडके द्वितीय खंडः॥

ॐब्रह्मानन्दंपरमसुखदंकेवलंज्ञानमूर्त्तिंद्वंद्वातीतंगगनसदृशंतत्त्वमस्यादिलक्ष्यं॥ एकंनित्यंविमलमचलंसर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतंत्रिगुणरहितंसद्गुरुंतन्नमामि॥

मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी॥
सितम्बर सन् १८९० ई०

कृत भाष्य भाषाकेसाथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारों के अभिप्रायका भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजीकी शंकरभाष्यकातिलक व श्रीआनन्दगिरिकृततिलक अरुश्रीधरस्वामिकृततिलकभी मूल श्लोकों सहित इसपुस्तकमें उपस्थित है ॥

मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तक सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों का शिरोमणिहै जिसमें आचार कांड,व्यवहार कांड और प्रायश्चित्त कांड नामक तीन कांड हैं जिनसे गृहस्थादि चारों आश्रम और ब्राह्मणादिचारों वर्णों के सम्पूर्ण कर्म धर्मादि और राज सम्बन्धी कार्यों में दायभागादि व्यवहारों में बादी प्रतिबादियों के धर्म शास्त्र सम्बन्धी मामिले औरमुक़द्दमों की व्यवस्था वर्णित है ॥

इश्तिहार ॥

माह मार्च सन् १८८६ई० से मुमालिक मग़रबी व शिमाली का बुकडिपो इलाहाबाद क्यूरेटर बुकडिपो से मतबा मुंशीनवलकिशोर मुक़ाम लखनऊ में आगया है इस बुकडिपो में मग़रबी व शिमाली एजूकेशनल बुक किताबों के सिवाय औरभी हरएक बिद्या की किताबें मौजूद हैं इन हरएक किताबों की ख़रीदारीकी कुल शर्तें क़ीमत के सहित इस छापेख़ाने की छपी हुई फ़ेहरिस्तमें दर्ज हैं जो दरख़्वास्त करने पर हर एक चाहने वालों को बिला क़ीमत मिल सक्ती है जिन साहबों को इन किताबों की ख़रीद करना होवे इसे ख़रीद करैं और फ़ेहरिस्त तलब करैं ॥

द० मैनेजर अवध अख़बार
लखनऊ मुहल्ला हज़रतगंज

बीचमसाहब की अजीब व ग़रीब गोलियां ॥



सालहा साल से बीचमसाहब की गोलियां तमाम आलममें फ़रोख्त कीजाती हैं और उन कीविक्रीदुनियांकी तमाम दवाओं से बहुत ज्यादह है उन्नीसवीं सदीमें कोईदवा ऐसी फ़ायदा पहुंचानेवाली और उम्दह ईजाद नहींहुई जैसीयह तिलिस्माती गोलियां हैं जिन लोगोंनेइनकाएकमर्तबाइस्तेमाल करलिया है वह और किसीदवाकोछूतेभीनहीं और मुत्तफ़िक़ हैं कि इन गोलियों काएकर्बक्सएकअशरफ़ीको भी सस्ता है हरउम्र और मिज़ाज केमर्द व औरतको बराबर फ़ायदह होता है इससे कोई नुक्सान नहीं २० मिनटमें मर्ज़को फ़ायदह देती हैं यह सिर्फ़ जड़ी बूटीसे बनती हैं और कोई अशुद्धवस्तु नहीं पड़ती जिससे किसी मज़हब के आदमीको शकहो क़ीमत बहुतसस्ती हरबक्स जो ।।।) को मिलताहै६० गोलियां गोया १४ रोज़ की खूराक़ जितनी बीमारियां खूनकी ख़राबीसे पैदा होती हैं इस्तेमालसे बिल्कुल जातीरहतीहैं जिस शख्सको नीचे लिखेहुये रोगों मेंसे कोई रोगहो इनका इस्तेमालकरे हम ज़मानत करते हैं कि उसको ज़रूर२ फ़ायदहहोगा तर्कीब इस्तेमालका पर्चा बक्सकेसाथ मिलेगा--शिकममेंबादी--शिरकादर्द--शिरकाचक्करआना--खानाखानेकेबाद मादाकोगिरानी--घुमरी--उंघाई--सरदी--ज़ुकाम--खांसीदमा--पित्तीका उछलआना--भूखकीकमी--हाफ़ना--क़ब्ज़--खुसरा--बदनपरस्याहदाग़होना--नींदकाउचाटहोना--बदख्वाबी--घबड़ाहट--डर--फुन्सी--फोड़ा--नासूर--ख़ारिश्त--जमाई--अमराज़कमज़ोरी--बदहज़्मी--चक्करकीख़राबी--गलेकीबीमारी--गलाबैठजाना--सांसरुक रुककेआना--अय्यामका ख़िलाफ़ मामूलहोना--या रुकजाना--सीनेका बलग़मसे भारीहोना--वग़ैरह वग़ैरह--झूठ न समझिये सचबातहै लाखों करोड़ों मरीज़ों को फ़ायदा होचुकाहै एकदफ़ा अज़माना शर्त है--हरबक्सपर सरकारी मुहर है उसमें बीचम्सपिल्स सेटण्टहिलंस खुदाहुआहै--अगर यह न हो तो जाली समझो और मतखरीदो हर जगहपर बिसाती और अंगरेज़ी दवाफरोशों से मिलसक्ती हैं--हेल्डरसगरायम्स एण्ड कम्पनी ३० अस्ट्रेट कलकत्ता--दो के वास्ते एजंटहैं अगर जराभी दिक्क़तहो एकरुपयाके टिकट आधआनेवाले उनको भेजदो ।।।) क़ीमत ।) महसूलडाक तुम्हारे नाम एक बक्स फ़ौरन् भेजदियाजावेगा खाने व बेचनेवाले थोकके निरख को इसी दूकानसे दरयाफ्त करसक्ते हैं जिस रेलके स्टेशनपर बेलरएण्डको अंगरेज़ी किताबें फरोख्त करें--वहां बीचमसाहबकी गोलियां मिलसक्ती हैं ॥

ॐ

माण्डूक्योपनिषद् ॥

भाषा टीका सहित ॥

जिसमें

ॐकार स्वरूपका प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्मा
की अभेदताका निरूपण, आगम, यथैतथ्याख्य,
अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार
प्रकरणों में अच्छे प्रकार निरूपण
किया गया है ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्री मुंशीनवलकिशोरजीने भारत
वर्षीयजनोंके उपकारार्थ बहुतसा धनव्ययकरके कोलाख्य
नगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण
से सरल देशभाषामें उल्थाकराय
स्वयंत्रालय में मुद्रितकराय
प्रकाशित किया ॥

वाजपेयि पण्डित रामरत्नके प्रबंध से

प्रथम बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
जनवरी सन् १८९१ ई० ॥

चतुर्वेदसंबंधी दशोंउपनिषदोंका यथा तथ्य वृत्त जोकि उनमें वर्णनकियागया है और कुछ छापेखानेमें मुद्रितहुई हैं वह निम्न लिखित हैं ॥

प्रश्नोपनिषद् ॥

यह उपनिषद् अथर्व वेद संबंधित है—इसमें श्रीपिप्पलाद आचार्य्य प्रतिकबंधी आदिकछु ऋषियोंको शिष्यभावसे पृथक् २ प्रश्नकरना और श्रीपिप्पलाद जीको यथायोग्य उनका देना जिनका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण विषयिक मार्गों से पृथक् होकर ब्रह्माराधन करना यहीएक मनुष्य शरीरका मुख्यकर्महै जिससे अन्तमें विषय विरागी होकर मोक्षभागी होता है ॥

मुण्डक उपनिषद् ॥

यह उपनिषद् अथर्ववेद संबंधितहै—और सम्पूर्ण उपनिषदों में राजावत् होनेसे जिसप्रकारसे कि शरीरमें श्रेष्ठ मस्तकहै उसी प्रकारसे यह श्रेष्ठहै और इसी कारण से मुण्डकनाम रक्खागया है—इसउपनिषद्में वादी प्रतिवादीके प्रश्नोत्तरसे ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादिका सम्भव अग्निहोत्रादि क्रिया-ओंका विधान मन्त्रोंद्वारा वर्णन कियागया है और देवभाषामें उत्तम तिलक रचागया है जिससे सहजमें अभिप्राय विदित होजाता है ॥

कठवल्ली उपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषी-श्वरके पुत्र श्रीउद्दालक ऋषिने जिसप्रकारसे विश्वजित्नामा यज्ञ की और उसीयज्ञके दक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपरिमित धन व गौओं को दानदिया और उसी यज्ञमें अपने परम प्रिय पुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्युके अर्थ दानदिया और

ॐ॥

भूमिका॥

सर्व्वसुज्ञ आत्मजिज्ञासु पाठक जनोंको विदितहो कि यहसर्व उपनिषदोंका सारभूत महाउपनिषद् मंडूकयनाम ऋषीश्वरद्वारा इस मनुष्यलोकमें प्रकटहुआहै अतएव इसको ,मांडूक्यउपनिषद्, इस नामसे कहतेहैं। अथवा जैसे दादुर (मेडक) प्रायःतीन छलांग (कुदान) मारके जलमें प्राप्तहोताहै,तैसेही आत्मारूपी मेडक जाग्रदादि अवस्थारूप पादरूपी स्थानोंसे उछलके अपने वास्तविक निरुपाधि ब्रह्मस्वरूप जलको प्राप्तहोताहै। अर्थात् अन्तःकरण विशिष्ट आत्मरूप मेडक इस उपनिषद्के विचाररूप बलसे, प्रथम जाग्रदवस्थादि प्रथम पादरूप स्थानसे उछलके स्वप्नावस्थादिरूप द्वितीय पादरूप स्थानको प्राप्तहोता है, पश्चात् उस स्वप्नावस्थादि पादरूप स्थानसे उछल सुषुप्ति अवस्थादिरूप तृतीयपादरूप स्थानको प्राप्तहोताहै, पुनः उस तृतीय पादरूप स्थान से उछलके चतुर्थ अमात्रिक अपने परब्रह्मस्वरूप जलको प्राप्त होताहै "। शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते सआत्मा सविज्ञेय"। तिसआत्मरूप मेडकका प्रतिपादक होनेसे इस उपनिषद्को ,मांडूक्य, नामसे कहतेहैं॥ अरु यह उपनिषद् "। ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति "। "। एतदालम्बनंश्रेष्ठ मेतदालम्बनंपरम्, एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्म लोकेमहीयते "। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, संन्यासियों करके उपास्य अरु ब्रह्मप्राप्तिमें सर्व्वोत्तम श्रेष्ठ आलम्बन जे त्रिमात्रिक ॐकार,केवल तिसकाही प्रतिपादक अरु ब्रह्म आत्माकी अभेदता का बोधकहोनेसे सर्व उपनिषदोंमें मुख्यहै। अरुजो कदापि कोई ऐसाकहै कि सर्वही उपनिषद् ब्रह्म आत्माकी अभेदताके बोधकहैं तब इसमें क्या विशेषताहै, तो तिसका यह समाधान है किअन्य

जे उपनिषद्हैं सोब्रह्म आत्माकी अभेदताके बोधकहैं परन्तु उन में सृष्टिकरण अरु प्राणादिकोंकी उपासना आदिक अन्य प्रसंगभी हैं अरु इस उपनिषद्में केवल ॐकारके प्रतिपादनसे ब्रह्मआत्मा की अभेदताही प्रकाशित है तिससे इतर सृष्टिकरणादिक नहीं, अतएव यह उपनिषद् केवल ब्रह्म आत्माकी अभेदताका बोधक होनेसे सर्व उपनिषदोंमें मुख्यहै । अतएव उक्त हेतुओंकरके इस उपनिषद्को मुख्यत्व होनेसे श्रीशंकराचार्य्य महाराजके परमगुरु श्रीगौडपादाचार्य्य कृत इसके अर्थबोधक श्लोकबद्ध कारिका है, तिस कारिकाके चारप्रकरणहैं तहां,प्रथम आगम प्रकरण,द्विती-यवैतथ्याख्यप्रकरण, तृतीय अद्वैताख्य प्रकरण, चतुर्थ अलातशा-न्ताख्य प्रकरण, इसप्रकार चार प्रकरणहैं ॥ अरु इन चारोंप्रकरण से बाहय इसभाषा भाष्यकारकृत सर्व उपनिषदोंमेंसे संग्रहकिया प्रणवो पासना,अरु सप्तसिद्धान्तियोंके मतानुसार प्रणवोपासना अरुप्रणवके ॐकारादिदशनामोंके अर्थविचार,अरु अन्यऋषियोंके, मतानुसार मात्राओंकेभेदसे उपासनविचार,अरु अकारादि मात्रा का क्रमशः लय चिंतवनविचार, इन सर्वके संग्रहका, एक संग्रह प्रकरणनाम पंचम प्रकरणभी कहाहै, सो एतदर्थहै कि प्रणवोपा-सनाके जिज्ञासुको इस एकही पुस्तक के अवलोकन से अनेक ऋषियोंके मतानुसार ॐकारकी उपासना जानने में आवे॥ अरु श्रीगौड़पादीय कारिका सहित इस उपनिषद्ऊपर श्रीभगवत्पाद पूज्य श्रीशंकराचार्य्यजीकृत संस्कृत भाष्य है अरु तिसभाष्यपर संस्कृतमें आनन्दगिरिकृत टीकाहैं, अरु तिस भाष्यअरु टीकाके अनुसारही द्विजवर श्रीपंडितराज पीताम्बरजी महाराज कृत भाषा दीपिकानामटीकाहै । अरु जैसे सम्यक् प्रकार संस्कृत विद्याके अभ्यास बिना अरु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यसे अध्ययन किये बिना सभाष्य उपनिषदोंका अर्थ जानने में आवे नहीं, अरु तैसेही जो केवल भाष्यके अक्षरानुसारही जे पंडित पीताम्बरजी कृत अक्षरार्थ टीका तिसका भी यथार्थ जानना सर्व

साधारणपुरुषोंको सुगम नहीं । एतदर्थ मैं श्रीपरिव्राजाचार्य्य परमहंस स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजका अतिअल्पज्ञ शिष्य यमुनाशंकर नामक नागर ब्राह्मण, उक्त भाष्यकार अरु टीकाकारके कहे अनुसारही भाषाभाष्य नामक टीका करता हौं तिसमें अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार कुछ विशेषभी कहौंगा ॥

सर्व्वसे साधारण विनय ॥

मुझ अल्पज्ञकरके कहेहुये इस मांडूक्यउपनिषद्के भाषा भाष्यमें जो कुछ अनुचित कथनहोय तिसको सर्वविवेकी पाठक जन क्षमाकरके सुधारलेवें इति ॥

सूचना इस भाषाभाष्यान्तर चिह्नोंकी ॥

' ' इस चिह्नान्तरमें भाषान्तर मूल श्रुति, श्लोक ॥
( ) इस चिह्नान्तरमें भाषान्तर श्रुति, श्लोकके अक्षरार्थ॥
" " इस चिह्नान्तरमें प्रमाणविषयक अन्य श्रुति, श्लोक ॥
( ) इसचिह्नान्तरमेंप्रमाणविषयक श्रुतिश्लोकके अक्षरार्थ
[ ] इस चिह्नान्तरमें संक्षेपसेआनन्द गिरिकाअक्षरार्थ ॥
' ' इस चिह्नान्तर में भाषाभाष्यकारकृत अर्थानुवाद ॥
, , इत्यादि चिह्न साधारण विराम ॥

इतिचिह्नसूचना ॥

अथ शान्तिपाठः ॥

ॐ सहनाववतुसहनौभुनक्तुसहवीर्य्यंकरवावहै। तेजस्वीनाव धीतमस्तु माविद्विषावहै ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शान्तिःपाठगुरुस्तुति ॥

ॐशन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमाशन्नइन्द्रोबृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः नमोब्रह्मणेनमस्तेवायोत्वमेवप्रत्यक्षंब्रह्मासि त्वमेवप्रत्यक्षंब्रह्मवदिष्यामिऋतंवदिष्यामिसत्यंवदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतुअवतुमामवतुवक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

ॐब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ॥

ॐ सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म"। "सोयमात्मा" । नांतःप्रज्ञंन बहिःप्रज्ञंनोभयतोप्रज्ञंन प्रज्ञानघनंनप्रज्ञं नाप्रज्ञं अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणम चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्ते"। "सआत्मा,अपहतपाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोपिपासःसत्यकामः सत्यसंकल्पःसोन्वेष्टव्यसविजिज्ञासितव्यः"। "तद्ब्रह्मेति"। "इहैवान्तःशरीरे सौम्यसपुरुषः" निहितंगुहायां"।" दृश्यतेत्वग्र्ययाबुद्ध्यासूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः"।" आत्मावाअरेदृष्टव्योश्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्योसाक्षात्कर्त्तेति"। "सयोह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैवभवति"

"। नातःपरमस्ति"।

"ब्रह्मानन्दंपरमसुखदंकेवलंज्ञानमूर्त्ति"

द्वंद्वातीतंगगनसदृशंतत्त्वमस्यादिलक्ष्यं"

"एकंनित्यंविमलमचलंसर्व्वधीसाक्षिभूतं"

"भावातीतंत्रिगुणरहितंसद्गुरुंतन्नमामि"

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथअथर्ववेदीय ॥

मांडूक्योपनिषद्

श्रीगौडपादीयकारिका सहित मांडूक्योपनिषद् प्रारभ्यते ६ ॥

श्रीमद्भाष्यकारस्वामी श्रीशंकराचार्यकृत ॥

मंगलाचरणम्

प्रज्ञानांशुप्रतानैःस्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्यलोकान् भुक्त्वाभोगान् स्थविष्ठान् पुनरपिधिषणोद्भासितान्कामजन्यान् ॥ पीत्वासर्वान् विशेषान् स्वपिति मधुरभुङ्मायया भोजयन्नोमायासंख्यातुरीयं परमम्टत मजंब्रह्मयत्तन्नतोऽस्मि १ ॥

हे सौम्य, भाष्यकार श्रीशंकराचार्य्य कहते हैं कि " परमम्टत मजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि " (अमृत अज जो परब्रह्म है तिसको मैं नमता (नमस्कारकरता) हौं ; [अर्थात्, श्रीगौडपादाचार्य को श्रीनारायणके (वा श्रीशुकाचार्यके) प्रसादसे प्राप्तहुये, अरु मांडूक्यउपनिषद्के अर्थकोप्रकटकरनेकेपरायण जो श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिका संज्ञक श्लोक तिनसहित मांडूक्योपनिषद्के व्याख्यानकरनेको इच्छाकरते हुये भगवान् भाष्यकार श्रीशंकराचार्य्य आपकरके करनेको इच्छितजे भाष्य तिसकी निर्विघ्न समाप्तिके अर्थ परदेवताके स्वरूपके स्मरण पूर्वक शिष्टाचाररूप प्रमाणकरके सिद्ध तिस परदेवताके अर्थ नमस्कार रूप मंगलाचरणको करतेहुये,अर्थसे इसग्रंथकेआरंभविषेवांछित विषयादिक

। अर्थात् ग्रंथके प्रयोजन, बिषय, सम्बन्ध, अरु अधिकारी । चार प्रकारके अनुबंधको भी सूचित करतेहैं । तिनमें बिधिमुखसे वस्तु का प्रतिपादन है, इस प्रक्रियाको देखावते हैं । अरु यहां (ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि) (जोपरब्रह्महै तिसको मैं नमताहौं) इसकहने करके मैं (इसअहं) शब्दके । बिषयत्वंपदकेलक्ष्य । अर्थकी तिस तत् शब्दकेलक्ष्यार्थसे एकताके स्मरणरूप नमनको सूचितकरने वाले आचार्यनेतत्पदकेलक्ष्यार्थरूपब्रह्मका प्रत्यगात्मापना सूचन करके तत्पद अरु त्वंपदके अर्थकीएकतारूप ग्रंथका विषय सूचित किया। अरु "यत्" (जो) इस शब्दको प्रसिद्ध अर्थका प्रकाशक होनेसे वेदान्त शास्त्रकरके प्रसिद्ध जो ब्रह्म है तिसको मैं नमता हौं, इस संबन्धसे मंगलाचरणभी श्रुतिकरके ही करतेहैं । अरु ब्रह्मको अद्वितीयहोनेसेही जन्ममरणके अभावसे । अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण अखंड ब्रह्ममें जन्ममरणके हेतुरूप द्वैतका अभाव है ताते । "अमृतमजं" (अमृत अरु अजन्मा) इसप्रकार कहा है । अरु जन्म मरणरूप जो बन्ध है सोई संसार है । अरु ब्रह्ममें जन्ममरणरूप बन्धलक्षण संसारका अत्यन्ताभावहै । ताते तिस बन्धके निषेधसे ।आत्माबिषे। स्वरूपसेही असंसारिभावके देखावनेवाले आचार्यने यहां सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप इस ग्रंथका प्रयोजन प्रकाशित कियाहै] ॥ वो परब्रह्म कैसाहै "। प्रज्ञानांशु प्रतानैः"। (प्रकृष्ट ज्ञानरूपहै) अर्थात् [जब वेदान्तशास्त्र उपनिषद् प्रमाणसे सिद्ध ब्रह्म, स्वरूपसे अद्वितीय अरु असंसारी है, तब तीन अवस्था करके युक्त भोक्ता जीवहै इसप्रकारका अनुभव कैसे होताहै । अरु । जीवको दुःखसुखका । भोगावनेवाला कोई ईश्वर है इसप्रकार कैसे श्रवणहोताहै । अरु बिषयोंका समूहरूप भोज्य (भोगनेयोग्यसामग्री) । ब्रह्मसे । भिन्न कैसे दृष्टआवती है । सो यह सर्वएक अद्वैतबिषे विरोधको प्राप्तकरेगा । यह आशंकाकरके एकअद्वैत ब्रह्मबिषे (जीव, जगत्, अरु ईश्वर, यह सर्व । रज्जुमें सर्पवत् । कल्पित संभवे हैं । इसअभिप्रायसे यहांकहते

हैं] जन्मादि (जायते (अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, विपक्षीयते विनश्यति, यह षट्भाव (विकार रहित प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्महै " प्रज्ञानंब्रह्म " (प्रज्ञान ब्रह्महै) इसश्रुति प्रमाणसे,) तिस सूर्यवत् बिम्बस्थानी ब्रह्मके किरणरूप, जो सूर्यके प्रतिबिम्ब के तुल्य निरूपण कियाहै । अरु बिम्बके तुल्य ब्रह्मसे पृथक् वा भेद करके असत्य चिदाभास (चैतन्यब्रह्मकाआभास) जीवहै, तिनके वृक्षादिक स्थिर, अरु मनुष्यादिकचर, इसप्रकारके उद्भिजादि चारखानिके स्थिर चर प्राणियों के समूह बिषे व्यापनेवाले वि-स्तारों से लोक जो विषय तिनके अर्थ व्याप्तहोके [इस कथनसे उक्त विषयोंसे जीवोंका सम्बन्ध कहा] देवताके अनुग्रह सहित बाह्येन्द्रियोंद्वारा बुद्धिके तिस तिस विषयाकार परिणामसे जन्य-तारूप अतिशय स्थूलतावाले सुखदुःखके साक्षात्काररूप भोगों को भोगिके, अर्थात् [यहां "तान्भुक्त्वा" (तिनको भोगके) इस पदसे अरु " स्वपितीति " (सोवता है) इस अग्रिमकहने के पदसे सम्बन्ध है। इस कथनसे जाग्रदवस्था ब्रह्मबिषे कल्पित है, ऐसा कहाजानना] पुनः [यहांसे तिसही ब्रह्मबिषे स्वप्नकी कल्पनाको देखावते हैं] भी बुद्धिसे प्रकाशितहुये, अरु अविद्या, काम, अरु कर्म, से जन्य भोगोंको भोगके सर्व [इसप्रकार ब्रह्म बिषे (जाग्रत् स्वप्न (दोनों अवस्थाकी कल्पना को देखायके अब तहांही सुषुप्तिकी कल्पनाको देखावेहैं] जाग्रत् अरु स्वप्नरूप स्थूल अरु सूक्ष्म विषयों को अज्ञातरूप अपने आत्मा बिषे लय करके जो ब्रह्म सोवता है, अर्थात् कारणके अभावसे स्थित होताहै, अरु जो मधुरभुक् [सुषुप्तिबिषे आनन्दकी प्रधानता है इस अभिप्रायसे ब्रह्मको (मधुरभुक् वा आनन्दभुक् (यह विशे-षण देतेहैं] (आनन्दका भोक्ता) है, अरु जो ब्रह्म प्रतिबिम्बके तुल्यहुआ हमारेबिषे मायाकृत मिथ्यारूपा तीनोंअवस्थाके सम्ब-न्धीपनेवत् सम्बन्धीपनेको सम्पादनकरके हमकोमायासे भोगा-वताहुआ वर्त्तताहै। अरु तिसमायाकल्पित मिथ्यासंख्याकीअपे-

योविश्वात्माविधिजविषयान्प्राश्यभोगान्स्थविष्ठान् पश्चाच्चान्यान्स्वमतिविभवान्ज्योतिषास्वेनसूक्ष्मान् । सर्वानेतान्पुनरपिशनैःस्वात्मनिस्थापयित्वा, हित्वासर्वान्विशेषान्विगतगुणगणःपात्वसौनस्तुरीयः २

क्षासे तुरीय (चतुर्थ) अर्थात् शुद्ध आत्माकोचतुर्थ संख्यासे कहा है सोमायाकरके कल्पित जेजाग्रदादि तीनोंअवस्था तिसकीअपेक्षासे है नतुसर्व संख्याऽतीत बिषे संख्या कोई नहीं। [तिसही ब्रह्मकोतीनोंअवस्थासे पृथक्होनेकरके तिसकीज्ञानमात्र स्वरूपताको देखावे हैं] मरणरहित अमृत अरु जन्मरहित अज, पर [अर्थात् ब्रह्मको मायावी होनेकरके तिस बिषे निकृष्टभावकी प्राप्तिकी आशंकाकरके तिसके निवारणार्थ " पर " यह पदकरके उत्कृष्टताही कहिये है, क्योंकि ब्रह्मकोमाया (आरोप) द्वारा तिस मायासे संबन्धके हुयेभी स्वरूप करके मायासे ब्रह्मका सम्बन्ध नहीं। क्योंकितुल्य जातिय वाधर्मादिक वालोंका सम्बन्ध सम्भवे है अरु ब्रह्म सत्य चैतन्य आनन्द निर्गुण एकरसहै अरु माया तिससे विपरीत असत्य जड़दुःख सगुणनानारूप वालीहै, ताते उक्त प्रकारके ब्रह्मका उक्तप्रकारकी मायासे सम्बन्ध स्वरूपसेही संभवे नहीं। एतदर्थ ब्रह्मबिषे कैसेनिकृष्टता होवेगी किन्तु किसी प्रकारभी नहीं । यह अर्थ है] ब्रह्मकेअर्थ मैं नमस्कारकरताहौं १ ॥

हे सौम्य जो[प्रथमश्लोकबिषे बिधिमुखसे वस्तुके प्रतिपादन की प्रतिज्ञाको आश्रयकरके 'तत्' पदकेलक्ष्यअर्थसेआरंभकरके तिसकी 'त्वं' पदके लक्ष्यार्थभूत प्रत्यगात्मस्वरूपता प्रतिपादन किया । अरुविषय अरु फलके कथनसे, सम्बन्ध, अरु अधिकारी, सूचनकिये । अब इस द्वितीय श्लोकबिषे निषेधमुखद्वारा वस्तु मात्रके प्रतिपादनकी प्रतिज्ञाको आश्रय करके 'त्वं, पदकेवाच्यार्थसे प्रारंभकरके तिसकी 'तत्' पदके लक्ष्यार्थ भूत असंसारी शुद्ध ब्रह्मरूपताकी प्रतीति करावते हैं । तहां प्रथम 'त्वं, पद के

लक्ष्यार्थरूप स्वतःसिद्ध चिदात्माबिषे आरोपित जाग्रदवस्थाको उदाहरण करते हैं] यह प्रत्यगात्मा अविद्या अरु कालसे उत्पन्न हुयेजे धर्म अधर्मरूप विधि तिससे जन्यजे सूर्य्यादिक देवता तिनके अनुग्रह सहित बाह्यकरण (चक्षुरादि इन्द्रिय) द्वाराबुद्धि के परिणाम विषय होने करके अत्यन्त स्थूल अरु भोगने के योग्य होनेकरके भोगशब्दके वाच्य भोग्योंको साक्षात् अनुभव करके स्थितहुआ, पंचीकृत पंच महाभूत अरु तिनका कार्यरूप स्थूल जगन्मय विराट्का शरीररूप विश्व है तिस जाग्रत् स्थानरूप विश्वबिषे अहंमम (मैं अरु मेरा) यह अभिमान वान्हुआ विश्व (विश्वाभिमानी) जीवरूप होता है । अरु पश्चात् [अबातिसही चैतन्य आत्मा बिषे स्वप्नावस्थाके आरोपको कहते हैं] जे जाग्रत् के हेतु कर्महैं तिनके क्षयहोने से अनन्तर स्वप्नके हेतुजे कर्म हैं तिनके उद्भव होनेसे जाग्रत्के स्थूल विषयों से इतर, अरु तिसही हेतुसे सूक्ष्म,अरु बाह्य इन्द्रियोंको विषयों से निवृत्त होनेकरके 'अविद्या, काम, अरुकर्म, इनसे प्रेरणाको प्राप्तहुई अपनी बुद्धि तिसके प्रभावसेही उत्पन्नहुये अन्तःकरणकी वासनामय, अरु स्वप्नबिषे भी सूर्यादिकों के प्रकाश के । जो केवल जाग्रत्के सूर्य्यादिकों के प्रकाशके संस्कार युक्त बुद्धिकरके कल्पित हैं । अस्तहुये केवल ।स्वयंज्योति। आत्मरूप प्रकाश करकेही प्रकाशित हुये (विषय किये गयेजे भोग्यपदार्थ तिनको अनुभव करके, अपंचीकृत । तन्मात्रारूप। पंचमहाभूत अरु तिनके कार्यरूप सूक्ष्म प्रपंचमय हिरण्यगर्भ के शरीररूप स्वप्नावस्थाके ताई अभिमान । अहंमम (मैं मेरा) भाव । करता हुआ । चैतन्यआत्माही । तैजसनामक जीवरूप होता है । पुनः [अब तिसही चिदात्माबिषे सुषुप्ति अवस्थाकी कल्पना को देखावे हैं] भी स्थूल अरु सूक्ष्म उभय शरीररूप उपाधिद्वारा जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभय अवस्थारूप स्थानोंबिषे प्रवृत्ति होनेसे हुआ जो श्रम तिसकी उत्पत्तिके अनन्तर तिस श्रमके परित्याग करने

की इच्छाके होनेसे स्थूल अरु सूक्ष्मके विभागकरके जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभयस्थानों बिषे स्थित, इन प्रसंग बिषे प्राप्तहुये सर्व भी भोग्यरूप विशेषों को धीरेसे । क्रमशः वा बिनाही क्रमशः । अज्ञात कारणरूप अपने स्वरूप बिषे । अर्थात् सुषुप्ति से उठके कहता है कि ऐसे सोये जो कुछ भी खबर न रही इस अज्ञात लक्षणवान् कारण अविद्या तिसकी पृथक्सत्ताका अभावहै,क्योंकि उस अज्ञात अविद्याका परिणाम उसके प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान ज्ञानस्वरूप आत्माबिषे होता है 'जैसे कल्पित सर्पका रज्जुबिषे, अरु जिसका परिणाम जिस अधिष्ठानरूप होताहै सो उसहीका स्वरूप होताहै, ताते अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे अध्यस्त अविज्ञातरूप अविद्या भी सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूपही है । स्थापन करके अव्याकृतरूप उपाधिकी प्रधानतावाला हुआ । वोही चैतन्यआत्मा । प्राज्ञनामक जीवरूप होताहै । सो [अब जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों करके युक्त, अरु "नान्तःप्रज्ञंनबहिःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञनहीं, बाह्यप्रज्ञनहीं) इत्यादि निषेधमुख श्रुतिवाक्य श्रवणसे उत्पन्नहुआ जो प्रमाणज्ञान तिसबिषे आरूढ़हुये तिसही प्रत्यगात्माके कार्य कारणरूप सर्व अनर्थ विशेषों को श्रुतिप्रमाण जन्यज्ञानके प्रभाव सेही त्यागकरके निरुपाधि परिपूर्ण ज्ञानरूप सेही सिद्धहुये तत्त्वको कथन करते हैं । अरु मंगलार्थ तिसकी प्रार्थना करते हैं] यह सर्वगुणोंके समूहकी कल्पनासे रहित अरु नित्य ज्ञानरूप स्वस्वभाववाला तुरीयरूप परमात्मा सर्व कार्य कारणरूप अनर्थोंके भेदोंको भी श्रुतिप्रमाण जन्यज्ञानके प्रभाव सेही परित्याग करके, अरु व्याख्यानके कर्त्ता होनेकरके अरु श्रोताहोने करके स्थितहुये हमको पुरुषार्थ बिषे विघ्नकारी कारण के । अर्थात् पुरुषार्थ बिषे जे विघ्नों के कारण तिनके । निषेध (अभाव) पूर्वक मोक्षके प्रदानसे अरु तिसकेहेतु ज्ञानके प्रदान से रक्षणकरो २ ॥

इतिभाष्यकारकृतमंगलाचरणम् ॥

अथभाष्योपरिटीकाकारस्वामीआनन्दगिरि कृतमंगलाचरणम् ॥

ॐपरिपूर्णपरिज्ञानपरितृप्तिमतेसते । विष्णवेजिष्णवेतस्मै कृष्णनामभृतेनमः १ शुद्धानन्दपदाम्भोजद्वन्द्वमद्वन्द्वतास्पदम् । नमस्कुर्व्वेपुरस्कर्तुंतत्त्वज्ञानमहोदयम् २ गौडपादीयभाष्यंहिप्र-सन्नमिवलक्ष्यते । तदर्थोऽतिगम्भीरंव्याकरिष्येस्वशक्तितः ३ पूर्व्वेयद्यपिविद्वांसोव्याख्यानमिहचक्रिरे । तथापिमन्दबुद्धीनामु-पकारायययत्यते ४ ॥

ॐमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभव द्भविष्यदितिसर्वमोंकारएव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतंत दप्योंकारएव १ ॥

हे सौम्य, यह [जिसको उद्देश करके मंगलाचरण किया, तिसको कथन करने को आदिविषे व्याख्यान करनेयोग्य मंत्रके प्रतीक (प्रथमपद) को ग्रहण करते हैं] ॐ इसप्रकारका जो अ-क्षरहै, सो यह सर्वहै । तिसका उपव्याख्यान वेदान्त [यह क्या शास्त्रपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है, वा प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है । तहां जो प्रथमपक्ष कहो कि शास्त्रपने करके व्याख्यान करनेको इच्छितहै, सो बने नहीं, क्योंकि इसविषे शास्त्रके लक्षणके अभावसे इस ग्रन्थको अशा-स्त्रपनाहै ताते । अरु एक प्रयोजन से सम्बन्धवाला सर्व अर्थका प्रतिपादक शास्त्रहोताहै । सो इस ग्रन्थविषे एक मोक्षरूप प्रयो-जनपना तो है परन्तु सर्व अर्थका प्रतिपादकपनानहीं । एतदर्थ शास्त्रके लक्षणके अभावसे इसग्रन्थको अशास्त्रपना युक्तही है ॥ अरु जो द्वितीयपक्ष कहो कि इसको प्रकरणपने करके युक्त होने से व्याख्यान करने को इच्छित है, तो सो भी बने नहीं, क्योंकि प्रकरणके लक्षण का भी इसविषे अभाव है । यह आशंका करके कहेहै । यहां यह अर्थ है कि शास्त्रके एकदेशसे सम्बन्धवाला अरु

शास्त्रके अन्यकार्य विषे स्थित जो होय सो प्रकरण ऐसा कहते हैं। अरु यहग्रन्थ प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है क्योंकि यह निर्गुण वस्तुमात्र का प्रतिपादकहै ताते, अरु तिसके प्रतिपादन के संक्षेपरूप अन्यकार्योंका भी होनाहै ताते,इसग्रन्थ विषे प्रकरणके लक्षण सर्वही हैं ताते । यहग्रन्थ व्याख्यान करने को इच्छित है ।] शास्त्रके अर्थकासार संग्रहरूप चारप्रकरणवाला "ॐ मित्येतदक्षरमित्यादि" (यह ॐ इसप्रकारका अक्षर है) इत्यादिरूप ग्रन्थ है तिसका आरम्भ करते हैं [इसग्रन्थ को प्रकरण रूपहुये भी विषयादिक अनुबन्ध रहिततारूप दोषकी की हुई इस ग्रंथके व्याख्यान करनेकी अयोग्यताहै, यह आशंका करके कहतेहैं] याहीते इससे पृथक् सम्बन्ध विषयअरु प्रयोजन कथनकरनेको योग्य नहीं, किन्तु जो वेदान्तशास्त्रविषे सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजनहैं सोई यहां कथनकरनेयोग्यहैं । तथापि प्रकरणके व्याख्यान करनेकी इच्छावाले पुरुषकरके संक्षेपसे कथन करनेयोग्यहै । तहां श्रीभाष्यकार स्वामीकरके प्रयोजनादि अनुबन्धके कथनकी योग्यताके सिद्धहोनेसे शास्त्रअरु प्रकरणकेमोक्षरूप प्रयोजनवान्पनेकी प्रतिज्ञा करतेहैं] प्रयोजनवत् साधनोंका प्रकाशक होनेकरके विषयसे सम्बन्धवाला जोशास्त्र सो परम्परासे श्रेष्ठ 'विषय, सम्बन्ध, अरु प्रयोजनवाला होताहै ॥प्र०॥ पुनः तिसकाप्रयोजन क्याहै, ॥उ०॥ तहांकहतेहैं, जैसेरोगकरके आतुरपुरुषको रोगकी निवृत्ति होनेसे स्वस्थता होतीहै, तैसेही अन्तःकरणादि उपाधिवाले दुःखी आत्माको दुःखकेहेतु द्वैतप्रपंच की निवृत्तिके होनेसे जो अद्वैतभावरूप स्वस्थताहोवे है सोईप्रयोजनहै । अरु द्वैतप्रपंच अविद्याका कियाहै अतएव विद्याकरके तिसकी निवृत्ति होतीहै एतदर्थ ब्रह्मविद्याकेप्रकाशनार्थ इसग्रंथ का आरंभ करतेहैं "यत्रहि द्वैतमिवभवति"। "यत्रवाऽन्यदिवस्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यद्विजानीयात्,, "यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकंपश्येत्केनकं तद्विजानीयात्, इत्यादि" (जहांही

द्वैतवत् होताहै, जहांवा अन्यवत् होताहै, तहां अन्य अन्यकोदेखे, अन्य अन्यको जाने । अरु जहांतो इसको सर्व आत्माही होता हुआ तहां किसकरके किसकोदेखे किसकरकेकिसको जाने। इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणकरके इसअर्थकी सिद्धिहै । तहां [विषय प्रयोजनादि अनुबन्धके आरंभद्वारा ग्रंथके आरंभके स्थितहुये आदिबिषे इस कारिकारूप ग्रंथके चारप्रकरण एकसेएक अमिलित विषय, ज्ञानकी सुगमताके अर्थ सूचनकरनेको योग्यहै, इस प्रकार कहके प्रथम प्रकरणके विषयकोनिरूपण करतेहैं] गौड़पादीय कारिकाबिषे प्रथम ॐकारके निर्णयार्थ आगमप्रधान आत्मतत्त्वके निश्चयका उपायरूप प्रथम प्रकरण है । अरु रज्जुआदिकों बिषे सर्पादिकोंके विकल्पकी निवृत्ति होनेसे रज्जुकेयथार्थ स्वरूपकी प्राप्तिवत्, जिस [अब वैतथ्यनामक द्वितीय प्रकरणके अवान्तर विषयको देखावते हैं] द्वैतप्रपंचकी निवृत्ति होनेसे अद्वैतकी प्राप्तिहोतीहै, तिस द्वैतके हेतुसे मिथ्यापनेके प्रतिपादनार्थ द्वितीय प्रकरणहै ।[अब अद्वैत नामक तृतीय प्रकरणकेअर्थ विशेषकेकहनेकाआरंभ करतेहैं] तैसे अद्वैतकोभी द्वैतकी सापेक्षतासे मिथ्यापनेकी प्राप्तिकेहुये युक्तिसे तिसके परमार्थ पनेके लखावनेके अर्थ तृतीयप्रकरणहै [अब अलातशान्ति नामक चतुर्थ प्रकरणके अर्थ विशेषको कहतेहैं] अद्वैतके परमार्थभावके निश्चयके बिरोधीरूप जे वेदविरुद्ध अन्यबादहैं तिनको परस्पर में विरोधी होनेसे उनको अयथार्थताके कारण युक्तिकरकेही तिनके निराकरणार्थ चतुर्थ प्रकरणहै । पुनः [ॐकारके निर्णयरूप द्वार से आत्मज्ञान प्राप्तिका उपायरूप प्रथम प्रकरणहै, इसप्रकारजो कहा सो अयुक्तहै, क्योंकि ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञान होने की हेतुताकी अयोग्यता है । अर्थात् आत्मज्ञान होनेकी हेतुताके योग्य ॐकारका विचार नहीं। अरु अन्य अर्थकाज्ञान अन्यअर्थ के ज्ञानबिषे व्याप्तिबिना उपयोगताको पावता नहीं, अर्थात् ॐकारके अर्थका ज्ञान आत्मज्ञानके अर्थज्ञानमें अव्याप्त होने से

ॐकारके अर्थकाज्ञान आत्मज्ञानहोनेमें उपयोगी होतानहीं । अरु यहां । ॐकारके विचार अरु आत्मज्ञानविषे । धूम अरु अग्निवत् व्याप्ति देखते नहीं, अरु ॐकारको आत्माका कार्यपना युक्तनहीं। क्योंकि आकाशादिकोंका अवशेषहै ताते । अरु तिस ॐकारको आत्मावत् सर्व्वात्मा होनेकरके तिसके कार्यपने का व्याघात है ताते । इसप्रकार मानताहुआ वादी पूर्वकहेप्रमाण प्रथम प्रकरणके अर्थविषे आक्षेप करैहै] ॐकारके निर्णयविषे आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका उपायपना कैसे प्रतिपादन करतेहो, इस शंकापर कहतेहैं [हम । धूम अग्निवत् । अनुमान प्रमाणके आश्रयसे ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञानका उपायनहीं जानते कि जिसकरके व्याप्तिका अभावरूप दोष प्राप्तहोवे, किन्तु श्रुतिवाक्यके शब्द प्रमाण से ॐकारका निर्णय आत्मज्ञानका हेतुहै, इसप्रकार समाधान करतेहैं] "ॐमित्येतत्,,। "एतदालम्बनंश्रेष्ठम्,,। "एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतने नैकतर मन्वेति ,,। "ॐमित्यात्मानंयुञ्जीत,, ।" ॐमितिब्रह्म ,, । "ॐ कार एवेदं सर्वम्" (ॐ इसप्रकारका यह, आलम्बन श्रेष्ठ है, हे सत्यकाम यह जो पर अरु अपररूप ब्रह्महै सो ॐकार है, ताते विद्वान् इसही साधनसे उभयके मध्य एकको प्राप्तहोता है, ॐ इसप्रकार आत्मा (बुद्धि) को योजनाकरे, ॐयह ब्रह्महै, ॐकार हीयह सर्व है । इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणसे । सर्पादि [ननु आपकरके व्याप्तहुये भ्रांतिवाले सन्मात्र चिदात्माविषे प्राणादि विकल्पको कल्पित होनेसे आत्माको सर्वका आश्रयपनाहै परन्तु ॐकारको वोसर्वका आश्रयपनाहै नहीं क्योंकि तिसके अनुस्यूतपनेका अभावहै ताते, यह आशंका होनेसे तहां कहतेहैं] विकल्प के आश्रय रज्ज्वादिकोंवत्, जैसे अद्वैतरूप आत्मा परमार्थकरके सत् रूपहुआ प्राणादि विकल्पोंका आश्रय है । तैसे प्राणादिरूप विकल्पों को विषय करनेवाला वाणीरूप प्रपंच ॐकारही है । अरु सो [ननु अर्थों के समूह को आत्मरूप आश्रयवाला होने

करके, अरु ॐकाररूप आश्रयवालाहोनेकरके, वाणीरूप प्रपंचको दोनों आश्रय प्राप्तहुये, ऐसा कहना बनेनहीं, इसप्रकार कहते हैं] ॐकार आत्माका स्वरूपही है, क्योंकि ॐकार आत्माका वाचक है ताते । अरु ॐकार के विकार शब्दके उच्चारणका विषय प्राणादिसर्व आत्माका विकल्पनामसे भिन्ननहीं, क्योंकि "वाचारम्भणंविकारोनामधेयं,, (वाणी से उच्चारण किया विकार नाममात्र है) अरु " तदस्येदंवाचातन्त्या नामभिर्दामभिःसर्व्वं सितम् ,, । "सर्व्वंहीदंनामानीत्यादि,, (सो इसका यह सर्ववाणी रूप तन्तुसे नामरूपा दामों (रज्जुओं) से बद्ध (बँधे) हैं । सर्व ही यह नामबिषे हैं । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे ॐकारको सर्व का आश्रयपना बनेहै । [प्रथम प्रकरणके अर्थको प्रतिपादन करके तिस अर्थबिषे मूल श्रुतिको प्रकट करते हैं] एतदर्थ यह श्रुति "ॐमित्येतदक्षरमिदꣳसर्व्वं" (ॐइसप्रकारका यह अक्षर यह सर्वहै) इसप्रकारकहेहैं। जो यहविषयरूप अर्थोंका समूहहै तिसको नामसे अभिन्नहोने करके, अरु नामको ॐकारसे अभिन्नहोने करके ॐकारही यह सर्वहै । अरु जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने में आवता है सो ॐकारही है । [अब "तस्य" (तिसका) इत्यादिरूप मूलश्रुतिकेभागको प्रकटकरके व्याख्यान करते हैं] "तस्योपव्याख्यानंभूतं भवद्भविष्यदिति सर्व्वमोंकारएव" (तिसका उपव्याख्यान है, भूत,वर्त्तमान, भविष्यत् यह सर्व ॐकारही है) अर्थात् तिस इस पर अरु अपर रूप 'ॐ, इसप्रकार के अक्षरको ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे, अरु ब्रह्मके समीप (नाम) होनेकरके विप्रष्ठ कथनरूप प्रसंगबिषे प्राप्त जो उपाख्यान है, सो सम्यक्प्रकार जाननेके योग्यहै । अरु उक्त न्यायसे भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् , इन तीनोंकालोंकरके परिच्छेद (भेद) करने के योग्य जो बस्तुहै सोभी सर्व ॐकारही है । "यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योङ्कारएव" (जो अन्य तीनोंकालों से अतीत (भिन्न) है सो भी ॐकारही है) अर्थात् जो अन्य

सर्व्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्मसोयमात्माचतुष्पात् २

तीनोंकालों से पृथक् कार्यरूप लिंगसे जानने योग्य, अरु काल करके परिच्छेद करने को अयोग्य । कारणरूप । अव्याकृतादिक हैं । वा सर्वका कारण परमात्मा है । सो भी ॐकारही है । । अर्थात् आकाशको सर्वत्र पूर्ण होनेसे उसको देशकृत परिच्छेद नहीं, परन्तु "एतस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशःसंभूत" इत्यादि प्रमाणसे आकाशको उत्पत्तिवाला होनेसे वो अपनी उत्पत्ति के पूर्वकाल में अभावरूप है ताते आकाश को कालकृत परिच्छेदहै, ताते आकाशादि सर्वकार्य भूत, भविष्यत, वर्त्तमान, इनकालत्रय कृत परिच्छेदवालाहै, अरु आकाशादि सर्वकार्योंका करण जे सत् चैतन्य परमात्मा ब्रह्महै सो "अजोनित्यः" इत्यादि अनेकश्रुतियों के प्रमाणसे उत्पत्ति विनाश से रहित अजन्मा नित्य सत्यहै, एतदर्थ उसविषे कालकृत भी व्यवधान नहीं । इस कहने का अभिप्राय यह है कि "भूतंभवद्भविष्यदितिसर्व्वमोंकारएव" इस श्रुतिसे आकाशादि सर्व्वकार्य जो उत्पत्ति विनाशवालाहै सो सर्व कालत्रय के परिच्छेदवाला ॐकारका वाच्यहै "तद्देववाच्यंप्रणवोहिवाचको" इत्यादिप्रमाणसे । अरु "यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकारएव" इस श्रुतिवाक्यसे, जो कालत्रयके विच्छेदवाले कार्य्यरूप पदार्थोंसे अन्य जो सर्वका कारण अधिष्ठान सर्वात्मा परब्रह्महै सो ॐकारकालक्ष्यहै, ऐसाजानना । ॥ यहां [वाच्य अरु वाचकको एकही सत् वस्तुविषे कल्पितहोने करके तिनकी एकरूप ताको कथनकियाहैताते, पुनः (सर्वयहब्रह्महै) इसप्रकार क्यों कहते हैं, ऐसा जहां विकल्प है, तहां उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक अग्रिमवाक्य के फलसहित तात्पर्य्यको कहते हैं] नाम (वाचक) अरु नामी (वाच्य) इनकी एकता के होने से भी नामकी प्राधान्यता से यह निर्देश कियाहै १ ॥

२ हे सौम्य, "ॐ" [वाच्यको वाचकपने के कथन करकेही तिन

[वाच्य वाचककी । एकताकी सिद्धिसे, पुनः वाचककी वाच्य रूपताका कथनरूप व्यतिहार (उलटायकेकथन) करना व्यर्थ है, यह आशंका करके कहते हैं । यहां यहअर्थहै कि वाच्यसे वाचककी एकताको न कथन करके वाचकसेही वाचक की एकता के कथन करने से उपाय अरु उपेय की करीहुई जो एकता, सो मुख्यनहीं, किन्तु गौणहै, इसप्रकारकी आशंका प्राप्त होवेगी, तिसके निवारणार्थ व्यतिहारका कथन सफल है] "ॐमित्येतदक्षरमिदंसर्व्वं" इत्यादि नामकी प्रधानतासे निर्देशकरी बस्तुका पुनः नामी की प्रधानता से जो निर्देश कहिये कथन है,सो नाम अरु नामी की एकताके निश्चयार्थ है । अरु अन्यथा नामके बिषे नामीका निश्चय होवेगा, अरु नामीकी नामरूपता गौणहै, इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होवेगी। अरुवाच्य अरु वाचकरूप नामी अरु नामकी एकता के निश्चयका इन दोनोंको एकही प्रयत्न से एक कालबिषेलय करताहुआ तिससे विलक्षण ब्रह्मको । कि जिसबिषे नाम अरु नामी इत्यादि कोई भी कल्पना नहीं । प्राप्तहोता है, यह प्रयोजन है । अरु तैसेही आगे कहेंगे कि "पादामात्रामात्राश्चपादा" (पाद जो हैं सो मात्रा हैं अरु जो मात्राहैं सो पादहैं) । सोई [कहेहुये वाचकके वाच्यसे अभेदबिषे वाच्यको प्रकटकरके योजना करते हैं] कहतेहैं। सर्व्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म" (सर्वही यह ब्रह्महै, यह आत्माब्रह्म है) अर्थात् सो सर्वकार्य अरु कारणही ब्रह्महै । सर्व जो यह ॐकारमात्र है, इसप्रकार श्रुतिने कहाहै,सो यह ब्रह्महै । इसप्रकार सो परोक्षपने करके कथनकिये ब्रह्मको प्रत्यक्ष (अपरोक्ष) विशेष करके निर्देश करते हैं। यह आत्माब्रह्महै । यह "अयं" (यह) इसकरके विश्व, तैजस, प्राज्ञ, अरुतुरीय, इन चारपादवाला होने से विभाग को प्राप्तहुये आत्माको प्रत्यगात्मारूप होने करके कथन करने को जो इच्छित अर्थ तिसके निश्चयार्थकसाधारण शरीरके हस्ताग्र (अंगुली वा करतल) को अपने हृदय देशपर्यंत लेआवनेरूप व्या-

पारमध अभिनयसे "अयमात्मा" (यह आत्मा है)। अर्थात् "अंगुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानांहृदये सन्निविष्टः" इत्यादिश्रुतिप्रमाणसे अंगुष्ठप्रमाणहृदयनामक मांसपिंडी जो वक्षस्थलके मध्यहै, तिसकेसम्बन्धसे तिसकेमध्य घटमें आकाशवत्, अंगुष्ठमात्र चैतन्यपुरुष है तिसको सर्वका द्रष्टाहोने से प्रत्यक्षकरके 'अहं आत्माहै, इसप्रकार अंगुलि निर्देशसे कहतेहैं। इसप्रकार कहते हैं। "सोऽयमात्मा चतुष्पात्" (सोयह आत्मा चारपादवाला है) अर्थात् सो [अब "सोऽयं" (सो यहहै) इत्यादिरूप अन्यवाक्य को प्रकटकरके व्याख्यानकरतेहैं] यह ॐकारका वाच्य अरु पर (सर्वाधिष्ठान) अरु अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होनेकरके स्थितहुआ आत्मा चारपादवालाहै। तहांदृष्टान्त कहते हैं, कार्षापणके पादवत्, [आत्माको सर्वाधिष्ठान होने करके अपरोक्षतासे पर (श्रेष्ठ) पनाहै, अरु उसको प्रत्यगात्मरूपतासे अपर (अश्रेष्ठ) पनाहै, तिस हेतुकरके कार्यकारण रूपसे सर्वका स्वरूप (अपनाआप) होने करके स्थितहुआ जो आत्मा तिसके ज्ञानकी सुगमताके अर्थ उसविषे चारपादकी कल्पना कियाहै, तिसविषे दृष्टान्तकहते हैं। यहां यह अर्थहै कि कोई एक देशविषे षोडशपण अन्नके मापकरने के पात्र विशेषका नाम 'कार्षापण, कहते हैं, अर्थात् किसी एकपात्र विशेषमें एकमनके प्रमाण अन्न विशेष पूर्णता से आवताहै अरु उसएकही पात्र में 'एकमन, पौनमन, आधमन, पावमन, इसप्रकारमापने के चार चिह्न होनेसे उसपात्रकी चारपादवाला कल्पना करते हैं तैसे। तहां उसपात्रविषे व्यवहारकी बाहुल्यता सिद्ध्यर्थ पादोंकी विशेष कल्पना करते हैं, । तैसेही इस आत्मा विषेभी पादोंकी कल्पना जाननी। परन्तु जैसे गौको चार पादवाली कहते हैं तैसे आत्मा चारपादवाला कहनेको शक्य नहीं,क्योंकि आत्माकोजोनिष्कल निरवयवादि भावकी प्रतिपादक श्रुतियां हैं तिनसे विरोधहोवेगा तातें] गौके पादवत् नहीं [विश्वसे आदिलेके तुरीयपर्यन्त चार

जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञःसप्तांगएकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः ३ ॥

पादरूप। पदार्थोंबिषे जो पाद शब्द है, सो जब करण व्युत्पत्ति वाला। अर्थात् साधनरूप अर्थवाला। होवे तब विश्वादिकोंवत् तुरीयकेभी साधन कोटिबिषे प्रवेशके होनेसे ज्ञेयवस्तुकी। अर्थात् मुमुक्षुपुरुष करके श्रवणादि साधनोंद्वारा तुरीयआत्माको आत्मत्वसे जाननाहै तिसकी। असिद्धि होवेगी, अरु जब पाद शब्द विश्वादिक सर्वबिषे कर्म व्युत्पत्ति (विषयरूपअर्थ) वालाहोवे है, तब सर्वको ज्ञेयरूप होनेसेउनको ज्ञानके साधनताकी असिद्धि होवेगी। यह आशंकाकरके पादशब्दकी प्रवृत्तिको विभागकरके प्रकट करतेहैं] विश्वादिक तीनोंके मध्य पूर्वपूर्व। पादोंकेउत्तर उत्तर पादों बिषे। विलयकरने से तुरीयाका निश्चय होता है। अरु इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयाके कारणभावका साधन होताहै, अरु प्राप्तहोता है। इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयके कर्म कहिये 'विषय, भावका साधन होताहै। परन्तुनिरवयवरूप आत्माको उभयप्रकारके पादोंकी कल्पना बनेनहीं २ ॥

३हेसौम्य, [आत्माकेचारपाद तो दूरसेही निषेधकिये हैं, इस प्रकार वादीशंकाकरे है] प्र०॥ आत्माका चारपादकरके युक्तपना कैसेहै, उ०॥ तहां कहते हैं, "जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञः" (जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ है) अर्थात् जाग्रत् अवस्था है। स्थान अर्थात् अभिमानका विषय। जिसका,ऐसा जागरितस्थानहै। अरु बाहिर जो आत्मा को अपने आप आत्म त्वसे भिन्न विषय, तिन बिषे है प्रज्ञा [प्रज्ञाजो बुद्धि, तिसको प्रथम अन्तर होने की प्रसिद्धि से, तिसका " बहिःप्रज्ञः " बाह्यके विषय वाली। यह विशेषण अयुक्त है, ऐसी आशंकाकरके तिसका व्याख्यान करते हैं। यहां यह भाव है कि, चैतन्यरूपजो स्वरूप भूत प्रज्ञा है सो बाह्य बिषयों बिषे भासती नहीं, क्योंकि वो प्रज्ञा विषय

की अपेक्षासे रहितहै ताते, किन्तु बुद्धिरूपजो प्रज्ञाहै सो बाह्यके विषयों विषे भासतीहै] जिसकी सो कहिये बहिःप्रज्ञ । अर्थात् अविद्याकृत [बाह्य विषयोंका वास्तवकरके अभावसे, वो प्रज्ञा (जो अन्तरहै) सो बाह्यविषयोंविषे कैसे भासतीहै, ऐसीआशंका करके कहतेहैं । यहां यहतात्पर्य्य है कि, (आत्मविषयिणी)स्वरूपभत जो प्रज्ञाहै, सो वास्तवसे बाह्यविषयवाली नहीं अंगीकार कियाहै, परन्तुबुद्धिवृत्तिरूप जो (विषयादिवस्तुविषयिणी निश्चयात्मक) अज्ञानकरके कल्पित प्रज्ञाहै, सो बाह्यविषयोंवालीप्रज्ञा होतीहै । अरु सो बुद्धिवृत्तिरूप प्रज्ञाभी ,वास्तवसे बाह्य विषय भावको अनुभव नहींकरती क्योंकि अज्ञानकरके कल्पित होनेसे वास्तवमें उस प्रज्ञाका अभावहै । अरुउस (प्रज्ञाका विषय) बाह्य विषयसोभी अज्ञानकरके कल्पित है ताते । एतदर्थ बुद्धिवृत्तिका जो बाह्य विषयोंका प्रकाशकपनाहै सो प्रातिभासिक (कल्पित) है]जो बाह्यप्रज्ञाहै सोबाह्यके विषयवाली (विषयाकार)ही भासे है तैसे [अबपूर्व के विशेषणसे इतर विशेषणको योजनाकरते हैं] "तस्यहवैतस्यात्मनो वैश्वानरस्यमूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणःपृथग्वर्त्मात्मा सन्देहोबहुलोवस्तिरेवरयिः पृथिव्येवपादौ" "अग्निहोत्र कल्पनाशेषत्वेनाग्निमुखत्वेनाहवनीय उक्त" (तिस इस वैश्वानररूप आत्माका सुन्दरतेजवाला स्वर्गलोक मस्तक है, अरु श्वेतरक्तादि नानाप्रकारके गुणोंवाला सूर्य्य उसका चक्षु है, अरु नानाप्रकारकी (तिर्यक्) गतिसे विचरनके स्वभाववाला वायु उसका प्राणहै, अरु विस्तृततारूपगुणवाला आकाश उसका देहमध्यभाग है, अरु उनका हेतुरूप जल उसका मूत्रस्थान है, अरु पृथिवी उसके दो पादहैं । अरु अग्निहोत्रकी कल्पना विषे उपयोगी होनेकरके आहवनीय नामवाला जो अग्निहै सो उसके मुखरूपसे कहाहै (इसप्रकारश्रुतिकरके उक्त यहसातहैं अंगजिसके ऐसा "ससांग" (सातअंगवाला) है । अरु "एकोनविंशतिमुखः" (एक ऊन बीस मुखवालाहै) अर्थात् तैसेही [अब अन्य विशेष-

णोंकी योजना करतेहैं] पांच ज्ञानेन्द्रिय अरु पांचकर्मेन्द्रिय, अरु प्राणादिभेदसे पांच वायु, अरु मन, बुद्धि, चित्त, अरु अहंकार, यह चार अन्तःकरणकी वृत्तियां, यह सर्व मिलके हुये जो उन्नीस १९ सोई मुखवत् उसके मुख (ज्ञानकेद्वार) [यहां ज्ञानपदकर्मकाउपलक्षण है, एतदर्थ ज्ञानके साधन अरु कर्मके साधन इस विश्व नामवाले जीवके मुख (ज्ञान अरु कर्मके साधन) हैं। यहांइस प्रकार विवेचनकरने को योग्य है, तहां पांच ज्ञानेन्द्रियां अरु एक मन अरु एक बुद्धि इनसातको पदार्थोंके को ज्ञानबिषे साधनपना प्रसिद्ध है, अरु वागादि कर्मेन्द्रियों को वचनादि कर्म्मों बिषे साधनपना प्रसिद्ध है। पुनः प्राणोंको ज्ञान अरु कर्म इन दोनों बिषे परम्परासे साधनपना है। क्योंकि प्राणोंके होनेसेही ज्ञान अरु कर्मकी उपपत्तिहै, अरु तिनकेअभावसे ज्ञान कर्मकीअनुपपत्तिहै ताते। अरु अहंकार कोभी प्राणवत् ज्ञान कर्म दोनोंबिषे साधनपना माननेके योग्यहीहै। अरु चित्तकोभी चैतन्याभासके उदयबिषे साधनपना कहाहै] जिसके, इसप्रकारका उन्नीस १९ मुखवाला है। अरु "। स्थूलभुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः"। (स्थूल भुक् वैश्वानर है सो प्रथम पादहै) अर्थात् [पूर्वोक्त विशेषणों करके युक्त वैश्वानरका "स्थूलभुक्" ऐसा अन्य विशेषण है, तिसका विभागकरते हैं, यहां शब्दादिक विषयोंका स्थूलपना है सो दिशादिक देवताके अनुग्रह सहित श्रोत्रादिक इन्द्रियों से ग्रहणहोनेरूप है] सो ऐसे विशेषणोंवाला वैश्वानर उक्त उन्नीस द्वारोंसे शब्दादिक स्थूल विषयोंको भोगता है ताते सो स्थूल भुक् है, अरु [अब वैश्वानर शब्दका प्रसंग बिषे प्राप्त विश्व जीवको विषय करनेपना स्पष्टकरते हैं] " विश्वेषांनराणामनेकधानयनाद्विश्वानरः । यद्वाविश्वश्चासौ नरश्चेति विश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः" (सर्व नरों को अनेक प्रकारसे लेजाता है एतदर्थ विश्वानर है। अथवा विश्व ऐसा जो नर सो कहिये विश्वानर। विश्वानरही सर्व [विश्व ऐसा

जो नर, सो कहिये वैश्वानर । इसप्रकार से सर्व नरों की एकता कैसे बनेगी, क्योंकि जाग्रदवस्थावाले नरोंको अनेक रूपता होनेसे तिनके तादात्म्यका असंभव है ताते, यह आशंका करके कहतेहैं । यहां सर्वपिंडोंका स्वरूप समष्टि विराट् कहतेहैं, ताते तिस विराट् रूपसे सर्व विश्वजीवोंको अभिन्नहोनेसेउक्तार्थ की सिद्धिहै] पिंडके स्वरूपसे अभिन्न होनेकरके वैश्वानरहै, सो प्रथम पादहै [ननु विश्वकी तैजससे उत्पत्तिके होनेसे तिस तैजसकाहीं प्रथमपनायुक्त है, अरु कार्यको पश्चात्होना उचित है, यह आशंका करके कहतेहैं, यहां यह अर्थ है कि विश्वको जो प्रथमपना है सो लयकरनेकी अपेक्षासे है, उत्पत्तिकी अपेक्षासे नहीं] अरु पिछले तीनपादके ज्ञानको इसके ज्ञानपूर्वक होनेसे इस वैश्वानरको प्रथमपना है शंका "अयमात्माब्रह्म, सोयमात्माचतुष्पात्" (यहआत्माब्रह्महै सोयहआत्मा चारपादोंवालाहै" [अबअध्यात्म(व्यष्टि)अरु अधिदैव(समष्टि)के भेदको लेके पूर्वोक्त विश्वके सप्तांगपनके अर्थवादीआक्षेपकरताहै]इसद्वितीयवाक्यसे प्रत्यगात्माके चारपादकरके युक्तपनेरूप प्रसंग विषे, स्वर्ग लोकादिकों का मस्तकादि अंगपना कैसेकहा, तहां कहतेहैं [अध्यात्म (विश्व) अरु अधिदैव (विराट्) के भेदके अभाव होनेसे विश्वको पूर्वोक्त सप्तांगपने का विरोध है नहीं, इसप्रकार । आक्षेपका । परिहारकरते हैं यहां कथनकिये हेतुका यह भावार्थहै कि अधिदैव करके सहित पंचीकृत पंचमहाभूत अरु तिनके कार्यरूप सर्वेही स्थूलरूप अध्यात्म प्रपंचको इसविराट् स्वरूपसे प्रथमपादपना है । अरु अपंचीकृत पंचमहाभूत अरु तिसके कार्यसूक्ष्मरूप तिस अध्यात्म प्रपंचकोही हिरण्यगर्भरूपसे द्वितीयपादपना है । अरु कार्यरूपताको त्यागके कारणरूपताको प्राप्तहुये तिसही अध्यात्म प्रपंचको अव्याकृत रूपसे तृतीय पादपनाहै । अरु कार्य कारणताको त्यागके सर्वकल्पनाके अधिष्ठानपनेकरके स्थितहुये तिसही को 'सत्य, ज्ञान, अनन्त, अरु अद्वय आनन्द, रूपसे चतुर्थ पाद-

पनाहै । अतएव ऐसे अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदको लेकेउक्त प्रकारसे चारपादवान्पनेको कहने को इच्छित होने से पूर्व पूर्व पादको उत्तरोत्तर पादरूपसे बिलय करनेसे जिज्ञासुकी तुरीय स्वरूप बिषे स्थिति सिद्धहोतीहै] यह दोषहै नहीं, क्योंकि अधिदैव सहित सर्वप्रपंचके इसआत्माके स्वरूपसे चारपादपनाकहने को इच्छित होनेकरके । अरु ऐसे [जब इसप्रकार जिज्ञासु मुमुक्षुकी तुरीय बिषे स्थिति अंगीकार करते हैं, तब तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधक प्रातिभासिक काहिये कल्पित द्वैतकी निवृत्ति के हुये (अद्वैत परिपूर्णब्रह्ममैंहों) इसप्रकार महावाक्यार्थका साक्षात्कार सिद्धहोवेहै, इसप्रकार फलितको कहतेहैं] सर्व प्रपंचकीनिवृत्तिके हुये, अद्वैतकी सिद्धिहोती है, सो सर्व भूतोंबिषे स्थित एक आत्मा देखा (अनुभवकिया) होताहै, अरु सर्व भूत आत्माबिषेदेखे हुये होतेहैं । इसप्रकार " यस्तुसर्वाणिभूतान्यात्मन्येवानुपश्यति " (जो सर्वभूतोंकोंआत्माबिषेही देखताहै) इसईशावास्यउपनिषद्के षष्ठ मन्त्ररूप श्रुतिका अर्थ समाप्त कियाहोताहै [अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदके अंगीकार रूपद्वारसे पूर्वोक्तरीत्या तत्त्व ज्ञानके । होनेके । अंगीकारबिषे दोष कहते हैं] अन्यथा अपने देहकरके परिच्छिन्नही प्रत्यगात्मा सांख्यादिमतवादियोंवत् अनुभव कियाहोवेगा । अरु तैसे [ननु, आत्माकी एकता बिषे सुखादिकोंके भेदकी व्यवस्थाके असंभवसे । अर्थात् जो कदापि सर्व शरीरों में एकही आत्मा मानिये तो एकके सुखसे सर्वही सुखी, अरु एकके दुःखसे सर्वही दुःखी, अरु एकके बद्धसे सर्वही बद्ध, अरु एकके मुक्तसे सर्वही मुक्त, ऐसाहोना चाहिये, परन्तु सोन होके कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई बद्धहै, कोई मुक्त है, सो सर्वको प्रकट अरु युक्तही है, अरु शरीर २ प्रति भिन्न भिन्न आत्मा माननेसे कोई सुखी अरु कोई दुःखी इत्यादि जो लोक बिषेव्यवस्था है सो यथार्थ है अरुसोई सर्व शरीरोंबिषे भिन्न भिन्न आत्माकाबाधक लिंग है । शरीर शरीरकेप्रति आत्माका भेद

सिद्ध होताहै, । यह आशंकाकरके कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि सांख्यादि शास्त्रोंकोजो द्वैतकोविषयकरनेवाला ज्ञानहै सो वांछितहै, तिसकरके अद्वैतको विषयकरनेवाले तेरे सिद्धान्तके विशेष के अभावसे तेरे पक्षविषे अद्वैत तत्त्व है । इसरीतिका श्रुतिसिद्ध विशेष सिद्ध न होवेगा । एतदर्थ भेदवादविषे श्रुतिकाविरोध प्राप्त होवेगा । अरु सुख दुःखादिकोंकी व्यवस्था तो उपाधिके किये भेदको आश्रय करके सिद्ध होतीहै] होनेसे अद्वैतहै, इसप्रकार श्रुतिका क्रिया विशेष न होगा, क्योंकि सांख्यादिकोंके मतकरके अविशेषसे । अरु [ननु, भेदवाद विषेभी अद्वैतकी श्रुति विरोधको पावती नहीं, क्योंकि ध्यानार्थ "अन्नंब्रह्मेति, विजानीयात्" इस वाक्यवत् " अद्वैत तत्त्वहै, इस उपदेशकी सिद्धिहै, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि उपक्रम अरु उपसंहार की एकरूपतादि लिंग (चिह्न) से सर्व उपानिषदोंका सर्व देहों बिषे आत्माकी एकताके प्रतिपादनविषे तात्पर्य्य इच्छित है, एतदर्थ अद्वैत श्रुतिका ध्यानरूप अर्थवान्पना इच्छा करनेको शक्यनहीं क्योंकि एकतारूप वस्तुविषे तात्पर्य्यके लिंगका अभावहै ताते] सर्व उपनिषदों को सर्वात्माकी एकताका प्रतिपादकपना अंगीकार करते हैं [अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकताको अंगीकार करके अद्वैतविषे तात्पर्य्यकेसिद्धहुये अध्यात्मिकरूप व्यष्टिस्वरूप विश्वकी त्रैलोक्यस्वरूप अधिदैवरूप विराट्के साथ एकता को ग्रहण करके, जो तिस विश्वका सप्तांगवान्पना पूर्व कहाहै, सो अविरुद्ध है, इसप्रकार समाप्त करते हैं] याते इस अध्यात्ममय पिंडरूप आत्माकी स्वर्गलोकादि अंगोंसे युक्तताकरके अधिदैव रूप विराट् आत्मासे एकताके अभिप्रायसे सप्तांग करके युक्तता का वचनहै । क्योंकि "मूर्द्धातेव्यपतिष्यादिति" (मस्तक तेरापतनहुआ) अर्थात् [अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकताविषे अन्य हेतुकहेहैं] इत्यादि लिंगको देखतेहैं ताते । अरुयहां [ननु, मूलग्रंथविषे विराट्की विश्वसेएकताही देखतेहैं । ताते सम्पूर्णता

करके अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकताको कहना बाञ्छितकरके भाष्यकारने अद्वैत बिषे तात्पर्यको कैसे कहाहै, इस शंकापर कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि जो मुखसे बिराट्की एकता देखाई, सो तो हिरण्यगर्भकी तैजससे, अरु अव्याकृतनाम उपाधिवाले अन्तर्यामीकी प्राज्ञसे जो एकताहै तिसके उपलक्षणार्थहै।एतदर्थ मूलग्रंथबिषे भी सम्पूर्णता करके अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकता कहनेको इच्छित है। इसहीसे अद्वैतबिषे तात्पर्यकी सिद्धि है] बिराट्की जो एकताहै सो हिरण्यगर्भ अरु अव्याकृतरूप आत्मा के उपलक्षणार्थ है। यह मधुब्राह्मणबिषे कहाहै "यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोयश्चायमध्यात्म मित्यादि" (जो इस पृथिवी बिषे तेजोमय अमृतमय पुरुषहै, अरु जो यह अध्यात्म है) इत्यादिक वाक्योंसे। अरु [ननु, विश्व अरु बिराट् को स्थूल प्रपंचके अभिमानी होनेसे, अरु तैजस, हिरण्यगर्भको सूक्ष्म प्रपंचके अभिमानी होनेसे तिनकी एकता युक्तहै, परन्तु प्राज्ञ अरु अव्याकृतकी किस तुल्यतासे एकताहै, इसप्रकार की शंकाके हुये, कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि प्राज्ञजो है सो सुषुप्ति बिषे सर्वबिशेषको लयकरके निर्विशेष होताहै, अरु अव्याकृतजो है सो प्रलयदशाबिषे सर्व बिशेषको अपनेबिषे लयकरके निर्विशेष रूपसे स्थितहोताहै, ताते उक्त तुल्यताको पूर्व करके तिन प्राज्ञ अरु अव्याकृतकी एकता अबिरुद्ध हैं] प्राज्ञ अरु अव्याकृतकी एकता तो सिद्धही है, क्योंकि दोनोंकी निर्विशेष रूपताहै ताते। इसप्रकार [पूर्वोक्तरीत्या अध्यात्म (व्यष्टि) अरु अधिदैव(समष्टि) की एकताके सिद्धहुये द्वैतके बिलयकी प्रक्रियासे अद्वैत सिद्ध हुआ, इसप्रकार फलित, अर्थात् सिद्धहुये, अर्थको कहते हैं] सर्व द्वैतकी निवृत्तिके हुये "एकमेवाद्वितीयम्" एक अद्वैत है यह सिद्ध हुआ ३ ॥

४ हे सौम्य,[उक्तप्रकार आत्माके विश्वरूप प्रथमपाद को व्याख्यान करके, अब तैजसरूप द्वितीयपादको प्रकटकरके ति-

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांगएकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयःपादः ४ ॥

सका व्याख्यान करते हैं] " स्वप्नस्थानो " (स्वप्नरूप स्थान वाला) अर्थात् स्वप्न, हे ममलक्षण अभिमानका विषयरूपस्थान जिस तैजसरूप द्रष्टाका ऐसा जो ,स्वप्नस्थानवाला, ['स्वप्न' इस पदके निरूपणार्थ तिसके कारणको निरूपण करते हैं] जाग्रत् की जोप्रज्ञा (बुद्धि) है सो अनेक साधनोंवाली अरुबाह्य (स्थूल) को विषयकरनेवाली हुयेवत् भासमान, अरु मनरूप स्फुरण-मात्रहुई तिसप्रकारके संस्कारको मनविषे धारणकरे है । तैसे संस्कारवाला सोमन, चित्रित [जाग्रत्की वासनाकरके युक्त हुआ जो मन सो स्वप्नविषे जाग्रत्वत् भासताहै, इस अर्थ विषे दृष्टान्त कहतेहैं । जैसे चित्रकरके युक्त हुआजो पट सो चित्रवत् भासताहै । अर्थात् अनेक रंगोंके सूत्रकरके निर्मित बेल बूटादि वाला पट चित्रवत् भासताहै । तैसे जाग्रत्के संस्कार करके(जो मनही करके कल्पित हैं) युक्त हुआ जोमन सो जाग्रत्वत्‌ही भासताहै, यह युक्तहै, इत्यर्थः] पटवत्‌बाह्यके साधनकी अपेक्षा से रहित, अरु,अविद्या,काम, कर्म,से प्रेरणाको प्राप्तहुआ जाग्रत् वत् भासताहै । अरु ऐसेही वृहदारण्यकी श्रुतिविषे कहा भी है " अस्य लोकस्य सर्व्वावतोमात्रामपादायेति " " तथा परे देवे मनस्येकीभवतीति " "प्रस्तुत्यात्रैष देवःस्वप्नेमहिमानमनुभवती त्याथर्व्वणे" (इस सर्व साधनकी सम्पत्तिवाले लोककी मात्रा (लेशरूप वा सूक्ष्म वासना) को ग्रहणकरके सोवता है) अरु ऐसेही अथवणवेदके ब्राह्मण प्रश्नोपनिषद्विषेभीकहाहै, तथाच। (मनरूप परदेव विषे एकवत् होताहै) ऐसे प्रसंग विषेप्राप्तकरके (इस स्वप्नविषे यह (मनाख्य) देव महिमाको अनुभव करताहै) अरु [ननु विश्वकी बाह्यइन्द्रियों से जन्य प्रज्ञाको, अरु तैजस की मनसे जन्य प्रज्ञाको अन्तर स्थितहोनेकी तुल्यता से, तैजस का

"अन्तःप्रज्ञः" (अन्तरकी प्रज्ञावाला) यह बिशेषण व्यावर्त्तक (विश्वादिकोंसे पृथक् करनेवाला) नहीं है, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहतेहैं] इन्द्रियोंकी अपेक्षासे मनको अन्तर स्थित होनेकरके स्वप्नबिषे अन्तरहै, तिस मनकी वासनारूप प्रज्ञाहै जिसकी ऐसा जो "अन्तःप्रज्ञः" (अन्तरकी प्रज्ञावाला है) अरु "सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः" (सातअंग अरु उन्नीस मुखवाला है)। अर्थात् यह तैजस जो अन्तरकी प्रज्ञावालाहै सो। पूर्वके विश्ववत् सात अंग अरु उन्नीस मुखवालाहै। अरु "प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयः पादः" (वासनामय सूक्ष्म भोगवाला है तैजस द्वितियपादहै)। अर्थात् प्रविविक्तभुक्, कहिये वासनामय सूक्ष्मभोग वा विरल भोगका भोक्ताहै। [ननु, विश्व अरु तैजसका "प्रविविक्तभुक्" (वासनामय सूक्ष्मभोगोंका भोक्ता) यह विशेषणतुल्यहै, क्योंकि विश्व अरु तैजस इन उभयकी बाह्य अरु अन्तर प्रज्ञाको भोज्यपनेकी तुल्यता है ताते, ऐसा जो बादीका कथन सो बने नहीं, क्योंकि उक्त उभयकी प्रज्ञाको भोज्यपने की तुल्यता के हुये भी तिस प्रज्ञाबिषे मध्यके भेदसे विश्वकी भोज्य (भोगने योग्य) जो प्रज्ञाहै, सो विषय सहित होनेसे स्थूलकरके जानी जातीहै। अरु जो तैजसकी प्रज्ञाहै सो विषयके सम्बन्ध से रहित केवल वासनामात्र रूपवाली है, इसकरके तैजस बिषे सूक्ष्मभोग सिद्धहोते हैं, इसप्रकार कहाहै] जाग्रत् बिषे विश्वको बिषयसहित होनेसे स्थूल प्रज्ञाका भोग्यपनाहै। अरु यहां स्वप्नबिषे जिसकरके केवल वासनामात्र स्वरूपवाली प्रज्ञा भोग्यहै, एतदर्थ प्रविविक्त (सूक्ष्म) भोगहै। अरु [स्वप्नके अभिमानी को तेजके कार्यहोनेके अभाव से तैजसपना काहेसे होवेगा, यह आशंका करके कहतेहैं] बिषय रहित केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञाबिषे प्रकाशकपने करके होवे हैं। अर्थात् स्वप्नका अभिमानी तेजकाकार्य नहीं परन्तु स्वप्न का प्रकाशक है एतदर्थ उसको तैजसपना होता है। इसकरके जो तैजसहै सो द्वितीयपाद है ४ ॥

यत्रसुप्तोनकंचनकामंकामयतेनकंचनस्वप्नंपश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थानएकीभूतःप्रज्ञानघनएवानन्दमयोह्यानन्दभुक्चेतोमुखःप्राज्ञस्तृतीयःपादः ५॥

५ हे सौम्य, [उक्तप्रकार (विश्व अरु तैजस) दोनों पादों की व्याख्याकरके अब तृतीयपादके व्याख्यान करतसन्ते व्याख्यान करने के योग्य श्रुतिविषे "नकंचन" (किसीकोभी नहीं) इत्यादि विशेषणों के तात्पर्य को कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि स्थूल विषयवाले ज्ञानकी जहां प्रवृत्ति है ऐसा जो जाग्रदादिथा सो दर्शनवृत्तिकहतेहैं अरु स्थूलविषयके दर्शनसे (ज्ञान) से इतर जे दर्शन (ज्ञान) सो केवल वासनामात्र होनेसे अदर्शन है, तिस (वासनामयकी) वृत्ति जहां है सो स्वप्न, तिस स्वप्नको अदर्शनवृत्ति कहते हैं। अरु तिन (दर्शनवृत्ति, अरु अदर्शनवृत्ति) दोनों विषे सुषुप्तिवत् तत्त्वके अग्रहणरूप निद्राको तुल्यहोने से। "यत्रसुप्तो" (जहां सोआहुआ) इत्यादि विशेषणोंकी तिन (उक्तउभय वृत्तियों में) प्राप्तिहुये, तिनसे भिन्नकरके सुषुप्तिके ग्रहणार्थ "यत्र सुप्तो" (जहां सोआहुआ) इत्यादिरूप मूलश्रुतिके वाक्यविषे "नकंचन" (किसीको भी नहीं) इत्यादिरूप विशेषण हैं, सो जाग्रत् अरु स्वप्न उभयस्थानों से पृथक् करके सुषुप्तिको ही ग्रहण करावता है] "यत्रसुप्तोनकंचनकामं कामयतेनकंचनस्वप्नं पश्यतितत्सुषुप्तम्" (जहां सोआहुआ किसी भी कामकी कामना करता नहीं, किसी भी स्वप्नको देखता नहीं, सो सुषुप्तिवाला है) अर्थात् दर्शन (ज्ञान) अरु अदर्शन (अज्ञान) दोनोंवृत्तियांवाली जाग्रत् अरु स्वप्न अवस्थाविषे सुषुप्तिवत् तत्त्वके अबोधरूपनिद्राको तुल्य होनेकरके, सुषुप्तिके ग्रहणार्थ इसउपनिषद्के पंचममन्त्र (श्रुतिवाक्य) विषे "यत्रसुप्तो" (जहां सोआहुआ) इत्यादिरूप विशेषणहैं। ["नकञ्चनस्वप्नंपश्यति" (किसी भी स्वप्नको देखता नहीं) इसही विशेषण करके दोनोंस्थानों (जाग्रत्स्वप्न)

से सुषुप्तिके भेदका सम्भवहोनेसे, अन्य विशेषण जो हैं सो "अकिञ्चित्कर" निष्प्रयोजनहैं, यह आशंकाकरके कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि तत्त्वका अप्रबोधरूप जो निद्राहैतिसको जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानोंबिषे तुल्यहोनेसे । तीनों स्थानोंको समता है, अतएव । जाग्रत् अरु स्वप्नसे विभाग करके सुषुप्तिके लखावनेके अर्थ अन्य "यत्रसुप्तो" इत्यादि विशेषण हैं] अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों बिषे भी तत्त्वकी अबोधतारूप जो निद्राहै सो समानहै, एतदर्थ पूर्वके जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानों से सुषुप्तिरूप स्थानका विभाग करते हैं, जिस स्थान वा काल बिषे सोआ हुआ पुरुष किसीभी भोगकी इच्छा करतानहीं, अरु किसी भी स्वप्नको देखता नहीं । [एकही विशेषणको व्यावर्त्तकपने का संभव होनेसे, दो विशेषणोंका क्या प्रयोजनहै, यह आशंका कर के दोनों विशेषणोंको विकल्पकरके व्यावर्त्तपनेका संभवहै, ताते व्यर्थ नहोयके दोनोंही सप्रयोजनहैं, ऐसा मानके कहते हैं,] जिस करके सुषुप्तिबिषे पूर्वके जाग्रत् अरु स्वप्नरूपस्थानोंवत् विपरीत ग्रहणरूप स्वप्नका दर्शन वा कोईभी कामना विद्यमान नहीं है, एतदर्थ सो सुषुप्त कहिये सुषुप्तिहै । सो सुषुप्तिहै स्थान जिसप्रज्ञा का ऐसा सुषुप्तिस्थानवालाहै । अरु "सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः" (सुषुप्तिस्थानवालाहै, एकीभूत है, प्रज्ञानघनही होताहै, आनन्दमयहै, आनन्दका भोक्ताहै, चेतोमुखहै, प्राज्ञ, तृतीयपादहै) अर्थात् उक्तप्रकार सुषुप्तिरूप स्थानवालाहै, अरु एकीभूतहै, [उक्त दोनों (किसीभी विषय वा भोगको इच्छता नहीं, अरु किसीभी स्वप्न को देखता नहीं, इन) विशेषणोंकरके विपरीत ग्रहणसे रहितपना अरु भोगके सम्बन्धसे रहितपना कहनेको इच्छित है] अरु जाग्रत् [इस द्वैतसहित प्राज्ञ जीवका एकीभूतपनेरूप विशेषण कैसे संभवे, यह आशंका करके कहते हैं] अरु स्वप्न दोनों अवस्थारूप स्थानों बिषे विभागकोपाया जो मनका स्फुरणरूप द्वैत

कासमूह, सो जैसे अपुनरूप आत्मासे भिन्न है, तैसेही तिसरूप के अपरित्यागसे, रात्रिके अन्धकारकरके ग्रस्त दिशा वा दिवसवत् अविवेककरके युक्तहुआ अपने विस्तारसहित कारण(अव्याकृत) रूप होता है। तिस अवस्थाविषे तिस (अव्याकृत, कारण रूप) उपाधिवाला हुआ आत्माको एकीभूत कहते हैं। [यद्यपि सुषुप्ति अवस्थाविषे सर्व कार्योंका समूह कारणरूप होता है, तब तिसकारणरूप उपाधिवाला हुआ आत्मा 'एकीभूत, विशेषण वाला होताहै, तथापि कारणरूप उपाधिवाले आत्माका "प्रज्ञानघन" (प्रज्ञानघनहै) यह विशेषण अयुक्तहै क्योंकि (सर्व उपाधि सेरहित) निरुपाधिरूप आत्माकोही "प्रज्ञानघन" इत्यादि विशेषणका होना संभवहै, यह आशंकाकरके कहते हैं] एतदर्थ स्वप्न अरु जाग्रत्विषे मनकास्फुरणरूप जो प्रज्ञानहै सो सुषुप्तिविषे घनीभूतहुयेवत् होता है। सो इस (सुषुप्ति) अवस्थाको अविवेकरूप होनेसे घनप्रज्ञा "प्रज्ञानघन" इस विशेषणसे कहतेहैं। जैसेरात्रिविषे रात्रिके घन अन्धकारसे अविभागको पाया सर्व पदार्थ घनवत् होताहै (अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न अवस्थामें मनका स्फुरणरूप जो घट पटादिकोंका नाना विभागयुक्त प्रज्ञानहै सो सुषुप्ति अवस्थामें जबकि बुद्धि तमोगुण अविवेककरके आवृतघन अंधकार रूप होतीहै तब जाग्रत् स्वप्न अवस्थाका मनका स्फुरणरूप घट पटादि सर्व पदार्थ (जैसे रात्रिके घन अंधकारकरके अविभागको पायासता घट पटादि सर्व पदार्थ घनवत् होता है) तैसे आत्मा प्रज्ञान घनही होताहै। [यहां "एव" शब्दकेपर्याय "ही,, शब्दकरके अज्ञानसे इतर जाति सूचित नहीं है, यह अर्थ होताहै] अरु मनको विषय अरु विषयीके आकारसे स्फुरण होनेसे हुआ जो श्रम तज्जनित दुःखके अभावसे (उस अवस्थामें) आनन्दकी वाहुल्यतासे आनन्दमय है, आनन्दरूपही नहीं, क्योंकि (वो सुखानन्द) अविनाशी आनन्दसे रहित है ताते (अर्थात् सुषुप्तिका जो आनन्दहै सो मनकी स्फुरणाजन्य श्रमजनित दुःख के

अभावसेहैं, तातें वो अविनाशी आनन्द न होके नाशवान् होनेक-रके स्वरूपानन्द नहीं किन्तु आनन्दप्रायः हैं। जैसे लोकबिषे । गमनादि । श्रमसे रहितहोयके स्थितहुये पुरुषको सुखी आनन्द का भोक्ता कहते हैं। तैसेही सुषुप्तिबिषे यह ।प्रज्ञाविशिष्ट चैतन्य। पुरुष जिसकरके अत्यन्तश्रमरहित स्थितको ।अपनेबिषे। अनुभव करताहै, तिसकरके इसको आनन्दभुक्(आनन्दका भोक्ता) कह-तेहैं "एषोऽस्य परमआनन्द इतिश्रुतेः" (यह इस पुरुषका परम आनन्दहै) इस श्रुतिके प्रमाणसे, अरु [प्राज्ञकाही "चेतोमुखः" यहजो अन्य विशेषण है अब तिसका व्याख्यान करते हैं] स्वप्न अरु जाग्रत्मय प्रतिबोधरूप चित्तके प्रतिद्वारभूत होनेसे चेतोमुख है, वा बोधरूप चित्तहै स्वप्नादिकोंके आगमनप्रति मुख कहिये द्वार जिसको, ऐसाहै एतदर्थ सो चेतोमुख है । अरु [इस सुषुप्ति के अभिमानीको भूत अरु भविष्यत् बिषयों बिषे ज्ञातापना है, तैसे सर्व वर्त्तमान बिषयोंबिषे भी ज्ञातापना है । एतदर्थ प्रकर्ष करके जो जानताहै सो प्रज्ञहै, अरु जो प्रज्ञहै सोई प्राज्ञनामसे कहाजाताहै] भूत अरु भविष्यत्का ज्ञातापना अरु सर्व बिषयों का ज्ञातापना इसकोहीहै, एतदर्थ यह प्राज्ञहै । [सुषुप्तिबिषे सर्व विशेषोंके ज्ञानके विलयहुये प्राज्ञको ज्ञातापना कैसे होवेगा, यह आशंकाकरके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि यद्यपि सुषुप्तिवाला पुरुष तिस अवस्थाबिषे सर्व विशेषके ज्ञानसे रहित होवेहै,तथा-पि जाग्रत् अरु स्वप्न बिषे उत्पन्नहुई जे सर्व बिषयोंके ज्ञातापने रूपगति, ताते प्रकर्षकरके(सम्यक्प्रकार) सर्वको सर्वओरसे जा-नताहै, एतदर्थ सो प्राज्ञशब्दका बाच्य (प्राज्ञनामवाला नामी) होताहै,] सुषुप्तिको प्राप्तहुआ पुरुषभी स्वप्न अरु जाग्रत्बिषे व्य-तीतहुई सर्वबिषयोंके ज्ञातापनेरूप पूर्वकीगति इसकरके ।सुषुप्ति-स्थ पुरुषको। प्राज्ञ कहते हैं। अथवा ।तिस अवस्थाबिषे। जिसक-रके प्रज्ञप्तिमात्र ।अर्थात् ज्ञेयके अभावसे ज्ञाता विशेषणरूप वि-शेषतासे रहित निर्विशेषको प्रज्ञप्तिमात्र, कहते हैं । इसहीका रूप

एषसर्व्वेश्वरएषसर्व्वज्ञएषोऽन्तर्य्याम्येषयोनिः। स र्व्वस्यप्रभवाप्ययौहिभूतानाम् ६ ॥

है, तिसकरके यह प्राज्ञहै। ऐसा कहतेहैं। अरु अन्य दोनों अवस्थाविषेविशिष्टज्ञानभीहै, अरु सुषुप्तिविषे अन्यज्ञानरूप उपाधि सेरहित ज्ञानहै,सोज्ञान इसप्रज्ञाका स्वरूपभूत होनेसे 'प्रज्ञप्ति'नाम से कहतेहैं, सोयह 'प्रज्ञप्तिनामवाला' प्राज्ञ तृतीयपाद है ५॥

हेसौम्य, "एष सर्व्वेश्वर,, (यह सर्वेश्वरहै) अर्थात् यह प्राज्ञही स्वरूप अवस्थावाला हुआ सर्वका ईश्वरहै, अर्थात् अधिदैव सहित सर्व भेदोंके समूहका नियन्ताहै, इस हेतुसे अन्य नैयायिकादिकोंवत् अन्य जातिरूप नहीं "प्राणबन्धनंहि सौम्य मन" (हेसौम्य, प्राणरूप बन्धनवालाही मनहै) इस श्रुतिवाक्यसे। [अब प्राज्ञकेही अन्य विशेषणोंको साधतेहैं] यहही सर्व अवस्था के भेदवालाहुआ सर्वका ज्ञाताहै अर्थात् जाग्रदवस्थाविषे स्थूल जगत्को अरु स्वप्नावस्थाविषे सूक्ष्म जगत्को अरु सुषुप्ति अवस्था विषे उभयके कारणभूता विद्याको, इसप्रकार सर्वको सम्यक्प्रकार जानताहै। एतदर्थ यह सर्वज्ञहै। [अरु अन्तर्य्यामीपने रूप अन्य विशेषणको स्पष्ट करतेहैं] तैसेही सर्वके अन्तर प्रवेशकरके सर्व भूतोंका नियामक होनेसे, यहही सर्वका अन्तर्य्यामीभी है। अरु जिसकरके यह उक्तप्रकारका भेदसहित सर्व जगत् इससेही उपजता है तिसहीकरके यह सर्वकी योनि (कारण वा उत्पत्ति स्थान)है। [जिसकरके जगत्विषे निमित्त अरु उपादान कारण का भेदनहीं। अर्थात् यहजगत् अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है। अरु भूतोंकी उत्पत्ति अरु विलय, उपादानसे इतर एकठेकाने संभवे नहीं। जैसे घट सरावादिकोंकी उत्पत्ति अरु विलय, उनके उपादान मृत्तिका से इतर एक ठेकाने संभवे नहीं तैसे। तातें सर्वभूतोंकी उत्पत्ति अरु विलय यही है] अरु जिसकरके इसप्रकारहै तिसहीसे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति अरुप्रलयभी यहहीहै ६॥

अथगौडपादाचार्य्यकृततदुपनिषदर्थाविष्करणरूपश्लोकावतरणम् ॥

अत्रैतेश्लोकाः ॥

बहिःप्रज्ञोविभुर्विश्वोह्यन्तःप्रज्ञस्तुतैजसः । घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएवत्रिधास्मृतः १ ॥

अथ गौडपादाचार्य्यकृत कारिकायां प्रथम आगमाख्यप्रकरण भाषाभाष्य प्रारंभः ॥

१॥हेसौम्य,[श्रीगौडपादाचार्य्यने मांडक्य उपनिषद्को अध्ययन करके "अत्रैते श्लोकाः" (यहां ये श्लोकहैं) इसप्रकार तिस उपनिषद्के व्याख्यानरूप नव ९ श्लोकोंका अवतरण किया, तिसका अनुवादकरके भाष्यकार श्रीशंकराचार्य्य व्याख्यान करतेहैं] यहां इस कथनकिये उपनिषद्के 'षट्६, मन्त्रोंके अर्थविषे यह गौडपादाचार्यकृत 'नव ९, श्लोकहैं "बहिःप्रज्ञो विभुर्विश्वो हयन्तः प्रज्ञस्तुतैजसः" (बहिः प्रज्ञविभुविश्वहै, अन्तःप्रज्ञतो तैजसहै) अर्थात् बाहिरकी (स्थूल) प्रज्ञावाला विभुरूप विश्वहै । अरु अन्तरकी (सूक्ष्म) प्रज्ञावाला तो तैजसही है "घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएव त्रिधा स्मृतः" (तैसे घनप्रज्ञ प्राज्ञहै, एकही तीनप्रकार से कहा है) अर्थात् (बाह्यकी प्रज्ञावाले अरु अन्तरकी प्रज्ञावाले वत्) घनीभूतहुई प्रज्ञावाला प्राज्ञहै, इसप्रकार एकही पुरुषको तीन प्रकारसे कहाहै । इसका यह अभिप्रायहै कि [जब आत्मा के चेतनपनेवत् जाग्रदादि तीनोंस्थान स्वाभाविक होवें, तब चेतनपनेवत् सो तीनोंस्थान आत्मासे व्यभिचार पावनेयोग्य न होवेंगे, अरु तीनों स्थान क्रमकरके अरु अक्रमकरके आत्मासे व्यभिचारको पावते हैं । क्योंकि आत्माको तीनस्थानवालापना है ताते, एतदर्थ उनतीनों स्थानों से आत्माका अभिन्नपना

सिद्धहुआ "यः सुप्तः सोऽहं जागर्मीति" (जोमैं सोयाथा, सो मैं जागताहौं) इस अनुसंधानसे आत्माकाएकपना भी निश्चित हुआ, अरु 'धर्म, अधर्म, राग, द्वेष, आदिक मलको अवस्थाका । वा अन्तःकरणादिकोंका । धर्म होनेसे उन अवस्थाओं से भिन्न आत्माका शुद्धपना भी सिद्धहुआ । अरु संगको भी वेद्य होनेसे अवस्थाके धर्मपनेके अंगीकारसे अवस्थासे भिन्न तिनके द्रष्टाका । अर्थात् 'घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः, इसन्याय प्रमाण अवस्था अरु तिनके धर्म से भिन्न तिनका द्रष्टाका उनसे पृथक्होने करके । असंगपना भी । "असंगोह्ययं पुरुषः" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे । सिद्धहुआ, इत्यर्थः] क्रमकरके तीनस्थानवाला होने से, अरु "सोहमस्मि" (सो मैंहौं) इस स्मृतिकरके, अरुअनुसंधानकरके पुरुषका तीनोंस्थानोंसे 'भिन्नपना, एकपना, द्रष्टापना, शुद्धपना अरु असंगपना, सिद्धहुआ " तद्यथा महामत्स्य उभे कूलेऽनुसञ्चरति पूर्व्वञ्चापरञ्चैवायं पुरुषः" (इसश्रुति उक्त, महामत्स्यादिकों के दृष्टान्तके श्रवण से १ ॥

२॥हे सौम्य, "दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो" (दक्षिण नेत्ररूपी द्वार विषे विश्वको अनुभवकरतेहैं) अर्थात् जाग्रदवस्था विषेही विश्वादिका तीनोंके अनुभवके लखावनेके अर्थ यह द्वितीय श्लोक है, दक्षिणनेत्ररूपहीद्वारविषेमुख्यताकरकेस्थूल विषयोंकाद्रष्टाविश्व, ध्याननिष्ठ पुरुषकरके अनुभव होताहै "इन्धे हवैनामैषयोऽयं दक्षिणेक्षन् पुरुष इति श्रुतेः" (जोयह दक्षिण नेत्रविषे पुरुषहै, यह प्रसिद्ध इंध (प्रकाशवान्) इस नामवालाहै, इस वृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिप्रमाणसे। इंध नाम प्रकाशगुणवाले सूर्य्यान्तरगत विराट्के आत्मा वैश्वानरकाहै । सो अरु चक्षुविषे जोद्रष्टा है सो यह एकहै । यहइस श्रुतिका तात्पर्यहै॥ननु, सूर्य्यमंडलान्तरगत समष्टि सूक्ष्मदेहवाला हिरण्यगर्भ, अरु चक्षुगोलकविषे स्थित इन्द्रियोंके अर्थ अनुग्रहका कर्ता हिरण्यगर्भ, संसारीजीव से अन्यहै, अरु सूर्यमंडलान्तरगतसमष्टिस्थूलदेहका अभिमानी,

दक्षिणाक्षिमुखेविश्वोमनस्यन्तश्चतैजसः। आकाशे चहृदिप्राज्ञस्त्रिधादेहेव्यवस्थितः २ ॥

अरु चक्षुके उभयगोलकके अनुग्रहका कर्त्ता विराट् आत्मा भी तिससे अन्य नहीं, अरु व्यष्टिदेहका अभिमानी दक्षिण नेत्र बिषे स्थित द्रष्टा, दोनोंचक्षुअरु करणोंका नियामक, अरु कार्य, कारण का स्वामी क्षेत्रज्ञहै, सो तो उनदोनों समष्टि देहके अभिमानी हिरण्यगर्भ अरु विराट्से इतर अंगीकार करतेहैं। इस प्रकार होनेसे समष्टि अरु व्यष्टिपनेकरके स्थित जीवके भेदसे कथन करि जो एकता सो अयुक्त है, इसप्रकारका जो वादीका कथन सो बनेनहीं, क्योंकि कल्पितभेदके होतेभी वास्तवकरके अभेदके अनंगीकार होने से। अरु "एको देवः सर्वभूतेषुगूढ इतिश्रुतेः" (एकदेव सर्व भूतों बिषे गूढ है) इस श्रुति के प्रमाण से। अरु "क्षेत्रज्ञञ्चापिमां विद्धि सर्वक्षेत्रेषुभारत" "अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिवचस्थितमिति" (हे भारत, सर्वक्षेत्रों (शरीरों) बिषे क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र का जाननेवाला) भी मुझही को जान। अरु सर्व भूतोंबिषे विभाग से रहित हुआ भी विभागको प्राप्तहुयेवत् स्थितहै, इस गीतास्मृति के प्रमाण से। अरु सर्व करणोंबिषे समानहुये भी दक्षिणनेत्र बिषे ज्ञानकी स्पष्टता के देखनेसे तहां विश्वजीवका बिशेषकरके कथनहै। अरु दक्षिण नेत्र बिषे, [यद्यपि देहके देशके भेदबिषे विश्वको अनुभव करते हैं, तथापि जाग्रत्बिषे तैजसको कैसेअनुभव करते हैं, यहआशंकाकरके द्वितीयपादका व्याख्यानकरते हैं। यहां यह अर्थ है कि 'जैसे स्वप्नबिषे जाग्रत्की वासनारूपसे प्रकटहुये पदार्थोंके समूह को द्रष्टा अनुभव करताहै, तैसेही जाग्रत्बिषे दक्षिण नेत्रमें द्रष्टा होकर स्थितहुआ अश्रेष्ठ रूपको देखके पुनः नेत्रमूंदके, पूर्वदेखा जो रूप सो रूपके ज्ञानसे जन्य (उद्भूत) वासनारूपसे मनबिषे प्रकटहोताहै, तिसको स्मरणकरताहुआ विश्वही तैजस होताहै।

अरु उक्तप्रकार होनेसे उन विश्व अरु तैजसके भेदकी शंका बने नहीं,] स्थित जो विश्वहै, सो कुरूपको देखके मूँदेहुये नेत्रवाला हुआ तिसही देखेहुये कुरूपको मनकेभीतर स्मरणकरताहुआ स्वप्नवत् वासनारूपसे प्रकटहुये तिसही रूपको देखताहै। जैसेयहां जाग्रत्‌विषे देखताहै। तैसेही वहां स्वप्नविषेभी देखताहै। एतदर्थ "मनस्यन्तश्च तैजसः" (मनके अन्तर तो तैजसहै) अर्थात्‌मन के अन्तर तैजसभी विश्वहीहै। अरु "आकाशेचहृदिप्राज्ञः" (हृदयाकाशविषे प्राज्ञहै) अर्थात् [अब तृतीयपादका व्याख्यान करते हुये जाग्रत्‌विषेही सुषुप्तिको देखावतेहैं। यहां यह अर्थहै कि, जो विश्व तैजस भावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिके होनेसे हृदयान्तर आकाशविषे स्थितहुआ प्राज्ञ होयके तिस प्राज्ञके लक्षणकरके युक्तहोता है। अरु रूप विषयके दर्शन अरु स्मरणको छोडके श्रेष्ठ आकाश (अव्याकृत) विषे स्थितहुये तिस जीवको प्राज्ञसे अन्य अर्थपना नहीं, एतदर्थ सो 'एकीभूत, (विषय अरु विषयीके आकारसे रहित)है। अरु जिसकरके एकीभूत है इसहीकरके घनप्रज्ञ 'अर्थात् विशेषज्ञान अरु अन्यरूपसे रहित, हुआ स्थितहोताहै। इत्यर्थः] जो विश्व तैजसभावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिकेहुये हृदयगत आकाश विषे स्थितहुआ प्राज्ञ एकीभूत अरु घनप्रज्ञही होताहै, क्योंकि मनके व्यापारका अभाव है ताते। अरु दर्शन अरु स्मरणरूपही मनके स्फुरण (व्यापार) है, तिनके अभावहोने से हृदयान्तरही अव्याकृतमय प्राणरूपसे अवस्थानहीजाग्रत्‌विषे सुषुप्तिहै "प्राणो ह्येवैतान् सर्व्वान् संवृङ्क्ते इति श्रुतेः" (प्राणही इनसर्वको अपने विषे संहारकरता है, इस श्रुतिके प्रमाणसे। याते अव्याकृतमय प्राणरूपसे जाग्रत्‌गत सुषुप्तिविषे प्राज्ञकाअवस्थान जोकहासो युक्त हीहै। अरु [पूर्वही विश्व अरु विराट्‌की एकताको अनन्तर प्राज्ञ अरु अव्याकृतकी एकताको दिखाईहुई होनेसे, अरु तैजस औ हिरण्यगर्भके नकथनकिये, अरु कहनेयोग्य अभेदको अबकहतेहैं।

तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भरूपहै, क्योंकि लिंगशरीररूप मनविषे स्थितहै ताते, अर्थ यहहै जो, हिरण्यगर्भको समष्टि मनविषे स्थित होनेसे, अरु तैजसको व्यष्टि मनविषे स्थितहोनेसे, अरु उससमष्टि अरु व्यष्टिरूप मनको एकरूपहोनेसे, तिन व्यष्टि समष्टिविषे स्थित तैजस अरु हिरण्यगर्भकीभी एकता कथितहै] तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भहै, क्योंकि "मनोमयोऽयं पुरुष, इत्यादि श्रुतिभ्यः" 'यहपुरुष मनोमयहै, इत्यादि श्रुतिके प्रमाणकरके । मनजोहै सो लिंगरूपहै, अरु इस मनविषे स्थितहोनेसे तैजस अरु हिरण्यगर्भ की एकतायुक्तहै । ननु, [अब प्राणके पूर्वोक्त अव्याकृतपनेके अर्थ वादी आक्षेपकरताहै । यहां यहअर्थ है कि सुषुप्तिविषे प्राण जो है सोनाम अरु रूपकरके व्याकृत (स्पष्ट) युक्तहै, क्योंकि तिसप्राण के व्यापारको सोयेहुये पुरुषकेपास बैठेहुये मनुष्योंकरके अतिशय स्पष्ट देखतेहैं ताते] सोयेहुये पुरुषकेपास बैठेहुये जनोंकरके प्राण के व्यापारको स्पष्टदेखनेसे सुषुप्तिविषे जो प्राणहै सोनामअरुरूप करके व्याकृत कहिये स्पष्टहै । अरु श्रुतिविषे, करणजोहैं सो उसके प्राणरूप होतेहैं, इसप्रकारकहाहै, एतदर्थभी तिसप्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै । ताते । प्राणकेअर्थ तुम्होंने कहीजो । अव्याकृतता सोकैसे संभवेगी, । इसप्रकार वादीकी शंकाहै । तहां कहतेहैं, यह । जो तूनेकहा सो । दोषनहीं, क्योंकि अव्याकृतको देश अरु कालकृत परिच्छेदका अभावहै ताते । अरु जैसे देशकालकृत परिच्छेदसे रहित अव्याकृत कहिये मायाहै, तैसेही सुषुप्तिवान् पुरुषकी दृष्टिसेप्राणभी देशकालकेकिये परिच्छेदसे रहितहै। एतदर्थ सुषुप्तिवान्के प्राणकी अरु अव्याकृतकी एकतायुक्त है । अरु जो कदापि परिच्छिन्न अभिमानवाले पुरुषोंके मध्य 'यह मेराप्राण है, इसप्रकार प्राणके अभिमानकेहुये प्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै । तथापि सुषुप्ति अवस्थाविषे पिंड (देह) करके परिच्छिन्न जो विशेषहै तिसको विषयकरनेवाला जो 'यह मेरा प्राणहै, इस प्रकारका अभिमानहै तिसका निरोध प्राणविषे होताहै, एतदर्थ

प्राण अव्याकृतही है । 'जैसे मरणकेहुये अभिमानके निरोधसे परिच्छिन्न अभिमानियोंका प्राणअव्याकृतहोताहै, तैसेही प्राणके अभिमानी पुरुषकोभी सुषुप्तिविषे प्राणके अभिमानके निरोध से प्राणकी अव्याकृतता समानही है । एतदर्थ विशेष अभिमान के निरोधहुये । प्राणको । अव्याकृतपना प्रसिद्धही है । किम्बा 'जैसे अधिदैवरूप अव्याकृत जगत्की उत्पत्तिका बीजहै, तैसेही प्राण नामक सुषुप्ति जाग्रत् अरु स्वप्नकी । उत्पत्तिका । बीज होवेहै । अरु इसप्रकार होनेसे कार्योत्पत्तिकी बीजरूपता दोनोंको समान है । अरु अव्याकृत अवस्थावाला जो उन दोनोंका अधिष्ठान चैतन्यहै सो एकहै, इसकरके भी उनदोनोंकी एकता सिद्धहोतीहै। एतदर्थ परिच्छिन्न अभिमानवाले उपाधि सहित जीवोंकी तिस अव्याकृतके साथ एकता है । इसप्रकार पूर्वोक्त 'एकीभूत प्रज्ञान घन, अरु'सर्वेश्वर,इत्यादिरूपप्राज्ञका विशेषण घटितहीहै ॥ प्रश्न, तिस प्राणशब्दको इस ।प्राणादि। पंचवृत्तिरूप वायुकेविकार प्राण विषेरूढिहोने रूपहेतुके होनेसे अव्याकृतको प्राणशब्दकी वाच्यता (नामीपना) कैसे होती है, तहां ।उत्तर। कहते हैं, "प्राणबन्धनंहिसौम्यमन" (हे प्रियदर्शन, मन जोहै सो प्राणरूपबन्धन । अर्थात् सुषुप्ति विषे अपने लयके आधार । वाला होता है, इस श्रुतिके प्रमाणसे) अव्याकृतको प्राणशब्दकी वाच्यता (नामीपना) होती है ॥ ननु, इस श्रुति विषे "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" (हे सौम्य आगे सत्ही था) इसप्रकार प्रसंग विषे प्राप्तकिया सत्रूप ब्रह्महीं प्राणशब्दका वाच्यहै, अव्याकृत नहीं, । जहां ऐसी शंका है । तहां कहते हैं, यह । जो तूने कहा सो । दोषनहीं, क्योंकि सत्रूप ब्रह्मकी बीजरूपताका अंगीकार है ताते । अरु यद्यपि तिस उक्त श्रुति विषे प्राणशब्दका वाच्य सत् ब्रह्महै, तथापि तहां जीव अरु सर्व कार्यके समूहकी उत्पत्ति की बीजताको अपरित्याग करकेही सत् ब्रह्मको प्राणशब्दकी वाच्यता अरु सत् शब्दकी वाच्यताहै । अरु जब निर्बीजरूप ब्रह्म प्रा-

णादि शब्दका वाच्य कहने को इच्छित होय तब "नेतिनेति" (कार्यरूप नहीं, अरु कारणरूप भी नहीं) अरु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" (जिससे वाणियां निवृत्त होती हैं) अरु "अन्यदेवविदितादथोऽविदितादधि" (सो विदित (कार्य) से अन्यही है, अरु अविदित (कारण) से भी अन्यही है, इस श्रुतिके प्रमाण से) अरु तैसेही "नसत्तन्नासदुच्यत, इतिस्मृतेः" (सो सत् नहीं अरु असत्भी नहीं ऐसा कहतेहैं, इसस्मृतिकेभी प्रमाणसे, ब्रह्मको शब्दकी बिषयताका निषेध कियाहै, एतदर्थ भी विरोध होवेगा। किम्बा जब निर्बीजरूप होनेसेही ब्रह्म इस प्रकरणबिषे कहने को इच्छितहोय तो सुषुप्ति अरु प्रलयमें सद्ब्रह्मबिषे लीन अरु एकरूपहुये जीवोंके पुनः उत्थान का असंभव होवेगा। अथवा मोक्षदशा बिषे सत्ब्रह्मको प्राप्तहुये मुक्त पुरुषों की पुनरावृत्तिका प्रसंग होवेगा। अरु सर्वको अज्ञानरूप बीजके अभावकी तुल्यता, अरु ज्ञानाग्निसे दाह करने के योग्य बीजके अभावहुये ज्ञानकी व्यर्थताका प्रसंग होवेगा। एतदर्थ सर्व श्रुतियों बिषे बीज सहित ताके अंगीकार सेही सत्ब्रह्मको प्राणभावका कथन अरु कारणभावका कथन है। अरु इसही करके "अक्षरात्परतः परः" "सवाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "यतोवाचोनिवर्त्तन्ते" "नेतिनेतीत्यादिना" (पररूप अक्षरसे परहै, बाह्य अन्तर सहित है, जिससे वाणियां निवृत्तहोती हैं, अरु नेतिनेति, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके बीज सहित ताके निषेधसे ब्रह्मका कथनहै। अरु तिसही प्राज्ञशब्द के वाच्य (नामी) की तुरीयरूपतासे देहादिक संघात के सम्बन्धसे रहित तिस परमार्थ रूपा अबीज अवस्थाको यह श्रुति आगे भिन्न करेगी। अरु "नाकिञ्चिदवेदिषमिति" (मैं कुछ भी नहीं जानताहुआ) इसप्रकार सुषुप्तिसे उत्थानपाये पुरुष के स्मरणको देखते हैं ताते, जीवकी अवस्था भी अनुभव करतेही हैं "त्रिधादेहेव्यवस्थितः" (तीनिप्रकारसे देहबिषे स्थितहुआहै) अर्थात् उक्तरीतिसे यहजीव उक्त तीनप्रकारकरके देह बिषे स्थित

विश्वोहिस्थूलभुङ्नित्यंतैजसःप्रविविक्तभुक् । आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधाभोगंनिबोधत ३ ॥

स्थूलंतर्पयतेविश्वंप्रविविक्तन्तुतैजसम् । आनन्दश्चतथाप्राज्ञंत्रिधातृप्तिंनिबोधत ४ ॥

हुआ । अर्थात् अभिमानको पाया वा अभिमानी हुआ । है ऐसा कहते हैं २ ॥

३॥ हे सौम्य, [इसप्रकार विश्वादि तीनोंकी देहबिषे तीनप्रकारसे स्थितिको प्रतिपादन करके, अब तिनकेही तीनप्रकारके भोगोंको सूचित करते हैं,] "विश्वोहिस्थूलभुङ्नित्यंतैजसःप्रविविक्तभुक्" (विश्व नित्यही स्थूलभुक्है, तैजस प्रविविक्तभुक् है) अर्थात् । जाग्रदवस्थाका अभिमानी । विश्व नित्यही स्थूल भोगोंका भोक्ताहै । अरु ।स्वप्नावस्थाका अभिमानी। तैजस ।नित्यही। वासनामय सूक्ष्म भोगों का भोक्ताहै । अरु "आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधाभोगंनिबोधत" (तैसे प्राज्ञ आनन्दभुक् है, तीनप्रकारके भोगों को जानो) अर्थात् । जैसे जाग्रदवस्थाका अभिमानी विश्व स्थूल बिषयोंका, अरु स्वप्नाभिमानी तैजस वासनामयसूक्ष्म भोगोंका, भोक्ताहै । तैसेही सुषुप्ति अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ आनन्दका भोक्ता है, इसरीति से तीनप्रकारके भोगोंकोजानो ३ ॥

४॥ हे सौम्य, [अब भोगोंसेहुई जो तृप्ति तिसको तीनप्रकार से विभाग करके देखावेहैं] "स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम्" (स्थूलभोग विश्वको तृप्त करैहै, सूक्ष्मतो तैजस को तृप्तकरै है) अर्थात् शब्दादि स्थूल विषय भोग जाग्रदभिमानी विश्वको तृप्तकरता है । अरु जाग्रत्की बासनामय सूक्ष्म भोग स्वप्नाभिमानी तैजसको तृप्तकरता है । तैसेही "आनन्दश्चतथाप्राज्ञंत्रिधातृप्तिंनिबोधत" (तैसेआनन्द प्राज्ञको तृप्तकरै है, तीनप्रकारकी तृप्तिको जानो) अर्थात् । जैसे विश्वको स्थूलभोग

त्रिषुधामसुयद्भोज्यंभोक्तायश्चप्रकीर्त्तितः। तदैतदुभयंयस्तुसभुञ्जानोनलिप्यते ५॥

प्रभवःसर्व्वभावानांसतामितिविनिश्चयः। सर्व्वं जनयतिप्राणश्चेतोंऽशून्पुरुषःपृथक् ६॥

अरुतैजसको सूक्ष्म भोग तृप्तकरेहैं। तैसेही। सुषुप्तिके अभिमानी प्राज्ञको आनन्दरूप भोग तृप्तकरे है, ऐसे तीनप्रकारकी तृप्तिको जानो ४॥

५ हे सौम्य, अब [प्रसंग बिषे प्राप्त भोक्ता अरु भोग्य, इन उभय पदार्थोंके ज्ञानके मध्यके फलको कहते हैं] "। त्रिषुधामसु यद्भोज्यं भोक्तायश्चप्रकीर्त्तितः "। (तीन धामबिषे जो भोज्य हैं, अरु जो भोक्ताकहे हैं) अर्थात् जाग्रदादि तीनों स्थानों बिषे जो 'स्थूल, सूक्ष्म, अरु आनन्द, नामवाला एकही तीनप्रकारकाहुआ भोज्यहै, अरु विश्व तैजस अरु प्राज्ञ, इन नामवाला "सोहमिति" (सोमैंहौं) इस एकताके अनुसंधानसे, अरु द्रष्टापन के अविशेषसे एकही भोक्ताकहा है। अरु "। तदैतदुभयंयस्तुसभुञ्जानोनलिप्यते "। (जो इन दोनोंको जानता है सो भोक्ताहुआभी लिप्त होतानहीं) अर्थात् जो भोज्य अरु भोक्तापनेकरके अनेक प्रकारके भेदवालेहुये इन। भोज्य अरु भोक्ता। दोनोंको जानता है सो भोक्ताहुआ भी लिप्त होता नहीं, क्योंकि सर्व भोग्य एकही भोक्ताका भोग्य (भोगनेयोग्य) है ताते। अरु जिसका जो विषय है सो तिस विषयकरके घटता नहीं, अरु बढता भी नहीं, जैसे अग्नि काष्ठादिरूप अपने विषयको दग्ध वा भस्म करके घटता नहीं, वा बढता नहीं, तैसे ५॥

६ हे सौम्य, [पूर्व "एष योनिः" (यहयोनि (कारण) है, इस षष्ठमन्त्रबिषे प्राज्ञको प्रपंचकाकारणपना प्रतिज्ञाकियाहै। तहांसत् कार्यके प्रतिप्राज्ञको कारणपना है, वा असत्कार्यके प्रति कारण-पनाहै,। इस संशयकेहुये तिसका निर्द्धार करनेको अब आरम्भ

करते हैं,] "प्रभवः सर्वभावानां सतामिति विनिश्चयः । सर्वंजनयति प्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषः पृथक्" । (विद्यमान सर्वपदार्थों की उत्पत्ति होती है, यह निश्चय है । प्राणरूप पुरुष सर्व चैतन्य के अंशोंको पृथक् २ उपजावताहैं) अर्थात् विद्यमान पदार्थों की उत्पत्तिका निश्चय है, याते प्राणरूप पुरुष सर्व जगत् को अरु चिदाभासरूप चैतन्यकेअंश (जीवों) को पृथक्२ उपजावताहै ॥ [ननु सत्रूप पदार्थों को सत्रूप होनेसेही तिनकी उत्पत्ति असंभव है, क्योंकि सत्रूप ब्रह्मविषे अतिप्रसंग होताहै ताते, । यह आशंकाकरके श्लोकके पूर्वार्द्धका व्याख्यान करते हैं । यहां यह अर्थहै कि अपने अधिष्ठानरूपसेही विद्यमान (सत्रूप) पदार्थोंकाही अविद्याकृत मिथ्या आरोपित स्वरूप है, तिसकरके उत्पत्तिरूप संसार होवे है] अपने अधिष्ठान रूपसे विद्यमान 'विश्व, तैजस, अरु प्राज्ञरूप भेदवाले सर्व पदार्थोंकी अविद्यारचित नामरूपमय मिथ्यास्वरूप से उत्पत्ति रूप संसारहोताहै। अरु जिसको बंध्यापुत्रकहतेहैं सोयथार्थ (सत्य) रूपसे वा मिथ्यारूपसेभी जन्मतानहीं, इसप्रकार आगेकथनकरैंगे । अरु जोअसत्पदार्थकाही जन्महोय, तो व्यवहारकरने (जानने) योग्य जोब्रह्म तिसके ग्रहणविषे द्वाररूप लिंगके अभावसे असत्पनेका प्रसंग होवेगा । अरु अविद्यारचित मिथ्या बीजसे उत्पन्नहुये रज्जुसर्पादिकोंका रज्जुआदिक [अधिष्ठान] रूप से सद्भाव देखाहै । अरु किसीभी पुरुषने अधिष्ठान(आश्रय) रहित रज्जुसर्प अरु मरुस्थल जलआदिककहींभी देखेनहीं । (अर्थात् 'रज्जु, मरुस्थल, शुक्त्यादिरूप, आश्रयबिना 'सर्प, जल, रजतादिरूप भ्रान्ति होवे नहीं 'अरुजैसे रज्जुविषे सर्पोत्पत्तिसे पूर्व रज्जुरूपसे सर्प सत्यहीहोता है । (अर्थात् जिस अधिष्ठानविषे जो अध्यस्त होता है सो अपने अधिष्ठानकी सत्यतासेसत्यरूप होताहै, क्योंकि अधिष्ठान कल्पितहोतानहीं । तैसेही सर्व पदार्थोंका अपनी उत्पत्तिसेपूर्व प्राणमय बीजरूपसेही सद्भाव है । एतदर्थ "ब्रह्मैवेदं" "आत्मैवेदमग्र

विभूतिंप्रसवन्त्वन्येमन्यन्तेसृष्टिचिन्तकाः । स्वप्न मायास्वरूपेतिसृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ७॥

आसीदित्यादि" <ब्रह्महीयहहै, आत्माही यह आगेथा> इसप्रकार श्रुतियांभी कहतीहैं। इसप्रकार प्राण बीजरूप व्यवहारकी योग्यतासे सर्व अचेतन (जड़)रूप जगत्को उपजावताहै। अरु सूर्यके किरणोंवत् चैतन्यरूप पुरुषके चैतन्यरूप, अरु जलगत सूर्यके प्रतिबिम्बको समान 'प्राज्ञ, तैजस, अरु विश्व, भेदसे 'देव, मनुष्य, तिर्य्यकादिक, देहके भेदोंविषे भासमान जो चैतन्यके किरणोंवत् चेतनके अंशरूपजीवहैं, तिन विषयभावसे विलक्षण, अरु अग्निके विस्फुलिंगवत्, अरु जलगत सूर्यवत् चैतन्यके लक्षणसहित जीव रूप अन्यसर्व पदार्थोंको प्राण बीजरूप पुरुष उपजावताहै" यथोर्णनाभिःसृज्यते" "यथाग्नेर्विस्फुलिंगाः सहस्रशः" <जैसे ऊर्णनाभी (मकड़ीआदिक जन्तुविशेष) से तन्तु (जाला), अरु अग्निसे चिनगारे, होतेहैं, तैसे। इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ६॥

हेसौम्य, [अब जड़ चैतनरूप जगत्की उत्पत्तिको प्रसंगविषे प्राप्तहुये अपने मतके विवेचनार्थ अन्यमतके कहनेका प्रारंभकरतेहैं] "विभूतिं प्रसवन्त्वन्ये मन्यन्तेसृष्टिचिन्तकाः" {अन्य सृष्टिके चिन्तनकरनेवाले विभूतिकी उत्पत्तिको मानतेहैं}, अर्थात् विदमतावलम्बियोंसे। अन्य जे सृष्टिकेचिन्तक (कहनेवाले) हैं, सो ईश्वरकी अपने ऐश्वर्यमय विस्ताररूप विभूतिकी उत्पत्तिको "सृष्टिरिति" <सृष्टि है, ऐसा> मानते हैं॥ परमार्थके चिन्तनकरने वाले तत्त्ववेत्ताोंका तो सृष्टिविषे आदर है नहीं, क्योंकि " इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयत इत्यादि" <इन्द्र (परमात्मा) मायाकरके बहुरूप प्रतीतहोताहै> इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे। अरुजैसे माया का रचनेवाला मायावी पुरुषहै सो सूत्रको आकाश विषे फेंकके पुनःवो मायावी पुरुष तिस सूत्रके आश्रय खड्गादि आयुधसहित युद्धार्थ चढ़के अदृश्यहुआ युद्धमें खंड खंडहोय पतनहुआ पुनः

इच्छामात्रंप्रभोःसृष्टिरितिसृष्टौविनिश्चिताः । कालात्प्रसूतिंभूतानांमन्यन्तेकालचिन्तकाः ८ ॥

।सर्वांगसहित। उठखड़ाहुआ, तिसको । सम्यक्प्रकार जानके। देखनेवाले पुरुषोंको तिस मायावीकरके रचितमाया अरु माया केकार्य तिनके स्वरूपके चिन्तनविषे आदर नहीं होवेगा। तैसेही यह मायावीकरके प्रसारित सूत्रकेसमान सुषुप्ति अरु स्वप्नादिक विलासहै, अरु तिस सूत्रोपरि आरूढ मायावीके समान उनसुषुप्तिआदिकों विषे स्थित 'प्राज्ञ, तैजसादिक, जीवहैं,। अरु जैसे सूत्र अरु तिसविषे आरूढ पुरुष तिनसे अन्य परमार्थरूप मायावी है सोई पृथिवीविषे स्थित अरु मायाकरके आच्छादित अदृश्यमान हीहोताहै। तैसेही तुरीयनामवाला परमार्थतत्त्वहै। एतदर्थ उस परमार्थ तत्त्वके चिन्तन (विचार)विषेही विवेकी मुमुक्षु पुरुषका आदर है, । खरके केशकी संख्याकरनेवत् । निष्प्रयोजन सृष्टिके चिन्तनविषे आदर नहीं। [परमार्थके चिन्तन (विचार) करनेवाले पुरुषके सृष्टिविषे अनादरसे, अपरमार्थविषे निष्ठावाले पुरुषोंकोही सृष्टिविषयक विशेष चिन्तनहै। इस उक्तार्थविषे श्लोकके उत्तरार्द्ध को प्रकटकरतेहैं। अरु इस मतविषे जाग्रत्के पदार्थोंकीही स्वप्न विषे प्रसिद्धिहै ताते स्वप्नका सत्यपनाहै। अरु मणिआदिकरूप मायाकी सत्यताके अंगीकारसे, इन दोनों विकल्पोंकी सिद्धान्त से विलक्षणता समझनी। इतिभावः]एतदर्थ सृष्टिके चिन्तक वादियोंकेही यह विकल्पहैं, ऐसाकहतेहैं "स्वप्नमायास्वरूपेतिसृष्टिरन्यैर्विकल्पिता"। (अन्यवादियोंने स्वप्न अरु मायारूप सृष्टि है, ऐसी कल्पना कियाहै) ७ ॥

८हेसौम्य, "इच्छामात्रंप्रभोःसृष्टिरितिसृष्टौविनिश्चिताः"। (कोई एक प्रभुकी इच्छामात्र सृष्टिहै इसप्रकार सृष्टिके निश्चयको प्राप्त हुयेहैं) अर्थात् कोई एक ईश्वरवादी सृष्टिचिन्तक इसप्रकार निश्चयको प्राप्तहुये हैं कि प्रभु (ईश्वर) की इच्छामात्रही सृष्टिहै,

भोगार्थंसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमितिचापरे । देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्यकास्पृहा ९ ॥

क्योंकि ईश्वर सत्यसंकल्पहै ताते,। जैसे घटादिरूप जो सृष्टिहै सो। कुलालका। संकल्पमात्रही है, संकल्पसे इतर घटादि कुछ भी नहीं॥ अरु "। कालात्प्रसूतिंभूतानांमन्यन्तेकालचिन्तकाः"। (कालके चिन्तन करनेवाले कालकरकेही भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं) अर्थात् कोई एकजेकालके चिन्तन करनेवाले ज्योतिषशास्त्रके वेत्ता हैं सो कालसेही जगदुत्पत्तिको मानते हैं।। अरु कहते हैं कि जब सृष्टिकी उत्पत्तिका काल आवताहै तब उत्पत्ति, अरु प्रलयका काल आवता है तब प्रलय होताहै। ८॥

९हे सौम्य, "।भोगार्थंसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमितिचापरे"। (अन्य भोगार्थ सृष्टिहै ऐसे, अरु अन्य क्रीडार्थहै ऐसे, मानते हैं) अर्थात् उक्त वादियोंसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि भोगके अर्थहै। अरु उनसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि क्रीडाके अर्थ है। अन्यार्थनहीं। अब सिद्धान्तको कहतेहैं। "।देवस्यैषस्वभावोऽयमाप्तकामस्यकास्पृहा"। (यहदेवका स्वभावहै, पूर्णकामको कौनइच्छा है) अर्थात् यहसृष्टि।स्वयंप्रकाश। परमेश्वरका स्वभावहै, उसपूर्णकामदेवको कौन इच्छाहै किन्तु कोईभी नहीं। अर्थात् यावत् कार्यकारणात्मक स्थूल सूक्ष्मनामरूप सृष्टिहैसोसर्व उसपरिपूर्ण देवके आश्रय उसहीविषे उससेअनन्यहै तबइच्छा किसकी होय, किन्तु किसीकीभीनहीं। अरु इच्छाजोहोतीहै सो अपनेसे अन्यअप्राप्तवस्तुविषे होतीहै, सोउस एक परमात्मदेवसे अन्य अरुअप्राप्त वस्तु कुछभीनहीं। [यहां स्वभाव जोकहा, सोक्याहै। इसप्रकार पूछेहुये स्वाभाविक अपरोक्ष जो मायाशब्दका अर्थ, तिसकानाम स्वभावहै, इसप्रकार कहतेहैं] 'यहां स्वभाव पक्षका आश्रयकरके उक्त दोनों पक्षोंविषे अथवा सर्व पक्षों बिषे दूषणकहा, जैसे [पूर्व आठवें श्लोकबिषे जो "कालात्प्रसूतिंभूतानिमन्यन्ते" 'कालसे

भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं" इसप्रकार कहाहै, तहां कहतेहैं । यहां यह अर्थहै कि जैसेअधिष्ठानभूत रज्जुआदिकोंकेस्वभावरूप अपने अज्ञानसेही सर्पादिकोंका आभासपनाहै,तैसेही परमात्माको अपनीमायाशक्तिके वशते आकाशादिकोंकाआभासपनाहै "एतस्मात् आत्मनःआकाशःसंभूतः" आत्मासे आकाश होताहुआ, इसश्रुतिकेप्रमाणसे। परन्तु कालकोभूतोंका कारणपना नहीं, क्योंकि तिसविषेश्रुतिके प्रमाणकाअभाव है] रज्जुआदिकोंको अविद्यारूप स्वभावबिना सर्पादिक आकारके भासने विषे कारणपना कहनेको अशक्यहै। तैसेहीपरमात्माको मायारूप स्वभावबिनाआकाशादिरूपाकारसे भासनेविषे कारणपना कहनेको शक्य नहीं ९ ॥

उपनिषदर्थ ।

हेसौम्य, [ॐकारके तीनपादोंकी व्याख्याकरनेसे, व्याख्याकरनेके योग्यहोनेसे क्रमके वशते प्राप्तहुये चतुर्थपादकी व्याख्याकरनेको आग्रिम ग्रन्थकी प्रवृत्तिहै] अबक्रमसे प्राप्तहुआ जो चतुर्थपाद सो कहने (व्याख्याकरने) को योग्यहै । एतदर्थ यह उपनिषद् कहतेहैं "नान्तःप्रज्ञं, नबहिःप्रज्ञं, नोभयतःप्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, नप्रज्ञं, नाप्रज्ञम् ।" "अन्तःप्रज्ञ नहीं, बहिःप्रज्ञ नहीं, उभयतःप्रज्ञ नहीं, प्रज्ञानघन नहीं, प्रज्ञ नहीं, अप्रज्ञ नहीं" अर्थात् । जो निर्विशेष निरुपाधि सर्वकासाक्षी प्रत्यगात्मा है सो । अन्तःप्रज्ञ कहिये भीतरकी प्रज्ञावाला तैजस। सोभी नहीं । अरु बहिःप्रज्ञ कहियेबाहरकीप्रज्ञावाला।विश्व। सोभीनहीं। अरु उभयतःप्रज्ञक हिये उभयओरके प्रज्ञावाला, सोभीनहीं। अरुप्रज्ञानघन कहिये, अन्तर बाह्यके भेद रहित घनप्रज्ञावाला प्राज्ञ । सोभी नहीं। अरु प्रज्ञभी नहीं ॥ अरु "। अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमंशान्तंशिवमद्वैतंचतुर्थमन्यन्ते सआत्मा सविज्ञेयः "। (अदृष्टहै, अव्यवहार है, अग्राह्य है, अलक्षणहै, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्यहै, एकताके ज्ञानकासार है प्रपंचके उपशमवालाहै, शान्तहै, शिवहै, अद्वैतहै, चतुर्थ है

उपनिषद् ॥

नान्तःप्रज्ञंनबहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञंनप्रज्ञानघनं न प्रज्ञंनाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारंप्रपञ्चोपशमंशान्तं शिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्तेस आत्मासविज्ञेयः ७ ॥

'ऐसा, मानतेहैं, सो आत्माहै, सो ज्ञाननेके योग्यहै' अर्थात् । निरुपाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान सर्वका साक्षीशुद्ध आत्मा 'नेत्रका वा ज्ञानका विषय न होनेसे 'अदृष्टहै । अरु ज्ञानेन्द्रियोंका विषय न होनेसे 'अव्यवहार्य है, । अरु कर्मेन्द्रियोंका अविषय होनेसे वा उसको कर्मोंका फलरूप न होनेसे वो 'अग्राह्यहै,। अरु प्रतियोगिता वा सापेक्षताके अभावसे वो 'अलक्षणहै, । अरु अन्तःकरणका अविषयहोनेसे वो 'अचिन्त्यहै,। अरु वाणीवा शब्दादि प्रमाणोंका अविषयहोनेसे वो उपदेशकरनेके योग्य नहीं, ताते सो 'अव्यपदेश्यहै, । तथाच "नविद्मोनविजानीमोयथैतदनुशिष्यात्,, इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ॥ इसप्रकार निषेधमुखकहके अब विधिमुख कहते हैं । वो आत्मा एकताके प्रत्यय ज्ञानका सारहै " प्रतिबोध विदितं" अरु उसके सम्यक् ज्ञानसे समूल द्वैतरूप प्रपंच (जगत्)का अत्यन्ताभाव होताहै ताते वो प्रपंचके उपशम वालाहै । अरु अन्तःकरणके मनआदिकोंके संकल्पादिकोंकृत क्षोभसे रहित परमशान्त है । अरु परमानन्दमय होने से शिव है । अरु सर्वत्रपूर्ण अखंड अनन्त निराश्रय होनेसे अद्वैत है । अर्थात् 'अदृष्ट, अव्यवहार, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, उपदेशके अयोग्य, । एकताके ज्ञानकासार, प्रपंचके उपशमवाला, शान्त, शिव, अद्वैत, । इसप्रकारका जो पदार्थ है तिसको चतुर्थपाद करके मानते हैं । अर्थात् जिसको उक्तप्रकार निषेधमुखसे कहा सो किसीभी संख्यासे बद्धनहीं, परन्तु उसको जो चतुर्थपाद करके

कहाहै सो पूर्वोक्त तीनपादोंकी अपेक्षासे है, नतु वास्तव करके उस निर्विशेष तत्त्व विषे संख्या अरु पादपना कोई भी नहीं। अरु सोई एक निर्विशेष चिन्मात्रतत्त्व जाग्रदादि स्थानरूप उपाधि रहित निरुपाधि परमशुद्ध सर्वका प्रत्यगात्मा है, अरु सोई मुमुक्षु जिज्ञासुजनों करके जानने योग्यहै ॥ हे प्रियदर्शन, यहां " नान्तः प्रज्ञं " (अन्तःप्रज्ञनहीं) इत्यादि पदोंसे यह श्रुति 'सर्व शब्दोंकी प्रवृत्तिके निमित्तसे शून्य (रहित) होनेसे उस आत्माको शब्दकी विषयताहोगी। अर्थात् तत्त्वमें शब्दकाप्रवृत्ति का निमित्त विशेषताहै, निर्विशेष तत्त्वमें निमित्तके अभाव से शब्दकी प्रवृत्तिबने नहीं, अरु उसनिर्विशेषको विधिमुख कहनेसे शब्दकी विषयता होतीहै ताते। ,इस। अन्तः प्रज्ञतादि रूप। विशेषके निषेधसेही । निर्विशेष। तुरीयपादको कहनेकी इच्छा करती है ॥ ननु, तब सो तुरीय शून्यही होवेगा, । इसप्रकारके जो वादीका कथन सो बने नहीं, क्योंकि मिथ्या विकल्पको शब्दप्रवृत्तिके निमित्तसे रहितपनेका असंभवहै ताते, अरु जिस करके जो 'रजत, सर्प, पुरुष, अरु मृगतृष्णाकाजल, इत्यादि विकल्प हैं, सो 'सीपि, रज्जु, स्थाणु अरु ऊषरभूमि, इत्यादि-कोंसे इतर होनेसे अवस्तुपनेके आश्रयहुये कल्पना करने को शक्य नहीं । अर्थात् रज्जु शुक्तिकादिकों विषे जो सर्प रजतादि विकल्पकल्पनाहै सो रज्जुशुक्ति आदिकोंकेही आश्रय है क्योंकि निराश्रय कल्पना होती नहीं, अरु जो रज्जु शुक्ति आदिकों से भिन्न सर्प रजतादिकोंका विकल्प करना इच्छियेतो उन कल्पित होनहार सर्प रजतादिकों को अवस्तुपनेके आश्रयहोनेसे सो कल्पनाकरनेको शक्य होतेनहीं। अरु निराश्रय विकल्पकल्पना होवे नहीं, यह अनिवार्य सिद्धान्तहै। एतदर्थ तिन 'विश्वतैजसा दिक, का विधिमुख निषेधमुख, वा अस्ति नास्ति, वा शून्यअशून्य, आदिक विकल्पों। का अधिष्ठानरूप तुरीय शून्यसे विलक्षण सत्रूपकरके माननाचाहिये। क्योंकि शून्यहै,इस विकल्पकल्पना

का आश्रय अधिष्ठान शून्यसे विलक्षण किसी भी तत्त्वको सत् है,ऐसा न मानने से अवस्तुपने के आश्रयतेरा 'शून्य है, यह विकल्प होनेको अशक्य है । ननु, जब इसप्रकार है, तब प्राणादिक सर्व विकल्पों का आश्रयहोने से तुरीयाको ' जलादिकों का आश्रय घटादिकोंवत् , शब्दकी वाच्यता । नामका नामीपना वा शब्दकी विषयता । होगी, निषेधों से प्रतीत करावने की योग्यता न होगी । अर्थात् निर्विशेष तुरीया को प्राणादि विकल्पों का आश्रय अधिष्ठान होने से शब्द की वाच्यता प्राप्त होगी, अरु तैसे हुये " नान्तःप्रज्ञं " इत्यादि निषेध मुख वाक्यों से जो उसकी निर्विशेषता से प्रतीति है तिसकी योग्यता न होगी। इसप्रकारका जो वादीका कथन । सो कथन बने नहीं, क्योंकि ' शुक्ति आदिकों बिषे रजतादिवत् , प्राणादि विकल्पको । कल्पित होनेसे । असत्यपना है ताते । अरु असत्यको शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तवाला अवस्तुरूप होनेसे । वो केवल वाचारंभण (कहने) मात्रही हैं, एतदर्थ उनका किया निर्विशेष तुरीयाबिषे वाचकपना भी वाचारंभण मात्रही है । सत् अरु असत्वस्तुका सम्बन्ध है नहीं । अरु आत्माको स्वरूपसे गौ आदिकोंवत् अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी विषयताभी नहीं । अरु पाचकादिकोंवत् क्रियावान्पना भी नहीं । अरु नील पीत घटादिकोंवत् गुणवान्पना भी नहीं । क्योंकि निराकारहै ताते । [। विकल्प । क्या कल्पित अधिष्ठानपना हेतु कियाहै, वा वास्तविक अधिष्ठानपना हेतुकिया है, तहां जो प्रथमपक्ष । कहो कि ' कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो कहना । बने नहीं । क्योंकि तिस कल्पित अधिष्ठानपने को वास्तविक वाच्यताका असाधकपना है ताते, अरु वास्तविक वाच्यतापने बिषे क्रमका विरोधहै नहीं । अरु जो, द्वितीयपक्ष । कहो कि ' वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु कियाहै, तो सो भी । बने नहीं । क्योंकि, शुक्ति आदिकोंबिषे कल्पित रजतादिकों को अवस्तु होनेपनेवत् , तुरी-

याविषे भी कल्पित प्राणादिकोंको अवस्तुरूप होनेसे, तिसप्रति-योगीवाले अधिष्ठानपने को वास्तविकताकी अयोग्यता है ताते । अर्थात् वास्तविक अधिष्ठान तुरीया विषे अध्यस्त (कल्पित) प्राणादिकों को अवस्तुपना होनेसे उस तुरीयाका अधिष्ठानपना अवस्तुपने का प्रतियोगी होनेसे वास्तविकपने के योग्यनहीं । इसप्रकार सिद्धांति दूषण कहता है,] एतदर्थ आत्मा । शाब्दि आदिक प्रमाणों का अविषय होनेसे । शब्दसे कहने के योग्य नहीं शंका । ननु, तब आत्माको शशशृंगादिकों के तुल्यहोनेसे असत्पना प्राप्तहोवेगा, । समाधान । यह कहना बनेनहीं, क्योंकि शुक्तिके ज्ञानहुये रजतकी तृष्णाकी निवृत्ति होनेवत् तुरीया के सर्वात्मभावसे ज्ञानहुये, तिसज्ञानको अनात्मवस्तुकी तृष्णा की निवृत्तिका हेतुहोनेसे, अरु तुरीयाके स्वात्मभावसे ज्ञानहुये । कारण । अविद्या अरु । तिसकाकार्य । तृष्णादिकदोष तिनका संभव होना हैनहीं । अरु तुरीया के आत्मभावके ज्ञानविषे हेतुका अभाव भी नहीं, क्योंकि "तत्त्वमसि" (सो तूहै) "तत्सत्यम्" "अयमात्माब्रह्म" "सआत्मायत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म" "साबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "आत्मैवेदंसर्वं" (सो सत्यहै । यहआत्मा ब्रह्म है । सो आत्मा है जो साक्षात् परोक्षब्रह्म है । बाहर अन्तर सहित अजन्माहै । आत्माही यह सर्व है) इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सर्व उपनिषदोंको तिसही प्रयोजनार्थ होनेकरके परिसमाप्त होनेसे । सो [इसप्रकार निषेध मुखसेही तुरीयाका प्रतिपादन है, विधि मुखसे नहीं, इसप्रकार प्रतिपादन करके, अब कहे हुये अर्थ के अनुवाद पूर्वक अग्रिम कहनेके अर्थको प्रकट करते हैं] यह आत्मा परमार्थ रूपसे चारपदों वालाहै इसप्रकार पूर्व द्वितीयमंत्र करके कहाथा, तिसके अपरमार्थरूप अविद्यारचित रज्जुसर्पादिकोंके तुल्य बीज अरु अंकुरस्थानी तीनपादोंका लक्षण पूर्वकहा । अब इस मन्त्र विषे अबिजात्मक परमार्थ स्वरूप रज्जुस्थानीय चतुर्थपादको "नान्तःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञनहीं) इत्यादिरूप वाक्यसे

सर्पस्थानीय । जाग्रदादि । तीनोंस्थानोंके निराकरणसे कहते हैं। शंका। ननु, आत्माके चारपाद करके युक्तपनेकी प्रतिज्ञा करके पादत्रयके कथनसेही चतुर्थ पादकी अन्तःप्रज्ञ आदिक तीनपादोंसे पृथक् सिद्धिसे "नान्तःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञनहीं) इत्यादि निषेध अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, इसप्रकार जो वादीका कथन। सो कथन बनेनहीं, क्योंकि सर्पादिरूप विकल्पके निषेधसेही रज्जुके स्वरूप के निश्चयवत्, तीन अवस्थावाले आत्माकोही तुरीयरूप होनेसे "तत्त्वमसि" (सो तूहै) इसवाक्यवत्। अरु [ननु, जाग्रदादि तीन अवस्था करके विशिष्ट आत्माको तुरीयत्व नहीं, क्योंकि तुरीयको विशिष्ट से विलक्षण होने करके। उस विशिष्टसे अत्यन्त पृथक्ताहै एतदर्थ उस विशिष्ट आत्माका तुरीयपना अग्रिम कहनेकेग्रंथकरके कैसे प्रतिपादन करतेहौ, इसप्रकारकी जहां वादीकी शंकाहै तहां कहते हैं। यहांयह अर्थहै कि, तुरीयाकी प्रातिभासिकसे विलक्षणताके हुये भी विशिष्ट अरु उपलक्षित। अर्थात् विशेषण अरु उपलक्षणवाले। आत्माकी अत्यन्त विलक्षणता न होनेसे, तुरीयाका विशिष्टसे वास्तवकरके भिन्नपना है नहीं, अरु अन्यथा अत्यन्त भिन्न अरु परस्परके सम्बन्ध रहित, होनेसे, इन। विशिष्ट अरु अविशिष्ट। दोनोंके उपाय (साधन) अरु उपेय (साध्य) भावकी अयोग्यतासे, तुरीयके ज्ञानविषे विशिष्ट आत्माको द्वार (कारण) होनेके अभावहोनेसे, अरु तिस (तुरीया) के ज्ञानके द्वाररूप अन्यवस्तुके अदर्शनहोने से, तुरीयाका अनिश्चयही होवेगा,] जब तीन अवस्थावाले आत्मासे विलक्षण अन्य तुरीया होय, तब तिसके। अस्तित्वके। निश्चय होनेके द्वारके अभावसे शास्त्रका उपदेश अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, अथवा शून्यता प्राप्तहोवेगी। जैसे [यहां यह अर्थहै कि विशिष्टकेही निश्चयसे तुरीयाका अनिश्चयहोने से, निश्चितहुयेजे विश्वादिक विशिष्ट आत्मातिनका उलटा उदय होवेगा, अरु वास्तवसे अन्य (तुरीया) को अनिश्चितहोनेसे निरात्मकताकीही बुद्धिप्राप्तहोवेगी,] अधिष्ठान

रज्जु । अध्यस्त । सर्प्पादिकों से भेदको पावती है, तैसेही जब तीनोंस्थानों विषेभी एकही आत्मा अन्तःप्रज्ञत्वादिकोंसे भेदको प्राप्तहोता है, तब अन्तःप्रज्ञत्वादिपनेके निषेधके ज्ञानरूप प्रमाण के समकालही आत्माविषे अनर्थरूप प्रपंचकी निवृत्तिरूप फल परिसमाप्तहोवे है । जैसे [सम्बन्धीके परोक्षज्ञानके हेतु शब्दको असम्बन्धीके अपरोक्षज्ञानकी हेतुताका असंभव होनेसे, तुरीयाके ज्ञानविषे अन्य प्रमाण मानना चाहिये, इस पक्षके । कहनेवाले को प्रति कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि तुरीयाके साक्षात्कारविषे शब्दसे इतर प्रमाण खोजनेके योग्य नहीं, क्योंकि शब्दकोविषय के अनुसार होनेसे प्रमाणका हेतुपना है ताते, अरु तुरीय रूप विषय को सम्बन्धरहित अपरोक्ष रूपताहै ताते,] रज्जु अरु सर्प के विवेकहोनेके समकालमें (साथही) रज्जु विषे सर्पकी निवृत्ति रूप फलके हुये, रज्जुके ज्ञानका अन्य फल वा अन्य प्रमाण वा अन्य साधन, अन्वेषण करनेको योग्य नहीं । तैसेही तुरीया के ज्ञानहुये । तिसज्ञानसे । अन्य प्रमाण वा साधन अन्वेषणकरना योग्य नहीं । पुनः [विषयगत प्रकटपना प्रमाणका फलहै, अध्यस्त (कल्पित) की निवृत्ति प्रमाणका फलनहीं, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह भावहै कि अपने विषयकेअज्ञान निवारणार्थ प्रवृत्ति हुई जो प्रमाणकी क्रिया सो अपने विषयविषे स्वभावरूप अतिशयताको जब धारण करेहै, तब निवारणरूप अर्थ की तुल्यतासे ' छेदनरूप क्रिया भी छेदनकरने योग्य काष्ठके संयोगके निवारणसे पृथक् अतिशयको धारण करेगी।अरु संयोग के विनाशसे इतर विभागविषे अनुभव हैनहीं । अरु प्रकटता के प्रकाशपनेके हुये ज्ञानवत् जिसे शब्दके अर्थविषे ज्ञानस्थित होवे है तैसे । अर्थ विषे स्थितपना न होगा । अरु अप्रकाशपनेके हुये अर्थविषे स्थितपना होवेगा, तिस हेतुसे अर्थकेविना अर्थ नहीं है,] जिनके मतविषे अन्धकारके अभावकरने बिना घटादिकोंके ज्ञान विषे प्रमाण प्रवर्त्त होताहै, तिनके मतमें छेदनकरने योग्य वृक्षके

अवयवके सम्बन्धके बियोग क्रिया बिनाही दोनों अवयवोंमें से एक अवयव बिषेभी छेदनरूपक्रिया प्रवर्त्तहोतीहै,इसप्रकारकहना होवेगा। [अज्ञानका निवर्त्तक ही प्रमाणहै, इसपक्षमें विषयके स्फुरणाबिषे कारणके अभावसे विषयका स्फुरण न होगा, यह आशंकाकरके कहतेहैं। यहांयह अर्थहैकि अंधकारसे आवृतहुआ घट व्यवहारके योग्य स्थित होताहै, तिसको अंधकार से बाह्य करके तिसकी व्यवहारकी योग्यताके सम्पादनबिषे प्रत्यक्षादिक प्रमाण प्रवृत्त होतेहैं, सो प्रमाण जबग्रहण करनेको अनिच्छित, अरु प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान)केअविषय अन्धकारकीनिवृत्ति रूप फलबिषे स्थितहोवे, तब घटका स्फुरणरूप प्रयोजनवाला प्रमाणका फल होताहै। जैसे छेदनरूप जो क्रियाहै सो छेदन करनेयोग्य वृक्षके दोनों अवयवोंके परस्परके संयोगके निवारण बिषे प्रवृत्तहुई उस छेदनकरने योग्य बृक्षके दोनों (शाखारूप) अवयवोंके द्विधा भाव (होने)रूप फलबिषे स्थित होतीहै, परन्तु वृक्षके दोनों अवयवोंमेंसे एक भी अवयवबिषेभी छेदनरूप क्रिया प्रवृत्ति होती नहीं। तैसेहीयहांभी अन्धकारकी निवृत्तिबिषे प्रमाण निवृत्ति होवेहै, परन्तु घटका स्फुरणतो तिसका फलहै। अरु तिस प्रमाणको स्थिरपना नहीं, क्योंकि प्रकाशक प्रमाताके व्यापारको अस्थिरताहै ताते,] अरुजब पुनःछेदनकरने योग्य बृक्षके अवयवके दोभाग करने (वा होने) रूप फलबिषे 'अन्तबिषे छेदनरूप क्रिया (कि जिससे दोभाग होताहै) तिस अन्तवाली क्रियावत् घट अरु अन्धकारके विवेक के करने बिषे प्रवृत्तहुआ जो प्रमाणसो तो ग्रहण करने को अनिच्छित, अरु अविषयरूप अन्धकारकी निवृत्तिरूप फलबिषे अन्तवाला होताहै, तब अन्तरायवाले (तमच्छिन्न) घटका ज्ञान हैनहीं,इससे सो प्रमाणका फलनहीं। तैसे [किंवा घटादिक जड़ोंको संवित् (चैतन्य) की अपेक्षावाला होनेसे, तिसबिषे संवित् को प्रमाणकी फलरूपता होनेसे भी एक संवित्रूप अजड़ आत्मा बिषे मनमें आरोपित धर्मकीनिवर्त्तकताके बिना संवित्की जनकता

रूपव्यापार संभवे नहीं,इसप्रकार कहतेहैं,यहांयह अर्थहै कि तुरीय रूप आत्माविषे प्रमाणको संवेदनका जननरूप व्यापार कल्पते नहीं, क्योंकि, यह तुरीय संवित् (चैतन्य)रूपहै ताते,अरु आरोपितकी निवृत्तिके बिना प्रमाणजन्य फलरूप संवित्की अपेक्षा का अभावहै ताते,] आत्माविषे आरोपित अन्तःप्रज्ञपने आदिकों के विवेकके करनेविषे प्रवृत्तहुये निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणकाग्रहण करनेको अनिच्छित जे अन्तःप्रज्ञपनादिक तिसकी निवृत्ति के विना तुरीयविषे व्यापारका संभव नहीं, क्योंकि अन्तःप्रज्ञपने आदिकोंकी निवृत्तिके समकालही प्रमातापने आदिक भेदकी निवृत्तिहै ताते, इसप्रकार अग्रिम कहेंगे। तथाच "ज्ञाते द्वैतं न विद्यतइति" (जानेहुये द्वैतविद्यमान हैनहीं) इसवाक्यप्रमाण से ॥ [किंबा ज्ञानके आधीन द्वैतकी निवृत्ति करकेयुक्त क्षणविना अन्यक्षणविषे ज्ञान स्थितहोनेको समर्थ नहीं । अरु अस्थिरहुआ ज्ञान व्यापारार्थ परिपूर्ण नहीं, अरु तैसे हुये ज्ञानका द्वैतकी निवृत्तिसे भिन्न आत्माविषे व्यापारनहीं, इसप्रकार कहतेहैं,] ॥ ज्ञानको भेदकी निवृत्तिरूप फलविना अन्यक्षणविषे अस्थिरताके हुये, अरु [ननु, ज्ञान जोहै सो द्वैतका निवर्त्तकहुआ हुआभी अपने स्वरूपको निवर्त्त करता नहीं,क्योंकि निवर्त्त होनेकी योग्यता का अरु निवर्त्तकतारूप धर्मका एकही धर्मीविषे होनेकाविरोध है ताते । याते यावत् पर्यन्त ज्ञानका निवर्त्तक अन्यन आवेगा तावत् ज्ञान स्थिर होवेगा, यह आशंका के हुये समाधान कहते हैं। यहां यहभावहै कि, द्वैतके निवर्त्तक ज्ञानको द्वैतकी निवृत्तिके अनन्तर भी अपने अन्य निवर्त्तक की अपेक्षा करके स्थितहुये उन उन ज्ञानको अन्य अन्य निवर्त्तक की अपेक्षावाला होनेसे प्रथमज्ञानको भी निवर्त्तकपनेकी असिद्धी होवेगी] ज्ञानके स्थिर हुये अनवस्था प्रसंग होनेसे द्वैतकी अनिवृत्ति होवेगी । [यहां यह अर्थहै कि ज्ञानको अपने निवर्त्तकपनेका असंभव नहीं,क्योंकि (ज्ञानको) अपने अरु दूसरेके विरोधी बहुत पदार्थों की प्रतीति

है ताते] एतदर्थ निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणके व्यापारके समकाल में ही आत्माबिषे आरोपितजे अन्तःप्रज्ञतापनादिक अनर्थ तिनकी निवृत्ति होतीहै, इसप्रकार सिद्धहुआ ॥ अब तात्पर्य सहित मूल श्रुतिका अर्थ कहते हैं ॥ यहां "नान्तःप्रज्ञमिति" (अन्तःप्रज्ञ नहीं) इसपद से तैजसका निषेध किया, "नबहिःप्रज्ञमिति" (बहिः प्रज्ञनहीं) इसपदसे विश्वका निषेध किया, अरु "नोभयतःप्रज्ञमिति" उभयतः (प्रज्ञनहीं) इसपद करके जाग्रत् अरु स्वप्नकी संधीरूप मध्य अवस्थाका निषेध किया, अरु "नप्रज्ञान घनमिति" (प्रज्ञानघन नहीं) इस पदसे सुषुप्ति अवस्था का निषेध किया, क्योंकि सुषुप्तिको बीजभावकी अविवेक रूपताहै ताते, अरु "नप्रज्ञमिति" (प्रज्ञनहीं) इस पद करके एककाल बिषे सर्व विषयों के ज्ञातापने का निषेध किया, अरु "नाप्रज्ञमिति" (अप्रज्ञनहीं) इसपद से अचेतनपने का निषेध किया ॥शंका॥ननु, पुनः आत्माबिषे प्रतीयमान जे अन्तःप्रज्ञ आदिक तिनकारज्जुआदिकों बिषे सर्पादिकोंवत् निषेध होनेसे असत्पना कैसे जानिये, समाधान ॥ तहां कहते हैं। अन्तःप्रज्ञ आदिकों के ज्ञानस्वरूप होने बिषे अबिशेषताके हुये २ भी रज्जुआदिकों बिषे सर्प जलधारादिकों के कल्पित भेदवत् परस्पर असत्पना है । अर्थात् जैसे एकही रज्जुरूप अधिष्ठान बिषे अध्यस्त जे ,सर्प ,दंड, जलधारा, सो कल्पित अरु परस्पर में व्यभिचारी, अर्थात् जिसकालमें रज्जुबिषे सर्पकी प्रतीति है तिसही कालमें दंड अरु जलधारा की नहीं, अरु जिसकाल बिषे दंडकी प्रतीति है तिसकाल बिषे सर्प अरु जलधाराकी प्रतीति नहीं, अरु जिसकाल में जलधारा की प्रतीति है तिसकाल में सर्प अरु दंडकी प्रतीति नहीं, ताते अधिष्ठान रज्जु से बास्तव करके अपृथक् भी जे कल्पित ,सर्प, दंड, जलधारा, सो उक्तप्रकार परस्पर में व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् है। तैसेही विश्वादिक भी अपने अधिष्ठान से पृथक् सत्तावाले नहीं परन्तु परस्पर व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् हैं।

अरु रज्जुआदिकोंवत् अव्यभिचारतासे तिनके ज्ञान स्वरूप का सत्यपनाहै ॥ अरु जो ऐसाकहे कि तिनका ज्ञानस्वरूप भी सुषुप्ति विषे व्यभिचारको पावता है, सोबनेनहीं क्योंकि सुप्तिवान् पुरुष अनुभव का विषयहै ताते । अरु "नाहिविज्ञातुविज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतइतिश्रुतेः" (विज्ञाताकी विज्ञातिका लोप विद्यमान नहीं, इस श्रुतिके प्रमाणसे) अरु जब ऐसा है एतदर्थही "अदृष्टम्" (अदृष्ट है) अरु जिसकरके अदृष्ट है, तिसही करके "अव्यवहार्य्यम्" अव्यवहार (व्यवहारकरने के अयोग्य) है, अरु अव्यवहार होनेसे "अग्राह्यं" अग्राह्य (कर्मेंद्रियोंसे ग्रहण करने के अयोग्य) है, ताहीते "अलक्षणम्" अलक्षण कहिये लिंग रहित (अर्थात् अनुमान प्रमाणका अविषय) है । अरु जब ऐसाहै तबहीं "अचिन्त्यम्" अचिन्त्य (अन्तःकरणकी वृत्तियों का अविषय)है । अरु जिसकरके ऐसाहै तिसही करके "अव्यपदेश्यम्" अव्यपदेश्य (शब्दप्रमाणका अविषय होने से उपदेश करने वा कहनेके अयोग्य) है । अरु जब ऐसाहै तब "एकात्म्य प्रत्ययसारम्" एकात्म्य प्रत्ययसारहै, अर्थात् जाग्रदादि (अवस्था रूप) स्थानोंविषे यह आत्मा एकहै, इसप्रकार अव्यभिचारी जो प्रत्यय (ज्ञान) तिसकरके अनुसरने (विचार वा अनुभव करने) योग्यहै । अथवा जिस तुरीया की प्राप्ति विषे एक आत्मज्ञानरूप ही सार (मुख्यप्रमाण) है, इसप्रकार का सो तुरीया है "आत्मेत्येवोपासीतइतिश्रुतेः" (आत्माहै इसप्रकारहीउपासना करना) (अर्थात् आत्माको अस्तिभावसेही निश्चय करना, "अस्तीत्येवोपलब्धव्य" इत्यादि अन्यश्रुतिके प्रमाणसे) इस प्रकार अन्तःप्रज्ञत्वादि (भावप्रापक जाग्रदादि) स्थानोंके अभिमानी के धर्मका निषेध किया । अरु "प्रपञ्चोपशममिति" (प्रपंच से रहित है) इसप्रकार (आत्माविषे) जाग्रदादि स्थानोंके धर्मका अभाव कहा । अरु उक्तप्रकारका होने सेही "शान्तम्" शान्त (रागद्वेषादि सर्वविकार अरु विक्रिया रहित) है । इसहीसे

"शिवम्" शिव (शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव परमानन्द बोधस्वरूप) है। अरु "अद्वैतम्" अद्वैत। अर्थात् जिसकरके सर्वभेद विकल्पसे रहित। है, तिसही से "चतुर्थम्" चतुर्थ है ‹। अर्थात् तीन-पादोंकी अपेक्षासे चतुर्थ। तुरीयपाद, "मन्यन्ते" मानते हैं› क्योंकि प्रतीयमान जे विश्वादिक तीन पाद तिनसे विलक्षण है ताते "सआत्मा सविज्ञेय" ‹ सो आत्माहै सो जानने योग्यहै › अरु जैसे प्रतीयमानजे 'सर्प, भूमिकी दरार, दंड, जलधारादिक, तिस सर्वसे पृथक्। अरु तिनसबका आश्रय अधिष्ठान। रज्जु है। तैसे "तत्त्वमसि" ‹सो तूहै› इत्यादि महावाक्योंका लक्ष्य-रूप जो आत्मा। अर्थात् जाग्रदादि अवस्थारूप स्थानोंका, अरु तदभिमानी विश्वादिकों का आश्रय अधिष्ठान अरु सर्वके धर्म कर्मादिकोंसे पृथक् सर्वकाप्रकाशक साक्षी निरुपाधिशुद्ध बिज्ञान घननिर्बिशेष निरुपाधि जो आत्मा सो। अदृष्ट (चक्षुरादिकोंका अविषय) हुआ,। चक्षुरादि सर्वका। द्रष्टाहै, अरु "नहिद्रष्टुर्दृष्टे र्विपरिलोपोविद्यत, इत्यादि,, ‹ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप वि-द्यमान नहीं › इत्यादि श्रुतियों ने कहा है,। ताते सोई सर्वका अनुभवी अपना आप सत्य प्रत्यगात्मा है। सो जानने योग्यहै ॥ यहां। "सविज्ञेय,,‹सो जानने योग्य है › इसप्रकार कहाहै सो। पूर्व। अपने आप आत्माकी। अज्ञात अवस्थाबिषे। अर्थात् अपने आप वास्तविक स्वरूपको यथार्थ न जानने रूप अवस्थाबिषे। आत्मा विषयकज्ञेयपनेकेहुये, आत्माको 'जाननेयोग्य है, इसप्र-कारकहा। अरु। महावाक्योंके लक्ष्यार्थको सम्यक्प्रकार अपने आप। आत्माकरके जानेहुये ' ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इस त्रिपुटि के विभाग रूप द्वैतका अभाव होताहै ७ ॥

हे सौम्य, "अत्रैतेश्लोकाभवन्ति" ‹ यहांयह श्लोक होते हैं › अर्थात् 'यहां [अब "नान्तःप्रज्ञत्वादि" ‹अन्तःप्रज्ञत्वनहीं›इससप्त-संख्यावाले श्रुति मन्त्रकरके उक्तार्थ विषे तिसके वर्णनरूप गौड-पादाचार्य कृत नव ९ श्लोकोंको प्रकटकरतेहैं] "निवृत्तेः सर्वदुः-

गौडपादीयोपनिषदर्थाविष्करणम् ॥

निवृत्तेःसर्वदुःखानामीशानःप्रभुरव्ययः॥ अद्वैतः सर्वभावानांदेवस्तुर्य्योविभुःस्मृतः १० ॥

अथ गौडपादाचार्यकृत कारिका ॥

"निवृत्तेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः" (सर्वदुःखोंकी निवृत्तिका ईशान प्रभु है, अव्यय है) अर्थात् 'प्राज्ञ,तैजस,विश्वरूप लक्षणवाले जीवोंके सर्वदुःखोंकी निवृत्तिका ईशान कहिये नियामक तुरीयरूप आत्म है। सो प्रभुहै। अर्थात् यहां 'ईशान, पदका व्याख्यान रूप 'प्रभु, पदहै, एतदर्थ ईशान कहिये सर्व दुःखोंकी निवृत्ति के अर्थ प्रभु (समर्थ) होताहै (अथात् जो सर्वदुःखोंकी निवृत्तिकरने में समर्थ होवे तिसको 'प्रभु, इसनामसे कहते हैं, सो एक आत्माहीअपने सम्यक् ज्ञानद्वारा अध्यात्मिकादि त्रिविधतापोंको समूल अशेष निवृत्तकरताहै ताते तुरिय आत्माके 'ईशान,इस विशेषणका अर्थ प्रभुहै। क्योंकि सर्व दुःखोंकी जो निवृत्तिहै सो तिस (आत्मा) केज्ञानरूप निमित्तसे होतीहै ताते। अरु यह प्रत्यगात्मा जिससे (वास्तवकरके। स्वरूपसे व्यभिचारको पावता नहीं तिसहीसे अव्यय है। अरु "अद्वैतः सर्वभावानां देवतुर्य्यो विभुःस्मृतः (सर्वभावोंके। मिथ्याहोनेसे। अद्वैतहै, देव तुरीय विभु(व्यापक) कहाहै) अर्थात् (जाग्रदादि अवस्थारूप तीनोंस्थान अरु तिनके विश्वादिक तीनों अभिमानी सो सर्व। रज्जुमें सर्पवत् असत होनेसे। उन सर्वका आश्रय अधिष्ठानरूप तुरीय आत्मा। अद्वैत है। अरु एतदर्थही। अर्थात् सर्वभावोंको मिथ्याहोनेसेही (व्यय (व्यभिचार) के हेतु जे द्वैतवस्तु तिसके अभावसे आत्मा अव्यय है। अरु सो यह सर्वका प्रकाशक होनेसे देव। अर्थात् जाग्रदादि स्थानों सहित विश्वादिकोंके 'रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्तरूप भाव-को, अरु स्वरूपसे उनके अभावको,उनका अधिष्ठान साक्षीहोके

नात्मानंनापरांश्चैवनसत्यंनापिचाऽनृतम् ॥ प्राज्ञः किञ्चनसंवेत्तितुर्य्यंतत्सर्वदृक्सदा १२ ॥

कहते हैं, "नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम्, प्राज्ञः किञ्चन संवेत्ति" (प्राज्ञहै सो न आपको न परकोन सत्यकोन अनृत (झूठ) को, कुछभी जानता नहीं) अर्थात् जिसकरके प्राज्ञ जोहै सो विश्व अरु तैजसवत् कुछ भी आपको जानता नहीं, अरु अविद्यारूप बीजसे उत्पन्न बाह्यके द्वैतरूप, अन्यों को भी जानता नहीं, अरु सत्यको । दृष्टयादिकोंके विषय कार्यको । जानता नहीं । अरु तैसेही अविद्यात्मक बीजरूप अनृत (अविषयकारण) को भी जानता नहीं।एतदर्थ यह प्राज्ञ अन्यथाग्रहण कहिये 'विपरीत ज्ञान, के बीजमय अग्रहणरूप अज्ञान से बद्ध होताहै । अरु " तुर्य्यंतत्सर्वदृक् सदा " (तुरीया सर्वदा सर्वदृक् है) अर्थात् जिसकरके तुरीया अपनेसे इतर (अविद्या)केअभाव से सर्वदा सर्वदृक् (सर्वरूपअरुसर्वकाद्रष्टा) है । एतदर्थ तिसविषे तत्त्वका अग्रहणरूप (अविद्यात्मक) बीजनहीं, 'क्योंकि वो तिस का भी प्रकाशक द्रष्टा है ताते, अरु जब उसविषे उक्त बीजनहीं तिसहीकरके तिसबीजसे उत्पन्नहुआ जो अन्यथाग्रहरूप। अर्थात् विपरीतज्ञान, जीवभावरूप। फलकाभी तिसविषे अभावहै । जैसे सर्वदा प्रकाश रूप सूर्य्यविषे अप्रकाशता वा अन्यथाप्रकाशना संभवे नहीं ।अथवा जैसे सर्वदा स्वयंप्रकाशरूप सूर्य विषे अन्धकार नहीं अरु तिसके अभावहुये तिसकाकार्य जो पदार्थका अन्यथा भासना सोभीनहीं । तैसे सर्वदा स्वयंज्योतिः द्रष्टारूप तुरीयाविषे बीजरूप मूलाज्ञान अरु तिसकाकार्य अन्यथाग्रहण (विपरीतज्ञान, जीवभाव) रूपफल दोनों नहीं । क्योंकि "नहिद्रष्टेर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यत इतिश्रुतेः" (द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप (अभाव) विद्यमान नहीं) इसश्रुतिके प्रमाणसे । अरु वो सर्वका द्रष्टा तुरीया पदार्थका अग्रहणरूपबीजसुषुप्तिका अरु तिसकेकार्यविप-

स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौप्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥ न नि
द्रांनैवचस्वप्नं तुर्य्येपश्यन्तिनिश्चिताः १४ ॥

बीजनिद्रा (मूलाविद्या) तिसकरकेयुक्तहै। अरु तुरीयाको सर्वदा सर्वका द्रष्टा स्वभाववालाहोनेसे सो 'तत्वका अबोधरूप निद्रा (मूलाविद्या), तुरीयाविषैहै नहीं एतदर्थतिस तुरीया विषे कारण का सम्बन्ध नहीं, यह अभिप्राय सिद्ध है १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य, [अब, "कार्य्यकारणबद्धौ ताविष्येतेविश्वतैजसौ" वि विश्वअरु तैजसकार्य्य अरुकारणकरकेबद्धहैं। इसअष्टादश १८ में श्लोकविषे उक्त अर्थको, अनुभवके आश्रयसे वर्णन करते हैं] "स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया" (आद्य दोनौं स्वप्न अरु निद्राकरके युक्तहै, अरु प्राज्ञ तो स्वप्नसेरहित निद्राकरके ही युक्त है) अर्थात् आद्य (प्रथमकहे) जे विश्व अरु तैजस सो दोनों 'रज्जुविषे सर्पवत्, (अध्यस्त । जे अन्यथाग्रहणरूप स्वप्न, अरुतत्त्वके अबोधमय अज्ञानरूप निद्रा, तिन स्वप्न अरु निद्रा दोनोंकरकेयुक्तहै । एतदर्थ वे (विश्व अरु तैजस) कार्य अरुकारण (दोनोंसे) बद्धहैं, इसप्रकारपूर्वकहा । अरु प्राज्ञते स्वप्न से रहित केवल निद्रा (अज्ञान) सेहीयुक्तहै। एतदर्थ कारणसे बद्ध है, इसप्रकार पूर्व कहा । अरु "ननिद्रांनैवचस्वप्नंतुर्य्ये पश्यन्ति निश्चिताः" (निश्चयको प्राप्तहुये, तुरीयाविषे स्वप्नकोनहीं देखते अरु निद्राको भी नहीं देखते) अर्थात् जो (महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञानकरके (निश्चयको प्राप्तहुये ब्रह्मवेत्ता, सो 'सूर्यविषे अन्धकारवत् बिरुद्ध धर्माहोनेसे, तुरीयाविषे स्वप्नको देखते नहीं, अरु निद्राको भी देखते नहीं । एतदर्थही जो (सर्वका प्रकाशक द्रष्टा (तुरीया है सो कार्य्य अरु कारण दोनों से बद्ध नहीं, इसप्रकार पूर्व कहा है १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य, शंका । ननु (पुरुष स्वप्नविषेस्थित कबहोताहै, अरु निद्राविषे कब होता है, अरु तुरीयाविषे निश्चयको प्राप्त

अनादिमाययासुप्तोयदाजीवःप्रबुद्ध्यते । अजम
निद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्ध्यतेतदा १६ ॥

स्वप्न, तिनकरके "यह मेरा पिताहै, यह मेरा पुत्रहै, यहमेरा पौत्रहै, यह मेरा क्षेत्रहै, यह मेरा पशुहै, मैं इनका पोषक स्वामी हौं, दुःखीहौं, इनसे क्षयको पायाहौं, अरु इनसे वृद्धिको भी पायाहौं,,। इत्यादि प्रकारके स्वप्नोंको जाग्रत अरु स्वप्न उभय स्थानोंबिषे देखताहुआ। अनादि कालसे । सोवताहै । अरु " अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्ध्यते तदा "। (जब बोधको प्राप्त होता है तब ' अजहै, अनिद्रहै, अस्वप्नहै, अद्वैतहै, ऐसे जानता है,) अर्थात् सो । अनादि कालका सोयाहुआ जीव । जब वेदान्त के अर्थरूप तत्त्वके जाननेवाले परम दयालु आचार्य से " तू इन पुत्रादिकों का हेतु अरु फलरूप नहीं,, किन्तु "। तत्त्वमसीति"। सो (ब्रह्म) तूहै । इसप्रकार श्रवण करके प्रबोधको प्राप्त होताहै, ' अर्थात् सहस्रावधि माता पिताओं से अधिक जीवोंपर परम कृपाकरके, इस उक्त स्वप्नके जन्म मरणादि महानदुःखों से ग्रसित देख आप आचार्य द्वाराहोके "। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य व रान्निबोधत "।। इत्यादि अपने परम उदारवाक्योंसे अज्ञान निद्रा से जगाय पुनः कहतेहैं कि हे सौम्य ' जैसे सर्व जातिके वृक्षों-क्षारस मक्षिकाके उदरमें भेदसेरहित, समान मधुभावको प्राप्तहो-ताहै, तैसेही यह सर्व चिदाभास जीव सुषुप्ति अवस्था में समान एक बिम्बरूप चैतन्य भावको प्राप्तहोतेहैं अरु जहां पुत्र पितादि वा ब्राह्मण क्षत्रियादि वा मनुष्य पशवादि वा जड़ चैतन्यादि कोई भी भेदभाव विशेष रहता नहीं, अरु जहां को प्राप्तहुये विद्वान् पुनः जीव भावविषे आवते नहीं "। स आत्मातत्त्वमसि "। सोई सर्वका अपना आप प्रत्यगात्माहै, सोई आत्मा तूहै । इसप्रकार जब परमहितकारणी श्रुति महावाक्योंके लक्ष्यार्थको जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा अपने वाक्योंसे इनजीवोंको ' जो अनादि

कालसे मायाकरके सोयेहुये नानाप्रकार के जगत्‌रूप स्वप्नों को देखते जन्म मरणादिकों के महान् क्लेशोंको पावते हैं, जगायके सावधान करती है। तब ऐसे जानताहै। प्रश्न। कैसेजानता है, उत्तर। इस आत्माबिषे बाह्य (कार्य) अरु अन्तर (कारण) वा जन्मादि षट् भावाविकार हैंनहीं। अतएव अजन्मा है, अर्थात् । आत्मा । बाह्य अन्तर सहित अरु । बाह्य अन्तरके धर्मादि । सर्वे भावविकार करके वर्जित (रहित) है। अरु जिस करके इस आत्माबिषे जन्मादिकों की कारणरूपा अविद्या अरु अज्ञान स्वरूप बीजमय निद्रा नहीं, एतदर्थ यह अनिद्र है। अर्थात् सर्वदा बोधस्वरूप है। अरु जिसकरके सो तुरीया अनिद्र। अबोध रहित। है, तिसही करके अस्वप्न है, क्योंकि अन्यथा ग्रहणरूप जो स्वप्नहै सो अबोधरूप निद्राके निमित्तवाला है। अरु सो निद्रा तुरीय आत्मा बिषे है नहीं, अतएव तन्निमित्तक उक्त स्वप्न भी तिसबिषेनहीं। अरु जिसकरके अनिद्र अरु अस्वप्न है, तिसही करके अजन्मा अरु अद्वैत है, इसप्रकार तुरीयरूप आत्माको तब जानता है। जब स्वस्वरूप बिषे जागता है १६॥

१७॥ हे सौम्य,।शंका। जबप्रपंचकी निवृत्तिसे अद्वैतको, जानताहै,तब प्रपंचके अनिवृत्तहुये अद्वैत कैसे सिद्धहोताहै, जहां ऐसी शंकाहै तहां कहते हैं, जो कि परमार्थ सेही प्रपंच विद्यमान होय तब उक्तप्रकार अद्वैतकी असिद्धि होतीहै, यह तेराकथन सत्यहै; परन्तु , रज्जुबिषे सर्पवत्, कल्पित होनेसेसो। प्रपंच। विद्यमान नहीं, एतदर्थ अद्वैतही सिद्ध होताहै अरु "। प्रपंचोयदिविद्येत निवर्त्तेतनसंशयः" (जो कदापि प्रपंच विद्यमान होय तो निवृत्त होय इसमें संशय नहीं) अर्थात् जो यह प्रपंच । स्वरूपसेही। विद्यमान होवे तो निवृत्तहोवे । अर्थात् जो कदापि यह प्रपंच स्वरूपसेही विद्यमान होय तो इसकी निवृत्ति हुये अद्वैत सिद्धहोवे परन्तु । जैसे रज्जुबिषे भ्रान्तिबुद्धि करके कल्पित जो सर्प सो विद्यमान हुआ हुआ भी विवेकसे निवृत्त होताहै, एतदर्थ वस्तुसे

प्रपञ्चोयदिविद्येतनिवर्त्तेतनसंशयः । मायामात्र मिदंद्वैतमद्वैतंपरमार्थतः १७॥

है नहीं। अर्थात् जैसे रज्जुविषे सर्प तैसे आत्माविषे प्रपंच कल्पित होनेसे रज्जुके यथार्थ विवेकहुये उस प्रपंचके हुये हुये भी सत्यरूप रज्जुवत् एक आत्मतत्त्वही सत्य अद्वैत होवैहै, क्योंकि प्रपंच भ्रान्ति करके कल्पित है ताते, वा जिनको रज्जुका यथार्थ विवेक नहीं तिनको द्वैतरूप सर्प सत्यवत् हैं, परन्तु उस भ्रान्ति कालविषे भी सर्प कल्पित होनेसे रज्जु अद्वैतही है, इसप्रकार अविवेक करके प्रपंचकी सत्य प्रतीतिकाल में भी, प्रपंचको भ्रांतिमात्र होनेसे, आत्मा अद्वैतही है। इसप्रकार द्वैतरूप प्रपंच के होतेसंते भी अद्वैतही सिद्धहै। अरु जैसे मायावी पुरुष ने देखाई जो माया सो विद्यमान हुई हुई भी तिसके देखनेवाले पुरुष के नेत्रबन्धके दूरहुये निवृत्त होतीहै, क्योंकि वास्तवसे है नहीं। तैसेही "। मायामात्रमिदंद्वैतमद्वैतंपरमार्थतः"। (यहद्वैत मायामात्र है अरु परमार्थ से अद्वैत है) अर्थात्। जैसे रज्जुविषे सर्प अरु मायावी विषे माया। तैसे यह प्रपंच नामवाला द्वैत मायामात्र (भ्रान्ति करके कल्पित।) है। अरुरज्जु अरु मायावीवत् परमार्थ करके अद्वैतही है। एतदर्थ कोईभी। अविवेकीको। प्रवृत्त हुआ वा। विवेकीको। निवृत्त हुआ। उभयप्रकार। प्रपंच हैही नहीं। इति सिद्धम् १७॥

१८॥ हे सौम्य,। शंका। शास्ता (उपदेष्टा) शास्त्र, अरु शिष्य, इसप्रकारका विकल्प। अद्वैतविषे। कैसे प्रवृत्त होताहै, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं। समाधान।"। विकल्पोविनिवर्त्तेतकल्पितो यदिकेनचित्"। (यदिविकल्प किसी करके कल्पित होय तो निवर्त्त होताहै) अर्थात् विकल्प निवर्त्त होताहै जो किसीकरके कल्पित होय तो। जैसे यह प्रपंच मायावी की माया अरु रज्जुविषे सर्पवत् प्रबोध। यथार्थ ज्ञान। से पूर्वहै। तैसे यह शिष्यादि भेद

विकल्पोविनिवर्त्तेतकल्पितोयदिकेनाचित्उपदेशादयंवा दोज्ञातेद्वैतंनविद्यते १८॥ उपनिषद् ५॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोधिमात्रम् । पादामा त्रामात्राश्चपादाअकारउकारोमकारइति ८॥

रूप विकल्पभी (तत्त्वके) प्रबोध (यथार्थज्ञान) के पूर्वही उपदेश के निमित्तहै । याते "(उपदेशादयंवादो ज्ञातेद्वैतंन विद्यते" (यह वाद उपदेशके जानेहुये द्वैत हैनहीं) अर्थात् यह शिष्य शास्ता अरु शास्त्ररूप जो (व्यावहारिक) कथनहै सो तत्त्वोपदेशसे पूर्वहै, अरु उपदेशके कार्यरूप ज्ञानके पूर्णहुये परमार्थ तत्त्वके जाननेसे (पुनः उपदेष्टादिरूप) द्वैतहै नहीं १८॥

अथ उपनिषदर्थ.॥

८॥हे सौम्य,[उक्तप्रकार तत्त्वज्ञानविषे समर्थउत्तम अरुमध्यम अधिकारियोंको अध्यारोप अरु अपबादसे पारमार्थिक तत्त्व उपदेश किया । अब तत्त्वके ग्रहणमें असमर्थ कनिष्ठ अधिकारि को आत्माके ध्यानबिषे विधानार्थ आरोपदृष्टिकोही आश्रयकरकेमूल श्रुतिके चारमन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं] जो वाच्यकी प्रधानःतावाला ॐकार चारपादवाला आत्मा है इसप्रकार व्याख्यान किया "सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम्,, (सो यहआत्माअध्यक्षर है, ॐकार है, अधिमात्रहै) अर्थात् जो पूर्व ॐकार चारपादवाला आत्माकहा, सो यह आत्मा अध्यक्षर है, अर्थात् वाचककी प्रधानता से अक्षरको आश्रय करके वर्णन कियाहै एतदर्थ अध्यक्षर कहते हैं । प्र० । पुनः सो अक्षर क्याहै । उ० । तहां कहते हैं । सो अक्षर ॐकारहै । अरु सो यह ॐकार पादों से विभाग पायाहुआ अधिमात्र है । अरु मात्राको आश्रय करके वर्त्तता है ताते अधिमात्र है । शंका । ननु, आत्माही पादोंसे विभागको पावताहै, अरु मात्राको आश्रय करके ॐकार स्थित होताहै, ताते पादोंसे विभागको प्राप्तहुये ॐकारका अधिमात्रपना

जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारःप्रथमामात्राऽऽसेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोतिहवैसर्व्वान्कामानादिश्च भवतिय एवंवेद ९ ॥

कैसेहै, जहां ऐसा शंकाहै, तहां कहते हैं, " पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ,, (पादहैं सो मात्राहैं, मात्राहैं सो पादहैं, अकार उकार मकार यह (तीन ॐकारकी मात्राहैं) अर्थात् आत्माके जे पादहैं सो ॐकारकी मात्रा हैं, अरु जे ॐकारकी मात्रा हैं सो आत्माके पादहैं। अतएव पाद अरु मात्राकी एकतासे यह कथन विरुद्ध है, ताते कौनसी वो ॐकारकी मात्रा है, जहां ऐसा प्रश्न है, तहां कहते हैं, अकार उकार अरु मकार, यह तीन ॐकार की मात्रा हैं ८ ॥

९॥ हे सौम्य, तहां [पादोंके मध्यअरु मात्राओंके मध्य विश्व नामक भेदकी अकार रूपताको सूचन करते हैं] विशेषका नियम करतेहैं " जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारःप्रथमामात्राऽऽसेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति " (जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानरहै सो अकाररूप प्रथमा मात्राहै, व्याप्तिसेवा आदिवाले होनेसे ,आप्नोति,) अर्थात् जो जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्राहै । प्र०। किस तुल्यता करके दोनोंकी एकता है, । उत्तर । व्याप्तिसे वा आदिवाले होनेसे । जैसे अकारसे सर्व वाणी व्याप्तहै " अकारोवैसर्वावागितिश्रुतेः " (अकारही सर्व वाणीहै) इस श्रुतिके प्रमाणसे । अरु तैसेही वैश्वानरसे जगत् व्याप्त है । तथाच " तस्यहवैतस्यात्मनोवैश्वानरस्यमूर्द्धैवसुतेज,इत्यादिश्रुतिः " (तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तकही स्वर्ग है, इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, वाच्य (नामी) वाचक (नाम) की एकताको हम कहते हैं " आदिश्चभवति " (आदिवाला होताहै) अर्थात् जिसकी आदिहै, तिसको आदिवाला कहते हैं। अरु जैसे आदि (प्रथमता) वाला अकार नामवाला अक्षर है, तै-

सेही आदिवाला वैश्वानर है। एतदर्थ तुल्य होनेसे वैश्वानरको अकारपना है॥ अब तिन। अकार अरु वैश्वानर। की एकताके ज्ञाताके अर्थ फल कहते हैं "हवैसर्वान्कामान् आप्नोति,यएवंवेद"। (जो ऐसे जानता है सो निश्चय करके सर्व कामोंको पावताहै) अर्थात् जो वैश्वानर अरु अकारकी उक्तप्रकार एकताको जानता है सो निश्चय करके सर्व भोगोंको पावताहै, अरु सो "आदिश्च भवति"। (प्रथम होता है) अर्थात्, ज्येष्ठ श्रेष्ठों के मध्य प्रथम (मुख्य) होताहै ९॥

१०॥हे सौम्य, [अब द्वितीयपाद अरु द्वितीयमात्राकी एकता कोकहते हैं] "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षा दुभयत्वात्"। (स्वप्नस्थानवाला तैजस उकाररूप द्वितीया मात्रा है, उत्कर्षसे वा उभयरूप होनेसे) अर्थात् जो। द्वितीय। स्वप्न स्थानवाला तैजसहै सो ॐकारकी उकार रूप द्वितीया मात्रा है। प्रश्न। किस तुल्यतासे दोनोंकी एकताहै। उत्तर। उत्कर्षता से वा द्वितीयरूपहै ताते। जैसे पाठके क्रमसे अकार से उकार उत्कृष्टहै। अर्थात् प्रणवके उच्चार करने में अकार ह्रस्वहै उकार दीर्घहै, ताते अकारसे उकार उत्कृष्टहै। तैसेही स्थूल उपाधि वाले विश्वसे सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) है। ।अर्थात् स्थूल भूतरूप उपाधिवाले स्थूल देहकी अपेक्षा सूक्ष्म अपंचिकृत भूतोंरूप उपाधिवाला सूक्ष्मदेह अविनाशिहै, एतदर्थ बिश्वसे तैजस उत्कृष्टहै। तिस उत्कर्षसे उन। उकार अरु तैजस। की एकताहै। अथवा जैसे अकार अरु मकारके मध्यबिषे स्थित उकारहै, तैसेही बिश्व अरु प्राज्ञके मध्यबिषे स्थित तैजसहै, एतदर्थ उनकी उभयरूपताकी तुल्यतासे एकताहै। अब उनकी एकताके जाननेवाले बिद्वानको जो फल प्राप्तहोता है सो कहते हैं। "उत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिंसमानश्चभवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद"। (जो ऐसे जानताहै सो ज्ञान सन्ततिको बढ़ावताहै अरु समान होता है अरु इसके कुलबिषे अब्रह्मवित्

स्वप्नस्थानस्तैजसउकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति हवैज्ञानसन्ततिंसमानश्चभवतिनास्याब्रह्मवित्कुलेभ्मवतियएवंवेद १० ॥

होता नहीं } अर्थात्, जो उक्तप्रकार उकार अरु तैजसकी एकता को जानताहै । सो बिद्वान् अपने पुत्र वा शिष्यवर्गोंमें । ज्ञानसंततिको बद्धमान करताहै, अतएव उसके कुल (पुत्रों वा शिष्यों) में अब्रह्मवेत्ता (ब्रह्मका न जाननेवाला) कोई होता नहीं । अरु पुनः वो समान होताहै, अर्थात् मित्रके पक्षवत् शत्रुके पक्ष में भी द्वेषकरता नहीं । उभयमें समभावही रखताहै १० ॥

११॥हे सौम्य,[अब तृतीय पाद अरु तृतीय मात्राकी एकताको कहतेहैं] " सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारस्तृतीया मात्रा, मितेरपीतेर्वा " { सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ मकाररूप तृतीयामात्राहै, परिमाणसे वा एकतासे } अर्थात् जो सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञहै सो ॐकारकी मकाररूपा तृतीयामात्राहै । प्रश्न । किस तुल्यताकरके दोनोंकी एकताहै । उत्तर । परिमाणसे वा एकता से । यहां इस प्रकार इन । प्राज्ञ अरु मकारमात्रा । दोनोंकी एकताहै , प्रस्थ (धान्यके परिमाण , मापने, के पात्र) से यव धान्यादिक अन्न के परिमाण (माप) वत्, जैसे लय अरु उत्पत्तिबिषे प्रवेश अरु निकसनेसे । अर्थात् लयबिषे प्रवेश अरु उत्पत्तिबिषे निकसनेसे । प्राज्ञकरके बिश्व अरु तैजस परिमाणकिये (मापे) वत् होतेहैं । तैसेही अकार अरु उकार, यह दोनों अक्षर, ॐकारके उच्चारकी समाप्तिबिषे अरु पुनः उच्चारके प्रारंभविषे मकार में प्रवेश करके निकसेहुयेवत् होतेहैं । अर्थात् ॐकारके उच्चारण करते प्रथम अकार निकलताहै सो उकारके उच्चारणहुये उकारमें लयहुयेवत् होताहै अरु अन्त के मकारके उच्चारणहुये वो उकार मकारमें लयहुयेवत् होताहै, इसप्रकार अकार उकार दोनों अक्षर ॐकारके उच्चारकी समाप्तिबिषे मकारमें प्रवेशहुयेवत् हो-

सुषुप्तस्थानःप्राज्ञोमकारस्तृतीयामात्रा । मितेरपीतेर्वा मिनोतिहवाइदछंसर्व्वमपीतिश्चभवतियएवंवेद ११ ॥

तेहैं । अरु पुनः ॐकारके उच्चारके प्रारंभमें वे दोनों अक्षर (अ, उ, मकारसे निकसेहुयेवत् होते हैं । ताते सो । अकार अरु उकार । मकारकरके परिमाणकिये (मापे) वत् होतेहैं । एतदर्थ तिन । प्राज्ञ अरुमकार । दोनोंकी तुल्यतासे एकताहै । अथवा जैसे ॐकारके उच्चारकिये मकार रूप अन्तिम अक्षरबिषे अकार अरु उकार यहदोनों एकरूप हुयेवत् होतेहैं, तैसे सुषुप्तिकालबिषे बिश्व अरु तैजस प्राज्ञबिषे एकहुयेवत् होतेहैं। एतदर्थ तुल्यहोनेसे प्राज्ञ अरुमकारकी एकताहै । अब तिन । प्राज्ञ अरु मकार । की एकताके जाननेवाले बिद्वान्को जोफल प्राप्तहोताहै सोकहतेहैं। "मिनोतिहवाइद‌ंछ सर्वमपीतिश्चभवाति यएवं वेद"। (जो ऐसे जानताहै सोसर्वको जानता जगत्का कारण होताहै) अर्थात् जो उक्तप्रकार प्राज्ञअरु मकारमात्राको एककरकेजानताहै सो।कारण का ज्ञाताहोनेसे, सर्वको जानताहै । अर्थात् प्राज्ञ अरु मकारकी एकताका जाननेवाला निश्चयकरके इस।कार्य्यकारणात्मक समस्त।जगत्को यथार्थजानताहै, अरुआप 'प्राज्ञरूप मकारमात्राका ज्ञाता (अभेदोपासक) होनेसे । जगत्के कारण भावको प्राप्त होताहै ॥ यहां [एकताके ज्ञानबिषे फलके भेदके कथनसे उपासनाका भेद होगा , यह आशंकाकरके साधनोंबिषे फल केभेदकी श्रुतिके अर्थ वादपनेको अंगीकारकरके कहे हैं] अवान्तर फलका जो कथनहै सो मुख्य साधनकी स्तुत्यर्थहै ११ ॥

हे सौम्य, यहांजो ' बिश्व, तैजस, प्राज्ञ, इनपादोंकी क्रमशः ' अकार, उकार, मकार, इनमात्राओं के साथ एकता कहीहै तहां तिनके साथ में जाग्रदादि स्थानोंकी भी एकता चिन्तनीय है , इसका विचार इसग्रंथके अन्तमें प्रकाशित करेंगे ॥

गौडपादीय श्लोकाः ॥

विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम् । मात्रा
सम्प्रतिपत्तौस्यादाप्तिसामान्यमेवच १९ ॥
तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षोदृश्यतेस्फुटम् । मात्रा
सम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वंतथाविधम् २० ॥

गौडपादीय कारिका ॥

१९॥ हेसौम्य, [पादोंका अरु मात्राओंका जोसनिमित्तके एकत्व चार मन्त्रों करके श्रुतिने कहा, तिसविषयक पूर्ववत् श्रुत्यर्थके वर्णनरूप गौडपादाचार्यकृतषट् श्लोकनको प्रकट करते हैं] "गौडपादीय श्लोकाः" (अत्रैते श्लोका भवन्ति) (यहां यह 'गौडपादाचार्यकृत श्लोक, (मन्त्र) होतेहैं) "विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्" (विश्वके कहनेकी इच्छाकेहुयेआदिपनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखतेहैं) अर्थात् विश्वके अकारमात्रा रूपपनेके कहनेकी इच्छाकेहुये, अर्थात् विश्वका अकारमात्रारूपपना जब कथनकरनेको इच्छितहोय, तब उक्त न्यायसे आदिपनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखतेहैं। अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेवच" (मात्राके निश्चयविषे व्याप्तिकी तुल्यताही श्रेष्ठहै) अर्थात् मात्राकी एकताविषे कहिये विश्वका अकारमात्रापना, वा मात्राकी विश्वरूपता, जब निश्चयकरतेहैं तब (उस एकताके निश्चयविषे) व्याप्तिकी तुल्यताही श्रेष्ठहै १९ ॥

२०॥ हे सौम्य, "तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम्" (तैजसके ज्ञानविषे उत्कर्षरूपता स्पष्ट दीखतीहै) अर्थात् तैजसके उकाररूपमात्राके उकारमात्रापनेके ज्ञानविषे, अर्थात् तैजसके उकाररूपमात्रापनेके कहनेकी इच्छाके होनेसे (तिसकथनार्थ) उत्कर्षरूप तुल्यता स्पष्ट देखतेहैं। अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वंतथाविधम्" (मात्राके निश्चयविषे तिसही प्रकारका उभयपना

मकारभावेप्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् । मात्रास
म्प्रतिपत्तौतु लयसामान्यमेवच २१ ॥

त्रिषुधामसुयत्तुल्यं सामान्यंवेत्तिनिश्चितः । सम्पू
ज्यःसर्व्वभूतानां वन्द्यश्चैषमहामुनिः २२ ॥

कहिये 'द्वितीयपना, स्पष्टही है। और सर्व पूर्व श्रुतिकेदशवें मंत्र के भाष्य में कहे प्रमाण जानलेना २० ॥

२१ ॥ हे सौम्य, "मकारभावेप्राज्ञस्यमानसामान्यमुत्कटम्" (प्राज्ञके मकार भावबिषे मानकी समता श्रेष्ठहै) अर्थात् प्राज्ञके मकार मात्रारूप भाव (होने) बिषेमान (परिमाणवामाप) की तुल्यताही श्रेष्ठहै। अरु "मात्रासम्पतिपत्तौतुलयसामान्यमेवच" (मात्राके निश्चयबिषे तोलयकी तुल्यताही श्रेष्ठहै २१ ॥ इसका बिशेषार्थ मूल श्रुतिके एकादशवें मन्त्रके भाष्यमें कहे प्रमाण जानना ॥

२२ ॥ हेसौम्य, "त्रिषुधामसुयत्तुल्यंसामान्यंवेत्तिनिश्चितः" (तीनधामोंबिषे जो तुल्यसमताकोनिश्चयको पायासंता जो जानताहै) अर्थात्, उक्तप्रकारके 'जाग्रत्, स्वप्न, अरुसुषुप्तिरूप तीनो स्थानोंबिषे जो तुल्य समता कही है, तिसको 'यह समता इसप्रकारही है, इसमें संशय नहीं' इसप्रकार निश्चयको प्राप्तहुआ जो जानताहै सो "सम्पूज्यःसर्वभूतानांवन्द्यश्चैवमहामुनिः" (सर्व भूतोंकरके सम्यक्प्रकार पूजनेयोग्य, बन्दनाकरनेयोग्य महामुनि होताहै) अर्थात् जोउक्तप्रकार अकारादि तीनमात्रा अरु विश्वादि तीनपाद, इनकी अभेदताको निश्चय पूर्वक यथार्थ जानता है, सो विद्वान् इस लोकमें सर्व प्राणियों करके पूजने (मान्यदेने) अरु बन्दना (नमस्कारादि) करनेयोग्य महामुनि (आत्मवेत्ता) होवैहै २२ ॥

२३ ॥ हे सौम्य, अब [पूर्वोक्तपाद अरु मात्राओंकी समताके ज्ञानवालेध्याननिष्ठके फलकोकहते हैं] "अकारोनयतेविश्वमुका-

अकारोनयतेविश्वमुकारश्चापितैजसम्मकारश्चपु-
नःप्राज्ञंनामात्रेविद्यतेगतिः २३ ॥

रश्चापितैजसम्" । (अकार विश्वको प्राप्त करताहै, अरु उकार तैजसको प्राप्त करताहै) अर्थात्, उक्तप्रकारकी तुल्यतासे आत्मा के (विश्वादि) पादोंकी, (अकारादि) पादोंके साथ एकताको करके (अर्थात् ओंकार के वाचकपने अरु लक्ष्य वाच्यकी एकता को निश्चय करके) पुनः उक्तप्रकारके ॐकार को सम्यक्प्रकार जानके जो ध्यावता (ध्यानकरता) है तिसको, अकार जो है सो विश्वके अर्थ प्राप्तकरताहै । अर्थात् अकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार को जाननेवाला पुरुष वैश्वानरके भावको प्राप्त होताहै । अरु तैसेही उकार भी तैजसके अर्थ प्राप्त करता है । अर्थात् उकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकारका जाननेवाला विद्वान् हिरण्यगर्भके पदको प्राप्त होता है । अरु "म-कारश्चपुनःप्राज्ञंनामात्रेविद्यतेगतिः" । (पुनःमकार प्राज्ञके 'अर्थ प्राप्त करता है, अमात्रविषे गति विद्यमान नहीं) अर्थात् उकार की गतिके पश्चात् मकाररूप मात्राके आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार का जाननेवाला विद्वान् अव्याकृत भावको प्राप्त होताहै । अरु [अब यहां तो पादोंका अरु मात्राओं का विभाग है नहीं । अरु तिस ॐकाररूप तुरीय आत्मा विषे स्थितहुये पुरुषको, प्राप्त होनेवाला, अरु प्राप्त होने योग्य, अरु प्राप्ति, इस तीनोंरूप त्रिपुटीका विभाग है नहीं । इसप्रकार कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि ' स्थूलप्रपंचजाग्रदवस्था, अरु विश्व अभिमानी यह तीन अकारमात्रा रूप हैं । अरु सूक्ष्मप्रपंच, स्वप्नावस्था, तैजस अभिमानी, यह तीन उकार मात्रारूपहैं । अरु स्थूल सूक्ष्म उभय प्रपंचों का कारण, सुषुप्ति अवस्था, प्राज्ञ अभिमानी, यह तीन मकार मात्रारूप हैं । अरु तिनमात्राओं में पूर्व पूर्व मात्रा उत्तर उत्तर मात्राके भावको प्राप्त होती हैं (अर्थात् स्थूल अकार

उपनिषद् ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेदयएवंवेद १२ ॥

इतिमांडूक्योपनिषन्मूलमन्त्राःसमाप्तिङ्गताः ॥

ओं तत्सत् ॥

मात्रा सूक्ष्म मकार मात्राके भावको, क्योंकि स्थूलका कारण सूक्ष्म है । अरु सूक्ष्म उकारमात्रा सर्वके कारण मकार मात्राके भावको, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म सर्वकार्योंको अपने कारण भावकी प्राप्ति होती है, इसप्रकार पूर्व पूर्वमात्रा उत्तरोत्तर मात्राके भावको प्राप्त होतीहैं । सो इसप्रकार सर्व ॐकार मात्रहै, इस रीतिसे ॐकारका ध्यान करके स्थितहुये, अरु जो एतावन्त काल पर्यन्त ॐकार रूपसे ज्ञातकरी बस्तु, शुद्ध ब्रह्मही है । इसप्रकार आचार्य्यके उपदेश से उत्पन्न हुये ज्ञान करके मकारपनेसे ग्रहण किये, जोपूर्वोक्त सर्व विभागोंका निमित्त अज्ञान तिसके क्षय होनेसे शुद्धब्रह्म बिषे स्थितहुये पुरुषकी कहीं भी गति कहिये गमन सम्भवे नहीं, क्योंकि देशकालादिकों के परिच्छेद के अभाव से व्यापकता प्राप्त होनेसे] मकारके क्षयहुये बीजभावके अभाव से अमात्ररूप ॐकार बिषे (प्राप्तहुये को (कहीं भी गति (लोकान्तर को गमन (नहीं ॥ क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" (ब्रह्मका जाननेवाला 'व्यापक, ब्रह्मही होताहै २३ ॥

अथ उपनिषदर्थ ॥

१२ ॥ हे सौम्य, [ॐकारका स्फुरणरूप जो प्रत्यक् चैतन्य है (अर्थात् ॐकारके स्फुरणसेलक्षित लक्ष्यरूप प्रत्यक् चैतन्य है (सो तिनमात्रावाले अध्यस्त (कल्पित) ॐकारके साथ तादात्म्यतासे ॐकार (नामसे कहाजाताहै । तिसकी "अमात्रः" (अमात्रहै) इत्यादिरूप यह बारहवीं संख्यावाली श्रुतिके मन्त्र

करके परब्रह्मके साथ एकता, कहनेको इच्छितहै, तिसको प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] " । अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचो पशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव । (अमात्रहै, चतुर्थ है, अव्यवहारहै, प्रपंचके उपशमवालाहै, शिवहै, अद्वैतहै, ऐसे, ॐकार आत्माही है,) अर्थात् नहीं है मात्रा जिसकी ऐसा जो । लक्ष्य रूप । ॐकार सो अमात्र है, अरु चतुर्थ कहिये तुरीय रूपहुआ केवल आत्माही है, अरु वाचक अरु वाच्यरूप जो वाणी अरु मन तिनको 'मूलाज्ञानके क्षयहुये, क्षीणहोनेसे व्यवहार करने को अयोग्यहुआ । आत्मा अव्यवहार्य है । अरु प्रपंचके उपशम वाला होनेसे । अर्थात् सकारण प्रपंचके उपशमहुये आत्माप्रकट भानहोता है ताते प्रपंचके उपशमवाला है, वा अद्वैत आत्माके सम्यक् ज्ञानहोने से प्रपंच उपशम भावको प्राप्त होताहै ताते प्रपंचके उपशमवालाहै । उसको प्रपंचोपशम, इस विशेषणसे कहते हैं। अरु शिव (कल्याणस्वरूपहै) अरु अद्वैतहै । अर्थात् जिस एक संख्याकी प्रतियोगी दो संख्याहैं अरु जो दो संख्याकी प्रति योगी एक संख्याहै तिनसे रहित, अर्थात् एक अरु दो, यह जो संख्याहै सो सापेक्षिक अरु सम विषम भाववालीहै, अरु आत्मा है सो सापेक्षता अरु समविषम भावसे रहित होनेसे सर्व संख्यातीत अद्वैत है, वा संख्याबद्ध परिच्छिन्नतासे रहित होने करके सर्व संख्यातीत अद्वैत है। ऐसे उक्तप्रकारके । ॐकारके लक्ष्य आत्माके । ज्ञातापुरुषकरके उच्चारण कियाहुआ ॐकार । वाचक वाच्यकी अभेदता सो। तीनमात्रावाला अरु तीनपादवाला । एको आत्माही है । हे सौम्य यहां एक यहभी विचार हैकि 'जैसेरज्जु विषे अध्यस्त जो सर्पवत् सर्परूप अरु तिसका नामसर्प, यह दोनों नाम नामीकी रज्जुकेअज्ञानमें एकताहै, अर्थात् उसअध्यस्त सर्पका नामरूप दोनों रज्जुके अज्ञानसे कल्पित होने करके उस अज्ञानमें दोनोंकी एकताहै । अरु रज्जुके ज्ञानहुये उनदोनों को कल्पित होनेसे उनकी असत्यतामें एकता है । अरु रज्जुके

ज्ञानहुये उस कल्पितसर्पके नामरूपका परिणाम सत्य रज्जुरूप है, क्योंकि उसकी रज्जुसे पृथक् सत्ताका अभावहै ताते। अरु जो जिसकी अन्तः स्थितिहै सोई उसकी आद्यस्थिति है, अरु जो आद्यन्तःस्थितीहै सोई उसकीवर्त्तमान स्थिती है। तथाच "आदावन्तेचअन्नास्तिवर्त्तमानेपि तंतथा" "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि प्रमाणसे। अर्थात् रज्जु बिषे भासमान जो सर्प सो भ्रान्तिकालसे पूर्व द्वैतके अभावसे रज्जुरूप है अरु भ्रान्तिकी निवृत्तकाल में भी वो अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे रज्जुरूपहै अरु भ्रान्तिकाल में जो अपने नामरूपसहित जो इतरवत् भासताहै सोईभ्रान्तिहै नतु सर्प, दंड, जलधारा, भूदरार, इत्यादिनामरूप से एक रज्जुही सुशोभितहै, अरु तिस बिषेजो सर्पादिकों का कथन व्यापार है सो "वाचारंभणं विकारो नामधेयं" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे वाचारंभणमात्रहीहै। हेसौम्य इस दृष्टांतके विचारप्रमाणही दृष्टान्तभूत अमात्रिक निर्विशेष तुरीय रूप आत्माविषेभी विश्वादि तीनोंपाद अरु अकारादि तीनोंमात्राका विचारजानना। अरु "संविशत्यात्मनाऽऽत्मानंयएवंवेद यएवंवेद" (जोऐसे जानताहैसो अपने आत्मरूपसे अपनेपरमार्थरूप आत्मा बिषे सम्यक्प्रकार प्रवेशकरताहै, यहां जो यएवंवेद, दोबार कहाहै सो उपनिषद्की परिसमाप्तिके अर्थहै) अर्थात् जोउक्तप्रकार (अमात्रिक चतुर्थ तुरीय आत्माको) जानता है सो अपनेही आत्मा (चिदाभासरूप) से अपनेपरमार्थरूप (प्रत्यक् चैतन्यसाक्षी) आत्माबिषे सम्यक्प्रकार प्रवेशको पावताहै। अर्थात् सुषुप्ति नामवाले तृतीयस्थानरूप बीजभावको (जोक्रमशःवाक्विनाही क्रमशःजाग्रत् स्वप्नस्थानद्वयरूप अंकुरोत्पत्तिकाकारण स्थानरूपबीजको, चतुर्थ अमात्रिक तुरीय आत्माके) सम्यक् ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध करके परमार्थ दर्शी आत्मवेत्ताओं के आत्माबिषे प्रवेशको पाय पुनः जन्मको पावता नहीं। अर्थात् जैसे अंकुरद्वयके उत्पत्तिके स्थानरूप कारण बीजके दग्धहुये बीजान्तर जो एक महासूक्ष्म सत्ताहै

सो अंकुर भावपूर्वक वृक्षभावको प्राप्त होती नहीं, तैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयरूप अंकुर के उत्पत्तिका कारण स्थान अविद्यात्मक सुषुप्तिरूप बीजके, सम्यक् ज्ञानाग्नि करके दग्धहुये 'बीजान्तर सूक्ष्म सत्तावत्, सुषुप्तिरूप बीजान्तरतद्विशिष्ट जो चिदाभास जीवसत्ता है सो उक्त अग्निद्वारा उक्तबीजके सम्यक्प्रकार दग्धहुये पुनः स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयात्मक अंकुर भाव पूर्वक संसाररूप वृक्षभावको प्राप्त होता नहीं। क्योंकि तुरीयाको । मूलाज्ञानके दग्धहुये । अबीजरूपता होतीहै ताते । जैसे रज्जु अरु सर्पके विवेकके हुये रज्जुबिषे प्रवेशको पाया जो सर्प, सो पुनः तिन । रज्जुसर्प । के विवेकी पुरुषको भ्रान्ति ज्ञानके संस्कार से पूर्ववत् । उदय । होता नहीं । क्योंकि उक्तविवेकी पुरुषको 'भ्रान्तिज्ञानका कारण अज्ञानरूपबीज । जोकि सर्परूप अंकुर अरु तज्जनित भयादिरूप वृक्षोत्पत्तिका निमित्त है, सम्यक् विवेक रूप अग्निसे दग्धहोता है ताते । तैसे यहां भी जानना । अरु साधक भावको प्राप्तहुये, सत्मार्ग में वर्त्तनेवाले, अरु मात्रा अरु पादोंकी सम्यक्प्रकार निश्चित एकताके जाननेवाले, ऐसे जे मन्दमध्यम बुद्धिवाले संन्यासी हैं, तिनको तो । उक्तप्रकार मात्रा अरु पादों की अभेदतासे । यथार्थ उपासना किया ॐकार "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् , एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोको महीयते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे । ब्रह्मकी प्राप्ति (क्रममुक्ति) के अर्थ । अर्थात् केवल प्रणवोपासना का मध्यमाधिकारी संन्यासीको उक्तप्रकार यथार्थ त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना से ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप आवान्तर फलहोय वहां ब्रह्माद्वारा अमात्रिक तुरीय आत्माका सम्यक्ज्ञान होनेसे कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति है । परम आलम्बन है । तैसे अग्रिम कहेंगे "आश्रमास्त्रिविधा हीना इत्यादि" १२ ॥

इतिश्रीमांडूक्योपनिषन्मूलमन्त्रभाषाभाष्यसमाप्तम् ॥

ॐतत्सद्हरिःॐ ॥

गौडपादीयश्लोकाः ॥

ओंकारंपादशोविद्यात्पादामात्रानसंशयः। ओंकारंपादशोज्ञात्वानाकिंचिदपिचिन्तयेत् २४॥

युञ्जीतप्रणवेचेतःप्रणवोब्रह्मनिर्भयम् । प्रणवेनित्ययुक्तस्यनभयंविद्यतेक्वचित् २५ ॥

२४॥हेसौम्य, "पूर्ववदत्रैतेश्लोकाभवन्ति" (पूर्ववत्यहांये (गौडपादाचार्यकृत) श्लोक होतेहैं) [जैसे पूर्व गौडपादाचार्यने श्रुत्यर्थके प्रकाशक श्लोकरचेहैं, तैसे पश्चात् भी उक्त आचार्यकृत श्लोक श्रुत्यर्थ बिषे संभवेहैं, यह कहते हैं] "ओंकारंपादशोविद्यात्पादामात्रानसंशयः" (पादही मात्रा हैं, अरु मात्राही पाद हैं, यामें संशय नहीं, ॐकारको पादोंसे जानना) अर्थात् उक्त प्रकारकी तुल्यतासे (विश्वादि) पादही मात्राहैं, अरु (अकारादि मात्राही पादहैं, इस विषय में कुछ भी संशय नहीं, अरु ॐकार (आत्मा) पादों करकेही जानना। अरु " ओंकारं पादशो ज्ञात्वानकिंचिदपिचिन्तयेत् " (ॐकारको जानके कुछ भी चिन्तन करना नहीं) अर्थात् ॐकार (तुरीय) को पादोंसे (विश्वादि पादोंकी विशेषतासे) जानके(निर्विशेष आत्माको अनुभव करके) दृष्ट अर्थरूप (इसलोकके विषय) अरु अदृष्ट अर्थरूप (परलोकके विषय) प्रयोजन को चिन्तन करना नहीं, क्योंकि (सर्वरूपसे एक ॐकार आत्माही है इसप्रकारका जाननेवाला) कृतार्थ, (ज्ञातज्ञेय) होताहै ताते २४ ॥

गौडपादीय कारिका ॥

२५॥ हेसौम्य, [ॐकारकेध्यानबिषे कुशलपुरुषको सर्वद्वैतके अपवाद करनेवाले ॐकारके सम्यक् ज्ञानसेही कृतार्थता होती है, इसप्रकार कहा। अब तिस ॐकारके ज्ञानसे रहित अरु परके उपदेशमात्रको आश्रय करनेवाले पुरुषके अर्थ ध्यानकी कर्त्तव्यता कहते हैं] "युञ्जीतप्रणवेचेतःप्रणवोब्रह्मनिर्भयम्" (ॐ-

प्रणवोह्यपरंब्रह्मप्रणवश्चपरःस्मृतः । अपूर्व्वोऽनन्तरोबाह्योनपरःप्रणवोऽव्ययः २६ ॥

सर्वस्यप्रणवोह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैवच । एवंहिप्रणवंज्ञात्वाव्यश्नुतेतदनन्तरम् २७ ॥

कार निर्भयरूप ब्रह्म है, ॐकारविषे चित्तको लगावना ? अर्थात् जिसकरके ॐकार निर्भयरूप ब्रह्महै, तिसकरके व्याख्यान किये परमार्थरूप ॐकारविषे चित्तको लगावना । अरु " प्रणवेनित्य युक्तस्यनभयंविद्यतेक्कचित् " { प्रणवविषे नित्य युक्तको भय कहीं भी नहीं } अर्थात् जो ॐकार विषे नित्ययुक्त पुरुषको । अर्थात् ॐकारका सर्वदा विधिसे उच्चारणरूप जपके, वा पद अरुमात्रा की एकताके विचारके, वा अन्तर अनहद ध्वनिके साधन, करने वाले पुरुषको भय कहीं भी नहीं । क्योंकि " विद्वान्नविभेतिकुतश्चनेतिश्रुतेः " (विद्वान् (प्रणवके लक्ष्यतुरीय आत्माका यथार्थ अनुभवि) किसीसे भी भयको पावता नहीं, यह श्रुतिका प्रमाण है २५ ॥

२६॥हे सौम्य, [ॐकारजोहै सो परब्रह्म अरु अपर ब्रह्मरूप से क्रमकरिके मध्यम अरु मन्द अधिकारियों के ध्यानकी योग्यता को प्राप्त होताहै, ऐसे श्लोकके पूर्वार्द्ध की व्याख्या करते हैं] "प्रणवोह्यपरंब्रह्मप्रणवश्चपरःस्मृतः " { ॐकारही अपरब्रह्म है, ॐकार परब्रह्म कहाहै } [उत्तमाधिकारी को तो सर्व भेदसे रहित एकरस प्रत्यगात्मरूप जो ब्रह्महै, तिसरूप करके ॐकार सम्यक् ज्ञानद्वारा पावने के योग्य होता है, इसप्रकार श्लोकके उत्तरार्द्ध का विभाग करते हैं] अरु " अपूर्व्वोऽनन्तरोबाह्योनपरःप्रणवोऽव्ययः " { ॐकार अपूर्व है, अनन्तर है, अबाह्यहै, अनपर है, अव्यय है } अर्थात् ॐकारही परमात्मा ब्रह्म है, अतएव इसका कारण कोई भी न होनेसे यह अपूर्व है । अरु इसको भिन्नजातीवाला कुछ भी अन्तर नहीं । सर्वाधिष्ठान होनेसे । ताते अन-

न्तर है। अरु इससे बाह्य अन्य वस्तुनहीं अतएव अबाह्यहै। अरु इसको कार्यता नहीं तांते अन पर है। अरु इसका नाश नहीं ताते अव्यय है" सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "सैन्धवघनवदितिश्रुतेः" इत्यर्थः २६॥

२७॥ हेसौम्य, "। सर्व्वस्यप्रणवोह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैवच "। (सर्वका आदिमध्य पुनः तैसेही अन्तॐकार है) अर्थात् जैसेमाया का। किसी शिल्पी आदि मायावी रचित। हस्ति, रज्जुकासर्प, मृग तृष्णाका जल, अरु स्वप्नके पदार्थादिकों का। जो केवल भ्रांतिमात्र अध्यस्तहैं। आदि मध्य अरुअन्त, मायावी रज्जु ऊषर आदिक अधिष्ठान है। अर्थात् जो वस्तु अध्यस्त (कल्पित) भ्रांतिमात्र होती है, तिसका 'आदि, अन्त,मध्य, अधिष्ठानरूपही होताहै। तैसेही मिथ्या (भ्रांतिमात्र) उत्पन्न हुये आकाशादिक सर्व प्रपंचका' आदि, मध्य, अरु तैसेही अंत, एक ॐकार। तुरीय आत्मा। ही है, । अर्थात् जैसे आकाश में जो नीलिमा की भ्रांति " कि आकाश से इतर नीलिमा कुछ वस्तु है, तिस भ्रांति काल के पूर्व वो नीलिमा आकाशरूप है, ताते उस कल्पित नीलिमा की आदि आकाश है, अरु आकाश अरु तिस बिषे अध्यस्त नीलिमा तिनका जब यथार्थ विवेक होताहै तब उस अध्यस्त नीलिमा का परिणाम आकाशरूप होनेसे उसनीलिमाका अन्त भी आकाशरूपहै, अरु जब वो नीलिमा अपने आदि अन्तमें आकाशरूप है तब अपनी पृथक् सत्ता के अभावसे अपने भ्रांतिरूप से वर्त्तमान कालमेंभी आकाशरूप है ताते उसका मध्य भी आकाशरूप है, इसप्रकार आकाश में अध्यस्त नीलिमा तीनोंकाल अध्यस्तरूप है, तैसेही आकाशादि सर्व प्रपंचएक चैतन्य आत्मा बिषे अध्यस्त होनेसे तीनोंकाल सोईरूप है। अरु "। एवंहिप्रणवंज्ञात्वाव्यश्नुतेतदनन्तरम् "। (ऐसेही ॐकारको जानके तिसके अनन्तर प्राप्त होताहै) अर्थात् ऐसेही मायावी रज्जु आदिक स्थानी ॐकार (तुरीयआत्मा) को जानके तिसके अनन्तर (तिसही

प्रणवोह्यीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम् । सर्व्वं व्यापिनमोंकारंमत्वाधीरोनशोचति २८ ॥

क्षणले) तिस परमार्थ वस्तुके आत्मभावको प्राप्त होताहै "ब्रह्म विद्ब्रह्मैवभवति" २७ ॥

२८ हे सौम्य, "प्रणवंहीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम्, सर्वं व्यापिनं" (सर्वकेहृदयविषे स्थितईश्वररूप ॐकारको सर्वव्यापी जानना) अर्थात् सर्व प्राणियों के समूहके स्मरणरूप वृत्तिके आश्रय हृदय विषे स्थित ईश्वररूप ॐकारको 'आकाशवत् सर्वव्यापी जानना । अरु "ओंकारंमत्वाधीरोनशोचति" (धीर पुरुष ॐकारको मानके शोचता नहीं) अर्थात् सर्व प्राणियों के हृदय विषे आकाशवत् महासूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी जो आत्मा तिसको बुद्धिमान पुरुष असंसारी जाग्रदादि स्थान अरु तिनके धर्म्मादिकोंसे असंग अलिप्त, सदाशुद्ध बुद्धि मुक्तस्वभाव मानके शोच करता नहीं क्योंकि उक्तप्रकारके आत्मा विषयक जो अज्ञान सोई अपने विषे जन्ममरणादि क्लेशसे जन्यशोक का निमित्त तिसका आत्माके सम्यक् ज्ञानसे अभाव होताहै ताते "तरतिशोकमात्मविदिति" (आत्मवेत्ता शोककोतरता है) २८ ॥

२९ हेसौम्य, [अबतुरीयभावको प्राप्तहुये ॐकारको जो सम्यक् प्रकार जानता है तिसकी प्रशंसा करते हैं] "अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमःशिवः" (अमात्रहै, अनन्तमात्र है, उपशम रूप है, शिवरूपहै,) अर्थात् ॐकारकालक्ष्य अमात्र (तुरीयपद) है, अरु जिसकरके ॐकारका परिमाण कियाजाय ऐसा जो परिच्छेद, सो कहिये मात्रा सो उक्त लक्षणवाली मात्रा हैं अनन्त जिसकी ऐसा जो ॐकार सो अनन्तमात्र है अर्थात् इस आत्माका एतनापना यह आत्मा एतना है, इसप्रकारका एतनापना परिच्छेद करनेको शक्य नहीं, अरु द्वैतका उपशमरूप है (अर्थात् सर्व द्वैतका उपशमआत्मरूप है) अरु ऐसा होनेसेही शिवरूपहै ।

अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमःशिवः । ओं-कारोविदितोयेनसमुनिर्नेतरोजनः २९ ॥

इतिमांडूक्योपनिषदर्थाविष्करणपरायांगौडपादीयकारिकायां प्रथमसमाप्तप्रकरणम्‌ॐतत्सद्धरिः ॐ ॥

इसप्रकार व्याख्यान किया "ओंकारोविदितोयेनसमुनिर्नेतरोजनः" (ॐकार जिसकरके विदित हुआहै सो मुनिहै इतर नहीं) अर्थात् ॐकार जिसको सम्यक्प्रकार ज्ञातहुआ है सोई परमार्थ तत्त्वका मनन करता मुनि है, इससे इतरजन मुनि नहीं २९ ॥

इतिश्रीमांडूक्योपनिषद्मूलसहितगौडपादीयकारिकाप्रथमाऽऽगमप्रकरणभाषाभाष्यपूर्णम्‌ॐतत्सद्धरिः ॐ ॥

अथगौडपादाचार्य्यकृतकारिकायांवैतथ्याख्यद्वितीयप्रकरणम्भाषाभाष्यप्रारभ्यते २ ॥

१ हे सौम्य, [प्रथम प्रकरणविषे आगमकहिये श्रुति तिसकी मुख्यता करके अद्वैतको प्रतिपादन करनेवाले आचार्य ने तिस (अद्वैत) के विरोधी द्वैतका मिथ्यापना (श्रुतिके) अर्थ से कहा अब तिस (अद्वैतके विरोधी) द्वैतका मिथ्यापना यद्यपि सर्व में प्रधानजे श्रुति तिसके प्रमाणसे कहा है, तथापि युक्तिकी मुख्यता से भी (द्वैतका मिथ्यापना) जानने को शक्यहै। इसप्रकार देखावने के अर्थ (अर्थात् विचारवानों के मध्य प्रकट करणार्थ) द्वितीय प्रकरणको प्रकट करतेहुये, आदि विषे प्रपंचके मिथ्यापने में स्वप्नके दृष्टान्तकी सिद्ध्यर्थ तिसस्वप्नके मिथ्यापनेविषे (अर्थात् जिसवस्तुको दृष्टान्तप्रमाणसे, सत्यवा असत्य, सिद्ध करनी है, तहां प्रथम उस वस्तुके दृष्टान्तकी,सत्यता वा असत्यताका सिद्ध करना अवश्य है एतदर्थ सर्व प्रपंचके मिथ्यापने के सिद्ध करनेमें दृष्टान्तप्रमाण जो स्वप्न तिसकी असत्यताकी सिद्ध्य

ॐअथवैतथ्याख्यंद्वितीयंप्रकरणम् ॥

ॐवैतथ्यंसर्व्वभावानांस्वप्नआहुर्म्मनीषिणः । अन्तःस्थानात्तुभावानांसंवृतत्वेनहेतुना १ ॥

थै । युक्ति सहित वृद्धपुरुषोंकी संमतिको कहते हैं] " ज्ञाते द्वैतं न विद्यत " इस । वाक्यवाले । पच्चीसवें श्लोक बिषे "एकमेवा द्वितीयम् " । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे,जो पूर्वद्वैतका मिथ्यापनाकहा, सो आगममात्र । अर्थात् श्रुतिकी प्रधान प्रामाण्यता से व्याप्त । है, युक्तिसे सिद्ध नहीं, परन्तु तिस शास्त्रकरके ज्ञात हुये अर्थ । द्वैतके मिथ्यापने । बिषे युक्तिकी प्राधान्यतासेभीद्वैत का मिथ्यापना जानने को योग्यहै । क्योंकि प्रमाणों की आधिक्यतासेनिश्चयहुई वस्तुबिषे संशयरहेनहीं ताते । द्वितीयप्रकरण का आरंभकरते हैं " वैतथ्यंसर्व्वभावानांस्वप्नआहुर्म्मनीषिणः " । (बुद्धिमान् स्वप्नवत् सर्व भावपदार्थों के असत्यपने को कहते हैं) अर्थात् प्रत्यक्षादि । प्रमाणोंके ज्ञातकरके कुशल जे । श्रोत्रित्व अरुब्रह्मनिष्ठत्व उन उभयलक्षणों करके युक्त । बुद्धिमान् पुरुषहैं सो । स्वप्न बिषे उपलभ्यमान (अनुभव किये जे बाह्य के घटादि सर्व पदार्थ, अरु अन्तर । अन्तःकरण के सुखादिक । सर्व पदार्थोंके असत्यपने को कहते हैं । अरु तिनके असत्यपने विषे हेतुको कहते हैं " । अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना " (सर्व पदार्थोंको 'शरीरके, मध्यरूपस्थान वाले होनेसे) अर्थात् जिसकरके स्वप्न विषे हस्ति पर्वतादि सर्व पदार्थ । कि जिनका शरीरके भीतर समाना किसीप्रकार भी संभवे नहींसो। शरीरके भीतरही प्रतीत होते हैं, । उस अवस्थामें, शरीरसेबाहर नहीं, एतदर्थ सो सर्व (स्वप्नकेपदार्थ) मिथ्या होनेकोही योग्य हैं । शंका । ननु, अन्तर्गृहादिकों के भीतर प्रतीयमान घटादिकों के हुये, यह उक्त हेतु व्यभिचारी होवेगा, । यह आशंकाकरके । समाधान । कहते हैं । शरीरान्तर संकुचित स्थानवाले होनेरूप

अदीर्घत्वाच्चकालस्यगत्वादेशान्नपश्यति । प्रति
बुद्धश्चवैसर्व्वस्तस्मिन्देशेनविद्यते २ ॥

हेतुसे । अरु जो देहान्तर आवृत नाड़ियांहैं तिनाबिषे पर्वत हस्ति आदिकोंका सद्भाव नहीं अरु जब देह बिषेही पर्वतादिक नहीं तब देहान्तर्गत जो " ता वाअस्यैताहितानाम नाड्यो यथाक्लेशः सहस्रधा भिन्नस्तावताऽणिम्नातिष्ठन्ति, इत्यादि" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे 'खड़ेकेशके सहस्रवें भागप्रमाण अतिसूक्ष्म नाड़ियां ।जोकि स्वप्नरूप भ्रान्ति दर्शनका स्थानहै। हैं तिनबिषे पर्वत हस्ति आदि कहांसे होवेंगे 'किन्तुकहींसेभी कदापिनहीं । अतएव स्वप्नके पदार्थ । अपने होनेयोग्य । देश (स्थान) से रहित होनेसे । अर्थात् जिनमहा सूक्ष्मनाड़ियों में स्वप्नहोताहै तिनमें बाह्यके परमाणुका भी प्रवेशबनेनहीं तब बाह्यके पर्वत सागर वहां कैसे समायँगे किन्तु कदापि नहीं, ताते वहां स्वप्नके पदार्थोंके होनेयोग्य स्थानके अभावसे। रज्जु सर्पादिकोंवत् असत्यही होनेको योग्यहैं १ ॥

२ हे सौम्य, । शंका । ननु, स्वप्नबिषे देखनेयोग्यपदार्थोंका शरीर के भीतर आवृत कहिये संकुचित 'तंग, स्थानहै यह कथन असिद्धहै, क्योंकि पूर्वके देशोंमें सोयाहुआ ,पुरुष उत्तरके देशोंविषे स्वप्नोंको देखेहुयेवत् देखताहै । यह आशंका करके ,समाधान; कहतेहैं, । पूर्वादिकके देशमें सोयाहुआपुरुष । शरीरसेबाह्य । उत्तरादिकोंके । अन्यदेशोंमेंजायके स्वप्नोंको देखता नहीं, किन्तु शरीरके भीतरही । अर्थात् पूर्वदिशाके किसी एक देशबिषे सोया पुरुष जो उत्तरदिशाके किसी एकदेशविशेष सहित वहांके पदार्थों को स्वप्नबिषे देखताहै सो शरीरसे बाह्यके उसदेशमेंजायके स्वप्न को नहीं देखता, किन्तु 'जैसे स्वप्नमें शरीरान्तर जिनवस्तुओं के स्थानके अभावसे भी 'समुद्र,पर्वत, हस्ति, आदिक पदार्थोंको भ्रांतिकरके वा जाग्रत्के अध्यास संस्कार करके देखताहै तैसेही उसदेशको अरु पदार्थोंको देहान्तरही देखताहै । अरु जिसकरके

सोयाहुआ पुरुष, तत्कालही देहके (जहां सोयाहै) देशसे सौ योजनके अन्तरायवाले अरु मासमात्रके कालकरके प्राप्तहोने योग्य देशोंविषे स्वप्नोंको देखेहुयेवत् देखताहै । अरु उस देशकी प्राप्ति अरु वहांसे पुनः आगमनके योग्य दीर्घकालहै नहीं । अर्थात् जिसकरके सोयाहुआ पुरुष जाग्रत्की निवृत्तिके तत्कालही स्वप्न को देखताहै तहां जिसदेशमें सोयाहै तहांसे शतावधि योजनोंके अन्तराय (दूर) वाले, अरु एकमासादिवसकी अवधिसेभी अधिक दिवसोंके कालसे प्राप्तहोनेवाले, देशोंको अरु वहांके पदार्थोंको जाग्रत्में देखेहुयेवत् देखता है । परन्तु उस स्वप्नमें जिस दूरस्थ देशको देखताहैसो जहां सोयाहै तहांसे अतिदूरहै, अरुतिसदेशकी प्राप्ति अरु वहांसे आगमन । अर्थात् स्वप्नमें जिसदूरदेशको देखता है तहां जाने के अरु वहांसे स्वदेशमें आवने । योग्य जो आपेक्षक दीर्घकाल सोहै नहीं, क्योंकि जाग्रत्की निवृत्तिके क्षणही स्वप्नको देखताहै अरु स्वप्नकी निवृत्तिके क्षणही जिसदेशमें सोयाहै तिसही स्थानमें जाग्रत् होताहै, । एतदर्थ, " अदीर्घत्वाच्चकालस्य गत्वा देशान्न पश्यति " । (कालकी अदीर्घतासे देशोंविषे जायके देखता नहीं) अर्थात् । वाह्यकेदूर देशको जाय अरु वहांसे पुनः स्वदेश में आवे एतना । दीर्घकाल न होनेसे स्वप्नको देखनेवाला पुरुष अपने सोवने से अन्य देशमें जायके स्वप्नको देखता नहीं । किम्वा " प्रतिबुद्धश्चवैसर्वस्तस्मिन्देशेनाविद्यते " । (जाग्रत् को प्राप्तहुये को निश्चय करके तिसदेश में कुछ भी विद्यमान नहीं) अर्थात् स्वप्नका द्रष्टापुरुष । जिस देशको स्वप्नमें देखता है । तिस स्वप्न दर्शनके देश विषे निश्चय करके प्रबोध (जाग्रत) को पायाहुआ है नहीं । अर्थात् जो कदापि स्वप्नका द्रष्टापुरुष अन्यदेश विषे जायके स्वप्नको देखता होय तो जिस देशविषे जाय के स्वप्न देखे तिसही देश विषे प्रबोध (जागरण) को प्राप्तहुआ चाहिये, परन्तु सो होता नहीं, । किन्तु जिस देश विषे सोवता है तहां ही जागता है । किम्वा रात्रि विषे [शरी

रके अन्तरही स्वप्नका देखना होता है, इसप्रकार सिद्धहुये [दूरदेश के गमनागमन] योग्य काल के अभावसे स्वप्न का मिथ्यापना है, इसप्रकार कथन किये अर्थका वर्णन करते हैं, यहां यह अर्थहै कि, यद्यपि [वो स्वप्नका द्रष्टापुरुष] रात्रिबिषे सोवता है, तथापि दिवस में [सूर्यादि पदार्थ कि जिनका रात्रि में सर्वथा असंभव है] देखे हुयेवत् देखता है । अरु सोयाहुआ चक्षुरादि इन्द्रियों के संकोच हुये भी रूपादि विषयों को देखता है,अरु सोयाहुआ भी विचरता है [अर्थात् जाग्रत्की ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेंद्रियों के उपराम हुये भी स्वप्न में उभय इन्द्रियों के व्यापारको करता है] अरु यद्यपि वो पुरुष सहकारियोंसे रहित 'अकेला' सोवता है, तथापि बहुत से [सहचारियों के साथ मिलाहुआ स्वप्नमें स्वप्नके पदार्थों को देखता है] एतदर्थ [देशान्तरके गमनागमन] योग्य [दीर्घ] कालके, अरु [उभय] इंद्रियोंके, अरु सहकारियोंके [जो दर्शनादिकोंकी मुख्य सामग्री है] अभाव हुये भी [जो दूर देशादिरूप पदार्थों को देखता सुनता लेता देता आवताजाता आदिक व्यापार होता भासता है, तातै इस अनुमान लक्षणसे भी [स्वप्नका मिथ्यापना सिद्ध है] सोयाहुआ पुरुष दिवसवत् [सूर्य्यादि] पदार्थों को देखता है, अरु बहुतों के साथ मिलता है । अरु [जो कदापि शरीर से बाह्य निकलके स्वप्नमें किसी से मिलताहोय तो [जिनसे मिलता है तिन्होंकरके जाग्रत् कालबिषे पहिचाना चाहिये, परन्तु उसकरके पहिचाना जातानहीं] क्योंकि जो सोयाहुआ पुरुष शरीरके बाह्यदेशमें स्वप्नबिषे मिलाहोय तो ['आज मैंने तुझको अमुक स्थानबिषे देखाथा, इसप्रकार तिसपुरुष ने [कि जिसके साथ स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नमें मिला है] कहना चाहिये, परन्तु इस प्रकार कोई किसीसे कहता नहीं । अतएव स्वप्नबिषे अन्यदेशको जातानहीं ॥ हे सौम्य यहपुरुष स्वप्नबिषे जिनपदार्थोंको देखता है सो चिरकाल तैसाही न रहके अति शीघ्र अन्यभावको प्राप्त

अभावश्चरथादीनांश्रूयतेन्यायपूर्वकम्। वैतथ्यते-
नवैप्राप्तंस्वप्नआहुःप्रकाशितम् ३॥

हुआ देखता है। अर्थात् प्रथम मनुष्यको देखताहै, देखतेही देख-
ते तिसही क्षणमें उसही को वृक्षादिरूपसे देखने लगता है, अरु
मथुरादि देशोंको देखता २ उसही क्षणमें उसको काशी आदिक
देशोंको देखता है वा मिश्रित वा विपरीत देशकाल ग्रामादिकों
को देखताहै, तैसा बाह्यका देशादिक अति अल्पकाल में अन्य-
था भावको पावते नहीं, मनुष्य वृक्षाकार होते नहीं। इत्यादिक
स्वप्नके अरु बाह्यके देशकाल वस्तु आदिकों में व्यभिचार ता-
रतम्यताके देखने से भी, अरु चिरकालके मृतकहुओं को भी स्व-
प्नमें देखनेसे 'कि जिनका उस स्वप्नकालमें बाह्यहोना सर्वथा
असंभव है, यह स्पष्ट सिद्धहै कि स्वप्नकाद्रष्टा शरीर के बाह्यके
देशोंमें जायके स्वप्न देखता नहीं २॥

३॥ हे सौम्य, इस अग्रिम कहनेके हेतुसेभी स्वप्नविषे देखने
योग्य पदार्थ सर्व मिथ्या है। क्योंकि "अभावश्चरथादीनांश्रूयते
न्यायपूर्वकम्" (रथादिकोंका अभावन्यायपूर्वक सुनते हैं) अर्थात्
जिसकरके स्वप्नविषे देखने योग्य (देखेहुये) जे रथादिक तिनका
अभाव "नतत्ररथानरथयोगानपंथानोभवति,इत्यादिश्रुतिः"
(तहां रथनहीं, रथमें योजना करने योग्य अश्वचक्रादि नहीं, अरु
रथके मार्गभी नहीं होते) इत्यादिक श्रुति करके न्याय (युक्ति)
पूर्वक श्रवण करते हैं। अतएव "वैतथ्यंतेनवैप्राप्तंस्वप्नआहुः
प्रकाशितम्" (तिससे स्वप्न विषे प्राप्तहुआही मिथ्यापन
प्रकाशित किया कहते हैं) अर्थात् तिस (स्वप्नद्रष्टा के
शरीर के मध्य (महासूक्ष्म) नाडीरूप स्थान विषे संकोचव
प्राप्तहोने (स्थानके अभाव) आदिक हेतुसे स्वप्न विषे प्र
हुआही जो मिथ्यापना, तिसको अनुवाद करनेवाली "
स्वप्नविषे आत्माके स्वयंज्योतिपनेके प्रतिपादनविषे तत्पर जो

अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते ४॥

यह बृहदारण्यक उपनिषद सम्बन्धी श्रुतिहै, तिसने प्रकाशित कियाहै, इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ३॥

४ हे सौम्य, [उक्त रीतिसे स्वप्नरूप दृष्टान्तके। असत्पनेको। सिद्धहुये, फलित अर्थरूप अनुवादको कहतेहैं] "अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते" (जैसे तहां स्वप्नमें है, तैसे। जाग्रत् बिषे भीहै। ताते जाग्रतबिषे जान्या है, भेदको प्राप्तहुये को संकोच को। प्राप्तहोने करके भेदको पावताहै) अर्थात् जैसे तिस स्वप्नबिषेहै, तैसेही तिस जाग्रतबिषे भीहै, तस्मात् जाग्रत्‌बिषे भी तैसेही जान्याहै। परन्तु स्वप्न बिषे जाग्रतके पदार्थोंसे भेदको प्राप्तहुये पदार्थोंको शरीरके मध्य। सूक्ष्मनाडी। रूप स्थानवाले होनेसे जाग्रत्‌से स्वप्न भेदको पावताहै॥ इसका यह अभिप्राय है कि जाग्रत्‌बिषे दृश्य पदार्थोंको। यावत इन्द्रियादिकोंका विषयहै तिनसबको। मिथ्यापनाहै, यह तो प्रतिज्ञाहै, क्योंकि दृश्य। इन्द्रियादिकों का बिषय। है ताते। यहहेतुहै। अरु, स्वप्नबिषे सर्व दृश्य पदार्थोंवत, यह दृष्टान्तहै अरु जैसे तिसे। स्वयोग्य स्थानके अभाववाले। स्वप्नबिषे। देखेहुये वा देखने योग्य। दृश्य पदार्थोंका मिथ्यापनाहै, तैसे जाग्रत्‌बिषे दृश्यपना। दृश्यपदार्थोंको मिथ्यापना। समानहीहै, यह हेतुका उपनयहै। एतदर्थ जाग्रत्‌बिषे भी मिथ्यापना जान्याहै यह निगमन है। अरु शरीरके मध्य सूक्ष्मनाडी। रूप स्थानवाले होनेसे अरु संकोचको प्राप्तहोनेकरके स्वप्नबिषे दृश्य पदार्थोंका जाग्रतके दृश्य पदार्थोंसे भेद भासता है। अरु। वास्तवकरके। दृश्यपना अरु मिथ्यापना जाग्रत् अरु स्वप्नबिषे तुल्यहीहै॥ (अर्थात् जैसे स्वप्नका दृश्य अपने योग्य स्थान के अभावसे सत्यनहोयके केवल भ्रान्तिमात्रहीहै, तैसेही

सप्रयोजनतातेषांस्वप्नेविप्रतिपद्यते। तस्मादाद्यंत
तत्त्वेनमिथ्यैवखलुतेस्मृताः ७॥

अन्नादिक भोजन अरु जलादिक पानकरके अतृप्त हुआ पुरुष भी जब उत्थान (जाग्रत) को पावताहै तब अपने को क्षुधा तृषाकरके युक्त अतृप्तही मानताहै। तैसेही जाग्रत विषेभी भोजन पानादि करके तृप्त,क्षुधा तृषारहित होयके सोयाहुआ पुरुष,तत्काल ही स्वप्नमें क्षुधा तृषादिकरके अति पीडित दिनरात्रिविषे जल पान अरु भोजनसे रहित अपने को मानताहै। अतएव जाग्रत्के दृश्योंका स्वप्नविषेभी विरोध देखाहै। अर्थात् जैसे स्वप्नमें भोजन पानादिकरके तृप्तहुआ पुरुष जब जागताहै तब अपनेको क्षुधा तृषा करके युक्तही देखताहै ताते यह निश्चयहोताहै कि स्वप्नविषे किया खानपानादि सर्व दृश्य जाग्रतहुये असत्यही होताहै, तैसेही जाग्रत् में सम्यक् प्रकार खान पानादिकरके आतृप्तहुआ पुरुष सोवता है तब तत्कालही स्वप्नमें अपने को क्षुधातृषाकरके पीडित देखता है, तिसकरके यह निश्चय हुआ कि जाग्रत्के खानपान तृप्तिस्वप्न-वान्को असत्यही है। अरु जाग्रत् में जाग्रत सत्य अरु स्वप्न असत्यहै, अरु स्वप्नमें स्वप्नसत्य अरु जाग्रत् असत्य है, ताते इन दोनोंकी सत्यता असत्यता सापेक्षिक अरु व्यभिचारी है ताते दोनोंही असत्य भ्रान्तिमात्र हैं ताते तिन जाग्रत्के दृश्योंकाभी असत्पना स्वप्नके दृश्योंवत् शंकाकरनेके योग्यनहीं अर्थात् जैसे स्वप्नके दृश्योंके असत्पनेमें शंकानहीं, तैसेही जाग्रत्के दृश्योंके भी असत्पने में शंकानहीं, अरु जिनको है तिनको भ्रान्ति है। ऐसा हम मानते हैं" तस्मादाद्यन्ततत्त्वेन मिथ्यैवखलुते स्मृताः "। (ताते आदि अन्तवाले होनेसे वे निश्चयकरके मिथ्या ही जानने) अर्थात् तिसकरके आदि अरु अन्तकरके युक्तपना जाग्रत अरु स्वप्न इन दोनों विषे समानही है, । ताते तिस आदि अन्तवाले होनेकरके वे मननशील जाग्रत् के दृश्योंको

अपूर्वंस्थानिधर्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम्‌।तानयं प्रेक्षतेगत्वायदैवेहसुशिक्षितः ८॥

निश्चय करके मिथ्याही जानते, मानते, कहते हैं ७॥

८ हे साम्ये, पुनः वादी शंकाकरहै। ननु स्वप्न अरु जाग्रत्‌के पदार्थोंको तुल्यहोनेसे जाग्रत्‌के पदार्थोंका जो असत्‌पना कहा, सो असंगतहै, क्योंकि दृष्टान्तको असिद्धताहै ताते। कैसे कि जाग्रत्‌बिषे देखेहुये ये पदार्थही स्वप्नबिषे देखतेहोवे ऐसा नहीं किन्तु स्वप्नबिषे अपूर्व पदार्थोंको देखताहै। क्योंकि जिसकरके स्वप्नविषे चारदांतवाले हस्तिपर आरूढ अष्टभुजावाला आपको देखता। मानताहै, अरु अन्य तीननेत्रवान्‌पनादिक भी अपने बिषे देखता मानताहै। इत्यादि प्रकार अपूर्व (पूर्वनदेखे) को स्वप्नबिषे देखताहै, एतदर्थ स्वप्न अन्य असत्यके तुल्य नहीं, किन्तु उक्तरीत्या सत्यहीहै। याते जाग्रत्‌ के मिथ्यापने के साधनेबिषे जो स्वप्नका दृष्टान्तहै सो असिद्धहै, एतदर्थ स्वप्नवत्‌ जो जाग्रत्‌ को असत्‌पना कहा सो अयुक्तहै,। इसप्रकारका जो वादीका कथन सो बने नहीं। क्योंकि, हे वादिन्‌ स्वप्नबिषे देखेहुये पदार्थोंको जोतू अपूर्व मानताहै, सोतो जडहोनेकरके स्वतः सिद्ध नहीं है, किन्तु। अपूर्वंस्थानिधर्म्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम्‌। (अपूर्व स्थानीका ही धर्म्म है, जैसे स्वर्गके निवासियोंकाहै) अर्थात्‌ सो अपूर्व स्वप्नके द्रष्टारूप स्वप्नस्थानवाले। तैजसरूप। स्थानीकाहीधर्महै। जैसे स्वर्गकेनिवासी इन्द्रादिकोंका सहस्राक्षपना आदिक धर्महै, तैसे यह अपूर्व स्वप्नस्थानी स्वप्नके द्रष्टाका धर्म है, द्रष्टाके स्वरूपवत्‌ स्वतः सिद्ध नहीं। अर्थात्‌ स्वर्गरूप स्थानको प्राप्तहुयेको वहांका स्थानीपना अरु स्थानके सम्बन्धसे सहस्राक्षपनादि धर्म उसके होतेहैं, अरुजब वो इसलोकरूप स्थानको प्राप्त होताहै तब यहांको स्थानीपना अरु द्विभुजादिक धर्म उसके होते हैं, ताते स्थानके सम्बन्धसे प्राप्तहुये धर्म उस स्थानीके स्वरूपवत्‌

स्वप्नवृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् । बहि
श्चेतोगृहीतंसद्दृष्टंवैतथ्यमेतयोः ९ ॥

स्वतः सिद्ध न होनेसे असतहैं, क्योंकि जब वो स्वर्गकास्थानीयहो-
ताहै तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतु-
र्भुजादि धर्महोतेहैं, अरु जबवो इसलोककास्थानी होता है तब
यहां उसके सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्महोताहै
ताते स्थानमें अरु स्थान सम्बन्धी धर्मोंमें व्यभिचारके होनेसे ध
असतहैं अरु उस स्थानीके वास्तविक स्वरूपमें व्यभिचार नहोने
से वो सत्यहै । तैसे ही आत्माको स्वप्नकास्थानी होनेसे वहांका
अपूर्वदृश्य उसका धर्महोताहै सपूर्व नहीं, अरु जबवो जाग्रत्का
स्थानी होताहै तबयहांका सपूर्व उसका धर्महोताहै अपूर्व नहीं,
अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानोंका परस्परमें व्यभिचारहै तैसे
तिनसम्बन्धी सपूर्व अपूर्व दृश्यरूपधर्मोंमेंभी व्यभिचारहै परन्त
उभय स्थानके स्थानीरूप आत्माके अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वत
सिद्ध नहोने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्यही
असतहैं । अरु " तानयं प्रेक्षतेगत्वा यदैवेहसुशिक्षितः " (तिनको
यहजायके देखताहै जैसेही यहां सम्यक् शिक्षापाया (देखताहै)
अर्थात् तिन इसप्रकारके अपने चित्तके विकल्परूप अपूर्व पदार्थों
को यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नरूप स्थानविषे जायके देखता
है, जैसे यहां लोकविषे शिक्षाको पाया (पुरुष (जो देशान्तरका
मार्गहै तिसमार्गसे देशान्तरको जायके तिन (देशान्तरके (पदा-
र्थोंको देखता है, तद्वत् । एतदर्थ रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक
स्थानीके धर्मका असत्पना है, तैसे स्वप्नविषे देखेहुये अपूर्वदृश्य
पदार्थोंको स्थानीका धर्मपनाही है एतदर्थ असत्पना भीहै । ताते
स्वप्नके दृष्टान्तका (अर्थात् जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंके असत् होने
में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पनेका (असिद्धपनानहीं
(किन्तु उसका असत्पना सिद्धही है । ९ ॥

जाग्रद्वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् ।
बहिश्चेतोगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः १० ॥

९ हे सौम्य,[जाग्रत् बिषे देखनेयोग्य पदार्थोंका जो मिथ्यापना है सो तिसबिषे सत् अरु असत्के बिभागकी प्रतीतिसे बिरुद्ध है यह शंकाकरके तिसका दृष्टान्तसे समाधान करते हैं] स्वप्नरूप दृष्टान्तके अपूर्वपनेकी शंकाका निषेधकरके,पुनः जाग्रत् के पदार्थोंकी स्वप्नके पदार्थोंसे तुल्यताको वर्णन करतेहुये कहतेहैं "स्वप्न वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् " (स्वप्नवृत्तिबिषे भी अन्तर तो चित्तसेकल्पित असत् है) अर्थात् स्वप्नवृत्ति (स्वप्नावस्था) रूप स्थानबिषे भी शरीरके अन्तर तो चित्तसे मनोरथ करके कल्पनाकिया बस्तु तो असत्है, क्योंकि अन्य कल्पना व संकल्पके उत्थानके समकालही तिसका अदर्शनहै ताते । अरु " बहिश्चेतोगृहीतं सद्दृष्टंवैतथ्यमेतयोः " बाह्य चित्तसे ग्रहण किया असत है इनका मिथ्यापना देखाहै " अर्थात् तिसही स्वप्न बिषे बाह्यचित्तकरके चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहणकिया जो घटादि बस्तु सो सत्यहै । असत्यहै, इसप्रकार निश्चय कियेहुये भी सत् अरु असत्य का बिभाग देखाहै । अरु इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पनाकिये दोनों बस्तुओंका कल्पित होनेसे मिथ्यापनाही देखाहै ९ ॥

१० हे सौम्य, " जाग्रद्वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् " (जाग्रत्की वृत्तिबिषे भी अन्तर तो चित्तसे कल्पना तो असत् है, अर्थातजाग्रत् की वृत्तिरूपस्थानबिषे भी अन्तर चित्तकरके कल्पना किया बस्तु तो असत् है । अरु " बहिश्चेतोगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्य मेतयोः " (बाहिर चित्तसे ग्रहणकिया सत्है इनका मिथ्यापना ही युक्तहै) अर्थात् तिसही जाग्रत् बिषे बाह्यचित्तसे चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहणकिया घटादि बस्तु सत्है । असत् है इसप्रकार निश्चय कियेहुयेभी सत् असत्का बिभागदेखाहै । अरु इनसत् अरु असत्

उभयोरपिवैतथ्यंभेदानांस्थानयोर्यदि । कएतान्बु-
ध्यतेभेदान्कोवैतेषांविकल्पकः ११ ॥

का मिथ्यापना युक्तहीहै, क्योंकि अन्तर अरुबाह्य चित्तसे कल्पित
पनेकी तुल्यताहै ताते १० ॥
११ हे सौम्य [अब सर्बको मिथ्यापनाहोनेसे प्रमाता प्रमाणा-
दिक व्यवहारका असंभवहोनेसे, पूर्ववादी विशेष शंकाको करता
हुआ कहे है । "उभयोरपिवैतथ्यं भेदानांस्थानयोर्यदि "] यदि
उभय स्थानोंविषे भेदोंको मिथ्यापना ही है, अर्थात जब जाग्रत
अरु स्वप्न इन उभय स्थानोंविषे पदार्थोंके भेदोंका मिथ्यापनाही
है, तब । "कएतान्बुध्यतेभेदान् कोवैतेषांविकल्पकः" । भेदोंको
कौन जानेगा अरु तिनका निश्चयकरके विकल्पक कौन होवेगा,
अर्थात्, इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पनाकिये जो पदार्थोंके
भेद तिनको कौनप्रमाता जानेगा अरु तिनका निश्चयकरके वि
कल्प (कल्पना) करनेवाला कौन होवेगा । यहां अभिप्राय यह है
कि तिनकी स्मृति[यहां यह अर्थहै कि कार्यका कर्त्ताजो है सो पूर्व
अनुभवकिये कार्यको स्मरणकरके तिनके सदृश जातिवाले अन्य
कार्योंको,इसप्रकार स्मृति अरु अनुभवके आश्रयके आक्षेपसे कर्त्ता
का आक्षेपकहनेको इच्छितहै । तैसा होनेसे सर्व के मिथ्यापनेके
सिद्धहुये कर्त्ता आदिकोंके व्यवहारका असंभव निवारण करनेको
अशक्य होवेगा] अरु अनुभवविषे आश्रय कौन होवेगा, [जो
अध्यात्मरूप प्रमाता (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य जीव) है अरु जो अधि-
दैवरूप जगत्का कर्त्ता ईश्वरहै, यह दोनोंभी मिथ्याहैं, इसप्रकार
अंगीकार करनेसे प्रमात्ता आदिकोंको असतपना होवेगा] यह
शंकाकरके पूर्ववादी कहताहै । यहां यह अर्थहै कि जब प्रमाता
वा कर्त्ता तुम्होंकरके अंगीकार नहीं कियाहै, तब, तुमको निरात्म-
भाव (शून्यपना) अभीष्टही होवेगा, परन्तु सो देखनेको शक्य
नहीं । उसका देखना अशक्यहै । क्योंकि आत्माविषे । चक्षुरादि ।

कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया । सएव बुद्ध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः १२॥

करणों [इन्द्रियों] की प्रवृत्तिका असंभवहै, अरु निषेधकरनेवाला ही आत्माहै ताते,] जब उनका कोई भी प्रमाता (प्रमाणकर्त्ता) वा कर्त्ता न मानोगे तब तुमको निरात्म (शून्य) बाद अभीष्ट होवेगा ११ ॥

१२ हे सौम्य, "कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया " (आत्मारूपी देव अपनेबिषे अपनीमायासे आपकरके अपनेको कल्पताहै) अर्थात् [अबसिद्धान्ती कर्त्ता अरु कार्यादिकोंकी व्यवस्थाके असंभवको दूर करताहै] जो आत्मारूपी देव अपनेबिषे स्वमायासे आपकरके आपको रज्जु आदिकोंबिषे सर्पादिकोंवत् अग्रिम कहनेके भेदके आकारवाला [देह] कल्पताहै । अरु " सएवबुद्ध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः " (सोई ही भेदों को जानताहै ऐसा वेदान्तका निश्चयहै ; अर्थात् तैसे सोई [आत्मदेव] तिन भेदोंको जानताहै, इसप्रकारका वेदान्त (उपनिषद् वा ब्रह्मसूत्र) शास्त्रका निश्चयहै । एतदर्थ अनुभवज्ञान अरु स्मृतिज्ञानका आश्रय [आत्मदेवसे] अन्य नहीं । अरु क्षणिकवादियोंवत् अनुभवज्ञान अरुस्मृतिज्ञान निराश्रयनहीं । इत्यभिप्रायः १२॥

१३हेसौम्य,[प्रश्न] कौन संकल्पकरताहुआ किसप्रकारसे कल्पताहै,[तहां] उत्तर [कहते हैं, " विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान् , नियतांश्चबहिश्चित्त एवंकल्पयतेप्रभुः " (प्रभु पदार्थोंको चित्तके अन्तर स्थित नियमित पुनः अनियमितपदार्थोंको नाना करताहै ; अर्थात् प्रभु (समर्थ) जो ईश्वर आत्मा है सो बाह्य चित्तवालाहुआ बाह्य अपर ' लोकप्रसिद्ध, शब्दादिरूपपदार्थोंको, अरु अन्य [शास्त्रप्रसिद्ध] बासनारूपसे अन्तर चित्तबिषे [मायारूप चित्तके अन्तर] स्थित अस्पष्ट पृथिव्यादि नियमित (स्थिर) अरु बिद्युतादिक अनियमित (अस्थिर) पदार्थों

विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्तेव्यवस्थितान् । नि-
यतांश्चबहिश्चित्तएवंकल्पयतेप्रभुः १३ ॥

को नानाप्रकारसे करताहै । तैसे अन्तर चित्तवालाहुआ मनोरथादिरूप आपविषे स्थित पदार्थोंको [यहां यह अर्थ है, कि बाह्य चित्तवालाहुआ आत्मा बहिर्मुख (बाह्यके व्यवहारयोग्य) पदार्थोंको कल्पताहै । अरु अन्तर चित्तवालाहुआ तिन । बाह्यव्यवहारयोग्य पदार्थों । से इतर आपविषे स्थित मनोरथादि लक्षण रूप व्यवहारके योग्य पदार्थोंको कल्पके पुनः व्यवहारकी योग्यताके अर्थ कल्पताहै । यहां यह कथनाकियाहै कि जैसे लोक विषे कुलाल वा तन्तुवाय (वस्त्ररचनेवाला) घट वा पटरूप कार्यके करनेकी इच्छावालाहुआ आदिविषे व्यवहारके योग्य व्यक्तिको । कार्यके आकारको । ज्ञानके वा प्रकटकरके, पश्चात् तिसही व्यक्तिको बाहिरके नामरूपकरके सम्पादनकरताहै । तैसेही यह । आत्माख्य । आदिकर्त्ता भी मायालक्षणरूप अपनेचित्त विषे नामरूपकरके अप्रकटरूपसे स्थितहुये सृजनेयोग्य पदार्थों कोप्रथमसृजनेकी इच्छा आकारसे प्रकट करके पश्चात् बाहिर सर्व ज्ञानके साधारण रूपसे सम्पादन करताहै । इसप्रकार प्रपंच की कल्पना विषे क्रमका ज्ञान है] बाह्यके योग्य कल्पना करके पुनः व्यवहार की योग्यताके अर्थ कल्पता है १३ ॥

१४ हे सौम्य, । शंका । ननु, स्वप्नवत् चित्तकरके कल्पित सर्व जाग्रत् का जगत् । है यहअद्यावधि निर्द्धारहुआ नहीं । अरु चित्तसे कल्पित चित्त करके जाननेयोग्य मनोरथादि रूप पदार्थों से, बाह्यके पदार्थोंकी परस्पर जाननेकी योग्यता रूप बिलक्षणताहै, एतदर्थ जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है, [जैसे स्वप्नविषे देखने योग्य सर्व कल्पित दृश्य वस्तु मिथ्याही अंगीकार करतेहैं, तैसेही जाग्रत् विषे भी देखनेयोग्य सर्व वस्तु चित्तकरके भासमान हैं, इसहेतुसे कल्पित मिथ्या है, ऐसा अद्यावधिनि-

चित्तकालाहियेऽन्तस्तुद्वयकालाश्चयेवहिः।कल्पिताएवतेसर्वेविशेषोनान्यहेतुकः १४॥

द्वीरकिया नहीं, इस बिषय में पूर्बबादी हेतु कहता है,। यहां यह अर्थहै कि, आत्माकी अविद्याकरके कल्पित जो चित्त,तिस चित्तकरके प्रथम चित्तकेही अन्तररचित, अरु तत्रही वर्त्तमान मनोरथ (संकल्प) रूप पदार्थ, अरु बाह्यके रज्जुसर्पादिक पदार्थ सो चित्तकरकेही परिच्छेद। भेद। को पावनेयोग्यहै। अरु जिस करके वो कल्पनाकालबिषेही होनेवाले पदार्थ प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान) के विषयहोते नहीं, जिसकरके तिनकेसाथ मन से बाह्य जाग्रत् बिषे देखनेयोग्य भावों (पदार्थो) का विलक्षणपना, अरु परस्परमें परिच्छेद्यताके पावनेकी योग्यता, अरु दोनों कालोंकरके परिच्छिन्न होने करके प्रत्याभिज्ञारूप ज्ञानकी विषयता देखते हैं, तिसकरके जाग्रत्का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है,] उत्तर। यह शंका युक्तनहीं, इसप्रकार मूल के श्लोक के अक्षरों से उत्तर कहते हैं, चित्तके। कल्पना। काल से इतर अन्य परिच्छेद करनेवाला काल नहीं है। जिनका। ऐसे जे चित्त से परिच्छेद करनेयोग्य। अर्थात् चित्तकी कल्पना काल बिषेही जानने के योग्य। पदार्थ सो [जो मनके अन्तर मनोरथरूप पदार्थ हैं, सो चित्तकाल वालेहोते हैं, तिनके चित्तकालको स्पष्टकरते हैं] चित्तकालवाले कहते हैं, अरु जो परस्पर परिच्छेद करने (पृथक् २ जानने) योग्य पदार्थ हैं तिनको दोनों कालवाले कहते हैं [यहां यह अर्थ है कि, जो पदार्थ मनसे बाह्य दीखते हैं सो भेदकालवाले हैं। क्योंकि काल का जो भेद सो कहिये भेदकाल, सो भेदकाल जिनकाहै ऐसे जे पदार्थ तिनको भेदकालवाले कहतेहैं। इस व्युत्पत्तिसे। ताते सो पूर्वके अन्यकालकरके अरु पीछेके अन्यकालकरके परिच्छेद को प्राप्तहोनेयोग्य हैं। अरु भिन्नकालसे परिच्छिन्नहोने करके

" सो यह है " इस आकारवाले प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री सहित संस्कारसे जन्य प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होते हैं] जैसे [जाग्रत्‌के पदार्थोंकी प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयताको उदाहरण करके स्पष्ट करतेहैं] देवदत्त गौके दोहन पर्यन्त स्थित होता है, सो यावत् स्थितहोता है तावत् गौको दोहन करता है, अरु यावत् गौको दोहनकरता है तावत् स्थितहोताहै, अरु तितने कालपर्यन्त यहहै, अरु एतने कालपर्यन्त सोहै । इसप्रकार बाह्यके पदार्थोंको परस्परमें परिच्छेदकपना है,एतदर्थ उनको उभयकाल वाले कहते हैं । एतदर्थ " चित्तकालाहियेऽन्तस्तु द्वयकालाश्च येबहिः, कल्पिताएवतेसर्वे विशेषोनान्यहेतुकः " (जो अन्तर विषे तो चित्तकालवाले पदार्थहैं अरु बाह्य उभयकालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व कल्पितहीहैं,विशेष अन्यहेतुवालानहीं) अर्थात् जो अन्तर (स्वप्न) विषे तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं, अरु बाह्य (जाग्रत्‌विषे) दोनों कालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व (जाग्रत् स्वप्न के) कल्पितही हैं । बाह्यका दोनोंकालकरके युक्तारूप जो विशेषहै सो कल्पितपनेसे अन्य हेतुवाला नहीं, क्योंकि कल्पित विषे भी तिसप्रकारके विशेषका सम्भव है ताते, अतएव यहां जाग्रत्‌विषे भी स्वप्नका दृष्टान्त स्पष्ट होताही है [इसका यह रहस्यहै कि जो कल्पनाकालविषे होनहार पदार्थ मनके अन्तर वर्त्तते हैं, अरु जो प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषयहोने करके पूर्वोत्तर कालविषे होनेवाले अरु बाहरही व्यवहारके योग्य देखियेहैं,सो सर्वकल्पित हुये मिथ्याही होनेके योग्यहैं । अरु प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की विषयतारूप जो विशेषहै सो वस्तुके कल्पितपनेका कियाहै, क्योंकि स्वप्नादिकोंकी कल्पित वस्तुविषे भी " सो यहहै " इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयता देखतेहैं ताते १४ ॥

१५हेसौम्य, " अव्यक्ताएवयेऽन्तस्तु स्फुटाएवचयेबहिः । कल्पिताएवतेसर्व्वे " (जो अन्तर अस्पष्टहीहैं, अरु जो बाह्यही हैं, सो सर्व कल्पितही हैं) अर्थात् जो मनके अन्तरभावनारूप हो-

अव्यक्ताएवयेऽन्तस्तुस्फुटाएवचयेबहिः। कल्पिता एवतेसर्वेविशेषस्त्विन्द्रियान्तरे १५॥

ने से अस्पष्ट पदार्थही है, अरु जो मनके बाह्य जो प्रतीयमान पदार्थ स्पष्टहोतेहैं सो सर्व मनके स्फुरणमात्र रूपहोनेसे कल्पितहीहैं। अरु "। विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे।" (विशेष इन्द्रियोंके भेद के कियेहैं) अर्थात् स्पष्टतारूप विशेष तो अन्तर अरु बाह्य इन्द्रिय भेदकेहुये। इन्द्रियोंके भेदरूप निमित्तवाला। है,तिसबिषे मिथ्यापना वा अमिथ्यापना उपयोगको प्राप्तहोता नहीं॥ इसका यह भावार्थहै कि, यद्यपि मनके अन्तर मनकी वासनामात्रसे प्रकटहुये पदार्थोंका अस्पष्ट (अप्रकट) पनाहै, वा मनसे बाह्य अरु चक्षुरादि इन्द्रियोंके अन्तर पदार्थोंका स्पष्टपना है, यह विशेषहै। तथापि यह विशेष पदार्थोंकी सत्यता कियानहीं, क्योंकि स्वप्नबिषेभी तैसेही देखते हैं। किन्तु यह विशेष इंद्रियों के भेदोंका कियाहै, एतदर्थ जाग्रत्के पदार्थ भी स्वप्नके पदार्थोंवत् कल्पितहीहैं। इति सिद्धम्, यह सिद्धहुआ १५॥

१६ हे सौम्य,। प्रश्न। ननु, बाह्य अरु अन्तरके पदार्थों की 'परस्परके निमित्त अरु नैमित्तिक होनेकरके' कल्पनाबिषे कारण क्याहै। उत्तर। तहां कहतेहैं, आत्माजोहै सो अपनीमायाकेवश से सर्वको कल्पताहुआ आदिविषे 'मैंकरताहौं' मेरेकोसुखदुःखहै, इसलक्षणवाले "। जीवंकल्पयतेपूर्व्वं ततोभावान्पृथग्विधान्।" (जीवको पूर्व कल्पता है तिसके अनन्तर पृथक् २ भावों को कल्पताहै) अर्थात्, उक्तलक्षणवाले, जीवोंको रज्जुबिषेसर्पवत्। "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" इत्यादि। श्रुतिउक्त लक्षणवालेही शुद्ध आत्माबिषे विशिष्टरूपसे पूर्व कल्पता है,अतएव तिसके अर्थहोने करके 'क्रिया, कारक, फलके भेदसे प्राणादिक नानाविध बाह्यके अरुअन्तरकेपदार्थोंको कल्पताहै॥ प्रश्न॥ तिस कल्पनाबिषे क्याहेतु है॥ उत्तर॥ तहां कहते हैं, "बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैवयथाविद्यस्त-

जीवंकल्पयतेपूर्वंततोभावान्पृथग्विधान् । बाह्याना-
ध्यात्मिकांश्चैवयथाविद्यस्तथास्मृतिः १६ ॥

थास्मृतिः । (जैसी विद्या वाला है तैसी स्मृतिवाला होता है ।) अर्थात् जो
तिसकरके, बाह्य अन्तरके पदार्थों को सृजता है ।
यह आप कल्पितहुआ जीव सर्व कल्पनाके करनेबिषे अधिकारी
है सो जैसी विद्या (विज्ञान) वालाहै तैसीही स्मृति वाला
होताहै । [यहांयह अर्थ है कि, अन्नपानादि उपभोगके होते तृप्ति
आदिक होतीहै, अरु तिन । उपभोग । के न होनेसे होतेनहीं । इस
अन्वय व्यतिरेक रूप युक्तिसे भोजनादिक हेतुहै । ऐसी कल्पन
का विज्ञान उपजता है, तातें पुष्ट्यादिक फलहै, ऐसीकल्पना का
विज्ञान उपजताहै, तिस करके अन्य किसी दिवसमें कथन किये
दोनों भी हेतु अरु फलकी स्मृति होती है, तिस करके फलके
साधनसे असमान (भिन्न) जातिवाले अन्य साधनबिषे कर्त्त-
व्यता का विज्ञान होताहै, तिससे बांछित तृप्ति आदिक फलकी
प्रयोजनता बिषे पाकादिक क्रिया अरु तिसके कारक (सामग्री)
तंडुलादिक अरु तिनके फल अन्नकी सिद्धि आदिकके सम्बन्धी
विशेष विज्ञानादिक होते हैं, तिसकरके हेतु आदिकों की स्मृति
होतीहै, तातें तिस साधनका अनुष्ठान होताहै. तातें पुनः फल
होताहै । इस क्रम करके परस्पर हेतुमद्भावसे कल्पना होतीहै,]
इस करके हेतुकी कल्पना के ज्ञानसे फलका ज्ञानहोता है, तातें हे-
तुके फलकी स्मृति होतीहै, तिसकरके तिसकाज्ञान अरु तिसके
अर्थ क्रिया कारक, अरु तिसकेफलके भेदकेज्ञान होतेहैं, तिनकरके
तिनकी स्मृति होतीहै, अरु तिस स्मृतिसे पुनः तिसके ज्ञानहो
तेहैं तिन ज्ञानसे तिनकी स्मृति होती है अरु तिस स्मृतिसे पुनः
तिनके ज्ञान होतेहैं । इसप्रकार बाह्य अरु अन्तरके पदार्थोंकोपर-
स्पर निमित्त अरु नैमित्तिकभावसे अनेक प्रकारकल्पता है १६॥
१७ हे सौम्य, तिसपूर्वोक्त श्लोकबिषे जीवकी कल्पना सर्वके

अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पिता । सर्पधा-
ादिभिर्भावैस्तद्वदात्माविकल्पितः ॥ १७ ॥

पनाका मूलहै, इसप्रकारकहा । सोई जीवकी कल्पना किसनि-मित्तवाली है इसको अब दृष्टान्तकरके प्रतिपादन करते हैं "अनि-श्चितायथारज्जु रन्धकारेविकल्पिता, सर्पधारादिभिर्भावैः" जैसे अन्धकार बिषे अनिश्चित हुई रज्जु सर्प अरु जल धारा प्रादिक भावकरके बिकल्प को प्राप्तहोता है ; अर्थात् जैसे लोक बिषे मन्द अन्धकार बिषे रही वस्तु अहं अमुक वस्तुही है, इस प्रकार अपने स्वरूपसे अनिश्चय को प्राप्तहुई सो, क्या सर्प है वा जलधाराहै, वा वक्र दंड है, वा भूमिकी दरारहै, इत्यादि प्रकारसे सर्प धारा आदिक भावकरके अनेक प्रकारसे बिकल्पको प्राप्तहोवेहैं । अर्थात् रज्जु बिषे सर्प अरु थाणू (ठूंठ) बिषे जो पुरुषकी भ्रांति होती है सो मन्द अन्धकारके समय होती है. घन अन्धकारमें अरु स्पष्ट प्रकाश में नहीं क्योंकि जिसकालमें रज्जुके सामान्यअंश , सर्पवत् बक्राकार, की प्रतीति, अरु बिशेष अंश त्रिवली (ऐंठन) की अप्रतीति होती है तिसकालमें सर्पादि भ्रान्ति होती है, अरु बादीने भ्रांती होने की सादृश्यतादि अनेक सामग्री कहीहैं परन्तु, मुख्यसामग्री उक्तप्रकारका अन्धकारहीहै, क्योंकि अन्धकारके अभावकी सामग्री दीपकादिकों के प्रकाश करकेही भ्रान्ति में उपयोगी अन्धकार सहित सर्व सामग्री अभाव होती है अंधकारमें स्थित रज्जुको सम्यक् प्रकारसे रज्जु ही है ऐसे जाननेके अर्थ एक प्रकाशही सामग्री का उपयोग है, भ्रान्ति कालवत् अनेक सामग्री का नहीं । अरु रज्जुबिषे भ्रान्ति कालमें जो प्रायः सर्पकी स्मृति अरु भ्रान्ति अधिक, अरु दंड-धारादिकों की क्वचित् होती है, तहां सर्पकी भ्रान्ति अधिक होने में बिशेष करके मरणका भय हेतुहै, क्योंकि सर्पके डंशसे मरण का भय है दंड धारादिकों से नहीं ताते ॥ अरु ऊषर भूमि में

निश्चितायांयथारज्ज्वां विकल्पोविनिवर्त्तते ।
रज्जुरेवेतिचाद्वैतंतद्वदात्मविनिश्चयः १८ ॥

जलकी अरु शुक्तिकामें जो रजतकी भ्रान्तिहै सो अन्धकारमें न होयके प्रकाशमें होतीहै, परन्तु द्रष्टाके देशसे दूरदेशमें अरुदृष्टिगोचरतासे होतीहै । अरु शुक्तिकी सादृश रजतलोह कागज़ आदि होतेहैं, परन्तु विशेषकरके तहां रजतकी भ्रांतिहोती है तहां प्रायः लोभहेतु है, क्योंकि अन्न अशनादि निमित्तक क्लेशादिकों की निवृत्ति रजतरूप द्रव्यसे होतीहै ताते । जैसे स्वरूपसे यथार्थ निश्चय कियेहुये अपने हस्तकी अंगुली आदिकों विषे सर्प वा जलइत्यादि विकल्प देखतेनहीं, तैसेही रज्जुको स्वरूपसे सम्यक्प्रकार निश्चय कियेहुये सम्मुखवर्ती रज्जुरूप वस्तुविषे सर्पादि विकल्प होतानहीं । अरु जिसकरके । सर्पादिविकल्प । होताहै एतदर्थ । तिस विकल्पसे । पूर्व रज्जुके स्वरूपका अनिश्चयही । निश्चयका न होनाही । तिसका निमित्तहै ॥ जैसेयह दृष्टांतहै " तद्वदात्माविकल्पितः । (तैसे आत्मा विकल्पकोप्राप्त हुआहै ? अर्थात् जैसेउक्त दृष्टांतहै तैसेहेतु अरु फलादिक संसारके धर्म्मरूप अनर्थों से विलक्षण होनेकरके अपने शुद्ध ज्ञानमात्र सत्तासमान अद्वैतरूप करके अनिश्चय होनेसे । अर्थात् अपनेआप आत्माके शुद्धबुद्ध मुक्त ज्ञानमात्र सत्तासमान एकअद्वैत स्वरूपका सम्यक्प्रकार यथार्थ निश्चय न होनेसे । जीव अरु प्राणादिक अनेक भावोंके भेदोंसे आत्मा विकल्पको प्राप्त हुआहै । इसप्रकार यह सर्व उपनिषदोंका सिद्धान्त है १७ ॥

१८हेसौम्य, [अविद्यासे रचितजीवकी कल्पनाहै, इसप्रकार अन्वयरूप द्वारसे कहा, अब तिसहीको व्यतिरेक रूपद्वारसे देखावे हैं] " । निश्चितायांयथारज्ज्वां विकल्पोविनिवर्त्तते " । 'रज्जुरेवेति, " (जैसे यह रज्जुहीहै, ऐसे रज्जुके निश्चयहुये विकल्प सर्वथा निवृत्त होताहै ? अर्थात् जैसे 'यह रज्जुहीहै' इसप्रकार

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः।
मायैषातस्यदेवस्य यथासम्मोहितःस्वयम् १९॥

रज्जुके निश्चयहोनेसे तिसके अज्ञानकी निवृत्तिसे तिससे उत्पन्नहुआ जो सर्पादिरूप विकल्प सो सर्वथा निवृत्त होता है, अरु रज्जुमात्र अवशेषरहेहै "। तद्वदात्मविनिश्चयः" (तैसे आत्माबिषे निश्चय प्राप्तहोताहै) अर्थात् जैसेही जब आत्माबिषे श्रुतिवाक्यानुसार निश्चय प्राप्तहोताहै,तब आत्माकी अविद्या करके कल्पित जे जीवादिक विकल्प तिनकी अशेष निवृत्तिसे एक अद्वैत आत्मतत्त्वही परिअवशेष रहताहै।यहतो श्लोकका अक्षरार्थ है॥ अब इसका भावार्थ कहते हैं।जैसे "रज्जुरेवेति" (रज्जुही है) इसप्रकार निश्चयकेहोनेसे सर्व विकल्पोंकी निवृत्ति के होनेसे रज्जुही अद्वैतहै इसप्रकार "नेति नेति" (नइति नइति) सूक्ष्मभी नहीं,स्थूलभी नहीं, कार्यभी नहीं, कारणभी नहीं, मूर्त्तभी नहीं अमूर्त्तभी नहीं। इत्यादि इस सर्व संसारके धर्म से रहित वस्तुके प्रतिपादक शास्त्रसे जनित ज्ञानरूप प्रकाश का किया जो यह आत्माका निश्चय है सोई "आत्मैवेदं सर्व्वं" "अपूर्व्वमनन्तरमबाह्य" "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "अजरोऽमरोऽमृतोऽभय एवाद्वयइति" (आत्माही यह सर्व है) अपूर्व है,अनपरहै, अनन्तरहै, अबाह्यहै, बाह्यान्तरके सहितहै, अरु जन्मरहित अजहै, अजरहै, अमरहै, अमृत (रोगरहित) है। अर्थात् जन्मादि षड्भावविकार रहितहै। अभयहीहै। इसप्रकारकाजो। अपने आप। आत्माका दृढ निश्चय है, सोई अद्वितीय परिशेष रहताहै, पुनः द्वैत सर्वही निवृत्त होताहै १८॥

१९॥हे सौम्य, "यद्यात्मैक एवेति" (जब आत्मा एकही है) अर्थात् जब उक्तप्रकारसे आत्मा एकही है, इसप्रकारका निश्चय है तब "। प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः, मायैषा तस्य देवस्य "। (प्राणादि अनन्तभावों करके विकल्पको प्राप्तहुआ है,

यह उस देवकी मायाही है) अर्थात् जब निश्चय करके सर्व सं-
सार धर्मरहित आत्माएकही है, तब इन संसाररूप प्राणादि
अनन्तभावसे कैसे विकल्पको प्राप्तहोताहै , । जहां इसप्रकारका
संशयहै । तहां कहते हैं, श्रवणकरो, यह उस आत्मरूप देवकी
माया है । जैसे मायावी पुरुष करके प्रेरणा को प्राप्तहुई जो
उसकी माया, सो ' अतिशय निर्मल जो आकाश, तिसको
पुष्पपत्र सहित वृक्षोंकरके पूर्णहुयेवत् पूर्णकरेहैं,तैसे यह आत्म-
देव की माया भी है । अरु जैसे इन्द्रजाली की मायासे लौ-
किक द्रष्टा जन उसमायाकृत मोहसे उस मायाकेही वशहुये
देखते हैं । तैसे अपनी मायासेही यह आत्मा । अपने चिदा-
भासरूपसे । आप भी मोहको प्राप्तहोताहै । एतदर्थ मोहरूपकार्य
द्वारा आत्माबिषेही मायाका ज्ञानहोता है । अर्थात् मूलाज्ञानकी
शक्ति जो शुद्ध माया तद्विशिष्ट आत्माको माया के कार्य मोह
करके अपने बिषे माया का ज्ञान होताहै, अरु सर्व शब्दके अर्थ
की साम्यता जो माया तिसका ज्ञाता होनेसे उसको सर्वज्ञकहते
हैं अरु वो मायासे रहित अरु माया का आश्रय शुद्ध अविशिष्ट
अपना सत्य स्वरूप तिसको स्वरूपसेही जानता है ताते ईश्वर
है । अरु अज्ञानकी द्वितीय शक्ति मलिन अविद्या तद्विशिष्टजीव
अविद्याके कार्य मोहरूप निमित्तसे उसको अविद्याका ज्ञानहोता
है कि मुझबिषे अविद्या वा मायाहै, अरु तिससे पृथक् अपने आप
शुद्ध स्वरूप को ; विना आचार्य के उपदेशके, जानता नहीं ताते
जीवहै,अरु एतदर्थही श्रुति कहतीहै कि "आचार्यवान् पुरुषोवेद"
अरुमाया अरु अविद्यारूप उपाधिकेअभावसे उभयविशिष्ट चैतन्य
आत्माकी अविशिष्ट ज्ञप्तिमात्र तत्त्वबिषे एकताहै । परन्तु आचार्य
के उपदेशद्वारा सम्यक् प्रकारके आत्मज्ञान विना माया अरु अ-
विद्याकी निवृत्ति होवे नहीं । तथाच " ममसायादुरत्यया " (मेरी
माया दुःखसे तरने योग्यहै) इस गीतोक्तिसे भगवान्ने भी मा-
याको मोहकी हेतुता कही है १९ ॥

प्राणइतिप्राणविदोभूतानीतिचतद्विदः । गुणाइति गुणविदस्तत्त्वानीतिचतद्विदः २० ॥

२०॥ हेसौम्य,[कौनसे वे प्राणादिक अनन्तभावहैं कि जिन करके मायासे आत्मा भेदको पावता है, इसप्रकारके प्रश्नकी इच्छाके हुये प्राणादिकों की कल्पनाको उदाहरण करके कहते हैं] " प्राणइतिप्राणविदोभूतानीतिचतद्विदः " (प्राण ऐसे प्राणके वेत्ता, अरु भूत ऐसे भूतकेवेत्ता (कहते हैं) अर्थात् प्राण (कहिये सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जगत्का ईश्वर वा जगत्का हेतु है (इस प्रकार प्राणकेवेत्ता हिरण्यगर्भके उपासक अरु वैशेषिकमतावलम्बी कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि उस हिरण्यगर्भको जगत्का हेतुहोने के बिषयमें प्रमाणका अभाव है (अरु हिरण्यगर्भ उत्पत्तिवाला है ताते) अरु पृथिवी जल अग्नि वायु, यहचार भूतही जगत्का कारण हैं (इनसे इतर ईश्वरादि कोई नहीं , इसप्रकार चार्वाक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि इनभूतोंको जडहोनेसे स्वतःसिद्धता (जगत् की रचना में स्वतन्त्रता) नहीं ताते) अरु " गुणा इतिगुणविदस्तत्त्वानीतिच तद्विदः " (गुण ऐसे गुणके वेत्ता, अरु तत्त्व ऐसे तत्त्वके वेत्ता (कहते हैं) अर्थात् सत्वरज तम इन तीनोंगुणोंकी साम्यावस्था जगत्का कारणहै, इसप्रकार सांख्यमतवादी मानते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि साम्यावस्थाको प्राप्तहुये गुणोंको जडत्व होनेसे उनाबिषे ईक्षण बनैनहीं अरु श्रुतिप्रमाण से ईक्षणपूर्वक सृष्टिहै, ताते श्रुतिबाह्य होनेसे गुणोंको जगत्का कारणत्व कल्पनामात्रहीहै । अरु 'आत्मा, विद्या, अरु शिव,यह तीनतत्त्व जगत्के प्रवर्तक हैं, इसप्रकार शैवमतवादी मानते हैं, परन्तु श्रुतिबाह्यहोनेसे सोभी केवल कल्पनामात्रही है २० ॥

२१ ॥ हे सौम्य, " पादाइतिपादविदोविषयाइतिचतद्विदः " (पादहै ऐसेपादवेत्ता अरु बिषय ऐसे बिषयके वेत्ता ' कहते हैं,)

पादाइतिपादविदोविषयाइतिचतद्विदः। लोकाइति लोकविदोदेवाइतिचतद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्माके जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं,इसप्रकार पादोंकेवेत्ता कहतेहैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है,क्योंकि एक निरंशआत्माके बिषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपन्नहै। अर्थात् एक निरंश आत्मा बिषे पादरूप अंशभेद वास्तवसे नहीयके केवल अविद्याकरके कल्पित है। ॥ अरु शब्दादिविषय बारम्बार भोगेहुये परमार्थ तत्त्वहै,इसप्रकार उन विषयोंके वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं,सोकहना विभ्रममात्रहै, क्योंकि विषयोंका बिषसे भी अति निकृष्टपना है, बिषभक्षण करने से , अर्थात् भक्षणाकिया बिष एकवार हननकरता है , अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तरमेंभी मारताही रहताहै। अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निंदितहै ताते निन्दितों को पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है "। लोकाइति लोकविदो देवाइतिच तद्विदः "। { लोक ऐसे लोकके वेत्ता अरु देवता ऐसे देवताके वेत्ता । मानते हैं। } अर्थात् भूर् , भुवर् , स्वर् , इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं , इसप्रकार लोकोंके वेत्ता पौराणिक कल्पनाकरते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है,क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्म्मोंका फल अरु "कर्मजितोलोकःक्षयित " इत्यादि प्रमाणसे विनाशीहोनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रहसे । तिन तिन । यज्ञादि कर्मोंके । फलकेदाताहैं, इनसे इतर ईश्वर कोईनहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओंको उत्पत्ति विनाशवान् अरु आत्माके जाननेमें संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनको

वेदाइतिचवेदाविदो यज्ञाइतिचतद्विदः ।
भोक्तेतिचभोक्तृविदो भोज्यमितिचतद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्यहै ताते २१ ॥

२२॥ हेसौम्य, " वेदाइति चवेदविदो यज्ञाइतिच तद्विदः " (वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता । कल्पना करतेहैं) अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं।क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेद ही सर्वजगत्के प्रवर्तक हैं ताते । इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीखते नहीं, अरु। वेदवाणीका विवर्त्तहोनेसे वाणीके अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माबिषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे । वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं। अरु ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं।इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता बोधायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि " यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति " यज्ञको कहताहौं तहां तिसकी समिध हवि कुराडादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तुको । अरु यज्ञकी सर्व कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयताको जड़त्वहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्मके कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहैं ताते। अरु " भोक्तेतिचभोक्तृविदो भोज्यमितिच तद्विदः " (भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता । कल्पना करतेहैं ।) अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रांतिमात्रही है, क्योंकि जो क-

सूक्ष्मइतिसूक्ष्मविदःस्थूलइतिचतद्विदः । मूर्त्तइति
मूर्त्तविदो अमूर्त्तइतितद्विदः २३ ॥

दापि सांख्यमतवादी तिस आत्माविषे जो भोक्तृत्वरूप विक्रिया
स्वरूपसेही स्वीकारकरतेहैं तब अनित्यत्वादि क्योंनहीं अंगीकार
करते, किन्तु करना चाहिये, अरु आत्माविषे जो भोक्तापनेकी प्र-
तीतिहै सो विषयकी सांनिध्यतासे स्फटिकमें रक्तादिवत्‌है तिस-
कों वास्तवसे मानना भ्रान्तिहै । अरु जे भोज्यवस्तुके वेत्ता सूप-
कार (रसोईकरनेवाले स्वादके वशहुये भोज्यकोंही परमार्थपने
की प्रतिज्ञा करतेहैं २२ ॥

२३॥ हेसौम्य, "सूक्ष्मइति सूक्ष्मविदः स्थूल इतिच तद्विदः"
(सूक्ष्म ऐसे सूक्ष्मकेवेत्ता, अरु स्थूल ऐसे तिसकेवेत्ता । कल्पते
हैं ।) अर्थात् आत्मा परमाणुके परिमाण सूक्ष्महै । अरु सोई पर-
मार्थ वस्तुहै । इसप्रकार कोई एक सूक्ष्मतत्त्वकेवेत्ता कल्पना
करतेहैं, सोभी यथार्थ नहीं, क्योंकि जो आत्मा अणुप माण
होवे तो शरीरान्तर अणुपरिमाण देशमेंही होवेगा अरु जो
अणुपरिमाणदेश व्यापि आत्माहुआ तो तिसको चैतन्यहोनेसे
तिसही देशके सुख दुःखका अनुभवहोना चाहिये अन्यदेशका
नहीं, परन्तु आत्मा पादाग्रसे लेकरके मस्तकाग्रपर्यन्त आका-
शवत् नखशिखमें व्याप्तहै क्योंकि पादाग्रमें मेरे कोंव्यथाहै अरु
मस्तकमें सुखहै इसप्रकार शरीरमेंहुये सुख दुःखका समकाल
मेंही अनुभव होताहै ताते, अरु श्रुतिने भी आत्माको सर्वव्यापी
विभुकहाहै, ताते आत्माको जो अणुपरिमाण कहतेहैं सो भ्रांति
से श्रुतिबाह्य कहतेहैं । अरु स्थूलदेह आत्माहै । अरु सोई पर-
मार्थतत्त्वहै । इसप्रकार तिस स्थूलकेवेत्ता कोई एक चार्वाक
कहतेहैं । सोभी कल्पनामात्रहीहै, क्योंकि 'मृतक अरु सुषुप्ति
विषे भी भूतोंके संघातरूप शरीरसे चैतन्य पृथक्‌हीहै शरीर आ-
त्मानहीं क्योंकि जिनभूतों का संघात शरीर है सो प्रत्येकभूत

कालइतिकालविदोदिशइतिचतद्विदः । वादाइति वादविदोभुवनानीतितद्विदः २४ ॥

को चैतन्यत्वके अभावसे जड़त्व है ताते जड़भूतोंका संघातरूप शरीर काष्ठभारवत् जड़होनेसे इसको आत्मत्व सम्भवेनहीं। अरु "मूर्त्तइतिमूर्त्तविदो अमूर्त्तइतितद्विदः" (मूर्त्तऐसे मूर्त्तके वेत्ता अरु अमूर्त्त ऐसे तिनकेवेत्ता। कल्पना करते हैं) अर्थात् त्रिशूलादिकोंके धारणकरता महेश्वर अरु चक्रादिकोंके धारणकरता विष्णु' यह मूर्त्तपदार्थ परमार्थरूपहै, ऐसे मूर्त्तकेवेत्ता आगमाभिमानी कल्पना करतेहैं, परन्तु सोभी भ्रान्तिमात्रही है क्योंकि मूर्त्तपदार्थ एकदेशी परिच्छिन्न अल्पहोनेसे नाशवान् होवेहै ताते। अरु सर्वआकारसे रहित निःस्वभाव जो अमूर्त्त सो परमार्थरूप है, इसप्रकार तिस अमूर्त्तकेवेत्ता शून्यवादी कल्पना करतेहैं, सो भी केवल भ्रान्तिमात्रहीहै २३ ॥

२४ ॥ हे सौम्य, "कालइतिकालविदोदिशइतिचतद्विदः" (काल ऐसे कालकेवेत्ता, अरु दिशा ऐसेदिशाकेवेत्ता। कल्पना करते हैं) अर्थात् कालकेवेत्ता जे ज्योतिषी सो कालकोही परमार्थरूप से कल्पना करते हैं,परन्तु सो कालभी परमार्थतत्त्व नहीं, क्योंकि कालका एकरूपहोवै तो मुहूर्त्तादि व्यवहार, कि यह मुहूर्त्त श्रेष्ठ है, अरु यह मुहूर्त्त नेष्ट है, तिसकी अयोग्यता है ताते, अरु तिन मुहूर्त्तादि व्यापारकरके कालको श्रेष्ठता अश्रेष्ठता आदिकनानात्व है ताते, अरु कालअन्य बिषयोंकरके प्रतीयमानहोता है। अर्थात् वृक्षके पत्र पातहोने से वसंतऋतु ज्ञातहोताहै ताते कालको स्वतन्त्रता अरुस्वप्रकाशता नहीं। अरुजो परमार्थतत्त्वहै सोनानात्वसे रहित एक एकरस सदा स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध चैतन्यहै ताते कालके वेत्ताओंका कथन जो 'कालही परमार्थतत्त्वहै, सोभ्रान्ति मात्रही है। अरु स्वरोदयशास्त्रके वेत्ता पूर्वादि दिशाही परमार्थ वस्तुहै इसप्रकार कहते हैं सोभी भ्रान्तिमात्रही है, अरु "वादा

मनइतिमनोविदोबुद्धिरितिचतद्विदः । चित्तमिति चित्तविदोधर्माधर्मौचतद्विदः २५ ॥

इतिवादविदो भुवनानीतितद्विदः ।" (वाद ऐसे वादकेवेत्ता, अरु भुवन ऐसे तिनकेवेत्ता कल्पना करते हैं।) अर्थात् धातुवाद (रसायनशास्त्र) अरु मन्त्रवाद (मन्त्रशास्त्र) इत्यादिवाद परमार्थवस्तुरूप होते हैं, इसप्रकार वादके वेत्ता कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रहीहै, क्योंकि ताम्रादिधातु सुवर्णादि अरु सुवर्णादि धातु ताम्रादि भावको प्राप्तहोते एकरसताको त्यागके व्यभिचारी हैं अरु औषधीके योगसे अपने स्वरूप स्वभावको त्यागतेहैं, अरु आकारवान् परिच्छिन्न जड अनेकरूप परतन्त्र है, ताते इत्यादि दूषणयुक्त लोभका बिषय धातु परमार्थतत्त्व होनेके योग्य नहीं। अरु मन्त्रवादभी साधककाल आदिक अपनी कारक सामग्री के आधीनहोने से परतन्त्रतादि दोषयुक्तहुये परमार्थतत्त्वरूप होनेके योग्य नहीं । "वेदवादरताःपार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः" "अन्या वाचोविमुञ्चथ, वाचोविग्लापनꣳहि तत्" अरु चतुर्दश भुवन वस्तुरूप हैं,इसप्रकार उन भुवनकोशके वेत्ता कल्पना करतेहैं,सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि सो अदृष्ट अरु विवादका विषयहैं ताते २४ ॥

२५॥ हेसौम्य,"मनइति मनोविदो बुद्धिरितिचतद्विदः"। (मनइस प्रकार मनकेवेत्ता, अरु बुद्धि ऐसे तिस बुद्धिकेवेत्ता ।) कल्पना करतेहैं। अर्थात् कोई एकमनकेवेत्ता चार्वाकमतकेभेद विशेषकेमतवादीपुरुष, मनही आत्मा (परमार्थतत्त्व) है इसप्रकार कल्पना करतेहैं,सो उनकाकहनाभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि मनस्वतन्त्र नहीं, चंचलहै अरु विषयासक्तहुआ विवेकशून्य है, अरु अनात्मा होनेसे घटवत् करणविशेषहैं अरु जिसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है परन्तु दीपकका प्रकाशक तिससे अन्य चक्षुहै, तैसे मन विषयोंको प्रकाशताहै परन्तु उसको जड़होनेसे उसका सिद्धकर्त्ता

पञ्चविंशकइत्येके षड्विंशइतिचापरे। एकत्रिंशकइत्याहुरनन्तइतिचापरे २६॥

प्रकाशक साक्षीआत्मा इससे भिन्नही है। ताते उक्त दोषस्वभाव वाला मन आत्मा। परमार्थतत्त्व होनेके योग्यनहीं। अरु कोई एकजे बुद्धि के वेत्ता बौद्धमत वादी हैं सो, बुद्धिही आत्मा। परमार्थ तत्त्व। है, इसप्रकार कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्ति सेही करते हैं क्योंकि सुषुप्तिविषे ज्ञातसे रहित हुई बुद्धि अपने कारण अविद्या में लय होती है तब बुद्धिकी अभावरूप जड अवस्था का प्रकाशक आत्मा पृथक्ही सिद्ध है ताते बुद्धिस्वरूपसेही ज्ञान शून्य जड परतन्त्र होने से आत्मा (परमार्थतत्त्व) होने के योग्य नहीं। अरु "। चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विदः" (चित्त ऐसे चित्तके वेत्ता अरु धर्माधर्म ऐसे तिनके वेत्ता कल्पना करतेहैं) अर्थात् चित्तही आत्मा। परमार्थतत्त्व। है इसप्रकार चित्तके वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि चित्तको अन्तःकरणकी वृत्ति बिशेष होने से सोभी उक्तदोष करके अरु क्वचित् स्वस्थ अरु क्वचित् भ्रमी होनेसे परमार्थरूप होनेके योग्य नहीं। अरु जो धर्माधर्म के वेत्तामीमांसक धर्माधर्म कोही परमार्थरूप कहते हैं, सोभी श्रुतिबाह्य होनेसे भ्रान्तिमात्रही है। तथाच "अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे परमार्थरूप आत्मा धर्माधर्म से पृथक्ही है २५॥

२६॥ हे सौम्य, "पंचविंशक इत्ये के षड्विंशइतिचापरे" (पंच विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक अरु षड्विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक कल्पना करते हैं) अर्थात् [प्रधान जो है सो मूलप्रकृति (मूलकारण) है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत) यह सात प्रकृति विकृति हैं। अर्थात् उक्त जो महदादि सप्त हैं सो अग्रिम कहने के षोडश पदार्थ जो केवल विकृति (कार्य)हीहैं तिनकी अपेक्षा से प्रकृति (कारण) है, अरु पूर्वकहा जो प्रधान मू-

लोकाँल्लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः । स्त्रीपुन्नपुंसकंलैंगाः परापरमथापरे २७ ॥

ल प्रकृति तिसकी अपेक्षा से विकृति (कार्य) ही हैं । अरु पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांचकर्मेन्द्रियां, पांच विषय, अरु एकमन, यह षोडश पदार्थ केवल विकृति (कार्य) मात्रहीहैं इन षोडश विकृति पदार्थ कहे हैं तिन में जो पंच बिषय हैं तिनके स्थान में कोई पंच महाभूतों को भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि विषयकोही तन्मात्रा कहतेहैं सो पूर्व प्रकृति विकृति में कहा है ताते । अरु पुरुष तो सर्व का द्रष्टा रूपहीहै, वो किसीका भी कार्य्य कारण नहीं । इसप्रकार पंचविंशति संख्यावाला प्रपंच वास्तव है, इसप्रकार सांख्यवादी कहतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है। अरु उक्त पंचवीस तत्त्वसे एक ईश्वर अधिकहोनेसे छब्बीस संख्यावाला प्रपंच परमतत्त्वहै इसप्रकार छब्बिसतत्त्वकेवेत्ता पातंजलि कल्पना करते हैं, सो कल्पनाभी अयुक्तहीहै, क्योंकि ईश्वरका पुरुषविषे अंतरभावहै ताते, अरु जो ईश्वरका पुरुषविषे अन्तरभाव नहीं पृथक् है तो ईश्वरको घटवत् अनीश्वरभावकी प्राप्तिका प्रसंगहोता है ताते । अरु "एकत्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे" (एकतीस ऐसेकहतेहैं, अनन्त ऐसे अन्यकहतेहैं) अर्थात् उक्त पंचबीसतत्त्वसे राग, अविद्या, नियति, काल, कला, माया, यह छः अधिकहोनेसे हुये जो इकतीस संख्यावाला प्रपंच सो वस्तुरूप है, इसप्रकार पाशुपत मतवादी कहतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है । अरु पदार्थोंके भेद अनन्तहैं नियमित (कियह इतनाही है ऐसा) नहीं, ताते अनन्तपदार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार अन्य मतावलम्बीवादी कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है २६ ॥

२७॥ हेसौम्य, "लोकान् लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः" (लोकोंको लोकके वेत्ताकहतेहैं, अरु आश्रमऐसे तिनकेवेत्ता कल्पनाकरते हैं) अर्थात् लोकोंको रंजन (प्रसन्न) करनाही परमतत्त्व है,

सृष्टिरितिसृष्टिविदोलयइतिचतद्विदः । स्थितिरितिस्थितिविदःसर्वेचेहतुसर्व्वदा २८ ॥

ऐसे लोकके वेत्ता कहते हैं, अर्थात् लोकोंको प्रसन्नकरनाहीपरमार्थ तत्त्वहै इसप्रकार लोकके वेत्ता लौकिकजन कल्पना करतेहैं, सो भी विभ्रममात्रही है, क्योंकि लोकोंकी भिन्न भिन्न रुची होनेसे उनके चित्तको अनुरंजन करना ईश्वर करकेभी अशक्यहै ताते। अरु दक्षादि आश्रमही परमार्थरूपहैं, इसप्रकार तिन आश्रमों के वेत्ता कल्पनाकरते हैं, सोभी असत्ही हैं, क्योंकि आश्रम शब्दका अर्थ वेशहै तिस वेशकी शूद्रादिपर्यन्तभी व्याप्तिका प्रसंगादिदोषों की प्रवृत्तिहै ताते। अरु "स्त्रीपुन्नपुंसकंलैंगाः परापरमथापरे"। स्त्री, पुरुष, नपुंसक, लिंगवाले , अरु इतरपर अपरको कल्पना करते हैं, अर्थात् 'स्त्री, पुरुष, अरु नपुंसक, इनतीन लिंगात्मक शब्दोंका समूहही परमार्थरूप है, इसप्रकार वैयाकरणी कल्पना करते हैं, सोभी अयुक्तही है। अरु कोईएक जे अपर अरु पर उभय ब्रह्मके माननेवालेहैं सो कहतेहैं कि पर अरु अपर दोनोंब्रह्म परमवस्तु रूपहैं। सोउनका कथनभी यथार्थ नहीं, क्योंकि दोब्रह्म होनेसे परस्पर में परिच्छिन्नतादि दोषकी प्राप्तिहोतीहै ताते २७ ॥

२८॥हेसौम्य, "सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इतिच तद्विदः"। सृष्टि ऐसे सृष्टिके वेत्ता, अरुलयऐसे तिसकेवेत्ता कहतेहैं, अर्थात् सृष्टि (जगदुत्पत्ति)ही तत्त्व है इसप्रकार सृष्टिकेवेत्ता कहते हैं, वाकोई एकलयके माननेवाले कहते हैं कि लयही तत्त्व है, अरु "स्थितिरिति स्थितिविदः सर्वेचेहतुसर्व्वदा"। स्थितिऐसे स्थितिकेवेत्ताअरु यह सर्वतो सर्वदाहै 'ऐसे कहतेहैं, अर्थात् स्थितिही परमार्थतत्त्व है ऐसी कल्पना करतेहैं, अरु उत्पत्ति स्थिति लय यहही तत्त्वहै, इसप्रकार पौराणिक कल्पना करते हैं, सोभी अयुक्तही है, क्योंकि सत्से असत् की उत्पत्त्यादिकों का अभाव वक्ष्यमाण है ताते, ॥ हे सौम्य अब [उक्त कल्पना के अधिष्ठानको सूचित करते हैं]

यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति। तञ्चावतिस भूत्वासौ तद्ग्रहः समुपैति तम् २९ ॥

उक्त अनुक्त। अर्थात् जो कहे सो, अरु नहीं कहे सो यावत्कल्पना के भेद हैं, सो सर्व यहां इस आत्माविषे तो सर्वदा कल्पनावस्थाविषे कल्पना करते हैं, परन्तु जिस कल्पक से यह कल्पितहैं तिस आत्मा को कल्पितपना नहीं, क्यों कि जो आत्मा भी कल्पित होय तो सर्व कोही कल्पित होनेसे सर्व कोही अधिष्ठानपनेकी अयोग्यता प्राप्तहोती है ताते अरु। जो सर्वका कल्पक आत्मा है सो कल्पित नहीं क्योंकि जिसको आत्मा का कल्पक मानेंगे सो आत्मा करके कल्पित ही होगा, अरु जो कल्पित होगा तिसको असत् होनेसे उसबिषे कल्पकपनेका असंभव है। अरु अनवस्था दोषभी आवता है ताते। प्राणरूप प्राज्ञ सर्वका बीजरूप है, तिसके कार्य के भेद ही अन्यास्थिति पर्यन्त। अपने कारण के लक्षणसे भिन्न कार्यपनेके लक्षण की स्थिति पर्यन्त। पदार्थ हैं, अरु अन्य सर्व लौकिक प्राणियों की सर्व कल्पनाके कल्पित भेद हैं, सो जैसे रज्जुबिषे सर्प, तैसे तिनसे रहित आत्मा बिषे, आत्मस्वरूप के अनिश्चय की हेतु जो अविद्या तिस अविद्या करके कल्पित है। यह, २१, वें श्लोकसे, २८, वें श्लोक पर्यन्त नव श्लोकोंका समुदायरूप अर्थ है। प्राणादि श्लोकन के एक एक पदार्थोंके व्याख्यान का अल्पप्रयोजन के हुये प्रयत्न किया नहीं। यह भास्कराचार्य स्वामी की उक्ति है २८ ॥

२९ ॥ हे सौम्य, "यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति" (जिस पदार्थ के ताईं जिसको देखावे है सो तो तिसको देखता है) अर्थात् बहुत कहने से क्या है, किन्तु प्राणादिकों के मध्य उक्त वा अनुक्त जिस एक पदार्थ के ताईं जिसको आचार्य वा अन्य आप्त। जाग्रतहुआ। पुरुष "इदमेव तत्त्वमिति" (यहही तत्त्व है) इसप्रकार देखावता (लखावता) है सो पुरुष तो तिसपदार्थ

एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः।
एवंयोवेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः ३० ॥

को "अयमहमिति वा ममेति" (यह मैं हूं वा मेरा है) इस प्रकार आत्मरूप देखताहै। अरु तिसदेखनेवालेको यह पदार्थ जैसा गुरु आदिकों ने देखायाहै सो तैसा होके उसकी रक्षाकरताहै, अर्थात् अपने स्वरूपकरके उसको सर्व ओर से रोकताहै। अर्थात् मनुष्योंको आचार्य जिसपदार्थविषे निश्चय करावताहै सो पदार्थ पुनः अपनेसे अन्य पदार्थोंमें उस पुरुषका निश्चय होनेदेतानहीं किन्तु अपनी ओरही खींचता है। "तन्चावति स भूत्वाऽसौ तद्ग्रहः समुपैतितम्" (तिसविषे आग्रहहै सो तिसको प्राप्तहोता है) अर्थात् तिसपदार्थविषे यहही तत्त्वहै ऐसाजो आग्रहरूप अभिनिवेशहै सो तिस ग्रहणकरनेवालेको प्राप्तहोता है, अर्थात् सो तिसके आत्मभावको प्राप्तहोताहै २९॥

३०॥ हे सौम्य, (उक्तज्ञानकी स्तुत्यर्थ यह श्लोक कहते हैं) "एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः" (इन अपृथक्भावों से यह पृथक्ही है ऐसे लक्ष्यकरायाहै) अर्थात् इन प्राणादि आत्मा से अपृथक् भूतकरके अपृथक् भावोंसे यह आत्मा सर्पादिक कल्पनारूप भावोंसे रज्जुवत् पृथक्ही है, इसप्रकार लक्ष्यकरायाहै। अर्थात् रज्जुके आश्रय कल्पितसर्प रज्जुसे अपृथक्हुआ भावरूप है, परन्तु उस कल्पित सर्पादिकों से अकल्पित सत्यरूप रज्जु पृथक्ही है' अर्थात् कल्पितसर्पका आश्रय होनेसे उस अधिष्ठानरूप रज्जुका उस सर्पविषे अन्वयहै, अरु उस अकल्पितअधिष्ठानरूप रज्जुविषे अध्यस्त सर्प का व्यतिरेकहै, तैसे आत्मरूप अधिष्ठानके आश्रय कल्पित अरु अधिष्ठानसे अभिन्न भावरूप प्राणादिक तिसविषे आत्मा का आश्रयरूपसे अन्वय है, अरु उन कल्पित प्राणादिकोंका अकल्पित आत्मरूप अधिष्ठानविषे व्यतिरेकहै, ताते वो सत्यरूप आत्मा कल्पितभावरूप प्राणादिकों से

पृथक्ही है, इसप्रकार आचार्यने लक्ष्यकरायाहै । तथापि मूढ पुरुषोंकरके अलक्षितही है "विमूढानानुपश्यन्ति" । अर्थात् कल्पित प्राणादिकों की स्वाधिष्ठान आत्मा से पृथक् सत्ताके अभावसे सो आत्मरूपही है, परन्तु सो अविवेकी को तैसा भासतानहीं । अरु विवेकी पुरुषों को, रज्जुबिषे कल्पित सर्पादिकोंवत् प्राणादिक आत्मासे पृथक्नहीं । अर्थात् जो जिसके आश्रयभासताहै तिसकी स्वसत्ताके अभावसे वो अपने आश्रयसे अपृथक्हुआ सोईरूपहै, इसप्रकार "पश्यन्तिज्ञानचक्षुषः" विवेकी पुरुष देखते हैं । यह अभिप्रायहै ॥ "इदंसर्वं पदमात्मेति" ‹यह सर्वपदआत्माहै› इसश्रुतिप्रमाणसे।।एवं यो वेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशंकितः" । { इसप्रकार तत्त्वसे जानताहै सो शंकारहित हुआ कल्पताहै } अर्थात् जो उक्तप्रकार [उक्त प्रकारके ज्ञान वाला जो पुरुषहै सो वेदका किंकर होतानहीं, किन्तु सो वेदके जिस अर्थको कहताहै सोई वेदार्थहोता है यह अर्थहै] रज्जुसर्पवत् आत्माबिषे कल्पित अनात्म पदार्थोंके स्वाधिष्ठानसे पृथक् हुये असत्भावको, अरु।कल्पना कल्पितसेरहित।निर्विकल्प।सर्वाधिष्ठान । आत्माके । सद्भाव । को जोपुरुष । आत्मज्ञान (महावाक्यार्थज्ञान) रूप तत्त्वकरके श्रुतिके वाक्य प्रमाणसे अरु अनुभव युक्तिप्रमाणसे जानताहै, सो शंकारहित हुआ यह वाक्य इसके अर्थ के परहै, अरु यह अन्य अर्थ के परहै, इसप्रकार विभागसे वेदार्थ को कल्पताहै । अरु यहां । इसअर्थबिषे । मनुमहाराजका वचन प्रमाणहै "नह्यनध्यात्मविद्वेदान् ज्ञातुं शक्नोति तत्त्वतः । नह्यनात्मवित्कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुत, इति मनुवचनम्" 'अध्यात्मतत्त्व का न जाननेवाला वेदों को तत्त्वकरके जानने को समर्थहोता नहीं, अरु कोई भी अनात्मवेत्ता क्रिया (प्रमाण) के फल (तत्त्वज्ञानको पावतानहीं› यह मनुमहाराज का वचनहै ३० ॥

३१॥हे सौम्य,[जिनयुक्तियोंकरके इस वैतथ्याख्य प्रकरणबिषे

स्वप्नमायेयथादृष्टे गन्धर्वनगरंयथा। तथाविश्वमिदंदृष्टं वेदान्तेषुविचक्षणैः ३१॥

द्वैतका मिथ्यापना कहाहै तिनयुक्तियोंको प्रमाणके अनुग्रहकरके युक्त होनेसे तिनकीयथार्थता निश्चयकरनेकेयोग्यहै, ऐसे कहतेहैं] जो यह द्वैतका असद्भाव युक्तिसे कहा सो वेदान्त (उपनिषद्) के प्रमाणसे निश्चितहै, इसप्रकारकहते हैं। "स्वप्नमाये यथादृष्टे गन्धर्वनगरंयथा" (जैसे स्वप्न माया देखे हैं, जैसे गन्धर्वनगर (देखे हैं।) अर्थात् स्वप्न अरु माया (इन्द्रजालीकृतकौतुक) असत् वस्तु रूप असत्य हैं, तथापि सो अविवेकी जनोंकरके सत्वस्तुरूप हुयेवत् लखने में आवताहै, अरु सो (स्वप्न, माया) बिवेकी जनोंकरके असतूरूप लखनेमें आवता है। अर्थात् जो पुरुष स्वप्न अरु मायाके वर्त्तमानकालमेंही यह स्वप्न अरु माया ही है, इसप्रकार यथार्थ अनुभवसे सम्यक् प्रकार जानता है सो उनको असत्यही मानता है। अरु जैसे जहां तहां स्वपाणि प्रसारितवत् प्रकटताको प्राप्तहुये क्रयविक्रय करने योग्यादि रूप पदार्थों करके सम्पन्न हट्टों (बजारों) करकेयुक्त गृहगोपुर अट्टालियां प्रासादादि अरु स्त्री पुरुष पशु आदिरूप व्यवहारों करके पूर्णहुयेवत् सतूरूप करके देखाहुआ ही गंधर्वनगर अकस्मात्‌ही अभावको प्राप्तहोता देखाहै। तथा विश्वमिदंदृष्टंवेदान्तेषु विचक्षणैः" तैसेयह विश्व देखा है वेदान्त बिषे विचक्षण (पुरुषों) करके; अर्थात् जैसे स्वप्न जगत्, मायावी की माया, अरु गन्धर्व नगर, यह प्रत्यक्ष भासते संते भी असत्यही हैं, तैसे ही यह विश्वभी देखा है 'प्रश्न' कहां किन्होंने देखा है' उत्तर, कहते हैं, "नेहनानास्ति किञ्चन" "इन्द्रोमायाभिः" "आत्मै वेदमग्र आसीत्" "ब्रह्मै वेदमग्र आसीत्" "सत्त्वेव सौम्येदमग्र आसीत्" "द्वितीयाद्वैभयंभवति" "नतुतद्द्वितीयमस्ति" "यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवाभूदित्यादिषु" (यहां नाना कुछभी नहीं। परमात्मा

न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धो नच साधकः । नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थता ३२ ॥

माया करके नानारूप को प्राप्तहोता है । यह आगे आत्माही था । यह आगे ब्रह्महीथा । हेसौम्य यह आगे एकसत्हीथा । दूसरेसे निश्चयकरके भयहोताहै । सो द्वितीयतो है नहीं । जहांतो इसको सर्वआत्माही होताहुआ। इत्यादि उपनिषद्रूप वेदान्तविषेलक्षित जे एक परमार्थ वस्तुके देखनेवाले अत्यन्त निपुणतर साक्षात् आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पंडितरूप विलक्षण पुरुषकरके देखाहै ॥ तथाच " तमः श्वभ्रनिभंदृष्टं वर्षबुद्बुदसन्निभं, नाशप्रायं सुखाद्धीनंनाशोत्तरमभावगमितिहि " मन्द अन्धकारविषे स्थितरज्जु विषे भूच्छिद्रादिकों के तुल्य अरु वर्षा बुद्बुदके तुल्य नाशकरके ग्रस्त सुखसेहीन नाशोत्तर अभावरूपताको प्राप्त होनेवाला विश्व विवेकियों करके दृश्य है इस व्यास स्मृति के प्रमाणसेभी द्वैत वस्तु का असद्भावही निश्चित है ३१ ॥

३२ ॥ हेसौम्य प्रमाण अरु युक्तिसे द्वैतके मिथ्यापनेके साधने करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इसप्रकार सिद्धहुये, तिसनिर्द्धार किये अर्थको इसश्लोक विषे संक्षेप से कहते हैं ; अब । इसद्वितीय प्रकरणकी समाप्तिके अर्थ यहश्लोक कहतेहैं । जब द्वैतमिथ्या है अरु एक अद्वैत आत्माही परमार्थसे सत्रूपहै तब यहसिद्धहुआ कि "न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धोनच साधकः, न मुमुक्षुर्नवैमुक्त इत्येषा परमार्थता" (निरोध नहींपुनः उत्पत्ति भी नहीं बद्धनहीं, साधकनहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं , यह परमार्थता नहीं अर्थात् यह सर्वलौकिक अरु वैदिक व्यवहार अविद्या का विषय (अज्ञान पर्यन्त) है तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उत्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति नहीं तब बद्ध कहिये संसारीजीव सो भी नहीं, अरु जब बद्धनहीं तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु

मुमुक्षु कहिये साधन सम्पन्न मोक्षकी इच्छावाला सो भी नहीं, अरु जब बद्धसे मुमुक्षु पर्यन्त नहीं तब मुक्त कहिये सर्व बन्धनों से छूटा पुरुष सो भी नहीं। इस प्रकार उत्पत्ति प्रलयके अभाव से बद्धादिक कुछभी हैं नहीं, यह परमार्थता है॥ [उक्तार्थको ही प्रश्नोत्तर से विस्तार करते हैं] प्रश्न। उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव कैसे है, उत्तर। इस द्वैतके असद्भावसे उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव है, क्योंकि "यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति" "य इहनानेव पश्यति" "आत्मैवेदं सर्वम्" "ब्रह्मै वेदंसर्वम्" "एकमेवाद्वितीयमिदं सर्व्वम्" "सर्व्वं खल्विदंब्रह्म" "यदयमात्मा" "नेहनानास्ति किञ्चन" (जहांही द्वैतवत् होता है तहां और का और देखता है, जो यहां (एक अद्वैत आत्म तत्त्वविषे) नानात्ववत् देखता है, आत्माही यह सर्व है, ब्रह्मही यह सर्वहै, एकही अद्वितीय यह सर्व है, निश्चय करके सर्व ब्रह्मही है, जोयह आत्माहै) इत्यादि अनेक श्रुतियों करके द्वैत का असद्भाव ही सिद्ध है। अरु सत्वस्तुकीही उत्पत्ति वा प्रलय होती है, शशशृंग (खरहाके सींग) आदिक असत्पदार्थों की उत्पत्ति प्रलयहोवे नहीं अरु अद्वैतवस्तु भी उत्पत्ति वा लय होती नहीं (अर्थात् जो वस्तु उत्पत्ति अरु लय होती है सो दूसरेकी हेतुवाली है, क्योंकि जो उपजती है सो अपने से इतर कारण से उपजती है अरु दूसरे में ही लीन होती है ताते) अरु अद्वैत है सो उत्पत्ति वालाभी है यह कहना विरुद्ध है। एतदर्थ ही जो पुनः प्राणादिरूप द्वैतका व्यवहार है सो रज्जु विषे सर्पवत् आत्मा विषे कल्पितहै, इस प्रकार कहाहै अरु रज्जु सर्पादिरूप जो मनकी कल्पना है तिसके रज्जु विषे उत्पत्ति वा प्रलयनहीं है, अरु तैसेही मनविषे रज्जु सर्पकी उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है। अरु रज्जु अरु मन दोनों से भी नहीं है तैसेही द्वैत को मनकी कार्यताके अविशेषसे (अर्थात् द्वैत प्रपंचको मनकी कार्यतारूप विशेषके अभाव से) तिस द्वैतकी उत्पत्ति वा प्रलयबने

नहीं। अरु जिस करके निरोध किये । अफुरहुये । मनविषे वा सुषुप्तिविषे द्वैत देखतेनहीं। एतदर्थ मनकी कल्पनामात्रही द्वैत है यह सिद्धहुआ। तातेही कहाहै कि द्वैतके सुसद्भावसे निरोधादिकों का अभाव परमार्थता है, ॥ हि सौम्य । जब उक्तप्रकार द्वैतके अभाव विषे शास्त्रका व्यापार है, द्वैतविषे नहीं, क्योंकि अभावके बोधन विषे व्यासजो शास्त्र तिसका भाव के बोधनविषे व्यापार होनेका विरोधहै ताते। अरु तैसेहुये । अर्थात् अभाव बोधकशास्त्र को भावबोधनसे विरोधहुये। अद्वैतकी वस्तुरूपताविषे प्रमाण के अभावहुये अरु द्वैतके अभावहुये शून्यवादका प्रसंगप्राप्त होवेगा, । जहां वादी की ऐसी शंका है । तहां सिद्धांती समाधान कहैहै, यह वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि जैसे रज्जु सर्पादिकों की कल्पना को निराश्रयता का असंभव है । अर्थात् रज्जु सर्पादिक यावत्कल्पनाहै सो निराश्रयहोतीनहीं। तैसेही द्वैतकीकल्पनाको अधिष्ठान (आश्रय) से रहितपने का असंभव है ताते, एतदर्थ तिस द्वैत का अधिष्ठान होनेकरके अद्वैत आस्था करने के योग्यहै। इस प्रकार ॐकारके प्रकरणविषे इसशंकाकासमाधान हमने कियाहै तिसको तू पुनः कैसे उठावताहै ॥ । यह सिद्धान्तीके कहनेपर शून्यवादी। कहता है कि सर्पादि सर्व विकल्पोंकी आश्रय रूप जो रज्जु सोभी तुम्हारे मतविषे कल्पितहीहै, इस प्रकार दृष्टान्त का सम्भव है, । सो वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि कल्पनाके क्षयहुये अवशेष रही अवधिरूप सत्ताको रज्जु आदिकों विषे देखतेहैं ताते। अरु द्वैतभ्रमके बाधका साक्षी होने करके जो स्फूर्तिमात्र चैतन्यहै तिसको अकल्पित होने करकेही सद्भाव का सम्भव है ताते शून्यभावकी प्राप्तिहै नहीं॥ अरु जो कदापि ऐसा कहे कि रज्जु सर्पवत् अद्वैत का असद्भाव है, सो भी बने नहीं, क्योंकि आत्मा भ्रमरूप न होके भ्रमका साक्षीहै ताते। सर्प के अभावके (भ्रान्ति) ज्ञानसे पूर्व अकल्पित रज्जुके अंशवत् नियमसे अकल्पितहै ताते। अरु कल्पनाके कर्त्ताको कल्पना

की उत्पत्तिसे पूर्व सिद्ध होनेके अंगीकारसे ही तिसके असद्भाव का असम्भव है । अर्थात् कल्पनाके कर्त्ता की कल्पनासे पूर्व अरु पश्चात् सिद्धि होने से अरु कल्पनाके भावाभाव का साक्षीहोने से तिसका असद्भाव कदापि सिद्ध होवे नहीं। अरु जो ऐसाकहे कि अद्वैत स्वरूपबिषे व्यापारके अभावहुये पुनः शास्त्रको द्वैतके ज्ञानकी निवर्त्तकता कैसे होवेगी, सो दोषभी नहीं, क्योंकि रज्जु बिषे सर्पादिकों वत् आत्माबिषे द्वैतको अविद्या करके अध्यस्त-पनाहै तातें। अरु अध्यस्त द्वैतके निवर्त्तक शास्त्रको भी अध्यस्त पनाहै ताते ।॥ प्रश्न ॥ आत्माबिषे द्वैतका अध्यस्तपना कैसेहै । ।उत्तर।मैं जन्माहौं,सुखीहौं,दुःखीहौंजीर्णहुआहौं,मरताहौं,मूढहौं देहवान्हौं, देखताहौं, स्थूलहौं, सूक्ष्महौं, कर्त्ताहौं, भोक्ताहौं, संयोग वियोगवान्हौं, वृद्धहौं, जर्जरहौं, यह मेराहै, मैं इसकाहौं, , इत्यादि सर्व विकल्प आत्माबिषे अध्यस्तहोवेहै । जैसेसर्प जल-धारादिक भेदों विषे अव्यभिचारसे रज्जु अनुगतहै । तैसे सर्वत्र अव्यभिचारसे इनबिषे आत्मा अनुगतहै । जब इसप्रकारविशेष्यकेस्वरूपकी प्रतीतिको सिद्ध होनेसे, शास्त्रसे कर्त्तव्यताहै नहीं, अरु अकृतवस्तुका कर्त्ता जो शास्त्रहै सो कृतवस्तुके अनुसारीपने के हुये अप्रमाणहोवेगा । अरु जिसकरके आत्माका अविद्यासे आरोपित सुखीपनादिक जे विशेष प्रतिबन्ध तिसके स्वरूपसे अनवस्थान, अरु स्वरूपसे अवस्थान श्रेयहै, ताते सुखीदुःखीपने आदिकोंका निवर्तक जो शास्त्रहै सो " नेति नेति " " अस्थूलमनएवं " इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से आत्माबिषे असुखीपने आदिकोंकी प्रतीतिकेकरने से आत्मस्वरूपवत् असुखीपनादिकभी सुखीपने आदिक भेदोंबिषे अनुगतधर्म नहीं है, अरु जब अनुगतहोय तब सो सुखीपनेआदिकरूप विशेष आरोपित न होगा। जैसे उष्णतारूप गुणविशेषवाले अग्निबिषे शीतताहै तैसे । एतदर्थतिस निर्विशेषही आत्माबिषे सुखीपने आदिक विशेष कल्पितहै ।अरु जो आत्माके असुखीपने आदिकोंका जो प्रतिपादक

भावैरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः। भावाअप्य द्वयेनैव तस्मादद्वयताशिवा ३३॥

शास्त्रहै,सो तिसके सुखीपने आदिक विशेषकी निवृत्तिके अर्थहीहै, यह सिद्धहुआ,। यहां "सिद्धन्तु निवर्तकत्वात्" (सिद्ध है निवर्त्तक होनेसे) इसप्रकार वेदकेवेत्ता द्रविडाचार्यका सूत्र प्रमाणहै॥[यहां इससूत्रका यहअर्थ है कि ब्रह्मविषे पदोंकी प्रवृत्तिके अभाव हुयेभी शास्त्र का प्रमाणिकपना सिद्धही है, क्योंकि अभावके बोधनविषे प्रवृत्त "नञ् (नकार)" पदकरके युक्त स्थूलादिक अर्थवालेपदों से स्वाभाविक द्वैतके अभावके बोधन करके अध्यस्त का निवर्त्तकहै ताते,] ३२॥

३३॥ हेसौम्य,[निरोधादिक सर्व विशेषके अभावकरके उपलक्षित जो वस्तुहै सो वास्तव रूप है, ऐसा उक्त श्लोक का अर्थ है। तिसको सामान्य विशेष वस्तुविषे विशेषतासे आश्रय करके निरोधादिकों का सम्यक् साधनरूप होनेसे, तिसके असत्पनेकी शंकाकरतेहैं,तिसहेतुकरके तिसके साधनेकीअपेक्षा होनेसेतिसके लखावनेके परायण यहश्लोकहै]अबपूर्वकहे श्लोकका हेतुकहतेहैं "भावैरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः" (असत्रूपही भावोंसे अरु अद्वैत से यह कल्पितहै) अर्थात् जैसे रज्जुविषे असत्रूप सर्प अरु जलधारादिकों से, अरु सद्रूप अद्वैत रज्जु द्रव्यसे,यह सर्प है वा यह जलधारा है वा यह भूदरारहै वा यह दंडहै, इत्यादि प्रकार से रज्जु द्रव्यही कल्पना करते हैं। इसप्रकार ही अविद्यमान प्राणादिक अनन्त असत् वस्तुओंसेही यह आत्मा कल्पना करते हैं, परमार्थसे तिनकी सत्तानहीं। अर्थात् आत्मासे इतर प्राणादिकों की पृथक् सत्ताके अभावसे यह प्राण है यह मनहै यह इंद्रियहै,इसप्रकार आत्माकोही कल्पते हैं। अरु जिसकरके अचल संकल्पादि सर्ववृत्तिसे रहित अफुरहुये मनविषे कोई भी पदार्थ किसीकरके भी जाननेको शक्य होतानहीं अरु आत्माका चलन

नात्मभावेननानेदं नस्वेनापि कथञ्चन । नपृथङ्ना पृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदोविदुः ३४ ॥

कल्पना करने को अशक्यहै, अरु चंचलतासे रहित आत्माकेही प्रतीयमान जो भावहैं सो परमार्थसे सत्रूप कल्पना करने को शक्य हैं नहीं, एतदर्थ असद्रूपही प्राणादि भावोंसे, अरु रज्जुवत् सर्व विकल्पके आश्रयभूत परमार्थ सत्रूप आप अद्वैतसे एकसत् स्वभाव वालाहुआ भी यहआत्मा आपही कल्पितहै । अरु "भावा अप्यद्वयेनैव तस्मादद्वयता शिवा" (भावभी अद्वयसेही (कल्पित) हैं तस्मात् अद्वयता शिवहै) अर्थात् पुनः वे प्राणादि भाव भी सद्रूप अद्वैत आत्मासेही कल्पित हैं । अरु जिस करके अधिष्ठान (आश्रय) रहित कोई भी कल्पना देखते नहीं, एतदर्थ सर्व कल्पना का अधिष्ठान होनेसे अपने स्वरूपसे अद्वैतताके अव्यभिचारसे कल्पनावस्थामें भी अद्वैतता शिव कहिये कल्याणरूपही है । अरु सो कल्पनाही तो रज्जु सर्पआदिकों वत् (जन्म मरणादि लक्षणरूप) भयकी कारणहै एतदर्थही अशिवरूपहै, अरु (भय का कारणजे कल्पना तिससे पृथक् कल्पनारहित अरु तिनका आश्रय) जो अद्वयता सो जिसकरके अभयरूपहै (क्योंकि "अभयं वै जनकप्राप्तोऽसीति" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे एक अद्वयरूप आत्माको जाननेवाला अभयरूप अपने आपको प्राप्तहोता है) ताते सोई सर्वका परमकल्याण शिवरूपहै । "विद्वान्न बिभेति कदाचन" ३३ ॥

३४॥ हे सौम्य, [किंवा यह नानारूप द्वैतक्या आत्माके तादात्म्य से सिद्धहोताहै, वा स्वतन्त्र सिद्धहोताहै । यहविवेचन करने के योग्यहै । तिनमें प्रथमपक्ष (आत्माकी तादात्म्यता) बने नहीं । यहां यहअर्थहै कि यह नानारूपद्वैत आत्माके तादात्म्यसे सिद्ध होनेकेयोग्य नहीं,क्योंकि परस्परमें विरुद्धस्वभाववाले जे जड़ अरुअजड़ तिनके तादात्म्यका असम्भव है ताते । अरु सर्व

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः । निर्विकल्पो ह्ययंदृष्टः प्रपंचोपशमोऽद्वयः ॥ ३५ ॥

भेदसेरहित जो आत्मा तिससे तादात्म्य के हुये द्वैत के नानापने की असिद्धिहोवेगी ताते] अद्वैतता शिवरूपकहां से होवेगी, क्योंकि जहां अन्यसे अन्यका नानारूप भिन्नपना देखाहै तहां अशिव होता है, (ऐसा जो कदापि वादी कहे सो नहीं । क्योंकि "नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन" (यह आत्मभावसे नाना नहीं, अपने से भी कदाचिन्नहीं) अर्थात् जिसकरके इस परमार्थ से सत्रूप आत्मा विषे प्राणादिक संसार का समूहरूप यह जगत् आत्मभाव (परमार्थरूप) से नाना कहिये आत्मा से अन्य वस्तुरूप होतानहीं ।जैसे रज्जु स्वरूपसे प्रकाशकर निरूपण किया जो कल्पित सर्प सोनानारूप नहीं, तद्वत् । अरुअपने प्राणादिक स्वरूपसेभी यहजगत् कदाचित्भी विद्यमानहै नहीं, क्योंकि रज्जु में सर्पवत् कल्पित है ताते, अरु जैसे अश्व से महिष पृथक् ही विद्यमान है, तैसे प्राणादि वस्तु परस्परमें भिन्न नहीं एतदर्थ "नपृथङ्नापृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदोविदुः" (पृथक् अपृथक् कुछ भी नहीं ऐसे तत्त्वके वेत्ता कहते हैं) अर्थात् । नानात्वको । असत् होने से परस्पर में वा अन्यसे कुछ भी पृथक् नहीं, इस प्रकार परमार्थ तत्त्वके वेत्ता ब्राह्मण जानते हैं । एतदर्थ अशिव की हेतुता के अभाव से अद्वैतता ही शिवरूप है । यह अभिप्राय है ३४ ॥

३५॥हेसौम्य, यह जो सम्यक् दर्शनकहा अब तिसकी स्तुति करते हैं । "वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः" । (रागभयक्रोध से रहित मुनि अरु वेदके पारको प्राप्तहुये पुरुषोंकरके) अर्थात् विगतकहिये अभाव हुये हैं राग भय क्रोधादिक सर्वदोष जिनके, । अर्थात् राग भय क्रोधादिक दोष जे सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्ति में प्रतिबंधकहैं तिनकाहेतु अविद्या जन्य द्वैतभाव है सो जिसका

तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् ।
अद्वैतं समनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ३६ ॥

एक अद्वैत आत्मज्ञान करके निर्मूल होता है तब रागादि सर्व दोषों का अभाव होता है, इसप्रकार जे रागादि दोष रहित। अरु सर्वदा मनन करने के स्वभाववाले मननशील परम विवेकी मुनि, अरु वेदके पारको प्राप्तहुये जे वेदार्थ तत्त्वकेज्ञाता अरु वेदान्तके अर्थबिषे परम बोधवान्, ऐसे पुरुषोंकरकेही "निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपंचोपशमोऽद्वयः" "निर्विकल्प प्रपंचके उपशमवाला अद्वैतरूप यहदेखा (जान्या) है"; अर्थात् उक्तप्रकारके मुनि ज्ञानी पुरुषोंकरके सर्व विकल्पसे रहित अरु द्वैतभेद के बिस्ताररूप प्रपंच के अभाववाला, इसहीसे अद्वैतरूप यह आत्मा देखा जान्या, यथार्थ अनुभवकिया, है। इस कहनेका अभिप्राय यहहै कि द्वेषादि दोषरहित वेदांतके अर्थबिषे तत्पर पंडित संन्यासी करकेही परमात्मा देखने। अनुभव करने। को शक्यहै। अरु तिनसे इतर रागादिदोष करके मलिनहुये चित्तवाले, अरु अपने पक्षपातके देखनेवाले तार्किकादिकों करके नहीं "न कर्म्मणा प्रवेदयन्ते रागात्" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से। ३५ ॥

३६॥ हेसौम्य, "तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम्" "तातें ऐसे जानके अद्वैतबिषे स्मृतिको जोडना"; अर्थात् जिस करकेपरमार्थरूप अद्वय आत्मा उक्त प्रकारका शिवरूपहै। तातें इसप्रकार उपनिषदादि वेदान्त शास्त्रसे सम्यक् प्रकार जानके अद्वैतबिषे स्मृतिको जोड़ना लगावना। अर्थात् अद्वैतके ज्ञानार्थ स्मृतिकरना वा रखना। अर्थात् जबशास्त्र अरु आचार्यकरकेसम्यक् अद्वैततत्त्वका यथार्थ साक्षात् अनुभवपूर्वक उसका दृढनिश्चयात्मक भाव होताहै तब असत् नामरूप क्रियात्मक जगत् तिसकी लकारणविस्मृतिरूप निर्विकल्प अवस्थान समाधिसे जब उत्थान

निस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एवच । चल
चलनिकेतश्चयतिर्यादृच्छिकोभवेत् ३७॥

होवे तव प्रत्यक्ष भासमान जे मृगतृष्णाके जलवत् पंचविषया
समस्त जगत् तिसबिषे तिसके अधिष्ठानकी स्मृतिकरना कि यह
सर्व नानात्मक द्वैत अपने अद्वैताधिष्ठानसे इतरनहीं यह वोही
रूपहै सो अद्वय अधिष्ठानही सर्वात्मा है, ताते "मत्तः परतरन्ना-
न्यत् किञ्चिदस्ति" मुझ सर्वाधिष्ठानसे इतर कुछभी नहीं, इस
प्रकार अपनी दृढ भावनारूप स्मृतिको अद्वैत तत्त्वमें जोडना ।
अरु "अद्वैतंसमनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत्" । (अद्वैत को सम्यक्
प्रकार प्राप्तहोके जडवत् लोकबिषे विचरे) अर्थात् उक्तप्रकार
अद्वैतमें स्मृतिको योजनाकरके । इस अद्वैतको "अहं ब्रह्मास्मि"
(मैं ब्रह्महौं) ऐसे सम्यक् प्रकार जानके सर्वलौकिक व्यवहार
को त्यागके । केवल शरीर यात्रामात्रके लिये । जड (मूर्ख) वत्
हुआ लोकबिषे विचरे । अभिप्राय यह है कि 'मैं इसप्रकार का
यहहौं, ऐसे आपको विद्या अरु कुलादिक से अप्रख्यात अरु अपने
लक्ष्यको अप्रकट करताहुआ विद्वान ज्ञानी लोक विषे विचरे ।
"भैक्षचर्यंचरन्ति" ३६ ॥

३७ ॥ हे सौम्य, प्रश्न । पूर्वकहा जो विद्वान् जडवत्हुआ लोक
विषे विचरे सो । किस आचरण से विचरे, । उत्तर "। निस्तुति
र्निर्नमस्कारो निःस्वधाकारएवच" । (स्तुति से रहित, नमस्कार से
रहित, स्वधाकारसे रहितही होवे) अर्थात् । अपने आत्मासे ।
अन्य देवताओं की स्तुति (आराधनादिक) से रहित होवे, अरु
मनुष्यों (ब्राह्मणादिकों) के अर्थ नमस्कारादिकोंसे रहितहोवे,
अरु पितरोंके अर्थ स्वधाकार से रहित होवे । अर्थात् उक्तप्रकार
का एकात्मदर्शी विद्वान्, स्तुति यज्ञादि देवकार्य से, अरु नम-
स्कार आतिथ्यादि मनुष्यकार्यसे, अरु स्वधाश्राद्धादिक पितृकार्य
से, रहित यती (संन्यासी) ही होवे । अभिप्राय यहहै कि स्तुति

नमस्कारादि सर्व कर्म्मों से रहित, अरु तिनकर्मों में प्रवृत्ति के हेतु जे, वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा, अर्थात् वित्त पुत्र अरु स्वर्ग लोक, इनकी कामना तिसका अशेषत्यागी हुआ परमहंस परिव्राट् आश्रमको प्राप्तहोवे " एतंवैतमात्मानंविदित्वेत्यादिश्रुतेः " "तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणइत्यादिस्मृतेश्च" (इस प्रसिद्ध तिसआत्माको जानके। अरु तिसबिषे बुद्धिवालेतिसरूप तिस बिषे निष्ठावाले तिसपरायणहुये) इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाणसे। अरु "। चलाचलनिकेतश्चयतिर्यादृच्छिकोभवेत् " । ' चलाचलनिकेतवाला यति यादृच्छिकहोवे; अर्थात् चलकहिये क्षण क्षणबिषे अन्यथाभावहोनेरूप स्वभाववाला चलशरीर है, अरु निराकार सर्वत्र पूर्णहोने से अचलआत्माहै। ताते जब कदाचित् भोजनादिक व्यापारके निमित्त आकाशवत् अचलस्वरूप आत्मतत्त्व रूप। अपने निकेत, आश्रय, (आत्मास्थिति) को विस्मरण करके। । अर्थात् लोकदृष्टिमात्र विस्मरण करके क्योंकि स्मरण अरु विस्मरण अन्यबिषे होताहै ज्ञानोत्तर अपने आप आत्माबिषे नहीं। मैंहों ऐसे मानता है, । वासाधारणलोक उसको यह भोजनआदि करताहै ऐसा मानते हैं। तिससमय विद्वान् शरीररूप चल निकेत (आश्रय) वाला होताहै, अरु तिस भोजनादि व्यापारसे अन्य कालबिषे आत्मतत्त्वरूप अचल निकेतवाला होवे है। इसप्रकार यह विद्वान् चलाचल निकेतवाला है। परन्तु बाह्य विषयों के आश्रयवाला नहीं। अरु सो विद्वान् यादृच्छिक होवे है, अर्थात् यदृच्छा जो दैवगति तिससे प्राप्तहुये। अर्थात् विनायत्नके अनाश्रित प्राप्तहुये। कोपीन आच्छादन अरु ग्रासमात्र से देहकी स्थिति वाला होवे ३७॥

—❀—

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातु बाह्यतः। तत्त्वी
भूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ३८ ॥

इति गौडपादीयकारिकायां वैतथ्याख्यंद्वितीयं
प्रकरणं समाप्तम् ॥

३८॥ हेसौम्य, ["अहमेव परंब्रह्म न मत्तोऽन्यदस्ति किञ्चिदि-
ति" । मैंही परब्रह्महों मुझसे अन्य रंचकमात्रभी कुछनहीं। इ-
सप्रकार की स्मृतिका सन्तान कहिये प्रवाह करना । अर्थात् अ-
पने वास्तविक आत्मरूपका अनुसंधानरूप स्मरण प्रवाहरूपसे
करना। सोकोई एक कालविषे करना ऐसा नियमित नहीं, कि-
न्तु निरन्तर करनेको योग्यहै। "निमेषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिब्रह्म
मयींविना" । ऐसेंकहाहै। इसश्लोकका यहअर्थहै कि शरीरादि-
क कल्पित आध्यात्मिक वस्तुको अधिष्ठानमात्र देखके, अरु श-
रीरसे बाह्यवत् स्थितहुये पृथिव्यादिकों को कल्पितपने करकेअ-
वस्तुरूप होनेसे सो अधिष्ठानही है इतरनहीं, इसप्रकार अनु-
भव करकेआप द्रष्टा पुरुषभी परमार्थ वस्तुके स्वभावको प्राप्त
हुआ, तहांही आसक्त चित्तवाला, अरु बाह्य विषयोंसे निवृत्तिबुद्धि
वाला हुआ तिसही परमार्थ तत्त्वविषे स्थितहुआ तिसके ज्ञान
विषे स्थितहोवैहै] । "वाचारंभणं विकारोनामधेयमित्यादिश्रु-
तेः" 'वाणीसे उच्चारण किया विकार नाममात्रहीहै,' इत्यादि
श्रुति प्रमाणसे, । तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातु बाह्यतः" ।
'आध्यात्मिकको तत्त्वदेखके, अरु बाह्यको तो तत्त्वदेखके,' अर्थात्
रज्जुसर्पवत् अरु स्वप्न मायादिवत् असत् शरीर प्राण इन्द्रियादि
रूप अध्यात्म, अन्तरवस्तु, को तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप दे-
खके। अरु शरीरादिकोंकी अपेक्षासेबाह्य पृथिव्यादिरूप वस्तुओं
को भी तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देखके, "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः"
"अपूर्वोऽनपरोऽनन्तरोऽबाह्यः" "कृत्स्नघन" "आकाशवत्

सर्वगतः" "सूक्ष्मोऽचलो, निर्गुणो, निष्कलो, निष्क्रियः" "तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीति श्रुतेः" (बाह्यान्तर सहित अजन्माहै, अपूर्व है अनपरहै अनन्तरहै अबाह्यहै, सम्पूर्ण है, आकाशवत् सर्वगतहै, सूक्ष्महै, अचलहै, निर्गुणहै, निष्कलहै, निष्क्रियहै, सो सत्है सो आत्माहै सो तू है) इत्यादि श्रुतियोंकी एक वाक्यतासे, "। तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतोभवेत् ।" (तत्त्व रूप अरु तिसबिषे रमणवाला तत्त्वसे अप्रच्युत होवे) अर्थात् उक्तप्रकार तत्त्वकी दृष्टिसे तत्त्वस्वरूप अरु तिसबिषे रमणवाला, अरु बाह्यबिषयों बिषे अरमणवाला हुआ तत्त्वसे अचलित होवे। 'जैसे कोई एक अतत्त्वदर्शी चित्तको आत्मतत्त्वकरके जानता हुआ चित्तके चलने पीछे आत्माको चलितहुआ मानता सता 'अभी मैं आत्मतत्त्वसे चलितहुआहौं, इसप्रकार देहादिरूप आत्माको चलितहुआ मानताहै। अरु चित्तके एकाग्रहुये कदाचित् 'अभी मैं तत्त्वरूप हुआहौं, इसप्रकार प्रसन्नहुये चित्तरूप आत्माको तत्त्वरूप मानताहै। तैसे आत्मवेत्ता होवे नहीं, क्योंकि आत्मा एकरूप एकरसहै ताते उसका स्वरूपसे चलना असंभव है। किन्तु "अहंब्रह्मास्मीति" मैं ब्रह्महौं इसप्रकार । ब्रह्मानुसंधान करताहुआ। सदैव तत्त्वसे अप्रच्युत (अचलित) होवे। अभिप्राय यहहै कि सदा अचलित आत्माके दर्शन (अनुभव) वालाहोय। "समोनागे समोमशके" "शुनिचैव श्वपाकेच। समं सर्वेषु भूतेषु" (हाथी अरु मच्छर बिषे समानहै। श्वान बिषे अरु चांडालबिषे पंडित समदर्शी है। अरु सर्व भूतों बिषे समस्थितहोनेवाले आत्मरूप परमेश्वरको। विद्वान् आत्मनिष्ठ अनुभवकरताहै। इत्यादि श्रुति अरु गीतास्मृति के प्रमाणसे ३८ ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतमांडूक्योपनिषद्कारिकायां वैतथ्याख्य-
द्वितीयप्रकरण भाषाभाष्य समाप्तम् (२॥२)
ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ हरिः ॐ॥

ॐ

अथ अद्वैताख्यं तृतीयप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

उपासनाश्रितोधर्म्मो जातेब्रह्मणि वर्त्तते । प्रागु
त्पत्तेरजं सर्व्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः १।८०॥

अथगौडपादाचार्य्यकृतकारिकायामद्वैताख्यतृती-
यप्रकरणभाषाभाष्यंप्रारभ्यते ३ ॥

हे सौम्य [पूर्व तर्क (युक्ति) से द्वैतके मिथ्यापने के निरूपण को समाप्त करके, अब परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैतको युक्ति करके निश्चय करावने को अद्वैतनामवाले तृतीय प्रकरणके आरंभकरने को इच्छते हुये आचार्य प्रथम उपास्य अरु उपासक इस भेद दृष्टिकी निंदा करते हैं] प्रथम प्रकरण बिषे ॐकार के निर्णय में । " प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत आत्मेति " 'प्रपञ्चके उपशम वाला शिव अद्वैत आत्मरूप है' इन विशेषणों करके आत्मा प्रतिज्ञामात्रसे अद्वैतरूप कहा । अरु तहां प्रथम प्रकरण विषेही " ज्ञाते द्वैतं न विद्यत इति च " 'जानेहुये द्वैत है नहीं' इस स्थलमें प्रतिज्ञामात्रसे द्वैतकाअभाव कहा, सो द्वैतका अभाव तो द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरणसे, स्वप्न, माया, गंधर्वनगर, इत्यादि दृष्टान्तरूप अरु दृश्यपने आदिक अन्तवान्पने आदिक हेतुरूप युक्तिसे प्रतिपादन किया । अरु इसविषे प्रतिपादन करने योग्य अवशेष है नहीं ॥ प्रश्न ॥ क्या अद्वैतवस्तु शास्त्रमात्रसेहीजानने योग्य है किंवा तर्कसे भी जानने योग्य है॥उत्तर ॥ तहां कहते हैं, अद्वैतवस्तु तर्क से भी जानने को शक्य है ॥ प्र० ॥ सो अद्वैत वस्तु तर्क (युक्ति) से कैसे जानने को शक्यहै, ॥ उत्तर ॥ तहां कहते हैं, इस अर्थके जानने के अर्थ । अर्थात् युक्तिसे भी एक

अद्वैत तत्त्वके जानने के अर्थ । अद्वैत संज्ञक तृतीय प्रकरण का आरंभकरते हैं । पूर्वके द्वितीय प्रकरणबिषे उपास्य अरु उपासना आदिक भेदोंका समूह सर्वमिथ्याहै अरु केवल अद्वैत आत्मा परमार्थ सत्यरूप है, इसप्रकार सिद्धहुआ है, एतदर्थ यहां आरंभ बिषे उपासककी निंदा करतेहैं "उपासनाश्रितोधर्म्मो जातेब्रह्मणिवर्त्तते, प्रागुत्पत्तेरजं सर्व्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः" । (धर्म्म उत्पन्नहुये ब्रह्मबिषे वर्त्तताहै उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा उपासनाको आश्रितहुआ तिससे यह कृपण चिन्तन कियाहै, अर्थात् देहके धारणसे धर्म जो जीव सो । आकाशादि । भूतोंके समुदाय के आकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्मबिषे तिसका अभिमानी होके वर्त्तता है । सो उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा, इसप्रकार कालकरके परिच्छिन्न वस्तुको मानता है । सो जीव। पुनः उपासना को पुरुषार्थका साधन जानके तदाश्रितहुआ देहपात हुये पश्चात् तिसही ब्रह्मको प्राप्तहोवोंगा, इसप्रकार जिसकारण से मिथ्या ज्ञानवान् होयके स्थित होवेहै, तिसकारणसे यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषों ने कृपण (अल्प) चिन्तन कियाहै । हे सौम्य इसका यह अभिप्रायहै कि उपासनाके आश्रितहुआ । अर्थात् उपासनाको अपने मोक्षका साधनमानके प्राप्तहुआ "उपासकोऽहं ममोपास्य ब्रह्म, तदुपासनं कृत्वाजाते ब्रह्मणि इदानीं वर्त्तमानोऽजं ब्रह्मशरीरपातादूर्ध्वंप्रतिपत्स्ये प्रागुत्पत्तेश्चाजामदं सर्वमहंच" (मैं उपासकहूं मेरा उपास्य ब्रह्म है तिसकी उपासनाकरके अवभूतों के संघातके आकार से उत्पन्नहुये ब्रह्म बिषे वर्त्तमानहौं, अरु शरीर के पतनहुये पश्चात् अजन्मा ब्रह्मको प्राप्तहोवोंगा, अरु उत्पत्ति से पूर्व अवस्था बिषे यह सर्व अजन्माथा अरु मैं भी तैसाही अजन्माथा । इसप्रकार जिसकरके उपासक मानता है एतदर्थ पूर्वावस्थावाले ब्रह्मको विषयकरनेवाली अजन्मापनेकी श्रुति बने है। अब "इदानींजातोजातेब्रह्मणिचवर्त्तमानउपासनयापुनस्तदेव प्रतिपत्स्यइत्येवउपासनाश्रितोधर्म्मः" (उत्पत्ति अवस्था बिषे

अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमताङ्गतम् । यथा
न जायते किंचिज्जायमानं समंततः २ । ८१ ॥
मैं जन्मको पाया हौं, अरु इस स्थिति अवस्थाविषे उत्पन्नहुये
ब्रह्मविषे । अर्थात् भूतोंके संघातरूप शरीराकारसे उत्पन्न हुये
ब्रह्मविषे । वर्त्तमानहौं, अरु उत्पत्ति से पूर्व जिसरूपवाला हुआ
स्थित था तिसही को पुनः प्रलय अवस्था विषे उपासनासे प्राप्त
होवोंगा । इसरीति से उपासना के आश्रित हुआ साधक जीव
सो जिस हेतुसे इसप्रकार करके अल्प ब्रह्मका वेत्ता है तिसही
हेतुसे यह नित्य अजन्मा ब्रह्म के दर्शी (अनुभवी) महात्मा
पुरुषों ने । उक्तप्रकार के उपासक को । कृपण, दीन, अल्पक,
करके चिन्तन कियाहै "यद्वाचानाभ्युदितं येनवागभ्युद्यतेतदेव
ब्रह्म,त्वं,विद्धि, नेदंयदिदमुपासत,इत्यादि" (जो वाणीसे अप्रका-
शितहै । अर्थात् जिसकोवाणी कहनहींसक्ती। अरु जिसकरकेवाणी
प्रकाशित होती । अर्थात् जिसकी सत्तासे वाणी अन्योंको कहने
में समर्थ होती है । तिसही को तू ब्रह्मकरके जान, जिसको यह
(भेदवादी) लोक उपासते हैं सो ब्रह्मनहीं, वा जिसकोलोक
उपासते हैं सो साकार परिच्छिन्नहुये ब्रह्म होनेको योग्य नहीं)
इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाखाकी श्रुतिके प्रमाणसे १।८०॥
हे सौम्य, [अद्वैत के विरोधी द्वैतवादी भेदी उपासकों की
निन्दा करके अब सम्पत्ति अद्वैत प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते
हैं] "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" । इत्यादि श्रुति प्रमाण से जो
बाह्य अन्तर सहित अजन्मा आत्मा है । कि जिसके जानने से
और का जानना अवशेष रहता नहीं । तिसके जानने में अस-
मर्थ हुआ, अरु अविद्या करके अपने आपको दीन जानता हुआ
"जातोऽहंजातब्रह्मणिवर्त्तेतदुपासनाश्रितः सन् ब्रह्म प्रतिपत्-
स्ये" (मैं जन्माहौं अरु उत्पन्न हुये ब्रह्मविषे वर्त्तताहौं, अरु ति-
सकी उपासना के आश्रित हुआ ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा) इस

प्रकार जाननेवाला पुरुष कृपण होताहै। अर्थात् "न जायते म्रियतेवा कदाचित्" इत्यादि श्रुति आदिकों के प्रमाण अनुभव से जो जन्म मरण रहित सदा एक रस आत्मा तिसको, अरु "स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि प्रमाणसे सहित बाह्य अन्तर सर्वाधिष्ठान सर्वरूपसे सुशोभित ब्रह्म तिसको। जो कि वास्तवमें दोनों एक अरु जन्मादि विकार रहित हैं। जन्मे मानके, तिनमें परस्पर स्वामी सेवकादि वा उपास्य उपासकादि भेद मानके अरु अपने आपको अति दीन अपराधी ईश्वरके आश्रित हुआ तिसकी उपासना से ब्रह्मभावकी प्राप्ति मानके जो उपासना करनेवाले पुरुषहैं सो आपभी मुये अरु ब्रह्मको भी मारा क्योंकि "जातस्यहि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्म मृतस्यच" इत्यादि प्रमाणसे जो जन्मता है सो मरता है, अरु उस भेदीने जीवरूपसे आत्मा को अरु भूतों के संघात रूपसे ब्रह्मको जन्मा माना है, ताते उक्त प्रकारके भेदी उपासकों को श्रुति अरु ब्रह्मवेत्तादि महात्मा कृपण कहते हैं। एतदर्थ अब अजन्मा ब्रह्मरूप अकृपण भाव को कहताहों "यत्रान्योऽन्यत् पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं मर्त्यंसद्वाचारंभणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतिभ्यः" "जिसबिषे अन्य अन्यको देखता है, अन्यको सुनताहै अन्य को जानता है सो अल्प मरनके योग्यहै, बाणीसे कहा विकार नाम मात्रहै" इत्यादिक श्रुतियों के प्रमाणसे। अरु सो उक्त प्रकारका (अर्थात् भेदी उपासक करके माना) ब्रह्म कृपणभावका आश्रय है। अरु तिससे विपरीत (अर्थात् श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अभेदवादी ब्रह्मवेत्ताओं करके जाना) बाह्य अन्तर सहित अज भूमाख्यब्रह्म अकृपणभावरूपहै। अरु जिसकोजानकेअविद्याकृत सर्वकृपणभावकी अशेष निवृत्तिहोवेहै तिसकोअकृपणभाव कहते हैं, तिस अकृपणभावको अब कहता हों, इत्यर्थः। "अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतांगतम्" ॥ "अजाति है समताको प्राप्त है अकृपणभाव है तिसको कहता हों" अर्थात् सो ब्रह्म कैसा है कि

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः । घटादिवच्च संघातैर्जातावेतन्निदर्शनम् ३ । ८२ ॥

अजाति है 'अर्थात् जाति जो जन्म तिससे रहित अजहै। वा जो जन्मवान् होताहै सो मनुष्यादि वा ब्राह्मणादि जातिवाला होता है अरु ब्रह्म अजन्मा होनेसे ब्राह्मणादि वा मनुष्यादि जातिवान् नहीं ताते सो अजाति अजन्मा है। अरु सर्व समताको प्राप्तहुआ है, क्योंकि उसबिषे अवयवोंकी विषमताका अभाव है। अ सावयव वस्तु है सो अवयवों की विषमतावाली होती है, ... प्रकार कहते हैं। अरु यह । आत्माख्यब्रह्म । तो निरवयवहै इस हेतु से समता को प्राप्तहुआ है। अरु सोब्रह्म किसी भी अव से जन्मको पावता नहीं एतदर्थ सो सर्व ओरसे पूर्ण जन्मर अकृपणभाव है तिसको कहताहौं । अरु " यथालजायते कि ञ्ज्जायमानं समंततः " । " जैसे कुछ भी जन्मतानहीं जायमान सर्व ओर से वर्त्तता है " अर्थात् जैसे रज्जु बिषे सर्प भ्रान्ति से जन्मता (उत्पन्नहोता) है, तैसे ही सर्व अविद्या कृत भ्रा दृष्टिसे जन्मको प्राप्तहोनेकरके भासमान है,तथापि, जिसप्रक से वस्तुकरके कुछ भी जन्मको पावता नहीं,किन्तु सर्व देशक अरु वस्तुसे पूर्ण कूटस्थ ही वस्तु होता है । । अर्थात् सर्व ... काल अरु वस्तु रूपसे एक अद्वैत ब्रह्मही सुशोभित है । तैसे तिस प्रकार को श्रवणकर । यह इसका अर्थ है ३ । ८१ ॥

३।८२ हे सौम्य, जन्मरहित ब्रह्मरूप अकृपण भावकोकहता हौं, इसप्रकार प्रतिज्ञा किया जो वस्तुतिसकी सिद्धिके अर्थ हेतु अरु दृष्टान्त को कहते हैं, इसप्रकार कहता हौं " । आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः " । " आत्मा आकाशवत् है, अरु घटाकाशों से तुल्य जीवों से कहा है " अर्थात् [प्रतिज्ञा किये वाक्य विषे ब्रह्मशब्द करके प्रसंग में प्राप्तकिया जो परमात्मा सो कैसा है, इसप्रकार प्रश्न करने की इच्छा के हुये कहते हैं

इस श्लोकके पूर्वार्द्ध का यह अर्थहै कि जैसे आकाश विभु (व्यापक) पने आदिक धर्मवालाहुआ अपने विषे स्थित वास्तविक भेदवाला होतानहीं, तैसे विलक्षणताके अभावसे परमात्माभी है। अरु जैसे एक महदाकाश अनेक घटाकाशोंके आकारसे प्रतीत होता है। अर्थात् जैसे एकही महदाकाश मेघ मठ घटादिकोंकी उपाधि से अनेक आकारवान् नाना प्रतीतहोता है। तैसेही एकही परमात्मा [हिरण्यगर्भ से लेके पिपीलिकादि पर्यन्त उत्तम मध्यम छोटे बड़े। नानाप्रकारके जीवों के आकारसे प्रतीतहोता है। परन्तु उपाधिकृत भेद से रहित वास्तव करके एक अद्वैतही है।] आत्मा जो परब्रह्म सो जिसकरके आकाशवत् सूक्ष्म निरवयव सर्वगत है तिसही से उसको आकाशवत् कहा है। अरु घटाकाशों के दृष्टान्त से आकाश के तुल्य क्षेत्रज्ञ रूप जीवों के स्वरूप करके कहा है। सोई आकाशके तुल्य परब्रह्मरूप आत्मा है। अथवा जैसे घटाकाशसे उत्पन्न हुआ महदाकाश है, तैसेही परमात्मा जीवों से उत्पन्न हुआ है। अर्थात् जीवों की परमात्मा से जो उत्पत्ति वेदान्त शास्त्र करके श्रवण करते हैं सो वास्तव करके महदाकाशसे घटाकाशोंकी उत्पत्ति के समान है, यह इसका अभिप्रायहै। अरु जैसे तिसही महदाकाशसे। वायु आदि क्रम करके। घटादिक संघात उत्पन्न होते हैं, तैसेही महदाकाशस्थानीय परमात्मासे पृथिव्यादिक भूतोंके भौतिक संघात, अरु कार्य कारणरूप आध्यात्मिक देहादि संघात, यह सर्व रज्जु में सर्पवत् कल्पितहुये उत्पन्नहोते हैं, एतदर्थ "। घटादिवच्चसंघातैर्जातावेतन्निदर्शनम्" (घटादिवत् संघातसे उत्पन्नहुआ ऐसाकहते हैं) अर्थात् जब मन्दबुद्धिवाले जिज्ञासुको निश्चय करावने की इच्छावाली श्रुतिने आत्मा से जीवादिकों की उत्पत्ति कही है, तब जानने योग्य तिस उत्पत्ति विषे उत्पन्न हुये आकाशवत्, इत्यादिरूप यह दृष्टान्त है ३॥ ८२॥

घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयोयथा । आकाशे सम्प्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि ४ । ८३ ॥

४।८३॥हे सौम्य,"घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा । आकाशेसंप्रलीयन्ते तद्वज्जीवइहात्मनि" जैसे घटादिकोंके लीन हुये घटाकाशादिक आकाशविषे लीनहोते हैं,तैसे इस आत्माविषे जीव होते हैं ; अर्थात् जैसे घटमठादिकों के अपने कारण पृथिवी विषे लय होने से तद्गत जे घटाकाशादि संज्ञक आकाश सो अपने से अभिन्न महदाकाश विषे लीन होते हैं, तैसेही इस आकाशवत् पूर्ण आकाश का भी आश्रय महासूक्ष्म अधिष्ठान चैतन्य आत्माविषे, यह शरीरादि संघात विशिष्ट चिदाभासजीव लीन होता है । [जीवों के उत्पत्ति अरु प्रलय उपाधि के किये हैं, स्वाभाविक नहीं । अरु तिसप्रकार होने से उत्पत्ति की प्रतिपादक श्रुति से होता जो अद्वैत का बिरोध तिसके अभावबत् प्रलयकी श्रुतिसे भी अद्वैतका बिरोधहै नहीं,इसप्रकार श्लोकके अक्षरों के व्याख्यान से प्रकट करते हैं] अर्थ यह है जो, जैसे घटादिकों की उत्पत्ति से घटाकाशादिकों की उत्पत्ति होवे है, अरु जैसे घट मठादिकों के लय हुये घटाकाशादिकोंका भी लय होवे है।तैसेही देहादिक संघातकी उत्पत्तिसे । घटाकाशवत् । जीवोंकी उत्पत्ति होती है, अरु तिन देहादि संघात का स्वकारण में लय होनेसे इन जीवोंका (संघातबिशिष्ट चैतन्यका) इस (संघातोपहित एक अद्वैत) आत्मा विषे लय होताहै, परन्तु स्वरूप करके इस चैतन्य जीव का उत्पत्ति लय नहीं "न जायते म्रियते वा कदाचित" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ४ ॥ ८३ ॥

५।८४॥हेसौम्य, सर्व देहोंविषे आत्माकी एकताके होते,जन्म मरण अरु सुखादिक धर्मवाले एक आत्मा के हुये, सर्व आत्मा को उन जन्मादिक धर्मोंसे सम्बन्ध होवेगा, और क्रिया अरु फलका मिश्रभाव होवेगा, इसप्रकार जो द्वैतवादी कहता है,तिसके प्रति

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते। नसर्व्वे-सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवासुखादिभिः ५। ८४॥

अब यह उत्तर कहते हैं। "यथैकस्मिन् घटाकाशे रजो धूमादिभिर्युते, न सर्व्वे सम्प्रयुज्यंते तद्वज्जीवासुखादिभिः" " जैसे रज अरु धूमादिक करके युक्त एक घटाकाशके हुये, सर्व घटाकाशादिक तिन रज धूमादि करके संयोगको पावते नहीं तैसे जीव सुखादिकों से संयोग को पावते नहीं ? अर्थात् । अनेक घटों में आकाश एकही है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से अनेक आकाश कहेजाते हैं, अरु उन अनेक घटाकाशों मेंसे एक घटाकाश को धूलि धूमादि करके युक्त होने से सर्व घटाकाश तिन धूलि धूमादिकों से संयोग को पावते नहीं, तैसे एक आत्मवाद विषे एक जीव को सुखादि करके युक्त हुये सर्वजीव सुखादिकन से संयोग को पावते नहीं॥ ननु, तब क्या सर्वत्र एकही आत्मा है, जहां ऐसी शंका है। तहां कहते हैं, यह तेरा कथन सत्य है। जो सर्वत्र एकही आत्मा है। शंका। ननु, तिस आत्मा की एकता युक्ति रहित है तिसको कैसे अंगीकार करते हो। उत्तर। तहां कहते हैं। सर्व संघातों विषे एकही आत्मा है, इसप्रकार जो हम ने पूर्व युक्ति सहित आत्मा की एकता कही सो क्या तैंने श्रवण किया नहीं॥ शंका। ननु, जब एकही आत्मा है तब सो सर्वत्र सुखी अरु दुःखी होवेगा। समाधान, तहां कहते हैं, यह प्रश्न सांख्यवादी का है, किंवा वैशेषिकादिकों का है। तिनमें जब यह सांख्यवादी का प्रश्न होवे, तब असंभव है, क्योंकि जिस करके सांख्यवादी जो है सो सुख दुःखादिकों के बुद्धि के समवाय सम्बन्ध के अंगीकार से आत्मा को सुख दुःखादिक धर्मवालपना इच्छता नहीं, अरु ज्ञानस्वरूप आत्मा के भेद की कल्पना विषे प्रमाण नहीं, एतदर्थ यह सांख्यका प्रश्न संभवे नहीं॥ अरु जो ऐसा कहे कि आत्मा के भेद के अभाव हुये प्रधानको पर के अर्थ

होनेका संभव होवेगा ऐसाकहे तो सो बनेनहीं, क्योंकि प्रधानके भोग मोक्षरूप अर्थके आत्माविषे असमवाय है ताते। अरु जब प्रधानका किया बंध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषोंविषे भेदकरके समवायको प्राप्तहोवे, तब आत्माकी एकता करके प्रधानको परार्थ (जीवोंका शेष) होनेका असंभव होवे। एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पना युक्तहै, परन्तु सांख्यबादियोंने बन्ध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषसे समवाय संबंधवाला अंगीकार कियानहीं, किन्तु निर्विशेष चेतनमात्र आत्मा अंगीकार कियाहै, एतदर्थ पुरुषकी सत्तामात्रका कियाही प्रधानका परार्थपना सिद्धहै, नतु पुरुषके भेदकाकिया। किंवा प्रधानका जो परार्थपना है सो अन्य शेषीकी अपेक्षा करता है, तिसबिषे भेदकी अपेक्षानहीं एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पनाबिषे प्रधानका परार्थपना हेतु नहीं। अरु सांख्यबादियोंको पुरुषके भेदकी कल्पनाविषे अन्य प्रमाणहै नहीं। अरु प्रधान जो है सो इस पर (पुरुष) की सत्तामात्रकोही निमित्तकरके आप बद्धहोवे है अरु मुक्त होवेहै। अरु सेश्वर सांख्यबादियों के मतविषे पर जो ईश्वरहै सो ज्ञानमात्रसत्ता स्वरूपसे प्रधानकी प्रवृत्तिविषे हेतु नहीं, किन्तु किसीभी बिशेषसे हेतुहोगा। एतदर्थ सांख्यबादीकरके केवल मूढतासेही पुरुषके भेदकी कल्पना अरु वेदार्थका परित्याग कियाहै, युक्ति अरु प्रमाणसे नहीं ॥ अरु जो वैशेषिकादि मतबादी कहतेहैं कि इच्छा आदिक आत्मासे समवाय सम्बन्ध वाले हैं, सो उनका कहनाभी असतहै। क्योंकि स्मृतिकेहेतु संस्कारोंके अवयवरूप प्रदेशराहित। अर्थात् स्मृतिकेहेतु जे संस्कार तिन संस्कारोंके अवयव रूप प्रदेश तिनसे रहित। आत्माबिषे समवाय का अभाव है ताते तिनके सिद्धान्तकी असिद्धि होगी। अरु आत्मा अरु मनके संयोगसे स्मृतिकी उत्पत्तिका अंगीकार करनेसे स्मृतिके नियमका असंभव होवेगा (आत्मा, मनके संयोगरूप स्मृतिके कारणके होते अनुभव कालबिषे भी स्मृतिहोवेगी) वा एककालबिषे सर्व्व स्मृतियोंकी उत्पत्तिका प्रसंग होवेगा। भिन्न [किंवा

समान जातिवाले अरु स्पर्शादिक गुणवाले पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध देखा है। जैसे मल्लोंका मेषों का अरु रज्जुघटादिकनका सम्बन्धहै। तिस समानजाति अरु स्पर्शादि गुणके अभावसे आत्माकीमन आदिकोंसे सम्बन्धकी असिद्धितै, अरु उक्त असमवायि कारणसे ज्ञानादि गुणोंकी उत्पत्ति सिद्ध होवेनहीं, इसप्रकार कहते हैं] जातिवाले स्पर्शादि गुणरहित जीवोंका मन आदिकों से सम्बन्ध युक्तहै नहीं। अरु नैयायिकनके [गुणादिकोंकी समान जातिके अरु स्पर्शादिक गुणके अभावहुये भी द्रव्यसे सम्बन्धवाले आत्माका मन आदिकोंसे सम्बन्ध सिद्धहोता है, इसप्रकार जो कदापिबादी कहै, सो बनेनहीं ऐसा कहतेहैं। यहांयह अर्थहै कि स्वतन्त्र जो सन्मात्रबस्तु सो यहां द्रव्य शब्दकरके कहते हैं। अरु वेदान्तियोंके मतबिषे तिसद्रव्य से भेदकरके गुणादिक बिद्यमान हैं नहीं। क्योंकि "शुक्लःपटः खण्डो गौरित्यादि" (शुक्लपट है, खंडा गौहै) इत्यादि स्थानमें गुण गुणी आदिकोंके सामानाधिकरणके देखनेसे। अरु द्रव्यही कल्पनासे तिसतिस आकार करके भासताहै, इसप्रकार अंगीकार करनेसे। एतदर्थ दृष्टान्तका असंभवहै नहीं] मतबिषे द्रव्यसे रूपादिक गुणकर्म जाति बिशेष अरु समवाय भिन्नहैंनहीं। अरु जब गुणादिक द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न ही होवें, अरुजब इच्छा आदिक आत्मासे अत्यन्त भिन्नहोवें, तब भी तैसेही द्रव्यसे गुणादिकों के सम्बन्धका अरु आत्मासे इच्छा आदिकोंके सम्बन्धका असंभव होवेगा। अरु जोकहे कि अयुत (अभिन्न) सिद्ध बस्तुओंका समवायरूप सम्बन्ध बिरोधको पावतानहीं, सो कथन बनेनहीं [हेबादी तैंने जोयह गुणादिकोंका अयुतसिद्धपना कहा, सो क्या अभिन्न कालवान्पने रूपहै, किंवा अभिन्न देशवान्पने रूपहै किंवा अभिन्न स्वभाववान्पने रूपहै, किंवा संयोग अरु बिभागकी अयोग्यतारूप है, इस प्रकार यह चार पक्षहैं। तिनमें प्रथमपक्ष बनेनहीं क्योंकि बिकल्पको असहन करता है ताते। इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि

ऐसे होनेसें अनित्य इच्छा आदिकोंसे पूर्व नित्य आत्मा सिद्ध है ताते । अरु आत्माके अयुतसिद्धपने का असंभव है [यहां क्या इच्छा आदिकों की अपेक्षासे आत्माका अभिन्न कालवान्-पना है, किंवा आत्माकी अपेक्षासे इच्छादिकों को अभिन्न का-लवान्पना है । इस प्रकार विकल्प करके प्रथम पक्षके अर्थ दूषण दिया है] आत्मा से इच्छा आदिकन के अयुत सिद्धपने के होने से इच्छादिकों को आत्मगत महत्पनेवत् नित्यता का प्रसंग होवेगा, सो अनिष्ट है, क्योंकि इच्छादिकों की नित्यताके हुये आत्माके मोक्षके प्रसंगका अभाव होवेगा ताते । अरु [जब आत्माके साथ इच्छा आदिकों को अभिन्न कालवान्पना है, तब आत्माको अनादि होने सें तिस विषे स्थित जो महत्पना तद्वत् तिन इच्छा आदिकों को भी नित्यताकी प्राप्ति होवेगी,इस प्रकार कहते हैं] समवाय सम्बन्धको द्रव्यसे इतरपनेके हुये,जैसे द्रव्य अरु गुणका समवाय सम्बन्धहै, तैसे तिस समवायका द्रव्य से अन्य सम्बन्ध कहनायोग्य है । अरु जो ऐसा कहे कि समवाय नित्य सम्बन्धही है,एतदर्थ तिनका अन्य सम्बन्धकहना योग्यनहीं। तो तैसे [समवायको नित्य सम्बन्ध रूप होनेसे समवाय संबन्ध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी इस नित्य सम्बन्धवाले होनेसे कदाचित्भी भेदकी अप्रतीतिसे तिनके भिन्नपने की प्रसिद्धिका असंभव होवेगा, इस प्रकार दूषण कहते हैं] हुये समवाय सं-बंध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी नित्य सम्बन्धके प्रसंगसे भिन्नता का असंभव होवेगा । अरु द्रव्यादिकों की अत्यन्त भि-न्नताकेहुये, स्पर्शवान् अरु स्पर्शवान् द्रव्यके असम्बन्धवत् तिनके सम्बन्धका असंभव होवेगा । अरु आत्माको गुणवान्पने के हुये इच्छा आदिकोंकी उत्पत्ति अरु नाशवत् आत्माको अनित्यता का प्रसंग होवेगा । अरु देह अरु फलादिकोंवत् सावयवपना, अरु देहा-दिकोंवतही विकारवान्पना यह उभय दोष निवारण करने को अयोग्य होवेंगे। जैसे [जब आत्माको इच्छादिक गुणवान्पना

रूपकार्य्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै। आकाशस्य न भेदोस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ६।८५॥

नहीं, तब तिसको बन्धके अभाव से मोक्ष न होवेगा, एतदर्थ बन्ध मोक्षकी व्यवस्थाके असंभवसे देह देहके प्रति सुख दुःखादि करके विशिष्ट आत्माके भेदकी सिद्धि है, इस प्रकारकी शंका करके कहते हैं] आकाश को अविद्यासे आरोपित रज, धूम, अरु मलपने आदिक दोषवान्पना है, तैसेही आत्माको अविद्याकरके आरोपित बुद्धि आदिक उपाधि के किये सुख दुःखादि दोषवान्पना है ऐसे अंगीकार किये व्यावहारिक बन्ध अरु मोक्षादिक बिरोध को पावते नहीं, क्योंकि सर्व बादियों करके अविद्याकृत व्यवहार का अंगीकारहै ताते। अरु परमार्थ(मोक्ष) बिषे व्यवहार का अनंगीकार है ताते। एतदर्थ तार्किकों करके आत्माके भेदकी कल्पना वृथाही किया है ५।८४॥

६।८५॥ हे सौम्य,। शंका। ननु, एकही आत्माबिषे अबिद्याकृत आत्माके भेद निमित्तक व्यवहार यद्यपि श्रुति आदिकों से बनेहैं, तथापि अनुमानसे कैसे बनेहैं। समाधान। तहां कहेहैं, " रूप कार्य्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै "। (रूप कार्य अरु नाम तिन तिन बिषे भिन्न देखते हैं) अर्थात् जैसे इस एकही आकाश बिषे घट मठ कमंडलु अन्तर्गृह आदिकों के सम्बन्धी आकाशके अल्पपने अरु महत्पने आदिक रूप। अर्थात् घटाकाशकी अपेक्षा मठाकाशको महत्पना अरु कमंडलुगत आकाश को अल्पपना, इत्यादि प्रकार एकही अरूप आकाशको घटादिकों के सम्बन्धसे अल्पपना अरु महत्पना आदिरूप। अरु जलका ल्यावना धारण करना अरु शयन करना, इत्यादि कार्य्य, अरु घटाकाश मठाकाश कमण्डल्वाकाश अरु अन्तर्गृहाकाश, इत्यादिक तिन घटादि रूप उपाधियोंके किये नाम। अर्थात् एक आकाशबिषे जो घटाकाश मठाकाशादि नाम भेद हैं सो उन घटादि उपाधिके सम्बन्धसे हैं

नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा । नैवा-त्मनःसदाजीवो विकारावयवौतथा ७।८६॥

स्वरूपसे ही नहीं । यह सर्व तिस तिस व्यवहारविषे तहांतहां भिन्नभिन्न देखते हैं। अरु यह सर्व आकाशके रूपादिकोंके भेदोंका किया व्यवहार अपरमार्थसेही है, अरु परमार्थसेतो "आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः" "आकाशका भेद है नहीं, तैसे जीवोंविषे निर्णय किया है" अर्थात् जैसे आकाशविषे जो नाम रूप क्रियादि सहित भेद है सो घटादि उपाधि अरु तिनके भेद का किया है। अरु बास्तव करके तो आकाश का भेद है नहीं। अरु जैसे आकाश के भेदरूप निमित्त का किया व्यवहार सो घ-टादिक उपाधियोंकेकिये द्वारबिनाहि नहीं। तैसेही देहादिरूप उ-पाधि के किये घटाकाशादि स्थानीय जीवोंविषे भेदके निरूपणसे बुद्धियों करके किया भेद है, वास्तव करके आत्मा के स्वरूपसे भेद है नहीं, यह सम्यक् आत्मवेत्ताओं ने सम्यक्प्रकार नि-र्णय किया है ६ ॥ ८५॥

७।८६॥हेसौम्य,शंका। ननु तहां घटाकाशादिकोंविषे रूप अरु कार्य्य आदिकोंकेभेदका व्यवहार परमार्थरूप आकाशका कियाहै। इसप्रकार का जो बादीका कथन सो बने नहीं। उ०॥क्योंकि जैसे सुवर्ण का कुंडल कंकणादि विकार है, वा जैसे जल का फेन बुद्बुद बरफादि बिकार है, तैसे परमार्थ रूप आकाश का घटा-काशविकार है नहीं। अरु जैसे वृक्षकी शाखा आदिक अवयव हैं, तैसे भी आकाशका घटाकाशादि अवयव भी नहीं। ताते घटाकाशादिकों विषे जो भेद व्यवहार है सो परमार्थ रूप आ-काशका किया नहीं। ताते "नाकाशस्य घटाकाशो विकाराव-यवौ यथा" (जैसे आकाश का घटाकाश बिकार अरु अवयव नहीं) अर्थात् जैसे कुंडलादिक सुवर्ण के अरु बुद्बुदादि जलके विकार अरु शाखादि वृक्षके अवयवहैं, तैसे घटाकाशादि महदा-

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः ।
तथा भवत्यबुद्धीनामात्माऽपिमलिनोमलैः ८ । ८७ ॥

काशके विकार अवयव नहीं । अरु " नैवात्मनःसदाजीवो विकारावयवौ तथा " (तैसे आत्माका जीव सर्वदा बिकार अरु अवयव है नहीं) अर्थात् जैसे आकाशके घटाकाशादिक बिकार अरु अवयव नहीं, तैसेही परमार्थ से सत्यरूप महाकाशस्थानीय एक अखंड अद्वैत निराकार परब्रह्म से अभिन्न आत्माका यह घटाकाशस्थानीय जीव सर्वदा (सर्वथा) उक्त दृष्टान्तवत् बिकार नहीं, अरु अवयव भी नहीं, एतदर्थ आत्माके भेदका किया व्यवहार मिथ्याही है । यह अर्थ है ७ । ८६ ॥

८ । ८७ ॥ हे सौम्य, [जीव जो है सो ब्रह्मका अंश नहीं, अरु बिकारभी नहीं किन्तु उपाधिबिषे प्रवेशको पाया ब्रह्महो जीव शब्द का वाच्यहै । इस प्रकार जो तुमने कहा सो अयुक्तहै । क्योंकि ब्रह्म तो (उपाधिसे रहित) शुद्ध है ताते । अरु जीव जो है सो रागादिक मल वालाहै ताते । अरु जीव अनेक हैं ताते, इत्यादि प्रकारसे तिन (ब्रह्मजीव) की एकताका असंभवहै यह आशंका करके परमार्थ से जीवको भी मलवान्पना आदिक है नहीं, ऐसा कहते हैं] जैसे घटाकाशादिक जो नाम रूप कार्य्यादिक भेदका व्यवहारहै सो भेदबुद्धिका कियाहै, तैसेही उपाधि वाले जीवोंका भेद अरु जन्म मरणादि व्यवहार हैं सो (अविद्याके किये हैं) ताते तिस अविद्या रचित भेदका कियाही क्लेश कर्म्म फल अरु रागादिक मल करके युक्तपना है, परमार्थ से नहीं । इस अर्थको दृष्टान्तसे प्रतिपादन करने को इच्छतेहुये कहते हैं " यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः " (जैसे बालकोंको आकाश मल करके मलिन होता है) अर्थात् जैसे लोक विषे (विचारशून्य) अबिबेकी बालकों को, परम शुद्ध जो आकाश है सो मेघ रज धूमादि मल करके मलिन (मैलवाला) भासता

है, परन्तु जो आकाशके स्वरूप स्वभावके जाननेवालेजे बिवेकी
पुरुषहैं तिनको आकाश मलवाला प्रतीत होतानहीं । अर्थात् जिन
पुरुषोंको आकाशके यथार्थ स्वरूप स्वभाव का ज्ञान है तिनको
आकाशमें धूमधूलि आदिकमलके होतेसंते भी, आकाश मलिन
प्रतीत होके जैसा है तैसाही प्रतीत होता है । "। तथा भवत्य
बुद्धीनामात्माऽपि मलिनोमलैः " । "तैसे आत्मा भी अबुद्धिये
को मलकरके मलिन होता है " । अर्थात् जैसे अविबेकी बालक
को आकाश धूम धूलि करके युक्त मलिन भासता है । तैसे जो
विज्ञाता प्रत्यक् चैतन्य परब्रह्म रूप आत्मा है , सोभी तिस
प्रत्यगात्मा के यथार्थ विवेक से रहित अबुद्धिमान् (अज्ञानी)
पुरुषों को क्लेश कर्म अरु कर्मफल इत्यादि मलोंकरके मलिन
(विकारी) प्रतीत होता है । अर्थात् सर्व शरीरों में शुद्ध बुद्ध
मुक्तरूप एकही आत्मा है , परन्तु सो तैसा होता सन्ता भी अ-
विवेकी पुरुषों को देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरण
क्लेश क्रिया फलादि धर्मवान्पने करके युक्त भासताहै । परन्तु
जैसे ऊषरदेश को देखके तिसबिषे , जलकी कामना वाला
तृषित पुरुष जल फेन तरंगादिकों का आरोप करताहै ,तथा-
पि तिस असत् आरोपसे वो ऊषरदेश जलफेन तरंगादि वाला
होतानहीं, तैसेही सदाशुद्ध निर्विकार प्रत्यगात्मा सो अबुद्ध अवि-
वेकी अज्ञानी पुरुषों करके आरोपकिये क्लेशादिक मल तिनकर
के मलिन होतानहीं । अर्थात् जिन पुरुषोंको अपने आप सव
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव प्रत्यगात्माका यथार्थ ज्ञाननहीं सो पुरु
अपने आप आत्माबिषे देहेन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म म
णादि धर्मोंका आरोप करतेहैं, परन्तु तिनके आरोपसे वो सद
शुद्ध आत्मा कदापि किसी प्रकारसे विकारवान् मलिन सदोष
होतानहीं । इत्यर्थः ८ । ८७ ॥

९।८८॥हेसौम्य, शंका [ननु, जीव जोहै सो [illegible]के अनन्त
अपने धर्म (शुभाचरण) के अनुसार स्वर्गको जात

मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि।
स्थितौ सर्व्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः ६।८८॥

(दुराचरण)के वशहुआ नरकको पावताहै। अरु धर्म अधर्म दोनों के सुख दुःखादि फलभोगके अनन्तर उनके क्षीणहुये पुनः यहां आयके कोई एकयोनिमें जन्मताहै, अरु तहांभी यावत् प्रारब्ध भोग है तावत् स्थिरहोय प्रारब्धभोग आगे को धर्माधर्म कर्मकर पुनः भी परलोकके अर्थ गमनकरताहै। इसका आवागमन मिटा नहीं। इसप्रकार इसलोक अरु परलोकमें अपने कर्मानुसार विचरने रूप व्यापारवाला जीव सो। आवागमनसे रहित सदाशुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव एकरस कैसे होवेगा। जहां इस प्रकारकी शंकाहै तहां कहतेहैं] पुनः भी उक्त अर्थकोही वर्णन करतेहैं। मरणसंभवे चैव गत्यागमनयोरपि। स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः। 'सर्व शरीरों बिषे, जन्म, मरण, गमन, आगमन और स्थितिके हुये भी आकाशसे अविलक्षण है;' अर्थात् घटाकाशके जन्म मरण गमन आगमन अरु स्थितिवत् सर्व शरीरोंबिषे आत्माको जन्म मरण गमन आगमन औ स्थितिके हुये भी आत्मा आकाशसे अविलक्षण (आकाशके तुल्य) प्रतीति करनेको योग्य है। अर्थात् घटाकाश जोहै सो घटकी उत्पत्ति होनेसे उत्पन्नहुयेवत् अरु घटके ध्वंसहुये ध्वंसहुयेवत् अरु घटकेगये गयेवत् अरु घटके आये आयेवत् अरु घटके स्थितहुये स्थितहुये वत्, इत्यादि प्रकार घटाकाश बिषे जो उत्पत्ति आदि प्रतीत होवैहै सो घटरूप उपाधि के सम्बन्धसे होवैहै, परन्तु घटसे पृथक् दृष्टिकर केवल आकाशकोही अनुभव दृष्टिसे देखिये तो घटके वर्त्तमान कालमें भी आकाश उत्पत्ति बिनाशादिकोंसे रहित अपने स्वरूप करके ज्योंका त्यों एकरसही है, तैसेही आकाशसेभी महासूक्ष्म परिपूर्ण एकरस आत्माबिषे जो जन्म मरण सुख दुःख अरु परलोकमें गमन पुनः आगमन इत्यादि प्रतीत होताहै सो शरीरादि संघातरूप

संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः ।
आधिक्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते १०।८९।

उपाधिके सम्बन्धसे होताहै, नतु बास्तव अपने स्वरूप करके निरुपाधि आत्मा आकाशवत् गमनागमनादि संघातके धर्मों से रहित सदा एकरस परिपूर्ण विज्ञानघनही है। इसप्रकार अपने आप आत्म विषयक प्रतीतकरनेकोयोग्यहै, यहइसकाभावार्थहै ९।८८।

१०।८९॥हेसौम्य"संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममाया विसर्जिताः" (सर्वे संघात स्वप्नवत् आत्माकी मायासे रचितहै); अर्थात् देह इंद्रिय मन प्राणादिकोंका सर्व संघात तो स्वप्नविषे दृश्य(देखे)देहादिकोंवत्, अरु मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषकरके किये देहादिकोंवत् आत्माकी अविद्यारूपा मायासे रचितहै, परमार्थ सेनहीं। अरु जिस करके तिर्यक् (तिरछे चलनेवाले पक्षीआदिक) के देहादिकोंकी अपेक्षासे देवादिकों के कार्य कारणरूप संघातों की "आधिक्ये सव्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते" (आधिक्यता के हुये वा सर्व की साम्यता के हुये उपपत्ति विद्यमान है नहीं ; अर्थात् । तिर्यक् देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारणात्मक संघातों की आधिक्यताकेहुये [देवतादिकों के शरीरोंको अति पूजनीय होने करके सर्व से अधिकता के अंगीकार से तिनके असत्यपने की सिद्धि न होवेगी, यह शंकाकरके, देहके भेदों विषे मूढपुरुषोंकी दृष्टिसे चैतन्यकी अधिकताको कल्पितहुये भी विवेकी पुरुषों की दृष्टिसे सर्व देह समान पंचभूतात्मकहोने से सर्वकी समताके अंगीकार किये संघातोंकी सत्यताविषे कोई भी संभव नहीं इसप्रकार कहते हैं] वा सर्वकी समताके हुये इन शरीरादि संघातों के सद्भावका प्रतिपादक हेतु नहीं । इत्यर्थः १०।८९॥

११।९०॥हेसौम्य, अब उत्पत्ति आदिकोंसे रहित इस अद्वैतरूप आत्माको श्रुतिरूप प्रमाणकरके सिद्धताके लखावनेकेअर्थ श्रुति

रसादयोहिये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके।
तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रकाशितः ११।९०॥

वाक्योंके कहनेका आरंभकरतेहैं "रसादयोहियेकोशा व्याख्याता-स्तैत्तिरीयके" (रसादिक कोश तैत्तिरीयविषे व्याख्यान कियेहैं; अर्थात् अन्नरसमय,प्राणमय मनोमयादिक, खड्गादिकों के कोश (म्यान) वत् जो पंचकोश हैं सो यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् बिषे उत्तरोत्तरकी अपेक्षासे [जैसे खड्गादिकों के कोश जोहैं सो खड्गादिकोंकी अपेक्षा बाह्य होतेहैं, तैसेही इन पंचकोशोंको भी कहते हैं। तिसबिषे हेतु कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि पूर्व के अन्नमयादिक कोशोंको पिछले पिछले प्राणमयादिकोंकी अपेक्षासे बाह्यपना होने करके, अरु सर्वान्तर आधाररूप ब्रह्मकी अपेक्षासे आनन्दमय को भी तिनके तुल्य बाह्य होनेसे, इन अन्नमयसे आनन्दमय पर्यन्त पांचोंका कोशपना तुल्यही है] पूर्वके बाह्य भावसे व्याख्यान किये हैं "तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रकाशितः" (तिनका पररूप आत्मा जीवहै, जैसे आकाश सम्यक् प्रकाशकिया है; अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशोंका परब्रह्मरूप आत्मा जीवहै॥ शंका॥ सो आत्मा तिन कोशोंका जीव कैसे है। समाधान। जिस अत्यन्त आन्तर आत्मासे यह पांच कोश भी आत्मावाले होते हैं, सो आत्मा सर्व कोशोंको जीवन का निमित्तहै, एतदर्थ तिन अन्नमयादि कोशोंका जीवहै॥ सो कौनहै। उ०। जो परब्रह्मरूप आत्मा पूर्व "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" (सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै)। इसप्रकार प्रसंगविषे प्राप्तकियाहै। औ जिस आत्मासे स्वप्न अरु माया आदिकोंवत् आकाशादिकोंके क्रमसे अन्नमयादि कोशरूप संघात आत्माकी मायासे रचितहै, इसप्रकार कहाहै। अरु सो आत्मा हमोंकरके जैसे आकाशहै, तैसे "आत्माह्याकाशवत्" इत्यादि (आत्मा आकाशवत् है) यह इस प्रकरणके तीसरे श्लोकसे सम्यक् प्रकार प्रकाश कियाहै। परन्तु

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम् ।
पृथिव्यामुदरेचैव यथाऽऽकाशःप्रकाशितः १२।९१ ॥

नैयायिकों करके कल्पित आत्मावत् पुरुषकी बुद्धिकरके कल्पित प्रमाणोंका विषयरूप आत्मा प्रकाश किया नहीं । यह अभिप्राय है ११।९०॥

१२।९१॥ हेसौम्य,[मैं मनुष्य हौं,प्राणहौं,प्रमाताहौं,कर्त्ताहौं, भोक्ताहौं, इन उपाधि विशिष्ट पांचोंका जो एकस्वरूप अनुस्यूत प्रत्यक् चैतन्यहै सो ब्रह्महीहै,इसप्रकार जीव ब्रह्मकी एकताबिषे तैत्तिरीय श्रुतिके तात्पर्य को कहके, अब तिसही अर्थबिषे बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुतिकेभी तात्पर्यको कहते हैं । बृहदारण्यक उपनिषद्गत मधु ब्राह्मण बिषे बहुतसे पर्यायन में अधिदैव अरु अध्यात्मरूप भिन्नस्थानोंबिषे "अयमेवसइति" (यहही सोहै) इसप्रकार परब्रह्मरूप प्रत्यगात्मा प्रकाश किया (लखाया) है एतदर्थ बृहदारण्यकश्रुतिकाभी इसब्रह्म औ आत्माकी अभेद एकताविषे तात्पर्य है । यह इसश्लोकके पूर्वार्द्ध का अर्थ है] किंवा "अधिदैवमध्यात्मञ्च तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः पृथिव्याद्यन्तर्गतो योविज्ञाता पर एवात्मा ब्रह्म सर्वमिति" (अधिदैव अरु अध्यात्म तेजोमय अमृतमय पृथिव्यादिकों के अन्तर्गत जो विज्ञाता पुरुष है सो परमात्माही है, सर्वब्रह्महै (इसप्रकार "द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम्" (द्वय द्वयविषे परब्रह्म प्रकाश किया है मधुज्ञानविषे, अर्थात् उक्तप्रकार दोनों दोनों स्थानोंविषे द्वैतके क्षय होने पर्यन्त परब्रह्म प्रकाशितकियाहै ॥प्र०॥ कहां प्रकाशितकिया है॥उ० । जिसविषे ब्रह्म विद्या नामक मधु (अमृत) अमृतत्व का मोद न होने से । अर्थात् ब्रह्मविद्याको अमृतत्व (मोक्ष) परमानन्दकी प्राप्तिकाहेतुहोने से मधु वा अमृत कहते हैं, अरु यही मुख्य अमृत है क्योंकि इसही करके जन्म मरणादि लक्षणवानजीव सकारण मरण से रहित अमर अभय भावको प्राप्तहो

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेनप्रशस्यते । नानात्वंनिन्द्यतेयच्चतदेवंहिसमञ्जसम् १३ । ६२ ॥

ता है । जानते हैं, ऐसा जो मधुज्ञान । अर्थात् बृहदारण्य उपनिषद्के द्वितीय अध्यायके अन्तक मधु ब्राह्मण। तिसबिषे प्रकाशित किया है। प्र०। किसवत् प्रकाशित किया है उत्तर। "पृथिव्यामुदरेचैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः" (जैसे पृथिवी अरु उदर बिषे आकाश प्रकाशित किया है जैसे लोक बिषे, पृथिवी बिषे अरु उदर बिषे एकही आकाश अनुमान प्रमाणसे प्रकाशित कियाहै, तैसे मधु ब्राह्मणमें पृथिवी आदिकों बिषे आधिदैवरूप अरु शरीरादिकों बिषे अध्यात्म रूपसे परब्रह्महो प्रकाशित किया है। इत्यर्थः १२ । ९१ ॥

१३ । ९२ हेसौम्य, "जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेनप्रशस्यते" (जीव अरु परमात्माका अनन्यपना अभेदकरके प्रशंसाका विषय करते हैं? अर्थात् जो कि युक्तियों से अरु श्रुतियों के प्रमाणसे निर्द्धार किया जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना। अर्थात् "तत्वमस्यादि" महावाक्यों करके त्वंपद के लक्ष्य अरु तत्पदके लक्ष्यका अनन्य अभेदपना। व्यासादिक महार्षियों करके शस्त्र (ब्रह्मसूत्रादि वेदान्त) से अभेद करके प्रशंसा का विषय किया है। अर्थात् श्रुतियोंके महावाक्यों करके निर्द्धार निश्चित किया जो जीव अरु परमात्माका अनन्यपना अरु तिस अनन्यपने का यथार्थ ज्ञान, अरु तिस ज्ञानसम्पन्न ज्ञानी, इनको व्यासादि महार्षियोंने अपने ब्रह्मसूत्रादि शास्त्र करके प्रशंसा के विषय कियेहैं "सत्यं वै अभेदा" "ज्ञानादेवतु कैवल्यं" "ज्ञानंविमोक्षाय" "ज्ञानंलब्ध्वा परांशान्तिमचिरेणाधिगच्छाति" "तस्यादित्यवज्ज्ञानं" "ज्ञानित्वात्मैव मेमतम्" इत्यादि प्रमाणसे। अरु "नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवंहिसमञ्जसम्" (नानात्व निंदा का विषय किया है, जो सो ऐसेही समीचीन है, अर्थात्, जो

जीवात्मनोःपृथक्त्वंयत्प्रागुत्पत्तेःप्रकीर्तितम् । भविष्यद्वृत्त्यागौणंतन्मुख्यत्वंहिनयुज्यते १४ । ९३ ॥

सर्व प्राणियों को साधारण स्वाभाविक (अविद्यारचित) शास्त्र से बाह्यकिये कुतर्कों के कर्त्ता वादियों करके रचित नानात्व दर्शन तिनको । वेदशास्त्राचार्य्यमहर्षियोंने निन्दाका विषय कियाहै। तथाच "नतुतद्द्वितीयमस्ति" "द्वितीयाद्वैभयंभवति" "उदरमन्तरं कुरुतेऽथतस्य भयंभवति" "इदं सर्वम्, यदयमात्मा" "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति, इत्यादि" (सोद्वितीयनहीं है, द्वितीयसेनिश्चयकरके भयहोताहै,जो यह सर्व है,सोयह आत्माहै,अल्पभीअन्तर को करताहै पश्चात् तिसको भयहोता है, सो मृत्युसे मृत्यु को प्राप्तहोता है जो यहां (आत्मा अरु ब्रह्म विषे) नानावत् देखताहै, इत्यादि श्रुति वाक्यों करके अरु अन्य ब्रह्मवेत्ता पुरुषों करके निन्दाका विषयकियाहै । अरु जो यहहै सो ऐसेहीसमीचीन है । अरु जो तर्क करनेवाले पुरुषों करके कल्पना करीहुई कुदृष्टियां हैं, सो तो समीचीन नहीं । अरु निरूपण करीहुई घटना को प्रकाशे भी नहीं ॥ यह अभिप्राय है १३ । ९२ ॥

१४।९३॥हेसौम्य,शंका।ननु,सम्यक् ज्ञानसेपूर्व ।अर्थात् तिससम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाली उपनिषदोंके वाक्योंसे पूर्वकर्मकाण्डविषे। "इदंकामोऽदःकामइति" (यह काम है यहकाम है, इसप्रकार) अनेक कामकरके कामनाकेभेदसे जीवोंकाभेद कहाहै अरु "परञ्च सदाधारपृथिवीद्यामित्यादि मन्त्रवर्णैः" (सो परमात्मा इस पृथिवी अरुस्वर्गको धारणकरताहुआ, इत्यादि मन्त्रोंके कथनसे तिन । पृथिव्यादिकों से पृथक् परमात्मा कहा है, इसप्रकार जो जीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है । तहां कर्मकाण्ड अरु ज्ञानकाण्डके वाक्योंसे विरोधहुये ज्ञानकाण्डके वाक्योंके एकतारूप अर्थकाही समीचीनपना कैसे निश्चय करतेहो, जहां ऐसी शंकाहै,तहां कहते हैं । समाधान । "जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागु-

त्पत्तेः प्रकीर्त्तितम्" (सम्यक् ज्ञानरूप। उत्तरकांडके पूर्व जो जीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है) अर्थात् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "यथाऽग्नेः क्षुद्राविस्फुलिंगाः" "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" "तदैक्षत" "तत्तेजोऽसृजत, इत्यादि" (जिससे प्रसिद्ध यहभूत उपजतेहैं, जैसे अग्निसे क्षुद्राविस्फुलिंग होतेहैं, तिस वा इस आत्मासे आकाश उपजताहुआ, सो ईक्षणकरताहुआ, सोतेजको सृजताहुआ, इत्यादिक सम्यक्ज्ञानरूप अर्थवाले उपनिषदोंके वाक्योंसे पूर्वकर्मकाण्डबिषे जो जीव अरु परमात्माका भिन्नपनाकहाहै "भविष्यद्वृत्त्या गौणंतन्मुख्यत्वंहिनयुज्यते" (सो भविष्यद्वृत्तिसे गौणहै निश्चयकरके मुख्यपना घटतानहीं) अर्थात् कर्मकांडबिषे जोजीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है, सो परमार्थरूप नहीं, किन्तु महदाकाश अरु घटाकाशके भेदवत् "यथौदनं पचतीति" (चावलकी। रसोई। पकावताहै) इस वाक्यबिषे जैसे भविष्यत् प्रवृत्तिसे चावलोंबिषे भोजनपना है, तद्वत् गौण है, परन्तु भेदवाक्योंका कदाचित्भी मुख्य भेदरूप अर्थवानपना घटतानहीं, क्योंकि आत्माके भेदके वाक्योंको स्वाभाविक (अनादि) अविद्यावाले प्राणियोंकी भेद दृष्टिअनुवादी (अनुवादकरनेवाली) है ताते। अरु यहां उपनिषद्बिषे उत्पत्ति अरु प्रलयादिकोंके वाक्यों से, अरु "तत्त्वमसि" "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति नसवेद" (सोतूहै, यह अन्य है मैं अन्यहौं, ऐसेजो जानताहै सोनहीं जानता) इत्यादि श्रुतिवाक्यों से जीवात्मा अरु परमात्माका ऐक्यपनाही प्रतिपादनकरनेको इच्छितहै। एतदर्थ उपनिषदोंबिषे एकपना श्रुतिकरके प्रतिपादन करनेको इच्छितहोवेगा, इसप्रकार भविष्यवृत्तिवाले उत्पत्त्यादिकोंके वाक्योंकी मुख्यावृत्तिको आश्रय करके, जो लोकबिषे भेद दृष्टिका अनुवादहै, सो गौणहीहै। यहअभिप्रायहै॥ अथवा "तदैक्षत, तत्तेजोऽसृजत" (सो ईक्षणकरता (इच्छा वा देखता) हुआ, सो तेजको सृजताहुआ) इत्यादिक वाक्योंसे "उत्पत्तेः प्रागेकमे

सृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैःसृष्टिर्याचोदिताऽन्यथा।उ-
पायःसोऽवतारायनास्तिभेदःकथञ्चन १५।६४॥

वाद्वितीयम्" "उत्पत्तिसे पूर्व एकही अद्वितीयथा" इसप्रकार एकपना कहाहै। अरु "तत्सत्यं सआत्मा तत्त्वमसि" "सो सत् है, सोआत्माहै, सोतूहै" इसप्रकार सोई एकपना होवेगा। इसप्रकार की जिस भविष्यद्वृत्तिकी अपेक्षाकरके जो जीव अरु आत्माका भिन्नपना जहां किसीभी वाक्यविषे जाननेमें आवताहै, सो "यथौदनं पचतीति" "चावलकी रसोई पकावताहै" इसवाक्य विषे जैसे भविष्यद्वृत्तिसे तंडुलोंविषे भोजनपनाहै, तद्वत् गौणहै॥ हे सौम्य यहांजो जीवअरु परमात्मामें भेदके बोधक कर्मकांडकेवेद मन्त्रको गौणपना कहाहै तिसका यहभी अभिप्राय जानना कि कर्मकांड वेद है सो यज्ञादि कर्मोंद्वारा संसारकाही प्रवर्तक अरु प्रापकहै, एतदर्थ उसको उपनिषद् ज्ञानकाण्ड 'जो समूल जगत् का निवर्तक अरु परमानन्द मोक्षका प्रापक है, विषे "तत्रापरा ऋग्वेदो" इत्यादि वाक्यों करके अविद्यात्मक कहा है, एतदर्थ कर्मकांडके वा अन्यके जेजीवात्मा अरु परमात्माके भेदकेबोधक वाक्यहैं तिनकी गौणीवृत्ति जाननी १४।६३॥

१५।६४ हेसौम्य,।शंका। ननु, यद्यपि उत्पत्तिसे पूर्वजन्मरहित सर्व एकही अद्वितीयथा, तथापि उत्पत्तिके अनन्तर यहसर्व उत्पन्नहुआहै अरु जीव भिन्न है, इसप्रकार मतिकहो क्योंकि उत्पत्ति कीश्रुतिका अन्यअर्थ है ताते। अरु "स्वप्नवदात्ममाया विसर्जिताः संघाताः घटाकाशोत्पत्तिभेदादिवज्जीवानामुत्पत्तिभेदादिरिति" "संघात स्वप्नवत् आत्मा की माया से रचित है, अरु घटाकाश की उत्पत्ति अरु भेदादिकोंवत् जीवों की उत्पत्ति अरु भेदादिक हैं" इसप्रकार पूर्व भी हमने यह दोष निवारण किया है, एतदर्थ भी यह प्रश्न अवकाश रहित है। अरु इसही से उत्पत्ति अरु भेदादिक की श्रुतियोंसे खींचके यहां पुनः उत्पत्तिकी श्रुतियोंके ब्रह्म

आत्मा की एकताविषे तात्पर्यके प्रतिपादन करने की इच्छासे यह कहने का आरंभ है। तथाच "मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदितान्यथा।" (मृत्तिका लोह अरु बिस्फुलिंगादि से अरु अन्य प्रकार से जो सृष्टि कही है) अर्थात्, ("यथा सौम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्" "यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसंविज्ञातᳬस्यात्" "यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः" इत्यादि श्रुतियों करके कहे) मृत्तिका लोह अरु बिस्फुलिंगादिकन के दृष्टान्तके कथन से जो सृष्टि कही है, अरु अन्यप्रकारसे जो सृष्टि कहीहै, सो सर्व सृष्टिका प्रकार हमारे (ब्रह्मवेत्ताओं के) मतविषे जीवात्मा अरु परमात्माके एकताकी बुद्धि की उत्पत्तिके अर्थ उपायहै। अरु जैसे प्राण अरु इन्द्रियोंके सम्बादविषे वाक् आदिकोंकी आख्यायिका श्रवणकरते हैं। अरु देवता अरु असुरोंकेसंग्रामबिषे देवताओं ने उद्गातापने करके स्वीकार किये वाकादिकन के पापसे असुरों करके बधादि होनेकी आख्यायिका श्रवण करते हैं, सो सर्व प्राण की श्रेष्ठता के बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है। तैसेही श्रुति उक्त सृष्टिआदिक की प्रक्रिया भी अद्वैत बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है॥ अरु जो ऐसा कहे कि, सम्बाद श्रुति के मुख्यार्थ होनेसे सो श्रुति उक्त उदाहरणभी असिद्ध होवेगा। सो कथनबने नहीं, क्योंकि अन्य शाखाविषे अन्य प्रकारसे प्राणादिकों के संबादके श्रवणसे जब संबाद परमार्थरूपहीहोता, तब सो संबाद एक रूपही सर्व शाखाओं बिषे श्रवणकरनेमें आवता। अरु अनेक बिरुद्ध प्रकारसे जो श्रवणकरने में आवता है सो तैसे सुनाजाता नहीं। [श्रुतियां कहीं कहीं प्राणादिक परस्पर में बिवाद करतेहुये आपही अपने निर्णय करने में असमर्थ होय प्रजापति (ब्रह्मा) के पासगये। अरु अपने परस्परके बिवादकेहेतुको श्रवणकराय अपने बिवाद का निर्णय इच्छते हुये। तब प्रजापति ने कहा कि। तुम्हारे सर्व के मध्यसे। जिसके निकसजाने से यह शरीर अमंगलरूप

होय तिसको तुम सर्वविषे श्रेष्ठ जानो। इसप्रकार तिन (प्राणादिकों) का (अपने निर्णयार्थ) देहसे बाह्य गमन करना श्रवण होता है। अरु किसी एक श्रुतिविषे तो (उन प्राणादिकों को स्वतन्त्र होने करके) परस्पर में अपनी २ ज्येष्ठता श्रेष्ठता के निर्णयार्थ परस्पर में कहते हुये कि (जिसके उत्क्रमण होने (निकसजाने) से यहशरीर मृतहुआ पतनहोय, सोई अपने सर्वके मध्य श्रेष्ठहै (इसप्रकार विचार के) अपने ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व के निर्णयार्थ) तिनका देहसे बाह्यगमन कहा है। अरु किसी श्रुतियों करके पुनः वाक्, चक्षु, श्रोत्र, अरु मन, इन चतुष्टयों को, मुख्य प्राण से ये भिन्नहैं, ऐसा श्रवणकरनेमें आवताहै। अरु कहीं त्वचा आदिक को प्राण करके श्रवण करते हैं॥ इसप्रकार परस्परमें विरुद्ध अनेकप्रकार से प्राण अरु इन्द्रियों के सम्बादका श्रवणहै इस अभिप्राय से कहते हैं।] अरु जिस करके (परस्परमें) विरुद्ध अनेक प्रकारसे (प्राण अरु इन्द्रियों का) सम्बाद श्रवण करनेमें आवता है, तिसही करके (प्राणादिकों के) सम्बाद की श्रुतियों का अपने मुख्यार्थविषे तात्पर्य नहीं, किन्तु अन्य अर्थ विषे ही है (अर्थात् सर्व के मध्य प्राण के ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व के लखावने के अर्थ विषे ही सर्व सम्बादकी श्रुतियों का तात्पर्य है, क्योंकि सर्व विरुद्ध संवादों में भी प्राण की ज्येष्ठ श्रेष्ठता अविरुद्धही प्रकाशित है) तिनका तात्पर्य है। [उक्त दृष्टान्त के अनुसारसे जगदुत्पत्ति के वाक्य भी (मुख्यतासे) स्वार्थविषे तात्पर्य वाले नहीं। क्योंकि कहींक (तैत्तिरीय उपनिषद् की "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इस) श्रुति विषे आकाशादिकों के क्रम से सृष्टि कहीहै। अरु कहींक (छांदोग्य उपनिषद्विषे "तत्तेजोऽसृजत" इत्यादि प्रकार तेजके क्रमसे सृष्टि कही है। अरु कहींक (प्रश्नोपनिषद् विषे "आत्मनः एष प्राणो जायते" इत्यादि प्रकार) प्राणादिकों के क्रमसे सृष्टि कहीहै। अरु कहींक क्रमबिना ही सृष्टि कहीहै। इसप्रकार (सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियों का) पर-

स्परमें विरोध देखने से यहां कहते हैं] तैसेही उत्पत्ति के वाक्य भी शाखाओं के भेदसे विरुद्ध अनेक प्रकार के होने के कारण । वो अपने । मुख्यार्थ बिषे तात्पर्य वाले नहीं, किन्तु अन्यअर्थ बिषे तात्पर्य वाले हैं । अर्थात् सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुतियों का परस्पर में भिन्न भिन्न विरुद्ध कथनसे प्रतीत होताहै कि वास्तव करकेसृष्टिकुछ हुईनहीं, क्योंकि जो वास्तवकरके सृष्टि हुई होती तो सर्व श्रुतियोंकी एक वाक्यता अरु एकही क्रमहोता, अरु तिसही करके उन श्रुतियों के । सृष्टि प्रतिपादक वाक्य । अपने । मुख्यार्थबिषे तात्पर्यवाले नहीं, किन्तु अन्य मुख्यार्थ बिषे तात्पर्य वाले हैं । अर्थात् सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियों बिषे परस्पर में विरुद्ध क्रमहोने से प्रतीत होताहै कि उन श्रुतियों का तात्पर्यार्थ सृष्टि के प्रतिपादन बिषे न होयके एक अद्वैत आत्मतत्त्वके लखावने बिषे तात्पर्य है, क्योंकि उनश्रुतियों बिषे क्रमका विरुद्ध भेदहै परन्तु सर्व श्रुतियों ने सृष्टिका कारण अधिष्ठान एक सत् चैतन्य आत्मा ब्रह्मही कहाहै, ताते उन सर्व श्रुतियोंका मुख्य तात्पर्य एक अद्वैत आत्मतत्त्वके प्रकाशने बिषेहै अन्यबिषे नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि कल्पकल्पकी सृष्टिके भेदसे सम्वादकी श्रुतियोंकाभी सृष्टि सृष्टि के प्रति अन्यथापनाहोवेगा, सो कथनबने नहीं, क्योंकि उक्तबुद्धिकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनकेबिना सम्बादकी श्रुतियोंकी निष्फलताहोतीहै ताते । अरु सम्बाद अरु उत्पत्तिकी श्रुतियोंका, उक्त बुद्धिकी उत्पत्ति के विना अन्य प्रयोजनवान्पना कल्पना करने को शक्य नहीं । अर्थात् प्राणादिकों के सम्बाद की श्रुतियों का अरु सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियोंका, शरीरादिसंघातमें सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपना, अरु आत्माका एक अद्वैतपना जानने की बुद्धि की उत्पत्तिकेविना अन्यप्रयोजन कल्पना करने को शक्य नहीं । अरु जो ऐसा कहै कि प्राणादि भावकी प्राप्तिके लिये ध्यानार्थ प्राणादिकों का कीर्त्तन है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि कलहकी उत्पत्ति अरु प्रलयकी प्राप्ति यह सर्वकोही अनिष्टहोवेहै

आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः । उपासनो पदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया १६ । ९५ ॥

ताते उक्त आख्यायिका प्राणका कीर्त्तननहीं । एतदर्थ उत्पत्त्यादिकोंकी जो श्रुतियां हैं सो आत्माके एकताकी बुद्धिकी उत्पत्त्यर्थ हैं, अन्य अर्थवाली कल्पना करनेको योग्यनहीं । एतदर्थ उत्पत्ति आदिकों का किया भेद किसीप्रकार से भी है नहीं १५ । ९४ ॥

१६।९५ हेसौम्य, ।शंका। ननु, "एकमेवाद्वितीयम्" 'एकही अद्वितीयहै, इत्यादि श्रुतियोंके वाक्य प्रमाणसे यदि परब्रह्मरूपही आत्मा, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, स्वभाववाला एकपरमार्थ रूपसत्है अरु अन्यअसत्यहै, तब "आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः" "यआत्माऽपहतपाप्मा, सक्रतुंकुर्व्वीत" "आत्मेत्येवोपासीतेत्यादि" 'अरेमैत्रेयी आत्मा निश्चय करके देखनेयोग्यहै, जो आत्मा पापरहितहै सो ध्यानकरने के योग्यहै, सो अधिकारी क्रतु (उपास्य के संकल्प) को करे, आत्माहै इसप्रकारही उपासना करना । इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे यह उपासना किस अर्थ उपदेशकियाहै । अरु अग्निहोत्रादि कर्म्म किसवास्ते उपदेशकिये हैं ॥ जहां ऐसी शंकाहै तहां सिद्धान्ती कहै हैं, कि हे वादी तहां कारण श्रवणकर "।आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः ।' 'आश्रम तीन प्रकारके हैं, मन्द, मध्यम, अरु उत्कृष्ट, दृष्टिकरके युक्तहैं' अर्थात् आश्रम । अर्थात् आश्रमवाले अधिकारी । अरु आश्रमशब्दके देखावनेके अर्थ शूद्रसे पृथक् सन्मार्गगामी वर्ण (वर्णवाले अधिकारी) तीन प्रकारके हैं ।प्रश्न। कैसे वे तीन प्रकारके हैं ।उत्तर। वे, मन्द, कार्य ब्रह्मको विषय करनेवाली, अरु, मध्यम, कारण ब्रह्मको विषय करनेवाली, अरु । उत्कृष्ट, शुद्ध अद्वैतको विषय करनेवाली, दृष्टि (बुद्धिकीसामर्थ्य)करके युक्तहैं ।वा 'मन्द वैश्यवर्ण, मध्यम क्षत्रिय वर्ण, उत्कृष्टब्राह्मणवर्ण, यहतीन क्रमशः उक्तप्रकारकी दृष्टिकरके युक्तहैं' "उपासनोपदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया।" 'तिनकेअर्थ दयाकरके

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासुद्वैतिनोनिश्चिताद्दृढम् । परस्परंविरुध्यन्तेतैरयंनविरुध्यते १७ । ९६ ॥

यहउपासना उपदेश कियाहै, अर्थात् तिनमन्द अरुमध्यम कार्यब्रह्म की अरु कारण ब्रह्मकी दृष्टिवाले वर्णाश्रमियोंके अर्थ कि मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले सन्मार्गगामीहुये इससर्वोत्तम ब्रह्मआत्मा की एकताकी सम्यक् दृष्टिको कैसे प्राप्तहोवेंगे, इनकोभी अभेद दृष्टि जोपरम कल्याणकारीहै, प्राप्तहोनीचाहिये इसप्रकार विचार के परमदयालु वेद ने उनपर दयाकर के यह उपासना उपदेश कहीहै, अरु कर्मउपदेश किये हैं । अर्थात् जो मन्द मध्यम अधिकारीहै अरु जिनकोअभेद सर्वात्मदृष्टि प्राप्तहोनेकी इच्छाहै तिन पुरुषों के हितार्थ दयाकरके वेद भगवान्ने उनके अन्तःकरणकी शुद्धिकेअर्थ विहित नित्य निष्कामकर्म अरु अन्तःकरणकी स्थिरताके अर्थ प्रणवकी वा श्रवण मननरूपसे आत्माकी ज्ञानांग उपासना कही है, क्योंकि अन्तःकरणके मलविक्षेपरूप दोष अभाव हुये बिना आवरण भंगपूर्वक सर्वात्म अभेददृष्टि प्राप्तहोवे नहीं । "आत्मैकएवाद्वितीय" आत्मा एकही अद्वितीय है इसप्रकारकी निश्चयात्मक उत्तमदृष्टि जिनको प्राप्तहुईहै तिन उत्तमाधिकारीके अर्थ कर्मउपासना कहीनहीं । क्योंकि "यन्मनसा नमनुते येनाहुर्मनोमतं तदेवब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" "तत्त्वमसि" "आत्मैवेदं सर्वमिति" [उपास्य जोहैसो ब्रह्महीनहीं, इसप्रकार के निषेधसे उपासनाको मन्दमध्यम दृष्टिवाले पुरुषोंकी विषयता भासतीहै, ऐसा कहते हैं] जिसको मनसे मननकरता नहीं, अरु जिसने मनको जान्योहै तिसहीको तूब्रह्मजान, जिस इसकोलोक उपासतेहैं यहब्रह्मनहीं । सो तूहै, आत्माही यहसर्वहै ॥ इत्यादि श्रुतियोंसे १६ । ९५ ॥

१७।९६ हेसौम्य, शास्त्रअरु युक्तिकरके निश्चितहोनेसे अद्वैत आत्माका दर्शन यथार्थ अनुभवा सम्यक् दर्शनहै, ताते अन्यदर्शन

शास्त्र अरु युक्तिसे बाह्य होनेकरके मिथ्यादर्शन हैं, यह निर्धार किया । अब इसकथनके हेतुसे भी द्वैतवादियोंका मिथ्यादर्शनहै, क्योंकि उनद्वैतवादियोंको राग द्वेषादि दोषोंकरके युक्तपनाहै ताते । अरु उनकेयहां अद्वैतबोधक श्रुतियोंका अग्रहणहै अरुजो कदापि ग्रहणभी है तो विपरीत अर्थसेहै ताते । ।प्रश्न। उन द्वैतवादियोंको उक्त दोषकरके युक्तपना कैसेहै, ।उत्तर। तहां कहतेहैं "स्वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतनो निश्चितादृढम्" (द्वैतवादी अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंविषे दृढ निश्चितहुये) अर्थात् कपिल कणाद अरु बुद्ध इनआदिकोंकी दृष्टिके अनुसारी जो द्वैतवादी हैं सो अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंमें "एवमेवैषपरमार्थोनान्यथेति" (यह ऐसेही परमार्थ रूप है अन्यथा नहीं) इसप्रकार तहां तहां । अपने अपने सिद्धान्तोंविषे । दृढ आसक्तहुये । अरु अपने प्रति पक्षिको देख तिसकेअर्थ द्वेषकरतेहुये । अर्थात् द्वैतवादी अपने २ कल्पितसिद्धान्तोंमें आसक्तहुये । अरु "परस्परं विरुध्यन्ते तैरयंन विरुध्यते" (परस्पर विरोधकरतेहैं तिसकरके यह बिरोधकोपावतानहीं) अर्थात् कपिलादि द्वैतवादी स्वकल्पित सिद्धान्तमें राग पूर्वक आसक्तहुये अपने प्रतिपक्षियों से द्वेषमान उनकी निन्दा पूर्वक उनके सिद्धान्तोंका खंडनकरते हैं । इसप्रकार राग द्वेषकर के युक्तहुये अपने सिद्धान्तके दर्शनके निमित्तही परस्पर बिरोध कोपावतेहैं । तिन परस्पर विरोधीवादियोंकरके यह हमारा वेदोक्त आत्माकी एकताके दर्शनका पक्षसर्वसे अपृथक् (अनन्य) होनेसे 'जैसे पुरुष अपने हस्त पादादिकोंसे विरोधको प्राप्तहोता नहीं, तैसेही, विरोधको पावता नहीं । अरु सर्वत्र एक आत्माकी दृष्टि वाला सम्यक् आत्मवेत्ता " नातिवादी " अतिवादी किसीकीभी निन्दा स्तुतिकरनेवाला होतानहीं । इसप्रकार रागद्वेषकी अनाश्रयता (त्यागी) होनेसे आत्माकी एकताकी बुद्धिही सम्यक्दर्शनहै, इतर नहीं । इत्यभिप्रायः १७।९६ ॥

१८।९७ हेसौम्य, ।प्रश्न। किसहेतु करके यह ।अद्वैत सर्वात्म।

अद्वैतंपरमार्थोहिद्वैतंतद्भेदउच्यते। तेषामुभयथाद्वैतंतेनायंनविरुद्ध्यते १८।९७॥

पक्षतिन। द्वैतबादियोंसे। बिरोधकोपावतानहीं,। उत्तर। "अद्वैतंपरमार्थोहिद्वैतंतद्भेदउच्यते" "अद्वैतही परमार्थरूपहै, द्वैततिसका भेद कहतेहैं" अर्थात् जिसकरके अद्वैतही परमार्थरूपहै, अरु द्वैत जो नानात्व सो तिस अद्वैतका भेद कहिये कार्य्य कहतेहैं। अर्थात् जेतनाकुछ द्वैत नानात्वहै सो सर्व अद्वैतकाही भेदरूपकार्य है, क्योंकि "एकमेवाद्वितीयम, तत्तेजोऽसृजत" "एकही अद्वितीयहै,सो तेजको सृजताहुआ" इसप्रकार श्रुतिका प्रमाणहै ताते। अरु निर्विकल्प समाधि बिषे, अरुघन सुषुप्ति बिषे, अरु गाढमूर्छाबिषे, द्वैतके अभावहुये अपने चित्तके स्फुरणके अभावसे द्वैतके अदर्शनरूप युक्तिकरके अद्वैतही सिद्धहै। अर्थात् उक्तप्रकार समाधिसुषुप्ति अरु मूर्छा इनतीनोंअवस्था बिषे चित्तवृत्तिके अफुरहुये द्वैत के अभावसे केवल उनका साक्षी अद्वैत आत्माही अवशेष रहता है, इस युक्तिसे सारानानात्व चित्तकी स्फुरणाकरके कल्पित है, अरु विना आश्रय कल्पना होवे नहीं, अतएव एक अद्वैत आत्मसत्ताके आश्रय चित्तकी स्फुरण नानात्वकी कल्पना करहै। ताते नानात्वको अद्वैतका कार्य कहते हैं, कारण नहीं। अरु "तेषामुभयथाद्वैतं तेनायंनविरुद्ध्यते" "तिनको उभयप्रकार सेभी द्वैतही है, तिनसे यह बिरोधको पावता नहीं" अर्थात् तिन द्वैतवादियोंकोतो व्यवहार अरु परमार्थ इन उभयप्रकारसेभीद्वैतहीहै। अरुजब उन भ्रान्तभेदी पुरुषोंको द्वैतकी दृष्टिहै, अरुअस्मदादि अभ्रान्त अभेदी पुरुषोंको अद्वैतकी दृष्टिहै, तब तिसहेतुकरके यह हमारा अद्वैतपक्ष तिन्होंसे बिरोधको पावता नहीं "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" "नतुतद द्वितियमस्ति" "इन्द्र माया करके बहुतरूप पावता है, सोतो द्वितिय हैनहीं, इन श्रुतियों के प्रमाणसे। [भ्रान्तिरूप मूल है जिसका ऐसे द्वैतके सिद्धान्तसे,

मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन । तत्त्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यताममृतं व्रजेत् १९। १८॥

प्रमाणरूप मूलहै जिसका ऐसा अद्वैत सिद्धान्त अविरुद्धहै, इस अर्थको यहां दृष्टान्तसे प्रतिपादन करतेहैं] जैसे उन्मत्त गजारूढ हुआ जो पुरुष सो पृथ्वी पर आरूढ हुए पुरुष के प्रति "गजारूढोऽहं वाहयमां प्रतीति" (मैं गजारूढ हों मेरे प्रति वहन कर (लेजा) इसप्रकारके कहनेवाले भी उन्मत्त पुरुषों को देखिके तिसके ताईं विरोध बुद्धिसे बहन करता नहीं, तद्वत् । तातें परमार्थ से ब्रह्म चैतन्य द्वैतवादियों का भी आत्माही है । इसहेतु से यह हमारा पक्ष तिन द्वैतवादियों से विरोध को पावता नहीं। क्योंकि अपने आप आत्मा से किसी का भी विरोध सम्भव नहीं १८। ६७॥

१९।१८हे सौम्य, द्वैत जो है अद्वैतका भेदकहिये कार्यहै, इस प्रकारका जोकथन किया तातें द्वैत भी अद्वैतवत् परमार्थसे सत् होवेगा, जहां इसप्रकार की किसीको भी शंकाहोय तहां कहतेहैं। परमार्थ से सत्रूप जो अद्वैत है, यह तिमिर दोष करके युक्त दृष्टि वाले पुरुषों करके कल्पित अनेक चन्द्रमावत्, अरु सर्प अरु जल धारा आदिक भेदोंसे रज्जुवत् "मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन" (मायासे भेदको पावता है, यह अजन्मा किसी भी प्रकारसें अन्यथा होता नहीं) अर्थात् मायाकरके भेदको पावताहै, परमार्थ से नहीं [विवाद का विषय जो भेद, सो मिथ्या है, भेद होनेसे चन्द्रादिकोंके भेदवत् ॥ विवादका विषय जो आत्मतत्त्व, सो स्वरूप से भेद रहित है, क्योंकि निरवयवहै तातें, अरु नित्य है तातें, अरु अजन्मा है तातें, व्यतिरेक से मृत्तिकादिकों वत् । इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि आत्मा निराकार निरवयव है तातें। अरु जिसकरके सावयव वस्तु अवयवन के अन्यथा भाव से भेदको प्राप्त होता है । जैसे घटसरावादिकन के भेदों से मृत्ति-

अजातस्यैवभावस्यजातिमिच्छन्तिवादिनः। अजा
तोह्यमृतोभावोमर्त्यतांकथमेष्यति २०। ९९॥

का भेद को पावती है, । यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है, तातें निरवयव अरु अजन्मा जो अद्वैत सो किसी भी प्रकार से अन्यथा (भेदको प्राप्त) होता नहीं, यह अभिप्राय है ॥ अरु "। तत्त्वतो भिद्यमानेहि मर्त्यताममृतं व्रजेत्। " (जाते तत्त्वसे भेदको प्राप्त हुये अमृत मरनेकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा) अर्थात् जिसकर के परमार्थ से भेदको प्राप्तहोनेके स्वभावसे अमृत (अमरणधर्मी) अरु अजन्माहुआ अद्वैत मरणकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा। जैसे अग्नि शीतलताको प्राप्तहोवे तैसे सो स्वभावके विपरीतपनेकी प्राप्ति, सर्व प्रमाणोंके विरोधसे अनिष्टहै॥ अर्थात् अग्निका अपनेस्वभावभूत उष्णताको त्याग शीतलस्वभाव होना सर्वप्रमाणोंसे विरुद्ध है, तैसे निरवयव निराकार अजन्मा एक अद्वैत स्वभाववाले आत्मतत्त्वका, सावयव साकार सजन्मा नानाद्वैत स्वभाववाला विनाशीधर्माहोना सर्व प्रमाणोंसे अरु युक्तिअनुभवसे विरुद्धहै, तातेसो किसीकोभी इष्टनहीं। एतदर्थ अजन्मा अविनाशी जो आत्मतत्त्व सोअपनी मायाकरकेही भेदकोपावता है, परमार्थसे नहीं। एतदर्थ द्वैत किसप्रकारभी परमार्थसे सत्य हैनहीं १९। ९८॥

२०। ९९ हेसौम्य, जो [इसप्रकार अपने पक्षको कहके, अब अपने वेदान्तीके यूथविषे परिगणितवादियोंके पक्षको अनुवादकरके दूषण देते हैं] पुनः कोईएक उपनिषदोंकी व्याख्याकरनेवाले वाचाल ब्रह्मवादी (उपासक) "। अजातस्यैव भावस्य जातिमिच्छन्तिवादि नः। " (वादीलोक अजन्मा भावकी उत्पत्तिको इच्छते हैं) अर्थात् जो अन्तरसे उपासनाके आग्रहवाले अरु बाह्य अद्वैत ज्ञानके वक्ता ऐसेजे वाचाल ब्रह्मवादी सो स्वभावसे अजन्मा अरु अमररूपही आत्मतत्त्वरूप भावकी पर-

नभवत्यमृतंमर्त्यंनमर्त्यममृतन्तथा । प्रकृतेरन्यथा भावोनकथञ्चिद्भविष्यति २१ । १०० ॥

मार्थसेही उत्पत्तिकोइच्छतेहैं "जातंचेत्तदेवमर्त्यंतामेष्यत्यवश्यम्" "जन्मको पायाहै सो अवश्य ही मरणकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा, इस न्यायसे तिनका सो आत्मा, स्वभाव से अजन्मा अरु अमृतभावरूपहुआ मरणकी योग्यताको कैसे प्राप्तहोवेगा, किन्तु किसी प्रकारसेभी मरणकी योग्यतारूप स्वभावकी विपरीतता को पावनेकानहीं॥अर्थात् जो तत्त्ववास्तवकरके अपने स्वरूपसेही अजन्मा अविनाशी शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै सोकभी किसीप्रकार सेभी अपने स्वरूप स्वभावसे अन्यथाभावको प्राप्तहोता नहीं। इत्यर्थः २० । ९९ ॥

२१ । १०० हेसौम्य, [पदार्थोंको स्वभावके विपरीतपने की प्राप्तिअघटितहै, ऐसाजोकहा तिसहीको वर्णनकरतेहैं] " नभवत्यमृतंमर्त्यंनमर्त्यममृतन्तथा " "अमृत मरनेकेयोग्य होतानहीं तैसे मरनेके योग्य अमृत होतानहीं" अर्थात् जिसकरके लोक विषे अमृत (अविनाशी) वस्तु मरने (विनाशके) योग्य होती नहीं। ताते अग्निके [यहां यहअर्थ है कि अग्निके स्वभावरूप उष्णपनेको शीतलपनेकी प्राप्तिरूप विपरीतपना अयुक्तहै, तैसे अन्य ठिकानेभी स्वभावका विपरीत पना अयुक्तहै, क्योंकि तैसे हुये स्वरूपके नाशका प्रसंग प्राप्तहोताहै ताते] उष्णस्वभाववत् । ताते " प्रकृतेरन्यथाभावो नकथञ्चिद्भविष्यति " "स्वभावका अन्यथा भाव किसीभी प्रकारसे होता नहीं" अर्थात् जैसे स्वरूपसे ही जोअग्निका उष्णस्वभाव सोअन्यथा होतानहीं तैसेहीस्वभाव का अन्यथाभाव (स्वरूपसेइतरपना) कदापि किसीप्रकारसेभी होगानहीं॥हेसौम्य वस्तुको अन्यथाकरना जैसे आम्रकाफलप्रथम खट्टाहोताहै सोई पश्चात् परिपक्वअवस्थाविषे मधुर होता है

स्वभावेनामृतोयस्यभावोगच्छतिमर्त्यताम् । कृतकेनामृतस्तस्यकथंस्थास्यतिनिश्चलः २२ । १०१ ॥

लक्षणहै, परन्तु जो वस्तु उत्पन्न होती है सो कालके व्यवधानसे युक्तहोनेकरके, कदाचित् कालके प्रभावसे अन्यथा भावको प्राप्त होवे तोहोवे परन्तु जो अजन्मा कालके व्यवधानसे रहितसर्वदा एकरस स्वभाव है तिसका किसीकरके किसीप्रकारसे भी अन्यथाभाव होवे नहीं यह परम सिद्धान्त है २२ । १०० ॥

२२।१०१ हेसौम्य, "स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति मर्त्यताम्" (जिसकास्वभावसे अमृतरूप भाव मरनेकी योग्यताकोप्राप्त होताहै) अर्थात् । शंका । ननु,ब्रह्म कारणरूपसे कार्य्योत्पत्तिके पूर्व मरणारहित हुआभी कार्य्यके आकारसे उत्पत्तिके अनन्तर कालविषे मरणकी योग्यताको पावेगा, ताते स्वरूपकेभेदसे दोनों अविरुद्ध हैं । जहां ऐसी शंकाहै तहां कहते हैं । जिस वादीका स्वभावसे अमृतरूप भाव मरणकी योग्यताको पावताहै अर्थात् परमार्थसे जन्मको प्रावताहै । तिस वादीकी "प्रागुत्पत्तेः स-भावः स्वभावतोऽमृत इति" सो भाव, उत्पत्तिसे पूर्व स्वभावसे अमृत है । ऐसी जो प्रतिज्ञा सो मिथ्याही होवेगी । प्रश्न । तब कैसे है । उत्तर "कृतकेनामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः" (तिसका अमृत निश्चलहुआ कैसे स्थितहोवेगा) अर्थात् तिस वादीका जन्य होनेकरके अमृत, सो भाव निश्चलहुआ अर्थात् अमृतपनेके स्वभावकरके । कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी प्रकारसेभी स्थित होवे नहीं । इसका यह अभिप्रायहै कि, आत्माकी उत्पत्ति वादीके मतविषे सर्वदा अजन्मा वस्तु कोई है नहीं, किन्तु यह सर्ववस्तु मरणके योग्य है, इसकरके मोक्षके अभावका प्रसंग प्राप्त होवेगा २२ । १०१ ॥

२३।१०२ हेसौम्य, [परिणामवादकी सृष्टिप्रतिपादक श्रुतिके अनुसारसेअंगीकार करनेकी योग्यताकी शंकाकरके निषेधकरतेहैं]

भूततोऽभूततोवाऽपिसृज्यमानेसमाश्रुतिः। निश्चितं युक्तियुक्तश्चयत्तद्भवतिनेतरम् २३ । १०२ ॥

शंका।ननु,आत्माकी अनुत्पत्तिके वादीको सृष्टिकीप्रतिपादक श्रुतिप्रमाणिक नहोवेगी,जहांऐसीशंकाहै तहां कहतेहैं, सृष्टिकी प्रतिपादकश्रुतिहैं,यहजो तेराकहनाहै सो सत्यहै परन्तु सो अन्यअर्थके परायणहै,सृष्टिपरायण नहीं। अरु यह हमने "उपायः सोवताराय" ‹सो अद्वैत बोधकी उत्पत्त्यर्थ उपायहै› इसप्रकरणके पंचदश १५ वें श्लोकविषे कहाहै। अब समाधानके पूर्व कहेहुयेभी तेराप्रश्न अरु उत्तर जो कहतेहैं सो कहनेको वांछित अर्थकेप्रति सृष्टिप्रतिपादकश्रुतिके अक्षरोंके अनुलोमपनेकेविरोधकी शंकामात्रकेनिवारणार्थहै "। भूततोऽभूततोवाऽपि सृज्यमाने समाश्रुतिः।" ‹भूत से वा अभूतसेभी उत्पन्नहोनेवाले विषे श्रुतिसमहै› अर्थात् भूतसे, कहिये परमार्थसे, उत्पन्नहोनहार वस्तुविषे, वा अभूत,कहियेमाया से, वा माया विनाही सृज्यमान वस्तुविषे, सृष्टिकीश्रुति तुल्य है [यहां यह भावहै कि, परिणामवादविषे अरु विवर्तवादविषे सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियोंके अविशेषसे अद्वैतके अनुसारी श्रुति अरुयुक्ति केवशते विवर्तवादकीही अंगीकारकरनेकी योग्यताहै] शंका।ननु, मुख्य अरु गौण दोनों कार्योंके मध्य मुख्य विषे शब्दके अर्थका निश्चय युक्तहै,। इसप्रकार जो वादीनेकहा सो बनैनहीं, क्योंकि मिथ्यापनेबिना अन्यप्रकारसे सृष्टिअप्रसिद्धहै ताते,अरु निष्प्रयोजनहैताते। अर्थात् वास्तव सिद्धान्तके बिचारसे देखियेतो आप्तकाम एक अद्वैत परिपूर्ण परमात्माको सृष्टि रचनेके प्रयोजनका अभाव होनेसे सृष्टि अप्रयोजनहै।। अरु "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" ‹बाह्य अन्तरसहितहै अरु अजन्मा है›। इस श्रुतिकेप्रमाणसे। अरु अविद्या अवस्था विषेही विद्यमान सर्वगौणी (स्वप्नगतरथादि) अरु मुख्या जाग्रतगतघटादि, रूपसृष्टि परमार्थ से है नहीं, इसप्रकार हम कहते हैं। ताते [सृष्टिकी श्रुति को अद्वैत

नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमायाभिरित्यपि। अजा- यमानोबहुधामाययाजायतेतुसः २४। १०३॥

के अनुसारी पनेकेहुये प्रमाण अरु युक्तिके अनुग्रह सहित अद्वैत ही अंगीकार करनेके योग्यहै, इस प्रकार फलित अर्थ कहते हैं] ताते " निश्चितं युक्तियुक्तञ्च यत्तद्भवति नेतरत् "। (निश्चित युक्ति करके युक्त सोई होता है अन्यनहीं) अर्थात् श्रुति करके निश्चित जो एकही अद्वितीय अजन्मा अमृत रूप वस्तु है, अरु युक्तियों करके युक्त है, सोई श्रुतिका अर्थ होनेको योग्य है, अन्य कदाचित् भी नहीं। इसप्रकार इस पूर्वके ग्रंथसे कहते हैं २३। १०२॥

२४।१०३ हेसौम्य, [सृष्टिके मिथ्यापनेके स्पष्टकरनेरूप द्वारसे अद्वैतकोही श्रुतिके अर्थपनेसे निर्द्धारकरनेको श्रुतिके निश्चयकोही वर्णन करते हैं]। प्र०। श्रुतिका निश्चय कैसा है। उ०। जब भाव रूपही सृष्टिहोय तो तिसकरके नाना सत्यही होवेगा। अरु जब नानात्व सत्यहोय, एतदर्थ तिसके अभावके देखावनेके अर्थ वेदका वाक्य न होवेगा। अरु " नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमाया- भिरित्यपि "। (इसबिषे नाना कुछ भी नहीं, यह वेदका आम्ना- य (वाक्य है, अरु इन्द्र मायाकरके ऐसे भी है) अर्थात्। " नेह नानास्तिकिञ्चन "। (यह नाना कुछ भी नहीं) इत्यादि, यह द्वैत भावके निषेधरूप अर्थवाला वेदका वाक्य है। (अर्थात् जो यह सृष्टिभाव (सत्य, कुछवस्तु) रूप होती तो, सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियां सर्व उपनिषदोंमें एकरूपही होतीं, अरु " नेहनाना- स्ति किंचन " यह नानात्वके अभावके प्रतिपादक अर्थवाली श्रुति न होती, अतएव सृष्टिके वाक्यों में विरुद्ध नानात्व अरु नानात्वके निषेध की श्रुतियों के देखने से नानात्वका अभावही प्रतीत होताहै। ताते प्राणके संवादवत् (अर्थात् प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद की जो आख्यायिका है सो सर्व संघात में

प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके लखावनेके अर्थ कल्पित है, तैसेही एक अद्वैत आत्मतत्त्वके निश्चयकरावनेके अर्थ कल्पित जो सृष्टि सो मिथ्याही है अरु "इन्द्रोमायाभिः" (इन्द्रमायाकरके) इसप्रकार मिथ्या अर्थके प्रतिपादक मायाशब्द करकेकथनहै ताते शंका। ननु, मायाशब्द प्रज्ञाका वाचीहै, ताते मिथ्यार्थवाला नहींहै, । उ० । यह जो तेरा कथन है कि मायाशब्द प्रज्ञाका वाची है सो सत्य है । [यहां यह अर्थ है कि मायाशब्द की वाच्य जो प्रज्ञा सो चैतन्य ब्रह्म है नहीं, क्योंकि "भूयश्चान्तेविश्वमायानिवृत्तिः" (पुनः अन्तविषे विश्व (कार्य) अरु माया (कारण) इसकी निवृत्ति होती है) इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से मायाकी निवृत्ति श्रवण करने में आवती है ताते । किन्तु यह प्रज्ञा इन्द्रियजन्य है अरु तिसको अविद्या के अन्वय अरु व्यतिरेक की अनुसारी होने से अविद्यारूप होने करके मिथ्या होनेसे मायाशब्दके मिथ्या अर्थवान्पने विषे असंभव नहीं] तथापि इन्द्रियजन्य प्रज्ञाको अविद्यात्मक होने करके माया (मिथ्या) पनेके अंगीकारसे दोष नहीं । अर्थात् अविद्या से आकाशादि भूत तिनसे इन्द्रियां तिनसे प्रज्ञा इसप्रकार होनेसे अविद्या का अन्वय जो अविद्यात्मक प्रज्ञा तिसको मायारूप से अंगीकार करने में दोष नहीं, एतदर्थ इन्द्र शब्द करके जो परमात्मा सो अविद्यारूप इन्द्रियजन्य बुद्धिवृत्ति मय माया करके वहुत रूपहुआ प्रतीत होता है । तथाच "अजायमानो बहुधा विजायत इति" (जन्मरहित हुआ बहुत प्रकारसे जन्मता है) इस श्रुतिके प्रमाणसे । ताते "अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः" (सो तो जन्म रहित हुआ माया करके ही वहुत प्रकार जन्मता है) अर्थात् सो इन्द्र नामवाला परमात्मा मायकरके ही वहुत रूपसे जन्मता है । अतएव जैसे एकही अग्निविषे शीतलता अरु उष्णता जो परस्परमें विरुद्ध है; इन दोनों का होना असंभव है, तैसे एकही आत्मा विषे जन्मरहित अजपना, अरु वहुत प्रकार से जन्मपना, यह दोनों

संभूतेरपवादाच्चसम्भवःप्रतिसिद्ध्यते। कोन्वेनंजनयेदितिकारणंप्रतिसिद्ध्यते २५।१०४॥

। जो परस्परमें विरोधी हैं। संभवे नहीं। एतदर्थ सो परमात्मा माया करकेही बहुत प्रकारसे जन्मताहै, यह कथन युक्तही है। अरु फलवान् होने से आत्मा की एकता का ज्ञानही सृष्टिकी श्रुतियों का निश्चितार्थ है " तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत " (तहां एकताके देखनेवालेको क्या मोह अरु क्या शोक है) इत्यादि वेदमंत्र का कथन है ताते। अरु " मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति " (जो यह एक आत्मा बिषे नानात्व को देखता है सो मृत्यु से मृत्युको पावता है) इस प्रकार सृष्टि आदिक भेद दृष्टि निन्दित है २४॥ १०३॥

२५।१०४॥ हे सौम्य, [भेद दृष्टि के मिथ्यापनेबिषे अन्यहेतु कहते हैं] "सम्भूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिसिद्ध्यते " (संभूतिके अपवाद (निन्दा) से संभव का निषेध करते हैं) अर्थात् " अंधंतमः प्रविशन्तिये संभूतिमुपासते " (जो संभूति की उपासना करतेहैं सो अन्धतम में प्रवेश करते हैं) इस श्रुतिके प्रमाण करके संभूति के उपासकों की निन्दा से संभव कहिये कार्य का निषेध कियाहै। अरु जिस करके परमार्थसे संभूतिके विद्यमान होने से तिसकी निन्दा संभवे नहीं, अरु श्रुतिबिषे निन्दा कियाहै, एतदर्थ तिसका अवस्तुपना ही सिद्ध हुआ। शंका। ननु, विनाश(कर्म)से संभूति कहिये देवता की उपासना के समुच्चयार्थ संभूति की निन्दा है, जैसे " अन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते " (जो अविद्या (कर्म)को उपासते हैं सो अन्धतममें प्रवेश को पावते हैं) इस वाक्यबिषे कर्म्म से उपासना के समुच्चय की विधिअर्थ कर्मकी निन्दा है तैसे, समाधान। संभूति (हिरण्यगर्भ) रूप विषयवाली देवताकी उपासना के, अरु विनाश शब्द के वाच्य कर्म से समुच्चय के विधानार्थ, संभूति की निन्दा है, यह तेरा कथन सत्य है,

तथापि जैसे [यहां यह अर्थ है कि कामचार (यथेष्टाचरण) कामवाद (यथेष्टकथन) अरु कामभक्षण (यथेष्टभोजन) इत्यादि स्वाभाविक प्रमाद मय प्रवृत्तिरूप अशुद्धिका वियोग रूप संस्कार जैसे नित्य अग्निहोत्रादिकों का फलहै, तैसे निष्काम पुरुष करके अनुष्ठानकिये कर्म उपासनाके समुच्चय का फलरूप काम नामक अशुद्धि की निवृत्तिहै, सोभी संस्कार है] पुरुषके संस्काररूप अर्थ वाले विनाश नामक कर्म को स्वाभाविक अज्ञानसे जन्य प्रवृत्ति रूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान् पना है, तैसे पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले देवताके ज्ञान अरु कर्म के समुच्चय को, कर्मफल विषयक रागसे जन्य जो प्रवृत्ति तिस प्रवृत्तिरूप साध्य अरु साधन इन दोनोंकी इच्छारूप मृत्युका तरनारूप अर्थवान् पनाहै । इस प्रकार कर्मरूप अविद्यासे दोनों एषणारूप मृत्यु से तरे हुये, अरु उपनिषद्रूप शास्त्रके विचारविषे तत्परहुये, विरक्तको परमात्मा के एकताके विद्याकी उत्पत्ति अन्तरायवाली नहीं, इसप्रकार पूर्व होनेवाली कर्मरूप अविद्याकी अपेक्षासे पश्चात् होनेवाली अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या, एक पुरुषसे सम्बन्ध को प्राप्तहुई कर्मरूप अविद्यासे समुच्चय को प्राप्त होतीहै, इसप्रकार कहाहै । एतदर्थ अन्यअर्थ के होनेसे अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या की अपेक्षाकरके संभूतिका जो अपवादहै सो निन्दा के अर्थ ही होताहै, समुच्चयकी विधिके अर्थनहीं । अरु यद्यपि कर्मअरु उपासनाका समुच्चय अशुद्धिके वियोग (अभाव) का हेतुहै, एतदर्थ सोई तिसका अन्यार्थ होवेगा, अपवादरूप अन्यअर्थनहीं । तथापि परमार्थ से पवित्रतारूप फलके अभाव से अपवादकी सिद्धि है एतदर्थ संभूतिके अपवादसे संभूतिका आपेक्षकही सत्पना है, इसप्रकार परमार्थ सत्रूपआत्माके एकत्ताकी अपेक्षाकरके अमृत नामवाले संभव (कार्य) का निषेध कियाहै । इसप्रकार मायासे रचित मरुअविद्यासे स्थितहुयेजीवको अविद्याके नाशहुये स्वभाव रूप होनेसे परमार्थसे "कोन्वेनं जनयेदिति कारणप्रतिषिद्ध्यते"

स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निन्हुते यतः । सर्व्व मग्राह्यभावेन हेतुनाऽजं प्रकाशते २६ । १०५ ॥

"इसको कौन उत्पन्नकरेगा इसप्रकार कारणका निषेधकिया है; अर्थात् इसको कौन उत्पन्नकरेगा किन्तु कोई भी नहीं । जैसे अविद्या से रज्जुबिषे आरोपित, अरु पुनः रज्जुके विवेक से नष्ट हुये सर्पको कोई भी उत्पन्न करता नहीं, तैसे इसको कोई भी उत्पन्न करता नहीं, इसप्रकार कारणका निषेध करिहै । अभिप्राय यह है जो, अविद्यासे उत्पन्नहुये अरु नष्टहुये जीवका उपजावने वाला कारण कुछ भी नहीं, क्योंकि यह किसीसे भी हुआनहीं अरु कोईभी नहीं होताहुआ "नाऽयंकुतश्चिन्न बभूव कश्चिदिति श्रुतेः" २५ । १०४ ॥

२६ । १०५ । हेसौम्य, [इस कथन करनेसे वास्तवकरके द्वैत होतानहीं इसप्रकार कहते हैं] "अथातो नेति नेतीति आदेशः" ‹अब इसके अनन्तर नेति नेति यह आदेश होताहै› इसप्रकार सर्व-निषेधके प्रतिपादन किये आत्माके दुःखसे बोधन करनेकी योग्य ताको मानतीहुई श्रुति, बारम्बार अन्य उपायपने करके तिसही आत्माके प्रतिपादन करनेकी इच्छासे जो जो व्याख्यान किया है तिनसर्वको निषेध करैहै, अर्थात् [‹ सर्वको निषेध करैहै › इ-त्यादि रूप अर्थको स्पष्ट करतेहुये " सएषनेति नेतीति " ‹सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं › इस श्रुतिवाक्यका व्याख्यान करते हैं । यहां यहअर्थ है कि ‹ सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, इत्यादि रूप श्रुति विशेषके निषेधमुख द्वारसे आत्माकी अदृश्यरूपताको दे-खावती हुई जो दृश्यरूप कार्य, मन अरु वाणी का विषयहै तिन सर्व को अर्थसे निषेध करैहै । सोई श्रुति परमार्थसे तो अदृश्य ऐसे कहतीहुई दृश्यका वस्तुपना बनेनहीं, इसप्रकार कहतीहै । अरु तैसे हुयेवस्तुपनेके असंभवसे दृश्यवर्गका अवस्तुपनाही सिद्ध हुआ] "सएषनेति नेतीति व्याख्यातंनिन्हुते यतः" ‹सो यहनेति

नेति व्याख्यानकरतेहैं जातेनिषेधकरतेहैं, अर्थात् सोयहऐसानहीं, ऐसानहीं इसप्रकार आत्माकीअदृश्यताको देखावतीहुई श्रुति,अर्थ से उत्पत्तिवाले बुद्धिके विषय ग्राह्यवस्तुको निषेधकरती है। अरु अर्थ से [शंका ननु यहश्रुति प्रपंचके समूहको क्यों निषेधकरती है, अरु इसप्रकार होने से 'पंकप्रच्छालन, (कीचड़के धोनेके) न्यायकी प्राप्तिसे व्याख्यानकिये अर्थकीव्यर्थता होवेगी, यहशंका करके "अग्राह्यभावेन" ‹अग्राह्यभावसे› इत्यादिपदोंका व्याख्यान करते हैं। यहांअर्थ यह है कि "द्वावेत्यादि" ‹दोनों प्रसिद्ध› इत्यादि वाक्यकरके व्याख्यान किये, अरुब्रह्म आत्मामात्रस्वरूप से स्थितिपर्यन्त अप्रतिपादनकिये अरु ब्रह्मरूप उपेयवत् उपाय-पनेसे मानेहुये प्रपञ्चके बास्तवपने करके जाननेके योग्यताकी जो शंका, सो नहोय, इसप्रकार सर्व प्रपञ्चसे रहित होनेकरके अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपके निर्धार करनेके अर्थ श्रुति 'प्रपञ्च को आरोपित होनेसे' तिसका निषेध करे है] उपाय को उपेयबिषे स्थितिको न जाननेवाले पुरुषको उपायपनेकरके व्याख्यानकिये वस्तुकी उपेयवत् ग्राह्यता मतिहो; इस अभिप्राय से जिसकरके अग्राह्य भावरूप हेतु से व्याख्यानकिये सर्वको निषेध करते हैं। [उपायको कल्पित होने करके उसको बास्तवपनेका अभाव है ताते, अरु उपेय (उपायकरके प्राप्तहोने योग्य ब्रह्म) को कैसे तिसप्रकारसे। उपायके अवस्तुपनेके प्रकारसे। वा। तिससत्यरूप प्रकारके। वस्तुकी प्राप्ति कैसे होवेगी। यह शंका करके "अजं" अजन्मा इत्यादि पदका व्याख्यान करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि, आरोपित सर्व प्रपञ्चके निषेधसे ही, आरोपित सर्पादिकों के अधिष्ठानपनेसे भिन्न असत्पनेवत्, स्वतन्त्रपने करके। अर्थात् अधिष्ठानकी सत्ताविना। मूर्त्तादि प्रपञ्चरूप उपायके वास्तवपने के अभावके निश्चयसे,उपेयरूप अद्वितीय ब्रह्ममात्र स्वरूपताको ही प्राप्तहुये, अरु ब्रह्मकी सदा एकरूपता कूटस्थता नित्यज्ञान स्वभावता आदिकोंके जाननेवाले जो पुरुष तिनकरकेअधिकारि-

सतो हिमायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः। तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते २७। १०६॥

योंको, अन्यकी अपेक्षासे विनाउक्त विशेषणवाला आत्मतत्त्वस्वयं आपही प्रकाशितहोताहै। अरुकल्पित प्रपञ्चका जो उपायपनाहै प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् अविरुद्धहै] ताते ऐसेउपायकी उपेयबिषे स्थितिकोही जाननेवाले को अरु उपेयकी नित्य एकरूपता है, इसप्रकारके जाननेवाले तिस। उत्तमाधिकारी। पुरुषको, बाह्य अन्तर सहित जन्म रहित अजन्मा आत्मतत्त्व आप से आप ही प्रकाशताहै २६। १०५॥

२७।१०६॥हे सौम्य, [जो आत्मतत्त्वहै सो अजन्मा अद्वितीय परमार्थ रूपहै, अरु जो द्वैतहै सो मायासे कल्पित असत्यहै, इस प्रकार प्रतिपादनकिया, तहां ही अन्यहेतुको भी कहते हैं] इसप्रकारही शतावधि श्रुतियोंके प्रमाणसे बाह्यान्तर सहित अजन्मा आत्मतत्त्व अद्वैतहै, ताते अन्यहै नहीं, इसप्रकार। विद्वानों को। निश्चितही है, अरु सो तैसे युक्तिसे भी निश्चितही है,। अब यह ही आत्मतत्त्व। जो श्रुतिके प्रमाणों से अरु युक्तियोंसे निश्चित किया है। पुनः अन्ययुक्तिसे भी निर्द्धार करते हैं, ऐसे कहाहै। अरु जो ऐसा कहे कि तहां यह आत्मतत्त्व सदाही अग्राह्यहै ताते असत् होवेगा,सो कथन बनेनहीं,क्योंकि कार्यरूप लिंगवाले अनुमानके वशसे [यहां यह अनुमानरूप अर्थहै कि विवादकाविषय जो जगत्का जन्म सो सत्रूप अधिष्ठानवाला है, कार्य होनेसे; प्रसिद्धकार्यवत्] आत्मतत्त्वके अकारणपनेकरके सद्भावके निर्णय से। जैसे विद्यमान मायाविका मायाकरके जन्मरूप कार्य है, तैसे जगत्का जन्मरूप जो कार्य है सो ग्रहण कियाहुआ मायावीवत् विद्यमान जगत्के जन्म अरु मायाका आश्रयरूपही आत्मा को लखावे है। जो कारण सहित इसजगत्का कोई आश्रय अधिष्ठान सत्य चैतन्य रूपहै। अरु जिसकरके विद्यमान कारण से

असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते । बन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते २८ । १०७ ॥

मायारहित हस्ति आदिक कार्योंवत् मायासे जगत्का जन्म घटे है, असत्कारणसे नहीं, तातै कारणका सद्भाव विवादसे रहित है। अरु परमार्थसे तो आत्माका जन्म घटता नहीं । अथवा जैसे विद्यमान रज्जुआदिक वस्तुकासर्प आदिक रूपसे जन्मवत्माया करके जन्म घटित है, स्वरूप करके तो नहीं । तैसे "। सतोहि मायया जन्म युज्यते नतु तत्त्वतः ।" (सत्का मायासे जन्म घटे है तत्त्वसे तो नहीं) अर्थात् जैसे रज्ज्वादिकों का सर्पादिरूप से जन्म घटे है, तैसे अग्राह्य सत्रूप आत्माका भी मायासे जन्म घटितहै, परन्तु तत्त्व (परमार्थ) सेही अजन्मा आत्माका जन्महै नहीं । अरु "। तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्यहि जायते ।" (जिसके । मतविषे । जाते जन्मताहै तिसके । मतविषे । जन्मको पाय सत्ता जन्मता है) अर्थात् पुनः जिस वादीके मतविषे जिसकरके तत्त्वसे । अर्थात् परमार्थसत् रूपसे । अजन्मा आत्मतत्त्व जगत्रूप से जन्मताहै, तिसवादीके मतविषे अजन्मा जन्मताहै, इसप्रकार कहनेको शक्य नहीं । क्योंकि अजन्माका जन्मसे विरोधहै तातै एतदर्थ तिस वादीके मतविषे, अर्थात् जन्मको पावताहुआ जन्मता है, इसप्रकार प्राप्तहुआ । तिसकरके जन्मको प्राप्तहुये आत्माको पुनः जन्मको प्राप्तहोने करके अनवस्थाकी प्राप्तिहै, अर्थात् अजन्मा एकही आत्मतत्त्वहै, यह सिद्धहुआ २७ । १०६ ॥

२८ । १०७ ॥ हेसौम्य, [कार्यजोहै सो सत्रूप कारण पूर्वक है, ऐसीव्याप्तिहै नहीं, क्योंकि असद्वादियों करके असद्रूप कारण से सत्रूप कार्यके जन्मका अंगीकारहै, "असदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत" यहशंका करके कहते हैं] "। असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते ।" (असत्का मायासे वा तत्त्व से जन्म घटता नहीं) अर्थात् असत् रज्जि-

यथास्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः । तथाजाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः २९ । १०८ ॥

योंके मतविषे असत् पदार्थका मायाकरके वा तत्त्वसे किसी भी प्रकारसे जन्म घटित नहीं, तिसको अदृष्टरूपताहै ताते अरु "बन्ध्या पुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते" 'बंध्याकापुत्रतत्त्व करके वामायाकरके भी जन्मकोपावतानहीं' अर्थात् बंध्याकापुत्र जो अत्यन्त असत् है ताते उसका बास्तव करके तो क्या किन्तु माया करके भी जन्मको पावता नहीं, अतएव असद्वाद दूरसे-ही अघटित । त्याजनीय । है, इत्यर्थः २८ । १०७ ॥

२९।१०८॥हे सौम्य,[सत्वस्तुकाही मायासेजन्महोताहै,इस प्रकार कथनकिये अर्थकोही प्रतिपादन करतेहैं]।प्रश्न।पुनःसत्वस्तु काही मायासे जन्म कैसे है । उत्तर । तहां कहतेहैं, जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प अपने अधिष्ठान रज्जुरूप से देखेहुये सत्यहै, इसप्रकार मन जो है सो परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मरूपसे देखाहुआ सत् है । यथास्वप्ने द्वयाभासंस्पन्दतेमाययामनः" । 'जैसे मन स्वप्नविषे मायासे द्वैताभास रूपहुआ स्फुरता है', अर्थात् जो मन अपने अधिष्ठान रूपसे देखाहुआ सत् है, सो मन जैसे रज्जुमें सर्प तैसे मायाकरसे ग्राह्य अरु ग्राहकरूपसे द्वैताभासरूप हुआ स्फुरता है । तैसेही "तथाजाग्रद्द्वयाभासंस्पन्दतेमाययामनः" । 'तैसे जाग्रत्‌विषे मन मायाकरके द्वैताभास रूपहुआ स्फुरता है'; अर्थात् जैसे मन स्वप्नविषे माया वा अविद्या करके द्वैताभास । जगदाभास । रूपहुआ स्फुरता है, तैसेही जाग्रत्‌विषे भी मन मायाकरके जगदाभास रूपहुआ स्फुरता है । अर्थात् अविद्या के आश्रय हुआ मन स्वप्नविषे अध्यास संस्कार के वश आपही जगदाकार से स्फुरण होताहै, तहां जैसे पूर्वके संस्कार अध्याससे स्वप्नमें आपको सोयाहुआ स्वप्नान्तर में देखताहै तैसेही स्वप्नके जाग्रत् मेंसे स्फुरण के तीव्र संवेगसे उस जाग्रतन्तर इस दीर्घ जाग्रत्‌रूप

अद्वयञ्चद्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः । अद्वयञ्चद्वयाभासं तथाजाग्रन्नसंशयः ३० । १०९ ॥

मनोदृश्यमिदंद्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मनसोह्य मनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ३१ । ११० ॥

स्फुरण जगदाकार होताहै । तातें यह सर्व स्वप्नरूपही है, परन्तु तैसा भासता तबहै जब बोधरूप जाग्रत् में स्वस्वरूप विषे जागताहै अरु जाग्रत् स्वप्नका जो भेदहै सो मनके ' मन्द ' मन्दतर 'तीव्र' तीव्रतर स्फुरणका भेद है, परन्तु असत्यता अरु स्मृतिमात्रता में दोनों की तुल्यता है। २९ । १०८ ॥

३०।१०९॥हे सौम्य,[तब द्वैतका स्वीकार किया, यह आशंका करके कहते हैं] " अद्वयंचद्वयाभासंमनःस्वप्नेनसंशयः" "स्वप्नविषे अद्वैत हुआ मन द्वैताभास स्फुरताहै यहां संशय नहीं" अर्थात् रज्जु सर्पवत् ' परमार्थ से आत्मरूप करके अद्वैत हुआ मन स्वप्नविषे द्वैताभास (नानारूप) होयके स्फुरता है । अरु स्वप्नविषे हस्ति हयादिक ग्राह्य, अरु चक्षुरादिक ग्राहक यह दोनों ज्ञानसे भिन्न नहीं, एतदर्थ इसमें (मनके स्वप्नरूप से स्फुरणेविषे) संशय नहीं। तैसेही " अद्वयञ्चद्वयाभासंतथाजाग्रन्नसंशयः" "तैसेही जाग्रत्विषे भी मन अद्वैतरूप हुआ सताभी द्वैताभास (नानाप्रपंचाकार) होयके स्फुरता है इसमें भी संशय कुछनहीं । क्योंकि परमार्थ सत्रूप विज्ञानमात्ररूपका अविशेष हैतातें। अर्थात् यावत् जाग्रत् स्वप्नका नानारूप जगत् है सो केवल एक मनके स्फुरणेमात्रहै क्योंकि सुषुप्ति समाधि आदिकों विषे मनके लयहुये जगत् का अभावही है तातें मनके स्फुरणसे इतर जगत् नहीं ३० । १०९ ॥

३१।११० हेसौम्य, [मनोमात्र द्वैत है इस (कथन) विषे अब प्रमाण कहते हैं]रज्जु सर्पवत् कल्पनारूप मनही द्वैतरूपसे युक्तहै, तहां कौन प्रमाणहै, जब यह शंका हुई तब अन्वय अरु व्यतिरेक रूप अनुमानको कहते हैं । प्रश्न। सो कैसा अनुमान है । उत्तर ।

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा। अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावेतद्ग्रहम् ३२। १११॥

" मनोदृश्यमिदंद्वैतंयत्किञ्चित्सचराचरम् " (देखने योग्य जोकुछ यह चराचर द्वैतहै मनहीं है) अर्थात् तिसही कल्पनारूप मनसे देखनेयोग्य जो कुछ यह सचराचर नानाद्वैतहै सोसर्व (मनकी कल्पनारूप होनेसे) मनहीहै, यह प्रतिज्ञाहै, क्योंकि तिस मनके भावहुये द्वैतका भाव अरु मनके अभावहुये द्वैतका अभाव होताहै ताते। अरु "। मनसोह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते।" (जाते मनके अमनीभावहुये द्वैतको देखतेनहीं) अर्थात् जिस करके रज्जुबिषे लयकोप्राप्तहुये सर्पवत्, विवेक ज्ञानके अभ्यास अरु सम्यक् वैराग्यकरके 'समाधिबिषे वा सुषुप्तिबिषे मनके अमन भाव (अफुर, निरोध) के हुये द्वैत प्रपंच देखतेनहीं। अर्थात् रज्जुबिषे जब सर्पकी प्रतीति भ्रांतिसे होती है तब तिस अध्यस्त सर्पसे भय कम्प स्वेदादिक हो आवतेहैं। अरु तिस भ्रांतीरूपअवस्थाबिषे जो भय कम्पत्वादि होतेहैं तिसकाकारण अध्यस्त सर्प है रज्जुनहीं। अरुजब सत्यरूप रज्जुका सम्यक् विवेक ज्ञानहोता है तब उस अध्यस्त सर्पके स्वाधिष्ठानमें लयहुये भय कम्पत्वादि सर्वका अशेष अभाव होताहै, अरु एकसत्य रूप रज्जुही अवशेष रहतीहै। तैसेही रज्जुस्थानीय एकअद्वैत सत्रूप आत्माबिषे तिसके अज्ञानसे सर्पस्थानीय मन स्फुरणहोता है तिस मन करके भय कम्पत्वादि स्थानीय सचराचर प्रपंच द्वैतरूप जगत्उपजताहै, ताते द्वैतरूप प्रपंचका कारण मनका स्फुरणहै। अरुजब आचार्य करके अपने आप सत्यरूप आत्माका सम्यक् विवेकज्ञान होताहै तब निर्विकल्प वा विचार समाधिमें मनके अमन 'अफुर' भावके प्राप्तहुये समस्त द्वैताभासका अशेष अभाव होताहै। एतदर्थ यहां द्वैतके अभावसे अद्वैत भाव सिद्धहै ३१। ११०॥

३२।१११॥हेसौम्य, [समाधिअरु सुषुप्तिबिषे द्वैतकी अप्रती

त्तिकेहुये भी तिसका असत्पना नहीं, यह शंकाकरके प्रमाणके आधीन प्रमेयकी सिद्धिहै इस अभिप्रायसे कहतेहैं ॥ अरु मनका जो अमन भावकहा, अब तिसको प्रतिपादन करतेहैं] ।प्रश्न। पुनः इस मनका (जो द्वैतका कल्पकहै) अमनीभाव कैसे होताहै, उत्तर "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" (वाणीसे उच्चारकिया विकार नाममात्र (कहनेमात्र) हीहै अरु मृत्तिकाही सत्यहै) इस श्रुतिके प्रमाणसे मृत्तिकावत् आत्मरूप ही जो सत्यहै, तिस सत्का " ऐतदात्म्यमिद ँ सर्वं तत्सत्य ँ स आत्मा तत्त्वमसि " इत्यादि शास्त्रका आचार्य द्वारा उपदेशहोनेके अनन्तर जो बोधहोता है सो सत्यरूप आत्माका अनुबोध है, ऐसे कहते हैं (आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा (सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे जब ' मन ' संकल्पको करता नहीं) अर्थात् तिस सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे संकल्पके अभावसे युक्त होने करके जब (तिसकालविषे) मन संकल्पको करतानहीं (अर्थात् जैसे बरफकी पूतली सूर्यके तेजके प्रभावसे अपने कारण रूप जलमें लयहोती है, तैसे यह स्वाधिष्ठानसे अभिन्न मन रूप पूतली आचार्यरूप सूर्यके उपदेशके प्रभावसे अन्तरमुख हुई बरफकी पूतलीवत् अपने कारण अधिष्ठान आत्मरूप जलमें लीन होताहै, तब तिसकालमें वा तिस निर्विकल्प समाधिमें अपने अमनभावको प्राप्तहुआ संकल्प करता नहीं, अर्थात् स्फुरण होतानहीं। "अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावे तदग्रहम्" (तब ग्राह्यके अभावहुये ग्रहणरहित हुआ सो ' मन, अमनभावको पावता है) अर्थात् आत्माके अनुबोधसे यह मन संकल्पको करतानहीं, तब (तिसकाल विषे) जलावने योग्य काष्ठादिकों के अभावहुये अग्निके जलनेके अभाववत्, ग्राह्य वस्तुके अभावहुये ग्रहणकी कल्पना से रहितहुआ सो मन अमन भावको प्राप्तहोता है॥ अर्थात् " अमनाःशुभ्रो " इत्यादि प्रमाणसे जैसा मनका अधिष्ठान आत्मा अमन है तैसाहीमन

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते। ब्रह्मज्ञेयमजंनित्यमजेनाजंविबुद्ध्यते ३३। ११२॥

अमन होता है " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " ३२। १११॥

३३।११२॥ हे सौम्य, जो यह मनप्रधान द्वैत असत् है, तो यह समिचीन आत्मतत्त्व किसकरके जानाजाताहै, जहां इसप्रकारकी शंकाहै तहां समाधान कहतेहैं "। अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते "। (कल्पनारहित अज ज्ञानस्वरूपको ज्ञेयसे अभिन्न कहतेहैं) अर्थात् सम्यक् आत्मानुभवी जे ब्रह्मवेत्ताहैं सो सर्वकल्पनासे रहित अजन्मा। अर्थात् " येनेदꣳ सर्व्वं विजानाति तं केन विजानीयात् " " यन्मनसा न मनुते येनाहुमनोमतं " इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, जो मन बुद्ध्यादिकोंकी कल्पनामें आवता नहीं अरु जो मन बुद्ध्यादि ' अर्थात् तृणसे ब्रह्मपर्यन्त, सर्वका कल्पक है, अरु जो सर्वका कल्पक है सो कल्पित होता नहीं, इस परम सिद्धान्त से, सर्व कल्पनासे वर्जित है, अरु जिसकरके सर्वकल्पनासे वर्जित है तिसही करके अजन्माहै। ऐसा जो ज्ञप्तिमात्र ज्ञानस्वरूप। आत्मा। है तिसको परमार्थसे सत् ब्रह्मरूप ज्ञेय अभिन्न कहतेहैं। मुमुक्षुओंकरके अज्ञात अवस्थामें जाननेयोग्य। से अभिन्न कहते हैं। अर्थात् " अयमात्माब्रह्म " यह आत्माही ब्रह्म है, ताते " नातः परमस्ति " इस आत्मासे भिन्न ' ब्रह्म नहीं ' क्योंकि " तत्त्वमेवत्वमेवतत् " " तत्त्वमसि " इत्यादि श्रुतियोंके महावाक्योंने इस ज्ञानस्वरूप चैतन्य आत्माकोही ब्रह्मकरके कहाहै, ताते सम्यक् आत्मानुभवी ब्रह्मवेत्ता इस ज्ञानरूप आत्माको उक्तप्रकार ज्ञेयरूप ब्रह्मसे अभिन्न कहते हैं। क्योंकि, " न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते " " विज्ञानमानन्दं ब्रह्म " " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " (अग्निकी उष्णतावत् विज्ञाती (बुद्धि) के विज्ञाताका लोपनहीं, विज्ञान आनन्द रूप ब्रह्महै, सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्महै। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण

निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः । प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः ३४ । ११३ ॥

से सो ज्ञान ब्रह्मरूप ज्ञेयसे अभिन्न है ॥ अब तिस ज्ञानके विशेषण कहतेहैं । सो ज्ञान कैसाहै कि, "ब्रह्म ज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुद्ध्यते" (ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला अजन्मा नित्य है, अजन्मासे जन्मरहितको जानताहै,) अर्थात् अग्निसे अभिन्न उष्णता अरु उष्णतासे अभिन्न अग्निवत् जिसज्ञानके स्वरूपविषे स्थित ब्रह्मरूप ज्ञेयहै, इसप्रकारका ब्रह्मरूप ज्ञेयवालाहै । पुनः कैसाहै कि, अजन्माहै अरु नित्य है । अर्थात् जिसकरके ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है तिसही करके अजन्माहै अरु जिसकरके अजन्माहै तिसहीकरके नित्यहै । तिस आत्मस्वरूप अजन्मा ज्ञानसे जन्मरहित ज्ञेयको आत्मतत्त्व आपही सम्यक्प्रकार जानता है । अर्थात् जैसे सूर्य नित्य प्रकाशरूपहै, तैसे नित्य एकरस विज्ञानघनहै ताते । अन्य ज्ञानान्तरकी अपेक्षा करता नहीं ॥ इत्यर्थ ॥ ३३।११२ ॥

३४।११३ ॥ हे सौम्य, [मुक्त पुरुषको जो ज्ञानका फलहै, सो स्वर्गादिवत् परोक्ष है नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष है । एतदर्थ प्रसंग विषे प्राप्तहुये मनके निरोधरूप ज्ञानके फलकी प्रत्यक्षताके अर्थ प्रसंगको कहतेहैं] सत्यरूप आत्माके अनुबोधकरके संकल्पको न करताहुआ बाह्य विषयोंके अभावसे इंधनादि रहित अग्निवत्, मन जोहै सो शान्तता अरु निरोधताको प्राप्तहोता है, इस प्रकार कहा अरु इसप्रकार मनके अमनीभावके होनेसे द्वैतका अभावकहा । अब कहते हैं । "निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः" (निग्रह किये सर्व कल्पनासे रहित विवेकवाले मनका प्रचार सो तो जाननेयोग्य है सुषुप्तिविषे अन्य है, तिसके तुल्य नहीं) अर्थात् इसप्रकार तिस निग्रहकिये सर्वकल्पनासे रहित (निर्विकल्प) अरु धीमान (विवेकवाले) ऐसे मनका जो प्रचार । अत्यगात्म

रूपसेस्थितिः। सोतो कोईएकप्रकारकरके योगिपुरुषोंकरके ज्ञानने योग्य है ॥ शंका। ननु, सर्ववृत्तियों के अभावहुये सुषुप्ति बिषे। स्थित मनका जैसा प्रचार है,तैसा ही प्रचार निरोध। अरु निर्विकल्पता। को प्राप्तहुये मनका भी होवेगा, क्योंकि उभय प्रकार से वृत्तिकी निरोधता तुल्यहै ताते। अतएव तिस निरोधको प्राप्तहुये मनबिषे क्या जानने योग्य है। समाधान। सोबने नहीं, क्योंकि सुषुप्ति बिषे अविद्या अरु तिसके कार्य मोहरूप अज्ञानसे ग्रस्त अरु अन्तर लीन (गुप्त) हुई अनेक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियोंकी बीजरूपा वासनावाले। उक्त प्रकारकी वासनाकरके युक्त। मनका प्रचार अन्यहै। अरु सत्‌रूप आत्माके। महावाक्यजन्य। अनुबोधरूप अग्नि से अशेष नाशहुईहै अविद्याऽऽदिक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासना जिसकी, अरु शान्त हुयेहैं सर्वक्लेशरूप मल जिसके, इसप्रकारके निरोधको प्राप्तहुये मनका जो ब्रह्मस्वरूप बिषे स्थितिरूप स्वतन्त्र प्रचारहै सो अन्यहै। अर्थात् काम कर्म वासना अविद्या इत्यादि अनर्थ करके युक्त मनका जो सुषुप्ति बिषे प्रचार (लय) है सो अविद्यामें लयहै,जैसे सधूम अग्नि आवरण को पाया लयहुयेवत् भासताहै तैसे। अरु महावाक्यार्थके सम्यक् ज्ञानाग्निकरके जिसकी कामकर्म वासना अरु अविद्या, अशेष भस्महुई हैं, ऐसे मनकी जो निर्विकल्प समाधि बिषे आत्मतत्त्वमें लयता है सो। इंधनादि उपाधि से रहितहुये अग्नि की अपने सामान्यनिर्विशेषरूपमें लयतावत् है। ताते सुषुप्तिमें मनकी लयतासे यह ब्रह्मस्थितिरूप लयता अन्यही है, इस लयताको सोई जानता है कि जिस योगीको निर्विकल्प समाधि प्राप्तहै। एतदर्थ यहसुषुप्ति को प्राप्तहुये मनकाप्रकार तिस। आत्म स्थितिको प्राप्तहुये मनके प्रचार। के तुल्य नहीं। जिस करके इस प्रकार है, तिसही करके तिस निरोधको प्राप्तहुये मन को जाननेको। वाकरनेको। योग्यहै। इत्यभिप्रायः ३४। ११३॥

॥ ३५। ११४॥ हे सौम्य, पूर्व जो कहा कि सुषुप्तिको प्राप्तहुये

लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते । तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ३५ । ११४ ॥

मनके प्रचारका अरु । निर्विकल्प । समाधिको प्राप्तहुये मनके प्रचारका भेद है, तिसविषे अब हेतु कहतेहैं " लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते " (सुषुप्ति विषे सो लीन होता है, गृहीत हुआ लीनहोता नहीं) अर्थात् जिसकरके सुषुप्तिविषे सो मनलीन होताहै, अर्थात् सर्व अविद्यादिक वृत्तियोंकी बीजरूप वासनाकरके सहित अज्ञानमय अविशेष रूप बीज भावको पावताहै, अरु से समाधिको पाया हुआ मन विवेक ज्ञानपूर्वक निरोधको पायासत्ता लीनहोता नहीं अर्थात् अज्ञानरूप बीजभावको पावतानहीं । ताते सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले मनकेप्रचारका लीनताको भेदयुक्त ही है । अरु जब समाधिको प्राप्तहुआ मन, ग्राह्य अरु ग्राहक रूप अविद्याके किये उभय मलसे रहित होताहै, तब सो मन परम अद्वैतरूप ब्रह्मभावकोही प्राप्तहुआ होताहै । एतदर्थ "तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः " (सोई निर्भयहै ब्रह्महै ज्ञानालोकहै सर्वओरसे है) अर्थात् जब । सम्यक् आत्मज्ञानको पायके यह मन अज्ञान रूप बीज भावसे रहित शुद्ध होताहै । तब सो मन परम अद्वैत रूप परब्रह्मही को प्राप्तहुआ है, एतदर्थ सोई भयरहित निर्भय ब्रह्महै । " विद्वान्न बिभेति कदाचन " क्योंकि भयका निमित्तरूप जो द्वैत तिस द्वैत भावके ग्रहणका अभाव है ताते । ब्रह्म शान्त अरु अभयहै ॥ अब तिसही ब्रह्मको विशेषण देते हैं । सोई ब्रह्म ज्ञानालोक है, अर्थात् आत्माकी स्वभावभूत चैतन्यस्वरूप ज्ञप्तिरूप ज्ञानहै (आलोक) कहिये प्रकाश जिसका । अर्थात् ज्ञान रूप है प्रकाश जिसका । ऐसा जो ब्रह्म तिसको ज्ञानालोक (एकरस ज्ञानघन) कहतेहैं, अरु सर्वओर से है, ताते उसको 'समन्ततः' कहते हैं । अर्थात् आकाशवत् सर्वओर से निरन्तर व्याप्तहै " आकाशवत्सर्वगतः सनित्यः " ३५ । ११४ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् । सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथंचन ३६ । ११५ ॥

३६ । ११५ ॥ हे सौम्य, [प्रसंगविषे प्राप्तभयेहुये अर्थको अन्य प्रकारसे भी निरूपण करते हैं] "अजमनिद्रमस्वप्न मनामकमरूपकम्" । (अज है अनिद्रा है अस्वप्न है अनाम है अरूपहै; अर्थात् सोई ब्रह्म । अर्थात् ब्रह्मनामक आत्मा कि जिसविषे ज्ञानद्वारा लनिहुआ मन ब्रह्मभाव को प्राप्त होताहै । जन्म के निमित्तके अभावसे "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" बाह्य अन्तर सहित अजन्मा है । अरु जिसकरके रज्जुसर्पवत् अविद्यारूप निमित्त वाला जन्म है, इस प्रकारहम कहतेहैं । अर्थात् जन्मके निमित्त जे अविद्याकाम कर्मादिक तिनके अत्यन्ताभाव से ब्रह्मविषे जन्मका हेतु न होनेसे वो वास्तव करके सदा अजन्माही है, तिस विषे अद्वैत के बोधार्थ आरोपमात्र जन्म (जगदुत्पत्ति) कही है, सो 'जैसे भ्रान्तिरूप निमित्त से रज्जुका सर्परूप से जन्महै तैसे उस अज ब्रह्मका अविद्यारूप निमित्तवाला जन्म है ऐसा हम कहते हैं । अरु सो अविद्या आत्मारूप सत्यके अनुबोध से निरोध को प्राप्तहुई है, एतदर्थ सो अजन्मा है । अर्थात् 'जैसे रज्जुको स्वस्वरूप विषयक भ्रान्ति का अत्यन्ताभाव है ताते सो भ्रांति करके भी सर्परूप से ' जो केवल भ्रान्तिमात्रही है, जन्मवान् न होके सदा अजन्माही है, क्योंकि रज्जु जो सर्परूप से भासती है सो भ्रान्तिकाल विषे बुद्धिको भासती है स्वयंरज्जुको नहीं, तैसेही सदा ज्ञानप्रकाश स्वरूप अद्वितीय आत्मामें जन्मके निमित्त अविद्या आदिकों के अत्यन्ताभाव से उसके शुद्ध सत्यज्ञान स्वरूप में द्वैतके अभाव से जन्म (जगदुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र भी नहीं, ताते उसविषे जे जन्म (जगदुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र कही है सो भी अविद्याश्रित बुद्धिने अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चयार्थ कही है, परन्तु तिस

अविद्यात्मक बुद्धिका उस आत्मदेव बिषे सूर्य में अन्धकारवत् अत्यन्त अभाव है, क्योंकि सो अविद्या अपने अधिष्ठान चैतन्यसत्ता के आश्रय चैतन्यवत् हुई स्वाधिष्ठान में जन्मादि (जगदुत्पत्त्यादि) कों की कल्पना करती है, सो अविद्या आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञानोपदेश पाय अपने अधिष्ठान आत्मारूप सत्यके अनुबोधवती हुई आप अपने सत्य चैतन्य अद्वैत आत्मारूप अधिष्ठान में निरोध (लय) को प्राप्त होतीहै, तातें वास्तव करके आत्माविषे उस कल्पक अविद्या के लयहुये, उस ब्रह्मनामक शुद्ध निरुपाधि निर्विशेष चैतन्य आत्माविषे कल्पना के भी निमित्त का अत्यन्ताभाव होने से अध्यारोपमात्र भी जन्म (जगत्की उत्पत्त्यादि) नहीं । तातें वो नित्य अजन्मा है अरु जिसकरके सो अजन्मा है तिस करके ही अनिद्र (निद्रासे रहित) है अर्थात् निद्रादिक अविद्यात्मक बुद्धिके धर्म हैं तिससे पृथक् जो अज आत्मा तिसके नहीं तातें सो अनिद्र है । अरु जिस करके अविद्यारूप अनादि मायामय निद्रासे अद्वैतरूप आत्मतत्त्व बिषे प्रबोध को पाया है, तिसकरके स्वप्नसे भी रहितहै । अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदिक जे अविद्यात्मक बुद्धिकी अवस्था तिन से रहित है। अरु जिसकरके अप्रबोधके किये जो अपने नामरूप है, सो रज्जुके ज्ञानसे सर्पवत् अपने प्रबोध से नाशको प्राप्तहुये पश्चात् यह ब्रह्मनाम करके कहते नहीं । अर्थात् एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व बिषे नामरूपादिकों की कल्पना करनेवाले के अभाव से उसबिषे नामरूपादि दोनों नहीं । वा वो किसी भी प्रकारसे निरूपण किया जातानहीं । क्योंकि वाणी आदिकों का अविषयहै तातें । तातें सो निर्विशेष आत्मतत्त्व आकार विकार से रहित निराकार होने से नाम अरु रूपसे रहित है " यतोवाचो निवर्त्तन्ते" (जहां से वाणियां निवृत्ति होतीहैं) इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से किंवा "सकृद्विभातंसर्वज्ञंनोपचारः कथञ्चन" (सर्वदाही प्रकाशरूप है सर्वज्ञ है किसीप्रकार से भी उपचार है नहीं;

सर्व्वाभिलापविगतःसर्व्वचिन्तासमुत्थितः । सुप्रशान्तःसकृज्ज्योतिःसमाधिरचलोभयः ३७।११६॥

अर्थात् सो । आत्मतत्त्व । सर्वदाही प्रकाशरूप है;क्योंकि अग्रहण अन्यथा ग्रहण आविर्भाव अरु तिरोभाव इन सर्वका अभावहै ताते अरु । ग्रहण अरु अग्रहणरूप दिवस अरु रात्रि, अरु अविद्यारूप अन्धकार, यह तीन सदा अप्रकाशपने बिषे कारण हैं, तिनका । उस अद्वैत आत्मतत्त्व बिषे । अभाव है ताते । सो सर्वदा प्रकाशरूपही है । अरु नित्य चैतन्य प्रकाशरूप होने से ब्रह्मका सर्वदाही प्रकाशरूप होना युक्तही है । इसही करके सर्वरूप जो ज्ञानस्वरूप सो कहिये ज्ञानस्वरूप सो कहिये सर्वज्ञ,ऐसा है । अर्थात् उस ज्ञानस्वरूप को सर्वरूप से सुशोभित होने करके उसको उक्तप्रकारका सर्वज्ञ कहते हैं । इसप्रकार के इस ब्रह्म (ब्रह्मवेत्ता) बिषे किसीप्रकार से भी उपचार (कर्त्तव्य) है नहीं । जैसे अन्य । अनात्मवेत्ता । को आत्म स्वरूप से इतर चित्तकी एकाग्रता आदिक कर्त्तव्य है, तैसे ब्रह्मवेत्ता को नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव करके अविद्या के सम्यक् विनाश हुये किसी प्रकार से भी कर्त्तव्यता का संभव है नहीं[यहां यह अर्थ है कि अविद्यादशाबिषे ही सर्व व्यवहार है, अरु विद्यादशाबिषे अविद्या को असत् होने करके कोईभी व्यवहारहै नहीं । परन्तु 'बाधितानुवृत्तिसे' अर्थात् बाधितहुये व्यवहार की अनुवृत्तिसे । विद्वान् बिषे । व्यवहार के प्रतीति की सिद्धि है । प्रातिभासिकवत् । तिस करके उस विद्वान् के स्वरूप बिषे किञ्चित् भी क्षति नहीं ३६। ११५॥

३७। ११६॥ हे सौम्य [" ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे । विद्वान् ही ब्रह्महै , इसप्रकार अंगीकार करके अब प्रसंग बिषे प्राप्तहुये ब्रह्मको पुरुषके वाची लिंगसे कहते हैं] अब । ब्रह्मबिषे । नामसे रहितता आदिक उक्तार्थ की सिद्धि

के अर्थ कारण कहते हैं "। सर्व्वाभिलाप विगतः सर्वचिन्ता समुत्थितः "।(सर्व अभिलापसे रहितहै, सर्वचिन्तासे सम्यक् उत्थान को पायाहै ; अर्थात् भाषणकरते हैं जिसकरण विशेषसे ऐसा जो सर्वप्रकारके कथनका करण वाणी, तिसको अभिलापकहते हैं, तिस सर्वअभिलाप । कथन । से रहितहै "नातिवादी" अर्थात्यह जो एक वागेन्द्रियको कहाहै सो उपलक्षणमात्रके अर्थ है, एतदर्थ ब्रह्मरूपविद्वान् वागेन्द्रिय उपलक्षणकरके सर्वबाह्य करणोंसेरहित है, यह इसकाअर्थ है । तैसेही जिसकरके चिन्तन करते हैं ऐसीजो बुद्धि तिसको चिन्ताकहते हैं, तिससर्व चिन्तासे सम्यक् प्रकार उत्थानको पायाहै, अर्थात् बुद्धिउपलक्षण करके बुद्धि आदि सर्व अन्तःकरणों से रहितहै, क्योंकि "अप्राणोह्यमनाशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः " (अप्रमाणहै अमनहै, अरु शुभ्रकहिये शुद्धहै, अरुकार्य से पररूपअक्षर(कारण) तिससे परहै (इसश्रुतिके प्रमाणकरके सर्वकरण अरु तिनके विषयादि इनसे रहितहै । अरु "सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलोऽभयः " (निरन्तर शान्तहै, सर्वदाही प्रकाशरूपहै समाधिरूपहै अचल है अभयहै ; अर्थात् जिसकरके बाह्यान्तरके करणादिकोंसे रहितहै, इसहीकरके निरन्तरशान्तहै अरु आत्म चैतन्य स्वरूपसे सर्वदाही प्रकाशरूपहै, अरु समाधिरूप निमित्तवाली बुद्धिसे जाननेयोग्यहोनेसेसमाधिरूपहै।अर्थात् "दृश्यतेत्वग्र्ययाबुद्ध्यासूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः " "प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् "इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समाधिरूप निमित्तवाली बुद्धिका विषयहोने योग्यहै, तातें समाधिरूपहै, वा "समाधानंक्रियते चित्तंयस्मिन् स समाधिः "जिस बिषे समाधानकरते हैं चित्तको सो कहिये समाधि, तातेभी आत्म चैतन्य प्रकाशको समाधिकहते हैं, तातें वो समाधि है, वा इस परमात्मा बिषे जीव वा तिसकी उपाधि स्थापित करते हैं, याते यह परमात्मा समाधि है अरु अचल (सर्वक्रियासे रहित) है अरु जिस करके क्रिया का उस बिषे अभावहै तिसही करके अभय है ३७ । ११६ ॥

ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते । आत्मसंस्थन्तदाज्ञानमजाति समतांगतम् ३८ । ११७ ॥

३८ । ११७ ॥ हे सौम्य, [प्रसंगबिषे प्राप्तहुये अविकारी ब्रह्म बिषे बिधि निषेध के आधीन लौकिकरूप अरु वैदिकरूप ग्रहण अरु त्याग व्यवहार है नहीं , इस प्रकार कहतेहैं] जिस करके ब्रह्म की समाधि अचल अरु अभय है इस प्रकार कहा है, एतदर्थ "ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते " ' तिसबिषे ग्रहण नहीं त्यागनहीं , अरु जिसबिषे चिन्ता विद्यमान नहीं, अर्थात् तिस ब्रह्मबिषे ग्रहण नहीं वा त्यागनहीं । अर्थात् जहां विकार वा विकारका विषयपनाहोताहै, तहां ग्रहण अरु त्यागहोताहै । ताते अन्य विकार हेतुके अभावसे अरु निरवयवहोनेसे इस ब्रह्मबिषे वे ' ग्रहण अरु त्याग दोनों संभवेंनहीं याते तिसबिषे ग्रहण अरु त्याग यहहैं भी नहीं । अरु तिस ब्रह्मबिषे चिन्तानहीं । अर्थात् जहां सर्वप्रकार (मोक्षपर्यन्त) की भी चिन्तानहीं संभवेहै, अरु अमनीभाव है, तहां ग्रहण अरु त्याग कहांसेहोंगे ' किन्तु कदापि न होंगे, इत्यर्थः । अरु जबही आत्मरूप सत्यका अनुबोधहुआ तबही विषयके अभावसे अग्निकी उष्णतावत् " आत्मसंस्थन्तदा ज्ञानमजाति समतां गतम् " ' आत्माबिषेही स्थितहुआ जन्म से रहित समताको प्राप्तहुआ ज्ञान होता है ; अर्थात् आत्माके सम्यक् बोधहुये विषयोंके अभावसे अग्निबिषे उष्णतावत्, आत्माबिषेही स्थितहुआ, अरु जन्मसे रहित परमसमताको प्राप्त हुआ ज्ञानहोताहै " अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतां गतमिति " ' याते जन्मरहित अरु समताको प्राप्तहुये अकृपणभावको कहताहौं ' इसप्रकार जो इस तृतीयप्रकरणकी आदि के दूसरे श्लोकसे पूर्व प्रतिज्ञाकियाहै, सो यह युक्तिसे अरु शास्त्रसे कहा, सो यहां " अजाति समतां गतम् " ' जन्मरहित समताको प्राप्तहुआ होताहै ' इसप्रकार कहके समाप्तकिया । अरु इस आरम-

अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्व्वयोगिभिः । योगिनो विभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः ३९ । ११८ ॥

रूप सत्यके अनुबोधसे जन्य ज्ञान कृपणताको विषयकरनेवाला है, क्योंकि " यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा ऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपण, इति " ' हे गार्गी जो इस अक्षरको न जानके इस मनुष्य शरीररूप लोकसे मरणको प्राप्तहोताहै सो कृपणहै ' इस प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद्के पंचमाध्यायके अष्टम ब्राह्मण विषे याज्ञवल्क्यमहाराजने गार्गीप्रति कहाहै । इसश्रुतिके प्रमाण से इस तत्त्वज्ञानको पायके सर्वजन कृतकृत्य ब्राह्मण होते हैं । इत्यभिप्रायः ॥ " यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः " इत्यादि श्रुतिः ३८।११७ ॥

३९।११८॥ हे सौम्य, यद्यपि [परमार्थरूप ब्रह्मस्वरूपसे स्थितिरूप फलवाला जब अद्वैतका ज्ञानहै, तब तिसका सर्वपुरुष आदर क्योंनहीं करते, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहतेहैं] यह परमार्थरूपतत्व प्रत्यगात्मारूप कूटस्थ सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म इसप्रकार पूर्वोक्तरीत्या तत्त्वज्ञानसे प्राप्तहोताहै, तथापि (तिसकी अप्राप्तिसे) संतोषको प्राप्तहुये जे मूढपुरुष सो तिसबिषे निष्ठावान् होतेनहीं इसप्रकार कहतेहैं " अस्पर्श योगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः " (अस्पर्शयोग नामवाला प्रसिद्ध स्मरण करतेहैं, अरु योगियोंसे दुःखसे दर्शनकरने योग्य है) (सर्ववर्णाश्रमादि धर्म अरु पापादिमल) से सम्बन्धरूप स्पर्शसे रहितहै तातें, अरु जीवको ब्रह्मभावविषे योजनाकरताहै, यह अद्वैतका अनुभवरूप अस्पर्श योग उपनिषदोंबिषे स्मरण करते हैं (अर्थात् उक्त योग उपनिषदोंके वाक्य प्रमाणसे निश्चित करतेहैं) सो वेदान्तशास्त्र (उपनिषद् ब्रह्मसूत्रादि) के विज्ञानसे रहित वहिर्मुख जे कर्म्मनिष्ठरूप सर्वकर्मयोगी (कर्म्मासक्त) तिनोंकरके श्रवण मननादि रूप दुःखसे देखनेके योग्यहै (अर्थात् कर्मासक्त कर्मी पुरुषोंकरके

मनसोनिग्रहायत्तमभयंसर्वयोगिनाम् । दुःखक्षयःप्र बोधश्चाऽप्यक्षयाशान्तिरेवच ४०। ११९॥

वेदान्तशास्त्र ब्रह्मविद्याके श्रवण मननादि साधनोंके दर्शन भी अति दुःसाध्य हैं। क्योंकि " न कर्म्मिणो प्रवेदयन्ति रागात् " इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे उस कर्म्मनिष्ठको कर्म्मोंके फलके निमित्त कर्ममें रागअधिकहै ताते। अर्थात् आत्मरूप सत्यके अनुबोधरूप वस्तुकीप्राप्ति सो श्रमसे होनेको योग्यहै । अरु " योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः " (भयरहित बिषे भयको देखनेके स्वभाववाले। कर्मयोगी। भयको करतेहैं) अर्थात् जिसकरके भयरहित इस। आत्मरूप सत्यकेअनुबोधरूप। योगबिषे, भयका निमित्त जो अपना नाश तिसको देखनेके स्वभाववाले। अर्थात् अविनाशी अभयरूप अपनेआप आत्माबिषे नाशरूप भयकेदेखने के स्वभाववाले। जे अविवेकी। कर्मयोगी। हैं सो अपने नाशरूप योगको मानतेहुये, सर्व भयसे रहितभी इस। आत्मानुबोधरूप। योगसे, भयको करते हैं। ताते सो। आत्मानुबोधरूप योग। सर्व योगियों करके दुःखसेही देखने (प्राप्तहोने) को योग्य है, इसप्रकार इस श्लोकके पूर्वार्द्धसे सम्बन्ध है ३९। ११८॥

४०।११९। हेसौम्य, [उक्तप्रकार उत्तमबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषोंके अर्थ, अद्वैतज्ञान अरु अद्वैत ज्ञानकाफल रूप मनकेनिरोधको कहके, अब मन्दबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषोंके अर्थ मनके निरोधके आधीन आत्मज्ञान के कहनेका आरंभ करते हैं] पुनः जिनको ब्रह्मस्वरूपसे भिन्न मन अरु इन्द्रियादिक। आत्मा बिषे रज्जुबिषे सर्पादिवत् कल्पितहीहै, परमार्थसे नहीं। इसप्रकारका अनुबोध हुआहै। तिन ब्रह्मस्वरूप पुरुषोंको अभय (तत्त्वज्ञान) अरु मोक्षनामक अक्षय शान्ति स्वभावसेही सिद्धहै, अन्यसाधनोंके आधीन नहीं, क्योंकि " सकृद्विभातंसर्वज्ञं नोपचारःकथञ्चन " एकिसीप्रकारसेभी उपचार कहिये कर्तव्य सोहैनहीं, यहपूर्व

उत्सेकउदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकबिन्दुना । मनसोनिग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ४१ । १२० ॥

इसही प्रकरणके ३६ वें श्लोकविषे कहाहै ताते, इसप्रकार हम कहतेहैं । अरु जो इन उत्तमाधिकारियोंसे । अन्य सन्मार्गगामी मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले योगी (कर्मयोगी अरु उपसनयोगी) आत्मासे भिन्न मनअरु अन्य इन्द्रियादिक तिनको आत्माकासम्बन्धी देखतेहैं तिनको "मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम्" । (सर्व योगियोंको मनके निग्रहके आधीन अभयहै) अर्थात् जोमन अरु इन्द्रियोंको आत्माके सम्बन्धी देखतेहैं तिन आत्मरूपसत्य के अनुबोधसे रहित, सर्व योगियोंको मनके निग्रहके आधीन अभय (तत्त्वज्ञान) है अर्थात् मनका संकल्पादिकोंसे अरुइन्द्रियोंका विषयोंसे यावत्निग्रह होतानहींतावत् यथार्थ तत्त्व(आत्म) ज्ञान होतानहीं इसप्रकार योगीजन मानतेहैं । अथवा जिसकरके अविवेकी पुरुषों को आत्माके सम्बन्धी मनको चंचल होनेसे दुःखका क्षय होतानहीं, एतदर्थ उनको दुःखकाक्षय मनकोनिग्रह के आधीनहै । अर्थात् जो अविवेकी मनको आत्माका सम्बन्धी मानतेहैं तिनके मतमें आत्माको जो दुःखहै सो तिसके सम्बन्धी मनके चंचल होनेसेहै ताते आत्माके दुःखका क्षय मनके निग्रह होनेके आधीनहै जब मनका निग्रहहोय तबहीं दुःखका क्षयहोवे तिसबिना नहीं । ताते "दुःखक्षयःप्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च" । (दुःखका क्षय आत्माका प्रबोध अरु अक्षय शान्तिभी मनके निग्रहसेही है) अर्थात् जो योगी पुरुष मनको आत्माका सम्बन्धी मानतेहैं तिनके मतमें दुःखकाक्षय अरु आत्मज्ञान अरु पराशान्ति मोक्ष यह मनके निग्रहके आधीनही है ४०।११९॥

४१ । १२० ॥ हे सौम्य, [मोक्षकी इच्छावाले मुमुक्षुपुरुषों को मनका निरोध कैसे सिद्ध होवेगा, यहशंका करके कहते हैं] "उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना" । (जैसे कुशके अग्रसे

उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः। सुप्रसन्नं लयेचैव यथाकामो लयस्तथा ४२।१२१॥

एक बिन्दुकरके समुद्रका उत्सेक हुआ है; अर्थात् जैसे अतिसूक्ष्म कुशाके अग्र करके बाह्यफेंके हुये एक बिन्दु करके समुद्रका उत्सेक। बाह्यफेंकनेका निश्चय। टिट्टिभ नामक पक्षी को हुआ है "। मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेद परिखेदतः "। "तैसे अखेद से मनका निग्रह भी होता है; तैसे निश्चयवाले अरु उद्वेग रहित अन्तःकरणवाले जो हैं तिन पुरुषोंको अनिर्वेदरूप अखेदसे। खेद रहित। मनका निग्रहभी होताहै " अभ्यासेन्तुकौंतेय वैराग्येणचगृह्यते " ४१।१२०॥

४२।१२१॥ हे सौम्य, [समाधि करनेवाले पुरुषोंको तत्त्वके साक्षात्कार होनेके प्रतिबन्धक।विघ्न। "लय, विक्षेप, रसास्वाद (सुरुचि) अरु कषाय (राग) है, तिनसे आगे कहनेके उपाय करके मनका निग्रह करना,क्योंकि अन्यथा समाधिकी सफलता का असंभव है ताते, इसप्रकार कहतेहैं] प्रश्न॥ क्या खेदरहित निश्चयमात्रही मनका निग्रह होनेबिषे उपाय है। उ०। तहां "नहीं,इस प्रकार कहते हैं"। उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तंकामभोगयोः "। "उपायसे कामभोग बिषे विक्षेपको प्राप्तहुयेको निरोध करे; अर्थात् खेदसे रहित निश्चयवान् हुआ अग्रिम कहनेके उपायसे कामभोग अरु विषयोंबिषे विक्षेपवान् हुये मनको आत्मा बिषेही निरोधकरे। अर्थात् मन सहित सर्व उत्तम स्वर्गादिकों के अरु मध्यम इसलोक के यावत् दृश्य अरु अदृश्य विषयादि भोग हैं सो एक सर्वाधिष्ठान आत्माबिषे अध्यस्तहैं ताते स्वाधिष्ठानसे उनकी इतरसत्ताके अभावसे वो असतहै अरु उन सर्वका अधिष्ठान आत्मा सत्यहै, ताते जहां जहां जिस जिसबिषे मनजाय तहां तहां तिसको असत्य कल्पितजान तिनका आश्रय सत्यरूप आनन्दघन आत्माका निश्चयकर तहांही मनको स्थिरकरे। अरु

दुःखंसर्व्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् । अजंसर्व्वमनुस्मृत्यजातंनैवतु पश्यति ४३।१२२ ॥

"सुप्रसन्नंलये चैव यथा कामोलयस्तथा" "लयविषे प्रसन्नहुये को जैसा काम तैसा लयभी है" अर्थात्, किंवा जिसविषे मन लीनहोताहै, ऐसी जो सुषुप्ति तिसको लय कहतेहैं, तिस लयविषे प्रसन्नहुये । अर्थात् खेद रहितहुये । भी मनको निरोध करे । अर्थात् प्राणादिकोंका निग्रहकरके समाधिमेंस्थितहुआ पुरुषअपनेमनकोसुषुप्ति, निद्रा,विषे न जानेदे क्योंकि निर्विकल्प चिन्मात्र स्थितिमें अविद्यारूप जड़ सुप्ति विघ्नकारीहै ताते । शंका ॥ ननु जब मन प्रसन्नहुआ तब किसवास्ते तिसका निरोधकरिये। जहां इसप्रकारकी शंकाहै, तहां समाधान कहतेहैं "। सुप्रसन्नंलयेचैव यथाकामो लयस्तथा ।" "लयविषे प्रसन्नहुये कोभी । निरोधकरे। जैसाकाम है तैसाही लयभीहै" अर्थात् सुषुप्तिमें लयहुआ मन प्रसन्नहोताहै परन्तु सुषुप्ति अविद्यारूप होनेसे तिसविषे लयहुआ मन पुनः जाग्रत् स्वप्नरूप विक्षेप दुःखकोही पावता है, ताते जैसा काम मनको अनर्थका हेतुहै, तैसाही । सुषुप्तिविषे । लयका होनाभी अनर्थकारी है, अतएव कामको विषयकरने वाले मन के निग्रहवत्, । अर्थात् जैसे काम अरु विषयादिकोंसे मनका निग्रह करतेहैं । निद्रारूप लयसेभी मनका निरोध करनायोग्य है । अर्थात् लय । सुषुप्तिमें मनकालय (निद्रा) का होना, अरु विक्षेप अफुरहुये मनमें संकल्पोंका फुरना, अरु रसास्वाद, समाधिसुखमेंरागका होना, अरु कषाय कर्मणी बुद्धिआदिकअन्तःकरणके दोष । यहचारो समाधि वाले पुरुषको समाधिमें विक्षेप करनेवाले विघ्नहैं, ताते मुमुक्षुपुरुष करके जैसे कामसे मनको निग्रहकरना है तैसेही लयादि चारोंसेभी मनका निग्रह करना योग्यहै ४२।१२१ ॥

४३।१२२ ॥ हेसौम्य, [ज्ञानकेअभ्यास अरु वैराग्य ।अर्थात्

आत्माके श्रवण मननरूप ज्ञानका अभ्यास अरु समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत्से वैराग्य । इनदोनों उपायों करके लय अरु बिक्षेपसे निवर्त्त (निरोध) किया जो मन सोजब रागसे प्रतिबन्धको प्राप्तहोवे, तब श्रवण मनन अरु निदिध्यासन के अभ्याससे जन्य संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधिपर्यन्त अभ्याससे तिस रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करने को योग्य है । अर्थात् आत्मा के श्रवणादिकों के अभ्यासरूप उपाय करके इस मन को रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करना योग्य है ।] ॥ प्रश्न ॥ तिस मन के । (कि जिसका स्थित अचलहोना योगीजन इच्छतेहैं) । नियहकरनेका उपाय कौनहै, । तहां ज्ञानाभ्यास अरु वैराग्य उपायहै, इसप्रकार उक्त प्रश्नका उत्तर कहतेहैं । "दुःखं सर्व्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत्" । 'सर्व्व दुःखरूपहीहै इस प्रकार स्मरण करके कामके भोगको निवारणकरे' अर्थात् अविद्यारचित समस्त द्वैतसर्व दुःखरूपहीहै, इसप्रकार ज्येष्ठ श्रेष्ठोंसे वा शास्त्रसे स्मरणकर सर्वदा स्मृतिमें रखके कामके भोग(रूपादिविषय)से प्रसरित हुये मनको । अर्थात् जो कामनाके बशहुआ मृगजलवत् इसलोक परलोकादिकोंके उत्तम मध्यम बिषयभोग तिनबिषे आसक्त प्रसारितहुआ क्षणमात्रको भी विश्राम पावता नहीं, ऐसा जो विक्षेपवान् चंचलमन तिसको । वैराग्यकी भावना से निवारणकरे । । अर्थात् यावत् उत्तम मध्यम बिषयभोगहैं, तिन बिषे यद्यपि सुखभी प्रतीतहोताहै, तथापि बिषयुक्त अति सुन्दर स्वादिष्ट पाकवत् साधन परतन्त्रत्व अरु क्षीणत्व यहदो अनिवार्यदोष तिनकरके युक्त बिषय दुःखरूपही हैं, इसप्रकार सम्यक्ज्ञान के अनुभवकरके, अरु "श्वोभावामर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः" इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे स्मरणकर उक्त प्रकार सर्वत्र सम्यक्दोषदृष्टिरूप वैराग्यकीभावनासे निवारणकरे। अरु "अजं सर्व्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति" । 'अजन्मासर्व है ऐसा स्मरण करके उत्पन्नहुआ कुछभी तो जानता नहीं' अर्थात्

लयेसम्बोधयेच्चित्तंविक्षिप्तंशमयेत्पुनः । सकषायंवि-
जानीयात्समप्राप्तंनचालयेत् ४४ । १२३ ॥

अजन्मा ब्रह्मरूप सर्वहै, इसप्रकार श्रुति अरु आचार्यके उपदेशसे स्मरणकरके पश्चात् तिस ज्ञानाभ्यासके दृढहोनेसे । तिससर्वात्म भावसे विपरीत द्वैतके समूहको तिसके अभाव से देखताही नहीं ४३ । १२२ ॥

४४।१२३॥ हेसौम्य, " लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तंशमयेत्पुनः " (लयविषे चित्तको प्रबुद्धकरे विक्षेपके प्राप्तहुयेको शान्तकरे) अर्थात् उक्तप्रकारके इन ज्ञानके अभ्यास अरु वैराग्य रूप उभय उपायोंकरके लय (सुषुप्ति)विषे लीनहुये चित्तको जगावे । (अर्थात् आत्माके अनुभव ज्ञानविषे लगावे । अर्थात् समाधिकालमें जब चित्त सुषुप्तिमें प्राप्तहोनेलगे तब लयहोनेसे पूर्व उस निर्विकल्प अवस्थाविषे कि जहां मन अरु प्राण के अवरोध से विशेष वृत्ति आदिकों का अभाव अरु सामान्य आत्मानुभवाकार वृत्ति का भाव है तिनभावाभावका प्रकाशक साक्षीआत्मा अज्ञात सुषुप्तिसे पृथक् सिद्धहै 'कि जिसकरके अज्ञात सुषुप्ति सिद्ध होती है सो अनुभवतत्त्व लयादिकोंका साक्षी नित्य जाग्रत (बोध) स्वभाव है तिस अधिष्ठानविषे चित्तको जोड़े) ॥ पुनः कामोंके भोगों (विषयों) विषे विक्षेपको प्राप्तहुये चित्तको शान्तकरे । इसप्रकार वारम्बार विचार अभ्यास करनेवाले योगीका चित्त लयसेजगाया गया, अरु विषयोंसे निवृत्तकियागया, अरु समभावको प्राप्तहुआ नहीं, किन्तु मध्य अवस्थावालाहै, तब सो उस अवस्थामें कषाय दोषवालाहै " सकषायंविजानीयात् समप्राप्तंनचालयेत् " (कषाय सहितको जानना समप्राप्तको चलावेनहीं) अर्थात् लयतासेजागा अरु समताको प्राप्तहुआ नहीं ऐसेजो समाधिकी मध्यमावस्थाको प्राप्तहुआ चित्त सो कषायदोष सहित होता है, तब तिस कषाय रागके (बीज) सहितको जानना । अरुतिस कषायसेभी सविकल्प

नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत् । निश्चलं निश्चरत् चित्तं एकीकुर्य्यात् प्रयत्नतः ४५ ।१२४ ॥

समाधिरूप प्रयत्नसे निर्विकल्प समाधि रूप समभावको प्राप्तकरे है, परन्तु जब चित्त सर्व विशेष वृत्तियोंको त्यागके केवल समभावकी प्राप्तिके सन्मुखहोय तब तिस सम प्राप्तिवाले चित्तको चलावे 'स्फुरणा के सन्मुख करे नहीं ४४ । १२३ ॥

४५।१२४॥ हेसौम्य [समाधि करनेकी इच्छाबिषे जो सुख उपजताहै तिससुखको बिषय करनेवाली इच्छासेभी मनकोरोकना योग्यहै इसप्रकार कहतेहैं] समाधि करनेकी इच्छावाले योगीको " नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत् " (सुख को स्वादन करेनहीं तहां प्रज्ञाकरके निःसंगहोय) अर्थात् । निर्विकल्प । समाधि को प्राप्तहोनेकी इच्छावाले योगीको । निर्विकल्प समाधिसे पूर्व सविकल्प समाधि बिषे चित्तको बिषयोंसे उपराम अरु प्रत्यक् आत्माके सन्मुख होनेसे । जो सुख होताहै तिसको सोयोगी आस्वादन करेनहीं । अर्थात् सविकल्प समाधिके अन्त अरु निर्विकल्प समाधिके पूर्वमें जो सुखहै तिसके आस्वादनको रसास्वाद कहते हैं तिस बिषे आसक्त होवेनहीं । क्योंकि तिस समाधि बिषे जो सुख प्रतीत होताहै सो अविद्याकरके कल्पित । विशेषके अभाव अरु अन्तर मुखता करके जन्य । मिथ्याहै । क्योंकि वो सत्य आत्मानन्द सुखनहीं ताते । ऐसी विवेकवती बुद्धिकरके निःसंग । अर्थात् उक्त अविद्यात्मक सुखसे निस्पृह । होवे । अर्थात् उस सुखकी स्पृहासे रहित असंगहुआ परमानन्दमय आत्माकी भावनाकरे, अर्थात् तिस समाधि सुखके रागसेभी चित्तको निरोधकर अराग आत्माकार होवे । अरु " निश्चलं निश्चरत् चित्तं एकीकुर्य्यात् प्रयत्नतः" (निश्चल बाहर जानेवाले चित्तको प्रयत्नसे एकाकारकरना) अर्थात् जब सुखके रागसे निवृत्तहोके निश्चल स्वभाववाला हुआ चित्त पुनः बाह्य जानेवाला होवे

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः । अनिंगन-
मनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ४६ । १२५ ॥

। अर्थात् रसास्वादसे निवृत्त निश्चल हुआ चित्तभी जो कदापि पूर्वाभ्यासके संस्कारवश बाह्य विषयोंके सम्मुख वा तिस अवस्थाविषे दर्शितहुई जो सिद्धि तिसमें रागवान् हुआ तिनके सम्मुख होवे । तब तिस निश्चल हुये परभी पूर्व संस्कारोंके बश बाह्य जानेवाले चित्तको भी, तिन तिन विषयोंसे उक्त ज्ञानाभ्यासादिक उपायोंसे रोकके पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न करके आत्माविषेही एकरूप करना । अर्थात् निर्विकल्प समाधि करके युक्त चैतन्यस्वरूप सत्ता समान मात्रही सम्पादन करना॥ । अर्थात् समाधिसे उत्थान (विषय सम्मुख) हुये चित्तको पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्नसे अन्तर आत्माके सम्मुखकर अचेत्य चिन्मात्र सत्ता समान स्वरूपविषे अभेदतासे एकाकार स्थित करना ४५ । १२४ ॥

४६ । १२५ हेसौम्य, [पुनः यह चित्त ब्रह्ममात्रको कब पावताहै, जहां इसप्रकारकी शंका है तहां कहते हैं] " यदानलीयते चित्तं नचविक्षिप्यते पुनः " । " चित्त लीनहोवे नहीं अरु पुनः विक्षेपको पावतानहीं " अर्थात् उक्तज्ञानाभ्यास अरु बैराग्यरूप उपायोंसे निरोधकिया चित्त जब सुषुप्तिविषे लीन होवेनहीं, अरु पुनः विषयों विषे विक्षेप (उत्थान) को पावतानहीं । अर्थात् समाधिकी प्राप्तिमें जे ' लय, विक्षेप, रसास्वाद, अरु कषाय, यह चार विघ्न तिनसे रहित होताहै । अरु पवनसे रहित दीपशिखावत् अचल अरु अनाभास । अर्थात् किसीभी कल्पित विषयके अभासमान, अर्थात् जैसे सुषुप्ति में अपने कारण अविद्यामें लय हुआ चित्त भासतानहीं, तैसेही समाधिमें अपने अधिष्ठान आत्मतत्त्वविषे लीनहुआ भासेनहीं ऐसाहोवे " अनिंगनमनाभासंनिष्पन्नंब्रह्मतत्तदा " । " अचल अरु अनाभास होवे तब सो चित्तब्रह्म

स्वस्थं शांतं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम्। अजमजेन ज्ञेयेन सर्व्वज्ञं परिचक्षते ४७। १२६॥

सम्पन्न होताहै ; अर्थात् जब उक्तप्रकार अचल अरु अनाभास होताहै तबसोचित्त ब्रह्म स्वरूपकरके सम्पन्न होताहै ४६।१२५॥

४७।१२६ हे सौम्य, [असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधिबिषे जिसरूपकरके चित्त सम्पन्न होताहै तिस ब्रह्मस्वरूपको विशेषण देते हैं] "स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम्" (उत्तम सुखको स्वस्वरूप बिषे स्थित शान्त निर्वाण अरु अकथ कहतेहैं ; अर्थात् उक्तप्रकारके योगीकेप्रत्यक्ष परमार्थरूप सर्वोत्तमब्रह्म सुख को ब्रह्मवेत्ता 'आत्मरूप सत्यका अनुबोधरूप स्वस्वरूपबिषे स्थित अरु सर्वअनर्थोंकी (कामनाकी) निवृत्तिरूप शान्त, अरु निर्वाण (मोक्षकरके सहित वर्त्तमान, अरु असाधारण बिषयवाला होने से कहने को अशक्य (अर्थात् नेत्रमें लगाया अंजन नेत्रके अति समीप नेत्रान्तर होनेसे वो नेत्रका बिषय नहीं, तैसेही वागादिक सर्व इन्द्रियों का अन्तरात्मा अत्यन्त निकट होनेसे वागादिकों का अविषय है। अरु "अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते" (जन्मसेरहित अनुत्पन्नहुये ज्ञेयसे सर्वज्ञ ब्रह्महीं कहतेहैं ; अर्थात् जैसे स्त्रीसंगादि सुख बिषयजन्य है तैसे सर्व्वोत्तम ब्रह्मानन्द सुख बिषयजन्य न होने से अरु केवल परमशान्त निर्वाण रूप होने से बाणी आदिकों का बिषय नहीं, किन्तु जन्म से रहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेयसे (अर्थात् 'अज्ञान पर्यन्त जानने योग्य अरु बास्तवसे ज्ञानस्वरूप' निर्विकल्प समाधि करके प्राप्त जो निर्विशेष ज्ञप्तिमात्र सत्तासमान आत्मतत्त्व सो अव्यक्तादिवत् जन्मवान् न होनेसे जन्मरहित अजहै अरु (आकाशादिक जो ज्ञेयहैं सो उत्पन्नहुये ज्ञेयहैं, अरु आत्मतत्त्व जो ज्ञेयहै सो अज्ञानपर्यंत ज्ञेय है वास्तवकरके अनुत्पन्न ज्ञेयहै। तिस जन्मरहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेयसे अभिन्नहुआ अपने सर्वज्ञरूपसे सर्व ब्रह्म ही कहते हैं

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ४८ । १२७ ॥
इति अद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

। अर्थात् निर्विकल्प समाधिकरके ब्रह्मको प्राप्तहुआ योगी "ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादिप्रमाणसे ब्रह्महो होताहै ४७ । १२६ ॥

४८ । १२७ ॥ हे सौम्य, [उक्त उपायोंको परमार्थसे सत्यताके हुये अद्वैत की हानिहोवेगी, अरु अन्यथा उन उपायों का प्रमाज्ञान न होवेगा, यह शंकाकरके तब कहतेहैं] मनकेनिग्रहादिक उपाय, अरु मृत्तिका सुवर्ण आदिकोंवत् सृष्टिअरु उपासना, यह सर्वही परमार्थ स्वरूप की प्राप्तिके उपाय होने करके । परमार्थरूप । कहे हैं, परन्तु वास्तवसे सत्य हैं नहीं, क्योंकि "। न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते "। ' कोई भी जीव उत्पन्न होता नहीं, इसका कारण है नहीं '; अर्थात्, मनके निग्रह आदिक जे उपाय (साधन कहे हैं सो परमार्थ से सत्य नहीं, क्योंकि परमार्थसे सत्यतो कोईभीकरता भोक्तारूपजीव किसी भी प्रकारसे उत्पन्नहोतानहीं । एतदर्थ स्वभावसे अजन्मारूप इस एकही आत्मा का कारण है नहीं । अरु जिस करके कारण नहीं तिसही करके कोई भी जीव उपजता नहीं । यहइसका अर्थ है । अरु "एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते"। ' तिनके मध्ययह उत्तम सत्यहै जहां (जिसविषे) कुछ भी उपजतानहीं '; अर्थात् पूर्वके ग्रंथविषे उपायपने करके कथन किये जो तिन व्यावहारिक सत्यरूप साधनों के मध्य यह उत्तम सत्य है जिस सत्यरूप ब्रह्मविषे कुछ (अणुमात्र) भी उत्पन्न होतानहीं ४८ । १२७ ॥

इतिश्रीगौडपादाचार्यकृतमाण्डूक्योपनिषद्कारिकायां
अद्वैताख्यतृतीयप्रकरणभाषाभाष्यं समाप्तम् ॥
हरिः
ॐ तत्सद्ब्रह्म

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य चतुर्थप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् योगगनोपमान्। ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तंवन्दे द्विपदांवरम् १।१२८

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य
चतुर्थप्रकरणभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१।१२८हेसौम्य[पूर्वके अरु पिछलेप्रकरणके संम्बन्धकी सिद्धि के अर्थ पूर्वोक्त तीनप्रकरणोंबिषे उक्तार्थको क्रमसे कथन करतेहैं] ॐकारके निर्णयरूप द्वारकरके आगम नामक प्रथम प्रकरण से प्रतिज्ञाकिये। अरु द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरणबिषे बाह्य बिषयों के भेदको मिथ्यापने से सिद्धहुये अरु पुनः अद्वैताख्य तृतीय प्रकरणबिषे शास्त्र अरु युक्तियों करके साक्षात् निर्द्धारकिये अद्वैत का "। तदुत्तमं सत्यमिति "। यह उत्तम सत्य है। यह इसतृतीय प्रकरणके अन्तके श्लोकबिषे। पूर्व प्रकरण की प्रतिज्ञा। समाप्त किया। अरु तिस इसश्रुतिके अर्थरूप जो अद्वैत सिद्धांत तिसके बिरोधी (प्रतिपक्षी) हुयेजे भेद (द्वैत) वादी अरु वैनाशिक (निरात्मवादी) हैं तिनका परस्पर में विरोध होनेसे उनकासिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रय है। अर्थात् सर्व भेद वादियोंके सिद्धांतरूप वृक्ष रागद्वेषादि क्लेशरूप पक्षियोंके बिश्रामका आश्रय हैं। अरु अद्वैतवादियों का जो सिद्धान्त है सो रागद्वेषादि क्लेशों का अनाश्रयहै। अर्थात् रागद्वेषादिक्लेशोंका आश्रय नहीं, क्योंकि रागद्वेषादि क्लेशपरस्परके भेदकोआश्रयकरके रहते हैं, अरु परस्पर का भेद द्वैतके आश्रयहै, अरु सो सर्वअनर्थोंका आश्रय जो द्वैतभाव सो अद्वैत सिद्धान्तमें नाममात्रभीनहीं तातेतिनके आश्रितजे राग द्वेषादि अनर्थ क्लेश सो कैसे होगा, किन्तु कदापि नहीं। वा अद्वैत

सिद्धान्तसे "सर्वमात्मैवाभूत" जिनको सर्वात्म दृष्टिहोनेसे उस को भेदके अभावसे रागद्वेषादि क्लेश आश्रय करतेनहीं, अरु "नातिवादी" वो अतिवादी होतेनहीं अर्थात् निंदास्तुति करतेनहीं ॥ अरु भेदवादियोंको परस्परमें रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रयपना, वैष्णव मतवादी अरु शैवमतवादियोंमें इस सांप्रतकालमेंसर्वको प्रत्यक्ष है, ताते भेदवादियोंका सिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेशका आश्रयहै । अरु अद्वैत सिद्धान्तहै सो उक्तक्लेशोंका अनाश्रयहोनेसे सम्यक्ज्ञानहै। इसप्रकार अद्वैत ज्ञानकीस्तुतिकेअर्थ, तिन भेदवादियोंके सिद्धांत का मिथ्या ज्ञानपना सूचितकिया । अरु सो तिनके पक्षोंकामिथ्या ज्ञानपना यहां परस्पर विरुद्धहोने करके बिस्तारसे देखायके तिसके निषेधसे अद्वैत ज्ञानकी सिद्धि, आवीत न्याय करके (आवीत न्याय नाम, व्यतिरेक न्याय का है जैसेजो क्रियाकरके साध्य है सो अनित्य है इस अन्वयसे अनित्यताके जानेहुये भी जो अनित्य नहीं, सोक्रिया करके साध्यभी नहीं, इस प्रकार का व्यतिरेक भी व्यभिचारकी शंकासे रहितहोने करके व्याप्तिके निश्चयार्थ अंगीकार करतेहैं । अरु तैसे तर्कसे घटितहुये अर्थकेज्ञानसे जानेहुये भी विरोधी अन्यवादके निषेधके वर्णनबिना अन्यपक्षके सम्यक् पनेकी शंकाहोवेगी । एतदर्थ अन्यवादोंके निषेधसे अद्वैत सिद्धान्त की सिद्धि समाप्त करने को योग्य है । इस अभिप्राय से अलात शान्ति के (अर्द्धदग्ध काष्ठके घुमावनेके) दृष्टान्त से उपलक्षित अलात शान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण प्रारम्भ करतेहैं। इत्यर्थः] समाप्त करनेके योग्यहै । एतदर्थ यहअलात शान्तिनामक चतुर्थ प्रकरण आरंभकरतेहैं । अरु तिस चतुर्थ प्रकरणविषे अद्वैत ज्ञानके सम्प्रदायके कर्त्ता नारायण भगवान् रूप आचार्यके अद्वैत स्वरूप सेही नमस्कारार्थ यह प्रथम श्लोक है । [आदिअन्त अरु मध्य विषे मंगलाचरणकरके युक्त जो ग्रंथ हैं सो प्रवृत्तिवाले होतेहैं, इसअभिप्रायसे श्रीगौडपादाचार्य आदिविषे ॐकारकेउच्चारणवत् अरुअन्तविषे परदेवताके प्रणामवत् मध्यविषे भी परदेवता

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्व्वसत्त्वसुखो हितः । अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् २ । १२९ ॥

रूप उपदेष्टा (आचार्य) को प्रणाम करते हैं] जिस करके शास्त्रके आरंभ बिषे बांछित अर्थकी सिद्धिके लिये आचार्यकी पूजा अंगीकार करतेहैं । एतदर्थ यहां आचार्यको नमस्कार रूप मंगल करते हैं " ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् योगगनोपमान् ,ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदांवरम् " ' जो ज्ञेयोंसे अभिन्न आकाशके तुल्य ज्ञानसे आकाशकी उपमावाले धर्मोंको सम्यक् जानताहुआ,तिन द्विपदनके मध्य श्रेष्ठको बन्दनाकरताहों ' अर्थात् जो नारायण नामक परमेश्वर अग्निकी उष्णताअरु सूर्यके प्रकाशवत् उपाधि करके कल्पित भेदसे बहुरूप आत्मस्वरूपधर्म्मरूप ज्ञेयपनेसे अभिन्न आकाशके तुल्य यद्यपि[आकाशको जडताकी अधिकतासे स्वप्रकाशरूप ज्ञानको आकाशकीउपमाअपूर्णहै,तथापि ज्ञानके व्यापकपने आदिक बिषे आकाशकी उपमा पूर्णतासे जाननेयोग्यहै]ज्ञानरूपतासे आकाशके तुल्यताकीउपमावालेआत्माके धर्म्मों को सम्यक्प्रकार जानता हुआ, तिस द्विपदों (मनुष्यसे उपलक्षित पुरुष) के मध्यश्रेष्ठ(प्रधान) पुरुषोत्तम गौडपादाचार्य्य जो हैं सो पूर्व नरनारायणकरकेआश्रित बदरिकाश्रमबिषे नारायण भगवान् को चित्त में ल्यायके बड़े तपको तपते हुये, ताते नारायण भगवान् प्रसन्न होयके तिनके अर्थ बिद्या बरदान देतेहुये । तातेतिस नारायण भगवान् रूप परमेश्वरबिषे वेदान्त सम्प्रदायका परमगुरुपना प्रसिद्ध है । यह भावहै] कोमैं बन्दना करता हौं, यह अभिप्राय है ॥ उपदेष्टा आचार्य के नमस्काररूपसे विरोधी पक्षोंके निषेध द्वारा इसचतुर्थ प्रकरणबिषे प्रतिपादन करने को इच्छित , ज्ञान , ज्ञेय, अरु ज्ञाताकेभेद रहित (अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसात्रिपुटी से रहित) परमार्थ तत्त्वका ज्ञान (परमार्थ बोधरूप) प्रतिज्ञा कियाहोताहै १ । १२८ ॥

२ । १२९ ॥ हे सौम्य, अब अद्वैत दर्शनरूप योगकी। अर्थात् अद्वैत ज्ञानकी स्तुति के अर्थ तिसको नमस्कारसे स्तुति करते हैं "।अस्पर्शयोगोवैनाम सर्व्वसत्त्वसुखोहितः"। (अस्पर्शयोग प्रसिद्ध नामहै सर्वसत्त्व सुखहोताहै हितरूपहै, अर्थात् जिसयोगका किसी सेभी कदाचित्भी स्पर्श । सम्बन्ध।होवेनहीं,ऐसा जो ब्रह्मस्वरूप योग सो कहिये अस्पर्श योग नामहै , सो ब्रह्मवेत्ताओं को यह अस्पर्श योगहै । अन्योंको नहीं । यह प्रसिद्धहै । ।अर्थात् अस्पर्श योगनाम वाला अद्वैत ब्रह्मरूप ज्ञान है सो अद्वैत ब्रह्मके जानने वाले सम्यक् ब्रह्मवेत्ताओं को है। तिनसे इतरजे कर्मवादि तर्कवादि आदिक भेदी हैं तिनको "न कर्मिणो वेदयन्ते" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे सो ज्ञान नहीं । ॥ अरु कोई एक अत्यन्त सुखके साधन । दिव्य सर्व्वोत्तम भोग्य सामग्री । करके युक्तहुआ भी योग दुःखरूप हैं। 'जैसे तप, अरु यह ।ब्रह्मरूप अस्पर्श योग। तैसा नहीं । किन्तु "सर्वेषां सत्त्वानां देहभृतां सुखयतीति," इस व्युत्पत्त्यार्थ से जो सर्व देहधारी जीवोंको सुखी करे, सो सर्व सत्त्वसुखहै । ताते सो । अस्पर्श नामयोग। सर्व जीवोंको सुखरूप है । अरु तैसेही इस योग करके हितहोता है । अर्थात् जो कदापि किसी बिषयका उपभोगरूप सुख है सो सुख तो है परन्तु सो हितरूप नहीं ।क्योंकि बिषयों का उपभोग जन्य सुख है सो क्षणिक अरु परिणामी है ताते । अरु यह ।अस्पर्श योग । सुखरूप है, अरु हितरूप है, क्योंकि ।सोक्षणिक अरु परिणामी न होयके। सर्बदा एकरस अचल स्वभाव वालाहै ताते। किंवा "।अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम्।" (अविवादहै अविरुद्धहै उपदेशकियाहैतिसको मैं नमस्कार करताहौं) अर्थात् जिसविषेपक्ष अरु प्रतिपक्षके ग्रहणसे विरुद्धकथनरूपविवादनहीं,एतदर्थ अविवादहै ।अर्थात् जहां द्वैतहै तहां स्वपक्ष अरु प्रतिपक्षका ग्रहणहै तहांही परस्परमें राग द्वेष पूर्वक विरुद्धकथन रूप विवादहै अरु इसभेदरहित अद्वैत अस्पर्श नामयोगविषे भेदके

भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेव हि । अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् ३ । १३० ॥
भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते । विवदन्तोऽद्वयाह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते ४ । १३१ ॥

अभाव से स्वपक्ष अरु परपक्ष अरु तदाश्रित रागद्वेष अरु परस्पर का विरुद्ध कथनरूप बिवाद समूलनहीं, ताते सो अविवाद है । अर्थात् जिस पुरुषको एकअद्वितीय ब्रह्मका सो रूपही अस्पर्शयोग प्राप्तहुआ है सो विद्वान " विद्वान् भवते नातिवादी " सम्यक्अद्वैत ज्ञानीहुआ किसीका भी खंडन मंडनरूप विवाद करतानहीं, ताते सो अविवाद है । क्योंकि अविरुद्ध है । अतएव ऐसा जो । सर्वोत्तम सुख रूप हितरूप अविवाद अरु अविरुद्ध ' योग जिसशास्त्रने सम्यक् उपदेशकिया है, तिस शास्त्रको मैं नमस्कार करता हौं २ । १२९ ॥

३ । १३० हे सौम्य, [अद्वैत बादको अविरुद्ध होने करके तिसबिषे विवादके अभाव को स्पष्ट करनेको प्रथम द्वैतवादियों के विवाद को उदाहरण करके कहते हैं] । प्रश्न । द्वैतवादी परस्पर विरोध को कैसे प्राप्त होते हैं, । उत्तर । कहते हैं " भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेवाहि" {कोई एकवादी विद्यमान भूतों (बस्तुओं) की उत्पत्ति इच्छते हैं } अर्थात् जिस करके कोई एक सांख्यशास्त्र मतके अनुसारी द्वैतवादी विद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते हैं, सर्व नहीं अरु " अभूतस्यापरेधीरा विवदन्तः परस्परम् " { पंडितपने के अभिमानी अन्य अविद्यमान बस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते परस्पर बिबाद करते हैं } अर्थात् जाते सांख्यवादियोंसे अन्य अपनेबिषे पंडितपने के अभिमानी वैशेषिक अरु नैयायिक मतके, अविद्यमान बस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते हैं, एतदर्थही परस्पर बिबाद करते हैं (अन्यको जय करने को इच्छते हैं इत्यभिप्रायः ३ । १३० ॥

ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम् ।
विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत ५ । १३२॥

४।१३१हे सौम्य, । प्रश्न । इसकहे प्रकार विरुद्ध कथन से परस्परके पक्षके खंडनकेकर्त्ता वादियों करके सिद्धकिया क्याहोता है,।उत्तर।तहां कहते हैं "भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते" (कुछभी भूत (विद्यमान) उपजता नहीं, अविद्यमान उपजता नहीं) अर्थात् कुछ भी विद्यमान वस्तु उपजता नहीं, क्योंकि सो आत्मावत् विद्यमान है ताते, इसप्रकार कहताहुआ असत् वादी सत्के जन्मरूप सांख्यके पक्षका निषेध करताहै। अरुतैसे अविद्यमान वस्तुभी उपजता नहीं,क्योंकि सो शशशृंगवत् अविद्यमान है ताते। इस प्रकार कहताहुआ सांख्यवादी भी असत् के जन्मरूप असत्वादीके पक्षका निषेध करताहै "विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते" (ऐसे अद्वैतवादी विवाद करते हुये अनुत्पत्तिको ख्यापन करते हैं) अर्थात् जे अद्वैतवादीहैं सो विवाद करते (निर्णयकरते) हुये। अरु सत् अरु असत्के जन्म रूप, इस परस्पर के पक्षरूप विवादको निषेध करतेहुये कोई कहताहै इसविद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति है कोई कहताहै अविद्यमान की उत्पत्ति है इस प्रकार परस्परमें वादी विवाद करते हैं, तिनदोनोंके पक्षको निषेध करतेहुये। सत् असत्से भिन्न (विलक्षण) वस्तुके अर्थसे अनुत्पत्ति को प्रकाश करते हैं ४ । १३१ ॥

५।१३२. हेसौम्य,[तब वादियों करके उक्त होनेसे अनुत्पत्तिभी तुमकरके निषेधकरनेको योग्यहै यह शंका करके कहते हैं [इस प्रकार तिनप्रतिवादियों करके । अर्थात् "ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम्" (तिनकरके प्रकाशित किया अनुत्पत्ति को हम अनुमोदन करते हैं) अर्थात् ऐसे तिन प्रतिवादियों करके प्रकाशित किया जो अनुत्पत्ति तिसकोही इसप्रकार होवो, ऐसे हम केवल अनुमोदन करते हैं। परन्तु "विवदामो न तैः सार्द्धम-

अजातस्यैव धर्म्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः ।
अजातो ह्यमृतो धर्म्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ६ । १३३॥
न भवत्यऽमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा ।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ७ । १३४ ॥

विवादं निबोधत "। (तिनके साथ विवाद करते नहीं अविवाद को श्रवणकरो) अर्थात् जैसे वे । भेदवादी । परस्पर विवाद करते हैं, तैसे हम तिनके साथ पक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहण से विवाद करते नहीं । एतदर्थ हे हमारे शिष्यो, हमोंकरके अनुमोदनकिये अविवादको । अर्थात् विवादसे रहित परमार्थ रूप ज्ञान को । श्रवण करो ५ । १३२ ॥

६।१३३ हे सौम्य [उत्पन्नहुये वस्तुकेही जन्मकरके अनर्थ की प्राप्तिसे अरु अनवस्था दोषकी प्राप्तिसे अनुत्पन्नहुये पदार्थकेही जन्मको सत्वादी अरु असत्वादी सर्वही स्वीकार करते हैं।इसप्रकार अन्यबादियों के पक्षका अनुबाद करते हैं] "। अजातस्यैवधर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः"। (सर्ववादी जन्मरहित धर्मकी उत्पत्ति को इच्छते हैं) अर्थात् सर्व जो सत् असत्वादी हैं सो , जो जन्म रहित ही धर्म्मनामवाला परमात्माहै, तिसकी उत्पत्ति को इच्छते हैं, परन्तु "। अजातो ह्यमृतो धर्म्मो मर्त्यतां कथमेष्यति "। (अजन्मा मरणरहित धर्म्म मरनेकी योग्यताको कैसे पावेगा) अर्थात् अजन्मा अरु अमृत ।मरणरहित। जो धर्म नामक परमात्मा सो मरणकीयोग्यताको कैसे प्राप्तहोवेगा,किन्तु किसीप्रकारसेभी प्राप्त होवे नहीं ॥ अर्थात् जो जन्मताहैतिसका मरण भी निश्चित है, ताते जो परमात्मा उत्पन्नहोयतो विनाशभी अवश्य होगा, परन्तु सो परमात्मा श्रुतिके प्रमाण अरु अनुभवसे निराकार महासूक्ष्म एकअद्वैत परिपूर्ण अजन्मा है, अरु जिसकरके अजन्मा है तिसही करकै कदापि मरणके योग्य नहीं । ६ । १३३ ॥

७।१३४ हे सौम्य, [परिणामी ब्रह्मके वादविषे जो अब्रह्मवा-

स्वभावेनामृतो यस्य धर्म्मो गच्छति मर्त्यताम् ।
कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः ८।१३५॥

दियों करके दूषण कहे हैं, सो भी हमने अनुमोदन किया है, इस प्रकार मानके कहते हैं,] "न भवत्यऽमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा" (मरणरहित मरनेके योग्य होता नहीं, तैसे मरनेके योग्य मरण रहित नहीं) अर्थात् मरणरहित जो ब्रह्म सो मरने के योग्य होता नहीं, क्योंकि स्थितरूपका विरोधहै ताते । तैसेही मरनेके योग्य कार्य सो स्वरूपकी स्थितिविषे वा प्रलय अवस्थाविषे मरणरहित ब्रह्मको पावता नहीं॥एतदर्थं "प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति" (प्रकृतिका अन्यथा भाव किसीप्रकार से भी होगा नहीं) अर्थात् प्रकृति (कहिये स्वभाव, का अन्यथा भाव किसी प्रकार से भी होनेका नहीं ॥ इति सिद्धम् ७।१३४॥

८।१३५हेसौम्य, "स्वभावेनामृतो यस्य धर्म्मो गच्छति मर्त्यताम्" (जिसका स्वभावसे मरणरहित धर्म मरने की योग्यता को पावताहै) अर्थात् जिस परिणामवादी के मतमें स्वभावसेही मरणरहित धर्म्म (परमात्मा नामक पदार्थ) कार्य भावकी प्राप्तिसे मरने की योग्यता को प्राप्तहोताहै "कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः" (तिसका समुच्चय के अनुष्ठानसे मरणरहित निश्चल हुआ कैसे स्थित होवेगा) अर्थात् तिस वादी के मतविषे समुच्चय के अनुष्ठान से मरणरहित अरु मुक्तहुआ कहने के योग्यहै । सो धर्म निश्चलहुआ कैसे स्थितहोवेगा, किन्तु किसीप्रकार से भी स्थितहोवे नहीं ॥ [पूर्व अद्वैत नामक प्रकरण विषे कथन कियाहै अर्थजिन्होंका ऐसे इन ६ से लेके ८ पर्यन्त तीन श्लोकों का जो पुनः यहां निवेश कियाहै, सो अन्य वादियों के पक्षों के परस्पर विरोध करके प्रसिद्धहुये अपने अनुमोदनके लखावने के अर्थ किया है ८।१३५॥

सांसिद्धिकी स्वाभाविकीसहजा अकृता च या। प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या ९।१३६॥

९।१३६ हे सौम्य, जिसकरके जब यह लौकिक प्रकृति भी अन्यथा भावको पावती नहीं, तबयह अजन्मा अरु अमृत स्वभाव वाली प्रकृति अन्यथा भावको न प्राप्तहोवे, इसमें क्या कहना है 'किन्तु कुछभीनहीं। प्रश्न। कौन यह प्रकृतिहै तहां। उत्तर। कहतेहैं। "सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या।" "सांसिद्धिकीहै स्वाभाविकी है सहजाहै अरु जो अकृतहै"; अर्थात् [प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी भी प्रकारसे होनेका नहीं, इस प्रकार ७ वें श्लोकबिषे कहा। तहां प्रकृति शब्दके अर्थको कहतेहैं] सम्यक् सिद्धिबिषे होनहार है एतदर्थ सांसिद्धिकी है। जैसे सिद्ध योगियोंकी अणिमादि ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप जो प्रकृतिहै, सो भूत अरु भविष्यत्काल बिषे अन्यथा भावको पावतीनहीं, तैसेही सो प्रकृति अन्यथा भावको पावतीनहीं, एतदर्थ तिसको सांसिद्धिकी कहतेहैं। तैसेही स्वभावहीसे सिद्धहै याते सोई स्वाभाविकीहै, जैसे अग्नि आदिकोंकी उष्ण अरु प्रकाशादिरूप प्रकृतिहै सोभीकालान्तरबिषे अरुदेशान्तर बिषेभी व्यभिचारको प्राप्तहोती नहीं, तैसेही यहभीव्यभिचारको पावतीनहीं एतदर्थ इसको स्वाभाविकीकहते हैं। अरु तैसेही सहजा। आत्माके साथही होनहारा है। जैसे पक्षी आदिकों की आकाश बिषे गमनादिरूप प्रकृति (स्वभाव) सहजहै। तैसेही यहआत्माके साथही होनेवाली है, एतदर्थ इसको सहज कहतेहैं। अरु अन्यभी जो कोई एक किसी निमित्तसेभी अकृत (अरचित) होवे, जैसे जलकी अधोदेश बिषे गमनादि रूप प्रकृतिहै, अरु जैसे घटका घटत्वहै अरु पटका पटत्वहै, तैसे अन्यभी जो कोई एक कदाचित् भी स्वभावको त्यागेनहीं सोसर्व प्रकृतिहै। इस प्रकार जाननेको योग्यहै। अरु "प्रकृतिःसेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या" "जो स्वभावको त्यागेनहीं सो

जरामरणनिर्म्मुक्ताः सर्व्वेधर्म्माःस्वभावतः । ज-
रामरणमिच्छन्तश्च्यवन्ते तन्मनीषया १० । १३७ ॥

सर्व प्रकृतिहै इस प्रकार । प्रकृति शब्दका अर्थ जानने योग्यहै ; अरुजब लोकविषे मिथ्या कल्पित लौकिक वस्तुविषे जो प्रकृति (स्वभाव) है सोभी अन्यथा होतानहीं, तब अजन्मा स्वभाव वाले परमार्थ रूप सत्य बस्तुविषे जो अमृत भावरूप स्वभाव है सो अन्यथा न होवे, तिसमें क्या आश्चर्यहै किन्तु कुछभीनहीं । यह इसका अभिप्रायहै ९ । १३६ ॥

१० । १३७ ॥ हेसौम्य, । प्र० । पुनः जिसका अन्यथाभाव वादियों करके कल्पित है, ऐसी जो प्रकृति सोकिस बिषयवाली है, अरु तिसके अन्यथाभावकी कल्पना करनेविषे उन बादियों की क्या हानिहै । तहां ।उ०। कहतेहैं "जरामरण निर्म्मुक्ताः सर्वे धर्म्माःस्वभावतः " । (सर्व धर्म स्वभावसेही जन्ममरण रहित हैं ; अर्थात् सर्व धर्म्म [प्रसंग बिषे प्राप्तहुईही जीवोंकी प्रकृति (स्वभाव तिसके देखावने कों, कहनेका आरंभ करते हैं] कहिये आत्मा।अर्थात् "अणुरेषधर्म्मः"इस कठकी श्रुतिने आत्माको धर्म्म नाम करके कहाहै। आत्मा सो स्वभावही से जन्म मरणादिसर्व (षट् भाव) विकारोंसे रहित है, ऐसे स्वभाववाले हुये जे धर्म्म (आत्मा) हैं । (यहां जो आत्माको बहुवचनसे कहाहै सो घटाकाशोंवत् शरीरादिक उपाधिके सम्बन्धसे कहाहै) । तिनबिषे । " जरामरणमिच्छन्तश्च्यवन्तेतन्मनीषया " । (जरामरण को इच्छते हैं सो तिसकी चिन्ताकरके भ्रष्टहोते हैं ; अर्थात् जो अपने स्वभावसेही जन्म मरणादिक सर्व विकारोंसे रहित अजर अमर अभय आत्मा है, तिसबिषे जो रज्जुविषे सर्पवत् (अनहुयाही) जन्म जरा मरणको इच्छतेहुयेवत् इच्छा करते हैं (कल्पते हैं) सो तिस जरामरण की चिन्ता करके स्वभाव से (अपने जन्ममरणादि भावसे) भ्रष्ट होते हैं । अर्थात् जन्मादि सर्व

कारणं यस्य वै कार्य्यं कारणं तस्य जायते। जायमानं कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् ११।१३८॥

विकार रहित जो आत्मा तिस बिषे विकार की कल्पना के हुये तिसकी वासना से उन वादियों को स्वभाव की हानिही होतीहै यह दोष है १०।१३७॥

११।१३८॥हे सौम्य,[प्रसंगबिषे प्राप्तहुये अर्थको त्यागके सांख्य वादियोंके पक्षबिषे वैशेषिक आदिकरके कथन किया अरु आपअद्वैत वादियों करके अनुमोदन किया जो दूषण है, तिसका अनुवाद करते हैं] सत् कहिये विद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति के कहनेवाले सांख्यवादियों करके अघटित कैसे कहा है,। जहां ऐसा प्रश्न है तहां वैशेषिककहतेहैं "।कारणं यस्य वै कार्य्यं कारणं तस्य जायते "। (जिसके , मतबिषे , कारणही कार्य होता है तिसके , मतबिषे, कारण जन्मता है) अर्थात् जिस सांख्यवादियों के मतबिषे मृत्तिकावत् उपादानरूप कारणही कार्य्य होता है। जैसे मृतपिंड घटरूप परिणाम को तैसे कारण कार्यके आकार से परिणाम को प्राप्त होताहै। तिनके मतबिषे जन्मरहित ही कारण महत्तत्त्वादि कार्य रूपसेही जन्मता है। अरु जब महत्तत्त्वादिकोंके आकारसे उत्पन्न होनेवाला प्रधानहै तब सो अजन्मा अरु नित्य कैसे कहा है, एतदर्थ जन्मता है अरु अजन्मा नित्य है, इसप्रकार तिन करके यह विरुद्ध कथन किया है। अरु "। जायमानं कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् "। (सो जायमान है तब अज कैसे होगा, अरु विदारण को प्राप्तहुआ नित्य कैसे होवेगा) अर्थात् सो प्रधान एक देशसे भिन्नता , भेद वा विदारण, को प्राप्त हुआ नित्य कैसे होवेगा [विवाद का विषय जो प्रधान सो अनित्य है, क्योंकि सावयव है ताते। घटादिकोंवत्, इस अनुमान के अभिप्राय से दृष्टान्त को साधते हैं] जिसकरके लोकबिषे सावयव एक देशसे फूटने रूपधर्मवाला घट नित्य देखा नहीं,

कारणाद्यद्यनन्यत्वमतः कार्य्यमजं यदि। जायमाना-
द्धि वै कार्य्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् १२।१३९॥

अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै। जा-
ताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते १३।१४०॥

एतदर्थ एक देशसे बिदारण को पाया जो प्रधान सो अजन्मा है अरु नित्य है, इसप्रकार जो उन सांख्यवादियों करके कथन किया है सो विरुद्ध किया है। यह इसका अभिप्रायहै ११।१३८॥

१२।१३९॥ हे सौम्य, अब पूर्व देखाया जो कार्य्य कारणका भेदवाद तिसके निषेधरूप उक्तार्थ को ही स्पष्ट करने के अर्थ कहतेहैं "कारणाद्यद्यनन्यत्वमतः कार्य्यमजं" "जब कारण से अनन्यपना मानता है तब कार्य्य अजन्मा है" अर्थात् जब जन्मरहित कारण से कार्यका अनन्यपना तेरेको बांछित (मन्तव्य) है, तब तिस प्रकारके (जन्मरहित; कारण से अपृथक् होने करके कार्य भी अजन्मा है, ऐसे प्राप्तहुआ। एतदर्थ तेरे मतको प्रधानका अजन्यपना अरु जन्यपना यह विरोध हुआ। अरु कार्य है औ अजन्मा है यह दूसरा विरुद्ध हुआ। किंवा कार्य कारण के अनन्य भावविषे अन्यदोष यह है कि "यदि, जायमानाद्धि वै कार्य्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम्" "जब प्रसिद्ध जायमानकार्य से अनन्य कारण है तब सो तेरे मतविषे नित्य अरु अचल कैसे होवेगा, किन्तु किसी प्रकारसे भी होवे नहीं। अरु जैसे कोई कहै कि कुक्कुट (मुरगे) का एक अंग (मस्तकादि कोई) भोजनार्थ पचावते (पकावते) हैं अरु दूसरा अंग, गर्भाशय, अंडोंके जन्मार्थ कल्पना करते हैं (रहने देते हैं) सो कहना बने नहीं। तैसे कार्य से अभिन्न कारण नित्य अरु ध्रुव है, ऐसी व्यवस्था तेरे मतबिषे बने नहीं, अरु अद्वैतवादियों के माया विवाद विषे कार्य कारण के अभेद होनेसे भी कार्य केही कारणमात्रपने के अंगीकार से यह दोष है नहीं यह सिद्धहुआ १२।१३९॥

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च । हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते १४।१४१॥

१३।१४० हे सौम्य, "अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै" अजन्मा से जन्मता है तिसबिषे दृष्टान्त है नहीं, अर्थात् जिस प्रधानवादीके मतबिषे अनुत्पन्न वस्तुसे कार्य उत्पन्न होताहै, तिस के मतबिषे दृष्टान्त है नहीं। अरु दृष्टान्त के अभाव से केवल अर्थ करकेही अनुपन्न वस्तुसे कुछ भी उत्पन्न होता नहीं, इसप्रकार सिद्ध होताहै। अरु "जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते" (उत्पन्नहुयेसे उत्पन्नहुयेका। अंगीकार है तब। सो व्यवस्थाको प्राप्तहोता नहीं, अर्थात् जब पुनः उत्पन्नहुये कारणसे उत्पन्नहुई वस्तुका अंगीकारहै, तब सो अन्य उत्पन्नहुयेसे उत्पन्नहोता है, अरु सोभी अन्य उत्पन्नहुयेसेही उत्पन्न होताहै, इसप्रकार होनेसे व्यवस्था प्राप्तनहोगी, किन्तु अनवस्था दोषही प्राप्तहोवेगा। इत्यर्थ १३।१४०॥

१४।१४१॥ हे सौम्य [द्वैतवादियोंकरके परस्परके पक्षके निषेधद्वारा सिद्धकिया जो वस्तुका जन्यपना, सो अद्वैतवादीने अनुमोदन किया। अब श्रुतिप्रतिपादित अरु विद्वान्के अनुभव का अनुसारी द्वैतका निषेध भी इस अद्वैतवादीनें अनुमोदन कियाहै। इसप्रकार कहते हैं] "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाऽभूत्तदिति" (जहां तो जिस पुरुषको सर्व आत्माही होताहुआ, इसप्रकार श्रुतिनें परमार्थसे द्वैतका अभावकहाहै। तिसको आश्रयकरके कारणरूप द्वैतका दुर्निरूपणपना कहतेहैं) हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च" (जिसहेतुका आदि फलहै अरु फलकाहेतु आदि है, अर्थात् जिन वादियोंके मतबिषे धर्म्मादि रूप हेतुका आदि (कारण) देहादि संघातरूप फल है, अरु देहादि संघातरूप फलका धर्म्मादिरूप हेतु आदि (कारण) है। इसप्रकार हेतु अरु फलके परस्परके कार्य्य अरु कारणभावकरके

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च । तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा १५।१४२॥

आदिवान् पनेके कहनेवाले करके "हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते" । "तिनकरके हेतु अरु फलका अनादिपना कैसे वर्णनकिया है"; अर्थात् उक्तप्रकारके हेतु अरु फलके परस्परके कार्य कारणभाव करके । अर्थात् फलका कारण हेतु, अरु हेतुका कारण फल इसप्रकारके कार्य कारण भावकरके । आदिवान् पनेके कहनेवाले जे वादी तिन वादियोंकरके हेतु अरु फलका निषेध (विरुद्ध) अनादिपना कैसे वर्णन कियाहै । जिसकरके नित्य कूटस्थ निर्विकार आत्माकी हेतु अरु फलरूपता संभवे नहीं, एतदर्थ हेतु अरु फलका आत्माके परिणामहोनेसे आदिमान्पना अरु उपादानरूपसेअनादिपनाभी बनेनहीं १४।१४१॥

१५।१४२ ॥ हे सौम्य, [हेतु (अदृष्ट) अरु फल (शरीरादिक) इनके परस्परके आदिमान्ताको कहनेवाले वादीने तिस हेतु अरु फलरूप संसारका अनादिपना निषेधकिया। इसप्रकार प्रतिपादन किया । अब तिनका कार्यकारणभाव भी संभवे नहीं, ऐसे कहतेहैं] । प्र० । तिनकरके विरुद्ध अंगीकार कैसे कियाहै, तहां।उ०।कहते हैं "।हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च" । "जिनके हेतु का आदि फल है अरु फलका आदि हेतु है"; अर्थात् जिनके मतविषे धर्म्मादिरूप हेतुका आदि (कारण) फल (देहादिसंघात) है अरु फलका आदि, हेतु है, तिन हेतुसे जन्यही फलसे हेतुके जन्मको अंगीकार करनेवाले वादियों के मतमें इसप्रकार का विरोध कथन किया होताहै कि "तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा" । "जैसे पुत्रसे पिताका जन्म तैसे जन्म होवेगा"; अर्थात् पुत्रसे पिता का जन्म होना असंभव अरु कहना विरुद्ध है तैसे फलसे हेतुका जन्म कहना विरुद्ध होवेगा । यह तात्पर्य है १५ । १४२ ॥

सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया। युगपत्स-म्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत् १६ । १४३ ॥

फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति। अप्रसि-द्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति १७ । १४४ ॥

१६ । १४३॥ हे सौम्य, [प्रतीति से हेतु अरु फलकी उत्पत्ति को स्वीकार करने योग्य होनेसे तिसका निषेध करना युक्तनहीं, यह शंकाकरके कहतेहैं]" संभवेहेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया" (हेतु अरु फलकी उत्पत्तिबिषे क्रम तुम्हकरके अन्वेषण करने को योग्य है) अर्थात्, हे वादी, जब उक्त प्रकारका विरोध अंगीकार करनेकेयोग्य नहीं, ऐसे तू मानताहै। तब हेतु अरु फलकीउत्पत्ति बिषेहेतु पूर्वहै फल पश्चात् है इसप्रकारका जो क्रमहै सो तुम्हकरके अन्वेषण करने योग्य है । अरु । " युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत्" । (जाते एककालबिषे संभव के हुये शृंगोंवत् असम्बन्धहोवेगा) अर्थात् जिसकरके एककालबिषे उत्पत्तिके होनेसे शृंगोंवत् असम्बन्ध होवेगा। जैसे एक काल बिषे उत्पन्न होने-वाले वाम दक्षिणरूप जो गौके दोनों शृंग तिनका परस्पर कार्य कारण भावकरके असम्बन्ध है, तैसेही एककालबिषे उत्पन्नहुये हेतु अरु फलका कार्य कारण भावसे असम्बन्ध होवेगा, एतदर्थ तिनका क्रम तुम्हकरके अन्वेषण करनेके योग्य है १६ । १४३ ॥

१७ । १४४ ॥ हे सौम्य, [अब । "पुण्यो वै पुण्येन कर्म्मणा भवति" । (पुण्य कर्म्म करके निश्चय पुण्यरूप होताहै) इत्यादिक श्रुति प्रमाणसे धर्मादिकों बिषे हेतु अरु फल भावकी शंका करके श्रुतिको अघटित अर्थ बिषे प्रमाणहोनेके असंभवसे श्रुतिका पूर्वापर भाव (प्रथम पश्चात् पना) अवश्य कहने के योग्य है, इसप्रकार कहते हैं]। प्र०। तब तिनका (हेतु अरु फलका) सम्बन्ध कैसेहै ,। उ०। कहते हैं, "फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति " (फलसे उत्पन्न होनेवाला हुआ हेतु

यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः । कत-
रत्पूर्व्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया १८ । १४५ ॥
अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः । एवं हि
सर्व्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता १९ । १४६ ॥

सिद्ध होगा नहीं ? अर्थात् जन्य अरु स्वरूपसे अप्रतीत रूपवाले फलसे उत्पन्न होनेवालाहुआ हेतु शशशृंग आदिक असत् वस्तुवत् सिद्ध न होवेगा । अर्थात् जन्मको न पावेगा । अरु "अप्रसिद्धः कथंहेतुः फलमुत्पादयिष्यति" ? अप्रसिद्धहुआ हेतु कैसे फलको उत्पन्न करेगा ? अर्थात् शशशृंगादिकोंवत् अप्रतीतिरूपवाला अप्रसिद्धहुआ हेतु तेरेमतविषे कैसे फलको उत्पन्न करेगा । क्योंकि परस्परकी अपेक्षाकरके सिद्धिवाले शशशृंगकेतुल्य वस्तुओंका कार्य कारणभाव से कहीं भी सम्बन्ध देखा नहीं ॥ यह अभिप्रायहै १७ । १४४ ॥

१८ । १४५ ॥ हेसौम्य, "यदिहेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः" जब फलसे हेतुकीसिद्धि अरु हेतुसे फलकीसिद्धिहै, अर्थात् असम्बन्धपने रूप दोषसे हेतु अरु फलके परस्पर कार्य कारण भावके निषेधकियेहुये भी जब तुमकरके फलसे हेतुकी सिद्धि अरु हेतुसे फलकीसिद्धि अंगीकार कियाहीहै, तब "कतरत्पूर्व्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया" ? पूर्वकी सिद्धिकी, अपेक्षासे जिसकी सिद्धिहोती है ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है ? अर्थात् उक्त प्रकार जब हेतु अरु फलकी परस्परसे सिद्धि अंगीकार कियाहै, तब हेतु अरु फलके मध्य पूर्वकी सिद्धिकी अपेक्षासे जिस पश्चात् होनहारकी सिद्धि होती है, ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है सो आप कहिये १८ । १४५ ॥

१९ । १४६ ॥ हेसौम्य, "अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवापुनः" अशक्ति अपरिज्ञान है, अथवा क्रम कोप होवेगा ? अर्थात् जब यह क्रम जाननेको अशक्यहै, इसप्रकार मानता है, तब सो यह

बीजांकुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः। नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते २०। १४७॥

अशक्ति। अर्थात् कहनेका असामर्थ्य। अज्ञानहै, अर्थात् तत्त्वका अविवेकरूप मूढताहै। अथवा पुनः जो यह तूने, हेतुसे फलकी सिद्धि होतीहै अरु फलसे हेतुकी सिद्धि होती है, इसप्रकार अन्योन्यके पश्चात् होने रूप क्रमकहा। अर्थात् हेतुसे पश्चात् फल होताहै अरु फलसे पश्चात् हेतुहोताहै ऐसाक्रम तूनेकहा। तिसका कोप। अर्थात् अन्यथा भावरूप विपर्यय। होवेगा। यह अभिप्राय है। अरु "। एवं हि सर्व्वथाबुद्धैरजातिः परिदीपिता।" "ऐसे बुद्धिमानोंने सर्वप्रकारसेही अनुत्पत्तिही प्रकाशितकिया है" अर्थात्, इसप्रकार [परस्पर के पक्षके निषेधरूप द्वारसे सत् अरु असत् वस्तुके जन्मके निषेध कियेहुये क्रम अरु अक्रम करके उत्पत्तिके असंभवसे वादियों करके देखाईहुई अनुत्पत्तिही हम को इष्ट होती है, इसप्रकार अजातवादको समाप्त करतेहैं] हेतु फलके कार्य्यकारण भावके असंभवसे परस्परकी अपेक्षासे दोष के कहनेवाले वादीरूप पंडितोंने सर्वप्रकारसेही सर्व वस्तुकी अनुत्पत्तिही प्रकाशित कियाहै १९। १४६॥

२०।१४७॥ हेसौम्य, अब पूर्वपक्षी शंकाकरताहै। शंका। हे सिद्धान्ती हेतु अरु फलका कार्य्य कारण भावहै, इसप्रकार हम ने कहाहै। अरु तैंने जैसे पुत्रसे पिताका जन्म होता है, अरु गौके शृंगोंवत् असम्बन्ध होवेगा, इत्यादिरूप कहनेको इच्छित अर्थसे रहित शब्दमात्रको आश्रयकरके, यहछल कहा है। अरु जिसकरके हमोंने असिद्ध हेतुसे फलकी सिद्धि, वा असिद्धफल से हेतुकी सिद्धि, अंगीकार कियानहीं, किन्तु बीजांकुरन्यायवत् हेतु अरु फलका कार्यकारण भाव अंगीकार कियाहै, तहां हमारे मतविषे कोईभी दोषनहीं। अब समाधान। कहतेहैं "। बीजांकुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः।" बीज अंकुर नामवाला

जो दृष्टान्तहै सो सदा साध्यकरके तुल्यहै, अर्थात् जो बीजांकुर न्यायवाला दृष्टान्तहै सोमुझ मायावादीके मतविषे साध्यकरके सदा तुल्यहीहै, क्योंकि वास्तवकरके कार्य कारण भावकीप्रतीति कहींभीनहीं ताते। यह तात्पर्यहै। शंका। ननु,बीज अरुअंकुर का जो कार्यकारण भावहै सो प्रत्यक्ष अनादिहै, इसप्रकार जब वादीने कहा तब सिद्धान्ती समाधान कहताहै, हेवादी बीजअरु अंकुर व्यक्तिका कार्य कारणभाव तुझकरके अंगीकार किया है, किंवा बीज अरु अंकुरके संतानका कार्यकारणभाव अंगीकार कियाहै,तहां प्रथमपक्ष। जो बीज अरु अंकुरकी व्यक्तिका कार्यकारणभाव सो। बनेनहीं, क्योंकि पूर्व पूर्वके पिछलेवत् आदिमानपनेका अंगीकारहै ताते। जैसे,अभी उत्पन्नहुआ बीजआदिकवाला पिछला अंकुर औ पिछला बीज, अन्य अंकुर अरु बीज से पूर्वहै, एतदर्थ क्रमकरके उत्पन्नहोनेसे आदिवाला है। इस रीति से एकएक सर्व बीज अरु अंकुरके समूहको आदिवाला होनेसे किसीकेभी अनादिपनेका। अर्थात् परस्पर कारणपनेका। संभव नहीं,। इसप्रकार हेतु अरु फलोंकेभी अनादिपनेका अरु परस्पर कारणपनेका संभव नहीं। अरु जो दूसरा पक्ष कहे कि बीजअरु अंकुरकी सन्तति (सन्तान)का अनादिपनाहै, तोसोभी बनेनहीं, क्योंकि तिनकी सन्ततिकी एकरूपताका असंभव है ताते। अरु जिसकरके उनबीज अरु अंकुरके अनादिपनेकेवादियोंकरके, बीज अरु अंकुरसे भिन्न बीज अरु अंकुरका सन्तान नामक एकव्यक्ति अंगीकार किया नहीं। अतएव हेतु अरु फल का अनादिपना उन वादियोंकरके कैसे वर्णनकियाहै, सोकहो। तैसे हेतुअरु फलके कार्यकारण भावकी कहीं भी प्रतीतिका संभव नहोनेसे,अन्यभी जो हमोंने कहाहै सो छलरूपहैनहीं। यह अभिप्रायहै। अरु लोकमें प्रमाणविषे कुशल पुरुषोंकरके "। नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते "। (साध्यसे तुल्यहेतुसाध्य की सिद्धी विषे जोडते नहीं, अर्थात् साध्यवस्तुसे तुल्यहेतु कहिये

पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम्। जायमाना-द्धि वै धर्म्मात्कथं पूर्वं न गृह्यते २१।१४८॥

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते। स-दसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते २२।१४९॥

दृष्टान्त साध्यकी सिद्धिबिषे सिद्धिके निमित्त योजना करतेनहीं यहां हेतुशब्दके मुख्यार्थको त्यागके दृष्टान्तरूप गौणअर्थ कहने को इच्छितहै, क्योंकि सूचकहै ताते। अरु जिसकरके प्रसंगबिषे प्राप्तहुआ हेतुहैनहीं दृष्टान्तहै,यातेसोई ग्रहणकियाहै २०।१४७॥

२१।१४८॥ हे सौम्य,। प्रश्न। पण्डितोंने सर्व वस्तुकी अनु-त्पत्ति कैसे प्रकाशित कियाहै,। उत्तर। "पूर्वापरापरिज्ञानमजा-तेः परिदीपकम्" (पूर्वापर (कार्य्य कारण) का अपरिज्ञान अनुपत्तिका प्रकाशक है ; अर्थात् जो यह हेतु अरु फलके कार्य अरु कारणभावका अपरिज्ञानहै सोई यह अनुत्पत्तिका प्रकाशक कहिये अवबोधकहै। अरु "जायमानाद्धि वै धर्म्मात्कथं पूर्वं न गृह्यते" (उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध धर्मसे पूर्व कैसे ग्रहणकरते नहीं ; अर्थात् जब उत्पन्नहोनेवाला धर्म्म कहिये कार्य्य ग्रहण करतेहैं, तब उत्पन्नहोनेवाले प्रसिद्ध कार्य्यरूप धर्मसे पूर्व (का-रण) कैसे ग्रहणकरते नहीं। अरु जिसकरके उत्पन्न होनेवाले कार्यके ग्रहणकरनेवाले पुरुषोंकरके तिसकाजनक अवश्यग्रहण करनेयोग्यहै, क्योंकि जन्यजनकका संबन्ध अभिन्नहै ताते,अत-एव सो कार्य कारण का अज्ञान अनुत्पत्ति का प्रकाशक है इत्यर्थः २१।१४८॥

२२।१४९॥ हेसौम्य, इस कथनकरनेके हेतुसे कुछभी वस्तु जन्मता नहीं, इसप्रकार सिद्धहोताहै। अरु "स्वतो वा परतो वाऽ-पि न किञ्चिद्वस्तु जायते।सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जा-यते" (स्वतः वा परतःवाउभयसे कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं याते सत्, असत्, वा सदसत्, कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं

अर्थात् जिसकरके आपसे वा परसे वा दोनोंसेभी कुछभी वस्तु उपजता नहीं, एतदर्थ सत्, असत्, वा सदसत् दोनों रूपभी कुछभीवस्तु उत्पन्नहोता नहीं । [अर्थात् जब स्वतः वा परतः कुछ किसीप्रकारभी उत्पन्नहोतानहीं, तब सत्रूपसे वा असत्रूपसे वा सदसत् उभयरूपसे कुछभी उपजता नहीं॥ इसका यहभावार्थहै किजो उत्पन्नहोनेवाला वस्तुआपसे वा पर (दूसरे) से वा स्व, पर दोनोंसे सत् वा असत् वा सदसत् उभयरूप उपजताहै, तिसका किसीभी प्रकारसे जन्म संभवे नहीं । जैसे घट आपही तिसहीघटसे उपजता नहीं, तैसेप्रथम आपही अनुत्पन्न होनेसे अपने स्वरूपसे उपजता नहीं जैसे घटसेपट अरु पटसे अन्यपट उपजता नहीं, तैसे अन्यसे अन्यभी उपजता नहीं । अरु जैसे घट अरुपट इन दोनों से घट वा पट उपजता नहीं, तैसे दोनोंसेभी कोईवस्तु उपजतानहीं । शंका । ननु, मृत्तिकासे घट उपजताहै अरु पितासे पुत्र उत्पन्नहोताहै । तब कैसेकहते हो जो उक्तप्रकार कुछभी उपजता नहीं । समाधान । तहांकहतेहैं 'मूढ पुरुषोंको' उपजताहै, ऐसाज्ञान अरु शब्दहै, यह तेरा कथन सत्यहै, तथापि सोईशब्द अरु ज्ञान विवेकी पुरुषों करके वे शब्द अरु ज्ञान क्या सत्यहै वा असत्य है, इसप्रकार यावत् परीक्षाकरते हैं तावत् वो मिथ्या है [क्योंकि तद्विषयक निश्चय नहीं] । इसप्रकार परीक्षाकियेहुये शब्द अरु ज्ञानका बिषय घट पुत्रादिकरूप जोवस्तुहै सो शब्दमात्रहीहै " वाचारंभणंविकारो नामधेयम् " (वाणी से उच्चारणकिया विकार कहनेमात्रही है) इसश्रुतिके प्रमाणसे। अतएव शब्द अरु ज्ञानको [अर्थात् शब्द अरु तदाश्रितज्ञानको] । असत्यविषयवान्पना माननेके योग्य है अरुजबसत्है तब उपजता नहीं, क्योंकि सत्वस्तु उत्पत्तिमान् होतीनहीं ताते, । मृतपिंडादिवत् । अरु जबअसत्है तोभीजन्मतानहीं (विद्यमान नहीं) क्योंकि शशशृंगवत् असत्है ताते । अरु जबसदसद्रूपहै तोभीजन्मतानहीं, क्योंकि तमप्रकाशवत् परस्पर

हेतुर्न जायतेऽनादेः फलञ्चापिस्वभावतः। आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते २३।१५०॥

विरुद्धरूपके एकवस्तुपनेका असंभव है ताते। एतदर्थ कुछभी वस्तु जन्मता नहीं, इतिसिद्धम्॥ पुनः जिन बौद्धोंके मतविषे उत्पत्तिरूप क्रियाही उपजती है, इसप्रकार क्रियाकारक अरुफल की एकता अरु वस्तुका क्षणिकपना अंगीकार किया है, एतदर्थ वेवादी दूरसेही युक्तिकरके रहित हैं, क्योंकि 'यह ऐसे है, इस निश्चयकी स्थितिका अन्यक्षणविषे अभावहै ताते, अरु अनुभव किये वस्तुकी स्मृतिका अभावहै ताते २२।१४९॥

२३।१५०॥ हे सौम्य, किंच, हेतु अरु फलके अनादिपनेको अंगीकार करने वाले तुम्ह वादी करके बलात्कारसे हेतु अरु फल की अनुत्पत्ति ही अंगीकार की होगी। प्रश्न। कैसे अंगीकार की होगी। उत्तर। तहां कहते हैं "हेतुर्न जायतेऽनादेः फलं चापि स्वभावतः। आदिर्नविद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते।" आदिरहित से हेतु जन्मता नहीं, अरु आदि रहित हेतुसे फलभी स्वभाव से (उपजता नहीं)। अरु जिसकी आदि नहीं तिसकी आदि विद्यमान नहीं; अर्थात् आदि रहित फलसे। (अर्थात् जो फल 'देहादिक' आदि से है नहीं तिन से)। तिनसे हेतु (अदृष्ट) जन्मता नहीं, अरु आदि रहित हेतुसे फलभी स्वभाव से (अपने आपसे) जन्मता नहीं। अरु जिस करके अनुत्पन्न हुये अनादि फल से (अर्थात् जो उत्पन्नही नहीं हुआ ऐसे फलसे) हेतुका जन्म, अरु आदि रहित अजन्मा हेतुसे फलभी स्वभावसेही (अर्थात् निमित्त बिनाही) उपजता है इस प्रकार तुम्ह करके अंगीकार न किया होगा। ताते हेतु अरु फलके अनादिपने के अंगीकार करनेवाले तुम्ह करके हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही अंगीकार किया है। एतदर्थ लोक विषे जिसका आदि (कारण) है नहीं तिसकी आदि (उत्पत्ति) है नहीं। अर्थात् कारण वाले वस्तु

प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथाद्वयनाशतः । सङ्क्लेश-
स्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽसिता मता २४ । १५१ ॥

की ही उत्पत्ति अंगीकार करते हैं, कारणरहित की नहीं । एत-दर्थ अनादिरूप इन हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही सिद्ध हुई । इति सिद्धम् २३ । १५० ॥

२४।१५१॥ हे सौम्य, [वस्तुके वास्तव करके जन्मके असंभवसे एक अजन्मा विज्ञान घनमात्र तत्त्व है इस प्रकार कहा अब बाह्य अर्थके वाद को उठावते हैं] उक्तार्थ को ही दृढ करने की इच्छा से पुनः आक्षेप करते हैं "प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथा द्वयनाशतः" । "प्रज्ञप्तिका निमित्त करके सहितपना है अन्यथा द्वैतके नाशसे तिसका नाश प्राप्तहोवेगा" अर्थात् शब्दादिकों की प्रतीति रूप जो ज्ञान सो प्रज्ञप्ति है, तिस प्रज्ञप्तिका विषय रूप निमित्त (कारण) करके सहितपना (आपसे पृथक् विषयवान् पना) है, इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं । ताते शब्दादिकोंकी प्रतीति रूप प्रज्ञप्ति विषय रहित होवे नहीं, तिस को विषय रूप निमित्त करके सहितपनाहै ताते । अतएव इस प्रज्ञप्तिको आपते भिन्न वस्तुरूप विषयवान्पना युक्तहै । अन्यथा (अर्थात् तिसको विषय रहितपने के हुये) शब्द स्पर्श नील पीत रक्तादिकों के ज्ञानों की विषयता रूप द्वैतका अभावहै नहीं, क्योंकि सो प्रत्यक्ष है ताते । एतदर्थ ज्ञानों की विचित्रतारूप द्वैतके दर्शन से अन्य वादियों का शास्त्र परतन्त्र है, इस प्रकार अन्यों का जो शास्त्र तिसके परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञानसे। भिन्न वाह्यार्थ की अस्तितता (विद्यमानता) माननी (हमको वांछित) है अरु प्रकाशवान् स्वरूप प्रज्ञप्तिका नील पीतादि बाह्य विषयोंकी विचित्रता विना स्वाभाविक भेदसेही विचित्रपना संभवे नहीं, जैसे स्फटिक का नीलादिक उपाधिरूप आश्रयों के विना विचित्रपना घटे नहीं तैसे,यह अभिप्रायहै। इस[बाह्यार्थविना अग्निकरके दाहआदिकों

प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमिष्यतेयुक्तिदर्शनात् । निमित्त स्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात् २५ । १५२ ॥

केकिये दुःखकी प्रतीतिका असंभवहै ताते, बाह्यार्थहै, इसप्रकार कहतेहैं।] अन्य हेतुसेभी परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञानसे पृथक् बाह्यार्थकी अस्तिता (सद्भाव)है। अरु "संक्लेशस्योपलब्धेश्चपरतन्त्राऽस्तितामता" "क्लेशकी उपलब्धिसे परतन्त्रकी अस्तिता मानी है"; अर्थात् क्लेश कहिये दुःख तिसकी प्रतीतिसे परतन्त्रकी अस्तिता मानी है। जिसकरके अग्नि आदिक निमित्तका किया दुःख प्रतीत होताहै। अरु जब दाहाऽऽदिकों का निमित्त अग्नि आदिक बाह्यवस्तु, ज्ञानसे भिन्न नहोय तो दाहादिकरूप दुःख प्रतीत न होना चाहिये, परन्तु सो प्रतीत होताहै, एतदर्थ तिस प्रतीति करके बाह्यार्थ है, इसप्रकार हम मानते हैं। अरु जिस करके विज्ञानमात्रविषे क्लेशयुक्त नहीं, अरु अन्य सृक् चन्दनादिकोंके ठिकाने दुःखका अदर्शनहै ताते। अर्थात् अग्निदाहादिकोंसे क्लेशकी प्रतीतिहै ताते, अरु सृक् चन्दनादिकोंके ठिकाने दुःख का अदर्शनहै ताते। एतदर्थ ज्ञानसे भिन्न बाह्यार्थके अभावहुये दुःखकी प्रतीतिका अभाव है, ताते। ज्ञानसे भिन्न बाह्यार्थ संभव है ताते। इत्यभिप्रायः २४ । १५१ ॥

२५।१५२॥हेसौम्य, इसप्रकार [दोनों अर्थापत्ति प्रमाणोंकर केबाह्यार्थके वादके प्राप्तहुये विज्ञानवादको प्रकटकरतेहैं।] वादीने पूर्वश्लोक बिषे आक्षेपकिया। तिसकी निवृत्त्यर्थ कहते हैं। "प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमिष्यतेयुक्तिदर्शनात्" "प्रज्ञप्तिका निमित्तकरके साहितपना युक्तिके देखने से तुम्हकरके अंगीकारहै, सो सत्यहै"; अर्थात्, हेवादी उक्तप्रकार द्वैत अरु दुःखकी प्रतीतिरूप युक्तिके देखनेसे प्रज्ञप्तिका बिषयरूप निमित्तकरके साहितपना तुम्हकरके अंगीकार किया है यह सत्यहै, परन्तु प्रथम बाह्यार्थरूप वस्तुकी प्रज्ञप्तिकी बिषयताके अंगीकारबिषे पूर्वोक्त युक्तिका देखना कारण

है, इस अर्थविषे तैंने स्थितरहना ॥ प्र० ॥ मैं बिचार दृष्टिकोही आश्रयकरके वर्त्तताहों तिसकरके मेरेको क्यादूषणहै सो कहो। तहां सिद्धान्ती (उत्तर) कहता है कि, दूषण कहते हैं "(निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात्" (निमित्तका अनिमित्तपना अंगीकार करतेहैं परमार्थके देखनेसे) अर्थात् तेरेकरके प्रज्ञप्तिके आश्रय मानेहुये जे घटादिरूप निमित्त तिनका अनिमित्तपना। (अर्थात् विचित्रता का अकारण होनेरूप अनाश्रयपना) हमोंकरके अंगीकार कियाहै, क्योंकि परमार्थको देखाहै ताते। अरु घटजो है सो परमार्थरूप मृत्तिकाके स्वरूपसे देखाहुआ ' जैसे अश्वसे भिन्न महिषहै तैसे, (मृत्तिकासे घट) भिन्न नहीं। वा जैसे तन्तुसे भिन्न पट अरु अंशु (अतिसूक्ष्म तन्तु वा तूल) से पृथक् तन्तु नहीं, इस प्रकार उत्तरोत्तर परमार्थरूप वस्तुके देखेहुये शब्द अरु ज्ञानसे आरंभकरके (अर्थात् पद पदार्थ अरु पद पदार्थ का ज्ञान इनसे आरंभकरके" सर्वके निरोधहुये प्रज्ञप्तिका निमित्त हमदेखतेनहीं, यह अर्थहै। अथवा रज्जुविषे सर्पादिकोंवत् परमार्थके देखने से बाह्यार्थका अनिमित्तपना अंगीकार करते हैं, यह अर्थ है। अरु भ्रान्ति ज्ञानका बिषयहोनेसे निमित्तका अनिमित्तपना होता है। अरु जिसकरके सुषुप्तिमान्, समाधिमान, अरु मुक्त, इनपुरुषों को भ्रान्तिदर्शनके अभावहुये, आपसे भिन्न पदार्थ प्रतीतहोते नहीं। अरु जिसकरके अनुत्पत्तिसे (अर्थात् उत्पत्तिके अभावहुये) भी उत्तम पुरुष करके ज्ञातवस्तु विद्वानों करके तिसप्रकारका जानतेनहीं [देहाभिमानीको जो वाह्य अर्थकी प्रतीतिका निश्चयहै (कि यह जो वाह्य प्रतीतिमान् पदार्थहै सो सत्यहै) तिसकरके अद्वैतदर्शीकोभी तिसकी प्रतीति प्रतिबन्धरहित होवेगी, (यह शंका करके कहते हैं] एतदर्थ भ्रान्तिके अभावहुये बाह्यार्थका अभाव बनताहै। [बाह्यार्थके प्रतिपादनार्थ कथनकिये जे उभय अर्थापत्ति प्रमाण सो कैसे निषेधकरनेके योग्यहै, इस शंकाकेहुये कहते हैं, इस कथनकरके द्वैतकादर्शन अरु दुःखकी प्रतीतिरूप

चित्तं न संस्पृशत्यर्थं नार्थाभासंतथैवच। अभूतो हि यतश्चार्थो नार्थाभासस्ततः पृथक् २६। १५३॥

प्रज्ञप्तिके निमित्त सहितपनेबिषे कथनाकिये कारणका निषेधकिया जानना २५। १५२॥

२६।१५३॥ हेसौम्य, जिसकरके [ज्ञानको आश्रय कहिये बिषय वा ज्ञेय, तिसकरके सहितपनेकी प्रसिद्धिकेहुये। अर्थात् ज्ञान जोहै सो ज्ञेयकरके सहितही है, इस प्रसिद्धिकेहुये;। वास्तवदृष्टि करके देखेहुये ज्ञेयके अभावसे ज्ञानकाभी अभाव होवेगा,। यह शंकाकरके कहते हैं] बाह्यनिमित्त नहीं है एतदर्थ "चित्तंनसंस्पृशत्यर्थंनार्थाभासंतथैवच"। "चित्त अर्थको स्पर्श करता नहीं, पुनः तैसेही अर्थके आभासको;" अर्थात् जब बाह्य निमित्त है नहीं, ताते चित्त जो है चैतन्य सो वाह्यके आश्रय अरु विषय रूप अर्थको स्पर्श करता नहीं [चैतन्य को पदार्थ के अर्थ स्पर्श करने के स्वभाव के अभाव हुये भी तिस पदार्थ के आभासार्थ स्पर्श करने का स्वभाव होवेगा,। यह शंका करके तब कहते हैं] अरु "। अभूतोहियतश्चार्थोनार्थाभासस्ततःपृथक्"। "जाते अर्थ मिथ्या है ताते अर्थाभास भी तिससे भिन्न नहीं;" अर्थात् चित्त कहिये जो चैतन्य है सो वाह्यके अर्थ अरु तिसके आभास को स्पर्श करता नहीं, क्योंकि। निराकार। चैतन्य है ताते 'जैसे स्वप्न के पदार्थों को चैतन्य स्पर्श करता नहीं तैसे,। अरु जिस (उक्त हेतु) करके [अब श्लोकके तृतीय पादका व्याख्यान करते हैं। विवाद का विषय जो अर्थ सो सत्रूप होता नहीं, क्योंकि अर्थ है ताते, प्रसिद्ध अर्थोवत्। इस अनुमान से ज्ञानका आश्रय है नहीं। इत्यर्थः] जाग्रत् बिषे भी वाह्य शब्दादिरूप अर्थ स्वप्न के अर्थवत् मिथ्याही हैं। एतदर्थ [यहां यह अर्थहै कि, जब घटादिक वाह्यार्थ को ग्रहण नहीं करते, तब असत्रूप तिस घटादिक बिषे ही तिन घटादिकों की प्रतीति के होनेसे ज्ञानका विपर्यास

निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसुत्रिषु । अनिमित्तो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति २७। १५४ ॥

कहिये भ्रम होवेगा, क्योंकि तिसकरके रहित विषे तिसकी बुद्धिरूप विपर्य्यास तिस प्रकार का है ताते, अरु विपर्य्यास के अंगीकार किये कहीं भी अविपर्यास कहिये अभ्रान्ति कहने के योग्यहै, क्योंकि अन्यथा ख्यातिवादियों करके भ्रान्तिकी अभ्रान्ति पूर्वक तिसका अंगीकार है ताते] अर्थाभास भी उक्त चित्तसे भिन्न है नहीं, किन्तु चित्त कहिये 'ब्रह्म' चैतन्य, ही घटादिरूप अर्थवत् भासता है । जैसे स्वप्नबिषे भासता है तैसे २६ । १५३ ॥

२७।१५४हेसौम्य,[ज्ञानको विषयरूप आश्रय करके सहितताके अभाव हुये तिसके तिसप्रकार होनेकी प्रतीति भ्रान्ति होवेगी, अरु भ्रान्ति जो है सो अभ्रान्तिरूप प्रतियोगी वालीहै,इसप्रकार अन्यथा ख्यातिके मतकी शंका लेके कहते हैं] । शंका । ननु,तब चैतन्यको असत् घटादिकों बिषे घटादिक की आभासतारूप विपर्यय (भ्रम) होवेगा, । अरु तैसे हुये कहिंक (किसी भी ठिकाने) अविपर्यक कहने को योग्यहै । अर्थात् जब चैतन्य को असत् घटादिकों विषे घटादिकों की आभासतारूप भ्रम होवेगा तब तिस भ्रमका प्रतियोगी जो अभ्रम सो भी किसी न किसी बिषे कहने को योग्यही है । तहां उत्तर कहते हैं, [भ्रान्ति तो अन्यप्रकारसे भी होवेगी, इसप्रकार कहते हैं] " निमित्तंनसदाचित्तंसंस्पृशत्यध्वसुत्रिषु " । " निमित्त तीनमार्गों विषे भी सदा चित्त (चैतन्य) को स्पर्श करता नहीं " अर्थात् निमित्त जो है विषय सो भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमानरूप इन तीन मार्गों (कालों) बिषे भी चिताख्य चैतन्य को स्पर्श करता नहीं, जब कहीं भी स्पर्श करे तब सो परमार्थ से अविपर्यय है । एतदर्थ तिस चित्तके स्पर्शकी आपेक्षा से असत् घटविषे घटका आभासरूप विपर्य्यास होवे है, परन्तु सो चित्त (चैतन्य)का अर्थ (विषय) से कदाचित्भी स्पर्शहै

तस्मान्नजायतेचित्तंचित्तदृश्यंनजायते। तस्यपश्य-
न्तियेजातिंखेवैपश्यन्तितेपदम् २८। १५५ ॥

नहीं " अनिमित्तो विपर्य्यासःकथंतस्यभविष्यति " निमित्तरहित विपर्य्यास तिसको कैसे होवेगा; अर्थात् जब चैतन्यका अर्थसे स्पर्श किसीप्रकारभी नहीं, ताते निमित्तरहित तिस चित्तकोविपर्य्यास कहिये भ्रान्ति कैसे होवेगी, किन्तु किसी प्रकारसे भी विपर्य्यास हैनहीं। इत्यभिप्रायः। अरु यहही चित्त (ब्रह्मचैतन्य) का स्वभाव कहिये अविद्याहै कि जो घटादिरूप निमित्तके अविद्यमानहुये तद्वत् (विद्यमानहुयेवत्) भासना एतदर्थ अभ्रान्तिके अभावसे भ्रान्तिकेभी असंभवहुये। अर्थात् जो जिसका सापेक्ष कहै सो तिसके अभावसे अभाव होताहै। ज्ञानकी असत् घटादिकों बिषे घटादिकोंकी आभासरूपता निर्वाह करतेहैं २७।१५४॥

२८। १५५॥ हे सौम्य [इसप्रकार बाह्यार्थ वादीके पक्षको विज्ञानवादी के मतद्वारा निषेधकरके अब विज्ञानवादका भी निषेध करतेहैं] "प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वं " "प्रज्ञप्तिका निमित्त सहितपनाहै " इससे आदिलेके यहां पर्यन्त विज्ञानवादी जो बौद्ध तिसका बाह्यार्थके वादीके पक्षके निषेध परायण वचनहैं, सो आचार्यने अनुमोदनकिया। अब तिसही वचनको हेतुकरके तिस विज्ञानवादीके पक्षके निषेधार्थ यह कहतेहैं "तस्मान्न जायतेचित्तं चित्तदृश्यं न जायते " "ताते चित्त जन्मता नहीं जैसे चित्तका दृश्य जन्मता नहीं " अर्थात्, जिसकरके विज्ञानवादीने असत्ही जो घटादिक तिसबिषे चित्त (चैतन्य) को घटादिकोंकी आभासरूपता अंगीकार कियाहै, सो हमोंने भी परमार्थ दृष्टिसे अनुमोदनकिया। अतएव तिस चित्तको भी जन्मके अविद्यमान हुये ही जानने में आवनहार वस्तुकी आभासरूपता होनेको योग्यहै एतदर्थ चित्त कहिये चैतन्य जन्मता नहीं, जैसे चित्तका दृश्य जन्मता नहीं तैसे। एतदर्थ तिसही चित्तकरके देखनेको अशक्य

अजातंजायतेयस्मादजातिःप्रकृतिस्ततः। प्रकृतेर-न्यथाभावोनकथञ्चिद्भविष्यति २९। १५६ ॥

चित्तस्वरूपके धर्म्म, तिसकारणसे (क्षणिकता दुःखरूपता अरु अनात्मरूपता, इत्यादिकोंको देखतेहुये "तस्य पश्यन्ति ये जातिं खेवैपश्यन्ति ते पदम्" (जो तिसकी उत्पत्तिको देखते हैं सो आकाशविषे पादोंको प्रसिद्ध देखतेहैं) अर्थात् जो विज्ञानवादी तिस चित्त (चैतन्य) की उत्पत्तिको देखते हैं सो आकाशविषे (अनहुये) पक्षि आदिकोंके पादचिह्नों को प्रसिद्ध देखते हैं। एतदर्थ वह विज्ञानवादी अन्य द्वैतवादियोंसे भी अत्यन्त विचार शून्यहै। इत्यर्थः। अरु जे शून्यवादी हैं सो भी सर्वकी शून्यता को देखते हुयेही अपने सिद्धान्तको भी शून्यताकी प्रतिज्ञा करते हैं, सो आकाशको मूठी विषे ग्रहणकरने की इच्छाकरते हैं। अतएव सो शून्यवादी विज्ञानवादीकी अपेक्षा तिससे भी अधिकतर विचारशून्यही है २८। १५५॥

२९। १५६॥ हे सौम्य, "अजमेकं ब्रह्मेति" (अजन्मा एक ब्रह्महै) इसप्रकार जो पूर्व प्रतिज्ञा कियाहै, तिसके कहेहुये हेतुओंसे जो जन्मका अनिरूपण तिसकरके सो अजन्मा ब्रह्म सिद्ध हुआ। तिस सिद्धहुये अर्थके फलकी समाप्तिके अर्थ यह श्लोक है। [यहां यह अर्थ है कि, जब चैतन्यरूप स्फूर्ति अजन्मा इष्ट है, तब सो ब्रह्मही है, क्योंकि सो एक कूटस्थ स्वभाववाला है तातें (अर्थात् कूट नामहै लोहकार वा सुवर्णकारकी ऐरन का कि जिसके आश्रय वो सर्व कार्योंको करते हैं अरु वो जहां जैसाहै तहां तैसाही निर्विकार है, तद्वत् निरुपाधि निर्विकार एकरस चैतन्यको भी "कूटवत्तिष्ठतीति कूटस्थः" इस व्युत्पत्त्यर्थसे उसको कूटस्थ कहते हैं) सो पुनः वास्तवसे अजन्माही है, तथापि मायासे जन्मवान् होताभासैहै, इसप्रकार जब कल्पना करते हैं, तब तिस कूटस्थको अजन्मा होनेकरके

अनादेरन्तवत्त्वंचसंसारस्यनसेत्स्यति । अनन्तता चादिमतोमोक्षस्यनभविष्यति ३०। १५७॥

तिसकी अनुत्पत्तिही [अजन्मापनाही] प्रकृति कहिये स्वभाव होताहै] "। अजातंजायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः "। (जिसकरके अजन्मा जन्मता है, तिसकरके अनुत्पत्तिही प्रकृति है) अर्थात् अजन्माही जो चैतन्य ब्रह्महै सो जन्मता है, इसप्रकार वादियों करके कल्पनाकियाहै। अरु जिसकरके सो चैतन्य ब्रह्म कूटस्थ, अजन्मा जन्मताहै, एतदर्थ तिसकी अनुत्पत्ति प्रकृति कहिये स्वभावहै।ताते "।प्रकृतेरन्यथाभावो नकथञ्चिद्भविष्यति "। प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी प्रकारसेभी होतानहीं; अर्थात् जाते चैतन्य ब्रह्मकी अनुत्पत्तिही स्वभाव (प्रकृति) है ताते सो अनुत्पन्नतारूप प्रकृतिका अन्यथाभाव कहिये उत्पत्ति (जन्म) किसी प्रकारसे भी होता नहीं ॥ इति सिद्धम् ॥ २९ । १५६ ॥

३०।१५७॥ हेसौम्य, आत्माके बिषे (संसार अरु मोक्ष, इनके परमार्थसे सद्भावके माननेवाले वादियोंको यह दूसरादूषण कहतेहैं। पूर्वथानहीं, इस अवच्छेदसे रहित अनादि संसारकी अन्तवान्ता कहिये समाप्ति युक्तिसे सिद्ध न होगी । अरु जिसकरके लोकबिषे अनादिहुआ कोईभी पदार्थ अन्तवान् देखा नहीं, एतदर्थ [यहां यह अनुमानहै कि विवादका विषय जोसंसार सोअन्तवान् हैनहीं क्योंकि आत्मावत् अनादि भावरूपहै ताते] यह अर्थ घटितहै ॥ अरु जो ऐसाकहै कि बीज अरु अंकुरका हेतु अरुफल भावसे जो सम्बन्धहै, तिसके सन्तानके अनादिभावरूप हुये भी तिसका अन्त देखते हैं ताते, संसारकी अनन्तताके साधने बिषे 'अनैकान्तिकतेति" (अनादिहोनेसे) । यह जोहेतु कहा तिसको व्यभिचारवान्ताहै,। सोकथन बनेनहीं, क्योंकि बीज अरु अंकुर के सम्बन्ध के संतानरूप वस्तुको एकरूपताके अभावकरके पूर्व इसप्रकरणके २०वें श्लोकसे निषेधकियाहै। अरु "अनन्तताचा-

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्त्तमानेऽपितत्तथा । वितथैःसदृशाःसन्तोऽवितथाइवलक्षिताः ३१ । १५८ ॥

दिसतो मोक्षस्यनभविष्यति " (आदिवाले मोक्षकीभी अन्तता न होगी) अर्थात् तैसे ज्ञानकी प्राप्तिकालविषे उत्पत्तिरूप आदिवाले मोक्षकी अनन्तताभी न होगी, क्योंकि आदिवाले घटादिकों विषे अनन्तताको देखते नहीं । अरु जोकहे कि घटादिक नाशवान् हैं क्योंकि अवस्तुरूप हैं ताते, इसप्रकार मानेहुये दोष नहीं, । तो तैसाहोनेसे परमार्थसे मोक्षके सद्भावके प्रतिज्ञाकी हानिहोवेगी, अरु मोक्षको शशशृंगवत् असत् होतेहीं तिसके आदिवान्पनेका (ज्ञानसे उत्पत्तिका) अभाव होवेगा ३० । १५७ ॥

३१।१५८॥ हेसौम्य (वादी कहताहै) तब मोक्षको आदिअन्तवान्पना होहु,। तहां (सिद्धान्ती) कहताहै, "आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेऽपितत्तथा, वितथैःसदृशाःसन्तो ऽवितथाइवलक्षिताः" (जो आदि अरु अन्तविषे नहीं है सो वर्त्तमानविषे भी नहीं, जैसे मिथ्यावस्तुके सदृशहुयेभी सत्यवत् जानतेहैं) अर्थात् मृगजलादिक वस्तुआदि अरु अन्तविषे हैनहीं सोअपने वर्त्तमानसमयभी तैसेही ,आदि अन्तवत्ही, हैनहीं । (अथवा जोवस्तु अपने अभाव हुये हैनहीं, सोअपनी उत्पत्तिसे पूर्वभी हैनहीं अरुजो अपनेआदि अन्तमें नहीं सो अपने वर्त्तमान कालमेंभी हैनहीं "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि गीतोक्तिप्रमाणसे) जैसे यह दृष्टान्तहै तैसेमोक्षादिक पदार्थभी (सम्यक् ज्ञानकरके जन्य होनेसे) मिथ्यावस्तु के तुल्य है, तथापि उसको मूढ पुरुष सत्यवत् जानते हैं । (अर्थात् सत् शुद्ध स्वरूप आत्माविषे जो भ्रान्तिमात्र बंधहै सो अविवेकी को सत्यवत् भासताहै, तैसेही भ्रान्तिरूप बन्धका प्रतिपक्षी(सापेक्षिक) जो मोक्ष सोभी भ्रान्तिरूप असत् है तथापि सोभी अविवेकी पुरुषोंको सत्यवत् भासताहै) ३१ । १५८ ॥

३२।१५९॥हेसौम्य, (शंका) ननु,मृगजलादिकोंसे स्नानपाना-

सप्रयोजनतातेषांस्वप्नेविप्रतिपद्यते। तस्मादाद्यन्तवत्त्वेनमिथैवखलुतेस्मृताः ३२। १५९॥

दिरूप प्रयोजनकी अप्रतीति (असिद्धि)से (सो) मिथ्याहै, परन्तु। मोक्ष अरु स्वर्गादिकों के सुखादिकों की प्राप्तिरूप प्रयोजन की प्रतीतिहै, ताते मोक्षादिकोंका मिथ्यापना नहीं,। यह शंकाकरके समाधान, कहते हैं "सप्रयोजनतातेषां स्वप्नेविप्रतिपद्यते" (तिनकी सप्रयोजन सहितता स्वप्नबिषे विपर्य्ययको पावती है) अर्थात् तिन मोक्षादिकोंकी सप्रयोजनता स्वप्नबिषे विपर्य्ययको प्राप्तहोती है। अरु जैसे स्वप्नबिषे देखेहुये पदार्थोंकी विपरीतता(असत्यता) जाग्रत् बिषे होती है। (अर्थात् स्वप्नमें यह स्वप्नहै अरु मिथ्या है ऐसी प्रतीति होतीनहीं अरु जब जाग्रत्को प्राप्तहोताहै तब जाग्रत्से स्वप्नकी विपरीतता प्रतीतहोती है)। तैसे जाग्रत्बिषे देखेहुये पदार्थोंकी विपरीतता स्वप्नबिषे होतीहै। (अर्थात् जाग्रत्से विपरीत स्वप्न है अरु स्वप्नसे विपरीत जाग्रत् है इस कहने से स्वप्न बिषे जाग्रत् नहीं अरु जाग्रत्बिषे स्वप्न नहीं, अतएव येदोनों परस्पर विपरीत व्यभिचारी होनेसे मिथ्याहैं)। यह अर्थहै। अरु "तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथैवखलुतेस्मृताः" (तस्मात् आदि अन्तवान् होनेकरके तिनको निश्चयकरके मिथ्याही जानाहै) अर्थात्, तिस (जाग्रत् अरुस्वप्नके परस्पर विपरीत व्यभिचारीपनेकेदृष्टान्त) करके आदि अरु अन्तवान होनेसे, विवेकी पुरुषोंने निश्चय करके मोक्षादिसर्व मिथ्याही जानेहैं। (अर्थात् जाग्रत् अरु स्वप्नवत्, बंध अरु मोक्ष यहभी परस्पर विपरीत व्यभिचारी, अरुसापेक्षिक होनेसे मिथ्याहैं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नका परस्पर व्यभिचारहै,तैसे उनका एकसाक्षी आत्मासे भी व्यभिचारहै,तैसेहीइन बन्ध अरु मोक्षका परस्पर, अरु अव्यभिचारी निर्पेक्ष सत्य एक रूप आत्मासे, व्यभिचारहै, ताते ज्ञानवानोंने इनबन्ध अरुमोक्ष दोनोंको निश्चयसे मिथ्याकरकेही जाना है)। अरु यद्यपि यह

सर्वेधर्मामृषास्वप्नेकायस्यान्तर्निदर्शनात् । संवृत्ते ऽस्मिन्प्रदेशेवैभूतानांदर्शनंकुतः ३३ । १६० ॥

दोनोंश्लोक द्वितीय प्रकरणमें व्याख्या किये हैं, तथापि यहांबंध अरु मोक्षके अभावके प्रसंगसे पुनः पठनकिये हैं, ताते यहां पुनरुक्तिदोष विचारनीय नहीं ३२ । १५९ ॥

३३।१६०॥ हेसौम्य, "निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात्" "परमार्थके देखनेसे निमित्तका अनिमित्तपना हमों करके अंगीकार कियाहै, यह २५ वें श्लोकविषे कथनकिया जो अर्थसो अब इन श्लोकोंसे विस्तारित करतेहैं। [जिस हेतुकरके स्वप्नका मिथ्यापना इष्टहै तिस हेतुको जाग्रत् विषेभी तुल्यहोनेसे जाग्रत् काभी मिथ्यापना इष्टकरके अजन्मा (जन्मादि विकार रहित) ज्ञानमात्र तत्त्वही अंगीकार करनेयोग्यहै, इस कहनेके अभिप्राय से कहतेहैं] "सर्वेधर्मामृषास्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात्" "स्वप्न विषे सर्वधर्म मिथ्याहै शरीरान्तर होनेसे" अर्थात् जब शरीरान्तरहोनेसे स्वप्नके सर्व पदार्थ असत्य हैं, तब विराट् के शरीरान्तर सर्व जगत्के देखनेसे तिसका मिथ्यापना निवारणकरनेकोशक्य नहीं । अर्थात् बृहदारण्यक उपनिषद् विषे, शरीरके अन्तर ,एक खडे केशके सहस्रवें भाग प्रमाण हितानाम्नि नाडियांहैं तिनमेंसे एकनाडी के अन्तर स्वप्नजगत् भासता है, परन्तु स्वप्नके पर्वत सागरादि सहित जगत् के होने प्रमाण देशकाल वस्तुका अति संकोच अभाव होनेसे, अरु तिस नाडीके अन्तर भी महासूक्ष्म आत्माकी पूर्णता से, एकठिकाने दोवस्तु रहे नहीं इस न्यायसे, उस नाडीके अन्तरस्थानादिकों के अभावसे वहां भासमान जो स्वप्नजगत् सो भ्रान्तिमात्र होनेसे असत्है । तैसेही इस जाग्रत् जगत्को विराट्के शरीरान्तर होनेसे अरुतहांभी इस व्यष्टिशरीरवत् देशकालादिकोंके संकोचसे अरु चैतन्य आत्माकी पूर्णव्याप्तिसे यहदृश्यमान जो जाग्रत् जगत् तिसकोभी भ्रान्तिरूपहोने

नयुक्तंदर्शनंगत्वाकालस्यानियमाद्गतौ । प्रतिबुद्ध-श्चवैसर्वस्तस्मिन्देशेनविद्यते ३४ । १६१ ॥

से तिसका मिथ्यापना निवारण करनेको शक्य नहीं । अरु जो ऐसाकहो कि यह समस्त जाग्रत् जगत् विराट्का वपुहै विराट् के शरीरान्तर स्वप्नवत् नहीं, ताते असत्भी नहीं, । तो श्रवणकरो हेसौम्य आकाशसेभी महासूक्ष्म आत्मतत्त्व घनशिलावत् पूर्णतासे व्याप्त है, उससे खालीस्थान जगत्के रहनेको कोई नहीं, अरु एकठिकाने दोवस्तु रहेनहीं इसन्याय प्रमाण देखनेसे उस परिपूर्ण अखंड चैतन्यबिषे उससे रीते स्थानके अभावसे आकाशादि सर्व जगत् उस अधिष्ठान तत्त्वबिषे रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्त होने से भ्रान्तिरूप असत्यही निश्चयकरने के योग्यहै । यह अर्थ है, किंवा, जब योग्य देशके अभावसे स्वप्नका मिथ्यापना दृष्ट है, तब प्रत्यगात्मा से अभिन्न अखंड एक रस अवकाश रहित इस ब्रह्मरूप देशबिषे प्रसिद्ध विद्यमान वस्तु का दर्शन कहांसे होगा, किन्तु ब्रह्मको आपसे इतर अवकाश रहित होनेसे किसी प्रकारसे भी ,उसबिषे अन्यका दर्शन बनेनहीं, । अरु जिस करके स्थान बिना जगत्का दर्शन होता है , ताते स्थान बिनाके स्वप्नवत् जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है । यह इसका अर्थ है ३३ । १६० ॥

३४ । १६१ ॥ हे सौम्य अब उक्तार्थको ही वर्णन करते हैं "। नयुक्तंदर्शनंगत्वा कालस्यानियमाद्गतौ " (गति बिषे काल के अनियमसे जायके दर्शनयुक्तनहीं, अर्थात् जैसे स्वप्नबिषे देशान्तर को जानेमें कालके अनियमसे देशान्तरको जायके देखना युक्त नहीं । अर्थात् स्वप्नमें जो अनेक योजनोंके अन्तरवाले देशान्तर वा द्वीपान्तरको अरु तहांके पदार्थोंको पुरु देखताहै सो शरीरसे बाह्य उन देशान्तर वा द्वीपान्तरमें जायके देखता नहीं क्योंकि जाग्रत्को त्यागके स्वप्नको प्राप्त होने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो उन देशान्तरके प्राप्त होनेमें चाहिये, किन्तु शनैःशनैः

जाग्रत्की निवृत्ति अरु स्वप्नकी प्रवृत्ति प्रायः समकालही होती है, अरु तैसेही स्वप्नकी निवृत्तिके समकालही जाग्रत्की प्राप्ति होती है ताते जाग्रत्से स्वप्नमें जाने अरु स्वप्नसे जाग्रत्में आवने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो स्वप्नमें देहसे बाह्य देशान्तर को जाय अरु आवे । तैसे जाग्रत् विषे भी मरणोत्तर अर्चिरादि मार्गसे जायके ब्रह्मका दर्शन युक्त नहीं, क्योंकि ब्रह्म जो है सो काल, अरु देश, के अवच्छेदसे रहितहै । अर्थात् यहां जो स्वप्नके दृष्टान्तसे, जाग्रत्बिषे मरणोत्तर अर्चिरादि मार्ग से जायके ब्रह्म के दर्शन युक्त नहीं ऐसा कहाहै सो अस्तु परन्तु अर्चिरादि उत्तरायण मार्गके साधनेवालेको, ब्रह्मात्माके अभेद ज्ञानीवत् शरीर से उत्क्रमण (निकसे) बिना यहांहीं "ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" निर्विशेष ब्रह्मभावकी प्राप्तिवत्, ब्रह्म प्राप्ति नहीं, किन्तु उसको अर्चिरादि क्रमसे ब्रह्मलोक प्राप्तिहै, ताते उसका मरणोत्तर बाह्य गमन युक्तहै "यचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाण यक्ष्मापूर्य्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्डेतिमासाꣳस्तान् । मासेभ्यःसम्बत्सरꣳ सम्बत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसोविद्युतं तत्पुरुषोमानवःसएनां ब्रह्म गमयत्येषदेवयानःपन्था इति" "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" इत्यादि प्रमाण से अर्चिरादिकों के उपासकको साक्षात् मोक्ष प्राप्ति न होयके उसको सुषुम्नानाडीके मार्ग देहसे उत्क्रमणहोय देवयान मार्गकी रीतिसे ब्रह्मलोक प्राप्ति अरु ब्रह्माके साथ सापेक्षिक मोक्ष है, ॥ किंवा ॥ "प्रतिबुद्धश्चवैसर्व्वस्तस्मिन्देशे नविद्यते" "सर्वजन प्रबोधको पाया हुआ तिस देशबिषे विद्यमान होता नहीं" अर्थात् जैसे सर्वजन जिस देशविषे स्थितहोय सोयेहुये स्वप्नोंको देखते हैं सो पुनः प्रबोध (जाग्रत्) को पाय के तिस देशविषे कि जिन देशान्तर वा द्वीपान्तरोंको स्वप्नमें देखताहै, स्थित होतानहीं । इसप्रकार होने से स्वप्नका मिथ्यापनाही वांछितहै । तैसे जाग्रत्विषे भी जिस देहरूप देशविषे स्थित

मित्राद्यैः सह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते। गृहीत-ञ्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति ३५। १६२॥

हुआ पुरुष संसारको अनुभव करताहै, पुनः ब्रह्मभावको पाया हुआ तिस देहरूप देशबिषे स्थित नहीं है, क्योंकि परिपूर्ण ब्रह्मरूप होयके स्थित हुआहै। एतदर्थ जाग्रत्का भी मिथ्यापना अंगीकार करने योग्यहै॥ इस श्लोक का तात्पर्य्यरूप अर्थ यहहै कि जाग्रत्बिषे गमनागमनके काल जो नियमितहैं अरु जो देश प्रमाणसे हैं, तिनके नियमसे स्वप्नबिषे देशान्तरको गमन होवे नहीं, किन्तु देहके भीतर देशान्तरादि प्रपंच देखते हैं, तैसे जाग्रत्बिषे भी घटित हैं, याते तिन (जाग्रत् अरु स्वप्न) दोनोंको तुल्यहोने से, उन दोनोंका मिथ्यापनाभी तुल्यही है ३४।१६१॥

३५।१६२॥हेसौम्य, [जैसे स्वप्नबिषे विसंवादसे (अर्थात् निष्फल प्रवृत्तिके जनक भ्रमरूपतासे, अप्रमाणपना इच्छितहै, तैसे ही जाग्रत्बिषेभी ब्रह्मवादियोंके साथ मिल बिचारकरके अविद्या निद्रासे सम्यक्प्रकार प्रबोधको पाया जोपुरुष, सोपुरुष (परम श्रेय, हमोंकरके साधनेयोग्यहै, (वा नहीं) इसप्रकार बिचार किये मोक्षके साध्यभावको जानता नहीं (अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओंका सत्संगी सम्यक् बिचारवान् आत्मानुभावि पुरुष (मोक्ष हमों करके साधनेयोग्यहै इस भावको जानता नहीं) क्योंकि (उसको सत्संगके प्रभाव से आत्माकी एकता के अनुभवहुये सर्वकी नित्य मुक्तताका निश्चयहै ताते। एतदर्थ मुमुक्षुपना अरु श्रवणादिसाधनोंकी कर्त्तव्यता भ्रान्तिसेहीहै,इसप्रकार कहते हैं] "मित्राद्यैःसह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते, गृहीतञ्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति" (मित्रादिकोंके साथ गुप्त भाषणकरके प्रबोधकोपाया हुआ पावता नहीं, अरु ग्रहणकिये जिसकिसकोभी देखतानहीं? अर्थात् स्वप्नबिषे मित्रादिकोंके साथ गुप्तभाषण करके प्रबोधको पायाहुआ पावता नहीं। अरु [किंवा स्वप्नवत् अनुभवकिये उप-

स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्। यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम् ३६ । १६३ ॥

देशादिकोंको विद्वान् देखता नहीं, क्योंकि तिस विद्वान् करके साध्य फलका अभावहै, [उससे श्रेष्ठअरु अन्य कुछभी नहोनेसे। इसप्रकार कहते हैं] ग्रहणकिये जिसकिसको । अर्थात् स्वप्नविषे ग्रहणकिया जोकुछ। सुवर्णादि पदार्थ तिनकोभी देखता (पावता) नहीं, अरु गयाहुआ देशान्तरकेताईं जातानहीं । (अर्थात् स्वप्न विषे जिन देशान्तरको जाता है, तिन देशान्तरको जाग्रत् हुआ जातानहीं ३५ । १६२ ॥

३६।१६३ ॥ हेसौम्य, [किंवा स्वप्नावस्था विषे जिस शरीर करके नदी अरण्यादिकोंविषे विचरता है, सो मिथ्या है, क्योंकि तिस स्वप्नगत देहसे भिन्न निश्चल जाग्रत्गत शरीरको देखते हैं, तैसे जाग्रत्विषेभी जिस संन्यासीआदिक शरीरसे लोकोंकरके पूजनेयोग्य वा द्वेषकरने योग्य देखते हैं, तिसको मिथ्याकहते हैं, क्योंकि तिस शरीरसे पृथक् ब्रह्मनामवाला कूटस्थ रूप शरीर का यथार्थ अनुभवहै ताते, इसप्रकार कहते हैं] "स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्" (स्वप्नविषे जो शरीर है सो अवस्तु रूप है, अन्य से पृथक् देखने से ; अर्थात् स्वप्नविषे अरण्यादिकों में भ्रमताहुआ जो शरीर देखते हैं सो अवस्तुरूप है, क्योंकि तिस स्वप्न के शरीर से पृथक् जाग्रत् का शरीर देखते हैं ताते "यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम्" (जैसे शरीर तैसे चित्त का दृश्य सर्व अवस्तुरूप है; अर्थात् जैसे स्वप्नका दृश्य शरीर असत् है तैसे जाग्रत् विषे भी सर्व चित्तका दृश्य अवस्तुरूपही है, क्योंकि चित्तका दृश्य (कल्पित है ताते । अरु स्वप्न के तुल्य होने से जाग्रत् भी असत्यही है, ऐसा इस प्रकरण का अर्थ है ३६ । १६३ ॥

३७ । १६४ ॥ हे सौम्य, [जैसे जाग्रत् को अनुभव करतेहैं,

ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते। तद्धेतुत्वात्तु तस्यैव सज्जागरितमिष्यते ३७।१६४॥

तैसे स्वप्न को भी अनुभव करते हैं। अरु स्वप्न को जाग्रत्का कार्य्य होनेसे जो स्वप्नका द्रष्टाहै तिसहीका जाग्रत् । स्वप्नरूप कार्य हुआ विद्यमान है। अरु स्वप्न असत् है। एतदर्थस्वप्नवत् जाग्रत् का मिथ्यापनाही है, इस प्रकार कहते हैं] इस कहनेके हेतु से भी जाग्रत्की बस्तुका असत्पना है "। ग्रहणाज्जागरित वत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते "। ' जाग्रतवत् ग्रहणसे तिस हेतुवाला स्वप्न अंगीकार करते हैं ; अर्थात् जाग्रत्वत् ग्राह्य ग्राहक रूपसे स्वप्नके ग्रहणसे तिस जाग्रत्रूप हेतुवाला (जाग्रत् का कार्य) स्वप्न अंगीकार करते हैं, [किंवा, जाग्रत्का अनेक पुरुषों को साधारणहोने रूप जो विद्यमानपनाहै सो वास्तवसे है नहीं, क्योंकि स्वप्नका कारण है ताते, किन्तु तैसे अनेकको साधारण होनेवत् भासमानपना है, इसप्रकार कहते हैं] तिस हेतुवाला होनेसे (जाग्रत्का कार्य होनेसे) तिसही स्वप्नके द्रष्टाको जाग्रत् सत्य अंगीकार करतेहैं, अन्योंका नहीं ' जैसे स्वप्नहै, । [प्रभाताके होते वाध्य होनेरूप स्वप्नका मिथ्यापनाहै, अरु जाग्रत् को पुनः तिस बाध्यहोनेकी अप्रतीतिसे परमार्थसे सत्पना है, अरु कार्यको मिथ्यापनेके हुये कारणको भी मिथ्यापना है, इस बिषे प्रमाणके अभावसे सर्वको साधारण अरु विद्यमान जो जाग्रत् सो मिथ्याहोनेके योग्य नहीं। यह शंकाकरके कहते हैं] यह अभिप्रायहै। जैसे स्वप्नजोहै सो स्वप्नके द्रष्टाकोही सत्य हैं। अर्थात् साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, तैसे तिस जाग्रत् रूप कारणवाला होनेसे तिस स्वप्नका स्वप्नके द्रष्टाकोही साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासनाहै, परन्तु साधारण विद्यमान जो वस्तुहै सो स्वप्नवत् है नहीं। यह इसका अभिप्रायहै ३७।१६४॥

३८।१६५॥ हे सौम्य, [स्वप्न अरु जाग्रत्के कार्य्य कारण

उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजंसर्व्वमुदाहृतम्।नच भूता-
दभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन ३८।१६५ ॥

भावकेहुये भी दोनोंका मिथ्यापना तुल्य नहीं 'क्योंकि सो परस्पर अत्यन्त बिलक्षणहै । यह शंकाकरके कहते हैं] शंका। ननु, जाग्रत्के पदार्थको स्वप्नकी कारणताके हुये तिस। जाग्रत्के पदार्थ।का स्वप्नवत् अवस्तुपना न होवेगा, क्योंकि जिसकरके स्वप्न अत्यन्त अस्थिर है अरु जाग्रत्को स्थिर देखते हैं, अतएव तिनकी परस्पर विलक्षणता है ताते। तहां। समाधान। कहते हैं। हे वादी तिसप्रकारका अनुभव अविवेकी पुरुषोंको होता है, यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु विवेकी पुरुषोंको तो किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है नहीं "।उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्वमुदाहृतम्"। [उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोनेसे सर्व अजन्मा कहाहै] अर्थात् विवेकी पुरुषोंको किसी भी पदार्थकी उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं, एतदर्थ उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोनेसे अज आत्माही सर्वहै "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" 'बाहर भीतर सहित है अरु अजन्मा है' इसश्रुतिके प्रमाणसे। इसप्रकार वेदान्तों बिषे सर्व अजन्माही कहाहै। अरु सत्रूप जाग्रत्से असत्रूप स्वप्न उपजाता है, इस प्रकार तू मानताहै, तथापि सो। जाग्रत्। असत्ही है। क्योंकि "।नच भूतादभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन" [विद्यमानसे अविद्यमानका किसीप्रकारसे भी संभव नहीं] अर्थात् विद्यमान पदार्थसे अविद्यमान वस्तुका किसीप्रकारसे भी संभवहोना संभवे नहीं। अरु लोक विषे असत्यरूप शशशृंगादिकों का किसीप्रकार से भी संभव होतानहीं अरु देखा भी नहीं ३८।१६५ ॥

३९।१६६ ॥ हे सौम्य,। शंका। ननु, हे सिद्धान्ति तूनेही तो ३७ वें श्लोकविषे स्वप्न जाग्रत्का कार्य्य है इसप्रकार कहाहै तब उत्पत्ति अप्रसिद्ध है ऐसा कैसे कहता है,। तहां समाधान कहते हैं, हे वादी जिसप्रकार कार्य कारणभाव हमोंकरके कहनेको इ-

असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः। असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति ३९।१६६॥

नास्त्यसद्धेतुकमसत्सदसद्धेतुकन्तथा। सच्चसद्धेतुकंनास्तिसद्धेतुकमसत्कुतः ४०।१६७॥

च्छितहै, तैसे कहतेहैं, सो तू सावधानहोय श्रवणकर "असज्जागरितेदृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः" [जाग्रत् बिषे असत्को देखके तन्मयहुआस्वप्नबिषेदेखताहै]अर्थात्असत् (रज्जुसर्पवत्कल्पित) बस्तुको देखके तिसके भावकी भावना करके युक्त 'वा तिस असत् बस्तुके ज्ञानके दृढ संस्कार करके युक्त' तन्मय हुआ पुरुष जाग्रत्वत् स्वप्नबिषे ग्राह्य अरु ग्राहक (बिषय अरु इन्द्रिय) रूप से कल्पना करता हुआ देखताहै, [जैसे जाग्रत्बिषे देखेहुये प्रपंचको स्वप्नबिषे देखने से जाग्रत्की बासनाके आधीन जो स्वप्न सो जाग्रत्का कार्य होने करके ब्यवहार करते हैं, तैसे स्वप्नबिषे देखेहुये प्रपंचको जाग्रत्बिषे भी देखनेसे जाग्रत्को तिस स्वप्नका कार्यपना सिद्ध होता है, यह शंका करके श्लोकके उत्तरार्द्ध को कहते हैं (ब्याख्यान करते हैं)] तैसे "असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति" (स्वप्नबिषे असत्को देखके जाग्रत्को प्राप्त हुआ देखता नहीं) अर्थात् 'जैसे जाग्रत्के असत् पदार्थों में तन्मय हुआ स्वप्नबिषे तिनको देखताहै, तैसे स्वप्नबिषे भी असत् अविद्यमान, वस्तुको देखके जाग्रत्को प्राप्तहुआ पुरुष कल्पना न करताहुआ देखता नहीं, अरु तैसे कदाचित् जाग्रत् विषे भी देखके स्वप्नबिषे नहीं देखताहै, यहअर्थ श्लोकके चकारसे बोधित है। ताते विशेषकरके स्वप्नको जाग्रत्की वासनाके आधीनहोने से, जाग्रत्को स्वप्नका हेतुहै इसप्रकार कहतेहैं, परन्तु सो (जाग्रत्) परमार्थसे सत्यहै ऐसेकरके कहते नहीं ३९।१६६॥

४०।१६७॥ हेसौम्य,[ब्यवहारदृष्टिसे जाग्रत् अरु स्वप्नका कार्य कारणपना कहा, अरु वास्तवदृष्टिसेतो कहीं भी कार्य्य का-

रणपनाहै नहीं । इसप्रकार कहतेहुये वस्तुके अज्ञानसे अवस्तुही कार्यहोताहै,ऐसे कहनेवालेके मतका निषेध करतेहैं,] परमार्थसे तो किसीका भी किसीभी प्रकारसे कार्य कारणभाव संभवता नहीं। प्रश्न। कार्य कारणभाव कैसे नहीं संभवे है, । उत्तर। तहां प्रथम , जो वस्तुके अज्ञानसेही अवस्तुरूप कार्य होता है, ऐसे माननेवाले पुरुषोंप्रति कहते हैं " नास्त्यसद्धेतुकमसत् सद-सद्धेतुकन्तथा ".[असत् हेतुवालेको असत् कहते हैं सो है नहीं, सत् असत् हेतुवाला है नहीं] अर्थात् असत् जो शशशृंगादिक सो जिस असत्काही कारण है ऐसे जे आकाशके पुष्पादिक तिनको असत् हेतुवाला असत् कहतेहैं सो है नहीं । अरु शून्यवादी तो । " असतः सज्जायते " इस विकल्पकी श्रुति प्रमाणसे । शून्यसेही सत्रूप कार्यहोता है इसप्रकार मानते हैं, अब तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत् ,विद्यमान, घटादिरूप वस्तु भी असत् हेतुवाला । अर्थात् शश शृंगादिकोंका कार्य । होतानहीं । अर्थात् अभाव (असत्) रूप जे शशाके शृंग (सींग) तिसका कार्य भावरूप , सत्य, धनुष किसीने भी कहीं भी किसी कालविषे भी देखानहीं, ताते अभावरूप शून्य कारणसे भावरूप सत्यकार्यकी उत्पत्ति कहनी माननी असत्ही है ॥ अब कारण अरु कार्य्य दोनोंके सद्भावके माननेवाले जे सांख्यादि वादी तिनके प्रति कहते हैं " सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः " [,सत्, सत् हेतुवाला नहीं, तब सत्रूप हेतुवाला असत् कैसेहोगा, कदापि होतानहीं,] अर्थात् । सांख्यवादी कारण प्रधान अरु तिसका कार्य सूक्ष्म स्थूल प्रपंच, इन दोनोंविषे सद्भाव मानतेहैं कि सत् कारणसे सत् कार्य्यहोताहै, तिनकेप्राति कहते हैं, जैसे सत् ,विद्यमान घटादिक सत् हेतुवाला । अर्थात् अन्य सत्वस्तुका कार्य नहीं । अर्थात् सत् उसको कहतेहैं जो उत्पत्त्यादि रहित काल-त्रयअबाध्य सदा एकरसरहै सो सत्, अरुप्रधान कार्यरूपसे उत्पन्नहोनेवाला ताते सत् नहीं, अरु कार्य अपनी उत्पत्तिसे पूर्व

अरु लयके पश्चात् अभावरूप होनेसे उत्पत्ति अभाववालाहुआ कदापि सत् होनेके योग्य नहीं, ताते कार्य, कारण उभय विसत् भावनाके करनेवालेका मत सत् नहीं। अब कोई एकवादी इस मिथ्या प्रपंचरूप सृष्टिका सतूरूप ब्रह्मकारण है ॥ अर्थात् सत्रूप ब्रह्मसे यह मिथ्यासृष्टि उत्पन्न होती है, इसप्रकार बर्णन करते हैं, तिनके प्रतिनिषेधकरते हैं कि, तैसे सत्रूप हेतुवाला (सत्काकार्य) कैसे संभवेगा। किन्तु कदापि नहीं। अर्थात् जो सत् होताहै सो कार्य भावको प्राप्तहोता नहीं क्योंकि एकरस सत्रूप है ताते, अरु सत्से असतूकार्य, अर्थात् सत्का कार्य असत् होतानहीं क्योंकि कारण सद्रूप है, अरु कार्यरूप प्रपंच असत् है, ताते सो सत्का कार्य होनेके योग्य नहीं, ताते सत् रूप ब्रह्म अरु असत् प्रपंच इनका कार्य कारण भाव युक्तनहीं। अरु जो कहो कि "सदेवसौम्येदमग्रआसीत" इत्यादि श्रुतियोंने इस सृष्टिका कारण सत्कहा है, तो तिन श्रुतियों का तात्पर्य कार्य्यकारण भाव कहनेका नहीं किन्तुएक अद्वैतआत्मतत्त्वके प्रकाशनार्थ है, क्योंकि "वाचारंभण विकारो नामधेयं" इत्यादि श्रुतियोंने कार्यको वाचारंभण (कहने) मात्रही कहाहै पृथक् सत्तावाला नहीं, ताते "मृत्तिकेत्येवसत्यं"। एकमृत्तिका ही सत्यहै, इस दृष्टान्तसे एकसर्वाधिष्ठान सत्आत्माही सत्है, ऐसे कहके "एतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ सआत्मा तत्त्वमसि"। इस उपदेश से कार्य्यकारण भाव भेद रहित एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रकाशित कियाहै॥ ताते सत्रूप ब्रह्मका असत्रूप सृष्टिकार्यहै यह कथन अयुक्तहै।॥ अरु अन्यप्रकारका कार्यकारण भाव संभवे नहीं, वा कल्पनाकरनेको शक्य नहीं, एतदर्थ विवेकी पुरुषोंको किसीभी वस्तुका कार्याकारण भाव सिद्ध नहीं॥ इत्यभिप्रायः॥ ४०। १६७॥

४१।१६८॥हेसौम्य, पुनः भी असत्रूप जाग्रत् अरु स्वप्नके पदार्थों से कार्य कारण भावकी शंकाको अन्य हेतुसे दूरकरतेहुये

विपर्य्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् ।
तथा स्वप्ने विपर्य्यासाद्धर्म्मांस्तत्रैव पश्यति ४१।१६८॥
उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम् ।
जातिस्तु देशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा ४२।१६९॥

कहते हैं "विपर्य्यासाद्यथाजाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत्" "जैसे जाग्रत्बिषे विपर्य्याससे अचिन्त्य परमार्थवत् स्पर्शकरता है" अर्थात्जैसे कोईपुरुष जाग्रत्बिषे विपर्य्यास कहिये अविवेक से अचिन्त्य कहिये चिन्तन करनेको अशक्य, रज्जु सर्पादिक पदार्थोंको परमार्थवत् स्पर्श करताहै। अर्थात् स्पर्श करतेहुयेवत् विकल्प करताहै "तथा स्वप्ने विपर्य्यासाद्धर्म्मांस्तत्रैव पश्यति" "तैसे स्वप्नविषे विपर्य्याससे धर्मोंको तहांही देखताहै" अर्थात्जैसे जाग्रत्बिषे तैसे स्वप्नबिषे विपर्य्यास (अविवेक)से हस्तिअश्वादि पदार्थोंको तहांहीं (अपने अन्तरजहां स्वप्नके पदार्थयोग्यस्थान का अभाव है) देखता है, । अर्थात् देखेहुयेवत् कल्पना करता है, परन्तु जाग्रत्से उत्पन्नहोनेवालेको देखतानहीं ४१।१६८॥

४२।१६९॥हेसौम्य,[वास्तव दृष्टिसे कार्यकारण भावके अप्रसिद्धहुये "जन्माद्यस्य यतः" ,इस जाग्रत्के जन्मादिक जिस से होते हैं, इत्यादि वेदान्तशास्त्र व्याससूत्रोंकरके ब्रह्मको जगत् काकारण कैसे सूचितकियाहै, । यह शंकाकरके कहते हैं]"उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम्, जातिस्तुदेशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा" "उत्पत्ति उपालम्भसे अरु सम्यक् आचरण से, ऐसे कहनेके स्वभाववाले अरु अनुत्पत्तिसे सदा भयके पावने वालेके अर्थ उपदेशकिया है" अर्थात् व्यासादिक अद्वैतवादी पंडितों ने जो जगदुत्पत्ति कही है (उपदेशकिया है) सो तो उपालंभ,द्वैतकी प्रतीति,से। अरु वर्णाश्रमादिक धर्म्मके सम्यक् आचरणसे।इनदोनों हेतुओं से "वस्तुभावमस्ति",द्वैतका वस्तुभावहै, इसप्रकार कहनेके स्वभाववाले वस्तुवादी, अरु जगत् की

अनुत्पत्तिसे सदाभयके पावनेवाले दृढ आग्रही कर्मादिकों बिषे श्रद्धावान् मन्दविवेकियोंके अर्थ[कार्यकारण भावको अंगीकारकरके जन्मके उपदेश करनेवाले अद्वैत वादियों का उपदेश मन्द विवेकियों बिषे विवेकी दृढता का उपाय होने करके कैसे होवेगा, यह शंका करके तब कहते हैं] वो (कर्म्मवादी मन्द विवेकी) तिस उत्पत्तिको प्रथम ग्रहणकरो, परन्तु पश्चात् वेदान्तके अभ्यासियों को अजन्मा अद्वय आत्मा को विषय करनेवाला विवेक स्वतःही होवेगा "वेदान्ताभ्यासिनान्तु स्वयमेवाजाद्वयात्मविषयो विवेको भविष्यतीति" इसप्रकार दृढविवेकका उपाय होनेकरके, उपदेश करतेहैं, परन्तु परमार्थ बुद्धिसे नहीं। अरु जिस करके वे (कर्म्मवादी) अविवेकी पण्डित स्थूल, बहिर्मुख, बुद्धिवाले होने से, अनुत्पन्नहुये बस्तुसे अपने विनाश को मानते हुये सदा भयको ही पावते हैं, एतदर्थ तिनकेलिये सूत्रकारादिक पण्डितों की प्रवृत्ति उचितहै। यह अर्थ है (अर्थात् कर्म्मवादी आदिक जो बहिर्मुख वृत्तिवाले मन्द विवेकी हैं तिनको आत्मसत्तासे पृथक् सत्तावाला जगत् भासताहै,तिसकी निवृत्तिकेअर्थ उनपर उपकार करतेहुये सूत्रकार व्यासादि वेदान्ती पण्डितों ने ब्रह्मसे जगदुत्पत्ति कहीहै तिसकरके वो स्वतः ही समझेंगे कि कारणसे कार्य की पृथक् सत्ताहोती नहीं अरु यह सर्वजगत् ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ है ताते इसकी पृथक् सत्ताके अभावसे यह ब्रह्मरूपही हैं, इस प्रकार एक अद्वैत ब्रह्मज्ञान होनेके अर्थ सूत्रकारने ब्रह्म से सृष्टि का जन्म (उत्पत्ति) कही है, परमार्थ दृष्टिसे नहीं। अरु यहही अर्थ " उपायः सोवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन " इस तृतीय प्रकरणके १५वें श्लोक बिषे कहाहै (सो सृष्टिका प्रकार) अद्वैत बिषे बुद्धिकी उत्पत्तिके अर्थ है) ४२। १६९॥

४३। १७०॥ हे सौम्य,["उदरमन्तरंकुरुते अथ तस्यभयं भवतीति" (जो थोडा भी अन्तर (भेद) करताहै पश्चात् तिसको भयहोता है) इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म बिषे विकारके

अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्तिये। जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पो भविष्यति ४३।१७०॥

देखने वाले को भयका होना सुनते हैं। अरु तैसे हुये श्रुतिके अर्थके जाननेवाले पण्डितोंको भी भेदज्ञानसे अनुग्रहकी योग्यता न होगी। यहशंका करके तब कहते हैं] "अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्तिये"। "अनुत्पत्तिसे भयको पावतेहुये उपलंभ (आत्मा) से विरुद्ध जाते हैं"; अर्थात् जो ऐसे उपलम्भ (प्रतीति) से अरु सम्यक् आचरणसे अनुत्पत्तिसे। अर्थात् अनुत्पन्न हुई वस्तुसे। भयको पावते हुये द्वैत वस्तु है, इसप्रकार अद्वैत आत्मासे विरुद्ध जातेहैं। अर्थात् द्वैतको प्राप्तहोते हैं। तिन अनुत्पत्तिसे भयको प्राप्तहोनेवाले श्रद्धा सम्पन्न सन्मार्ग को आश्रय करनेवालेको "जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पोभविष्यति"। "जातिके किये दोष होते नहीं, यद्यपि कोईदोष अल्पही होवेगा"; अर्थात् जातिकहिये प्रतीतिके किये दोषहोते नहीं। अर्थात् सिद्धि को पावतनहीं, क्योंकि सन्मार्ग कहिये विवेकमार्ग तिस विषे प्रवृत्त होतेहैं ताते। अरु यद्यपि(जो कदापि) कोईएक दोष होताहै, सो भी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्तका किया गर्भवासादिरूप अल्प ही दोष होवेगा यह अर्थ है॥ अर्थात् यहां जो कहाहै कि जो कदापि कोई एकदोष होताहै सोभी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्त का किया गर्भवासादि अल्प दोष होवेगा, सो गर्भवासको अल्प दोष कहा सो आक्षेप प्रतीति होता है, क्योंकि गर्भवासरूप दोष सर्व दोषोंका मूल है, ताते उक्त कथनका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि सम्यक् ज्ञानसे रहित पुरुष को गर्भवास उपलक्षण करके सर्वदोष (अनर्थ) प्राप्तहोताहै ४३। १७०॥

४४। १७१॥ हे सौम्य,। शंका। ननु, द्वैत की प्रतीति अरु वर्णाश्रमके धर्म्मके आचारको प्रमाणरूप होनेसे, द्वैतवस्तु वास्तव ही है, सो कथनबने नहीं, क्योंकि प्रतीति कहिये अनभव अरु आ-

उपलम्भात् समाचारान्माया हस्ती यथोच्यते ।
उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तु तथोच्यते ४४।१७१॥

चारका परस्पर में व्यभिचार है ताते। प्रश्न। तिनका व्यभिचार कैसेहै। तहां उत्तर, कहते हैं "उपलम्भात् समाचारान्मायाहस्ती यथोच्यते" [जैसे मायाका हस्ति प्रतीतिसे अरु आचारसे । हस्ती ऐसे। कहते हैं]अर्थात् जैसे मायाका । किसी इन्द्रजाली आदिकों करके रचित । हस्ती (हाथी) हस्तिवत् प्रतीति होता है, अरु जैसे अन्य हस्तीके अर्थ आचरते हैं तैसे इसमायाके हस्ती बिषे भी आचरते हैं , । अर्थात् उसके रूप गुण स्वभावादिकोंके वर्णन में प्रवर्त्तहोतेहैं । एतदर्थ जैसे असत् हुआ भी मायाका हस्तिको प्रतीति अरु आचारसे । अर्थात् हस्तिके सम्बन्धी धर्म्मोंसे । यह हस्तीहै इसप्रकार कहते हैं " उपलम्भात् समाचारादस्ति वस्तु तथोच्यते " (तैसे प्रतीति अरु आचारसे वस्तु है, इसप्रकार कहते हैं) अर्थात् जैसे मायाके हस्तिको प्रतीति अरु आचारसे हस्तीहै ऐसा कहतेहैं । तैसेही प्रतीति अरु आचारकरके भेदरूप द्वैतवस्तुहै इसप्रकार कहते हैं। एतदर्थ [जैसे । मायावी करके रचित । मायामय हस्तिबिषे वास्तवताका अभावहोनेसे भी तिसकी प्रतीत अरु आचरणहोताहै, तैसे द्वैतबिषे भी उनकी प्रतीति अरु वर्णाश्रम आदिकोंके आचरणको भी । देखते करते हैं परन्तु तिसकरके तिस द्वैतबिषे । वास्तविकपनेकी साधकता नहीं, इस प्रकार इस प्रसंगको समाप्त करते हैं ।] प्रतीति अरु आचार द्वैत वस्तुकेसद्भावबिषेहेतुहोतानहीं यह इसकाअभिप्रायहै ४४।१७१॥

४५।१७२॥ हे सौम्य, [वास्तव दृष्टिके आश्रयसे निमित्त को अनिमित्तपना कहा, सो यह अनन्त श्लोकोंकरके कहा है, अब वास्तवदृष्टिको समाप्त करते हैं]। प्रश्न । तब जिस आश्रय कहिये अधिष्ठान वालियां उत्पत्त्यादिकोंकी मिथ्या बुद्धियां हैं,ऐसी जो परमार्थ वस्तु सो क्याहै, । उत्तर । कहते हैं, "जात्याभासं

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च । अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानंशान्तमद्वयम् ४५ । १७२ ॥

चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च ” [जात्याभास है चलाभास है अरु वस्तुआभास है तैसेही] अर्थात् जैसे देवदत्त । अर्थात् कोई एक मनुष्य । उत्पन्न होता है । अर्थात् देवदत्त इस नामसे जो शरीर तिस शरीरान्तर जो शरीरी जीव सो देवदत्त नामका लक्ष्यहै सो जीव अनादि होनेसे उत्पन्न होतानहीं परन्तु शरीरकी उत्पत्तिसे तिस शरीरीका उत्पन्नहोना है सो आभासमात्र है, परन्तु कहते हैं, जैसे देवदत्त उत्पन्नहोताहै । तैसे विज्ञान (विज्ञान घन, विज्ञप्ति) सो उत्पत्त्यादिकों से रहित हुआ भी । स्वमाया करके । उत्पन्नहुयेवत् भासताहै, एतदर्थ वो जात्याभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त चलता है, । अर्थात् वास्तव करके देवदत्तनामक देही (जीवात्मा) अचल है, परन्तु शरीरके सम्बन्धसे घटाकाशवत् चलता भासता है सो उससें आभासमात्रहै तथापि तिसको देखके कहतेहैं कि, देवदत्त चलताहै । तैसे सो । विज्ञान आप अचलहुआ स्वमायाकरके । चलता भासताहै, अतएव सो चलाभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त गौरहै दीर्घ है पीन (मोटा) है, इसप्रकार भासता है तैसे सो विज्ञान (विज्ञप्ति चैतन्य)द्रव्य रूप धर्मीवत् भासताहै । परन्तु “ अस्थूलमनणुवमदीर्घ ” इत्यादिप्रमाणसे द्रव्यके धर्मोंसे रहित अद्रव्यहै । अरु “ रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ” द्रव्योंके साथ मिलनेसे द्रव्य धर्मवान् भासताहै । एतदर्थ वो वस्त्वाभासहै । ताते देवदत्त जन्मता है, चलता है, वस्तुहै, दीर्घ है, गौरहै तैसेही यह विज्ञान भासता है । परन्तु “अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानंशान्तमद्वयम्” { अजन्माहै, अचल है, अवस्तुभाव है, विज्ञानघन है, शान्तहै, अद्वय है, } अर्थात् जो । विज्ञप्ति शरीरादि अनहुई उपाधिसाथ मिलने से ‘ उपजेवत् चलतेवत् वस्तुवत् भासता है, सो वास्तव करके अजन्मा है

एवं न जायते चित्त मेवंधर्म्मा अजाःस्मृताः।एवमेव विजानन्तो न पतन्ति विपर्य्यये ४६।१७३॥

अचलहै अद्रव्यहै केवल विज्ञानघनहै अरु जन्मादि सर्व विकारसे रहितहोने से शान्त है, अरु एतदर्थही "एकमेवाद्वितीयम्" एक अद्वैत अद्वितीय है,। इत्यर्थः॥ ४५। १७२॥

४६।१७३॥ हेसौम्य, "एवं न जायते चित्तमेवंधर्म्मा अजाः स्मृताः" ऐसेचित्त (चैतन्य) जन्मता नहीं ऐसे धर्म्म (आत्मा) को अजन्मा कहतेहैं; अर्थात्। अब परमाचार्य प्रकरणोंका उपसंहार करतेहैं। पूर्वोक्तप्रकार कहेहुये हेतुओंसे, चित्त कहिये जो चैतन्यब्रह्महै सो अजहै। एतदर्थ जन्मता नहीं, इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता आत्मानुभवि। योंने धर्मकहिये आत्माको अजन्मा जाना है। अरु "एवमेव विजानन्तो न पतन्ति विपर्य्यये" ऐसेहीजाने हुये विपर्य्ययबिषे गिरतेनहीं; अर्थात् ऐसे उक्तप्रकारसे जानेहुये ही। अर्थात् तत्त्वमस्यादि महावाक्योंका आचार्यसे सम्यक्उपदेशपाय पुनः तिसका मनन निदिध्यासनकर साक्षात् यथार्थ आत्मानुभव कियेहुयेही। जन्मादिकोंसे रहित। अर्थात् एकजन्म उपलक्षणकरके, जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, विनश्यति, इन छः षट्भाव विकारोंसेरहित अद्वैत। निरुपाधि निर्विशेष शुद्ध। आत्मतत्त्वरूप विज्ञान। विज्ञप्तिमात्र विज्ञानघन ब्रह्मको। "कश्चिद्धीरा प्रत्यगात्मनमैक्षतावृत्तचक्षुः" इत्यादि श्रुतियोंकेवाक्यानुसार। बाह्यशब्दादिक विषयोंकी इच्छासे रहित।। समाहित चित्त। होयके, जानेहुये पुनः 'यह विद्वान्' अविद्यामय अन्धकारके सागररूप विपर्य्ययबिषे। अर्थात अजन्मादि लक्षणवान् आत्मा, तिससे विपर्य्यय जे जन्मादि षट्विकार भावादि लक्षणवान् शरीरादि संघात तिस विषयक जे आत्मभावरूप अज्ञानमय महा अंधसागर। तिसबिषे गिरते नहीं। क्योंकि "तत्रको मोहः कःशोक एकत्वमनुपश्यत" इत्यादि मन्त्रवर्णके प्रमाणसे ४६। १७३॥

ऋजुवक्रादिकाभास मलातस्पन्दितं यथा । ग्रहण-ग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा ४७। १७४ ॥

४७। १७४ ॥ हे सौम्य, " अजन्मा अचल अरु जात्याभास है " इसप्रकार पूर्व ४५ वें श्लोक विषे, कथनकिये परमार्थरूप ज्ञानको दृष्टान्तसे वर्णन करतेहुये कहते हैं " ऋजुवक्रादिका-भासमलातस्पन्दितंयथा " (जैसे सरल अरु वक्रादिक आभास अलातकाचलनाहै" अर्थात् जैसेलोकविषे सरल अरुवक्र (अर्थात् सीधा अरु टेढ़ा) आदिक प्रकार वा आकारवाला जो आभास कहिये प्रकाश है, सो अलात कहिये बनेठी वा अर्द्ध दग्धकाष्ठ रूपउल्का, तिसका चलना है (अर्थात् बनेठी वा अर्धदग्धकाष्ठके मुखपर जो एक अग्निबिंदु है तिस अग्नि बिन्दुका जो वक्रादि रूपसे सीधा टेढ़ा आदिक भासनाहै सो उस बनेठी वा अर्द्धदग्ध काष्ठके चलने वा भ्रमणसे है, उस अग्नि बिन्दुके स्वरूपसे ही नहीं) " ग्रहण ग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा " (तैसे ग्रहण अरु ग्राहकका आभास विज्ञानका चलनाहै " अर्थात् (जैसे अलातगत अग्नि बिन्दुका जो सीधाटेढ़ा भासनाहै सोउसअलात के भ्रमणादिकों सेहै, तैसेही ग्रहण अरु ग्राहकका जो आभास कहिये भासनाहै सो विज्ञानका अविद्यासे चलनेवत् चलना है। [अपने स्वरूपको नत्यागकरने वाले अधिष्ठानका जो असत् नाना आकारसे अवभास (प्रतीति अरु तिसकाविषय) है तिसका विवर्त्त कहते हैं । यहां विज्ञानका जो स्फुरण "जगदाकारसेभास-ना,है सो विवर्त्त रूपहै] जिसकरके अचल विज्ञानको वास्तवसे चलनानहीं, तिसकरकेही विज्ञानको " अजन्मा अचल है, इस प्रकार पूर्व कहाहै ४७। १७४ ॥

४८।१७५॥हे सौम्य,अब,विज्ञानशान्तहै,इसप्रकार पूर्व ४५ वें श्लोकविषे वर्णन कियाहै तिसको अब दृष्टांत करके दृढकरतेहैं, " अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा " (जैसे चलनेसे रहित

अस्पन्दमानमलातमनाभासमजंयथा। अस्पन्दमानंविज्ञान मनाभासमजं तथा ४८। १७५॥

अलातेस्पन्दमानेवै नाभासा अन्यतो भुवः। नततोऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशन्तिते ४९। १७६॥

अलात अनाभास अरु अजन्माहै; अर्थात् निस्पन्दमान अलात। अर्थात् भ्रमणेसे रहित बनेठी। सरलादिक आकारसे जन्म रहित हुआ अनाभास अरु अजन्मा है। अर्थात् अलातके वा काष्ठके मुखपरलगा जो अग्नि बिन्दु सो अलातके भ्रमणेसेभ्रमण रूपसे उत्पन्न होय भ्रमतेवत् भासताहै अरु उस अलातकेस्थित हुये वो अग्निबिन्दु जैसा उत्पत्ति अरु भ्रमणसे रहितहै तैसाही अनाभास अरु अजन्मा होताहै, अर्थात् वो अलातपरका अग्नि बिन्दु जैसे अलातके भ्रमणसे पूर्वहै तैसाही अलातके भ्रमणके शान्तहुयेहैं, अरु मध्यबिषे जो भ्रमणरूपसे उत्पन्नहुये अरु भ्रमतेवत् भासताहै सो अलातके भ्रमणरूप उपाधि करके भासताहै, परन्तु तिस अलातके भ्रमणकालमें भी वो अग्निबिन्दु अपने स्वरूपसे अलातके भ्रमणादिकोंकरके रहित सदा एकरस है। "अस्पन्दमानं विज्ञान मनाभासमजं तथा" तैसे निस्पन्दहुआविज्ञान अनाभास अरु अजन्मा है; अर्थात् जैसे अलातका अग्नि बिन्दु जैसा अज अचल है तैसा अलातके स्थिरहुये भासता है तैसेही अविद्याकरके चलायमान अरु अविद्याकी निवृत्तिके हुये चलनेसे रहित। अर्थात् उत्पत्त्यादि आकारसे अभासमान। हुआ जो विज्ञान सो अनाभास कहिये अचल अरु अजन्माही है। वा विज्ञान कहिये बुद्धि तद्विशिष्ट जो विज्ञान (चैतन्य) सो बुद्धिरूप उपाधिके साथ मिलनेसे बुद्धिके जन्मादि वा कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मवान् भासताहै परन्तु स्वरूपसे तैसानहीं। इत्यर्थः ४८।१७५॥

४९।१७६॥ हेसौम्य [अलातके दृष्टान्त बिषे सरल वक्रादिक आकारोंका असत्पना कैसेहै, इस शंकाकेहुये निरूपणके असहन

करनेसे तिनका असत्पनाहै, इसप्रकार समाधान कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि अलात वा अर्द्धदग्धकाष्ठ जब भ्रमता है तब तिस विषे अन्य देशान्तर से उसमें आयके प्रकाश होताहै, इसप्रकार कथनकरनेको शक्य नहीं क्योंकि सरलअरु वक्रादिक प्रकाशोंके देशान्तरसे आगमनकी अप्रतीतिहै ताते, अरु जब सोई अलात स्थित वा स्थिर होताहै तब तिससे अन्य ठिकाने प्रकाश होताहै यहभी कहनेको शक्य नहीं क्योंकि तहांभी तिसकी अप्रतीतिकी तुल्यताहै ताते ॥ अर्थात् जैसे अलातके अग्निबिंदुके जेसरल वक्रादि रूप प्रकाशहैं तिनका अलातके भ्रमणकालमें देशान्तरसे आयके अलातमें प्रवेशकी अप्रतीति है, तैसेही अलातके भ्रमण रहित स्थिरहुये उन प्रकाशोंकी देशान्तर जानेकीभी अप्रतीति है ताते अलातबिन्दुके सरलवक्रादिक प्रकाशोंकी देशान्तरसे आवागमनकी अप्रतीति तुल्यही है ॥ अरु वे आभास, प्रकाश, इसही अलातविषे लीनभी होतेनहीं, क्योंकि उस अलातको उन आभासों के उपादानपने का अभाव है ताते । अरु जब भ्रमणका निमित्त अलात उपादान होवे, तबतिसको प्रतीतिमात्र निमित्त होनेसे तिस निमित्तकरके हुयेजे प्रकाश तिनके अभावके अदर्शनसे सरल अरु वक्रादिक जे आकार हैं, सो भ्रमणके अभाव के हुयेभी अलातविषे होवेंगे । परन्तु ऐसा हैनहीं, एतदर्थ सोअलात सरल वक्रादि प्रकाशोंका उपादान नहीं, ताते किसीप्रकारसे भी निरूपणके असहनसे तिनका असत्पनाहै) "अलातेस्पन्दमानेवै नाभासा अन्यतोभुवः" (अलातके स्पन्दमानहुये आभास अन्यते होनेवालेनहीं) अर्थात् किंवा तिसहीअलातके चलते हुयेसीधे अरुवक्रादिक आभास (प्रकाश) अलातसे अन्यकिसीभी देशसे आयके अलातविषे होते नहीं, एतदर्थ सो प्रकाश अन्यसे होनेवालेनहीं। अरु "नततोऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशंतिते" (अचलहुये तिससे अन्य ठिकाने निकसते नहीं, औअलातकेताईं प्रवेश करते नहीं) अर्थात् अलातके अचलहुये सो सीधे टेढे

न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः। विज्ञानेऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः ५०।१७७॥

प्रकाश अलातसे निकल अन्य ठिकाने (देशान्तर) को जाते नहीं, अरु वे प्रकाश अचलहुये अलातबिषे प्रवेशकरते नहीं। अर्थात् अलात बिषे लगा जो अग्निबिन्दु तिसके भ्रमण से भासते जे सीधे टेढे प्रकाश सो किसी देशान्तरसे आयके भासते नहीं अरु उस अग्निबिन्दुके स्थिरहुये देशान्तरको जातेनहीं, अलातहीमें लय भी होतेनहीं, क्योंकि अलातसे निकसे नहीं ताते, अभिप्राय यहहै कि अलातके जे सीधे टेढे आदिक प्रकाश हैं सो न तो उस अग्निबिन्दुसे निकसे हैं न देशान्तरसे आयेहैं, अरु अग्निबिन्दुके स्थिरहुये न तो देशान्तरको जातेहैं न उसही में लयहोतेहैं। किन्तु उस काष्ठके भ्रमणेसे वो अग्निबिन्दु आपही सीधा टेढ़ाहो भासताहै सोभी उपाधिके सम्बन्धसेहै स्वरूप से नहीं ४९।१७६॥

५०।१७७॥ हे सौम्य, किम्बा "न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः" (अलातसे निकसेहुये नहीं, द्रव्यभावके अभावके योगसे) अर्थात् वे आभास कहिये सीधे टेढे प्रकाश ग्रह से निकसे हुयेवत् अलात (अग्निबिन्दु) से निकसेहुये नहीं, क्योंकि उनको द्रव्यभाव के अभावका योग है (अर्थात् उनको वस्तुपनेका अभाव है) ताते। जिसकरके वस्तुका प्रवेशादिक संभवे है अवस्तुका नहीं, ताते तिन आभासोंको (वस्तुपने के अभावसे अवस्तुरूपहुये) तिनके, निकसनेका अरु प्रवेशहोनेका असंभवहै ताते। अरु "विज्ञानेपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः" (तैसेही विज्ञानबिषे भी आभाससे अविशेष (तुल्य) होनेसे) अर्थात् अलातके अग्निबिन्दुवत्, विज्ञान (विज्ञप्ति मात्र चैतन्य) बिषे भी उत्पत्त्यादिकोंके आभास होतेहैं, तिनको अलातके आभासोंसे अविशेषता है। अर्थात् अग्निबिन्दुके सीधे टेढे प्रकाशा-

विज्ञाने स्पन्दमानेवै नाभासा अन्यतोभुवः । न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशान्ति ते ५१।१७८ ॥

कारों विषे अरु विज्ञान (चैतन्य) के जन्मादिक आकारों विषे आभासमात्रताकी तुल्यताहै ५०।१७७ ॥

५१।१७८ ॥ हे सौम्य, । प्र० । तिन । अलातके सीधे टेढे प्रकाशरूप आभासकी अरु, विज्ञानके जन्मादिक आभासोंकी । विषे आभासोंकी एकता कैसेहै, । तहां उत्तर कहते हैं "। विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः" (विज्ञानके स्पन्दहुये अन्य से भी आभास होनेको योग्य नहीं ; अर्थात् विज्ञान । कहिये विज्ञप्तिमात्र चैतन्य आत्मा, जोकि अपने स्वरूपकरके अचलहै। तिसके जिस किसप्रकारसे । अर्थात् मायादिक उपाधिसे । भी चलतेहुये तिस विज्ञानसे अन्य । प्रधानादिक । अन्य किसी कहींसे भी आयके आभास । जन्मादिक । तिस , विज्ञान, विषे होनेको योग्य नहीं, क्योंकि तिसकी प्रतीतीका अभावहै ताते । अरु "। न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्तिते " (निस्पन्द हुये तिसके अन्य ठिकाने होनेको योग्य नहीं, अरु वे विज्ञानबिषे प्रवेश करते नहीं ; अर्थात् । जो किसी भी प्रकारसे चलनको प्राप्तहुये विज्ञानके । चलनेसे रहित अचल स्थिरहुये तिस विज्ञान से इतर ठिकाने वे आभास होनेके योग्य नहीं, क्योंकि प्रतीति रूप आभासको सर्वत्र तबही विज्ञानकी अचलपने करके स्थिति विषे तुल्यता है ताते, । अरु सो आभास तिसही विज्ञानविषे प्रवेशकरते नहीं, क्योंकि तिस केवल शुद्ध विज्ञानको तिन आभास के उपादानपनेकी अप्रतीती है ताते ॥ अर्थात् ज्ञप्तिमात्र चैतन्य विज्ञानसे जन्मादि आभास उपजते नहीं तिसहीसे तिसविषे प्रवेशको पावते नहीं एतदर्थ वे जन्मादि आभास तिस विज्ञानबिषे मायाकृत भ्रान्तिमात्रही हैं, वास्तवसे नहीं ५१।१७८ ॥

५२।१७९॥हेसौम्य, "न निर्गता विज्ञानात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः"

न निर्गताविज्ञानात्तेद्रव्यत्वाभावयोगतः । कार्य्य कारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याःसदैवते ५२ । १७९ ॥

"सो विज्ञानसे निकसते नहीं द्रव्यत्वके अभावकरके युक्त होने से"; अर्थात् जैसे वे जन्मादि आभास विज्ञान कहिये चैतन्यबिषे प्रवेश करते नहीं, तैसेही वे आभास विज्ञप्तिसे निकसतेभी नहीं, क्योंकि वो द्रव्यभाव कहिये वस्तुभाव के अभाव करके युक्त हैं ताते ॥ इसका यह तात्पर्यहै विज्ञानका अन्यसर्व अलातके तुल्य है, परन्तु विज्ञानका जो सदा अचलपना है सो अलातसे विशेष है। अर्थात् विज्ञान बिषे जो जन्मादिक आभास हैं सो कुछवस्तु न होयके केवल आभास (भ्रान्ति) मात्रहीहैं ताते वास्तव करके न तो विज्ञानसे निकसते हैं न विज्ञानमें प्रवेशको प्राप्त होतेहैं। अरु अलातके आभासोंका (प्रकाशोंका) जो अलातसे निकसना अरु अलातमें प्रवेशका पावना भासता है सो अलातके भ्रमणे करके भासताहै, अरु विज्ञान है सो अलातवत् चल न होयके अचलहै यह उसमें अलातसे विशेषता होनेसे उसबिषे जन्मादिक आभासके होनेके हेतुका अभाव है। । प्रश्न । तब अचल विज्ञान, ज्ञप्तिमात्र, बिषे जन्मादिकों के आभास किसके किये हैं। तहां उत्तर कहते हैं, "। कार्य्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याः सदैवते"। "जाते वे कार्य कारण भावके अभावसे सदैव अचिन्त्य हैं"; अर्थात् जिसकरके वे जन्मादि आभास तिन आभासोंके अरु विज्ञप्तिमात्र विज्ञानके कार्यकारण भावका अभाव होनेसे।अर्थात् जन्य जनक भावके असंभवकरके सो आभास अभावरूपहैं ताते। सोसदा अचिन्त्य कहिये अनिर्वचनीय है ॥ । अथवा आभासोंको अरु विज्ञानको कार्य्यकारण भावका अभाव है, अर्थात् आभासों को भ्रान्तिमात्र होनेसे नतो कोई उनका कारणहै नवो किसीका कार्यहै, अरु विज्ञान को अजन्मा होनेसे न वो किसीका कारणहै न किसीका कार्यहै, अतएव आभास अरु विज्ञानके कार्य्य कारण

द्रव्यंद्रव्यस्यहेतुःस्यादन्यदन्यस्य चैवहि । द्रव्यत्वमन्यभावोवाधर्म्माणांनोपपद्यते ५३ । १८० ॥

भावका अभावहै, परन्तु वे आभास केवल भ्रांतिमात्र अभ्यस्त होनेसे सत्‌नहीं किन्तु असत् हैं अरु विज्ञान उन आभासों का अधिष्ठान (आश्रय) होनेसे असत् न होके सत्‌रूप है क्योंकि आश्रयविना भ्रान्ति होती नहीं, अरु ज्ञानकाल विषे भ्रान्तिके अभावहुये सत्‌रूप अधिष्ठान पावताहै, अरु जैसे मरुस्थलकाजल अनहुआभी अपने अधिष्ठान मरुस्थलको सत्‌रूप होनेसे सदैव भासताहै ताते अत्यन्त असत्‌भी नहीं, अरु जोपुरुष जलजानके प्रवर्त होताहै तिसको जलकी प्राप्तिहोती नहीं ताते सो सत्‌भी नहीं किन्तु अनिर्वचनीय है, तैसेही अनहुये जन्मादि आभास अपने अधिष्ठान नित्य सत्‌विज्ञान विषे सदाही अनिर्वचनीयहैं। एतदर्थ सो मिथ्याही होतेहैं ॥ जैसे अलात बिन्दुमात्र विषे मिथ्या जो सरलादिक अलातके आभास तिनविषे । बिनाविचारित । सरलादी आभास बुद्धि होतीहै, तैसेही विज्ञान (विज्ञप्ति) मात्रविषे मिथ्या जो जन्मादिक तिन विषे । विनाविचारितही । जन्मादिक बुद्धिहै सो मिथ्याहै । ताते सो सर्वथा त्याग करने योग्यही है । यहसमुदायकातात्पर्यार्थ है ५२ । १७९ ॥

५३।१८०॥ हे सौम्य, ["कार्यकारणताभावात्" (कार्य्य अरु कारण भावके अभावसे) इसप्रकार जो ५२ वें श्लोकविषे कहा, तिसको प्रतिपादन करनेका अब आरंभ करतेहैं । यहांयह अर्थ है कि,अवयवरूप जो द्रव्यहै सो अवयवीरूप द्रव्यका उपादानहै । अरु अवयवके जो गुणहैं सो अपने समान जातिवाले अवयवीके गुणोंविषे असमवायी कारणदेखेहै । इसप्रकार आत्मा को द्रव्यपनाहै नहीं कि जिसकरके उसको उपादानपनाहोवे । अरु तिसरूप वाले गुणोंका कहीं भी असमवायी कारणपना है नहीं क्योंकि तिस आत्मा विषे भेदरूप गुण गुणी भावके कथन का

एवं न चित्तजा धर्म्माश्चित्तं वाऽपि न धर्म्मजम्।
एवंहेतुफलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः ५४।१८१॥

असंभवहै ताते] इस प्रकार "अजमेकमात्मतत्त्वमिति" (अज, कहिये अवयव अवयवी भाव रहित, अरु एक कहिये गुण गुणी भाव रहित, आत्मतत्त्व है) इस प्रकार सिद्धहुआ। तिस आत्म तत्त्वबिषे जिन वादियों करके जन्मादिकोंके आभास अरु विज्ञान का कार्य्यकारण भाव कल्पितहै, तिनके मतबिषे "द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्य दन्यस्य चैवहि" (द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्य का हेतु (कारण) होताहै) अर्थात् जिन वादियों के मत बिषे जन्मादि आभासोंका अरु विज्ञानका कार्य्य कारण भावकल्पित है तिनके मतबिषे द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्यका कारण होता है, परन्तु तिसही का (अर्थात् अपना कारण आप) सो होता नहीं। अरु जिसकरके लोकबिषे जो अद्रव्य कहिये रूपादि गुण है, सो, स्वतन्त्र किसीका भी कारण देखानहीं। अरु "द्रव्यत्व-मन्य भावो वा धर्म्माणां नोपपद्यते" (धर्म्मका द्रव्यभाव वा अन्य भाव उपपद्य नहीं) अर्थात् जिसकरके आत्मा को अन्यका कारणपना वा कार्यपना प्राप्तहोवे ऐसा आत्मरूप धर्म्मोंका द्रव्य भाव वा किसीसे भी अन्य भाव बनता नहीं। अर्थात् द्रव्यभाव करके रहित निराकार निर्विशेष आत्माका द्रव्यभाव न होनेसे वो किसीका भी कारण नहीं अरु एक अद्वैत होनेसे उसका किसीसे अन्यभाव भी नहीं। एतदर्थ अद्रव्यरूप होनेसे अरु सर्वसे अभिन्न अनन्य होनेसे आत्मा न किसीका कार्यहै न किसीका कारणहै, यह अर्थहै ५३।१८०॥

५४।१८१॥ हे सौम्य, [रचने को इच्छित जो घटतिस घटकेज्ञान के अनन्तर घट उत्पन्न होता है, अरु उपजाहुआ, इदं घट, इस प्रकार विषयरूप होनेसे अपने ज्ञानका उत्पादक है, इस प्रकार का व्यवहार भी संभवता नहीं, क्यों कि किसी भी वस्तु को

यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः । क्षीणे हेतुफलावेशे नास्तिहेतु फलोद्भवः ५५ । १८२ ॥

विद्वान्की दृष्ट्यनुसार भिन्नरूपता नहीं इसप्रकार कहते हैं,] " एवं न चित्तजा धर्म्माश्चित्तं वा ऽपि न धर्म्मजम् " " इसप्रकार , धर्म्म , चित्तसे जन्य नहीं, वा चित्त भी , बाह्य , धर्म्मसे जन्य नहीं ; अर्थात् ऐसे उक्तप्रकारके हेतुओं करके आत्मरूप विज्ञान स्वरूपही चित्त कहिये चैतन्य ब्रह्म है, एतदर्थ घटादिरूप बाह्य धर्म्म चित्त जो चैतन्य तिस करके जन्य नहीं । वा चित्तभी बाह्य धर्म्मसे जन्य नहीं । अरु जीवरूप धर्म्मोंका परमात्मस्वरूप चित्त से जन्म युक्तनहीं, क्योंकि सर्वजीवाख्य धर्म्मोंको विज्ञानस्वरूप के आभास कहिये प्रतिबिम्ब भावहै ताते । अर्थात् यावत् जीव हैं सो सर्व विज्ञानरूप चैतन्यके , जलगत सूर्य के प्रतिबिम्बवत्, प्रतिबिम्बरूपहै ताते उनका परमात्मासे जन्म युक्त नहीं, " एवं हेतु फलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः " " इसप्रकार बुद्धिमान् पुरुष हेतु अरु फलकी अनुत्पत्ति को निश्चयकरते हैं ; अर्थात् चैतन्य करके बाह्य घटादिक जन्य नहीं, तैसेही चैतन्य भी बाह्य घटादिकरके जन्य नहीं, अरु अन्तर सर्वजीव भी चैतन्यसे जन्य नहीं , प्रतिबिम्बरूप होनेसे, ताते अन्तर बाह्यके सर्वधर्म्म चैतन्य करके जन्यनहीं केवल भ्रांतिमात्र हैं । इसप्रकार बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं वा निश्चय करतेहैं । तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्मरूप हुये ब्रह्मवेत्ता है सो वा ब्रह्मवेत्ता कहिये यथार्थ वेदवेत्ता हैं सो आत्मा बिषे हेतु अरु फलको । अर्थात् प्रारब्ध अरु देह जो परस्पर हेतु अरु फलरूपहैं तिन्होंको । अभावरूपही निश्चय करके जानते हैं ५४ । १८१ ॥

५५ । १८२ ॥ हे सौम्य, [फल जो देहादिक तिनसे,हेतु जे धर्म्मादिक सो होते नहीं,अरु तैसेही उक्तहेतुसे उक्त फलादिकभी होते नहीं । इसप्रकार वास्तविक दृष्टिसे उपदेशकिया । अबतिस

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः। क्षीणेहेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ५६। १८३॥

विषयक मुमुक्षुओंके आग्रहकी निवृत्तिकेअर्थ, तिसबिषे आग्रहके अभावाभावके हुये तिनकी उत्पत्ति अरु अनुत्पत्तिको देखावे हैं] प्रश्न। जो पुनः हेतु अरु फलबिषे आग्रहको प्राप्तहुये हैं तिनको क्या फलहोताहै। उत्तर। "यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतु फलोद्भवः" 'यावत् हेतु अरु फलबिषे आग्रहहै तावत् हेतु अरु फलका उद्भव होताहै' अर्थात् धर्म अरु अधर्मनामवाले जे हेतु (शरीरोत्पत्तिके कारण) हैं तिनका कर्त्ता मैं हौं, अरु धर्मअधर्म मेरेहैं तिन धर्म अधर्मोंका फल कालान्तरबिषे कोईएक (स्वर्ग नरकादि)देश बिषे प्राणधारियोंके समूहबिषे (अर्थात् कोईएक योनिबिषे) उत्पन्नहुआ मैं भोगोंगा। इसप्रकारका यावत् हेतुअरु फलबिषे (कर्तृत्व भोक्तृत्वका) आग्रह है। अर्थात् तिनबिषे तत्पर चित्तवाले पुरुषकरके अपने आपबिषे हेतु अरु फलका आरोप करते हैं, तावत् धर्म अधर्मरूप हेतुका अरु तिनके फलका उद्भव कहिये (उच्छेदरहित प्रवृत्ति) होती है। तथाच "धर्म्मेतरौतत्रपुनःशरीरकं पुनःक्रियाश्चत्र वदर्यितेभवः" अरु "क्षीणेहेतु फलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः" 'हेतु अरु फलबिषे आग्रहके क्षीणहुये हेतु अरु फलका उद्भव होता नहीं' अर्थात्, जबपुनः (जैसे मन्त्रअरुओषधिकरके प्रेतादिकके आवेशके अभावहोनेवत्) उक्तप्रकारके अद्वैत तत्त्वके (श्रवण मनन, दर्शनसे 'अविद्याकरके उद्भूत जोहेतु अरु फल तिनका आवेश सम्यक् प्रकार दूरहोता है,। तब तिन उक्त हेतुअरु फलबिषे आग्रहके क्षीण (नाश)हुये हेतु अरु फलकापुनः उद्भव होता नहीं। इतिसिद्धम् ५५। १८२॥

५६।१८३॥हेसौम्य, (प्रश्न) जोकदापि हेतु अरु फलकाउद्भवहोवे तो क्या दोषहै,। उत्तर। कहते हैं। "यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः" अर्थात् यावत् सम्यक् ज्ञानकरके हेतु अरु

संवृत्याजायतेसर्व्वं शाश्वतंनास्ति तेन वै। सद्भावेन ह्यजंसर्व्वमुच्छेदस्तेननास्तिवै ५७। १८४॥

फलका आग्रह (सम्यक्प्रकार अशेष) निवृत्त होतानहीं, किन्तु (अज्ञान) करके होताहै तावत् अक्षीणहुआ संसार दीर्घहोता है (अर्थात् यावत् सम्यक् आत्मज्ञान करके उक्तहेतु अरु फल इन विषयक आग्रह अशेष निवृत्त होतानहीं तावत् अज्ञानकरके हेतु अरु फलरूप संसार विस्तारको ही पावताहै)। अरु "(क्षीणेहेतु फलावेशे संसारं न प्रपद्यते" (हेतु अरु फलविषयक आग्रहके क्षीण हुये संसारको पावता नहीं) अर्थात् पुनः जब (सम्यक् आत्मज्ञान करके) उक्त हेतु अरु फल विषयक (समूल, अज्ञान, के) आग्रह अशेष क्षीण (नाश) होता है तब कारणके अभाव हुये संसारको पावता नहीं॥ इति सिद्धम् ५६। १८३॥

५७। १८४॥ हे सौम्य, (शंका) ननु, "अजादात्मनोऽन्यन्नास्ति" (अजन्मा आत्मासे अन्य है नहीं) इसप्रकार कूटस्थ अद्वितीय आत्मतत्त्वको इच्छनेवाले तुमकरके, हेतु अरु फल, अरु संसारकी, उत्पत्ति अरु विनाश कैसे कहाहै, (हे वादी अपनी इस शंकाका समाधान श्रवणकर "(संवृत्या जायते सर्व्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै" (ढापने से सर्व उपजता है तिसकरके नित्य नहीं है) अर्थात् अविद्याके आधीन लौकिक व्यवहाररूप ढापनेसे सर्व उपजता है तिसहेतु करके उत्पन्नहुये अविद्याके आधीन वस्तुविषे नित्य (नित्यता) है नहीं, एतदर्थ उत्पत्ति अरु विनाशरूप संसार उपजता है, इसप्रकार कहते हैं। अरु "(सद्भावेनह्यजंसर्व्वमुच्छेदस्तेन नास्तिवै" (सद्भावसे जन्मरहित सर्वहै तिसकरके उच्छेद है नहीं) अर्थात् जिस करके परमार्थ सद्भाव, परमार्थसत्ता, से तो जन्मरहित सर्व आत्माही है "आत्मैवेदं सर्व्वं" इत्यादि श्रुति। एतदर्थ तिस जन्मके अभावरूप कारणकरके हेतु अरु फलादिक किसीका भी उच्छेद

धर्म्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्त्वतः। जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते ५८। १८५॥

कहिये विनाश है नहीं ॥ [यहां यह भाव है कि, जैसे सम्मुखवर्त्ति रज्जु बिषे सर्प के अभावका अनुभवकर्त्ता विवेकी पुरुष सर्प नहीं यह रज्जुहै वृथाही भयको क्यों प्राप्तहोता है, इसप्रकार भ्रान्त पुरुषको कहता है अरु वो भ्रान्त पुरुषतो अपने अपराधसेही (शुद्ध रज्जुबिषे) सर्पकी कल्पनाकर भयको पावतसन्ते भागता है। तहां विवेकीका वचन मूढकी दृष्टिसे विरोधको पावता नहीं, तैसे परमार्थरूप कूटस्थ आत्माका दर्शन व्यावहारिक जन्मादिकोंके वचनसे विरोधको न पायके अविरुद्धही है, ५७। १८४॥

५८। १८५॥ हे सौम्य, ["संवृत्या जायते सर्व्वम्" (लौकिकव्यवहार से सर्व होताहै) इसप्रकार ५७ वें श्लोकबिषे कहा, तिसको अब पुनः वर्णन करतेहैं] "(धर्म्मा य इति जायन्ते जायन्ते ते न तत्त्वतः" (जो भी धर्म्म जन्मते हैं ऐसे, तत्त्वसे सो जन्मते नहीं) अर्थात् जो अपि आत्मा अरु अन्य अनात्मरूप धर्म्म कहिये पदार्थ उपजते हैं इसप्रकार कहते हैं (अर्थात् कल्पना करते हैं) सो धर्म्म इसप्रकारके हैं, इसप्रकार पूर्वोक्त लौकिक व्यवहाररूप ढक्कन (पडदा) कहते हैं, कि ढांपने कहिये गुप्तपनेसेही वे धर्म्म जन्मतेहैं, परन्तु तत्त्व कहिये परमार्थसे जन्मते नहीं। अरु "(जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते" (तिनका जन्म मायाकी उपमावालाहै अरु सो माया विद्यमान है नहीं) अर्थात् जो पुनः ढपनेसे तिन उक्तप्रकार के धर्म्मोंका जो जन्म है सो, जैसे मायाका जन्महोता है तैसे है, एतदर्थ सो तिनका जन्म मायाकी उपमावाला प्रतीतकरने के योग्यहै। प्रश्न। तब मायानामक कुछ वस्तु होवेगी, (उ०) सो माया कुछ विद्यमान नहीं, अभिप्राय यह है कि अविद्यमान वस्तुका नाम मायाहै ५८॥ १८५॥

यथामाया मयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः । ना-
ऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्म्मेषु योजना ५९।१८६॥
नाजेषु सर्व्वधर्म्मेषु शाश्वता शाश्वताभिधा ।
यत्रवर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ६०।१८७॥

५९।१८६॥ हे सौम्य, । प्रश्न । तिन धर्म्म कहिये पदार्थोंका जन्म माया की उपमावाला कैसेहै, । तहां ,उत्तर, कहते हैं "यथा मायामयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः" । जैसे मायामय बीजते माया मय अंकुर होताहै ; अर्थात् जैसे आम्रादिकों के मायामय बीज से । अर्थात् कोई ये मायावी पुरुष करके आरोपित आम्रादिक वृक्षके मायामयबीजसे मायामय अंकुर उपजताहै । अरु "नाऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजना" । यह नित्यनहीं वा विनाशी नहीं तैसे धर्म्मोंविषे योजनाहै ; अर्थात् यह ,मायामय, अंकुर नित्य नहीं,वा विनाशी नहीं, क्योंकि मिथ्याहै ताते, तैसेहीं धर्म्म कहिये पदार्थों विषे जन्मअरु नाशादिकोंकी योजनाहै । अर्थ यहहैकिपरमार्थसे धर्म्मोंकाजन्मवानाशघटतानहीं ५९। १८६ ॥

६०।१८७॥ हे सौम्य, [सद्भावसे सर्व अजन्माहै, इस प्रकार जो ५७ वें श्लोकविषे कहा, तिसको वर्णन करतेहैं] "नाजेषु सर्वधर्म्मेषु शाश्वता शाश्वताभिधा" । अजन्मा सर्व धर्म्मों विषे नित्यहै वा अनित्यहै ऐसा नाम 'कहना' नहीं ; अर्थात् परमार्थ से तो नित्य एकरस विज्ञप्तिमात्र सत्तारूप अजन्मा सर्व धर्म्म कहिये आत्माविषे नित्यहै वा अनित्यहै, ऐसानाम ,कहना, प्रवर्त्त होता नहीं । क्योंकि "। यत्रवर्णा न वर्त्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते" । जिनविषे वर्ण प्रवर्त्तहोते नहीं तिन विषे विवेक कहते नहीं ; अर्थात् जिन्हों करके अर्थोंका वर्णन करिये ऐसे जे शब्द तिनको वर्ण कहते हैं, सो जिस आत्माविषे वर्ण "यह ऐसा है" इसप्रकार कहने को प्रवर्त्त होते नहीं, तिस । आत्मा। विषे नित्य है वा अनित्यहै, ऐसा विवेक कहते नहीं, क्योंकि

यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया। तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ६१।१८८॥

अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः। अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ६२।१८९॥

"यतोवाचो निवर्त्तन्ते" इत्यादिश्रुति प्रमाण है ६०।१८७॥

६१।१८८॥ हे सौम्य, आत्माको शब्दकी अगोचरताके (अर्थात् अविषयताके) हुये, यह आत्मा व्याख्याकारोंकरके, शब्दोंसेही प्रतिपादनकरनेकी योग्यताको कैसे प्राप्तहोताहै, । यहशंका करके चित्तका स्फुरणमात्र अविचारित सुन्दर प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैतहै, इसप्रकार दृष्टान्त सहित कहतेहैं "यथास्वप्नेद्वयाभासं चित्तं चलति मायया। तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया" (जैसे स्वप्नबिषे द्वैताभासरूप चित्त (मन) मायासे चलताहै, तैसे जाग्रत्बिषे द्वैताभासरूप चित्त मायाकरके चलित होताहै) ६१।१८८॥

६२।१८९॥ हे सौम्य, (शंका) ननु, स्वप्नबिषे प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैतको मनके चलन कहिये स्फुरणमात्ररूपके हुये भी जाग्रत्बिषे तिसप्रकार (मनका स्फुरणमात्र) कैसे होवेगा, यह शंकाकरके उत्तर कहतेहैं "अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः। अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः" (स्वप्नबिषे अद्वैतरूपहुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है, यामें संशय नहीं, तैसे जाग्रत् बिषे अद्वैतरूपहुआ चित्त द्वैताभासरूप होताहै इसमें संशय नहीं) अर्थात् स्वप्नबिषे वास्तव करके अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणासे द्वैतरूप होताहै तिसमें संशयनहीं, तैसे जाग्रत् बिषे भी अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणासे द्वैतरूप होता है इसमें भी संशय नहीं॥ अरु जो पुनः परमार्थ से अद्वैतरूप विज्ञानमात्र वस्तुको वाणीका विषयपनाहै सो मनका स्फुरणमात्रहै, परमार्थसे नहीं, यहपूर्व अद्वैतनामक तृतीय

स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसुस्थितान् ।
अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ६३ । १९० ॥

स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् ।
तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते ६४।१९१ ॥

प्रकरणविषे व्याख्यानकिये इन ,६१,६२, दो श्लोकोंका तात्पर्यहै ६२।१८९ ॥

६३।१९०॥हे सौम्य, "स्वप्नदृक् प्रचरन स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान्, अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा" "स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नविषे विचरताहुआ दशहों दिशाविषे स्थित, अण्डज वा स्वेदजरूप भी जीवोंको सदा देखताहै" अर्थात् इस कथनके हेतुसे भी वाणीका विषय जो द्वैत तिसका अभाव है, । जैसे स्वप्नरूप स्थानविषे स्वप्न जगत्का देखनेवाला ऐसा जो स्वप्नका द्रष्टा सो स्वप्नविषे विचरताहुआ दशहों दिशाविषे स्थितकहिये वर्त्तमान अण्डज वा स्वेदजरूप भी । जरायुज अरु उद्भिजरूप । जिन प्राणियोंको सदा देखताहै [सो तिससे भिन्ननहीं इसप्रकार अग्रिम श्लोकसे संबन्धहै ६३ । १९० ॥

६४ । १९१ ॥ हे सौम्य, । प्र० । जब ऐसे है तब तिसकरके हुआक्या, । तहां उत्तर कहतेहैं "स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" "स्वप्नद्रष्टाके चित्तकरके देखनेयोग्य तिससे पृथक्नहीं" अर्थात् स्वप्नद्रष्टाके चित्तकहिये मनकरके देखनेयोग्य वे जीव सो स्वप्नद्रष्टाके चित्तसे भिन्ननहीं । अरु जो ऐसाकहे कि, तब चित्तही जीवादिक भेदके । द्रष्टा अरु चित्तके । आकारसे विकल्पको पावताहै, । सो कथन बनेनहीं । तहां कहतेहैं "तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते" "तैसे यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्त तिसकरके देखनेके योग्यही अंगीकार करतेहैं" अर्थात् तैसे यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्त तिस स्वप्नके द्रष्टाकरके देखनेके योग्यही

चरन् जागरिते जाग्रद्दिक्षुवै दश सुस्थितान्। अण्डजान्स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ६५। १९२॥

जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते नविद्यन्ते ततःपृथक्। तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते ६६। १९३॥

अंगीकार करते हैं। अर्थात् जैसे स्वप्नके द्रष्टाकरके स्वप्नके पदार्थ देखने योग्यहैं, तैसे चित्तभी है। एतदर्थ स्वप्नके द्रष्टासे भिन्न चित्तनाम कोई वस्तुनहीं, इत्यर्थः ६४। १९१॥

६५।१९२॥हेसौम्य, अब दृष्टान्तबिषे स्थित अर्थको दार्ष्टान्त बिषे योजना करते हैं। "चरन्जागरिते जाग्रद्दिक्षुवै दशसुस्थितान, अण्डजान् स्वेदजान्वाऽपि जीवान् पश्यति यान सदा" "जाग्रत्बिषे जाग्रत्के दशहोदिशाबिषे विचरता तहां स्थित अंडज वा स्वेदज भी जिन जीवोंको सदा देखता है" अर्थात् जाग्रत् बिषे जाग्रत् अवस्थावाला पुरुष दशहो दिशाबिषे स्थित जे अंडज वा स्वेदज, जरायुज अरु उद्भिजरूप, चारिखानिके जिन जीवोंको। अर्थात् कार्य्य कारणात्मक संघातको। सदा देखताहै ६५।१९२॥

६६।१९३॥हेसौम्य, "जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" "जाग्रत्के चित्तसे देखनेके योग्य तिससेपृथक् विद्यमान नहीं" अर्थात् जाग्रदवस्थावाले पुरुषके चित्तकरके देखनेके योग्य वे। उक्त चारखानिके। जीव तिस जाग्रदवस्थावाले पुरुषके चित्तसे भिन्न नहीं "तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते" "तैसे यह जाग्रत्का चित्त तिस द्रष्टाकरके देखनेकेयोग्यही अंगीकार करतेहैं" अर्थात् जैसे जाग्रत्के द्रष्टाकरके जाग्रत केजीवादि पदार्थ देखनेके योग्यहैं, तैसे इस जाग्रदवस्थावाले पुरुषकाचित्त तिस जाग्रत्के द्रष्टा पुरुषकरके देखनेके योग्य है ऐसा अंगीकार करतेहैं॥ अरु इन ६५,६६, दो श्लोकोंके भावार्थरूप यह दो अनुमानहैं। जाग्रदवस्थावाले पुरुषकेदृश्य जो जीवादि सोतिस

उभे ह्यन्योन्यदृश्येते किन्तदस्तीति चोच्यते । लक्षणाशून्यमुभयं तन्मतेनैव गृह्यते ६७ । १९४ ॥

के चित्तसे अभिन्नहै, क्योंकि चित्तकरके देखनेयोग्यहै ताते, जैसे स्वप्न के द्रष्टाके चित्तकरके देखने के योग्य स्वप्नके जीवादिक [चित्तसे अभिन्नहैं] तैसे ॥ अरु सो जीवोंके देखनेरूप चित्तहैसो द्रष्टा से अभिन्न है, क्योंकि द्रष्टाका दृश्य है ताते, स्वप्न के चित्तवत् ६६ । १९३ ॥

६७।१९४॥हेसौम्य, [दृश्य अरु दर्शनके भेदकेग्राहक प्रमाण करके वाधितहुये यह दोनों हेतुहैं,। यह शंका करके तब कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि दृश्य अरु दर्शन यहदोनों परस्परकी अपेक्षा से सिद्ध होनेवाले हैं। दृश्यके सिद्धहुये तिसकरके अविच्छिन्न कहिये विशिष्ट, दर्शन (ज्ञान) सिद्ध होता है, अरु तिस दर्शन के सिद्धहुये तिसकरके अविच्छिन्न दृश्य (विषय) सिद्ध होतेहैं। इस प्रकार अन्योन्याश्रय रूप दोष करके दृश्य वा दर्शन सिद्ध होते नहीं। एतदर्थ तिनके भेदकेग्राहक प्रमाणके अभावसे उन दोनों हेतुओंका बाध है नहीं] वेजीव अरु चित्त यह दोनों परस्परके दृश्य कहिये विषय होतेहैं। अरु जिसकरके जीवादिक विषयोंकी अपेक्षावाला चित्त प्रसिद्ध होताहै, अरु जिसकरके चित्तकी अपेक्षावाला जीवादिक दृश्यहै, एतदर्थ "[उभेहयन्योन्यदृश्येते किन्तदस्तीतिचोच्यते]" [वेदोनों अन्योन्यकरके दृश्यहैं सो क्या है ऐसे (प्रश्नकर्त्ताप्रति) कहते हैं, अर्थात् वे जीव अरु चित्त दोनों परस्परके दृश्य हैं। [अर्थात् परस्पर करके देखने (विषयकरने) योग्य हैं,] अरु जिसकरके वे दोनों परस्पर के दृश्य हैं, एतदर्थ [अन्योन्याश्रयरूप दोषके सद्भावसे] चित्त अथवा चित्तकरके देखनेके योग्य जो दृश्य पदार्थहै सो क्याहै, इसप्रकार प्रश्न किये हुये, विवेकी पुरुषकरके 'यह कुछभी हैनहीं, इसप्रकार कहाहै वा कहतेहैं। जैसे स्वप्नविषे। ["तत्ररथानरथयोगा"] इत्यादि प्रमाण

यथास्वप्नमयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच। तथाजीवा अमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच ६८। १९५॥

सो। हस्ती वा हस्तीका चित्त विद्यमान हैनहीं, तैसे यहां जाग्रत् बिषे भी विवेकी पुरुषको कुछभीवस्तु विद्यमानकरके प्रतीतहोता नहीं॥ यह अभिप्राय है। प्रश्न॥ जाग्रत्बिषे चित्त वा चित्तका दृश्य यह दोनों विद्यमान कैसे नहीं,। तहां, उत्तर, कहते हैं "लक्षणा शून्य-मुभयं तन्मते नैव गृह्यते" (यह दोनों लक्षणा शून्यहैं तिनके मत-सेही ग्रहण करतेहैं ? अर्थात्, जिस करके लखा (देखा) जाय सो कहिये लक्षण। ऐसा जो प्रमाण तिसको यहां लक्षणाकहते हैं। अरु जिस करके चित्त अरु चित्तका दृश्य, चेत्य, यह दोनों लक्षणा कहिये प्रमाण तिससे रहित हैं, ताते तिनके भेदका प्रमाणीक-पना (प्रमाण करने योग्यपना) है नहीं। अरु वादियोंने तो तिन-के मत-करके। तिस दृश्य अरु ज्ञानबिषे तत्पर चित्तवान्तारूप दोष करके। सो दृश्य अरु दर्शन ग्रहण किये हैं, ताते घटकी बुद्धि को दूरकरके [यहां यह अर्थ है कि, घटबिषे क्या प्रमाणहै,। इस प्रकार प्रश्न किये हुये, ज्ञान प्रमाणहै, ऐसा उत्तर बने नहीं, क्योंकि अन्य बस्तुओंके ज्ञानबिषे अतिप्रसंग। अति व्याप्ति। हो-वेगी ताते। अरु घटका ज्ञान प्रमाणहै, ऐसा उत्तर भी बने नहीं, क्योंकि अन्योन्याश्रय दोषका प्रसंग प्राप्त होता है ताते। अतएव घट अरु तिसके ज्ञानका प्रमाण अरु प्रमेयभाव संभवे नहीं] घट ग्रहण करते नहीं, अरु घटको दूरकरके घटकी बुद्धि (ज्ञान) भी ग्रहण करतेनहीं। एतदर्थ तिस ज्ञान अरु ज्ञेयरूप चित्त अरु चित्त के दृश्यबिषे प्रमाण अरु प्रमेय का भेद कल्पना करने को शक्य नहीं॥ इत्यभिप्रायः॥ ६७। १९४॥

६८। १९५॥ हे सौम्य, [दर्शन कहिये ज्ञानसे भिन्न अंड-जादि दृश्य पदार्थोंके असद्भावके अनुमानके ग्राहक प्रमाणकरके बाधको निवारण करके, अब दर्शनसे भिन्न तिन अंडजादिकनके

यथामायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच ६९ । १९६ ॥

यथानिर्मितकोजीवो जायतेम्रियतेऽपिवा । तथा जीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच ७० । १९७ ॥

असद्भावके हुये जन्मादिकोंकी प्रतीतिका बाधहोवेगा, इस शंका को दूर करते हैं,] " यथास्वप्नमयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच " । (जैसे स्वप्नमय जीव जन्मताहै अरु मरता भी है , तैसेही यह सर्वजीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते) ॥ अर्थात् जैसे स्वप्न विषे अन हुये ही जीव जन्मते अरु मरते हैं , तैसे यह जाग्रत् के जीव भी न हुये हुये जन्मते अरु मरते हैं ६८ । १९५ ॥

६९ । १९६ ॥ हे सौम्य [अब मायामय जीवके अरु निर्मितक जीवके भेदके जानने की इच्छावालेके प्रति कहते हैं] "यथा मायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच " (जैसे मायामय जीव उपजता है अरु मरता भी है, तैसे यह सर्व्व जीव होतेभी हैं अरु नहीं भीहोते) अर्थात (जैसे इन्द्रजालिक मायावियोंकी मायासे) मायामय जीव जन्मता है अरु मरता भी है, तैसेही प्रज्ञप्तिमात्र चैतन्यकी मायासे (जो कि वास्तवमें है, नहीं) यह (अंडजादि) सर्व जीव उत्पत्यादि होते भी हैं अरु नहीं भी होते ६६ । १९६ ॥

७० । १९७ ॥ हे सौम्य, " यथानिर्मितकोजीवो जायतेम्रियतेऽपिवा । तथाजीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच " (जैसे निर्माण किया जीव जन्मता भी है वा मरता भी है , तैसे यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते) ॥ अर्थात् जैसे मन्त्र औषधि आदिक सामर्थ्यसे इन्द्रजाली आदिक मायावियों करके निर्माण किया जीव जन्मता भी है अरु मरताभी है, तैसेही यह अंडजादि सर्व जीव होते हैं नहीं भी होते । अर्थात्, ६८, ६९, ७०, इन तीन

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ७१।१९८॥

श्लोकों का तात्पर्यार्थ यह है कि, जैसे [संवित् कहिये चैतन्य रूपज्ञान तिससेभिन्न अंडजादिकोंका परमार्थकरके सद्भावके अभावके अनुमानका जन्मादिककी प्रतीतिसे बाधहोतानहीं, क्योंकि सद्भावके अभावहुये भी स्वप्नादिकों विषे जन्मादि विकल्पके बाहुल्यता की प्रतीतिहै ताते। इसप्रकार, ६८, ६९, ७०, इनतीन श्लोकोंके तात्पर्यको कहते हैं] स्वप्नमय मायामय अरु औषधि आदिकरके रचित अंडजादि जीव जन्मते हैं अरु मरते हैं, तैसेही यह मनुष्यादिरूप जीवभी अविद्यमानहुयेही चित्तकी कल्पना मात्रही हैं ७०।१९७॥

७१।१९८॥ हे सौम्य, " न कश्चिज्जायतेजीवः संभवोऽस्य न विद्यते " (इसका कारण नहीं ताते कोई भी जीव जन्मता नहीं) अर्थात् जिसकरके [जो वादी, जन्मादिक सत्यहै, इस प्रकार मानताहै तिसके प्रति पूर्व तृतीय प्रकरणके अन्तके श्लोकविषे " न कश्चिज्जायते जीवः " इत्यादि कहाहै तिस अर्थको पुनः स्मरण करावतेहैं] इस (जगत्) का कारण नहीं, तिसही करके कोई भी जीव जन्मता (उपजता) नहीं। अरु " एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते " (जिसविषे कुछ भी जन्मता नहीं यह तिनके मध्य उत्तम सत्यहै) अर्थात् जिस सत्यरूप (एक अद्वितीय) ब्रह्मविषे कुछ किञ्चिन्मात्र भी उपजता नहीं, यह उन पूर्वके ग्रन्थोंविषे उपायपने करके उक्त सत्योंके मध्य उत्तम सत्यहै। इसका भावार्थ यहहै कि, व्यवहारविषे सत्य विषयको अरु जीवोंका जन्म मरणादिक स्वप्नादिकोंके जीवोंवत् है। अर्थात् जैसे स्वप्नविषे जीवादिक अनेक पदार्थ उपजते विनशते हैं तैसेही यह जाग्रत्के जीवादिकोंको कल्पनामात्रही जानना। इसप्रकार पूर्वके तीन श्लोकोंविषे कहा, परन्तु " न कश्चिज्जायते

चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम् । चित्तं निर्व्विषयं नित्यमसंगन्तेनकीर्त्तितम् ७२।१९९ ॥

जीवः ” ‘ कदापि कोई भी जीव जन्मता नहीं ’ यह परमार्थसे जो सत्य है ॥ इस श्लोकका अर्थ पूर्व तृतीय प्रकरणके अन्तके श्लोकविषे कहाहै ७१ । १९८ ॥

७२।१९९ ॥ हे सौम्य, “ चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम्, चित्तं निर्व्विषयं नित्यमसंगन्तेन कीर्त्तितम् ” ‘ चित्तका स्फुरण रूपही यह ग्राह्य अरु ग्राहकवाला द्वैत, विषयरहित चित्त है तिसकरके नित्य असंग कहा है ’ अर्थात् [ज्ञानको, कल्पित दृश्यकरके उपहित कहिये उपाधिवाले रूपकरके दृश्यपनाहोने से, तिसका देखेहुये पदार्थोंसे भिन्न सद्भाव है नहीं, इसप्रकार स्वप्नके दृष्टान्तसे कहा, अब वास्तवसे ज्ञानको विषयसे सम्बन्ध के अभावसे आत्माही ज्ञान है, इसप्रकार कहते हैं] चित्त जो मन तिसका स्फुरणरूपही यह ग्राह्य कहिये विषय अरु ग्राहक कहिये इन्द्रिय, इनवाला द्वैत है, अरु विषयरहित चित्त कहिये चैतन्य आत्माहै । तिस हेतुकरके सो चित्त कहिये आत्म चैतन्य को नित्य असंग कहाहै । इसका तात्पर्य यह है कि सर्व्व ग्राह्य अरु ग्राहकवाला चित्तका स्फुरणरूपही द्वैत परमार्थसे आत्माही है “ आत्मैवेदं सर्व्वं ” एतदर्थ सो चित्त संज्ञक चैतन्य आत्मा निर्विषय है । अरु तिस निर्विषयहोने रूप हेतुकरके तिसको नित्य असंग कहाहै “ असंगोह्ययं पुरुषः ” ‘ असंगही यह पुरुषहै, यह बृहदारण्य उपनिषद्के प्रमाणसे । विषय सहित वस्तुका विषयविषे संग कहिये आसक्ति होवे है अरु चित्त संज्ञक आत्मा जिसकरके अविषय है एतदर्थही असंग है, इस युक्तिसे आत्मा का असंगपना सर्वदा सिद्धही है । जैसे आकाश निराकार निरवयव अतिसूक्ष्महोनेसे जल घृत तैलादिक सर्वमें व्याप्तहुआ भी जलादिक किसीपदार्थ अरु तिनके धर्म्मोंसाथ कदापि स्पर्शमात्र

योऽस्तिकल्पितसंवृत्या परमार्थेननास्त्यऽसौ। परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्तिपरमार्थतः ७३। २००॥

भी करता नहीं, तैसे आकाशसे भी महासूक्ष्म निराकार निर्विकार आत्मा आकाशादि सर्वमें व्याप्तहुआ हुआ भी सदा असंगहीहै। ७२।१९९॥

७३।२००॥ हेसौम्य,।शंका। ननु, जब निर्विषय होने करके चित्त जो चैतन्य ब्रह्म, तिसका असंगपनाहै, तब सो असंगपना सिद्धहोता नहीं, क्योंकि शास्ता कहिये शिक्षाका करनेवालागुरु, शास्त्र अरु शिष्य (अर्थात् 'शास्ता, शास्त्र अरु शिष्य, इत्यादि प्रमाता प्रमाणादिक विषय विद्यमान हैं ताते,। समाधान यह दोष बने नहीं, क्योंकि "योस्तिकल्पितसंवृत्या परमार्थेननास्त्यऽसौ" ('जो कल्पित तिसकरके हैं यह परमार्थसे है नहीं' अर्थात् जो शास्त्र शास्तादि पदार्थ विद्यमान है, सो परमार्थकी प्राप्तिकासाधन। उपाय। होने करके कल्पित जो व्यवहार तिसकरके है। परन्तु यह शास्त्रादि पदार्थ परमार्थसे हैनहीं। इसमें "ज्ञातेद्वैतं नविद्यते" (जानेहुये द्वैत है नहीं) यह प्रथम प्रकरणके २५ वें श्लोक करके, उक्तवाक्य अनुकूल है। अरु [ननु, वैशेषिक वादी जो हैं सो द्रव्यसे आदिलेके समवाय पर्यन्त षट्पदार्थों को परमार्थसे मानते हैं, अरु जब तैसे है तब चैतन्यको असंगपना कैसेहै,। तहां ,समाधान, कहते हैं;। यहां यह अर्थहै कि वैशेषिक मतवादियोंकी परिभाषासे कल्पित व्यवहारके अनुसारसे जोद्रव्यसे आदिलेके समवाय पर्यन्त पदार्थहैं सो परमार्थसे हैं नहीं, किन्तु व्यवहारसत्ता करके भासताहै, अतएव चैतन्यआत्माका असंगपना सर्वदा अविरुद्धही है।] "परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्तिपरमार्थतः" ('अन्य ,शास्त्रके, व्यवहारसे होय सो परमार्थसे नहीं' अर्थात् जोअन्य वैशेषिकादि मतवादियोंके शास्त्रके व्यवहारसेहोवे सो परमार्थ से निरूपण कियाहुआ नहीं। अतएव ,तिस करके

अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः । परतन्त्रो ऽभिनिष्पत्त्या संवृत्या जायतेतुसः ७४ । २०१ ॥

असंगकहाहै, इसप्रकारका जोहमारा कथनसोयुक्तहीहै ७३ । २०० ॥

७४ । २०१ ॥ हेसौम्य, । शंका । ननु, शास्त्रादिकनको व्यवहाररूपताके होनेसे "अजइति" (अजन्माहै) यह । शास्त्रोक्त कल्पनाभी व्यवहाररूपही होगी, । समाधान । तहां ऐसेही सत्यहै, यहकहते हैं "। अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः" । (कल्पितव्यवहारसेही अजन्मा है परमार्थसे अजन्माभी नहीं) अर्थात् शास्त्रादिकों के कल्पित व्यवहारसेही अजन्माहै, ऐसा कहतेहैं, अरु परमार्थसेतो अजन्माभी नहीं । अरु "परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्याजायते तु सः" (अन्य शास्त्रकी प्रसिद्धिसे सोतो व्यावहारिक है, अरु जन्मताहै) अर्थात् जिसकरके [यहां यह अर्थहै कि, द्रव्यका अरु गुणादि पांचका जो लक्षणहै, सो तिससे व्यावर्त्तक अपने लक्षण के संभवविना कल्पते नहीं । अरु तैसेहुये तिन तिनके लक्षणसे तिनकी प्रतीतिके हुये तिससे भिन्नकी प्रतीति होवेहै, अरु तिस भिन्न पदार्थके औ लक्षणसे तिसकी प्रतीतिकेहुये तिससे व्यावृत्त (पृथक्किये) पदार्थकी प्रतीतिहोवेहै । इसप्रकार परस्परकेआश्रयरूप दोषसे कुछभी वस्तु वास्तवसे सिद्धहोती नहीं] अन्य परिणामवादियोंके शास्त्रकी प्रसिद्धिसे । (अर्थात् अन्योंके शास्त्रविषे जो परिणामरूप जन्मकी प्रसिद्धिहै तिसके निषेधसे) । जो "आत्मा अजन्मा है" ऐसे कहाहै सोतो व्यवहारसे है । अरु जिसकरके अजन्माहै तातेजन्मरूप प्रतियोगीको व्यवहारकरके सिद्धहोनेसे तिसका निषेधरूप अजन्मापनाभी तैसाही है । यह अर्थ है । एतदर्थ "अजइति" अजन्मा है, इसप्रकारकी यह कल्पना भी परमार्थरूप विषयसे प्रवृत्त होतीनहीं ।[अजन्मापने आदिकव्यवहारकरके उपलक्षित जोस्वरूपहै तिसकाअकल्पितपनाहै, क्योंकि

अभूताभिनिवेशोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते। द्वयाभावं स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते ७५। २०२॥

यदा न लभते हेतूनुत्तमाधम मध्यमान्। तदा न जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः ७६। २०३॥

दिकोंको अकल्पित वस्तुके प्रमाज्ञान (प्रमाण जन्यज्ञान) की अहेतुता नहीं, क्योंकि प्रतिबिम्बादिकों को बिम्बादिकों के प्रमाकी हेतुता सिद्धहै ताते, ऐसा जानना] इत्यर्थः ७४। २०१॥

७५। २०२॥ हे सौम्य, । शंका। ननु, [ज्ञानको, कल्पित शास्त्रादिकोंसे अन्यता (पृथक्ता) के हुये तिसको मिथ्याहोनेसे अपुनरावृत्ति कहिये आवागमनसे रहित मोक्षरूप फलकी साधनता होगीनहीं,]। समाधान। तहां कहते हैं "। अभूताभिनिवेशोस्ति द्वयं तत्र न विद्यते, द्वयाभावं स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते "। (असतबिषे अभिनिवेशहै तिसबिषे द्वैत विद्यमाननहीं, द्वैतके अभावको जानके ही निमित्तसे रहित होताहै सो नहीं ?) अर्थात् जिस करके असत् कहिये मिथ्या ज्ञानका विषय संसारहै, एतदर्थ असत्यरूप द्वैतबिषे केवल अभिनिवेश कहिये आग्रह, है। अरु जिस करके तिस आत्माबिषे मिथ्या आग्रहमात्र अरु जन्मका कारण द्वैत विद्यमानहै नहीं, एतदर्थ जो पुरुष द्वैतके अभावको जानकेही मिथ्या द्वैतके आग्रहरूप निमित्तसे रहित होताहै सो जन्मता नहीं। अर्थात् मिथ्या ज्ञानरूप द्वैत प्रपंचके आग्रह रूप अभिनिवेशके सम्यक् अभाव हुयेही मोक्षहै। "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः "। ७५। २०२॥

७६। २०३॥ हे सौम्य, [" निर्निमित्तो न जायते " (निमित्त से रहित हुआ जन्मता नहीं) इसप्रकार जो पूर्व ७५ वें श्लोक बिषे कहा तिस इस अर्थको वर्णन करते हैं] जाति कहिये वर्ण अरु आश्रमको। अर्थात् ब्राह्मणादि वर्ण अरु ब्रह्मचर्यादि आश्रम,इनकरके युक्त पुरुषके अर्थ विधान किये जे। शम

इम अग्निहोत्रादि विहित कर्म्म रूप हेतु, सो फलाभिलाषा से रहित निष्काम अधिकारी पुरुषों करके अनुष्ठान किये धर्म्म । अर्थात् धर्म्म अरु कर्म्मका इसप्रकार विचारहै कि कर्म्म जो शब्द है सो , नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, अरु कामुक, अरु निषिद्ध इन पांचोप्रकारके कर्म्मों बिषे समान वर्त्तताहै, परन्तु सर्व कर्म धर्म्म नहीं क्योंकि निषिद्ध आदि कर्म्मों को धर्मपना नहीं, ताते जिन संध्या गायत्री अग्निहोत्रादिक कर्म्मोंके न करनेसे प्रत्यवाय (पातक) होताहै सो कर्म्म मुख्य (उत्तम) धर्म्म हैं, अरु जिन अश्वमेधादिक यज्ञ रूप कर्म्म के न करने में प्रत्यवाय नहीं अरु करे तो फलकी प्राप्तिहोय, ताते सो कामनावाले के अर्थ होने से गौण (मध्यम) धर्म्महै, अरु अश्वमेधादि यज्ञ जो पूर्व राजर्षियोंने किये हैं सो बहुधा स्वर्ग प्राप्तिकी कामनासे, वा महत् प्रायश्चित्त की कामनासे किये हैं, अतएव यज्ञादिक कामुक कर्म्म गौण धर्म्म है, ताते निष्काम अधिकारी करके अनुष्ठान किये अग्निहोत्रादि कर्म्म रूप मुख्य धर्म्म सो देव भावादिक उत्तम जन्मकी प्राप्ति के प्रयोजनार्थ होनेसे केवल उत्तमहै । अरु धर्म्म अधर्म मिश्रित रूप कर्म्म । अर्थात् यहां धर्म्म अधर्म्म को मिश्रित कहाहै तिस करके कुछ अश्वमेधादि धर्म्म अरु ब्रह्महत्यादि अधर्म्मका समुच्चय नहीं कहा, किन्तु कामनासे रहित जो केवल उत्तम अग्निहोत्रादि धर्म्म , अरु तिनकी अपेक्षा कामुक कर्म्म रूप अधर्म्म तिनका समुच्चय धर्म्माधर्म्म अरु मिश्रित, शब्दका अर्थ जानना । सो मनुष्यादिक मध्यम जन्म भावकी प्राप्तिके अर्थ होनेसे, मध्यमहै । अरु जो निषिद्धाचरणहैं सो तिर्य्यकादि अधम योनिकी प्राप्तिका निमित्त होनेसे अधर्म्म रूप प्रवृत्ति विशेष अधर्म्म है । अतएव "यदा न लभते हेतूनुत्तमाधम मध्यमान् , तदा न जायते चित्तं हेत्वभावे फलं कुतः "। (जब चैतन्य उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को देखता नहीं, तबजन्मता नहीं अरुहेतुके अभाव हुये फल कहांसे होगा) अर्थात् । उक्त प्रकार के उत्तम मध्यम

अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया। अजातस्यैव सर्व्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः ७७। २०४॥

अधम हेतुओं को। जब चित्त कहिये चैतन्य उन अविद्या करके कल्पित उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को, सर्व कल्पना से रहित एक ही अद्वितीय आत्मतत्त्व को जानता हुआ, देखता नहीं। जैसे अविवेकी बालकों करके आकाश बिषे दृश्यमान जो मल (मलिनता) तिसको विवेकी पुरुष देखता नहीं, तद्वत् तब देवादिक आकारों करके उत्तम मध्यम अरु अधम, कर्मोंके फलरूप से जन्मता नहीं। अरु बीजादिक के अभाव हुये धान्य के वृक्षादिकोंवत् हेतु के अविद्यमान हुये फल उपजता नहीं, एतदर्थ हेतु के अभाव हुये फल कहां से होवेगा किन्तु कहीं से भी नहीं ७६। २०३॥

७७। २०४॥ हे सौम्य, [“ तदा न जायते चित्तं ” ‘तब चित्त जन्मता नहीं’ इसप्रकार अभी ७६ वें श्लोक बिषे कहा, सो कालपरिच्छेदकी प्रतीतिसे आगंतुकताकी शंका करके निवारण करते हैं] “ हेत्वभावे चित्तं नोत्पद्यत इति ” ‘हेतु के अभाव हुये चित्त उपजता नहीं’ इसप्रकार पूर्व श्लोकबिषे कहा। पुनः तिस चित्तकी अनुत्पत्ति किस प्रकारकीहै सो अब कहतेहैं ‘अनिमित्तस्य चित्तस्य या ऽनुत्पत्तिः समा ऽद्वया’। ‘अनिमित्त चित्त की जो अनुत्पत्तिहै सो सम अद्वैतरूप है’ अर्थात् परमार्थ ज्ञान दर्शन से निवृत्त हुआहै, धर्म्म अधर्म्म नामवाला जो उत्पत्तिका निमित्त है सो, जिसका ऐसा जो चित्त सो अनिमित्तचित्त कहते हैं। तिस अनिमित्त चैतन्यकी जो मोक्षनामवाली अनुत्पत्ति है सो सर्वदा [जैसे रूपेकी कल्पना कालबिषे भी सीपीका अरुपेपना स्वाभाविक है। अर्थात् अविवेकी पुरुष को लोभ के वशसे जिसकालमें सीपीबिषे रूपेकी भ्रांतिहोती है, तिस कालबिषे भी सीपीका जो अरूपापनाहै सो स्वाभाविक सिद्धही है। तैसे ही

बुद्ध्वानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन् । वीतशोकं तथा काममभयं पदमश्नुते ७८ । २०५ ॥

जन्मकी कल्पनाकालबिषे भी चैतन्यरूप ज्ञानकी निष्प्रपंच अद्वितीय ब्रह्मरूपता स्वाभाविकही है । अरु जन्मके भ्रमकी निवृत्तिकी अपेक्षा से तो "तदा न जायते" ‹तब जन्मता नहीं› इसप्रकारकहा । अरु यह , सर्वदा , इसपद करके सूचित करते हैं । केवलमोक्षावस्थावाले चैतन्यकाही अजन्मापना होय ऐसा नहीं, किन्तु घटादिक उपहित चैतन्यको भी अजन्मापनाहै, इस अभिप्रायसे यहां , सर्व अवस्था बिषे , इसप्रकार कहा । अरु चैतन्य के सर्वही प्रतिविम्बको अपने बिम्बके तुल्य ब्रह्मरूपता है ताते । इसहेतुके अभिप्राय से यह अनुत्पत्ति अद्वैतरूप कहीहै] सर्वावस्था बिषे समकहिये विशेष रहित अरु अद्वितीय है । [सर्व द्वैतको चैतन्य का दृश्य होने करके मिथ्यत्व होनेसे, अरु नित्य सिद्ध परिपूर्ण चैतन्य नामक स्फूर्तिको जन्मका असंभवहै ताते, तिसकी जो अनुत्पत्ति है सो उक्त लक्षणवाली युक्त ही है] अरु "अजातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः" ‹ जन्मरहित चित्तका सर्व दृश्यही है › अर्थात् जिसकरके सम्यक् ज्ञानसे पूर्व भी सो द्वैत अरु जन्मचित्त (चैतन्य)का दृश्यहीहै । एतदर्थ निमित्त रहित अद्वैतरूप चैतन्य की जो अनुपपत्ति सो सम अरु अद्वैतही है । अरु सो अनुत्पत्ति पुनः कदाचित् होताहै, इसप्रकार नहीं, वा कदाचि होतानहीं, इसप्रकार नहीं, किन्तु चैतन्य आत्मा सर्वदा एकरूप एक रसही है " पर प्रत्यक् एकरसः " इत्यर्थः ७७ । २०४ ॥

७८ । २०५ ॥ हे सौम्य, ["द्वयाभावं सम्बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते" ‹ सो द्वैतके अभाव को जानके निमित्तसे रहित हुआ जन्मता नहीं › इसप्रकार पूर्व ७५ वें श्लोकबिषे कहाहै, तिसको अब पुनः वर्णन करते हैं] "बुद्ध्वानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन्" ‹ निमित्तरहित सत्ताकोजानके हेतुको पृथक् ग्रहणकरता

अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशे तत्प्रवर्त्तते। वस्त्वभावं सम्बुद्ध्वैव निःसंगं विनिवर्त्तते ७९। २०६॥

हुआ; अर्थात् उक्त प्रकारकी युक्ति करके जन्मका निमित्त जो द्वैत तिसके अभावहुये, निमित्त रहित परमार्थरूप सत्ताको जानके धर्म्मादिक कारणरूप हेतु को देवादिक योनिकी प्राप्तिके अर्थ भिन्न ग्रहण करता हुआ। अर्थात् बाह्य विषयों की इच्छासे रहित हुआ। "। बीतशोकं तथाकाममभयं पदमश्नुते"। विगतशोक काम से रहित अभयपदको प्राप्तहोताहै; अर्थात् देवादि योनिके प्रापक जे उक्तधर्म्मादिक तिनको अग्रहणकरता हुआ, अरु कामसेरहित विगत शोकहुआ। अर्थात् अविद्यादि कारण कार्य से रहित हुआ। अभय पदको प्राप्तहोता है। पुनः जन्मको पावतानहीं अर्थात् यहां जो कहा कि पुनर्जन्मको पावता नहीं सो जिन अविवेकियों की दृष्टिसे आत्मा जन्मता है तिनकी दृष्टिकी अपेक्षा से कहाहै, नतु आत्मातो सदा अजन्मा एकही है ७८। २०५॥

७९। २०६॥ हे सौम्य, [। जब ऐसे है तब। उक्तप्रकारके पदकी प्राप्ति सदाही है, यह शंका करके कहते हैं] "। अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशेतत्प्रवर्त्तते"। अभूत अभिनिवेश से सदृशबिषे सो प्रवर्त्त होता है; अर्थात् जिसकरके मिथ्या द्वैतबिषे द्वैत के सद्भावका निश्चयरूप जो मिथ्या आग्रह है, तिस अविद्यात्मक व्यामोहरूप मिथ्या अभिनिवेश, कहिये आग्रह,से सदृश, कहिये तिसके अनुसारी, वस्तुबिषे सो चित्त प्रवर्त्त होता है। एतदर्थ "वस्त्वभावंसबुद्ध्वैव निःसंगं विनिवर्त्तते"। सो वस्तुके अभावको जानकेही निःसंगहुआ निवृत्तहोताहै; अर्थात् सो पुरुष तिसद्वैत रूप वस्तुके अभावको सम्यक्प्रकार जानके ही। अर्थात् जबजानता है तब। अपना चित्त, जैसे तिस मिथ्या अभिनिवेश के विषयसे निःसंग, कहिये निरपेक्ष, हुआ निवृत्तहोता है, तैसे तिसकी निवृत्तिके अनुसारी होता है ७९। २०६॥

निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः ।
विषयः स हि बुद्धानां तत् स्वाम्यमजमद्वयम् ८०।२०७॥
अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् । सकृद्वि-
भातो ह्येवैष धर्म्मो धातुः स्वभावतः ८१ । २०८ ॥

८० । २०७ ॥ हे सौम्य, "निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला-हि तदा स्थितिः, विषयः स हि बुद्धानां तत्स्वाम्यमजमद्वयम्" "निवृत्त हुये अप्रवर्त्त भये की अचल ब्रह्मरूप स्थिति होती है, जाते वो बुद्धिमानों का विषय है सो समभाव अज अद्वैत है," अर्थात् यदि ऐसे (उक्त प्रकार) होय तदा द्वैतरूपाविषयोंसे निवृत्त हुये, अरु अन्य विषय विषे अभावके ज्ञानसे अप्रवर्त्त हुये चित्त (आत्मा) की चलन से रहित (अचल) स्वरूपही अद्वैत एक रस विज्ञान घन ब्रह्मरूप स्थिति होती है। अर्थात् भेद वादियों करके कल्पित शास्त्रोंका जो द्वैत भावरूप विषय तिस द्वैत भावादि रूप विषयों से निवृत्त हुये, अरु अन्य शब्दादि विषयों विषे तिनको भ्रान्ति रूप होनेसे तिनके अभावदर्शक यथार्थ ज्ञान से तिनाबिषे अप्रवर्त्त हुये चित्त, कहिये आत्मा, की यह निश्चल स्वरूपही। अर्थात् स्वरूपसेही जैसी है तैसी। निश्चल अद्वैत एकरस विज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थितिहोती है। अरु जिस करके सो मोक्षरूप आत्मा "दृश्यते त्वग्रयाबुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाण से, परमार्थदर्शी बुद्धिमानों का विषय है, एतदर्थ सो समभाव 'कहिये परम निर्विशेष वस्तु अजन्मा अरु अद्वैत रूप है ८० । २०७ ॥

८१ । २०८ ॥ हेसौम्य, प्रश्न। पुनःभी यहसूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान् पण्डितोंकाविषय ब्रह्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकैसाहै, तहांउत्तर, कहते हैं "अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम्" "अज है, निद्रासे रहितहै, स्वप्न रहितहै, अरु आपही प्रकाशरूप होता है," अर्थात् सो समभाव [illegible]

सुखमाव्रियतेनित्यंदुःखंविव्रियतेसदा । यस्यकस्य वंधर्म्मस्यग्रहेणभगवानसौ ८२। २०९॥

परु आपही प्रकाशरूप होताहै, अन्य सूर्य्यादिक प्रकाशवानोंकी प्रपेक्षावाला नहीं, अर्थात् ज्ञानरूप स्वप्रकाश स्वभाववाला है ' तस्यभासा सर्वमिदं विभाति" अरु "। सकृद्विभातोह्येवैष धर्मो ग्रातुःस्वभावतः "। ' सर्वदा प्रकाशरूपही यह धर्म्म स्वभावसे धातु है] अर्थात् सर्वदा प्रकाशरूपही यह इस लक्षणवाला आत्मना-मक धर्म्म स्वभावसेही धातु कहिये सर्वका धारण करनेवालाहै, वा धातु । कहिये वस्तुके स्वभावसे युक्त प्रकारका है ८१ ।२०८॥

८२ । २०९॥ हे सौम्य, प्रश्न । इसप्रकार कथनकिये भी पर-मार्थतत्त्व लौकिक पुरुषों करके क्यों नहीं ग्रहण होता । तहां उ-त्तर कहते हैं "।सुखमाव्रियतेनित्यंदुःखंविव्रियतेसदा, यस्यकस्यच धर्म्मस्य ग्रहणेभगवानसौ "। ' जिस किस बी धर्म्मके ग्रहणसे सुख सदा आच्छादित करतेहैं, दुःखसदा प्रकट करियेहै यह भग-वान्,' अर्थात् जिस करके जिस किसभी द्वैतबस्तुरूप धर्म्म । कहि-ये पदार्थ,के ग्रहणके आग्रहसे । अर्थात् द्वैतरूप बस्तु कुछहै इस प्रकारके आग्रहसे । सुख जोहै सो सदा श्रमबिनाही आच्छादन करतेहैं । अर्थात् उक्त प्रकारके असत् द्वैतरूप बस्तुके आग्रहरूप आवरण करके सुख स्वरूप जो आत्माहै तिसको निरन्तर बिना-ही श्रमके आच्छादन करते हैं । अरुतिस सुखविषे ।उक्त प्रकारका। आवरण जो है, सोअपनी निवृत्तिके अर्थ अद्वैतके ज्ञानके निमित्त । साधन । कोही इच्छताहै, अन्य प्रयत्नकी अपेक्षा करतानहीं । अरु दुःख जोहै सो सदा प्रकट करतेहैं , क्योंकि परमार्थका ज्ञान अति दुर्लभहै ताते । अर्थात् यावत् यह पुरुषअपने दुःखोंको आ-चार्यके समीप जाय प्रकट कहतानहीं अरु आचार्य उसको दुःखी देखता नहीं तावत् उसको दुःखकी समूल निवृत्तिके अर्थ तत्त्व ज्ञान उपदेश करतानहीं, अतएव तत्त्व ज्ञानको अति दुर्लभजान

अस्तिनास्त्यस्तिनास्तीति नास्तीतिनास्तिवापुनः।
चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येवबालिशः ८३ । २१०॥

के दुःखको सदा प्रकट करतेहैं । तिस हेतुसे यह भगवान् कहिये सर्व करके पूजनेयोग्य 'अद्वैतरूप आत्मदेव, वेदान्त शास्त्र अरु आचार्यों करके अनेक प्रकारसे कथन कियाहुआ भी जाननेको शक्य नहीं । क्योंकि "आश्चर्योयस्यवक्ताकुशलोस्यलब्धा" इसआत्मा का कहनेवाला आश्चर्यरूपहै, अरु प्राप्तहोनेवाला कुशल है, यह श्रुतिकेप्रमाणसे आत्मदेवकावक्ता श्रोताआश्चर्यवत्है ८२।२०९॥

८३। २१०॥हेसौम्य, " अस्तिवानास्ति " ' है वा नहींहै ' इत्यादिक सूक्ष्म विषयवाले बुद्धिमान् पंडितोंके भी आग्रहसे जब भगवान् परमात्माके आवरणहीहै, तब मूढजनोंकी वुद्धिको आवरणहै तिसमें क्या कथनहै, इस प्रकार के अर्थको देखावतेहुये कहतेहैं "। अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्तिवा पुनः, चलस्थिरो भयाभावैरावृणोत्येवबालिशः" ; है, नहीं है, है नहीं है, नहींहै पुनःनहीं है, ऐसेअरुसत् असत् भावजोहै सोस्थिर अस्थिर रूपहै तातेइन चल, स्थिर उभयरूप अरु अभावोंकरके बालक आवरण करतेही हैं ; अर्थात् " आत्मा देहादिकोंसे भिन्नहै, इस प्रकार कोई एकवैशेषिकादि मतवादीजानतेहैं । अरु आत्मादेहादिकोंसे तो भिन्नहै परन्तु वुद्धिसे भिन्ननहीं । इस प्रकार अन्य क्षणिकवादी जानताहै । अरु आत्मा है भी अरु नहीं भीहै, इस प्रकार अन्य जोअर्द्ध क्षणिकवादी सत्यअरु असत्यका कहनेवाला दिगंवर जानता मानता कहताहै । अरु आत्मा नहीं है पुनः नहीं है, इसप्रकार हठपूर्वक अत्यन्त शून्यवादी मानता है [यहांयह अर्थ है कि अनित्य घटादिकों से , सुखादिआकार परिणामवाला होने करके, विलक्षण होने से अस्ति भाव रूप जो यह प्रमाता कहा सो चल अरु सोपाधिक हुआ परिणामी है] तिनमें अस्ति भावजो है सो चल , कहिये अस्थिर है । क्योंकि घटादि अनित्य

कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्य्यासां सदा वृतः । भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक् ८४।२११॥

वस्तुवों करके विलक्षणहै ताते । अरु नास्तिभाव जो है सोस्थिर है,क्योंकि सदा निर्विशेष निरुपाधि है ताते अरु सदसद्भावजो है सो स्थिर अरु अस्थिर, उभयरूप है । अरु स्थिर अस्थिर विषय हैं, सो अभाव है । तिन इन चल अरु स्थिर उभय रूप अरु अभावे करके सर्व भी सत् अरु असत् वादियोंका वादीरूप बालक ,कहिये अविवेकी भगवान् (प्रत्यगात्मा) को आच्छादन करताही है । अरु यद्यपि वो वादी पण्डितहै, तथापि परमार्थ तत्त्वके अबोधसे , उक्तप्रकार के , बालकही हैं । तब जो स्वभावही से मूढ पुरुष हैं सो बालक , कहिये परमार्थ तत्त्वके विवेक से शून्य होय इसमें क्या आश्चर्य है । इत्यभिप्रायः ॥ तथाच " नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुतेतनूंस्वाम् ८३।२१०॥

८४।२११॥ हेसौम्य, । प्रश्न । पुनः जिसके सम्यक्ज्ञान करके , पुरुष ,अबालक , कहिये विवेकी बुद्धिमान् पंडित होते हैं ऐसा जो परमार्थ तत्त्व ।प्रत्यगात्मा। सो कैसा है, तहां , उत्तर , कहते हैं "।कोटयश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्य्यासां सदावृतः"। (जिनके आग्रह से सदा आवृत्त है, चारकोटियां हैं तिनकरके) अर्थात् जिनकोटियों के प्राप्तिके निश्चयरूप ग्रहणों से । अर्थात् आग्रह , हठ , विशेषसे।आत्मा सदा आवृत्त, कहिये ढकाहुआ, है। अरु वे प्रसिद्ध " अस्तिनास्ति, इति " (है अरु नहीं है) इत्यादिक प्रकारसे कथनकरीहुई वादियों करके कल्पित शास्त्रोंके निर्णयसे निरूपण करनेयोग्य चार कोटियां ,कहिये पक्ष, हैं। अरु "। भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक् "। (भगवान् स्पर्श रहित जिसने देखाहै सो सर्वदृक् (द्रष्टा) होताहै) अर्थात् तिन वादियों की इन ,, अस्तिनास्ति,, इत्यादि चारकोटियोंसे । अर्थात्

प्राप्य सर्व्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम्। अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते ८५।२१२ ॥

अस्ति, नास्ति, निर्विशेष, विशेष, इन चारकोटियोंसे । जोभगवान् (प्रत्यगात्मा) स्पर्शरहित । अर्थात्, अस्ति, नास्ति, भावादिकोंसे रहित । है जिस मुनि कहिये वेदान्तशास्त्रके मनन विषे कुशल पुरुष, ने देखा (साक्षात् यथार्थ अनुभव किया) है सो उपनिषदों का वेत्ता पुरुष अर्थात् मुख्यताकरके उपनिषद्ही वेदान्तहै । सर्वदृक् 'कहियेसर्वज्ञ,परमार्थ दर्शी बुद्धिमान् पंडित होताहै ॥ क्योंकि " मैत्रय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुतेमते विज्ञाते इदꣳ सर्व्वं विदितम् " इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे जो सर्वाधिष्ठान प्रत्यगात्माको सम्यक् प्रकार जानता है सो पंडित सर्व्वज्ञ होताहै । तिससे इतर सर्व मायिक सर्वज्ञता है, इसप्रकार जानना ८४ । २११ ॥

८५ । २१२ ॥ हे सौम्य, " प्राप्य सर्व्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम्, अनापन्नादि मध्यान्तं किमतः परमीहते " । (सम्पूर्ण सर्व्वज्ञताको पायके अद्वैत अरु आदि मध्य अन्तको अप्राप्तहुये अरु ब्रह्म भावरूप पदको पायके इसते पश्चात् क्या चेष्टाकरता है 'कुछभी नहीं,' अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, इस उक्तप्रकार की समस्त सर्वज्ञताकोपायके अद्वैत अरु 'आदि मध्य अन्त 'कहिये उत्पत्तिस्थिति अरु लय,इनको अप्राप्तहोयके,अरु "एषनित्यो महिमा ब्राह्मणस्य" 'यह नित्य महिमा ब्राह्मणका है' इसबृहदारण्यकी श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मभावरूप पदकोपायके इस सर्वोत्कृष्ट आत्मलाभके । कि " आत्मलाभान्नपरविद्यते " इत्यादि प्रमाणसे जिसलाभसे पर (श्रेष्ठ) अन्यलाभ विद्यमान नहीं) पश्चात् क्या निष्प्रयोजन चेष्टाकरता है,। अर्थात् साक्षात् आत्मज्ञान होनेके पश्चात् सो विद्वान् क्या निष्प्रयोजन कर्म्मादिकों में प्रवर्त्त होताहै । किन्तु कदापि वृथा चेष्टा करता नहीं, क्योंकि

विप्राणां विनयोह्येष शमः प्राकृतउच्यते॥ दमःप्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वांच्छमं ब्रजेत् ८६।२१३॥

"नैवतस्य कृतेनार्थं तस्यकार्य्यं न विद्यते" इत्यादि गीतास्मृतिके प्रमाणसे उसको कर्म्मोंसे कुछ भी अर्थ नहीं, ताते उसको कुछ भी कर्त्तव्यता विद्यमान है नहीं। अर्थात् उक्त प्रकार के आत्मलाभी को कुछ भी कर्तव्य नहीं ८५। २१२ ॥

८६।२१३॥ हे सौम्य, ["यावज्जीव मग्निहोत्रं जुहोति" 'यावत् जीवतारहे तावत् अग्निहोत्रको करे' इत्यादि श्रुतिको अविद्वान् को विषयकरने वाली होनेसे, विद्वान् (आत्मज्ञानी) को अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्य नहीं, इसप्रकार कहा। अब तिस विद्वानको भी शमदमादिककी विधिसे कर्त्तव्य है, यह शंकाकरके कहते हैं,। यहां यह अर्थ है कि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको यह विनय स्वाभाविक है, ताते सो श्रुतिकी आज्ञाके आधीन कर्त्तव्यताको सम्पादन करता नहीं अरु शमभी स्वाभाविक है ताते श्रुतिकी आज्ञासे करता नहीं। अरु दम भी स्वाभाविक होनेसे श्रुतिकी आज्ञाको इच्छता नहीं। अर्थात् शमदमादिक जो साधन है सो सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्तिसे पूर्व जिज्ञासावस्थामें "शान्तो दान्तउपरति तितिक्षु समाहितोभूत्वा" इत्यादि श्रुति आज्ञा प्रमाण कर्त्तव्य है अरु जब उनसाधनों करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा सम्यक् ज्ञान होताहै,तब वो पूर्वकिये शमादिक साधन स्वभाव भूत होनेसे वो विद्वान् साधनप्रवर्त्तक श्रुति आज्ञा को इच्छता नहीं। इसप्रकार कूटस्थरूप आत्मस्वरूप का जानने वाला विद्वान् पुरुष सर्व विकारसे रहित ब्रह्मस्वरूपसे स्थित होताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति"] "विप्राणांविनयोह्येषशमः प्राकृत उच्यते, दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वांच्छमंब्रजेत्"। (ब्राह्मणोंका विनयहै सोई स्वाभाविक शमकहते हैं,अरु दमभी यहीहै स्वाभाविक दमहोनेसे ऐसे विद्वान् शमको पावता है ; अर्थात् ब्राह्मणों

सवस्तु सोपलम्भंच द्वयं लौकिकमिष्यते । अव-स्तु सोपलम्भंच शुद्धंलौकिकमिष्यते ८७।२१४॥

(ब्रह्मवेत्तों)का जोयहस्वाभाविक आत्मस्वरूपसे स्थितिरूपविनय है, यह विनयहै। अरु यहही विनय स्वाभाविक शम कहते हैं। अरु दमभी यही है, क्योंकि स्वभावसे शान्तरूप होनेसे स्वाभाविक दमकरके युक्त है ताते। ऐसे उक्तप्रकारका स्वभावसेशान्त ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मस्वरूप स्वाभाविक शान्ति रूप शमको पावताहै। अर्थात् सम्यक् आत्मवेत्ता विद्वान्कीजोस्वरूप स्थिति है सोई शमदमादि हैं क्योंकि आत्मास्वभावसेही शम दमादि रूपहै ताते, सो विद्वान् भी तैसाही है ८६। २१३ ॥

८७। २१४ ॥ हे सौम्य, [इसप्रकारपरमतके निराकरण द्वारा आत्मतत्त्व निर्धार किया। अब अपनी प्रक्रियासे तीन अवस्थाके कथन द्वारा भी तिस आत्मतत्त्वका निर्द्धार करने को प्रथम दोनों अवस्थाका कथन करते हैं] ऐसे (उक्तप्रकार)परस्पर विरुद्धहोनेसे संसारके कारणअरु रागद्वेषरूप दोषोंकेआश्रय वादियोंके सिद्धान्तहै, एतदर्थ सो मिथ्याज्ञानरूपही है,इसप्रकार तिनकी युक्तियोंसेही देखायके,अरु उक्त चारकोटियोंसे रहित राग द्वेषादिकदोषोंका अनाश्रय स्वभावसेही शान्त अद्वैत सिद्धान्तही सम्यक्ज्ञानहै,यह निर्णय यहांपर्य्यन्त समाप्तकिया।अब [यहांयह अर्थहै कि शिष्यकरके साधनेयोग्य जे आरोपदृष्टि तिसको आश्रय करकेजाग्रदादि पदार्थके शोधनपूर्वकजो बोधकाप्रकार सो अपनी प्रक्रियाहै। ताते तिसही आत्मतत्त्वके लखावनेके अर्थ(परायण) शेषग्रंथहै] अपनी प्रक्रियासे आत्मतत्त्व लखानेके अर्थ अवशेषरहे ग्रंथका आरम्भहै,[जो प्रातिभासिक अरुव्यावहारिक रूप स्थूल पदार्थोंका समूह, सूर्य्यादि देवताके अनुग्रहकरके युक्त इन्द्रियों करके जानाजाय व जानते हैं सो जाग्रदवस्था है] सत्, कहिये स्थूल, वस्तु करके सहित जो वर्त्तमान होवे ऐसा जो व्यवहार,

अवस्त्वनुपलम्भञ्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् । ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम् ८८ । २१५ ॥

तिसको सवस्तु कहते हैं "। सवस्तु सोपलम्भञ्च द्वयं लौकिक मिष्यते" (सवस्तु अरु सोपलम्भ रूप ,शास्त्र, द्वैत लौकिक प्रसिद्ध है ' अर्थात् स्थूल वस्तुकरके वर्त्तमान होय ऐसा जो व्यवहार तिसको,सवस्तु,कहते हैं। अरु तैसेही उपलम्भ ,कहिये प्रतीति, तिसकरके सहित जो वर्त्तमानहोवे तिसको ,सोपलम्भ, कहते हैं। ऐसा जो सवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शास्त्रादिक सर्व व्यवहारका विषय ग्राह्य अरु ग्राहकरूप द्वैत लौकिक । अर्थात् लोकाबिषे प्रसिद्ध जाग्रदवस्था। ऐसे लक्षणवाला जाग्रत् वेदान्तबिषे अंगीकार कियाहै [बाह्य इन्द्रियनका किया जो व्यवहार , सो , संवृत्ति , शब्दका अर्थ है । सो भी स्थूल पदार्थोंवत् स्वप्नबिषे होते नहीं । तैसे होनेसे बाह्य इन्द्रियोंके बिलयहुये जाग्रत्की वासना से मनका तिन तिन पदार्थोंके आभास रूप आकारसे भासना सो,स्वप्न,शब्दका अर्थ है] । अरु "।अवस्तुसोपलम्भञ्च शुद्धं लौकिक मिष्यते " (अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध लौकिक अंगीकार करते हैं ' अर्थात् स्थूल व्यवहारके भी अभावसे अवस्तु रूप, अरु प्रतीति सहित वस्तुवत् असत् वस्तु बिषे भी प्रतीति होवे है । तिस प्रतीति करके सहित वर्तमानहै , एतदर्थ , सोपलम्भ, है । ऐसा अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध । अर्थात् स्थूल जाग्रत्से केवल सूक्ष्म । लौकिक । अर्थात् सर्व प्राणियोंको साधारण (सम) होने से लोक बिषे प्रसिद्ध स्वप्न । है इसप्रकार अंगीकार करते हैं ८७ । २१४ ॥

८८ । २१५ ॥ हे सौम्य, "। अवस्त्वनुपलम्भञ्चलोकोत्तर मितिस्मृतम् " (अवस्तु अरु अनुपलंभ,लोकोत्तर है ऐसे जान्या है ' अर्थात् अवस्तु ,कहिये स्थूल अरु सूक्ष्म वस्तु रूप विषयोंसे रहित, अरु अनुपलम्भ ,कहिये सर्व ज्ञानोंसे रहित, अर्थ यह जो

ज्ञानेचत्रिविधेज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम् । सर्व्वज्ञ-ताहि सर्व्वत्र भवतीह महाधियः ८९ । २१६॥

ग्राह्य अरु ग्रहणसे जो रहितहै सो लोकोत्तरहै । अर्थात् उक्त जाग्रत् अरु स्वप्न रूप लोकसे पीछे होनेवाली जो सुषुप्ति अवस्था तिसको लोकोत्तर कहते हैं । इसप्रकार जान्याहै, अतएव । तिस सुषुप्तिको लोकातीत कहते हैं । अरु जिस करके ग्राह्य अरु ग्रहण का विषयही लोकहै, तिसके अभावसे सर्व प्रवृत्तिका बीज सुषुप्ति अवस्थाहै, इसप्रकार शास्त्रवेत्ता पुरुषोंको प्रसिद्धहै । अरु " ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्त्तितम् (ज्ञान अरु ज्ञेय, अरु विज्ञेय सदा बुद्धिमानोंने कहाहै ; अर्थात् उपाय सहित परमार्थ तत्त्व लौकिक, शुद्ध लौकिक, अरु लोकोत्तर, इस क्रमकरके जिस ज्ञानसे जानियेहै , सो ज्ञान उक्त इन तीन ज्ञेय रूप है, क्योंकि इस ज्ञानसे भिन्न ज्ञेयका असम्भवहै ताते। अरु सर्ववादियोंकरके कल्पित वस्तुके इन्हीं तीनोंविषे अन्तरभाव होनेसे, विशेषकरके जाननेयोग्य परमार्थ रूप सत्य एक तुरीयनामवाला अद्वैत अजन्मा आत्मतत्त्वही सदा परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पंडितों ने कहा है " ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते " इत्यादि गीतोक्ति भगवद्वाक्य प्रमाणसे सर्व ब्रह्मवेत्ता पंडितोंने अपने शिष्य मुमुक्षुओंप्रति विशेषकरके जानने योग्य वस्तु एक तुरीय नाम वाला आत्मतत्त्वही कहाहै । अतएव सर्व जिज्ञासुओं को आत्मज्ञानार्थ पुरुषार्थ कर्त्तव्य योग्य है ८८ । ११५ ॥

८९।२१६॥ हसौम्य, [" आत्मनिविज्ञाते सर्व्वमिदंविज्ञातम्भवतीति „ (आत्माके जानतेसंते सर्वयह जानाजाताहै) । इसश्रुति की जो प्रतिज्ञाहै सो उक्तवस्तु (आत्मा)के ज्ञानहुयेही सिद्धहोती है, इसप्रकार कहतेहैं] " ज्ञानेचत्रिविधेज्ञेये क्रमेणाविदितस्वयम्, सर्व्वज्ञताहिसर्व्वत्र भवतीहमहाधियः " (ज्ञानविषे अरु तीनप्रकारके ज्ञेयविषे क्रमकरके स्वयं (आत्माको) जानेहुये, महाबुद्धिमा-

हेयज्ञेयाप्यपाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः। तेषामन्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषुस्मृतः ९०।२१७॥

न् पुरुषको इसलोक बिषे सर्वत्र सर्वज्ञताही होती है'। अर्थात् लौकिकादिक विषयवाले ज्ञानबिषे, अरु लौकिकादिक तीनप्रकार के ज्ञेयबिषे, तहां प्रथम लौकिक। जाग्रत्। स्थूलहै, तिसके अभाव हुये पश्चात् शुद्ध लौकिक। स्वप्न। है, तिसके अभावहुये पश्चात् लोकोत्तर। सुषुप्ति। है। इसप्रकारही क्रमकरके तीनों स्थानके अभावसे, परमार्थ सत्य तुरीय अज अद्वैत अभय आत्मतत्त्व के ज्ञानेहुये सर्वलोकसे अतिशय। अलौकिक। वस्तुको विषयकरने वाली सूक्ष्म बुद्धिकरके युक्तहोनेसे, इसप्रकार जाननेवाला जो आत्मवेत्ता महाबुद्धिमान् पुरुषहै तिसको इस संसारबिषे सर्वदा आत्मस्वरूपभूतही सर्व्वज्ञता ,कहिये सर्वरूप ज्ञानभाव, होतीहै, क्योंकि एकबारके जानेहुयेही स्वरूप बिषे व्यभिचारका अभाव हैताते,। अर्थात् जैसे एकबारही सम्यक्प्रकार रज्जुके जानेहुये पुनः उसबिषे सर्प जलधारादि भ्रान्तिरूप व्यभिचार होतानहीं तैसे।। अरु जिसकरके अन्यवादियोंवत् परमार्थके ज्ञाता पुरुषको ज्ञानकेउद्भव अरु तिरस्कार होतानहीं, एतदर्थ ,आत्मवेत्ता, विद्वान्को परिपूर्ण ज्ञानरूपता होवेहै ८९।२१६॥

९०।२१७ हेसौम्य,[तीन अवस्थाके ज्ञेयपनेके कथनसे तिन का परमार्थसे सद्भाव होवेगा,। यह शंकाकरकेतिसका निषेध करते हैं]लौकिकादिकनके क्रमकरकेज्ञेयपनेके कथनसे परमार्थसे अस्ति भावकी शंका होतीहै,। सो युक्तनहीं, इसप्रकार कहतेहैं। त्यागने योग्य लौकिकादि, ,जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन आत्मा बिषे असत्पने करके रज्जुबिषे सर्पवत् त्यागकरने योग्य (हेय) है। अरु यहां उक्त चारकोटियोंसे रहित जो परमार्थतत्त्व सोज्ञेय कहते हैं अरु बाह्य तीन एषणासे संन्यासीकरके प्राप्तहोने योग्य ,पांडित्य, बाल्य, अरु मौन, इन नामवाले क्रमसे जे 'श्रवण, मनन, निदि-

प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्व्वे धर्म्मा अनादयः ।
विद्यते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन ९१।२१८॥

ध्यासनन, रूप साधन सो प्राप्तकरने योग्यहै । अरु राग द्वेष काम क्रोध मोहादि जो कषायनामवाले दोष हैं सो पकावने को योग्य होनेसे पाक्य हैं ।। अर्थात् जैसे पाककिया अन्नादिक उदरविषे विकारकेहेतु वा अंकुरके उत्पादक होतेनहीं, तैसेही शमदम क्षमा आर्जवता आदिरूप अग्निकरके सम्यक् प्रकारसे पाककिये उक्त कषायादि दोष सो विद्वान्केविषे आभासमात्र रहेहुये अपने अनर्थरूप अंकुर वा फलके उत्पादक होतेनहीं ॥ ताते " हेयज्ञेयाप्य पाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः । तेषामन्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः " (हेयज्ञेय आप्य पाक्य उपायोंकरके जाननेयोग्यहै। तिन काज्ञेयसे अन्यत्र उपलंभ तीनठेकाने जान्या है; अर्थात् उक्तसर्व हेय (त्याज्य) ज्ञेय (जाननेयोग्य) आप्य (पावनेयोग्य) पाक्य (पकावनेयोग्य) जोहैं सो संन्यासियोंकरके उपायनसे जाननेके योग्य हैं। अरु प्रथमसे तिन हेयादिकोंका ज्ञेयते।। अर्थात् परमार्थसत्य एक ब्रह्मरूप ज्ञेयको छोड़िकै ।।अन्य ठिकानेजो अविद्याकी कल्पनामात्र उपलंभ कहिये ज्ञान,है, सो,हेय, आप्य, अरुपाक्य, इन तीनविषेभी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने जान्या है । तिनके परमार्थ सत्य से नहीं ॥ इत्यर्थः ॥ ९० । २१७ ॥

९१ । २१८ हे सौम्य, जो पूर्व कहा , अस्तिआदि चारकोटियोंसे रहित जो ज्ञेय (जानने योग्य) है सो परमार्थ तत्त्व है, तिसको अब स्पष्ट करते हैं] " प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्म्मा अनादयः । विद्यते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन " (सर्व धर्म्म स्वभावसे आकाशवत् हैं अरु अनादि हैं अरु जानने योग्य हैं । तिनका नानात्व कहीं भी कुछ भी विद्यमान नहीं ; अर्थात् परमार्थ से तो सर्व धर्म्म 'कहिये आत्मा' स्वभावसे सूक्ष्मनिरंजन अरु सर्वगतपने विषे आकाशवत् है " आकाशवत्सर्वगतः

आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्व्वे धर्म्मा सुनिश्चिताः।
यस्यैवम्भवतिक्षान्तिः सोऽमृतत्वायकल्पते९२।२१९॥

स नित्यः" अरु अनादि ' कहिये व्यवधानसे रहित नित्यहैं, इसप्रकार मुमुक्षुओं करके जानने योग्यहैं। अरु तिनका नानात्व कहीं भी। अर्थात् देशकाल अवस्थादिक किसीबिषे भी। कुछ भी। अर्थात् अणुमात्र भी। विद्यमान ही। अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण आत्माबिषे एक अणुमात्र भी नानात्व नहीं॥ यह अर्थ है ९१। २१८॥

९२। २१९॥ हे सौम्य, अब आत्माख्यधर्म्मकी ज्ञेयताकहिये जाननेकी योग्यता, भी व्यावहारिकही है,पारमार्थिक नहीं, इस प्रकार कहतेहैं। "आदिबुद्धाः प्रकृत्यैवसर्व्वे धर्म्मा सुनिश्चिताः" (सर्व धर्म स्वभावसेही आदिबिषे बुद्ध निश्चित स्वरूपवालेहैं; अर्थात् सर्व धर्म, कहिये आत्मा, स्वभावसे ही आदिबिषे बुद्ध है, अर्थात् जैसे नित्यप्रकाश स्वरूप है तैसेही नित्य बोध स्वरूप है अर्थात् नित्य निरन्तर बोधरूपही प्रकाशवाला है। अरु तिसका निश्चय अब करनेका है ऐसा नहीं, अरु ऐसा है, ऐसे भी नहीं इस प्रकारके संशय युक्तस्वरूपवाले नहीं, किन्तु नित्य निश्चित स्वरूप वालेहैं "। यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वायकल्पते"। (जिसको ऐसे शान्ति होती है सो अमृत भावके अर्थ समर्थ होता है; अर्थात् जिस करके सर्व धर्म्माख्य आत्मा बोधरूप निश्चित स्वरूपवाले हैं, तातें जिस मुमुक्षुको ऐसे उक्त प्रकार करके अपने अर्थ वा परके अर्थ सर्वदा बोधरूप निश्चय बिषे निर्पेक्षतारूप शान्ति होती है। अर्थात् जैसे सूर्य्य अपने अर्थ अरु परके अर्थ अन्य प्रकाशकी अपेक्षा से रहित होता है, तैसे जिसको आत्मा बिषे सर्वदा बोध के कर्त्तव्यता की निरपेक्षारूप शान्ति होती है सो अमृतभाव, कहिये मोक्ष, के अर्थ समर्थ होता है॥ इत्यर्थः ९२। २१९॥

आदिशान्ताह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्व्वे-धर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम् ९३ । २२०॥
वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा। भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः ९४।२२१॥

९३ । २२० ॥ हे सौम्य, [अब विद्वान् मुमुक्षु की रुचिबढ़ावने के अर्थ अविद्वान्की निन्दाको देखावतेहैं] तैसे (उक्त प्रकार के) आत्मा विषे शान्ति की कर्त्तव्यता भी है नहीं, इसप्रकार कहते हैं " आदिशान्ताह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्व्वे धर्म्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम् " (सर्व धर्म आदिविषे शान्त अनुत्पन्न हैं अरु स्वभावसे ही सम्यक् सुखरूप हैं अरु समान हैं अभिन्नहैं अरु जन्मरहित समभाव विशारदहैं) अर्थात् जिसकरके सर्व्व धर्म्म (कहिये आत्मा, आदिविषे (कहिये नित्यही शान्त हैं , अरु अनुत्पन्न (कहिये अजन्मा , है अरु समान हैं अरु अभिन्न है। इसप्रकार जिसकरके जन्म रहित समभाव (कहिये आत्मतत्त्व , विशारद (कहिये विशुद्ध , है , ताते शान्ति वा मोक्ष कर्त्तव्य नहीं। अरु जिस करके नित्य एक स्वभाव वाले आत्मा का कुछ भी किया हुआ होता है नहीं एतदर्थ आत्मा को संसार दुःख की निवृत्ति वा सुख की उत्पत्ति क्रिया जन्य नहीं, किन्तु नित्यही सिद्धहै इत्यर्थः ९३। २२० ॥

९४।२२१॥हे सौम्य,[ऐसे(उक्तप्रकार, अविद्वान् नानात्वदर्शीकी निन्दाको देखायके, अब विद्वान्की प्रशंसाको प्रस रितकरतेहैं]जो पुरुष उक्तप्रकारके परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं सोई लोकविषे अकृपण (ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण) हैं " एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात्प्रेति स ब्राह्मणः "। अरु तिन अकृपण से अन्य तो सर्व कृपणहैं, इसप्रकार कहते हैं " वैशारद्यन्तु वैनास्ति भेदे विचरतां सदा, भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः " (द्वैतवादी भेदके अनुयायी हैं ताते तिनको ...

अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यन्ति सुनिश्चिताः।
तेहि लोके महाज्ञातास्तच्च लोको न गाहते९५।२२२॥

सदा वर्त्तमानकी विशुद्धि है नहीं) अर्थात् जिसकरके नानावस्तु है, इसप्रकार के कहनेवाले द्वैतवादी भेदके अनुयायी (अर्थात् संसारके अनुगामी) (संसारके पीछेही चलनेवाले) हैं एतदर्थ तिनको कृपण तुच्छ जानते हैं वा जानने। अरु जिसकरके उन अविद्याकल्पित द्वैत मार्गरूप भेदाबिषे सर्वदा वर्त्तमान पुरुषोंकी विशुद्धि नहीं है, तिसकरके उनका कृपणपना युक्तही है "एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रेति स कृपणः" "मृत्यो स मृत्युमाप्नोति यइहनानेव पश्यति" इत्यभिप्रायः ९४।२२१॥

९५।२२२॥ हे सौम्य, जो यह परमार्थतत्त्व है सो अमहात्मा अपण्डित वेदान्त विचारसे बाह्यहुये तुच्छ अल्पज्ञ अविवेकी पुरुषों करके जाननेको अयोग्यहै (अर्थात् उन भेदवादी अपण्डितों करके परमार्थतत्त्व (प्रत्यगात्मा) जानने के योग्यनहीं) इस प्रकार कहते हैं "अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यन्ति सुनिश्चिताः। तेहि लोके महाज्ञातास्तच्चलोको न गाहते" (जो कोई एक अज समभावबिषे सम्यक् निश्चित होवेंगे, तब सोई महाज्ञानी है, अरु तिसको लोकविषय करता नहीं) अर्थात् जो कोई एक स्त्रियादिक भी अजन्मा समभाव, कहिये समपरमात्मतत्त्व बिषे, यह ऐसेही है, इसप्रकार जब सम्यक् निश्चयवाला होता है वा होवेंगे, तब सोई लोकबिषे महाज्ञानी (अर्थात् (सर्वसे अधिक साक्षात् तत्त्वको विषय करनेवाले ज्ञानवान्) है (अर्थात् सोई विज्ञान पुरुष है "ज्ञानित्वात्मैवमेमतं" अरु तिस तिनके जानेहुये परमार्थ तत्त्वरूप मार्गको, अन्य सामान्य बुद्धिवाला लोक विषय करता नहीं, क्योंकि "सर्व्वभूतात्मभूतस्य सर्व्वभूतहितस्यच। देवामार्गेऽपि मुह्यन्तिह्यपदस्य पदैषिणः॥ शकुनीनामिवाकाशे गतिर्नैवोपलभ्यत, इत्यादि स्मरणात्" (सर्वभूतोंके

अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न क्रमते ज्ञानमसंगं तेन कीर्त्तितम् ९६।२२३ ॥

आत्मारूप अरु सर्वभूतोंके हितरूप विद्वान्के मार्गविषे पद (पद चिह्न) को खोजतेहुये देवता भी मोहको पावतेहैं । जैसे आकाश विषे पक्षियोंकी वा जलविषे मीनादिकोंकी गति (खोज वा पाद चिह्न) देखते (पावते) नहीं) तैसेही पावनेयोग्य पदसे रहित पुरुष, परिपूर्ण ज्ञानवान् महात्माकी गति जाननेको शक्यनहीं (क्योंकि वो ज्ञानवान् आवागमनसे रहित होनेसे गति (मार्ग) से रहितहै ताते " गतिरत्रनास्ति " इत्यादिक श्रुतियोंके प्रमाणसे ९५।२२२ ॥

९६।२२३ ॥ हे सौम्य, [" अजे साम्ये " (अजन्मा समभावहै) इसप्रकार जो पूर्व ९५ श्लोक विषे कहा, सो प्रमेय है, तिसको विषय करनेवाला निश्चयवाला प्रमाता है, अरु तिस प्रकारका निश्चयरूप ज्ञान प्रमाण है । इसप्रकार वस्तुके परिच्छेद (कहिये भेद, के) हुये तिन ज्ञानीपुरुषका महाज्ञानवान्पना कैसेहै । यह शंकाकरके कहते हैं] । शंका । कैसे उनका महाज्ञानीपनाहै, । तहां (समाधान) कहते हैं "अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतोनक्रमतेज्ञानमसंगंतेनकीर्त्तितम् " । (अजन्माधर्मोंविषे अजन्मा ज्ञानहै न जाननेवाला अंगीकार करते हैं। जाते ज्ञान गमन करता नहीं ताते असंग कहाहै) अर्थात् जिस करके सूर्य्य विषे उष्णता अरु प्रकाशवत्, अजन्मा 'कहिये अचल' धर्म ' कहिये आत्मा ' विषे अजन्मा 'कहिये अचल' ज्ञान अंगीकार करते हैं, (क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है ताते) एतदर्थ अजन्मा ज्ञान अन्य अर्थविषे न जाननेवाला अंगीकार करते हैं अरु जिस करके ज्ञान अन्य अर्थ विषे गमन करता नहीं, तिसही कारण करके सो आकाश के तुल्य असंग है ९६ । २२३ ॥

९७ । २२४॥ हे सौम्य, [कूटस्थरूप ब्रह्महीं तत्त्व है, इसप्र-

अणुमात्रेऽपिवैधर्म्येजायमानोऽविपश्चितः। असंगतासदानास्तिकिमुतावरणच्युतिः ९७। २२४॥

अलब्धावरणाःसर्वेधर्माःप्रकृतिनिर्मलाः। आदौबुद्धास्तथामुक्ताबुद्ध्यन्तइतिनायकाः ९८। २२५॥

कार अपने। सिद्धान्ती। के मतबिषे ज्ञान असंग सिद्ध होताहै, इसप्रकार कहा। अरु मतान्तरबिषे पुनः अपने को विषय करने वालाहोने से ज्ञानका असंगपना असंगत होताहै, इसप्रकार कहते हैं] "। अणुमात्रेऽपिवैधर्म्येजायमानोऽविपश्चितः। असंगता सदा नास्ति किमुतावरणच्युतिः।" "अणुमात्र भी विरुद्ध धर्मवाले अरु उत्पन्न होनेवाले बिषे अविवेकी को सदा असंगभाव नहीं तब आवरण का नाश क्या कहना है"; अर्थात् याते अन्यवादियों के मतबिषे अणुमात्र ' कहिये अल्प रंचकमात्र, भी विरुद्ध धर्म्मवाले, अरु बाह्य वा अन्तर उत्पन्न होनेवाले वस्तु (पदार्थ) बिषे अविवेकी पुरुषको जब सदा (निरन्तर) असंगभाव नहीं है तब उनको बन्धरूप आवरणका नाश न होवे इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं ९७। २२४॥

९८।२२५॥हे सौम्य, जो कोई ऐसा कहेकि तिन वादियोंको आवरणकानाश नहीं ऐसेकहनेवालेजो तुम सिद्धान्ती अनावरण वादी तिन, तुमने अपने सिद्धान्तबिषे आत्मारूप धर्म्मोंको आवरण अंगीकार किया, सो कथन बने नहीं, इसप्रकार कहते हैं "। अलब्धावरणाःसर्वेधर्म्माःप्रकृतिनिर्मलाः।" "सर्व धर्म्म आवरणको अप्राप्त हैं अरु स्वभाव से निर्मल हैं"; अर्थात् सर्व धर्म्म ' कहिये आत्मा '। अर्थात् यहां आत्माको सर्व शब्दकरके जो बहुवचन है सो बुद्ध्यादिरूप उपाधिको लेके हैं ' घटाकाशवत् ' ऐसे जानना, अरु निरुपाधि आत्मा तो एकही है महदाकाशवत्, ऐसे जानना। अविद्यादिक बन्धनरूप आवरणको अप्राप्त ' कहिये बन्धन रहित, हैं। अरु स्वभाव से निर्मल 'कहिये सदा शु-

क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः । सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम् ९९ । २२६ ॥

द्ध, हैं "शुद्धमपापविद्धम्" अरु "आदौबुद्धास्तथामुक्ताबुद्ध्यन्त इतिनायकाः" "आदिविषे बुद्धहै तैसे मुक्त है, ऐसे नायक जानते हैं ऐसे कहते हैं"; अर्थात् ,जैसे धर्माख्य आत्मा आवरण रहित शुद्धहै तैसे, आदिविषे कहिये नित्य, बुद्ध , कहिये बोधस्वरूप, है । अरु तैसेही नित्य मुक्त है । जिसकरके नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाले आत्मा हैं तातेही बन्धन रहित हैं, इसप्रकार पूर्वके "अलब्धावरणाः" इस पदसे सम्बन्ध है । अरु प्रश्न जब ऐसे हैं तब कैसे जानते हैं, तहां 'उत्तर' कहते हैं, जैसे नित्य प्रकाशरूप हुआ भी सूर्य्य प्रकाशता है, इसप्रकार कहते हैं, अथवा जैसे नित्य अचलहुये भी पर्वत नित्यही स्थित होतेहैं,इस प्रकार कहते हैं। तैसेही ये आत्मा नायक (अर्थात् जाननेको समर्थ होनेकरके स्वामी) हुये भी अर्थात् बोधशक्ति युक्त स्वभाव वाले हुये भी जानते हैं, इसप्रकार कहते हैं ९८ । २२५ ॥

९९।२२६॥हे सौम्य, "क्रमतेनहिबुद्धस्यज्ञानंधर्म्मेषुतापिनः। सर्व्वेधर्म्मास्तथाज्ञानंनैतद्बुद्धेनभाषितम्" "संतापवाले,पंडितन का ज्ञान धर्म्मोंविषे जाता नहीं, अरु सर्वधर्म भी अरु ज्ञान भी तैसे हैं"; अर्थात् , जिसकरके सन्तापवाले 'कहिये सूर्य्य के तापवाले, आकाशकेतुल्य भेदसेरहित, वा पूजाकरनेयोग्य बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पण्डितकाज्ञान अन्याविषयरूप धर्म्मोंविषे जातानहीं,किन्तु जैसे सूर्य्यविषे प्रकाश अभिन्नरूपसे स्थितहै, तैसे आत्मरूपधर्म विषेही स्थित है, इसप्रकार अंगीकार करतेहैं । ताते आत्मा विषे मुख्यपना होनेके योग्य है । अरु सर्व धर्म्म , कहिये आत्मा, भी तैसेही है अर्थात् ज्ञानवत्ही आकाशकेतुल्य होनेकरके अन्य अर्थ विषे कोई भी जाते नहीं । अरु जो इस चतुर्थ प्रकरण के प्रथम

इत्यादिक कथनकरनेका आरंभ कियाथा,सो यह आकाशकेतुल्य सन्तापवाले परमार्थदर्शी पण्डितोंका । ज्ञानआत्मासे । अभिन्न होनेकरके, आकाशके तुल्य ज्ञान अन्य किसीभी अर्थ बिषे जाता नहीं । अर्थात् जैसे आकाशकी अवकाशता आकाश से अभिन्न होने करके अन्य किसी बिषेभी जाता नहीं , तैसे परमार्थदर्शी विद्वान्का ज्ञान आत्मासे अभिन्न होनेकरके अन्य किसीभी अर्थ बिषे जातानहीं । तैसे धर्माख्य आत्माहै ॥ इस रीतिसे आकाशवत् ,अचल, अक्रिय, निरवयव, नित्य, अद्वितीय,असंग, अदृश्य, अग्राह्य, क्षुधादिकोंसे रहित ब्रह्मरूप आत्मतत्त्वहै । क्योंकि "नद्रष्टुर्दृष्टि विपरिलोपोविद्यते " । "द्रष्टाकी दृष्टिका लोप विद्यमान है नहीं " इस श्रुतिके प्रमाणसे । अरु ,ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाता, इनके भेद से रहित परमार्थ तत्त्व अद्वैतहै ।अर्थात् अद्वैत रूप आत्मतत्त्व से इतर ज्ञेय (जाननेयोग्य) वस्तुका अभावहै ताते जाननेरूप ज्ञानकाभी अभावहै अरु जब , ज्ञेय , ज्ञानका, अभाव है ताते आत्माबिषे ज्ञाताविशेषणका भी अभाव है, इस प्रकार बिशेष विशेषण, अरु विशेष्यत्वके अभावसे एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्वही है । यह बुद्धने कहा नहीं । अरु यद्यपि बाह्यार्थका निषेध अरु ज्ञानमात्रकी कल्पनारूप अद्वैतवस्तु की समीपता कहीहै तथापि यह तो परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैत वेदान्त बिषेही जानने के योग्य है ॥ इत्यर्थः ॥ ९९ । २२६ ॥

१००।२२७॥ हेसौम्य, [चार प्रकरणोंकरके युक्तइस कारिकारूप शास्त्रकी आदिवत् अन्तबिषे भी परदेवतारूप तत्त्व को स्मरणकरते हुये तिसके नमस्काररूप मंगलाचरणका सम्पादन करते हैं] शास्त्रकी समाप्ति बिषे परमार्थ तत्त्वकी स्तुत्यर्थ नमस्कार कहते हैं "। दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्य विशारदम् । बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मोयथाबलम् "। दुःखसे देखने योग्य अति गंभीर अजन्मा समभावरूप विशुद्ध नानाभावसे रहित पदको जानके यथाबल तथा नमस्कार करते हैं ; अर्थात् दुःखसे दर्शन

दुर्दर्शमतिगम्भीरमजंसाम्यंविशारदम् । बुद्ध्वापद-
मनानात्वंनमस्कुर्मोयथाबलम् १०० । २२७ ॥

इतिगौडपादीयकारिकायामलातशान्ताख्यं
चतुर्थप्रकरणम् ॥

इतिश्री गौडपादाचार्य कृत कारिका सहित
मांडूक्योपनिषद् समाप्तम् ॥

के योग्य , कहिये " अस्ति नास्ति " (है, नहीं है) इत्यादि चार कोटियोंसे । जो वादियों करके कल्पित सापेक्षक हैं। रहितहोने से अतिश्रम । सूक्ष्मबुद्धिकरने । से जानने योग्यहै, अरु एतदर्थ-ही अति गंभीर , कहिये अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकरके महासमुद्र-वत् दुःखसे प्रवेश करनेके योग्य, अरु अजन्मा समभावरूप विशुद्ध नानाभावसे रहित, ऐसे पदको जानके तिसरूपहुयेहम तिसपदके अर्थ , परमार्थ से व्यवहारकरनेके अयोग्यको भी, मायासे व्यवहारका विषय सम्पादनकरके । अर्थात् जो वास्तव करके सर्व व्यवहारातीत एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्व है, तिस विषे नमस्कार करनेयोग्य अरु नमस्कार करनेवाला अरु नमस्काररूप क्रिया इनकी कल्पना करके । जैसी सामर्थ्य है तैसे नमस्कार , विधान , करते हैं १०० । २२७ ॥

इतिश्री गौडपादाचार्य कृत कारिकाचतुर्थ
प्रकरण ,भाषाभाष्य, समाप्तम् ॥

भाष्यकारश्रीशंकराचार्य्यकृतमंगलाचरणम्॥

अजमपिजनियोगंप्रापदैश्वर्ययोगादगतिचग-
तिमत्ताम्प्रापदेकंह्यनेकम् । विविधविषयधर्म्मग्राहिमु-
ग्धेक्षणानांप्रणतभयविहन्तृब्रह्मयत्तन्नतोस्मि १॥

१॥ हेसौम्य, अबभाष्यकार श्रीशंकराचार्य भीभाष्यकी समाप्तिविषे शास्त्रकरके प्रतिपादन किये पर देवताके स्वरूपको स्मरण करके तिसके नमस्काररूप मंगलाचरणको आचरण करते हैं॥ "अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्ययोगादगतिच गतिमत्ताम्प्रापदेकंह्यनेकम्। विविधविषयधर्म्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृब्रह्मयत्तन्नतोस्मि "। (जो जन्मसे रहितहुआ भी ऐश्वर्य के योगसे प्राप्तहोता हुआ, गतिसे रहित हुआ गतिमान् पने को प्राप्त होताहुआ अरु एकहुआ विविध प्रकारके विषयरूप धर्म्मों के ग्रहणकरनेवाले विवेकहीन दृष्टिवाले को अनेकवत् भासता है, अरु जो ब्रह्म प्रणतके भयको नाश करता है तिसके अर्थ मैं नमस्कार करता हौं) अर्थात् जो ब्रह्म जन्मादिक सर्व षड्भाव। विकार रहितहुआ भी (अर्थात् वास्तव से कूटस्थ सिद्ध है तथापि) सो अनिर्वचनीय अज्ञानके शक्तिरूप ऐश्वर्य के योगसे आकाशादि कार्य्यरूप करके जन्मके बन्धन को प्राप्त होताहुआ। अर्थात् प्राप्त होयके जगत्का उपादान कारण है, ऐसे व्यवहार का भागी होताहै, इसप्रकार श्रुति अरु ब्रह्मसूत्रविषे ब्रह्मको जगत् का कारणपना प्रसिद्ध है। अरु जो ब्रह्म, यद्यपि कूटस्थपने अरु व्यापकपने करके गमन से रहित हुआ स्थित होताहै, तथापि उक्तप्रकारके अज्ञानके माहात्म्यसे कार्य्य ब्रह्मरूपताको पायके गमनमानपने को प्राप्त होताहुआ। अरु जो ब्रह्म एक हुआ, अर्थात् वास्तव से सर्व नानाभावसे रहित एक

॥ प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभंभूतहेतोर्यस्तंपूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि २ ॥

रस अद्वैत है, इसप्रकार उपनिषदों करके जानाजाता है, तथापि अनादि अनिर्वचनीय अविद्या के वशते विविधप्रकार के विषयरूप धर्म्मों के ग्रहण करनेवाले होने करके विवेकरूप दृष्टि से रहित पुरुषों को, जीव, जगत्, अरु ईश्वर, इन भेदों करके अनेकवत् भासताहै । अरु जो ब्रह्म आचार्यके उपदेशसे जनित बुद्धिवृत्तिविषे फलरूपसे आरूढहुआ प्रणत, कहिये ब्रह्मनिष्ठावान् पुरुषोंके, अविद्या अरु तिसके कार्य्यरूप भयका नाशकरताहै, तिस सर्व उपनिषदोंविषे प्रसिद्ध सर्व परिच्छेद । भेद । से रहित प्रत्यगात्मारूप ब्रह्मके अर्थ मैं नमस्कार करताहौं, अर्थात् तिसको विषयकरनेवाले भावको प्रकट करताहौं १ ॥

२ ॥ हे सौम्य, अब ग्रन्थरचनाके प्रयोजनके देखावनेपूर्वक इस व्याख्यान किये आगमरूप शास्त्रके कर्त्ता होनेरूपसे स्थितहुये परमगुरु को प्रणाम करते हैं "। प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभंभूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यंपरमगुरुममुंपादपातैर्नतोऽस्मि "। (जो निरन्तर जन्मरूप ग्राहोंकरके भयंकर समुद्रविषे परवश हुये भूतोंको देखके करुणाभावसे बुद्धिरूप मंथनकाष्ठके डालने से विडोलन को प्राप्तहुये वेदनामक समुद्रके अन्तरास्थित अरु देवताओं को भी दुःखसे प्राप्तहोने योग्य इस अमृत को भूतनके हेतुसे उद्धार करता हुआ, तिस इस पूज्योंकरके भी पूजने को योग्य परम गुरुको पादनाविषे पतनसे मैं नम्रहुआहौं), अर्थात् जो जन्मादि रूप ग्राहादि जलचरोंकरके भयंकर जो संसाररूप समुद्र तिस

यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहा-न्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरेह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रास नेमे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्व्वभावैर्नमस्ये ३ ॥ इति ॥

बिषे पर (कर्म्म) वशहुये प्राणियोंको देखके प्रकटहुई जो करुणा तिसकरके बुद्धरूपी मंथनकाष्ठ (रयि) के डालने से मंथनको प्राप्तहुये वेदनामक समुद्रके अन्तर स्थित अरु । "देवारत्रापि-विचिकित्सितंपुरानाहि सुविज्ञेयमणुरेषधर्म्मः" इत्यादि प्रमाण से । देवताओं करकेभी दुःप्राप्य ,इस ज्ञानरूप अमृतको प्राणि-योंके हितार्थ उद्धारकरता । निकासता । हुआ, तिस इस पूज्योंकरके भी पूजनेयोग्य । अर्थात् श्रीशंकराचार्य्य करके पू-जनेयोग्य उनके गुरु श्रीगोविन्दाचार्य, अरु तिनकरके पूजनेयोग्य उनकेगुरु श्रीगौडपादाचार्य,अतएवयहां भाष्यकार श्रीशंकराचार्य ने परमगुरु गौडपादाचार्य्यके अर्थ ।पूज्योंकरके भी पूजने योग्य यह विशेषण दियाहै। परमगुरुको उनके चरणोंबिषे अपनेमस्त-कके बारम्बार नमनभावरूप पतनसे । अर्थात् उनके चरणों में बारम्बार अपने मस्तकको स्पर्श करावनेसे । मैं नम्रहुआहौं २॥

३॥ हे सौम्य, पुनः अब अपने गुरुकी भक्तिके ,विद्याकी प्राप्ति बिषे अन्तरंगपनेको अंगीकारकरके तिस गुरुकेपादपद्म युगलको प्रणाम करतेहैं "यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहा-न्धकारो मज्जोन्मज्जच्चघोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौपा-वनीयौभवभयविनुदौसर्व्वभावैर्नमस्ये" । "जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेक जन्ममय घोर भयंकर समुद्रविषे अनुद्भूत अरु उद्भूत अन्तःकरणबिषे मोहरूप अन्धकार नाशको प्राप्तहोताहुआ, तिनके उभय पादपद्मके अर्थ आश्रितहुये श्रव-

णज्ञान शान्ति अरु विनयकी प्राप्ति होती है, अरुजाते सफल है ताते श्रेष्ठ है, अरु पवित्र करनेवाले, संसार के किये भय को नाश करने वाले, तिनके उभय पादपद्मोंके अर्थ सर्वके भावसे नमस्कार करताहौं ; अर्थात् जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेकदेव तिर्यक्आदिक योनियोंविषे नानाप्रकारके देहभेदके ग्रहणरूप जन्मभयघोर कहिये क्रूर, अरु भयंकर समुद्र विषे कदाचित् कार्यरूपसे अनुद्भूतअरु कदाचित् कार्यरूपसेउद्भूत कहिये अनर्थकारी अन्तःकरणविषे व्याकुलताके हेतु अविवेकका कारण अनादि अज्ञानमय मोहरूप अन्धकार नाशहोताहुआ, अरु जिन गुरुके उभय चरणोंकेताईं आश्रितहुये अन्य शिष्योंको भी मनन अरु निदिध्यासन सहित श्रवणज्ञान अरु इन्द्रियोंकी उपरतिरूप शान्ति अरु नम्रतारूप विनय (निरहंकारता) की प्राप्तिहोतीहै। अरु जिसकरके उन श्रवणादिकोंकी प्राप्ति सफल है ताते श्रेष्ठहै सो होती है। अरु सर्व जगत्केभी पवित्रकरनेवाले अरु अपने सम्बन्धी सर्वजनों के संसार के किये भयका कारण सहित नाशकरनेवाले, तिन हमारेगुरुके युगलपाद पद्मोंकेअर्थ ,कायिक, वाचिक, मानसिक, इनसर्व के प्रकटभावसे नमस्कार करताहौं ॥ नमस्कार करताहौं, नमस्कार करताहौं ३ ॥ इति मंगलम् ॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य ब्रह्मानन्दसरस्वति पूज्यपाद ,अति अल्पज्ञ, शिष्य यमुनाशंकर नागरब्राह्मणकृत मांडूक्योपनिषद् संहितगौडपादीयकारिका, श्रीभगवत्पाद भाष्यानुसार कचित् स्वकल्पित भाषाभाष्य समाप्तम् ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

ॐ अथ

अब इस भाषाभाष्यकार कृत सर्व उपनिषद् आदिकोंका प्रणवोपासनाविचार देखावने के अर्थ संग्रहनाम प्रकरण, प्रारम्भकरतेहैं ॥

सूचना ॥

हे सौम्य, यह मांडूक्यनाम उपनिषद्केवल प्रणवकी व्याख्या अरु ब्रह्म आत्माकी अभेद एकताका बोधक अरु संन्यासियोंका उपास्य इष्ट होनेसे सर्व उपनिषदोंका सारहै, अतएव कर्मादिकों से अरु तिनके फलादिकों से उपराम चित्त वैराग्य शील मुमुक्षुओं को उसकी उपासना अरु अर्थविचार अवश्य कर्त्तव्य है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यह सर्व्वोत्तम आलम्बन (आश्रय) है "एतदालंबनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्, एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे। एतदर्थ यहां इस उपनिषद्की अरु तदुपरि श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिकाकी व्याख्याकी समाप्तिके पश्चात् अवसरपायके अन्य उपनिषदोंमें जो प्रणवोपासना अरु तिसकाफल अरु प्रणवकी महिमा कही है, अरु जिसप्रकार हिरण्यगर्भादिक साती सिद्धान्तकारोंने अपने अपने सिद्धान्तानुसार प्रणवोपासना कहीहै अरु जिसप्रकार अन्य ऋषियोंने मात्राके विचारकहे हैं अरु प्रणवके जो १०नाम हैं सो अरु तिनकी व्याख्या अरु जिसप्रकार अकारादि मात्रावोंके लयचिंतवन से सर्व्वाधिष्ठान निर्विशेष शुद्ध प्रणवके लक्ष्य तुरीय आत्माका लक्ष्यकराया है सो। इत्यादि सर्व अरु अन्य भी कल्पित विचार, जो प्रणव विषयक है, तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहताहों क्योंकि यहां प्रणव विषयक विचार कहने का अवसर अवकाश है, तिसको भी सावधानहोय श्रवण करो ॥

ईशावास्योपनिषद्गतॐकारोपासना

ॐक्रतोस्मरकृतꣳस्मर क्रतोस्मरकृतꣳस्मर ॥

हे सौम्य, अब प्रथम ईशावाश्य नामक शुक्लयजुर्वेदीय संहितोपनिषद्के सप्तदशवें १७ वें मन्त्रके उत्तरार्द्धविषे प्रणवोपासना पूर्वक निष्काम कर्म्म कर्त्ता पुरुषके अर्थ वा वर्णत्रयिके मनुष्य जो वेदाध्ययनके अधिकारीहैं तिनके अर्थ उनके अन्तकाल कहिये देहावसानसमय, ॐकार के स्मरणकरनेके अर्थ वेदकी वा वेद द्वारा ईश्वरकी आज्ञाहै। अरु तिस आज्ञाके अनुसार उक्त प्रकारकेउत्तम विद्वान् पुरुष अपने देहावसान समय अपने मनको जो शिक्षा करते हैं तिसको श्रवण करो। तथाच श्रुतिः "ॐक्रतोस्मरकृतꣳस्मर क्रतोस्मरकृतꣳस्मर" वो विद्वान् अपने मनसे कहते हैं, हे निरन्तर संकल्प विकल्प के करनेहारे महाचंचल संकल्परूप मनतू एतनेकालपर्य्यन्त असंख्य संकल्पोंको करताही रहा, अरु उभयलोकके विषयोंको अरु शास्त्रानुसार कर्म्मों के होनहार फलको स्मरण करताही रहाहै सो अस्तु, परन्तु अब जो तुझको स्मरण करने योग्यहै तिसही के स्मरण करनेका समय आय उपस्थितहुआहै, अरु जिसकी तैंने सम्यक्प्रकार उपासना कहिये जपअरुअर्थकी भावना, कियाहै, तिस ॐकारका, जो ब्रह्मका प्रतीकहै, स्मरण कर, क्योंकि जिस समय के साधने के अर्थ बाल्यावस्थासेही उपासनादिक किये हैं, सोसमय अबप्राप्तहै। अतएवअबतू अपनेपरम कल्याणार्थ ॐकारका स्मरणकर। अरु हे मन बाल्यावस्था (यज्ञोपवीत संस्कार) से अरु अद्यावधि पर्य्यन्त जो तूने कर्म्मानुष्ठान कियाहै, अर्थात जिनसंध्या गायत्री अग्निहोत्रादि निष्काम कर्मोंके करने से अशुभ कामुक, कर्मस्पर्श करते नहीं "एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्तिन कर्म्म लिप्यतेनरे" इसमन्त्रप्रमाणसे। तिन कर्मोंका स्मरणकर। अर्थात तेरेकर्म्म उपासना ऐसेनहीं कि देहत्यागोत्तर अवगति प्राप्तहोने

कठवल्ली उपनिषद् गतप्रणवोपासना ॥

सर्व्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्व्वाणिचय-
द्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदꣳ सं
ग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवा
क्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरंज्ञात्वा योयदिच्छति तस्य
तत् ॥ एतदालम्बनꣳश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एत-
दालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोकेमहीयते ॥

ाभय होय, अतएवतू अपनेकिये सर्व्वोत्तम कर्म्म उपासनाको
ास उपस्थित समय स्मरणकर समयको साध निर्भयहो ॥ हे
सौम्य इसप्रकार मनुष्यवर्णत्रयि,को सर्वकाल परमोत्तम वेदोक्त
कर्म्म उपासनाकरके अन्तसमय तिनके स्मरण से अवगतिसे
निर्भयहोय परमोत्तम गतिको प्राप्तहोना योग्यहै यह शुक्लयजुमा-
ध्यन्दिनि संहिताकी अन्तिम आज्ञा है । अरु इस मन्त्रार्थमें जो
स्मरण करनेको दोबार कहाहै सो स्मरणके आदरार्थ है, अतएव
अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरण विचारअवश्यही कर्त्तव्य है ॥
इति सिद्धम् ॥

अथ कठवल्ली उपनिषद् सम्बन्धि प्रणव विचार ॥

हे सौम्य अब कठवल्ली उपनिषदबिषे जो ॐकारोपासना की
प्रशंसा महिमा कही है तिसको भी श्रवण करो । हे प्रियदर्शन
कोई एक उद्दालक नाम ऋषिके नचकेता नाम बालक पुत्र स-
र्व्वोत्तमाधिकारी ने आत्मदेव के जानने की इच्छा धारके तीसरे
वरदान करके अपने आचार्य भगवान वैवस्वत(यमराज,वा मृत्यु)
महाराजसे प्रार्थना किया कि हे भगवन् "अन्यत्रधर्म्मादन्यत्रा-
धर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यन्य भूताच्च भव्याच्च यत्तत्प
श्यसि तद्वद" जो शास्त्रोक्त धर्म्म अरु तिसके स्वर्गादिक फल

से, अरु तिनके कारक साधनोंसे पृथक्है, अरु तैसेही शास्त्रकरके कहे अधर्म्म अरु तिनके नरकादिफल अरु कारक साधनोंसे पृथक् है। अरु तैसेही इन कार्य्य अरु कारणोंसे भी अन्यहै, अरु तैसेही भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमान कालत्रयसे भी जो पृथक्है, अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान यह तीनकाल, अरु कार्य्य कारण देश, अरु धर्म्म अधर्म्म अरु तिनके फल अरु साधन, यह वस्तु। इसप्रकार उक्त देश काल वस्तुसे पृथक् हुआ, इन करके परिच्छेद (भेद) को प्राप्त होतानहीं, ऐसा जो सर्व व्यवहारके विषयसे रहितहै, अर्थात् जो प्रमाणादिक अरु बुद्ध्यादिक किसीका भी विषय नहीं, तिस वस्तुको आप देखतेहौ अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करतेहौ अतएव सो वस्तु मेरे प्रतिकहो॥ हे सौम्य इस प्रकार जब नचकेता ने आत्मजिज्ञासा पूर्वक मृत्यु भगवान से विनय किया तब तिसको श्रवणकर प्रथम निर्विशेष आत्मतत्त्व न कहके तिसकी प्राप्तिमें मुख्य आलम्बन जो आत्माका प्रतीक ॐकार तिसकी उपासनाकी अरु तिसके ज्ञानकी महिमा कहते हुये॥ मृत्युरुवाच "। सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्व्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरंति तत्तेपदꣳसङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ एतद्ध्येवाक्षरंब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत्॥ एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते"। १५, १६, १७,॥ हे नचकेतः ऋगादि सर्व वेद, अर्थात् ऋगादि वेदके एक देश ब्रह्मविद्या रूप उपनिषद, जिस पावने योग्य पदको अविभागसे, एकही निश्चयसे, प्रतिपादन करते हैं॥ हे सौम्य यहां वेद शब्दके अर्थ से वेदके एक देशरूप उपनिषद् का ग्रहण है, तिसका यह तात्पर्य है कि उपनिषद् जो है सो ज्ञानके साधन होनेकरके तिस। प्रणवके लक्ष्य। परमात्म पदसे साक्षात् सम्बन्धवाले हैं। अर्थात् उपनिषदोंके महावाक्यार्थ ज्ञानसे परमात्माकी अपरोक्ष साक्षात् अनन्यप्राप्ति

होतीहै, अतएव उपनिषद् परमात्मपदसे साक्षात् सम्बन्धवाले हैं। अरु जिसकी प्राप्तिकेअर्थ सर्वविद्वान् तपको (स्वधर्म्मानुष्ठानको) कहतेहैं। अथवा सर्वतपाचरण करनेवाले तपस्वी जिसको कहतेहैं। अरु जिसकी इच्छाधारके गुरुकुलवासादि ब्रह्मचर्य्यको आचरतेहैं। अर्थात् जिस प्रणवकेलक्ष्य परमात्मपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले श्रद्धासम्पन्नहुये गुरुकुल में बासकर उपनिषदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य करते हैं। अरु जिस पदके जाननेकी इच्छा तूभी करताहै। हेनचिकेतः तिसपदको तेरेअर्थ संक्षेपमात्र कहताहौं सोयह ॐकारही है। अर्थात् हेनचिकेतः जिस पदको जाननेकोतू इच्छताहै तिसका प्रतीक (प्रापक) ॐकारहै, क्योंकि वो ॐकारकालक्ष्य अरु ॐकाररूप प्रतीकवालाहै। ताते यहॐ अक्षर सगुण वा त्रिमात्रिक होनेसे अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्महै, अरु यही अक्षर अपने लक्ष्यरूपसे गुण वा मात्रासे रहित अविनाशी अमात्रिक निर्गुण पर (श्रेष्ठ) ब्रह्महै। एतदर्थ इस उक्त अक्षरको सम्यक्प्रकार जानकेजो उपासनाकरताहै सोपर वा अपर जिस ब्रह्मको प्राप्तहोनेको इच्छताहै तिसको सोई होताहै। अर्थात्जो ब्रह्मलोककी इच्छाधारके त्रिमात्रिक प्रणवकी समाहित चित्त ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक जपादिरूपसे उपासना करताहै तिसको सोई ब्रह्मलोक होताहै। अरु जो मुमुक्षु मोक्षकी इच्छाधार के त्रिमात्रिक प्रणवके विचारपूर्वक तिसके अधिष्ठान अमात्रिक आत्माका ब्रह्मकेसाथ अभेद अभ्यास वा निदिध्यासन करताहै तिसको प्राप्तहोता है। अतएव हेनचिकेतः ब्रह्मलोक प्राप्तिवाले को अन्य अज्ञादि आलम्बनों से इस त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रणवोपासना के आलम्बन से ब्रह्मलोक को प्राप्तहुआ विद्वान् ब्रह्मा से प्रणव के लक्ष्य का ज्ञानपाय पुनरावृत्तिसे रहित मोक्षहोताहै। अरु परब्रह्मप्राप्ति की इच्छावालेको इस ॐकारकी विचाररूप उपासना अन्यसर्व साधनोंके मध्य प्रशंसाकरनेयोग्य परमोत्तम आलम्बन (आश्रय)

अथ प्रश्नोपनिषद्गत प्रणवोपासना ३ ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति ॥

है, मुमुक्षुको परमात्म प्राप्तिकेअर्थ इस ओंकारकी उपासनासे अधिकश्रेष्ठ आलम्बन कोईनहीं, एतदर्थ इस आलम्बनको सम्यक्प्रकार जानके उपासनाकरनेवाला ब्रह्मलोकबिषे महिमाको पावताहै, अर्थात् जो ब्रह्मलोककी प्राप्तिकी इच्छासे त्रिमात्रिक ओंकारकी उपासना करताहै सोतिसके आश्रय ब्रह्मलोकमेंजाय ब्रह्मावत् पूजनीय होता है । अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ इस ओंकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी उपासना करताहै सो ब्रह्मरूप लोकबिषे अनन्यहुआ तिसकी महिमाको प्राप्तहोताहै " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " हे सौम्य उक्तप्रकार मुमुक्षु के अर्थ अमृतत्व प्राप्तिमें ओंकारकी उपासनारूप आलम्बनसे इतर सर्व्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं । ऐसा कठवल्ली उपनिषद् की श्रुतिवाक्य प्रमाणसे सिद्धहीहै । अतएव मुमुक्षुने अपनेमोक्षार्थसर्व्वोत्तम परमश्रेष्ठ ओंकारोपासनाकाही आश्रयकरना उचितहै ॥ इति २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतओंकारोपासना ३ ॥

हे सौम्य, अब अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिसप्रकार प्रश्न पूर्वक ओंकारके पर अरु अपर दोभेद अरु क्रमसे मात्राओं के उपासकोंकी गति कही है, तिसको भी संक्षेपमात्र कहताहौं सावधानहोय श्रवणकरो ॥ हे प्रियदर्शन प्रश्नोपनिषद्के पञ्चम प्रश्नविषे सत्यकामानामकऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद नामकऋषिसे प्रश्नकियाहै कि "सयो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत, कतमं वावसतेन लोकं जयतीति"

तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतने नैकतरमन्वेति ॥

हे भगवन् (पूजनेयोग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्यवत् है जो कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्य्यन्त सम्यक् प्रकार सर्व धर्म्माचरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहित चित्ततासे ॐकारके अभिध्यान से 'कर्म्मों के फल जे स्वर्गादि अनेक लोक हैं तिनमें से कौनसे लोक का जयकरता है' अर्थात् वो प्रणवोपासक कौनसे लोक को प्राप्त होता है, सो आप कृपा करके कहिये॥ हे सौम्य इस प्रकार जब सत्यकामनामवाले ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर कहते हुये "। तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ।" पिप्पलाद मुनि तिस प्रश्नकर्त्ता सत्यकामा प्रति कहतेहुये हे सत्यकाम यह जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्महै, सो उभय प्रकारका ब्रह्म ॐकार ही है। अथवा ॐकार का लक्ष्य सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक परब्रह्म है, क्योंकि मात्रारूप उपाधि से पर (पृथक्) है ताते वा मात्रा वाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते। अरु तिसका प्रतीक होने से त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक ॐकार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है। अरु इस ॐकार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालिग्राम नामक पाषाण को विष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होने से उसको भी विष्णुपना है, तैसे है, ताते इस ॐकार को निरुपाधि निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्रा की जाग्रदादि अवस्थादि रूप पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनों की अपेक्षा से जो सर्व्वाधिष्ठान चतुर्थ शिवहै तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से ए-

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति ३ ॥

कात्स्न्य ध्यानकरके उस ॐकार का लक्ष्य जानने में आवता है। इसप्रकार जानके जो परब्रह्महै सो ॐकारही है । अर्थात् "ॐ" इस ॐकार अक्षरका जो लक्ष्य अविनाशी अक्षर परब्रह्महै ताते ॐकारही परब्रह्म है, अरु परब्रह्म का वाचक 'प्रतीक' होनेसे यह अपरब्रह्म है । इसप्रकार ॐकार को पर अरु अपर उभय ब्रह्मरूप जाननेवाला पुरुष ॐकारकी उपासना के आश्रय दोनों में से एक को पावता है । अर्थात् जो ॐकारकी उपासना (मात्राओंकी लयता) के विचाररूप आलम्बन से सर्ववृत्ति आदिकोंके अभावसे निर्विकल्प समाधिमें निर्विशेष आत्मस्थिति दृढ़तासे पावता है सो अभेदतासे परब्रह्म को पावता है । अरु जो उक्तप्रकार की आत्मस्थिति को न पायके तिसकी प्राप्तिके अर्थ 'ॐ' इस अक्षर की जप विचारात्मक उपासना को सम्यक्प्रकार यथाशास्त्र विधि आश्रयकरताहै, सो तिसका फल ब्रह्मलोकको प्राप्तहोय वहां ब्रह्मद्वारा लक्ष्यको पावता है ॥ हेसौम्य उक्तप्रकार कहके पुनः पिप्पलाद मुनि कहता हुआ कि हे सत्यकाम अब ॐकारकी मात्राके ज्ञानउपासनाकेआश्रय अधिकारी उपासकों को जोजो फल, कहिये गति, प्राप्तहोता है तिसकोभी क्रमशः श्रवण करो जो पुरुष ॐकारको ब्रह्म का प्रतीक होनेसे समीपवर्त्ती अरु आलम्बनों में श्रेष्ठ आलम्बन परम उपकारक साधन जानताहै, अरु त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करने योग्य है, इस प्रकार जानताहै । परन्तु ॐकारकी सर्व मात्राओं को यथार्थ विभाग पूर्वक जानता नहीं, किन्तु ॐकारकी एक अकार मात्रा ही उपासना करने योग्य है, इसप्रकार जानके ॐकार की पूर्णरूप

से उपासना न करके खण्डरूप से एकमात्रा कीही उपासना करताहै सो खण्डोपासक भी अवगतिको पावता नहीं, अब उसको जो गति प्राप्तहोती है सो श्रवण करो " स यद्येकमात्रामभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति " अर्थ यह जो, सो उक्तप्रकार का उपासक जब केवल एकमात्राके विभागका जाननेवाला हुआ सर्वदा एक मात्रा रूपसे ही ॐकारको ध्यावता (ध्यान विचारकरता) है, सो पुरुष तिस ॐकारकी एकमात्राके ध्यानके प्रभावसे ही तिस मात्राका साक्षात्कारवान् हुआ, देहत्यागके अनन्तर तत्काल ही पृथिवी (मनुष्यलोक) बिषे। जन्म। पावताहै, तहां पृथिवी बिषे अनेक योनियों के जन्म हैं तिनमें तिस उपासक को सर्व्वोत्तम वर्णत्रयि मेंसे कोई एक मनुष्यलोक (शरीर) को ॐकारकी ऋग्वेदरूप प्रथममात्रा प्राप्तकरती है, तब सो उपासक मनुष्यलोकमें द्विजोत्तमहुआ, तपकरके, ब्रह्मचर्य करके, श्रद्धा करके, सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै। हे सौम्य महिमाका स्वरूप सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्बिषे " गो अश्व मिहमहिमेत्याचक्षते हस्ति हिरण्यं दासभार्य्यं क्षेत्राण्यायतनानीति " गो अश्व हस्ति आदिक पशु अरु सेवकादिक भृत्य। अरु भार्य्या उपलक्षण करके भार्य्या पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब, अरु सुवर्ण उपलक्षण करके सुवर्ण रजत रत्नादिक धन, अरु रोगादिकोंसे रहित अरु दीर्घायु सहित सुन्दर शरीर, अरु क्षेत्र पृथिवी (राज्य) अरु आयतन कहिये सुन्दर निवासस्थान। इत्यादिकों को महिमा करके प्रतिपादन कियाहै तिस महिमाको वो ॐकार की एक मात्राका उपासक पावता है। परन्तु श्रद्धादिकोंसे रहित हुआ यथेष्टाचरणकरता नहीं किन्तु शास्त्रानुसार ही चेष्टा। अरु पूर्वाभ्यास वश प्रणवोपासना। ही, करताहै। अतएव उक्तप्रकार का प्रणवोपासक दुर्गतिको कदापि प्राप्तहोता नहीं ॥–॥ हे सौम्य

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूति-मनुभूयपुनरावर्त्तते ४ ॥

उक्तप्रकारके उपासकसे अन्य पुरुष " । अथयदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोम-लोके विभूति मनुभूय पुनरावर्त्तते " अर्थ, यदि ॐकारकी दो मात्रा के जाननेवाला ॐकारको , अकार, उकार , इन दो मात्रारूप जानके मात्राओं के विभागपूर्वक ॐकारको ध्यावताहै । अर्थात् ॐकारका जप अरु दोमात्राके विभागके विचारसे अर्थ भावना रूप ध्यान करताहै, सो यजुर्वेदमय चन्द्रमारूप देवतवाले । अ-र्थात् चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसे मनविषे एकाग्रतासे आत्म भावको प्राप्त होताहै, सो । देहत्यागान्तरं । यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दोमात्राके प्रभावसे अन्तरिक्षरूप आधारवाले चन्द्र-लोक को प्राप्त होताहै, अर्थात् तिस ॐकारकी दोमात्राके उपा-सक साधकको यजुर्वेद जोहै सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्म प्राप्त करता है । अर्थात् जो पुरुष यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दोमा-त्रारूपसे उपासना करते हैं सो उस उपासना के प्रभावसे यहां देहत्यागान्तर चन्द्रलोक में । जो इस लोक की अपेक्षा उत्तम अरु द्वितीय है । जन्म पावता है, तब सो तिस चन्द्रलोक सम्ब-न्धी महिमा (विभूति) को अनुभव करके (भोगके) पुनः इस मनुष्यलोक में आय जन्म पावता है । यह ॐकार को दोमात्रा रूप जानके उपासना करनेवालेकी गति कहीहै । अरु धूमादि दक्षिणायन मार्गवालोंकी भी यही गति है हेसौम्य, अब ॐकार के तीनों मात्रा की पूर्ण उपासक की जो गति है तिसको भी श्रवण करो " । यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्ये-तेनैवाक्षरेण परं पुरुष मभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः " । अर्थ ,पुनः जो पुरुष तीनमात्रा का ज्ञाताहुआ,अरु इस ॐकार

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेणपरं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै सपाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं। सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः५॥

को ब्रह्मका प्रतीक होनेसे ब्रह्म प्राप्तिमें उसको परम आलम्बन जानके त्रिमात्रिक ॐकार रूप सूर्य्य के अन्तरगत पुरुषको (ॐकारके लक्ष्यको) ध्यानकरता है। (अर्थात् जिस अधिष्ठान रूप परम पुरुष के आश्रय तीनों पादरूप मात्रा अध्यस्तहै, अरु सर्प में रज्जुके अन्वयवत् जिसका तीनों मात्राओंमें अन्वय है। अरु सत्यरूप रज्जुमें अध्यस्त असत्य सर्प के व्यतिरेकवत् व्यतिरेक है, तिस सर्वाधिष्ठान निरुपाधि परम पुरुष को, त्रिमात्रिक ॐकार जो ब्रह्मका प्रतीक है तिसरूप सूर्य्यबिषे उक्त परमपुरुषको ध्यानकरता है, वा आकाशगत सूर्य्यमंडलबिषे, अरु त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षररूप सूर्य्य बिषे जो सूर्यादि सर्वका प्रकाशक सर्वाधिष्ठान सर्वका आश्रय परमपुरुषहै तिसको उभय सूर्य्य बिषे एक जानके अरु तिसके साथ आत्माकी एकताजानके (अर्थात् जो चैतन्यपुरुष प्रकाशरूप से सूर्य्य बिषे स्थित है, अरु सर्वका साक्षीरूपसे शरीरादि संघातबिषे स्थित है, अरु लक्ष्यार्थरूप होयके त्रिमात्रिक ,ॐ, इस अक्षरबिषे स्थितहै,सो एकही है इसप्रकार ,ॐ, इस अक्षरबिषे, अरु सूर्य्यमंडलबिषे, अरु शरीरादि संघातबिषे, अरु इन तीनोंको उपलक्षणकरके ,अधिदैवत , अधिभूत, अध्यात्म, इन तीनोंप्रकारके जगत्बिषे, एक अखंड अविनाशी चैतन्यपुरुषको "ॐकारेवेदं सर्व्वम्" इत्यादि श्रुति अरु स्वानुभव प्रमाणसे)। जो मात्राओंके ज्ञान पूर्वक ध्यानकरता है सो तिस ध्यान उपासना के प्रभाव से मरणोत्तर (तेजोमयहुआ) तेजोमय सूर्य्य बिषे प्राप्त होताहै।

अरु सो उपासक , जैसे ॐकारकी दोमात्रा का उपासक चन्द्रलोकमें विभूतिको अनुभवकर पुनरावृत्तिको प्राप्त होताहै, तैसे त्रिमात्राका उपासक सूर्य्यमंडलविषे प्राप्तहुआ पुनरावृत्तिको प्राप्त होता नहीं, किन्तु सूर्य्यविषे प्राप्तहुआ ही होताहै । अर्थात् सूर्य्यलोकमें जाय वहां की विभूति महिमाको भोक्ताहुआ वहां ही रहता है "। यथा पादोदरस्त्वचा विमुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं "। अरु सो पुरुष , जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्यागके पश्चात् नवीनहुआ पुनः उस परित्याग कीहुई जीर्ण त्वचाको देखता (पावता वा ग्रहणकरता) नहीं । तैसेही प्रसिद्ध सो प्रणवोपासक सर्प की त्वचास्थानीय अशुचितारूप पापों से मुक्त होताहै । । अथवा जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्याग नवीन हुआ पुनः उस त्यागी हुई त्वचाको ग्रहण करता नहीं, तैसे वो तीनमात्रा का उपासक इस मनुष्य लोक सम्बन्धी शरीर रूप पापोंसे मुक्त हुआ सूर्य्य लोक विषे देव शरीरको पाय पुनः इसलोक सम्बन्धी शरीर को न ग्रहण करके देवरूपही रहता है । अरु इस लोक सम्बन्धी शरीररूप पापोंसे मुक्तहुआ सूर्य्यलोकविषे देवशरीरको पाय वहां भी उपासना के प्रभावसे, तीसरी मात्रारूप सामवेद करके, सूर्य्यलोकसे भी ऊंचे हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्माकेसत्यलोक नामकलोकको प्राप्तहोताहै ॥ अरु "सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयंपुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः"। सो तीसरी मात्रा वा तीनोंमात्रा का उपासक विद्वान् पुरुष सत्यलोक में स्थितहुआ इस सर्वोत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से । अर्थात् सर्व सूक्ष्म शरीरोंकी समष्टतारूपहिरण्यगर्भहै अतएव उसको जीवघन कहतेहैं । भीपर कहिये, श्रेष्ठ, परमात्म नामवाले पुरुषको 'जोसर्व शरीररूप पुरियों में स्थितहै वा सर्व शरीरगत पुरीतति नाडी विषे स्थितहै, देखताहै । अर्थात् जो ॐकारका लक्ष्य अरु हिरण्यगर्भादि सर्व अध्यस्योंका अधिष्ठान जोएक सर्व्वात्मा परमपुरुषहै तिसको

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासुनकम्पते ज्ञः ६ ॥

साक्षात् सोहमस्मिभावसे अनुभवकर्त्ता पुरुष पुनरावृत्तिसे रहित हुआ ब्रह्माकेसाथ वा ब्रह्मसे महावाक्यार्थका ज्ञानोपदेश पायके मोक्ष होताहै। तहां इस उक्त अर्थ के प्रकाशक अग्रिम दो मन्त्र प्रमाणहैं "तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासुबाह्याभ्यन्तरमध्यमासुसम्यक्प्रयुक्तासुनकम्पतेज्ञः" अर्थतीन संख्याहैं जिनकीऐसी जोॐकारकी अकारउकार, मकार, यह तीनमात्रा हैं, सो मृत्युकी विषयही हैं अरु परस्पर सम्बन्ध वालीहैं, अरु वो तीनों मात्रा विशेष करके एकएक विषय बिषेही योजनाकरीगईहोवें ऐसानहीं, किन्तु विशेषकरकेएकही ध्यानकाल बिषे त्यागकीहुई, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन स्थान, अरुतिन के अभिमानी, जे, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, के अभिमानी 'वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, अरु अव्याकृत, तिनसे अपृथक्, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, पुरुषतिनकी, अकार, उकार, मकार, इनतीन मात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् जाग्रदवस्था विश्वाभिमानी स्थूल भोग, इस व्यष्टि प्रथम पादकी, विराट् स्थान वैश्वानर अभिमानी स्थूल भोग, इस समष्टि पादसे एकताकर तिसका अकार रूप प्रथम मात्रासे तादात्म्य करके। अरु तैसेही स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी बिरलभोग, इस व्यष्टि द्वितीय पादकी सूक्ष्मस्थान हिरण्यगर्भाभिमानी बिरलभोग, इस समष्टि द्वितीय पादसे एकताकर, पुनः तिसका उकाररूप द्वितिय मात्रा से तादात्म्य करके, पुनः, सुषुप्ति अवस्था प्राज्ञाभिमानी आनन्द भोग, इस व्यष्टि तृतीय पादको कारणावस्था रुद्रवा ईश्वराभिमानी आनन्द वा अज्ञान भोग, इससमष्टि तृतीय पादबिषे एकता करके, पुनः उस पादकी मकार मात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् उक्त प्रकार जाग्रदादि

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवये वेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति॥ ७ इति॥

तीनों पादों को अकारादितीनों मात्रासे तादात्म्य (एकता) करके ध्यानरूप जो बाह्य भीतर अरु मध्यकी योगक्रिया है तिसके सम्यक् ध्यानके कालविषे योजनाकिये हुये जब वे तीनोंमात्रा योजना किया होय, अर्थात् समष्टि उक्त पादोंविषे व्यष्टि उक्त पादोंकी योजनाकरके पुनः क्रमशः प्रथम अकार मात्राको द्वितीय उकारमात्राविषे लयकरे, अरु उस अकारयुक्त द्वितीय उकार मात्राको मकाररूप तृतीय मात्राविषे लयकरे, पुनः उस तृतीय मात्राको उस ॐकारके वाच्य अधिष्ठानविषे नामनामीके अभेद से लयकरे, वा अध्यस्तरूप तीनों मात्राको उसके अधिष्ठानसे अपृथक् जानके लयकरे।॥ इसप्रकार सम्यक्ध्यानके कालविषे तीनोंमात्रा उक्तप्रकार जब योजना करीहोय, तबउस ॐकारका ज्ञाता योगी चलायमान होतानहीं। अर्थात् विक्षेपको पावता नहीं, किन्तु अचलही होताहै। अरु जिसकरके उक्तप्रकारका प्रणवोपासक विद्वान् "ॐकारएवेदं सर्व्वम्" इत्यादि प्रमाण अनुभवसे सर्व्वात्मा ॐकाररूपहुआहै एतदर्थ उसका चलना (विक्षेप) किसकारणसे होवेगा' किसीसे भी नहीं, क्योंकि विक्षेपका कारण द्वैतभेद भावहै, सो उसको न होयके सर्वत्र ॐकारआत्मभावही है, ताते विक्षेप के कारण द्वैतभावके अभावसे एक ॐकारदर्शी विद्वान् चलायमान होतानहीं॥ हे सौम्य "ऋग्भिरेतंयजुर्भिरन्तरिक्षंससामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते" अर्थ, ऋग्वेद से ॐकारको एक मात्रारूप जानके भजन उपासन करनेवाला पुरुष इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोताहै, अरु यजुर्वेद से ॐकार को दोमात्रारूप जानके उपासना करनेवाला विद्वान् देहत्यागोत्तर पितृलोक (चन्द्रलोक) को प्राप्त होताहै। अरु जिसको वे-

दवेत्ता विद्वान् पुरुष जानते हैं, ऐसा जो तृतीय सर्वोत्तम ब्रह्म-लोक है तिसको, सामवेद से ॐकारको त्रिमात्रा रूपजानके उपासना करता है सो उत्तम उपासक इसलोक (शरीर) के त्यागान्तर,प्राप्त होताहै। इसप्रकार ॐकारकावेत्ता विद्वान् तिसि अपर ब्रह्मरूप त्रिमात्रिक ॐकार को उक्तप्रकार जानके तिसकी क्रमसाध्य उपासना करते हैं सो उक्तप्रकार के तीनोंलोक में से एकको ' अपनी उपासना के अनुसार ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन (आश्रय वा साधन) से प्राप्त होताहै अरु जो त्रिमात्रिक प्रणवके लक्ष्य चैतन्य अक्षर सत्य परम पुरुष नामवाला सदा शान्त अरु मुक्त, अरु जाग्रदादि सर्वभेद प्रपञ्चसे रहितहै अरु इसहीहेतुसेजरा मृत्युआदिकोंसे भी रहित है। अरु जिस करके जरादि रहित है एतदर्थही अभय है। इसप्रकारका जो शान्त मुक्त अजर अमर अभय परम अक्षर ॐकार का लक्ष्यहै, तिसको त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन से विद्वान् पावता है॥ हे सौम्य उक्तप्रकार प्रश्नोपनिषद् करके प्रतिपाद्य अपररूप अरु पररूप ॐकार तिसकी मात्रादिकों के भेदसे उपासना करनेवाले उपासकों को जो फल होताहै, अरु त्रिमात्रिक प्रणवोपासना के आलम्बन से ॐकारके लक्ष्य अमात्रिक परमात्माकी उपासना से परमात्म भावरूप फलकी प्राप्ति " तद्भावगतेनचेतसालक्ष्यं " होती है, सो सर्व जिसप्रकार श्रुतिने कहाहै तैसे संक्षेपमात्र तुम्हारे प्रतिकहा अब जिसप्रकार मुंडक उपनिषद् बिषे प्रणवोपासना कहीहै तिसको भी संक्षेपमात्र श्रवणकरो॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गत ॐकारोपासनसमाप्तम्॥

अथमुंडकोपनिषद्गत प्रणवोपासनाप्रारभ्यते ॥

प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेनवेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥

अथ मुंडको पनिषद्गतप्रणवोपासनप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, मुंडकउपनिषद् के द्वितीय मुंडकगत द्वितीयखंड के चतुर्थ मन्त्र विषे कहा है " प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् " अर्थ । ॐकाररूप धनुष है, अर्थात् वाणको लक्ष्य(निशाने) विषे प्राप्त होनेको धनुष कारण है, धनुष विनावाण लक्ष्य विषे प्राप्त होता नहीं । तैसेही आत्मा (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) रूप वाणको अपने लक्ष्य अक्षर ब्रह्मविषे प्राप्त होनेको कारण ॐकारोपासन है, अतएव ॐकारको धनुषरूपकरके कहाहै । अरु जैसे वाण चलावने का अभ्यासकिये, अरु संस्कारयुक्त (शिलीमुख) हुआ बाणधनुष के आश्रयहुआ लक्ष्यविषे स्थित होताहै, तैसेही ॐकारकीउपासनाके विचाररूपसे सूक्ष्म शिलीमुख अरु शमदमादि साधनों करके संस्कारयुक्त हुआ, प्रणवोपासना रूप धनुष के आश्रय उक्त आत्मारूपवाण सो अपने आभास (प्रतिविम्ब) भावको (जोकि अवस्थात्रयात्मक बुद्धिरूपा उपाधिके सम्बन्धसे प्राप्त हुआहै) त्यागके अपने अक्षररूपविम्बविषे जैसे प्रतिविम्ब बिम्ब मेंतैसे, अभेदतासे स्थित होताहै । एतदर्थ आत्मरूप बाणको अपने अक्षररूपलक्ष्य विषे प्राप्तहोने को प्रणव जोहै सो धनुषवत् धनुष है । अरु उक्त आत्मारूप वाण है (अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्माअक्षरकाही , जलादिकोंगत सूर्य्यादिकों के प्रतिविम्ववत् , इस देहादिक संघात विषे सर्व बुद्धियोंकी वृत्तियों का साक्षीहुआ प्रवेशकोपायाहै सो वाणवत् वाणहै । अरु आत्मा के अर्थ जो विषयोंकी तृष्णा सोई प्रमादहै,तिस प्रमादसे रहित

अप्रमत्त अरु सर्वसे वैराग्यवान् जितेन्द्रिय समाहित चित्तता इत्यादि साधनरूप संस्कारसम्पन्नता तिसकरके सहितसे वेधन (प्रवेश) के योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्य है। ताते प्रणवरूप धनुष के आश्रय आत्मरूप बाणका जब ब्रह्मरूप लक्ष्यबिषे प्रवेशरूपसे उक्त लक्ष्यका बेधन होताहै, तिसके पश्चात् आत्मा बाणवत् लक्ष्य बिषे तन्मय (तद्रूप) होताहै। अर्थात् जैसे बाणकोलक्ष्य के साथ एकरूपतामयफल होताहै, तैसेही देहादि अनात्माकार वृत्तियोंके तिरस्कारसे, अक्षर के साथ तन्मयतारूप फलकोप्राप्त होना, यह सर्व बुद्धिमान् मुमुक्षुओं करके योग्य है॥ हे सौम्य, अब इसका और प्रकारसे कल्पित विचारको श्रवण करो॥ हे प्रियदर्शन धनुष से जो बाण चलताहै सो अपने मार्गगत वस्तुओंको उल्लंघनकरता अपने लक्ष्यको प्राप्तहो तन्मय होताहै, तैसेही यह चिदाभासरूप बाण त्रिमात्रिक प्रणवरूप धनुष से अपने बिम्ब ब्रह्मरूप लक्ष्य की ओरचलता है, तब अपने जाग्रदादि अवस्थारूप वेष्टिपादोंको, विराडादि समष्टिपादों के साथ, अरु तिनको अकारादि मात्राओं के साथ अभेद विचारके तिनको अध्यस्तहोने से पीछे अविद्यात्मकताकी ओर डाल आप अपने अमात्रिक ब्रह्मरूपलक्ष्य बिषे प्राप्तहोय पश्चात् विचाररूप वेग से रहितहुआ लक्ष्यमय होताहै॥ अरु यहां जो कहाहै कि "शरवत्तन्मयो भवेत्" तिसका विचार इसप्रकार जानना कि, बाण जोहै सो अपने लक्ष्यमें प्रवेशको पाय अदृश्य होनेसे तन्मयहुयेवत् भासता है, परन्तु लक्ष्यरूपतासे अभेद तन्मय होता नहीं 'अर्थात् बाण लक्ष्यमें प्रवेशपायासताभी लक्ष्यके साथ अभेद एकताको पावता नहीं, लक्ष्यसे विजाति है ताते, एतदर्थ इसका अर्थ अग्रिम कल्पित कहेप्रकार भी जानने योग्य है। प्रणवरूप धनुषके आश्रय चिदाभासरूप बाणकरके ब्रह्मरूप लक्ष्यको प्रमाद (आलस्यवाविषयासक्तता) से रहितहोय वेधनकरना योग्य है। यहां पर्यन्त बाणके दृष्टान्त प्रमाण यथार्थ है

आगे जो तिसका फल "शरवत्तन्मयो भवेत्" तारूप होना कहा है। तिसको जल अरु हिमका दृष्टान्त विचार युक्त है, क्योंकि जलको भी, शर, कहते हैं, अरु जल हिमकी अभेद एकता भी युक्तहै। अर्थात् जैसे, गुलेल, वा धनुष, कि जिनका आकार एकरूपहै, नामक यन्त्रके आश्रय हिम (बरफ) का खंड रूप गिल्ला व वाण जलकी ओर चलाया हुआ अपने लक्ष्यजल को प्राप्त होय अभेद तन्मयताको प्राप्त होताहै, ताते शर शब्दका अर्थ जल अंगीकार करके उक्त दृष्टान्त प्रमाण विचारनेसे अभेद तन्मयता होनेमें शंका रहेनहीं, अरु अर्थ भी युक्तहै। अर्थात् जैसे जल अपनी शीतलता स्वभाव करके हिम भावको प्राप्त होताहै, अरु जलकी कोमलतादि धर्मसे विपरीत काठिन्यतादि धर्मवाला भासताहै, परन्तु सो तिस हिम अवस्थामें भी जलसे इतर कहने मात्रही है, अरु पुनः जलमें गया अपने काठिन्यतादि बाह्य धर्म को त्याग अभेदतासे जलके साथ तन्मयताको पावताहै "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय, तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैति दिव्यम्" तैसेही ब्रह्मकी इच्छा वा स्वभाव रूपा मायाकरके ब्रह्मही अल्पज्ञतादि धर्मवाला जीव भावको प्राप्तहुआसा भासताहै, परन्तु वास्तव करके तत्त्वमस्यादि प्रमाणोंकरके ब्रह्म रूपही है, सो जीव (चिदाभास) प्रणव रूप धनुषको आश्रयकर आप बाणवत्हुआ ब्रह्मरूपजललक्ष्यमें प्रवेशकर तन्मयताको प्राप्तहोताहै। तातेइसचिदाभासरूप आत्मा जीवको ब्रह्मरूप लक्ष्यकेसाथअभेद तन्मयता होनेके अर्थ प्रणवोपासनरूप मुख्यआलम्बन है॥ "ॐमित्येवंध्यायथ" "ॐ" इस उक्तप्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवालेहुये शास्त्रोक्त कल्पनासे ॐकारका ध्यानकरो, इसप्रकारज्ञानवान् आचार्य्य ने मुमुक्षुको ब्रह्म आत्माकी अभेदतारूपमोक्षकीप्राप्तिके अर्थ ॐकारकीउपासनारूप सर्व्वोत्तम आलम्बन कहा, तिसहीको आश्रयकरनायोग्य है॥–॥

प्रणवोपासनविचारसम्पूर्णम्॥ॐ

अथकृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गत प्रणवविचार ॥

ॐ । ॐ मितिब्रह्म। ॐ मितीदꣳ सर्व्वम् । ॐ मित्येतदनुकृतिर्हस्मवा आप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐ मितिसामानि गायन्ति।ॐꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ॐमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति । ॐ मितिब्रह्माप्रसौति । ॐ मितिअग्निहोत्रमनुजानाति । ॐ मितिब्राह्मणः प्रवक्षन्नाह । ब्रह्मोप्राप्नुवानिति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश इति ॥

हेसौम्य, अब तैत्तिरीयोपनिषद्विषे जिसप्रकार प्रणवकी श्रेष्ठता वर्णनकियाहै तिसकोभी श्रवणकरो "। ॐ मितिब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ॐमिति सामानिगायन्ति । ओꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति । ॐमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति " अर्थ अब सर्व उपासनाके अंगभूत ॐकारोपासन कहतेहैं । ॐ, इसप्रकारका यह शब्दरूप ब्रह्महै, इसप्रकार मनकरके ॐकारकी मात्रादिकोंका स्मरण विचाररूप उपासनाकरे । अरु जिसकरके 'ॐ' इसप्रकारका शब्द यहसर्व है। अर्थात्शब्दरूप यहसर्व प्रपञ्चएक ॐकारसेही व्याप्त है, अरुजो वाच्य (नामी)है सो वाचक (नाम)के आधीनहै,एतदर्थ यहसर्व ॐकारही है,इसप्रकार कहतेहैं ॥ अब ॐकारकोसर्वसेज्येष्ठ श्रेष्ठ होनेसे तिसकी स्तुति कहते हैं। ॐकारको उपास्य होनेसे, ॐकारका यह अनुकरणहै। अर्थात्जाते अन्यकरके "कहताहौं वा पावताहौं, ऐसेकहे वचनको श्रवणकरके ॐ, ऐसे अनुकरण करताहै,एतदर्थ ॐकार अनुकरणहै, यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै । अरु ॐ,इसप्रकार श्रवणकराओ, इस कथनको प्राप्तहुये पुरुष उसॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवणकरावत हैं

तैसेही जो सामवेदके गायनकरनेवाले पुरुषहैं सो 'ॐ' इसप्रकार सामोंको गायनकरतेहैं। अर्थात् सामवेदके गानकरके सर्वसामगा ॐकारही को गायन करते हैं। अरु जो ऋचाके पाठक हैं सो 'ॐशो' ऐसे शास्त्र कहिये गानरहित केवल ऋचाको कथन करते हैं। अरु तैसेही जो अध्वर्यु। अर्थात् यज्ञविषे यजुर्वेदीय ऋत्विज् विशेष। है सो 'ॐ' इसप्रकार प्रतिगर (वेदके शब्द विशेष) को हवन करनेवाले के कथन कथनप्रतिउच्चारण करताहै। अर्थात् यज्ञमें ऋग्वेदीय ऋत्विज् हवन करनेवाला होता है सो जब मन्त्रोंको उच्चार करताहै तब अध्वर्यु उसके प्रतिमन्त्र के साथ ॐकार पूर्वक प्रतिगरका उच्चार करता है। अरु जो ब्रह्मा (यज्ञकर्मका कर्त्ता। वा यज्ञमें दक्षिण दिशामें स्थित होय यज्ञका रक्षण करनेवाला। ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इस प्रकार अनुमोदन करता है अरु 'ॐ' इस प्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करता है। । अर्थात् होताकरके होम करता हौं, इसप्रकारके कथन कियेहुये को 'ॐ' ऐसे कहके अनुमोदन करता है। अरु जो ब्राह्मण है सो 'ॐ' इसप्रकार कहने को इच्छताहुआ, अध्ययन करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है। अर्थात् अध्ययन करने को ॐकाररूप से ग्रहण करता है। अरु ब्रह्म 'कहिये वेद' को प्राप्त होवोंगा इसप्रकार इच्छा करता हुआ 'ॐकारद्वारा वेदकोही प्राप्त होताहै' वा ब्रह्म 'कहिये परमात्मा' को प्राप्त होवोंगा इसप्रकार आत्माको प्राप्त होने की इच्छाको करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है। अर्थात् आत्मकामा पुरुष ॐकारकी उपासना द्वारा आत्मपदको प्राप्तहोताहै इन सर्वका अभिप्राय यहहै कि ॐकारके उच्चार पूर्वक करीहुई सर्व क्रियाको फलवान्पना है, एतदर्थ ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनी योग्यहै यह इसका तात्पर्य है ॥

इति तैत्तिरीय उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवो पासन विचार ॥

अथसामवेदीयछान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासनाविचार॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत॥
ॐमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् १॥

हेसौम्य, अब सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषदसम्बन्धी प्रणवोपासन विचार संक्षेपमात्र श्रवणकरो। इस उपनिषद्में 'प्राण' आदित्यादि, अनेक दृष्टिसे प्रणवोपासना कहीहै सोसर्व यहां न कहके ॐकारकी रसतमत्वादि श्रेष्ठता अरुब्रह्मप्राप्तिमें मुख्यआलम्बन अरु मोक्षसाधनता संक्षेपमात्र कहताहौं। अरु इसकासविस्तर विचार इस उपनिषद्की व्याख्यामें होगा "ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत"।'ॐ' यह जो एकवर्णात्मक अक्षरहै सोपरब्रह्मका प्रतीक, मुख्यनाम होनेसे इसकी अपरब्रह्म रूपसे उपासना कर्त्तव्यहै, क्योंकियह परब्रह्मका प्रतीक अरुनाम होने करके इसकी उपासनासे परब्रह्म प्रसन्नहोताहै, जैसे लोकबिषे जिसका प्रियनामलेके बोलावनेसे वोनामी प्रसन्नहोताहै तैसे,। अरु यह परब्रह्मका प्रतीक(प्रतिमा)अरुनामहै ताते इसबिषे ब्रह्मबुद्धिकर इसकी मात्राओं के विचारपूर्वक इसके लक्ष्यकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्यहै। अर्थात् इसॐकार अक्षरकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्य है अर्थात्इस ॐकार अक्षरकी जपरूपसे वा ध्वनीरूपसे अरु मात्राओंके भेद विचाररूपसे उपासनाकरे। अरु मात्राओंके क्रमशः लय चिंतवनपूर्वक मात्रादिकोंके अधिष्ठानअक्षर परब्रह्मसे अपनेको अभेद अनुभवकर तादात्म्य स्थिति (निर्विकल्प समाधि)रूपसे ध्यानरूप उपासनाकरे।जैसे शालिग्राम नामक शिलाबिषे विष्णुबुद्धि करके तिसका पूजनादिरूप उपासन, अरु तिस शालिग्रामरूप आलम्बन करके तिसकरकेलक्षित लक्ष्य सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ वा श्यामसुन्दर चतुर्भुजादि

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपामोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रसऋचः साम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ सएष रसानाᳩ रसतमः परमः परार्ध्यो ऽष्टमो यदुद्गीथः १। २ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुंठाधीश विष्णुका ध्यान लोक विषे प्रसिद्ध है तैसे ॥ अरु परमात्माकी मुख्य उपासना बिषे मुख्य आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे, इस ओंकारको सर्व वेदान्त उपनिषदों बिषे सर्वसे श्रेष्ठ करके कहाहै, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म्म, स्वाध्यायादिकोंमें सर्व से प्रथम ओंकारका स्मरण करते हैं, अरुजिस जपादिकर्म्म में प्रथम इसके उच्चारण स्मरण पूर्वक जप कर्म्मादिकोंको करते हैं सोई फलवान् होताहै, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है। अतएव इसवर्णात्मक ओंकार अक्षर उद्गीथकीउपासना सर्वोत्तमहै। ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस ओंकार की उपासना कर्त्तव्य योग्य है। अरु सामवेदीय उद्गाता (सामवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में ओंकारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते हैं। अर्थात् उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'ओं' इस अक्षर के स्मरण पूर्वक करता है। ताते ओंकार को उद्गीथ विशेषण से कहतेहैं ॥ अरु यह जो ओंकारकी, उपासना, श्रेष्ठता, विभूति, फलादिक है सो इस ओंकार का उपव्याख्यान है ॥ अब इस ओंकारकी सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सौम्य " एषां भूतानां पृथिवी रसः " इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति, परायण, अवष्टंभ) है। अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतुहै, अरु अवष्टंभ कहिये प्रलयमें निदान है। यह, गति, परायण,

अरु अवष्टंभ,इनतीनोंपदोंका भेद है॥ ऐसी जो सर्वचराचरभूतों का रस, पृथिवी तिसका जलरस है " अप्सु ह्योताच प्रोताच " यह बृहदारण्यके पंचमाध्याय कीं श्रुति है। इस, रस, शब्दका अर्थ कारणता अरु सार भूतता बिषे जानना। तिस जल का ओषधी रस है। शंका, ओषधी को जलके कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसेहै। तहां समाधान कहते हैं, ओषधी जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हैं। अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष 'कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधी का परिणाम (सार) है ताते। अर्थात् " एषां भूतानां " यहां से लेके " आपोरसः " यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सार परत्व हैऐसे जानना।॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीरके अवयवों में वाणी सारिष्ट है ताते, अरु वाणीकोही लोकबिषे सरस रसना रसवती,इत्यादि विशेषणों से कहते हैं। अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचा है। अरु तिस ऋचाओंका साम रसतर है 'अर्थात् सारहै। अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ ओंकार, सारतर है। इस प्रकार यह उद्गीताख्य ओंकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है। अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड वा राब है, तिसका सार शक्कर है, तिसका सार खांड है, तिसका सार बूरा है, तिसका सारतर कंद वा मिसरी है, तैसे।॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस ओंकारको पराद्ध्यं कहते, हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होनेसे यह वर्णात्मक ओंकार अक्षर परमात्मावत् मुमुक्षुओं करके उपास्य है। इत्यभिप्रायः॥ अरु पृथिव्यादि रसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है। अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी१, पृथिवीका जल२, जलका ओषधी३, ओषधीका शरीर४, शरीरका वाणी५, वाणीका ऋचा६,

त्रयो धर्म्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथम स्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी । तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुले ऽवसादन्सर्वे एतेपुण्यलोका भवंति ब्रह्मसछंस्थोऽमृतत्वमेति इति ॥

ऋचाका साम७, सामका उद्गीथ ॐकार८, । इसप्रकार पृथिव्यादि उत्तरोत्तर रसोंका अष्टम रस होनेसे ॐकारको "रसतमः" सर्वोत्कृष्ट रसतर कहाहै ॥–॥ हेसौम्य अब इसछान्दोग्य उपनिषद् के द्वितिय प्रपाठकके षष्ठ खंड बिषे प्रणवको अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्ति का साधन कहा है, तहां तिसकी विधि के अर्थ प्रथम "। त्रयोधर्मस्कंधा ।" धर्म के तीनस्कन्ध (भेद) कहे हैं, तहां "। यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथम ।" अग्निहोत्रादि कर्म्मकरना, अरु नियम से ऋगादि वेदों का अध्ययन करना, अरु भिक्षुक याचकको दानदेना, यह धर्म्मका प्रथम स्कन्ध है, सो मुख्यकरके गृहस्थका धर्म्महै । यहांजो प्रथमाश्रमी ब्रह्मचारी के धर्म्मको त्यागके गृहस्थके धर्म्मको प्रथमकहाहै सो वानप्रस्थ की अपेक्षासे वा आर्षछान्दस प्रयोगसे क्रमव्यत्ययसे वा गृहस्थ को अन्यतीनोंका रक्षक पोषक होनेसे कहा जानना । ।अरु"। तप एव द्वितियो "। कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप, धर्म्मका द्वितिय स्कंधहै, सो वानप्रस्थका धर्म्म जानना । यहां जो वानप्रस्थके धर्म्मको ।जो तृतीयहै, द्वितियकरके कहाहैसो गृहस्थके प्रथमकी अपेक्षासे जानना । अरु "। ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुलेऽवसादन् "। आचार्य्यकुल में वास करनेका शील ,कहिये स्वभाव,है जिसका,ऐसा आचार्य्य कुलवासी ब्रह्मचारी, अर्थात् केवल वेदाध्ययनकरनेमात्रही आचार कुलमें वासनकरके आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुलमें वास करके वहांही देहत्यागकरना, इस नैष्टिक ब्रह्मचर्यके लखावने के अर्थ "अत्यन्त" यहपद दियाहै । अर्थात् विधिपूर्वक जो नैष्टिक

ब्रह्मचर्य्यहै सो धर्म्मका तृतीय स्कंधहै। इस उक्तप्रकार के धर्म्मवान् ,ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थ, यहतीनोंअपने अपने धर्म्माचरणके प्रभावसे स्वर्गादि पुण्यलोकको प्राप्तहोतेहैं, अतएव इन तीनोंको "पुण्यलोका" इस विशेषणसे कहाहै ॥ अरु इनतीनों की अपेक्षासे जो चतुर्थ संन्यासीहै सो "ब्रह्मसᳫंस्थो ऽमृतत्वमेति" ब्रह्मजो ॐकार तिसकी उपासनामें स्थितहोने से तिस उपासनाके प्रभावकरके अमृतत्व(मोक्ष)को प्राप्तहोताहै। अर्थात् यहां जो केवल संन्यासीको ही प्रणवोपासना कहा है तिसका हेतु यह जानना कि सामान्य रीतिसेतो चारोही आश्रमके पुरुष प्रणवोपासनाके अधिकारी हैं परन्तु संन्यासीको अन्य अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके त्यागपूर्वक शमदमादि करतसन्ते केवल प्रणवोपासनाका अधिकारहै, तातें उसको प्रणवोपासनाका अधिकार विशेष होनेसे उसको "ब्रह्मसᳫंस्थो" यह विशेषण दियाहै। अरु पूर्वोक्तप्रकार ॐकारकेलक्ष्य परमात्माकी ॐकाररूप आलम्बन से उपासना करनेवाला अमरणभाव (मोक्ष) को प्राप्तहोता है, अतएव कहाहै कि "ब्रह्मसᳫंस्थोऽमृतत्वमेति" प्रणवोपासक मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ इति ॥

इति सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्सम्बन्धी
प्रणवोपासनविचार समाप्तम् ॥

अथ यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार प्रारभ्यते ॥

ॐ३ खं ब्रह्म ।

खंपुराणं वायुरं खमिति ह स्मा ह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥ इति ॥

हे सौम्य, अब यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् के सप्तमाध्याय सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार संक्षेपमात्र कहताहौं सो श्रवणकरो यहां जो "ॐ३ खं ब्रह्म" यह ब्राह्मणभागका मन्त्र है। तिसमें ॐकारका वाच्य जो ब्रह्म तिसका खं विशेषण है। अर्थात् निराकार सर्वव्यापी परिपूर्ण एकरस ब्रह्महै सो विशेष्य है, अरु तैसा होनेसे, खं, उसका विशेषण है। अरु विशेष्य विशेषणका समानाधिकरण होनेसे इसका, नीलकमलवत्, "खं ब्रह्म" ऐसा निर्देश (उपदेश) है। अरु ब्रह्मशब्द विशेषकरके बृहत् (बडे) का बोधकहै, अतएव उसको आकाशका विशेषण देके, खं ब्रह्म, कहा है। जो सो खं विशेषणवाला ब्रह्म है सो, ॐ, शब्दका वाच्य होनेसे 'ॐ' यह शब्दरूप है, अरु उक्तप्रकारके विशेष्य विशेषणकरके अरु वाच्य वाचकता करके उभयथा भी उसका सामानाधिकरण अविरुद्ध है, अतएव ब्रह्मोपासन साधनेके अर्थ, ॐ, यहशब्द युक्तहीहै। अरु श्रुत्यन्तरमें भी कहा है। तथाच "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्" "परमोमित्यात्मानं युंजीत" "ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानमित्यादि"। अरु ॐकारका अन्यार्थ असंभवहै, जैसे अन्यत्र "ॐमिति शंसत्योमित्युद्गायतीति" कहाहै सो, स्वाध्यायके आरम्भ अपवर्गके विषे ॐकारका प्रयोग विनयोग होनेसे कहाहै नतु तहां अर्थान्तरकेहेतु एतदर्थ ध्यान साधनत्वकरके ॐकारका उपदेश है। अरु यद्यपि ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिक जो शब्दहैं सो बहुतमन के

वाचकनामहै, तथापि श्रुतियोंके प्रमाणसे ब्रह्मका उपदेश ॐकार करकेही है, अतएव ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावालेको ब्रह्मप्राप्तिके अर्थ ॐकार सर्व्वोत्तम साधनहै। अरु यहां जो ॐकार ब्रह्मका, खं, आकाश विशेषण है तिसकरके भूताकाशको न ग्रहणकरके ॐकारके लक्ष्य चिदाकाश (चैतन्याकाश) का ग्रहणहै, सो कैसा है, पुराण कहिये चिरन्तन है। अर्थात् उत्पत्त्यादि रहित अनादि है। अरु उसको "सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम्"। "सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति" इत्यादि प्रमाणकरके पृथिव्यादि भूतोंसे आकाश सूक्ष्महै अरु आकाशसे सर्वशक्तिकी समष्टतारूप अव्याकृतनाम आकाश, जो चिदाकाशरूप अक्षरविषे ओतप्रोत है, सूक्ष्महै। अरु तिससे सूक्ष्म ॐकारका लक्ष्य चैतन्याकाश परम सूक्ष्महै, अतएव उसको सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म कहते हैं। ताते उस महासूक्ष्म अक्षर आत्मा ब्रह्मको आलम्बनविना जाननेको कोई भी शक्यनहीं, अतएव जैसे लोक विष्णुआदिक देवताके आकार से अंकित पाषाणादिकोंविषे विष्णु आदिकोंकी भावना करते हैं, तैसेही श्रद्धाभक्ति भाव विशेषकरके परब्रह्मका प्रतीक जो ॐकार अपरब्रह्म तिसविषे परब्रह्मकी भावनाकर उपासना करनी। अरु "वायुरं खमिति", वायुरं, कहिये जिस आकाशविषे वायु विद्यमानहोय तिस आकाशको, वायुरं, कहते हैं। अर्थात् वायु कहिये सूत्रआत्मा समस्त जगत्को, जैसे सूत्रमें मालाके मणके तैसे, अपनेविषे धारके जिस परमाकाशविषे स्थितहै तिस चैतन्याकाश प्रणवके लक्ष्यको, वायुरं, कहते हैं, सो कौन जानता है, कौरव्यायणीका पुत्र जानता है, अतएव, खं, इस शब्दका अर्थ यहां चैतन्याकाशही युक्त है, ऐसा मानते हैं। तात्पर्य यहहै कि, खं, शब्दकरके निरुपाधि ब्रह्म, अरु, वायुरं, इसकरके सोपाधिब्रह्म, सो उभयप्रकारके ब्रह्मका बोधक ॐकारही है क्योंकि परब्रह्मका प्रतीकहोनेसे, प्रतिमावत् साधनरूपसे प्रतिपाद्य है। तथाच "एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयदों-

कारइति " अरु यह ॐकार वेद है, जो जानने योग्य वस्तु है सो जिसकरके जानीजाय तिसका नाम वेद है, सो मुमुक्षुओंकरके अज्ञानावस्थामें जानने योग्य ज्ञेयरूप जो परब्रह्म आत्मा सो दुर्विज्ञेय होनेसे ॐकाररूप आलम्बनद्वाराही जानाजाताहै, अरु ऋगादि वेदोंका बीज (कारण) होनेसे ॐकारही वेद है ' जैसे नामकरके नामी जानाजाता है तैसे, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण 'यह ॐकारही वेदहै, इसप्रकार जानते मानते हैं ॥

इति यजुर्वेदीयबृहदारण्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन विचारसमाप्तम् ॥

हे सौम्य, इन ईशादि सर्व उपनिषद् करके प्रतिपाद्य ॐकारोपासन कहने का अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन सर्वोत्तमहै " नातःपरमस्ति " इससे उत्तम और आलम्बन कोई नहीं । अरु विष्णुआदिकोंकी प्रतिमावत् यह ॐकार परमात्मा की प्रतिमास्मारक (स्मृतिकरावनेवाला)है । अरु यही उसअनासी परमात्माका मुख्य नामहै,अतएव इसको परमात्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन जानके मुमुक्षुओंकरके इस ॐकारकी उपासना अवश्य कर्त्तव्यहै ॥

इतिश्रीईशादिसर्वउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन विचारसंक्षेपतःसमाप्तम् ॥

अथ हिरण्यगर्भादिसप्तसिद्धान्तसम्बन्धीप्रणवोपासनविचार ॥

हेसौम्य समस्त शास्त्रोंके सात सिद्धान्त हैं, तहांप्रथम हिरण्य-

गर्भ (ब्रह्माजी)का सिद्धान्त१। द्वितिय सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिलदेवका सिद्धान्त२। तृतीय कर्मवादी अपान्तरतम मुनिकासिद्धान्त३। चतुर्थ सनत्कुमारोंका सिद्धान्त४। पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त५। षष्ठ पशुपति शिवजीका सिद्धान्त६। सप्तमपंचरात्र विष्णुजीका सिद्धान्त७॥ इसप्रकार सात सिद्धान्त हैं तहां सातों सिद्धान्तकारोंने तीनमात्राके तीनतीन भेदसे एक ॐकार के नवनव भेदसे उपासनाकिया अरु कहाहै, अतएव सातों सिद्धान्तकरके एक ॐकारकी मात्राके ६३ भेदहुयेहैं। अबइनप्रत्येकसिद्धान्तकारों करके कहेजे ॐकारकी मात्राकेभेद सोभीतुम्हारेप्रति कहताहौं तिसकोभी श्रवणकरो॥

१प्रथम हिरण्यगर्भका सिद्धान्त॥

हेसौम्य, हिरण्यगर्भ सिद्धान्तके मतवादी पुरुष ऐसा कहतेहैं किजिस जिज्ञासुको परमात्मयोग (परमात्मा जीवात्माकाअभेद) पावनेकी इच्छाहोय सो ॐकारकी इसप्रकार उपासनाकरे किजो परमात्माकावाच्य ॐकार त्रिमात्रिकरूपहै सो'तीनमात्रारूप है, तीन ब्रह्मरूपहै, तीन अक्षररूपहै, ऐसा जानके जो ॐकारकीउपासना करताहैसो परमपदको प्राप्तहोताहै, अब इसका बिस्तार श्रवणकरो। 'अग्नि,वायु, सूर्य्य, यह तीन ॐकारकी मात्राहैं।अरु 'ऋग्, यजु, साम, यह तीन वेद ॐकारके ब्रह्महैं। अरु 'अकार' उकार,मकार,यह तीन ॐकारकेवर्णात्मक अक्षरहैं। इसप्रकारका है स्वरूप जिसका ऐसाजो ॐकारहै सो परमपदहै। (अर्थात्‌उक्त प्रकारका ॐकार परब्रह्मका प्रतीकहोनेसे इसको परमपद कहते हैं क्योंकि इसकी उपासनासे मुमुक्षुओंको परमपद (ब्रह्मपद) की प्राप्ति होती है, ताते इसको परमपद कहते हैं। अरु यही ॐकार परब्रह्म प्राप्तिका मुख्य आलम्बन होनेसे मुमुक्षुकी परमगतिहै "गतिरत्रनास्ति" यहां इस मोक्षमार्गविषे इस ॐकारोपासनसे इतर गति (आश्रय) अन्य कोई नहीं। इसप्रकार शास्त्रतः वा गुरुतः सम्यक्प्रकार जानके जो ॐकार

की उपासना करते हैं सो मोक्षको प्राप्त होतेहैं वो पुनः जन्म मरणको प्राप्तहोते नहीं । प्रथम जो, अग्नि, वायु, सूर्य्य, यह तीन मात्रा कही हैं तिनका व्यष्टिमें इसप्रकार विचारहै कि, जीव, ईश्वर, आत्मा, यह तीन मात्रारूप जानने, तहां, सर्व अन्न का भोक्ता वैश्वानररूपसे सर्व देहोंमें स्थित है सो जीवहै, भोक्ता होनेसे, अरु प्राणरूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ सर्व देहमें व्याप्त ईश्वर है, सर्व संघातको धारणकर्त्ता सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठहोनेसे। अरु, सूर्य्य, साक्षी आत्माहै, सर्व का प्रकाशक सर्व से असंग सर्व का द्रष्टाहोनेसे । अरु, ऋग्, यजु, साम इन तीनोंके कहनेसे शब्द ब्रह्मको जानना, क्योंकि सर्व शब्दोंका बीजरूप ॐकार है । अरु, अकार, उकार, मकार, यह तीन वर्णात्मक अक्षर कहे हैं, तिनकरके जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था रूप कार्य्य कारणात्मक प्रपंच जानना, क्योंकि मांडूक्योपनिषद् विषे जाग्रदादि अवस्थारूप पादोंकी अकारादि मात्राके साथ एकता कही है । अतएव प्रथमकही जो मात्रा तिसको जाग्रत् स्थानादिरूप प्रथमपाद अकारमात्रा रूप जानना, अरु शब्दब्रह्मको सूक्ष्महोनेसे सूक्ष्म स्वप्नावस्थादि स्थानरूपको उकारमात्रारूप जानना, अरु सर्व के साक्षी आत्माको सर्व का कारण होनेसे उसको सर्व का कारण सुषुप्तिअवस्था प्राज्ञाभिमानीरूप मकार मात्रारूप जानना। इसप्रकार व्यष्टि समष्टिकी एकताकर पुनः तिसकी मकारादि मात्रासाथ एकता विचारके इन सर्व को ॐकाररूप जानके जो मुमुक्षु परब्रह्मके प्रतीक त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करता है सो पुरुष ॐकारके लक्ष्यरूप परब्रह्मरूप परमपदको प्राप्त होताहै पुनः वो संसारविषे आवते नहीं । इसप्रकार हिरण्यगर्भ सिद्धान्तके मतवादी प्रणवोपासन मानते करते कहते हैं ॥ इति प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धांत १ ॥

अथ द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त २ ॥

हे सौम्य, सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिलदेवजी के सिद्धान्त

बिषे इसप्रकार कहाहै कि, जब मुमुक्षु पुरुष, तीन ज्ञान, तीन गुण, तीन कारण इन नौ भेदवाले एक ॐकारको जाने तब मोक्षको प्राप्त होवे। अब इनका भेदार्थ श्रवणकरो, तीनप्रकार का जो ज्ञान कहाहै सो इसप्रकार है कि एक व्यक्त ज्ञानहै, दूसरा अव्यक्त ज्ञानहै, तीसरा ज्ञेय ज्ञानहै, । तहां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, पंचमहाभूत, अरु इनका कार्य घट पट देहादि प्रपंच है सो सर्व व्यक्तरूप आगमापायि अनित्यहै कधी इनका भावहोता है कधी अभावहोता है। ताते यह सत्य न होयके असत्यही है। इनका जो यथार्थज्ञान है सो प्रथम व्यक्त ज्ञानहै। अरु इनका जो कारण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व, अरु प्रकृति, यह आठों अव्यक्तरूप हैं, ताते जो इनका यथार्थ ज्ञानहै सो अव्यक्तज्ञानहै। अरु ज्ञेय कहिये जाननेयोग्य अर्थात् मुमुक्षुको अज्ञानपर्यन्त जानने योग्य अरु ज्ञानहुये अपना आप ज्ञानरूप। ऐसा जो चैतन्य आत्मा पुरुष तिसका जो यथार्थ ज्ञान सो ज्ञेयज्ञानहै। इसप्रकार व्यक्त अव्यक्त अरु ज्ञेय, इन तीनोंका जो जानना है सोई तीनप्रकारका ज्ञान है। हे सौम्य अब इन सर्वको जिसप्रकार जाननाहै सो भी श्रवण करो, जो मूल प्रकृति है सो अव्यक्तरूप है अरु सूक्ष्म स्थूल सर्वका कारणहै, वो कार्य्य किसीका भी नहीं। अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा, यह सात कारणरूप भी हैं अरु कार्य्यरूप भी है, तहां कार्य्यतो प्रकृतिकेहैं अरु कारण, पंच महाभूत दश इन्द्रिय अरु एक मन इन, षोडश पदार्थोंके हैं, अतएव इनको प्रकृति विकृति भी कहतेहैं, अरु उक्त षोडश पदार्थ केवल कार्यरूपही हैं वो कारण किसीके भी नहीं ताते उनको केवल विकृति रूपही कहतेहैं। अरु पुरुष जो चैतन्यहै सो न तो किसीका कारणहै न किसीका कार्य्यहै केवल स्वयंज्योति सर्वका साक्षी निराकार निर्विकार कूटस्थ है। अर्थात् व्यक्तजो स्थूल प्रपंचहै सो केवल कार्यरूप है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा यह सात

उक्त प्रकार कारणरूप भी हैं अरु कार्य्यरूप भी हैं, अरु अव्यक्त प्रकृति जिसको प्रधानभी कहतेहैं सो केवल कारणरूपहीहै, अरु पुरुष ज्ञानरूपहै । इन सबको यथार्थ जानना तिसका नाम तीनप्रकारका ज्ञान है । अरु सत्त्व, रज, तम, यह तीनगुणहैं, तहां सत्त्वगुणसे ज्ञान अरु दैवी सम्पदा होतेहैं, रजोगुणसे काम रागादि होतेहैं, तमोगुणसे प्रमाद आलस्य निद्रा क्रोध हिंसादि आसुरी सम्पदा होतेहैं । अरु पुनः सत्त्वगुणसे देवतादिक होतेहैं, रजोगुणसे मनुष्यादि होतेहैं, तमोगुणसे पशु वृक्षादि होतेहैं । पुनः सत्त्वगुणसे स्वर्गादि उत्तमलोक होतेहैं, रजोगुणसे मनुष्य लोकादि मध्यम लोकहोते हैं , अरु तमोगुणसे नरकादि अधम लोक होतेहैं, इसप्रकार त्रिगुणात्मक सर्व कार्य्य जानना । यह तीन ॐकारके गुणहैं ॥ अरु तीन कारणहैं तहां एक, मन, द्वितीयबुद्धि, तृतीय अहंकार, इसही तीनकरके सर्व प्रवृत्तिहोती है अतएव यह तीनों कारणहैं ॥ हेसौम्य यह सर्व कथनसे यह जानना, जो ॐकारका लक्ष्य परब्रह्महै सोई अव्यक्तरूपहै अरुसोई व्यक्तरूप है अरु सोई पुरुष ज्ञेयरूपहै । ताते कारणरूप भी वोहीहै अरु कार्य्यरूप भी वोहीहै अरु साक्षीरूप भी वोहीहै, ताते सर्व ॐकाररूपही है । अरु ॐकार विषे जो दो मात्राहै अकार अरु उकार तिसको कार्य्य कारणात्मक प्रकृतिरूप जानना अरु यह व्यंजन जो मकारहै जिसको अनुस्वार कहतेहैं सो चैतन्य पुरुषरूप है । अरु ॐकार तीनमात्राकरके त्रिगुणरूप है एतदर्थ समस्त प्रपंच त्रिगुणात्मक ॐकारही है, अरु व्यंजनरूप निर्गुण परम पुरुषहै ताते सर्व ॐकारही है । अरु इस ॐकारका वाच्य प्रकृत्यात्मक प्रपंचहै । अरु इसका लक्ष्य सर्वका साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान सच्चिदानन्द आत्माहै । ताते जो पुरुष उक्त प्रकार जानके परब्रह्मके वाचक प्रतीक ॐकारकी उपासना करताहै सो तिस उपासनरूप आलम्बन करके परमपदको प्राप्त होताहै॥ हे सौम्य पूर्व जो, व्यक्तज्ञान, अव्यक्तज्ञान, अरु ज्ञेयज्ञान

यह तीन प्रकारका ज्ञान, अरु सत्त्व रज तम, यह तीनगुण, अरु मन बुद्धि अहंकार, यह तीन कारणकहे हैं। तहां स्थूलव्यक्त प्रपंचसहित व्यक्तज्ञान, अरु सत्त्वगुण अरु मन कारण, इस सर्व का समुच्चय जाग्रदवस्थारूप प्रथम पादको अकाररूप प्रथम मात्रा साथ एककरे, पुनः अव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान अरु बुद्धिकारण अरु रजोगुण इन सर्वका समुच्चयरूप स्वप्नावस्था को, क्योंकि स्वप्नका प्रपंच सूक्ष्महोनेसेअव्यक्तहै, अरु तिसका रजोगुणहै बुद्धि तिसका करताहै, तातेअव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान रजोगुण अरु बुद्धिकारण, इन तीनोंके संघातरूप स्वप्नावस्था द्वितीय पादको दूसरी उकारमात्रा साथएककरे, अर्थात् सूक्ष्मप्रपंचको उकार मात्रारूप जाने, अरु ज्ञेयज्ञान, तमोगुण, अरु अहंकार कारण, इनतीनोंकासंघातरूप सुषुप्त्यवस्थारूपपादको तीसरी मकारमात्रा साथ एककरे। इसकारण तीनों पादोंको विभागसे विचारके मात्राओंकेसाथ एककरके एक परब्रह्म सर्वाधिष्ठान अक्षर परमात्मा का प्रतीक जो ॐकार तिसकी उपासनाकरे तब तिस उपासन विचाररूप आलम्बनके प्रभावसे उपासकमुमुक्षु ॐ कारके लक्ष्य सर्वकेअधिष्ठान आश्रयअक्षर परमात्म रूप परमपदको प्राप्तहोताहै॥ इति द्वितीयकपिलदेवसिद्धान्त २॥

अथ तृतीय अपान्तरतममुनि सिद्धान्त ३ ॥

हेसौम्य, अपान्तरतम मुनि कहतेहैं कि जो जिज्ञासु पुरुषॐकार ब्रह्मको त्रिमुख, तीन देवता, तीन प्रयोजन, इन नवं नाम रूपकरके सुशोभितहै, यथार्थ जानके, तिसकी सम्यक्प्रकार उपासना करता है सो परमपदको प्राप्तहोता है॥ अब इसका अर्थ सुनो। तीन जो अग्नि हैं सोई तीन मुख हैं, तहां एक गार्हपत्य नाम अग्निहै, दूसरा दक्षिणाग्निहै, अरु तीसरा आहवनीय नाम अग्निहै। तहां गृहस्थाश्रमका जो महानस (रसोईके स्थान) विषे जो अग्निहै कि जिसकरके पाक सिद्धहोताहै, तिस अग्निको गार्ह-

पत्य नामसे कहते हैं । अरु जिस अग्निविषे अग्निहोत्र होता है तिसको दक्षिणाऽग्नि कहतेहैं । अवइसका भेदसुनो जिसदिनइन ब्राह्मणादि वर्णत्रयीके पुरुषोंका यज्ञोपवीत संस्कार होताहै उस दिवस जो वेदोक्त मंत्रोंसे अग्निस्थापित होताहै तिसका नाम दक्षिणाऽग्निहै, तिसविषे प्रातःकाल अरु सायंकाल दोनों कालों विषे वेदोक्त मंत्रोंसे नित्य आहुतिदेना, इसप्रकार अग्निहोत्रहोता है तिसको वा जिसविषे वशीकरणादि प्रयोगार्थ हवनहोताहै तिसको दक्षिणाऽग्नि नामसे कहतेहैं, अरु जिस अग्निविषे यज्ञादि होतेहैं अरु जिसकी आराधनासे सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं तिस अग्निको आहवनीय नामसे कहते हैं । इसप्रकार जो उक्त तीनि अग्निहैं तिसको त्रिमुख कहतेहैं । अरु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवताहैं । अरु धर्म्म अर्थ काम, यहतीन प्रयोजनहैं ॥ अब पुनः श्रवणकरो तीनिजो अग्नि कही हैं सो जगत्के उत्पत्ति पालनसंहारका हेतु (कारण) है, तहां "यज्ञाद्भवतिपर्ज्जन्यो" इत्यादि प्रमाणसे आहवनीय अग्निमें यज्ञाहुतिद्वारा मेघ होतेहैं मेघोंद्वारा वर्षाहोती है वर्षाद्वारा अन्नहोताहै अन्नद्वारा प्रजाहोती है, तातेआहवनीय नामवाला अग्नि जगदुत्पत्तिका कारण है । अरु गार्हपत्याग्निजो (पाकशाला)का अग्निहै सो अन्तर वाह्यका अन्न परिपक्व करताहै, ताते सो जगत्के पालन (स्थिति)का हेतुहै । अरु जो अग्निहोत्रका अग्नि है तिस विषे अग्निहोत्रकर्त्ता यजमानके शरीरपातोत्तर उसके शरीरकादाहहोताहै, ताते दक्षिणाऽग्नि जगत्के संहारका कारणहै, अतएव उक्तप्रकारके तीनों अग्नि उक्त प्रकार जगत्के उत्पत्ति पालन संहारका कारणहैं । अरु यहसर्व जगत्के निर्वाहक ईश्वरहैं, एतदर्थ इनको त्रिमुखकरके कहतेहैं ॥ अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र, यहजो तीन देवताहैं सोभी जगत्की उत्पत्तिपालन संहारका हेतु हैं, तहां ब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, अरु विष्णु जगत्का पालनकरताहै, अरुरुद्र जगत्का संहारकरताहै, ताते उक्त तीनों देवताभी जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहार

का कारण होनेसे जगत्के निर्बाहक ईश्वरहैं। अरु धर्म अर्थ काम यह जो तीन प्रयोजनहैं सोभी जगत्के प्रवर्त्तक हेतुहैं, तातेसर्व्व जगत् ॐकारका वाच्यहोनेसे ॐकाररूपहै अरु जगत्का वाचक ॐकारही नामनामीकी एकतासे जगतरूपसेसुशोभितहै अरु ॐकारहीजीवईश्वर ब्रह्मरूपहै, अर्थात् ॐकारकालक्ष्य प्रत्यगात्मा अकारमात्रा स्थूल प्रपंच जाग्रदवस्थारूप उपाधिका अभिमानी हुआ विश्व जीवरूपहै, अरु उकारमात्रा सूक्ष्मप्रपंच स्वप्नावस्था रूप उपाधि साथमिल तिसका अभिमानीहुआ तैजस स्वप्नका कल्पक ईश्वरहै, अरु मकारमात्रा जाग्रत् स्वप्न स्थूल सूक्ष्म, का कारण सुषुप्त्यवस्थाका अभिमानी मायाविशिष्ट सर्वका कारण होनेसेब्रह्म है, अतएव जीव ईश्वरब्रह्म, यह तीनोंरूपसे सोपाधि हुआ ॐकार का लक्ष्य प्रत्यगात्माही सुशोभित है। इसप्रकार यथार्थ जानके जो ॐकारोपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्तहोते हैं। इसप्रकार अपान्तर मुनि कहते हैं॥ हे सौम्य अब इसका विचार श्रवणकरो, यहां जो तीन अग्नि, तीन देवता, तीन प्रयोजन, कहे हैं तहां जगदुत्पत्तिका कारण जे आहवनीय अग्नि अरु ब्रह्मादेवता अरु धर्म्म, इनतीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग विश्वाभिमानी, इसस्थूल प्रथम पाद साथ अभेदकर पश्चात् उस प्रथमपादको अकार मात्रासाथ एकविचार उस को अकार मात्रारूप जानें। अरु दूसरा जो जगत् की स्थितिका हेतु जो गार्हपत्य अग्नि, विष्णुदेवता, अरु अर्थ, इनतीनोंको स्वप्नावस्था सूक्ष्मभोग तैजसाभिमानी, इस सूक्ष्म द्वितीय पाद साथ एक कर पश्चात् उस द्वितीय पादको द्वितीय उकार मात्रासाथ अभेदकर उसको उकारमात्रा रूप जाने अरु तृतीय जो दक्षिणाऽग्नि, रुद्रदेवता, अरु काम, इनतीनों को सुषुप्त्यवस्था आनन्द भोग अरु प्राज्ञाभिमानी, इसकारण तृतीयपाद साथ अभेद विचार पुनः तिस तृतीयपाद को तृतीय मकार मात्रासाथ एक कर तिसको मकार मात्रारूप जाने॥ इसप्रकार उक्त तीनोंअग्नि

देवता प्रयोजनको विभाग से अकारादि तीनों मात्रा साथ एक कर प्रपंच रूपनामी अरु ॐकार नाम इनको अभेद जानके जो ॐकारकी उपासनाकरता है, अर्थात् ॐकारके जप अरु पाठोंके भेद विचार उपासनरूप आलम्बनकरके जो तिसके अधिष्ठान अक्षरचैतन्य आत्माको सम्यक् प्रकार जानता है सो उपासक परमपदको प्राप्तिहोताहै॥इति अपान्तरतम मुनिकासिद्धान्त ३ ॥

अथ चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त ४ ॥

हे सौम्य, सनत्कुमार सिद्धान्तवाले पुरुष ॐकारकीउपासना इस प्रकार करते कहते हैं कि जोजिज्ञासु पुरुष, तीनकाल, तीनलिंग, तीनसंज्ञा, यहनवनाम रूपवाला जानके ॐकारकी उपासना करताहै, सोमोक्षको प्राप्तहोताहै। अब इसकाअर्थ भेद श्रवणकरो तीनकाल उसको कहते हैं, जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानरूप कालहै। तहां भूतकाल उसको कहते हैं जो पूर्व व्यतीतहुआ, अरु वर्त्तमानकाल उसको कहते हैं जो वर्त्तमान है, अरु भविष्यत्काल उसको कहते हैं जो आगे आवना है, अब इसको पुनः श्रवण करो। हे सौम्य यह जो युग वर्त्तता है तिसके पूर्व जो युग व्यतीत हुआ सो भूतकाल कहिये है, अरु जो युग अब वर्त्तमान है सो वर्त्तमानकाल है अरु जो युग आगे आवना है सो भविष्यत्काल है। इसही प्रकार इस वर्त्तमान युग के आवान्तर जो वर्ष व्यतीत हुये सो भूतकाल है, अरु जो वर्ष वर्त्तता है सो वर्त्तमानकाल है, अरु जो वर्ष अग्रिम आवना है सो भविष्यत्काल है, तैसेही एक वर्ष के आवान्तर जो मास व्यतीत हुये तिनको भूतकाल कहते हैं, अरु जो मास वर्त्तता है तिसको वर्त्तमानकाल कहते हैं, अरु जो मास अग्रिम आवने हैं तिनको भविष्यत्काल कहते हैं, ऐसेही एक मासके आवान्तर जो दिवस व्यतीतहुये तिनकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो दिवस वर्त्तता है तिसकोवर्त्त-

मान संज्ञा है, अरु जो दिवस अग्रिम आवने हैं तिनकी भविष्यत्काल संज्ञा है। इसही प्रकार एक वर्त्तमान दिवसमें जो प्रहर व्यतीतहुआ तिसकी भूतकाल सञ्ज्ञा है, अरु जो प्रहर वर्त्तताहै तिसकी वर्त्तमान संज्ञा है, अरु जो प्रहर आगे आवनाहै तिसकी भविष्यत् संज्ञाहै। अरु तैसेही एकप्रहरके आवान्तर जो घडी व्यतीत हुई सो भूतकाल हुआ अरु जो घडी वर्त्तती है सोवर्त्तमान है अरु जो घडी आगे आगन्तुक (आवनेवाली) है तिसको भविष्यत् जानो। इसप्रकार परार्द्ध से लेके घडी निमेषकला काष्ठा परमाणु पर्यन्त यावत् कालावयवहैं सोसर्व पूर्वपूर्वके आवान्तर होतसन्ते भूत वर्त्तमान अरु भविष्यत् भावकरके युक्तही हैं। अरु सर्वनाम रूपात्मक पदार्थोंको अपने स्वभावसे अन्यथा करना यह कालका लक्षण है, जैसे आम्रका फल प्रथम अतिलघु अरु कसाइला होताहै पश्चात् कुछ बडा अरु खट्टाहोने लगताहै पुनः बडाहोके पूर्णखट्टा होताहै पुनः शनैःशनैः मधुरहोता है पुनः उत्तर सडके नष्ट होजाता है सो यह सर्वकाल का क्रिया होता है, ताते यावत् नामरूप क्रियावान् वस्तु हैं तिनको एक रस न रहनेदेना यह कालका स्वरूप स्वभाव है, अरु जो विभाग रहित एकरस एककाल है सो किसी उपाधि की विशेषता सेही भूत वर्त्तमान अरु भविष्यत् सञ्ज्ञाको पाय परार्द्ध से परमाणु पर्यन्त अतिदीर्घ अरु अतिअल्प संज्ञाको पावता है। हे सौम्य इस कहने करके यह सिद्धहुआ कि एकही काल की उपाधिके संबंधसे तीन संज्ञाहुई हैं, तैसेही एकही ॐकार (परमात्मा) की मायारूप उपाधि करके अनेक नामरूप संज्ञाहुई हैं, परन्तु वास्तवकरके निरुपाधि अक्षर ॐकार एकही है। इस प्रकार त्रिकालको जानना। अरु, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, यह तीन ॐकार के लिंग हैं, अर्थात् एक ॐकार अक्षरका बिस्तार यावत् शब्द ब्रह्म है सो अरु शब्दों के अर्थ पदार्थ ये सर्व उक्त तीनों लिंगों बिषेही वर्त्तते हैं। अरु तीन जो संधी कही हैं

तहां एक बहिर्सन्धी है, दूसरी सन्धसन्धी है, तीसरी क्रान्त सन्धी है, सो यह तीन सन्धी हैं, सो यह, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, रूपहैं। हे सौम्य इस कहनेसे यह जानना कि एक ॐकारही उक्तप्रकार तीन कालरूप, तीन लिंगरूप, अरु तीन सन्धीरूप से सुशोभित है ताते सर्व ॐकार रूपही है, तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं। इसप्रकार ॐकार को जानके जो मुमुक्षुपुरुष तिसकी उपासना करता है सो मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य अब इसकी मात्राओं का क्षेपक विचार भी श्रवणकरो। भूतकाल, स्त्रीलिंग, अरु बहिर्सन्धी, इन तीनोंकोजाग्रदवस्था स्थूलभोग, विश्वाभिमानी, इस प्रथम पादसाथ एककर पुनःउस प्रथम पाद को प्रथम अकारमात्रा साथ एक विचारे। पश्चात् वर्त्तमानकाल पुरुषलिंग, अरु सन्धसन्धी,इनतीनोंको स्वप्नावस्था,विरलभोग, तैजस अभिमानी, इस द्वितीयपाद साथ एककर पुनः उसद्वितीयपाद को द्वितीय उकारमात्रा साथ एकता विचारे। पुनः भविष्यत्काल नपुंसकलिंग, क्रान्तसन्धी, इनतीनों को, सुषुप्त्यवस्था, आनन्द भोग, प्राज्ञाभिमानी, इस तृतीयपाद साथ एककर पुनः उस तृतीयपादको मकार मात्रा साथ अभेद विचारे, अरु पुनः विचारे कि यहउक्तसर्व ॐकारही है अरु इस ॐकारका आश्रयअधिष्ठान अक्षर परमात्माहै, अरु तिसअक्षर परमात्माका प्रतीक अरु वाचक यह वर्णात्मक ॐकारहै ताते इस परब्रह्मके प्रतीक ॐकारकी उपासनारूप आलम्बनसे उस सर्वाधिष्ठान परमात्म पदकी प्राप्तिहोती है, अरु यह प्रणवोपासना परमपदकी प्राप्तिमें सर्वोत्तम मुख्य आलम्बन है। इसप्रकार विचारके जो समाहितचित्त शमदमवान् हुआ इस ॐकारकी उपासना करता है, सो मुमुक्षुपुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ इति चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्तः ४ ॥

अथ पंचम ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तः ५ ॥

हे सौम्य ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तवाले कहते हैं कि हम ॐकार को तीनस्थान रूप, तीन पदरूप, तीनप्रज्ञारूप, जानके उपासना करते हैं तहां, हृदय, कंठ, मूर्द्धा, यह तीन स्थान हैं, क्योंकि ॐकारउच्चारकरने से इन तीनों स्थानोंबिषे प्रकट होता है तातें यहतीन उसके स्थान हैं। अरु, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन इसके पाद हैं। अर्थात् इस संघात विशिष्ट आत्मारूप ॐकार के उक्त तीनोंपाद उक्त तीनों स्थानों बिषे क्रमशःवर्तते हैं,तहां मस्तक (नेत्र) बिषे जाग्रदवस्था, अरु कंठरूप स्थानबिषे स्वप्नावस्था, अरु हृदयरूप स्थानबिषे सुषुप्त्यवस्था, इस प्रकार उक्त तीनों स्थानों बिषे क्रमशः तीनोंपाद वर्त्तते हैं, अरु बहिःप्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा, अरु घनप्रज्ञा, यह तीन इसकी प्रज्ञा हैं। अर्थात् नेत्रस्थान जाग्रदवस्था बिषे बाह्यके घटपटादि पदार्थों को विषय करनेवाली जो प्रज्ञा (बुद्धि) तिसको बाह्यप्रज्ञा कहतेहैं। अरु कंठस्थान स्वप्नावस्था बिषे स्वप्नके पदार्थों को विषय करने वाली जो प्रज्ञा तिसको अन्तःप्रज्ञा कहते हैं। अरु हृदयस्थान सुषुप्त्यवस्थाबिषे सर्व विशेष प्रपंचके अभावसे कारण अविद्या बिषे लय हुई जो प्रज्ञा तिसको घनप्रज्ञा कहते हैं, अरु इन तीनों प्रकारकी प्रज्ञाके सम्बन्धसे तद्विशिष्ट चिदाभास को, बाह्यप्रज्ञ, अन्तःप्रज्ञ, घनप्रज्ञ, इसप्रकार तीनों प्रज्ञावाला कहते हैं। अरु "यद्भूतं भवद्भविष्यदिति सर्व ॐकारएव" इत्यादि श्रुति प्रमाण से, जो कुछ होगया, अरु जो कुछहै, अरु जो कुछ होगा, सो सर्व ॐकारहीहै। अतएव तीनस्थान रूप भी अरु तीन पद रूप भी अरु तीन प्रज्ञारूप भी, एक ॐकारही है, अरु इसही करके इस ॐकारको सर्वव्यापी भी कहते हैं। अथवा बहिःप्रज्ञ जो विभुहै सो बिश्वरूप है, अरु अन्तःप्रज्ञ तैजसरूप है, अरु घनप्रज्ञ प्राज्ञरूप है, ताते विश्व तैजस प्राज्ञ, इन तीन प्रकारहोय के सर्व

देहोंविषे एक ॐकारही स्थितहै । तहां बाह्यजो स्थूल वैश्वानर नाम प्रपंच है तिस बाह्यकाभोक्ता विश्व है । अरु अन्तर सूक्ष्म प्रकृति (स्वप्नके पदार्थ)का भोक्ता तैजसहै । अरु कारण आनन्द का भोक्ता प्राज्ञहै । ताते जोइन तीनप्रकारके भोग्य भोक्ताको जो जानता है सो जाननेवाला सर्वका साक्षी मुक्तरूप है । अरु जब सात्त्विकी प्रकृतिहोती है तब यहजीव (चैतन्यपुरुष) ब्रह्माहोके स्थूल प्रपंचको रचताहै, अर्थात् जाग्रत् जगत्(जैसेकेतैसे पदार्थ) हुए आवत हैं । अरु जब रजोगुणात्मक प्रकृतिहोती है तब यह जीव तैजसभाव को प्राप्तहुआ अन्तर प्रवृत्ति स्वप्नरूप सूक्ष्म जगत्को रचताहै । अरु जब तमोगुणात्मक प्रकृति होतीहै तब स्थूल सूक्ष्म अन्तरबाह्य सर्वकाअभावकर सुषुप्तिस्थानविषे प्राज्ञरूपहुआ आनन्दको भोक्ताहै । अतएव जो उक्तप्रकारके भोग्य भोक्तास्थान, इनका जाननेवाला चतुर्थ सर्वका साक्षी आत्मा है सो सर्व से असंग हुआ शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावहै । अरु सो सर्व संघात साथ मिलाहुआ भी तिसके अरु तिनके धर्म कर्म स्वभावादिकों से लिपायमान होतानहीं, ताते सदा शुद्धहै, ताते जो तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इन नव ९ नाम रूप करके सुशोभित है सो एकअक्षर ॐकारहीहै । अरु सो अक्षर ॐकार, जैसे रज्जु सर्पका तैसे, सर्व जगत्का कारण सन्तजनोंने वर्णन किया है । अरु वेद विषे भी कहाहै कि ॐकार अक्षरही स्वमाया करके सर्वको उत्पन्न करताहै ;जैसे मरुस्थल वा ऊपरभूमि अपने ऊपरस्वरूप स्वभाव करके लहरादि संयुक्त नदी को उत्पन्न करे है वा उत्पन्न होवे है तैसे, अरु सो अक्षर चैतन्य स्वभाव होनेसे सर्वका ज्ञाताहै । अरु सोई ॐकार का लक्ष्य परमात्म पुरुष परमेश्वर परब्रह्म परम पुरुष परमात्मा आदि नामोंसे कहाजाता है । अरु सोई परमात्मा स्वमाया विशिष्ट ईश्वरहुआ सर्वको उत्पन्न करताहै अरु सोई जीव (चिदाभास) रूपसे सर्वका भोक्ताहै अरु सोई सर्व विषे प्रवेशकरके सर्वात्माहुआ सर्वकासाक्षी है । इसप्रकार जो

एकही अक्षर (अविनाशी अजन्मा ॐकारकर्त्ता भोक्ता अरु साक्षी रूप से सुशोभित हैं, परन्तु सो महासूक्ष्म अविषय होने से अति दुर्विज्ञेय है, ताते जो जिज्ञासु पुरुष तिसपरम अक्षर परमात्माकी तिसके प्रतीक, वाचक त्रिमात्रिक वर्णात्मक ॐकार रूप आलम्बन द्वारा यथोक्तरीत्या उपासना करताहै सोमोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ हे सौम्य अब इसका क्षेपक विचारभी श्रवणकरो। प्रथम कहा जो, तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, तिनमेंसे प्रथम मूर्द्धास्थान, जाग्रदवस्थासाभिमानी पाद, अरु बहिःप्रज्ञा इनतीनों को प्रथम अकारमात्रा साथ एककरे। पश्चात् कंठ स्थान, स्वप्नावस्था साभिमानी रूप पाद, अरु अन्तःप्रज्ञा, इन तीनों को द्वितीय उकारमात्रा साथएककरे। तिसके पश्चात् हृदय स्थान, सुषुप्तिअवस्था साभिमानी रूपपाद, अरु घनप्रज्ञा, इनतीनोंको तृतीय मकारमात्रा साथ एककरे। इसप्रकार तीन स्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इनको क्रमशः अकार उकार मकार, इनतीनों मात्रासाथ एककरके पश्चात् इनसर्व वाच्यको लक्षरूप परमात्मा बिषे अध्यस्थ जान इनका असद्भावसे वाधकर एक सत्यरूप सर्वाधिष्ठान चैतन्य आत्माकी अहमग्रे उपासना करनेवाला मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोताहै। परन्तु तिसको निर्विशेष महासूक्ष्म होनेसे बिना आलम्बनके तिसकी उपासना करनेको कोई समर्थ नहीं ताते तिसअक्षरपरमात्माके प्रतीकवाचक वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षरके जप अरु अर्थकी भावना बिचाररूप उपासनाके आलम्बनसे तिसके लक्ष अक्षर परमात्माकी उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ इति ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्त ५ ॥

अथ षष्ठपशुपतिसिद्धान्त ६॥

हेसौम्य, पशुपति (शिवजी)के सिद्धान्तके मतावलम्बी पुरुष ऐसा कहतेहैं किजो विभु ॐकार नवनाम रूपसे स्थितहै तिसकी हम उपासना करते हैं। तहां तीन अवस्थारूप, तीन भोग्यरूप,

तीन भोक्तारूप, इसप्रकार नवनामरूपकरकेएक ॐकारहीसुशोभितहै । तहां प्रथम तीन अवस्थाको श्रवणकरो ,प्रथम शान्त, द्वितीय घोर, तृतीय मूढ़,यहतीन अवस्था हैं। सो ,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति,कोभी ,शान्त, घोर, मूढ,इन नामों से कहतेहैं। अरु इन जाग्रदादि प्रत्येक अवस्थाबिषे यहशान्त घोरअरु मूढ, यह तीनों अवस्था वर्त्तती हैं । तहां जाग्रत् अवस्था जो सत्त्वगुणात्मक है तिसविषे चित्त शान्तरूप होताहै, अरु स्वप्नावस्था जो रजोगुणात्मकहै तिसबिषे चित्त घोररूप होता है, अरु सुषुप्तिअवस्था जो तमोगुणात्मकहै तिसबिषे चित्त मूढरूप होताहै। अब इस प्रत्येक अवस्थाके अवान्तर भेदको भी श्रवणकरो । जाग्रत्बिषे जोकुछ पदार्थहै सो ज्योंकात्यों (जैसेकातैसा) भासताहै तहांजो चित्तकी अवस्थाहै सो शान्तावस्थाहै, अरु जाग्रत् बिषे जो विपर्य्यय भासताहै ,जैसेहै तो रज्जु अरु भासताहै सर्प,तहांजो चित्तकी अवस्था है तिसको घोर अवस्था कहते हैं, अरु जाग्रत्विषे सुषुप्तिवत् कुछ भी नहीं भासता तहांजो चित्तकी अवस्था है तिसका नाम मूढ अवस्था है ॥ तैसेही स्वप्नावस्थाबिषे जो पदार्थ स्फुरणहुआहै सो जैसा हुआहै तैसाही भासता है तहां चित्तावस्थाका नाम शान्त अवस्थाहै, अरु स्वप्नबिषेजो औरकाऔरही भासताहै ,जैसे स्फुरण हुआ हाथी सो भासनेलगा पक्षी, ऐसी जो स्वप्नमें चित्तावस्था है तिसकानाम घोर अवस्था है, अरु स्वप्नबिषे जो पदार्थ स्फुरण हुआहै सो भासता नहीं (जाग्रत्हुये स्मरणमें आवतानहीं)तहां जो चित्तकी अवस्थाहै तिसका नाम मूढ अवस्था कहतेहैं ॥ अरु सुषुप्ति अवस्थाविषे चित्त लीनहुआहै, तिससे जाग्रत्हुये कहताहै कि मैं बड़े सुखसे सोवाथा, वो जो सुषुप्तिमें चित्तकी सुखावस्था है सो शान्त अवस्थाहै । अरु जो सुषुप्तिसे जाग्रत्हुये कहताहैकि मुझको अस्थवस्त निद्राआई सो सुषुप्तिमें चित्तकी घोर अवस्था है, अरुजो सुषुप्तिसे जाग्रत्हुआ कहता है किमैं ऐसा बेसुध सोवा कि मुझको कुछभी ज्ञान न रही, ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तावस्थाहै

तिसका नाम सुषुप्ति मूढावस्थाहै ॥ हेसौम्य अब इन तीनोंको औरप्रकारभी श्रवणकरो। जाग्रत्‌बिषे जो चित्तको सुख विश्राम होता है तहां चित्तावस्था का नाम शान्तावस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो चित्तको दुःख से विश्रामहोता है तिस चित्तावस्थाका नाम घोर अवस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो मूर्च्छादि अवस्था है तिसका नाम मूढ अवस्थाहै, अरु जाग्रत् बिषे जो दैवी सम्पदा शास्त्रप्रमाण यज्ञ दान अध्ययन जप पाठ पूजासेलेके जो सात्त्विक कर्म्म व्यवहारहैं तिनबिषे चित्तकी प्रवृत्ति जिस अवस्थाबिषे होती है तिसका नाम शान्तावस्थाहै, अरु जाग्रत्‌बिषे जो व्यवहारादिक राजसी कर्म्म हैं तिस बिषे जब चित्तप्रवृत्त होता है तिस चित्तावस्थाका नाम घोर अवस्थाहै, अरु जाग्रत् बिषे जो हिंसादि तमोगुणात्मक कर्म हैं तिसबिषे प्रवृत्त होनेमें जो चित्तावस्थाहै तिस का नाम मूढ अवस्था कहते हैं ॥ हे प्रियदर्शन तिसही प्रकार स्वप्नमें जो सुखानुभव होताहै चित्तको जिस अवस्थामें तिस अवस्थाका नाम स्वप्न शान्त अवस्थाहै, अरु स्वप्नबिषे जो चित्तको दुःखानुभव होता है जिस अवस्थामें तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न घोरावस्था है, अरु स्वप्न बिषे जो चित्तकी मूर्च्छादि अचेत अवस्थाहै तिसका नाम स्वप्न मूढावस्थाहै॥ इसही प्रकार सुषुप्ति अवस्थाबिषे सोयाहुआ पुरुष उठके कहताहै कि मैं सुखसे सोया मुझको शान्ति प्राप्तहुई ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति शान्तावस्थाहै, अरु सुषुप्तिसे उठके कहताहै कि आज मुझको दुःखसे निद्राआई मुझको कुछ सुख भान न हुआ परन्तु निद्रा आगई ऐसे जे सुषुप्ति में दुःखके संस्कारयुक्त चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति घोर अवस्थाहै, अरु सुषुप्तिसे उठके कहता है कि मैं ऐसा सोया जो मुझको सुखदुःखका कुछ भी भान न रहा ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तकी बेसुध अवस्था तिसकानाम सुषुप्ति मूढ अवस्था कहते हैं ॥ हे सौम्य अब एकप्रकार और भी श्रवण करो, इस जाग्रदवस्थामें यथार्थ अनुभवसे अपनेआप चिदानन्द

आत्माविषे जो चित्तकी स्थिति तिस चित्तावस्थाकी अरु तिसकी प्राप्तिके अर्थ जो श्रवणादि साधनों विषे चित्तके प्रवृत्त वा स्थित होनेकी जो चित्तावस्था तिसकानाम क्रमसे उत्तम मध्यम शान्त अवस्थाहै, अरु विषयोंविषे जो चित्तकी स्थितिहोनी जिस अवस्था करके तिस चित्तावस्थाका नाम घोर अवस्था है , अरु देहादि अनात्म अभिमान करके रागद्वेषादि आसुरी सम्पदाविषे जो चित्त की स्थिति तिस चित्तावस्थाका नाम मूढ अवस्था कहते हैं, इस ही प्रकार स्वप्नविषे धर्मादिक सत्त्वगुणी सम्पदाविषे जो चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिसकरके तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न शान्तावस्था है, अरु स्वप्नमें जो विषयोंविषे चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिस करके तिस अवस्थाका नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे हिंसादिक आसुरी सम्पदामें चित्तका प्रवृत्त होना है जिस करके तिस चित्तावस्थाका नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, ॥ अरु इसही प्रकार सुषुप्तिविषे जो ब्रह्मविचारके संस्कारलेके चित्तलय होता है तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति शान्तावस्थाहै, अरु सुषुप्तिविषे जो विषयोंके संस्कार स्मृतिको लेके चित्तलय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति घोर अवस्थाहै,अरु सुषुप्तिविषे जो देहादि अनात्माभिमान संस्कारको लेके चित्त लय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति मूढ अवस्था है ॥–॥ हे सौम्य उक्तप्रकार कहा जो अवस्थाओंका स्वरूप भेद सो यह तीनों सूक्ष्म अवस्था ॐकारकी हैं ॥ अब तीनप्रकारके जे भोग्यहैं तिनकोभी श्रवणकरो, अन्न, जल, अरु सोम (चन्द्रमा) यहतीनों भोग्यहैं,भोग्य कहिये भोगनेयोग्य वस्तुहै, अर्थात् जिसकरके ,तुष्टि, पुष्टि,अरु आनन्द होय तिसको भोग्य कहते हैं, तहां प्रत्यक्ष सर्व जीवोंको अन्न अरु जलकरके ,पुष्टि, तुष्टि, अरु आनन्द होताहै ॥ (हे सौम्य ,अद, धातुसे अन्न शब्द बनताहै अरु ,अद,धातु भक्षण विषे वर्त्तता है ताते जो भक्षण कियाजाय तिसको अन्न कहते हैं, अतएव जो जीव जिसको भक्षण करता है सो तिसका अन्न है अरु ति-

सही से उसकी तुष्टि पुष्टि अरु आनन्द होता है, अरु जल सर्व जीवों को समान है ; अरु चन्द्रमा करके ओषधी वनस्पति तुष्ट पुष्ट अरु आनन्दित होती हैं, ताते, अन्न, जल, अरु चन्द्रमा यह तीनोंकरके स्थावर जंगम सर्व, तुष्ट, पुष्ट,अरु आनन्दित होतेहैं, एतदर्थ ,अन्न,जल,चन्द्रमा,यह तीनों भोग्यहैं ॥ अरु,अग्नि, वायु (प्राण) अरु सूर्य्य, यह तीन भोक्तारूप हैं। सो यह अनुभव सर्वको प्रत्यक्षहै, देखो क्षुधापिपासा प्राणका धर्म्म है क्योंकि जहां प्राणहोता है तहांहीं क्षुधा पिपासा अरु भोगनेकी शक्तिहोतीहै, ताते देहभोक्ता न होयके प्राण भोक्ताहै। अरु अग्नि देवता भी प्रत्यक्ष भोक्ताहै, काष्ठादिकोंके सम्बन्धसे बाह्य हुतभुक्है,अरु प्राणरूप समिधके सम्बन्धसे अन्तर हुतभुक् ,अर्थात् भोजनकिये अन्नका भोक्ताहै, ताते अग्निभी प्रत्यक्ष भोक्ता है। अरु सूर्य भगवान्भी अपनी किरणों द्वारा सर्व रसजातिको प्रत्यक्ष भोक्ता है, ताते,प्राण, अग्नि, सूर्य्य, यह तीनोंहीं भोक्तारूपहैं ॥ अर्थात् अग्निवाह्य समष्टि वैश्वानररूपसे हविषादिकों का भोक्ताहै अरु अन्तर व्यष्टि वैश्वानररूपसे भोजनकिये अन्नादिकों का भोक्ता है, अरु वायु बाह्य समष्टि सूत्रआत्मा रूपसे सर्वको अपने बिषे धारण करनेद्वारा भोक्ताहै, अरु व्यष्टि प्राणरूपसे देहादिकोंका धारण करनेरूपसे भोक्ताहै, अरु सूर्य्य वाह्य सूर्य्यरूपसे सर्वका प्रकाशक होनेसे समष्टिका भोक्ताहै, अरु अन्तर चक्षुरूपसे व्यष्टि का प्रकाशक भोक्ताहै, इसप्रकार समष्टि व्यष्टिबिषे ,अग्नि,वायु, सूर्य्य, यह तीनों भोक्ताहैं ॥ इसप्रकार जो तीन ,अवस्था, तीन भोग्य, अरु तीनभोक्ता, इननव ९ नामरूप होके एक ॐकारही सुशोभित है, तिसको यथार्थ जानके जो मुमुक्षु पुरुष उपासना करताहै सोमोक्षको प्राप्तहोताहै ॥—॥ हेसौम्य अब उक्त तीनोंकी अकारादि तीनोंमात्राके साथ एकताका क्षेपक बिचारभी श्रवण करो यहां जो ,तीनअवस्था, तीनभोग्य, तीनभोक्ता, कहे हैं तहां शान्त अवस्था, अन्न भोग्य, अरु अग्नि भोक्ता, इन तीनोंको

प्रथम जाग्रत् अवस्था स्थूलभोग्य अरु वैश्वानरभोक्ता इसप्रथम पादके साथ एकता विचारकरे। पश्चात् घोर अवस्था जल भोग्य, अरु प्राणभोक्ता, इन। तीनोंको, स्वप्नावस्था, विरलभोग्य तैजस भोक्तारूप द्वितीय पादकेसाथ एकाविचारकरे तिसकेपश्चात्, मूढ अवस्था चन्द्रमा भोग्य, अरु सूर्य्य भोक्ता,इन तीनोंको, सुषुप्ति अवस्था, आनन्दभोग्य प्राज्ञभोक्ता, इस तृतीयपाद साथ एक विचारकरे। तिसके पश्चात् उक्त तीनों पादोंको क्रमशः अकारादि तीनों मात्रा ॐकेसाथ एकबिचार सर्वको ॐकाररूप जानके एक ॐकारकी उपासनाकरे तहां बिचारे कियह ॐकार रूप अपरब्रह्मका जोलक्ष्य अक्षर परब्रह्महै तिसका यह वर्णात्मक अक्षर ॐकार प्रतीक अरु वाचक (नाम)है ताते इस त्रिमात्रिक ॐकाररूप श्रेष्ठ आलम्बनद्वार इसके अधिष्ठान अक्षर परब्रह्म कि जिसविषे यह तीनों मात्रारूप जगत् रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्त है तिस परमात्मा परब्रह्मकी हम उपासना करतेहैं। इसप्रकार जानकेजो मुमुक्षु ॐकारकी उपासना करता है सो परमपदरूप मोक्षको प्राप्तहोताहै॥ इतिपशुपतिसिद्धान्तः ६॥

अथ सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तः ७

हे सौम्य, अब सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तको श्रवणकरो, विष्णुपञ्चरात्रके सिद्धान्तवादी कहते हैं कि जो ॐकार, तीन आत्मरूप है, तीनस्वभावरूप है, तीन व्यूहरूप है, इसप्रकार नव ९ नामरूपसे सुशोभित हुआ है तिसकी हम उपासनाकरते हैं, अरु और भी जो इस ॐकार की उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोता है। अब इसका भेद श्रवणकरो, तहां, बल, वीर्य, तेज, यह तीन आत्मा हैं, तहां जो देहबिषे सामर्थ्य है तिसका नाम बल है, अरु जो इन्द्रियों की शक्ति है तिसका नाम वीर्य कहते हैं, अरु मन विषे जो उत्साह वा उदारतादि धर्म है तिसका नाम तेज कहते हैं, अर्थात् देहसे जो चेष्टा

होती है सो सर्वबल की है, अरु चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियोंसे जो देखना सुनना सूंघना रसलेना मिलना आदिक क्रिया पञ्च विषयों का सेवन आदिक होता है सो सर्व वीर्य्य रूप है, अरु मनबिषे जो उत्साह उदारतादिक हैं सो तेज है। सो यह बल वीर्य्य तेज तीन आत्मा हैं ॥ अरु ज्ञान, ऐश्वर्य्य, शक्ति, यहतीन स्वभाव हैं, तहां यह जो देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार महत्तत्त्व प्रकृति आदिक अनात्मरूप हैं सो सर्व असत्य भ्रान्तिमात्र हैं, अरु इनका जो साक्षी आत्मा प्रत्यक् चैतन्य कूटस्थ अन्तर्यामी है सोई सत्य सर्वका प्रकाशक परमात्मा मैं हौं, माया से आदिलेके जो प्रपञ्च हैं सो मेरी सत्ताके बिषे उपजते हैं स्थित होते हैं अभाव होते हैं, जैसे समुद्र बिषे तरंग उपजते हैं वर्त्तते हैं लयहोते हैं, तैसेही मेरे बिषे जगत् है, मैं चैतन्यरूप समुद्रहौं मेरा एक अद्वैत अखण्ड सच्चिदानन्दरूप है, ऐसा जो निश्चय सो ज्ञान है ॥ अरु अणिमासे आदिलेके जो अष्टसिद्धि आदिक हैं सो ऐश्वर्य्य रूप हैं ॥ अरु जो अन्य किसी से न बनिआवे तिसको बनावना तिसका नाम शक्ति है। सो यह ज्ञान ऐश्वर्य्य शक्ति, तीन स्वभावहैं ॥ अरुसंकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह तीन व्यूहहैं॥अतएव तीनआत्मा, तीनस्वभाव, तीनव्यूह, यह नवनाम रूप करके एक अव्यय पुरुष ईश्वर ॐकारही है। ॐकार से इतर कुछभी वस्तु नहीं "ॐकारएवेदंसर्वम्" अरु ॐकार जो नाम है सो प्रकृतिका वाचक है ताते भी सर्व ॐकाररूप ही है। अर्थात् जो कुछ स्थूल सूक्ष्ममूर्त्त अमूर्त्त कार्य्य कारणात्मक जगत् है, अरु उत्पत्ति स्थिति संहार है सो सर्व ॐकार का लक्ष्य एक बासुदेवही है। तथाच "वासुदेवः सर्वमिति" गीता अ० ७ के श्लोकप्रमाण से, ताते एक अद्वैत वासुदेव से इतरकुछ भी नहीं "सर्व्वमिदमहंच वासुदेवः" इसप्रकार ॐकारकालक्ष्यजो सर्वात्मा ब्रह्म है तिसकी जो मुमुक्षु उपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥--॥ हेसौम्य, अबइसका क्षेपक विचार श्रवणकरो। प्रथम

कहे जे, तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीन व्यूह, तहां तिनमें से वल आत्मा, अरु ज्ञान स्वभाव, अरु संकर्षणव्यूह, इन तीनों को जाग्रत् स्थानादि रूप प्रथम पाद से एकताकरे, पश्चात् वीर्य आत्मा, ऐश्वर्य्य स्वभाव, प्रद्युम्न व्यूह, इन तीनों की स्वप्नस्थानादि रूप द्वितीय पाद से एकताकरे, तिसके पश्चात् तेज आत्मा, शक्ति स्वभाव, अरु अनिरुद्ध व्यूह, इन तीनों की सुषुप्ति स्थानादि रूप तृतीय पाद से एकता करे। पुनः उनपादों की क्रमशः अकारादि तीनों मात्राओं के साथ अभेदता करके विचारे कि इन उक्त प्रकार की मात्रा जिस अधिष्ठान परमात्मा विषे कल्पित हैं अरु जो इन मात्रारूप प्रपञ्चका साक्षी प्रकाशक चैतन्य है तिस भगवान् वासुदेव की हम इस वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकाररूप तिसके प्रतीक वाचकके आलम्बन से उपासना करते हैं इस प्रकार जानके जो ॐकारकी उपासना करता है सो वासुदेव पद को प्राप्त होता है॥ इतिविष्णुपञ्चरात्र सप्तम सिद्धान्तः ७॥

हे सौम्य, यह जो सातो सिद्धान्तियों के मतसे सर्वका उपास्य एक ॐकार अक्षर कहा है सो परब्रह्मका वाचक नाम, होने से अरु नाम नामी की एकतासे ब्रह्मरूप है, अरु इसअक्षर ब्रह्म की उपासना करके विगत रागादि दोष हुये योगी यती जो आत्म ज्ञानी हैं सो ॐकार प्रतीकके लक्ष्य सर्व्वाधिष्ठान चैतन्य विषे समुद्रमें नदीवत् अभेदता से प्रवेश करते हैं। हे प्रियदर्शन यह जो ॐकार अक्षर है तिसका स्मरण अरु अर्थ विचार करत सन्ते इसके लक्ष्य अखण्ड सच्चिदानन्द चैतन्य आत्माहै सो मैं हौं, क्योंकि इन जाग्रदादि अवस्थाओं का साक्षित्व मेरे बिषे पायाजाताहै अरु यहजाग्रदादिअवस्था मेरेआश्रयवर्त्तती हैं तातेइसका अधिष्ठानभी मैंही हौं, अरु यहअवस्था परस्पर अरु अपने प्रकाशक साक्षीसे व्यभिचारको पावती है ताते असत्यहैं अरु इन तीनोंअवस्थाका साक्षित्व मेरेविषे पायाजाताहै ताते अव्यभिचारी

मैं एक सत्यरूपहौं अरु चैतन्य आनन्द स्वरूपएकहौं ताते अवस्थादि सर्व उपाधि से रहित निरुपाधि सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्मा ब्रह्म मैंहौं। इसप्रकार परमात्माके साथ आपको अभेद जानके एकहुये ज्ञानवान् परमात्म पदरूप परमगति प्राप्तहोते हैं। तहां जो त्रिमात्रिक प्रणव का जापिक उपासक अपने मरणसम ॐकारका स्मरण करताहुआ देहको त्यागता है सो "। ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्, यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमांगतिम्"। इत्यादि प्रमाणों से परमगति को प्राप्तहोताहै। अरु जो ॐकारको एकमात्रारूप जानके उपासना करता है सो देह त्यागके इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोय धर्माचरण पूर्वक यहांके भोगोंको भोगता है। अरु जो ॐकारको दो मात्रारूप जानके उपासना करता है सो पितृलोक को प्राप्तहोय वहांके भोगोंको भोग पुनः इसलोक बिषे आवता है। अरु जो ॐकारको त्रिमात्रारूप जानके उपासना करता है सो पुरुष देह त्यागानन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है वहां ब्रह्माद्वारा ॐकारके लक्ष्यका उपदेश पाय ब्रह्मसाथ एकहुआ मोक्षहोता है। अरु जो वाचकरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासनाकर पुनः आचार्य्यके मुखसे तिसके लक्ष्य सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्माको अपना आप आत्मत्वसे साक्षात् अनुभव करता है सो देहादि अनात्म अहंकारसे रहितहुआ ब्रह्मही होता है "। ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति"। हे सौम्य यह जो सातों सिद्धान्तकारों के मतसे ॐकारकी मात्राके तिरसठ ६३ भेदकहे हैं सो सर्व वाचकरूप त्रिमात्रिक ॐकारके सगुण स्थूल रूप हैं। अरु जो इनसेरहित ॐकार का लक्ष्य चौसठवां रूप है सो केवल निर्गुणरूप है। "। केवलो निर्गुणश्च"। अरु शास्त्रकारोंनेभी कहाहै कि जो विष्णु अक्षर है सो निरञ्जन:, अर्थात् अविद्यारूपा श्यामतासे रहित परम शुद्ध, है परमशान्त आनन्द घन है। तथाच "। निरञ्जनं शान्तमुपैति दिव्यम्"। सो न स्थूल है न सूक्ष्म है, न ह्रस्व है न

दीर्घ है, न प्लुतहै, न रक्तहै न पीतहै न श्वेत है न श्यामहै न हरितहै।इत्यादि सर्ववर्णरूपसे रहितहै सो न इन्द्रिया है न प्राण है न मनहै, न वुद्धिहै न इनकाविषयहै। ताते सर्वविशेषतासेरहित निर्विशेषहै निरन्तरहै अवाहयहै सर्वाधिष्ठान परमशान्तसत्तामात्र है, तिसविषे एक दो संज्ञा कोईनहीं सर्व संख्यासेरहित निरक्षर है अरु सम विषम भावसे रहित सदा अच्युतहै ज्योंका त्यों एक रस है ताते परम अक्षर है सो कैसा परम अक्षर है जो अधोक्षज है, अर्थात् शब्द ध्वनिसे रहित है, अरु जो अक्षर परापश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी इनचारो वाचाके आश्रय होठ कंठ तालू नासिका,इत्यादि स्थानोंद्वारा प्रकटहोतेहैं सो क्षररूपहैं वोहोतेही भूतसंज्ञा को प्राप्त होते हैं वा भविष्यत् में रहते हैं वर्त्तमान में उनका अभावहै ताते सो क्षररूप हैं, अरु जो होठ तालू कंठादि स्थानों से प्रकटहोता नहीं अरु सर्व का प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान है सो सदा वर्तमानरूप अक्षर है स्वयंभू है, अर्थात् अपनेआप करके आपही सिद्ध है, ऐसा जो परम ॐकारहै सो अचिन्त्य सर्व प्रमाणों का अविषय होने से अप्रमेय नित्य है अचल है पूर्ण है परम शिवरूप है सनातन पुरुष है अरु सोई विष्णु का परम पद, कहिये पावनेयोग्य, है तिसकी प्राप्ति से पुनः संसार भ्रम होता नहीं, ताते सोई परमधामहै, सोई क्षराक्षरसे रहित उत्तम पुरुष परम अक्षरहै, अर्थात् सर्व कार्य कारणसे रहित निराकार सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वका अपना आपप्रत्यक् आत्मा है तिसही के सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होता है तिससे इतर मोक्षका मार्ग कोई भी विद्यमान नहीं तथाच "नान्यः पंथा विमुक्तये" "नान्यः पन्थाविद्यते अयनाय"इत्यादि श्रुति प्रमाणसे ॥

इतिसर्वसिद्धान्तकारोंकेमतानुसारॐकारोपासन विचार समाप्तम् ॥

अथ ॐकारस्य एकादिमात्रोपासन विचार प्रारभ्यते॥

हे सौम्य, अब ॐकारके अन्य विद्वान् उपासकोंने जिस २ प्रकार मात्राओंके भेदसे उपासना कियाहै सोभी तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहताहौं तिसको भी श्रवणकरो हे प्रियदर्शनवाष्कल्यऋषि के मतावलम्बी पुरुष ॐकार को एकमात्रा रूप जान के भजते हैं। अरु साल अरु काइस्थ, इन आचार्यों के मतावलम्बी पुरुष ॐकार को दोमात्रा रूप जान के भजते हैं। अरु नारदऋषिके मतबिषे ॐकारको ढाई २॥ मात्रारूप जानकेभजते हैं। अरु मौंडल किंवा मांडूक्य ऋषि के मतबिषे ॐकारको तीन मात्रारूप जानके भजतेहैं, अरु सप्त सिद्धान्ती आदि अन्यऋषियोंने भी ॐकारको तीनमात्रारूप जानकेही भजन कियाहै। अरु पराशरादिक जे अध्यात्म चिन्तक मुनिहैं तिनके मतबिषे ॐकार को चारमात्रारूप जानके उपासना करतेहैं। अरु भगवान् वशिष्ठ ऋषिके मतबिषे ॐकार को साढेचार ४॥ मात्रारूप जानकेउपासना करतेहैं। अरु अन्य ऋषियोंने अन्य अन्य मात्रारूप से ॐकारका भजन कियाहै। अरु भगवान् याज्ञवल्क्यजीने ॐकार अक्षर को अमात्रारूप भजन कियाहै॥ अतएव वेद शास्त्रद्वारा किंवा आचार्य्य वा अपने अनुभवद्वारा जैसा जिसने ॐकारका स्वरूपमात्रा जानाहै तैसेही उसने उपासना कियाहै। अरु सर्वकाही भजना सफल है, क्योंकि ॐकार ब्रह्मकी अनन्तमात्रा हैं ताते जिसने जैसा जानके भजन किया है तिसने एक ॐकारही का भजनाकियाहै एतदर्थ सर्वका भजन सफल है सो यह विशेष वाच्यरूप ॐकारका भजनहै, अरु जो लक्ष्यरूप निर्विशेष ॐकार ब्रह्महै सो वास्तवकरके सर्वमात्रासे रहित अमात्रिक है उसबिषे मात्रारूप विशेषतानहीं। हेसौम्यइस ॐकारके पर अरु अपर, वा समात्रिक अरु अमात्रिक, वा वाच्यरूप अरु लक्ष्यरूप, इत्यादि

प्रकार दोरूपहैं सो पूर्व प्रश्नोपनिषद् सम्बन्धी ॐकारकी व्याख्या में कहआयेहैं । तहां एक सगुणरूप है दूसरा निर्गुण रूपहै, तहां सगुणतो समात्रिक शब्दमय वाच्यरूप ॐकार अक्षर ब्रह्महै, अरु दूसरा निर्गुण शब्दसे रहित अमात्रिक लक्ष्यरूप परब्रह्महै । तहां अब सगुण ॐकार ब्रह्मकी मात्राओंके भेदसे ऋषियों ने जिस जिस प्रकार उपासना किया अरु कहाहै तिसको भी संक्षेपमात्र श्रवणकरो ॥

हे सौम्य, जो वाष्कल्यऋषि हैं कि जिनके मतविषे ॐकार को एकमात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि जितनाकुछ स्थूल सूक्ष्म विराट् वपुहै सो सर्व ॐकारका ही स्वरूप है तिससे इतर कुछ भी नहीं । अर्थात् ॐकार जो ईश्वर है सो दो प्रकारका है, तहां एक सगुणरूप दूसरा निर्गुण रूप, तिनके भजनकरने वाले अपने २ अधिकारानुसार भजन करते हैं, तहां सगुण ॐकारके उपासक जानतेहैं कि इससगुण रूपका अधिष्ठान (आश्रय) निर्गुणहै ताते यह अपने अधिष्ठानसे अपृथक् होनेसे यही ॐकार ब्रह्महै इससे इतर निर्गुण नहीं, अरु निर्गुण ब्रह्मके उपासक जानते हैं कि ॐकार निर्गुण ब्रह्महै सो अपनी इच्छाशक्ति करके सगुणरूप हुआहै, ताते निर्गुणसे इतरसगुण नहीं वोहीरूप हैं । इसप्रकार सगुण निर्गुणकी एकता होने से एक ॐकार ब्रह्मही उभयप्रकारसे सुशोभितहै, ताते उभयप्रकार के उपासक कल्याणको प्राप्त होतेहैं, अरु उस एकही ॐकारब्रह्म का यह स्थूल सूक्ष्म कार्य्य कारणात्मक विराटात्मा उसका वपुहै ताते ॐकार एकमात्रा रूपही है, अतएव हम इस एकमात्रारूप ॐकार की उपासना करते हैं । यह ॐकार को एक मात्रारूपसे जानके भजन करनेवाले ऋषियों का मत है १ ॥

हे सौम्य, अब, साल अरु कइस्त आदिक जे ॐकार की दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इसप्रकार कहतेहैं कि ॐकार दो मात्रारूपहै, तहां एक स्थूलरूप कार्य्यमा-

त्राहै, अरु दूसरी सूक्ष्मरूप अव्याकृत कारण मात्राहै, इस प्रकार कार्य कारणरूप स्थूल सूक्ष्म दो मात्रा हैं जिसकी तिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा जो ॐकार चैतन्य ब्रह्महै तिसकी दो मात्रा हैं, तहां एक यह स्थूलरूप जाग्रत् जगत्, अरु दूसरी सूक्ष्मरूप स्वप्न जगत्, इन दोनों मात्राओंकालक्ष्यरूप साक्षी चैतन्य है कि जिसके आश्रय उक्त दोनों मात्राहैं अरु वा आप मात्राओं से रहित अमात्रिकहै तिसकी हम इस समात्रिक ॐकार के आलम्बनसे उपासना करते हैं। यह ॐकार की दो मात्रारूपसे उपासना करनेवाले ऋषियों का मतहै २॥

हे सौम्य नारदऋषि आदिक जे ॐकार को ढाई २॥ मात्रा रूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है, अरु उकार स्वप्नरूप जगत् है, अरु मकार सुषुप्तिरूप अर्धमात्रा है कि जिसबिषे जाग्रत् स्वप्न दोनों लीन होते हैं तातेही इसका नाम सुषुप्ति अर्द्धमात्राहै, इसप्रकार ढाई २॥ मात्रारूप जगत् है वपु जिसका तिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा अकार स्थूलदेह जाग्रत् जगत् समेत प्रथम मात्रा, अरु उकार सूक्ष्म देह स्वप्नरूप जगत् समेत द्वितीय मात्रा अरु अर्धमात्रा चैतन्य तत्त्व है सो सर्व का ज्ञाताहै तिसका ज्ञाता कोई नहीं, अतएव उसका नाम अर्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २॥ मात्रारूप वपु है जिसका तिस ॐकार परब्रह्मकी हम इस ढाई मात्रावाले वाच्यरूप अपरब्रह्म ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं। यह ॐकारको ढाई २॥ मात्रा रूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मतहै २॥

हे सौम्य मौंडलऋषि आदिक जे ॐकारको तीन मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इसप्रकार कहते हैं जो, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था, अरु अकार उकार मकार, यह तीन मात्रा, अरु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवता, इनका संघातरूप है वपु जिसका, अरु जो है इस स्थूल सू-

क्ष्म कारणरूप सर्व जगत् का आश्रय अधिष्ठान, अरु जिसबिषे स्वरूपकरके मात्रादि उपाधि अध्यस्त (कल्पित) होने से कोईन-हीं, तिस सर्व्वाधिष्ठान निर्विशेष लक्ष्यरूप ॐकार की हम उ-पासना करते हैं । अरु ॐकार की तीन मात्रारूप से उपासना अनेक प्रकार से कही है, अरु सप्तसिद्धान्तकारोंने भी तीनमात्रा रूपसे कही है, यह ॐकार को तीन मात्रारूप जानके भजनक-रनेवाले उपासकों का मत है २ ॥

हे सौम्य, अब ॐकार को साढ़ेतीन ३॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले ऋषि इसप्रकार कहते हैं कि, अकार, उकार, मकार, रूप, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन मात्रा हैं अरु अर्ध मात्रारूप चैतन्य ब्रह्म है । अथवा कोई एक ऐसा कहते हैं कि प्रथम मात्रा अकार स्थूल जगत्, अरु दूसरी मात्रा उकार सूक्ष्म जगत् अरु तीसरी मात्रा जीव कला, अरु अर्धमात्रा सर्व्वाधि-ष्ठान चैतन्य परमपद रूप है कि जिसबिषे जीवकला संयुक्त स्थूल सूक्ष्म सर्व मात्रा लीन होती हैं, अरु जिसबिषे मात्रा कोई नहीं ऐसा जो लक्ष्यरूप ॐकार है तिसकी हम समात्रिक ॐ-कारके आलम्बनसे उपासनाकरतेहैं । यह ॐकारको साढ़ेतीन ३॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकोंका मतहै ३ ॥

हेसौम्य, अब पराशरआदिक ऋषिजो ॐकारको चारमात्रा रूपजानके उपासना करनेवालेहैं सो इसप्रकार कहतेहैं कि, प्रथम मात्रा अकाररूप स्थूलविराट् पुरुष, अरु द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, अरु तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत, अरु चतुर्थ विन्दुरूप चैतन्य पुरुष, कि जिस अधिष्ठानके आश्रय अध्यस्तरूपसे स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टिसमष्टि तीनों शरीररूप प्रपंचहै, सो सर्वाधार चैतन्य परमपदहै, अतएव अध्यस्तकीपृथ-क्सत्ताके अभावसे सर्व चैतन्यहीहै, तातेहम ॐकारके लक्ष्य नि-र्विशेष सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक ॐकारकी इस चारमात्रारूप स-मात्रिक ॐकारके आलम्बनसे उपासना करतेहैं । यहॐकारको

चारमात्रारूपसे जानके उपासना करनेवालों का मत है ४॥

हेसौम्य, वशिष्ठादिक ऋषिजो ॐकारको साढ़ेचार ४॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि ,अकार प्रथममात्रा यहस्थूल जगत्है, अरु उकार दूसरीमात्रा यह सूक्ष्म जगत्है, अरु मकार तृतीयमात्रा सुषुप्तिहै, अरु चतुर्थमात्रा नादरूप परमशक्ति है, अरु अर्धमात्रा चैतन्यपुरुषहै, कि जिसके आश्रय चारोमात्रा सिद्धहैं अरुवो आपमात्रासे रहित अमात्रिक है,तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी हमइस साढ़ेचार मात्रात्मक वाच्य रूप ॐकारके आलम्बनसे उपासना करतेहैं।यह ॐकारकोसाढ़े चारमात्रारूप जानके उपासनाकरनेवाले उपासकोंका मतहै४॥

हेसौम्य, कोई एक ऋषि इस ॐकारको पांचमात्रारूप विचारके भजनकरतेहैं, सो ऐसा कहतेहैं कि ,अकार अन्नमयकोश, अरु उकार प्राणमयकोश, अरु मकार मनोमय कोश, अरु अर्ध मात्रा विज्ञानमयकोश, अरु बिन्दुरूप आनन्दमय कोशहै।यहउक्त पांचोमात्रा जिस चैतन्य अधिष्ठानके आश्रय अध्यस्तहैं, अरुजो इनमात्राओंसे रहित पंचकोशातीतहै, तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी उक्त समात्रिक ॐकारके आलम्बनसे उपासना करतेहैं।यह ॐकारको पांचमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मतहै ५।८॥

हेसौम्य, कोई एक ऋषि ॐकार को षट्मात्रारूप जानके भजतेहैं, सो ऐसा कहते हैं कि ,जो अकाररूप जाग्रत् जगत् है, उकाररूप स्वप्न जगत्है, अरु मकाररूप सुषुप्तिहै, अरु अनहद शब्दसे आदिलेकेजो वाचाहैसो शब्दरूपा चतुर्थमात्राहै, अरुबिन्दु रूप कारणप्रकृति पंचममात्राहै,अरु षष्ठरूप साक्षी चैतन्य आत्मा है। ऐसाहै विशेष स्वरूप जिसका अरुआप अपने स्वरूपसे निर्विशेषहै तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी हम सविशेषरूप वाचक ॐकार के आलम्बनसे उपासना करते हैं। यह ॐकारको षष्ठमात्रारूप जानके उपासना करनेवालोंका मतहै ६।९॥

हेसौम्य कोई एक आचार्य ॐकार को सप्तमात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, यह भूतोंकी शब्दादिरूप पंचमात्रा पंचतत्त्व अरु अहंकार अरु महत्तत्त्व, यहसात मात्राहैं अरु अष्टमआप चैतन्यपुरुष है। तिसकी हम सप्तमात्रात्मक ॐकारके आलम्बन (आश्रय) से उपासना करतेहैं। यह ॐकारको सप्तमात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासकोंका मतहै ७।१० ॥

हेसौम्य, इसप्रकार, ३८, ४९, ५२, ६३, ६४, मात्रापर्य्यन्त ॐकारकी उपासना करतेहैं सोआचार्य्य ऐसा कहतेहैं कि यावत् स्वर व्यंजनादिक वर्णअक्षरहैंसोसर्व ॐकारकीमात्राहैंक्योंकिसो सर्वकारण ॐकारसे फुरीहै अरु स्फुरण होती है अतएव सर्वमात्रा ॐकारका ही है, इसही से सर्व जगत् ॐकार रूप है जिसकिसी पदार्थ का नाम है सोसर्व उक्त मात्राओंके अन्तरगत है, अरु जेतने कुछ वर्णाक्षर हैं सो सर्व ॐकारकी मात्रा हैं, ताते वर्णात्मक जो ॐकार अक्षर है सो सर्व नामोंकेविषे ओतप्रोतहै, एतदर्थ भी ॐकार रूपही सर्व जगत् है, ॐकारही वाच्यरूप होयके इस प्रकार सर्व नामों के मध्य आदि अन्त मध्य ओत प्रोत है, अरु लक्ष्यरूप जो चैतन्य आत्मा है सो अस्ति भाति प्रियरूपकरके व्याप्तहै ताते भी वाच्य वाचक सर्व ॐकारही है ॥

इति ॐकार की एक आदि मात्राओंका उपासनाविचार ॥

अथ ॐकारके ॐकारादि दश नामोंका अर्थ विचार प्रारभ्यते ॥

ॐकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिनमेवच । अनन्तञ्च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेवच ॥ तूर्यं हंस परब्रह्म इति नामानि जानते ॥ यह सार्द्ध श्लोक है ॥

हे सौम्य, इस ॐकार ईश्वरके दश नाम मुख्य हैं सो सर्व

सार्थ, कहिये अर्थ सहित हैं, अरु जिज्ञासु करके जानने योग्यहै, अतएव अब इसके नामों के अर्थको भी संक्षेपमात्र श्रवणकरो ॥

अथ प्रथम नाम ॐकार १॥

हे सौम्य, प्रथम नाम ॐकार है तिसका यह अर्थ है कि जब शरीर ग्रीवा अरु शिर, इनको सम सीधेकर पद्मासन बैठ इन्द्रियोंको विषयों से अरु मनको संकल्पों से रोक ह्रस्व दीर्घ प्लुत ध्वनिपूर्वक ॐकारका यथा स्थानसे उच्चारण करते हैं तब चरण से लेके मस्तक पर्य्यन्त सब शरीरगत नाडियों को ऊँचाकरता है, अथवा प्राणायामकी रीति से इसका उच्चार करता है तब प्राण ब्रह्मरंध्र ऊंचे स्थानको प्राप्त होताहै, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥१॥ अथवा जो योग क्रियाकी रीतिसे प्राणायाम द्वारा स्थान विशेष में ध्वनिको साधके ॐकार का आन्तर्य उच्चार करता है तिसके प्राण ब्रह्मरंध्रको प्राप्त होते हैं, अरु देहान्त समय उसके प्राण " तयोर्द्धमायन्नमृतत्वमेति " इत्यादि प्रमाण से सुषुम्ना नाडी द्वारा ब्रह्मरंध्रसे निकल ब्रह्मलोक को प्राप्त होताहै, अतएव इसका नाम ॐकार है ॥२॥ अथवा ॐकारके दो अक्षर, कहिये मात्रा, हैं तिनका अर्थ योग क्षेम (पालन अरु रक्षा) है, अर्थात् जो पुरुष इस ॐकार की उपासना करते हैं तिनकी रक्षा अरु पालन ॐकार करताहै, अर्थ यह जो उपासक को वांछित पदार्थ को प्राप्तकरदेता है अरु प्राप्तकी रक्षा करता है, इसप्रकार अपने उपासकका योग क्षेम ॐकार करताहै। अर्थात् सकाम उपासकको संसारके भोग्यपदार्थ प्राप्तकरके पालन, अरु रक्षाकरताहै, अरु जो उसके निष्काम जिज्ञासु उपासकहैं तिनकोप्राप्तहुई जो ज्ञान भूमिका तिसकापालन(वृद्धि) अरु रक्षाकरताहै। अथवा अपनेउपासक जिज्ञासुको जो कदापि ज्ञानभूमिकाअप्राप्यहै तोतिसकीप्राप्ति करदेताहै अरुजो ज्ञानभूमिकाप्राप्तहै तो कामक्रोधादि आसुरीसम्पदासे तिसकी रक्षा करताहै, अतएव इसकानाम ॐकारहै। अथवा

ॐकारका अर्थ अंगीकारभीहै,अर्थात् जो कोई ॐकारका सम्यक् प्रकार भजन करनेवाला उपासकहै तिसके कहेहुये वर शापादिक वाक्य देवता आदिक सर्वही अंगीकार करते हैं, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥४॥ अथवा ॐकार का अर्थ ब्रह्म भी है क्योंकि जो इसकी समाहित चित्तसे सम्यक् प्रकार उपासना करते हैं तिसको अपने आप आत्मा ब्रह्म की अभेदता प्राप्त करता है, अर्थात् उस उपासकको ब्रह्म आत्मा का अभेद ज्ञान होता है, एतदर्थ भी इसको ॐकार कहते हैं ॥ ५ ॥ यह सर्व ॐकार नामके अर्थ हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयनाम प्रणव २ ॥

हे सौम्य, अब ॐकार के प्रणव नामका अर्थ श्रवण करो। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, अरु ब्रह्मा आदिक सर्व देवता ऋषि मुनि मनुष्य दैत्य आदिक जो हैं सो सर्व,तीन अक्षररूपहै जो ॐकार तिसको मन वाणी शरीरकरके प्रणाम करते हैं, ताते ॐकार का नाम प्रणव है । " सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति " । २ ॥

अथ तृतीयनाम सर्व्वव्यापि ३ ॥

हे सौम्य, अब ॐकारके तृतीय सर्वव्यापि नामका अर्थ श्रवणकरो । यह जो स्थूल सूक्ष्म स्थावर जंगम कार्य कारणात्मक शरीर हैं, यावत् वेद स्मृति पुराण इतिहास शास्त्रादिक विद्याहैं, तिन सर्व विषे व्यापरहा है । अर्थात् उस सर्व बिषे नाना भेद भावकरके एक विष्णु ॐकारही को वर्णन किया है, ताते इस ॐकार को सर्वव्यापि वर्णन किया है वा कहते हैं । अथवा एक ॐकारही अनेक मात्रा होयके वेदादि सर्व विद्याबिषे ओत प्रोतहै, क्योंकि बावन आदि यावत् स्वर व्यंजनात्मक मात्राहैं सो सर्व ॐकारकाही विस्तारहै, ताते ॐकार सर्व व्यापिहै॥ २ ॥ अथवा जो अक्षर आत्मा अस्ति भाति प्रिय रूपहोके स्थितहै अरु सोई

ॐकारका वाच्यलक्ष्य है ताते भी ॐकार को सर्वव्यापि कहते हैं॥३॥ यह ॐकारके तृतीय सर्वव्यापिनामका अर्थहै ॥इति ३॥

अथ चतुर्थनाम अनन्त ४॥

हेसौम्य,अब ॐकारके चतुर्थ अनन्तनामका अर्थ श्रवणकरो जब जिज्ञासु इस ॐकारका सम्यक् प्रकार यथाविधि भजन करताहै तब तिस अपने उपासकको अपने अनन्त ब्रह्मपद विषे प्राप्तकरताहै, ताते ॐकारकानाम अनन्तहै॥१॥अथवा इस ॐकार ब्रह्मका देशकाल वस्तुकरके अन्तपाया जाता नहीं,क्योंकि वायु अग्नि जल पृथिवी आदिकोंकी अपेक्षा आकाशका अन्तनहीं ताते सो अनन्तहै उसहीके अन्तरगत वायु आदि तत्त्वोंका अन्त होताहै, अतएव चारो तत्त्वों की अन्तताकी अपेक्षा आकाशकी अनन्तता है, सो आकाशकी अनन्तता ॐकारके लक्ष सर्वाधिष्ठान आत्माके भरपूर अस्तित्वके ज्ञानहुयेएक परमाणुमात्र भी न रहके अपने अन्तको प्राप्तहोती है, ताते ॐकारका नाम अनन्तहै ॥२॥अथवा ॐकारके वाच्यनाम रूपात्मक जगत्काअंत विना सर्वाधिष्ठान चैतन्यआत्माके साक्षात् ज्ञानकेअन्य किसी देवता दैत्य ऋषि मुनि आदिकों करके पायाजाता नहीं, एतदर्थ भी ॐकारका नाम अनन्तहै॥ ३ ॥ यह ॐकारके चतुर्थ अनन्त नाम का अर्थ है॥ ४ ॥

अथ पंचम नाम तारकाअर्थ ५॥

हे सौम्य, अब ॐकारका पंचमनाम जो तार है तिसकाभी अर्थ श्रवणकरो। सर्वजे 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक,आधिदैविक,दुःखहैं, तहां काम क्रोध तृष्णा चिन्ता आदिकोंके क्षोभसे जो अन्तःकरण विषे दुःख होताहै तिसकानाम आध्यात्मिक दुःख है, अरु ज्वरादिक रोग जन्य, अथवा सर्प सिंहादिकोंके भय जन्य जे दुःखहैं तिनकानाम आधिभौतिक दुःख है। अरु ग्रहादि देवताओंके कोपजन्य जे दुःखहैं तिनकानाम आधिदैविक दुःखहै।

इत्यादि सर्व दुःखोंसे अपने उपासक को तारदेताहै एतदर्थ ॐ-कारका नाम तारहै॥१॥अथवा यहजो नामरूप क्रियात्मक महा-दुःखमय अपार संसार सागरहै तिसबिषे जन्म जरा मरण काम क्रोध लोभ मोहादिरूप बडेबडे ग्राह मकरादि, सर्वकोग्रासकरने वाले हैं, अरु तृष्णा कामना अभिलाषा इच्छा आदिक बडी २ शेषलोक से ब्रह्मलोक पर्य्यन्त उछलती सर्वको अपनेबिषे आक-र्षणकर तृणवत् अधो ऊर्ध्वको प्राप्तकरती तरंगें हैं,तिसबिषे ज्ञान रूपा तारूविद्यासे रहित जे अज्ञानी जीवहैं सो पडे मग्नहोते हैं अरु दुःखपावते हैं पुकारते रोवते हाडूबे हाडूबे शब्दकरते हैं,अरु इस संसारसागरमें मग्नहोते जीव सो देवता आदिक बडे श्रेष्ठ पूजनीय भजनीयहैं तिनको अपनात्राण(रक्षक)समझके उनका आश्रय लेते हैं, परन्तु उनको भी उक्त सागरमें मग्नहोते सुनते अरु जानते हैं तब उनकी ओर से भी निराश निराधारहुये जन्म जन्मान्तरपर्य्यंत दुःखही पावते हैं।ऐसा जो परमदुःखमय असार अपार संसार महादुस्तर सागर, तिससागरसे अपने उपासकको यह ॐकारतार देताहै, अतएव ॐकारकानाम तारहै॥२॥अर्थात् ऋगादि सर्व वेदोंकरके यहॐकारही तारक प्रख्यातप्रतिपाद्यहै, ताते जिन वर्णत्रयी के मनुष्योंको संस्कारपूर्वक वेदाध्ययनका अधिकारहै तिनको संसारदुःखकी सकारण निवृत्तिके अर्थ सर्वो-त्तम तारक ॐकारकी यथाशास्त्रविधि उपासनाकरना योग्य है। अरु जे वर्णत्रयीसे इतर वेदाध्ययनादिकके अनधिकारी पुरुष हैं तिनको अपनेकल्याणार्थयथाविधि पुराणोक्त रामनामादि तारक की उपासना कर्त्तव्ययोग्य हैं क्योंकि उनका कल्याण उसीसे है "स्वधर्म विगुणश्रेयो"यह ॐकारके पंचमतारनामकाअर्थ है॥५॥

अथ षष्ठः नाम शुक्ल का अर्थ ६ ॥

हे सौम्य, अब ॐकारके शुक्ल नामका अर्थश्रवण करो। वर्ण करके जो शुक्लहोय कहिये शुद्ध होय,सो कहिये शुक्ल। अर्थात्जो

सर्व मलसे रहित निर्मल शुद्ध होवे तिसका नाम शुक्र कहते हैं तहां सर्वमलोंका कारण अविद्या है तिसअविद्यारूप महामलसे रहित सदाशुद्धएक ॐकारही है एतदर्थ ॐकारकानाम शुक्र है। "शुद्धमपापविद्धम्"। "तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते"। इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे॥ १॥ अथवा ॐकार अपने उपासकको शुद्ध अपने लक्ष्य आत्मपद बिषे प्राप्तकरता है ताते ॐकारका नामशुक्रहै॥ २॥ अथवा तीनप्रकारकेजे कायिक वाचिक मानसिक, पापहैं तिनको नाशकरके अपने उपासकको शुद्ध करताहै एतदर्थ ॐकारकानामशुक्रहै। ३॥ अथवा तीनप्रकारके जे कर्मरूप पाप हैं तिन पापोंसे अपने भक्तोंको शुद्ध करता है ताते ॐकार का नाम शुक्रहै॥ ४॥ हेसौम्य, अब इनतीनप्रकारके कर्मरूप पापोंको श्रवणकरो। प्रथम एक क्रियमाण कर्म्महै, दूसरा संचित कर्महै, तीसरा प्रारब्धकर्म्महै। सो यह तीनप्रकारके कर्म्मरूप पाप तर्कसमें बाणवत्, अन्तःकरणरूप तर्कसबिषे रहते हैं। सो कैसा है अन्तःकरणरूप तर्कस जो साक्षी आत्माके आभास वा प्रतिबिम्ब करके युक्त है, अरु अविद्याका कार्य होने से अज्ञान अंश करकेभीयुक्तहै, तिसअन्तःकरणरूप तर्कसबिषे तीनोंप्रकारकेकर्म्मरूप बाणरहते हैं, अरु स्वतः अन्तःकरणजड़है ताते बिनाचैतन्याभास अरु अज्ञानके कर्मधारने में समर्थनहीं, जब अन्तःकरण चैतन्याभास अरु अज्ञानकरके युक्तहोताहै तबहीं कर्म्मोंकोधारने बिषे समर्थ होताहै॥ हेसौम्य अब अन्तःकरणका स्वरूप श्रवणकरो जो क्याहै। अरु अज्ञान क्याहै, अरु चैतन्यक्याहै, अरु सो कर्म्मों को धारता कैसे है, सो सर्वश्रवणकरो जैसे मृत्तिका, अरु जल, अरु आकाश, यहतीनों मिलते हैं तबघट उत्पन्नहोय पदार्थों को धारता है तहां न तो केवल मृत्तिकाही पदार्थ को धारसक्ती है न केवल जलही पदार्थ को धारसक्ता है, अरु न केवल आकाशही पदार्थ को धारसक्ता है, जब मृत्तिका जल अरु आकाश तीनों मिलतेहैं तब घटरूपहोय पदार्थको धारते हैं, तैसेही सत्त्वगुणरूप

मृत्तिका अरु अज्ञानरूप जल अरु चैतन्यरूप आकाश यह तीनों मिलते हैं तब अविद्याके सत्त्वगुण भागका परिणाम अन्तःकरण होय तीनों प्रकारके कर्म्मोंको धारता है सोभी प्राणरूप सूत्रके आश्रय धारता है । ऐसा जो अन्तःकरणरूप तर्कस है तिसबिषे कर्मरूप बाण रहतेहैं, अथवा अन्तःकरणरूप मन्दिरहै तिसबिषे तीनोंप्रकारके कर्मरूप अन्नकेदाने भरेहुयेहैं, तहां व्यतीतहुये जे अनेकजन्म तिनके कर्म्मोंके सूक्ष्म संस्कार जे अन्तःकरण बिषे संचित हैं तिनका नाम संचित कर्म्म है तिन कर्म्मोंमेंसे जो कर्मोंको अपना फल सुख दुःखादि भोगावना है अरु जिन कर्मों नेयह शरीर रचाहै तिनकानाम प्रारब्धकर्म्महै । अरुजो वर्त्तमान शरीरकरके अहंकारपूर्वककर्म कियेजाते हैं तिनकानाम क्रियमाण कर्महै । अरु सो क्रियमाण कर्म्महीं तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है । तहां कर्म्मकरनेके समय उसको क्रियमाण कहते हैं, अरु करने केपश्चात् उसही कर्म्मकी संचितसंज्ञा होतीहै । अरु जब उसके फलभोगका समय आवताहै तबउस कर्म्मकी प्रारब्धसंज्ञा होती है। जैसे एकहीकाल भूतभविष्यत् अरु वर्त्तमान तीनसंज्ञाकोप्राप्त हुआहै,तैसेही एक क्रियमाण कर्म्म क्रियमाण संचित अरु प्रारब्ध, इन तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है। तिसबिषे जे प्रारब्धकर्म्म हैं तिसकाफल ,जाति, आयुष्य, अरुभोग, इन तीनरूपसे प्राप्तहोता है। तहां जाति कहिये, देव दैत्य मनुष्य पशु पक्षी वृक्षआदिक तिनविषेभी ,उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, अरु अधम, ।सो सर्वजीवों कोअपने अपने प्रारब्धका फलहै । अरु आयुष्य जोहै सो लव निमेषादिकोंसे लेके परारब्य ब्रह्माके आयुपर्यन्त न्यूनाधिक्य सो सर्व प्रारब्ध कर्मके फल हैं । अरु भोग जोहैं नानाप्रकारके स्वर्ग नरकादिकों के उत्तम मध्यम निकृष्टरूप सुख दुःख सो सर्व प्रारब्धका फलहैं सो अवश्यमेव देहधारियोंको भोक्तव्यहैं । हे सौम्य यह प्रारब्ध भोग , साधारण , अरु असाधारण, उभय प्रकार के भी चिन्तनीय हैं, तहां जैसे ज्वरादिक रोग हैं सोभी प्रारब्धकर्म

का फलहै परन्तु तिनकी औषधी आदिक यत्न करनेसे निवृत्ति होती है सो साधारण है, अरु जिन रोगादिकोंकी प्रयत्न करनेसे भी निवृत्ति होती नहीं सो असाधारण कहिये असाध्य जानना। अरु यह तीनोंप्रकारके प्रारब्ध कर्मके फल भोग भोगनेहीसे निवृत्तहोते हैं अन्य किसीप्रकारसे भी इनकी निवृत्ति होतीनहीं। अरु संचित, क्रियमाण,यहदोनों कर्म ज्ञानवान्के ज्ञानाग्निकरके नष्ट होजातेहैं। अरु प्रारब्धकर्म्म देहकेआश्रय रहताहै सो अपनाफलदे के नष्टहोताहै मध्यमें मिटतानहीं। जैसेकिसी शस्त्रधारीके तर्कस बिषे जोबाण होताहै तिसको अरु जोबाण चलावनेकेलिये हाथमें धारणकियाहै तिसकोनाशकरनेको वोशस्त्रधारी समर्थहोताहै, अरु जोबाण उसकेधनुषसे चलचुकाहै तिसको नाशकरनेमें वो समर्थ होता नहीं वोबाण जो धनुषसे चलचुका है सोजब अपने बेगसे रहितहोताहै तब गिरपड़ताहै पुनः आगे चलतानहीं, तैसेही तर्कसके बाणोंवत् संचित कर्म्म हैं, अरुहाथके बाणवत् क्रियमाण कर्म्महैं, सोयह संचित अरु क्रियमाण दोनों कर्म्म आत्मज्ञानकी प्राप्तिहुये नाशहोजातेहैं। अरुजो तीसरा प्रारब्धकर्म्महै सोधनुष से चलेहुये बाणवत्है, सो ज्ञानप्राप्तहुयेभी रहताहै वोजब अपने भोगदातव्यरूप बेग से रहित होताहै तबअपने आश्रय शरीरसहितगिरपड़ताहै पुनः आगेको चलता नहीं। अर्थात् ज्ञानवान्का प्रारब्ध जब अपना भोग देचुकता है तब सशरीर के नष्ट होजाता है तब उस विद्वान् को पुनः जन्मके आरंभक कोई भी कर्म्म अवशेष रहते नहीं, क्योंकि जब वो आचार्य से तत्त्वमस्यादि महा वाक्यों को श्रवण करता है तब अपने आप को जानता है कि मैं अविद्यात्मक स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरों से रहित अशरीरी आत्मा हौं ताते अजन्मा अक्रिय हौं, अतएव मेरे साथ शरीर अरु तदाश्रित कर्म कोई नहीं, मैं एतने काल से अपने अज्ञानरूप पिशाच के वश हुआ अपने को कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी मानता रहा, परन्तु अब श्रुति अरु आचार्य्य की कृपा

से मेरा उक्त पिशाच निवृत्त हुआ तब जाना जो मैं तो सर्व शरीरादि उपाधिसे रहित निर्विकार निराकार निःक्रिय असंग आत्मा हौं मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, अतएव न मैं पूर्व कर्त्ता रहा न मुझको आगे को कुछ कर्त्तव्य है, मैंतो सर्वदा अकर्त्ता अभोक्ता एकरस चैतन्य आत्मा हौं । इसप्रकार विद्वान् को अपने आप आत्मस्वरूप का साक्षात् सम्यक् ज्ञान होनेसे तिसही ज्ञानरूप अग्निद्वारा संचितकर्म्म जो तर्कसके बाणवत् हैं सर्व भस्म होते हैं। तथाच "क्षीयन्तेचास्यकर्माणि" "ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणि" इत्यादि श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणसे। अरु सम्यक् आत्मज्ञानहोने के उत्तर कुछभी कर्त्तव्य अवशेष रहतानहीं, क्योंकि कर्मके हेतु कामना का उसविषे अत्यन्ताभाव है। अरु अवशेष रहा जो प्रारब्धकर्म्म सो अपना भोग देके नष्ट होता है, अरु तिस प्रारब्धके भोगकालमें भी वो विद्वान् प्रारब्ध का भोक्ता नहीं क्योंकि आत्मा अभोक्ता है। ताते प्रारब्ध के सुख दुःखादि भोगों का भोक्ता साभास लिंगशरीर जीवात्मा है, अरु स्थूलशरीर भोगालय है, अरु इन दोनों का कारण अविद्या है। अरु मैंतो इन सर्व से पृथक् इन सर्व का प्रकाशक साक्षी हौं हे सौम्य, इसप्रकार अपनेआप अकर्त्ता अभोक्ता सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव करके ज्ञानवान् संचितादि सर्व कर्म से अरु तिनके फल सुख दुःखादिकों से रहित सर्वदा अकर्त्ता अभोक्ता ज्योंका त्यों है। अरु यावत् लोक दृष्ट्या ज्ञानी का देह भासता है तावत् प्रारब्ध भी भासता है वा यावत् प्रारब्ध भासताहै तावत् तदाश्रित शरीर भी भासता है, तथापि ज्ञानी के स्वरूप में देह अरु प्रारब्ध अरु तदाश्रित सुख दुःखादि भोग इत्यादि कुछभी नहीं। अतएव ज्ञानवान् का प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त हुआ पुनः शरीरारंभ का कारण होता नहीं क्योंकि उसका संचितकर्म जो प्रारब्धरूप से फलकी प्रवृत्तिका हेतु है सो ज्ञानाग्नि करके नाशको प्राप्त होताहै ताते। अरु अज्ञानीका एक शरीरका आरंभक अरु उस शरीरकरके

अपने फल सुख दुःखादिकों का भोगावनेवाला प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त होनेपर आवता है तबही उसके संचित कर्मोंमें से जो कर्म्म अपना फल देनेको सम्मुख होते हैं तब वो प्रारब्धरूप से पुनः शरीरके आरंभक अरु सुख दुःख के भोगावने वाले अरु अपने अनुसार कर्मों के करावनेवाले होते हैं, ताते अज्ञानी को क्रियमाण अरु क्रियमाण से संचित अरु संचित से पुनः प्रारब्ध, प्रारब्ध से पुनः क्रियमाण, इसप्रकार घटी यन्त्रवत् कर्मचक्र भ्रमावताही रहता है उसके कर्मबिना सम्यक् ज्ञान के हुये अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होते नहीं ॥ हे प्रियदर्शन प्रारब्ध भोग जो ज्ञानी अरु अज्ञानी के बिषे तुल्य हैं सोभी तीन प्रकारके हैं, तहां एक इच्छितरूप है, दूसरा अनिच्छितरूप है, तीसरा परेच्छितरूपहै। सो यह तीनप्रकारके प्रारब्धके अनुसार तिनके फलक्रिया भोग सर्व जीवोंको प्राप्तहोते हैं। सो तीनोंप्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग श्रीकृष्ण परमात्मा ने गीताबिषे निरूपण कियाहै सो ज्ञानी अज्ञानी दोनोंको तुल्यहै, परन्तु अज्ञानीको साभिमानहै ताते बन्धनका कारणहै, अरु ज्ञानवान् निरभिमान है ताते उसको बन्धन का कारण है नहीं। अब तीनों प्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग देखावतेहैं। तथाच। भगवानुवाच। "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते ज्ञानवानपि, प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति"। अर्थ 'भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन अपने प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सर्व प्राणी चेष्टा करते हैं, अर्थात् ज्ञानवान् भी अरु अज्ञानी भी सर्व अपने २ पूर्व कर्म्म संस्कारों के आश्रय चेष्टा करतेहैं, अरु उसही स्वभाव (प्रकृति) को प्राप्त होते हैं तब पुनः निग्रह किसका करिये। अर्थात् पूर्व शरीरों से किये जे कर्म्म सो संस्कार रूपसे अन्तःकरणबिषे स्थित हैं, तिन संस्कारों का जो प्रबुद्ध होना (जागना) है, तिसही के आश्रय ज्ञानी अरु अज्ञानी सर्व चेष्टा करते हैं तब उनका निग्रह क्यों करिये। यह तो इच्छा पूर्वक क्रिया भोग हैं, क्योंकि पूर्व जन्मों

के किये जे इच्छा पूर्वक शुभाशुभ कर्म सो संस्काररूपसे अन्तः-करण में स्थित होय इन शरीरोंको अपने आश्रय वर्त्तावे है,एत-दर्थ इस स्वाभाविक चेष्टाका नाम इच्छापूर्वक चेष्टा है, अर्थात् इच्छित प्रारब्ध क्रिया भोग है ॥ हे सौम्य अब अनिच्छित को भी श्रवणकरो पूर्व अर्ज्जुन ने श्रीकृष्ण परमात्माप्रति प्रश्नकिया है कि "। अथ केन प्रयुक्तोयं पापंचरति पूरुषः , अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादपिनियोजितः " हे भगवन् उत्तम पुण्यरूप क्रिया करने की इच्छा सर्वको होती है सुखप्राप्तिवास्ते, पापकर्म की इच्छा कोई भी करता नहीं दुःख की अप्राप्तिवास्ते , तथापि जिस पापकर्म्म की इसको इच्छा नहीं तिसही पाप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं सो किसकी प्रेरणासे होते हैं , जैसे राजाकी प्रेरणा से,विनाही अपनी इच्छाके भृत्य युद्धरूप कर्म करता है कि जिस क्रिया में मरण पर्यन्त का भयहै, तैसेही यह पुरुष जो विना अपनी इच्छाके पापरूप कर्म, कि जिसमें परिणाम नरकादिकों का भय है, करताहै सो किसकी प्रेरणासे करता है , यह आप कृपाकर मुझसे कहिये ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब अर्ज्जुन ने प्रश्नकिया तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर कहा कि "। कामएषः क्रोधएषः रजोगुण समुद्भवः, महाशनोमहापाप्मा विद्धनमिह वैरिणम् " हे अर्जुन यह जो काम अरु क्रोध है सो रजोगुण से उपजे हैं अरु बड़े भोजन के करनेवाले पापात्माहैं, अरु जिज्ञासु के नित्यही वैरी हैं । तिनकी प्रेरणासे यह जीव अनिच्छित भी पापकर्मोंमें प्रवृत्त होतेहैं । अर्थात् यह जो कामना है सोई अपनी अपूर्णतासे क्रोधरूप परिणाम को पावती है, क्योंकि जब कोई किसी पदार्थ की कामना से किसी क्रियामें प्रवर्त्त होताहै, तिस क्रियामें जब कोई द्वेषी पुरुष विघ्नकरता है तब वोही कामना जो पूर्व रजोगुणात्मकरही सो क्रोधरूप से तमोगुणात्मक परि-णामको प्राप्तहोती है, सो विवेक शून्य पापात्मा है, अरु कामना भोगों करके तृप्तहोती नहीं , आहुतिसे अग्निवत् अतएव सो

महाशना है अरु जिज्ञासु की तो यह नित्यही वैरी है ॥ हे सौम्य इसही कारणसे श्रीकृष्णपरमात्मा ने कहा है कि " जहि शत्रुंम-हाबाहो कामरूपंदुरासदम् " हे अर्ज्जुन इस कामरूप बलवान् शत्रुको जयकरो तिसविना कल्याण नहीं ॥ अरु पूर्व जन्मों के जे रजोगुणात्मक कर्म्मोंकेसमूह सो सूक्ष्म संस्कार रूपसे अन्तः-करण बिषे स्थित्त हैं, सो जब अपना फल देने को सम्मुख होते हैं तब प्रारब्ध रूप भावको प्राप्तहोय कामना रूप से प्रबुद्धहोते (जागते) हैं , तब तिसके वशहुआ जीव अनिच्छित भी पाप कर्म्मों में प्रवृत्त होता है, सो क्रिया अरु तिसका फल भोग, सो सर्व अनिच्छित क्रिया भोग है । ताते इस को अनिच्छित क्रिया भोग कहते हैं ॥ अब परइच्छित प्रारब्ध को श्रवणकरो । हे सौम्य श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है कि, हे अर्ज्जुन अपने पूर्वकर्म्मों के संस्कारजन्य प्रकृति ' कहिये स्वभाव ' तिसके वश हुआ जो तू सो अपने अज्ञानभ्रम करके भ्रमाहुआ अपना धर्म्म रूपजो युद्ध कर्म सो नहीं भी करता तथापि परवश हुआ युद्ध कर्म्म करेहीगा इसबिषे संशय कुछ नहीं, ताते यह जो तेरी युद्धरूप क्रिया है अरु तिसका जो परिणाम फलभोग है सो दोनों पर इच्छितहैं । अरु कामना अरु क्रिया यह परस्पर ओत प्रोत हैं, क्योंकि कामनाबिना क्रिया होवे नहीं, अरु क्रियाहै सो कामना को लखावती है, अरु यह दोनों अविद्या के आश्रय हैं, अरु सो अविद्या अनादि होनेसे तदाश्रित काम क्रिया भी अनादि है, त-थापि सर्व्वाधिष्ठान आत्मसत्ता के साक्षात् ज्ञानसे अविद्या अरु तदाश्रित सर्व काम कर्म्मादिकों का अभाव होताहै, ताते अवि-द्या अरु तिसका कार्य समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् असत्य है । अरु अज्ञानावस्था पर्यंत जे अनादि कालसे अनेक जन्मों के काम कर्म्मादिकों के संस्कार सो जब अपना फल भोगदेने के अर्थ सम्मुख होते हैं । तब वोही संचित से प्रारब्ध संज्ञाको प्राप्तहोय ' इच्छित ' अनिच्छित, अरु परेच्छित, इन तीनप्रकार

से प्रवृत्त होते हैं, ताते प्रारब्ध क्रिया भोग तीनप्रकार के हैं ॥
हे सौम्य तुम्हारी दृढ़ता के अर्थ पुनः कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, तहां प्रथम इच्छारूप क्रियाभोग श्रवण करो 'जैसे कोई एकरोगी पुरुषहै तिसको औषधकर्त्ता वैद्यने आज्ञाकिया कि तू कुपथ्य भोजन मतकरियो जो करेगा तो दुःख भोगेगा, सो यह आज्ञा वैद्यकी श्रवण करके भी वो रोगी पुरुष कुपथ्यकी इच्छाकर पुनः सोई भोजन करके दुःख भोगता है। सो कुपथ्य भोजनरूप क्रियाको वैद्यद्वारा क्लेशदायक जानके भी पुनः सोई कुपथ्य भोजन करना अरु दुःख भोगना, सो यहक्रिया अरु भोग दोनों स्वइच्छित प्रारब्ध है। तैसे चौर्यादि निषिद्ध कर्म्मोंके ताडनादि दुःखरूप फलको जानके भी तिस चौर्यादि कर्म्ममें प्रवृत्त होना अरु तिसके फल ताड़नादि दुःखोंको भोगना, सो यह सर्व क्रिया भोग स्वइच्छित प्रारब्धहै ॥ अब अनिच्छित कोभी श्रवण करो, हे सौम्य जैसे कोई एक पुरुष किसी ग्रामको जाताहै सो उसग्रामके मार्गपर चलते २ उसमार्ग को भूलके अन्यग्राम के मार्गपर चलने लगा तब उसमार्गविषे उसको कंटकादि चुभने से अति दुःखहुआ वा किसी उत्तम पदार्थ की प्राप्तिसे उसको हर्षहुआ 'सो उस पुरुषकी उसमार्ग में 'कि जिसपर भूलके चलता है, गमनकिया, अरु दुःख सुखकाभोग सो उस पुरुषको अनिच्छित क्रिया भोग है, क्योंकि उस पुरुषको उस मार्ग पर चलने की वा तिस मार्गजन्य सुख दुःख भोगने की पूर्व से इच्छा नहीं ॥ हे सौम्य अब परेच्छितको भी श्रवणकरो, हेप्रियदर्शन कोई एक निर्धनपुरुष अपने किसी प्रयोजनार्थ कहींको जातारहा किंवा कहीं बैठारहा तिसको अकस्मात् किसीराजकीय बलवान् पुरुषने अपने बन्धनमें कर अपना जो कुछ सामान(भार)था सो बलात्कार से उसके मस्तकपर धरके उसको ताड़नासहित अपनेअनुकूल मार्गपर चलावनेलगा। सो उसनिर्धन मनुष्यका उस राजकीय मनुष्यके वशहोय उसकेभारको उठावना उसकेअनुकूल मार्गपर

चलना, अरु उसकीकीहुई ताडनाके क्लेशको भोगना, सो सर्वक्रिया भोग उसकी परेच्छित है॥ हे सौम्य, अब इसपर वृद्धों की साक्ष्य श्रवणकरो जैसे अपनी सत्यवती माता के वशहुये व्यासदेवजीने राजापांडु, धृतराष्ट्र, अरु विदुर इनकी माताकेसाथ उनके संतानार्थ बिषय भोग किया सो व्यासदेवजी ने अपनी इच्छा पूर्वक नहीं किया किन्तु केवल अपनी माताकी आज्ञाकेवश होयके किया सो उनका परेच्छित प्रारब्ध क्रिया भोगहै ॥ हेसौम्य एकप्रारब्ध के तीन प्रकारके क्रियाभोग भेद तुमसेकहा, सो सर्वको समान भोक्तव्यहैं क्योंकि प्रारब्धकर्म बिना भोगे अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होतेनहीं । तिन तीनोंमेंसे आत्मज्ञानीको , इच्छित अरु अनिच्छित दोप्रकारकी प्रारब्धक्रिया भोग अभाव होजातेहैं। क्योंकि उस ज्ञानवान्को सर्व्वात्म भाव उदयहुआ है, तब वो इच्छा अनिच्छा कौनकीकरे, क्योंकि " । यत्रद्वैतमिवभवति तदितर इतरस्पश्यति " । इत्यादि प्रमाणसे इच्छा अनिच्छा द्वैतभाव प्रिय अप्रिय बस्तुबिषे होतीहै, अरु द्वैतभाव अविद्याके आश्रयहोता है, सो द्वैतभावका आश्रय अविद्या ज्ञानवानकी अभाव होतीहै ताते ज्ञानी बिषे इच्छा अनिच्छाका भी अभावहै । अरु एकलोक दृष्टया शरीरयात्रामात्र जो ज्ञानीबिषे भोजनादि क्रिया भासतीहै सो परेच्छित है, क्योंकि जो किसीने कुछ भोजन करायदिया तो करलिया वा किसीने वस्त्र ओढाया तो ओढलिया, अरु जोकोई तर्ककरे कि उस ज्ञानीके मुखमें ग्रास किसी अन्यने देदिया परन्तु उसको चबायके कंठके नीचे उदरमें उतारना यह जो क्रिया है सो तो ज्ञानवान् बिषे स्वइच्छित होनेसे उसको बन्धनका हेतु होगी, सो कहनाबने नहीं क्योंकि ज्ञानवानके बिषे जो शरीरकी स्थितिमात्रके अर्थ भोजन शौचादिक क्रियाहै सो निरभिमानता से होनेकरके बंधनका कारण होवेनहीं । तथाच " । शारीरंकेवलं कर्म्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् " । " । लिप्यतेनसपापेभ्योपद्मपत्रमिवांभसि " । " । नलिप्यते कर्म्मणा पापकेनेति " । इत्यादि प्रमाणों से

अरुवास्तव करके ज्ञानीके स्वरूपमें सो परोच्छितभी नहीं क्योंकि उसकी दृष्टिमें सर्व्वात्मभाव होनेसे स्वपरका भेदनहीं,उसको तो सर्व भेद भावसे रहित एक अपना आप आत्माही भासताहै "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म" "ब्रह्मैवेदं सर्व्वं," "आत्मैवेदंसर्वम्" "पुरुषएवेदंसर्व्वम्" "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे एक अद्वितीय आत्माही है, इतर रंचकमात्र भी नहीं। तातें ज्ञानीके विषे, संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध,तीनों प्रकारके कर्मोंका अभावहै। अरु जो लोकदृष्ट्या ज्ञानीविषेक्रिया भोग प्रत्यक्षदेखते हैं सो देहकेआश्रय इच्छा अनिच्छासेरहित साधारण आभासमात्रहै क्योंकि देहकाहोना प्रारब्धकर्म्म संस्कारके आश्रयहै तातें ज्ञानीका यावत्देहहै तावत्प्रारब्धहै यावत् प्रारब्धहै तावत् देहहै,इसप्रकार देह अरु प्रारब्धका व्यापार अन्योन्याश्रय है, एतदर्थ यावत् ज्ञानी का देह है तावत् देह सम्बंन्ध से ज्ञानीके विषे प्रारब्ध,क्रिया भोग भासतेहैं सो ज्ञानी के स्वरूप बिषे उपाधिकृत आभासमात्र मिथ्या है ज्ञानी के स्वरूप में प्रारब्ध क्रिया भोग नहीं। तातें प्रणवोपासक ज्ञानवान्के, संचित, आगामी, प्रारब्ध तीनों कर्म्मोंका अभावहोता है अर्थात् ॐकारके उपासक मुमुक्षु को तीनों प्रकारके कर्म्मरूप पापों से ॐकार शुद्धकरता है तातें ॐकार का नाम शुक्र है ॥ हे सौम्य अब और श्रवण करो, यह संचितादि तीनप्रकारके जे कर्म्म हैं सो देहाभिमानी अज्ञानी को सत्य हैं, अरु ज्ञानवान्के तीनों कर्म्म अभाव होजातेहैं, तहां संचितकर्म तो ज्ञान होतेही ज्ञानाग्नि करके नष्ट होजाते हैं, तातें उसको आगे पुनर्जन्म का अभाव होता है, जैसे कोई पुरुष अपने अन्न करके भरेहुये मन्दिर को भस्म करदे तब वो अग्नि करके दग्धहुये अन्नके दाने अपने अंकुर उपजावने को समर्थ होतेनहीं। तैसेही ज्ञानवान्का अन्तःकरणरूप मन्दिर संचितकर्मरूप अन्नके दानेसहित ज्ञानाग्निकरके दग्ध होजाताहै सो पुनः शरीररूप अंकुर उपजावनेको समर्थ होता नहीं। सोअन्तः-

करणका अभाव इसप्रकारहोताहै, जो ज्ञानवानका चित्तसत्पदको प्राप्तहोताहै। हे सौम्य जिसकरके असम्यक्ज्ञान दर्शनहोय, अर्थात् सत्यरूप आत्माबिषे असत्य बुद्धिहोय, अरु असत्य देहादिकों बिषे सत्यात्म बुद्धिहोय तिसका नाम असम्यक् ज्ञानदर्शन मन है, अरु अज्ञान, जीव, है। अरु जब आचार्य्यके उपदेशद्वारा सत्य आत्मानुभव विज्ञान होता है तब अज्ञानरूप जीव, मन, भाव नष्टहोजाताहै, तब केवल शुद्ध आत्मपद ज्योंकात्यों शेषरहताहै, तिसको चित्सत् कहते हैं। इसप्रकार जब चित्सत् पदको प्राप्त होताहै, तब अन्तःकरण जो है मनभाव सो संचित कर्म्मोंसहित, अन्नके मन्दिरवत्, नष्टहोजाता है तब पुनः सो देह उपजावनेको समर्थ होतानहीं॥ अरु जो क्रियमाण कर्म हैं सो ज्ञानीकेबिषे उपजतेही नहीं, क्योंकि क्रियमाण कर्म्म जो उपजते हैं सो अज्ञानके आश्रय अन्तःकरण बिषे उपजतेहैं, सो अन्तःकरण ज्ञानवानका सहित अज्ञान के नष्टहोता है, ताते वो ज्ञानवान् सदा अक्रिय आत्मपदबिषे प्राप्तहुआ है ताते, उसबिषे क्रियमाण (आगामी कर्म्म उपजतेनहीं। अरु ज्ञानीकी जीवन्मुक्त अवस्थाबिषे जो देह क्रिया दिखतीहै, सो देहके प्रारब्धसेहै सो सर्वको समान होतीहै, परन्तु सोई क्रिया जब अनात्म अहंकार पूर्वक होती है तब क्रियमाणभावको प्राप्तहोय पुनः संचित संज्ञाकोपाय अपना फल जे सुख दुःखादिक सो प्रारब्धरूपसे भोगावैहै, अरु नानाप्रकारके देव मनुष्य पशु तिर्य्यगादि उत्तम मध्यम निकृष्ट अधमादि देहोंको उपजावैहै। ताते देहाभिमानी अज्ञानीको उसकी साभिमानाक्रिया जन्मदायक होतीहै। अरु वोहीक्रिया जो पूर्वसंस्कार से प्रारब्धवशात् देहबिषे दीखती है सो जब अहंकार पूर्वक नहीं होती तब वो क्रियमाण संज्ञाको न प्राप्तहोनेसे संचित अरु प्रारब्ध इनभावको भी प्राप्तहोती नहीं क्योंकि क्रियाबन्धनका मूल अनात्म अभिमानही है, सो जिसका अज्ञान कारण सहित अभावहुआहै, तिसकी जो वर्त्तमान शरीरबिषे क्रिया है सो क्रिय-

माण, संचित, अरु प्रारब्ध, इन संज्ञाको प्राप्तहोय पुनः जन्मका कारण होतीनहीं । अरु देहकरके जो क्रिया होती है सो पूर्वजन्म के केवल प्रारब्ध संस्कारसे होती है " पूर्वसंस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत् " सो प्रारब्ध देहके साथहै सो देहके साथही नाशवान् होनहारहै । क्योंकि प्रारब्धके अभावसे देहका अभाव अरु देहके अभावसे प्रारब्धका अभाव यह अन्योन्य अनुमान सिद्धहै अरु प्रारब्ध अरु शरीर अन्योन्याश्रय दोषयुक्त होनेसे दोनोंही असत्य है । अतएव हेसौम्य ज्ञानवान् को क्रियमाण कर्मनहीं, क्यों जो ज्ञानवान् सर्व अनात्म अभिमानसे रहित अक्रिय आत्मपदको प्राप्तहुआ है, एतदर्थ ज्ञानवान्के शरीरकी क्रिया क्रियमाणभावको प्राप्तहोती नहीं ॥ जैसे भोजनरूप जो क्रिया है सो मानो पूर्व संस्कारजन्यप्रारब्ध जन्य क्रियाहै, सो क्रिया जब होती है तब वो नीरोगीपुरुषके देहविषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्त होतीहै, अरु वोही प्रारब्धजन्य भोजनक्रिया सरोगी पुरुषके देह विषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्तहोती नहीं । तैसेही जिज्ञासुपुरुष जब साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोगकरके युक्तहोता है तब उसके शरीरविषे प्रारब्ध जन्य क्रिया भोगदृष्ट आवते हैं, तथापि वो क्रिया क्रियमाणतारूप पुष्टताको प्राप्तहोती नहीं अरु जिस पुरुषको साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोगनहीं ऐसा जो नीरोगी अज्ञानी है तिसको प्रारब्धरूप क्रियासे क्रियमाण क्रिया उपजती है नीरोगीके भोजनवत् , यह वैधर्मीदृष्टान्त जानना, । अतएव हे सौम्य, उक्तप्रकार ज्ञानीपुरुष विषे संचित अरु क्रियमाण ये दोनों क्रियानहीं, अरु जो पूर्वके कर्मसंस्कारोंसे प्रारब्धजन्य क्रिया है सो क्रियमाणवत् भासती है परन्तु वास्तवकरके ज्ञानवान्के स्वरूपविषे सोभी नहीं देह के आश्रय प्रतीत होती है सो ज्ञानवान् अरु अज्ञानी दोनों को तुल्य है, परन्तु अज्ञानी तो तिसविषे अहंकारपूर्वक रागद्वेष सहित अपनेआप को अज्ञानवश हुआकर्त्ता भोक्ता माने है, तातें उसकी क्रिया, क्रियमाण, संचित, अरु प्रारब्ध,

इन तीनों संज्ञा को प्राप्त होय पुनः शरीरोत्पत्ति अरु सुख दुःख रूप भोगका कारण होती है । अरु ज्ञानवान् की शरीरक्रिया पूर्व के प्रारब्धवशात् होती है, परन्तु तिसबिषे ज्ञानवान् को अहंकार रागद्वेष कर्त्ता भोक्ता बुद्धि नहीं, ताते ज्ञानवान् की क्रिया पुनर्जन्म अरु सुखदुःखरूप भोगोंका कारण होती नहीं । ताते हे प्रियदर्शन ॐकार के उपासक ज्ञानवान् के संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों कर्म नाशकरके उसको उसका उपास्य ॐकार अपने लक्ष्य सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अक्रिय आत्मपदबिषे प्राप्तकरता है, अतएव ॐकार का नाम शुक्र है ॥ अथवा स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों शरीरों का अभिमानरूप पाप है तिसको भी नाशकरके अपने उपासकको शुद्धकरताहै एतदर्थ भी ॐकारका नाम शुक्रहै ॥ अथवा तीन जे त्रिपुटियां ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्यान ध्येय, कर्त्ता कर्म क्रिया, इत्यादिक हैं, तिन अज्ञान जन्य त्रिपुटियोंको नाशकरके अपने उपासकको ॐकार शुद्ध करताहै ताते ॐकारका नाम शुक्र है ॥ अथवा अज्ञान अनात्मा देहादिकोंके आश्रय जे बंधनका हेतु वर्णाश्रमका अभिमान अरुतिस के आश्रय कर्त्तृत्व भोक्तृत्व का अभिनिवेश, तिन रूपसबै पापोंसे अपने उपासक को मुक्त शुद्धकरके ॐकार अपने लक्ष्य परब्रह्म परमात्मपद को प्राप्तकरता है ताते ॐकारका नाम शुक्र है "यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्म्मुच्यत एवं हवैस पाप्मना विनिर्म्मुक्तः" इत्यादि ॥ हे सौम्य यह तुम्हारे प्रति ॐकार के षष्ठ शुक्रनामका अर्थ संक्षेपमात्र कहा तिसका बिचारकर शुद्ध होवो ६ ॥

अथ सप्तमनाम वैद्युत ७ ॥

हे सौम्य, अब ॐकार के सप्तम वैद्युतनाम का अर्थ संक्षेप मात्र श्रवणकरो । विद्युत नाम है प्रकाश का सो ॐकार अपने ज्ञानरूप प्रकाश करके अपने उपासक के अज्ञानरूप अंधकारको कि जिसके आश्रय बारम्बार जन्म मरणके महाभय का देने वा

संसाररूप असत्य सर्प अपनेआप शुद्ध अद्वैत जन्म मरण से रहित अज अविनाशी आत्माविषे, सत्य प्रतीत होता है, अभाव करके, अपनाआप रज्जुस्थानीय आत्मरूप पदार्थ ज्यों का त्यों प्रत्यक्षकर देखावता है "ज्ञानदीपेन भास्वता" इत्यादि प्रमाणसे ताते ॐकार का नाम विद्युत है ॥ अथवा ॐकार अपने उपासक को विद्युतवत् विशेष प्रकट दर्शनदे पुनः अपने सामान्यरूप को प्राप्तहोता है "यदेतद्विदुतोव्यद्युतदा" इत्यादि केनोपनिषद् के प्रमाणसे । एतदर्थ भी ॐकार का नाम विद्युत है ७ ॥

अथ अष्टमनाम हंस ८ ॥

हे सौम्य, अब ॐकारके अष्टम हंसनाम का अर्थ श्रवणकरो। हंसनाम सूर्य्यका है, जैसे सूर्य्य रात्रिको अरु तज्जन्य अंधकारको अरु तज्जन्य अभास को नाशकरता है। तैसेही ॐकाररूप सूर्य्य है तिसकी जो पुरुष, विचार ध्यान उच्चार जप आदि, क्रमसे उपासना करता है, तिस उपासक के अन्तःकरण में सूर्य्यवत् ज्ञानरूपसे उदयहोय, मूलाविद्या रूपारात्रि, अरु तदाश्रित तमोगुणरूप अन्धकार,अरु तदाश्रित स्वरूप का अनाभास, तिनको अभावकरके अपने लक्ष्य शुद्ध तुरीयरूप आत्माको प्रकाशता है। ताते ॐकार का नाम हंस है। तथाच "आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः" इत्यादि श्रुति के प्रमाणसे ॥ अथवा हंस उस पक्षीविशेषको भी कहते हैं कि जो मिश्रित हुये दुग्ध अरु जलको पृथक् २ करता है, तैसेही ॐकाररूप हंस अपने उपासक के हृदय की चिज्जडग्रंथी जो दुग्ध अरु जलवत् मिश्रित, है तिस चिज्जड ग्रंथी को खोलके चैतन्यरूप दुग्ध अरु जडरूप जल को पृथक् २ करके अपने उपासक को आत्मरूप दुग्धकी प्राप्तिकराय अजर अमर अभयपद को प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नामहंस है। तथाच "हंसः शुचिः" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे । अर्थात् ॐकार अपने उपासक की अविद्यारूपारात्रि अरु अनात्म जडरूप,

जलको नाशकरके स्वयंज्योतिःसर्व का परमसार नित्य निरंजन निर्विकार अपनेआप आत्मपद बिषे प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नाम हंस है ८॥

अथ नवमनाम तुरीय ९॥

हे सौम्य अब ॐकारके नवमनाम तुरीयका भी अर्थ श्रवण करो। हे प्रियदर्शन तुरीय उसको कहते हैं,जो सूक्ष्म स्थूल कारण, यह तीन शरीर, अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, यहतीन अवस्था, अरु विश्व तैजस प्राज्ञ, यह तीन अभिमानी,अरु स्थूल बिरल अरु आनन्द, यहतीन भोग्य, इत्यादिकोंका जो साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान अरु उक्त सर्बसे पृथक् है तिस निर्बिशेष चैतन्य आत्माका नाम तुरीयहै। अरु सोई त्रिमात्रिक बाचक ॐकारका लक्ष्य है अरु त्रिमात्रिक ॐकारके आलम्बनसे यही मुमुक्षुओं करके उपास्यदेवहै,अरु यही एक अद्वितीय सर्बका अपना आप प्रत्यगात्मा है, इसही के साक्षात् सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होती है। तिस अपने लक्ष्यरूप तुरीय आत्माकी प्राप्ति अपने उपासकको करायतीनों अवस्था रूप नामरूप क्रियात्मक असत्य संसार सागर से तार देता है, तातें ॐकारका नाम तुरीय कहते हैं ९॥

अथ दशम नाम परब्रह्म १०॥

हे सौम्य,अब ॐकारके दशम ब्रह्म नामका अर्थ श्रवणकरो। परा पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी, इनचारो बाचाकरके जो प्रकट होता है सो ॐकारका वाच्य शब्दमय ब्रह्म है। तहां परा उसको कहतेहैं,पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी,इनतीनोंकी समावस्था है वा सामान्य शब्दके उत्थानसे रहित केवल ध्वनिमात्र है। वा जहांसे पश्यन्ती का उत्थान होताहै, सो परावाचा है। अरु पश्यन्ति स्फुरणरूप तिसबिषे यह स्फुरण होताहै जो कुछ कहो, इसस्फुरणका नाम पश्यन्ती वाचा है। अरु जब वो स्फुरण निश्चयात्मक होता है कि अब यह कहोंही, तिसका नाम

मध्यमावाचा है। अरु उसही निश्चयसे करके होठजीभहिलाय के प्रकटकहा तव तिसको वैखरीवाचा कहते हैं। तिस वैखरी विषे चारोवेद षट्आदिशास्त्र अष्टादशादिस्मृति अष्टादशपुराण इतिहासादि जो विद्याहैं अरु नानाप्रकारकी नानादेशकी भाषा हैं, अरु नानाप्रकारके पशु पक्षी आदिकोंकी नानाभाषा हैं सो सर्व स्थूल रूप वैखरी विषे स्थितहै। तथाच "सर्वेषां वेदानां वागेकयनम्" "वाग्वैनामनो भूआसि" इत्यादिश्रुतिः। तहांसे स्वर वर्णात्मक शब्दरूपसे प्रकट होयहै, सो सर्व ॐकार का वाच्य शब्दब्रह्म है तहां वेदरूप शब्दमय ब्रह्मॐकार तिसकी उपासना। अध्ययन विचार रूपसे,करने करके शब्दमय ब्रह्मकरकेप्रतिपाद्यजे ॐकारका लक्ष्य निर्विशेष परब्रह्म परमात्मातिसकीअपनेआप आत्मत्वसे प्राप्तहोती है। तथाच "शब्दब्रह्मणि निष्णातःपरब्रह्माधिगच्छति" इति॥ ताते इसॐकारको परब्रह्म कहते हैं १०॥

इतिॐकारस्यदशनामअर्थविचारसमाप्तम्॥

अथ ॐकारके
क्रमशः सप्त सिद्धान्तों के मात्राक्रम ॥

प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धान्त क्रम १			
अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन मात्रा
ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	यह तीन ब्रह्म
अकार	उकार	मकार	यह तीन अक्षर
द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त क्रम २			
सत्त्वगुण	रजोगुण	तमोगुण	यह तीन गुण
व्यक्तज्ञान	अव्यक्तज्ञान	ज्ञेयज्ञान	यह तीन ज्ञान
मन	बुद्धि	अहंकार	यह तीन कारण
तृतीय अपान्तर मुनि सिद्धान्त क्रम ३			
गार्ह्यपत्याग्नि	आहवनीय.	दक्षिणाग्नि	यह तीन मुख
ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
धर्म्म	अर्थ	काम	यह तीन प्रयोजन
चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त क्रम ४			
भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल हैं
स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिंग हैं
बाह्यसंधी	संधयसंधी	क्रान्तसंधी	यह तीन संधी हैं
पंचम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त क्रम ५			
हृदय	कंठ	मूर्द्धा	यह तीन स्थान
बहिर्प्रज्ञा	अन्तरप्रज्ञा	घनप्रज्ञा	यह तीन प्रज्ञा
जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यहतीन पद हैं
षष्ठः पशुपति-शिव सिद्धान्त क्रम ६			
शान्त 'जाग्रत्'	घोर,स्वप्न,	मूढ़ ,सुषुप्ति,	यह तीन अवस्था
अन्न	जल	सोम	यह तीन भोग्य
अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन भोक्ता
सप्तम विष्णुपंचरात्र सिद्धान्त क्रम ७			
बल	वीर्य्य	तेज	यह तीन आत्मा
ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह तीन स्वभाव
संकर्षण	प्रद्युम्न	अनिरुद्ध	यह तीन व्यूह हैं

यह सप्तसिद्धान्त के मतसे एक ॐकारकी मात्राके ६३ भेदहैं ॥

अथ अन्य प्रकार से ॐकारकी मात्रादि विचार ॥

१	अकार	उकार	मकार	यह तीन मात्रा
२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन ऋषि
३	गायत्री	त्रिष्टुप्	बृहती	यह तीन छन्द
४	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
५	श्वेत	रक्त	कृष्ण	यह तीन वर्ण
६	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन अवस्था
७	भूः 'भूर्लोक'	भुवः 'पितृलोक'	स्वर 'स्वर्गलोक'	यह तीन व्याहृति वा लोक
८	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	यह तीन स्वर
९	ऋग्	यजु	साम	यह तीन वेद
१०	गार्ह्यपत्य	दक्षिणाग्नि	आहवनीय	यह तीन अग्नि
११	प्रातः	मध्याह्न	सायं	यह तीन संधिहैं
१२	भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल
१३	सत्त्व	रज	तम	यह तीन गुण
१४	उत्पत्ति	पालन	संहार	यह तीन क्रिया
१५	कर्म्म	उपासन	ज्ञान	यह तीन काण्ड
१६	विराट्	हिरण्यगर्भ	अव्याकृत	यह तीन शरीर
१७	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिंग
१८	होता	अध्वर्यु	उद्गाता	यह तीन ब्राह्मण
१९	ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह तीन स्वभाव
२०	वहिः	अन्तर	घन	यह तीन प्रज्ञा
२१	अन्न	जल	चन्द्रमा	यह तीन भोग
२२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन भोक्ता

हे सौम्य यह जो ॐकार का मात्राओं का भेद स्वरूप कहा है सो अकार उकार इन तीन मात्राओं का विस्तार है अरु समस्त जगत् इसके अवान्तरहै ताते ॐकार एवेदं सर्व्वम् इति ॥

अथरामगीताकेअनुसारमात्राओं कालयचिंतवन ॥

पूर्वंसमाधेरखिलंविचिन्तयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत्।तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचकोविभाव्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः १। ४८ ॥

हेसौम्य, अब परब्रह्मकी प्राप्ति में सर्व्वोत्तमजे प्रणवोपासन तिसकी मात्राओं के क्रमशःलय चिंतवन द्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी आत्मस्वभावसे जिसप्रकार साक्षात् प्राप्ति होती है सो प्रकार तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कहता हौं तिसको सावधान होयके श्रवण करो ॥ तहां प्रथम, श्लोकका अक्षरार्थ "समाधिसे पूर्व सम्पूर्ण जे चराचर जगत् [तिसको] ॐकार मात्रही चिंतवन करे निश्चय करके प्रणव (ॐकार) नामहै [अरु]सो(जगत्) ही नामी है [सो नाम नामीका भेद] अज्ञानवशात् है ज्ञानसे नहीं " हे प्रियदर्शन जो बिवेकी साधन सम्पन्न आत्मजिज्ञासु पुरुषहै सो निर्विकल्प समाधिके प्राप्तहोनेके पूर्व सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक ॐकारमात्रही चिन्तवनकरे। क्योंकि " ॐकारएवेदंसर्व्वम् " । यह सर्व ॐकारही है ऐसी श्रुतिकी आज्ञा है, ताते निश्चय करके प्रणव जो ॐकार सो नाम है अरु जगत्ही उसका वाच्यकहिये नामीहै। क्योंकि " तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यदिति सर्व ॐकारएव " इस मांडूक्यउपनिषद्की श्रुति प्रमाणसे। अर्थात् ॐकार नामहै अरु जगत् नामी है ताते निर्विकल्प समाधिके पूर्व (सविकल्प समाधि विषे) जगत्को ॐकार रूपही चिन्तवन करे, सो नाम नामीभी मुमुक्षुके समझावनेके अर्थ आचार्य्यों ने कहलिया है वास्तव करके तो नाम नामीका भी भेदनहीं जो भेद भासताहै सो अज्ञान वशसे भासताहै, सम्यक् ज्ञान होनेसे नाम नामीका भेदनहीं। अर्थात् जब

अकारसंज्ञःपुरुषोहिविश्वकोह्युकारकस्तैजसईर्य्यते क्रमात् । प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वंनतु तत्त्वतोभवेत् २ । ४९ ॥

वाच्यरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासक को उस उपासना के प्रभाव से लक्ष्यरूप अमात्रिक निर्विशेष निरुपाधि आत्मतत्त्वका साक्षात्काररूप अपरोक्ष सम्यक्ज्ञानहोताहै तब वृत्तिकेअभावसे, नाम, नामी, यहभी संज्ञा रहतीनहीं, केवल एक अद्वैत परमशांत शिव विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है " शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते स आत्मा स विज्ञेय " इत्यादि प्रमाणसे १ । ४८ ॥

हे सौम्य, यह जो वर्णात्मक ॐकारहै तिसके तीन अक्षर (मात्रा) हैं, तहां प्रथम अकार, द्वितीय उकार, तृतीय मकार, अरु इसका वाच्य जो जगत् है तिसके तीनपाद हैं, प्रथम स्थूल विराट्, द्वितीय सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, तृतीय कारण अव्याकृत, अरु क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन अभिमानी देवताहैं । अरु ॐकारका लक्ष्य जो प्रत्यगात्माहै तिसकी तीनमात्रा हैं, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, अरु इनके अभिमानी आत्माको क्रमसे, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, कहते हैं । अतएव, अक्षर, पद, मात्रा, इन तीनोंका एकही पर्य्यायहै ताते वाचक जे वर्णात्मक ॐकार तिसका जो वाच्य समष्टि व्यष्टि जगत् सो परस्पर अभेदहै एतदर्थही जाग्रदभिमानी बिश्व पुरुष अकार संज्ञकहै, तिसकी स्थूल विराडाभिमानी ब्रह्मा देवताके साथ एकताहै । अरु क्रमशःस्वप्नाभिमानी तैजसको उकार ऐसाकहतेहैं, तिसकी सूक्ष्माभिमानी हिरण्यगर्भ विष्णुदेवता के साथ एकता है । अरु सम्पूर्ण ज्ञानवान् प्राज्ञको मकार कहते हैं, अर्थात् सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञकी अरु अव्याकृताभिमानी रुद्रकी मकार मात्राके साथ एकता है । सो यह सर्व निर्विकल्प समाधि के पूर्व हैं । अर्थात् मुमुक्षुपुरुषको यावत् अमात्रिक सर्व्वाधिष्ठान निर्विशेष आत्मस्थिति को प्राप्तहोने रूप

विश्वंत्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधाव्यवस्थितम्। ततोमकारे प्रविलाप्यतैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्यचान्तिमे ३ ॥ ५० ॥

निर्विकल्पसमाधि न प्राप्तहोय तावत् उक्तप्रकार चिन्तवन कर्त्तव्य है, अरु जब तिसविचारसे निर्विकल्प आत्मस्थितिको प्राप्तहोवे तब नहीं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण, ब्रह्मा बिष्णु रुद्र, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, बिश्व तैजस प्राज्ञ,अकार उकार मकार,इत्यादि विशेषता का भेद भाव रंचकमात्र भी रहता है नहीं, किन्तु सैंधव लवणवत् एक विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशताहै २ । ४६ ॥

हे सौम्य,इस श्लोक का उत्तर श्लोक से अन्वयहै ताते इन दोनों श्लोकों का मिश्रित अक्षरार्थ कहते हैं। बहुत प्रकार से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुषकोतो उकारमें लयकरे तदनन्तर प्रणवका द्वितीयवर्ण तैजस संज्ञक (उकारको) पिछले अक्षर मकार बिषे लयकरे ॥ तदनन्तर पुनः प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इसपर चैतन्यघन आत्माबिषे विलीनकरे [तदनन्तर] सोमैं सर्वकाल नित्य मुक्त विज्ञान दृष्टि उपाधिसे रहित निर्मल परब्रह्म हौं [ऐसी निश्चय भावनाकरे] ॥ हे प्रियदर्शन, जो बुद्धिमान् साधन सम्पन्न मुमुक्षु पुरुष है सो आत्मदेवकी प्राप्ति के अर्थ यह बिचारकरे कि अनेकप्रकार नानारूपसे स्थित विश्व संज्ञक अकार पुरुष को उकार बिषे लीनकरे। तदनन्तर ॐकार का द्वितिय अक्षर जो सूक्ष्म तैजस संज्ञक उकार तिसको भी (कि जिसबिषे प्रथम विश्व अकार पुरुषको लीनकिया है) प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार बिषे लीनकरे । पुनः तिसके अनन्तर प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार कोभी इस सर्वसेपर चैतन्य घनआत्मा बिषे लीनकरे इस प्रकार मात्राओं के लय चिन्तवनके अनन्तर, सो सर्वाधिष्ठान कि जिसविषे उक्त समष्टि व्यष्टिस्थूल सूक्ष्मसर्व प्रपंचमात्रा अध्यस्त (अविद्या करके कल्पित)है, सो मैं सर्वकाल

नित्यमुक्त सर्वज्ञ विज्ञान दृष्टि सर्व उपाधिसे रहित शुद्धनिर्मल प्रकृतिसे पर साक्षात् निर्विशेष ब्रह्महो ॥ तथाच ॥ " अयमात्मा ब्रह्म " शुद्धमपापविद्धम् " " शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते सआत्मा सविज्ञेय " " सआत्मा तत्त्वमसि " " अहंब्रह्मास्मीति " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे अहंब्रह्म भावनाविषे प्रत्याहृढकरके सर्व उपाधिके अभावसे निर्विकार निराकार अपने आप आत्मा को प्राप्तहोवे ॥— ॥ हे सौम्य यह कही जो मात्राओं की लीनता तिसको व्यष्टि समष्टि की एकतासे पुनः सविस्तर कहते हैं, हे प्रियदर्शन प्रथम कहा कि अकार जो प्रथम मात्रा है तिसको उकार रूप द्वितीय मात्राविषे लयकरे, तिसका अर्थ यह है जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है अरु विश्व तिसका अभिमानी है, तिसको वैश्वानर भी कहते हैं, अरु ब्रह्मा इसका देवता है, अरु सत्त्वगुणहै । ऐसी जो प्रथम अकार मात्राहै तिसको उकारसूक्ष्म तैजसरूपजानो । अर्थात् जाग्रत् जगत्को सूक्ष्मस्वप्नरूपजानो, क्योंकि स्वप्नही अपने तीव्र संवेगकरके जाग्रत्रूपहो भासताहै जैसेस्वप्नमें सोयाहुआ पुरुष स्वप्नकोदेखता तिसके तीव्रसंवेगसेही विनाजाग्रत्के प्राप्तहुये उठके चल देता है, अरु भूत संज्ञाको प्राप्तहुये जाग्रत् अरु स्वप्नकी स्मृतिमात्र तुल्यहै ताते जाग्रत् जगत् को स्वप्नरूप जानो । अरु स्थूल जाग्रदभिमानीको सूक्ष्म स्वप्नाभिमानी तैजस का स्वरूपजानो क्योंकि जैसे स्वप्नतीव्र संवेग करके जाग्रत्रूपहो भासताहै तैसे तिसस्वप्नका अभिमानी जाग्रत्का अभिमानीहो भासताहै ताते । अरु ब्रह्मा जो स्थूल जाग्रत् जगत्का देवताहै तिसको सूक्ष्मस्वप्न जगत्का देवता जो विष्णु है तिसही का रूप जानो क्योंकि सूक्ष्मसेस्थूल अरु विष्णुसे ब्रह्माफुरे हैं । अर्थात् यह जो स्थूलजाग्रत् जगत्है सो सूक्ष्मस्वप्नरूपहै।अरुजाग्रदभिमानी विश्वको स्वप्नाभिमानी तैजसरूपजानो अरु ब्रह्माको विष्णुरूप जानो । इसप्रकारके चिन्तवनसे प्रथम अकारमात्राको द्वितीय उकार मात्रा विषे लयकरो । अरु यह जो उकार सूक्ष्म

मात्राहै कि जिसबिषे स्थूल अकार मात्रा लीनहुई है उस उकार मात्राको मकार मात्रा बिषे लीनकरो अर्थात् सूक्ष्म स्वप्न जगत् को सुषुप्तिरूपजानो, अरु स्वप्नाभिमानी तैजसको सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञरूप जानो, अरु विष्णु जो सूक्ष्मका देवता है तिसको कारणका देवता रुद्ररूप जानो। अर्थात् स्वप्न सुषुप्तिरूपही है, अरु तैजस प्राज्ञरूप है, अरु विष्णुरुद्र रूपहै। इस प्रकारके चिन्तवनसे सूक्ष्म उकार को कारण मकार बिषे लीनकरे। अब कारण मकार जो तृतीय मात्रा है तिसको भी अमात्रिक रूप परमात्मा बिषे लयकरो। अर्थात् सर्व परमात्म रूपही जानो। तथाच "। सर्व्वं खल्विदंब्रह्म"। "। ॐकार एवेदंसर्वं"। "। ब्रह्मैवेदं सर्वं"। "। पुरुषएवेदंसर्वम्"। "। आत्मैवेदं सर्व्वम्"। "। अहमेवेदं सर्वम्"। "। वासुदेवः सर्वमिति"। "। मत्तः परतरन्नान्यत् किंचिदस्ति" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणसे यह सर्व अध्यस्तप्रपंच अपना अधिष्टान परमात्म स्वरूपही है क्योंकि अध्यस्तकी अधिष्ठानसे प्रथक्सत्ताका अभावहै। अर्थात् यह जाग्रत्रूप स्थूल जगत् संयुक्त स्थूल शरीर अरु विश्व इसका अभिमानी अरु ब्रह्मादेवता, इन सर्वको सूक्ष्मउकारबिषे लीनकरो तहां इसप्रकार जानो जो उकार रूप सूक्ष्म स्वप्न सम्पूर्णलिंग शरीरोंका अभिमानी तैजस विष्णुदेव हिरण्यगर्भ है तिससे सम्पूर्ण स्थूलशरीर विराट् पुरुष ब्रह्मादेवता जाग्रदवस्था फुरीहै ताते यहसर्व वोहीरूपहै। इसप्रकार के विचारसे अकारमात्रा स्थूलजगत्को सूक्ष्म उकार रूपजानो॥ अरु जो सूक्ष्म उकार मात्राहै, तिसको कारण मकार मात्रारूप जानो। अर्थात् सर्व कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था अरु तिसका अभिमानी प्राज्ञ, अरु रुद्र देवता सर्वका कारण अव्याकृत तिससे सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था तिसका अभिमानी तैजस तिन सर्वकी समष्टिताका अभिमानी जो हिरण्यगर्भ सो फुरा है। तथाच। "। अव्याकृत वा इदमग्रआसीत्"। "। हिरण्यगर्भो जायमानः"। इन श्रुति वाक्योंकी ऐक्यतासे। ताते स्थूल सूक्ष्म सर्व कार्य्य, कारण

श्वर आदिक जे नाम हैं सो गुणों के सम्बन्ध करके गौणहैं । अरु भानु जो नाम है सो मुख्य स्वाभाविकनाम है । अथवा देवदत्त विषे जे, पिता पुत्र भ्राता आदिक नाम हैं सो गौण हैं, अर्थात् गुणं सम्बन्धसे कल्पित हैं, अरु पुरुष जो नामहै सो स्वाभाविक मुख्य नामहै । तैसेही परमात्माका जो ॐकारनाम है सो मुख्य नाम है, ताते ॐकारकी जो उपासना है सो प्रतीकोपासनाकी रीतिसे त्रिमात्रिक वाच्य की अरु अहमग्रे उपासना की रीतिसे अमात्रिक लक्ष्य परमात्माकी मुख्योपासना है, अतएव सर्व उपासनाओं में श्रेष्ठ एक प्रणवोपासना है अन्य नहीं । सो ॐकार ब्रह्मरूप है, तहां एक अपर त्रिमात्रिक शब्द ब्रह्म है एकपरब्रह्म है । तहां जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों करके जानने बिषे आवता है, अर्थात् जो मन इन्द्रियादिकों का विषय है सो सर्व अर्थरूप होनेसे शब्द ब्रह्मके अन्तर्गत है क्योंकि किसी शब्दका अर्थरूपही है अरु सोई ॐकारका वाच्य है । अरु जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का विषयन होत सन्ते सर्वका प्रकाशक साक्षी विज्ञानघन चैतन्य आत्माहै सोई ॐकारकालक्ष्य परब्रह्महै, तिस लक्ष्य रूपकी जो उपासनाहै सो निरालम्ब न होनेसे वाच्यरूप ॐकारके आलम्बनसे होती है । जैसे मनकी वा जीवात्मा की जो सन्तुष्टता प्रसन्नता होती है सो शरीरके लालन पालनरूप आलम्बनद्वाराही होती है तैसे । अतएव जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुष अपने आप सत्यस्वरूप आत्मदेव की प्राप्तिके अर्थ ॐकारकी उपासनाकरे, यही उपासना सर्ववेदोंने कही है । तथाच " सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्व्वाणिच यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योम् " " ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ मुपासीत " इत्यादिक अनेक श्रुतियों ने मुमुक्षु के मोक्षार्थ एक प्रणवोपासनाही मुख्य करके कहा है, अतएव मोक्षार्थी को अपने मोक्षार्थ एक ॐकारोपासना को आलम्बन करना श्रेयहै । तथाच " एतदालम्बनंश्रेष्ठ मेतदालम्बनंपरम्,

एतदालम्बनंज्ञात्वाब्रह्मलोकेमहीयते " इत्यादिश्रुतिप्रमाणसे। अरु मुमुक्षुके प्रयोजनार्थ यह प्रणवोपासनाही सबसे मुख्य है और नहीं,एतदर्थ हे प्रियदर्शनजो तुमको मोक्षहोने की इच्छाहै तो उक्त प्रकार प्रणवोपासनाकरो, अरु यह जो रामगीता के ४८,४९,५०,५१, इनचारश्लोक करके प्रणवोपासना तुम्हारे प्रतिकहाहै सोश्रीभगवान् रामचन्द्रजीने अपने प्रियभ्राता जिज्ञासु लक्ष्मणजी प्रतिकहाहै,अरुयह मांडूक्यउपनिषद्के अनुसारही कहा है, तातें श्रुति स्मृति पुराणादिकों के प्रमाणसे मुमुक्षुको परमश्रेय (मोक्ष) प्राप्तिके अर्थ एकप्रणवोपासनाको ही यथाशास्त्र आलम्बन करना योग्यहै, आगे,, यथेच्छासितथा कुरु "

शिष्यउवाच ॥ हे कृपासागर हे गुरो आपने जो मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्तिके अर्थ सर्व्वोत्तम आलम्बनरूप प्रणवोपासना कही सो निर्विकल्प समाधि (आत्मरूपस्थिति) से पूर्व मुमुक्षु करके अवश्यही कर्त्तव्य है, अतएव अब आप कृपाकरके इस प्रणवोपासना का क्रम कृपाकरके कहिये ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ॐकार जो एक अक्षर है तिसका जपकरना अरु इसके अर्थकी भावना करनी। तथाच "तज्जपंतदर्थभावनम् " यह पातंजल शास्त्रके प्रथम पाद का २८ वां सूत्र है तिसके प्रमाण से ,ॐ, इस अक्षर का जप अरु इसके अर्थ की भावना करनी तिसका नाम उपासना है। अब तिसका प्रकार सावधान होय के श्रवण करो। ॐकार नाम है परमेश्वर का तिसका जपकरना तहां कोई पुरुष तो ,ओम्, ओम्, ओम्, इसप्रकार सहित स्वरके उच्चार करते हैं, अरु कोई एकपुरुष होठ अरु जिह्वा को न हिलायके इसका मनोमय जप करते हैं, अरु कोई एक पुरुष प्राणायामद्वारा जपकरते हैं, सो प्राणायाम इस प्रकारते हैं कि प्रथम पूरक, अर्थात् मुख बन्दकरके नासिका के बामछिद्र को दक्षिणहाथ की मध्यमा अरु अनामिका ये दोनोंअंगुलीसों दबाय नासिका के दक्षिण छिद्रके मार्ग बाहरसे अन्तर को

खींचना इसका नाम पूरक है। पश्चात् उस छिद्र कोभी अँगुठा सों दवाय बन्दकर प्राण को अन्तर रोकना तिसका नाम कुंभक है, अरु जब प्राण न रुके तब नासिका का बामछिद्र खोल उस मार्ग से धीरेधीरे प्राण को बाहर छोडना, इसका नाम रेचक है तहां प्राण का जो पूरक है तिसविषे ॐकार का ३२ वार मनोमय उच्चार करना, अरु कुंभकविषे ॐकार का ६४ वार उच्चार करना, अरु रेचकविषे १६ वार ॐकार का उच्चार करना। इस प्रकार एकवार पूरक कुंभक रेचक करने से एक प्राणायाम होता है। सो इसप्रकारके प्राणायाम जितने होयसकें तेतने करना इनके अभ्यास करने से प्राणवायु बश अरु पापों का नाश होता है, एतदर्थं कोई एक पुरुष उक्तप्रकार के प्राणायामोंद्वारा ॐकार का जपकरते हैं। अरु कोई एक पुरुष इसप्रकार भी करते हैं कि ॐकारकी जो, अकार, उकार, मकार, यह तीनमात्राहैं तिनको क्रमशः, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, रूप स्वरसहित ॐकारकाउच्चारकरते हैं, सो मूलाधारसे मस्तकके ब्रह्मरंध्र पर्यन्त ध्वनिको प्राप्तहोते हैं। इत्यादि अनेकप्रकार प्रवणके जपके हैं, तिनमें से जिसप्रकार अपनेसे श्रद्धासहित होताजाने तिसप्रकार करे। यह तो ॐकारके जपकरनेका क्रम संक्षेपमात्र तुमसेकहा॥ अब इस ॐकारके अर्थकी भावना भी श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन, ॐकारके अर्थकी जोभावना करनी है सो दो प्रकार की है तहां एक सगुण वाच्यरूप अरु द्वितीय निर्गुण लक्ष्यरूप, तहां जो सप्त सिद्धान्तकारोंके मतसे ६३ तिरसठ नामरूप भेद करके कही है सो 'अरु ॐकारके मात्रा ऋषि छन्द देवता आदि ६६ छियासठ भेदसे कही है सो। अथवा जो एक मात्रासेलेके, ३८, ४९, ५२, ६३, ६४, मात्रा पर्य्यंत कही है सो, । इन तीनों प्रकार से जो ॐकारब्रह्म के अर्थ की भावना कही है सो ॐकारके वाच्य सगुण ब्रह्म की भावना है। अरु ॐकारके लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म की भावना प्रणवोपासक इस प्रकार करते हैं कि जिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं

तिस त्रिमात्रिक अपरब्रह्मरूप प्रणव शब्दका वाच्य तिसका जो ज्ञाता प्रकाशक साक्षी सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूपलक्षणवान् परब्रह्म आत्माहै, सोई सर्वत्र सर्व, अस्ति, भाति, प्रियरूप होके व्याप्त होरहा है, तहां अस्ति कहिये, यह है, यह है, यह है, इसप्रकारसे है है है यह अस्ति सत्तारूप जो व्याप्त होरही है, अरु जोकि यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं, इसप्रकार सर्व निषेध के अन्तमें निषेध के भावका प्रकाशक कि जिस करके अस्ति नास्ति सिद्ध होते हैं, अरु अस्ति नास्ति शब्दके अर्थके अनुभवका आश्रय कि जिसबिषे अनुभव होता है। अरु जो अस्ति नास्ति भावनारूप कल्पना का आश्रय आदि अन्त अवशेष है अरु अस्ति नास्ति आदिक कल्पना का अधिष्ठान परम अस्ति रूप सत्ता है, सोई अपने पूर्वोक्त स्वभाव करके अस्ति नास्ति भावाभाव रूप का आश्रय हुआ सुशोभितहै ताते वोही सर्वाधिष्ठान सत्ता सर्वरूप से सुशोभित है॥ अरु भाति कहिये जो प्रकाशता है। अर्थात् जो पदार्थ भासता है सो भातिरूपरू है, क्योंकि एक दूसरेको प्रकाशता है, जैसे अन्धकार के अभावको प्रकाश प्रकाशता है, अथवा रात्रिके अभावको दिवस प्रकाशता है जो इससमय रात्रि वा अन्धकार का अभावहै। अरु दिवस किंवा प्रकाश में रात्रि किंवा अन्धकार का अभाव है, सो दिवस किंवा प्रकाश में जो अपने अभावरूपसे रात्रि किंवा प्रकाश सो अपने अभावरूपसे दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाशे है, क्योंकि जो कदापि उस दिवस किंवा प्रकाशके भावकालमें रात्रि किंवा अन्धकारका अभावरूप अस्तित्व न होता तो इसकालमें दिवस किंवा प्रकाश है, इस प्रकार दिवस किंवा प्रकाश के अस्तित्वको प्रकाशता कौन। ताते अभाव रूप हुये रात्रि किंवा प्रकाश, सो दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाशते हैं॥ अथवा दीपक जो प्रकाशरूप है सो अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ सो आप अप्रकाश रूपहोतसन्ते भी प्रकाश रूप

दीपकको वा दीपककी प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इसप्रकार दीपककी प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधारसे सिद्ध होती अतएव अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ दीपककी प्रकाशरूपताको प्रकाशे है ॥ हे प्रियदर्शन उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्तिमात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप से सुशोभित है । तथाच "। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति "। अरु प्रिय कहते हैं आनन्द को, क्योंकि सब को आनन्दही प्रिय है, सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्तहै अतएव सर्वही आनन्द रूपहै । ताते जो कछु कर्त्तव्य अकर्त्तव्य गुण दोष पाप पुण्य राग द्वेष ग्रहण त्याग, इत्यादिहै सो सर्व आनन्द रूपहीहै क्योंकि जिसमें जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्दके अर्थही करताहै । अरु जोकोई जोकुछकरता है उसको उसहीमें आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे । अरु जो जिस आनन्दके अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करते हैं सो आपही परमानन्द रूप है, अरु सोई सर्व्वानन्द हुआ है । तथाच । "आनन्दाद्ध्येवखल्विमानिभूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुवल्लीकी श्रुतिप्रमाणसे। अतएव जहां है जोहैसो सर्व्वआनन्दही है ॥ इसप्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्व्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्मही इसप्रकार अस्ति भातिप्रियरूप होकर सुशोभित होरहाहै। ताते ॐकार एवेदंसर्वम् "। "सर्व्वं खल्विदंब्रह्म "। "। नेहनानास्ति किंचन। सर्व्व ॐकार ब्रह्महीं है तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं। इसप्रकार ॐकार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्मकी भावनारूप उपासना करतेहैं, भावना कहिये सोहंभावसे निदिध्यासन करते हैं ॥ हे

प्रियदर्शन उक्तप्रकार ॐकार का जप अरु तिसके अर्थकी भावना करनी, जो प्रत्यक् चैतन्य सर्वका अन्तर्यामि सर्व अवस्थाका साक्षी अखंड अज अविनाश चैतन्य ब्रह्म सो मैंहौं, इसप्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय बिघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं। तथाच "ततःप्रत्यक् चैतन्याधिगमोप्यंतरायाभावश्च" यह पातंजल शास्त्र के प्रथमपाद का २९सूत्र प्रमाण है॥

शिष्यउवाच॥ वो निर्विकल्प समाधि में विघ्नकरनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये॥

श्रीगुरुरुवाच॥ हे प्रियदर्शन अन्तराय विघ्नोंके नाम अरु स्वरूप पातंजलशास्त्र के, ३०, ३१, दो सूत्रों करके कहेहैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवणकरो "व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः। ३० दुःख दौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेप सह भुवः। ३१। ,व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व। दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास, ॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरबिघ्न समाधिमें चित्त को विक्षेप करने वाले हैं। अब इनके स्वरूप श्रवणकरो ,व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अन्नरस धातु है सो ,कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से बिगडता है तब उस धातु के बिषम होने से ज्वरादि व्याधि होती है तिसका नाम व्याधि है १। अरु,स्त्यान,उसको कहते हैं जो चित्तको अकर्मण्यताहै, अर्थात् शुभकर्म ,प्राणायामादि, बिषे चित्तका न प्रवर्तहोना तिसका नाम ,स्त्यान, है २। अरु ,संशय, उसको कहते हैं जो ईश्वर है या नहीं अरु जो है तो ज्ञानयोग से साध्य है वा नहीं ,अर्थात् ज्ञानयोगाभ्यास से सो प्राप्तहोना है वा नहीं, इसप्रकार की जो भावना तिसका नाम संशय है ३। अरु ,प्रमाद, उसको कहते हैं कि समाधि के यम नियमादि सा-

धनोंविषे चित्त को उदासीनता होनी, तिसका नाम प्रमाद है४। अरु आलस्य, उसको कहते हैं कि जो देह अरु चित्त का गुरुत्वभाव होना, अर्थात् देह अरु चित्तका जो जड़वत् होरहना है सो ज्ञान में प्रवृत्ति के अभावका कारण है अतएव तिसको आलस्य कहते हैं,५। अरु अविरति उसको कहते हैं जो बिषयों के संयोगसे भोगकी इच्छाका होना, तिसका नाम अविरति है ६। अरु भ्रान्तिदर्शन, उसको कहते हैं कि जो बिपर्यय ज्ञानदर्शन है अर्थात् जैसे सीपिविषे रूपे का भासना, तैसेही शुद्ध निष्क्रियादि लक्षणवान् आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनात्म धर्म्मका भासना, तिसका नाम भ्रान्तिदर्शन है ७। अरु अलब्धभूमिकत्व, उसको कहते हैं कि जो ज्ञानकी शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमांसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावनि, अरु तुरीया, यह सप्तभूमिका कही हैं तिनमें से कोई भी भूमिका, अरु योगकी जो चित्त को निरोधतारूपी एकाग्रता सो किसी बिक्षेप के निमित्त से न प्राप्तहोनी तिसकानाम अलब्ध भूमिकत्वहै ८। अरु अनवस्थितत्व, उसको कहते हैं जो ज्ञानकी उक्त भूमिका में से कोई एक प्राप्तहुई भूमिकाविषे भी चित्तकी स्थिरता न होनी तिसकानाम अनवस्थितत्वहै, ९। हेसौम्य इस कहेप्रकार नवअन्तरायविघ्नहैं अरु इनकेहोनेसे पांच और होते हैं तिनकोभी श्रवणकरो। दुःख, उसको कहते हैं कि जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, यह जो तीनप्रकारके दुःखहैं तिनकानाम दुःखहै १०। अरु दौर्मनस्य, उसको कहते हैं कि जो अन्तर बाह्यके कोईभी कारणों करके चित्तकी विक्षेपता, अर्थात् चित्तकी असमाधानता, तिसका नाम दौर्मनस्यहै ११। अरु अंगमेजयत्व, उसकोकहते हैं कि जो रोगादिकोंसे शरीरकाकांपनाहै १२।अरु श्वास, उसको कहते हैं जो प्राणका शीघ्र शीघ्र चलना वा मुखनासिकाके मार्ग बाह्यका जानाहै, तिसकानाम श्वासहै १३।अरु प्रश्वास, उसको कहतेहैं जो प्राणका बाह्यसे अन्तर आवनाहै, तिसका नाम प्रश्वास है॥

हे सौम्य, यह जो १४ चतुर्दश बिघ्न कहे हैं सो चित्तको बिक्षेप करके आत्मलाभार्थ जे समाधि तिसबिषे बिघ्नके कर्त्ता हैं "तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः" तिसकी निवृत्तिके अर्थ एकत्वका अभ्यासकरे, अर्थात् उक्त बिघ्नों के अभावकरने के अर्थ अरु आत्मदेवकी साक्षात् प्राप्तिके अर्थ ॐकार ब्रह्म के अर्थ भावना अरु जप निर्जन एकान्त पवित्र देशबिषे स्थितहोय यम नियमादि योगांग साधन पूर्वक करे। जे कोई ॐकारके वाच्य की उपासना करते हैं, अर्थात् त्रिमात्रिक प्रणवोपासना करते हैं, तिनके जे निर्विकल्प समाधि में विक्षेपकर्त्ता बिघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं, अरु वो उपासक समाधि विचारद्वारा सर्व बन्धनों से रहितहुआ अपनेआप चैतन्य स्वरूप आत्मा ब्रह्ममेंअभेद स्थिति पाय मोक्ष होताहै॥

हे सौम्य, यहजो त्रिमात्रिक ॐकार का लक्ष्य आत्माहै तिसको सर्व उपनिषद् चिन्मात्र ब्रह्मकरके कहते हैं "अयमात्माब्रह्म" जो मन बुद्धि इन्द्रियादि कों का अविषय है तिसको, नेति नेति, इत्यादि श्रुतिके निषेध मुख वाक्यों करके सर्व विशेषताके अभावसे निर्विशेष सर्वका अपना आप लक्ष्य करावे हैं, अतएव यही चैतन्य आत्मा अक्षर ब्रह्महै। अरु इसही को वृहदारण्यक उपनिषद्बिषे भगवान् याज्ञवल्क्यजीने गार्गिके प्रति निर्विशेष अक्षरब्रह्म कहा है। तथाच। सहोवाचैतदक्षरं गार्गिब्राह्मणाअभिवदन्त्यस्थूलमनण्व ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमरसमगंधमचक्षुमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं नतदश्नाति किञ्चन नतदश्नाति कश्चन" अर्थ याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गार्गी जिसके बिषे तूप्रश्न करती है तिसको ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अक्षरकहते हैं। प्रश्न। हे याज्ञवल्क्य उस वचनातीत को ब्राह्मण अक्षरकैसे कहते हैं वो तो वाणीआदिक किसीका भी बिषय नहीं। उत्तर। हे गार्गी उसको ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि वो स्थूल नहीं अस्थूल

है, तो सूक्ष्म होगा, वो असूक्ष्म है, तो छोटाहोगा, वा अहूस्वहै, तो दीर्घहोगा, वो अदीर्घ है इसप्रकार वो द्रव्योंके धर्मसे रहित अद्रव्य है । 'तो वो लोहित गुणवान्होवेगा, वो अग्नि आदिकोंके लोहितादि गुण रहित है ताते अलोहित है 'तो वो स्नेहादिक जलकेधर्मवाला होगा, वो जलके स्नेहादि धर्म रहित अस्नेह है 'तो वो छायाहोगा, वो अछाया है 'तो वो तमहोगा, वो अतम है 'तो वो वायुहोगा, वो अवायु है 'तो वो आकाशहोगा, वोअना-काश है 'तो वो सर्वका संघातहोगा, वो असंग है 'तो वो रस होगा, वो अरसहै 'तो वो गंधहोगा 'तो वो अगंधहै 'तो वो चक्षुष्मान्होगा, वो अचक्षुहै 'तो वो श्रोत्रहोगा, वो अश्रोत्र है 'तोवो वागहोगा, वो अवागहै 'तो वो मनहोगा, वो अमन है 'तो वोतेज होगा, वो अतेजहै 'तो वो प्राणहोगा, वो अप्राणहै 'तो वो मुखादिद्वार होगा, वो द्वाररहित अमुखहै 'तोवो मात्राहोगा, वो अमात्र है, तो वो अन्तरहोगा, वो अनन्तर है 'तो वो बाह्य होगा, वो अबाह्यहै, अर्थात् वो न भोग्य है न भोक्ताहै, सर्व विशेषणों से रहित निर्विशेषहै । हे गार्गी इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने उस को निषेध मुख करके कहाहै क्यों कि वो सर्वके निषेधकी अवधिहै ताते "साकाष्ठासापरागतिम्" सो इन विशेष सत्ता पराकाष्ठा अरु मुमुक्षुओंकी परागति है ॥ हे सौम्य ऐसाजो परम अक्षर है सोईवर्णात्मक ॐकाररूप अक्षरका लक्ष्य परब्रह्म है, अरु सोई अक्षर सर्वका अन्तरात्मा होयके सर्वका प्रेरकहै, उसहीकी आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदिक अपनेअपने व्यापारमें नियमपूर्वक प्रवर्त्त होरहे हैं उसअक्षर की जैसी जिसको आज्ञा है सो तैसेही करता है, अरु सोई सर्व का नियामक स्वामी है अतएव उसके किये नियमसे बाह्य वर्त्तने को कोई भी समर्थनहीं । तथाच "एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतएतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिद्यावापृथिव्यांविधृतौतिष्ठतः ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिनिमेषा मुहूर्त्ता अहो-

रात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराइति विधृतास्तिष्ठन्त्ये तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां यांश्च दिश मन्वेति॥एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्तियजमानंदेवा दर्वीपितरोऽन्वायत्ताः॥ इत्यादि॥हे सौम्य उक्त प्रकार जो सूर्य्यादि सर्वका नियामक प्रेरक स्वामी सर्वाधिष्ठान परम अक्षर ॐकारक लक्ष्यहै तिसकात्रिमात्रिक ॐकार प्रतीक अरु वाचक है अतएव त्रिमात्रिक प्रणवके आलम्बन से जो उस लक्ष्यरूप परम अक्षरकी अभेद अहमग्रे उपासना करताहै सोई ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणहै अरु सोई मोक्षको प्राप्तहोता है॥

शिष्यउवाच॥ हे गुरो हे भगवन् जिस अक्षरका आप ऐसा प्रभाव अरु प्रताप कहतेहो। तिसको हम प्रत्यक्ष कैसे जानें सो आप कृपाकर आज्ञा करिये॥

गुरुरुवाच॥ हेप्रियदर्शन ऐसा प्रश्न क्यों करतेहो वो तो सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है अरु यही सर्वका अनुभव कर्त्ताअनुभव रूप अक्षर है, अरु यही सर्वका द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धाहै इससे इतर न कोई द्रष्टाहै न श्रोताहै न मन्ता है न बोद्धाहै, हे सौम्य ऐसा जो सर्वका ज्ञाता अनुभवी अक्षर आत्माहै सो "तत्त्वमसि" सो तू है तेरा क्षय कदापि नहीं ताते सर्वका ज्ञाता तूही है तेराज्ञाता अन्य कोई नहीं, तूही चक्षुरादि सर्वका द्रष्टाहै तेरा द्रष्टा कोई नहीं,तूही सर्व का श्रोता है तेरा श्रोता अन्य कोई नहीं, तूही सर्वका मनन करता है तेरा मन्ता कोई नहीं,अरु तूही सर्वका विज्ञाता है तेरा विज्ञाता कोई नहीं, अतएव सर्व क्षराक्षर का ज्ञाता प्रकाशक अधिष्ठान परम अक्षर तूही है तू अपने आपको अनुभवकर॥

हे सौम्य यह जो सर्व वेद शास्त्रोंद्वारा निर्णय करके निर्विशेष प्रत्यगात्मा अक्षर कहा है सोई वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षर का लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म परम अक्षर है, अरु सोई

सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है इसही के सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है, तातें ॐकारके लक्ष्य प्रत्यगात्मा के जानने के अर्थ त्रिमात्रिक ॐकार की जप अरु अर्थ की भावना रूप उपासना कर्त्तव्य योग्यहै क्योंकि यह परब्रह्मकी आत्मत्वसे प्राप्ति में परमोत्तम आलम्बन है। अतएव इस त्रिमात्रिक ॐकारकी यथा शास्त्र उपासनारूप आलम्बनसे अपने आप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव कर पराशान्तिको प्राप्तहोवो आगे जो तुम्हारी इच्छा ॥—॥ इति ॥—॥

इतिश्री माण्डूक्योपनिषद्गौडपादीयकारिकाअरुक्षेपक भाषा भाष्यकारकृतसंग्रहप्रकरणसंहिता समाप्ता ॥

ॐहरिः ॐतत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिःॐ ॥

मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छपा ॥
दिसम्बर सन् १८९० ई० ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्री मद्भगवद्गीता सकल निगम पुराणस्मृति सांख्यादिसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रकासर्वविद्या निधान सौशील्यविनयोदार्य्य सत्यसंगरशौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरावतारमहानुभावअर्जुनकोपरम अधिकारीजानके हृदयजनितमोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसार निस्तारकभगवद्भक्तिमार्ग दृष्टि गोचरकराहै वहीउक्तभगवद्गीतावज्रवत्वेदांत व योगशास्त्रांतर्गत जिसकोकिअच्छे २ शास्त्रवेत्तारअपनीबुद्धिसेपारनहींपासक्तेतबमंद बुद्धी जिनको कि केवलदेशभाषाही पठनपाठनकरनेकी सामर्थ्य है वहकब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्तेहैं-और यहप्रत्यक्षही है कि जबतक किसीपुस्तक अथवा किसीबस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकरमिलै इसकारण सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपदाब्ज रसिकजनों के चितानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्मधुरीण सकलकला चातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्री मन्मुन्शी नवलकिशोरजी (सी,आई,ई)ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलकरचा नवलभाष्यसे प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआयातो बहुलसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मातिसे यह बिचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थ की भाष्यमें अधिकतर उत्तमता उस समयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्यकृत भाष्यभाषाकेसाथ और इसग्रन्थके टीकाकारोंकीटीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उनटीकाकारोंके अभिप्रायका भी बोधहोवेइसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्यजीकी शंकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलकअरुश्रीधरस्वामी कृत तिलकभी मूलश्लोकों सहितइसपुस्तकमेंउपस्थितहै ॥

नचिकेता यमालयमें गया और मृत्युने सावधान पूजन किया और परस्पर वार्त्तालाप हुआ वह सववृत्त संवित मंत्रों में वर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् ॥

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदता का निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणोंमें निरूपण कियागयाहै अवलोकन करनेयोग्य हैं जो अव छापीजाती हैं ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् ॥

यह उपनिषद् यजुर्वेद सम्बन्धीहै–इसउपनिषद्मेंश्रीसच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमेश्वर निराकार के साकार रूप होने का प्रतिपादन है ॥

ऐत्रेयउपनिषद् ॥

यह उपनिषद् ऋग्वेद के ब्राह्मणभाग से सम्बन्धित है–इस में मुख्य ब्रह्मविद्याका वर्णन है ॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

जिसे वाजसनेयी संहिताभी कहतेहैं–इस उपनिषद्में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशहीमें घटित कियाहै ॥

केनोपनिषद् ॥

अब इसवार अत्यन्त शुद्धतापूर्वक सरलभाषा तिलक से युक्त मुद्रित की जाती है–इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापति द्वारा वर्णन किया गया है ॥

छांदोग्यउपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में इन्द्रियादिकों के संघात विषे स्थित प्राणों की ज्येष्ठता व श्रेष्ठताका एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन है-मंत्रों के नीचे सरल देशभाषा में सुन्दर तिलक कियागया है ॥



तैत्तिरीयोपनिषद्

भाषा टीका सहित

जिसमें

तैत्तिरीय शाखा के प्रकट होनेका उदाहरण और
स्वर मात्रा व वर्णोंके उच्चारण की शिक्षा का
नियम व वर्णोंके सम्बन्धरूप संहिता की
उपासना व बुद्धि व लक्ष्मी की कामना
वाले पुरुषों के अर्थ साधन जप और
हवनादिकी क्रियायें वर्णितहैं ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न श्री मुंशीनवलकिशोरजीने भारत-
वर्षीयजनोंके उपकारार्थ बहुतसा धनव्ययकरके कोलाख्य-
नगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण से
सरल देशभाषा में उल्थाकराय स्वयंत्रालय में
मुद्रितकराय प्रकाशित किया ॥

बाजपेयि परिडत रामरत्न के प्रबन्ध से

प्रथमबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी

मार्च सन् १८९१ ई० ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्री मद्भगवद्गीता सकल निगम पुराणस्मृतिसांख्यादिसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रकासर्वविद् निधान सौशील्यविनयोदार्य्य सत्यसंगरशौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरवतारमहानुभावअर्जुनकोपरमअधिकारीजानकेहृदयजनितमोनाशार्थसवप्रकार अपारसंसारनिस्तारक भगवद्भक्तिमार्गदृष्टिगोचरकरायाहैवहीउक्तभगवद्गीतावज्रवत्वेदांत व योगशास्त्रांतर्गत जिसकोकिअच्छे २ शास्त्रवेत्तारअपनीबुद्धिसेपारनहींपासक्केतवमंदबुद्धी जिनकोकि केवलदेशभाषाही पठनपाठनकरने की सामर्थ्य है वहकव इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्केहैं-और यहप्रत्यक्षही है कि जवतक किसीपुस्तक अथवा किसीबस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकरमिले इसकारण सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्ज रसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमान्मुन्शी नवलकिशोरजी (सी,आई,ई)ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि परिडतउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्यनिर्मित भाष्यानुसारसंस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्के हैं ॥

जवछपनेका समयआयातो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मति से यह विचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्वग्रन्थ के भाष्यमें अधिकतर उत्तमता उस समयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्यकृत भाष्यभाषाकेसाथ और इसग्रन्थके टीकाकारोंकीटीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उनटीकाकारोंके अभिप्रायका भी बोधहोवेइसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्यजीकी शंकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलकअरुश्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूलश्लोकों सहितइसपुस्तकमेंउपस्थितहै ॥

ॐ

अथ तैत्तिरीयोपनिषद् का विज्ञापन ॥

विदित होकि यह कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखाकी संहिताके ब्राह्मण भाग सम्बन्धी तैत्तिरीय नामक उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) है, तिसका जो श्री हरमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री शंकराचार्य्य जी कृत महाभाष्य अरु तिसपर आनन्दगिरी टीका है, तिसके अनुसारही मूलमन्त्रसहित यह भाषा भाष्य मैं अतिअल्पज्ञ अविद्वान्ने अपने गुरु महाराज श्री १०५ स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराजकी कृपादृष्टिके बलसे, अरु सर्व जनोपकारी परमधार्मिक ब्रह्मनिष्ठ मुन्शीनवलकिशोर (सी,आई,ई)की आज्ञा से अनुबाद किया, अरु इसभाषाभाष्यको श्री द्विजवर पंडित राज पिताम्बर जी महाराजकी टीकानुसारही आनन्दगिरी टीका, भाष्य, अक्षरार्थ, को प्रायःलेख कियाहै, अरु कुछ स्वकल्पितभी है, अतएव सर्वसुज्ञ विवेकीजनोंसे प्रार्थना करताहौं कि इसभाषा भाष्यमें अनुचित लेखहुआ हो तिसको मुझ सेवकपर कृपा पूर्वक क्षमा करना ॥

चिह्नानां सूचीपत्रम् ॥

१ पृष्ठोपरि पुष्टाक्षरों में उपनिषद्के मूलमन्त्र ॥

२ " । । " इस चिह्नान्तर भाषानुवादमें मूलश्रुतिकेवाक्य ॥

३ ( ) इस चिह्नान्तर में मूल श्रुतिवाक्यके अक्षरार्थ ॥

४ [ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरीका अनुवाद ॥

५ " " इस चिह्नान्तर में अन्यश्रुति स्मृतिआदिकों के प्रमाण अरु तिसकेनिकटही तिसका अक्षरार्थ । इस चिह्नकेपूर्व ॥

६ " " इस चिह्नान्तर प्रमाणमें केवल श्रुतिवाक्यार्थ ॥

७ । । इस चिह्नान्तरमें भाषाकार करके कल्पितविचार ॥

" इति "

—०—

ॐ

एकमेवाद्वितीयं तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद्

श्रीमच्छंकराचार्य्य कृत भाष्यानुसार भाषा टीका प्रारम्यते ॥

तत्रादा भाष्यकार कृत मंगलाचरणम् ॥

ॐ यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते ।
येनेदं धार्य्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मनेनमः ॥

अर्थ ॥

यजुर्वेदकी शाखाके भेदरूप तैत्तिरीय उपनिषद्का [वेदव्यास जीके शिष्य वैशंपायन ऋषिके पास याज्ञवल्क्यऋषि आदिकवि- द्यार्थी ब्रह्मचर्यादि व्रत धारणकिये यजुर्वेदका अध्ययन करतेरहैं, तहां किसी एक निमित्तको पायके वैशंपायनऋषि को ब्रह्महत्या प्राप्तहुई, तिसके निवारणार्थ सो वैशंपायनऋषि याज्ञवल्क्यसे इतरअल्प व्ययवाले अपने विद्यार्थियोंके अर्थ नियमाचरण (प्रा- यश्चित्तरूपकर्म) करनेका उपदेश करतेहुये, तब उन मुनिसे उ- त्तम अधिकारी प्रौढ़ वयवाले याज्ञवल्क्य ऋषिने प्रार्थना किया कि हे भगवन् यह अति कठिन प्रकारका नियमाचरण इनबालक विद्यार्थियोंसेहोना अशक्यहै, औ मैं परिपक्क वयवालाहों अरु श- रीर करकेभी दृढ़ हों अतएव एकेलाही मैं इसकठिन नियमाच- रणोंकोकरके आपकी ब्रह्महत्या निवारण करने को समर्थहों,ताते आप इन कठिन नियमाचरण करनेकी मुझको आज्ञा करिये । इस प्रकार जब याज्ञवल्क्यने अपने उक्त गुरुसे विनयकिया तब

ब्रह्महत्या होनेके सम्बन्धसे जिसकी बुद्धि विपर्यय हुई है (पाप कर्मोंसे अवश्य बुद्धि विपरीत होतीहै) ऐसा जो वैशंपायन ऋषि सो याज्ञवल्क्यप्रति कहताहुआ कि हे याज्ञवल्क्य मैं मानताहौं कि तूबड़ा गर्विष्ठ है और इन ब्राह्मणोंके बालक बिद्यार्थियों का अपमान करताहुआ है अतएव अब तू मुझसे अध्ययन करीहुई बिद्याको त्यागकर, न करेगा तो तेरे अर्थ शीघ्रही मरणका हेतु शाप देऊंगा । इसप्रकार वैशंपायनने क्रोधित हो कहा तब याज्ञवल्क्य ऋषि उस शापके भयसे तिस अध्ययन करीहुई वेद विद्याको गज क्रियावत् योगबलसे बमन करके त्यागताहुआ, तब तिस याज्ञवल्क्य करके बमन करीहुई विद्याको अन्य कईएक ब्राह्मणोंके बालक बिद्यार्थियोंने अपने गुरुकी आज्ञासे अपने बिषे तीतिर नाम पक्षी बिशेषका रूपधारके वो बिद्या ग्रहणकर लिया, तबसे उस बिद्याका नाम तैत्तिरीयबिद्या हुआ, अरु जिन ब्राह्मणों ने उस बिद्या को धारण किया सो सर्व ब्राह्मण तैत्तिरीय शाखो वाले विख्यात हुये । अरु उनके बंशमें जो हैं सो आज पर्यन्त तैत्तिरीय शाखावाले कहेजाते हैं । औ तिस तैत्तिरीय शाखाका यह उपनिषद् भी तैत्तिरीय उपनिषद् कहाजाता है] व्याख्यान करनेको इच्छतेहुये भगवान् भाष्यकार तिस तैत्तिरीय उपनिषद् बिषे प्रतिपादनकिया जोब्रह्म सो जगत्के जन्मादिकके कारणपने रूप तटस्थलक्षणसे (जो लक्षण कदाचित् (किसी कालबिषे) हुआ व्यावर्तक (पृथक्करनेवाला) होय तिसको तटस्थलक्षण कहते हैं । जैसे देवदत्तके गृहपर बैठा जो काकनाम पक्षी सो यावत् उसगृहपर स्थित है तावत् उसगृहको अन्यगृहोंसे पृथक् करके लखावताहै कि देखो जिसगृहपर काकनाम पक्षी बैठा है वो देवदत्तका गृह है, इस प्रकार वो काकपक्षी देवदत्तके गृहका उपलक्षण है, तैसेही जगत्के जन्मादिकोंका कारणपना जो है सो कदाचित् (अज्ञानदशा बिषे वा सृष्टि कालबिषे)हुआ वेदबाह्यमतवादियोंकरके कल्पित जे परमाणु प्रधानादिक जगत्के कारण ति-

गुरुस्तुति ॥

यैरिमे गुरुभिः पूर्व्वं पदवाक्य प्रमाणतः । व्याख्याताः सर्व्ववेदान्तास्तान्नित्यंप्रणमाम्यहम् १ ॥

नसे व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) होनेसे सोब्रह्मका तटस्थलक्षण है] मन्दबुद्धिवाले पुरुषोंके अर्थ सामान्यभावकरके लक्ष्यकराया है, औ " सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म " इत्यादि प्रमाणसे सत्यचैतन्यत्वादि स्वरूप लक्षण से [जो लक्षण सर्वदाहुआ व्यावर्त्तकहोय तिसको स्वरूप लक्षण कहते हैं , जैसे सर्वकालवर्त्तमान हुआ देवदत्त के गृहका अन्यगृहों से व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) धवल (श्वेत) पना वा ऊंचापना सो उस देवदत्तके गृहका स्वरूप लक्षण है, तैसे सत्य ज्ञानादि रूपपना जो है सो ब्रह्मविषे सर्वदा स्वरूप भूत वर्त्तमान हुआ अविद्यादिकों से व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) होनेसे सो ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है] विशेषकरके निश्चय किया है, तिस ब्रह्म को नमस्कारके मिसकरके संक्षेपसे लक्ष करावे हैं " यस्माज्जातंजगत्सर्वंयस्मिन्नेव विलीयते । येनेदंधार्य्यतेचैव तस्मैज्ञानात्मनेनमः " [जिससे सर्व जगत् जन्मता है औ जिसविषे लीनहोता है औ जिसकरके यह धारण किया है तिस ज्ञानात्माको नमस्कार करते हैं] अर्थात् जिस ज्ञानस्वरूप परमात्मा परब्रह्मसे यह समस्त कार्य कारण नामरूपात्मक जगत् उत्पन्न होता है औ जिस करके धारणकिया वर्त्तताहै औ परिणाममें जिसविषे लीनहोता है तिस महाकारण परमाश्रय सर्व्वाधिष्ठानको नमस्कार करते हैं ॥

हे सौम्य अबगुरु भक्तिको विद्याकी प्राप्तिविषे जो मुख्यतासे अन्तरंग साधनपनाहै तिसको प्रकट प्रसिद्ध करनेकेअर्थ गुरुनको प्रणाम करते हैं जिन गुरुओंकरके पदवाक्य औप्रमाण(व्याकरण, मीमांसा, न्याय) इनकेविवेचनसे यह सर्ववेदान्तशास्त्रका व्याख्यानकरते हैं तिनसद्गुरुओंके अर्थ मैं नित्य२प्रणामकरताहौं १॥

तैत्तिरीयकसारस्यमयाऽऽचार्य्यप्रसादतः। विस्पष्टार्थरुचीनांहि व्याख्येयं सम्प्रणीयते २॥

हे सौम्य अब व्याख्यान करने को इच्छित जो ग्रंथ तिसका कथन करते हैं [ननुशास्त्रके बोधवाले पुरुषोंको पदोंसेही पदों के अर्थ की स्मृति का संभवहै ताते, अरु पदों करके स्मरणहुये पदार्थोंके सम्बन्ध कोही वाक्यार्थ रूपता है ताते, औ सूत्रकारकरके उपनिषदोंके तात्पर्य को निरूपण हुआ होनेसे भिन्न व्याख्यान का करना व्यर्थ है । यह शंका करके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि-अशास्त्रज्ञ मंदबुद्धिवाले पुरुषों को स्वतःही सर्व पदोंकेअर्थों की स्मृति होनेका असंभव है ताते, उपनिषद् गत सर्वपदों के अर्थोंके बिशेष करके निःसंशय ज्ञान होनेको इच्छते हैं तिनके उपकारार्थ पृथक् व्याख्यान करनेकाप्रारंभहै, "। विस्पस्टार्थरुची नांहि "(बिशेष करके स्पष्ट अर्थकी रुचीवाले के अर्थ) मया ऽऽचार्यप्रसादतः"(मुझकरके आचार्यके प्रसादसे) "। तैत्तिरीयक सारस्य व्याख्येयं सम्प्रणीयते " (तैत्तिरीयक सारका व्याख्यान सम्यक् कियाजाता है) अर्थात् बिशेषकरके स्पष्ट अर्थके जानने की इच्छावाले पुरुषोंके उपकारार्थ मुझकरके आचार्यके प्रसादसे इस तैत्तिरीय उपनिषद्के सारका सम्यक् प्रकार व्याख्यान कियाजाता है ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार ही इस समय प्रायः बहुतसे मनुष्यों की संस्कृत विद्यामें प्रवृत्ति न होनेसे उनको पद पदार्थों का ज्ञान रंचक मात्रभी नहीं अरु उन सर्व पुरुषोंमेंसे किसी एक पुण्यशील पुरुषोंको अपने पूर्वके अनेक जन्मोंके उत्तम कर्म संस्कारोंके प्रभावसे उपनिषद् विद्या करके प्रतिपाद्य जे आत्मतत्त्व तिसके जानने की इच्छा होतीहै तिन पुरुषोंके उपकारार्थ इस सांप्रतकालके श्रेष्ठ महात्मा पुरुषोंने उपनिषदादि बहुत से संस्कृत ग्रन्थोंको देशीय भाषावाणीमें लिखा है, यह उनमहात्मा पुरुषोंका सर्वजनोंपर परम उपकार है । हे प्रियदर्शन यह आत्म-

विद्या सनातनसेही अतिगुह्य औ दुःप्राप्य है, इस विद्याको कहने सुननेवाला लाखों मनुष्योंमें कोई एक विरला होता है, और श्रुति स्मृति भी ऐसाही कहती है । तथाच "। श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः । आश्चर्योक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।" "। मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।" इत्यादि, अतएव अब सावधानचित्त करके इस तैत्तिरीय आदि उपनिषद् ब्रह्मविद्या को सम्यक्प्रकार श्रवण मनन निदिध्यासन करो २ ॥

अथ शिक्षाध्यायरूपा प्रथमावल्ली आरभ्यते ॥

हरिः ॥ ॐ ॥ शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

हेसौम्य [कर्म्मके विचारसेही उपनिषद्को प्राप्त अर्थवाला होनेसे और उपनिषद्का प्रयोजन जो मोक्ष तिसके कर्म्मकरके ही संभवसे इस उपनिषद्का पृथक् व्याख्यान करनेका आरंभ करना युक्तनहीं । इस शंकाको दूर करनेके अर्थ यहां प्रथम कर्म्मकांडके अर्थ को कहतेहैं ।)

हे सौम्य, यजुर्वेद विषे इस तैत्तिरीय उपनिषद्से पूर्व ग्रंथविषे संचित पापोंके क्षयार्थ नित्यरूप अरु फलार्थी पुरुषोंके काम्यरूप कर्म समास किये हैं [कर्म्मकाण्डके अर्थको कहके, यहां अविचार किये उपनिषद्के अर्थको यहां कहतेहैं] अब इस तैत्तिरीय

उपनिषद्विषे कर्म्मके अनुष्ठानके हेतुकी निवृत्तिके अर्थ ब्रह्मवि-
द्याका आरंभ करतेहैं । [कर्मके अनुष्ठानकाहेतु नियोग (नियम)
है तिसका प्रमाण करके सिद्ध होनेसे विद्यासे विरोधनहीं है । यह
शंका करके कहै हैं । यहां यह तात्पर्यहै कि इसका यह साधनहै,
इसप्रकार प्रथमशास्त्र करके बोधन कियाहै । जिसकी जहां अभि-
लाषा है सो कामनासे तहांहीं प्रवृत्त होता है, एतदर्थ नियोग
को प्रवृत्ति करनेकी संभावना भी नहीं] कर्म्मका हेतु कामना
होतीहै क्योंकि पुरुषोंकी प्रवर्त्तकहै ताते । अरु पूर्णकाम पुरुषोंकी
कामनाके अभावहुये अपने आप आत्मा बिषे स्थिति होनेसे,क-
र्म्मबिषे प्रवृत्तिका असंभव है । [बांछित विषयकी प्राप्तिकी काम-
नाकी निवृत्ति बिषे हेतु आत्मविद्या नहीं है,अतएव कर्म्मके हेतु
की निवृत्तिके अर्थ आत्मविद्याका आरंभ क्यों करतेहो, यहशंका
करके कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि बांछित बिषयकी प्राप्तिसे
तिसकाल बिषे कामनाकी शान्तिमात्रही होतीहै, परन्तु कामना
का नाशनहीं होता, क्योंकि पुनःभी बिषयादिकों की आकांक्षा
आदिक देखने बिषे आवते हैं । अरु निरंकुश "आत्मैवतु नान्य-
त्तोऽस्तीति" "आत्माहीवस्तुहै ताते अन्यनहीं," इस रूपवाले
आत्माकी कामना भी आत्मकामपने के होनेसे होती है, क्योंकि
बांछित बस्तुकी इच्छाका अभाव होनेसे । औ जिसकरके आत्मा
के अद्वैत परमानन्दरूपको न जाननेवालाही पुरुष भिन्न बिषयों
को देखतसन्ते कामना करताहै,तात्ते कामको आत्म बिषयक अ-
विद्यारूप मूलवाला होनेसे एक आत्मविद्याही तिसकी निवृत्ति
का हेतुहै] आत्माकी कामनाके होने से पूर्णकामना होती है
[आत्मविद्या कामनाकी बिरोधीहोवे तो अस्तु, परन्तु कर्म्मके
हेतुकी निवृत्तिके अर्थ ब्रह्मविद्यका आरंभ करते हैं इसप्रकार जो
तुमने कहा सो किस प्रयोजनसे कहा । इस शंकापर कहतेहैं ।
यहां यह सिद्धहुआ कि परमानन्दमयरूप परमात्माकोलेके यह
श्रुतिकही है । इस प्रकार प्रथम कर्म्मकाण्ड करके अप्राप्त अर्थ-

वाली होनेसे, अरु कर्म्मसे अघटित जो मोक्षरूप प्रयोजन तिस वाली होनेसे उपनिषद्के व्याख्यान का आरंभ घटितही है] आत्माही ब्रह्महै तिसके जाननेवाले को परब्रह्मकी प्राप्ति आगे कहेंगे। अतएव अविद्याकी निवृति के हुये अपने आत्मा बिषे स्थितरूप परब्रह्मकी प्राप्ति होवे है, क्योंकि "। अभयं प्रतिष्ठां विन्दते ।" "। एतमानन्दमयमात्मान मुपसंक्रामतीत्यादिश्रुतेः"। (शंकाको दूरकरके इस आनन्दमय अभय प्रतिष्ठा (आश्रय) रूप आत्मा को प्राप्त होता है) इस श्रुति के प्रमाण से [पुनः आरंभवादी के प्रयोजन को कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि आत्यंतिक आगामी शरीरकी अनुत्पत्ति के होने से स्वरूपसे स्थितिका नाम मोक्षहै, अरु शरीरकी जो अनुपपत्ति है सो शरीरोत्पत्तिके हेतुके अभावसेही होवेगी, तब ज्ञानके अर्थ उपनिषद्के आरंभसे क्या प्रयोजनहै]॥ शंका, जो कहे काम्य अरु निषिद्ध कर्मके अनारंभ से, अरु प्रारब्ध कर्मका भोगकरके क्षयहोने से, अरु नित्यविहित कर्मों के अनुष्ठानसे संचितादि पापों के अभाव होने से, बिनाही प्रयत्न के किये स्वस्वरूप से स्थितिरूप मोक्ष होवे है [यहां अन्य मतको भी कहतेहैं, यहां अर्थ यह है कि जे स्वर्ग के साधक ज्योतिष्टोमादिक कर्म हैं सोई मोक्ष के साधन हैं, क्योंकि स्वर्गपद के अर्थरूप निरतिशय प्रीतिके मोक्ष से अन्यठिकाने (मोक्षका) असंभव है ताते, क्योंकि । स्वर्ग से अन्यस्थानमें । शरीर के होते क्लेश अवश्य होता है ताते] अथवा स्वर्ग शब्दकी बाच्य निरतिशय प्रीतिहै सो कर्म्मरूप हेतुवाली है, ताते कर्म करकेही मोक्ष होता है ॥ सो कथन बनेनहीं [अब एक भविकबादीके पक्षरूप प्रथम करी शंकावाले मतका निषेध करते हैं, यहां यह अर्थ है कि यद्यपि मुमुक्षु वर्त्तमान शरीर करके काम्य अरु निषिद्ध कर्मों का आरंभ न करेगा, तथापि । अनेकजन्मों के । अनेकप्रकार के संचित कर्मों के संभव से पुनः शरीरोत्पत्ति के हेतु का अभाव असिद्ध है] क्योंकि कर्म्म को अनेक रूपता है ताते, । अरु जिस

करके फलके आरंभक औ अनेक जन्मान्तर विषे किये विरुद्ध फलवाले [विशेषकरके सर्वही संचित कर्म मिलके एक शरीरकी उत्पत्तिका आरंभकरे हैं तहां सर्वकर्मोंका उपभोगसे क्षयहोने करके संचित कर्महो नहीं हैं,इस शंकाके निवारणार्थ यहां विरुद्ध फलवाले, ऐसा कहाहै । यहां यह अभिप्रायहै कि स्वर्ग नरकरूप फलवाले ज्योतिष्टोमादि अरु ब्रह्महत्यादि कर्मोंके एकही देहविषे भोगकरके क्षय होनेका असंभवहै ताते,अरु विशेषकरके इस जीव को एकही शरीरमें सर्व कर्मोंके फलोंके अनुभव होनेविषे प्रमाण का अभावहै ताते, बलवान् कर्मकरके प्रतिबंधको प्राप्तहुये दुर्बल कर्मकी स्थिति संभवे हैं] अनेक कर्म संभवे हैं, एतदर्थ उनकर्मों विषे फलके आरंभसे रहित कर्मोंके एक जन्मविषे उपभोगसेक्षय होने का असंभवहै ताते, शेष कर्मरूप निमित्तसे शरीरके आरंभ होनेका संभव अरु शेषकर्मोंके सद्भावकी सिद्धि होतीहै। क्योंकि "। तद्य इह रमणियचरणा अभ्यासो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ।" "। ततः कर्मशेषेणेत्यादि ।" श्रुति स्मृतियों करके, जो यहां शुभ आचरण करते हैं सो शुभ योनिको प्राप्तहोते हैं,अरु तिसके पीछे कर्म शेषकरके, । अर्थात् मरणको पाय अपने कर्म फलका अनुभव करके पुनः कर्म शेषरहे जन्मको पावता है । इसप्रकार अनेक प्रमाणहैं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि, इष्ट अनिष्ट फलवाले अरु फलके आरंभसे रहित कर्मोंके क्षयार्थ नित्य कर्म हैं, सो कथन बने नहीं, क्योंकि तिस नित्य कर्मके न करने विषे प्रत्यवाय होनेका श्रवणहै ताते । अरु पापशब्द जो है सो अनिष्ट फलका वाची है । अरु नित्यकर्मके न करने रूप निमित्तवाले दुःख रूप आगामी पापके निवारणार्थ नित्यकर्म हैं, परन्तु फलके आरंभसे रहित संचित कर्मोंके क्षयार्थ नहीं, इसप्रकार अंगीकार करनेसे । यद्यपि फलके आरंभसे रहित कर्मों के क्षयार्थ नित्यकर्मोंको मानिये, तथापि वो अशुभ संचित कर्मोंकोही क्षयकरेंगे शुभको नहीं, क्योंकि नित्य कर्मों का अरु शुभ कर्मोंका परस्परमें विरोध नहीं

ताते। अरु इष्टफलवाले कर्मको शुभरूप होनेसे तिसका नित्य विहित कर्मोंसे विरोध नहीं संभवे है, शुभ अरु अशुभकाही विरोधयुक्तहै। अरु कर्मरूप हेतुवाले भोगोंकी ज्ञानके अभाव होनेसे निवृत्तिका अभावहै ताते सर्वकर्मोंके क्षयका संभवनहीं है। जिस करके अनात्मवेत्ता पुरुषकोही काम (कामना) है क्योंकि वो अनात्मरूप फलकोही विषय करनेवालाहै ताते। अरु अपने आत्मा विषे काम (कामना) का असंभवहै क्योंकि अपनाआप आत्मा नित्य प्राप्तहै ताते , याते आप आत्मा परब्रह्म है ऐसा कहा है। औ नित्यकर्मोंका जो न करना सो अभाव रूप है, तिस अभाव रूप कर्मसे भावरूप पापका होना असंभवहै। ["अकुर्व्वन् विहितंकर्म निन्दितञ्च समाचरन्। प्रसज्जंश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छतीति " विहित कर्मोंको न करताहुआ, अरु निन्दित कर्मोंको करताहुआ, अरु इन्द्रियोंके विषयोंविषे आसक्त हुआ, मनुष्य पतनको पावताहै। ऐसे पावताहै इस क्रियापदविषे स्थित शतृप्रत्ययसे कर्मके न करनेको भी पापका निमित्तपना जानाजाता है। यह शंकाकरके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब यथावत् नित्य अरु नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान होता तो तब संचित कर्मोंका क्षयहोता, अरु जब यह पुरुष विहितकर्म न करेगा तब तिस करके पापहोवेगा, इसप्रकार श्रेष्ठ पुरुषोंकरके लक्षकरायाहै। ताते शतृप्रत्ययको अन्यथा अर्थवाला होनेसे तिसके बलकरके विहित कर्मके न करनेविषे पापकी हेतुता जानने को शक्य होतीनहीं] याते पूर्व के संचित पापों से प्राप्तहोनेवाली पापरूप क्रियाका नित्यकर्मोंका न करनाही लक्षणहै, इसप्रकार " अकुर्व्वन्विहितं कर्मेति " विहित कर्मोंको न करताहुआ, । इस वाक्य विषे उक्त शतृप्रत्ययका असंभव नहीं है [, क्रियाके लक्षण अरु हेतुविषे , इसप्रकार शतृप्रत्यय को उभयस्थानमें विधान कियेहुये तिन में क्रियाकी हेतुताकोही तुम क्योंनहीं ग्रहण करतेहौ। तहां कहते हैं, इसप्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाण से जाना है। अरु शतृप्रत्ययत्ते

अभावको हेतु भावके कथनहुये सर्व प्रमाणोंका विरोध होवेगा] अन्यथा अभावसे भावकी उत्पत्तिके कथनसे सर्व प्रमाणोंका विरोध होवेगा । [ननु तुमको भी शुभकर्मके न करने को पाप का लक्षणपना इष्टहै, अरु भट्ट अनुसारियोंकरके अप्रतीतिको अभावप्रमाका हेतुपना अंगीकार कियाहै । अरु नैयायिककरके प्रतिबन्धके अभावको, अरु तिस तिस कार्यके प्रागभावको तिस तिस कार्यकी स्थितिकी हेतुता अंगीकार कियाहै, ताते भावरूप वस्तु कोही कारणपना कैसेहै, सो अन्य शास्त्रबिषे कहाहै जैसे भावहै तैसे अभावको भी कार्यवत् कारण माना है । तहां कहतेहैं । हम वेदान्तियोंको प्रथम अभावकी स्वरूपसे कारणता इष्टनहीं, किंतु तिसके भानको पापकी सूचकता इष्टहै, अरु तिसरूप करके पापकी जनकता अंगीकार नहीं करते, क्योंकि नित्यकर्मके न करने के ज्ञानबिषे पापपनेका अप्रसंगहै ताते । अरु भट्टके अनुसारियों को भी कईएक पुरुषोंको ज्ञातहुई योग्य अप्रतीतिको अभाव प्रमाकी हेतुताहै, परन्तु ध्वंसरूप होने करके प्रमाकी हेतुताके हुये अभावप्रमा को प्रत्यक्षपनेकी प्राप्ति होवेगी । अरु नैयायिकों को भी प्रतिबन्धके अभावको कारणताके हुये अन्योन्याश्रयरूप दोष की प्राप्तिसे प्रमाणिकपना नहीं है । प्रागभावको भी जिस करके यह कार्य पूर्व नहीं रहा, ताते यह अभी उपजा है, इस प्रकारके ज्ञातरूपसे वस्तुका ज्ञापकपनाही है, परन्तु प्रागभावको जनकपनानहीं है । अरु पूर्वकाल को नियमित प्रागभाववाला होने करके जो कारणपनाहै सो अपने बिषे कार्यके वर्त्तमानपनेकी प्राप्तिरूप है, औ तिसको प्रागभावकरके युक्तपना भी अन्यथासिद्ध है, इसप्रकार तत्त्वालोक नामक ग्रंथबिषे कहा है । जिस करके कर्म के न करनेरूप निमित्तवाले पापके निवारणार्थ नित्यकर्म नहीं है, किन्तु "। कर्म्मणापितृलोकः ।" "। सर्वएतेपुण्यलोकाभवन्ति इतिश्रुतेः ।" कर्मसे पितृलोक होताहै, ये सर्व पुण्यलोकवाले होते हैं, इन श्रुतियोंके प्रमाणसे नित्यकर्मोंका पितृलोककी प्राप्तिफल

है, ताते उक्त आचरणवाले मुमुक्षुको शरीरकी अनुत्पत्ति नहीं होतीहै, ऐसा कहतेहैं] याते अप्रयत्नसे अपने आत्माविषे स्थित रूप मोक्ष सो बनेनहीं। [अब दूसरे मतका अनुवाद करके दूषण देतेहैं] औ जो कहा कि स्वर्गशब्दकी वाच्य निरतिशय प्रीति को कर्मरूप निमित्त वाली होनेसे कर्मसे आरंभकियाही मोक्षहै। सो कथनबने नहीं क्योंकि मोक्षको नित्यपनाहै ताते। जिसकरके कुछभी नित्यवस्तु आरंभनहीं करते हैं, लोकविषे जो आरंभ करी हुई वस्तु है सो अनित्यही है, एतदर्थ कर्मसे आरंभकिया मोक्ष नहीं है। अरु जो कहे विद्यासहित कर्मको नित्यबस्तुके आरंभ करनेकासामर्थ्य है। सोभी बनेनहीं, क्योंकि नित्य अरु आरंभका विरोधहै ताते, नित्य है औ आरंभ करतेहैं यह कथन विरुद्धहै॥ अरुजो ऐसाकहे कि जो वस्तु विनाशको प्राप्तहुईहै सोई उत्पन्न होवेनहीं, अतएव प्रध्वंसाभाववत् नित्यहुआ भी मोक्ष आरंभही करतेहैं। सोभी बनेनहीं, क्योंकि मोक्ष को भावरूपता है ताते। [वास्तव करके प्रध्वंसको कार्यपनाभी नहीं है, ऐसा कहतेहैं। यहां यह भावहै कि प्रध्वंसको प्रथम, जन्मका आश्रयपनाहै कार्यपना नहीहै, क्योंकि तिसको अन्यरूप कहेहुये भाव विकारवान् पनेके अंगीकारसे, अरुपूर्व अविद्यमान वस्तुका सत्ता समवाय आदिरूप धर्मनहीं होता है, क्योंकि कालके संबन्धका अभाव है ताते, अरु अवच्छेद अरु अवच्छेदक भावरूप संबन्धको समवाय संबन्धरूप मूलवाला होनेसे, अरु अन्यसंबंधरूप मूलकरके युक्तताका अदर्शन है ताते। अरु जो कहे कि उत्तरकालके प्रध्वंसकी अवच्छेदकतारूप स्वभाव है, तो अन्यकी अवच्छेदकतारूप स्वभाव नहीं होवेगा। ताते अभावको निर्विशेष (एकरस) रूप होनेसे तिस का कार्यपना कल्पना मात्रही है] भावकी विलक्षणताके अभाव से प्रध्वंसाभाव भी आरंभ करते हैं, यह कथन कल्पनामात्र है। जिस करके अभाव जो है सो भावरूप प्रतियोगीवाला है, जैसे अभिन्न एकरूप हुआ भी भाव, घट पट आदिकों करके भेदको

पावताहै, परन्तु घटकाभाव अरु पटका भाव भावरूपकरके एक-ही है। इसप्रकार अभिन्न एकरूपहुआ भी अभाव, भाव अभाव (उत्पत्तिविनाश) रूपक्रिया अरु गुणके योगसे द्रव्य आदिकोंवत् भेदको पावता है। अरु भावजो है सो कमल आदिकोंवत् विशेषण वाला नहींहै; क्योंकि विशेषणवान्ता के होनेसे सो अभाव भावरूपही होवेगा॥ अतएव प्रतियोगीके भेदसे अभावका भेद है यह केवल कल्पनामात्रही है॥ [इसप्रकार प्रध्वंस के दृष्टान्त करके विषय किये मोक्षके नित्यपने को निषेध करके, अन्य प्रकारसे जो आशंका है तिसका निषेध करते हैं। यहां यह अर्थ है कि विद्या अरु कर्मका कर्त्ता नित्यहै, इसप्रकार साधन की नित्यतासे मोक्षरूप साध्यकी नित्यता कहनेको योग्यनहीं है, क्योंकि कर्त्तापनेकी अनिवृत्तिकेहुये मोक्षके अभावका प्रसंग है ताते, अरु कर्त्तापनेकी निवृत्तिके होनेसे साधनकी नित्यता के अभाव होनेसे मोक्षका विनाश होवेगा] अरु जो ऐसाकहे कि विद्या अरु कर्मके कर्त्ताको नित्य होनेसे, विद्या अरु कर्मरूप साधनके प्रवाहसे जनित मोक्षकी नित्यता है। सो कथनबने नहीं, क्योंकि इस प्रकार माननेसे गंगाके प्रवाहवत् कर्त्तापने को दुःखरूप होने से अरु कर्त्तापने की निवृत्तिकेहुये मोक्षका भंगहोताहै ताते। अरु जिसकरके ब्रह्मज्ञानके बिना मोक्षदुर्लभ है, तिसप्रकार अविद्याकाम अरु कर्मके अनुष्ठान हेतुकीनिवृत्ति के होनेसे अपने आत्माबिषे स्थितिरूप मोक्षहोवैहै। जासे आप-ही आत्मा ब्रह्महै तिसके विज्ञानसे अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होताहै, अतएव ब्रह्मविज्ञानके अर्थ उपनिषद् का आरम्भ करते हैं [ब्रह्म विद्याबिषे उपनिषद् शब्दकी प्रसिद्धिजो है सोभीविद्या कीही मोक्षकी साधनताबिषे प्रमाणहै, ऐसा कहतेहैं] ब्रह्मविद्या जो है सो तिसबिषे तत्पर मुमुक्षुओंके गर्भ जन्म जरा आदिकों को शिथिल करैहै, वा उन गर्भादिकोंको विनाशकरै है, वा ब्रह्म को प्राप्तकरनेवाली है वा इससे अन्य साधनोंसे परम श्रेयनहीं

होवेहै, याते ब्रह्म विद्याको उपनिषद् कहते हैं । अरु तिस ब्रह्म-विद्या अर्थवाला होने से इस ग्रंथ को भी उपनिषद् कहते हैं । इस प्रकार उपनिषद्के व्याख्यान के आरंभ की संभावना करके अब तिसके पद पद के व्याख्यान का प्रारंभ करते हैं ॥

"शन्नोमित्रः" । 'मित्र सुखकारीहोवो' अर्थात् प्राणवृत्तिका अरु दिवसका अभिमानी देवतारूप जो मित्र सो हमको सुख-कारीहोवो । तैसे ही "शंवरुणः" । 'वरुण सुखकारीहोवो' अ-र्थात् अपान वृत्तिका अरु रात्रिका अभिमानी देवतारूप जो वरुण सो हमको सुखकारी होवो । तैसेही "शंनोभवत्वर्यमा" 'अर्य्यमा सुखकारीहोवो' अर्थात् चक्षुबिषे वा सूर्य्यबिषे अभिमानीदेवता जो अर्य्यमा सो हमको सुखकारीहोवो । तैसेही "शंनइन्द्रोबृहस्पतिः" 'इन्द्र अरु बृहस्पति सुखकारीहोवो' अर्थात् बलबिषे अभिमानी देवता जो इन्द्र, अरु वाणी अरु बुद्धिबिषे अभिमानी देवताजो बृहस्पति सो उभय हमको सुखकारी होवो । तैसेही "शंनोविष्णु रुरुक्रमः" 'उरुक्रम विष्णु सुखकारीहोवो' अर्थात् बलिराजासे तीनपाद पृथिवी की याचनाकर सर्व राज्यके ग्रहणार्थ विश्वरूप धारके विस्तीर्ण पादोंके क्रमवाला अरु पादकाअभिमानी देवता जो उरुक्रम उपेन्द्र नामवाला विष्णु सो हमकोसुखकारीहोवो । इत्यादिक अध्यात्मरूप जो देवताहै सो सर्व हमको सुखकारीहोवो । इसप्रकार सर्व ठिकाने (अनुषंग पिछले पदका सम्बन्ध) है । अध्यात्मरूप प्राण अरुकरण (इन्द्रियन) केअभिमानी देवताओं का सुखकारी होनेपना क्यों प्रार्थना करतेहौ, इस शंकाकेहुये । तहां कहतेहैं । गुरुपादके समीप गमनपूर्वक वेदान्तकेतात्पर्यका निश्चय, श्रवण कहते हैं । अरु श्रवणकिये अर्थका अविस्मरण रूप धारणा कहते हैं । अरु शिष्योंके अर्थ निवेदन करनाउप-योग कहते हैं । उक्त देवताओं के सुखकारी हुये अप्रतिबंध से विद्याका श्रवणधारणा अरु उपयोग होताहै, एतदर्थ "शंनोभव" 'हमको सुखकारी होवो' इसप्रकार तिन पांच देवताओं के

सुखकारी होनेपनेकी प्रार्थना करते हैं॥ अबब्रह्मविद्याके जानने कीइच्छावाले मुमुक्षुकरके ब्रह्मविद्याके श्रवणादिकोंविषे विघ्नों की निवृत्ति के अर्थ वायुको विषय करनेवाली नमस्कार अरु वंदना रूप क्रिया को करताहौं। क्योंकि सर्व क्रिया का फल तिस वायुके आधीनहै ताते "नमोब्रह्मणे" "ब्रह्मके अर्थ नमस्कार है" "नमस्तेवायो" "वायुके अर्थ नमस्कार है" अर्थात् ब्रह्मरूपजो वायु है तिसके अर्थ मैं नमस्कार करताहौं,हेवायुतेरे अर्थ मैं नमस्कार करताहौं [ब्रह्म अन्य है, वायु अन्य है, इस प्रकार जो कोई शंकाकरे तो, यह शंका करने योग्य नहीं। यहां यह अर्थ है कि , ब्रह्म , ऐसा परोक्षसे कहा है क्योंकि "सब्रह्मे- त्याचक्षत, इतिश्रुतेः" सो ब्रह्महै ऐसा कहते हैं, इस श्रुतिने,स, शब्द करके ब्रह्मको परोक्ष कहा है। अरु वायु शब्दसे प्रत्यक्ष- पनेसे कथन है क्योंकि प्राणवायुको प्रत्यक्षता है ताते। अर्थात् एकही ब्रह्म आत्मरूप से परोक्ष है अरु प्राणरूपसे प्रत्यक्ष है ताते ब्रह्म अरु वायुका भेदनहीं। यहां परोक्ष अरु प्रत्यक्ष करके वायुकोही कहते हैं। यद्यपि सूत्रआत्मा रूपसे वायुपरोक्षहै, त- थापि अध्यात्मिक प्राणवायुरूपसे ब्रह्म शब्दका वाच्यहुयेभीवायु का अपरोक्षपना है ऐसा कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि बाह्यके चक्षुरादिक जो हैं सो रूपके दर्शन आदिक लिंगसे अनुमान क- रने के योग्य हैं ताते , अन्तराय सहित है , अरु प्राणतो अन्त- राय के अभाव से साक्षी करके वेद्य है , अरु भोक्ता के समीप है एतदर्थ चक्षु आदिकों की अपेक्षासे वायु प्राण प्रत्यक्ष हैं।] "त्वमेव प्रत्यक्षंब्रह्मासि" "तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है" अर्थात् हे वायो तूही चक्षुरादिकों की अपेक्षाकरके बाह्य समीप औ अंत- रायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है। [यहां यह अर्थ है कि वृद्धिकरने वाला होनेसे वायुको ब्रह्म कहते हैं। प्राणके किये श्वासआदि- कोंसे वा भोजनादिकों से शरीरादिकों की वृद्धिहोनी प्रसिद्ध है। जैसे कोई एकराजा के दर्शनकी इच्छावाला मुमुक्षु हृदयगत

ब्रह्मके द्वारपाल को "त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि " तुझ-कोही प्रत्यक्ष ब्रह्मकहताहौं, इस प्रकार कहताहै, ऐसी ब्रह्मका कथनरूप जो क्रिया है सो प्राणदेवताकी स्तुत्यर्थ है] अतएवमैं "त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि" [तुझकोही प्रत्यक्ष ब्रह्मकहता हौं; अरु जिसप्रकार शास्त्रोंविषे कहाहै, अरु जैसे करनेकोयोग्यहै, ऐसा बुद्धिविषे सम्यक् प्रकार निश्चयकिया जो अर्थ तिसको ऋत कहते हैं सोभी तेरे आधीनहै एतदर्थ तुझको ही "ऋतंवदिष्यामि " [ऋत कहताहौं] । अरु वाणी अरु शरीरकरकेसम्पादनहुआ जो सत्यहै सोभीतेरे आधीनही सम्पादन करते हैं, एतदर्थ तुझकोही " सत्यंवदिष्यामि " [सत्य कहताहौं] "तन्मामवतु" [सो मुझको (मेरी) रक्षाकरो] अर्थात् सोसर्वात्मा वायुनाम वाला ब्रह्म मुझकरकेस्तुतिको प्राप्तहुआ मुझविद्यार्थीकी विद्या विषे जोडने करके रक्षाकरो । अरु "तद्वक्तारमवतु " [सो वक्ता की रक्षाकरो अर्थात् सोई ब्रह्म आचार्यको वक्तापने के सामर्थ्य विषे जोडने करके उसकी रक्षाकरो, "अवतुमाम् , अवतुवक्तारम् " [मुझकोरक्षाकरो [वक्ताको रक्षाकरो] यहां पुनः जोकथन सो मंगलाचरण के आदरार्थ है " सत्यंवदिष्यामि पञ्चच " [सत्य कहताहौं अरु पांच] ॐ सत्यही कहताहौं "शान्तिः शान्तिः शान्तिः " [शान्ति होवे, शान्तिहोवे, शान्तिहोवे] यहां तीनवारजो शान्तिका कथन है सो विद्याकी प्राप्तिविषे जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, यह तीनप्रकारसे होनेवाले जे विघ्नहैं तिनकी निवृत्तिके अर्थ है ॥

इतिप्रथमोऽनुवाकः १ ॥

---*---

ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः। स्वरः। मात्रा। बलम्। साम। सन्तानः। इत्युक्तःशिक्षाध्यायः॥ शिक्षां पञ्च ॥ २ ॥ इतिद्वितीयोनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः २॥

हे सौम्य, अब अर्थके ज्ञानको प्रधान होनेसे उपनिषद्ग्रन्थके पाठविषे 'स्वर, उष्म, औ व्यंजनरूप अक्षरोंके अप्रमादरूप प्रयत्नकी निवृत्तिमतहो, इस अभिप्रायसे शिक्षाध्याय का प्रारंभ करतेहैं। जिस करके शिक्षा करते हैं। ऐसाजो वर्ण आदिकोंके उच्चारण का लक्षण (शास्त्र) तिसको शिक्षा कहते हैं। वाजो शिक्षाको प्राप्तकरेहै ऐसे वर्ण आदिक सो शिक्षाकहते हैं। औ जो शिक्षा है सोई वेदांगविषे शिक्षा इस नामसे कहा जाता है। "शिक्षांव्याख्यास्यामः" 'शिक्षाको स्पष्ट कथन करते हैं' अर्थात् तिसशिक्षाको स्पष्ट जैसेहोय तैसेसर्व ओरसे कथनकरतेहैं,। "वर्णः। स्वरः। मात्रा। बलम्। साम। सन्तानः। इत्युक्तःशिक्षाध्यायः" 'वर्ण, स्वर, मात्रा, बल,साम,सन्तान, ऐसाशिक्षाध्यायकहा है' अर्थात्,तहां अकारादिवर्ण, अरु उदात्त आदिक स्वर, अरु ह्रस्वआदिक मात्रा, अरु प्रयत्न विशेषरूप बल, अरु वर्णोंका मध्यमवृत्तिसे उच्चारणरूप साम (समता), अरु सन्तति (संहिता)रूप सन्तान, यहही सिखनेयोग्य अर्थरूपशिक्षा,जिस अध्याय बिषे है, ऐसा शिक्षाध्याय है, इसप्रकार आगेकहा है "शिक्षांपंच" 'पांच शिक्षाको' अर्थात्,पांच प्रकारकी शिक्षाको आगे कहेंगे॥ इति द्वितीयोनुवाकः॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, अब वर्णोंके संबन्धरूप संहिताकी उपनिषद्अर्थात् उपासना कहतेहैं। तहां संहितादिकोंकी उपासना के ज्ञानरूप निमित्तवाला जो यशसो प्रार्थनाकरते हैं, "सहनौयशः" 'यश हमको साथ, ही हो' अर्थात्, सो यश हम शिष्य अरु आचार्य

सहनौयशः ।सहनौब्रह्मवर्चसम् । अथातःसꣳहिता-याउपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥पंचस्वधिकरणेषु । अधि-लोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता मह्रासꣳहिताइत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवीपूर्व्वरूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । आकाशःसन्धिः३ ॥

दोनोंको साथही हो, अरु " सह नौ ब्रह्मवर्चसम् " ; ब्रह्मवर्चस हमको साथ, ही हो ; अर्थात् , तिस यशरूप निमित्तवाला जो ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज)है सो हमशिष्य अरु आचार्य्य दोनोंको साथहीहो । यहां प्रार्थनारूप शिष्यका वचन है । यहां शिष्यको ही कृतार्थ होनेके अर्थ प्रार्थनाका करना संभवेहै, अरु आचार्य जोहैं सो तो प्रसिद्धही कृतार्थ होताहै, एतदर्थ आचार्यको कृतार्थी के अर्थ प्रार्थना करनी संभवे नहीं । अब पूर्व व्यतीतहुये अध्ययन रूप विधानकी अत्यन्तग्रंथसे निश्चितहुई जो बुद्धि,सो तत्कालही अर्थ के ज्ञानविषे प्रवर्त्त करनेको शक्य होवेनहीं, अतएव अपनी शाखाकी संहितारूप ग्रंथके समीपवर्त्ती वर्णोंके संबन्धरूप संहिता की उपासना को कहतेहैं । [यहां " पंचस्विति" । पांचविषे,इस प्रकार जो सप्तमी विभक्ति कहीहै, सो तृतीया विभक्तिके अर्थ करके पलटनेको योग्यहै । अरु अधिकरण शब्दहै सो विषयका पर्याय है । ताते पांच पदार्थ करके विशिष्ट जो ज्ञानहै सो अक्षरों विषे कहनेको योग्य है, जैसे शालिग्राम प्रतिमा विषे विष्णुका ज्ञानहै तैसे । यह अर्थ होता है] पांच आश्रयों (ज्ञानके विषय) विषे जो अधिलोक [लोकको आश्रय करके जो ध्यान करनेकी योग्यता तिसको अधिलोक कहतेहैं । अरु विद्या शब्दकरके विद्या से संबन्धको पाया आचार्य्यादिक कहनेको इच्छित है । तैसेही प्रजा शब्द करके प्रजासे संबन्ध को पाये पिता आदिक कहनेको इच्छित जानो । अरु अध्यात्म शब्दसे भोक्ता आत्माको आश्रय करके वर्त्तते हैं ऐसे जे जिह्वा आदिक सो कहनेको योग्य जानो ।

वायुःसन्धानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्योतिषम्। अग्निःपूर्वरूपम्। आदित्यउत्तररूपम्। आपःसन्धिः वैद्युतःसन्धानम्। इत्यधिज्योतिषम्। अथाधिविद्यम्। आचार्य्यःपूर्वरूपम् ४॥

परन्तु सर्व ठिकाने तिनतिनके अभिमानी देवताही ग्रहण करने को योग्य है, क्योंकि देवताओंसे अन्यवस्तु को उपास्य होना असंभव वा अयोग्यहै ताते], अधिज्योतिष,अधिविद्य, अधिप्रज, अरु अध्यात्म, यह पांचरूप उपासना है, इन पांच विषयवाली उपासनाको लोकादिक महावस्तुओंको विषय करनेवाली होने से, अरु संहिताको विषय करनेवाली होनेसे वेदकेवेत्ता ब्राह्मण उसको महासंहिता ऐसा कहते हैं। "अथ अधिलोकम्, पृथिवी पूर्वरूपं, द्यौरुत्तररूपं,आकाशः सन्धिः॥ ३॥" 'अब अधिलोक (तहां) पृथिवी पूर्वरूपहै, द्यौ उत्तररूपहै, आकाश संधिहै,' अर्थात् अब जिसप्रकार कहने को आरंभ किया है तिसप्रकार उन पांच प्रकार की उपासना के मध्य प्रथम अधिलोक रूप उपासना को कहते हैं। यहां सर्व ठिकाने अथ, (अब) शब्द जो है सो उपासना के क्रम देखावनेके अर्थ है। पृथिवी जो है सो पूर्व रूप (पूर्व वर्ण) है। अर्थात् संहिता के पूर्व वर्णबिषे पृथिवीकी दृष्टि कर्त्तव्य है,ऐसा कहा होताहै। तैसेही स्वर्गलोक उत्तररूपहै, अरु आकाश (अन्तरिक्षलोक) संधिहै, अर्थात् संधिकाहिये जिसबिषे पूर्वरूप पृथ्वी अरु उत्तररूप स्वर्ग मिलापको पावतेहैं तिस मध्य अन्तरिक्ष को संधि कहते हैं ३॥

हे सौम्य "वायुःसन्धानम्" 'वायु संधानहै' अर्थात् वायु जो है सो संधान है। जिसकरके मिलापहोय तिसको संधान कहते हैं, सो अन्तरिक्षरूप स्थलबिषे पृथ्वी अरु स्वर्गका मिलाप वायु करताहै। "इत्यधिलोकम्" 'इसप्रकार अधिलोक कहा' अर्थात् उक्तप्रकार अधिलोक रूप उपासना कही। "अथाधि-

अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्यासन्धिःप्रवचनꣳसन्धानम् । इत्यधिविद्यम् । अथाधिप्रजम् । मातापूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजासन्धिः । प्रजननꣳसन्धानम् । इत्यधिप्रजम् ५ ॥

ज्योतिषम् " (अव अधिज्योतिष) अर्थात् अब अधिज्योतिष रूप उपासना कहते हैं, तहां " अग्निः पूर्वरूपम्, आदित्य उत्तर रूपम्, आपः सन्धिः, वैद्युतः संधानम् " (अग्नि पूर्वरूप है, सूर्य्य उत्तररूपहै, जलसन्धि है, बिद्युत संधानहै " इत्यधि ज्योतिषम् " (यहअधिज्योतिषहै) अर्थात् इसप्रकार अधिज्योतिष रूप उपासनाकही ॥ "अथाधिविद्यम् " (अब अधिविद्यहै) अर्थात् अब अधिविद्यरूप उपासना कहते हैं । तहां " आचार्य्यः पूर्व रूपम् " (आचार्य्य पूर्वरूप है) ४ ॥

हे सौम्य, " अन्तेवास्युत्तररूपम् " (अन्तेवासी उत्तर रूप है) अर्थात् आचार्य्य के गृह निवास करनेवाला शिष्यउत्तर रूप है । अरु " विद्यासन्धिः प्रवचनꣳसन्धानम् " (विद्या संधि है प्रवचन संधान है) अर्थात् प्रश्नोत्तर रूपों का कथन संधानहै ॥ " इत्यधिविद्यम् " (यह अधिविद्य है) अर्थात् इसप्रकार अधिविद्यरूप उपासना कही ॥ " अथाधिप्रजम् " (अब अधिप्रजहै) अर्थात् अबअधिप्रजरूप उपासनाकहते हैं । तहां "माता पूर्वरूपम्, पितोत्तररूपम्, प्रजासन्धिः, प्रजननꣳ सन्धानम् " (माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूपहै, प्रजा संधिहै, प्रजनन संधानहै) अर्थात् माता जो है सो पूर्वरूप है, अरु पिता उत्तररूप है, पुत्रादि प्रजासंधि है, अरु ऋतुकालविषे स्वभार्यासे संभोग संधान है । " इत्यधिप्रजम् " (यह अधिप्रज है) अर्थात् इस उक्तप्रकारकी अधिप्रज रूप उपासना कही है ५ ॥

हे सौम्य, " अथाध्यात्मम् " (अब अध्यात्म, श्रवणकरो) " अधरा हनुः पूर्वरूपम्, उत्तराहनुरुत्तररूपम्, वाक् सन्धिः, जिह्वा

अथाध्यात्मम् ॥ अधराहनुः पूर्वरूपम् । उत्तराहनुरुत्तररूपम् । वाक्सन्धिः ॥ जिह्वासंधानम् । इत्याध्यात्मम् । इतीमामहासꣳहिताः । यएवमेतामहासꣳहिता व्याख्याता वेद सन्धीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येनसुवर्गेण लोकेन ॥ सन्धिराचार्य्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजंलोकेन ६ ॥ इतितृतीयोनुवाकः ॥

"सन्धानम्" । ' नीचे का हनु पूर्वरूप है, ऊपरका हनु उत्तररूपहै, वाक् संधिहै, जिह्वा संधान है, ' अर्थात् नीचे का होठ पूर्वरूपहै अरु ऊपरका होठ उत्तररूप है अरु वाणी संधि है अरु जिह्वा संधान है "। इत्याध्यात्मम्" । ' यह अध्यात्म है, अर्थात् इसप्रकार अध्यात्मरूप उपासना कहीहै ॥ इन सर्व उपासनाओंको जिसप्रकार प्रथम लोकोपासना कहीहै तिसप्रकार जानना ॥ "। इतीमा महासꣳहिताः" । ' ऐसे यह महासंहिता, ग्रहणकिया है, ' अर्थात् इसप्रकार यह कहीहुई महासंहिता, अधिकारियोंको विधि के देखावने के अर्थ ग्रहण करतेहैं [जैसे दर्शआदिक षटयाग समुच्चयहुये फलके साधक हैं अधिकारी के अंशसे अभेदता करके । तैसेही यह उक्त पांच उपासना भी समुच्चयवालीही हुई प्रजा आदिक फलकी कामनावाले पुरुषों को अनुष्ठान करने के योग्य हैं, इसप्रकार कहते हैं । यहां यह भाव है कि फलकी कामनावाले पुरुषों करके अनुष्ठान कीगई संहिता की उपासना वांछित फलकी प्राप्तिके अर्थ होती है । अरु फलकी इच्छासे रहित निष्काम पुरुषों करके अनुष्ठान कीहुई उक्त उपासना ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा उपजावनेवाली होतीहै । अरु बुद्धिरहित पुरुषोंकरके ब्रह्मका जानना अशक्य होनेसे बुद्धिकी कामनावाले पुरुषों करके किया जपभी ब्रह्मविद्या के जाननेके अर्थ बुद्धिका प्रापक होता है । अरु धनसे रहित पुरुषों करके चित्त की शुद्धिके अर्थ यज्ञादिकों का होना अशक्य है क्योंकि धन बिना यज्ञ होवेनहीं,

अतएव धनकी कामनावाले पुरुषों करके किया इसका हवनभी धनकी प्राप्ति वा चित्तशुद्धि वा ब्रह्म विद्याबिषे उपयोगी होता है। इसप्रकार ब्रह्मविद्या की सन्निधिबिषे उपदेश कियेहुये साधनोंका महत् तात्पर्य है, सो सर्वत्र देखलेना] "य एवमेता महासंहिता व्याख्याता वेद संधीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन" (जो पुरुष उक्तप्रकार कथन कीहुई इन महा संहिता को जानता है, सो प्रजाकरके पशुओं करके ब्रह्मतेज करके अन्नादि करके अरु स्वर्गलोक करके जुडता है ; अर्थात् प्रजा पशु तेज अन्न धन स्वर्गादि फलको पावता है । अरु "संधिराचार्यः पूर्वरूप मित्यधिप्रजं लोकेन ॥ ६ ॥" (संधि आचार्य पूर्वरूप अधिप्रज लोक से ; अर्थात् संधि आचार्य पूर्वरूप है इस प्रकार अधिप्रज, लोकसे जुडता है । यहां जो कहाहै कि ,जानता है, इस पदका अर्थ उपासना करता है यहही होता है, क्योंकि "प्राचीन योग्योपास्वेति" हे प्राचीनयोग्य उपासना कर । इस चतुर्दशवें वाक्य करके उपासना के अधिकार परत्वहै ताते ।अरु उपासना जो है सो शास्त्रके अनुसार तुल्य वृत्तियों के प्रवाहरूप मिश्रित अर्थात् अन्य विषयाकार वृत्ति से रहित है, एतदर्थतदाकार वृत्तियोंकरके शास्त्रोक्त आश्रय को विषय करनेवाली उपासना कहते हैं । लोकबिषे गुरुको उपासताहै, राजाको उपासता है, इसप्रकार उपासना शब्दका अर्थ प्रसिद्ध है । जो गुरु आदिकों को निरंतर समीप बसता है सो उपासना करता है, अर्थात् उप कहते हैं समीप को अरु आसन कहते हैं स्थितहोने को ताते जो आचार्य के समीप स्थित होयके उनकी सेवा शुश्रूषा करनी है तिसका नाम उपासना है । इसप्रकार कहते हैं । अरु सोई उपासनाके फलकोपावताहै । अतएव यहांभी सो उपासना शब्द का अर्थ अरु तिसकरके उक्तफलकी प्राप्तिबने है ॥६ ॥

इति तृतीयोनुवाकः ३ ॥

—o—

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देवधारणो भूयासम्। शरीरं मेविचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरिविश्रुवम्। ब्राह्मणःकोशोऽसिमेधया पिहितः। श्रुतं मेगोपाय। आह्वान्ति वितन्वाना७॥

अथ चतुर्थोनुवाकः॥

हे सौम्य, "स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु" अरु "ततो मे श्रियमावहेति" सो इन्द्र मुझको बुद्धिसे प्रसन्न वा समर्थ करो। अरु तिसके अनन्तर मेरेअर्थ लक्ष्मी को प्राप्तकरो। इस मन्त्राबिषे अरु अगिले मन्त्रबिषे कथनकिये लिंग (चिह्न) के देखनेसे। यहां बुद्धिकी कामनावाले अरु लक्ष्मी की कामनावाले पुरुषोंको तिसकी प्राप्तिके साधन जप अरु हवन कहते हैं। "यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव" (जो ॐकार वेदके मध्य श्रेष्ठहै वेदरूप अमृतसे प्रतीत होताहुआ) अर्थात् जो ॐकार वेदके मध्य प्रधान होनेसे श्रेष्ठवत् श्रेष्ठ है, अरु "शंकुनेत्यादि" सो जैसे शंकु (कीले) करिके इत्यादि अन्यश्रुतियों करके, सर्व प्राणियोंबिषे व्याप्त होनेसे विश्वरूपहै, अरु इसहीसे ॐकार का श्रेष्ठपना है। इसकरके ॐकार यहांउपासना करनेको योग्य है। एतदर्थही ऋषभआदिक शब्दों से ॐकार स्तुति करने के योग्यही है। अरु जो वेदरूप अमृत से प्रतीत होताहुआ, अर्थात् लोक अरु वेदरूप व्याहृतियों से सारिष्ठ 'उत्तम भाग्य' को इच्छा करनेवाले अरुइसहीसे तपकरनेवाले प्रजापतिसेसारिष्ठ 'उत्तम भाग्य' रूप होनेकरके ॐकार प्रतीतहोताहुआ। अरुजिस करके नित्यरूपॐकारकी उत्पत्ति अनायास से नहीं कल्पना करते हैं, याते सो प्रतीत होताहुआ, यह अर्थ बनता है "समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु" (सो इन्द्र मुझको बुद्धिसेसमर्थकरो) अर्थात् सो उक्त प्रकारका ओंकार रूप इन्द्र सर्व कामका स्वामी परमे-

श्वर मुझको बुद्धिसे प्रसन्न वा समर्थकरो ॥ अब बुद्धिके बल की प्रार्थना करते हैं "अमृतस्य देवधारणो भूयासम्" "हेदेव अमृतका धारण करनेवाला होहु" अर्थात् हे देव तिस बुद्धिके अधिकार से अमर भावके हेतुरूप ब्रह्मज्ञान का धारण करने वालाहोवो "अरु शरीरंमे विचर्षणम्, जिह्वामे मधुमत्तमाकर्णाभ्यां भूरिविश्रुवम्" "मेरा शरीर विचक्षणहोहु, मेरी जिह्वा विशेष करके मधुरभाषिणीहोहु, कर्णकरके श्रोत्राहोहु" अर्थात् मेरा शरीरयोग्यहोहु, अरु मेरीवाणी अतिशय करके मधुरभाषण करनेवालीहोहु।अरु मैं दोनोंकानोंकरके वेदका बहुतश्रोताहोहु" किंवा मेराकार्य अरु करणरूप संघात जो है सो आत्मज्ञानकेयोग्य होहु, यहवाक्यका अर्थ है। अरु "ब्रह्मण:कोशोसि मेधया ऽपिहित:" "ब्रह्मकाकोशहै बुद्धिकरके आच्छादितहै" अर्थात् हेॐकार तू ब्रह्म (परमात्मा) का कोश कहियेम्यानहै, क्योंकि खड्गके कोश (म्यान) वत्ब्रह्मकेप्राप्ति वा दर्शनकास्थानरूपहै ताते। अरु जिस करके तूब्रह्मका प्रतीक(प्रतिमा)है याते तेरे विषे ब्रह्मप्राप्तहोताहै। सो तू ब्रह्मकाकोशहुआ लौकिक बुद्धिकरके आच्छादितहै, अर्थात् मंदबुद्धिवालेपुरुषोंकरके तेरासद्भावअज्ञातहै।अरु"श्रुतंमेगोपाय" "मेरेश्रुतकोरक्षाकर" अर्थात् तूमेरेश्रवणपूर्वक आत्मज्ञान आदिकों की रक्षाकर, तिसकी प्राप्तिके अविस्मरणादिकों को कर ॥ यह मन्त्र बुद्धिकी कामना वाले पुरुषको जप करनेके अर्थ कहा। अब लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषको तिसकी प्राप्त्यर्थहोमार्थ जो मन्त्र है सो कहते हैं "आहवन्ती वितन्वाना" "ल्यावनेवाली ओविस्तार ने वाली ॥ ७ ॥

हेसौम्य, "कुर्वाणा चीरमात्मनः,वासांसि ममगावश्च, अन्नपानेचसर्वदा,ततो मे श्रियमावह, लोमशां पशुभिः सह स्वाहा" "आत्माके वस्त्रोंको, गौओं को अन्नपानको सर्वदा निर्वाह करने वाली, अजा,भेड आदिकरके युक्त, पशुकरके सहित तिस लक्ष्मी को मेरे अर्थ ल्याव, स्वाहा" अर्थात् मेरे वस्त्रोंको अरु गौओंको

कुर्वाणाचीरमात्मनः। वासाᳬंसिममगावश्च। अन्नपानेच सर्वदा। ततोमेश्रियमावह। लोमशांपशुभिः सहस्वाहा। आमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा। विमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा।प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा।दमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा। शमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा८॥

अरु अन्नपानों को निर्वाह करनेवाली जो लक्ष्मी है, अरु तिस अजा अरु भेड आदिकों करके युक्त अरु अन्य अश्वादि, पशुओं करकेयुक्त लक्ष्मीको बुद्धिके वर्धमान होनेकेपश्चात् मेरे अर्थ प्राप्त कर,स्वाहा॥अरु जिसकरके बुद्धिरहित पुरुषोंकोलक्ष्मीकी जो प्राप्ति है सो अनर्थके अर्थही होती है, अतएव यहां बुद्धिकी वृद्धिहोनेके पश्चात् लक्ष्मीको प्राप्तकर इसप्रकार कहाहै॥ अरु यहां। ल्यावो इसक्रियापदकरके ॐकारही सर्व ओरसे संबंधको पावताहै।अरु यहां जो स्वाहा शब्दहै सो हवन के अन्तके मन्त्र रूप अर्थकेजनावने के अर्थ है।" आमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा,विमायन्तु ब्रह्म चारिणःस्वाहा, प्रमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा, दमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा, शमायंतुब्रह्मचारिणः स्वाहा।" ब्रह्मचारी मेरेअर्थ ल्याव स्वाहा, ब्रह्मचारी निष्कपटभावकोकरो स्वाहा, ब्रह्मचारीप्रमाको करो स्वाहा,ब्रह्मचारी दमकोकरो स्वाहा, ब्रह्मचारी शमकोकरो स्वाहा,"अर्थात्ब्रह्मचारी जो है सो मेरेअर्थ प्राप्तकरो स्वाहा,ब्रह्मचारी जो है सो निष्कपट भावको प्राप्तकरो स्वाहा, अरुब्रह्मचारी जो है सो यथार्थ ज्ञानको करो स्वाहा, अरु ब्रह्मचारी जो है सो इन्द्रियोंके दमनको करो स्वाहा, अरु ब्रह्मचारी जो है सोमनके निग्रहरूप शमको करो स्वाहा॥ ८॥ श्रीरामायनमः॥

हे सौम्य, "यशोजनेऽसानिस्वाहा, श्रेयान्वस्यसोऽसानिस्वाहा, तंत्वा भग प्रविशानि स्वाहा, समाभगप्रविश स्वाहा, तस्मिंस्त्सहस्र शाखे निभगाऽहंत्वयि मृजेस्वाहा।" "जनविषे यशहोवों स्वाहा, अतिशय श्रेष्ठ अत्यन्त धनवान्से धनवान् होवों स्वाहा,

यशोजनेऽसानिस्वाहा। श्रेयान् वस्यसोऽसानिस्वाहा। तं त्वाभग प्रविशानिस्वाहा। समाभग प्रविशस्वाहा। तस्मिंस्तुसहस्रशाखे निभगाहंत्वयिमृजेस्वाहा । यथाऽऽपः प्रवतायन्ति। यथामासा अहर्जरम्। एवंमांब्रह्मचारिणः धातरायन्तुसर्वतःस्वाहा।प्रतिवेशोऽसिप्रमाभाहि-प्रमापद्यस्व ॥ वितन्वानाशमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा॥ धातरायन्तुसर्वतः स्वाहेकंच९ ॥ इतिचतुर्थोऽनुवाकः॥

भगवन् तिसतेरे ताईं प्रवेशकरु स्वाहा, भगवन् सो मेरे ताईं प्रवेशकर स्वाहा, भगवन् तिस सहस्र शाखावाले तुझविषे मैं शोधन करूहूं; अर्थात् मैं जनके समूहविषे यशस्वीहोवोंस्वाहा, मैं अतिशय अरुश्रेष्ठ अत्यन्त धनवानोंसेभी धनवान्होवों स्वाहा, किंवा हे भगवन् हे पूजनेयोग्य तिस ब्रह्मके कोशरूप तेरे बिषे प्रवेशकरूं, अर्थात् तुझबिषे प्रवेशकरके अनन्यतेरा स्वरूपहीहोवों स्वाहा, हे भगवन् सो तूभी मेरेबिषे प्रवेशकर, अर्थात् मेरी अरु तेरी दोनोंकी अभेद एकताहोवो स्वाहा, हे भगवन् तिससहस्र शाखावाले तुझबिषे मैं अपने पापरूप कर्म्मों को शोधनकरों स्वाहा, "यथाऽऽपः प्रवतायन्ति, यथामासा अहर्जरम्, एवंमां ब्रह्मचारिणः धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा" (जैसे जल नम्रदेश में जाता है अरु जैसे मास सम्वत्सरको, ऐसे धातः ब्रह्मचारी मेरेताईं सर्व ओरसे आवो स्वाहा ; अर्थात् जैसे लोकोंबिषेजल जोहै सो नीचेही स्थलको जाता है, अरु जैसे मासजो हैं सो संवत्सरको जातेहैं [संवत्सरजो है सो दिवसों करके लोकों को जरावान् करता है, एतदर्थ संवत्सरको ,अहर्जर, इस नाम से कहते हैं अथवा दिवसजो हैं सो इससंवत्सरबिषे अन्तरभाव को पावते हैं एतदर्थ सो दिवस वा मास ,अहर्जर, नामसे कहे जाते हैं] इसप्रकार हे सर्वके विधाता ब्रह्मचारी जो है सो मेरे

अर्थ पूर्वादि सर्व दिशाओं से प्राप्तहोवो, स्वाहा। अरु "प्रतिवेशोऽसि प्रमा भाहि प्रमा पद्यस्व" (समीप का ग्रह है मुझको प्रकाशकर आपके अर्थ प्राप्तकर ; अर्थात् हे भगवन् जैसे श्रमके निवारण का स्थान समीपका ग्रहहोताहै तैसे तू समीपके ग्रहवत् समीपका ग्रहहै, अर्थात् तेरेभक्तों को सर्वपाप अरु तिसके फल सर्व दुःख तिनके निवारणका स्थान तू है। एतदर्थ मेरेको प्रकाशकर अरु अपनेअर्थ प्राप्तकर, अर्थात् "शरवत्तन्मयोभवेत्" इसप्रमाणसे लोहके शरकरके बेधेहुये लोहमें बाणतारूप होता है तैसे तू मुझको अपना स्वरूपकर "वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा, धातरायन्तु सर्वतः स्वाहेकञ्च ९॥ ४ ॥" (विस्तार करतीहुई ब्रह्मचारीशम को करहु स्वाहा, सर्वओरसे आवहु स्वाहा एक ; अर्थात् हेधातः (विधाता) विस्तारको करतीहुई, ब्रह्मचारीजोहै सोशमकोकरो स्वाहा, अरु सर्वओरसे प्राप्तहोवो स्वाहा, यह एक है॥ इस विद्याके प्रकरणाबिषे जो लक्ष्मीकी कामना कथनकियाहै सोधनके अर्थहै, अरुधनयज्ञादि कर्म्मों के अर्थ है अरु यज्ञादि कर्म संचित पापों के विनाशार्थ है अरु पापों के विनाशहुये ब्रह्मविद्या प्रकाशती है। तथास्मृतिः "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्यकर्म्मणः। यथाऽऽदर्शतलेप्रख्ये पश्यन्त्यात्मानमात्मनीति" पुरुषों को पापकर्मके क्षयहुये ज्ञान उपजता है। जैसे स्वच्छ दर्पणबिषे मुख देखते हैं तैसे, आत्मा (बुद्धि) बिषे (आत्मासाक्षी) को देखते हैं। इसस्मृति वाक्य प्रमाणसे ९॥ इतिचतुर्थोऽनुवाकः॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः॥

हेसौम्य, [पूर्वकहे अर्थके अनुवाद पूर्वक अग्रिम कहनेके अनुवादके सम्बन्धसे कहते हैं यहां यहअर्थ है कि व्याहृतियों को श्रद्धासे ग्रहणकिया होनेसे, तिनको परित्यागकरके उपदेशकिया जो ब्रह्म सो बुद्धिबिषे स्थिरताको पावतानहीं, एतदर्थ व्याहृतिरूप

भूर्भुवःस्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु हस्मैतां चतुर्थी । महाचमस्य प्रवेदयते । मह इति तद्ब्रह्म । स आत्मा । अंगान्यन्यादेवताः । भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । स्व इत्यसौ लोकः १० ॥

शरीरवाला हिरण्यगर्भनामक ब्रह्महृदयकेमध्य ध्येयहोनेसे उपदेशकरते हैं] इसप्रकार बाणकेसंबंधरूप संहिताको विषय करने वाली उपासनाकही।तिसके पश्चात् बुद्धिकी कामना अरु लक्ष्मी की कामना के मंत्रकहे । सो मंत्र परम्पराकरके ब्रह्मविद्याके उपयोगार्थही है । यह सूचनकिया । अब तिसके अनन्तर व्याहृति रूप ब्रह्मकीहृदयके मध्य स्वाराज्य फलवाली उपासना कहते हैं । "। भूर्भुवः स्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामुहस्मैतांचतुर्थी । महाचमस्य प्रवेदयते" [भूः भुवः स्वः, यह प्रसिद्ध जो तीन व्याहृतियां स्मरण करते हैं तिनके मध्य इस चतुर्थ को महाचमस जानताहुआ] अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, यह प्रसिद्ध जो तीन व्याहृतियां । कि जिनको गायत्री आदिक मन्त्रों के साथ स्मरण करते हैं । तिनके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महलोक है तिस चतुर्थ व्याहृति को महाचमसका पुत्र महाचमस्य नामवाला ऋषि है सो जानता (देखता) हुआ "। मह इति ब्रह्म, स आत्मा, अंगान्यन्या देवताः, भूरिति वा अयंलोकः, भुव इत्यन्तरिक्षम् , स्व इत्यसौलोकः " [मह ऐसी सो ब्रह्महै, सो आत्मा है, अन्य देवता अंग हैं, भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोकहै, भुवर् यह अन्तरिक्षहै, स्वर् ऐसा वह (स्वर्ग) लोक है; अर्थात् यहां उपदेश से जो यह महाचमस्य ऋषिने देखीहुई महर् ऐसी व्याहृति है [महर् इस व्याहृतिविषे अंगी ब्रह्मकी दृष्टि करने को योग्यहै । तिस व्याहृति औ ब्रह्म वा अंग अंगीविषे क्या तुल्यता है । तहां कहते हैं , यहां यह अर्थ है कि , जैसे देवदत्त के पादादिक अंग हैं अरु देहका मध्यभाग अंगी है, तिसको अन्य अंगों का आत्मा कहते हैं क्योंकि

महइत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोकामहीयन्ते॥ भूरिति वा अग्निः। भुवइति वायुः। स्वरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योती २ षिमहीयन्ते॥भूरिति वा ऋचः। भुव इतिसामानि। स्वरिति यजू २ षि ११॥

वो सर्व अंगोंविषे व्याप्त है तातें। तैसेही महर्लोकरूप जो व्याहृति है सो हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मका मध्यभाग है अतएव उसको आत्मा ऐसी कल्पना करते हैं। अरु अन्य व्याहृतियां जो हैं सो पादादिक अवयवोंके भावसे कल्पना करते हैं तहां प्रथम व्याहृति दोनों पाद स्थानी है, अरु द्वितीय व्याहृति दोनों बाहु स्थानी है, अरु तृतीया व्याहृति शिरस्थानी है]सो ब्रह्म है। किस तुल्यता से। तहां कहते हैं। जिसकरके ब्रह्म महत् है अरु व्याहृति महर् हैं, तिसकरके उनकी एकता बने है। पुनः सो महर् क्याहै। सो आत्माहै। अरु जिसकरके वो महर्व्याप्तिरूप कर्मवान् है तिसही से सो आत्माहै। अरु अन्य जो व्याहृतिरूप लोक,देव, वेद, औ प्राणहैं, सो जिसकरके"मह इतिब्रह्म"महर् ब्रह्महै,। इस अग्रिम कहने के वाक्य के कथनकिये व्याहृतिरूप ब्रह्म के देव, लोक, आदिक सर्व अवयव रूप हैं। अरु जिसकरके सो सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म अरु अन्नरूप करके व्याप्त होतेहैं, एतदर्थ अन्य देवता जो हैं सो ब्रह्मके पादादिक अवयव हैं। यहां जो देवता का ग्रहण है सो उक्त लोकादिकों के ग्रहणार्थहै। अरु जिसकरके "मह इति ब्रह्म" महर् ब्रह्म है,। इस अग्रिम कहने के वाक्यकरके कथनकिये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देव, लोक, आदिक सर्वअवयवरूप हैं, याते सूर्यादिकों करके लोकादिक वृद्धि को पावते हैं। इसप्रकार आगे श्रुति कहती है भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोक है। भुवर् यह अन्तरिक्ष है। स्वर् ऐसा यह स्वर्गलोक है १०॥

हे सौम्य! मह इत्यादित्यः, आदित्येनवाव सर्वेलोकामही-

मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदामहीयन्ते ॥ भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । स्वरितिव्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वावसर्वेप्राणामहीयन्ते ॥ तावा एताश्चतस्रश्चतुर्द्धा चतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ॥ तायो वेद सवेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति ॥ असौ लोको यजूंषिवेदहेच ॥१२॥ इतिपञ्चमो ऽनुवाकः ॥

यन्ते " ' महर् यह सूर्य है, सूर्यसे प्रसिद्ध सर्वलोक वृद्धि को पावते हैं ; " भूरितिवा अग्निः । भुव इतिवायुः । स्वरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते " ' भूः यह प्रसिद्ध अग्निहै, भुवर् यह वायु है, स्वर् यह सूर्य्य है, महर् यह चन्द्रमा है, चन्द्रमासे प्रसिद्ध सर्वज्योति (तारा) वृद्धिको पावतेहैं ; अरु " भूरिति वा ऋचः, भुवइति सामानि, स्वरिति यजूंषि " ' भूः यहप्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है, भुवर् यह (सामवेद) है, स्वर् यह यजुर्वेद है ११ ; ॥

हे सौम्य, " मह इतिब्रह्म, ब्रह्मणा वाव सर्वेवेदामहीयन्ते " ' महर् यह ब्रह्म (ॐकार) है, ब्रह्मसे प्रसिद्ध सर्ववेद वृद्धिको पावते हैं ; अरु "भूरिति वै प्राणःभुवरित्यपानः, स्वरितिव्यानः, महइत्यन्नम्, अन्नेनवाव सर्वेप्राणामहीयन्ते " ' भूः यहप्रसिद्ध प्राणहै,भुवर् यह अपानहै, स्वर् यह व्यानहै,महर् यह अन्नहै,अन्न से प्रसिद्ध सर्वप्राण वृद्धिको पावते हैं ; अरु " ता वाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः,तायोवेदसवेदब्रह्म " ' सो प्रसिद्ध ऐसीचार व्याहृतियां चारचार हुईं चारप्रकार की होती हैं तिनको जो जानताहै सो ब्रह्मको जानताहै ; अर्थात् [एक एक व्याहृतियां जब चारचार प्रकारकी चिन्तन करते हैं तबषोडश कलात्मक पुरुष उपासना किया होता है इस अभिप्राय करके संक्षेपसे कहते हैं] सो प्रसिद्ध जे भूः भुवर् स्वर् अरु महर् इस प्रकारकी जो चार व्याहृतियां हैं, सो व्याहृतियां जैसे कल्पना

करी है, तैसेही तिनका उपदेशजो है सो उपासनाके नियमार्थ है, सो व्याहृतियां जैसे कथन करी है, तिसप्रकार तिनकोजो जानता है सो ब्रह्मको जानता है ।ब्रह्मभावरूप स्वाराज्य की प्राप्तिकेहुये "सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति, असौलोको यजूंषि वेदद्वेच " (सर्व देवता इसके अर्थ बलिदानको ल्यावते हैं, यह लोक अरु यजुर्वेद दोनोंको जानता है ; अर्थात् सर्वदेवता अंग भूतहुये उस विद्वान्के अर्थ बलिदान ल्यावते हैं अरु इसलोक अरु यजुर्वेद इनदोनोंको जानता है॥ ननु "तद्ब्रह्मस आत्मेति " सो ब्रह्महै सो आत्माहै, इसप्रकार ब्रह्मको जानेहुये अज्ञात-वत् " सवेदब्रह्मेति " सो ब्रह्मको जानता है इस प्रकार कहना योग्य नहीं [अधिकारकी अविधिरूप वाक्यबिषे ब्रह्मका ज्ञान फलपने करके कहते नहीं, किन्तु अग्रिम कहनेके अनुवाक से इसही ब्रह्मकी उपासनाबिषे गुणका विधान होगा, इसप्रकार सूचना करने को यह कहते हैं] सो कहना बने नहीं, क्योंकि शास्त्र उसको विशेष कहनेकी इच्छावाला है ताते, यह दोषनहीं है, अरु यद्यपि चतुर्थ व्याहृति रूप ब्रह्म है, इसप्रकार जाना है, यह कहना सत्य है, तथापि उसका हृदय के मध्य प्राप्त होनेके योग्यपने अरु मनोमयपनेसे आदि लेके "शान्ति समृद्धमिति " रूप शान्तिसे समृद्धिको पाया, इस विशेषण पर्यन्त जो विशेष्य है, सो नहीं जाना है । एतदर्थ विशेषण अरु विशेष्यरूप धर्मका समूह जनावते हैं । इसप्रकार तिसके कहनेकी इच्छावाला जो शास्त्र सो अज्ञातवत् ब्रह्मको मानके " सवेद ब्रह्मेति " सो ब्रह्म को जानता है, । इसप्रकार कहता है । एतदर्थ यह दोष नहीं है अरु जिसकरके जो अग्रिम कहने के धर्म्म के समूह करके युक्त ब्रह्म को जानता है सोई ब्रह्मको जानताहै, यह अभिप्राय है । एतदर्थ अग्रिम कहने के षष्ठ अनुवाकसे इस पंचम अनुवाककी एक वाक्यताहै । अरुइन पंचम अरुषष्ठ दोनों अनुवाकों बिषे उ-पासनाभी एकही है, क्योंकि [जब व्याहृतिरूप अवयववालाही

स य एषोंतर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयंपुरुषो मनो मयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेणतालुकेयएषस्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले ॥ भूरित्यग्नौप्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ १३ ॥

ब्रह्म आगे उपास्य कहते हैं, तबहीं उपासक को प्रथम व्याहृति रूप अग्निविषे स्थितिका कथन घटितहै । एतदर्थ व्याहृति रूप देवताकी प्राप्तिके कथनरूप उपासनाकी एकताविषे लिंगको कहते हैं] " भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठतीति " भू यह अग्निविषे स्थित होता है, इत्यादि रूप वाक्यमें उपासनाकी एकताविषे जो लिंग आगे कहाहै, तिसलिंग से और भिन्न [एकठिकाने प्रधान विद्या की विधिहै, अरु दूसरे ठिकाने गुणविधि है इसप्रकार अनुवाक भेदके कृत अर्थहुये अन्यप्रकार से असिद्ध भेदक प्रमाण प्रतीत होनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं] उपासना के बाधक शब्द के अभावसे यह उपासना की एकताविषे कहा जो लिंग सो युक्तहै। अरु जिसकरके यहां " वेदोपासितव्य " जानताहै सो उपासना करनेयोग्य है,। इसप्रकार भिन्न उपासनाका बोधक कोईभी शब्द नहींहै, क्योंकि व्याहृतिके बोधक पंचम अनुवाकविषे " ता यो वेदेति " तिसको जो जानता है,। ऐसा आगे कहनेका अर्थ है ताते। एतदर्थ उपासनाका भेदक शब्द नहीं है। अरु तिन व्याहृतिके बोधक पंचम अनुवाक का अग्रिम कहनेके अर्थ करके युक्तपना जो है सो " तद्विशेषविवक्षुत्वादिति " शास्त्र को, तिसके विशेष के कहनेकी इच्छावाला होने से, इत्यादि वाक्यों करके हमने पूर्वही कहा है १२ ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, " स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः, तस्मिन्नयं पुरुषोमनोमयः " (सो जो यह हृदय के भीतर आकाशहै, तिसविषे यह

पुरुष है, मनोमय है ; अर्थात् भूः भुवर् स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप जो अन्यदेवता है, सो " मह इति ब्रह्म " महर् ब्रह्म है, इस वाक्यसे हिरण्यगर्भ व्याहृतिरूप ब्रह्म के अंग हैं, इसप्रकार कहा । अरु अब जिसके वो देवता अंगभूत हैं,तिस इस ब्रह्म के साक्षात् ज्ञानार्थ अरु उपासनार्थ विष्णुके स्थानापन्न शालिग्रामवत् हृदयादि आकाशरूप स्थान कहतेहैं । अरु जिस करके तिस स्थानबिषे उपासना किया हुआ मनोमयपने आदिक धर्मकरके युक्त सो ब्रह्म,हाथबिषे आमलक नामवाला फल वा निर्मलजलवत् साक्षात् जाना जाता है । एतदर्थ सो स्थान अरु सर्वात्मभावकी प्राप्तिके अर्थ मार्ग कहने को योग्य है, इस अभिप्राय से यह षष्ठ अनुवाक का आरंभ करते हैं । सो प्रसिद्ध जो यह हृदय के भीतर (हाथ के कमंडलु के अन्तर के आकाशवत् । वा वेणु (बांस) के परव (पोइ) के मध्य आकाशवत्) आकाश है तिस बिषे सो यह पुरुष है, अर्थात् शरीर रूप पुरी बिषे पूर्णता से व्याप्त होवे । वा पुरीतती नाडीबिषे सोवता होवे । वा पृथिवी आदि लोक जिसकरके पूर्णहैं, एतदर्थ यहपुरुषहै ऐसा कहते हैं । सो पुरुष मनोमय है, अर्थात् ज्ञानरूप क्रियावाला होनेसे मन जो बिज्ञानबुद्धि, तिस रूप है, क्योंकि तिसबिषे प्रतीयमान होता है ताते । वा जिसकरके मनुष्य मनन करते हैं ताते उसको मन कहते हैं । ताते ऐसा जो अन्तःकरण आकाशहै सो मनहै । अरु जिस करके पुरुष तिस मनका अभिमानी वा मनरूप लिंग ((चिह्न वा उपलक्षण) । वाला है, तिस करके । पुरुष को । तिस मनोमय रूप कहते हैं । अरु सो पुरुष अमृतरूप होने से मरण धर्म रहित अमर है, अरु हिरण्य (प्रकाश) मय है । अब तिस उक्तप्रकार के लक्षणवाले हृदयाकाश बिषे साक्षात्कार किये से विद्वानके आत्मरूप पुरुष के, ऐसे स्वरूप के ज्ञानार्थ मार्ग कहते हैं । हृदयसे ऊपर प्रवृत्त हुई अरु योगशास्त्रबिषे प्रसिद्ध जो सुषुम्णा नाम्नी नाडी है सो मुखसे प्रसिद्ध " अन्तरेण तालुके

स्वरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्तिसमृद्धममृत इति प्राचीनयोग्योपास्व ॥ वायावमृतमेकं च १४ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ६ ॥

य एषस्तन इवावलम्बते " (तालुदेशके मध्य जो यह दोनों स्तनवत् स्थित है ; तालुदेशके मध्य प्राप्तहुई है, अरु जो दोनों तालू के मध्य स्तनवत् मांस का पिंड स्थित है तिसके मध्य प्राप्त है । अरु "सेन्द्रयोनिः, यत्रासौ केशान्तो विवर्त्तते व्यपोह्य शीर्षे कपाले " (जहां यह केशों का अन्त विभाग करके वर्त्तताहै मस्तक के कपाल को भेदनकरके सो इन्द्रयोनिहै ; अर्थात् जहां यह केश का अन्त कहिये मूल विभाग करके वर्त्तता है ऐसा जो मस्तक देश तिस देशको प्राप्त होके मस्तक के कपाल को भेदन करके जो निकलीहै, सो सुषुम्णा नाम्नी नाडी इन्द्रयोनिहै, अर्थात् इन्द्र जो ब्रह्म तिसकी नामक मार्ग कहिये स्वरूप प्राप्तिका द्वार है । अरु तिसही नाडीसे मनोमय रूप आत्माका देखनेवाला विद्वान् मस्तकसेनिकलके "भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति, भुवइतिवायौ" (भूः इस अग्निविषे स्थितहोता है, भुवर् इस वायुविषे ; अर्थात् इस लोकका अधिष्ठाता जो भूः इस व्याहृतिरूप महत् ब्रह्मांडका अंग रूप अग्निहै तिस अग्निविषे स्थित होताहै, अर्थात् अग्निरूपसे इसलोकको पावता है । अरु तैसेही भुवर् इस द्वितीय व्याहृति रूप वायु विषे स्थित होताहै १३ ॥

हे सौम्य, "स्वरित्यादित्ये, महइति ब्रह्मणि, आप्नोतिस्वाराज्यम्, आप्नोतिमनसस्पतिम् " (स्वर् इस सूर्य्यविषे, महर् इस ब्रह्मविषे, स्वाराज्यको पावताहै, मनके पतिको पावताहै ; अर्थात् स्वर् इस तृतीय व्याहृतिरूप सूर्य्यविषे स्थितहोताहै । अरु महर्

इसअंगी (ब्रह्मस्वरूप) भूत चतुर्थ व्याहृतिरूप ब्रह्मविषे स्थित होताहै । तिन विषे आत्मभावसे स्थितहोयके ब्रह्मभूत हुआ स्वाराज्यको पावताहै, अर्थात् [स्वाराज्य जो है सो जगत्के स्रष्टापने आदिकरूप निरंकुश ऐश्वर्यरूप नहीं होताहै,इसप्रकारकहते हैं] जैसे ब्रह्महै तैसे अंगभूत देवताओंका अधिपति होताहै,अरु सर्व देव अंगभूत हुये जैसे ब्रह्मको बलिदेते हैं, तैसे इसके अर्थ बलिदान (भेट) देतेहैं । अरु इसप्रकार जाननेवाला जो विद्वान्हैसो मनके पतिको पावताहै । अरु जिसकरके ब्रह्म सर्वात्माहै अरु जिसकरके सो सर्व मनकरके मननकरतेहैं, इसहीसे वो ब्रह्म सर्व मनोंका पतिहै तिसको विद्वान् पावताहै । अरु " वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः, एतत्तदो भवति " ; वाणियोंकापति, चक्षुओंका पति, श्रोत्रोंका पति अरु विज्ञानो (बुद्धियों) का पति होताहै ; अर्थात् यह सर्वात्मा होनेसे सर्व प्राणियोंके करणों (इन्द्रियों) करके । सम्पन्न होनेसे, तिस इन्द्रियोंवाला होताहै किंवा ; ताते भी यह अत्यन्त अधिक होताहै ; अर्थात् । तातेभी यहअग्रिम कहनेका ब्रह्मका विशेषण अत्यन्त अधिक होताहै । प्र० सो क्याहै । तहां कहतेहैं " आकाशशरीरंब्रह्म,सत्यात्म प्राणारामं, मनआनन्दम् , शान्तिसमृद्धममृत " ; आकाश शरीरवाला ब्रह्म, सत्यस्वरूपहै, प्राणारामहै, मन आनन्दहै, शान्ति समृद्धिहै, अमृत है, ; अर्थात् आकाशहै शरीर जिसका वा आकाशवत् सूक्ष्महै शरीर जिसका ऐसा जो यह आकाश शरीरवाला इस प्रसंगविषे प्राप्तहुआ ब्रह्म सो सत्यस्वरूप है । मूर्त्त अरु अमूर्त्तमय सत्य है स्वरूप कहिये स्वभाव जिसका ऐसा जो यह ब्रह्म सो सत्यरूप कहतेहैं । अरु सो प्राणाराम ऐसाकहतेहैं । वा प्राणोंकाहै आराम (रमण) जिस विषे ऐसा जो ब्रह्म तिसको प्राणाराम कहते हैं । अरु सो मन आनन्दहै । अर्थात् मनहै आनन्दरूप सुखकारी जिसको ऐसा जो ब्रह्म तिसको मन आनन्दकहतेहैं । अरु सो शांति समृद्धिहै । जिस करके शांति अरु समृद्धिको पायाहुआ सो ब्रह्म

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्नि-र्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि। आप ओषधयोवनस्प-तयः। आकाश आत्माइत्यधिभूतम्। अथाध्यात्मम्। प्राणोऽपानोव्यान उदानःसमानः।चक्षुःश्रोत्रंमनोवाक्त्वक्। चर्म्ममांसᳪं स्नावास्थिमज्जा। एतदधिविधायऋ-षिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इदᳪंसर्वम्। पाङ्क्तेनैवपाङ्क्तᳪंस्पृणोतीतिसर्वमेकञ्च १५ ॥ इतिसप्तमोऽनुवाकः७।

प्राप्तहोता है एतदर्थ उसको शांति समृद्धि कहते हैं, वा शांति से समृद्धि कहिये विभूतिको पायाहुआ प्राप्तहोवे है अतएव उसको शान्ति समृद्धि कहतेहैं। अरु सो अमृतहै। अर्थात् जिसकरके सो ब्रह्म मरण धर्मसे रहितहै तिसही करके अमरहै। यहांजो अत्यंत अधिक यहविशेषणहै तहांही पूर्व वाक्यविषे उक्त मनोमय आदिक पुरुषके विशेषण देखलेने " इति प्राचीनयोग्योपास्व, वायाव-मृतमेकंच " ऐसे प्राचीनयोग्यउपासनाकर वायुविषे अरु अमृत रूप एकहै ; अर्थात् इसप्रकार मनोमयपने आदि धर्मोंकरके वि-शिष्ट उक्त प्रकारका जो ब्रह्महै तिसको हेप्राचीनयोग्यशिष्य तू उपासना कर। यह जो आचार्यके वचनोंका कथन है सो आदरार्थ है। वायु विषे अरु अमृतरूप एकहै ॥ १४ ॥ इतिषष्ठोनुवाकः ६॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, आगेका अनुवाक भी अन्यप्रकारसे हिरण्यगर्भ कीही उपासना को विषय करनेवाला है इसप्रकार कहतेहैं]जो यह उपासना करने योग्य व्याहृतिरूप ब्रह्मकहा, तिसही का पृथिवी आदिक पांक्त कहिये पांचके समुदाय रूपसे उपासना कहते हैं। अरु जिसकरके पृथिवी आदिकही पांचसंख्याके योग से पंक्ति नामक छन्दका सम्पादनहोवेहै,अतएव पृथिवी आदिक सर्वको पांक्तपना है। अरु यज्ञजो हैं सो पांक्तहै " पांक्तोयज्ञ इति

श्रुतेः" इस श्रुति प्रमाणसे । पांच पादजो है सो पंक्तिरूपहै, तिसवाला जो वेदका कोई छन्द है, तिसको भी पंक्ति कहते हैं । अरु जिस करके यज्ञजोहै सो पत्नी, यजमान, दैव, मानुष, अरु वित्त, इन पांच करके सम्पादन करते हैं। एतदर्थ पंक्तिछन्दके सादृश्य के सम्पादनसे यह पांक्त कहते हैं तिस हेतुकरके जो यह लोक से आदिलेके आत्मा पर्यन्त जगत् है तिसको यज्ञ भावरूप पांक्त कल्पना करते हैं। तिस कल्पित यज्ञ करके पांक्तरूप प्रजापति को पावता है ॥ सो यह पृथिवी आदिक पांक्तकैसेहैं । तहांकहते हैं "। पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशो ऽवान्तरदिशः, अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि, आपओषधयो वनस्पतयः, आकाश आत्मा इत्यधिभूतम् "। "पृथिवी अन्तरिक्ष स्वर्गलोकदिशा अरु अवान्तर दिश, अग्निवायु सूर्य चन्द्रमा अरु नक्षत्र, जल ओषधियां वनस्पतियां आकाश अरु आत्मा यहअधिभूत है, अर्थात्, पृथिवी अन्तरिक्ष, स्वर्गलोक, दिशा, अवान्तरदिशा, इसप्रकार का यह लोकरूप पांक्तहै ॥ अरु अग्नि वायु, सूर्य, चन्द्रमा, अरुनक्षत्र, यह देवतारूप पांक्तहै ॥ अरु जल, ओषधियां, वनस्पतियां, आकाश, अरु आत्मा, यह भूतरूपपांक्तहै । यहां आत्मा जो कहा, सो विराट्रूपहुये आत्मा के अधिकार कहिये मुख्यतासे है । इसप्रकार अधिभूतरूप पांक्तकहा । यहां अधिभूतजोहै सो अधिलोक अरु अधिदैवतरूप, दोनों पांक्तों के उपलक्षणार्थ है, क्योंकि यहां लोक पांक्त अरु देवपांक्तको कथनकियाहै तातें । अथाध्यात्मम्, प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः, चक्षुः श्रोत्रंमनोवाक्त्वक्, चर्म्म मांसंस्नावास्थिमज्जा, एतदधि विधायऋषिरवोचत "। "अब अध्यात्म कहतेहैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षुः, श्रोत्र, मन, वाक्, त्वचा, । चर्म्म, मांस, नाडी, अस्थि, मज्जा, । इस प्रकार कल्पना करके ऋषि कहताहुआ ? अर्थात् अब इसके अनन्तर अध्यात्मरूप तीन पांक्तको कहतेहैं । प्राण अपान व्यान उदान अरु समान, यह वायुरूप पांक्तहै ।

ॐमितिब्रह्म । ॐमितीदꣳ सर्व्वम् । ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्म वाऽअप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमितिसामानिगायन्ति । ॐꣳशोमितिशस्त्राणिशꣳसन्ति । ॐमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ॐमितिब्रह्मा प्रसौति । ॐमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ॐमितिब्राह्मणःप्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश १६ ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

अरु चक्षु श्रोत्र मन वाक् अरु त्वचा, यह इन्द्रियरूप पांक्तहै । अरु चर्म मांस नाड़ी अस्थि अरु मज्जा, यह धातुरूप पांक्तहै ॥ एतनाही यह सर्व अध्यात्मअन्तर अरुबाह्यरूप जगत्पांक्तरूपही है, इसप्रकार कल्पनाकरके वेद वा तिसके ज्ञानकरके सम्पन्नकोई एक ऋषिजोहै सो कहताहुआ । क्या कहताहुआ । तहां कहते है । "पाङ्क्तं वा इदꣳ सर्वम्, पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तꣳ स्पृणोतीति, सर्वमेकञ्च" । (प्रसिद्ध यह सर्व पांक्त है पांक्तसेही पांक्तकोपूर्ण करहै, सर्वएकहै) अर्थात् प्रसिद्धयहसर्व पांक्तहै, अध्यात्मरूपपांक्तसे ही संख्याकी तुल्यतासे बाह्य पांक्तको पूर्ण करे हैं [निकृष्ट विषे उत्कृष्ट की दृष्टि फलवाली है, इसन्यायसे बाह्यपांक्तरूप से आध्यात्मिक तीनपांक्त जानने को योग्य हैं, इस अभिप्रायसे कहते हैं] अर्थात् एकरूप करके जानता है । अर्थ यह जो यह सर्व पांक्त है, इस प्रकार जो जानता है । सो प्रजापति रूपही होता है ॥ सर्व एकहै १५ इति सप्तमोऽनुवाकः७ ॥

अथ अष्टमोऽनुवाकः

हे सौम्य, [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक अग्रिम अष्टम अनुवाकको प्रकट करते हैं] उक्तप्रकार प्रथम व्याहृतिरूप ब्रह्मोपासना कही । तदनन्तर पांक्तरूपसे ब्रह्मोपासना कही । [यहांयहअर्थ है कि जिसकरके वेदवेत्ता पुरुषोंकी सर्व क्रिया ॐकारके उच्चारणप-

र्वक प्रवर्त्त होतीहै, क्योंकि तिस ॐकारका श्रद्धा से ग्रहण किया होनेसे, अरु तिसका त्यागके उपदेश किया ब्रह्मबुद्धि विषे आरूढ़ होता नहीं, एतदर्थ तिस ॐकारको लेके उपासना का निर्धार करते हैं] अब सर्व उपासनाके अंगभूत ॐकारकी उपासना कहते हैं। जिसकरके पर अरु अपरब्रह्मकी दृष्टिसे उपासनाकरते हैं, ऐसा जो ॐकार सो शब्दमात्र है, तथापि सो पर अरु अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै। अरु विष्णुकी प्रतिमावत् सो ॐकार परब्रह्म अरु अपरब्रह्मका आश्रय (आलम्बन) है "एतेनैवायतनेनैकतरमन्वेतीति श्रुतेः"। इसही आश्रय करके दोनोंमेंसे एकको पावता है, इस श्रुतिप्रमाणसे,। अतएव यह ॐकार पर अरु अपर ब्रह्म की प्राप्तिका साधन संभवे है "। ॐमितिब्रह्म, ॐमितीदꣳ सर्व्वम्"। ॐ इसप्रकार का ब्रह्महै, ॐ इसप्रकारका यह सर्व्वहै, अर्थात् ॐइसप्रकारकाशब्दरूपब्रह्महै, इसप्रकारमनकरके उपासनाकरे। अरु ॐइसप्रकारका शब्द यह सर्व है, अर्थात् शब्दरूप यह सर्व प्रपंच ॐकारसे व्याप्त है "।तद्यथा शंकुना इति श्रुत्यन्तरात्"। सो जैसे शंकु करके,। इसअन्य श्रुतिके प्रमाणसे। अरु जो वाच्य है सो वाचकके आधीनहै, एतदर्थ यह सर्व ॐकारहै ऐसा कहतेहैं अब अग्रिम कहनेका जोग्रंथहै सो ॐकारकी स्तुत्यर्थ है, क्योंकि तिस ॐकारको उपास्यपना है ताते "। ॐमित्यतदनुकृतिर्हस्मवा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयंति"। ॐ इसप्रकारका अनुकरण है प्रसिद्धहै, ॐ इसप्रकार श्रवणकराओ, श्रवण करावते हैं, अर्थात् ॐ इसप्रकारका यह अनुकरण है। अरु जाते अन्यकरके "करोमि यास्यामि वेति" कर्त्ताहों पावताहों इस प्रकार किये कथनको श्रवण करके अन्यपुरुष को ॐऐसा अनुकरण करता है। अतएव ॐकार अनुकरण है, यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै। अरु ॐ इस प्रकार श्रवण कराओ, इस कथनको पायके पुरुष तिस ॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवणकरावते हैं "।ॐमिति सामानिगायन्ति, ॐꣳ शोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति, ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति"।

१६ॐइसप्रकार सामकोगायनकरते हैं, ॐशोंऐसे शास्त्रकथनकरे हैं, ॐइसप्रकार अध्वर्यु प्रतिगर प्रतिउच्चारत्ताहै; अर्थात् तैसेही सामवेदके गानकरनेवाले ॐइसप्रकार सामको गायनकरते हैं, अरुजो ऋचाके कहनेवाले हैं सो, ॐ शो, इसप्रकार गानरहित ऋचाको कहते हैं, तैसेही अध्वर्यु, यज्ञविषे यजुर्वेदी ब्राह्मण ऋत्विज्, सोॐ ऐसे प्रतिगर, वेदके वाक्य विशेषको, होमकरनेवालेके कथनकथन के प्रति उच्चार करता है, "ॐमिति ब्रह्माप्रसौति, ॐमित्यग्निहोत्रमनुजानाति, ॐमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह। ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नुवन्ति॥ ॐदश" ब्रह्मा ॐ ऐसा अनुमोदन करता है, ॐ ऐसा अग्निहोत्र को अनुमोदन करताहै, ब्राह्मण ॐ ऐसेही कहने को इच्छताहुआ ॐ कहताहै ब्रह्मको पावोंगा, ऐसे ब्रह्मको ही पावताहै वा ब्रह्मको प्राप्तहोवोंगा, ॐ दश, अर्थात् ब्रह्मा यज्ञ कर्मका कर्त्ता वा यज्ञके दक्षिण भागमें तूष्णीं बैठनेवाला ऋत्विज् विशेष, सो ॐ इसप्रकार अनुमोदन करताहै, अरु ॐ इसप्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करे है, अर्थात् होताकरके "जुहोमीत्युक्तः" हवन करता हौं इसप्रकार कथन कियेहुये, ॐ ऐसाही अनुमोदन करता है, अरु जो ब्राह्मणहै सो ॐ ऐसेही कहने को इच्छताहुआ अध्ययन करताहुआ ॐ ऐसेही कहताहै, अर्थात् अध्ययन करनेको ॐ ऐसा ग्रहण करताहै। अरु ब्रह्मनामकवेद को पावोंगा, इसप्रकार इच्छताहुआ ब्रह्मको प्राप्तहोताहै। अथवा ब्रह्मनामक परमात्मा को प्राप्तहोवोंगा, इसप्रकार आत्माको प्राप्तहोनेको इच्छताहुआ ॐ इसप्रकारही कहता है। सोचैतन्य रूप ॐकारसे ब्रह्मको पावताही है॥ इस प्रकार ॐकारपूर्वक प्रवृत्तहुई क्रियाको फलवान् पना (साफल्यता) है, अतएव ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासनाकरे, यह समस्त वाक्योंका तात्पर्यार्थ है॥ ॐ दश १६ इत्यष्टमोऽनुवाकः ८॥

---※---

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच ।सत्यञ्चस्वाध्यायप्र-वचनेच ।तपश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । दमश्चस्वाध्याय प्रवचनेच । शमश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचनेच । अग्निहोत्रञ्चस्वाध्यायप्रवचने-च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचनेच । मानुषश्चस्वा-ध्यायप्रवचनेच ।प्रजाचस्वाध्यायप्रवचनेच। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचनेच।प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचनेच ।स त्यमिति सत्यवचा राथीतरः।तपइति तपो नित्यः पौरुशि ष्टिः स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धितप स्तद्धितपः । प्रजाचस्वाध्यायप्रवचनेच षट्च १७॥इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, " विज्ञानादेवाप्नोति स्वाराज्यमिति " विज्ञानसेही स्वाराज्य को प्राप्त होता है, इसप्रकार कथन कियाहै ताते श्रौत (वेदोक्त) अरु स्मार्त (स्मृतिउक्त)रूप कर्म्मोंका व्यर्थपना प्राप्त हुआ, एतदर्थ उनको व्यर्थपना मत प्राप्तहो, इसप्रकार कर्म्मोंके पुरुषार्थ प्राति साधन भावके देखावने के अर्थ यह अग्रिम अनु-वाकरूप ग्रंथका प्रारंभ है । " ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच , स-त्यञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच , तपश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, दमश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, शमश्च स्वाध्यायप्रवचनेच " (ऋत पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, सत्य पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, तप पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, दम पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, शम पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन? अर्थात् , ऋत, कहिये शास्त्रा-दिकों करके बुद्धिविषे निश्चित सूक्ष्म अर्थका होना, अरु , स्वा-ध्याय, कहिये वेदादि अध्ययनकरना, अरु ,प्रवचन,कहिये अध्य-यन करावना वा वेदाध्ययन ब्रह्मयज्ञ का करना, यह सर्वप्रकार

अनुष्ठान करने योग्यहै, क्योंकि "स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" ऐसाआगेकहेंगे ताते। अरु ,सत्य,कहिये सत्यबोलना वा यथार्थ कथनकिया अर्थ इसको सत्य कहते हैं, अरु स्वाध्याय अरु प्रवचन यहअनुष्ठान करनेकोयोग्यहै। अरु,तप,कहिये कृच्छ्र चान्द्रायण प्राजापत्यादि व्रत अरु स्वाध्यायप्रवचन, यह करने योग्य हैं। अरु ,दम, बाह्य चक्षुरादि इन्द्रियोंका विषयों से निग्रह, अरु स्वाध्याय प्रवचन यह करने योग्यहैं। अरु ,शम, कहिये मनका निग्रह, अरु स्वाध्याय औ प्रवचन यह करने योग्यहै। अर्थात् स्वाध्याय अरु प्रवचनका जो करना है सो उक्तप्रकारके ,ऋत, सत्य, तप, दम, शम, इनकरके युक्तही कर्त्तव्य है, नतु मिथ्याचार है "अग्नयश्च स्वाध्याय प्रवचनेच, अग्निहोत्रञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच,अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच, प्रजाच स्वाध्यायप्रवचनेच, प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचनेच,प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचनेच," ,अग्नि अरुस्वाध्याय प्रवचन, अग्निहोत्र अरुस्वाध्याय प्रवचन,अतिथि अरुस्वाध्यायप्रवचन,अरुमानुष अरुस्वाध्यायप्रवचन, प्रजाअरुस्वाध्याय प्रवचन, अरु प्रजन अरु स्वाध्यायप्रवचन, प्रजाति अरु स्वाध्याय प्रवचन; अर्थात् अग्निजोहै सोधारणकरनेयोग्यहै अरुतिसकेसाथ हीस्वाध्याय अरु प्रवचन यहभी धारणकरनेयोग्यहै।अरु अग्निहोत्रहवनकरनेयोग्यहै तैसे तिसकेसाथही स्वाध्याय अरु प्रवचन यह भी करनेयोग्यहैं। अरु अतिथिजोहै सो पूजनकरने योग्यहै अरु तिसके साथही स्वाध्याय अरुप्रवचन यहभी करनेयोग्यहै। अरु मानुष कहिये विवाहादिकजे लौकिक व्यवहार सोजैसे जैसे प्राप्त होवें तैसे तैसे तिनका करना योग्य है, अरुतिसके साथही स्वाध्याय औ प्रवचन यहभी करने को योग्य है। अरु प्रजाजो है सो उत्पन्न करने योग्य है। अरु तिसके साथही स्वाध्याय अरु प्रवचन यह भी करनेको योग्यहै अरु प्रजन, कहिये ऋतुकालविषे यथाशास्त्र प्रमाण भार्यागमन कर्त्तव्य योग्य है, अरु

स्वाध्याय प्रवचन यह करनेयोग्यहै। अरु प्रजाति, कहिये पौत्र की उत्पत्ति अर्थात् पौत्रोत्पत्ति होनेसे पुत्रको अपने स्थानापन्न स्थापित करना योग्य है, अरु स्वाध्याय प्रवचन भी साथही करनेयोग्य है,॥। अर्थात् जैसे स्वाध्याय प्रवचन उक्त प्रकारके ऋतसत्य तपदम शमादि करके सहितही करनेको योग्यहै तैसेही अग्नि सेवन से प्रजाति पर्यन्त जो जो कार्य करने को योग्य हैं सो सो उक्त प्रकारके स्वाध्याय प्रवचन करके युक्तही करनेको योग्यहैं॥ यहां इन सर्व कर्म्म करके युक्त पुरुषको भी स्वाध्याय अरु प्रवचन यत्नसे अनुष्ठान करनेयोग्य है, अर्थात् गृहस्थ पुरुष को भी स्वाध्याय प्रवचन के करने बिषे प्रमाद कदापि कर्त्तव्य नहीं। इसप्रयोजनको लेके सर्व कर्म्मोंके साथ स्वाध्याय अरु प्रवचनका ग्रहणहै। अरु स्वाध्यायके आधीन अर्थका ज्ञानहै, अरु अर्थ ज्ञानके आधीन परमश्रेयहै। अरु प्रवचन जो है सो तिसके विस्मरण न होनेके अर्थ है, वा धर्म्मकी वृद्धिके अर्थ है। एतदर्थ स्वाध्याय अरु प्रवचनबिषे आदर करना योग्यही है। सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः, तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः, स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः, तद्धितपस्तद्धितपः। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च षट् च। (सत्यही ऐसे सत्य वचन नाम वाला राथीतर, अरु तपही ऐसे तपोनित्य नामवाला, पौरुशिष्ट, अरु स्वाध्याय अरु प्रवचनही नाक नामवाला मौद्गल्य (मानते हैं) सोई तपहै, प्रजा अरु स्वाध्याय अरु प्रवचन अरु षट्; अर्थात् सत्यही अनुष्ठान करने को योग्य है, इसप्रकार सत्यवचन नामवाला रथीतर नामक कुलका गोत्र कहिये मूलपुरुष ऐसा जो राथीतर आचार्य मानताहै। अरु तपही कर्त्तव्यहै, इसप्रकार तपोनित्य इस नामवाला पुरुशिष्टका पुत्र पौरुशिष्ट आचार्य मानता है। अरु स्वाध्याय अरु प्रवचनही अनुष्ठान करनेकोयोग्यहै, इसप्रकार नाक नामवाला मुद्गल ऋषिका पुत्र मौद्गल्य आचार्य मानता है। जाते सोई स्वाध्याय अरु प्रवचन तपहै, सोई तप

अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्त्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणꣳ सुवर्चसम् । सुमेधा अमृतोऽक्षितः इति । त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । अहꣳ षट् १८ ॥ इति दशमोऽनुवाकः १० ॥

है, ताते सो अनुष्ठान करनेको योग्यहै ॥ पूर्व कथन किये भी सत्य, तप, स्वाध्याय अरु प्रवचनका जो पुनः ग्रहणहै सो आदरार्थ है ॥ प्रजा अरु स्वाध्याय औ प्रवचन अरु षट् यह अनुष्ठानकरने को योग्यही है ॥ १७ ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, ["अहं वृक्षस्यरेरिवा" मैं वृक्षका प्रेरकहूं, इसमंत्र का त्रिशंकुऋषिहै, पंक्तिछंद है, परमात्मा देवताहै, ब्रह्मविद्याकी प्राप्त्यर्थ इसकेजपका विनियोगहै] मैं वृक्षका प्रेरक हौं, इस मंत्र का जो उपदेशहै सो स्वाध्याय कहिये जपकेअर्थ है, अरु स्वाध्याय जो है सो प्रकरणसे विद्याकी उत्पत्तिके अर्थ है । अरुयह प्रकरण विद्याके अर्थ है अन्यके अर्थनहीं, अतएव स्वाध्यायकरके शुद्धहुये अन्तःकरण वाले पुरुषको विद्याकी उत्पत्ति कल्पना करते हैं, अर्थात् कहते हैं "अहंवृक्षस्य रेरिवा कीर्त्तिः पृष्ठं गिरेरिव, ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि" "मैं वृक्षका प्रेरकहौं मेरी पर्वतके पृष्ठवत् कीर्तिहै, ऊर्ध्वपविहौं, सूर्यवतशुद्ध अमृतहौं" अर्थात् मैं उच्छेदरूप संसार वृक्षका अन्तर्यामीरूपसे प्रेरकहौं, अरु मेरी पर्वत के पृष्ठ(शिखर)वत् कीर्ति उठी है, अरु मैं ऊर्ध्व पवित्र हौं अर्थात् जिस मुझ सर्वात्मा का ऊर्ध्व कहिये कारण पवित्र ज्ञानस्वरूप परमात्माहै । "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहविद्यते" इस स्मृति प्रमाणसे । अतएव मैं ऊर्ध्व पवित्र हौं अरु मैं सूर्य्यवत् शुद्ध अमृतरूपहौं, अर्थात् जैसे अनेक श्रुति स्मृतियोंके प्रमाण से सूर्य्य विषे शुद्ध अमृतरूप आत्मतत्त्व है तैसे मैं शुद्ध अमृतमय आत्मतत्त्व हौं । अरु "द्रविणꣳ सुवर्चसम्, सुमेधा अमृतोऽक्षितःइति"

(प्रकाशवान् धन हौं वा प्रकाशवाला धन मुझको प्राप्तहुआ है, सुमेधा हौं अमृतहौं अक्षीण हौं ; अर्थात् मैं सर्व लक्षणवाली शोभन है मेधा (बुद्धि) जिसकी ऐसा सुमेधाहौं, संसारकी उत्पत्ति स्थिति अरु संहार करने रूप कुशलताके योगसे मुझको सुमेधापना है, इसही करके मरणधर्म बर्जित अमृतरूप हौं, अरु अक्षीण कहिये अव्यय क्षरभाव रहित वा अमरता युक्त मैं हौं । इत्यादि ब्राह्मण भाग है " त्रिशंकोर्वेदानुवचनम्, अह ९ षट् " (ऐसा त्रिशंकु का वेदानुवचन है, मैं षट् रूप हौं ; अर्थात् इसप्रकार ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशंकु नाम ऋषिका वेदानुवचन है । वेद जो आत्माकी एकता का विज्ञान तिसकी प्राप्त्यर्थ जो वचन तिसको वेदानुवचन कहते हैं । अरु अपने को कृतकृत्यताकी प्रसिद्धि के अर्थ वामदेव ऋषिवत् त्रिशंकुऋषि ने ऋषि उक्त ज्ञानसे मन्त्र का आम्नाय कहिये आत्म विद्याकोश देखा है, यहअर्थ है ॥ अरु इसमन्त्रका जो जप । बारम्बार मनन । करना है सो आत्मविद्या की उत्पत्ति के अर्थ जानाजाता है । अरु [केवल इसमन्त्रका जपही विद्याके अर्थ है ऐसा नहीं किन्तु पूर्वोक्त कर्म्मभी विद्याके अर्थ है, ऐसा कहते हैं] ' ऋत, इत्यादि नवम अनुवाक विषे कर्म के कहने के आरंभसे लेके वेदानुवचन पर्यन्त पठन करने से यह जानाजाताहै कि ऐसे श्रौत स्मार्तरूप नित्यकर्मों विषे युक्तहुये निष्काम अरु परब्रह्मके जाननेकी इच्छा वाले पुरुषोंको आत्माआदिकोंको विषयकरनेवाले ऋषिउक्तज्ञान प्रकट होताहै ॥ मैं षट्रूप हौं १० ॥ इति दशमोनुवाकः १० ॥

अथ एकादशोऽनुवाकः ॥

(हेसौम्य "वेदमनूच्येति" वेदकोपढ़ायके, इत्यादि रूपकर्त्तव्यता के उपदेशका आरंभजोहै सो ब्रह्मज्ञानहोनेसे पूर्व श्रौत अरुस्मार्त्त रूप कर्म्म नियम से करने योग्य हैं, इस नियमके । लखावने । अर्थ है, क्योंकि अनुशासन (शिक्षा) करनेकीश्रुतिकोपुरुषके संस्कार

वेदमनूच्याचार्य्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति ।सत्यंवद । धर्म्मञ्चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्यायप्रियंधनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्म्मान्न प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् १९ ॥

रूप अर्थवाली होने से । अरु संस्कार करके युक्त शुद्ध चित्तवाले पुरुषको अनायाससेही आत्मज्ञान उत्पन्न होता है । तहां " तपसा कल्मषंहन्ति विद्ययामृतमश्नुतइतिस्मृतिः"तपकरकेपापकोनाश करे हैं, विद्या करके अमृत को पावता है, इस स्मृति प्रमाणसे । अरु यहां भी आगे भृगुवल्ली विषे कहेंगे कि " तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति " तप करके ब्रह्मको जान, इस वाक्यकरके । ताते विद्याकी उत्पत्ति के अर्थ कर्मानुष्ठान करने योग्य है ॥ अरु " अनुशास्तीति " शिक्षा करता है, इसप्रकार, अनुशासन, इस श्रुति वाक्यके हुये अनुशासन (शिक्षा) के उल्लंघन किये दोषोत्पत्ति होती है, क्योंकि केवल ब्रह्मविद्या के आरंभसे पूर्व कर्मों के आरंभ से अरु विद्या के उत्पन्न होने से " अभयं प्रतिष्ठां विन्दते " " नबिभेति कुतश्चनेति " " किमहं साधुना करवमिति " अभय स्थिति को पावता है, किसी से भी भयको पावता नहीं, क्या मैं शुभ कर्म्मको न करताहुआ, इत्यादि श्रुति वाक्यों करके ज्ञाते कर्म्म की निर्पेक्षता आगे देखावेंगे, अतएव जानाजाता है कि केवल ब्रह्मविद्याकी उत्पत्ति से पूर्व आरंभ किये जो कर्म्म हैं सो पूर्व संचय हुये पापके नाशद्वारा विद्याकी उत्पत्त्यर्थ हैं । क्योंकि "अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुत इति" अविद्या (कर्म) से मृत्यु को तरके विद्या (आत्मज्ञान) से अमृत को पावता है । यह ऋग्वेद का । वा यजुर्वेद का । मन्त्र भी विद्योत्पत्ति से पूर्वही कर्मानुष्ठान को सूचन करे है । पूर्व ऋत आदिकके उपदेश

कियेकी व्यर्थता के निवारणार्थ कर्मानुष्ठान कहा, अरु यहां तो ज्ञानकी उत्पत्ति रूप अर्थ वाला होनेसे करनेकी योग्यता के नियमार्थ कर्मका अनुष्ठान कहते हैं। [अध्ययन किये वेदके अर्थका विचार किये बिना गुरुके गृह से (निवृत्त होय) लौटना नहीं, किन्तु अध्ययनकी विधिको अर्थज्ञानद्वारा पुरुषार्थके अवधिपनेकी सिद्ध्यर्थ अक्षर ग्रहणके अनन्तर अर्थ के ज्ञानबिषे प्रयत्न करना योग्य है, इसप्रकार कहते हैं। " वेदमनूच्याचार्योऽन्ते वासिन मनुशास्ति " (वेद को पढ़ायके आचार्य्य शिष्य के अर्थ शिक्षा करे हैं) अर्थात् वेद को पढ़ाय के आचार्य्य जो है सो अपने शिष्योंके अर्थ ग्रंथके धारणकिये पश्चात् शिक्षा करे है, अर्थात् तिस (पढ़ाये हुये वेद) के अर्थ को ग्रहण करावे है। एतदर्थ जाना जाता है कि वेदाध्ययनवाले पुरुषको धर्म्म की जिज्ञासा न करके गुरुके गृहसे लौटना नहीं, क्योंकि " बुद्ध्वा कर्म्माणि चारभेदिति स्मृतेश्च " जानके कर्मों को आरंभ करे, इस स्मृति के प्रमाणसे ॥ प्र० आचार्य कैसे शिक्षा करे है। उ० तहां कहते हैं, आचार्य कहता है कि हे शिष्यो " सत्यं वद, धर्म्मंचर " (सत्य बोल अरु धर्माचरण कर) अर्थात् सत्य (प्रमाणके अनुसार जानेहुये अर्थ का कथनकर, तैसेही धर्म को आचरण कर। यहां जो धर्म शब्द है सो अनुष्ठान करने योग्य साधनों का तुल्यवाचकहै, क्योंकि सत्यादिकोंकी विलक्षणताका कथनहै ताते, अरु स्वाध्यायान्मा प्रमदः, आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः " (स्वाध्यायसे प्रमाद मतकर, आचार्य के अर्थ प्रिय धन देके प्रजाका उच्छेद मत करे) अर्थात् स्वाध्याय कहिये अपने वेदके अध्ययन से प्रमाद मत करे, अरु आचार्य के अर्थ उनको प्रियधन देके (अर्थात् आचार्य को जो बांछित धनहै सो अपने पास न होय तो वो धन अन्यसे ल्यायके आचार्य को देवे) तदनन्तर आचार्य की आज्ञा पायके (ब्रह्मचर्य से समावर्त्तन पूर्वक) अपने (जाति कुलके) समानस्त्री से बिवाहकरके प्रजोत्पादन

करे। प्रजाका उच्छेद मतकरो। यहां अभिप्राय यहहै कि पुत्रके अनुत्पन्न हुयेभी पुत्रोत्पत्तिके अर्थ। दशरथादिवत् पुत्रेष्टिआदिको। कामुकादि कर्मों से तिसकी उत्पत्ति के अर्थ प्रयत्न कर्तव्य है। क्योंकि प्रजा प्रजनन, ऋतुकालविषे भार्यागमन, अरु प्रजाति, पौत्रोत्पत्ति, इनतीन के उपदेश का सामर्थ्य है ताते। अरु अन्यथा होता तो "प्रजनन" इस एकही को श्रुति कहती। अरु जिसकरके उक्त तीनों का श्रुति विषे कथन कियाहै एतदर्थ इस कथनका उक्त अभिप्राय घटितही है ॥ अरु "। सत्यान्न प्रमदितव्यम्, धर्म्मान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्, स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।" ६ सत्यसे प्रमाद करना योग्य नहीं, धर्म्मसे प्रमाद करना योग्य नहीं, कुशल से प्रमादकरना योग्य नहीं, विभूतिके अर्थ प्रमाद करना योग्य नहीं, स्वाध्याय अरु प्रवचनसे प्रमाद करना योग्य नहीं ? अर्थात् सत्यसे प्रमाद करनेको योग्य नहीं है, सत्यसे जो प्रमादहै सो झूठका प्रसंगहै क्योंकि प्रमाद शब्दका सामर्थ्य। असत्यविषे। है ताते एतदर्थ विस्मृति। भूल। से भी असत्य करना योग्यनहींयह अर्थ है। अन्यथा सत्यकेकथनका निषेधही होवेगा। अरु "। समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति" इस अन्यश्रुतिके प्रमाण से जो मिथ्याभाषणकरताहै सो समूल सूखजाताहै। अतएवसत्यसे प्रमादकरना योग्यनहीं। अरु धर्म्मसे प्रमादकरनेको योग्य नहीं, क्योंकि धर्मशब्द अनुष्ठानकरनेयोग्य साधनोंको विषयकरनेवाला है।ताते अरु साधनों के अनुष्ठानकाअभाव प्रमादहै सो करनेयोग्य नहीं किंतु। साधनोंका। अनुष्ठान करनाही योग्यहै। अरु कुशल कहिये अपने रक्षणरूप अर्थवाले कर्मोंसे प्रमादकरना योग्यनहीं। अरु विभूति कहिये ऐश्वर्य तिसके अर्थ अर्थात् विभूतिरूप अर्थ वाले मंगलयुक्त कर्मोंसे प्रमादकर्त्तव्य योग्यनहीं। अरु स्वाध्याय अरु प्रवचन इनसेभी प्रमाद कर्त्तव्य योग्यनहीं, किन्तु यहदोनों नियमसे कर्तव्य योग्यही है १९ ॥

देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवोभव । पितृदेवोभव । आचार्य देवोभव । अतिथिदेवोभव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानिसेवितव्यानि । नोइतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयो पास्यानि । नोइतराणि २० ॥

हे सौम्य, "देव पितृ कार्य्याभ्यां नप्रमदितव्यम्" देवपितृयोंके कार्य्योंसे प्रमाद करना योग्य नहीं ; अर्थात् देव अरु पितृ के संबन्धी "यज्ञ श्राद्धादि" कर्म कर्त्तव्यही हैं, उनसे प्रमादकरना योग्य नहीं । हे प्रियदर्शन ! "मातृ देवोभव, पितृ देवो भव, आचार्य देवोभव, अतिथि देवोभव" मातृदेवहो, पितृदेवहो, आचार्य देवहो, अतिथि देवहो ; अर्थात् हेशिष्य तू माताहै देव जिसका ऐसा मातृदेव हो, अरु पिताहै देव जिसका ऐसा पितृदेव हो, अरु आचार्य है देव जिसका ऐसा आचार्यदेवहो, अरु अतिथि है देव जिसका ऐसा अतिथिदेवहो, । अर्थ यह जो मातासे अतिथि पर्यन्त कहे जे चार सो शिवादि देवतावत् उपासनीय हैं अतएव तू उक्त चारोंको देवतावत् मानके उनकी उपासना कर । अरु "यान्यनवद्यानि कर्म्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि, यान्यस्माकꣳ सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि" जो अनिन्दित कर्म्म हैं सो सेवनकरने योग्यहैं, इतर नहीं, अरु जो हमारे श्रेष्ठ आचरणहैं सोई तुझकरके उपासनाकरने योग्यहैं, इतर नहीं ; अर्थात् जो अन्य शिष्टाचाररूप अनिंदित कर्म हैं सो तुझ करके सेवन करनेको योग्यहैं, अरु अन्य जे निंदित कर्महैं सो यदि श्रेष्ठ पुरुषों करके कियेहुये भी हैं, तथापि सो सेवन करनेको योग्य नहीं । अरु जो हम आचार्य्यों के वेदसे अविरुद्ध श्रेष्ठ आचरण हैं सोई तुझ करके उपासना करनेको योग्य हैं, अर्थात् जो वेदसे अविरुद्ध श्रेष्ठ आचरण हैं सो पुण्यकी उत्पत्तिके अर्थ नियमसे सेवने योग्य हैं । अरु श्रेष्ठ

एकेचास्मच्छ्रेयाᳬंसो ब्राह्मणाः । तेषांत्वयासनेनप्रश्वसितव्यम् । श्रद्धयादेयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रियादेयम् । भियादेयम् । संविदादेयम् ॥ अथयदि ते कर्म्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सावास्यात् २१ ॥

से अन्य अश्रेष्ठ यदि आचार्य करके भी सेवनकिये हैं तथापि सो विपरीताचरण तुम्ह करके सेवन करने योग्यनहीं २० ॥

हे सौम्य, "। एके चास्मच्छ्रेयाᳬंसो ब्राह्मणाः, तेषांत्वयाऽऽसनेनप्रश्वसितव्यम् " । " कईएक हमसो अत्यन्त श्रेष्ठब्राह्मण हैं तिनका आसनके देनेसे तुम्ह करके श्रमका निवारण करने को योग्य है ; अर्थात् जो कई एक आचार्यपने आदिक धर्म्मों करके विलक्षणता को प्राप्तहुये हम सो अत्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय आदिकनहीं । अर्थात् हेसौम्य आचार्यपने आदिक उत्तम धर्म्मों करके विलक्षणताको प्राप्तहुये क्षत्रियों को श्रेष्ठपना है, परन्तु अत्यन्त श्रेष्ठपना तो उक्त प्रकार धर्म्माविष्ट ब्राह्मणकोही है सो क्षत्रिय को नहीं। तिनका आसन देने आदिक सेवासेतुम्ह करके श्रमका निवारण करना योग्यही है । अर्थात् हे सौम्यजो कदापि आचार्य कृपा करके शिष्यकेगृह पगधारे तो तिनके मार्ग जन्य श्रमके निवारणार्थ शिष्य करके अर्घ पाद्य प्रक्षालन आसन देने आदि सेवा का करना सर्वदा उचितही है । अथवा तिनकी वार्त्ताके निमित्तरूप आसनके सिद्धहुये श्रमकानिवारणभी करने योग नहीं, किन्तु केवल उनके वाक्यके अर्थके सार काहियेलक्ष्य के ग्राहीहोना चाहिये, किम्बा जोकुछ देनाहोवेसो "श्रद्धयादेयम्, अश्रद्धयाऽदेयम्, श्रिया देयम्, ह्रियादेयम्, भियादेयम्, संविदादेयम् " । " श्रद्धासे देना, अश्रद्धासे नदेना, लक्ष्मी से देना, लज्जा से देना, भयसे देना, संविदासे देना" अर्थात् आचार्यको वा अन्य ब्राह्मणादिकों को जो कुछ देना सो श्रद्धासेही देना योग्य है । क्योंकि श्रद्धासे कियादानफलके अर्थ होताहै ताते ।

ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता अयुक्ताः। अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र वर्त्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता अयुक्ताः। अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्त्तेरन्। तथा तेषु वर्त्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषद् एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्॥स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। तानि त्वयोपास्यानि। विचिकित्सा वा स्यात्तेषु वर्त्तेरन् सप्त च २२॥ इत्येकादशोऽनुवाकः ११॥

अरु अश्रद्धासे देनायोग्य नहीं। क्योंकि अश्रद्धासे दियादानफल के अर्थ होवैनहीं ताते। अरु लक्ष्मीसे देना योग्य। अर्थात् अपने पास जो धनहै तो धन गऊ भूमि अन्न आदिक ब्राह्मणादिकोंको दान देनायोग्यहै। अरु लज्जासे देनायोग्यहै। अर्थात् जो दानकरे तिसबिषे अपने दातापनेरूप अभिमानसे लज्जाकरकेही करे क्योंकि अभिमान आसुरीसम्पदा अश्रेष्ठहै ताते। अरु भयसे देनायोग्यहै। अर्थात् दानके न देनेसे संसारमें कृपणतारूप अपकीर्त्तिका अरु पुनर्जन्म में दरिद्री होनेके भयकरकेभी दान देनायोग्यहै क्योंकि मुख्यकरके दानरूप धर्म्मही मनुष्यका कल्याणकारी है ताते। अरु संविदा कहिये मित्रादिक तिनके कार्यमें देना योग्यहै। अर्थात् मित्र उपलक्षण करके मित्र वा सम्बंधी जे निर्धन हैं तिनके शुभाशुभकार्योंमें, धनकी पुनरावृत्तिकरने की इच्छात्याग के धनकादेना योग्य है। अरु "। अथ यदि ते कर्म्म विचिकित्सा वा वृत्त विचिकित्सा वा स्यात्"। "अथवा जब तुझको कर्म्मबिषे संशयहोय वा आचरणबिषे संशय होय"; अर्थात् तुझको इसप्रकार वर्त्तमानहोते जब कदाचित् श्रौत वा स्मार्त्त कर्म्मबिषे वा आचरणबिषे संशयहोवै २१॥

हे सौम्य, "। येतत्र ब्राह्मणाः शम्मर्शिनः, युक्ता अयुक्ताः, अलूक्षा

धर्म्मकामाः स्युः, यथा ते तत्रवर्त्तेरन् तथातत्र वर्त्तेथा"। "जोतिस विषे विचारमें समर्थ, अन्यकार्य बिषेलगे, अक्रूरबुद्धिवाले धर्म्मके अर्थी ब्राह्मण होवें वो जैसे तिस बिषे वर्त्तमानहोवें तैसे तू भी तहां वर्त्तमान हो" अर्थात् तब जो तिस देशबिषे वा कालबिषे विचारमें समर्थ अरु कर्मबिषे वा आचरणबिषे जुडे अरु अन्य कार्यबिषे लगे स्वतन्त्र अरु बुद्धिकी क्रूरतासे रहित। अक्रूर बुद्धि वाले धर्म्म वा पुण्यके अर्थी अरु भोगोंकी कामनासे रहितजो ब्राह्मण होवें वो जिस प्रकार तिन कर्म्मोंबिषे वा आचरणों बिषे वर्त्तमानहोवें, तैसे तू भी तहां वर्त्तमानहो। अरु "अथाभ्याख्यातेषु, ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः, यथातेतेषुवर्तेरन्, तथातेषु वर्त्तेथाः" "संशयरहित दोषकरके युक्त तिनबिषे जो तहां विचारमें समर्थ अन्य कार्य्यों में लगे अक्रूर बुद्धिवाले धर्म्मके अर्थी ब्राह्मणहोवें सो जैसे तिन बिषे वर्त्तमान होवें तैसे तिनबिषे वर्त्तमानहो" अर्थात् किसीभी संशय रहित, अरु आरोपित दोषकरके युक्त जो पुरुष हैं तिनों बिषे जो तहां विचारमें समर्थ, अरु कर्म्म वा आचरण बिषेलगे अरु। बुद्धिके क्रूरतादि दोषरहित। अक्रूर बुद्धिवाले, अरु धर्म्म वा पुण्यकेअर्थी जो ब्राह्मण होवें वो जिस प्रकार तिनकर्म्मोंबिषे वा अन्य आचरणों। बिषे वर्त्तमान होवें, तैसे तूभी। तिनबिषे। वर्त्तमान हो। अर्थात् पूर्वके मन्त्रके अन्तबिषे कहा है कि, जो कदाचित्तुझको श्रौत वा स्मार्त्त कर्मोंबिषेवाआचरणोंबिषे संशय होवे, तिस कथनसे यहां इस मन्त्रके यहां पर्य्यन्त संबंध है कि जो तुझको श्रौत वा स्मार्त्त कर्मोंबिषे वा अन्य आचरणों बिषे संशय होय तो उक्त प्रकारके ब्राह्मण उनकर्म्म वा आचरणोंबिषे वर्तते होवें तैसे तूभी तिनबिषे वर्त्तमानहो।॥ अरु "। एष आदेशः एष उपदेशः, एषावेदोपनिषद्, एतदनुशासनम्, एवमुपासितव्यम्, एवमुचैतदुपास्यम" । "यह आदेश है यह उपदेश है, यह वेदका रहस्य है, यही अनुशासन है, ऐसे करनेको योग्य

शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्नइन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नोविष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। सत्यमवादिषं पञ्चच। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः २३॥ इति द्वादशोऽनुवाकः॥

है, ऐसे प्रसिद्ध करनेको योग्यहै ? अर्थात् यह आदेश कहिये विधि है, अरु यही पुत्रादिकों को उपदेश है, अरु यही वेद का सूक्ष्मरहस्य वेदार्थ है, अरु यहही ईश्वरकी आज्ञारूप अनुशासन (शिक्षा) है, वा आदेश वाक्य रूपाबिधि को कथनकिया होने से यह सर्व प्रमाणरूप वाक्यों का अनुशासन है, एतदर्थ उक्तप्रकार का यह सर्व करनेको योग्य है, ऐसे प्रसिद्ध सर्व करने योग्य है। यहां पुनः जो कथन है सो यह सर्व करने को अयोग्य नहीं, इस आदरके अर्थ है॥ "स्वाधाय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्, तानित्ययोपास्यानि, विचिकित्सा वा स्यात्तेषु वर्त्तेरन् तसच"। "स्वाध्याय, अरु प्रवचनसे प्रमाद करना योग्य नहीं, वे तुम्हकरके करने योग्य हैं, वा संशय होय, तिनाबिषे वर्तमानहोवे, तस"॥ इति एकादशोऽनुवाकः ११॥

अथ द्वादशोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, अब कथन कीहुई विद्या की प्राप्तिबिषे विघ्नों के निवारणार्थ शान्ति पाठ कहते हैं "शन्नो मित्रः, शं वरुणः, शन्नो भवत्वर्यमा, शन्न इन्द्रो वृहस्पतिः, शन्नो विष्णुरुरुक्रमः"। "मित्र हमको सुखकारीहो, बरुण हमको सुखकारी हो, अर्यमा हमको सुखकारी हो, इन्द्र हमको सुखकारी हो, वृहस्पति हमको सुखकारी हो, विष्णु हमको सुखकारी हो" अर्थात् प्राण का अरु

दिवस का अभिमानी जो मित्र नामक देवता सो हमको सुखकारीहो । अरु वरुण जो है सोभी हमको सुखकारी हो। अरु तैसेही सूर्य्याभिमानी जो अर्यमा सो हमको सुखकारीहो । तैसेही इन्द्र अरु बृहस्पति हमको सुखकारी हो । अरु तैसेही उरुक्रम कहिये प्रथम वामन होयके पश्चात् विश्वरूप होनेवाला, ऐसा जो विष्णु सो हमको प्रसन्न हो । " नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि , त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् " ; ब्रह्मको नमस्कार करता हौं, वायु को नमस्कार करता हौं, तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहौं, ऋत कहताहौं, सत्य कहताहौं; अर्थात् ब्रह्म के अर्थ मैं नमस्कार करता हौं, हे वायो तेरे अर्थ में नमस्कार करताहौं, अरु जिसकरके तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है, एतदर्थही मैं तुझको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहौं, ऋत कहताहौं, अरु सत्य कहताहौं, । " तन्मामावीत् , तद्वक्तारमावीत् , आवीन्माम्, आवीद्वक्तारम् , " ; सो मुझको रक्षाकरो, सो वक्ताको रक्षाकरो, मुझको रक्षाकरो, वक्ताको रक्षाकरो, ; अर्थात् सो प्रत्यक्ष अपरब्रह्म वायु मुझ अपराविद्या के अर्थी को रक्षाकरो, अरु तिस विद्या के वक्ता आचार्य को रक्षाकरो, मुझको रक्षाकरो, वक्ताको रक्षाकरो; " सत्यमवादिषम् , पञ्चच । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः " । २३ ॥ ; सत्य कहताहौं अरु पांच, ॐ शान्तिहो, शान्तिहो, शान्तिहो ॥

हे सौम्य, " शन्नः शिक्षाꣳ, सह नौ, यश्छन्दसां भूः, सयः पृथिव्योमित्यृतञ्चाहं वेदमनूच्य, शन्नो द्वादश " ; हमको, सुख, शिक्षा को, हमको, साथही, जो वेद के मध्य पृथिवी, सो जो पृथिवी ॐ, ऐसे ऋत अरु मैं वेदको पढ़ायके द्वादश अनुवाक हमको सुख ; " शन्नो मह इत्यादित्यो, नो इतराणि, त्रयो विंशतिः, हरिः ॐ, शन्नो वक्तारम् " ; हमको सुख महर् ऐसा सूर्य्य है, अन्य नहीं । तेईस मन्त्र हैं हरिः ॐ । हमको सुख, वक्ताको सुख ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः १२ ॥

शन्नः शीक्षा छं । सहनौ । यश्छन्दसां भूः । सयः पृथिव्योमित्यृतञ्चाहं वेदमनूच्य । शन्नो द्वादश ॥ शन्नो मह इत्यादित्यो । नो इतराणि । त्रयोविंशं शांतिः ॥ हरिः ॐ । शन्नो वक्तारम् ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः १२ ॥
इति शिक्षाध्यायः प्रथमावल्ली १ ॥

हे सौम्य अब यहां विद्या अरु कर्मके भिन्न भिन्न फलके लखावनेके अर्थ विचार कहते हैं, तहां प्रथम पांच विकल्प देखावते हैं,सो यहहैं कि,क्या केवल कर्मसेही परमश्रेय होवे है, वा विद्याकी अपेक्षावाले कर्मसे परमश्रेयहोवे है, अथवा विद्या अरु कर्मके समुच्चय सेवन करनेसे परमश्रेय होवे है,किंवा कर्मकी अपेक्षावाली विद्यासे परमश्रेय होवेहै, वा केवल विद्यासे ही परमश्रेय होवे, यह ५ विकल्पहैं, तहां केवल कर्मसे ही परमश्रेय होताहै, ऐसा प्रथम पक्षवादी कहते हैं क्योंकि समस्त वेदार्थके जाननेवाले पुरुषकोही कर्मका अधिकारहै ताते । अरु "स रहस्यो द्विजन्मनेति स्मरणात् " तीनवर्णके पुरुषोंकरके रहस्य सहित समस्तवेद अध्ययन करनेको योग्यहै, इस स्मृतिका प्रमाणकरके सम्पूर्ण वेदका अध्ययन जो है, सो उपनिषद्केअर्थ अरु आत्मज्ञान करके सहितहीहोताहै । अरु "।विद्वान्यजते । विद्वान्याजयति" विद्वान् यजन करता है, विद्वान् यजन करावता है, इस प्रकार श्रुति प्रमाण करके विद्वान्कोही कर्मोंबिषे अधिकार देखाजाता है । अरु सर्व ठिकाने ज्ञानके ही अनुष्ठान होता है । अतएव समस्त वेद कर्मके अर्थही है, इसप्रकार कोईएक 'प्रथमविकल्पवादी, मानते हैं, अरु कहते हैं कि 'जो कदापि कर्मोंसे परमश्रेय प्राप्त न होवे तो समस्तवेद व्यर्थ होवेगा,["भूतंभव्यायोपदिश्यते" उक्त अर्थ जो है सो अग्रिम कथन करनेके अर्थ उपदेश करते हैं, इस न्यायसे, ज्ञानको भी कर्म कर्त्ताका संस्कार होनेकरके कर्म विधिका साधन है ताते ' अरु श्रवणकिये फल

कोभी अर्थवाद मात्रपनाही है ताते, अतएव कर्मसेही परम श्रेय मोक्ष होवैहै, यह, केवल कर्मसेहीमोक्षहोवै है, ऐसा पूर्वविकल्प वादियोंका पूर्व पक्ष है, तहांअब सिद्धान्ति कहते हैं] सो प्रथम पक्षवादी का कथन बनेनहीं, क्योंकि मोक्ष नित्य है ताते। अरु जिसकरके मोक्षको नित्यअंगीकार करतेहैं, अरु लोक बिषेकर्म्मों के कार्योंको अनित्यपना प्रसिद्ध ही है, एतदर्थ जबकर्मोंकरके ही मोक्ष होताहोवै तो सोभी अनित्य होवैगा, सोइष्टनहीं। अरुजो ऐसाकहैहैकि काम्य अरु निषिद्ध इनउभयकर्मोंके अनारंभसे, अरुप्रारब्ध कर्म के भोगद्वारा क्षयहोनेसे, अरुनित्य विहित कर्मके अनुष्ठान करनेसे पाप कर्मोंके असंभवसे, ज्ञानकी अपेक्षासे रहितही केवल कर्म करके मोक्ष है। [यद्यपि अध्ययनरूप बिधिका विषय हुआ सर्व वेदोंका अर्थ एकही पुरुषकरके विचारकरनेयोग्यहै, तथापि अध्ययन विधिविषे प्रतिवाक्य का पढ़ावना अरु प्रतिवाक्यके अर्थका जो विचार है, सो व्यापार के भेदसे तिस २ कर्मके किये फलकी कामनावाले पुरुष को कर्म बिषे उपयोगी वाक्योंके अर्थ के ज्ञानवान् होने मात्रकरके कर्मविषे अधिकारके असंभवसे, अरु ब्रह्मसाक्षात्कार जो है तिसका उन कर्म बिषे अनुपयोग है ताते, समस्त वेदार्थ के जानने वाले पुरुषको कर्मके अधिकार बिषे प्रमाण नहीं। अर्थात् जिस पुरुषको स्वर्गादिकजिसबस्तु की कामना होती है सो तिसफलके साधक कर्म बिषे उपयोगी वेदमन्त्रके अर्थकोजानताहै, अरु वेदाध्ययनकेसाथ वेदान्तरजेब्रह्मसाक्षात्कारबोधक वाक्य तिनोंकाभी अध्ययन होताहै, परन्तु उनवाक्यों का कर्म्मोंमें उपयोग नहीं ताते उन वाक्यार्थ ज्ञानको जानते नहीं, अरु जो समस्त वेद वेदार्थ के जाननेवाला पुरुष है तिसकोही कर्मविषे अधिकार है ऐसा कोई प्रमाण नहीं। इस प्रकार कहते हैं] सो कथन बने नहीं। क्यों कि संचित कर्म्मोंमेंसे जो कर्म अपना फल देनेको प्रारब्धरूप से प्रवृत्तहुये तिनसे। शेष (बाकी) संचित कर्म रहनेका संभवहै, अरु उन शेष कर्मोंके

निमित्तवाली जो अन्य शरीरोंकी उत्पत्ति सोप्राप्तहोती है। अरु शेष [संचित] कर्म्मोंका नित्यकर्मोंसे अविरोध है। क्योंकि नित्य कर्म्महीं करने के पश्चात् संचित भावको प्राप्तहोता है। ताते नित्य कर्मके अनुष्ठानसे शेष कर्मोंका नाशहोना असंभव है। इस प्रकार पूर्व कहा है॥ अरु सर्व वेदार्थके ज्ञानवाले पुरुष को कर्म के अधिकारसे केवल कर्मसे ही मोक्षहोगा, इत्यादिक जोकहा सो[यद्यपि अध्ययन विधिकी प्रेरणासे हुआजो वेदान्तकाविचार सो भी गुरुके गृहबिषे ही किया है, तथापि समस्त वेदार्थकेजानने वाले पुरुष को तिसका अधिकार नहीं, क्योंकि उपासना करके साध्य जो ब्रह्म साक्षात्कार सो भिन्न है ताते, इस प्रकार कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि गुरुके गृहबिषे श्रवण किये अरु विचारकिये वाक्यसे अनुष्ठानबिषे उपयोगी जोज्ञान होता है तितनेही ज्ञानमात्र करके कर्म बिषे अधिकारको पावता है, परन्तु सोज्ञान ब्रह्म साक्षात्काररूप फलवाली उपासना की अपेक्षा करता नहीं क्योंकि उपासनासे उसकेभेदका अभाव है ताते] बनेनहीं, क्योंकि उपासनाको श्रवण जन्य ज्ञानसेभिन्नता है ताते। अरु श्रवण ज्ञानमात्रसे कर्म्मबिषे अधिकार कोपावता है, उपासना की अपेक्षा करतानहीं। अरु उपासना जो है, सो श्रवण किये अर्थ के ज्ञानसे अन्य अर्थरूप विधान करते हैं। अरु मोक्ष रूप जो फल है सो अन्य अर्थ रूप प्रसिद्ध होता है। अरु "श्रोतव्यो" श्रवण करने योग्यहै, इस कथनकरके, ताते भिन्न "मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो" मनन करने योग्यहै, निदिध्यासन करने योग्यहै, इसप्रकार अन्य प्रयत्नके विधान से मनन अरु निदिध्यासन करनेको श्रवण ज्ञानसे अन्य अर्थपना प्रसिद्ध है॥ [केवल कर्म मोक्षका साधन है, इस प्रथम पक्षका निषेध करके अब, विद्या सहित कर्म मोक्षका साधन है, इस द्वितीय विकल्प रूप पक्षका निषेध करते हैं] अरु जब इसप्रकारहै, तब विद्याकी अपेक्षावाले कर्मों से मोक्ष होवेगा, अरु विद्या सहित

कर्मोंको अन्य कार्य के आरंभका सामर्थ्य होवेगा । जैसे स्वरूप से ही मरण अरु ज्वर आदिक कार्य के आरंभ करने के सामर्थ्य वाले हुयेभी विष अरु दधि [अर्थात् संखियादि विषका मरणरूप कार्यको, अरु दधिको ज्वररूप कार्यको, आरंभ करनेका सामर्थ्य स्वरूपसे ही है । तिनको मन्त्र अरु शर्करा आदिकों करके सहितहुये अन्यकार्य के आरंभका सामर्थ्य है । इसप्रकार विद्यासहित कर्मोंसे मोक्षरूप फल वा कार्य आरंभ करते हैं, इसप्रकार जो कहे, तो सो भी बनेनहीं । क्योंकि आरंभ करीहुई वस्तु को अनित्यता होती है ताते, अरु यह दोष पूर्व कह आये हैं ॥ अरु जो कहे वचनसे आरंभ करने योग्य भी नित्यहीं है ["न स पुनरावर्त्तते " सो पुनः आवृत्तिको पावतानहीं, इस वचनसे आरंभ किया भी मोक्ष नित्यहै, इसप्रकार कहने को शक्य नहीं है, क्योंकि प्रसिद्ध पदार्थकी योग्यताको लेके वचनको सम्बन्ध का ज्ञापकपनाहै ताते, अरु आरंभ करीहुई वस्तुको नित्य होने की योग्यता प्रसिद्ध नहीं है, अन्यथा वचनको कारकताका प्रसंग है ताते, अरु अंधपुरुष मणिको पावताहुआ, इत्यादिक वाक्योंविषे भी योग्यताकी कल्पना का प्रसंग है ताते, इसप्रकार कहते हैं] सो वनेनहीं, क्योंकि वचनको ज्ञापकताहै ताते, । अरु वचन जो है सो विद्यमान अर्थका ज्ञापकहै परन्तु विद्यमान अर्थ का कर्त्ता नहीं । अरु शतशः वचनों करके भी नित्य वस्तुका आरंभ नहीं करते वा आरंभ करी वस्तु अविनाशी नहीं होती हैं, इसहेतु से मिश्रितहुये विद्या अरु कर्मको मोक्षका आरंभकपना निषेधकिया जानना ॥ अरु जो कहे कि विद्या अरु कर्म जो हैं सो मोक्षविषे प्रतिवन्धके हेतु जे अविद्या अधर्म्मादिक तिनके निवर्त्तक हैं, सो भी वने नहीं क्योंकि कर्म के फल अन्य देखेजाते हैं ताते । अरु उत्पत्ति, संस्कार, विकार, अरु प्राप्तिरूप कर्म का फल देखते हैं [अर्थात् कर्मका जो फलहै सो उत्पत्ति संस्कार प्राप्ति, अरु विकारवालाही होताहै । अरु मोक्ष जो है सो उत्पत्ति आदिक रूप

कर्म्मके फलोंसे विलक्षणहै वा विपरीत है एतदर्थ सो कर्म्म का फलहै नहीं॥ अरु जो कहे कि "सूर्य्यद्वारेण तयोर्द्ध्वमायन्निति" सूर्य रूपद्वारकरके तिस सुषुम्णानाडी करके ऊपरको जाताहुआ, इत्यादिक गमन प्रतिपादक श्रुतियोंके प्रमाणसे ब्रह्मांडके बाह्य प्राप्त होने योग्य मोक्ष है, सो भी बने नहीं क्योंकि ब्रह्म सर्वगत है ताते, अरु गमन करनेवाले पुरुषसे अभिन्नहै ताते। अरु जिस करके आकाशादिकों का कारण होनेसे ब्रह्म सर्वगत है अरु ब्रह्म से अभिन्न सर्व जीवहै, अतएव ब्रह्मांडके बाहिर जायके प्राप्तहोने योग्य मोक्ष नहीं। अरुगमन करने वाले को अपने आपसे इतर विशेष करके भिन्न देशही गमन करने योग्य होता है। अर्थात् जो गमन करता हैसो अपने स्वरूपसे भिन्न देशकोही करता है। अरु जो जिससेअभिन्नहै सो तिससेही प्राप्तहोवे नहीं। अर्थात् आत्मा से ब्रह्म अभिन्न है ताते आत्माकरके ब्रह्म प्राप्तहोवेनहीं क्योंकि आत्माका तो स्वरूपही ब्रह्म है। यह अनन्यभाव की प्रसिद्धि है। अरु "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" तिसकोसृजके तिसके अर्थही पीछे प्रवेश करता हुआ, अरु "क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धि" क्षेत्रज्ञ भी मुझको जान, । इत्यादिसैकडोंश्रुति स्मृतियोंकरके ब्रह्मांडसे बाह्य प्राप्त होने योग्य मोक्ष नहीं है॥ अरु जो कदापि ऐसा कहो कि उक्तप्रकारहोनेसे गति अरु ऐश्वर्य्यादिकोंकी प्रतिपादक श्रुतियोंसे विरोधहोवेहै, तो मोक्ष ब्रह्मांडसे बाहर प्राप्तहोनेको योग्यहै, यहगति प्रतिपादक श्रुतियोंका तात्पर्य होताहै। अर्थात् "तयोर्द्ध्व मायन्नमृतत्वमेति" इत्यादि जे मार्ग प्रतिपादक श्रुतियां हैं सो योगी जनोंको सुषुम्णा नाडी द्वारा कपाल भेदनकरके ब्रह्मलोक प्राप्ति की बोधकहैं। अरु जोकहे कि सो मोक्ष जब एकप्रकारका होय तब "पितृलोक कामो भवति,स्त्रीभिर्वायानैर्वा "पितृलोककीकामना वाला होताहै, स्त्रियोंकरके वा वाहनोंकरके इत्यादि, श्रुतियों का कोप होवेगा, सो बने नहीं क्यों कि उन श्रुतियों को कार्य ब्रह्म (हिरण्यगर्भ वा)को विषय करनेवालापना है ताते अरु कार्य ब्रह्म

विषे स्त्री यानादिक होतेहैं कारण ब्रह्मविषे नहीं । अरु " एकमेवाद्वितीयं, यत् नान्यत्पश्यति, तत्केन कंपश्येदित्यादि " । एक ही अद्वितीय है, । जहां अन्य को नहीं देखता है, । तहां किस करके किसको देखे, । इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे विरोध होता है । एतदर्थ विद्या अरु कर्म्मके समुच्चयका असंभव है । अरु कर्त्ता आदिक कारकोंके भेदसे रहित तत्त्वको विषय करनेवाली जो विद्याहै सो तिससे (अपने विषयसे) विपरीत कारकों करके साध्य कर्म्मोंसे विरोधको पावती है । अरु एकही वस्तु परमार्थ से कर्त्ता आदिक भेदवाली है, अरु तिससे रहित है, ऐसे उभय प्रकार से देखने को शक्य नहीं है । उन दोनोंमेंसे एक अवश्य ही मिथ्या होवेगा, अरु दोनोंमें से एकके मिथ्यापनेके प्रसंगके हुये जो स्वाभाविक अज्ञानके आधीन द्वैतका मिथ्यापना है सो युक्तही होवेगा । क्योंकि " यत्र हि द्वैतमिव भवति, मृत्योः समृत्युमाप्नोति, अथ यत्रान्यत् पश्यति तदल्पम्, अन्यो ऽसावन्योहमस्मि उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयंभवति, इत्यादि " जहां ही द्वैतवत् होता है । सो मृत्युसे मृत्युको पावता है । अरु जहां अन्यको देखता है सो अल्प है । यह अन्य है मैं अन्य हूं । जो अल्पभी अन्तर (भेद) को करता है, पीछे तिसको भयहोता है, । इत्यादिक सैकड़ों श्रुतियों से । अरु एकता का सत्यपना है, क्योंकि " एकधैवानुद्रष्टव्यं, एकमेवाद्वितीयम्, ब्रह्मैवेदꣳ सर्वमात्मैवेदꣳ सर्वमित्यादि " एक प्रकार से ही देखनेको योग्यहै, एकही अद्वितीय है, ब्रह्मही यह सर्व है, आत्माही यह सर्व है, । इत्यादि श्रुतियों से । अरु संप्रदानादिक कारक भेदके अदर्शन होने से कर्म संभवेनहीं, अरु विद्याके विषयविषे अन्य भावकी दृष्टिकानिषेध सहस्रशः श्रवण करते हैं । एतदर्थ विद्या अरु कर्म का विरोध है, अरु इसही हेतु से उनके समुच्चयका असंभव है । अरु तहां जो कहा कि मिलेहुये कर्म अरु विद्यासे । अर्थात् कर्म अरु विद्याके समुच्चयसे । मोक्ष होवे है, सो अघटित है, क्योंकि

[जब कर्त्ता आदिककारकों के भेदके सत्यतापने रूप अंशका बाध ब्रह्मज्ञान उपदेश करे है, तब उनको मिथ्याअर्थवाले होने से कर्म्मोंकी विधियोंकी अप्रमाणता होवेगी, इसप्रकार कहते हैं। इस शंकाके वर्णनका यहभाव है कि अध्ययन की विधि से ग्रहण करी श्रुतियों को पुरुषार्थ के उपदेशकी करनेवाली होने करके प्रमाणपना कहनेको योग्य है] कर्मों को विधान कियाहै ताते । अरु जो ऐसाकहे कि श्रुति का विरोध होवेगा, सो युक्त नहीं है, काहेते, जब सर्पादिकों की भ्रान्ति ज्ञानके नाशक रज्जु आदिकों को विषयकरनेवालेज्ञानवत् कर्त्ताआदिक कारक भेदको नाशकरके आत्माकी एकताका ज्ञान विधानकिया है, तब कर्म विधि की श्रुतियों को निर्विषयहोने से विरोध प्राप्तहोय । जिस करके कर्म विधान किये हैं याहिते सो विरोध युक्त नहीं है । अरु जो ऐसा कहे कि श्रुतिको प्रमाणरूप होने से तिनका परस्पर विरोध है । अर्थात् एक श्रुति तो कहती है कि " कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि " विहित कर्म्मों को करे, । अरु एक श्रुति कहती है कि " न कर्मणा " कर्म से मोक्ष नहीं, । अरु श्रुति दोनोंही प्रमाण हैं ताते प्रमाण भूत श्रुतियों में परस्पर विरोध है । सो कथन बने नहीं, क्योंकि श्रुतियों को पुरुषार्थ के उपदेशकी परायणता है ताते । अरु जिसकरके " संसारात्पुरुषो मोक्षयितव्य इति " पुरुष संसार से मोक्ष करनेको योग्य है, । यह जो विद्या के उपदेश के परायण श्रुति है, सो प्रथम संसार की हेतु जो अविद्या तिसकी निवृत्ति करनेकोयोग्य है । इसप्रकार विद्याकी प्रकाशक होने कर केप्रवृत्ति हुई है, एतदर्थ उन श्रुतियों का परस्पर विरोध नहीं है। अरु जो कहे कि उक्तप्रकार हुये भी कर्त्ता आदिक कारकों के सद्भाव प्रतिपादनके परायण जो शास्त्रहै, सो विरोधको पावताही है, सो यह कथन भी बनेनहीं, क्योंकि शास्त्र जो है सो मुमुक्षुओं को पूर्व सिद्धही कारकोंके सद्भावकालके संचित पापोंके क्षयार्थ कर्म्मोंको विधान करताहै, अरु फलके अर्थी पुरुषों के अर्थ फल

के साधनोंको विधान करताहै, परन्तु कारकके सद्भाव कहनेविषे प्रवृत्त होतानहीं, याते सो विरोधको प्राप्त होतानहीं । अरु संचित पापरूप प्रतिबन्धके होतेहुये विद्याकी उत्पत्ति होतीनहीं, जब संचित पापरूप प्रतिबंध क्षयहोताहै तब विद्याकी उत्पत्ति होती है, अरु तिस विद्याकी उत्पत्तिसे अविद्याकी निवृत्तिहोती है, तब तिस करके संसार की आत्यंतिक निवृत्ति होती है । किंवा आत्मदर्शी पुरुष को अनात्म पदार्थों को विषय करने वाली कामना होती नहीं, अरु कामनावाला पुरुष जो है सो कर्म्मों को करता है, तिसको तिसकेफल भोगार्थ शरीरादिकों का ग्रहणरूप संसारहोताहै । अरु तिसकामनावाले पुरुषसेभिन्न आत्माकी एकताके दर्शीको विषयके अभावसे कामनाकी अनुत्पत्ति होतीहै । अरु आत्माविषे अभिन्नहोनेसे अरु कामनाके असंभव से स्वस्वरूपविषे स्थितिरूपमोक्ष होवेहै, एतदर्थभी विद्या अरु कर्मोंका विरोधहै । अरु विरोधसेही विद्या जो है सो मोक्षके प्रति कर्मोंकी अपेक्षाकरती नहीं, परन्तु नित्यकर्म जोहै सो स्वस्वरूपके लाभहुये पूर्वसंचित पापरूप प्रतिबंधके नाशद्वारा विद्याकी हेतुताको प्राप्तहोवेहै अर्थात् प्रथम विहितकर्म करनेसे संचितपापों केक्षयहुये विद्याकी उत्पत्तिहोतीहै अतएव विहितकर्म्मोंको विद्या की उत्पत्तिमें हेतुता है । अरु इसहीसे इसप्रकरण विषे कर्म्मोंके कहनेका आरंभकियाहै, इसप्रकार हमकहतेहैं । ऐसेहुये कर्मविधि की श्रुतियों का पुरुषार्थ के उपदेशकेपरायण श्रुतियोंसे अविरोध है, याते केवल विद्याहीसे परमश्रेयहोवेहै यह सिद्धहुआ । अरुजो कहैकि जब ऐसेहीहै तब अन्यआश्रमोंका असंभवहोवेगा, क्योंकि विद्याकीउत्पत्ति कर्म्मरूप निमित्तवाली है ताते, अरु कर्म्मजोहैंसो गृहस्थाश्रमविषे विधान किये हैं । इसप्रकार एक गृहस्थाश्रमही अनुष्ठान करनेको योग्यहै । अरु ,यावत् जीवे तावत् कर्मकोकरे, इत्यादिक कर्म्म प्रतिपादक श्रुतियां अत्यन्त अनुकूल होवेगी, सो बनेनहीं क्योंकि कर्म्मोंको अनेक रूपताहै ताते, अरु अग्निहोत्रा-

दिकही कर्म्म हैं ऐसा नहीं किन्तु विद्याकी उत्पत्ति विषे अत्यन्त साधक अरु अन्य आश्रमविषे प्रसिद्ध जे ब्रह्मचर्य तप सत्यभाषण शम दम अहिंसादिक हैं, अरु ध्यान धारणादिक हैं, सो भी कर्म है, क्योंकि सो हिंसा आदिक निषिद्ध कर्मोंसे अमिश्रित हैं ताते। इसप्रकार यहां भी आगे कहेंगे "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति" तपकरके ब्रह्मको जान, इस वाक्यकरके। अरु गृहस्थाश्रमसे पूर्व भी जन्मान्तरविषे कियेकर्म्मोंसे विद्याकी उत्पत्तिका संभवहै ताते, अरु गृहस्थाश्रमकी प्राप्तिको कर्मकेअर्थ होनेसे कर्मकरके साध्य विद्याकेहुये गृहस्थाश्रमकीप्राप्ति व्यर्थहीहै। अरु पुत्रादिकोंको लोकार्थहोनेसे पुत्रादिकोंकरके साध्य यहलोक अरु पितृलोकादिक लोकोंसे निवृत्तहुई है कामना जिसकी, अरु नित्यसिद्ध आत्माके ज्ञानकरकेयुक्त अरु कर्म्मोंबिषे प्रयोजनके नदेखनेवाले पुरुषकी प्रवृत्ति कैसे संभवे किन्तु सर्वथा संभवेनहीं। किन्तु गृहस्थाश्रम को प्राप्तहुये अरु विद्याकी उत्पत्तिकेहुये अविद्याकी निवृत्तिसेविरक्तहुये अरु कर्म्मोंबिषे प्रयोजनको न देखनेवाले ऐसे पुरुषोंकी कर्म्मोंसे निवृत्तिहोवैहै क्योंकि "प्रवर्त्तयिष्यन् वाअरेऽहमस्मात् स्थानादस्मीति" अरे मैं निश्चय करके इस स्थानसे प्रवृत्ति करावताहुआ हों, इत्यादि श्रुतिउक्त लिंगके देखने से। अरु जोकहे कि कर्मकीप्राति श्रुतिसे अधिक यत्नरूप कर्मबिषे बड़ाश्रम है क्योंकि अग्निहोत्रादिकों को अनेकसाधनों करके साध्यता है ताते, अरु तपब्रह्मचर्य्यादिक अन्य आश्रमके कर्म्मोंको गृहस्थाश्रमबिषेभी तुल्यता है ताते, अरु अन्य आश्रमको अल्पसाधनों की अपेक्षाहै ताते, तिस गृहस्थाश्रमका विकल्प अन्य आश्रमी पुरुषोंसे तुल्यवत् युक्तनहीं है, सोकथन बनेनहीं, क्योंकि जन्मान्तरबिषे सम्पादन किये अनुग्रहसे "कर्म्मणिश्रुतेरधिकोयत्न" कर्मबिषे श्रुतिका अधिकयत्नहै। इत्यादिक जोकहा, यह दोषनहीं है अरु जन्मान्तर बिषे किये भी अग्निहोत्रादि अरु ब्रह्मचर्य्यादि रूप कर्म्म विद्याकी उत्पत्तिकेप्रति अनुग्रह का करनेवाला हो ता

है। अरु कईक पुरुषोंको जन्मसेही विरक्त देखते हैं, अरु कईकों को कर्मोंविषे प्रवृत्त अरु विरक्त न हुये विद्याके द्वेषी देखतेहैं, ताते जन्मान्तरके किये। शमदमादि कर्मोंके। संस्कारोंसे विरक्तहुये पुरुषोंके अर्थ अन्य आश्रमकी प्राप्तिही अंगीकार करते हैं। अरु कर्मोंके फलकी बाहुल्यतासे , पुत्र, स्वर्ग, अरु ब्रह्मतेजादिरूप कर्म्मोंके फलको असंख्यात होनेसे, अरु सो पुरुष पुरुषके प्रति कामना की बाहुल्यतासे तिनके अर्थ श्रुतिका कर्मों बिषे अधिक यत्न संभवे है। अरु मुझको यह होवे मुझको यह, ऐसे कामना की बाहुल्यताके देखनेसे अरु तिनका उपायरूप होने से कर्म जो हैं,सो विद्याके प्रति उपायरूप हैं इसप्रकार हम कहते हैंएतदर्थ उपायविषे अधिक यत्न करने योग्य है, उपेय (उपायकरके प्राप्य) विषे नहीं। अरु जो ऐसाकहे कि विद्याकोकर्मरूप निमित्तवाली होनेसे अन्य यत्नकी व्यर्थता है, क्योंकि कर्म्मोंसेही सर्व संचित पापरूप प्रतिबंधके क्षय होनेसे विद्याउत्पन्न होतीहै,याते कर्म्मोंसे भिन्न उपनिषदोंका श्रवणादि यत्न व्यर्थ है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि इसप्रकारके नियमका अभावहै ताते । अरु प्रतिबंधके क्षय हुयेही विद्या उत्पन्न होवे नहीं, अरु ईश्वर की प्रसन्नता से अरु ध्यानादिकों के अनुष्ठानसेविद्या उत्पन्न होवेहै, ऐसा भी नियम नहींहै, क्योंकि अहिंसा अरु ब्रह्मचर्य्यादिकोंको विद्याके प्रति उपकारकपनाहै ताते, अरु श्रवण मनन निदिध्यासनको विद्याके साक्षात्ही कारण होनेसेइसकरके अन्यआश्रम सिद्धहुये, अरु सर्वको विद्याविषे अधिकार सिद्धहुआ ,अरु परमश्रेय (मोक्ष) केवल विद्यासेही सिद्ध होवै है यह भी सिद्ध हुआ २४ ॥

इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

इतिश्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गताशिक्षावल्लीनामकप्रथमाध्याय भाषाभाष्यसमाप्तम् १ ॥

—०—

अथ द्वितीयाध्यायब्रह्मानन्दवल्ली।

हरिः ॐ। सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। माविद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां। परमेव्योमन्। सोऽश्नुतेसर्व्वान् कामान्। सहब्राह्मणाविपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसःपुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेवशिरः। अयंदक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरःपक्षः। अयमात्मा। इदंपुच्छंप्रतिष्ठा। तदप्येषश्लोकोभवति १।२५

इतिप्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अथतैत्तिरीयोपनिषद्गतब्रह्मानन्दवल्लीनामक
द्वितीयाध्यायभाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, पूर्व उक्त विद्याकी उत्कर्षताके प्रतिबन्धकी निवृत्ति के अर्थ शांति पठन किया, अब अग्रिम कहने की ब्रह्मविद्या की प्राप्ति बिषे विघ्नोंकी निवृत्ति के अर्थ प्रथम शान्ति पाठ करते हैं " सहनाववतु, सहनौभुनक्तु, सहवीर्य्यंकरवावहै " ; सोई परमेश्वर हमको रक्षणकरो, सोई हमको भोगावो, सोई सामर्थ्य को सम्पादन करो ; अर्थात् । जो सर्वात्मरूप से सर्वत्र सुशोभितहै । सोई परमेश्वर हम शिष्य अरु आचार्य की सम्यक्प्रकार रक्षा करो, अरु सोई परमात्मा हम शिष्य अरु आचार्यको । सत्यादिकनसे । पालनकरो, अरु सोई । सर्व शक्तिमान् ,हमको विद्यारूप निमित्तवाले सामर्थ्य को सम्पादनकरो " तेजस्विनामधीत

मस्तु, मा विद्विषावहै " (तेजस्वी हुये हमारा अध्ययन तेजस्वी होवो, हम परस्पर द्वेषको मत प्राप्तहोवें ? अर्थात् तेजस्वी हुये हमारा अध्ययन तेजस्वी (अर्थज्ञानकेयोग्य) होवे, अरु विद्या ग्रहणके निमित्त शिष्य वा आचार्यके किये प्रमाद के अन्याय से प्राप्तहुआ जो द्वेष तिसकी निवृत्तिके अर्थ यह प्रार्थनाहै कि, हम परस्पर द्वेषको न प्राप्त होवें " ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः " (शान्तिहो, शान्तिहो, शान्तिहो, ? यहां तीनबार जो शान्तिका कथन है सो आदरार्थ है, वा आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के विघ्न विक्षेपकी निवृत्तिके अर्थहै । वा अग्रिम कहनेकी विद्याके विघ्न की निवृत्तिके अर्थहै । यह शान्ति पाठहै सो अविघ्नता से आत्मविद्याकी प्राप्तिकी प्रार्थनाके अर्थहैं, अरु तिस आत्मविद्या की प्राप्तिरूप मूलवालाही परमश्रेय है । [इस उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक दूसरी आनन्दवल्ली के तात्पर्य को भाष्यकार स्वामी कहते हैं] पूर्वाध्यायविषे प्रथम संहिताको विषय करनेवाले अरु कर्म्मोंसे अविरुद्ध उपासना कही । तिसके पश्चात् व्याहृतिरूप द्वारसे अरु स्वाराज्यरूप फलसे अन्तःकरणके भीतर सोपाधिक आत्माका ज्ञान कहा । अरु इतने करके सम्पूर्णसंसारके बीज की निवृत्तिका साधन कोई एकहै, यह जानागया । एतदर्थ सर्व अनर्थोंके बीजरूप अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ सर्व उपाधियोंके भेद से रहित आत्माके सम्यक् ज्ञानार्थ यहद्वितीय अध्यायका आरंभ करतेहैं । अरु इस ब्रह्मविद्याका प्रयोजन अविद्याकी अशेष निवृत्तिहै, अरु तिसकरके आत्यन्तिक संसारका अभाव होवे है । इसप्रकार अग्रिम " विद्वान्न बिभेतिकुतश्चनेति" विद्वान् किसी सेभी भयको प्राप्तहोता नहीं । इस वाक्यकरके यहश्रुति कहेगी । अरु जिसकरके संसाररूप निमित्तके होते सन्ते "अभयं प्रतिष्ठाञ्चाविन्दत " कृताकृतेपुण्य पापे नतपतइति " अभयस्थितिको पावताहै, अरु इसको किये अरु न किये पुण्यअरु पाप तपावते नहीं , । यह श्रुतिका कथनबनता नहीं, इसकरके जानाजाता है

कि इस सर्वके आत्मरूप ब्रह्मकोविषयकरनेवाले विज्ञानसेआत्यंतिक संसारकाअभावहोवे है। [अब प्रथमवाक्यके मध्यकेतात्पर्यकोकहतेहैं। केवल विद्याकरकेहीमोक्षसाधनेकोशक्यहै। अरु,ब्रह्मवित्,इस विशेषणसे सम्बन्धकेज्ञानको पुरुषकीइच्छाकाबिषयहोनेकरकेपरब्रह्मकी प्राप्ति विद्याकाप्रयोजनहै] इसप्रकार यह श्रुति "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्तापरब्रह्मको प्राप्तहोताहै,इत्यादिक वाक्यों बिषेही सम्बन्ध अरु प्रयोजनके जनावनेके अर्थ प्रयोजन को कहते हैं। अरु संबन्ध अरु प्रयोजनके जानने से मुमुक्षु विद्या के श्रवण ग्रहण अरु धारण करनेके अभ्यासार्थ प्रवर्त्त होता है। अरु "श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो" आत्मा श्रवण करने योग्यहै,मनन करनेयोग्यहै, निदिध्यासन करने योग्यहै,। इत्यादिक अन्य श्रुतियोंके प्रमाणसे श्रवणादि साधन पूर्वक "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्महीं होताहै,। इत्यादिरूप अग्रिम कहनेका विद्याका फल होताहै। एतदर्थ यहां श्रुति प्रथम विद्याके प्रयोजनको कहेहै। परमात्मा अत्यन्त बडा होनेसे ब्रह्म कहाजाताहै। तिसको जो जानताहै सो ब्रह्मवेत्ताहै। अरु "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" "ब्रह्मवेत्ता परको पावताहै" अर्थात् यह ब्रह्मवेत्ता सर्वसे अधिक तिसही परब्रह्मको पावताहै। अरु अन्यके विज्ञानसे अन्य की प्राप्ति होती नहीं। अरु ऐसे "स यो ह वैतत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति" जो प्रसिद्धही तिस परब्रह्मको जानता है सो ब्रह्महीहोताहै, इत्यादि रूप अन्यश्रुति स्पष्ट ब्रह्मवेत्ताको परब्रह्म की प्राप्तिही देखावे है, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको प्राप्तहोता है यह कथन योग्यहीहै॥ शंका॥ ननु सर्वगत। सर्वका आत्मरूप। ब्रह्महै इसप्रकार यहश्रुति आगेकहेगी,ताते प्राप्तहोनेयोग्य ब्रह्मनहीं है। अरु प्राप्तिजोहै सो अन्य परिच्छिन्नकीअन्य परिच्छिन्नसे देखीहै, अरु ब्रह्म जो है सो अपरिच्छिन्न अरुसर्वका आत्माहै,एतदर्थ परिच्छिन्नवत् अरु अनात्मवत् तिसकी प्राप्ति अघटित है। तब श्रुति कैसेकहती है कि ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावताहै॥समाधान॥ यह

दोष जो तुमनेकहा सो । बने नहीं, क्योंकिब्रह्मकी प्राप्ति अरु अप्राप्तिहै सोज्ञान अरुअज्ञानकी अपेक्षा वालीहैताते । अरु परमार्थसे ब्रह्म रूपहुयेभी, अरु भूतोंके अंशकरके किये बाह्य परिच्छिन्न अन्नमयादि कोशोंबिषे आत्मभावके देखनेवाले अरु तिन अन्नमयादिकोंविषे आसक्त चित्तवाले इसजीवको दशमकी संख्याको पूर्ण करनेवाले अन्तरायसे रहित हुयेभी, दशमके स्वरूपको बाहरके नवकी संख्यावाले पुरुषोंबिषे आसक्त चित्तवालाहोने करके स्वरूपके अभावके ज्ञानवत् परमार्थ ब्रह्मस्वरूपके अभावके ज्ञानरूप अविद्यासेअन्नमयादिक बाहरके अनात्मपदार्थोंकोआत्मपनेकरके प्राप्तहुआ होनेसे, सो जैसे अन्नमयादिक अनात्माओं से मैं अन्य नहीं हौं, ऐसा मानताहै, इसप्रकार इस जीवको अविद्या से, आत्मरूप हुआ भी ब्रह्म अप्राप्त होताहै । [दर्शन का न होनाही है निमित्त जिसका ऐसी जो अप्राप्ति तिसका विवेचन करके अब दर्शनका होनाही है निमित्तजिसका ऐसी जो प्राप्ति तिसका वर्णन करते हैं] अरु जैसे दशकी संख्याको पूर्ण करनेवाले दशमके स्वरूपको अविद्यासे अप्राप्त होतेसंते किसी भी आप्तपुरुषकरके स्मरण करायेहुये तिसहीकी विद्यासे प्राप्तहोवेहै, तैसेही अविद्यासे ब्रह्मस्वरूपकीअप्राप्तिवाले तिसीही जीवको श्रुतिकरके उपदेशकिये सर्वात्मा ब्रह्मके आत्मभावके ज्ञानरूप विद्यासे तिसकी प्राप्ति संभवेही है ॥ "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म को प्राप्तहोताहै, । यह वाक्य समस्तवल्लीके अर्थका सूचक होनेसे सूत्ररूप है " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावता है, । इस वाक्यकरके जाननेयोग्य होनेसे सूचनकिये, अरु विशेष स्वरूपके निर्द्धारसे रहित ब्रह्मके सर्वसे भिन्नकरके जनाये विशेष स्वरूपके समर्पणविषे समर्थ लक्षणके कथनसे स्वरूपके निर्द्धारण करके, अरु [पूर्व ,ब्रह्मवित् , इस विशेषणसे जिस ब्रह्मका ज्ञान कहाहै तिस ब्रह्मका " यो वेद निहितंगुहायां" जो गुहाबिषे स्थित को जानताहै, । इस वाक्य करके प्रत्यगात्मरूपसे ज्ञान कहनेको

योग्यहै, इस अर्थसे अब ऋचा कहते हैं] सम्पूर्ण होनेकरके कथनकिये ज्ञानवाले ब्रह्मके अग्रिम कहने के लक्षणके विशेषकर प्रत्यगात्माहोने करके अनन्य रूपसे जनावनेकी योग्यताके अर्थ ब्रह्मवेत्ताको जो परब्रह्मकी प्राप्तिरूप,ब्रह्मविद्याका फलकहा सोई है ॥ सो सर्वात्म भाव सर्व संसारके धर्म्म से रहित ब्रह्मस्वरूप भावही है, अन्य नहीं, इस अर्थ के लखावने के अर्थ यह ऋचा कहते हैं " तदेषाऽभ्युक्ता । सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म " " तिसही विषे यह उपदेश करिये है । सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै " अर्थात् तिसही ब्राह्मण वाक्यकरके उक्त अर्थ विषे यह ऋचा उपदेश किया है । सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै, यह वाक्य ब्रह्मके स्वरूप लक्षण अर्थ है अरु सत्यादिकजे तीन पद हैं सो विशेष्यरूप ब्रह्म के विशेषणार्थ हैं । अरु जानने योग्य होने करके कहने को इच्छित होने से, ब्रह्म विशेष्य है । अरु ब्रह्म जानने योग्य होने करके मुख्यता से कहने को इच्छित है, ताते विशेष्य रूप जाननेके योग्यहै [विशेषण अरु विशेष्य भावकी प्रतीति काहेसे होती है, तहां कहते हैं । यहां यहअर्थ है कि नीलवर्ण अरु बडी सुगंधिवाला कमलहै, इत्यादिक वाक्यों विषे विशेषण विशेष्य भावके होतेही समानाधिकरणपने करके एक विभक्ति रूप अंतवाले प्रसिद्ध हैं, अरु यह भी तिस प्रकारके नाना अर्थगत विशेषण अरु विशेष्य भावके किये हैं, इस प्रकार जानते हैं] जिस करके अन्य विशेषण विशेष्य भावके होनेसेही सत्यादिक एक विभक्तिवाले पद, समान (एक) अधिकरण (अर्थ) वाले हैं, एतदर्थ सत्यादिक तीन विशेषणों करके विशेष्य हुआ जो ब्रह्म सो अन्य विशेष्यनसे निर्द्धार करते हैं । तैसेही [अब विशेषण विशेष्यभावके फलको कहते हैं] जो अन्यों से निर्द्धार कियाहै, ऐसा तिसका ज्ञान होताहै । जैसे लोक विषे नील अरु बडी सुगंधिवाला कमल होताहै । जब अनेक द्रव्य एक जातिवाले अरु अनेक विशेषणोंके सम्बन्धी होवें, तब विशेषणको अर्थवान्पना (सफलपना) होवे है, परन्तु एकही

वस्तु विषे अन्य विशेषणके असम्बन्धसे विशेषणको अर्थवान्पना नहीं है । जैसे यह एक सूर्यहै, अरु तैसे एकही ब्रह्महै, अन्य ब्रह्म नहीं है, जिनसे नीलकमलवत् यह ब्रह्म विशेष्य (भिन्न किया) होवे,[सो विशेषण विशेष्यभावको तात्पर्यसे प्रतिपादन करनेको योग्यहोने से, अरु अव्याकृतादिक शास्त्र उक्त ब्रह्मपद के अर्थ के अवच्छेदसे अनिर्वाच्य विशेषण विशेष्यभाव के सम्बन्धसे तिस द्वारा ब्रह्मका लक्षण कहनेको इच्छितहै,ऐसा कहते हैं] यह कथन बनेनहीं, क्योंकि विशेषण लक्षणके अर्थ है ताते । अरु विशेषण जो हैं सो लक्षणरूप अर्थकी मुख्यतावालेहैं, विशेषणकी मुख्यतावालेही नहीं, याते यह दोष नहीं है ॥ शंका ॥ ननु तब लक्षणअरु लक्ष्यका वा विशेषण अरु विशेष्यका कौनभेदहै॥ समाधान॥तहां कहते हैं,विशेषण जो है सो विशेष्यके समानजातिवाले द्रव्यनसेही निवर्त्तकहै,अरु लक्षण जो हैं सो लक्ष्यका सर्वसेही निवर्त्तकहै,जैसे अवकाशका देनेवाला आकाशहै,यह आकाशका जो लक्षणहै सोआकाश रूपलक्ष्यका पृथिवी आदिक सर्वसे निवर्त्तक (भेदकरनेवाला)है,तैसे। अरुलक्षण अर्थ "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै, । यह वाक्य है, इसप्रकार हम कहते हैं ॥ सत्यादिक शब्द जो हैं सो परस्पर सम्बन्धको पावते नहीं, अन्य अर्थवालेहैं ताते । अरु जिसकरके वे विशेष्यके अर्थ हैं,याते एक एक विशेषणरूप शब्द जो हैं, सो परस्परकी अपेक्षासे रहित हुआ " सत्यं ब्रह्म, ज्ञानं ब्रह्म, अनन्तं ब्रह्म " सत्य ब्रह्महै,ज्ञान ब्रह्म है,अनन्त ब्रह्महै, । इसप्रकार ब्रह्मशब्दसे सम्बन्धको पावताहै । अरु जिसरूपसे जो निश्चितहै,अरु जिसरूपके अर्थव्यभिचारको पावता नहीं,सो सत्यहै। अरुजिस रूपसे निश्चितहुआ जो तिसरूपके अर्थ व्यभिचारको पावताहै,सो मिथ्या,इसप्रकार कहते हैं। अरु इसहीसे विकारकहियेकार्य मिथ्याहै"वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्" वाणीसे आरंभकिया विकार नाममात्रहै, अरु मृत्तिकाही सत्यहै, । अरु ऐसेसतुही सत्यहै, इस

निश्चयसे। इसकरके "सत्यंब्रह्मेति" सत्य ब्रह्महै,। इसप्रकार सत्य शब्दजो है, सो ब्रह्मको विकारसे निवृत्त (पृथक्) करे है॥ इसकरके ब्रह्मको कारणता प्राप्तहुई, अरु कारणको कारकपना अरु वस्तुरूपता होने से मृत्तिकावत् जडरूपता प्राप्तहुई, याते "ज्ञानंब्रह्मेति" ज्ञान ब्रह्महै,। ऐसा कहते हैं। यहां ज्ञान शब्दजो है सो निर्विशेष चैतन्यमात्ररूप अर्थवाला है, क्योंकि सत्य अरु अनन्त शब्दकरके सहित ब्रह्मका विशेषण है ताते। अरु सत्यता अरु अनन्तता जोहै सो ब्रह्मको ज्ञानके कर्त्तापनेके हुये सम्भवे नहीं, अरु ज्ञानका कर्त्ता होने करके विकारवान् हुआ जो ब्रह्म सो सत्य अरु अनन्त कैसे होय, जो वस्तु किसी से भी विभाग को प्राप्तहोती नहीं सो अनन्त है। अरु ब्रह्मको ज्ञानके कर्त्तापने के होने से, सो ब्रह्म ज्ञेय अरु ज्ञान दोनों करके विभाग को पावेगा, याते तिसको अनन्तता नहीं होवेगी। क्योंकि "यत्र नान्य द्विजानाति स भूमा, अथ यत्रान्यद्विजानाति तदल्पमिति" जहां अन्यको नहीं जानता है सो भूमा है, अरु जहां अन्यको जानताहै सो अल्प है,। इस अन्य श्रुतिते॥ अरु जो कहे "नान्यद्विजानाति" अन्यको नहीं जानता है,। ऐसे प्रपंच के निषेध से आत्मा को जानता है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि उक्त वाक्य भूमा के लक्षण के प्रकार के परायण है ताते। अरु "यत्र नान्यत्पश्यति" जहां अन्यको नहीं देखता,। इत्यादि रूप जो वाक्यहैं सो भूमाकेलक्षण के प्रकार के परायण है। जैसे "यथा प्रसिद्धमेवान्यत्पश्यतीति" प्रसिद्धही अन्यको देखताहै,। उसको लेके "यत्रतन्नास्ति सभूमेति" जहां सोप्रसिद्ध अन्य वस्तु नहीं सो भूमा है,। इस प्रकार भूमा का स्वरूप तिस वाक्यबिषे जनायाहै, अन्यके ग्रहण की प्राप्ति के निषेधरूप अर्थवाला होने से स्वस्वरूपबिषे ज्ञानरूप (जाननेरूप) क्रिया नहीं है। याते यह उक्त श्रुति वाक्य इसही अर्थ के परायण होहु। अरु स्वस्वरूप बिषे भेदके अभावसे ज्ञान का असंभव है अरु आत्माको ज्ञेयपने के हुये ज्ञातापने के प्रसंग

का अभाव होवेगा, क्योंकि तिसको ज्ञेयपनेकरकेही उपयोग को प्राप्तहुआ होनेसे ॥ अरु जो ऐसा कहे कि एकही आत्माज्ञेय अरु ज्ञाता होने करके उभय प्रकारका होवे है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि तिस आत्मा को एककालविषे निरवयवता है ताते । अरु निरवयव को एककालविषे ज्ञेयपने का अरु ज्ञातापने का संभव नहीं है । अरु आत्माको घटादिकोंवत् ज्ञेयपना होने से ज्ञानके उपदेश की व्यर्थता होवेगी । अरु जिसकरके घटादिकोंवत् प्रसिद्ध वस्तुके ज्ञानका उपदेश अर्थवान् नहीं है, तिसकरके ब्रह्मको ज्ञातापना होने करके सत्यता अनन्तताका असंभव होवेगा । अरु सन्मात्रपना भी अघटित होवेगा । अरु ज्ञानके कर्त्तापने आदिक विशेषण करके युक्तपने के हुये सन्मात्रपना संभवे नहीं, क्योंकि "तत्सत्यमिति" सो सत्य है, इस अन्य श्रुतिके प्रमाण से । अरु सत्य अरु अनन्त इन शब्द करके सहित ब्रह्मका विशेषण होने करके ज्ञान शब्दके उच्चार से यह ज्ञान शब्द चेतनमात्ररूप अर्थवाला है । एतदर्थ ज्ञानशब्द जो है सो "ज्ञानं ब्रह्मेति" ज्ञान ब्रह्म है, । इसप्रकार कर्त्तापने आदिक कारककी निवृत्ति के अर्थ अरु मृत्तिका आदिकोंवत् जड़पने की निवृत्तिके अर्थ बनता है ॥ अरु "ज्ञानं ब्रह्मेति" ज्ञानरूप ब्रह्म है, । इस वचन करके ब्रह्मको अन्तवान्पना प्राप्तहुआ, क्योंकि लौकिक ज्ञान को अन्तवान्पने करके युक्त देखते हैं ताते । एतदर्थ ज्ञान स्वरूप ब्रह्मविषे लौकिक ज्ञानवत् प्राप्तहुई अनन्तता तिसकी निवृत्तिके अर्थ, ब्रह्म अनन्त है, इसप्रकार श्रुतिकहती है ॥ अरु जो ऐसा कहे कि सत्यादिक विशेषणों को मिथ्या आदिक धर्म्म की निवृत्ति के परायण होने से, अरु विशेष्य ब्रह्म को कमल आदिक विशेष्योंवत् अप्रसिद्ध होने से " मृगतृष्णाम्भसिस्नातः खपुष्प कृतशेखरः, एषवन्ध्यासुतोयाति शशशृंगधनुर्धरः इति " मृगतृष्णा के जलविषे स्नानकिये, अरु आकाशके पुष्प का किरीट मस्तकपर धारणकिये अरु शशक (खरगोश) के

शृंगकाबना अतिदृढ धनुष धारणकिये यह प्रत्यक्ष वंध्याका पुत्र जाता है। इस वाक्यवत् सत्यादिरूप वाक्योंको शून्यरूप अर्थवान्पनाही प्राप्त होवेगा, सो बनेनहीं [सिद्धतामात्र करके विशेष्यताके संभवहुये अन्य प्रमाण का विशेषण व्यर्थ होवेगा क्योंकि केवल व्यतिरेकके अभावसे अरुरज्जु सर्पादिरूप मिथ्या अर्थ के सत्यरूप अधिष्ठानवान्पनेके देखने से दृश्यता आदिक हेतुओंसे मिथ्यापने करके जानेहुये प्रपंचको भी सत्यरूप अधिष्ठानवान्पना संभवे है। अरु प्रपंचका अधिष्ठान होनेकरके निश्चयकिये तिस ब्रह्मके स्वरूपके विशेष लक्षणार्थ यह वाक्य है, एतदर्थ इस वाक्य को असत् अर्थवान् पना नहीं है, इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि सत्यादिरूप वाक्यों को लक्षणरूप अर्थवान्पनाहै ताते। अरु सत्यादि पदों को विशेषणपने के हुये भी लक्षणरूप अर्थ की मुख्यता है, इसप्रकार हम कहते हैं। अरु जिस करके लक्ष्य को शून्य रूपहुये लक्षण का वाक्य व्यर्थ होता है, याते सत्यादिरूप वाक्योंको लक्षणरूप अर्थवाला होने से शून्यरूप अर्थवान्पना नहीं है, इस प्रकार हम मानते हैं। [सत्यादि शब्दोंकी विशेषणरूप अर्थवान्ताको अंगीकारकरके कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि नीलवर्ण महत्सुगंध,ऐसे विशेषणरूप जो पदहैं, सो अपने अर्थके समर्पणसे तिससे विरुद्ध अर्थ से अपने आश्रय (विशेष्य) के व्यावर्त्तक (अन्यसेपृथक्करनेवाले) प्रसिद्ध है, तैसे सत्यशब्द भी अबाधित सत्ताबिषे वर्त्तता है, अरु ज्ञानशब्द स्वप्रकाश संवेदन बिषे वर्त्तता है, अरु अनन्तशब्द व्यापकबिषे वर्त्तताहै "अनन्तोपमाकाश" अनन्तकी उपमावाला आकाशहै, इत्यादिक स्थलमें अनन्तशब्द व्यापकबिषे वर्त्तताहै। ताते अपने अर्थके समर्पणसे विरोधी अर्थ से अपने आश्रयके व्यावर्त्तक होने से सत्यादि शब्दोंका व्यावृत्तिमात्ररूप अर्थबिषे पर्यवसान(समाप्तिवावर्त्तना) नहीं है]सत्यादि शब्दोंको विशेषण रूप अर्थकरके युक्तहुयेभी अपने अर्थका परित्याग होतानहीं। अरु

जिस करके सत्यादि शब्दों को शून्यरूप अर्थ करके युक्तहुये विशेष्य के नियामकपनेका असंभव होवेगा, अरु सत्यादिरूप अर्थ करके अर्थवान्पने के होनेसे तो तिससे विपरीत धर्मवाले विशेष्योंसे ब्रह्मरूप स्वविशेषका नियामकपना संभवे है, याते ब्रह्मशब्द भी अपने अर्थकरके अर्थवान्ही है। तहां अनन्त शब्द जो है सो अन्तवान्पनेके निषेध द्वारा विशेषण है, अरु सत्यऔ ज्ञान यह शब्दतो अपने अर्थ को ।ब्रह्मबिषे। समर्पण करनेसे ही विशेषण होतेहैं। ["अनन्तं" अनन्त है, ।इस पदकरके ब्रह्म की आत्मासे एकता कही है, इस अभिप्रायसे एकताबिषे शास्त्र के तात्पर्य को देखावतेहैं]"तस्माद्वाएतस्मादात्मन इति" तिस (ब्राह्मणभाग करके प्रतिपाद्य) से वा इस (मन्त्र भागकरके प्रतिपाद्य)आत्मासे, । इस वाक्यमें ब्रह्मबिषेही आत्मशब्दके मिलावने से, ज्ञाताका आत्माही ब्रह्म है । अरु "एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रामति" इस आनन्दमय आत्माको प्रवेश करावता है,। अरु "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशदिति" तिसको सृजके तिसकेप्रति पीछे प्रवेश करताहुआ ,। इसप्रकार तिसके प्रवेशसे। अरु जिस करके तिसही परब्रह्मके जीवरूपसे शरीर विषे प्रवेशको श्रुतिदेखावे है, इसही करके ज्ञानवान्का स्वरूप ब्रह्म है ॥ [जब ब्रह्मकी आत्मासे एकता कहनी इच्छित है,तब ज्ञानशब्द की भावरूप साधनता की व्याख्या भंग होवेगी, इस प्रकार पूर्वपक्षी कहता है] जब इस प्रकारहै तबआत्मा होनेते ब्रह्मको ज्ञानका कर्त्तापना होवेगा ॥ अरु जिस करके आत्मा ज्ञाता है, यह प्रसिद्ध , है, अरु "सो अकामयत" सो कामना करताहुआ, । इस प्रकार कामनावाले परमेश्वरको ज्ञानका कर्त्तापना प्रसिद्ध है, याते ज्ञानका कर्त्ता होनेकरके चेतनमात्र रूप ब्रह्म है, यह कथन अयुक्त होवेगा अरु उक्त प्रकार माने हुये अनित्यताके प्रसंगसे जब ब्रह्मको चेतनमात्र ज्ञानस्वरूपता है , तब अनित्यता अरु परतन्त्रता प्राप्त होवेहै, क्योंकि

धातुके अर्थको कारक की अपेक्षावान्पना है ताते। अरु ज्ञान धातु का अर्थहै, एतदर्थ इस ज्ञानको अनित्यता अरु परतन्त्रता है, सो कथन बने नहीं,क्योंकि स्वरूपसे भिन्न होने करके कार्यपने के उपचार से। अरु चिन्मात्ररूप जो ज्ञानहै सो आत्माका स्वरूप है ताते भिन्न नहीं, याते नित्यही है, तथापि चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा विषयाकार परिणाम को पावने वाली बुद्धिरूप उपाधिके जो शब्दादि विषयाकार प्रकाशहैं,सो आत्मस्वरूप ज्ञान के विषयरूप उत्पन्न हुयेही आत्मस्वरूप ज्ञानसे व्याप्त संभवे हैं, ताते आत्मस्वरूप विज्ञान के जो प्रकाश हैं सो विज्ञान शब्द के वाच्य अरु धातुके अर्थरूप हुये आत्मा केही विकाररूप धर्म हैं, इसप्रकार अविवेकी पुरुषों करके कल्पना करीहै। परन्तु जो ब्रह्म का विज्ञान है सो सूर्य के प्रकाशवत् अरु अग्निकी उष्णतावत् ब्रह्मस्वरूपसे अभिन्न हुआ स्वरूपही है, अरु सोअन्य कारणकी अपेक्षावाला नहीं,क्योंकि नित्यस्वरूपहै ताते।[प्रश्न ॥ ज्ञान जब नित्य है तब तिसबिषे ब्रह्म के कर्त्तापने के अभाव हुये ब्रह्मको सर्वज्ञपना कैसे है ॥ उत्तर ॥ यहां यह अर्थ हैकि ज्ञानकेअन्तराय से बिनाही बाह्यके विषयोंकी सिद्धि होतीहै, अरु सर्व वस्तु ज्ञान स्वभाववाले ब्रह्म से अंतराय रहित है, याते ब्रह्म सर्वज्ञ है, इस प्रकार आरोप करके कहते हैं] अरु सर्व पदार्थों को तिसकरके अभिन्न देश काल अरु आकाशादिक कारणवाले होने से अरु तिस ब्रह्म को निरतिशय सूक्ष्म होने से तिसको अन्य सूक्ष्म अन्तराय सहित दूरीस्थिति भूत भविष्यत् वा वर्त्तमान वस्तुजानने को योग्य नहीं है, ताते सो ब्रह्म सर्वज्ञ है। अरु "अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न चतस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तमिति, मन्त्रवर्णात् "नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयोऽस्ति, इत्यादि श्रुतेश्च" हस्त पाद से रहित हुआ जानेवाला अरु ग्रहणकर्त्ता है, अरु सो चक्षु रहित हुआ देखताहै कर्ण रहित

हुआ सुनता है, सो जानने योग्य बस्तु को जानताहै, अरु तिस का जाननेवाला कोई नहीं, तिसको मुख्यमहत् पुरुष कहते हैं, इस मन्त्रके वर्णन से । अरु विज्ञाताकी विज्ञप्ति का लोप होता नहीं अविनाशी है ताते, अरु तिससे दूसरा नहीं है, इत्यादिक श्रुतियों से । [ब्रह्म नित्यहै, ज्ञानस्वरूप होने से, लौकिक ज्ञान-वत्, इत्यादिरूप जोप्रश्न है, सो कथन करी युक्तियों से निषेध किया ऐसा कहते हैं। यहां यह भाव है कि लौकिक ज्ञान को करणादिकों की अपेक्षा सहित होनेसे अनित्यपना है, अरु आत्म-स्वरूप ज्ञान तो करणादिकोंकी अपेक्षा सहितनहीं, क्योंकिसमस्त करणोंके व्यापारके उपरामहुये भी सुषुप्तिविषे तिस ज्ञानका सद्भा-वहै ताते, अरु अन्यथा हुये सुषुप्तिकी सिद्धताका असंभवहै ताते, अरु सुषुप्तिसे जाग्रतहुये पुरुषको सुषुप्तिके स्मरणके असंभवके प्रसंग से, याते श्रुतितात्पर्यके विषयरूप अर्थविषे सामान्यसे देखे हुये अर्थका प्रवेश नहींहै] अरु विज्ञाताके स्वरूपकरके अभेदसे करणादि निमित्तोंकी अपेक्षासे रहित होनेसे ब्रह्मकोज्ञान स्वरू पताके हुयेभी नित्यताकी सिद्धि है। एतदर्थ नित्य आत्मस्वरूप होनेकरके ब्रह्मरूप ज्ञान धातुका अर्थ नहीं है, इसही से। अर्थात् नित्यहोने से। ज्ञानकाकर्त्ताब्रह्म नहीं है,अरुइसही हेतुसेज्ञानशब्द का वाच्यभी ब्रह्मनहीं है।[प्र०॥तहांज्ञानस्वरूपब्रह्महै, यह प्रयोग कैसे सिद्धहोवेहै ॥ उ०॥तहां कहते हैं] तथापि तिसके ज्ञानरूप ब्रह्मकेआभासके वाचक बुद्धिके जो धर्मविशेषहैं,सो ज्ञानशब्दसे लखे जातेहैं परन्तु कहतेनहीं, क्योंकि शब्दकी प्रवृत्तिके हेतुजाति आदिक धर्मसे रहितहै ताते। तैसे सत्य शब्द से भी वाच्य ब्रह्म नहीं है। ब्रह्मको सर्व प्रपंचकी निवृत्तिकरके युक्त स्वरूपवाला होनेसे, बाह्यसत्ता के भेदको विषयकरनेवाले सत्य शब्दसे ब्रह्म सत्यहै, इसप्रकार लखतेहैं,परन्तु सत्य शब्दका वाच्य ब्रह्म नहीं है। अर्थात् सत्यादि नामोंका नामीब्रह्म नहीं है किन्तु सत्यस्वरूप है। [उक्तप्रकार एक एकपदके अर्थको निरूपणकरके अब समस्त

वाक्यके अर्थको कहतेहैं,।यहांयहअर्थ है कि यद्यपि सत्यादि शब्दों का ब्रह्मसे मुख्य अन्वय है, तथापि वो सत्यादि शब्द परस्परकी सन्निद्धिके हुये परस्परकी व्यावृत्तिके नियामक होतेहैं। अरु ज्ञान रूप विशेषकरके युक्त होनेसे सत्यशब्दजड कारण बिषे वर्त्तता नहीं, अरु सत्यरूप विशेषण करके युक्त होनेसे ज्ञानशब्द जो है सो विषयकी अपेक्षासहित जोज्ञानहै तिसबिषे वर्त्ततानहीं, क्योंकि विषयापेक्षिक ज्ञान असत्यहै ताते।। अरु ज्ञानस्वरूप विशेषणकरके युक्तहोने से अनन्त शब्दज्ञातासे भिन्न अर्थ बिषे वर्त्तता नहीं। एतदर्थ सत्यादिशब्दोंसे लौकिकवाच्य जोहै,तिससेविलक्षणअर्थ होनाचाहिये, इसप्रकार निश्चयकरावतेहुये समस्तलौकिक अध्यासोंके अधिष्ठानको ब्रह्महोनेकरके लखावते हैं]याते "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेऽप्राप्यमनसासह" "अनिरुक्तेऽनिलयेनेति" जिससे अप्राप्तहोयके मनसाहित बाणियां निवृत्तहोती हैं,अरु इस वाणी के अविषय अरु आधाररसेरहित ब्रह्मबिषे अभयास्थितिको पावताहै,।इत्यादिक श्रुतियोंकरके प्रतिपादित ब्रह्मका अवाच्यपना अरु नीलकमलवत् वाक्यकाअर्थपना सिद्धहुआ॥उक्तप्रकार कथनकिया जोब्रह्म सो कार्यमय बुद्धिरूप गुहाबिषे अनुस्यूतजो अव्याकृत (माया) नामवाला परमआकाश है तिसबिषे स्थित है॥ अरु जिसकरके इसबुद्धिबिषे ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञातारूपपदार्थ गूढहुये वर्त्ततेहैं, याते बुद्धिको गुहाकरके कहतेहैं। वा इस बुद्धिबिषे भोग अरु मोक्ष यहउभय पुरुषार्थ गूढ कहिये छिपेहुये हैं एतदर्थ बुद्धिको गुहारूपसे वर्णनकरतेहैं। वा "एतस्मिन्खल्वक्षरेगार्ग्याकाश" हेगार्गि इसअक्षरबिषे निश्चयकरके आकाशहै ,। इसश्रुतिबिषे अव्याकृतको ब्रह्मकी सन्निधिसे परम आकाशरूपताहै [व्योमशब्दकी जो भूताकाशबिषे रूढिवृत्ति है तिसकोपरित्यागकरके अव्याकृतको विषयकरनेपना क्या व्याख्यानकिया, इस शंकापर कहतेहैं। यहां यहअर्थ है कि भूताकाशको कार्यहोनेकरके असृष्टपनाहै ताते,अरु अव्याकृतरूप आकाशको कारणहोने

करके परमता (श्रेष्ठता)रूप विशेषणका संभवहै ताते, अरु अन्य शाखाके सत्पथनामक प्रकरणबिषे अक्षररूप ब्रह्मसे तिस अव्याकृत आकाशकी समीपताका निश्चयहै ताते, यहां व्योमशब्दकरके अव्याकृतको लखायाहै] सोअव्याकृतरूप आकाशही गुहा है। क्योंकि तिसको तीनकालबिषे कारणताहै ताते, अरु तिस को सूक्ष्महोनेकरके तिसबिषेभी सर्वपदार्थ गूढहुये वर्त्ततेहैं, एतदर्थउस अव्याकृतरूप आकाशको गुहाकरके वर्णनकरते हैं, तिस विषे ब्रह्मस्थितहै। इसप्रकार अन्योंके अभिप्रायसे व्याख्यानकरकेअब अपने अभिप्रायसे व्याख्यानकरतेहैं। [हृदयनामक मांस पिंडीकरके अवच्छिन्न भूताकाशबिषे जो बुद्धिरूपा गुहाहै तिसबिषे साक्षिहोनेकरके निहित कहिये प्रकट ब्रह्महै, इसप्रकार व्याख्यानकरना युक्तहै क्योंकि द्रष्टासे अभेदकरके ब्रह्मके अपरोक्षपनेका लाभहै ताते। अरु अन्यथा समष्टिरूप अव्याकृतिनामक माया तत्त्वबिषे स्थितब्रह्महै, इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मको परोक्षपना प्राप्त होवेगा। अरु ब्रह्मका जो परोक्षपनेसे ज्ञानहै सो अपरोक्ष संसार के अध्यासका निवर्त्तक होवेनहीं। ताते अपरोक्षद्रष्टा चैतन्यसे अभेदकरके ब्रह्मको अपनेहृदयबिषे प्रत्यक्षपनेकरके कहनेको इच्छित है ताते, विज्ञानका साधनरूप हृदयाकाशही यहां व्योम शब्दकरके कहनेको इच्छितहै] अथवा हृदयावच्छिन्न जो भूताकाशहै सो परमव्योम है, तिसबिषे जो बुद्धिरूपा गुहाहै तिसबिषे साक्षीहोकरके ब्रह्मस्थितहै, यह व्याख्यान युक्तहै, क्योंकि इस श्रुतिविषे ज्ञानकासाधन होनेकरके आकाशको कहना इच्छितहै ताते। अरु "योवैसबहिर्द्धापुरुषाकाशो योवैसोऽन्तःपुरुषाकाशः सोऽयमन्तर्हृदयाकाश इति" जोप्रसिद्ध बाहर पुरुषाकाशहै, अरु जो प्रसिद्ध सो भीतर पुरुषाकाशहै, सोयह अन्तर हृदयाकाशहै,। इस अन्य श्रुतिसेभी हृदयाकाशका परम 'उत्कृष्ट' स्वरूप प्रसिद्ध है। तिस हृदयाकाशविषे जो बुद्धिनामक गुहाहै तिसबिषे स्थित जो ब्रह्म है सो वृत्तिसे सूक्ष्महोने करके जानिये है। अरु अन्य-

था कहिये प्रतीतिबिना ब्रह्म को "विशिष्ट, देश, अरु कालका, संबंध नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसर्वगत है, ताते अरु सर्व उपाधि से रहित है ताते। इस प्रकार कथन किये बुद्धिरूपा गुहाबिषे अनुस्यूत अव्याकृत नामवाले परम आकाशबिषे वा हृदयकरके अवच्छिन्न "। योवेदनिहितंगुहायां परमेव्योमन्। सोऽश्नुतेसर्वान्कामान् सहब्रह्मणाविपश्चितेति"। (परमआकाशबिषे गुहा में स्थितको जो जानता है सो सर्वज्ञ ब्रह्मरूपसेही सर्वभोगोंको एककाल बिषे भोगता है; अर्थात् परमआकाश बिषे वर्त्तमान बुद्धिरूपा गुहामें स्थित ब्रह्मको जोपुरुष जानताहै सो [यहांयह अर्थ है कि अविद्या अवस्थाबिषे जो हिरण्यगर्भादिक उपाधियों बिषे भोग्यहोने करके मानेहुये सुखके भेदहैं, तिन सर्वको ब्रह्मानन्दसे अभिन्न होनेसे ब्रह्मभूत जो विद्वान्है सो इन सर्व आनन्दों को भोगता है, इसप्रकार उपचारसे बहुवन है]सबभोगों को भोगता है॥ प्रश्न ॥ क्या अस्मदादिकोंवत् (इसलोकमें (पुत्र अरु (परलोक में (स्वर्गादि भोगोंको क्रमकरके भोगताहै॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, एक क्षण बिषे आरूढही भोगोंको सूर्य के प्रकाशवत् नित्य ब्रह्मस्वरूप अभिन्न, अरु जिसको सत्य अरु ज्ञानरूप कहते हैं, ऐसे एकही ज्ञानकरके ब्रह्मरूप से भोगता है, अर्थात् ब्रह्मभूत जो विद्वान् सो ज्ञानरूपहोनेसे सर्वज्ञ ब्रह्मरूपसे ही सर्वभोगों को एककाल बिषे भोगताहै। परन्तु जलगत सूर्य अरु आकाशादिकोंवत् उपाधिकृत प्रतिबिंबभूत संसारीस्वरूपसे पुण्यादिक निमित्तकी अपेक्षावाले अरु चक्षुरादि करणोंकी अपेक्षावाले लोकाबिषे प्रसिद्धभोगोंको क्रमकरके भोगतानहीं, किन्तु उक्तप्रकारसे सर्वज्ञ सर्वात्मा नित्य ब्रह्मात्मस्वरूपसे पुण्यादिक निमित्तोंकी अपेक्षासे रहित अरु चक्षुरादिक करणोंकी अपेक्षासे रहित सर्व भोगोंको साथही भोगताहै, अरु सर्वज्ञ ब्रह्मरूपसे जो भोगताहै सो तिसका विपश्चित्त कहिये पंडितपनाहै। अरु यहां मूलशब्द बिषे " इति " शब्द जो है सो मन्त्रकी समाप्तिके अर्थ

है। अरु सर्वेही वल्ली का अर्थ "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म को पावता है ,। इस ब्राह्मणवाक्य से सूचन किया, सो अर्थ संक्षेपसे मन्त्रकरके व्याख्यान किया, पुनः तिसही अर्थका विस्तारसे निर्णय कर्तव्य है , एतदर्थ उक्त मन्त्र की व्याख्यान स्थानी अग्रिम ग्रंथ प्रारम्भ करते हैं। तहां मन्त्रकी आदि विषे "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है,। इसप्रकार कहा, सो कैसे, सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप है, तहां पूर्वोक्त अर्थका अनुवादकरतेहुये कहते हैं, अनन्तपना जो है सो देशसे कालसे वस्तुसे, इन भेदकरके तीनप्रकारकाहै। जैसे देशसे अनन्त आकाशहै तिसका देशसे परिच्छेद नहीं है,परन्तु आकाशका काल से अरु वस्तुसे अनन्तपना नहीं है, क्योंकि आकाश कार्यरूप है ताते। इसप्रकार ब्रह्मको आकाशवत् कालसे भी अन्तवान्पना नहींहै, । अर्थात् आकाश उत्पत्तिमान् कार्यरूप अरु वस्तुरूपहोने से अपनी उत्पत्तिके पूर्वकाल विषे है नहीं ताते आकाशको काल से अन्तवान्पनाहै तैसे ब्रह्मको नहीं। क्योंकि अकार्यरूपहैताते, अरु कार्यरूप जो वस्तुहै सो कालसे परिच्छेदको पावती है, अरु ब्रह्म जो है सो अकार्यरूप है ताते कालसे भी अनन्तहै। तैसेही ब्रह्मका वस्तुसे भी अनन्तपनाहै, क्योंकि सर्व वस्तुओंसे अभिन्न है ताते। अरु भिन्न जो वस्तु है सो अन्यवस्तु का अन्तहोवे है । जैसे देवदत्तके गृहसे भिन्न समीप विष्णुदत्तका गृहहै सो देवदत्तके गृहका अन्तहै क्योंकि विष्णुदत्तके गृहके स्थान में देवदत्त का गृहनहीं, अरु एकठेकाने दोवस्तुरहतीनहीं, अरु जो भिन्नवस्तु हैं सो परस्पर में एकदूसरे का अन्तलखावे है । अरु जिसकरके जिसकी बुद्धिकी निवृत्ति होतीहै सो तिसका अन्तहै। जैसे गौपने की बुद्धि अश्वपनेकी बुद्धिसे निवृत्ति होती है, याते गौपना जोहै सो अश्वपनेका । अरु अश्वपनाहै सो गौपनेका । अन्त है, इस प्रकार सो अन्तवान्ही होतेहैं। अरु सो अन्त अपनेसे भिन्नवस्तु विषे देखतेहैं। अरु ब्रह्मका किसीसे भी भेदहै नहीं एतदर्थ ब्रह्म

का वस्तुसेभी अनन्तपनाहै ॥ प्र० ॥ पुनः ॥ ब्रह्मको सर्ववस्तुओं से अभिन्नपना कैसे है, ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं,ब्रह्म सर्ववस्तुओं का कारण है ताते ब्रह्मको सर्व वस्तुओं से अभिन्नपना है। अरु जिसकरके काल अरु आकाशादिक सर्ववस्तुओंकाकारण ब्रह्महै, याते सो घटादिकोंसे अभिन्न मृत्तिकावत् अरु सर्प दंड मालादिकोंसे अभिन्न रज्जुवत् सर्व वस्तुओंसे अभिन्नहै ॥ अरु जो ऐसा कहे कि कार्यकी अपेक्षासे ब्रह्मको वस्तुओंसे अन्तवान्पना होवेगा, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि कार्यरूप वस्तुको मिथ्यापनाहै ताते । अरु जिसकरके वास्तव से कारण से भिन्नकार्य है नहीं, अरु जिसकरके कारण के जानेहुये कार्यकी बुद्धि निवर्त्त होतीहै "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यं" "सदेव सत्यमिति" वाणीसे आरम्भ किया विकार नाममात्र है, मृत्तिकाही सत्य है। ऐसे सत्रूपही सत्य है, । इन अन्य श्रुतियों से । ताते आकाशादिकोंका कारण होने से प्रथम देशसे अनन्तब्रह्महै। अरु आकाश देशसे अनन्तहै यहसर्वको प्रसिद्धहै,तिसआकाशका यह कारण है ताते आत्माको देश से अनन्तपना सिद्धही है। अरु जिसकरके व्यापक से व्यापक उत्पन्नहुआ ऐसा कुछ नहीं देखते। इसकरके आत्माका जो देशसे अरु अकार्यरूप होनेसे कालसे अरु तिस आत्मासे भिन्न वस्तुके अभावसे जो अनन्तपना है सो निरतिशय (सर्वसे अधिक) है अरु जिसकरके आत्माका निरतिशय अनन्तपना है इसहीसे तिसका निरतिशय सत्यपना है [इसप्रकार सृष्टिवाक्यके तात्पर्य को कहके अब पदोंका विभागकरते हैं अन्तके कार्य पर्यन्त सर्वत्र परमात्माके ग्रहणहोनेसे आकाश भावको प्राप्तहुये परमात्मासेही वायु उत्पन्न हुआ, याहीसे तिसके गुण आगे अनुवृत्ति है। इसप्रकार जानना] यहां इस कहने के वाक्यविषे जो "तिस" शब्दहै तिसकरके मूलके वाक्य से सूचन किया ब्रह्म ग्रहण करते हैं, अरु "इस" शब्दकरके जो ब्रह्मही ब्राह्मण भागसे सूचन किया अरु जो "सत्यंज्ञानमनन्तं

ब्रह्म" सत्यज्ञान अनन्त ब्रह्म है, इसवाक्य करके अनन्तरही लखाया है सो ग्रहण करते हैं "तस्माद्वाएतस्मादात्मनआकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। सवाएषपुरुषोअन्नरसमयः" ॥ तिस इस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु,वायुसे अग्नि, अग्निसे जल,जलसे पृथिवी,पृथिवीसे ओषधियां,ओषधियों से अन्न, अन्नसे रेत, रेतसे पुरुष,उत्पन्नहुआ,सो प्रसिद्ध यहपुरुष अन्नरसमयहै,।अर्थात् तिस इस आत्मस्वरूप ब्रह्मसे आकाश उत्पन्नहुआ सो आकाश शब्द गुणवाला है सो मूर्त्तरूप द्रव्योंको अवकाशका देनेवालाहै।तिस आकाशसे अपने स्पर्श गुणकरके अरु पूर्वके आकाशके शब्द गुण करके इसप्रकार उभयगुणवाला वायु उत्पन्नहुआ। अरु तिसवायु से अपने रूप गुणकरके अरु पूर्वकेशब्द स्पर्श गुणकरकेयुक्त तीन गुणवाला अग्नि उत्पन्नहुआ। अरु अग्निसे अपने रस गुणकरके अरु पूर्वके, शब्द , स्पर्श,रूप, इन तीन गुणकरके युक्त चारगुण वाले जल उत्पन्नहुये। अरु तिस जलसे अपनेगंध गुणकरके अरु पूर्वके ; शब्द , स्पर्श, रूप, रस, इन चारगुणकरके युक्त पांचगुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई । पृथिवी से ओषधियां, ओषधियों से अन्न ; अन्नसे रेत कहिये वीर्य , अरु वीर्य से मस्तक अरु हस्त पादादिक अवयव आकृतिवाला पुरुष उत्पन्नहुआ [पंचकोश के आरम्भका तात्पर्य कहते हैं] सो प्रसिद्ध यह पुरुष अन्नरसमय है , अर्थात् अन्नके रसका विकार है ॥ जिसकरके सर्व अंगोंसे उत्पन्नहुआ अरु पुरुषके आकार से सम्भवको पाया जो तेज सो रेत अरु वीर्य कहते हैं। ताते जो जन्मता है सो भी तैसा पुरुषाकारवालाहोताहै, क्योंकि सर्व जातियोंविषे उत्पन्न होने वाले शरीरको पिताकेआकारसे। होनेकेनियमकोदेखते हैं ताते अरु सर्व शरीरोंको अन्नके रसकी विकारताके अरु ब्रह्मकेवंशविषे उत्पत्तिकी तुल्यता के हुये, यहां पुरुष (मनुष्य शरीर) ही किस

कारणसे ग्रहण करते हो, तहां कहते हैं, प्रधान होनेसे। अर्थात् विधि निषेधके विवेकके सामर्थ्य करके युक्तहै ताते। यहां पुरुषही ग्रहणकरते हैं॥प्र०॥पुनः पुरुषका प्रधानपना क्याहै॥ उ०॥ तहां कहते हैं,कर्म अरु ज्ञानका अधिकार पुरुष शरीरबिषेही है,क्योंकि तिसको समर्थताहै ताते, अरु अर्थी। कामना। वालाहै ताते अरु जिसकरके अर्थी विद्वान् अरु समर्थहुआ पुरुषकर्म अरुज्ञानबिषे अधिकारकोपावताहै,इसकरके तिसकीप्रधानताहै अरु पुरुषपनेबिषे।अर्थात् ब्राह्मणादि जातिवाले मनुष्यादि शरीरबिषे। आत्माज्ञानके अतिशयके देखावनेसे, अतिशयकरके प्रकटहै। अरु सो पुरुष विज्ञानकरके अत्यन्त सम्पन्न हुआ ज्ञात बस्तुको कहताहै, ज्ञात वस्तुको देखता है कल्ह होनेवाले कार्यको जानताहै, अरु लोक अलोकको जानताहै, मरने योग्य।शरीर। से अमृत (अक्षयपद) प्राप्तहोनेकी इच्छा करताहै। इसप्रकार।प्रधानताकरके। सम्पन्न है अरु "पशूनामशनापिपासे एवाभिज्ञानमित्यादि" अन्य पशुओं के क्षुधा तृषाकाही ज्ञानहै,। इत्यादिरूप एतरेयक श्रुति वाक्यके देखने से॥ सोई पुरुष यहां विद्यासे अत्यंत भीतर ब्रह्मको प्राप्त होनेकी इच्छा करताहै। अरु जिसकी अनात्मरूप बाह्य आकारों के भेदोंबिषे किसीभी आश्रयके अर्थ आत्माकी भावनाको प्राप्त हुई जो बुद्धि सो तत्काल अत्यन्त आन्तर प्रत्यगात्माको विषय करने वाली अरु निराश्रय करने को अशक्य है, याते देखे हुये शरीररूप आत्माकी तुल्यता की कल्पना से शाखा चन्द्र के दृष्टान्तवत् भीतर प्रवेश करावते हुये कहते हैं "। तस्येदमेव शिरः, अयंदक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येषश्लोको भवति "। तिसका यहही शिर है,यह दक्षिण पक्ष है, यह उत्तर पक्ष है, यह आत्माहै,यह पुच्छ प्रतिष्ठा है, तिसही बिषे यह श्लोक होता है ;अर्थात् तिस इस अन्न रसमय पुरुषका यहही प्रसिद्ध शिर है। शिरसे रहित प्राणमयादि।कोशों। बिषे शिरभाव के। श्रुति करके। देखने से यहां। अन्न

मयकोशविषे । भी तिसका प्रसंग मत हो, इस अभिप्रायसे यहां यहही शिर है, ऐसा कहा है।इसप्रकार इसके पक्षादिक अंगोंबिषे भी योजना करनी । अरु यह पूर्व दिशा के सम्मुख हुये पुरुषका जो दक्षिण बाहु है सो दक्षिण दिशाकी ओर होता है ताते सो यहदक्षिणपक्षहै। अरु यहबामबाहु । जो पूर्वाभिमुखहोनेसे उत्तर दिशा की ओर होता है।सो यह उत्तरपक्षहै अरु यहदेहका मध्य-भाग अन्य अंगोंका । आश्रय होने से । आत्मा है " मध्यं ह्येषा-मंगानामात्मेतिश्रुतेः" यह अंगों का मध्य आत्मा है, । इस श्रुति करके । अरु यह नाभि के नीचे जो अधो अंग है सो पुच्छ प्रतिष्ठा कहिये आधार है । जिसकरके शरीर स्थितहोता है ऐसे जे पाद तिसको प्रतिष्ठाकहते हैं। अरु जैसे गौका पुच्छहै तैसे यह नीचे के आश्रयकी तुल्यतासे पुच्छवत् पुच्छ कहते हैं। [पक्ष अरु पुच्छ शब्दके उच्चारणसे पक्षिके आकारकी कल्पनाको देखावेहैं। आगे तिसकी कल्पनासे बाह्य विषयकी आसक्तिके निषेधकी हेतु बुद्धिके आत्मा बिषे स्थिर करने के अर्थ है, उपासनाका विधान यहां कहनेको इच्छित नहीं] इस कथनकरके अग्रिम कहने के प्राणमयादि कोशोंके, सांचे बिषे डालनेसे प्रगलितहुये ताम्रादि धातुओंकी प्रतिमावत् , रूपकपनेकी सिद्धिहोवेहै। अर्थात् जिस आकारका सांचाहोताहै तिसमें पूर्णतासे तिसहीके आकार धातु की प्रतिमाहोतीहै परन्तु सो प्रतिमा सांचेके अन्तर तिस के पू-र्णाकार हुई भी सांचे अरु तिसके धर्मादिकोंसे पृथक्ही होती है, तैसे अन्नमयकेभीतर प्राणमय तिसकेभीतर मनोमय तिसके भी-तर विज्ञानमय तिसके भीतर आनन्दमय , इसप्रकार जानना । तिसही ब्राह्मण वाक्य करके उक्त अर्थबिषे अन्नमयके स्वरूप का बोधक यह श्लोक कहिये मन्त्र होताहै ॥

इति द्वितीयाध्यायान्तर प्रथमोऽनुवाकः १ ॥

—०—

अन्नाद्वैप्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्चपृथिवी छंश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नछं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्ववैतेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नछं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि। जायन्ते। जातान्यन्नेनवर्द्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति॥ तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। सवाएष पुरुषविध एव। तस्य पुरुष विधताम् अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति २६॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, [यहां यह रहस्यहै कि उपक्रम अरु उपसंहारकी, ब्रह्म अरु आत्माकी एकताके प्रतिपादनसेही, परिसमाप्तिसे ग्रंथ के मध्यमें उपासनाकी विधिविषे तात्पर्यके हुये वाक्य भेदके प्रसंगसे, अरु इसही से " एवांगेस्तुतिपरार्थत्वादिति " अन्त बिषे स्तुतिपर अर्थके होने से, । इस न्यायकरके जैसे प्रयाजादि फल का श्रवण अर्थवादहै, तैसे अन्नमयादिकोंके ज्ञानके फलका श्रवण भी अर्थवादहीहै, क्योंकि तिस तिस कोशबिषे बुद्धिके स्थिरकरने को पूर्व पूर्व कोशगत बुद्धिके विलयसे आत्माके निश्चयका साधन होताहै ताते]। अर्थात् अन्नमयादि कोशोंके श्रवणका फल केवल अर्थवादमात्रही हैं तथापि कोशों का श्रवण कोशातीत आत्माके निश्चयमें साधनहै क्योंकि प्रथम अन्नमयके श्रवण से बुद्धि तिसबिषे स्थिरताको पावती है, पुनः प्राणमय जो अन्नमय

का अन्तरात्मा है तिसके श्रवणसे अन्नमयसे हटके बुद्धि प्राणमय में स्थितिको पावती है, इसप्रकार उत्तरोत्तर कोशों के श्रवण से बुद्धि पूर्व पूर्व कोशों के विचार को त्यागती है, इसप्रकार जब बुद्धि अन्तके आनन्दमयकोशके श्रवणसे तिसबिषे स्थिरता पाय पश्चात् उस आनन्दमयके आधार आश्रय ब्रह्मसे अभिन्न सर्वकोशातीत आत्मा को श्रवण करती है तब आनन्दमय कोश से हट अपने प्रत्यगात्मा को यथार्थ निश्चयकर तिसबिषे अचल स्थिरताको पावती हैं, ताते पंचकोशोंका श्रवण मनन विचार अपनेआप पंचकोशातीत आत्माके यथार्थ निश्चयका साधनहै। रसादि सप्तधातु भावसे परिणामको प्राप्तहुये " अन्नाद्वैप्रजाः प्रजायन्ते, याः काश्च पृथिवीꣳश्रिताः, अथो अन्नेनैव जीवन्ति, अथैनदपि यन्त्यन्ततः, अन्नꣳहिभूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषध-मुच्यते सर्वंवैतेऽन्नमाप्नुवन्ति, येऽन्नंब्रह्मोपासते " (अन्नसे प्रसिद्ध जे कोईपृथिवीको आश्रय करनेवाली प्रजाउत्पन्नहोती है, अन्न सेही जीवे है, पश्चात् अन्नबिषे अन्नमेंही लीन होवे है, ताते अन्न भूतोंके मध्य ज्येष्ठ है, ताते सर्वका औषध कहते हैं, जो अन्नरूप ब्रह्मको उपासते हैं, सो निश्चय करके सर्व अन्न पावते हैं) अर्थात् अन्नसे प्रसिद्ध जे कोई विलक्षण पृथिवी को आश्रय करनेवाली स्थावर जंगमरूप प्रजा है सो सर्व उत्पन्न होती है, अरु उत्पन्नहुई प्रजा अन्नसेही जीवेहै, पीछे अन्तबिषे । अर्थात् आयुकी समाप्ति बिषे इस अन्नरूपा पृथिवी मेंही लीन होवे है, क्योंकि जिसकरके अन्न जो है सो भूत कहिये प्राणधारियों के मध्य ज्येष्ठ है, अर्थात् प्रथम उत्पन्नहुआ है, अरु जिसकरके अन्न, अन्नमयादिक अन्य भूतों का कारणहै इसही करके सर्व प्रजा अन्नसे उत्पन्नहोती है, अरु अन्नसेहीजीवे है, औ अन्नबिषे लय होवे है । जिसकरके ऐसे है ताते अन्न जो है सो सर्व प्राणियोंके देहके दाहकी निवृत्ति करनेवाला औषध कहते हैं ॥ अब अन्नरूप ब्रह्म के जाननेवाले पुरुषके अर्थ फल कहते हैं । जो पुरुष उक्त

प्रकारके अन्नरूप ब्रह्मको उपासते हैं सो निश्चय करके सर्व अन्नके समूह को पावते हैं। कैसे कि जिसकरके मैं ब्रह्मसे उपजा हौं अरु अन्नरूप हौं। अन्नसेही जीवता हौं। अरु अन्न बिषेही लय होवोंगा, ताते अन्न ब्रह्म है, इसप्रकार जानते हैं॥ पुनः अन्नरूप आत्माकी जो उपासनाहै सो सर्व अन्नकी प्राप्ति रूप फलवाली कहते हैं। तहां "अन्नꣳहिभूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषधमुच्यते, अन्नाद्भूतानिजायन्ते, जातान्यन्नेनवर्द्धन्ते, अद्यतेऽत्ति च भूतानि, तस्मादन्नं तदुच्यत इति" "ताते अन्न भूतोंके मध्यज्येष्ठहै,ताते सर्वका औषध कहते हैं, अन्नसे भूत उपजते हैं, उपजेहुये अन्नसे वृद्धिको प्राप्तहोते हैं, भक्षण करते हैं अरु भक्षण करे है, ताते सो अन्न कहते हैं" अर्थात् जिस करके अन्न जो है सो सर्व भूतोंके मध्य बडाहै, क्योंकि प्रथम उपजाहै, ताते उसको सर्वका औषध कहते हैं,अरु तिसहीसे सर्व अन्नरूप आत्माके उपासकोंको सर्व अन्नकी प्राप्तिबने है, अरु अन्नसे भूत प्राणी उपजते हैं,अरु उपजेहुये अन्नसेही वृद्धिको पावते हैं, । यह पुनः जो कथनहै सो प्रसंगकी समाप्तिके अर्थ है॥ अब अन्नशब्द का अर्थ कहते हैं, जिसकरके जो अन्नमय स्थूलशरीर भूतोंकरके भक्षण कियाजाताहै, अरु आप भूतोंको भक्षण करताहै,ताते सो अन्न है ऐसा कहते हैं। अरु यहां मूल बिषे जो "इति" शब्द है सो प्रथम अन्नमय कोशके वर्णनकी परिसमाप्तिके अर्थ है॥ हे सौम्य भोजन किये अन्नसे पुरुषके उदरबिषे शुक्र अरु स्त्री के उदरबिषे शोणित उत्पन्न होवे है, सो शुक्र शोणित जब स्त्रीके गर्भ स्थानबिषे जन्म लेनहार जीवों के प्रारब्ध संस्कार से भोगालय स्थूल शरीर की उत्पत्ति के निमित्त से एकत्र होते हैं तब उस गर्भस्थान बिषे एक बुदबुद निर्माणहोय पश्चात् शिर हस्तपादादि अवयवों सहित यहशरीर निर्माण होताहै पुनः सो माताके उदर में अन्न के रसकरके वृद्धि को पावता है अरु गर्भ से बाहर आये पश्चात् भी दुग्धादि अन्नके रस वा साक्षात् अन्नसे वृद्धिको पावता

सता जीवताहै अरु आयुके समाप्तहुये अन्तबिषे अन्नरूपा पृथिवी में लयहोता है वा सिंहादि मांस आहारी जीवों का अन्न होता है, ताते इस अन्नमय स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं, अरु शिर हस्त पादादिक अवयवों सहित जो प्रत्यक्ष भासता है सोई इसका स्वरूप है, अरु जीवों को अपने शुभाशुभ कर्मों के सुखदुःख रूप फलके भोगने का स्थान भोगालय है, अरु ,,जायते, अस्ति, इत्यादि षट् भाव विकार इसके धर्म हैं, ऐसा जो अन्नमय कोश अन्नादि भूतों का कार्य अरु जड होने से यह आत्मानहीं, आत्मा जो है सो ,,घट द्रष्टा घटाद्भिन्न,, इस न्याय से इस अन्नमय कोशका द्रष्टा साक्षी अन्नमयसे पृथक्ही है, अरु इस अन्नमय का द्रष्टापना अपने बिषे पायाजाता है ताते इस अन्नमयकेद्रष्टा चैतन्यसाक्षी आत्मा अपुन अन्नमयकोशनहोयके इससे पृथक्ही है, इसप्रकार विचारके अपने आपकोअन्नमयसे पृथक्ही निश्चय अनुभव करना॥अब अन्नमयसे आदिलेके आनन्दमय कोश पर्यन्त जो आत्मा हैं तिनसे अत्यन्त आन्तर जो ब्रह्महै, तिसको अनेक तुषाके दूरकरने करके तंदुलवत् वा अनेक मुंजको दूरकरके ईषिकावत् । विद्यासे अविद्याकृतपंचकोशोंके दूर करनेकरके प्रत्यगात्मा रूपसे देखावने को इच्छताहुआ शास्त्र कहने का आरंभ करता है॥"तस्माद्वाएतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः,तेनैषपूर्णः,सवाएषपुरुषविधएव"। तिस इस अन्नरसमय से अन्य अन्तर आत्मा प्राणमयहै, तिसकरके यह पूर्णहै, सो प्रसिद्ध पुरुषके आकार वालाही है ; अर्थात् तिस इस कथन किये अन्नरसमय पिंडसे अन्य (भीतर) पिंडवत्ही आत्मापने करके मिथ्या कल्पित आत्मा प्राणमय है, अर्थात् प्राणजो वायु तिसरूप है । तिस प्राणमय करके, वायुसे पूर्ण लोहकारके गृहकी धमनी चर्मवत्, यह अन्नरसमय आत्मापूर्ण है। सो प्रसिद्ध यह प्राणमयरूप आत्मा शिर अरु पक्ष आदिक अंगोंसे पुरुषके आकारवालाही है॥ क्या सो आपही पुरुषाकारहै

तहां नहीं, ऐसा कहते हैं, प्रथम अन्नमयरूप आत्मा की पुरुष के आकार करके युक्तपना प्रसिद्ध है "। तस्य पुरुष विधताम् अन्वयं पुरुषविधः, तस्य प्राण एवशिरः, व्यानो दक्षिणः पक्षः अपान उत्तरः पक्षः, आकाश आत्मा, पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति "। (तिसकी पुरुषाकारतासे पीछे यह पुरुष के आकारवाला है, तिसका प्राणही शिरहै, व्यान दक्षिण पक्ष है, अपान उत्तर पक्ष है, आकाश आत्मा है, पृथिवी पुच्छरूप प्रतिष्ठा है, तिसहीबिषे यह श्लोक होता है ; अर्थात् तिस अन्न रसमयकी पुरुषाकारताकेपीछे सांचेबिषे डालेहुये प्रगलितताम्रादि धातुके प्रतिमावत् यह प्राणमय । अन्नमय । पुरुषके आकार वालाहै, स्वरूपसे ही नहीं । इसप्रकार पूर्व पूर्वकोशकी पुरुषाकारताकेपीछे पिछलापिछलाकोश पुरुषके आकारवाला होवेहै, अरु पूर्वपूर्वकोश उत्तरउत्तरकोश करके पूर्णहै ॥ इसप्राणमयको पुरुषकी आकारता कैसे है तहां कहते हैं,॥ तिसप्राणमय कोशरूप पक्षीका स्वयं प्राणही शिरहै, अर्थात् । "मुख नासिकाभ्यां स्वयं प्राणः प्रतिष्ठते" इत्यादि अन्यश्रुतियोंके प्रमाणसे। वायुके विकार प्राणमयकोशका मुख नासिकाके मार्गसे बाह्य निकलाहुआ वृत्ति विशेषरूप जो प्राणहै सो शिरवत् कल्पना कियाहै, क्योंकि श्रुति बिषे कथन कियाहै ताते। इसप्रकार सर्व ठिकाने श्रुतिके कहने प्रमाणही पक्षादिकोंकी कल्पनाहै॥ अरु तिस प्राणमयका व्यान नामक प्राण वृत्ति विशेषरूप दक्षिणपक्षहै । अरु अपान नामक प्राण वृत्ति विशेष उसका उत्तरपक्ष है । अरु आकाश आत्मा है, अर्थात् अन्तराकाशमें समान नामवाला वृत्ति विशेषरूप प्राण है सो उसका आत्मा (मध्य शरीर) वत् आत्मा है ; क्योंकि तिस समान को प्राणकी अन्य वृत्तियोंबिषे श्रेष्ठता है अरुनाभि के आकाश मध्यबिषे स्थित है ताते, अरु अन्य अन्तबिषे स्थित प्राणकी वृत्तियोंकी अपेक्षासे सो समान नामवाला वायु आत्मा है " मध्यंह्येषामंगानामात्मेति " इन अंगोंका मध्य आत्माहै, ।

इस श्रुतिविषे मध्यभागमें स्थित वस्तुकाआत्मापनाप्रसिद्ध है ॥ अरु इस प्राणमयकी पृथिवी पुच्छरूप प्रतिष्ठा (आधार) है। अरु अध्यात्मरूप प्राणका पृथिवीरूप देवता धारण करनेवाला है,क्योंकि पृथिवी को स्थितिकी हेतुताहैतातें॥ अरु " सैषापुरुषस्यापानमवष्टभ्येति " सो यह पृथिवी पुरुषके अपानको धारण करके स्थितहै ,। यह अन्य श्रुतिका भी प्रमाण है तातें। अन्यथा शरीरका उदाननामक प्राणवृत्ति से। जो ऊर्द्ध उत्क्रामणमें मुख्य है,। ऊर्द्ध गमन होवेगा या भारी होने से पतन होवेगा, तस्मात् प्राणमय कोशरूप आत्माकी पृथिवी देवता पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। अरु तिसही अर्थबिषे अर्थात् प्राणमयआत्माके विषयमें यहश्लोक (मन्त्र)प्रमाणहै ॥ हिसौम्य अन्नमय कोशके अन्तर वायुरूप जो प्राणमयकोशहै सो घटान्तर वायुवत् अन्नमयमें तिसहीकेआकार पूर्णतासे स्थित है,अरु प्राणादि पंच प्राण अरु वागादि पंचज्ञानेन्द्रियांमिलके प्राणमयकोश हुआहै अरुप्राणकोक्रियाशक्ति प्रधान होनेसेवागादि कर्मेंद्रियोंबिषे जो क्रियाशक्ति है सो प्राणकीहोनेसे कर्मेन्द्रियों की भी प्राणमय में योजनाहै,अरु प्राणमय कोश को अन्नमय से सूक्ष्म अरु तिसके अन्तर अरु तिसका धारकपनाहोने से अन्नमय का आत्मा कहते हैं, अरु मुखनासिका के द्वारसे बाहर जाना अन्तर आवना लेना देना कूदना उछलना पसरना संकोचना अन्नरस को रोम रोम प्रति सर्व नाडियों में प्रासकरना मलमूत्रका त्यागना,इत्यादि इसकी क्रियाहै,चंचलता स्वभावहै, क्षुधा पिपासा इसकीऊर्मी(धर्म है) जडता इसमेंदोषहैं।ऐसा जो प्राणमयकोशहै सो आत्मानहीं, इस प्राणमयका प्रकाशक ज्ञाता साक्षी आत्माहै, सो ,घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः, ज्ञेयसेज्ञाता पृथक् अरु चैतन्यहोताहै,इसन्यायसे प्राणमयकेज्ञाता चैतन्य आत्मा अपुन प्राणमय न होयके प्राणमयसे पृथक् तिसका साक्षी प्रत्यगात्मा है, अपुन प्राणमयनहीं ॥ इसप्रकार प्राणमय से पृथक् अपने आपका यथार्थअनुभवकरनिश्चयकरना॥इतिद्वितीयोऽनुवाकः॥

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव त आयुर्यन्ति। ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य॥ तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्। अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग् दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वांगिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥ २७॥ इति तृतीयोऽनुवाकः॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, [आत्मशब्द के अमुख्य अर्थताके प्रसंग से, अरु प्रसंगविषे प्राप्त अर्थ के ग्राहक ,एतत्, शब्दके विरोधसे। एतदर्थ सर्व कोशों के अध्यासका अधिष्ठानरूप चिदात्माही यहां आत्मशब्दकरके कथनकरने को इच्छित है, इस तात्पर्य को कहते हैं। यहां अर्थ से "इति" इस, । इस शब्दका आत्मशब्दके सामर्थ्य से अरु कल्पित को अधिष्ठानपने के असंभव से यह अर्थ है] "प्राणं देवा अनुप्राणन्ति, मनुष्याः पशवश्चये, प्राणोहि भूतानामायुः, तस्मात्सर्वायुषमुच्यते, सर्वमेव त आयुर्यन्ति, ये प्राणं ब्रह्मउपासते"। "प्राण के पीछे देवा प्राणन को करते हैं, जे मनुष्य अरु पशुहैं, जाते प्राणभूतोंका आयुहै, ताते सर्वका आयु कहते हैं, प्राणब्रह्मको जो उपासते हैं सो सर्व ही आयुको पावते हैं"; अर्थात् जिसकरके प्राणके पीछे देवता प्राणन, जीवन, को करते हैं, अर्थात् अग्न्यादिक जे देवता हैं सो प्राणन कहिये जीवन क्रिया की शक्ति वाले वायुरूप प्राणके पीछे तिसके स्वरूप भूतहुये प्राणनरूप कर्म को करते हैं, अर्थात् प्राणन रूप क्रियासे

क्रियावान् होते हैं, अथवा अध्यात्म रूप विकार के अधिकार से देव जे इन्द्रियां सो मुख्य प्राणके पीछे चेष्टा करते हैं। तैसेजो मनुष्य अरु पशु हैं सो प्राणन रूप क्रियासेही चेष्टा वाले होतेहैं। याते परिच्छिन्न अन्नमयरूप आत्मा से ही प्राणी आत्मा वालेनहीं होते,किन्तु तिस अन्नमय के अन्तर्गत साधारण रूपही सर्व पिंड-विषे व्यापी प्राणमय सेभी मनुष्यादिकप्राणी आत्मावाले होतेहैं। इसप्रकार पूर्व पूर्व विषे व्यापी उत्तर उत्तर सूक्ष्म रूप आकाशा-दिक भूतों से आरंभ किये अविद्यारचित मनोमयसे आदिले के आनन्दमय पर्यन्त आत्मासे सर्व प्राणी आत्मा वाले होते हैं। तैसे आकाशादिकों के कारण नित्य अविकारी सर्वगत सत्यज्ञान अनन्त रूप पंचकोशातीत सर्व स्वरूप स्वाभाविक आत्मा से भी सर्व प्राणी आत्मा वाले होते हैं। अरु जिसकरके सो परमार्थ से सर्वका आत्मा है तिसकरकेही यहकथन बनता है। यह अर्थ से कथन किया होता है॥ प्रश्न॥देव जो है सो प्राणके पीछे जीवन रूप क्रियाको कहते हैं,इसप्रकार कहातिसकरके क्या सिद्धहुआ॥ उ०॥तहां कहते हैं, जिसकरके प्राण सर्व प्राणीमात्रका जीवनहै, "यावद्ध्यस्मिञ्छरीरे प्राणं वसति तावदायुरिति" यावत्इसशरीर विषे प्राणबसता है तावत् आयु है,। इसअन्य श्रुति के वाक्यसे ताते प्राणको सर्वकाआयु कहते हैं।अरुजिसकरके लोकबिषेप्राणके गमनहुये मरणकी प्रसिद्धि प्रख्यातहै ताते प्राणको सर्वका आयु-पना प्रसिद्धही है,याते इस बाह्य असाधारण अन्नमयरूप आत्मा से निकलके तिसविषे आत्मबुद्धिको त्यागके इसके भीतर साधा-रण प्राणमय आत्मरूप ब्रह्मको " योऽहमस्मि प्राणः सर्व भूता-नामात्मायुर्जीवनहेतुत्वादिति " मैं प्राण हौं अरु सर्व भूतों का आत्मा जीवनका हेतु होनेसे आयुहौं,। इसप्रकार जो उपासते हैं सो इस लोकविषे सर्वही आयुको पावते हैं, अर्थात् आयुकेक्षय से पूर्व अपमृत्युसे मरतेनहीं " सर्वमायुरिति " सर्व आयुको पा-वते हैं,। इस श्रुतिवाक्यकी प्रसिद्धिसे वे सौ (१००) वर्ष पर्यन्त

तो जीवते हैं, यह युक्तहै। तहां क्या कारणहै कि " प्राणोहि भूतानामायुः,तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति,तस्यैष एव शारीर आत्मा, यः पूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्। अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः,तेनैषपूर्णः, स वा एष पुरुषविध एव, तस्यपुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः" "प्राणही भूतोंका आयुहै ताते सर्वायुष कहते हैं,यह ही तिस पूर्वके शरीरबिषे होनेवाला आत्माहै,तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयसे अन्य अन्तर आत्मा मनोमय है, तिसकरके यह पूर्ण है, सो प्रसिद्ध पुरुषके आकारवालाहै,तिसकी पुरुषाकारता के पीछे पुरुषके आकारवालाहै" अर्थात् जिसकरके प्राण भूतोंका आयुहै, तिसकरके इसको सबका आयु कहते हैं, । जो जिसगुणवाले ब्रह्मको उपासताहै सो तिस गुणवालाहोताहै। यहां विद्या के फलकी प्राप्तिके हेतु अर्थ पुनः कथन है। जो यह प्राणमय है यह ही तिस पूर्वके अन्नमयका शरीरबिषे होनेवाला आत्मा है॥ तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयसे अन्य अन्तरात्मा मनोमयहै, अर्थात् संकल्प विकल्पमय वृत्तिरूप अन्तःकरण स्वरूप तो मनोमयहै सो यह। प्राणमयसे सूक्ष्महोने करके। प्राणमयके अन्तर आत्माहै। तिस मनोमय करके यह प्राणमय पूर्णहै। सो प्रसिद्ध यह मनोमय पुरुषके आकारवालाहै। सो तिस प्राणमयकी पुरुषाकारता के पीछे यह मनोमय पुरुषके आकारवालाहै। स्वरूपसेही नहीं। "तस्य यजुरेव शिरः, ऋग् दक्षिणःपक्षः, सामोत्तरःपक्षः, आदेश आत्मा, अथर्वांगिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येषश्लोकोभवति" "तिसका यजुर्वेदही शिरहै, ऋग्वेद दक्षिण पक्षहै, सामवेद उत्तरपक्षहै, आदेश आत्माहै, अथर्वांगिरस पुच्छप्रतिष्ठाहै, तिसही बिषे यह श्लोक होताहै" अर्थात् तिस मनोमयका यजुर्वेदही शिर है, अरु ऋग्वेद दक्षिणपक्षहै, सामवेद उत्तरपक्षहै, आदेश कहिये ब्राह्मणभाग आत्माहै,अरुअथर्वांगिरस कहिये अथर्व वेद पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै। अनियमित अक्षरोंकरके युक्त अन्तके पदवाला मन्त्र विशेष यजुर कहते हैं, तिसके समान जातिवाले मन्त्रोंका वाची

यजुः शब्दहै, तिसको मनोमयका शिरपनाहै, प्रधान होनेसे । अरु जिसकरके स्वाहाकारादिक यजुर्वेदके मन्त्रोंसे हवी देते हैं, याते यागादिकों विषे उपकार करनेसे तिसका प्रधानपना है । अथवा सर्वठिकाने जो शिर आदिकों की कल्पना है सो कथनमात्र है । [यहां " यजुः " शब्दसे बाह्यका यजुर्वेद कहते हैं । तिस यजुर्वेदकी अन्तर के मनोमय के प्रति शिरपना कैसे होवेगा, यह आशंका करके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि यद्यपि यजुःशब्द बाह्य के शब्दोंके समूह विषे वर्त्तता है, तथापि श्रुतिको अतिशय शंका करने के योग्य न होनेसे तिसके प्रमाण भावसे विशिष्ट मनकी वृत्ति यजुके संकेत की विषय भूत, अरु " यजुर्वेदमधीमहे " यजुर्वेद को हम पढते हैं, । अरु इस क्रमवाले अक्षर यजुर्वेदपने करके अध्ययन करने को योग्य है, इससंकल्परूप को । मनोमय का शिर । ग्रहण करने योग्यहै] यहां मनकी , स्थान, प्रयत्न, नाद, अरु स्वरकरके पूर्णपद अरु वाक्यको विषय करनेवाली तिन के संकल्परूप तिनकी भावनावाली जो वृत्तिहै, सो श्रोत्रादि करण-द्वारा यजुर्वेदके संकेतसे विशिष्टहुई , यजुर, इसप्रकार कहते हैं । ऐसे ऋग्है, अरु ऐसे सामहै । इसप्रकार मन्त्रोंको मनोवृत्तिरूपताके होनेसे मनकी वृत्तिही आवर्त्तन करिये है, याते मानस जप संभवे है; अन्यथा विषयरूप होनेसे घटादिकोंवत् मन्त्र आवृत्ति (वारंवार जप) करनेको शक्यनहीं है, याते मानसे जप संभवे नहीं, औ मन्त्रकी आवृत्ति संभवे है ॥ जो कहे कि बहुलताकरके कर्मोंविषे अक्षरोंकी स्मृतिकी आवृत्तिसे मन्त्रकी आवृत्ति होती है, सोकथनबनेनहीं क्योंकिमुख्य अर्थकाअसंभवहै ताते, "त्रिःप्रथमामन्वाह त्रिरुत्तरामिति" तीनवार प्रथमकी ऋचाको पीछेकहे हैं, तीनवार पिछलीऋचाको पीछेकहेहै, । इसप्रकार ऋचाकीआवृत्ति सुनीजातीहै । तहांऋचाकी विषयताकेहुयेतिसकी स्मृतिकी आवृत्तिसे मन्त्रकी आवृत्तिके कियेहुये "त्रिःप्रथमामन्वाहेति" तीनवार प्रथमकी ऋचाको पीछे कहे हैं, इसप्रकार विधानकिया जो ऋचा

की आवृत्तिरूप मुख्यार्थ तिसका परित्याग होवेगा। [मन्त्रों की मनोवृत्तिरूपताको कहके अब मनोवृत्तियों की सदा चेतन से व्याप्तहोने करकेही सिद्धिसे चेतन रूपताको कहते हैं]ताते मनोवृत्तिरूप उपाधि करके परिच्छिन्न मनोवृत्ति बिषे स्थित आदि अन्तसे रहित आत्म चैतन्य यजुःशब्दका वाच्य है, अरु आत्माके विज्ञान रूप मन्त्र हैं। ताते इसप्रकार होने से वेदोंको नित्यपने की प्राप्ति होती है, अन्यथा विषयरूपताके हुये रूपादिकोंवत् अनित्यता होवेगी सो युक्तनहीं। अरु "सर्वे वेदा यत्रैकं भवंति स मानसीन आत्मेति" जहां सर्ववेद एकत्र होते हैं सो मनबिषे स्थित आत्मा है,। यह श्रुति नित्यरूप आत्मासे ऋगादि वेदों की एकताको कहतीहुई तिनकी नित्यताबिषे अनुकूल होवेगी, अरु "ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वेनिषेदुरिति" विश्व के आधार अक्षररूप इस परमाकाश बिषे विधि निषेधमय ऋचारूप वेद तादात्म्य करकेस्थितहै,यह मन्त्रका वर्णन नित्यरूप आत्मासे तिनकी एकताको दिखावे हैं। अरु यहां आदेशनाम ब्राह्मणभागका है, सो कर्त्तव्यके भेदका उपदेश करता है, ताते उसको आदेश कहते हैं। अरु अथर्वांगिरा ऋषिने देखे जो मन्त्र अरु ब्राह्मण तिनको आंगिरस कहते हैं। सो शान्तिक अरु पौष्टिक आदि प्रतिष्ठाके हेतु कर्मकी प्रधानतासे पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै। तिसही अर्थबिषे अर्थात् मनोमय आत्माका प्रकाशक, यह श्लोक कहिये मन्त्र प्रमाण होता है॥ हे सौम्य ,जैसे घटके भीतर तिसही के आकार पूर्णतासे व्याप्त अरु घट के धर्मादिकों से पृथक् वायु रहता है, अरु तिस वायु से सूक्ष्म होने से वायुके भीतर अरु घटान्तर वायुकेही आकार अरु वायुके धर्मादिकों से रहित पूर्णतासे आकाश होता है, तैसेही इस अन्नमय कोश के भीतर तिससे सूक्ष्म अरु नख शिख पर्यन्त तिसही के आकार अरु तिसके धर्मादिकों से रहित वायुरूप प्राणमय कोश है, तिस प्राणमयसे सूक्ष्म होने से प्राणमयके भीतर अरु नख शिख पर्यन्त

पूर्णता से व्याप्त आकाश भूतके वा पंचभूतों के समष्टि रजो-गुणात्मक मनोमय कोश है "मनो वै अन्तराकाशः" तहां आ-काशके रजोगुणके श्रोत्र, वायुके रजोगुणकीत्वक्, अग्निके रजोगुण की चक्षु, जल के रजोगुणकी रसना, पृथिवी के रजोगुणकी घ्राण, इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों करके युक्त जो संकल्प विकल्पात्मक मन तिसको मनोमय कोश कहते हैं सो प्राणमयसे सूक्ष्म अरु भीतर होने से तिसके आकार हुआ प्राणमय का आत्मा है, अरु संकल्प विकल्पका करना इसका स्वभाव धर्महै, अरु नानाप्रकारके मनो-राज्य इसकी क्रिया है, चंचलता जड़ता अरु विषयोंकी ओर गि-रना यह इसमें स्वाभाविक दोष हैं । ऐसा जो मनोमय कोश है सो आत्मा नहीं क्योंकि काम क्रोधादि वृत्तियों से युक्त नियम र-हित स्वभाववाला है ताते, अरु "घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः" इस न्या-यसे इस मनोमय का ज्ञाता साक्षी चैतन्य आत्मा पृथक् है सो मनोमय का साक्षित्व मेरे विषे होने से मैं मनोमय कोश न होके इसके जाननेवाला चैतन्य आत्मा इससे भिन्न मैं हौं, यह जड़ विकारीमनोमय कोशमय, नहीं अरु यहमेरानहीं। इसप्रकार मनो-मय कोशके पृथक् साक्षीरूप अपुनको यथार्थ अनुभव करके नि-श्चयकरना। इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, [यहां यहअर्थ है कि ब्रह्मकोवाणी मनआदिकोंका विषयपना संभवे नहीं, क्योंकि अपनेस्वरूपविषे वर्त्तनेका विरोधहै ताते, एतदर्थ वाणी अरु मनकरके विशिष्टमनोमयसे मन सहित वाणियांनिवृत्तहोतीहैं] "यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान, नबिभेति कदाचनेति, तस्यैष एव शारीर आत्मा, यः पूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्मान्मनो मयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः" । ८ जिससे मनसहित वाणियां अप्राप्यहोके निवर्त्त होतीहैं, ब्रह्मको जाननेवाला कदाचित् भयको प्राप्तहोता

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुष विधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धेव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोक भवति २८ ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

नहीं, जो यह मनोमय है यहही तिस पूर्वलेका शरीरविषे स्थित आत्मा है। तिस प्रसिद्ध इस मनोमयसे अन्य अन्तरात्मा विज्ञानमय है; अर्थात् जिससे मन सहित वाणीआदि इन्द्रियां प्राप्त न होके निवर्त्त होती हैं, अरु ब्रह्मको। सम्यक्प्रकार। जाननेवाला। विद्वान्। कदाचित् भी भयको प्राप्तहोता नहीं, अरु जो यह मनोमय है सोई तिस पूर्वले प्राणमय का शरीर विषे स्थित आत्मा है, तिस प्रसिद्ध इस मनोमयसे अन्य अन्तरात्मा विज्ञानमय है। अरु मनोमयजो है सो वेदरूप कहाहै, अरु वेदके अर्थको। यथार्थ। विषय करनेवाली जो निश्चयात्मिका बुद्धि तिसको विज्ञान कहतेहैं, सो निश्चयरूप विज्ञान अन्तःकरणका धर्महै। अरु तिसरूपहुआ प्रमाणस्वरूप निश्चय रूप ज्ञानोंसे निर्वाहकिया जो आत्मा सो विज्ञानमय है। अरु जिसकरके प्रमाणके ज्ञान पूर्वक यज्ञादिक करते हैं, अरु तिस विज्ञानको जो यज्ञादिकोंकी हेतुताहै सोआगेमें मन्त्रकरकेकहैंगे इस प्रकार कहा जो विज्ञानमयहै "। तेनैषपूर्णः, सवाएष पुरुष विध एव, तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः"। तिसकरके यहपूर्ण है, सो प्रसिद्धयहपुरुषके आकारवालाही है, तिसकीपुरुषाकारताके पीछे यह पुरुषाकार वालाहोता है; अर्थात् तिसकरके

यह मनोमयपूर्णहै । जैसे शब्दात्मक ऋगादिवेद अपने अर्थों करके पूर्णहै, तैसेवेदरूप मनोमयअपने अर्थरूप विज्ञानमयकरके पूर्णहै, अरुजैसे वेदका अर्थ ज्ञानवेदके भीतर होता है, तैसेअर्थ ज्ञानरूप विज्ञानमय वेदरूप मनोमयकेभीतरहै । अरु सोप्रसिद्धयह विज्ञानमयपुरुषके आकारवालाही है । अरु तिसमनोमयकी पुरुषाकारता केपीछे यह विज्ञानमय पुरुषके आकारवाला होता है "। तस्यश्रद्धैवशिरः, ऋतं दक्षिणः पक्षः, सत्यमुत्तरः पक्षः, योग आत्मा, महः पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति "। "तिसकाश्रद्धाही शिरहै, अरु तिसका ऋत दक्षिण पक्ष है, अरु सत्य उत्तरपक्ष है, योग आत्मा है, महत्पना पुच्छ प्रतिष्ठा है, तिसहीबिषे यह श्लोक होताहै"; अर्थात् तिस विज्ञानमय का श्रद्धाही शिरहै, क्योंकि जिसकरके निश्चयरूप विज्ञानवाले पुरुषको करनेयोग्य अर्थोंबिषे पूर्वश्रद्धा संभवे है, इस करके सो सर्व कर्त्तव्योंकेमध्य प्रथम (मुख) होनेसे शिरवत्शिर है । अरु तिसका ऋतनाम दक्षिणपक्ष है, अरु सत्यनाम उत्तरपक्ष है, अरु योगजो चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप एकाग्रता सो आत्मावत् (विज्ञानमय का) आत्मा है, अर्थात् जिस करके समाधान चित्तवाले युक्त पुरुष को श्रद्धादिकजो हैं सो अंगोंवत् यथार्थ निश्चयबिषे समर्थहोते हैं, ताते चित्तका समाधानरूप योग विज्ञानमयका आत्मा है । अरु प्रथम उत्पन्नहुआ जो महत्पना सो पुच्छरूप प्रतिष्ठा है "महद्यक्षं प्रथमजमिति" महान् यक्ष प्रथम जन्यहै, । इस अन्य श्रुतिके प्रमाणसे सो महत्पना प्रथम उत्पन्नहुआ है यह कारण होनेसे महत्पना पुच्छ प्रतिष्ठा है । जिस करके कारण जो है सो कार्य्यों की प्रतिष्ठा है, जैसे वृक्ष अरु वल्लियों की प्रतिष्ठा कहिये आधार पृथिवी है । तैसेही सर्व बुद्धिरूप विज्ञानोकामहत्पना कारणहै । तिस हेतुकरके सो महत्तत्त्व तिसविज्ञानमयरूप आत्मा की प्रतिष्ठा है । तिसही अर्थबिषे अर्थात् विज्ञानमयरूप आत्माका बोधक प्रकाशक यहश्लोक कहिये मन्त्र होताहै । जैसे

ब्राह्मणबिषे उक्त अन्नमयादिकों के प्रकाशक श्लोक हैं तैसे। इसप्रकार सर्वमयको भी विज्ञानका कर्त्तापना है ॥ । हे सौम्य जैसे मृणमय घटके अन्तर तिसही के आकार अरु तिससे भिन्न पूर्णतासे वायुहोताहै, अरु तिसवायुके अन्तर तिसहीके आकार अरु तिससे पृथक् आकाश होता है, अरु तिस आकाशके अन्तर अरु तिसहीके आकार तिससे पृथक् तिसका प्रकाशक सूक्ष्मतेज होता है। तैसे अन्नमयकोशरूप घटकेअन्तर तिसहीके आकार तिसके धर्म्मादिकों से पृथक् पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा प्राणमय है, तिस प्राणमयके अन्तर प्राणमयसे सूक्ष्म प्राणमय के आकार अरु तिसके धर्मादिकों से पृथक् पूर्णता से व्याप्त प्राणमयका आत्मा मनोमय कोश है। अरु तिस मनोमयके अन्तर तिससे सूक्ष्म तिसही के आकार तिसके धर्मादिकों से पृथक् पूर्णता से व्याप्त मनोमय का आत्मा विज्ञानमय है। तहां चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रियां अरु विज्ञानवती निश्चात्मय बुद्धिमिलके विज्ञानमय कोश हुआ है सो मनोमय से सूक्ष्म अरु तिसके अन्तर होने से तिसका आत्मा है, परन्तु साक्षी आत्मा जो विज्ञानके भावाभाव का प्रकाशक है, तिसकी अपेक्षा विज्ञानमय बुद्धि जड है, अरु सुषुप्तिबिषे चिदाभास सहित वा चिदाभाससे पृथक् हुई अपनेकारणअविद्या में लय होती है, अरु पुनः जाग्रत्को पाय चिदाभास करके युक्तहुई नखशिख पर्यन्त व्याप्त होतीहै अरु जिस अंगमें जहां कहीं दुःख वा सुख होताहै तहांहीं तिसको अनुभव करती है परन्तु साक्षी आत्माके आभास करके युक्तहुई करती है केवल स्वरूपसेही नहीं, ऐसा जो विज्ञानमय कोश है तिसके भावाभाव धर्म कर्म्मादिकों के प्रकाशक साक्षी आत्मा अपुन हैं सो अपुन विज्ञानमयकोश न होके तिसकेज्ञाता तिससे पृथक्ही है, ताते विज्ञानमय कोश अपुननहीं अरु सो अपनानहींइसप्रकार विज्ञानमयकोशसे पृथक्सर्वकेसाक्षी अपनेआपकोयथार्थअनुभवकरकेनिश्चयकरना ॥इतिचतुर्थोऽनुवाकः ४ ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपिच । विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्व्वान् कामान् समश्नुत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः । सवा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ २९ ॥ इति पंचमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, "विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपिच, विज्ञानं देवाःसर्वे, ब्रह्मज्येष्ठमुपासते, विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद, तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति, शरीरेपाप्मनो हित्वा सर्व्वान् कामान् समश्नुत इति" "विज्ञान यज्ञको विस्तारताहै कर्मोंको विस्तारताहै, सर्व देवता विज्ञानरूप ज्येष्ठ ब्रह्मको उपासते हैं, विज्ञानरूप ब्रह्मको जब जानता है, तिस करके जब प्रमाद को पावता नहीं, शरीरविषे पापों को छोडके सर्व भोगोंको भोगता है" अर्थात् विज्ञानमय यज्ञोंको विस्तार करता है । अर्थात् जिसकरके विज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) वान् पुरुष श्रद्धा आदिक अंगोंपूर्वक यज्ञोंको करता है, तिसही करके विज्ञानको यज्ञोंका कर्त्तापना है । अरु कर्मों को भी विस्तार करता है। अर्थात् जिस करके सर्व विज्ञानकाकर्तापनाहै तिसही से विज्ञानमय रूप आत्मा ब्रह्म है, यह कथन युक्तही है। किंवा सर्व इन्द्रियादिक देवता विज्ञानरूप ज्येष्ठ (प्रथम उत्पन्न) ब्रह्मको उपासते हैं अर्थात् ध्यावते हैं, क्योंकि सर्व से प्रथम उत्पन्नहुआ है ताते, अथवा सर्व वृत्तियों को तिस विज्ञान के पूर्वक होने से विज्ञानको प्रथम उत्पन्नहुआ कहते हैं । अरु जिस

करके उस विज्ञानमय ब्रह्मबिषे अभिमान करके देवता उपासते हैं, तिस करके सो देवता महत्ब्रह्मकी उपासना से ज्ञान ऐश्वर्यवाले होते हैं। तिस विज्ञानरूप ब्रह्मको जब जानता है, अरु केवल जाननाही है ऐसा नहीं, किन्तु [बाहिर के अनात्माबिषेही आत्मभावना के होने से विज्ञानरूप ब्रह्मबिषे आत्माकी भावना से हुआ जो प्रमाद है, तिसकी निवृत्ति के अर्थ "तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति" तिस से जब प्रमादको प्राप्त होता नहीं, । अर्थात् जब अन्नमयादिकों बिषे आत्मभावको त्यागके केवल विज्ञानमय ब्रह्म बिषे आत्मभाव की भावना करताहुआ स्थितहोवे, इसप्रकार कहते हैं] तिस विज्ञानमय ब्रह्मसे जब प्रमादको पावता नहीं तब शरीरबिषे पापों को त्यागके सर्व भोगों को भोगता है। अर्थात् सर्व पाप शरीरके अभिमानरूप निमित्तवाले हैं, अरु तिनका छत्रके नाशहुये छायाके नाशवत् विज्ञानमय ब्रह्मबिषे आत्मअभिमान से शरीरके अभिमानरूप निमित्तके नाशहुये नाश संभवे है, ताते शरीरके अभिमानरूप निमित्तवाले अरु शरीर बिषे होनेवाले सर्वपापोंको शरीरबिषेही त्यागके विज्ञानमयब्रह्म स्वरूपकोप्राप्तहुआ तिसबिषेस्थित सर्वभोगोंको विज्ञानमयस्वरूप सेहीसम्यक्प्रकार भोगताहै। अरु "तस्यैष एवशारीरआत्मा, यःपूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः, तेनैषपूर्णः, सवाएष पुरुषविध एव, तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः" ८ यहही तिस पूर्वलेका शरीरबिषे होनेवाला आत्माहै, तिसप्रसिद्ध इस विज्ञानमयसे अन्य अन्तरात्मा आनन्दमयहै, तिस करके यह पूर्णहै, सो प्रसिद्ध यह (आनन्दमय) पुरुषके आकारवाला ही है, तिसकी पुरुषाकारताके पीछे यह पुरुष के आकारवाला है; अर्थात् जो यह विज्ञानमयहै यहही तिस पूर्वले मनोमयका शरीरी कहिये मनोमयबिषे होनेवाला आत्मा है तिस प्रसिद्ध इसविज्ञानमयसे अन्य अन्तरात्मा आनन्दमयहै। [आनन्दमयकोश परमात्मा है, ऐसा वृत्तिकारोंने कहा है तिनके निषेधसे

व्याख्यान करतेहैं] मुख्यतासे अरु विकारकेवाची, मय , शब्द करके यह आनन्दमय कार्यरूपसे प्रतीति वाला है । अरु जिस करके अन्नमयादिक कार्यरूप भौतिक मुख्यता को यहां पावते हैं, अरु तिसमुख्यताकोप्राप्तहुआ आनन्दमय है, अरुयहां जो, मय, शब्दहै सो अन्नमयवत् विकाररूप अर्थबिषे देखा है । ताते अरु संक्रमणसे, अर्थात् इस आनन्दमय को लंघिके जानेसे, यह आनन्दमय कार्यरूपही प्रतीति करनेयोग्य है। अरु " आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य " आनन्दमयरूप आत्माको लंघिकेजाता है, । इस प्रकार आगे षष्ठ अनुवाकबिषे कहेंगे । अरु कार्यरूप अनात्माको लंघना देखाहै। जैसे "अन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति" अन्नमय आत्मा को लंघिके जाताहै, । इस वाक्यबिषे उल्लंघन करनेरूप क्रियाका विषय होनेकरके अन्नमयरूप आत्माकोश्रवण करतेहैं,तैसे "आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति" आनन्दमयरूप आत्माको लंघिके जाताहै,। इस वाक्यबिषे उल्लंघनरूप क्रियाका विषय होनेकरके आनन्दमयरूप आत्माको श्रवणकरते हैं।एतदर्थ यह आनन्दमय कार्यरूपही प्रतीति करनेके योग्यहै । अरु आत्मा का ही उल्लंघन करना होता नहीं, क्योंकि अधिकार का विरोध है ताते अरु आत्माका उल्लंघन असंभवहै ताते अरु आत्माकरके हीआत्माका उल्लंघन संभवे नहीं, क्योंकि स्वस्वरूपबिषे भेदका अभावहै ताते । अरु तिस उल्लंघन करनेवाले का आत्मरूपही ब्रह्महै । [आनन्दमयके परमात्मभावके असंभव बिषे अन्य हेतुओंकोभी कहते हैं] अरु तिस ब्रह्मको शिरआदिक अवयवोंकी कल्पनाका असंभवहै ताते। अरु उक्त लक्षणवाले आकाशादिकों के कारण अरु कार्योंविषे अप्राप्त ब्रह्मबिषे शिर आदिक अवयव रूपकीकल्पना संभवे नहीं , क्योंकि " अदृश्येऽनात्म्येऽनिलयनेऽनिरुक्ते, स्थूलमनणुनेति , नेत्यादि " अदृश्य,अशरीर,अवाच्य, अनाधार,इस ब्रह्मविषे, अरु स्थूल नहीं, अणुनहीं , ऐसे नहीं, ऐसे नहीं ,। इत्यादि प्रपंचके निषेधकी श्रुतियोंके प्रमाणसे [जब

आनन्दमयके परमात्म भावके कहने की इच्छाहोय, तब मन्त्र करके तिसहीके असद्भावकी आशंका कहनेको योग्यहै। परन्तु तिसका असंभव है ताते, आनन्दमय जो है सो परमात्मभाव करके प्राप्तहोवे नहीं, इसप्रकार कहतेहैं] अरु मन्त्रके उदाहरण का असंभव है ताते। अरु जिसकरके प्रियवृत्तिरूप शिरआदिक अवयव करके विशिष्ट प्र यक्ष अनुभूयमान आनन्दमय आत्मा रूप ब्रह्मविषे, सो ब्रह्म नहीं है ऐसी आशंका का अभाव है ताते "असद् ब्रह्मेति वेदचेत् असन्नेवभवति" जबअसत् ब्रह्महै, ऐसा जानताहै तब असतही होताहै,। यह मन्त्र का उदाहरण यहां संभवेहै। अरु "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" ब्रह्मपुच्छरूप प्रतिष्ठाहै,। इसप्रकार आनन्दमयकोश से भिन्न करके जो ब्रह्मका प्रतिष्ठा (आधार)पनाकरके ग्रहणहै सो अघटित होवेगा, एतदर्थ कार्योंबिषे प्राप्तहुआजो यह आनन्दमय सो परमात्मरूप आनन्दनहीं है। इस प्रकार विद्या अरु कर्मका फलरूप, तिस परमात्मरूप आनन्दका विकार (कार्य) आनन्दमयहै। अरु [विशिष्ट वस्तुको विशेषण का कार्यहोनेसे "अहंसुखी" मैं सुखीहूं। इसप्रकार प्रतीयमान हुआभोक्ताआनन्दमयहै, ऐसे कहा। तिस आनन्दमय का विज्ञान मयसे आन्तरपनाकैसेहै; यहां यह अर्थहै कि कर्त्तापने की अपेक्षा से भोक्तापनेका पश्चात् होनेपना प्रसिद्ध ही श्रुतिने कहाहै] सो आनन्दमय, विज्ञानमयसे अन्तर है, क्योंकि यज्ञादिकोंके हेतु विज्ञानमयके अन्तरपनेकी श्रुतिसेकर्त्ता की अपेक्षा भोक्ताको अन्तरपना प्रसिद्ध है, [अब इसही को स्पष्टकरते हैं। यहां यह अर्थ है किआनन्दकेसाधक शरीरादिक से साध्य आनन्द करके विशिष्ट आनन्दमय अत्यन्त आन्तर सिद्धहोताहै। किंवा प्रिय अरु प्रिय के साधनका उद्देशकरके कर्त्ता जो विज्ञानमयहै सो उपासना अरु कर्मका अनुष्ठान करताहै। ताते उद्देश के योग्य होनेसे इस आनन्दमयका अन्तरपना सिद्धहै, इसप्रकार कहते हैं] जिसकरके ज्ञान अरु कर्मका जो फलहै सो भोक्ताके अर्थ होनेसे अत्यन्त आ-

न्तर होताहै, एतदर्थ आनन्दमयरूप आत्मा पूर्वले अन्नमयादिकों से अत्यन्त आन्तर है । अरु जिसकरके विद्या अरु कर्मको प्रिय आदिक फलकेअर्थ क्रियमाण विद्या अरु कर्म्म हैं, ताते फलरूप प्रिय आदिक वृत्तियोंको आत्माके सम्बन्धसे विज्ञानमयको अन्तरपना संभवेहै । अरु जिसकरके स्वप्नविषे प्रिय आदिकोंकी वासना करके निर्वाह किया जो आनन्दमय सो विज्ञानमय के आश्रित देखिये है, ताते तिस आनन्दमयको मुख्य आत्मापना है नहीं । इसप्रकार कथन किया जो आनन्दमय रूप आत्मा तिस करके यह विज्ञानमय पूर्णहै । सो प्रसिद्ध यह आनन्दमय पुरुषके आकारवालाही है । अरु सो तिस विज्ञानमयकी पुरुषाकारताके पीछे यह आनन्दमय पुरुषाकारवालाहै । स्वरूपसेही नहीं । अरु "तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तरः पक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति " । "तिसका प्रियही शिरहै, मोद दक्षिण पक्षहै, प्रमोद उत्तर पक्षहै, आनन्द आत्माहै, ब्रह्म पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै," अर्थात् तिस आनन्दमयरूप आत्माका, इष्ट पुत्रादिकोंके दर्शनसे जन्य जो प्रियवृत्ति सोई शिरवत् शिरहै, मुख्य होनेसे । अरु प्रियवस्तुके लाभरूप निमित्त से होता जो है हर्ष तिसको मोद कहते हैं, सो मोद । आनन्दमयका । दक्षिण पक्षहै, अरु सोई हर्षरूप मोद अतिशय हुआ प्रमोद कहा जाता है, सो प्रमोद आनन्दमयका उत्तर (वाम) पक्षहै । अरु प्रिय आदिक सुखके अवयवोंके मध्य सामान्य सुखरूप जो आनन्दहै सो । आनन्दमयका । आत्माहै । अरु तिन प्रिय आदिकों विषे अनुस्यूत होनेसे, ब्रह्मको आनन्द अरु पर (सर्वोत्कृष्ट) कहते हैं । अरु जिसकरके सो ब्रह्म, शुभ कर्मोंकरके पुत्र मित्रादि विषय विशेषरूप उपाधिके निकट स्थितहुये अज्ञानकरके आवृत्त अरु प्रसन्न वा एकाग्रहुई जो अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष तिसविषे प्रकटहोवे है, ताते सो विषय सुख है, इसप्रकार लोकविषे प्रसिद्ध है । तिस वृत्ति विशेषके कारण कर्मको अस्थिर होनेसे तिसविषे

सुखको क्षणिकपनाहै। सो जो अन्तःकरण अज्ञानके नाशक, तप, विद्या, ब्रह्मचर्य श्रद्धा, करके यावत् निर्मलभावको पावता नहीं तावत् अन्तरमुख अरु प्रसन्न वा एकाग्रहुये अन्तःकरणकी वृत्ति विशेषबिषे आनन्द विशेषहोताहै। सो [ब्रह्मकी आनन्द स्वभावता बिषेही क्या प्रमाणहै, तहांकहते हैं] आगे सप्तम अनुवाकबिषे कहेंगे "रसोवै सः, रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति, एष ह्येवानन्दयाति" "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति" रसहीसोहै, जिससे यह रसकोही पायके आनन्दीहोवेहै। ऐसे, अरु इसही आनन्दकी मात्रा कहिये किणका के ताईं अन्यभूत उपजीविकाको करेहैं। अर्थात् ब्रह्मानन्दके लेशको पायके अन्यभूत अपने जीवनको करतेहैं, इस अन्य श्रुतिके प्रमाणसे [अन्तःकरण की वृत्तिके उत्कर्षसेही आनन्द का सातिशयपनाहै, इसबिषे में लिंग (चिह्न) कहतेहैं, यहां यह अर्थहै कि जब किसी एक विषयसे जन्य होने करके आनन्दका उत्कर्ष होता है, तब निष्काम पुरुष को किसी विषयके उपभोगके असंभवसे आनन्दके उत्कर्षका श्रवण नहीं होवेगा, परन्तु आत्मस्वभाव रूपही आनन्द के आविर्भाव करनेवाले अन्तःकरणकी शुद्धि का उत्कर्ष होताहै, इसप्रकार होने से निष्कामता का उत्कर्ष संभवे है] इसप्रकार हुये इच्छा की निवृत्तिके अधिकताकी अपेक्षासे आनन्द का शत गुणा अधिक उत्कर्ष आगेकहेंगे। ऐसे [उक्तप्रकार विषयानन्दकी आतिशयताकेहुये तिस करके विशिष्ट आनंदमयका अब्रह्मपनासिद्धहोवे है, क्योंकि सातिशय होनेकरके प्रतिशरीरके ताईं भिन्नाभिन्नहै ताते। अरुब्रह्मतो तिसके अध्यासका अधिष्ठान अद्वैतरूप है, इसप्रकार कहते हैं। यहां "एतस्मिन्नर्थे" इसअर्थबिषे, । यापदका आनन्दमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाश करनेमें तत्पर अर्थबिषे। यह अर्थ है।] हुये सातिशय करकेयुक्त आनन्दमयरूप आत्माका परमार्थ रूप ब्रह्मके विज्ञानकी अपेक्षासे जो प्रसंगबिषे प्राप्तहुआ, सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप परब्रह्महीं है, अरु जिसकी प्राप्तिके अर्थ अन्नम-

यादिक पंचकोशको आरंभ कियेहैं। अरु जो उन कोशोंसे भीतर है। अरु जिसकरके सो सर्वकोश आत्मावाले होते हैं; सो ब्रह्म पुच्छरूपहै अरु प्रतिष्ठाहै,आनन्दमयकी एकताका अवसान होने से। इसप्रकार अविद्या कल्पितद्वैतका अवसानरूप जो अद्वैतब्रह्म सो प्रतिष्ठारूप पुच्छहै। तिसही अर्थ बिषे, अर्थात् आनन्दमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाशनेबिषे तत्पर, यह श्लोक होताहै २९॥ हे सौम्य जैसे घटके भीतर घटसे सूक्ष्मघटके आकारही पूर्णता से वायुहै,अरु तिस वायुसे सूक्ष्मवायुके भीतर वायुकेही आकार पूर्णतासे आकाशहै, अरु तिस आकाशके भीतर आकाशसे सूक्ष्म तिसहीके आकार पूर्णतासे प्रकाश है, अरु तिस प्रकाशके भीतर अरु सूक्ष्म तिसकेही आकार पूर्णतासे प्रकाशकत्वहै। यह दृष्टांत एकके अन्तर दूसरेकी तदाकार अरु सूक्ष्मतासेस्थिति देखावनेके अर्थ कल्पितहै। हे सौम्य दृष्टान्त प्रमाणही इस अन्नमयकोशके भीतर तिससे सूक्ष्म तिसके आकार तिसकी अपेक्षा चैतन्य तिसका आत्मा पूर्णतासे स्थित प्राणमय कोशहै। तिसही प्रकार प्राणमयके भीतर पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा मनोमय कोश है। अरु तिस मनोमयके भीतर तिसके आकार पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा विज्ञानमय कोश है, तिस विज्ञानमयके भीतर तिससे सूक्ष्म अरु पृथक् तिसही के आकार पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा आनन्दमय कोशहै। सो आनन्दमय कोश बादल आदिक पदार्थोंवत् कदाचित् प्रकट होनेवालाहै, अर्थात् जैसे बादल सूक्ष्म सामान्यरूप करके अदृश्यहुआ परमाणु रूपसे आकाश विषे रहे है सो जब अपने विशेषरूपसे प्रकट होनेका समय पावे है तब प्रकटहोय लोकोंबिषे प्रत्यक्ष भासेहै, तैसे आनन्दमयकोश अन्य कोशों से सूक्ष्महुआ अपने सामान्य रूपसे विज्ञानमय के अन्तर व्याप्तहै सो जब अपने इष्ट पुत्रादि विषय वस्तुको देखता है तब अपने प्रिय आदि अंगों की विशेषतासे लोक बिषे प्रकट भासताहै,एतदर्थ आनन्दमयको कचित् होनेवाला कहते हैं,ताते

असन्नेव भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। अथातोऽनुप्रश्नाः॥ उताविद्वानमुं लोकंप्रेत्य। कश्चन गच्छति ३॥ आहोविद्वानमुं लोकं प्रेत्य। कश्चित्समश्नुता ३॥ उ। सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदꣳसर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत् सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च। निलयनञ्चानिलयनञ्च। विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च। सत्यञ्चानृतञ्च। सत्यमभवत्। यदिदं किञ्च। तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति ३०॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

क्षणिक है, अरु साक्षीआत्मा आनन्दमयकी क्षणिकता आदिकों का ज्ञाता उससे पृथक् है अरु आनन्दमयका कारण आधार अधिष्ठान है उसहीके आश्रय आनन्दमयके आत्मापनेकी कल्पना होती है। अरु सो आनन्दमयके भावाभावका साक्षित्व अपनेविषे पायाजाताहै ताते आनन्दमयसे पृथक् तिसके साक्षी चैतन्य परमात्मा अपुन हैं, अपुन आनन्दमयकोश नहीं अरु सो अपना नहीं। इसप्रकार अपने आपको आनन्दमय से पृथक् यथार्थ अनुभवकर निश्चय करना॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, "असन्नेव भवति, असद्ब्रह्मेति वेद चेत्, अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद, सन्तमेनं ततो विदुरिति" "जो पुरुष ब्रह्म असत् है इसप्रकार जब जानता है, तबसो असत्ही होताहै, जब ब्रह्महै ऐसे जानता है, इस सतरूप को जानते हैं तिस करके सो अन्यों को ब्रह्मवत् जाननेयोग्य होताहै" अर्थात् जो पुरुष ब्रह्म

असत् कहिये अविद्यमान, है इसप्रकार जानताहै तब सो ' असत्के तुल्यही, असत् होताहै । ब्रह्मतो जैसा कुछहै तैसा हैही परन्तु जो उसको असत् जानता है सो अपने आपको असत् करता है क्योंकि वास्तव करके वो ब्रह्म से अभिन्न है ताते । अर्थात् जैसे असत् पदार्थ पुरुषार्थ का सम्बन्धी होता नहीं, इस प्रकार सो । ब्रह्म । पुरुषार्थ का सम्बन्धी होता है । अरु जब तिस । असत्से । विपरीत जो सर्वविकल्पों का आश्रय सर्व वृत्तियोंका बीज अरु सर्व प्रपंचातीत सो ब्रह्म है इसप्रकार जानताहै । पुनः तहां कौनसी शंका है, तिस अस्तित्वभावबिषे ब्रह्मको व्यवहार से रहितपना है इसप्रकार हम कहते हैं । अरु जिसकरके वाचारंभणमात्र व्यवहारके विषयबिषे अस्तिपनेके भावकरकेयुक्त बुद्धि प्राप्तहोती है, अरु तिसकरके विपरीत व्यवहार से रहित वस्तु विषे नास्तिपना भी प्राप्त होता है । जैसे घटादिक व्यवहार का विषयहोने करके प्राप्तहुई वस्तु सत्है, अरु तिससे विपरीत वस्तु असत् है, यह लोकबिषे प्रसिद्धहै, इसप्रकार यहांभी तिसके तुल्य । व्यवहारका अविषय । होने करके ब्रह्म के नास्तिपने की शंका होती है । ताते "। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेदेति "। ब्रह्म है, इसप्रकार जब जानताहै,। इसप्रकार आशंका सहित वचन कहते हैं "। तदस्तीति "। सो ब्रह्म है, इसप्रकार जाननेवाले पुरुषको क्या फल प्राप्तहोताहै, तहां कहते हैं । इस ऐसे जाननेवाले पुरुषको विद्यमान ब्रह्मरूप करके परमार्थ सत्रूपको प्राप्तहुआ ब्रह्मवेत्ता जानतेहैं । तिस । अस्तिभावके ज्ञान । करके सो । ब्रह्मवेत्ता । अन्यों को ब्रह्मवत् जानने योग्य होता है, यह अर्थ वा फल है ॥ अथवा, जो पुरुष ब्रह्म नहीं है, ऐसा मानताहै, सो वर्णाश्रमादिकों की व्यवस्थारूपसर्वेही सन्मार्ग के नास्तिकपनेको प्राप्त होताहै, क्योंकि तिस सन्मार्ग का ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ होना है । अर्थात् जिसके निश्चयमें ब्रह्म नहीं है तिसके निश्चयमें वर्णाश्रम अरु तदाश्रित धर्म कुछभी नहीं क्योंकि वर्णाश्रम के आश्रित धर्मका

जो निष्कामतासे अनुष्ठान करना है सो अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ है, सो प्राप्तहोने योग्य ब्रह्मजबहैही नहीं तब वर्णाश्रम अरु तिनके धर्मके अनुष्ठानकी कल्पना व्यर्थही है, इसप्रकार ब्रह्मको न माननेवाले पुरुषको वर्णाश्रमके धर्म्मोंबिषे नास्तिकभावकी प्राप्ति होती है। इसकरके सो नास्तिक पुरुष लोकबिषे असत् असाधु कहेजातेहैं,। तब सो श्रद्धावान् होनेकरके तिस ब्रह्मकी प्राप्तिकेहेतु वर्णाश्रमादिकोंकी व्यवस्थारूप सन्मार्ग को ज्योंका त्यों प्राप्तहोताहै। अरु जिसकरके इसप्रकारहै, तिसही करके इसको साधुपुरुष सन्मार्गबिषे स्थित जानते हैं। एतदर्थ ब्रह्महै इसप्रकारकी प्रतीति करने को योग्य है, यह वाक्यार्थ है "। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य, अथातोऽनुप्रश्नाः, ॥ उताविद्वानमुंलोकं प्रेत्य, कश्चन गच्छति ३, अहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता ३ उ "। (जो यहही तिस पूर्वलेका शरीरबिषे होनेवाला आत्माहै, याते अनन्तर पीछे प्रश्नहै, कोई एक अविद्वान् भी मरणको प्राप्त होके इस लोकको प्राप्त होताहै, कोई एक विद्वान् मरणको पायके इस लोकको प्राप्त होता है? अर्थात् जो यह आनन्दमय है यहही तिस अपने पूर्वले विज्ञानमय शरीर। विज्ञानमय। बिषे होनेवाला आत्मा है [आनन्दमय का प्रकाशक यह श्लोक है, इसप्रकार कई एक कहते हैं, तिनके अर्थ यहां कहते हैं] तिसके प्रति शंका नहीं है, क्योंकि पूर्वली वस्तुका सद्भाव होनेसे अन्तकी वस्तुका निषेध होतानहीं, परन्तु ब्रह्म को सर्व विशेष वाला होने करके प्रत्यक्षता है ताते। [यहां यह अर्थ है कि सर्वको साधारण होने से ब्रह्मके व्यवहारकरनेकी योग्यता सर्वके अर्थहोवेगी, अरु देखतेनहीं, एतदर्थभी नास्तिकपने की आशंका होती है] अरु सर्वकेअर्थ साधारण होनेसे ब्रह्म के नास्तिकपने की आशंका युक्त है। अरु जिस करके इसप्रकार है याते अनन्तर शिष्य के श्रवण करने को आचार्यकी उक्ति के पीछे प्रश्न है। जिस करके ब्रह्म आकाशादिकों का अर्थात् भूतों

सहित सर्व जीवोंका कारण होनेसे विद्वान् अरु अविद्वान्को साधारण (समान) है, ताते अविद्वान्कोभी ब्रह्मकीप्राप्तिकी आशंका करते हैं। (अर्थात् ब्रह्मसर्वजीवादिकोंकाकारणहोनेसेसर्वको समान हीप्राप्तहै तब अविद्वान्कोभी तिसकी प्राप्तिहोतीहोगी) कोई एक अविद्वान्भी यहांसेमरणकोपायके इसपरमात्मरूप लोककोपावताहै, किंवा नहीं पावता है, यहां, किंवा नहीं प्राप्त होताहै, ऐसा जो द्वितीय प्रश्न है सो "अनुप्रश्नाः" (पीछे प्रश्न हैं,) इसबहुवचनके होनेसे जानना। अरु अब विद्वान्के अर्थ, अन्यदो प्रश्न कहते हैं। जब अविद्वान् सामान्य कारणरूप भी ब्रह्मको नहीं प्राप्तहोताहै, तब विद्वान्कोभी ब्रह्मके अप्राप्तहोनेकी आशंका करते हैं। इस करके उस विद्वान्के प्रति यह प्रश्न है। कोई एक भी विद्वान् ब्रह्मवेत्ता यहां (इसशरीर) से मरणको पायके (शरीर को त्यागके) इस परमात्मरूप लोकको पावता है, किंवा जैसे अविद्वान् नहीं पावता तैसे विद्वान्भी नहींपावता है, यहदूसरा प्रश्न है, वा विद्वान् अरु अविद्वान् इनदोनोंको विषयकरनेवाले दोनोंही प्रश्न हैं। अरु बहुवचन तो सामर्थ्य से प्राप्तहुये अन्य प्रश्नकी अपेक्षा से घटितहै [॥ प्र० ॥ किसके सामर्थ्यसेअन्य प्रश्न प्राप्तहुआ है ॥उ०॥ तहां कहते हैं, यहां "चेच्छब्दात्" (चेत् शब्दसे,) इस पदका पक्षसे प्राप्तहुये सद्भावके ज्ञानके सामर्थ्य से यह अर्थ है।] "असद्ब्रह्मेति वेदचेत्। अस्ति ब्रह्मेतिचेद्वेद" (ब्रह्म असत् है इसप्रकार जब जानता है, अरु ब्रह्महै इस प्रकार जब जानता है,) इस श्रवणसे ब्रह्म है वा नहीं है, ऐसा संशय होता है। ताते क्या है वा नहीं है, ऐसा प्रथम प्रश्नअर्थसे प्राप्त हुआ। अरु ब्रह्मको अपक्षपाती (सामान्य) होनेसे अविद्वान् पावता है वा नहीं पावता (अर्थात् ब्रह्मको यह पक्षपात नहीं जो मैं अमुकको प्राप्तहोवों अरु अमुक को प्राप्त न होवों, अरु ब्रह्म आकाशादि सर्वकाकारण अरु आकाशवत् सर्वत्रव्याप्त अरु सर्वका आत्मा है ताते सर्वको समान है, इस कारण से उस

अपक्षपाती सामान्यब्रह्मको अविद्वान् पावताहै वा नहींपावता। ऐसा द्वितीय प्रश्न प्राप्तहुआ। अरु ब्रह्मको समभावके हुये भी अविद्वान्वत् विद्वान्को भी आशंका करते हैं कि विद्वान् क्या पावता है वा नहींपावता है। अर्थात् जो ऐसाकहा जायकिब्रह्म को अपक्षपाती सामान्य होनेपर भी अविद्वान् नहीं पावता, तो यह आशंका होतीहै कि ब्रह्मको अपक्षपातीसामान्य समभावके हुयेभीजब अविद्वान् नहीं पावता तब अविद्वान्वत्विद्वान्को भी तिसकी अप्राप्तिकी आशंकाहोतीहै कि ब्रह्मको विद्वान् भी क्यापावता है वानहीं। इस प्रकार तृतीयप्रश्न प्राप्तहुआ है। इनतीनों प्रश्नोंके समाधानार्थ अग्रिम ग्रंथकाआरंभ करते हैं। तहां प्रथम ब्रह्मका अस्तिपनाही कहते हैं। जो पूर्व "। सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म "। सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप,ब्रह्म है,। इस प्रकार कहा है। तहां सो ब्रह्मका सत्यपना कैसेकहते हैं, ऐसा प्रश्न करनेको योग्य है, तहां यह। उत्तर। कहते हैं कि, सद्भावके कथनसे ही ब्रह्मका सत्यपना कहते हैं। याते "। सदेवसत्यमिति "। सत्यही सत्य है,। इसप्रकार श्रुतिबिषे कहा है, ताते सद्भावके कथनसे ही ब्रह्मका, सत्यपना कहते हैं॥ प्रश्न॥ इसग्रन्थको इसप्रकारके अर्थकरके युक्तता,अर्थात् सत्यपनेके प्रतिपादनसे सत्य वस्तुकी विषयता, है सो कैसे जानिये, तहां॥ उ०॥ कहते हैं जिसकरके शब्दकी सूचनासे इसही अर्थकरकेयुक्त "यदेष आकाश आनन्दोनस्यात्"। जो यह आकाशबिषे आनन्द न होवे, इत्यादि अग्रिम कहने के वाक्य "तत्सत्यमित्याचक्षते" सोसत्यहै,ऐसा कहते हैं।इनकरके विदित होताहै किइस ग्रंथको उक्त प्रकारके अर्थकरके युक्तताहै। [ब्रह्मके सत्यपनेका साधननाम असद्भावकी निवृत्तिही है, इस अभिप्रायसे असद्भावकी शंकाको प्रकटकरते हैं। यहां यहभावहै कि विवादका विषयजो आकाशादिक सो सत्पूर्वक हैं, क्योंकि घटादिकोंवत् कार्यहै ताते। इसप्रकार लौकिक व्याप्तिके आश्रय करके सत्‌रूप कारण प्रथम सिद्ध होवेहै। अरु तिसको देशादि-

कों का कारण होनेकरके देशादिकों से अपरिच्छिन्न होने से ब्रह्मपदका वाच्यपना सिद्धहोता है। अरु तिसकी विशेषता से अप्रतीतिके हुये तिस विषयक असद्भाव की शंका होतीहै, सो शंका उसको कारणपने करके निवारण करते हैं, परन्तु कारण होने से सद्भाव सिद्धहोवे नहीं, क्योंकि कार्य के आश्रयकी असिद्धि का प्रसंग प्राप्त है ताते [तहां वादी "असत्ही ब्रह्म है इसप्रकार शंका करता है, क्योंकि जो है सो विशेष करके ग्रहण करते हैं। अर्थात् जानते हैं। जैसे घटादिकों को है ऐसा जानते हैं तैसे। अर्थात् जो वस्तुहोती है सो घटादिकोंवत् विशेष (इदं प्रत्यय) करके ग्रहणहोती है।अरु जो नहींहै सो नहीं जानिये है, जैसे शशशृंगादिक। अर्थात् जो वस्तु होतीनहीं तिसको जानते भी नहीं जैसे शशशृंग वा वंध्यासुतहैनहीं तब तिसको इदंकरके जानते भी नहीं जो यहहै,अथवा जो वस्तु घटादिकोंवत् इदंकरके नहीं जानी जाती वा नहीं ग्रहणहोतीसो होती भी नहीं।। इस प्रकार ब्रह्म नहीं प्रतीत होता ताते विशेषकरके अग्रहणसे नहीं हैं।। अर्थात् जिसकरके शशशृंगवत् ब्रह्म भी प्रतीत होतानहीं एतदर्थ उसके घटवत् इदंकरके ग्रहण के न हुये सो है नहीं।। इसप्रकार। वादी। शंका करे है। तहां। समाधान यह है कि। ब्रह्मको आकाशादिकोंका कारणपना होनेसे, ब्रह्महै, इसप्रकार जानिये है, क्योंकि जिसकरके आकाशादिक सर्व कार्य्य ब्रह्म से उत्पन्नहुआ ग्रहण करते हैं। अरु जिसकरके कुछ भी उपजताहै सो है, इसप्रकार लोकबिषे देखाहै।। अर्थात् जिस वस्तुसे कुछ भी कार्य उत्पन्न होताहै तिसका अस्तित्व लोकबिषे मानते देखा है।। जैसे घट अरु अंकुरादिकों का कारण मृत्तिका अरु बीजादिकहैं। तैसे आकाशादिकों का कारण ब्रह्म है इसप्रकार जानते हैं।। यहां अवसरपायके शिष्य शंका करेहै कि हे गुरो आकाशादि कार्य के कारण ब्रह्मके अस्तित्व होने के विषय में घट अरु अंकुर रूप कार्य के दृष्टान्तसे कहा कि जैसे घट अरु अंकुररूप कार्य के

ग्रहणसे तिनके कारण मृत्तिका अरु वीजके अस्तित्वका ग्रहणहोताहै, तैसे आकाशादि कार्यके ग्रहणसे तिनके कारण ब्रह्मका अस्तित्व जानिये है,सो अस्तु परन्तु जैसे कार्यरूपघट अरु अंकुरका इदंकरके प्रत्यक्ष ग्रहणहोताहै,तैसेही तिनकेकारण मृत्तिका अरु बीजकाभी इदं करके ग्रहण होता है, अरु यह लोकबिषे प्रसिद्ध भी है कि जिसका कार्य प्रत्यक्ष इदं करके ग्रहण होताहै सो आप कारण भी प्रत्यक्ष इदं करके मृत्तिका बीज सुवर्ण लोह तन्तुवत् ग्रहण होता है। परन्तु जैसे आकाशादिक कार्य इदं करके प्रत्यक्ष ग्रहण होते हैं तैसे इनका कारण जिसको ब्रह्मकहते हैं सो मृत्तिका वीजवत् इदं करके प्रत्यक्ष नहीं ग्रहण होता अर्थात् नहीं जानाजाता, एतदर्थ तिसके अस्तित्वबिषे निश्चय भी नहीं होता ताते ब्रह्म नहीं है,अरु जो कदापिहै तो ऐसे दृष्टान्तसे कहियेकि जिसकाकार्य प्रत्यक्षभासे अरु सोकारण प्रत्यक्ष न भासकेभी होवे उ० ॥ हे सौम्य यहां जो अंकुररूप कार्यका कारण वीज कहा है सो तिस कहनेसे वीजान्तर सूक्ष्मसत्ताको जानना क्योंकि वीज को भी कार्यपनाहै ताते, अरु इस विषयमें छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति प्रमाण है। तथाच श्रुतिः "। न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगवइति भिन्धीतिभिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यणव्यइवेमाधाना भगव इत्यासामंगैकां भिन्धीति भिन्नाभगव इतिकिमत्र पश्यसीति किञ्चन न भगव इति १ ॥ तꣳ होवाच यँ वैसोम्यै तमणिमानं न निभालयसएतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति २ ॥ " श्वेतकेतु प्रति उद्दालकमुनिका वाक्य। हेपुत्र जो तू इस जगत्के कारण महासूक्ष्म सत्काप्रत्यक्ष देखनेको इच्छता है तो इस बडेबटके वृक्ष से एक फललेआव, तब वो लेआया अरु कहा कि हे भगवन् बटके फलकोले आया, तब पिताने कहा इसको तोड़डालो, तब पुत्रने फलको तोड़के कहा कि हे भगवन् तोड डाला,तब पिताने कहाकि अबइसमेंक्या देखतेहो, पुत्र ने कहा हे भगवन् इसमें बहुतसे सूक्ष्मवीज देखताहौं, पिताने कहा कि हेपुत्र

इसमें से एक सूक्ष्म वीजको तोडो, पुत्रने कहा हे भगवन् तोडा, पिताने कहा हे पुत्र इस तोडेहुये सूक्ष्म वीजके अन्तर क्या देखतेहो सो कहो, पुत्रने कहा हेभगवन् इसमें मैं कुछभी नहीं देखता, पिताने कहा हे पुत्र बट के तोडेहुये सूक्ष्म वीजके अन्तर अब तुम कुछभी नहीं देखते तथापि इस सूक्ष्मवीज के अन्तर इस महास्थूल वट वृक्षका कारण भूत महासूक्ष्म सत्ताहै तिसही महासूक्ष्म अदृश्यमान सत्ताका कार्यभूत यह अपने वीजादि अवयवों सहित महास्थूल बटबृक्ष सुशोभित है । अरु वीजका परिणामरूप कार्य वृक्षनहीं क्योंकि वीजकी विद्यमानताहीमें वीज के अन्तर से अंकुर पत्रादिक प्रकट होते हैं अरु तिनकी वृद्धि से वीज नष्टहोजाता है, ताते वृक्षका कारण वीज न होकेवीजोपलक्षित वीजसे पृथक् वीजान्तर कोई एकअदृश्यमान सत्यरूप सूक्ष्मसत्ताहै । हेसौम्य तैसेही इनआकाशादि दृश्यमानकार्य का अदृश्यमान महासूक्ष्म सत्यरूपकारणब्रह्महै ऐसाजानते हैं । यह इसभाषा भाष्यकारकी कल्पनायुक्तिविशेषहै॥ [इसकथनकरनेके हेतुसेभी जगत्के उपादान बिषे असत्पनेकी आशंका करनेको योग्य नहीं,ऐसा कहते हैं] अरु लोकबिषे असत् वस्तुसे कुछभी कार्य उत्पन्नहुआ देखतेनहीं । जब असत्से नामरूपादि कार्य उत्पन्न होवे, तब वो कार्य निःस्वरूपहोने से प्रतीतहुआ न चाहिये अरु प्रतीत होताहै, ताते ब्रह्महै इसप्रकार जानतेहैं । अरु जब असत् का कार्य ग्रहणहोवे तबभी सो असत्करके युक्तही ग्रहण होवेगा । अरु ऐसे है नहीं, ताते ब्रह्म है इसप्रकार जानिये है । अरु "। तत्कथमसतःसज्जायतेति "। असत्से सो सत् कैसे उपजताहै,यह जो अन्यश्रुतिहै,सो युक्तिसे असत्से सत्केजन्मके असंभव को कहे है । ताते सत्ही ब्रह्म है, इसप्रकार कहना युक्त ही है । [इसप्रकार ब्रह्म के असद्भावकी शंका को निषेध करके अब प्रसंगसे प्राप्त प्रधानवादी की अचेतनपनेकी आशंकाको नि-

जादिकोंवत् कारणहोवे तब अचेतन । जड़ । होवेगा, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि ब्रह्म इच्छावाला है ताते । अरु लोकबिषे इच्छावाली बस्तु अचेतन होतीनहीं, अरु ब्रह्म सर्वज्ञही है, इस प्रकार हम श्रुतिके वेत्ता कहते हैं, याते ब्रह्मको इच्छावान् होनेपनेका संभव है ॥ अरु जो ऐसा कहे कि ब्रह्म इच्छावाला होने से अस्मदादिवत् अपूर्णकाम होवेगा, सो कथन बनेनहीं, क्योंकि ब्रह्मस्वतन्त्रहै ताते । जैसे कामादि दोषजीवोंको अपने वा परबस्तु के बशकरके प्रवृत्त करे हैं, तैसे कामादिक ब्रह्म के प्रवर्तक नहीं ॥ प्र० ॥ तब ब्रह्मको काम कैसे है, उ० ॥ तहां कहेहैं सत्य ज्ञान स्वरूपवाले ब्रह्म के कामहैं सो ब्रह्म के स्वरूप भूतहोने से शुद्ध हैं, ताते तिनकरके ब्रह्म प्रवर्त्त होतानहीं [यहां यहकथन किया होताहै कि मायाबिषे प्रतिबिम्बित हुआ ब्रह्म जगत्का कारणहै, सो मायाके परिणाम रूपही कामना से कामनाका कर्त्ता होवैहै, अरु तिस मायाके परिणामों को अविद्या आदिकों से तिरस्कार को अप्राप्तहुये चेतन करके व्याप्त होनेसे सत्यज्ञान रूपताहै, अरु ब्रह्मको तिसरूप होने से पुण्यादिक करके स्पर्श के हुये शुद्धपनाहै । ताते ब्रह्मकी कामनाको जीवोंकी कामनासे विलक्षणपना है यह सिद्धहुआ] किन्तु प्राणियों के कर्मोंकी अपेक्षा से सो ब्रह्म तिनका प्रवर्त्तक है । ताते कामोंबिषे ब्रह्मकी स्वतन्त्रता है । एतदर्थ ब्रह्म अपूर्णकाम नहीं । अरु [कामना को शरीरादिकोंके संबंधसे जन्यहोनेकी प्रसिद्धि से ब्रह्मको शरीरादिकवान् होनेपने काप्रसंग होवेगा,यह शंकाकरनेको योग्य नहीं,इसप्रकार कहते हैं यहांयह अर्थहै कि कामनाके संस्कारवाली मायासे ब्रह्मके तादात्म्यते तिस मायाके परिणाम को ब्रह्मके तादात्म्य से शरीररूप निमित्तकी अपेक्षा नहीं है] अन्य साधनकी अपेक्षा से रहित होनेसे भी ब्रह्म अपूर्ण काम नहीं है । किंवा जैसे जीवोंको अपनेसे भिन्नकार्य अरुकारणका रूप अन्य साधनोंकी अपेक्षावाले होने से अनात्मरूप अरु धर्मादिक निमित्तकी अपेक्षावाले कामहैं अर्थात्

जीवों की जोकामना है सो अपनी सिद्धताके अर्थ अहंकारादि अनात्मरूप कारक अरु धर्मादिरूप निमित्त की अपेक्षा वाली है क्योंकि धर्म से अर्थादिक होते हैं ताते । । तैसे ब्रह्म के काम को निमित्तादिकों की अपेक्षावान्पना नहीं , किन्तु अपने स्वरूपसे अभिन्न ब्रह्मके काम हैं । । अर्थात् जीवोंके जो काम (कामना) हैं सो अविद्या के परिणाम वा पंच भूतों के मिश्रित सत्त्वगुण के कार्य अन्तःकरण के निमित्त वाले हैं, वो अन्तःकरण अपने कारण आकाशादिकों की उत्पत्ति से पूर्व आकाशादिकोंके कारण ब्रह्म विषे है नहीं ताते ब्रह्म के काम किसी भी अनात्मा के निमित्त वाले नहीं, अरु आकाशादि भूत अरु तिनकेकार्य अन्तःकरणादि भौतिक तिन सर्व के पूर्व "सो अकामयत " इत्यादि प्रमाण से, ब्रह्मके कामहैं ताते सो काम अन्य निमित्तवाले न होके ब्रह्म की चैतन्यता वाले होने से उसके स्वरूप से अभिन्न उस के काम हैं । । सो श्रुति वाक्य कहे हैं कि जिस से आकाश उत्पन्न हुआ सो आत्मा "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति, स तपोऽतप्यत,स तपस्तप्त्वा,। इदꣳसर्व्वमसृजत,यदिदंकिञ्च " (सो कामना करता हुआकि बहुत होवों, सो तपको तपता हुआ, सोई तपको तपिके, इस सर्व को सृजता हुआ, जो कुछ यह है ? अर्थात् जिससे आकाश उत्पन्न हुआ ऐसा जो । सर्वका कारण। आत्मा सो कामनाकरता हुआ॥प्र०॥सोकैसे वा क्या कामना करताहुआ ॥ उ०॥बहुत होवों यह कामना करता हुआ । ।प्र०॥ एकको अन्य अर्थ विषे अप्रवेशहुये बहुतपना कैसे होवेगा ।उ०॥ तहां कहते हैं, प्रजाको उत्पन्न करो । जिसकरके पुत्रकी उत्पत्ति सेही अन्य अर्थ को विषय करनेवाला बहुतहोना होवेनहीं , इस करके प्रजाकी उत्पत्ति के अर्थ अद्वैतकी हानि होवे नहीं ॥प्र०॥ तब आप विषे स्थित अप्रकट हुआ जगत् नामरूपकी प्रकटता से कैसेहोता है , ॥ उ० ॥ जब आप विषे स्थित अप्रकट हुये

से अविभाग को प्राप्तहुये वे नामरूप देशकालादिक सो सर्व अवस्थाविषे प्रकटकरिये है, तब सो नामरूपका प्रकटकरना ब्रह्म का बहुतहोना संभवे, अन्यथा निरवयव ब्रह्मको बहुतपने की प्राप्ति वा अल्पपना संभवे नहीं। जैसे आकाश का अल्पपना अरु बहुतपना अन्य (घटादि) वस्तुओं का कियाही है, तैसे। एतदर्थ तिस नामरूपकी शक्तिरूप मायाके परिणाम द्वाराही आत्मा बहुतहोताहै। जिसकरके [जब नामरूपकी शक्तिरूप माया अंगीकार किया तब सो प्रधानवत् ब्रह्म से भिन्न सत्यरूपहुई, इस करके अद्वैत की हानि होवेगी, यह आशंकाकरके कहते हैं। यहां यह भाव है कि आत्मा से भिन्न जो वस्तुहै, सो क्या आपसेही सिद्धहोती है वा पर (अन्य) से (सिद्धहोवे है यह प्रष्टव्य है (तिनमें जो प्रथमपक्ष (कहे कि आत्मा से जो भिन्नवस्तु है सो आपसेही सिद्धहोवे है सो (बनेनहीं, क्योंकि तिस को जडता की हानिहोने से अरु आत्मा से भिन्नताकी हानिहोने से (अर्थात् चैतन्य आत्मा से जो भिन्नवस्तु है सो जड अनात्मा होवेहै, अरु तिसकी जब अपने आपसे सिद्धता मानी तब तिसको जडताकी अरु आत्मा से अभिन्नताकी हानिहोवे है अरु तिस की हानि से उसको आत्मरूपताहोने से आत्मा से भिन्नपने के अभावहुये सो वस्तुही नहीं यह सिद्धहोवे है (अरु जो दूसरा पक्ष (मानो कि आत्मा से भिन्नवस्तुकी पर (दूसरे) से सिद्धि होवे है तो सो (भी बने नहीं, क्योंकि तिस से ज्ञान कहिये चैतन्य के संबंध का अनिरूपणहै (अर्थात् निरूपण नहीं (ताते अरु जिस करके भिन्नदेश कालवाली वस्तुओं का संयोग आदि सम्बन्ध संभवे नहीं, वा विषय विषयी भाव सम्बन्ध बनेनहीं, क्योंकि नियामक के खोजने से। अरु तिनका स्वभावरूपही सम्बन्ध बनेनहीं, क्योंकि दोनों स्वभाओंको सम्बन्धरूप होने करकेही कृतार्थहुये सम्बन्धी के अभाव का प्रसंग है ताते। अरु आपने प्रति अपनाही सम्बन्धीपना बनेनहीं क्योंकि तिसकरके

आत्माश्रयरूप दोषकी प्राप्ति होती है ताते। तिसप्रकार के अर्थ के अभावहुये अरु व्यवहारमात्रकी प्रवर्तकता के होने से मिथ्या व्यवहारकी प्राप्ति से अनिर्वचनीय वादही सिद्ध होताहै] जिस करके आत्मा से अन्य अनात्मरूप अरु तिस (आत्मा) से भिन्न देश कालवाला सूक्ष्म अन्तशयसहित दूर स्थित भूत भविष्यत् वर्तमानरूप वस्तु नहीं है [जिस करके आत्मा से भिन्न वस्तु संभवे नहीं ताते आत्मा के तादात्म्य सेही नामरूपकी सिद्धिहोवे है, इसप्रकार कहते हैं] याते सर्व अवस्थावाले नामरूप ब्रह्म सेही स्वरूपवाले हैं । अरु [तब ब्रह्मको प्रपंच सहितता का प्रसंग होवेगा, सो । तुम्हारा । कहना योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि ब्रह्म तिस प्रपंचरूप नहीं है क्योंकि जडरूप नहीं ताते, अरु सुषुप्ति आदिकों विषे तिस प्रपंचकी निवृत्ति होनेसे भी तहां ब्रह्मकी सिद्धिका संभव है ताते] ब्रह्म तिसरूप नहीं है । [प्र०॥तब नामरूपको ब्रह्मरूपता कैसे है , उ० ॥ तहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि स्वप्नविषे आकाशको भक्षण करनेवत् आरोपितकी अनुभव के अंगीकार से सिद्धि के असंभव से, अनुभवके विषय जे नामरूप सो अनुभवरूप ब्रह्मस्वरूपही कहिये है, परन्तु एकता के अभिप्राय से नहीं] सो नामरूपता के निषेध से , सोई, इस वाक्य करके तिसरूप कहते हैं । अरु तिसनामरूप उपाधिकरके , ज्ञाता, ज्ञेय, अरु ज्ञानरूप शब्द अरु अर्थ आदिक सर्वविद्यमान व्यवहारका भजनेवाला ब्रह्म सो आत्मा है। सो आत्मा सृष्टिकी कामनावाला हुआ तपको तपता भया । यहां तप शब्दकर के । ऊर्द्धबाहु जलस्थायी पंचाग्नि का तापना कृच्छ्र चांद्रायणादिकों को, न कहके । ज्ञानको कहते हैं, क्योंकि " तस्य ज्ञानमयं तपः" तिसका ज्ञान (विचार) मय तप है । इस अन्य श्रुति के प्रमाण से, अरु तिस । आत्मा । को आप्त । पूर्ण । कामहोने से अन्य । उक्तप्रकार के । लोकप्रसिद्ध तप का असंभवही है । एतदर्थ सो आत्मा उत्पन्न करनेयोग्य

जगत् की रचना को विषय करनेवाले विचार को करताहुआ, यह अर्थ होता है। सोई आत्मा तपको तपिके अर्थात् विचार अवलोकन करके, प्राणियों के कर्म्मादिक निमित्तों के अनुसार, देश, काल, नाम, अरु रूप से जिसप्रकार अनुभव किया है, तैसेही सर्व अवस्थावाले सर्व प्राणियों करके अनुभव किये हैं, ऐसे इस जगत्को सृजताहुआ "। तत् सृष्ट्वा, तदेवानुप्राविशत्, तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्"। "तिसको सृजके, तिसहीकेताईं पीछे प्रवेश करता हुआ, सच्च त्यच्चरूप होताहुआ" अर्थात्, तिस को सृजिके तिसही सृजेहुये जगत्केताईं पीछे प्रवेशकरताहुआ। अब प्रवेशकी अनिर्वचनीयताके प्रकाशने से जीवको ब्रह्मस्वरूप होने करके प्रवेश वाक्यके तात्पर्य के देखावनेको विचारका आरंभ करते हैं। तहां कैसे पीछे प्रवेश करताहुआ, यह विचार करने को योग्यहै। किंवा सो स्रष्टा (सृष्टिकर्त्ता) तिसही स्वरूप से प्रवेश करताहुआ, किंवा अन्य स्वरूपसे। प्रवेश करताहुआ। यह दो विकल्प हैं। तिनमें प्रथम क्या युक्तहै, तहां श्रुतिके अनुसार जो स्रष्टाहै, सोई पीछेप्रवेश करता हुआ, यह युक्तहै। इसप्रकार जब सिद्धान्तीनेकहा, तब पूर्ववादीकहताहै। [पूर्ववादी कहताहै। यहां यह अर्थ है कि सृष्टि क्रिया अरु प्रवेश क्रियाके पूर्व अरु पीछे के कालबिषे होनेके असंभवहुये तिनके कर्त्ताकी एकता श्रुतिकरके बोधनकियाहै, परन्तु प्रवेशकी पिछले कालबिषे होनेकी योग्यता संभवेनहीं, क्योंकि सृष्टिके कालबिषेही उपादानको कार्य रूपसे स्थितहोनाहै ताते] ननु, जबब्रह्म मृत्तिकावत्कारणहै तब कार्यको तिसब्रह्मरूप होनेसेतिस। कार्य। के बिषेतिस। कारण। का प्रवेशयुक्त नहींहै। जिस करके कारणही कार्यरूपसे परिणामको पावता है, यातेसो प्रविष्ठवत्है, परन्तु कार्यकी उत्पत्तिके पीछे कार्यसे भिन्न कारण का पुनः प्रवेश अघटित है। अरु जिस करके घटके परिणामसेभिन्न मृत्तिकाका घटबिषे प्रवेश नहीं, इसकरके जगदाकार परिणाम से भिन्न ब्रह्मका जगत् बिषे प्रवेश अघटितहै। अरु जो

सिद्धान्तका एक देशीकहे "जीवेनात्मनानुप्रविश्येति" इस जीव रूपसे पीछे प्रवेशकरके, । इस अन्य श्रुतिसे ;जैसे घट बिषे चूर्ण रूपसे मृत्तिकाका पीछे प्रवेश होताहै, तैसे आत्माका अन्यरूपसे नामरूपात्मक कार्यविषे पीछे प्रवेश होताहै,यह कथन युक्त नहीं है , क्योंकि ब्रह्म एकरूप है ताते । अरु मृत्तिकाके स्वरूपको तो अनेक रूपता है ताते, अरु सावयवता है ताते अरु मृत्तिका का चूर्ण प्रवेश रहित देशवालाहै ताते,मृत्तिकाका चूर्णरूपसे घटबिषे पीछे प्रवेश युक्तहै, परन्तु आत्माको एकताके होनेसे अरु निर-वयव होनेसे अरु प्रवेश रहित देशका अभाव होने से तिसका प्र-वेश संभवेनहीं । अरु जो सिद्धान्तिका एक देशीकहे है कि [सृष्टि कर्त्तासे अन्यका प्रवेश जब नहीं संभवे है, तब किसप्रकार प्रवेश कहनेको योग्यहे । इसप्रकार सिद्धान्तका एकदेशी कहताहै] तब कैसा प्रवेश युक्तहै, अरु प्रवेश नहीं है ऐसा नहीं कहना चाहिये , किन्तु "तदेवानुप्राविशत्" तिसहीके ताईं पीछेप्रवेश करताहुआ, इस श्रुतिकरके प्रवेश श्रवणकियाहै ताते प्रवेश कहना युक्त है । याते तब सावयवरूपही ब्रह्म होवो , अरु तिसको सावयव होने से मुखविषे हस्तके प्रवेश होनेवत् तिसका जीवरूपसे नाम रू-पात्मक कार्यविषे प्रवेशयुक्तही होवेगा,सो कथन बनेनहीं,क्योंकि शून्यदेशका अभावहै ताते । अरु जिसकरके कार्यरूपसे परिणाम को प्राप्तहुये ब्रह्मका नामरूप कार्यही देश है, तिससे भिन्न आप करके शून्य अन्यदेशहै नहीं । अर्थात् जिसको शून्य कहते हैं सो लक्षणवाला होनेसे नामरूपवाला ब्रह्मका कार्य है ताते ब्रह्म से भिन्न शून्यदेश कोईनहीं । कि जिस प्रदेशकेअर्थ जीवरूपसे प्रवेश करे । अरु [जो कारणही अन्य कार्य रूपसे परिणाम को पाया है, तिसके प्रति कोई एककार्य जीव रूपसे प्रवेश को पावेगा,यह शंकाकरनेयोग्यनहीं है, इसप्रकार कहते हैं] जो कहै कारणही प्र-वेशको पावेगा अरु जीवरूप को त्यागैगा । जैसे घट मृत्तिका के प्रवेशहुये घटभावको त्यागताहै तैसे,तो [कोई एककार्यकेप्रवेशको

अंगीकार करके जो दूषणकहा सो संभवे नहीं क्योंकि श्रुतिका बिरोधहै ताते,इसप्रकार कहते हैं] "तदेवानुप्राविशत्" । तिसहीके अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ, इसश्रुतिवाक्यसे सो कारणका पीछे प्रवेशयुक्त नहीं है॥[कारणके स्मारक तत् शब्दसे कार्यको लक्षणा से ज्ञानिके तिसबिषे अन्यकार्यका प्रवेश कहते हैं क्योंकिप्राप्तदेशका संभव है ताते । अरु इसकरके श्रुतिका बिरोध नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्तके एक देशी के मतको प्रकटकरके दूषण देते हैं] जो कहे,अन्य, कार्यही होवे है, अर्थात् "तदेवानुप्राविशत्" । तिसही के ताईं पीछे प्रवेश करताहुआ , इस श्रुति करके जो जीव रूप कार्य सो नामरूपसे परिणामको प्राप्तहुये अन्य कार्यकोही प्राप्तहोता है सो बनेनहीं, क्योंकि ऐसेहुये श्रुतिसे विरोधहोताहै ताते । अरु जिस करके घट अन्यघटको पावता नहीं अरु व्यतिरेक श्रुतियोंके विरोधसे । अरु जिस करके नामरूप कार्य से जीवकेभेदकी अनुवाद करनेवाली श्रुतियां विरोधको प्राप्तहोंगी। अरु जीवको अन्य कार्यकी प्राप्तिके हुयेमोक्षका असंभव होताहै ताते । अरु जिस करके मुक्त होता है तिसही को पावता नहीं। अरु जिस करके बाँधेहुये चौरादिकों को शृंखला (बेडी) की प्राप्तिहोवे नहीं । अर्थात् चौरादिकों को प्रथम बन्धन होता है अरु उसको शृंखलाकी प्राप्तिहुये उसबन्धनकी निवृत्ति होती है सो पुन: प्राप्तहोवे नहीं, एतदर्थ कहाहै कि जिससे मुक्त होताहै तिसको पावता नहीं । इस करके जीव अन्य कार्यको प्राप्तहोता है,यहकथन युक्तनहीं ॥ [कारणके वाचक, तत्, शब्दसे कार्यकी लक्षणा बिषे कहने को अनिच्छित लक्षण जब प्राप्तहोवे, तब , तत् , शब्द कारण पर ही होवो इस प्रकार अन्य सिद्धान्तका एक देशी कहता है [अरु जो कहे बाह्य अरु अन्तरके भेदसे परिणामको पावता है, अर्थात् सोई कारणरूप ब्रह्म शरीरादिकों का आधार होनेकरके अरु तिन शरीरादिकों के भीतरध्येय होनेकरके परिणाम को पावता है सो कहना बनेनहीं, क्योंकि

बाह्य स्थित वस्तुके प्रवेशका संभवहै ताते । अरु जिस करकेजो वस्तु जिसके भीतर स्थित है सोई प्रवेशको पाया, ऐसा कहते नहीं, इसहीसे बाह्य स्थित वस्तुका अन्तर प्रवेश होताहै । अरु प्रवेश शब्दके अर्थको इस प्रकार देखा होनेसे, जैसे गृहको रवि के प्रवेश करताहुआ, तैसे ॥ अरु जो अन्य वेदान्ति कहे कि जल विषे सूर्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् ब्रह्मका प्रवेश होवेगा सोभी कहनावने नहीं, क्योंकि ब्रह्मको पूर्णताहै ताते अरु अमूर्त्त (निराकार) है ताते, अरु परिच्छिन्नमूर्त्तरूपसूर्यादिकों का प्रसन्नता (स्वच्छता, निर्मलता के स्वभाववाले अन्य जलादिकों विषे प्रतिबिम्ब का उदय होता है। अर्थात् प्रतिबिम्ब प्रकट भासता है, परन्तु आत्माको अमूर्त्त होने से, अरु आकाशादिकों के कारण आत्मा को पूर्णहोने से अरु व्यापक होनेसे । अरु आत्मा से दूरदेशवाले प्रतिबिम्बके आधार वस्तुका अभाव है ताते, तिसका प्रतिबिम्बवत् प्रवेश कहना युक्त नहीं ॥ । अर्थात् हे सौम्य जैसे पुरुषके प्रतिबिम्ब का आधार स्वच्छ स्वभाव वाला दर्पण पुरुषसे भिन्न देशमें होताहै, अर्थात् जितने अवकाशमें पुरुषके शरीरकीआकृति परिमेयता है तिससे पृथक् दूरदेशवाले अवकाश स्थल में दर्पण के होनेसे प्रतिबिम्ब होता है, अरु साकार वस्तु का होताहै अरु बिम्बरूपसे अधिक स्वच्छ स्वभाववाले दर्पणादिकों में प्रतिबिम्ब होता है, इसप्रकार जब प्रतिबिम्बके होनेकी सामग्री होती है तब प्रतिबिम्ब होताहै, सो प्रतिबिम्बकी सामग्रीका एक अद्वैतआत्मा विषे अभाव है, क्योंकि प्रथमतो आत्मा अपने प्रतिबिम्ब होनेके हेतु साकारतासे रहित निरवयव निराकार है, अरु सो आत्मा निराकारहुआ परिपूर्ण है तिससे इतर कहिये खाली ऐसाकोई देश (स्थान) नहीं जहां उसके प्रतिबिम्ब का आधार दर्पण स्थानीय बुद्धयादिक होवे, अरु तिस आत्मासे भिन्न अरु तिससे अधिक स्वच्छ कोई वस्तु नहीं कि जिस विषे उसका प्रतिबिम्ब होवे । ताते प्रतिबिम्ब होनेकी, यावत् साकारता, दूरदेश, पृथक्

आधार, अरु तिसकी स्वच्छता आदिक सामग्री हैं, तिन सर्व का एक अद्वैत निराकार स्वयं प्रकाश अतिस्वच्छ सर्वव्यापि परिपूर्ण आत्माबिषे अभाव है। ताते तिस आत्मा का सूर्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् प्रतिबिम्ब रूपसे प्रवेश कहना युक्तनहीं॥ हे सौम्य यहां इस " तदेवानुप्राविशत् " इस श्रुतिके अर्थ बिषे भाष्यकार स्वामी श्रीशंकराचार्य्यजीने प्रतिविम्बरूप से आत्मा के प्रवेशकाखंडन कियाहै, अरु छांदोग्यउपनिषद्के छठे अध्याय की " जीवेनात्मनानुप्रविश्य " इस श्रुतिके अर्थबिषे आत्मा का प्रतिबिम्बरूपसे प्रवेश कहाहै, सो स्थान विशेष के भेदसे अर्थ विशेषका भेदहै ऐसे जानना, विरुद्धार्थ नजानना॥ इसप्रकार सिद्धान्तके एकदेशीकेमतको निषेधकरके पूर्ववादीकी शंकाकीसमाप्ति करेहैं। जब इसप्रकारहै, तबब्रह्मकाप्रवेश नहीं है। अरु " तदेवानुप्राविशत् " इसकेअर्थपीछे प्रवेशकरताहुआ, इसश्रुतिकेअन्यार्थ कोहम पावते नहीं। अरु श्रुति जो है सो हमको इन्द्रिय अगोचर [अर्थात् इन्द्रियोंकाअविषय] वस्तुके ज्ञानकी उत्पत्तिबिषे निमित्त है। अरु यत्नकरनेवाले जे हम तिस हमको इस श्रुतिवाक्य से ज्ञानका होना संभवेनहीं, हा बडाकष्टहै। तब व्यर्थ होनेसे " तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् " तिसको रचिके तिसके अर्थ पुनः प्रवेश करताहुआ, । यह वाक्य अंधपुरुष मणिको प्राप्तहुआ इसवाक्यवत् [सो श्रुतिसृष्टिकर्त्ताके प्रवेशको कहे हैं, यहां यह अर्थ है कि सो श्रुति हम मीमांसकोंको प्रमाणहै, ताते विरोधहुये अन्यकेप्रवेश की कल्पना युक्तनहीं है] अर्थ से शून्यहै , [शक्तिके विषय रूप अर्थ का असंभव होनेसे अर्थ करके शून्यताहै, अथवा तात्पर्य के विषयके असंभवसे अर्थकरके शून्यताहै, तिनमें प्रथमपक्ष बनेनहीं क्योंकि समीप देशवाले भी जल में आकाशादिक मूर्त्त वस्तु के प्रतिबिंबके होनेवत् अमूर्त्त ब्रह्मके भी अनिर्वचनीय अविद्या आदिकों बिषे प्रतिबिंबहोने की उत्पत्तिके अनन्तर कालके ताईं अन्तःकरणादिकों बिषे प्रतिबिंबके अभावके असंभवसे इसप्रकार

कहे हैं " नेति " नहीं इति, । अरु द्वितीयपक्ष भी बनेनहीं, ऐसा कहते हैं] सो कथन वनेनहीं, क्योंकि इस श्रुतिवाक्यको अन्य अर्थवालापनाहै ताते । प्र०, इस स्थान विषे किस अर्थकी चर्चा करतेहो, उ०॥इस वाक्यका प्रसंगविषे प्राप्तहुआ यह अर्थ है, तथापि कहनेको इच्छित अन्य अर्थ है,सो स्मरण करनेको योग्यहै " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावता है , " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै, " योवेदनिहितं गुहायाम् "जो गुहाविषे स्थित ब्रह्मको जानताहै,॥ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तहुआ जिस ब्रह्मका ज्ञान (जानना) सो कहनेको इच्छित है । अरु तिस ब्रह्मस्वरूपके जनावने के अर्थ आकाशादिकों से लेके अन्नमयकोशपर्यन्त सर्वकार्य देखाया । अरु ब्रह्मकेजाननेका उपाय आरंभ कियाहै । तहां " अन्नरसमयादन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः " अन्नरसमय आत्मासे अन्य भीतर आत्मा प्राणमयहै, । अरु तिसके भीतर मनोमयहै, तिसके भीतर विज्ञानमयहै, अरु इस विज्ञानमय बुद्धिरूपा गुहा विषे प्रवेश को पाया आनन्दमय रूप विशिष्ट आत्मा देखाया । [बुद्धिरूपा गुहाविषे प्रवेशसे अनन्तर आनन्दमयही विशिष्टार्थ है, क्योंकि लिंगकरके चेतनरूप विशेष्यके विशेष्यपने के अव्यभिचारको देखते हैं ताते । तिसके ज्ञानद्वारा आनन्दकेवृद्धिका अवधिआत्म ब्रह्मरूपी जोहै,सो इसही । बुद्धिरूपा गुहाविषे जाननेको योग्यहै, इस अभिप्रायसे जल विषे सूर्यके प्रवेशवत् अनिर्वचनीय प्रवेश कहिये है । यह अर्थहै] याते पीछे आनन्दमयरूप लिंग । चिह्न । के ज्ञानद्वारा आनन्दकी वृद्धिका अवधिरूप ब्रह्मपुच्छ प्रतिष्ठा सर्व विकल्पका आश्रय अरु निर्विकल्परूप जो आत्माहै,सो इसही बुद्धिरूपा गुहा विषे जानने को योग्यहै । इस रीतिसे तिसका प्रवेश कल्पना करते हैं । [बुद्धिरूपा गुहाविषेही ब्रह्मके ज्ञानका संभव होनेसे तहांही । उसका । प्रवेश कहनेको इच्छितहै, इसप्रकार कहते हैं] अरु जिसकरके महानिर्विशेष है ताते अन्य ठिकाने जानाजाता नहीं । [ननु

अन्य ठिकाने प्रतीतिके अयोग्य जो ब्रह्महै सो बुद्धिबिषे ही कैसे प्रतीतहोताहै, यह आशंकाकरके ऐसा कहते हैं कि उपाधिकी कोई योग्यताके संभव होनेसे बुद्धिबिषे ही ब्रह्मप्रतीत होवे है, यहां यह अर्थ है कि अन्तःकरणके सम्बन्धसेही देह अरु घटादिकोंबिषे चैतन्यका आविर्भाव होता है आपहीसे नहीं । अरु अन्तःकरण जो है, सो अन्तरायसे विनाही अन्वय अरु व्यतिरेकसे चैतन्य के आविर्भावका करनेवालाहै,] अरु विशेषसे जो सम्बन्धहै सोई ज्ञानका हेतु देखा है । जैसे (अदृश्यमान) राहुका चन्द्रअरुसूर्य करके विशिष्ट सम्बन्ध है (सोई राहुके दर्शन का हेतु है) तैसे-ही अन्तःकरण (वा बुद्धिका) अरु आत्मा का (विशिष्ट) सम्बन्ध है सोई (अविशिष्ट) ब्रह्म के ज्ञानका हेतु है, क्योंकि अन्तःकरण (आत्मा के) समीपवर्ति है ताते अरु [जैसे अस्वच्छ (मलिन) स्वभाववाले घटादिकों बिषे मुख प्रतिबिम्ब को पावता नहीं (अर्थात् मुखका प्रतिबिम्ब होता नहीं) अरु स्वच्छ (निर्मल) स्वभाव वाले जलादिकों बिषे प्रतिबिम्ब को पावताहै (अर्थात् प्रतिबिम्ब होताहै) तैसेही शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान अन्तःकरण की (स्वच्छता) अरु एकाग्रता के स्वभाव से तहांही ब्रह्मका ज्ञानघटे है। घटवत् मलिन देहादिकों बिषे नहीं। इसप्रकार कहते हैं]प्रकाश रूप होने से। [किंवा किरणाकार से विकाश को प्राप्तहुये जड सूर्यादिकों का अन्धकार रूप आवरण के तिरस्कार बिषे समर्थ प्रकाश अंगीकार करते हैं, तैसे जडता के तुलहुये अरु वृत्तिके आकार से परिणाम को प्राप्त हुये अन्तःकरण काही अज्ञान रूप आवरण के तिरस्कार का सामर्थ्य अंगीकार करने को योग्य है, ऐसा कहते हैं। (हे सौम्य यहां जो दृष्टान्त दार्ष्टान्त करके कहा कि सूर्यका अपनी किरणों करके अन्धकारके तिरस्कार करनेका सामर्थ्य है, अरु वृत्तिरूपसे परिणामको प्राप्तहुये अन्तःकरण का अज्ञानके तिरस्कार करनेका सामर्थ्य है, सोऽस्वयंज्योतिः चैतन्य आत्माके निमित्त का किया जानना उनके स्वरूप का ही नहीं

क्योंकि सूर्य अरु अन्तःकरण का, अन्धकार अरु अज्ञान नाशक सामर्थ्य उनके स्वभाव स्वरूपका ही माननेसे " तस्यभासासर्व मिदंविभाति " अरु " यदादित्यगतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलम् " इत्यादि श्रुतिस्मृति यों से विरोध आवताहै ॥] अरुजैसे प्रकाश करके विशिष्ट घटादिकोंका ज्ञान होताहै,तैसेबुद्धि वृत्तिरूप प्रकाश करके विशिष्ट आत्मा का ज्ञान होवैहै,ताते ज्ञानकी हेतु बुद्धिरूप गुहाविषे स्थित, ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तहुआ । जो ब्रह्म । सो बुद्धि वृत्तिरूप स्थानवाला ब्रह्मही यहां पुनः तत्सृष्ट्वातदेवानुप्रावि-शत् " तिसको सृजिके तिसके ही अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ, । इसप्रकार कहिये है । सोई यह आकाशादिकोंका कारण ब्रह्मसो कार्यको सृजके तिसके अर्थ पीछे प्रवेशहुयेवत् बुद्धिरूपा गुहाके भीतर द्रष्टा, श्रोता, मन्ता अरु विज्ञाता, ऐसे विशेषवत् प्रतीत होताहै। सोई तिसका प्रवेशहै। एतदर्थ सो कारणरूप ब्रह्महै, अरु सो अस्तिभावके होने से है, इसप्रकार जानने के योग्यहै । सो तिस कार्यके ताईं पीछे प्रवेश करके सच्चकहिये मूर्त्त (स्थूलरूप) अरु त्यच्च कहिये अमूर्त्त (सूक्ष्मरूप) होताहुआ । अरु जिसकरके अप्रकट नामरूपमय आत्माविषे स्थित मूर्त्त अरु अमूर्त्त,यह दोनों अपने अन्तरगत आत्मासे प्रकट करते हैं । एतदर्थ वे मूर्त्त अरु अमूर्त्त शब्दके वाच्यहैं । अरु वे आत्मासे विभागरहित देशकाल-वाले हैं, एतदर्थही सो । मूर्त्त अमूर्त्त। दोनोंरूप आत्मा होताहुआ इसप्रकार कहिये है । " ब्रह्मणो वा द्वे रूपे मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च " श्रु-त्यन्तरे ।। किंवा समान अरु असमान जातिवाले पदार्थोंसे नि-रुष्टहुआ देश अरु काल तिनकरके विशिष्ट होनेसे "इदंतत्" यह अरु सो, । ऐसे कथनकिया जो " निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च, निलयनञ्चानिलयनञ्च, विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च , सत्यञ्चानृतञ्च,सत्यमभवत्, यदिदं किञ्च, तत्सत्यमित्याचक्षते, तदप्येष श्लोको भवति" " निरुक्त अरु अनिरुक्त, निलयन अरु अनिलयन , विज्ञान अरु-अविज्ञान, सत्य अरु असत्य, सत्यरूप होताहुआ, तिसको सत्य

ऐसे कहते हैं, तिसबिषे यह श्लोक होताहै; अर्थात्, यह अरु सो, इसप्रकार कथन किया जो निरुक्त अरु तिससे विपरीत सो अनिरुक्त। अर्थात् यह निरुक्त अरु अनिरुक्त यह भी मूर्त्त अमूर्त्तके ही विशेषणहै,जैसे प्रत्यक्ष अरु परोक्ष रूप अर्थवाले सच्च अरु त्यच्चरूप विशेषण है तैसे। अरु निलयन अरु अनिलयन। निलयन जो आश्रय सो मूर्त्तकाही धर्म है, अरु तिससे विपरीत जो अनिलयन सो अमूर्त्तकाही धर्म है। [निलयन कहिये गृह अरु अट्टालिकादिक मूर्त्तिमानस्थान विशेष, अरु अनिलयन कहिये अवयव रूप,देश विशेषसे रहितपना, सो अनिरुक्तादिक अमूर्त्तके धर्मवत् ब्रह्मकोही क्यों न होवेंगे, तहां कहते हैं] त्यत् अरु अनिरुक्त अरु अनिलयन, यह अमूर्त्त रूपताके हुये भी व्याकृतको विषय करनेवालेही हैं, क्योंकि सृष्टिके उत्तरकाल बिषे तिनके होनेका श्रवणहै ताते। याते त्यत् जे प्राणादिक अनिरुक्त हैं सोई अनिलयनहैं, याते यह अमूर्त्तके विशेषण व्याकृत, कार्य, कोही विषय करनेवाले हैं। अरु विज्ञान (चैतन्य) अरु चेतन से रहित अचेतनरूप अविज्ञान, अरु पाषाणादिरूप सत्य। यहां सत्य जो कहा सो अधिकारसे व्यवहारको विषय करनेवाला है परन्तु परमार्थसे सत्य नहीं। परमार्थसे सत्यरूप तो एक ब्रह्मही है, अरु व्यवहार को विषय करनेवाला जो सत्य है, सो सापेक्षिक है। याते मृग जलादिक असत्यकी अपेक्षा से व्यावहारिक जलादिक सत्य कहते हैं, अरु तिस सत्य से विपरीत सो झूठ (असत्य) यहसर्व सो परमार्थ से सत्यरूप जो ब्रह्म सो होता हुआ॥ प्र०॥ सो ब्रह्म क्यारूपहै, उ०॥ सोब्रह्म "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्म है,। अर्थात् सोब्रह्म,सत्य, चैतन्य, अनन्त, रूप है। ऐसे प्रसंगमें प्राप्तहुआ होनेसे, सत्यादिरूपहै। अरु जिस करके सत् अरु त्यत् आदिक मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूपधर्मों का समूह जो कुछ यह विलक्षण विकारका समूह है, सो एकही सत् शब्दका वाच्यब्रह्म होताहुआ, तिससे भिन्न नामरूपमय

विकार कहिये कार्य तिस के अभाव से । याते तिस । सर्व के कारणरूपब्रह्मको ब्रह्मवेत्ता सत्य ऐसा कहते हैं। [पदों का अर्थ करके प्रसंगविषे प्राप्त प्रश्न के निषेधहुये "। सोऽकामयत, इति " । सो कामना करताहुआ, । इत्यादिरूप प्रकरणके तात्पर्य को देखावे हैं] । ब्रह्मवेत्ता तो ब्रह्मको सत्य कहतेहैं, परन्तु। ब्रह्म है वा नहीं, ऐसा प्रसंगविषे प्राप्तहुआ प्रश्नहै, तिस के उत्तर विषे यह कहा कि "। बहुस्याम् "। मैं बहुत होवों, । ऐसे कामना करताहुआ। अरु सो कामना के अनुसार सत् अरु त्यत् आदिलक्षणवाले आकाशादि कार्यरूप सृजके तिस के ताईं पीछे प्रवेश करके, देखताहुआ, सुनताहुआ, मननकरताहुआ, जानताहुआ, बहुतरूप होताहुआ । ताते सो यह आकाशादि कार्यों का कारण परम व्योमविषे अनुगत हृदयरूपा गुहाविषे स्थित, अरु तिसगुहा के अहंकर्त्ता भोक्ता इत्यादि वृत्तिरूप प्रकाशविशेषों से प्रतीयमान ब्रह्मको ,, है ,, इसप्रकारजानना ऐसे कथनकिया है । अरु तिस इस ब्राह्मण भागकरके उक्त, अर्थविषे यह श्लोक कहिये मन्त्र । प्रमाण । होताहै । अर्थात् जैसे पूर्व के पाँच अनुवाकोंविषे भी अन्नमयादिक आत्मा के प्रकाशक मंत्र हैं, तैसे कार्य द्वारा अत्यन्त सर्वान्तर आत्मा के सद्भाव के प्रकाशक भी मन्त्र होतेहैं ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

हेसौम्य, "असद्वा इदमग्र आसीत्, ततो वै सदजायत, तदात्मान स्वयमकुरुत, तस्मात्तत्सुकृत मुच्यत इति" (यह आगे असत्ही होताहुआ, तिससेही सत् उत्पन्न होताहुआ, सो आपही आपको ही करताहुआ, ताते सो सुकृत कहियेहै ; अर्थात् यह जगत् आगे असत्ही होताहुआ । यहां असत् शब्दकरके प्रकट नामरूप प्रपंच से विपरीतरूपवाला अविकारी ब्रह्मकहतेहैं । पुनः सो अत्यन्तही असत्है ऐसानहीं । जिसकरके असत्सेसत् , विद्यमान, जन्मसेरहित

असद्वा इदमग्र आसीत। ततो वै सदजायत। तदात्मानछं स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वैतत्सुकृतम्। रसो वै सः। रसछं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो नस्यात् एषह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति ३१॥ इति सप्तमोऽनुवाकः॥

ऐसानामरूप विशेषवाला व्याकृत(कार्य) रूप जगत् उत्पत्तिसे पूर्व नहींहुआहै, किन्तु असत् ब्रह्मकावाच्य ब्रह्महोताहुआ। तिसअसत् ब्रह्म से निश्चयकरके नामरूपके विभागवाला प्रपंचरूप से सत् उत्पन्नहुआ॥ तिससे विभागवाला कार्य क्या पितासे पुत्रवत् उत्पन्नहुआ है, तहां नहीं, इसप्रकार कहतेहैं, सो असत्, ब्रह्मका वाच्य ब्रह्म आपही आपको ही करताहुआ। इस करके ऐसे है, ताते सो ब्रह्मही सुकृत, (अर्थात् आपही कर्त्ता) कहते हैं। लोकविषे ब्रह्म सर्वका कारण होने से आपही कर्त्ता प्रसिद्ध है। जाते निश्चय करके सर्वरूपसे सर्वको आपही करताहुआ, ताते सो आपही कर्त्ता ऐसा कहते हैं। वा पुण्यरूपसेभी सोई ब्रह्मरूप कारण सुकृत कहते हैं। अरु लोकविषे सर्वथा भी फलकासम्बन्धादिक कारण सुकृत शब्दका वाच्य प्रसिद्धहै। अरु जब पुण्य है वा अन्य है, सो प्रसिद्ध चेतनवत् नित्य कारणके होते संभवै है, ताते सुकृत की प्रसिद्धि से सो ब्रह्म सुकृतरूप है। अरु इस आग्रिम कहने की रसरूपता की प्रसिद्धी रूप हेतुसे भी यह ब्रह्म सुकृतरूप है॥ प्र०। ब्रह्मको सुकृतपनेकी प्रसिद्धी काहेसे है,

८० ॥ तहां कहते हैं "यद्वैतत् सुकृतम्, रसो वै सः,रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति" (यद्वा यह सुकृत, निश्चय करके सो रसरूप है, रसकोही पायके आनन्दित होतेहैं; अर्थात् यद्वा यह सुकृत निश्चयकरके सो रसरूप है । लोक बिषे तृप्तिका हेतु आनन्दकारी मधुर आम्रादिक रूप रस प्रसिद्धहै यह पुरुष रसको ही पायके आनन्दित कहिये सुखी होता है । लोकाबिषे असत् वस्तुको आनन्द का हेतुपना देखा नहीं । अरु जिसकरके वाह्य आनन्दके साधन से रहितहुये भी इच्छा अरु एषणा से रहित विद्वान् ब्राह्मण वाह्य रसके लाभादिकों से रहित रसरूप आनन्द वाले देखते हैं, तिनका ब्रह्महीं रसहै। एतदर्थ तिन विद्वानोंको आनन्दका कारण रसवत् ब्रह्मही रसहै । अरु प्राणादिक क्रियाके देखने रूपहेतु से भी ब्रह्म है, इसप्रकार जानाजाता है। अरु यह पिंड (देह) भी जीवते के प्राणसे प्राणन (जीवन) क्रिया को करताहै,अरु अपानसे अपाननक्रियाको करताहै,ऐसेवायुसम्बन्धी अरु इन्द्रियसम्बन्धी जो चेष्टाहै, सो मिश्रितहुयेकार्य अरु कारण रूपसंघातकरके निर्वाह कियाहुआ देखते हैं अरु सोएकप्रयोजन का साधनहोनेकरके परस्परके आधीनअचेतनरूपकार्य कारणका संघात चेतन करके युक्त संभवे है, क्योंकि [गृह अरु अटारियां-दिकों विषे स्वतन्त्र, अरु गृहादिकों से आरंभ करने को अयोग्य स्वामी विना मिलावने के अदर्शनसे । अर्थात् गृहादिक जिनकी संज्ञाहै सो ईंट पाषाण चूना मृत्तिका काष्ठादि संघात से निमित्त होते हैं, परन्तु उन ईंट पाषाणादि जड़ों के संघात से पृथक् अरु चेतन कोई एक उनके स्वामी करकेही उन ईंट पाषाणादिकोंका एकत्रहोय गृहादिकों के नामरूप से निर्माण होना लोकबिषे देखा है, उन ईंट पाषाणादिकों से भिन्न उनके स्वामी चैतन्य विना उन जड़ ईंट पाषाणादि संघातका एकहोना देखा नहीं। कार्य कारण के संघात विषे भी विलक्षण अरु शरीरवाला अरु अवयवादिकों से अरु बुद्धि आदिकों से रहित । उन जड़ संघात

का एकत्र करनेवाला कोई एक [स्वामी जानिये है, अरु वो चेतनपने करके [सर्वत्र] भेदके अभावसे ब्रह्महो है, इसप्रकार तिसके सद्भावकी सिद्धि है । यह अर्थ है] अन्य ठिकाने स्वामी से रहित तिनका अदर्शनहै ताते। सो कहते हैं "को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्, यदेष आकाश आनन्दो नस्यात् एष ह्येवानन्दयाति, यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्ते ऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठांविन्दते "। (जब यह आकाशविषे आनन्द न होवे, कौनही अपान रूप चेष्टाको करेगा, कौन प्राणनरूप चेष्टाको करेगा, जिसकरके यहही आनन्द करावे है, जब याते यह इस अदृश्य अनात्म्यअनिरुक्त अनिलयन अभय स्थितिको पावता है तब सो अभयको प्राप्त होताहै ; अर्थात् जब यह आकाशसंज्ञक परमव्योमगत हृदयरूपा गुहाविषे स्थित आनन्द न होय तब लोकविषे कौनही अपानरूप चेष्टाको करेगा, अरु कौन प्राणनरूप चेष्टाको करेगा, किन्तु कोईभी न करेगा, ताते सो ब्रह्म है, ऐसा जानाजाताहै ॥ जिसके अर्थ कार्य कारणादिकों की प्राणन आदिक चेष्टा होवेहै, तिसका कियाही आनन्द लोकोंको होता है ॥ प्र० ॥ यह काहे से जानतेहौ,॥ उ० ॥ जिसकरके यहही परमात्मा लोकोंको [उनके] पुण्योंके अनुसार आनन्द करावे है,अरु सोई आनन्दरूप आत्मा प्राणियों को अविद्या से परिच्छिन्न भासता है, एतदर्थ अविद्वान् को भयका अरु विद्वान्को अभयका हेतु होनेसे, सो ब्रह्महै, इस प्रकार जानिये है ॥ ननु, सत् अवस्थावाले बस्तुके आश्रयसे अभय होता है, अरु असत् बस्तुके आश्रयसे भयकी निवृत्ति संभवे नहीं, इसकरके ब्रह्मको अभय का हेतुपना कैसे है, तहां कहते हैं, जब जिसकरके यह साधक इस अदृश्य [दृश्यनाम देखनेयोग्य विकारका है, क्योंकि विकार (कार्य) दर्शनके अर्थ है ताते, [अरु ब्रह्म जिसकरके दृश्य नहीं, इसकरके अदृश्य कहिये अविकारहै । यह अर्थ है] ,अविकारी अरु अविषयरूप है, अरु जिसकरके अदृश्यहै तिसही करके अनात्म्य कहिये अशरीर है, अरु जिस करके

अनात्म्य । अशरीरी । है तिसही करके अनिरुक्त कहिये अवाच्यहै [जो विशेष है सोई कहनेका विषय है, अरु सो विशेष विकार रूप है । अरु ब्रह्म जिस करके सर्व विकारों (कार्यों) का हेतु (कारण) है ताते अविकारीरूप है, एतदर्थ अनिरुक्त कहिये अ-वाच्य है ।] अरु जिसकरके अनिरुक्त है तिसही करके अनिलयनं कहिये आधाररहित अनाधार है ऐसा कहते हैं अरु पूर्व कार्य के धर्मसेविलक्षण ब्रह्मविषे अभय स्थितिकहिये आत्मभावकोपावता है, तब सो तिस ब्रह्म विषे भयके हेतु अविद्याकृत नानाभावके अदर्शनसे अभयको प्राप्त होताहै । अरु जिसकरके यहसाधक जब स्वरूप विषे प्राप्त होताहै तब अन्यको देखता नहीं , अन्यको सुनता नहीं, अन्य को जानता नहीं । अरु जिसकरके अन्यसे अन्यको भय होताहै , आत्मा अपने आपसेही नहीं , एतदर्थ आत्मा से जो अभय कहा सो युक्त, है ताते आत्मा ही आत्मा के अभयका कारण है । अरु भय हेतुके होते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्व ओरसे निर्भय देखिये है, अरु भयसे रक्षक ब्रह्मके अविद्यमानहुये सो अभय अयुक्त है, ताते तिन ब्राह्मणको अभयके दर्शनसेतिस अभयका कारण ब्रह्महै, इस प्रकारजानतेहैं । प्र० । यह साधककब अभयको प्राप्त होताहै, उ० । जब यह साधक अन्यको नहींदेखता हैं, अरु आत्माविषे भेदको करता नहीं, तब अभयको प्राप्तहोता है । यह अभिप्राय है " । अथ सो ऽभयंगतो भवति, यदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयंभवति, तत्त्वेव-भयं विदुषो मन्वानस्य, तदप्येष श्लोको-भवति । ; तब सोअभ-यको प्राप्त होता है, जब जिस करके यह इसविषे अल्पभी अन्तर को करता है तब तिसको भय होता है, जाननेवाले न माननेवाले को सोई सो भय होता है, तिसविषे भी यह श्लोक होता है ; अर्थात् तब सो तिस ब्रह्मविषे भयके हेतु अविद्याकृत नानाभावके न देखने से अभय को प्राप्त होता है, अरु जब अविद्यावस्था विषेजिसकरकेयह अविद्यावान् अविद्या करकेआरो-

पित वस्तुको तिमिर दोषकरके आरोपित द्वितीय चन्द्रमावत् आत्माबिषे देखता है, अरु इस ब्रह्मबिषे अल्प भी अन्तर कहिये भेददर्शन को करता है, अर्थात् अन्तःकरणबिषे रंचकमात्र भी भेदको देखता है, तब तिसभेद दृष्टिरूप हेतु करके तिस भेददर्शी आत्माको भय होता है। एतदर्थ आत्माही आत्मा को भयका कारण होता है, अर्थात् ईश्वर मुझसे अन्य है अरुमैं तिस से अन्य संसारी हौं, इसप्रकार जानने वाले अरु अल्प भी भेद के करने वाले पुरुषोंको भय होताहै। इसप्रकार जानके भी एकता करके न माननेवाले भेददर्शीको भेददृष्टिका बिषय किया सोईब्रह्म तो भयका हेतु होताहै। ["दासोस्मि" "दासोऽहं तस्य देवस्य ममाराध्यःपरमेश्वर इति" मैंदास हौं, वा, मैं तिसदेवका दास हौं अरु मेरा आराध्य परमेश्वर है,। इसप्रकार के भेदको, जाननेवालेको कैसे अज्ञानी कहतेहौ,यहां यहअर्थहै,जैसेचन्द्रमा के भेदको देखताहुआभी पुरुष अयथार्थदर्शी होनेसे अज्ञानीकहते हैं तैसे]जिसकरके जो यहएक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखतानहीं, तिसही करके यह विद्वान्भी अविद्वान्है। तब तिस भेददर्शीको भयकी संभावना किसप्रकार होती है। तहां कहतेहैं, यहांयहअर्थ है कि, संहारका कर्ता परमेश्वर हमको संहार करेगा, वा नरक बिषे डालेगा, इसप्रकार देखनेवाले पुरुषको भय होताहै।] अरु नाश करनेयोग्य माने हुये वस्तुके विनाशके हेतुके देखनेसे, तिस को भय होवे है। ब्रह्महो उच्छेदका हेतु काहेसे है। तहां कहे हैं। यहां यह अर्थहै कि, उच्छेद कहिये नाश तिसके हेतु के भी उच्छेद के हुये अनवस्थाके प्रसंगसे तिसकी नित्यता कहनेको योग्य है, सो उच्छेद का हेतु ब्रह्म से अन्य संभवे नहीं] अरु अन्योंके नाश का हेतु जो ब्रह्महै, सो नाश करने को अयोग्य है, एतदर्थ तिस भेददर्शीके चित्त बिषे तिस नाशके कारण। अरु नाश करने को अयोग्य ब्रह्म के अविद्यमान हुये तिसनाशके हेतुभेदके दर्शनका कार्यरूप भय युक्तहै। अरु सर्व जगत्को भयवाला देखतेहैं, तातें

विचार होता है, श्रेष्ठ युवा, अधीत चारों वेद, और से पाया, दृढ़ अरु बलिष्ठ, तिसकी यह सर्व पृथिवी वित्तकरके पूर्ण होती है, सो एकमनुष्यों का आनन्द होता है ? अर्थात् तिस इस ब्रह्म के आनन्दका सो यह विचारहै ॥ प्र० ॥ आनन्दका क्या विचार करने को योग्यहै, तहां कहते हैं। उ० । ब्रह्म का आनन्द क्या लौकिक आनन्दवत् विषय अरु विषयीके सम्बन्ध से जन्यहै, अथवा स्वाभाविक है, इसप्रकारका यह आनन्द का विचारहै । [जब ब्रह्मानन्दकाविचार प्रसंगविषे प्राप्तहुआ है, तब यहां श्रुतिविषे सार्वभौम के आनन्दादिकोंके कहने का आरंभ किस अर्थ है, इस शंकापर कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि जोलौकिक आनन्द है सो कहीं भी अवधि को पाया है । कि यह इतनाहै । क्योंकि सातिशयहै, परमाणुवत् । इसप्रकार ब्रह्मानन्द के विचार अनुमानार्थ लौकिक आनन्दोंके कथनका आरंभहै] यहां जो लौकिक आनन्दहै सो बाह्य अरु भीतरके साधनोंकी सम्पत्तिरूप निमित्त वालाउत्कृष्टहै, सोयह ब्रह्मानन्दके निश्चयार्थ कहतेहैं। अरुजिस करके इसप्रसिद्धआनन्दसे विषयरहित ब्रह्मअरु आत्माकी एकता के दर्शी पुरुषों की बुद्धिका विषय ब्रह्मानन्द जानने को शक्यहै, एतदर्थ यह लौकिक आनन्द कहते हैं [अब अन्यप्रकारसे ब्रह्मानन्द के ज्ञानको कहते हैं] लौकिक आनन्दभी ब्रह्मानन्दका लेश है । अरु अविद्यासे तिरस्कारको पायाहुआ अज्ञात सो ब्रह्मानन्द, अविद्याके उत्कर्षहुये ब्रह्मादि प्राणियों करके कर्मके बशसे बुद्धिके अनुसार विषयादि साधनके सम्बन्धके आधीन होवे हैं, अरु सो लोकविषे विपरीत भासमान होने से अस्थिर लौकिक होता है-अरु सोई ब्रह्मानन्द, अविद्या काम अरु कर्म इसकी न्यूनता करके मनुष्य गंधर्वादिकों की उत्तरोत्तर भूमिविषे निष्काम विद्वान् श्रोत्रियको प्रत्यक्षहुआ शत १०० गुणा अधिक अधिक उत्कर्षसे जहांलगि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मका आनन्द है तहां पर्यन्त भासता है । अरु अविद्याकृत विषय विषयी के विद्याद्वारा निषेध

कियेहुये स्वाभाविक परिपूर्ण एक अद्वैत आनन्द होता है। इस अर्थको प्रकटकरनेकी इच्छा करतेहुये कहते हैं। श्रेष्ठ युवा अर्थात्-चारोवेद, माता पितादिक अन्यसे शिक्षा पायाहुआ अत्यन्त दृढ अरु बलिष्ठ,ऐसेअन्तरके साधनकरके सम्पन्न जो पुरुषहै तिसकी यहभोगके साधनधनकरके अरु कर्मकेसाधन दृढ अर्थकरके पूर्णसर्व पृथिवी होती है,अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवीकापति चक्रवर्ती राजाहोता है। तिसका जो आनन्दहै सो एकमनुष्यों का उत्कृष्ट आनन्द है "। तेये शतं मानुषा आनन्दाः, स एको मनुष्यगंधर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ " वे जे शत मनुष्योंके आनन्दहैं,सोएक मनुष्य गंधर्वका आनन्दहै,सो श्रोत्रिय मनुष्यके बिषयभोग अरु कामनाके निवृत्तहुये होती है ; अर्थात् वहजो एकचक्रवर्ती राजा का आनन्दहै तैसे सौ चक्रवर्त्ती के आनन्दहैं सो मिलके एकमनुष्य गंधर्वोंका आनन्दहै। अर्थात् मनुष्योंके आनन्दसे सौगुणाअधिक मनुष्य गंधर्वोंका आनन्द होता है मनुष्य होके जो कर्म उपासनाके बलसे गंधर्वपनेको प्राप्तहुये हैं, तिनको मनुष्य गंधर्व कहते हैं। अरु सो जिस करके अन्तर्धानादिक होनेकी शक्तिकरके सम्पन्नहैं, अरु सूक्ष्मकार्य कारणवाले। आतिवाहक शरीरवाले हैं, ताते उनको शीतोष्णादिक द्वंद्वकृत पीडाकी अल्पता है, अरु द्वंद्वके निवारण करने की सामर्थ्यरूप साधनकी सम्पत्ति है। एतदर्थ मनुष्यके भोगोंकी कामनासेरहित मनुष्य गंधर्वको चित्त की प्रसन्नता होतीहै। तिस प्रसन्नता विशेषसे सुख विशेषकी प्रकटता होवेहै। इसप्रकार पूर्व पूर्व भूमिकासे उत्तरोत्तर भूमिकाबिषे प्रसन्नताके विशेषसे शतगुणा आनन्दका उत्कर्षसंभवे है। [प्रथम "अकामहत" निष्काम । इस विशेषणसे अग्रहण का तात्पर्य कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब प्रथम पर्यायबिषे ही निष्काम ग्रहण करिये, तब तिसही को सार्वभौम कहिये चक्रवर्त्ती राजाके तुल्य आनन्द होवेगा तब मानुष आनन्दकी इच्छासे रहित पुरुष मानुष आनन्द का भागी है, इस प्रकार व्याघात दोष होवेगा।

एतदर्थं मनुष्य गंधर्वके आनन्दसे तुल्य तिसके आनन्दको देखा-वनेको प्रथम पर्य्यायविषे " अकामहतस्य " इस विशेषण का अग्रहण है] प्रथमतो " अकामहत " कामना से रहित , । इस विशेषणका अग्रहण है, क्योंकि मनुष्योंके विषय भोगकी कामनासे अहतहुये श्रोत्रिय, विद्वान्, को मनुष्यके आनन्दसे शतगुण आनन्द का उत्कर्ष मनुष्य गंधर्वके तुल्य कहनेको योग्य है, इस प्रयोजनार्थ " युवास्यात्साधुयुवाऽध्यायिकः " श्रेष्ठयुवा अरु अधीतवेद । इन पदोंकरके श्रोत्रियपना अरु निष्पापपना ग्रहण करिये है । अरु जिसकरके सो दोनों विशेषणलवे ठिकाने समानहैं,अरु कामनासे रहितपना तो विषयकी अधिकताअरुन्यू-नतासे सुखकीन्यूनता अधिकताकेअर्थ विशेषहोताहै । एतदर्थंति-सके विशेषसे शतगुणा सुखके अधिकताकीप्रतीति से कामनासे रहितपनेको परमानन्दके प्राप्तिकी साधनताके विधानार्थ प्रथम पर्य्यायविषे कामनासे रहितपनेका अग्रहण है इसप्रकार कथन किया जो मनुष्यगंधर्वका आनन्द सो श्रोत्रिय मनुष्यकेविषयभोग की अरु कामनासे रहित, ज्ञानी, को होवेहै । तेयेशतं मनुष्य गंधर्वाणामानन्दाः,सएकोदेवगंधर्वाणामानन्दः,श्रोत्रियस्यचाका-महतस्य" (वह जो शतमनुष्य गंधर्वोंका आनन्दहै सो एकदेव गंधर्व का आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितपुरुषोंकोहोताहै। अर्थात् जो सौ१०० मनुष्य गंधर्वका आनन्दहै सो एकदेव गंधर्व का आनन्दहै सोआनन्द श्रोत्रिय अरु निष्काम पुरुष कि जिसकी मनुष्य गंधर्वोंके आनन्दकीकामना उठगई है तिसकोहोताहै। अरु कल्पकी आदिविषे जो जातिसेही गंधर्व होतेहैं, तिनकोदेव गंधर्व कहतेहैं तेयेशतं देवगंधर्वाणामानन्दाः , सएकः पितृणांचिरलो-कलोकानामानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य " (वेजो शतदेव गंधर्वोंके आनन्द हैं सो एकचिरलोकवासी पितरोंका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितको होताहै ? अर्थात् जो एक देवगंधर्व के आनन्द हैं तिससे सौगुणा अधिक एक चिरलोकके

निवासी पितरोंका आनन्द,है, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित को होता है॥ अरु तेयेशतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः, स एक आजानजानांदेवानामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य"। "वहजोशत चिरलोकनिवासी पितरों का आनन्द है, सो एक आजानज देवोंका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु अकाम को होता है"; अर्थात् जो एक चिरलोक के निवासी पितृके आनन्दहैं तिनसें सौगुणा अधिक एक आजानज देवताके आनन्द हैं सो आनन्द श्रोत्रिय पुरुषको, कि जिसकी चिरलोकके निवासीपितरों के आनन्दकी कामना अभाव हुई है तिसको होता है। आजानज जो देवलोक तिसबिषे स्मृति उक्त कर्मोंके करनेसे। तिनके फल भोगार्थ देवभावसे उत्पन्नहुये जे मनुष्य। तिनको आजानज देवकहतेहैं॥ "अरु तेयेशतमाजानजानां देवानामानन्दाः, सएक कर्मदेवानामानन्दः,येकर्मणा देवानामपियन्ति श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य"। "वेजोशत आजानज देवोंके आनन्दहैं,सो एककर्म देवोंका आनन्द है, जो केवल वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म करके देव भावको पावते हैं, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितकोहोता है"; अर्थात् जो एक आजानज देवके आनन्द हैं तिसके शतगुणे अधिक कर्मदेवों का आनन्द है अरु जो वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म विद्याके ज्ञान सहित करतेहैं सो पुरुष देवभावको पावतेहैं, अर्थात् यहां शरीरत्यागके देवलोकमें देवभावसे उपजतेहैं, तिन देवताओंका आनन्द आजानज देवके आनन्दसे शतगुणाअधिक है सो आनन्द श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुष पावता है॥ अरु "तेयेशतं कर्म देवानामानन्दाः,स एकोदेवानामानन्दः,श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य"। "वेजेशत कर्म देवनके आनन्दहैं सो एक देवोंका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुषको होताहै", अर्थात् जो एककर्म जादेवके आनन्दहैं तिनसे शत १०० गुणाअधिक देवताका आनन्दहै,अरु अष्टवसु,८एकादशरुद्र ११, द्वादश आदित्य १२, चन्द्रमा प्रजापति २, यह सर्व मिल

के तेंतीस ३३ देवता हैं अरु जे यज्ञविषे हवीकेभोक्ता । अरुसृष्टि के उत्पत्ति कालविषे प्रथम ब्रह्माके संकल्पमात्र सेही उपजे अयोनिसंभव हैं । ताते ये मुख्य देवता हैं, तिनका जो आनन्द है सो श्रोत्रिय अरु निष्काम पुरुषको होता है ॥ अरु "तेयेशतंदेवानामानन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः,श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" । (वेजेशत देवोंके आनन्द हैं, सो एक इन्द्रका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुषको होता है ? अर्थात् जोएक देवतोंका आनन्द है तिससे सौगुणा अधिक देवताओंके अधिपति इन्द्रका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय । विद्वान्, अरु सर्वकामनासे रहित पुरुषको होता है ॥ अरु "तेयेशतमिन्द्रस्यानन्दाः,स एको बृहस्पतेरानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" । (वेजेशत इन्द्रके आनन्द हैं, सो एक बृहस्पतिका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरुनिष्काम को होता है ? अर्थात् जो एक इन्द्रको आनन्द है तिनसे सौगुणा अधिक इन्द्रके आचार्य बृहस्पतिका आनन्द है । क्योंकिजो सर्व देवताओं का अधिपति त्रैलोक्य का राजा इन्द्र है सो अपने गुरु बृहस्पति का सेवन आराधन करतसन्ते उनकी आज्ञामें वर्त्तताहै अरु ईश्वरके तुल्य जानता है, एतदर्थ इन्द्र के आनन्दसे सौ गुणा अधिक बृहस्पति का आनन्दहै । सो श्रोत्रिय अरु कामनारहितको होता है ॥ अरु तेयेशतं बृहस्पतेरानन्दाः स एकःप्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वेजे शतबृहस्पतिके आनन्दहैं, सो एकप्रजापतिका आनन्दहै,सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितको होताहै ? अर्थात् इन्द्रके आनन्द से शतगुणा अधिक बृहस्पतिका आनन्द है तिससे सौगुणा अधिक त्रैलोक्यमय शरीरवाले विराडभिमानी प्रजापतिका आनन्दहै,सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितहुयेको होताहै॥अरु "तेयेशतंप्रजापतेरानन्दः स एको ब्रह्मण आनन्दः, श्रोत्रियस्य कामहतस्य" (वेजेशत प्रजापति के आनन्द हैं, सो एक ब्रह्माका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरुकामनासे रहितको होताहै? अर्थात् जोएकविराट्

शरीरवाले प्रजापतिका आनन्द है, तिस आनन्द से शतगुण अधिक ब्रह्मानामकरके हिरण्यगर्भका आनन्दहै। अर्थात् समष्टि व्यष्टिस्वरूप, अरु जन्ममरणरूप अग्निबिषे व्यापी, अरु जहां पर्यन्त आनन्दके भेद एकताको पावते हैं, अरु जहां उनका निमित्त धर्म अरु तिनको विषयकरनेवाला ज्ञान अरु कामना से रहितपना, ये सर्व अतिशय कहिये सर्व से अधिकहैं, सो यह हिरण्यगर्भ ब्रह्माहै जिसका यह आनन्दहै सो श्रोत्रिय (वेदशास्त्र कोजानके धर्माचरणको करनेवाला) अरुकामनासे रहित पुरुष पावताहै। अर्थात् जो विद्वान् धार्मिक निष्पाप रूप है अरु तिसकी विषय सुख कामना उठगईहै ऐसा निष्काम पुरुष चक्रवर्ती राजा के आनन्दको भोगता है, अर्थात् जिसको जिस वस्तुकी कामना है तिसको तिसकी प्राप्तिके अर्थ श्रमहोने से अरु प्राप्ति के प्रयत्नमें कचिद्विघ्न होने से अरु प्राप्तिके अनन्तर तिसकी अरु शरीरकी अस्थिति निमित्तिक वियोग होने की चिन्तासे सुख नहीं, अरु जिसकी विषय सुख कामना उठगई है सो तन्निमित्तिक प्रयत्नादिकों से रहितहुआ आनन्दको भोगताहै। इसप्रकार जिस धार्मिकविद्वान् निष्पाप पुरुषकी चक्रवर्ति के आनन्दसे हिरण्यगर्भ के आनन्दपर्यन्त जिस जिस विषयक आनन्द भोगकी कामना उठगई है सो निष्कामपुरुष यहांही सुखपूर्वक उस आनन्दको प्राप्तहोताहै। अतएव जिस निष्पाप धर्मात्मा श्रोत्रिय पुरुषकी जितनी जितनी कामना अधिकाधिक निवृत्तहुई है सो तिसके अनुसार अधिकाधिक आनन्दको पावता है। अरु जिसकी हिरण्यगर्भ के भी पद पर्यन्त की कामना उठगई है तिन की प्रशंसा वेद करता है अरु सोई ब्रह्मानन्द प्राप्तिका अधिकारी होताहै। तथाच "कामस्याप्तिञ्जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्। स्तोममहदुरुगायम्प्रतिष्ठान् दृष्ट्वाधृत्याधीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः" इस श्रुति से मृत्यु भगवान्ने हिरण्यगर्भ के पदसे भी निष्कामहुये परमाधिकारी की प्रशंसा कियाहै तातेजिसकी हि-

रण्यगर्भ के आनन्द भोगकी कामना भी अभाव हुई है सो ब्रह्मानन्दका उत्तमाधिकारी है ।॥ अर्थात् श्रोत्रिय कहिये वेदशास्त्र की आज्ञानुसार धर्म मार्गमें वर्त्तनेवाला अरुनिष्पाप अरुकामना से रहित, ऐसे पुरुषकरके सो ब्रह्मदेवका आनन्द सर्वओरसे प्रत्यक्ष अनुभव कियाजाता है । एतदर्थ यह श्रोत्रियतादि तीन, आनन्दके साधनहैं, इसप्रकार जानाजाताहै । अरुतिनमेंभी श्रोत्रियपना अरु निष्पापपना यह दोनों साधन नियमित हैं, अरु निष्कामता तो अधिकाधिक होती है, ताते सर्व साधनोंमें तिसकी उत्कृष्टता जानीजाती है । [तिसके अर्थ विचारका आरंभकिया है, तिस निरतिशय साधनकी सिद्धिविषे वाक्यके तात्पर्यके लखावने को कहते हैं । यहां तिस हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माका जो आनन्द है अरु जोतिस के उपासक को प्रत्यक्ष है सो आनन्द जिसकी मात्रा कहिये लेश (किणका) है सो यह परमानन्द स्वाभाविक है, इसप्रकार सम्बन्ध है] तिस ब्रह्मा को निष्कामपने की अधिकता करके प्रतीयमान जो श्रोत्रियको प्रत्यक्ष ब्रह्मा का आनन्द है जो जिसपरमानन्द का एक अंशमात्र है ॥ । अथवा देशहै जैसे एक समस्त भूमंडल पर अनेक देश हैं तिनमें कोई एक देशके अधिपतिका देश भूमंडल का कोई एक देश है , तैसे हिरण्यगर्भाख्य ब्रह्मा का जो आनन्द है सो परमानन्द का कोई एक अंश है ॥ क्योंकि "। एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति" । इसही आनन्दके एकदेशके ताईं अन्य । ब्रह्मादि । भूत उपजीविका करते हैं, । इस अन्य श्रुतिके वाक्य से । अरु समुद्र जलके एक विन्दुवत् जिसका एकदेशरूप सो यहचक्रवर्ती आदिकोंका आनन्द नानामात्रारूप विभागको पावता हुआ जहां । अर्थात् जिसनिष्काम ब्रह्मवेत्ता के प्रत्यक्ष अनुभव हुये ब्रह्मानन्द विषे । एकता को पावता है, सो यह परमानन्द स्वाभाविक है ॥ । अर्थात् परमानन्द जो है सो अथाह अपार समुद्र जलवत् है, अरु हिरण्यगर्भका आनन्द महानदजलवत् है, अरु प्रजापतिका आनन्दनहीं

जलवत् है, अरु बृहस्पतिका आनन्द महाहृदवत्है अरु इन्द्रका आनन्द लघुहृदजलवत् है, अरु देवताओं का आनन्द सरोवर के जलवत् है, अरु कर्मज देवोंका आनन्द कुंडके जलवत् है, अरु आजानजदेवका आनन्द वापीके जलवत्है, अरु पितरोंका आनन्द दीर्घ कूपके जलवत्है, अरु देवगंधर्वोंका आनन्द लघुकूपके जलवत्है, अरु मनुष्य गंधर्वों का आनन्द एक गृहस्थके घरके जलवत् है, अरु चक्रवर्तीका आनन्द पानपात्र (गिलासादिक) के जलवत्है। इसप्रकार महानदके जलसे लेके पानपात्रके जल पर्यन्त अंशाअंशी भावकी तारतम्यतासे एक महासागरके जल का अंश व्याप रहा है, अरु उसीही के आश्रय सर्व अपने नाम रूपादि सहित अपने व्यापारको सिद्धकररहे हैं। तैसेही एक परमानन्दका अंश से हिरण्यगर्भ के आनन्द से लेके चक्रवर्ती के आनंद पर्यन्त फैलरहा है अरु उसही के आश्रय सर्व आनन्दित हुये अपनी २ उपजीविकाको करते हैं॥ अथवा जैसे एक सैंधव लवणकी आकरहै तिसके लवणका कोई एक अंश वो लवणहै जो आकर से बाहर पर्वत के समान एकत्र करके रक्खा है, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो सहस्रावधि उष्ट्र शकटों में भरके महावणिज लियेजाते हैं, अरु तिसलवण का कोई एक अंश वो लवण है जो दीर्घ नगरों में वैश्यों ने अपने स्थानों में भररक्खा है, अरु तिस लवण का कोई एक अंश वो लवणहै जो लघु वैश्यलोक अपनी दूकानपर विक्रयकरते हैं, अरु तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो गृहस्थ ने अपने गृहके दीर्घपात्रमें भरा है, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो गृहस्थके यहां नित्य खर्च के अर्थ लघुपात्रमें कियाहै, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो दाल शाकमें पडताहै, तिस लवणका कोई एकअंश वो लवणहै जो एकमनुष्य के भोजनमें आवताहै। इसप्रकार उस आकरके लवणका कोई एक अंश आकर के बाहर पर्वताकार लवणसे लेके एक मनुष्य

के भोजन पर्यन्त के लवणपर्यन्त व्याप्त होरहा है अरु उसही के आश्रय सर्व अपनी उपजीविका को करते हैं ॥ हे सौम्य तैसेही आनन्दघन परमानन्द का कोई एकअंश हिरण्यगर्भका आनन्दहै तिसका शतवां भाग प्रजापति (विराट्) का आनन्द है, तिस प्रजापति के आनन्दका शतवांभाग बृहस्पतिका आनन्दहै, तिसबृहस्पतिके आनन्दका शतवांभाग इन्द्रका आनन्द है, तिस इन्द्रके आनन्दका शतवांभाग वसुआदि देवताओंका आनन्दहै, तिसका शतवांभाग कर्म्मज देवोंका है, तिन कर्म्मज देवों के आनन्द का शतवांभाग आजानजदेवोंकाहै, तिस आजानज देवके आनन्दका शतवांभाग पितरोंका आनन्द है, तिस पितरोंके आनन्दका शतवांभाग देवगंधर्वोंका आनन्दहै, तिस देवगंधर्वों के आनन्द का शतवांभाग मनुष्य गंधर्वोंका आनन्दहै, तिस मनुष्यगंधर्वके आनन्दका शतवांभाग चक्रवर्ती राजाका आनन्दहै । हे सौम्य उक्त प्रकारपरमानन्दका कोईएकअंश हिरण्यगर्भकेआनन्दसे चक्रवर्ती केआनन्द पर्यन्त अंशाअंशीभावसे फैलरहाहै अरुउसही आनन्दके आश्रय हिरण्यगर्भसे पिपीलिका पर्यन्त सर्वभूतअपनी उपजीविकाको करते जीवतेहैं । हेसौम्य जिसधर्मात्मापरमपवित्र श्रोत्रिय पुरुषनेवेदशास्त्र करकेहिरण्यगर्भकेपदसे लकेतृणपर्यन्त सर्वकार्यमात्र जगत्को सम्यक्प्रकार नाशवान् अनित्य बंधन का कारण जाना है अरु तिस ज्ञानकरके सर्व की कामना अपने चित्त से अशेष त्यागकियाहै, सो पुरुष यहांही अपनेआपविषे उस परमानन्दको साक्षात् अनुभव करता है । अरु जिस धार्मिक पवित्र शास्त्रज्ञ श्रोत्रिय पुरुष ने साधारण मनुष्यों के विषय भोगकी कामनाका त्यागकिया है सो चक्रवर्ती के आनन्दको भोगता है, अरु जब चक्रवर्तीके आनन्द की कामना का त्याग करताहै, तब तिससे शतगुणा अधिक मनुष्य गंधर्व का आनन्द यहां इसही शरीरमें भोगता है, अरु जब मनुष्य गंधर्वके आनन्द भोगकी कामना को त्यागता है तब तिससे शतगुणा अधिक देवगंधर्व के

आनन्द को यहां इसही शरीरबिषे भोगता है, अरु जब तिसकी कामनाको त्यागता है तब पितरों के आनन्दको भोगताहै। इस प्रकार पूर्व पूर्व के आनन्द भोगकी कामना के त्याग से उत्तरोत्तरके आनन्द को भोगता है, अरु जब हिरण्यगर्भके भी आनन्द भोगकी कामनाको अशेष त्यागता है, तब साक्षात् परमानन्दको यहांही अपनेआपबिषे यथार्थ अनुभव करता है। ताते अभिप्राय यह है कि ज्योंहीं ज्यों कामना का त्याग अरु प्रवृत्तिसे निवृत्ति होती है, त्योंहीं त्यों आनन्दकी आधिक्यता है, ताते मुमुक्षुको कामनाका अशेषत्यागही परमानन्दकी प्राप्तिका मुख्य सर्वोत्कृष्ट साधन है॥ अरु। परमानन्दको। अद्वैतरूप होने से यहां आनन्द अरु आनन्दी का विभाग नहीं॥ सो यह बिचारका फल अब समाप्त करते हैं॥ "। सयश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये, स एकः"। (सो जो यह पुरुष बिषे है, अरु जो यह सूर्यबिषे है, सो एक है) अर्थात् " सयश्चायंपुरुषे " सो यह पुरुषबिषे, । ऐसा जो कहा सो। यहां परमव्योमगत गुहा बिषे स्थित हुआ आकाशसे आदि लेके अन्नमय पर्यन्त कार्य को सृजिके तिसही के अर्थ। वा तिसही बिषे। पीछे प्रवेशको पावता है। वा करताहै। ऐसा जो परमात्मा, यह। वा यह शब्द करके लक्षित जो यह परमात्मा। "। स यः"। सो जो, । इसप्रकार कहाहै,सो एकहै। अरु जोयह सूर्यबिषे है, अर्थात् जो श्रोत्रिय कहिये ब्रह्मनिष्ठ को प्रत्यक्ष कथन किया परमानन्द है, कि जिसके एक देशके ताईं ब्रह्मा आदिक भूत सुख के योग्य हुये उपजीविका को करते हैं, यह " यश्चासावादित्ये " सो जो यह सूर्यबिषे है, इसप्रकार कहाहै, सो एकहै। इसप्रकार जिस [बिचारसे " निरतिशयानन्द ब्रह्मास्मीति " निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्ममैंहूं,। इसप्रकार निर्द्धार किया, तिसकी निष्काम पुरुषके प्रत्यक्षके कथन से अभेदकी सिद्धि है। अरु जिसकरके परका आनन्द परको प्रत्यक्ष होवेनहीं। अर्थात् एकका आनन्ददूसरे कोभासे नहीं। इसकरके निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्मही तूहै। जी-

वका तत्त्व " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परमब्रह्मको पावताहै, इसप्रकार कहने को आरंभकिया, अरु बिचारसे सिद्ध हुआ, सो अब समास करियेहै] विचार करके सिद्ध वस्तुको भिन्न देशगत घटाकाश अरु महदाकाश की एकतावत् उपसंहार करिये है [सूर्य, ग्रहणके आधिदैवक उपाधिरूप अर्थ के कहने के अनिच्छितपने के देखावने को प्रश्नको प्रकट करते हैं । यहांयह अर्थ है कि " य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषोयश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः " जो यह इस मण्डल बिषेपुरुष है अरु जो यह दक्षिण नेत्रबिषे पुरुष है, । इत्यादिरूप अन्य श्रुतिबिषे सूर्यमंडल बिषे स्थित पुरुषकी दक्षिणनेत्र बिषे स्थित पुरुषसे एकता के कथन हुये दक्षिण नेत्रका कथन युक्तहै [ननु, तिसके निर्देशहुये " सयश्चायंपुरुषे " सो जो यह पुरुष बिषे है, । ऐसे अविशेष करके अध्यात्मरूपका कथनयुक्त नहीं, परन्तु " यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः " जोयह दक्षिण नेत्रबिषे पुरुषहै, ।ऐसा कथन युक्तहै, क्योंकि अन्यश्रुतिबिषे प्रसिद्धहै ताते, । सो] अध्यात्म अरुअधिदैवत रूप जो लिंगात्मा है सो उपासनाके कहने की इच्छाके हुयेतैसे होताहै । अरु यहां सो उपासना कहनेको इच्छित नहीं, इसप्रकार कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि जो उत्कृष्ट उपाधि बिषे प्रतिबिम्बको पाया है सोई शिर अरु हस्त आदिक । अवयव । वाले पुरुषरूप निकृष्ट उपाधि बिषे प्रतिबिम्ब को पावताहै, इसप्रकार परमानन्दकी अपेक्षासे समताहै । अरु विशिष्ट चैतन्योंकीस्वभावसे एकता कहने को इच्छित है, इसप्रकार जो जानता है सो निरतिशय आनन्द को पावता है [बनेनहीं, परमात्माके अधिकारसे । जिसकरके " अधिकृतोऽदृश्येऽनात्म्ये " " भीषास्माद्वातः पवते " " सैषा नन्दस्यमीमांसेति " इस अदृश्य अरु अनात्मा बिषे । इससे भयकरके वायु चलता है । सो यह आनन्द का विचार है, । इन श्रुतिवाक्यों करके यहां परमात्माही अधिकारको पाया है । अरु अकस्मात् प्रसंगबिषे अप्राप्त पदार्थ कहनेको युक्त

नहीं, अरु यहां परमात्माका विज्ञान कहनेको इच्छितहै, ताते "स एकः" सोएक है, । इसवाक्य करकेपरमात्माही कहाहै ॥ ननु, यहां आनन्दका विचार प्रसंगबिषे प्राप्तहुआ है, तिसकाभीफलसमाप्त करने को योग्य है, तहां कहते हैं, अभिन्न स्वाभाविक जो आनन्द है सो परमात्मा ही है, विषय विषयी भावसे । जनित आनन्द । नहीं, इस प्रकार सो विचारका फल समाप्त कियाहै । अरु "स यश्चायं पुरुषे" सो जो यहपुरुषबिषेहै, । अरु "यश्चासावादित्ये,स एकः" जो यह सूर्यबिषे है सोएकहै, । इसप्रकार भिन्नअधिकरण बिषे स्थित वस्तुके भेदके निषेधसे जो यह कथन किया है सो निश्चय करके तिसके अनुसार ही है ॥ ननु ऐसेहुये भी सूर्यरूप विशेषण (उपाधि) का ग्रहण व्यर्थ है, सो व्यर्थ बनेनहीं, क्योंकि सूर्यके ग्रहणको उत्कर्ष अरु अपकर्षके निषेधरूप अर्थवान्पनाहै ताते । अरु जब मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप द्वैतकाजो सूर्यकेअन्तर्गत उत्कर्ष है, सो जब पुरुषगत भेदके निषेधसे परमानन्द की अपेक्षा करके सम्महोवे है, तब तिस गतिको प्राप्तहुये पुरुष को कोई भी उत्कर्ष वा अपकर्ष नहीं है, एतदर्थ "अभयं प्रतिष्ठांविन्दते" अभय प्रतिष्ठा को पावता है, । यह पूर्वोक्त अर्थ घटितहोता है॥ इसप्रकार [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक उत्तरग्रंथ को प्रकट करते हैं [इस वल्लीके षष्ठ अनुवाकबिषे, ब्रह्म है वा नहीं है, इसप्रकारका कथन कियारहा जोप्रश्न सो, 'एक, कार्य, रसलाभ, प्राणन, अभय, स्थिति, अरु भय दर्शनरूप युक्तियों से, सो आकाशादिकों का कारण ब्रह्म ही है, इस प्रकार करके । उक्त प्रश्नगत संशयको । दूरकिया । अरु अन्यदोनों 'विद्वान्, अरु अविद्वान्, को ब्रह्मकी प्राप्ति अरु अप्राप्ति होती है, तिसको विषय करनेवाले प्रश्नहैं । तहां "विद्वान् सम्मश्नुतेसम्मश्नुत इति" विद्वान् मरणको प्राप्त होके इस ब्रह्मरूप लोक को प्राप्तहोता है वा नहीं प्राप्तहोता, । इसप्रकारका अन्तका प्रश्नहै तिसकासमाधान करनेको कहते हैं । अरु मध्यका जो प्रश्न है सो अन्तके

प्रश्नके दूरकरने के साथही दूरहोवेगा, एतदर्थ तिसकेदूरकरनेको प्रयत्न करते नहीं । " सब एवं वित्, अस्माँल्लोकात्प्रेत्य-एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति , एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति , एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति " । (जो ऐसे जानताहै सो इसलोकसे निरपेक्षहोके इस अन्नमय आत्माको उल्लंघन करता है, इस प्राणमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस मनोमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस विज्ञानमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस आनन्दमय आत्माको उल्लंघन करताहै ? अर्थात् जो कोई एक उक्तप्रकार का , उत्कर्ष अरु अपकर्षसे रहित अरु (सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप ब्रह्म मैंहूं , इसप्रकार जानता है सो दृष्ट अरु अदृष्ट बिषयका समुदायरूप जो यह (संसाराख्य) लोकहै तिसलोक से निरपेक्षहोके कथनकिये इनअन्नमय (कोशरूप) आत्माको उल्लंघन करके (अनात्मा जानके वा अन्नमयरूप आत्माही जानके (अर्थात् विषयके समूहको पिंडरूप अन्नमयसे भिन्न देखतानहीं , किन्तु सर्व को स्थूलभूत अन्नमयरूप आत्माही देखता है । ताते भीतर इस सर्व अन्नमयरूप आत्माबिषे (घटमें पवनवत्) स्थित अभिन्न प्राणमय (कोशरूप) आत्माको उल्लंघन करता है । पीछे इस मनोमय (कोशरूप) आत्माको उल्लंघन करता है । पुनः इस (मनोमय के अन्तर जो) विज्ञानमय (कोशरूप) आत्मा है (तिसको) उल्लंघन करता है तिसके पश्चात् जो (विज्ञानमयके अन्तर आनन्दमय कोश है तिस) इस आनन्दमयरूप आत्माको उल्लंघन करताहै । तिसके पश्चात् , अदृश्य , अनात्म्य, अनिरुक्त,अनिलय , ब्रह्म बिषे अभयस्थितिको पावताहै॥यहां यहविचारकरनेयोग्यहै, कियह इस प्रकारका जाननेवाला कौन है, वा सो कैसे उल्लंघन करता है, अरु सो उल्लंघन कर्त्ता क्या परमात्मासे भिन्न किया है, अथवा सोई है, अरु तिससे [अंशयुक्त अरु प्रयोजनसहित वस्तु विचा-

रके योग्य होती है, अरु यहां किसपक्षविषे कौन दोष है वा कौन लाभ है, यह कहते हैं] क्या है, जो ऐसा कहोगे सो परमात्मासे भिन्नहै, तब “ तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्” “अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति, न स वेद” “एक मेवाद्वितीयम्” “तत्त्वमसि” तिसको सृजके तिसही के अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ। यह अन्यहै मैं अन्य हों इसप्रकार जो जानता है, सो सम्यक् प्रकार जानता नहीं। एकही अद्वितीय है। सो तू है। इत्यादि बहुतसी श्रुतियोंसे विरोध आवता है ॥ अरु जो कहोगे कि यह सोई है, तब “ आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति ” आनन्दमयरूप आत्मा को उल्लंघन करताहै, एकही को कर्म (विषय) भाव अरु कर्त्ता (विषयी) भाव इनका असंभवहोवेगा। अर्थात् एकहीको कर्म अरु कर्त्तापना वा विषय विषयीपनेका असंभवहै। यद्यपि दोनोंप्रकारसे प्राप्तहुआ जो दोष सो निवारण करनेको अशक्यहै, तातेविचारकाकरनाव्यर्थ है, तथापि उनदोनों में से एक पक्षविषे दोषकीअप्राप्ति है, वा तीसरे अदृष्ट पक्षविषे दोषकी अप्राप्ति है, अरु सोई शास्त्रार्थ है, ताते विचारका करना व्यर्थ नहीं, किन्तु तिसशास्त्रार्थ के निर्द्धारणार्थ होनेसे यह विचार प्रयोजनवालाही है ॥ इसप्रकार जब वादीने कहा तब सिद्धान्ती कहे है, प्राप्तहुआ जो दोष सो निवारण करने को अशक्यहै। अरु दोनोंमेंसे किसी एककेपक्षके वा तीसरे अदृष्ट पक्षके निश्चयकिये हुये चिन्तन व्यर्थहोवेगा यह तेराकथन सत्य है, परन्तु सो अबतक निश्चय कियानहीं याते तिसके निश्चयरूप अर्थवाला होने से यह चिन्तन अर्थवालाही है अरु सफल है ॥ यद्यपि शास्त्रके निश्चय रूप अर्थवाला होने से यह चिन्तन अर्थ वालाही है, अरु तू चिन्तन करता है यह कथन सत्य है, परन्तु तिसको क्यों निर्णय करतानहीं, अरु निर्णय करनेको योग्यनहीं, इसप्रकारका वेदका वचननहीं है। तब बहुल प्रतिपक्षोंके होनेसे अरु वेदार्थ के परायण होने से एकताका निर्णय तू वादी कैसे करतानहीं, अरु जिसकरके बहुत नानाभावके वादी वेदते बाह्य

तेरे प्रतिपक्षी हैं, याते मेरी आशंका को निर्णय करतानहीं, इस प्रकार मैं जानताहौं [यहही विचारके आरंभ करनेवाले मुझको कल्याणहै, जो तू मुझको ,तुम एकत्व वादीहौ,इसप्रकार कहता है । अरु अप्राप्य वस्तुका वादी होनेसे एकताके वादीको भी एक वस्तु सम्मत होनेसे अरु अनेक वस्तुके वादी बहुत मेरे प्रतिपक्षी हैं । इस अर्थसे भी मेरा कल्याणहै, क्योंकि अनेकताको अन्योन्याश्रयादिक दोषकरके दूषितपना है ताते, अरु पूर्वपक्षके निषेध से सिद्धान्तके संभवसे यह अर्थ होताहै] तहां सिद्धान्ती कहे है, यहही मेरा कल्याणहै कि जो मुझ एकके सम्बन्धीको अनेक का सम्बन्धी अरु बहुत प्रतिपक्षवाला कहताहै, इसकरके मैं सर्वको जय करोंगा अरु चिन्तन (विचार) को आरंभ करों हौं, सोई [विचारके आरंभको प्रतिपादन करके अब सिद्धान्तके कहने का आरंभकरेहैं, यहां यह अर्थ है कि, इसप्रकार जाननेवाला पुरुष उपाधिकृत भेदसे भिन्नहुआभी परमात्माही होताहै] सो होता है, क्योंकि तिसके भावका कहना इच्छितहै ताते । अरु "ब्रह्म विदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावताहै, । इस श्रुतिवाक्य करके तिसके विज्ञानसे यहां परमात्मभाव कहनेको इच्छित है । अरुजिसकरकेअन्यको अन्यभावकीप्राप्तिसंभवेनहीं,इसहीससाउल्लंघनकर्त्तापरमात्माहीहै॥ननु, तिस।ब्रह्मवेत्ता।कोभी तिसपरब्रह्म।के भाव प्राप्ति अघटितहै।सोकहना बनेनहीं,क्योंकि तिस।विद्या।को अविद्याकृत अनात्माके निषेधरूप अर्थवान्पनाहै ताते । अरु ब्रह्म विद्याकरके जो स्वस्वरूपकीप्राप्ति उपदेश करते हैं, सो आत्मापने करके आरोपित अनात्मरूप अविद्याकृत अन्नमयादि विशेष आत्मा के निषेधार्थ है॥।अर्थात्, अन्नमयआत्मा। यहजोवाक्यहै तिसमें जो अन्नमयपद विशेष है सो उसको आत्मत्वके निषेध बोधार्थ है ।॥ [अविद्याकरके आरोपित अब्रह्मभावकी निवृत्तिही ब्रह्मकीप्राप्ति । ऐसा । कहनेको इच्छितहै । तहां फलवाक्यका ऐसे अर्थ करके युक्तपना कैसे जानिये है, अरु अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति होवेनहीं ।

इसप्रकार वादी [शंका] कहे है] जोऐसा कहे कि इसप्रकार के अर्थ करके युक्तपना कैसे जानते हौ, तहां श्रवण करो, [यहांऔर प्रकार से भी वादी असंभव को शंका करता है । यहां यह अर्थहै कि गमनकर्त्ता को स्वरूपसेही ग्रामरूपता का अभाव होनेसे भी जैसे मार्गके ज्ञानका उपदेश सार्थक है ,तैसे जीवको भी स्वरूप से ब्रह्मरूपता के अभाव होनेसे भी विद्याका उपदेश सार्थक है, क्योंकि अभ्यासद्वारा [विद्या] ब्रह्मकी प्राप्तिका हेतु है ताते]विद्यामात्रके उपदेश से इसप्रकारके अर्थकरके युक्तता जानिये है, अरु अविद्याकी निवृत्ति रूप विद्या का कार्य देखा है, सो आत्मा की प्राप्ति बिषे विद्यामात्र रूप साधन यहां उपदेश किया है ॥ अरु जो कहे कि मार्गके विज्ञानके उपदेशवत् तिसके आत्मभाव बिषे विद्यामात्र रूपसाधनका उपदेशहेतुहै, क्योंकि अन्य देशकी प्राप्ति बिषे मार्गके विज्ञानके उपदेशके देखने से, अरु जिसकरके ग्राम ही गमन कर्त्ता (चलने वाला)नहीं है, इसकरके सो मार्गके ज्ञान का उपदेश सफल है, तैसे जीव स्वरूप से ब्रह्म नहींहै, तथापि विद्या का उपदेश आभास द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिकाहेतु होनेसे सफल है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि दृष्टान्त अरु सिद्धान्त की विषमताहै ताते । अरु जिसकरके ,जैसे तहां ग्रामको विषय करनेवाला विज्ञान नहीं उपदेश करते हैं , किन्तु तिस ग्रामकी प्राप्ति के मार्गको विषय करनेवाला विज्ञान उपदेश करते हैं, । तैसे यहां ब्रह्मके विज्ञान करके [ब्रह्मसे] भिन्न अन्य साधनको विषय करने वाला विज्ञान नहीं उपदेश करते , एतदर्थ उपदेश की विषमतासे मार्गविज्ञानके उपदेशका दृष्टान्त विषमहै ॥ अरु जो ऐसा कहेकि, उक्त कर्म्मादिक साधनकी अपेक्षावाला ब्रह्मका विज्ञानरूप साधन परब्रह्मकी प्राप्तिबिषे उपदेश करतेहैं, सो कहना बने नहीं, क्योंकि "नित्यत्वान्मोक्षस्येति" मोक्षको नित्यताहै ताते,। इत्यादि वाक्यों करके पूर्व निषेधकियाहै ताते। अरु " तत् सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" तिसको सृजके तिसके अर्थ पुनः पीछेसे

प्रवेश करताहुआ,। यह श्रुति कार्यकी तिस (ब्रह्म) रूपताको देखावेहै। अरु अभयस्थितिके संभवसे, अरु जिसकरके जब विद्वान् स्वस्वरूपसे अन्यको देखतानहीं, इसही करके अभय स्थितिको पावताहै, इसप्रकार होय, क्योंकि भयके हेतु अन्यका अभावहै ताते। अरु[जबविद्वान्से अन्यभयकाहेतु ईश्वर नहींहै, तबाभिन्न ईश्वरके ज्ञानकी कौनगति (अर्थात् कौन व्यवस्था) है, यह आशंका करके कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि कल्पित भेद सहित रूपसेईश्वरको अविद्यासे रचिततारूप मिथ्यापनेकेहुये विद्यासे तिसविषे मिथ्यापनेका ज्ञान संभवेहै "(ईश्वरो मम प्रशास्तेति) मेरा नियामक ईश्वरहै,) यह ज्ञान जिसकरके मिथ्याहै, इसही करके तिस ईश्वरकी अरुमेरी वास्तवकरके एकरूपताही है। इसप्रकार विद्वान्की दृष्टिसे उपाधिविशिष्ट चैतन्यरूप ईश्वरका मिथ्यापनाहै]अन्य ईश्वरको अविद्याकरके रचितताके हुये विद्यासे तिसके अवस्तुहोने रूप भावके दर्शनकासंभवहै। जैसे दूसरे चन्द्रमाकाजो असत्यपना (वा सत्यपना) है सो तिमिर दोष से रहित पुरुषकरके ग्रहणकिया जाता नहीं तैसे॥ [अब वादी दृष्टान्तकी विषमताकी शंका करताहै। यहां यह अर्थ है कि 'जैसे चन्द्रमाकीएकताके दर्शनसेदूसरा चन्द्रमाजानते नहीं, ऐसा यहां नहीं है किंतु यहां ब्रह्मवेत्ताकरके भिन्नईश्वर जानियेहै;क्योंकि भोजनादिककी प्रवृत्तिके असंभव करके जीवन्मुक्तको भी नियामित प्रपंचकी प्रवृत्तिका अंगीकारहै ताते, अरु प्रपंचके नियमको ईश्वरके आधीन होनेसे अंगीकारहै] अरु जो कहै इसप्रकार नहीं ग्रहण करते हैं, [यद्यपि जाग्रत्विषे विद्वान्को भिन्न आभासका दर्शन होवेहै, तथापि वो भयका कारण नहींहै। अरु मायावी पुरुष स्व रचित व्याघ्रसर्पादिकोंके आभास दर्शन से भय को पावतानहीं। अरु अविद्वान्को भी भिन्न वस्तुका दर्शन सदा है नहीं, इसप्रकार कहते हैं] सो बनेनहीं क्योंकि सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले पुरुषको तिस ईश्वरका अग्रहणहै ताते [सुषुप्तिविषे

भिन्नवस्तुके अग्रहणके सद्भावका साधक नहीं है, इसप्रकार पूर्व वादी कहताहै। यहां यह अर्थ है कि जैसे बाणका बनावनेवाला बाण बिषे आसक्त मनवाला होताहै, सो तिस आसक्ति से तिस बाणसे भिन्न विद्यमान वस्तुकोभी देखतानहीं, तैसे सुषुप्तिबिषेभी सुखमें आसक्त होनेकरके विद्यमानहुये भी द्वितीय वस्तुको देखता नहीं परन्तु तिसके अभावसे नहीं] अरु जो कहै कि सुषुप्तिवाले पुरुषबिषे जो अन्यका अग्रहण है सो अन्य कार्यबिषे आसक्तहुये पुरुषवत्है,॥ [अन्य वस्तुबिषे आसक्त पुरुषको तिससे। कि जिस में आसक्त है। भिन्न वस्तुके अदर्शन हुये भी तिसका अदर्शनही है। अरु सुषुप्तिबिषेभी "न किञ्चिदज्ञासिषमिति" मैं कुछभी न जानताहुआ, इस प्रतीतिसे सुखकोभी आत्माके तादात्म्यसे अरु अज्ञानकी भिन्नताके अकथनसे, वास्तविक द्वितीय वस्तुके अभाव सेही द्वितीय वस्तुका अग्रहण है। ऐसा कहते हैं] सो बनेनहीं क्योंकि सुषुप्तिबिषे सर्वका अग्रहण है ताते [जब सुषुप्तिबिषे अ-प्रतीतिसे द्वैतका असद्भाव है, तब जाग्रत् अरु स्वप्नमें प्रतीतिके होनेसे द्वैतका सद्भाव क्यों न होवेगा। इसप्रकार वादी कहताहै] अरु जो कहे कि जाग्रत् अरु स्वप्न बिषे अन्यके ग्रहणसे तिसका सद्भावही है। [अनात्मादिकों बिषे आत्मभावादिकों की बुद्धि अविद्याहै, तिसके होते ही द्वैतकी प्रतीति से प्रतीतिमात्र द्वैत के सद्भावकी साधक नहीं है, अन्यथा शुक्तिगत रूप्यादिकोंके भी स-द्भावके प्रसंगसे] सो कहना बनेनहीं क्योंकि तिसको अविद्या करके रचितपनाहै ताते, जाग्रत् अरु स्वप्नबिषे जो अन्यका ग्रहण होताहै सो अविद्याकृतही है क्योंकि अविद्याके अभावहुये तिनका अभावहै ताते॥ [यहां पूर्ववादी कहे है। इसका यह अर्थ है कि सुषुप्तिबिषे द्वैतका अग्रहणभी लयरूप अविद्याकाकियाहै परंतुभेद के अभावका कियानहीं। एतदर्थ सुषुप्तिबिषे सर्वात्मा ब्रह्मभूतहुआ जीव अपनेसे भिन्न वस्तुको तिसके अभावसेही देखता नहीं, इसप्रकार जो तुमने कहा सो असत्यहै] अरु जो कहेकि सुषुप्ति

त्रिपे जोअग्रहणहै सो भी अविद्याका कियाहै, [विद्यमान हुये भी द्वैतका अविद्याके वशसे अग्रहण होताहै, इस तेरे वचनका क्या अर्थहै सो कहो । अग्रहण क्या ग्रहणका प्रागभावहोताहै, अथवा अप्रकाशका आरोपहै, किंवा अग्रहण के आकारसे अविकारको प्राप्तहुये स्वरूपकी स्थितिहै, तिनमें जो प्रथमपक्ष कहै तो सोबने नहीं, क्योंकि प्रागभावका अनादिपना अंगीकारहै ताते, अरु जो कदापि द्वितीयपक्षकहे तो सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्य। सांख्य। वादी करके द्वितीय। सुषुप्तिगत चैतन्य। वस्तुके स्वप्रकाशतारूप स्वभावके अंगीकारसे अरु अप्रकाशके आरोपके अनंगीकारसे, अरु प्रकाशके आरोपहुये सर्वकी स्वप्रकाश ब्रह्मरूपताके अंगीकार करनेकी योग्यतासे हमारे इष्टकी सिद्धिकी प्रसंगसे । अरु जो तृतीयपक्षकहे तो सो भी बने नहीं, इसप्रकार अब कहतेहैं । यहां यह अर्थहै कि अविकारको प्राप्तहुये स्वरूपकी जो स्थितिहै सो अविद्याका कार्य नहीं है क्योंकि उत्पत्ति अरु विनाशकरके रहितहैताते] सो बने नहीं क्योंकि तिसको स्वाभाविकपनाहै ताते ।[इस उक्त अर्थकोही स्पष्ट करतेहैं, यहां स्वतन्त्रता की सिद्धिके अभिप्रायसे सन्मात्र वस्तु इष्ट कहतेहैं, परन्तु वैशेषिकके अभिप्रायसे ऐसे जानना । अरु यहां जो अविक्रियाकहीहै सो विक्रियाके अभाव करके लक्षणासे जाननेयोग्य स्वरूपहै, क्योंकि तिसको निरपेक्ष सिद्धिवालापनाहै ताते, अरु ग्रहण आदिक विक्रियाजोहै सो स्वाभाविक नहींहै, क्योंकि तिसको स्फटिकके रक्त वर्णवत् परकी अपेक्षावाली होनेसे । अरु अब तो निरपेक्ष सिद्ध होनेसे अविक्रियपनाकहा, तिसको स्पष्ट करतेहैं] अरु जिसकरके इष्ट कहिये 'सत्‌वस्तु' का स्वरूप अविक्रियाहै क्योंकि अन्यकी अपेक्षासे रहितहै ताते । अरु जो विक्रियाहै सो तिसका स्वरूप नहीं क्योंकि विक्रिया अन्यकी अपेक्षावालाहै ताते । अरु जिसकरके कारककी अपेक्षावालीवस्तु परमार्थ से सत्‌वस्तुका स्वरूप नहीं, अरु जो विशेषहै सो कारककी अपेक्षा

वालाहै, अरु बिशेषही विक्रियाहै, अरु जाग्रत् स्वप्नकाजो ग्रहणहै सो विशेषहै। अरु जो जिसका अन्यकी अपेक्षासे रहित स्वरूप है सो तिसका यथार्थ स्वरूपहै, अरु जो अन्यकी अपेक्षावालाहै सो यथार्थ स्वरूपनहीं क्योंकि अन्यके अभावहुयेतिसका अभावहै ताते। एतदर्थ स्वाभाविक होनेसे सुषुप्तिबिषे अग्रहण है सो जाग्रत् अरु स्वप्नवत् विशेष नहीं। [इसप्रकार सिद्धान्ती अपने मतबिषे चैतन्यकी सत्तासे भिन्नभयके हेतु ईश्वरके अभावसे विद्वान्को अभयता संभवे है, इसप्रकार प्रतिपादनकरके, अब द्वैतवादिनके पक्ष बिषे तिस अभयके असंभवको कहेहै। यहां यह भावहै कि अन्यवस्तुकेस्वरूपके स्थितहुये वा नष्टहुये सत्वस्तुका ध्वंश होवे नहीं क्योंकि व्याघातते, अरु तिसकी अनवस्था से] अरु पुनः जिनके मतमें ईश्वर आत्मासे अन्य (भिन्न) है अरुकार्य अन्य है तिनको भयकी निवृत्ति होवे नहीं, क्योंकि भयजो है सो अन्य वस्तुके निमित्त वाला है ताते, अरु अन्य वस्तु के स्वरूपसे स्थितहुये वा नष्टहुये सत्वस्तुके स्वरूपका नाश होवेनहीं क्योंकि व्याघात अरु अनवस्था दोषहोताहै ताते। [तब भयकी उत्पत्तिके हुये असत्ही अभयकी प्राप्ति होवेगी, यह आशंका करके कहतेहैं] अरु असत् वस्तु से आत्माका लाभ होतानहीं॥ जो [भिन्न ईश्वरको सद्भावमात्रसे भयकी हेतुतानहीं है, किन्तु धर्मादिक की अपेक्षावालेको भयकी हेतुताहै, एतदर्थ तिन धर्मादिकके अभाव से अभय होवेगा, यह आशंकाकरके, सिद्धान्ती यह सांख्यवादी करके कहनेको योग्यनहीं, क्योंकि सत्रूप अधर्मादिकके भी अत्यन्त असद्भावके अंगीकारसे। अरु नैयायिक आदिकों के मत बिषे भी सत् हेतुबिषे कार्यके अत्यन्त अभावके निश्चय न होने से तिन्होंकरके भी यह कहनेको योग्यनहीं, ऐसा कहते हैं] कहे अपेक्षा सहित अन्य वस्तुको भय का हेतुपनाहै, सो बनेनहीं, क्योंकि तिसको भी तुल्यता है ताते। अरु जो अधर्मादिकों का अनुयायी रूप नित्य वा अनित्य निमित्तको अपेक्षा करके अन्य

वस्तु भयका कारण होती है, तिसप्रकारके तिसको भी स्वरूपकी हानिके अभावसे भयकी अनिवृत्ति होती है वा आत्माकी हानि होवे है। अरु सत् [किंवा असत् रूप अधर्मादिक जब असत्-भाव को प्राप्तहोवे हैं, तब आत्माविषे भी कौन विश्वास है, ताते स्वभाव की विपरीततारूप जो असत् वस्तुको असद्भाव की प्राप्ति है, सो किसी के भी मत बिषे घटेनहीं] अरु असत् को परस्परकी प्राप्तिके हुये सर्वत्र अनास्थाही होवेगी। अरु एकताके पक्षविषे सत्‌रूपनिमित्तवाले संसार को अविद्याकरके कल्पित होने से दोष नहीं है, एतदर्थ तिमिरदोषवाले पुरुष करके देखेहुये द्वितीयचन्द्रको स्वरूपका लाभ वा नाश नहीं है॥ [अविद्यासे कल्पित जो भय सो विद्या से निवृत्त होवे है, इसप्रकार कहनेवाले तुम्ह सिद्धान्ती के मतबिषे विद्या अरु अविद्या को आत्माका धर्मपना बांछित है। ताते धर्मकी उत्पत्ति अरु विनाशके हुये आत्मा को विकारीपना अरु अनित्यपना प्राप्त होवेगा, इसप्रकार आशंका करते हैं] जो कहै, विद्या अरु अविद्या को तिस आत्माका धर्मपना है, सो बने नहीं, क्योंकि (विद्या अविद्या (प्रत्यक्ष है ताते, अरु अन्तःकरण बिषे स्थित जो विवेक अरु अविवेक, सो रूपादिकोंवत् प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। अरु प्रत्यक्ष विद्यमान रूपको द्रष्टाका धर्मपना नहीं है, अरु जो अविद्या है सो अपने अनुभव से मैं मूढ़हूं मुझको ज्ञान अविचारित है, इसप्रकार निरूपण करते हैं, तैसेही विद्यारूप विवेक अनुभव करते हैं, अरु आत्मा की विद्या को जानके अन्योंके अर्थ उपदेश करते हैं, अरु तैसे अन्य अधिकारी निश्चय करे हैं, ताते नामरूप पक्षवाले की ही विद्या अरु अविद्या अरु नामरूप हैं, अरु नामरूपविषे निर्वाह करीहुई यहविद्या अरु अविद्या आत्मा के धर्म नहीं, क्योंकि " यदन्तरात्तद्ब्रह्मेति " जो मध्यमें है सो ब्रह्म है, इस अन्य श्रुति से। अरु [चेतनमात्र के आधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है, सो अन्तःकरण रूपसे प-

रिणामको पावती है। अरुसो अन्तःकरण तामस अरु सात्त्विक अवस्थाके भेदसे भ्रान्ति ज्ञान अरु सम्यक् ज्ञानके आकार से परिणाम को पावता है। तिस अन्तःकारणबिषे प्रतिबिम्ब को पाया चैतन्य अपनी उपाधिके धर्म्म से ही भ्रांत दिवस अरु रात्रिवत् कल्पितहै, परमार्थसे विद्यमाननहीं॥ जो पूर्व कहा था कि अभेदके हुये ,, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति ,, इस आनन्दमय आत्माको उल्लंघन करके जाताहै,इसप्रकार एकही परमात्मा को कर्मभाव अरु कर्त्ताभावका असंभवहै, सोबनेनहीं, क्योंकि उल्लंघन करने को विज्ञानमात्ररूपता है ताते। अरु जलौका (जोंकनामक जलजन्तु विशेष) आदिकोंवत्उल्लंघन करना यहां उपदेशकरते नहीं, किन्तु विज्ञानमात्ररूप यहां उल्लंघन करनेकी श्रुतिका अर्थहै॥ ननु ,, उपसंक्रामतीति,, उल्लंघन करिके जाताहै, । इसप्रकार मुख्यही उल्लंघन करना श्रवण करते हैं,इसप्रकार जो कहे तो सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्नमयबिषे तिस उल्लंघन करनेका अदर्शन है ताते । अरु अन्नमय को उल्लंघन करनेवाले का जलौकावत् इस बाह्यसे उल्लंघन करके जाना व अन्य पक्षीके प्रवेशके प्रकारवत् जानादेखते नहीं ॥ [उक्त न्यायसे ब्रह्मवेत्ता ताते । ब्रह्मसे । अभिन्नहै , इस प्रकार कहा । तहां अन्यवादी के कथनको प्रकट करके निषेध करते हैं । यहां यह अर्थ है कि आनन्दमय कोशरूप परमात्मा नहीं, अरु तहां तिसका प्रवेशरूप उल्लंघन नहीं है,किन्तु अविषय ब्रह्मरूपताके ज्ञानसेभ्रांतिसे आत्मापनेकरके ग्रहणकियेआनन्दमय का बाधही यहां उल्लंघन कहनेको इच्छित है] अरु जो कहे बाह्य निकसे मनोमयका वा विज्ञानमयका फेरलौटके आत्मासे उल्लंघन करना होवेहै, [यद्यपि अन्नमय कोशबिषे मुख्य संक्रमण । अर्थात् अन्यको लंघिके स्वरूपबिषे गमन । संभवे नहीं, तथापि बाह्यके विषयोंबिषे प्रवृत्तजो मन औ बुद्धि तिनबिषे बाह्यके विषयोंसे लौटके स्वरूपबिषे स्थितरूप संक्र-

मण (गमन) देखाहै । तैसे दुःखीजो पुरुषहै, तिसका आनन्दमयके स्वरूपविषे स्थितिरूप संक्रमण होवेगा, इसप्रकार वादी कहता है] सो बनेनहीं क्योंकि स्वस्वरूप विषे विक्रिया का विरोध है ताते, अन्य जो है सो अन्नमय को उल्लंघन करके जाता है, इसप्रकार आरंभ करके मनोमय वा विज्ञानमय आत्मा को ही उल्लंघन करिके जाता है, यह विरोध होवेगा । तैसे आनन्दमय का आत्मासे उल्लंघन नहीं संभवे है [तिसकी स्वरूपविषे स्थिति अस्थिर है ताते, अरु आरंभकिये अर्थका विरोध है ताते, सो मुख्य संक्रमण नहीं है , इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है] ताते देशान्तरकी प्राप्तिका उल्लंघन करना नहीं है, अरु अन्नमयादिकों मेंसे एकका कियाभी उल्लंघन करना नहीं है परिशेषसेअन्नमयसे आदिलेके आनन्दमय पर्यन्त जो आरोपित आत्माहैं, तिनसेभिन्न जो परमात्मा है, तिसका किया, अरु ज्ञानमात्र उल्लंघन करके जानासंभवे है । अरु? संक्रमणको ज्ञानमात्र रूपता के होने से क्या सिद्ध होता है, इस आशंकापर कहतेहैं । यहां यहभावहै कि मुख्यार्थ के असंभवहोनेसे गौण अर्थका ग्रहण श्रेष्ठहीहै, याते अधिष्ठानके स्वभावके तिरस्कार करके युक्त अध्यस्त वस्तु का बाधकरना ही संक्रम सिद्ध होवेहै] तिसकी ज्ञानमात्रता के हुये आनन्दमय पर्यन्त पंचकोशों में स्थित अरु सर्वान्तर अरु आकाश से आदिलेके अन्नमय पर्यन्त कार्य को सृजके तिसके अर्थ पीछे प्रवेशहुये आत्मा को हृदयरूप गुहाके सम्बन्धसे अन्नमयादिक अनात्माविषे आत्माका जो विभ्रमहै सो आत्माके विवेक ज्ञानकी उत्पत्तिसे विनाशको पावता है । तिस, इस अविद्या रचित, विभ्रमके नाशहुये उल्लंघन करके गमनकरना, यहकथन उपचारसे कियाहै, अन्यथा सर्वगत आत्मा का उल्लंघन करके गमन संभवे नहीं, अरु अन्य वस्तुके अभावसे सो मुख्य गमन करनाही खोजने को योग्य है । अरु आत्मा का ही गमनकरना नहीं है , अरु जलौका नामक जो जलजंतु विशेष है सो आप-

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति। तछंह वाव न तपति। किमहछंसाधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति॥ स य एवं विद्वानेते आत्मानछंस्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मानछंस्पृणुते। य एवं वेद इत्युपनिषत् ३२॥

कोही उल्लंघन करके जाता नहीं। तातें [संक्रमणके कथनमात्रपनेको व्याख्यान करके प्रकरणके महान् तात्पर्य की समाप्तिके मिसकरके कहते हैं "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य, ज्ञान, अनन्त, ब्रह्म है, । इस उक्त प्रकार के लक्षणवाले आत्मा के ज्ञानार्थही 'बहुरूप होना, सृष्टि, प्रवेश, रस, भय, अभय, अरु उल्लंघनादिकजो हैं, सो व्यवहार आदिकों विषय कल्पित ब्रह्मबिषे संभवे है, परन्तुपरमार्थ से निर्विकल्प ब्रह्मबिषे कोई भी विकल्प संभवे नहीं [उपनिषदोंबिषे जहां जहां प्रकरण की आदि अरु अन्तबिषे उक्त निर्विकल्प ब्रह्मकाकथन होनेसे उपक्रम अरुउपसंहारकी एकरूपता है। यातें मध्यमें कहेजे बहुरूप होने आदिक अर्थ तिनबिषे प्रकरणका तात्पर्य नहीं है, किंतु आदि अन्त में कथनकियेनिर्विकल्प वस्तुबिषे ही तात्पर्यहै। यह अर्थ है॥] तिसइसनिर्विकल्प आत्माको, ऐसे क्रमसे उल्लंघन करके। अर्थात् जानके। किसीसे भी भयको पावता नहीं, अरु अभय स्थितिको पावता है "। तदप्येष श्लोको भवति "। "तिसबिषे भी यह श्लोकहोता है"; अर्थात् तिस इस अर्थबिषे भी सर्व ही इस आनन्दवल्लीके अर्थरूप प्रकरणके संक्षेपसे प्रकाशनार्थयह अग्रिम मन्त्र।प्रमाण। होता है ३२॥ इत्यष्टमोनुवाकः

हे सौम्य, "। यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"। "जिससे वाणियां अप्राप्तहोके मनकर के सहित निवर्त्त होवे हैं," अर्थात् जिसनिर्विकल्प उक्तलक्षणवाले अद्वैत आनन्दरूप आ-

इमाते द्रव्यादिक सविकल्प वस्तु को विषय करनेवाले, अरु वस्तु की समानतासे निर्विकल्प अद्वैत ब्रह्मविषे भी वक्तापुरुषकरके प्रकाशनार्थ योजना कियेहुये वचनरूपा वाणियां अप्राप्त होके (अर्थात् प्रकाशकिये बिनाही) निवर्त्त होतीहै (अर्थात् अपने सामर्थ्य से हीन (रहित) होती है । अरु यहां मननात्मज्ञानका है, सो ज्ञान जहां इन्द्रिय अगोचरादिक अर्थविषे वचन प्रवर्त्त होते हैं, तहां तिनके पीछेही प्रकाश करने के अर्थ प्रवर्त्त होवे है, अरु जहां ज्ञानहै तहां वाणीकी प्रवृत्ति होती है । ताते वचन अरु वृत्तिरूपावाणी अरु मनकी सर्वत्र साथही प्रवृत्ति होती है । ताते ब्रह्मके प्रकाशनार्थ सर्व प्रकारसे योजना करनेवाले वक्तापुरुषकरके योजना करीहुई भी वाणियां जिस ज्ञान अरुशब्दके अविषय अरु अदृश्यादिक विशेषणवाले आत्मासे, सर्वको प्रकाशकरनेविषे समर्थ मन नामक विज्ञान करके सहितही निवर्त होवे हैं । तिस श्रोत्रिय निष्पाप अरु निष्काम अरु लोकादि सर्व एषणासे रहित पुरुषके आत्मभूत अरु विषय विषयीके सम्बन्धसे रहित, अरु स्वाभाविक नित्य विभाग वर्जित सर्वोत्कृष्ट "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न बिभेति कुतश्चनेति" (ब्रह्मके आनन्दको उक्तप्रकारसे जाननेवाला किसी सेभी भयको पावता नहीं) अर्थात्, श्रोत्रिय, अपाप, कामनासे रहित, विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके आत्मस्वरूपब्रह्म के आनन्दको उक्तप्रकारके जाननेवाला विद्वान किसी सेभीभयको पावता नहीं, क्योंकि भयके निमित्त (भेददृष्टि) का (उसविषे) अभावहै ताते । अरु जिसकरके विद्वान्को, कि जिस से भयको पावताहै, ऐसा ब्रह्मसे पृथक् अन्य वस्तु कोई भी है नहीं, इसही करके उसको भयका निमित्त नहीं । अरु भयके निमित्तके अभाव से भय भी नहीं (। अरु अविद्याकरके "यदोदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवतीति" जब अल्प भी अन्तरको करताहै, तब तिसको भय होताहै, (इसप्रकार पूर्व कहाहै, अरु विद्वान्को अविद्या के कार्य अरु तिमिर दृष्टिवाले पुरुषकरके देखेहुये द्वितीय चंद्रवत्

भयके निमित्त अन्यवस्तुके नाशहुये वो किसी से भी भयको पावतानहीं, यह कथन घटित है। अरु मनोमयबिषे उदाहरणकिया जो मंत्र सो मनके ब्रह्मज्ञान का साधन होनेसे, तिस मन बिषे ब्रह्मभावको आरोप करके तिसकी स्तुतिके अर्थ है " न बिभेति कदाचनेति " किसी कालबिषे भी भयको पावतानहीं, । इसप्रकार भयमात्रका निषेध किया । यहां अद्वैतबिषे " नबिभेति-कुतश्चनेति " किसीसे भी भयको पावता नहीं, । इसप्रकार भयके निमित्तकाही निषेध करते हैं, एतदर्थ पुनरुक्ति दोषनहीं ॥ ननु शुभकर्म्मोंका न करना अरु पापक्रिया । करने । रूप भयका निमित्त है । तब कैसे कहतेहो कि विद्वान्को भयके निमित्तका अभावहै । इसप्रकार नहीं है । तब किसप्रकार है, तहां कहते हैं " । तꣳह वाव न तपति, किमहꣳ साधु नाकरवम्, किमहं पापमकरवमिति " । (इसको किस कारणसे मैं शुभकर्मोंको न करता हुआ, किसकारणसे मैं पाप कर्म्मोंको करताहुआ, ऐसे निश्चय करके तपावते नहीं ? अर्थात् इस कथनकिये ऐसे जाननेवालेको किस कारणसे मैं शुभकर्मोंको न करता हुआ, इसप्रकार पश्चात् मरणके समीप कालबिषे जो संताप होताहै, तैसे किसकारणसे मैं पापकर्मको करता हुआ, इसप्रकार नरकपातादि दुःखके भयसे तापहोताहै, सो शुभकर्मका न करना अरु पापक्रिया यह दोनों जैसे अविद्वान्को तपावते हैं, ऐसे निश्चयकरके तपावते (उद्वेग करते) नहीं ॥ प्र०, विद्वान्को वे कैसे तपावतेनहीं । तहां कहते हैं, " । स य एवं विद्वानेते आत्मानꣳ स्पृणुते, उभेह्येवैष एते आत्मनꣳ स्पृणुते, य एवं वेद इत्युपनिषत् " । (जो ऐसे जाननेवालाहै सो इन दोनोंको आत्मा देखताहै, जाते इन दोनोंको यह आत्मारूपसे देखताही है, जो ऐसे जानताहै सो अद्वैत ब्रह्मको जानता है, ऐसी यह उपनिषद है ? अर्थात् जो उक्त प्रकार जानने वाला है, सो तापके हेतु इनदोनों शुभ अशुभ कर्म्मोंको अपना आत्मा जानके आच्छादन कहिये तिरस्कार करता है वा परमात्मभाव

से देखता है । जाते इसप्रकार इन दोनों पुराय पापोंको यह विद्वान् [शुभाशुभ जो कर्म हैं, सो अधिष्ठान से भिन्न किये नहीं हैं, अरु नहीं भासते हैं, याते सत् अरु प्रकाशमात्र आत्म तत्त्वही तिन दोनों का स्वरूप है, अरु तिससे भिन्न अर्थ अरु अनर्थ के हेतुपने रूप जो तिनका विशेष रूप है सो वस्तु नहीं है, क्योंकि तिनको सत् अरु प्रकाशसे अन्यहोने करके असत्पनाहै ताते, अरु अप्रकाशवान् होनेसे, इस अभिप्राय से कहते हैं] अपने विशेष स्वरूप से शून्य करके आत्मस्वरूप से [आत्माही अविद्यासेशुभाशुभ कर्म रूपसे प्राप्त होताहुआ, इसप्रकार कहा । अरु अबतो यह शुभाशुभ कर्मअर्थ अरु अनर्थके हेतु होतेहुये "ते आत्मैवेति" सो आत्माही है,। इस ज्ञानसे स्वस्वरूप को शुभाशुभ कर्मरूप करने करके विद्वान् तिनको देखताही है। अरु लौकिक दृष्टिसे सम्पादन किये पुरायपाप रूप देखिके विद्वान्को पुराय पापवान् देखते हैं; परन्तु सो उनसे भयको पावता नहीं, ऐसा कहते हैं] देखताही है, एतदर्थ इसको पुरायपाप तपावते नहीं । ऐसा कौन है जो ऐसे जानताहै सो उक्तप्रकारके अद्वैत आनन्दरूप ब्रह्मको जानता है । अरु तिसके आत्मभाव के देखे हुये पुराय पाप निष्फलताप वाले हुये जन्म के आरंभक होते नहीं । ऐसी यह उपनिषद् जैसे है तैसे कथनकिया, अर्थात् इस वल्ली विषे ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद् (सर्व विद्याओंसे परमरहस्य , गोप्य ,) जो है सो प्रकट देखाई । इसविषे परमश्रेय स्थितहै ३३ ॥

" ब्रह्म यह इत्यादिलेके, जो इसप्रकारजानताहै सो ब्रह्मवेत्ता है, ऐसी उपनिषद् है ,, यहां पर्यन्त इस चौंतीसवें ३४ मन्त्र का अर्थ है ३४॥ अरु इसकाविशेषार्थ श्रीभाष्यकारशंकराचार्यजी ने भी किया नहीं अतएव यहां भी विशेषव्याख्यान नहीं ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

इतिश्री तैत्तिरीयोपनिषद्गत ब्रह्मानन्दवल्लीनामकद्वितीयाध्यायभाषाभाष्यसम्पूर्णम् हरिः ॐ तत्सत्

ब्रह्मेदमयमिदमेकाविंशतिरन्नादन्नरसमयादन्नात्प्राणो व्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छंषड्विंशतिः प्राणं यजुर्ऋक् सामादेशोऽथर्वाङ्गिरसःपुच्छं। द्वाविंशतिर्यत् श्रद्धत्तं सत्यं योगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोदआनन्दो ब्रह्म पुच्छं। द्वाविंशतिरसन्नेवाथाष्टाविंशतिरसत्षोडश।भीषाऽस्मान्मानुषो। मनुष्यगंधर्वाणां। देवगंधर्वाणां ।पितॄणां। चिरलोकलोकानामाजानजानां। कर्मदेवानां। ये कर्म्मणा। देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः। स यश्च संक्रामत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्च। नैतमेकादश। नव॥ सहनाववतु माविद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ब्रह्मविद्यएवंवेदेत्युपनिषत् ३४ ॥

इति द्वितीयोऽध्याय ब्रह्मानन्दवल्ली॥हरिःॐ तत्सत्

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक तृतीयाध्याय भाषाभाष्य प्रारभ्यते

हे सौम्य, अब भृगुवल्ली के विचारको श्रवणकरो कि जिसप्रकार वरुणनाम ऋषिका भृगुनामपुत्र अपने पिता के उपदेश से अन्नमयादि पंचकोशों के विचारसे पंचकोशातीत परमानंदरूपब्रह्मको अपना आप आत्मरूपसे साक्षात् यथार्थ अनुभव करके शान्त सुखी निर्भयहुआहै॥

जो [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक तृतीयावल्लीके सम्बन्ध को कहते हैं] सत्य, ज्ञान,अनन्तरूपब्रह्म आकाशादिकोंसे लेके अन्नमय पर्यन्त कार्य को सृजके तिसही बिषे पुनः प्रवेशको पायाहै, सो जिसकरके विशेषवत् प्रतीति होवेहै, तिसकरके सर्व कार्यसे विलक्षण अदृश्यादिक धर्मवाला आनन्दरूपही है। तिसही को

अथभृगुवल्लीप्रारभ्यते ॥

हरिः ॐ । सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । माविद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति । तꣳ होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ३५ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

"तदेवाहमिति" सोई मैं हूं, । इसप्रकार जानना, क्योंकि तिसके प्रवेशको तिस ज्ञानरूप अर्थवान्पना है ताते । अरु तिस ऐसे जाननेवाले ब्रह्मवेत्ताके शुभ अरु अशुभकर्म जन्मान्तरके आरंभक होतेनहीं, इसप्रकारका अर्थ उक्त आनन्दवल्ली विषे कहनेको इच्छितहै । तिसविषे ब्रह्मविद्या समाप्त किया । तिसके पीछे भृगुवल्ली विषे ब्रह्मविद्या का साधनरूप तप (वाक्यार्थ के ज्ञान का साधन पदों के अर्थका विचार) कहनेको योग्यहै । अरु अन्नमयादिकोंको विषय करनेवाले उपासन कहे हैं । एतदर्थ प्रथमवत् शान्तिपाठपूर्वक यह । भृगुवल्ली । आरंभ करते हैं ॥ "सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै, ॐ शान्तिः ३ " (सो हमको रक्षाकरो, सो हमको भोगावो, सो सामर्थ्य को करो, हमारा अध्ययन किया तेजस्वी होहु, हम शिष्य अरु आचार्य परस्पर द्वेष न करें, ॐ सत्यही कहताहों । । शान्तिहोउ ३) । इस शान्ति पाठका अर्थ पूर्व सविस्तर कहाहै । ॥ यहां विद्याकी प्रशंसाके अर्थ अपने प्रिय

पुत्रको पिताने कथनकरी यह आख्यायिकाहै "भृगुर्वै वारुणिः, वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति, तस्मा एतत्प्रोवाच, अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति" "भृगु प्रसिद्ध वरुण-ऋषिका पुत्र सो वरुण नाम अपने पिताके समीप जाय कहता हुआ कि । हे भगवन् ब्रह्मको कहो, तिसके अर्थ यह करता हुआ अन्न, प्राण, चक्षु श्रोत्र, मन, अरु वाणी, कहता हुआ" अर्थात् भृगु इसनामवाला प्रसिद्ध वरुणनाम ऋषिका पुत्रथा सो ब्रह्म के जाननेकी दृढ जिज्ञासाधारके वरुणनाम अपनेपिताके समीप जाय यह वचनकहताहुआ कि हे भगवन् आप मेरेप्रति ब्रह्मको बर्णनकरो, इसप्रकार जब भृगुने अपनेपितासे ब्रह्मकी जिज्ञासा अरु विनयपूर्वक कहा, तब सो वरुणनाम पिता विधिवत् अपने समीप प्राप्तहुये तिस भृगुनाम पुत्रकेताईं यहवचन कहताहुआ कि हेपुत्र। तिसको अन्नकहिये शरीर अरु तिसकेभीतर प्राणअरु इन अन्तरके ज्ञानके साधन, चक्षु, श्रोत्र, मन, अरु वाणी, इन ब्रह्मके [यहां यह भावहै कि, जिनकरके शरीरादिकोंकी चेष्टाके अन्यथा । अर्थात् चैतन्यबिना । असंभवकरके तिनका साक्षीरूप चैतन्यको विवेचनकरतेहैं, एतदर्थ यह शरीरादिक ब्रह्मके लक्ष-कहोनेसे तिसके ज्ञानबिषे । अर्थात् विवेकार्थ । द्वारवत् द्वारहै । तिनको । अपनेपुत्र, भृगुकेअर्थ । वरुणपिता । कहताहुआ । केव-ल अर्थकाज्ञान । अर्थात् त्वं पदकाअर्थ । वाक्यार्थके ज्ञानका सा-धननहीं, किन्तु तत्पदार्थका ज्ञानभीहै, इस अभिप्रायसे तत्पदके अर्थरूप ब्रह्मके लक्षणको कहताहुआ] ज्ञानबिषे द्वारोंको कहता हुआ । अरु इन द्वारभूत अन्नादिको कहके पुनः तिस । अपने पुत्र जिज्ञासुको । ब्रह्मकालक्षण कहताहुआ । प्र० । क्या तिस ब्रह्मका लक्षणहै । उ० । तहां कहते हैं, "यतोवाइमानिभूतानिजायन्ते । येनजातानिजीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञास स्व । तद्ब्रह्मेति ॥ सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा" "जिससे प्र-सिद्ध यहभूत उपजे हैं, अरु जिसकरके उपजेहुये जीवते हैं, अरु

जिस ब्रह्मकेअर्थ जाते हैं, अरु तादात्म्यकोही पावतेहैं, तिसको सो ब्रह्महै, ऐसे विशेषकरके जाननेको इच्छाकर, सो तपकोहीतपताहुआ, सो तपकोतपके ? अर्थात् जिससे प्रसिद्ध यह ब्रह्मादिकसोंलेके स्तंबपर्यन्त भूतउपजते हैं, अरु जिसकरके उपजेहुये जीवते हैं। अर्थात् प्राणके धारणरूप जीवनको करते हैं। अरु विनाशकालविषे जिस ब्रह्मकेताईं जाते हैं अरु तादात्म्यकोही पावतेहैं, अर्थात् उत्पत्ति स्थिति अरु लय, इन तीनोंकालोंविषे भूतों का देह जिसके स्वरूपभावको त्यागतानहीं, सो ब्रह्मका लक्षण है ॥ तिसको तू सो ब्रह्म है, इसप्रकार विशेषकरके जाननेकी इच्छाकर, अर्थात् जो उक्तलक्षणवाला ब्रह्म है तिसको तू अन्नादिक द्वारा प्राप्तहो। तहां "प्राणस्य प्राणः उतचक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो मनो ये विदुस्ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यमिति" प्राणका प्राणहै, चक्षुका चक्षु है, श्रोत्रका श्रोत्रहै, अन्नका अन्नहै, मनका मनहै, जोतिसको जानताहै सो पुराण (प्राचीन) अरु अग्रविषे स्थित ब्रह्मको पावता है। यह अन्य श्रुतिभी ब्रह्मके जाननेविषे द्वारोंको देखावे है। सो भृगुइन ब्रह्मज्ञानके द्वारों को अरु ब्रह्मके लक्षणको पितासे श्रवण करके ब्रह्मज्ञानका साधनहोने करके तपकोही [यहां यह अर्थ है कि, पदार्थों के लक्षणकेही कथनसे अखंडनरूप वाक्यार्थके अप्रतिपादनसे अरु पदार्थ के भेद ज्ञानसे पुरुषार्थ का असंभवहै ताते अरु "उदरमन्तरं कुरुते अथ भयं भवति" जो अल्पभी अन्तर (भेद) को करताहै तिसको भय होताहै। इत्यादि श्रुति वाक्यों से भेद ज्ञान निन्दितहै ताते। एतदर्थ वाक्यार्थ के ज्ञान पर्यन्त तात्पर्य से लक्ष्यपदार्थों के विवरणको बारंबार आचरता हुआ] तपता हुआ ॥ ननु, भृगुको। तप करनेका। उपदेश नहीं किये ही। भृगुको। तपके साधन भावका निश्चय किस करके होताहुआ, तहां कहते हैं, उ०, अवशेष सहित ब्रह्म के कथनसे भृगुको नहीं उपदेशकिये तपके साधन भावका निश्चयहुआ

। अर्थात् भृगुको वरुणने, जिसकरके भूत उपजते हैं, अरु उपजे हुये जिसकरके जीवते हैं, अरु अन्तबिषे जिसमें लयहोतेहैं तिसको तू ब्रह्मजान, इसप्रकार ब्रह्मको तटस्थ लक्षण से उपदेशकिया, तब भृगुको स्वरूप लक्षणसे ब्रह्मको जानना अवशेषरहा तिसके जानने के अर्थ भृगु ऐकान्त विचाररूप तपरूप साधनका निश्चय करता हुआ, अरु पिताने कहा कि जिस करके भूत उत्पन्न होतेहैं, जिसकरके जीवते हैं अरु जिसबिषे प्रवेश को पावतेहैं, सो ब्रह्म है, तब इन तटस्थ लक्षणोंके श्रवणसे भृगुको यह अवश्य विचारणीय हुआ, कि किससे यहसर्व भूत उपजते हैं, अरु उपजेहुये किस करके जीवते हैं, अरु अन्तबिषे किसमें प्रवेश पावते हैं, ऐसा विचार ब्रह्मके निश्चय जाननेके अर्थ विचारमयतप रूप साधनका निश्चय कर आगे उक्त लक्षणोंसे प्रथम अन्नमयादिकों का विचाररूप तपकर पश्चात् ,सत्यज्ञान अनन्तादि स्वरूप लक्षण से सर्वके आधार परमानन्दरूप ब्रह्मको अपने आत्मभावसे पावताहुआ। ॥ अरु जिसकरके ब्रह्मके निश्चयबिषे अन्नादिरूप द्वारको, अरु " यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते " जिससे प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, । ऐसे लक्षणको कहताहुआ सो अवशेषरहे साधन सहितही है, क्योंकि साक्षात् ब्रह्मके उपदेशसे। अन्यथा जिज्ञासु पुत्रके अर्थ, यह ब्रह्म ऐसे रूपवाला है, इसरीतिसे ब्रह्म उपदेश करने को योग्य है, अरु तब अवशेष सहित क्या कहतेहुये, अरु याते जानाजाता है कि पिता ब्रह्म ज्ञानार्थ निश्चय करके अन्य साधन की भी अपेक्षा करेहै। अरु उन दोनोंका विशेष निश्चय तो तपकोसर्वका अत्यन्त साधक होने से होता है। कि सब साधनों में मुख्य विचार मय तपही है। अरु जिसकरके सर्व नियमित साध्योंको विषय करनेवाले साधनोंका उक्त तपही अत्यन्त साधक अरु साधनहै, इसप्रकार लोकबिषे प्रसिद्ध है। ताते भृगु पिताने नहीं उपदेश किये भी तपको ब्रह्मज्ञानका साधनहोनेसे जानताहुआ। अरु सो

तप बाह्य अरु अन्तर के करणोंका एकाग्रपना है । क्योंकि सं ब्रह्मज्ञान तिस । इन्द्रिय अरु चित्तकी । ऐकाग्रतारूप द्वारवाल है ताते । अरु "मनसश्चेन्द्रियाणाञ्चैकाग्र्यं परमं तपः, तज्ज्यायः । सर्व धर्मेभ्यः सधर्मः पर उच्यतेति" मन अरु इन्द्रियोंका जो एकाग्रपनाहै सो परमतपहै, सो जाते सर्व धर्म्मोंसे बड़ा है याते तिसको परमधर्म कहते हैं । इस स्मृति के प्रमाणसे । अरु सो [सो तपको तपिके, अर्थ यह पिताने कहा जो लक्षण सो कहां परिपूर्णहुआहै, इसप्रकार एकाग्रचित्तसे विचारके "। अन्नंब्रह्मेति"। अन्न ब्रह्महै, । ऐसा जानताहुआ । यहां यह अर्थ है कि सर्वकरके भोगियेहै, ऐसा जो सर्वकी प्राप्तिका साधारण स्थूलदेहका कारण विराट्नामवाला स्थूल पंचभूतोंका समूह, यहां अन्न शब्दकरके कहतेहैं । तिसको स्थूल भौतिक पदार्थोंका कारणहोनेसे । जिससे यह भूतउपजतेहैं, इस ब्रह्मके लक्षणको तहां योजना करनेको शक्यहोनेसे सो । अन्न, ब्रह्महै इसप्रकार जानताहुआ] तपको तपके । अन्न ब्रह्म है इसप्रकार जानताहुआ, इसप्रकार प्रथमके अनुवाकसे सम्बन्धहै ॥ अर्थात् प्रथम अनुवाकके अन्तमें कहा है कि "। तपस्तप्त्वा "। तपको तपिके, अरु इस अनुवाकके आदि में कहाहै कि "। अन्नंब्रह्मेतिव्यजानात् "। अन्नको ब्रह्म जानताहुआ, ताते पूर्वानुवाकके अन्त अरु इसके आदिके सम्बन्धसे यह अर्थ हुआके, तपको तपके अन्नको ब्रह्म जानताहुआ ॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, "। अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् "। (अन्न ब्रह्महै, ऐसे जानता हुआ) जिसकरके सो अन्न ब्रह्मके उक्त लक्षणोंकरके युक्तहै, याते तिसकोब्रह्महै, ऐसे जानताहुआ । प्र० ॥ कैसे सो । अन्न । ब्रह्मके लक्षणोंकरके युक्तहै, तहांकहते हैं "। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, अन्नेनजातानि जीवन्ति, अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति "। (जिसकरके अन्नसेही प्रसिद्ध यह सर्वभूत उपजतेहैं, अन्नसे उपजे हुये जीवते हैं, अन्नके ताईं सम्मुख जातेहैं प्रवेश को पावते हैं -

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा २।३६ ॥इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

अर्थात् अन्नसे उपजेहुयेभूत अन्नसेही जीवतेहैं अरु परिणाम अन्नमेंही लयहोतेहैं, ताते अन्नका ब्रह्मपना युक्तहै। सो ऐसे तपको तपके लक्षण अरु युक्तिसे "। तद्विज्ञाय वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति"। (तिसको जानिके पुनः वरुण पिता के पास जाताहुआ, अरु कहा, हे भगवन् ब्रह्मको कहिये? अर्थात् अन्नरूप ब्रह्मकोजानके पुनः संशयको प्राप्तहुआ भृगु अपने वरुण नामक पिताके समीप जाय कहताहुआ कि हे भगवन् ब्रह्म को कथन करिये। प्र०। यहां संशयका कारण कौनहै, उ०। अन्न की उत्पत्ति को देखने से उसको संशयहुआ। कि पिताकरकेकहे ब्रह्म के लक्षण अन्नबिषे पायेजातेहैं परन्तु ब्रह्मअजहै औ अन्न उत्पत्ति वाला है ताते यह अन्न ब्रह्म कैसे होगा। "तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्मेति, सतपोऽतप्यत,सतपस्तप्त्वा"। (तिस भृगुको पिता, कहताहुआ तपब्रह्म है, ऐसे तपकरके तू बिशेष ब्रह्म के जानने की इच्छाकर, पश्चात् सो भृगु पुनः तप को तपताहुआ,सो तप को तपिके ? ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य प्राणोब्रह्मेति, व्यजानात्, प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि जीवन्ति, प्राणं प्रयन्त्यभि संविशन्तीति"। (प्राणब्रह्म है, ऐसा जानताहुआ। प्राण से ही प्रसिद्ध यह सर्व भूतमात्र उपजते हैं,प्राणसे ही उपजेहुये जीवते हैं, अरु प्राणके अर्थ सम्मुख जातेहैं अरु प्रवेश को पावते हैं? अर्थात् प्राणसे ही सर्वभूत उपजते हैं अरु उपजेहुये तिसहीसे

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेववरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा ॥ ३ ॥ ३७ ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

जीवते हैं, अरु अन्तविषे तिन प्राणही में प्रवेश को पावते हैं "तद्विज्ञायपुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवोब्रह्मेति।" (तिसको जानके पुनः ही वरुण पिताके समीप जाताहुआ, हे भगवन् ब्रह्मको कहो ? अर्थात् उक्तप्रकार तिस प्राणरूप ब्रह्म को विचारके पुनः वो भृगु अपने वरुणनाम पिताके समीपजाय कहताहुआ हे भगवन् ब्रह्मको कहिये , इसप्रकार ब्रह्म विषयक प्रश्न करताहुआ, तब "। तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व,तपोब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा " (सो पिता कहताहुआ तपसे विशेष करके ब्रह्मको जाननेकी इच्छाकर,तप ब्रह्म है सो तपको तपताहुआ,तपको तपिके ॥ अर्थात् प्राणको ब्रह्मके लक्षणों करके विचारने से भृगुको यह संशयहुआ कि यह प्राणउत्पत्तिमान् अरु आवागमन वाला अरु जड है अरु ब्रह्म अज अचल चैतन्यहै,ऐसा विचार पितासमीप जा कहा हेभगवन् ब्रह्मकहो तब पिताने कहा तप सर्व साधनोंमें बडा है ताते तूतप करके ब्रह्मको विशेषकरके जानने की जिज्ञासाकर, तब वो भृगु पुनः तपको तपताहुआ, तपको तपिके । । आगे चतुर्थ अनुवाक से पूर्ववत् सम्बन्धहै ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, " मनोब्रह्मेति व्यजानात् , मनसोह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, मनसा जातानि जीवन्ति, मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति" (मन ब्रह्महै,ऐसे जानताहुआ, मनसेही प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं,मनकरके उपजेहुये जीवते हैं,मनके अर्थ सम्मुख

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। मनसा जातानि जीवन्ति। मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ४। ३८॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

जाते हैं अरु प्रवेशको पावते हैं; अर्थात् यहमनही ब्रह्महैऐसेजानता हुआ,मनसेही सर्वभूतउपजे हैं अरु सो उपजेहुयेमनकरकेही जीवतेहैं अरु अन्तविषे मनके सन्मुखहुये मनविषे प्रवेश करतेहैं "तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति, तꣳहोवाच, तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा" तिसको जानके पुनः भी वरुण पिताकेपास जाताहुआ, हे भगवन् ब्रह्मकहो, पिताने कहा तप बडाहै, तपकरके ब्रह्म के विशेष जानने की इच्छाकरो, सो तप को तपताहुआ, तपको तपि के; अर्थात् तिस मनरूप ब्रह्मको जानके। पूर्ववत् तिसविषे संशयको पायके। पुनः वो भृगु अपने वरुणपिता के समीप जायके। अपना संशयकह। कहताहुआ कि। हे भगवन् ब्रह्मको कहिये, इसप्रकार जब भृगुने ब्रह्म पूछा तब वरुण कहताहुआ, तप। सर्वसाधनों में। बडाहै, ताते तूं तपको तपिके ब्रह्मको विशेष जानने की इच्छाकर, तब वो भृगु पुनः तपको तपताहुआ, तपको तपिके॥ इसका सम्बन्ध आगेहै॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, "विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्,विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति" विज्ञान ब्रह्म है ऐसा जानताहुआ, विज्ञानसेही यह सर्व प्रसिद्धभूत उपजे हैं। विज्ञानसेही उपजे जीवते हैं, विज्ञानके सन्मुखजाते हैं, प्रवेशकरते हैं; अर्थात्

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ५ । ३९ ॥ इति पंचमोऽनुवाकः ॥

विज्ञानही ब्रह्महै इसप्रकार जानताहुआ, क्योंकि विज्ञानसेही प्रसिद्ध यह सर्व भूतउत्पन्नहोते हैं, अरु उत्पन्नहुये सर्व विज्ञानसेही जीवते हैं,अरु अन्त विज्ञान के सम्मुखजाते प्रवेश करते हैं "तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवोब्रह्मेति तꣳहोवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपोब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत,स तपस्तप्त्वा " (तिसको जानके पुनः ही वरुण पिताके पासजाताहुआ, हे भगवन् ब्रह्मको कहो, पिता कहताहुआ, तपको तपिके ब्रह्मकी विशेष जिज्ञासा करो, सो तपको तपताहुआ सो तपको तपिके) अर्थात् सो भृगु विज्ञानको ब्रह्म जानके,अरु पूर्वप्रकार तिसमें संशयवान्होके पुनः अपने वरुणनामक पिताके समीपजाय कहताहुआ कि हे भगवन् ब्रह्म कहो, इसप्रकार जब भृगुने प्रश्नकिया तब सो वरुणपिता कहताहुआ कि हेपुत्र ऐसेही तपकरके ब्रह्मको विशेष करके जाननेकी इच्छाकरो, क्योंकि सर्व साधनों में तप ब्रह्म (बड़ा) है, तब पुनः वो भृगु एकान्तमें जाय तपको तपताहुआ, तपको तपिके ॥ इसका अग्रिम अनुवाकसे सम्बन्धहै ॥इति पंचमोऽनुवाकः ॥

हेसौम्य, "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्,आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,आनन्देन जातानिजीवन्ति,आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" (आनन्द ब्रह्म है ऐसे जानताहुआ, आनन्दसे प्रसिद्ध यहभूत उपजतेहैं,अरु आनन्दसे उपजेहुयेजीवते हैं,अरु आनन्दके

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या। परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद। प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति। प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसेन। महान् कीर्त्त्या ६। ४०॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

अर्थ सम्मुख हुयेजाते हैं अरु प्रवेशकोपावते हैं; अर्थात् यह आनन्द ही ब्रह्म है क्योंकि। ब्रह्मासे पिपीलिका पर्यन्त सर्व। भूत उपजते हैं, अरु उपजेहुये सर्व आनन्दसेही जीवतेहैं, अरु अन्तमें आनन्दके सम्मुख जाते तिसहीबिषे प्रवेशको पावते हैं,। इसप्रकार जानता हुआ॥ यहां जो वारंवार तप का उपदेश है, सो तपकी अतिशयसाधनताके निश्चयार्थ है। यावत् पर्यन्त ब्रह्मका निरतिशय लक्षण नहीं होताहै, अरु यावत् जिज्ञासा निवर्त्त नहीं होती है, तावत् तुझको तपही साधनहै, तिस तप करके ही ब्रह्मके जानने की इच्छाकर। यह पिताके। वारंवार तप करनेकी आज्ञा का, अभिप्रायहै॥ [यहां यह अर्थ है कि श्रुति स्मृतिबिषे विराट् की उत्पत्तिके देखने से तहां ब्रह्मके। अजत्वादि सर्व। लक्षण घटते नहीं, यह जानके।अन्न ब्रह्मके जाननेके पश्चात्। पुनः।वोभृगु। तपको तपताहुआ॥। अर्थात् यहां तप शब्दका अर्थ विचार है अरु यही अतिशय साधनहै अरु सो भी चक्षुरादि इन्द्रियां बाह्य करण अरु मन आदिक अन्तःकरण इनकी सम्यक् प्रकार एकाग्रता पूर्वक जो विचार है सो तप शब्द करके ग्राह्य है।॥ तिस विराट् रूप अन्नके कारण क्रिया शक्तिका आश्रय होनेकरके प्राण शब्दके लक्ष्य अरु संकल्प अरु निश्चयकी सामर्थ्य से युक्त होने करके मन अरु विज्ञान शब्दके लक्ष्य हिरण्यगर्भ को, ब्रह्म है, इसप्रकार जानताहुआ। तदनन्तर तिस हिरण्यगर्भको भी। "हि-

रण्यगर्भोजायमानः " इत्यादि वेद प्रमाणसे । कार्यरूप होने क-रके तहां भी ब्रह्मका । समस्त । लक्षण होतानहीं, यह विचारके तिस हिरण्यगर्भ के कारणको स्वतन्त्रपना होनेसे निश्चय करके प्रार्थना किया होनेसे आनन्द शब्दके वाच्य मायाविशिष्ट चैतन्य रूप अन्तर्यामी को , ब्रह्म है , ऐसा जानके उपाधि विशिष्ट को अन्य अविशिष्टकी स्वरूपताके संभवसे कारण भावकरके उपल-क्षित शुद्ध आनन्द को ,ब्रह्म है, इसप्रकार जानता हुआ] इस प्रकार भृगुऋषि जो है, सो तपकरके शुद्ध चित्तवाला हुआ प्रा-णादिकों विषे सम्पूर्णपने करके ब्रह्म के लक्षणको देखताहुआ । अरु कुछ काल उपरान्त तिस विषे प्रवेश करके, अत्यन्त आन्तर आनन्दरूप ब्रह्म को तपकरके अर्थात् तपरूप साधन करके ही जानताहुआ । ताते ब्रह्म के जिज्ञासु पुरुषकरके बाह्य अरु भीतर के करणोंकी । अर्थात् इन्द्रिय अरु मन आदिकों की । एकाग्रता रूप परम तपरूप ।सर्वोत्तम। साधन अनुष्ठान करनेको योग्यहै, यह इस समस्त प्रकरणका अर्थ ।अभिप्राय। है ॥ अब पिता पुत्र की आख्यायिकाको त्यागिके श्रुति अपने वचनोंकरके आख्या-यिकासे कथन किये अर्थको कहे है " सैषा भार्गवी वारुणी विद्या, परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता, सय एवं वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवान-न्नादो भवति, महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या " (सो यह , भार्गवी वारुणी विद्या , परम व्योम विषे, स्थितहुईहै, जो ऐसे जानताहै, सो स्थितहोताहै, अन्नवान् होता है, अन्नाद होताहै प्रजाकरके पशु करके ब्रह्मवर्चसकरके महान् होताहै, कीर्तिकरके महान् होताहै ? अर्थात् सो यह भृगुऋषिने ज्ञातकरी ताते भार्गवी, अरु वरुणऋषिने कथनकरी ताते वारुणी विद्या,सो अन्नमय रूप आत्मासे प्रवृत्तहुई परमव्योम हृदया-काशगत । बुद्धिरूपा । गुहा विषे परमानन्दरूप अद्वैतविषे स्थित कहिये समाप्त हुईहै । जो अन्य जिज्ञासु भी उक्तप्रकार तपरूप साधन करके ही इसही क्रमसे तिन अन्नमयादिक आत्माविषे प्र-

वेश होयके आनन्दरूप ब्रह्मको जानताहै,सो इसप्रकार विद्याकी स्थितिसे आनन्दरूप परब्रह्म विषे स्थित होताहै, अर्थात् ब्रह्मही होताहै ॥ इसप्रकार तिसको अदृष्ट फलकी प्राप्ति कहके, अब दृष्ट फल कहते हैं ॥ [यहां मूल श्रुतिविषे अन्नकी बाहुल्यतारूप विशेषण सुनानहीं, तब तिसको कैसे रखतेहौ, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, यहां मूल श्रुति विषे सामान्यमात्र अन्नके कहेहुये श्वान सूकरादिकोंको भी शरीरकी स्थित्यर्थ प्राप्त हुये अन्नकरके " अन्नवान् भवति " अन्नवाला होताहै, । इस विद्वान्के विशेषणसे विद्याका फल नहींकहा ऐसा होवेगा, एतदर्थ तिसके बलसे यहां अन्नकी बाहुल्यतारूप विशेषण धराहै] बहुत से अन्नवाला होताहै, । जिसकरके सामान्य रीतिसे तो सर्वजीव अन्नवान है, इसकरके सो विद्यासे । विद्वान्का । विशेषण न होवेगा । एतदर्थ विद्वान को ही बहुत से अन्नवाला कहा। अरु ऐसे अन्नको जो भोगता है, ऐसा जो प्रदीप्त जठराग्नि वाला अन्नका भोक्ता तिसको अन्नाद कहते हैं, सो होवेहै । अर्थात् इस भार्गवी वारुणी विद्याका सम्यक् जाननेवाला बहुत अन्न (भोग्य सामग्री) अरु भोगनेकी बिशेष शक्तिकरकेयुक्त होताहै। अरु पुत्रादि रूप प्रजा अरु गो अश्वादि पशुकरके , अरु शम दम ज्ञानादि निमित्तवाले ब्रह्मतेजरूप ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्वसे अधिक । होवेहै ।अरु शुभाचरण करनेसे प्रख्यातिरूप कीर्त्तिकरके महान् होताहै, अर्थात् तिनको साक्षात् अनुभव करताहै ६ । ४०॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ६

हे सौम्य, [देवगति से प्राप्तहुये निकृष्ट अन्न की भी निन्दा करनी नहीं, क्योंकि " अद्योच्छिष्टमुतावरमित्युक्तत्वात् " आज का पाकक्रिया । सद्य । वा कल्हका पाकक्रिया । बासी । अन्न भक्षण करना, । इसप्रकार शास्त्रान्तर बिषे कहाहै ताते । अर्थात् जो कदापि प्रारब्धवशात् सद्य पाकहुआ अन्न न प्राप्तहोय तो प्राप्तहुये बासी अन्नको भक्षण करना परन्तु अन्नकी निन्दा न

अन्नं न निन्द्यात् । तद् व्रतम् । प्राणो वाऽन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणेशरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरेप्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ७ । ४१ इतिसप्तमोऽनुवाकः ॥

करनी, अरु यावत् सद्यसिद्धकिया अन्नप्राप्तहोवे तावत् बासी अन्न न खावे क्योंकि गीतास्मृतिमें एक प्रहरमात्रके भी बासी अन्न को तामस अन्न वा भोजन कहाहै । यहां ब्रह्मवेत्ता को जो उक्त नियमकाकथन है सो, सो साधक के अनुष्ठानार्थ । अरु निन्दाके त्यागविषे । है] किंवा जिससे द्वारभूत अन्नकरके ब्रह्मका विज्ञान होता है ताते गुरुवत् "। अन्नं न निन्द्यात् , तद्व्रतम् "। (अन्न को निंदाका विषय करना नहीं, सो व्रतहै ; । अर्थात् जैसे गुरु ब्रह्म की प्राप्तिका द्वार है तैसे अन्न भी विचारद्वारा ब्रह्मप्राप्तिका द्वार है, ताते किंसीप्रकारके भी अन्नकी निंदा करनी नहीं । इसप्रकार का ब्रह्मवेत्ताओं का व्रत कहिये नियम उपदेश । प्रतिज्ञा । है । यहां व्रतका जो उपदेश है सो अन्नकी स्तुत्यर्थ है वा । अन्न की महिमा प्रकाशनार्थ है अरु अन्नको ब्रह्मज्ञानका उपायरूप होने से स्तुति की योग्यताहै ॥[ऐसे वाक्यार्थके ज्ञानविषे लक्ष्यपदार्थ के अनुसंधान रूप मुख्य साधनको अरु तिसके फलको समाप्त करके , अब विचारविषे असमर्थ मन्द अधिकारी को अन्न अरु अन्नाद । भोग्य अरु भोक्ता। रूपसे प्राणादिकोंकी उपासना रूप गौण साधन को विधान करते हैं । यहां यह कथन किया होताहै कि उपासना भी फलकी इच्छा से अनुष्ठान कीहुई मन्द अधिकारीको बुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानकेअर्थ उपकारकरेहै, अरुमुख्य।उत्तम। अधिकारीको तो प्रपञ्चके अपवादार्थ उपकार करेगी] "। प्राणो वाऽन्नम्, शरीरमन्नादम्, प्राणे शरीरंप्रतिष्ठितम्, शरीरेप्राणःप्रति-

ष्ठितः" "यो प्राण अन्नहै,शरीर अन्नादहै,प्राणविषे शरीरस्थितहै, शरीरविषे प्राणस्थितहै" अर्थात् या प्राण अन्नहै, क्योंकि प्राणका शरीर विषे अन्तरभाव है ताते,अर्थात् जो जिसके अन्तरहोताहै सो तिसका अन्न होताहै। अरु शरीरविषे प्राणस्थितहोताहै ताते प्राण अन्नहैं अरु शरीर अन्नाद (अन्नका भोक्ता)है। तैसे शरीरभी अन्नहै, अरु प्राणअन्नादहै क्योंकि शरीरकी स्थितिप्राणरूपनिमित्त वालीहै ताते,अरुजिसकरके प्राणविषे शरीरस्थितहै,अरुशरीरविषे प्राणस्थितहै, इसकरके यह दोनों शरीर अरु प्राण परस्पर अन्न अरु अन्नादरूपहैं,अरु जिसहेतुकरके परस्परविषे स्थितहैं तिसही करके अन्नहैं, अरु जिसकरके परस्परकी स्थितिरूपहै तिसहीकरके अन्नाद (भोक्ता) है। एतदर्थ प्राण अरु शरीर ये दोनों अन्न अरु अन्नादरूपहैं "। तदेतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितम्, स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति, महान् भवति, प्रजयापशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, महान्कीर्त्या" "सो यह अन्न अन्नविषे स्थितहै,जो यहअन्नविषे स्थितअन्नकोजानताहै सो अन्नअरुअन्नाद रूपसेही स्थितहोताहै, किंवा अन्नवान् अरु अन्नाद होताहै, अरु प्रजाकरके अरु पशुकरके, ब्रह्मवर्चस करके महान् होता है अरु कीर्त्तिकरके महान्होता है" अर्थात् सो यह अन्न अन्नविषे स्थित है, अरु जो इसअन्नविषे स्थित अन्नको सम्यक्प्रकार जानता है सो अन्न अरु अन्नाद (अर्थात् भोग्य अरु भोक्ता) रूपसेही स्थित होताहै, अथवा अन्नवान् (अर्थात् अन्नादि सर्वभोग्य सामग्री सम्पन्न, अरु अन्नाद (अर्थात् भोगने के सामर्थ्य सम्पन्न सर्वभोगों का भोक्ता होताहै। अरु पुत्र पौत्रादि प्रजाकरके, अरु गो गज अश्वादि पशुओंकरके, शम दम समाधि आदि साधननिमित्तिक ब्रह्मतेजकरके सर्वसे अधिक होताहै। अरु पुत्र पशु ब्रह्मवर्चस धर्म्मदानादि निमित्तिक ख्यातिरूप कीर्त्ति करके लोक विषे प्रख्यात होताहै॥ ७। ४१॥ इति सप्तमोऽनुवाकः॥

—⊛—

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वाऽन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ८।४२ ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, "अन्नं न परिचक्षीत, तद्व्रतम्, आपोवाऽन्नम्, ज्योतिरन्नादः, अप्सु ज्योतिःप्रतिष्ठितम्, ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः, तदेतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितम्" । "अन्नको परित्याग करेनहीं सो व्रतहै, वा जल अन्न है, ज्योतिः अन्नाद है, जलबिषे ज्योतिः स्थित है, ज्योतिःबिषे जलस्थितहै, सो यह अन्नबिषे स्थित अन्नहै" अर्थात् अन्नको परित्याग करेनहीं । अर्थात् जो कदापि अन्न निकृष्टभी होय तथापि उसका निरादर वा निन्दारूप त्यागकरेनहीं । यह अन्नरूप ब्रह्मकेज्ञाता विद्वानोंका उद्देश (शिक्षा) रूप व्रतकहते हैं । यहां उक्त व्रतका जो उपदेशहै सो अन्नकी स्तुतिके अर्थ है । अरु अन्न ऐसे शुभाशुभकी कल्पनासे अपरित्याग किया स्तुतिका विषयकिया अरु महान् कियाहुआ होताहै । वा जल अन्नहै, अरु ज्योतिः कहिये तेज अन्नाद है । अर्थात् जल, भोग्यहै अरु तेज भोक्ताहै, यह लोकबिषे प्रख्यात है । जलबिषे ज्योतिः स्थित है, ज्योतिःबिषे जलस्थित है । सो यह अन्नबिषेस्थित अन्नहै ।" सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादोभवति, महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या" "जो इस अन्नविषे स्थित अन्नको जानता है, सो अन्न अरु अन्नादके रूपसे स्थितहोताहै, अथवा अन्न (भोग्य) वान् अरु अन्नाद (भोक्ता) होता है । अरु (पुत्रादि) प्रजाकरके, अरु (गवादि) पशुकरके अरु ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्वविषे प्रख्यातहोवे है, अरु दा-

अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वाऽन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद। प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति। प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥९।४३॥ इतिनवमोऽनुवाकः॥

नादि सद्धर्माचरणके निमित्तसे लोकबिषे सर्वसे अधिक कीर्ति (यश) वाला होवेहै॥ ८। ४२॥ इति अष्टमोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, "(अन्नं बहु कुर्वीत, तद्व्रतम्, पृथिवी वाऽन्नम्, आकाशोऽन्नादः, पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः, आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता, तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्)" (अन्नको बहुत करना, सो व्रतहै, वा पृथिवी अन्नहै, आकाश अन्नादहै, पृथिवीबिषे आकाश स्थितहै, आकाश बिषे पृथिवी स्थितहै, सो यह अन्न अन्नबिषे स्थितहै।) अर्थात् अन्नको बहुत करना, सो व्रतकहिये उपदेश करतेहैं। अर्थात् जल अरु तेजके अन्न अरु अन्नाद गुणवान्पनेकरके उपासकका अन्नकाबहुतकरनाव्रतहै। वा पृथिवीअन्नहै अरुआकाश अन्नादहै। पृथिवीबिषे आकाश स्थितहै। आकाशबिषे पृथिवीस्थित है। सो यह अन्न अन्नबिषे स्थितहै "(सयएतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितंवेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादो भवति, महान् भवति, प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या)" (जो इस अन्नबिषे स्थित अन्नको जानता है, सो अन्न अरु अन्नादरूपसे (भोग्य भोक्ताके रूपसे) स्थितहोता है, वा अन्नवान् (भोग्य सामग्री करके सम्पन्न) अरु अन्नाद (भोगनेकी शक्ति सम्पन्न) होताहै। अरु प्रजाकरके, पशु करके, ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्वसे अधिक) होवेहै, अरु शुभगुणोंके निमित्तसे यशकरके लोकबिषे महान् (अति प्रख्यात) होवे है) ९। ४३॥ इति नवमोऽनुवाकः॥

—⊛—

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नꣳराद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्नꣳराध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते ॥ ४४ ॥

हे सौम्य, "न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत, तद्व्रतम्, तस्माद्ययाकया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्, अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते" (निवासार्थ,किसीको भी निवारण करना नहीं, सो व्रत है, ताते येनकेन प्रकारसे बहुत अन्नको प्राप्तहोना, इसके अर्थ अन्न सिद्ध है ऐसा कहते हैं ; अर्थात् जैसे पृथिवी विषे आकाशके उपासक का निवास करने विषे किसी को भी निवारण करना नहीं, सो व्रत । प्रतिज्ञा । है । अर्थात् आकाश द्वारा ब्रह्मका उपासक निवासार्थ अपने स्थानपर आये अभ्यागतको निवास करने में निवारण (निषेध) करते नहीं क्योंकि अपने स्थानपर आये अभ्यागतको निवास देना ऐसा उनका प्रतिज्ञारूप व्रतहै ताते, अरु अब इस सांप्रतकाल में बहुधा ऐसा देखने में आयाहै कि जो किसी धनवान् गृहस्थके स्थानपर रात्रिको वा सायंकाल को मार्गचलनेसे श्रमितहुआ कोई साधुअभ्यागत आयके अपने एकरात्रिमात्र निवासार्थ स्थानकी याचनाकरताहै,अरु उस गृहस्थके यहां आरामादि स्थानभी हैं तथापि उस आये अभ्यागत को अपने स्थानके विषयमें राजकीयपुरुषों का वा चोरादिकों का भय देखाय अपने स्थानपर निवासकरने का उस अभ्यागतको निषेधकरते हैं, अरु जो कदापि उस अभ्यागतके प्रारब्ध भोगसे उस समय दैवप्रेरित वर्षावातादिक भी दुःखदायी होय,तथापि निर्दयी अविवेकी अधर्मी महाकृपण वो गृहस्थ उस निवासार्थी को अपने स्थानपर निवास मात्रभी देतेनहीं तब अन्नदेने का

तो प्रसंगही क्याहै। ॥ अरु अभ्यागतादिकों को। निवास के दि-
येहुये भोजनका देनाभी अवश्य योग्यहीहै, ताते येनकेनप्रकार से
। अर्थात् जैसे बनै तैसे अन्नको प्राप्त। संग्रह। करना। अरु अ-
न्नवाले विद्वान्। अर्थात् जिसके पास अन्नादिक धनभी है, अरु
अभ्यागत अतिथीको अन्ननिवासादि देनेके पुण्यको अरु न देनेके
पापको सम्यक् प्रकारजानताहै। अन्नके अर्थी अभ्यागत के अर्थ
। अर्थात् जिससे किसीभी प्रकार का सम्बन्ध वा परचय न होय
अरु वो अपने स्थानपर निवासार्थी वा अन्नार्थी वा उभयार्थी होके
आयाहोय तिसको अभ्यागत कहते हैं। इसकेलिये अन्नसिद्धहै
ऐसाउदार बचन कहते हैं,अन्न नहीं है ऐसा। कृपण अरु अज्ञात
पनेका।वचन बोलते नहीं (अन्न का निवारणकरते नहीं) तिससे
बहुत अन्नका संग्रह करना, इसप्रकार पूर्वले पदसे सम्बन्धहै।
अब अन्नदानका माहात्म्यकहते हैं "। एतद्वैमुखतोऽन्नꣳराद्धम्,मु-
खतोऽस्मा अन्नं राध्यते, एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम्, मध्यतोऽस्मा
अन्नꣳराध्यते" । इसप्रसिद्ध सिद्धान्नको मुखसे देताहै,इसकेअर्थ
अन्न सिद्धहोताहै, अरु , इस प्रसिद्ध सिद्ध अन्न को मध्यसे देता
है ,इसके अर्थ मध्यसे अन्न सिद्ध होताहै ; अर्थात् जिसकाल में
अरु जिसभावसे अन्न दानकरताहै, तिसही काल में अरु तिसही
भाव से वोभी अन्न पावता है। प्र०। कैसे पावताहै। उ०। इस
। लोकबिषे। प्रसिद्ध। तंदुल (चावल)दाल, मधुकरी(रोटी)
आदिका। सिद्धहुये ।पाककिये। अन्नको मुखसे॥ ।अर्थात् मुख कहि-
ये मुख्य,शरीरकी किशोरादि सविवेक प्रथमावस्थाकरके वा मुख्य
जे श्रद्धा तिस श्रद्धावृत्तिकरके,अर्थात् बृहदारण्यकी श्रुति प्रमाण
से मनुष्यों के परम कल्याणार्थ एक दानदेनारूप धर्महीं मुख्य
है, अरु "। आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्तेपुत्रपशुꣳश्च
सर्वान्, एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्म-
णोगृहे" इत्यादि प्रमाणसे जिस अल्पज्ञ अविद्वान् पुरुषके गृह
आया अभ्यागत अतिथि विश्राम अन्नादिकों से सत्कार पावता

नहीं तिसके धर्म कर्म पुत्र पशु आदिक सर्व नष्ट होता है, ताते अभ्यागतको श्रद्धा सत्कारपूर्वक सिद्धान्न देनायोग्यहै ऐसा विचारके,पूजनादि सत्कारपूर्वक जे अन्नार्थी अभ्यागतकोअन्नदेताहै, इसप्रकार जो अभ्यागतादि कों को सत्कारपूर्वक अन्नादिकों का देना है सो मुख्य वृत्तिसे देना है। अरु जो कहाकि प्रथमावस्था बिषे देना सो, मुख्य देनाहै, तिस का आशय यह है कि शरीर की प्रथमवय बालकिशोरादि अवस्था बिषे जो अतिथि अभ्यागतों की सेवारूप धर्मबिषे अरु दानादि सद्धर्मबिषे श्रद्धा पूर्वक रुचिका होना है सो पूर्वले उत्तमोत्तम संस्कारोंसे है, अरु उस प्रथमवयबिषे जो सद्धर्म में श्रद्धाका होनाहै सो पूर्वजन्मके धर्मात्मापने का बोधक असाधारण लक्षण है,अरु प्रथमवयबिषे उत्पन्नहुई सद्धर्म बिषयक श्रद्धा सो उसपुरुषके धर्मात्मा होनेमें मुख्य हेतुहै ,जैसे नचिकेताको प्रथमवयबिषेही पिताके हितरूप धर्म्म में श्रद्धा उत्पन्नहुई अरु सोई उसके परमधार्मिक होनेके प्रकाशार्थ मुख्यहेतुहुई, ताते प्रथमवय बिषे अरु श्रद्धा सत्कारादिवृत्तिपूर्वक जो दानादि होते हैं सो ,मुख्य, ऐसा कहते हैं। ॥ देताहै। प्र०। तिस। दाताको क्या फल होताहै। उ०। मुखसे। अर्थात् उक्तप्रकार। प्रथमवय बिषे वा मुख्य (श्रद्धादि) वृत्तिसे। अभ्यागतादिकों को अन्नादि दानदेता है। ऐसे अन्नदाताके अर्थ अन्न सिद्ध होताहै, अर्थात् जैसा। जिस अवस्थामें अरु जिस वृत्तिसे। दियाहै तैसाही। तिसवय अरु तिस वृत्तिसे उसको भी इसलोक वा परलोक में। प्राप्त होता है ॥। अर्थात् जो पुरुष अपनी प्रथमवयबिषे श्रद्धा सत्कारपूर्वक अन्नादि देतेहैं, तिनके उस कर्म्म की उसही वयमें लोकबिषे प्रख्याति होने से उसको भी उसही वयबिषे श्रद्धा सत्कारादि मुख्य वृत्तिसे ही अन्नादिक प्राप्त होता है। अरु तिसकरके ही लोकबिषे प्रसिद्ध है कि जो जैसा करता है सो तैसा पावता है, अरु इस उक्तविचारार्थ को आगे भी लगायलेना। ॥ इसप्रकारही , इस प्रसिद्ध

य एवं वेद। क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इतिप्राणापानयोः। कर्म्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्ति रिति पायौ॥ इति मानुषीः समाज्ञाः॥ अथ दैवीः॥ तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति ४५॥

सिद्धान्नको मध्यसे। अर्थात् मध्यवयसे वा मध्यम वृत्तिसे। अभ्यागतों के अर्थ देताहै। तैसेही इस अन्नदाताके अर्थ मध्यसे। अर्थात् मध्यवयबिषे वा मध्यम वृत्तिसे। अन्न सिद्धहोताहै। अर्थात् जो पुरुष मध्यम भावसे देताहै तिसकोभी मध्यमभाव सेही प्राप्तहोताहै।॥ अरु तैसेही "। एतद्वा अन्ततोऽन्नꣳ राद्धम्, अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते" इस प्रसिद्ध सिद्धान्नकोअन्तसे देता है, इसके अर्थ अन्तसे अन्नसिद्ध होताहै; अर्थात् तैसेही इसप्रसिद्धसिद्धअन्नको अन्तसे। अर्थात् अन्तके वयबिषे वा अधम वृत्तिसे। अभ्यागतके अर्थ देताहै। तैसे ही इस अन्नदाताके अर्थ अन्तसे। अन्तकी वयबिषे वा अधमवृत्तिसे। अन्नसिद्ध होताहै ४४॥

हे सौम्य, "। य एवंवेद, क्षेम इतिवाचि, योगक्षेम इतिप्राणापानयोः"। जो इसप्रकार जानता है, क्षेम है ऐसे वाणीबिषे, योग औ क्षेम है इसप्रकार प्राण अरु अपान बिषे; अर्थात् जो ऐसे उक्तप्रकारके अन्नकेमाहात्म्यको जानताहै, सो उक्त प्रकारके अन्नदानके फलको प्राप्त होता है॥ अब ब्रह्मकी उपासना का प्रकार कहते हैं। ग्रहण किये वा प्राप्तहुये वस्तुकाजो रक्षणातिसको क्षेम कहते हैं, सो क्षेम ऐसे वाणी बिषे, अर्थात् ब्रह्म वाणी बिषे क्षेमरूपसे स्थित है, इसप्रकार उपासना करने को योग्यहै। अर्थात् आचार्यसे ग्रहणकिया वा प्राप्तहुई विद्यारूपवस्तु सो यद्यपि संस्काररूप से अन्तःकरण बिषे स्थित है अरु स्मृति होना भी अन्तःकरणका धर्म है, परन्तु इस प्रसंगबिषे आचार्यसे प्राप्तहुई विद्या जिह्वाग्रहोने सों वाणीबिषेही स्थित माननीहै, अरु तिसकी जो सर्वकाल यथार्थ स्मृतिका रहनाहै सोई उसकी क्षेम

रूप रक्षाहै अरु रक्षण करता चैतन्य होताहै अरु चैतन्यआत्मा-
ही " यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं " इस श्रुतिप्रमाणसे, वाणी
विषे स्थितहै, ताते वाणीविषे ब्रह्म क्षेमरूपसे उपासना करनेको
योग्यहै ।॥ अरु अग्रहण वस्तुका ग्रहण किंवा अप्राप्त वस्तु की
प्राप्तिको योग, अरु प्राप्तवस्तु की रक्षा क्षेम, सो योग क्षेमरूप
है, सो प्राण अपानविषे है, यद्यपि वो योग क्षेम बलवानहुये प्राण
अपानविषे ही होते हैं । क्योंकि सर्वका जीवनरूप योग क्षेम प्राण
अपानकेही आश्रय होते हैं ताते ।। तथापि वे योग क्षेम प्राण
अपान रूप निमित्तवालेही नहीं हैं, किन्तु ब्रह्मरूप निमित्तवालेही
हैं । क्योंकि प्राण अपानका योग क्षेम भी किसी चैतन्य ब्रह्मके-
ही आश्रय है । तथाच " न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवतिकश्चन
इतरेण तु जीवन्ति " यह अन्य श्रुतिका प्रमाण भी है । अरु " यः
प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरोयं " इस श्रुतिने प्राणके अन्तर अन्त-
र्यामी रूपसे चैतन्य ब्रह्मकोही कहाहै ।। अतएव ब्रह्म योग क्षेम
रूपसे प्राण अरु अपानविषे स्थितहै, ऐसे जानके उपासना क-
रनेको योग्यहै । इसप्रकार पिछले अन्य (ज्ञानेन्द्रियरूप) वस्तु
विषे भी तिस तिस (दर्शन श्रवणादि सामर्थ्य) स्वरूपसे ब्रह्मही
उपासना के योगहै " कर्मेति हस्तयोः, गतिरिति पादयोः, वि-
मुक्तिरिति पायौ ॥ इति मानुषीः समाज्ञाः " (कर्म है ऐसे हस्त
विषे, गतिरूपहै ऐसे पादोंविषे, विमुक्ति रूपहै ऐसे पायु (गुद)
विषे, (ब्रह्म उपासना करने के योग्यहै) ऐसी मानुषी समाज्ञाहै,
अर्थात् कर्म है इसप्रकार हस्त विषे, अर्थात् कर्मोंको ब्रह्म करके
निर्वाह करनेकी योग्यता होनेसे दोनों हाथोंविषे कर्म रूपसे ब्रह्म
स्थितहै । (अर्थात् हाथोंविषे जो क्रिया शक्तिहै सो सर्व शक्तिमान्
चैतन्य ब्रह्मकीही है क्योंकि हस्तादिक कर्मेन्द्रिय जड़हैं ताते उन
जड़ोंविषे कर्तृत्वादि कोई भी शक्ति उनकी नहीं अरु जहां शक्ति
होती है तहां उस शक्तिका आश्रय शक्तिमान् भी अवश्य होताहै,
ताते कर्मरूपसे हाथोंविषे ब्रह्म स्थितहै ।। इसप्रकार उपासना

करनेको योग्यहै। अरु गति कहिये गमनरूप है इसप्रकार पादों बिषे,ब्रह्मउपासना करनेको योग्यहै। विमुक्ति (मलका त्याग वा मृत्यु) रूपसे है, इसप्रकार पायु (गुदेन्द्रिय) बिषे, ब्रह्म उपासना करनेके योग्य है। (अर्थात् जैसे हाथोंबिषे कर्म रूपसे ब्रह्मके अस्तित्वमें कल्पितविशेषार्थ है तैसेही पाद अरु पायु इन्द्रियोंबिषेभी अर्थकी योजनाकरके तिनकेतिनके कर्मरूपसे ब्रह्मको जानना)॥ यह मनुष्योंबिषे होनेवाली ऐसी अध्यात्मिक रूप मानुषी समाज्ञा कहिये उपासनाहै "अथ दैवीः"। (अब दैवी) अर्थात् अब देवों बिषे होनेवाली ऐसी, दैवी समाज्ञा कहते हैं। "तृप्तिरितिवृष्टौ, बलमिति, विद्युति" (तृप्तिरूपहै ऐसे वृष्टि बिषे, बलरूपहै ऐसे विद्युतबिषे) अर्थात् तृप्तिरूपहै इसप्रकार वृष्टिबिषे, क्योंकि वृष्टि को अन्नादिकद्वारा तृप्तिका हेतुपनाहै तातें ब्रह्महीं तृप्तिरूपसे वृष्टि बिषे स्थितहै, इसप्रकार जानके उपासना करने को योग्यहै॥ तथाच "यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः, आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति" यह अन्य श्रुतिके अर्थकी भी योजना होती है॥ अरु इसप्रकार अन्यों बिषे तिस तिस रूपसे ब्रह्महीं उपासना करनेको योग्यहै॥ (अर्थात् जिस जिस देवता बिषे जो जो दैवी शक्तिहै सो सो उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा कीही है, अरु उसही ने आकाशादि भूतसृजके तिसबिषे आपही प्रवेशकरके अपनी पृथक् २ विशेष शक्तिको आपही अनुभव करता है, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल उत्पन्न करता है, तिस बिषे प्रतिबिम्ब रूपसे प्रवेशभी आपही करता है,अरु तिस प्रतिबिम्ब द्वारा जलबिषे आइ जो अपनी प्रकाशरूपा विशेष शक्ति तिसको अनुभव भी आपही करताहै तैसे, (तातें सर्वबिषे सर्वशक्तिमान् एक ब्रह्महीं उपासना करनेके योग्यहै)॥ तैसे बल ऐसे (बलरूप से) बिजली बिषे है ४५॥

हे सौम्य, "यश इति पशुषु, ज्योतिरिति नक्षत्रेषु, प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे, सर्वमित्याकाशे, तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत, प्र-

यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावान् भवति । तन्मह इत्युपासीत महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ४६ ॥

तिष्ठावान् भवति "। यश ऐसे पशुबिषे, ज्योति ऐसे नक्षत्रोंबिषे, अमृत अरु आनन्द उपस्थ बिषे, सर्व आकाशबिषे है ऐसे, सो सर्वकी प्रतिष्ठाहै ऐसे उपासनाकरना, प्रतिष्ठावान् होताहै ; अर्थात्, यश इसप्रकार यशरूप से पशुओं बिषे, अरु ज्योति इसप्रकार नक्षत्रोंबिषेज्योति रूपसे । अर्थात् "यश्चन्द्रतारके तिष्ठन्"। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति "। "यश्चन्द्रमसियश्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् "। इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाणसे । अरु प्रजापति अरु पुत्रसे पितृऋणकी निवृत्तिद्वारा अमरभावकी प्राप्तिरूप, अमृत औ आनन्द कहिये सुख, ऐसे उपस्थइन्द्रियबिषे, अर्थात् प्रजापतित्व, अमृत, सुख यह सर्व उपस्थइन्द्रियरूप निमित्तवाले हैं, ताते ब्रह्महो इनरूपसे उपस्थबिषे स्थितहै, इसप्रकार । जान के । उपासना करने को योग्य है । अरु जिसकरके सर्व आकाश बिषे स्थितहै, इसकरकेही, जो सर्व आकाशबिषे है सो ब्रह्मही है, इसप्रकार । जानके । उपासना करनी योग्यहै । अरु जिसकरके सो आकाश ब्रह्मही है, इसही से वो सर्वकी प्रतिष्ठा (आधार) है इसप्रकार । जानके उपासनाकरना । तिस प्रतिष्ठा रूप गुणकी उपासना से प्रतिष्ठावान् होते हैं । । अर्थात् आकाश केवलअवकाशरूपहै ताते यावत् समस्तजगत् आकाशबिषे भासते हैं सो आकाशबिषे नहीं, किन्तु "य आकाशे तिष्ठन्"। "आकाशशरीरम् ब्रह्म "। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे जैसे शरीरी के आश्रय शरीर अरु तदाश्रित अवयवादि सर्व होताहै, आकाशसमेत सर्व ब्रह्म से उपजाहै। अरु तिसकरके आकर्षितहुआ तिसही बिषे स्थितहै, ताते जो आकाशबिषे है सो सर्व आकाशसहित ब्रह्म

तन्नम इत्युपासीतानम्यंतेऽस्मै कामाः। तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्य्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः ४७॥

ही है, अरु सो सर्व ब्रह्म के आकर्षण से स्थित है ताते सो सर्व की प्रतिष्ठा काही ये आधार है "। सर्व्वाधारो "। इतिश्रुतेः। वा "। सौम्येमाः सर्व्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः "। इत्यादि श्रुति। जैसे पृथिवी से उत्पन्नहुये घटसरावादिक पृथिवीरूपहैं, अरु पृथिवी के आश्रयहैं ताते पृथिवी उनकी प्रतिष्ठाहै, तैसेही ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ सर्व ब्रह्मरूपही है अरु सर्व ब्रह्मकेही आश्रयहै ताते ब्रह्म सर्वका आधारभूतहोने से सर्वका आधाररूप प्रतिष्ठा है, इसप्रकार प्रतिष्ठारूप गुणविशिष्ट ब्रह्मको उपासताहै सो प्रतिष्ठावान् होताहै। इसप्रकार पूर्व कहि उपासना बिषे भी जो जिसके आधीन फलहै सो ब्रह्महीहै,ताते तिसकी उपासनासे तिसवालाही होताहै। । "। यो यथा माम्प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम् "। इसप्रकार जानना क्योंकि "। तं यथा यथोपासते तदेव भवतीति "। तिसको जैसे जैसे उपासते हैं सोई (फल) होताहै। यहअन्यश्रुतिकाभी प्रमाणहै।"तन्महइत्युपासीत,महान् भवति,। तन्मन इत्युपासीत मानवान् भवति "। (सो महत् है ऐसे उपासनाकरना, महान् होताहै, सो मन ऐसे उपासना करना, मानवान् होताहै ? अर्थात् सो। ब्रह्म। महत् पनेरूप गुणवान्, है इसप्रकार जानके उसकी उपासना करने से महान् होताहै, अरु सो। ब्रह्म। मननरूपहै ऐसा जानके उसकी उपासना करते हैं सो मानवान् कहिये मननविषे समर्थ होताहै ४६॥

हे सौम्य, "। तन्नम इत्युपासीत, नम्यंतेऽस्मै कामाः, तद्ब्रह्मेत्युपासीत,ब्रह्मवान् भवति,तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत, "। (सो

नमहै ऐसे उपासनाकरना,इसके अर्थ काम नमते हैं,सो ब्रह्म है ऐसे उपासना करना, ब्रह्मवान् होवे है,सो ब्रह्मका परिमरहै ऐसे उपासनाकरना ; अर्थात् सो नम , कहिये नमनरूप गुणवालाहै इसप्रकार । जानके । उपासना करना, तिसकरके इस उपासक के अर्थ भोगने योग्य विषयरूप कामनमते । प्राप्तहोतेरहते । हैं। अरु सो ब्रह्म । अर्थात् सर्व से बड़ा अत्यन्तघन परिपूर्ण । है ऐसा ।जानके। उपासना करते हैं । सो उपासक ब्रह्मवान्।तिसब्रह्मके गुणवाला,होताहै।अर्थात्ब्रह्मकेगुणोंवाला तबहोवेगा जबब्रह्मरूप होवेगा,अतएव ब्रह्मका उपासकब्रह्मरूपहुआ तिसगुणवान्होत, है।। अरु सो ब्रह्मका परिमर ,कहिये वायु, है इसप्रकार।जानके उपासनाकरना। अर्थात् जिसबिषे ,बिजली, वर्षा,चन्द्रमा,सूर्य्य, अरु अग्नि, यह पांचदेवता मरते हैं, ऐसा जो बायु सो " । अतो वायुः परिमर" याते बायु परिमरहै, । इस अन्य श्रुतिबिषे प्रसिद्धहै । ताते बायुको ब्रह्मका परिमरकहते हैं,सो यहही बायु जिसकरके आकाशसे अनन्यहै, इसहीसे आकाश ब्रह्मका परिमरहै। तिस बायुरूप आकाशको ब्रह्मका परिमरहै, इसप्रकार ।जानके। उपासनाकरना ॥ इसप्रकार जाननेवाले उपासककेप्रति स्पर्द्धा करनेवाले द्वेषकरतेहुयेभी जिससे शत्रुहोते हैं, इसहीसे तिनको द्वेषकरनेवाले शत्रुहैं, इसप्रकारका बिशेषणदेते हैं"पर्य्येणम्रियन्ते द्विषन्तः " ।द्वेषकरनेवाले सर्वओरसे मरते हैं; अर्थात् सो इसके प्रति द्वेषकरनेवाले शत्रुसर्वओरसे मरतेहैं कहिये प्राणोंकोत्यागते हैं । किंवा "सपत्नाः ।परियेऽप्रिया भ्रातृव्याः" ।जो अप्रियभ्राता केपुत्रहैं, वे सर्वओरसे मरते हैं; अर्थात् जो इस । उपासक । के अप्रियभ्राताके पुत्रहैं सो अद्वेषकरनेवाले हुयेभी सर्वओरसे मरते हैं । इसप्रकार [ऐसे मन्दाधिकारीके बिषयउपासनाके समूहको अध्यारोप अवस्थासे उपदेशकरके,अब अपवाददृष्टिके अभिप्रायसे कहतेहैं] "प्राणोवाऽन्नम् , शरीरमन्नादम् " । वा प्राण अन्न है अरु शरीर अन्नाद है, । इससे आरंभकरके आकाशपर्यन्त कार्यों

काही अन्न अरु अन्नादपना कहा ॥ पृ० ॥ यह कहां तिसकरके क्या सिद्धहुआ । उ० । तिसकरके यह सिद्धहुआ कि भोज्य अरु भोक्ताकाकिया जो संसार है सो कार्यको बिषयकरनेवालाही है । अर्थात् यह सर्व भोग्य भोक्तारूप संसार है सो आप कार्यरूप होनेसे कार्यपनेकोही लखावनेवाला है । आत्माबिषे तो नहीं है, परन्तु आत्माबिषे । तिसका । भ्रान्तिसे आरोप करतेहैं । ननु, [भोक्तापने आदिरूप जो संसारहै, सो कार्यको विषयकरनेवाला है,ऐसा बर्णनकियाहै, तहां जीवको उपाधिरहित (स्वरूपसे)संसारीपना देखाहै तिसकोभी कार्यरूपहोनेसे । इस बैष्णवोंकेमत को प्रकटकरके दूषणदेतेहैं] आत्माभी परमात्माका कार्यहै, ताते इसको संसारयुक्तहै, सो कथन बनेनहीं क्योंकि असंसारीकेही प्रबेशकी श्रुतिहै ताते । अरु " तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् " तिसको सृजके तिसहीके अर्थ पुनः प्रबेशकरताहुआ, । इसप्रकार श्रुतिबिषे आकाशादिकोंके कारण असंसारी परमात्माकाहीकार्योंबिषे प्रबेशकहाहै । अरु । सोई । सुनतेहैं ताते कार्योंबिषे प्रबेशकोपाया जो जीवरूप आत्माहै सो परमात्मारूपही असंसारी है । अरु " सृष्ट्वानुप्राविशदिति " सृजिके पुनः प्रबेशकरताहुआ, । इसप्रकार सृष्टि अरु प्रबेशके समान कर्त्तापनेके संभवसे , जब सृष्टि अरु प्रबेश । उभय । रूप क्रियाका एककर्त्ताहै, ताते सृजिके प्रबेशकरताहुआ, ऐसाकहना युक्तहै । अरु जोकहे,प्रबेशकरने वालेकोतो अन्यभावकी प्राप्तिहोती है, सोकथनबने नहीं,क्योंकि प्रबेशको अन्यअर्थपनेकरके पूर्व षष्ठमन्त्रबिषे निषेधकियाहैताते,। अरु जोकहे कि [छांदोग्यकी श्रुतिके अनुसारसे विकार (कार्य) के आकारवाले स्वरूपसे परमात्माके प्रबेशकी आशंकाकरके तहां बाक्यशेषके विरोधको कहेहैं] " अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य " इस जीवरूपसे प्रबेशकरताहुआ,। इस विशेषश्रुतिसे अन्यधर्मसे प्रबेशहुआहै, सोभी बनेनहीं, क्योंकि " तत्त्वमसि " सो तूहै ,। इसप्रकार पुनः तिस परमात्मभावकाही कथनहै ताते,। अरुजो

[भ्रान्तिसे देहादिभावको प्राप्तहुये ब्रह्मसे व्यतिरिक्त जीवकोही रागके निषेधार्थ परस्त्रीविषे माताकी बुद्धिवत् संसारीपनेके निषेधार्थ ब्रह्मदृष्टि छान्दोग्यश्रुतिविषे उपदेशकियाहै,एतदर्थ "तत्त्वमसि " सो तूहै,। इस उपदेशसे अन्य अर्थवाला होनेसे, जीव को पारमार्थिक असंसारी ब्रह्मपना नहींहै । यह आशंकाकरके तिसको दूषणदेतेहैं। यहां यहअर्थहै कि अबाधित तत्पदसे मुख्य सामानाधिकरण्यके बिरोधसे ब्रह्मरूपजीवविषे अब्रह्मभावकेसम्पादनकरनेरूप अर्थवान्पना कल्पनाकरनेको अशक्य है] कहे कि अन्यभावको प्राप्तहुये परमात्माकीही तिस अन्यभावके निषेधार्थ " तत्त्वमसि " सोतूहै,ऐसे श्रुतिविषे सम्पत्ति कही है सो बनेनहीं क्योंकि " तत्सत्यं, सआत्मा, तत्त्वमसि " सो सत्यहै, सो आत्माहै,सो तूहै, । इसप्रकार जीव अरु परमात्माके सामानाधिकरण्य (एकार्थरूपता) है ताते, । अरु जो [संसारीभावके ग्राहक प्रत्यक्ष प्रमाण के बिरोध से जीव बिषे अबाधितपना असिद्ध है , इसप्रकार पूर्ववादी कहे है। यहां सिद्धांती सर्व प्रमाणों का अनुग्राहक तर्क अंगीकारकरे हैं अरु आत्माके संसारी रूप धर्मवान्पने को तर्ककरके असिद्धताहोने से,अरु तिस संसारीपने के प्रत्यक्ष प्रमाणको भ्रान्तरूप होनेसे तिस प्रत्यक्ष प्रमाण को शास्त्रजन्य ज्ञानका बाधकपना संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं सुखादिकों को प्रतीयमान होनेसे रूपादिकवत् उपलब्धा (ज्ञाता)का धर्मपना संभवे नहीं, यह अर्थ है ।] कहे जीव का संसारीपना देखा है, सो कहना बने नहीं , क्योंकि उपलब्धा (प्रत्यक्षप्रमाण) को अप्रतीयमानपना है ताते, तिसका देखना संभवे नहीं क्योंकि धर्मोंके अरु धर्मी के भेदसे अग्निके धर्म उष्णता अरु प्रकाशता को अग्नि करके जलावनेकी योग्यता अरु प्रकाश करने की योग्यताके असंभववत्, अरु नेत्र के धर्मको नेत्रकी विषयताके असंभववत् आत्माके धर्मको आत्माके विषय होनेके असंभवसे धर्म विशिष्ट आत्माकी प्रतीति

संभवे नहीं। अरु जो [प्रत्यक्ष प्रमाण के विरोधके अभावहुये भी। अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकता बिषे प्रत्यक्षप्रमाण विरोधी है तिस विरोधके अभाव हुयेभी। अनुमान प्रमाण का विरोध तो होवेगा, इसप्रकार पूर्व बादी कहता है] कहे कि आत्माको भयादिकके देखने से दुःखीपने आदिक धर्मोंका अनुमान होता है अर्थात् आत्मा बिषे भयादि लिंगों के देखने से आत्मा बिषे दुःखादि धर्मोंका होना सिद्ध होता है।। सो भयादिक जोहै सो आश्रय सहित है, कार्य होने से, घटवत्,। अरु अन्य आश्रय के असंभवसे आत्माही तिसका आश्रय अनुमान से जानिये है। इसप्रकार कहना योग्य नहीं, क्योंकि जो जानने योग्य वस्तु है सो उपलब्धा कहिये जाननेवाला तिसका धर्मनहींहै, रूपादिकोंवत्,। इन व्याप्त्यन्तरके (अन्य व्याप्तिके) विरोधसे अध्यास से भी कार्यके दर्शनके असंभवसे। यह अर्थ है।] बने नहीं, क्योंकि भय आदिकोंको अरु दुःखोंको प्रतीयमान होने से सो उपलब्धा (जाननेवाला) का धर्म्म नहीं है। अरु जो [जीवकी ब्रह्मरूपता के प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको तर्कशास्त्रके विरोधसे अप्रमाण पनाहै, यह शंकाकरके दूषण देते हैं] कहे ऐसे माने हुये कपिल मुनिकृत सांख्य अरु कणादमुनिकृत वैशेषिक आदि तर्कशास्त्रोंका विरोध होवेगा, सो बनेनहीं, क्योंकि तिन कपिलादिकोंको मूल के अभावहुये अरु वेदके विरोधहुये, भ्रांतिके संभवसे, अरु आत्मा का असंसारीपना श्रुति अरु युक्तिकरके सिद्धहै। अरु जीव [किंवा तार्किककरकेभी जीवकासुखीपना ईश्वरके आधीन निरूपणकरने कोयोग्यहै, सो निरूपणकरनेको योग्यनहीं, क्योंकि अपनेआत्मरूप ईश्वरबिषे सुखदुःखकी हेतुताका असंभवहै ताते। इसअभिप्रायसे कहते हैं] ईश्वरकीएकतासे ईश्वरके आधीन जीवके सुखीपनेका निरूपणकरनेको शक्यनहीं। ननु, जीव अरु ईश्वरकीएकता कैसे है, तहां कहते हैं "स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये, स एकः" ।
८ सो जो यह पुरुषबिषे है, अरु, जो यहसूर्य्यबिषे है, सो एकहै; ॥

स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य। इमांल्लोकान् कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्सामगायन्नास्ते । हा३वु हा३वु हा३वु ॥ ४८ ॥

हे सौम्य, [अब इस तृतीयावल्लीकी समाप्ति पर्यन्त जो अवशेष । ग्रन्थहै तिसके तात्पर्यको उक्त अर्थके कथनसे कहते हैं] "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ; सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै, इस २४ चौवीसवीं ऋचा का अर्थ तिसकी विवर्णरूप आनन्दवल्लीकरके विस्तारसे व्याख्यानकिया । अरु "सोऽश्नुते सर्वान् कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चितेति" सो विपश्चित (सर्वज्ञ) ब्रह्मस्वरूपसे सर्व कामों (भोगों) को भोगताहै, । इस तिसके फल वचनके अर्थ का ,, कौन वे सर्वकामहैं , वा सो किसको विषय करनेवाले हैं, वा तिनको कैसे सो ब्रह्मरूप हुआ एक कालमें भोगताहै , इस रीतिका विस्तार कहानहीं , सो कहनेको योग्यहै, याते यह अब आरंभ करते हैं । तहां पूर्वोक्त विद्याकी साधनरूप पिता अरुपुत्र की आख्यायिका विषे ब्रह्मविद्या का तपरूप साधनकहा। अरु प्राणसे आदिले आकाशपर्यन्त जो कार्य है तिसका अन्न अरु अन्नादपने करके उपयोगकहा , । अरु ब्रह्मको विषयकरनेवाले उपासनकहे । अरु नियमित अनेकसाधनोंकरके साध्य आकाशादि कार्यके भेदको विषयकरनेवाले जो सर्व कामहैं सो देखाये । अरु एकता विषे काम अरु कामीपने का असंभव है, क्योंकि सर्वभेदके समूहको आत्मरूपता है ताते । तहां उक्तप्रकार जाननेवाला विद्वान् एककाल विषे ब्रह्मस्वरूपता करके सर्वकामोंको कैसे भोगताहै, तहां कहतेहैं, [विद्वान् जो है सो अविद्याके लेशमात्रके वशहोनेकरके द्वैत के भ्रमको अनुभवकरता

हुआ ,,सर्वस्य आत्माहमिति,, सर्वका आत्मा मैंहौं, । इसप्रकार मानताहुआ, अणिमादि ऐश्वर्यवाले योगियोंका जो कामान्नपना। अर्थात् कामनाके अनुसार अन्नवान्पना, अरु कामरूपपना। अर्थात् कामनाके अनुसार रूपका धारनेपना, है तिसको। अपने एकात्मपनेके यथार्थ अनुभवसे। मेराही है, ऐसे देखताहुआ एककालविषेही सर्व विषयानन्दको भोगताहै, ऐसाकहाहै, सोई कहते हैं] सर्वात्मताके संभवसे सो एककालविषे ब्रह्मरूपसे सर्व कामों (भोगों)को भोगताहै।प्र०॥ तिसकी सर्वात्मताका संभव कैसेहै, तहां कहतेहैं। "। स य एवंवित्, अस्माल्लोकात्प्रेत्य, एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतंविज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य , "। ,,जो ऐसे जाननेवाला है सो इस लोकसे निर्पेक्षहो के , इस अन्नमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके , इस प्राणमयरूप आत्माको उल्लंघन करके , इस मनोमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके , इस विज्ञानमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके , इस आनन्दमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके,, अर्थात् जो उक्तप्रकार। आत्माको। जाननेवालाहै सो इस दृष्ट अरु अदृष्ट। इसलोक परलोक। रूप इस लोकसे। अर्थात् समस्त नामरूपात्मक कार्यरूप जगत्से। निर्पेक्षहोके। अर्थात् लोकादि एषणासे रहितहोके। पुरुष अरु सूर्यविषे स्थित आत्माकी। अभेद। एकताके विज्ञानसे उत्कर्ष अरु अपकर्षको दूरकरके, पुनः इस अन्नमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके। अर्थात्इस स्थूलदेहरूप अन्नमय कोशको पंचभूतों के तमोगुणकाकार्य केवल अन्नरूपहोनेसे इसको कार्यरूप बिकारीजान इसमेंसे आत्मबुद्धि त्यागके। । पुनः प्राणमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके। अर्थात् अन्नमय कोशकेभीतर अरु अन्नमयसे सूक्ष्महोनेसे अन्नमयकाआत्मा जो प्राणमय कोश तिसकोभी भूतोंका कार्य विकारी जान तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके। । पुनः मनोमयरूपआ-

त्माको उल्लंघनकरके ।।। अर्थात् उक्तप्रकारके प्राणमय कोशके भीतर अरु प्राणमयसे सूक्ष्महोनेसे प्राणमयका आत्मा जो मनोमय कोश तिसकोभी भूतोंके रजोगुणका कार्य बिकारी चंचल आत्माके लक्षणसे विपरीतलक्षणवाला जान तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके ।। पुनः विज्ञानमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके ।। अर्थात् मनोमय कोशकेअन्तर अरु मनोमयसे सूक्ष्मअरु मनोमयकी नियन्ता मनीषा नामवाली बुद्धिरूप विज्ञानमय कोश तिसकोभी भूतोंके सत्त्वगुणकाकार्य शुभाशुभकी कर्त्ता विकारीजान, तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके ।। पुनः आनन्दमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके ।। अर्थात् विज्ञानमय कोशके अन्तर अरु विज्ञानमयसे सूक्ष्महोनेसे विज्ञानमय कोशकाआत्मा, अरु अविद्याका कार्य धन पुत्रादिकोंके संयोगरूपनिमित्तसे अपने प्रियआदिक अवयवोंसहित कचित् भासनेवाला अनात्मा जड, तिसविषयक आत्मबुद्धि त्यागके,॥ इसप्रकार अविद्याकल्पित अन्नमयसेलेके आनन्दमयपर्यन्त जो आत्मा कहेहैं, तिनको क्रमसेउल्लंघनकरके ।। हे सौम्य यह जो अन्नमयादिकोशोंका उल्लंघनकरनाकहाहै सो किसी तीर्थके जानेवाला यात्री जैसे मार्गके ग्रामोंको उल्लंघनकरके उस तीर्थको प्राप्तहोताहै। तैसे इन अन्नमयादि कोशरूपग्रामोंको उल्लंघनकरके मुमुक्षुरूप यात्री अपने परमानन्दमय आत्मरूप तीर्थकोप्राप्तहोय अभेद अनन्यता अनुभवरूप स्नान कर परमपुरुषार्थ (मोक्ष) रूप फलको प्राप्तहोताहै । परन्तु, उस यात्रीका बाह्यगमनहै तैसेमुमुक्षुरूप यात्रीका देशान्तरके गमनवत् बाह्यगमन नहीं किन्तु अन्तरमुख गमन है, अब इसपर अन्यदृष्टान्त श्रवणकरो । हे सौम्य । जैसे किसी चक्रवर्त्ती राजाके राजगृह की अनेककक्षा (ड्योढी) होती हैं अरु जो पुरुष उस राजाके दर्शनार्थ उस राजगृहमें जाता है सो प्रथमकक्षासे लेके अन्तकी कक्षापर्यन्त सर्वको देखता अरु द्वारपालोंसे मिलताजाता है तब राजा के साक्षात् दर्शन पावताहै, अरु जो कदापि वो राज-

दर्शनाभिलाषी पुरुष उन कक्षाओं को देखे बिना अरु उन द्वारपालोंसे मिले बिना उस राजाके दर्शनार्थ जाय तो वो द्वारपाल उसको मार्गही में अपने निकट अवरोधकरके उसको राजाके सम्मुख प्राप्त होने देतेनहीं। हे सौम्य तैसेही "निहितं गुहायां परमेव्योमन्" । "गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं" । "अंगुष्ठमात्रः पुरुषो सर्व्व जनानां हृदि सन्निविष्टः" । "पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः" । "नवद्वारे पुरे देही" इत्यादि अनेक श्रुतियों स्मृतियों के प्रमाणसे, इस शरीररूप पुर बिषे हृदयरूप गुहा किंवा बुद्धि रूपा गुहाहै सो साक्षी आत्मारूप चक्रवर्त्ती राजाका राजगृह है तिसबिषे वो महाराज बिराजमानहै। अरु तिस राजगृहके प्राप्त होने को क्रमसे अन्नमयसे आनन्दमयकोश पर्यन्त पांच कक्षा हैं अरु तत्तद्विशिष्ट जो चिदाभासहै सोई उन कक्षाओंके अभिमानी द्वारपालहैं अरु "ते वा एते पञ्च ब्रह्म पुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः" इस छांदोग्यकी श्रुतिसे भी उक्त पंचकोशोंको द्वारपना, अरु तदाभिमानी चिदाभासोंको द्वारपालत्वपना, सिद्ध होताहै। हेसौम्य उक्तप्रकारके राजमन्दिरबिषे स्थित जो साक्षीरूप आत्मा "सर्वेषांराजा" सर्वइन्द्रादिकोंका राजा महाराज तिसके साक्षात् दर्शनाभिलाषी जिज्ञासु मुमुक्षु, सो जब क्रमसे अन्नमयादि कोश रूप द्वारमार्ग से इस शरीररूप पुरान्तर उक्त राजगृहको चलता है अरु उक्त द्वारपालोंसे विचारद्वारा मिलताहै पुनः क्रमसाध्य एक एक कक्षाको उल्लंघन करता उक्त द्वारपालों से उक्त प्रकार मिलता आगेको अन्तरसुख चलता अपने स्वस्वरूपकी ओर आवताहै तब उक्त राजा महाराजको उक्त राजमन्दिरके भीतर केवल आनन्दरूप सिंहासन पर "अहंब्रह्मास्मि" भावसे साक्षात् यथार्थ अनुभव रूप दर्शनकर अभेदतासे परमानन्द सुखकोप्राप्त होताहै। अतएव हेसौम्य उसराजाके दर्शनार्थ तुमको जो जाना है सो उक्त कोशोंको उल्लंघन करते अन्तरको जाना है, क्योंकि "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" इस

श्रुतिप्रमाणसे उक्तप्रकार अन्तर्मुख चलनेसेही आत्माका दर्शन होवे है ।॥ अरु ,सत्य, ज्ञान (चैतन्य), अनन्त , अदृश्यादि धर्म वाले स्वाभाविक आनन्द स्वरूप अजन्मा अमृत अभय अविनाशी अद्वैत,ब्रह्मरूप फलको प्राप्तहोके "।इमाँल्लोकान् कामान्नी कामरू-प्यनुसञ्चरन् । एतत्सामगायन्नास्ते । हा३वु हा३वु हा३वु"।(का-मान्नी, कामरूपीहुआ, इन लोकों के अर्थ विचरता हुआ हावु, हावु,हावु इस सामका गायन करताहुआ स्थित होताहै; अर्थात् । उक्तप्रकारका विद्वान् ब्रह्मविद्याके विषय । अद्वैत ब्रह्मरूप फल को प्राप्तहोके,कामान्नी ।अर्थात् कामनाके अनुसार अन्नको पावने वाला।। अरु कामरूपी ।अथार्थ कामनाके अनुसार रूपको धारने वाला । होयके इन पृथिव्यादि लोकोंके अर्थ विचरताहुआ ।।अ-र्थात् "। लोकैषणायाश्चव्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ।" इस बृह-दारण्य की श्रुतिप्रमाण लोकैषणा कि जिस विषे पुत्रैषणा अरु वित्तैषणाका अन्तरभावहै,तिसको त्यागके भिक्षान्न भोजनकरता हुआ विचरताहुआ,अर्थात् सर्वात्मरूपसे इनलोकोंको आत्मपने करके अनुभव करता हुआ । । हावु, हावु,हावु, इस साम को गायन करता हुआ स्थित होताहै ।प्र०।काहे को इस साम को गायन करताहुआ स्थितहोताहै,।उ०। ।सर्वत्र सर्वविषे।समरूप होने से ब्रह्महि साम है ।।। अर्थात् " समो नागे समो मशके " " विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि , शुनिचैवश्वपाकेच पण्डिताःसमदर्शिनः" इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाणसे अ-व्याकृतसे लेके तृण पर्यन्त सर्वमें समरूपसे एक अद्वैत चैतन्य आत्माही सुशोभितहै।ताते साम नामवाले आत्माको ही गायन करताहै ।। तिस सर्वसे अनन्य ब्रह्मरूप सामको सर्व लोकों के हितार्थ, आत्मज्ञानके फल अतिशय कृतार्थपने को गायन करता हुआ । । अर्थात् एक अद्वैत चैतन्य आत्मा की सर्वत्र समता को लखावताहुआ । । स्थित होताहै । अरु यहां तीनवार हावु हावु हावु, ऐसे कहाहै,सो अहो, इस आश्चर्यरूप अर्थविषे वर्त्तमानहुआ

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो ३ अहमन्नादो ३ अहमन्नादः । अहं छंश्लोककृदहछंश्लोककृदहछं श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्यना ३ भायि । योमाददाति स इदेव मा३ वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां ३ । सुवर्ण ज्योतिः । य एवं वेद । इत्युपनिषद् राध्यतेविद्युति । मानवानभवत्येको हा ३ वु य एवं वेदैकञ्च ४९ ॥

अत्यन्त विस्मय (आश्चर्य) के जनावनेके अर्थ है ॥ "आश्चर्यो वक्ताकुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्योज्ञाता कुशलानुशिष्टः" "आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं" इत्यादि श्रुति स्मृतियोंकेप्रमाणसे ४८ ॥

हेसौम्य, । प्र०। यह विस्मय कौनहै, । उ०। अद्वैत आत्मारूप निरंजन हुआभी, "अहमन्नमहमन्नमहमन्नम, अहमन्नादो ३ अहमन्नादो ३ अहमन्नादः । अहं॰ श्लोककृदहं॰ श्लोककृदहं॰ श्लोककृत्" ; मैं अन्न हौं, मैं अन्न हौं, मैं अन्न हौं । मैं अन्नादहौं, मैं अन्नादहौं, मैं अन्नादहौं। मैं श्लोकका कर्त्ताहौं, मैं श्लोकका कर्त्ता हौं, मैं श्लोकका कर्त्ता हौं, ; अर्थात् श्लोक जो अन्न अरु अन्नादका संघाततिसकाकर्त्ता चैतन्य मैंहीं हौं। अथवा अन्नादरूपजोअन्यतिसके अर्थ हुये अनेकरूप जे अन्नकेही संघात तिनका परार्थ रूप हेतु करके कर्त्ता मैंहीं हौं । और यहां तीनबार जो कथन है, सो विस्मयपने के प्रख्यात करने के अर्थहै । किंवा "अहमस्मि प्रथमजो ऋता ३ स्य, पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्यना ३ भायि, यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः, अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ द्मि, अहं विश्वं भुवनमभ्य भवां३, सुवर्ण ज्योतिः" ; मैं ऋतरूप इसके पूर्व उत्पन्न हुआ हौं, देवताओं से पूर्व अमृतका नाभिहूं, जो मुझको देताहै सो मुझको रक्षण करता है, अन्नके भक्षण करने वालेको मैं भ-

न्नही भक्षण करता हौं, मैं भुवनको भक्षण करताहौं, प्रकाशवान् मेरा ज्योतिहै? अर्थात् मैं ऋत कहिये मूर्त्त अमूर्त्त, रूप इस जगत्के प्रथम उत्पन्न हुआ हिरण्यगर्भ हूं, अरु व्यष्टिरूप देवताओंसेपूर्व विराट् रूपही हौं, अरु मैं अमृतका नाभि (मध्य)हौं अर्थात् प्राणियों का अमृतभाव मेरे बिषे स्थितहै । अरु जो कोई एक मुझ अन्नरूपको किसी अन्नार्थीकेअर्थ देता है अर्थात् मुझ अन्नको किसी जिज्ञासेके प्रति अन्नरूपसे उपदेशकरताहै सो ऐसे अविनाशी रूप हुयेभी मेरी रक्षा करता है । अर्थात् अमृतवत् सर्वका जीवन जो अन्नरूप ब्रह्म तिसको जो पुरुष किसी क्षुधित अन्नार्थी के अर्थ देताहै सोई उसअन्नरूप ब्रह्म जो सर्वका जीवन हुआ आप अविनाशी है तिसकी रक्षा करताहै क्यों कि अन्नार्थी के अर्थ जो अन्नका देनाहै सोई उस अन्नकीसाफल्यता रूप रक्षाहै, अथवा उस अन्नार्थी को ब्रह्मसे अभिन्नहुये उसकी जो अन्नदान से रक्षा करनी है सोई उस अविनाशीरूप ब्रह्मकी रक्षाहै अथवा ब्रह्मको जो अधिकारी जिज्ञासुप्रति अन्न रूपसे उपदेश करना है सोई उस अविनाशीरूप ब्रह्मकी रक्षाकरनी है क्योंकि अधिकारीके प्रति जो उपदेश होताहै सो अपने निरादर पनेरूप भयको पावतानहीं अरु जो कोई अन्य(अविद्वान्)मुझ अन्नको अर्थियोंके अर्थ समयके प्राप्तहुये न देके अन्नकोभक्षण करता है । अर्थात् जो अविद्वान् पुरुष अपने भोजनके समयमाय प्राप्तहुये जे अन्नार्थी अतिथि अभ्यागत तिनको अन्न न देके आपही अन्नको भक्षण करताहै । तिस अन्नको भक्षण करनेवाले पुरुषको मैं अन्नही उलटाभक्षण करता हौं । अर्थात् गृहस्थके यहां जो भोजनार्थ अन्नपाक होताहै तिस सिद्ध हुये अन्नमें से प्रथम गार्ह्यपत्याग्नि (रसोई के व पाकशालाके स्थानकाअग्नि) विषे बलि वैश्वदेव कर्म्म की आहुति, अरु प्राप्तहुये अतिथि अभ्यागत के जठरका वैश्वानरनाम अग्नि जोकि वैश्वानरविद्या के ज्ञाता विद्वान् के भोजन के निमित्त से सर्वात्मरूपसे भोक्ता

हुआ समस्त जगत्की तृप्ति करनेवालाहै, तिसमें भिक्षान्नरूप आहुति देनेसे अवशेष रहा जो सिद्धान्न सो "यज्ञशिष्टामृतभुजो वा यज्ञशिष्टाशिनःसन्तो" इत्यादिप्रमाणसे अमृतरूप होता है, अरु तिस यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करनेवाला विद्वान् ब्रह्मलोककी प्राप्तहोता है। वा सर्व पापोंसे छूटताहै अरु जो विद्वान् से अन्य अविद्वान् गृहस्थ अपने गृहमें सिद्धहुआ जो अन्न तिस सिद्धान्नमें से वलि वैश्वदेव की आहुति अरु अतिथि अभ्यागतको, भिक्षा, दिये बिना जो आपही अन्न को भक्षण करताहै तब वोअन्न "भुंजतेतेत्वघंपापा येपचंत्यात्मकारणात्" इत्यादि प्रमाणसे पापरूपहुआ,भक्षकका बिनाशकर्त्ता बिषकेतुल्यहोताहै, एतदर्थ विद्वान् कहताहै कि जोपुरुष समयपर प्राप्त हुये अन्नार्थी अतिथिरूप जो मैं, कि जो "अतिथि देवोभव" इत्यादि श्रुतियोंने देवताके तुल्य पूजनीयलक्ष करायाहै, तिसको अन्न नदेके आपही उस अन्नको भक्षणकरताहै तिस भक्षणकर्त्ता पुरुषको मैं अन्नही। उसके उदरमें अजीर्णादि दोष बिकार प्रकटकर उस पुरुषको भक्षणकरताहौं। ॥ यहां वादी कहताहै कि, जबऐसेही है। कि जैसे तुम कहतेहो। तब मैं सर्वात्मभावकीप्राप्तिरूप मोक्षसे भयको पावताहौं, मुझको संसारही होवो। जिसकरके मुक्तहुआभी मैं अन्नरूपहुआ अन्नकाही भक्ष्यहोवोंगा, ताते मैंमोक्षसेभयपावताहौं, तहां सिद्धान्तीकहताहै कि,हेवादिन् तू भय मतकर क्योंकि सर्वकामों के भक्षणको व्यवहार का विषयहोनेसे, यह अविद्वान् अन्न अरु अन्नादादिरूप अविद्या के किये व्यवहारके विषयको भक्षणकरता है, अरु विद्यासे ब्रह्मभावको प्राप्तहुआ जो विद्वान्है तिसको। आत्मासे। द्वितीय अन्य वस्तु हैनहीं कि जिसकरके भयकोप्राप्तहोवे, एतदर्थ मोक्षसेभय करनेकेयोग्य नहीं है।प्र०॥ जब ऐसेही है, तब यह विद्वान् "मैं अन्नहौं—३, मैं अन्नादहौं—३, इसप्रकार यह क्या कहता है,। उ०॥ जो यह अन्न अरु अन्नादादिक स्वरूप कार्यरूप व्यवहार

है सो व्यवहार कार्यरूपही है, परमार्थवस्तु नहीं, सो व्यवहार ऐसाहुआभी ब्रह्मरूप निमित्तसेहै ब्रह्मबिना असत है ।। अर्थात् अध्यस्तकार्यकी जो व्यावहारिक सत्ताहै सो वास्तवमें असत् है तथापि जो उसकी सत्यता प्रतीतिमात्र भासती है सो ब्रह्मरूप सत्य अधिष्ठानके आश्रयहुई भासती है अरु सत्यरूप अधिष्ठान विना बन्ध्यासुतवत् असत् है ।। इसप्रकार होनेकरके विद्वान् के सर्वात्मभावकी स्तुतिके अर्थ "मैं अन्नहौं ,मैं अन्नहौं, मैं अन्नहौं" "मैं अन्नादहौं, मैं अन्नादहौं, मैं अन्नादहौं" इत्यादिरूप यह ब्रह्म विद्याका कार्य्य कहते हैं ।। अर्थात् विद्वान्का सर्वात्मभाव कैसे है इसकाभी किञ्चित् बुद्ध्यनुसार बिचारकर्त्तव्य है 'एक अद्वैत, इस शब्दकाअर्थ सजातिय विजातीय स्वागतआदि सर्व भेदसे रहित निर्विकल्पवस्तुको लखावैहै अरु 'सर्व, इस शब्दका जो अर्थहै सो एक अद्वैतशब्दके अर्थसे बिपरीतहुआ नानात्वका वा संघातका वा समुदायका वा भेदोंकाबोधकहै, ताते एक इसशब्द केअर्थमें सर्व इसशब्दके अर्थकाप्रवेश होवेनहीं, ताते ' सर्वात्म, इस शब्दमें जो आत्मशब्दके साथ सर्व शब्दका कथनहै सोकथ-नमात्रही है, जैसे एक मृत्तिकामें उससे अभिन्नहुये घट सरावादि हैं,तैसेभी एक अद्वैत निराकार परिपूर्ण आत्माविषे सर्वशब्दका विषयनहीं अरु रज्जुमें सर्पवत्भी अद्वैत निराकार आत्मामें सर्व शब्दका अर्थ नहीं क्योंकि अदृश्यमें दृश्यकी अरु निराकार में साकारकी भ्रान्ति होवेनहीं, अरु जिस शास्त्रकारोंने एक अद्वैत निराकार आत्मा में मृत्तिका में घटादि अरु रज्जुमें सर्पादिवत् सर्व शब्दकाविषय नानात्वमानाहै तिन्होंने मायाको स्वीकारक-रके मानाहै ताते उनकाकथन मायामात्र है अरु ,या, मा, सा माया अर्थात् जो वास्तवमें होवेनहीं केवल कहनेमात्रही होवे सो माया अरु ऐसी कथनमात्रही जो माया सोशुद्ध एक अद्वैत आत्माविषे कल्पकके अभावसे हैनहीं, अरु अमायी (मायारहित) शुद्ध आत्माके अनुभवमें मायामात्रभी नानात्वनहीं, ताते केवल

अविद्याकरके कल्पित नानात्वहै परन्तु अविद्या जबअपनेआश्रय शुद्ध अद्वैत आत्मा में परिणामहोतीहै तब अविद्यारूप कल्पक के अभावहुये कल्पनामात्रभी नानात्वनहीं जैसेरज्जुके ज्ञान में जब रज्जुका अज्ञान अपने परिणामभावको पावताहै, तब अपने कल्पकके अभावसे कल्पित सर्पभी अभावहोता है तैसे। अर्थात् तमकी अरु अज्ञानकी वस्तुको यथार्थ न लखावनेबिषे एकताहै अरु प्रकाश अरु ज्ञानकी वस्तुको यथार्थ लखावने बिषे एकताहै क्योंकि बाह्यके तमको पायके तिसके आश्रय अन्तरका अज्ञानरूप तम रज्जुरूप वस्तुको सर्पादिरूपसे अन्यथाकर देखावेहै, अरु जब बाह्यका दीपकादिकोंके निमित्तका प्रकाश होता है तब तिसके आश्रय अन्तरका ज्ञानरूप प्रकाश रज्जुरूप वस्तुको ज्योंकीत्यों लखावे है, अरु जब बाह्यका प्रकाश अरु अन्तर का ज्ञान एकत्रहोतेहैं तब बाह्यका तम बाह्यके प्रकाशमें अरु अन्तरका अज्ञान अन्तरके ज्ञानमें परिणामको पावते हैं तब उस निर्विकार शुद्ध रज्जुबिषे कल्पकके अभावहुये पुनः भ्रान्तिमात्रभी सर्परहेनहीं, अरु जैसेसर्पका कल्पकअज्ञान ज्ञानरूप परिणामको पावताहै तबवो कल्पित सर्प अपनेरज्जुरूप अधिष्ठानमें परिणामको पावताहै। सोअपनेकारण कल्पक अज्ञानके अभावहुयेपुनःवो भ्रांतिमात्रसर्पभी उत्पन्नहोवेनहीं, अरुउसशुद्धरज्जुकातोकालत्रय मेंभीसर्पका गंधमात्रभीनहीं वो अपनेएक अद्वैत स्वरूपके यथार्थ अनुभवमें दूसरे सर्प को जानतीभी नहीं जो सर्प क्या अरु कैसा होताहै तैसेही एक अद्वैत आत्मा को सर्वत्र परिपूर्णतासे घन शिलावत् यथार्थअनुभव करताहै तिसविद्वानके अनुभवमें सिवाय एक अपने आप अद्वैत परिपूर्ण अखंड आत्माबिषे सर्व शब्दके विषयका गंध भी नहीं, तातें उसके सर्वात्मअनुभव में यह भाव नहीं कि कुछ सर्व शब्द का विषय है अरु तिसका मैं आत्मा होनेसे सर्वात्मा हौं, किन्तु उसके अनुभव में ऐसा है कि मेरे एक अद्वैत परिपूर्ण स्वरूपमें अज्ञान के अभावसे सर्व शब्द

का विषय कल्पनामात्र भी नहीं ताते वास्तव करके मैं सर्व का आत्मा वा सर्वरूप आत्मा नहीं सर्व विकल्प कल्पनासे रहित अवाच्य निर्विकल्पहो अरु जो अज्ञानकरके मायाके आश्रय मुझ विषे नानात्व की कल्पना करते हैं तिस कल्पनाका आश्रय अधिष्ठान होनेसे उनके अनुभवका नानात्व जो वास्तव करके मेरे विषे गंधमात्रभी नहीं, सोभी मैंही हौं ताते मेरे बिषेसर्व शब्द के विषयके अभावसे जो हौं सो मैंही हौं अरु अविद्या करके कल्पित अरु मेरे वास्तव स्वरूपमें अत्यन्त अभावरूप अविद्यानकरके भासमान अन्न अरुअन्नाद सो भी मैं हीहौं । इसप्रकार सम्यक् आत्मानुभवि विद्वान् अपने वास्त वस्वरूपमें सर्वशब्दके विषयको न देखता अपनेसर्वात्मपनेको अनुभवकरताहै । एतदर्थ उक्त प्रकारके ब्रह्मभूत विद्वानको अविद्याके नाशहुये अविद्यारूप निमित्तका क्रिया भयादिकदोषोंका विद्वान्केबिषे गंधमात्रभीनहीं। इस अभिप्रायसे ब्रह्मभूत विद्वान् पुनः कहताहै कि ब्रह्मादिक भूतों करके भोगने योग्य वा जिसबिषे भूत होवेहैं ऐसाजोभुवन है तिस । चतुर्दशादि । सर्व भुवनोंको मैं परमेश्वर रूपसे संहार [ईश्वर रूपताके ज्ञानसे मैं द्वैतका बाधकरताहौं , तातेमुझको भयका कारण नहीं । अर्थात् " द्वितीयाद्वैभयंभवति " इत्यादि प्रमाणसे भयकाहेतु अज्ञानजन्य द्वैतभावहै, तिसका विद्वान्ने एक अद्वैत सर्वात्म ज्ञानकरके निःशेष बाधकिया है ताते उसविद्वानको भयका हेतु रंचकमात्र भी नहीं, यह अर्थ है] करताहौं अरु सूर्य्यवत् एकही कालबिषे प्रकाशवान् मेरा ज्योति है। अरु " य एवंवेद, इत्युपनिषत् राध्यते विद्युति , मानवान् भवत्येको हारेनु ॥ य एवंवेदैकञ्च " । (यह उपनिषद है, जो ऐसे जानता है, सिद्ध होताहै मानवान् होता है, एकहावु जो ऐसे जानताहै अरु एक है) अर्थात् यह द्वितिय अरु तृतीयवल्ली करके कथन किया उपनिषद् कहिये परमात्म विषयक ज्ञान , है । तिस इस उक्त प्रकार की उपनिषद् को " शान्तोदान्तउपरतास्तितिक्षुः

समाहितो भूत्वा" शान्त (बाह्येन्द्रियकी उपरामता) दान्त(मन का दमन वा तृष्णादि दोषोंकी निवृत्ति) उपरति (पुत्रादि एषणाकी निवृत्ति) तितिक्षा (शीतोष्णादि द्वंद्वकी सहिष्णुता) समाहित चित्त (चित्तकी एकाग्रता) इसप्रकार साधन सम्पन्न होयके। भृगुवत् महान् तप (एकाग्र चित्तसे सम्यक् विचार) को आश्रय करके जो उक्त प्रकार। ब्रह्म आत्मा की अभेदताको सम्यक् प्रकार। जानता है, तिसको अग्रिम कथित फल होता है। सिद्ध होताहै। अर्थात् उस साधन सम्पन्न विचारशील विद्वान् पुरुषको अपने आपविषे सर्वात्मभाव अनुभव सिद्ध होताहै। मानवान् होताहै। अर्थात् उस ब्रह्मभूत पुरुषको लोक बिषे विवेकी पुरुष ब्रह्मपनेका मान देते हैं।एकहावु।एकही विस्मय (आश्चर्य)है।जोपुरुषअनादिकालकेअविद्याकरके अल्पज्ञजीवभाव को पाया सन्ताजन्म जरा मरणादिकोंके क्लेशोंको अनिवार्यतासेपावता अरु अपने किये शुभाशुभ कर्मोंकेआश्रय स्वर्गनरकादिकोंमें सुखदुःख भोगता वारंवार देवतासे तृण पर्यन्त शरीरोंको धारता तापत्रयरूपअग्निकरके जलताहायहायकरता रोवतासुखप्राप्तिकी कासनासे दीनहुआ वृक्ष पाषाणादिकोंको पूजता कामनाकी असिद्धि अरु अनिवृत्तिसे सर्व ओर भ्रमता सर्वकरके तिरकापाया, अपनेको पापी अपराधी अतिदीन नारकी ईश्वरादिकोंका किंकर मानतारहा। सो पुरुष ब्रह्मविद्याके प्रताप से अपने स्वरूप को यथार्थ साक्षात् अनुभवकर ईश्वरादिकोंकाभी ईश्वर ब्रह्मभूतहुआ ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंकरके पूज्य सर्वात्मभावसे स्थित अभय अक्रियअविनाशीअजअद्वय सत् चैतन्यआनन्दअनन्तपरमानन्दमय होताहै,यही ब्रह्मविद्याकी अलौकिक विलक्षण आश्चर्यरूपा शक्ति है। । इसप्रकार जानताहै।अरु एकहै॥ ।अर्थात् अपनेआप यथार्थ आत्मानुभवमें सर्व शब्दके विषयको देखता सापेक्षिक एक संख्या से रहित सर्व संख्यातीत एकअद्वैत अर्थात् द्वैतसंख्याकी सापेक्षिक जोएक संख्याहै तिस एक संख्यातीत सम अद्वैत है। ॥

भृगुस्तस्मै यतो विशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तत्त्रयोद-शान्नं प्राणंमनो विज्ञानमितिविज्ञाय । तंतपसा द्वादश द्वादशानन्द इति । सैषा दशान्नं नास्नियात् । प्राणःश-रीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहुकुर्वीत । पृथि-व्यामाकाश एकदशैकादश । नकञ्चनैक षष्टिरेकान्न विंशतिरेकान्नविंशतिः । सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषाव है ॐशान्तिःशान्तिः शान्तिःभृगुरित्युपनिषत् शन्नोमि-त्रः । आविद्वक्कारम् ॐशांतिः इतिदशमोनुवाकः ५० ॥

इतिभृगुवल्ली इति तैत्तिरीयोपनिषत्सम्पूर्णम् ॥

हे सौम्य, " सह नाववतु, सहनौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवाव है । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषाव है " । सो (परमात्मा) हमारी (गुरु शिष्यकी आसुरी सम्पदासे) रक्षाकरो, अरु सो (परमात्मा) हम (गुरु शिष्यको अपना अभेदानन्द) भोगावो, अरु सो (परमात्मा हमारे विषे निदिध्यासन समाधिका) सा-मर्थ्यकरो, अरु (हे परमात्मन) हमारा अध्ययन किया (उप-निषद् अध्यात्मशास्त्र ब्रह्मविद्या सो) अविद्यारूपा अपराविद्या प्रवृत्तिशास्त्र, तिसकी विस्मृति पूर्वक । (अर्थात् " अन्यावाचो विमुञ्चथ " यह श्रुति ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्र से इतर भाषण करनेका निषेध (त्याग) कहती है ताते, अरु ब्रह्मविद्याके विचार-वान्को अपराविद्या प्रवृत्तिशास्त्रकी स्मृति विक्षेपकारीहै ताते।) तेजस्वीहो, अरु हम शिष्य अरु आचार्य (किसीप्रकारके भी नि-मित्तको पायके) परस्परमें द्वेषको न प्राप्तहोवें, । ॐ (यह सत्य है । अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति विषे " एतदालम्बनंश्रेष्ठं " यह प्रणवोपासनाही सत्य (मुख्य) है, यह मैं सत्य कहताहौं " ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः " शान्तिहोवो, शान्तिहोवो, शान्ति होवो॥

यह जो उपनिषद् विद्याके अध्ययन वा पाठकरनेके आदि अन्त में शान्ति पाठकरना कहाहै तहां पूर्व के शान्ति पाठसे विद्याके समस्त अध्ययन होने पर्यन्त आध्यात्मिकादि क्लेशकी निवृत्ति के अर्थ परमात्मासे प्रार्थनाहै, अरु अन्तके शान्तिपाठसे अध्ययन कीहुई विद्याकीउक्त विघ्नोंसेविस्मृतिकी निवृत्तिकेअर्थ परमात्मा से प्रार्थनाहै। अरु जहांकहीं विघ्न विक्षेपहोताहै तहां आध्यात्मिकादि क्लेशोंके निमित्तसेही होताहै, एतदर्थ मुख्यकरके उक्त विघ्नों की निवृत्तिके अर्थही आदिअन्तमें परमात्माकी प्रार्थनारूप शान्ति पाठहै ॥ हे सौम्य इस मन्त्रके आरंभमें "भृगुस्तस्मै" भृगु तिस के अर्थ, यहां से लेके "एकान्नविंशति" एक उन्नीस १९, यहां पर्यन्त जो इस तृतीयाध्यायके मन्त्रकी स्मरणार्थ संखलाहै, तिस को निरुपयोगी जानके भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजीने अर्थकिया नहीं, अरु तिसही अभिप्रायसे आनन्दगिरिने, वा अन्य भाषाटीकाकारोंने भी तिसका अर्थ कियानहीं। एतदर्थ ज्येष्ठ श्रेष्ठोंकी परम्परासे मुझ अल्पज्ञने भी उक्त मन्त्रों के अर्थ की कल्पना किया नहीं ॥ १०। ५० ॥ इति दशमोऽनुवाकः १० ॥

इति तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक
तृतीयोध्याय समाप्तम् ॥

इतिश्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का अतिअल्पज्ञ शिष्य
यमुनाशंकर नामक नागरब्राह्मण कल्पित यह तैत्तिरीय
उपनिषद् का भाषा भाष्य समाप्तम् ॥

—o—

ॐ हरिः ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

लखनऊ मुंशीनवलकिशोर(सी, आई, ई)के छापेख़ानेमेंछपी ॥

फ़रवरी सन्१८९१ई० ॥

अध्यात्मविचाररामायण ॥

इसमें सातों काण्डों की कथा वेदान्तमें बर्णन की गई है इसको भी कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण ने अतीव लालित्यता के साथ निर्म्माण किया है ॥

प्रश्नोपनिषद् ॥

यह उपनिषद् अथर्व वेद संबंधित है—इसमें श्रीपिप्पलाद आचार्य्य प्रतिकबंधी आदिकछु ऋषियोंको शिष्यभावसे पृथक् २ प्रश्नकरना और श्रीपिप्पलाद जीको यथायोग्य उनका देना जिनका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण विषयिक मार्गों से पृथक् होकर ब्रह्माराधनकरना यही एक मनुष्य शरीरका मुख्यकर्म है जिससे अन्तमें विषय विरागी होकर मोक्षभागी होता है ॥

मुण्डकउपनिषद् ॥

यह उपनिषद् अथर्ववेद संबंधितहै—और सम्पूर्ण उपनिषदों में राजावत् होनेसे जिसप्रकारसे कि शरीरमें श्रेष्ठ मस्तकहै उसी प्रकारसे यह श्रेष्ठहै और इसी कारण से मुण्डकनाम रक्खागया है—इसउपनिषद्में वादी प्रतिवादी के प्रश्नोत्तरसे ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादिका सम्भव अग्निहोत्रादि क्रियाओंका विधान मन्त्रोंद्वारा वर्णन कियागया है और देवभाषामें उत्तम तिलक रचागया है जिससे सहजमें अभिप्राय विदित होजाता है ॥

ऐतरेयउपनिषद् ॥

यह उपनिषद् ऋग्वेद के ब्राह्मणभाग से सम्बंधित है—इस में मुख्य ब्रह्मविद्याका वर्णन है ॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

जिसे बाजसनेयी संहिता भी कहते हैं—इस उपनिषद् में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशहीमें घटित कियाहै ॥

मिताक्षराका विज्ञापन ॥

भगवान् याज्ञवल्क्यजी ने संसारमें मर्यादास्थित रखने और सर्व साधारणके उपकारदृष्टिसे अनेकानेक प्राचीन आचार्यों और महर्षिगणों के मतलेकर मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तकाण्ड नामक तीनभागोंमें निर्माण कियाथा- यह याज्ञवल्क्यस्मृति, भारतवासीमात्र चतुर्वर्णों का मुख्य धर्मशास्त्र है और इसीके अनुसार यहांके लोगोंके धर्मसम्बन्धी समस्तकार्य होते चलेआते हैं-

परन्तु यह विस्तृत ग्रंथ संस्कृतमें होनेकेकारण सर्वसाधारण के देखनेमें न आताथा इसकारण भारत देशनिवासी पुरुषों के उपकारार्थ इस यंत्रालयके अध्यक्षने बहुतसा धन पारितोषिक की रीतिपर देकर आगरानिवासी मर्यादाप्रियपण्डित श्रीदुर्गाप्रसाद जीसे श्लोक २ का उल्था कराय स्वयंत्रालय में मुद्रित कराया-

आशाहै कि धर्मसम्बन्धी कामोंमें सर्वसाधारणको यथादर्शक होनेके सिवाय भाषाग्रंथोंके भंडारमें यहभी एक अपूर्व ग्रंथहोगा और मर्यादाप्रिय बंधुगण इसे आदरपूर्वक स्वीकार करेंगे ॥

द० मालिक मतबा अवधअखबार
लखनऊ हज़रतगंज

ऐतरेयोपनिषद्

भाषाटीका सहित

जिसमें

आत्मा व ब्रह्मकानिरूपण और प्राण व प्रणव की
उपासना की व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों
के लक्षण व धर्म अच्छेप्रकार वर्णित हैं

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्रीमुंशीनवलकिशोर जीने भारत-
वर्षीय जनों के उपकारार्थ बहुतसा धन व्यय कर-
के कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर
नागरब्राह्मण से सरल देशभाषा में उल्था
कराय स्वयंत्रालय में मुद्रित कराय
प्रकाशित किया

बाजपेयि पण्डित रामरत्न के प्रबन्ध से

प्रथमबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी

मार्च सन् १८९१ ई०

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्री मद्भगवद्गीता सकल निगम पुराणस्मृति सांख्यादिसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रकासर्वविद्या निधान सौशील्यविनयौदार्य्य सत्यसंगरशौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरावतारमहानुभावअर्जुनको परमअधिकारीजानके हृदयजनितमोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसारनिस्तारक भगवद्भक्तिमार्गदृष्टिगोचरकरायाहै वहीउक्तभगवद्गीतावज्रवतुवेदांत वयोगशास्त्रांतर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्ताअपनीबुद्धिसे पारनहींपासक्के तबमंद बुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठनकरनेकी सामर्थ्य है वहकब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्केहैं-और यहप्रत्यक्षही है कि जबतक किसीपुस्तक अथवा किसीबस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्तयनुरागी श्रीमन्मुंशी नवलकिशोरजी (सी,आई,ई)ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआयातो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यह विचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्वग्रन्थ की भाष्यमें अधिकतर उत्तमता उस समयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्यकृत भाष्यभाषाकेसाथ और इसग्रन्थके टीकाकारोंकीटीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उनटीकाकारोंके अभिप्रायकाभीबोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्यजीकी शंकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलकअरुश्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूलश्लोकोंसहित इसपुस्तकमें उपस्थितहै ॥

ॐ

अथ विज्ञापनम्

विदितहो कि यह ऋग्वेदके ब्राह्मण भागसम्बन्धी ऐतरेयनामकउपनिषद् (ब्रह्मविद्या) है, तिसका जो श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यजीकृत महाभाष्य, अरु तिसपर आनन्दगिरिकृत टीकाहै, तिसके अनुसार, मूलमन्त्रसहित, यह भाषाभाष्य मैं अतिअल्पज्ञ अविद्वान्ने, अपने गुरु श्री १०१ स्वामी ब्रह्मानन्दमहाराजकी कृपाबलसे, अरु सर्वजनहितकारी परमधार्मिक ब्रह्मनिष्ठ मुन्शी नवलकिशोर (सी,आई,ई) की आज्ञा से अनुवादकियाहै, अरु मैं अतिअल्पज्ञ होनेसे सर्वसुज्ञविवेकी पाठकजनोंसे सविनय प्रार्थनाकरताहौं कि इस भाषाभाष्य में जोकुछ अनुचित लेखहुआहोय तिसको मुझपर क्षमाकरना, अरु इस भाषाभाष्यमें बहुधा आनन्दगिरिके टीकाकी भाषा है सो श्रीद्विजवर पण्डित पीताम्बरजी महाराजकी टीकाके अनुसारहै॥

सूचीपत्रम्॥

१		पृष्ठोपरि पुष्टाक्षरोंमें श्रुतिकामूलमन्त्र
२	' '	इस चिह्नान्तर भाषानुवादमें मूलश्रुतिकेवाक्य
३	( )	इस चिह्नमें पूर्व अरु मूलश्रुतिवाक्यके अक्षरार्थ
४	[ ]	इस चिह्नान्तरमें आनन्दगिरिका अनुवाद
५	" "	इस चिह्नान्तरमें अन्य श्रुतिस्मृतिआदिकों के प्रमाण वाक्य अरु तिसके पश्चात् निकट तिसका अक्षरार्थ, ।
६	" "	इस चिह्नान्तर प्रमाणमें केवल श्रुतिवाक्यार्थ
७	। ।	इस चिह्नान्तरमें भाषाकारकरके कल्पितविचार

"इति"

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

"अथ"

ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् ॥

अथ प्रथमाध्यायगत प्रथम खंडः प्रारभ्यते

हरिः ॐ ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत् लोकान् नुसृजा इति १ ॥

श्री

ऋग्वेदीय

अथ ऐतरेयोपनिषद् भाषाभाष्य प्रारभ्यते

"अथ"

ऐतरेयोपनिषद्गत प्रथमाध्याय भाषाभाष्य प्रारंभ

"अथ प्रथम खंड भाषाभाष्य"

हे सौम्य । ["आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" (यह आगे एक आत्मा ही था) इत्यादि वाक्यों से केवल एक आत्मविद्याके आरंभके अवसरके कहनेको उक्त अर्थका कथन करते हैं] (ऋग्वेद के ब्राह्मण में) यहां पर्यन्त अपरब्रह्म (प्राण वा प्रणव) की उपासना सहित कर्म समाप्त हुआ [तिस कर्म की समाप्ति कैसे विदित होती है, यह आशंका करके कहते हैं । यहां परा-

गति शब्द का उत्कृष्ट गमन करने योग्य (अर्थात् प्राप्त होने योग्य) फलार्थहै सोयह उपासना सहित कर्मकी परगति उक्थ(प्राण) की उपासनारूप द्वारसे समाप्त किया । [उपासना सहित कर्म की समाप्ति को ही वाक्यके उदाहरण करके देखावें हैं । यहां यह अर्थ है कि, तहां " सह सर्वेण भोज्येन संयुक्तोऽध्यात्माधिदैवलक्षणः प्राणः सत्यैकशब्दवाच्यो भवति " सर्व भोज्यकरके संयुक्त अध्यात्म, अधिदैवरूप सो प्राण, एक सत्य शब्दका वाच्य होता है, । इस वाक्यसे प्राणका स्वरूप (कथन) समाप्त किया ।] " एतत् सत्यं ब्रह्म प्राणाख्यम् " "एष एको देवः" यह प्राण नामक सत्य ब्रह्म है, । यह एक देव है, । [तब वाक्य और अग्न्यादि देव कौन हैं ? यह आशंका करके, " तस्य वाक् सन्ति " "अथातोऽस्य पुरुषस्य" तिसका वाक् रूप सन्तानहै, अरु अब इस करके इस पुरुषका ? । इत्यादिक वाक्योंसे सो वाकादिक प्राणकी ही विभूतियां (विस्तार) हैं इस प्रकार कहा है । यह कहते हैं] " एतस्यैव प्राणस्य सर्वे देवा विभूतयः " " एतस्य प्राणस्यात्मभावं गच्छन्देवता अप्येति " इसही प्राणकी सर्व देवता विभूतियां हैं, अरु इस [ऐसे सर्वात्मा प्राण के कर्म सहित आत्मतत्त्व रूप करके विज्ञान से सर्व देवता के स्वरूप प्राणकी प्राप्ति रूप फल " प्रज्ञामयो देवतामयो ब्रह्ममयोऽमृतमयोऽसंभूय देवता अप्येति य एवं वेद " जो इसप्रकार जानता है, सो प्रज्ञामय, देवतामय, ब्रह्ममय, अमृतमय,होयके देवताओंको प्राप्त होताहै । इस वाक्यसे समाप्त कियाहै, इसप्रकार कहतेहैं । यहां यह भाव है कि, तिस प्रकार हुये उपासना सहित कर्म से केवल आत्मस्वरूपकी स्थितिरूप मोक्षकी असिद्धिसे,तिसमोक्षकी सिद्ध्यर्थअब केवल आत्मविद्याके आरंभका अवसर(समय)है]प्राण के आत्मभाव को पावताहुआ देवता को पावताहै । इस प्रकार श्रुति बिषे कहा है ॥ [यहां मध्य में सर्व रूप सूत्रात्माकी प्राप्ति से भिन्न, मोक्षके अभावसे तिस सूत्रात्माकी प्राप्तिरूप मोक्षार्थि

केवल आत्मविद्याका आरंभकरना युक्त नहीं । इसप्रकार किसी एक वादी के मतको उठावते हैं] सो यह देवता की प्राप्तिरूप परम पुरुपार्थहै, यह मोक्षहै, अरु सो यह मोक्ष उक्त प्रकार के उपासना अरु कर्मके समुच्चयरूप साधनसे प्राप्तहोने योग्य है, इससे अन्य श्रेष्ठनहीं । इसप्रकार कोई एकवादी निश्चयको प्राप्त हुयेहैं । तिनके (निश्चयको) निषेधकरनेकी इच्छावालीहुई यह उपनिपद् केवल आत्मज्ञानके विधानार्थ "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह (कार्यरूपजगत) आगे निश्चयकरके एकही आत्माथा › इत्यादि रूप अर्थको कहेहै ॥ [ननु "आत्मा वा इदमेक एवाग्रआसीत्" यह आगे एकही आत्माथा › इत्यादि वाक्य केवल आत्माकोही विषय करनेवाले कैसे बने, क्योंकि "सइमान् लोकानसृजत" सो इनलोकोंको सृजताहुआ › इसप्रकार लोकनकी सृष्टिकी प्रतीतिसे, अरु तिस सृष्टिकी सोपाधिक हिरण्यगर्भकरके रचित होनेसे पुराणों विषे प्रसिद्ध है ताते, अरु "ताभ्योगामानयत्" तिनके अर्थ गौवोंको ल्यावताहुआ › । इत्यादि व्यवहारोंकी लोकविषे सोपाधिक विषयभावकी प्राप्ति प्रसिद्धहै ताते । अरु पूर्व "अथातोरेतसः सृष्टिः" "प्रजापते रेतोदेवाः" अब इसके पश्चात् वीर्यसे सृष्टि होवेगी । प्रजापतिके वीर्यरूप देवहैं › इसवाक्य विषे प्रजापतिशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भको प्रसंगविषे प्राप्तकिया है ताते "तस्य तद्विषयत्वसौचित्यादात्मगृहीतिः" तिसको तिस विषयभावके उचितहोनेसे आत्मा का ग्रहणहै › इस अधिकरणसूत्र विषे उक्त पूर्वपक्षीकी रीतिसे वादी शंकाकरेहै] पुनः कर्मके सम्बन्धी केवल आत्माकेविधानार्थी उत्तरग्रन्थहै, यह कैसे जानिये, तहां कहतेहैं, कि ["आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह आगे एकही आत्माथा › इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपक्रमसे । अरु "एष ब्रह्मैष इन्द्रः" यह ब्रह्मा है, यह इन्द्रहै › । इस अनुक्रमकरके "सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्" सर्व सो प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, अरु प्रज्ञानविषे स्थित

है॰। इसप्रकार प्रज्ञानशब्दके वाच्य प्रत्यगात्मारूप अधिष्ठानवाला होनेकरके तिससे भिन्न ब्रह्मशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भादिक प्रपंच के अभावको कहके "प्रज्ञानं ब्रह्मेति" प्रज्ञान ब्रह्महै॰ इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपसंहारसे । अरु "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिति" सो इसही पुरुषको परिपूर्णब्रह्म देखताहुआ॰ इसप्रकार मध्यविषे स्मरणहोनेसे ब्रह्मआत्माके अद्वितीयभावको अन्य प्रमाणका अविषय होनेकरके अपूर्वताहै ताते । अरु "अमुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्व्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवदिति" इस स्वर्गलोकविषे सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ॰ इसप्रकार स्वर्गशब्दके वाच्य निरतिशयभावरूप सुखस्वरूप ब्रह्मविषे एकभावकरके स्थितहुये पुरुषको तिसके अन्तरभूत विषयसम्बंधी सर्वानन्दकी प्राप्तिरूप फलके कथनसे । अरु सृष्टिआदिक अर्थवादसे "स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतयाद्वाराप्रापद्यत" सो इसही सीमाको विदीर्णकरके तिसद्वारसे प्रवेशकरताहुआ॰ इसप्रकार प्रवेशका कथनहोनेसे । अरु "तस्यत्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना इति" तिसके तीनस्थानहैं, तीन स्वप्नहैं॰ इसप्रकार जाग्रदादि तीन अवस्थाके स्वप्नरूपसे मिथ्यापनेकी उक्तिरूप उपपत्तिसे, ग्रन्थके निष्प्रपंच अद्वितीय आत्माके तत्परपनेके जाननेसे अन्य अर्थकी शंकाहोनेका अनवकाशहोनेसे अरु लौकिकादिक सृष्टिके कथनसे, अध्यारोप अरु अपवादकरके उक्त आत्माके निश्चयार्थ आत्माविषे सृष्टिके आरोपसे । यहां अन्य स्थलवत् आत्मशब्दसे परमात्माकोही ग्रहण करते हैं । जैसे "तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" तिस वा इस आत्मासे आकाश होताहुआ॰ इत्यादि अन्य सृष्टिवाक्योंके श्रवणोंविषे आत्मशब्दसे परमात्माका ग्रहणहै । वा जैसे अन्य लौकिक आत्मशब्द के उच्चारणविषे आत्मशब्दसे मुख्य प्रत्यगात्माही ग्रहण करते हैं, तैसे यहां भी होनेको योग्य है, क्योंकि वाक्यार्थकरके तैसाही है ताते। अरु "आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरादिति" उत्तरग्रन्थसे अन्य

स्थलवत् आत्माकाग्रहण है, इस अधिकरणसूत्रके सिद्धान्तकी रीतिसे केवल आत्माकी परायणताके निश्चयसे उत्तरग्रन्थको सोपाधिक वस्तुकी परायणता नहींहै । इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है] अन्य अर्थके न जाननेसे इसही प्रयोजनार्थ उत्तरग्रन्थ है, यह जानतेहैं [जो कहा यहही मोक्षहै तहां कहतेहैं । यहां तिस हिरण्यगर्भके स्थूलरूप विराट्केपींडको ईश्वर क्षुधा तृषाकरके युक्त करताहुआ, यह इसश्रुतिका अर्थहै] तैसेहुये पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओं को क्षुधा तृषादिक दोषकरके युक्त होनेसे संसारीपनेको यहां श्रुति आगे "तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्" तिसको क्षुधा तृषा करके प्रार्थना करते हुये, । इत्यादि वाक्य से देखावेगी । अरु क्षुधा आदिक दोषवाला सर्व संसारही है [अरु जो वादीने कहाथा कि निरुपाधिक आत्मस्वरूप से स्थिति को विषयादिकों से रहित होने करके मोक्ष नहीं है । सो कथन असत् है, क्योंकि "तस्य योशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति" जो क्षुधा तृषा शोक मोह जरा अरु मृत्यु को लाँघता है, । इस क्षुधा आदिक के उल्लंघन की श्रुतिसे तिस ब्रह्मरूप से स्थितहुये पुरुषको तिस नियमित दुःखों की अप्राप्ति होने से, अरु "आनन्दो ब्रह्मेति" आनन्दब्रह्म है, । ऐसे जानना, इस अन्य श्रुति वाक्य से "।अमुष्मिन् स्वर्गे लोके" इस स्वर्गलोक विषे सर्व कामों को पाय के अमृत होता हुआ, । ऐसे आगे यहां भी स्वरूप से आनन्दरूपताके जानने से अरु स्वर्ग शब्दसे सामान्य सुख का वाची होने से "अनन्ते स्वर्गे लोके" "ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता" याके पीछे ब्रह्मवेत्ता स्वर्ग लोकको पायके मोक्ष होते हैं, । इत्यादिक श्रुतियों विषे ब्रह्मानन्द विषे स्वर्ग सुखकी योजना करने से तिसको विषयके अभाव हुयेभी पुरुषार्थ (पुरुषकी इच्छाका विषय, वा पुरुष करके साध्य अर्थ वा मोक्ष) होनेसे मोक्षरूपता है] क्योंकि परब्रह्म के क्षुधा आदिकोंके अभावकी प्रतिपादक श्रुतिहै ताते ॥ [इसप्रकार निष्प्र-

पंचरूप आत्माके विद्याकी मोक्षसाधन ताको अंगीकार करके, तिसविद्याकी कर्मरहित पुरुष कहिये संन्यासी बिषे स्थितहोनेके नियमरूप केवलता संभवेनहीं। इसप्रकार कहताहुआ वादी संन्यासीकेअर्थ आक्षेप करताहै] इसप्रकार केवल आत्माकाज्ञान मोक्षका साधकहोवो, परन्तु इसबिषे अकर्मी (संन्यासी) पुरुषही अधिकारको प्राप्तहोता है ऐसानहीं, क्योंकि विशेषके अश्रवणसे, अर्थात् कर्मरहित संन्यासरूप अन्य आश्रमीपुरुषही यहां मोक्षका अधिकारीहै ऐसे श्रवण कियानहीं ताते,। अरु श्रुतिबिषे बृहतीसहस्त्ररूप कर्मको प्रसंगबिषे प्राप्तकरके अनन्तरही आत्मज्ञानका आरम्भ करते हैं। ताते यहां (आत्मज्ञानकेबिषे) कर्मी पुरुषही अधिकारको पावताहै। कर्मका त्यागी नहीं। [इसप्रकार कर्मके सम्बन्धसे रहित केवल आत्मविद्याको अंगीकारकरके, तिस विद्याका कर्मरहित पुरुष (संन्यासी) बिषे स्थितहोनेका नियम निषेधकिया। अब अंगीकारका परित्यागकरेहै। यहां यह अर्थहै कि, कर्मकाण्ड बिषे कर्मसम्बन्धी ज्ञानके विषयकी सर्वात्मताका कथन है ताते, " एष ब्रह्मा " यह ब्रह्मा है, इत्यादिक वाक्योंसे यहां ' इस उपनिषद् बिषे ' भी सर्वात्माका कथन है ताते, अरु तिस लिंगकरके इस आत्मज्ञानके भी कर्मसम्बन्धीपनेके अनुमानसे आगे कहनेके आत्मज्ञानको कर्मसम्बन्धीपना। अर्थात् कर्मरूप सहकारीकरके युक्तपना। है] अरु कर्मका असम्बन्धी आत्माकाज्ञान नहीं हैं, क्योंकि यहां पूर्ववत् अन्तबिषे कर्मकी समाप्तिहै ताते। जैसे कर्मसम्बन्धी पुरुषको सूर्यरूपसे स्थावर जंगमादि सर्वप्राणियोंका आत्मापना " सूर्य्यात्माजगतस्तस्थुषश्च" सूर्यआत्मा, इत्यादिरूप वाक्यकरके ब्राह्मणभागाबिषे अरु मन्त्रभागबिषे कहाहै। तैसेही "एष ब्रह्मा एष इन्द्रः" यह ब्रह्माहै यह इन्द्रहै,। इत्यादिरूप वाक्यका आरम्भकरके सर्वप्राणियोंका आत्मापनाकहा है। अरु " यच्च स्थावरजंगमं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्" औ जो स्थावर जंगम सर्व है प्रज्ञा । अर्थात् स्वप्रकाश चैतन्य।

रूप नेत्र । निर्वाहकरने । वालाहै, । इसप्रकार अन्तविषे उपसंहार । समाप्त । करेंगे । अरु तैसेहुये संहितारूप उपनिषद् विषे " एतंह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त " इसही बृहतीसहस्र नामक सत्र (यज्ञ) बिषे ऋग्वेदकेवेत्ता विचारतेहैं, इत्यादिरूप वाक्यसे कर्मके सम्बन्धीपनेको कहके " सर्वेषु भूतेषु एतमेव ब्रह्मेत्याचक्षत " सर्वभूतोंविषे इसहीको ब्रह्म ऐसा कहतेहैं, इसप्रकार उपसंहार । समाप्ति । करते हैं । तैसे " तस्यैव योऽयमशरीरः प्रज्ञात्मेति " जो यह अशरीर प्रज्ञारूप आत्माहै, इसप्रकार कथनकिये तिसही आत्माकी " यश्चासावादित्य एकमेव तदिति " जो यह सूर्य्यविषे है तिसको एकही जानना, इसप्रकार एकता कहीहै । यहां भी " कोयमात्मा " कौन यह आत्माहै, इसप्रकार आरम्भकरके " प्रज्ञानंब्रह्मेति " प्रज्ञानब्रह्महै, इसप्रकार तिसकी प्रज्ञारूपताकोही देखावेंगे । तातें कर्मका असम्बन्धी आत्मज्ञान नहींहै, अरु अन्यथा । कर्मका असम्बन्धी होनेसे । पुनरुक्तिदोषसे अनर्थताहोवेगी । कैसे अनर्थता है कि " प्राणोवाअहमस्म्यृषे " यह प्रसिद्ध प्राण मैं हौं, । इत्यादिरूप ब्राह्मण से । अरु " सूर्य आत्मा " सूर्य आत्मा है, । इस मन्त्रभागसे निर्द्धार किये आत्मा का " आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् " यह आगे निश्चय करके एकही आत्मा था, । इत्यादि ब्राह्मण भागसे " कोयमात्मेति " इस प्रश्नपूर्वक पुनः निर्द्धार करना पुनरुक्तिदोष है, सोई अनर्थता है, इस प्रकार जो कहे [सोई शंकाका परिहार । समाधान । करते हैं] सो बने नहीं, क्योंकि तिसही आत्मा के अन्य धर्म विशेषके निर्द्धारणार्थ " कोयमात्मा " यह प्रश्नरूप श्रुति । । होने से तिस वाक्य को पुनरुक्ति दोष नहीं । कैसे पुनरुक्ति दोषका अभाव है । ऐसा पूछे तो । कि तिसही कर्म सम्बन्धी आत्माके जगत् की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारादिक धर्म विशेष के निर्द्धारणार्थ । उक्त श्रुतिके । होने से, वा [अन्यप्रकारसे भी पुनरुक्ति दोष का परिहार करतेहैं] केवल आ-

त्मा के उपासनार्थ होने से, अर्थात् " आत्मा " इत्यादिरूप जो ग्रंथ का समूह है सो कर्म से अन्य ठिकाने आत्मा की उपासना की अप्राप्तिके हुये, अरु कर्म के प्रसंग बिषे । आत्मा की उपासना का विधान न किया होने से केवल आत्मा भी उपासना करने के योग्यहै। इस अर्थ बिषे भेदअरु अभेदकी उपास्यतासे, वा एकही आत्मा कर्म बिषे भेद दृष्टिवाला । अर्थात् इदं प्रत्यय के विषयरूप से उपास्य । सोई अकर्म काल बिषे । अर्थात् देहादि अनात्मा बिषयक अहं भावके अभावकाल बिषे अरु श्रवणज्ञानजन्य अपरोक्षज्ञान काल बिषे । अभेदता से । अहं प्रत्यय की विषयतारूप से । भी उपासना करने योग्यहै। इसप्रकार पुनरुक्ति दोष का अभावहै । अरु "विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयंसह। अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते" जो विद्या अरु अविद्या इन दोनों को साथही अनुष्ठान करने योग्य जानता है सो अविद्या से मृत्युको तरिके विद्या करके अमृत (मोक्ष) को पावता है, । अरु " कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः " यहां कर्मों को करताहुआ शत १०० वर्ष पर्यन्त जीवने की इच्छा करे, । इस प्रकार वाजसनेयी । यजुर्वेदियों की । संहिता बिषे कहा है । अरु जिस करके । प्रत्यक्ष, अरु उक्त आदिक अनेक श्रुतियोंके प्रमाणसे । मनुष्यों की शतवर्ष से अधिक आयु नहीं, एतदर्थ कर्म के परित्याग से आत्मोपासना करनी ॥ अरु जो कहे कि " तावन्ति पुरुषायुषोऽह्ना सहस्राणि भवन्ति " तिससे पुरुषकी आयु के सहस्र दिवस होवे हैं, । इस प्रकार पुरुष का आयु शतवर्ष का देखाया है । सो आयु कर्म से ही व्याप्तहोताहै, तिसमें प्रमाण " कुर्व्वन्नेवेहकर्म्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः" " यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति " "यावज्जीवं दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत" यहां कर्म को करता हुआही सौ वर्ष जीवने को इच्छे, जीवन पर्यन्त अग्निहोत्रको होमता है, जीवन पर्यन्त दर्श पौर्णमास करके यजन करे, इत्यादिरूप कर्म मन्त्रों ने देखाया है ।

अरु " तं यज्ञपात्रैर्दहन्तीति च " तिसको यज्ञ के पात्रमें दहन करे, । अरु तीनऋण श्रुतिसे । प्रख्यात है । तहां " व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्तीति " व्युत्थान करके । गृहस्थाश्रम से उठके । पीछे भिक्षाटन को करते हैं, । इत्यादि संन्यासादिकों के प्रतिपादक जे शास्त्र हैं, सो आत्मज्ञानकी श्रुति परायण अर्थ वादहै, वा अनधिकारी के अर्थ है,[इस । वादी के । कथनको सिद्धान्ती परिहास करहै] सो कहना बने नहीं, क्योंकि परमार्थतारूप आत्मा के विज्ञान के होते फल के अदर्शन हुये क्रिया का असंभव है । अर्थात् " आत्मैवेदं सर्वम् " यह सर्व । नामरूपात्मक जगत् । आत्मरूपही है. इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समस्त नामरूपात्मक जगत् को परमार्थ करके आत्मरूपताही है इस प्रकार जब एक अद्वैत आत्मा का विज्ञान होता है तब 'पूर्व अज्ञानदशा में भासता रहा जो आत्मा से इतर करके यज्ञादि कर्मों का फल स्वर्गादि तिनका आत्मा से इतरकरके दर्शन का अभाव होता है, अरु कर्म जो होता है सो स्वर्गादि फलको सत्य जानके तिनकी कामना से होता है, अरु उक्त प्रकार जब सर्वरूपसे सुशोभित एक अद्वैत आत्माके विज्ञानसे स्वर्गादि दृष्टिका अभावहुआ तबतिसकीकामनासे होनहारकर्म तिनकाहोना तिस आत्मविज्ञानी के यहां संभवे नहीं। अरु जो तैंनेकहाथा किकर्मीको आत्माका ज्ञान होताहै अरु सो आत्मज्ञान कर्म का संबंधी है इत्यादिक, सो बनेनहीं, क्योंकि " ह्याप्तकामं सर्वसंसारदोषवर्जितं ब्रह्माहमस्मि " पूर्णकाम सर्वसंसारके दोषोंसेरहित ब्रह्म मैंहूं, इसप्रकार । अपनेआप । आत्मपने करके तत्त्व (ब्रह्म) के जानने से कर्मसे वा कर्त्तव्यसे अपने कुछ भी प्रयोजनको न देखनेवाले ज्ञानीको फलके अदर्शनहुये क्रिया संभवे नहीं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि फलके अदर्शनहोनेसे भी विद्वान् । वेदकी । प्रेरणाको प्राप्तहुआ होनेसे क्रियाको करता है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि प्रेरणाका अविषय आत्माका ज्ञानहै ताते । अरु अपने इष्टकीप्राप्ति

अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनको देखताहुआ तिसके उपायकी इच्छावाला जो पुरुष होताहै तिसको लोकबिषे शास्त्रकी प्रेरणाका बिषय देखाहै। परन्तु तिसके विपरीत प्रेरणाका अविषय ब्रह्मात्माका दर्शीनहीं। अर्थात् जिस कामनावाले पुरुषको धनादिक इष्ट वस्तुकी प्राप्तिकी, अरु रोगादिक अनिष्टकी निवृत्ति की कामना है तिस पुरुषके अर्थ उपाय करनेकी शास्त्र आज्ञा करेहैं कि अमुक कर्म करने से धनादिक की प्राप्ति अरु अमुक कर्म करने से रोगादिकों की निवृत्ति होवेगी ताते अपने प्रयोजनार्थ कर्म करे, ताते सकामी पुरुष शास्त्रोक्त कर्म प्रेरणा का विषय लोक बिषे देखा है। परन्तु तिस सकाम पुरुषसे विपरीत अकामी पुरुष कि जिसकी दृष्टिमें न तो कोई इष्टवस्तुहै न कोई अनिष्टवस्तु है, अरु तिसही कारणसे उसको प्रयोजनका अभाव है, क्योंकि इष्ट अनिष्ट प्रयोजनादिक द्वैत भाव बिषे होता है सो उसको है नहीं ताते ब्रह्मआत्माके अभेद दर्शीको इष्ट, अनिष्ट, प्रयोजन, ये सहित अपने कारण द्वैतभावरूप अविद्याके अशेष अभाव हुआहै तिस अकामी अभेददर्शी पुरुषको शास्त्रकी प्रेरणाका विषय लोकबिषे देखानहीं "तस्य कार्यं न विद्यते"। अरु जब ब्रह्मात्मभावका दर्शी हुआभी पुरुष (शास्त्रकी) प्रेरणा को प्राप्तहोगा, तब प्रेरणाका अविषय हुआ हुआभी कोई पुरुष (शास्त्रकी) प्रेरणाका अविषय न होवेगा। अरु ऐसा होनेसे सर्व कर्म सर्व पुरुष करके सर्वदा करने के ही योग्य होवेंगे। सो अनिष्ट हैं। अरु सो (ब्रह्मात्मदर्शी) विद्वान् किसी करकेभी प्रेरणा करनेको शक्य नहीं। (अर्थात् ब्रह्मात्मदर्शी ब्रह्मभूतपुरुषको किसी प्रकारकी भी प्रेरणा करनेको किसीको भी सामर्थ्य नहीं)। क्योंकि [ननु अन्यके नियोज्य (प्रेरणाकेविषय) होनेके अभावहुये भी वेदवाक्यसे विद्वानको नियोज्य होवेगा, इसप्रकार द्वितीय पक्षकी आशंका करके, ईश्वरभावको प्राप्तहुये तिस विद्वानकोवेद की स्वरूपताके ज्ञानपूर्वक होनेसे अरु अपने वचनसे आप के

नियोज्यपने के हुये एक ठेकाने कर्म अरु कर्त्ताके विरोधसे विद्वान्को वेदवाक्यसे नियोज्यपना संभवे नहीं । इसप्रकार कहते हैं] वेदको भी । तिस विद्वान् से । उत्पन्न होनेपना है ताते । अर्थात् जिस विद्वान्के स्वरूप से वेदकी उत्पत्ति है तिसपर वेदकी आज्ञा चले नहीं । । अरु जिस करके अपने विज्ञानसे उत्पन्न हुये वचनों से आप प्रेरणा को पावता नहीं, अरु [किंवा व्याकरणादिकों को तिनके कर्त्ता पाणिनि आदिक करके ज्ञेय (जानने योग्य)वस्तुके एकदेशको विषय करनेपनेके देखनेसे ईश्वरजन्य वेदको भी ईश्वर करके ज्ञेयवस्तुरूप एकदेशको विषय करनेकरके अल्पज्ञभावसेभी अधिक जाननेवाले विद्वान्रूप ईश्वर का नियामकपना अयुक्त है । इसप्रकार कहते हैं] बहुत अर्थका वेत्ता स्वामी भी अविवेकी भृत्यसे प्रेरणाको पावता नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि वेदको नित्यताके हुये स्वतन्त्र होनेकरके सर्व केप्रति प्रेरणा करने का सामर्थ्य है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि निकटही उक्त दोषहै ताते । अरु प्रेरणा से रहित विद्वान्को भी कर्म कर्त्तव्यहै, तब सर्व पुरुषों करके सर्वदा विहित करनेकोयोग्य होवेगा यह कथनकिया दोष निवारण करनेको अशक्यही है अरु जो [असंगी ब्रह्मरूपताकेज्ञानको अरु कर्मकी कर्त्तव्यताको शास्त्ररचित होने करके दोनों शास्त्रों के भी प्रमाणपने के अविशेषसे कदाचित् । किसी समय । आत्मज्ञानका अरु कदाचित् । किसी समय । कर्मका अनुष्ठान होवेगा । इसप्रकार वादी शंकाकरताहै] कहे कि सो आत्मज्ञान भी शास्त्रनेही कहाहै, अर्थात् जैसे कर्मकी कर्त्तव्यता शास्त्रने कही है, तैसे तिसही कर्मीको ज्ञानका भी शास्त्र करके विधानकियाहै, सो बनेनहीं, क्योंकि शास्त्रको विरुद्ध धर्मकी बोधकताका असंभवहै । अर्थात् आप्तपुरुष वा महत्पुरुषका वाक्य शास्त्रको एकही पुरुषकेअर्थ परस्परमें विरुद्ध ऐसे धर्मका उपदेश करना संभवेनहीं । । अरु एकही शास्त्रविषे अग्निकी शीतलता अरु उष्णतावत् पुण्य पापका संबंधीपना अरु तिससेविपरीत-

पना बोधनकरनेको शक्यनहीं। अरु [इसप्रकार प्रथम विद्वान्
को प्रेरणाके अविषय अकर्त्ता आत्माका दर्शी होनेसे, अरु प्रयो-
जनके अर्थीहोनेके अभावसे कर्म हैनहीं, इसप्रकार कहा। अब
अविद्वान्को आपसे इष्टकी प्राप्ति अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्र-
योजनके अर्थी होनेके अभावहुयेभी "स्वर्गकामोयजेत" स्वर्गकी
कामनावाला यज्ञकरे, इस शास्त्रकरकेही प्रयोजनका अर्थीपना
सिद्धकरतेहैं, यह आशंकाकरके, स्वभावसे प्राप्त प्रयोजन के अ-
र्थीपनेके अनुवादसे तिसका उपायमात्र शास्त्रकरके बोधनकिया
है,परन्तु सो प्रयोजनका अर्थीपना सिद्धकरतेनहीं। अन्यथा अ-
र्थात् स्वभावसेबिना शास्त्रकरकेही प्रयोजनके अर्थीपनेकोबोधन
कियेहुये शास्त्रकेज्ञानसेरहित पुरुषको तिसप्रयोजनकी अर्थिता
नहोवेगी,इसप्रकार कहतेहैं यहां चिकीर्षा शब्दसे फलकीइच्छा-
मात्रही कहते हैं, परन्तु करनेकी इच्छानहीं क्योंकि फलविषे
तिस कर्त्तव्यताका अभाव है ताते] अपने इष्टके प्राप्तकरनेकी इ-
च्छा अरु अनिष्टके निवृत्तिकरने की इच्छा शास्त्रकरके करीहुई
नहींहै, क्योंकि सर्वप्राणियोंको तिसके दर्शनसे। अरु सो दोनों
। इच्छा । जब शास्त्रकृतहोय, तब गोपाल (शूद्र) आदिकोंकोसो
न होनीचाहिये,क्योंकि उनको शास्त्रकी । अनाधिकारतासे । अ-
ज्ञातहै ताते [ननु, शास्त्र जोहै सोजब कृत अरु अकृतके सम्बन्धी
पनेको अरु तिससे विपरीतपनेको विरुद्धहोने से बोधन करता
नहीं, तब कृत अरु अकृतके असम्बन्धीपनेकोही बोधनकरेगा।
यह आशंकाकरके,अरु तिसको अन्य प्रमाणसे असिद्धहोनेकरके
अवश्य शास्त्ररूप प्रमाणकरके बोधनकरने की योग्यताके कहने
योग्यहुये, अन्य प्रमाणकरके सिद्ध तिससे विपरीतवस्तुको शास्त्र
करके बोधनकरनेकी योग्यता नहीं है, विरुद्धहोनेसे। इसप्रकार
कहतेहैं, यहां यह अर्थहै कि निश्चयरूप अर्थके कियेहुये "यह
किया, यह कर्त्तव्यहै" इसज्ञानका विरोधी आत्मज्ञान, जब शास्त्र
करके किया तब तिस ज्ञानकी सिद्धिके अर्थ तिससे विरुद्धकर्त्त-

व्यताको कैसे उत्पादनकरेगा] जो आपसेही अप्राप्तवस्तु है सो शास्त्रकरके बोधनकरनेके योग्यहै । अरु जब सो निश्चयके अर्थ कियेहुये, यहक्रिया अरु यह कर्तव्य है, इसप्रकारके ज्ञानका जो विरोधी सो आत्मज्ञान शास्त्रने । प्रतिपादन । किया, तब तिस । आत्मज्ञानसे । बिरुद्ध कर्तव्यताको सो शास्त्र 'अग्निबिषे शीतलतावत् अरु सूर्यबिषे अन्धकारवत् कैसे उत्पन्न । वा प्रतिपादन । करेगा, किन्तु किसीप्रकारभी करैनहीं । अरु जोकहै [बिधिके अभावसे वेदान्तको, तैसे । अन्याबिधिशास्त्रवत् । आत्माकी बोधकता नहींहै, यह आशंकाकरके, बिधिको पुरुषको कर्तव्यके सन्मुखकरनेरूप अर्थवाला होनेसे, अरु यहां आत्मज्ञानके सन्मुखकरनेअर्थ बिधिरूप अर्थवादके सद्भावसे, अरु स्वरूप बोधक तत्परवाक्यकेभी सद्भावसे ऐसे बनेनहीं, यह उत्तरसिद्धान्ती कहेहै।] तैसे आत्माकोशास्त्रबोधन करताहीनहीं, सो कहनाबनेनहीं, क्योंकि "स म आत्मेति" । सो मेरा आत्माहै, । इसप्रकार जानना अरु "प्रज्ञानंब्रह्म" । प्रज्ञान ब्रह्महै, । इसप्रकार समाप्तिसे । अरु "तदात्मानमेवावेत्" "तत्त्वमसि" तिस आत्मा कोही जानना, सो तूहै, । इत्यादि वाक्योंको तिस । आत्माके बोधन । परायणताहै ताते । अरु उत्पन्नहुये ब्रह्मात्माके बिज्ञानको । सर्वप्रकार । अबाधिततहै ताते, सो आत्मज्ञान उत्पन्नहुआनहीं वा भ्रमरूप है, इसप्रकार कहनेको शक्यनहीं । अरु जोकहै [विद्वानको प्रयोजनकी तृष्णाके अभावसे कर्मबिषे प्रवृत्ति नहींहै, इसप्रकारकहा । तब तिसकर्मके त्यागबिषेभी प्रयोजनके अभावसे तहां निष्कर्मता वा आत्मबिचार बिषे । भी बिद्वानकीप्रवृत्ति न होवेगी । इस प्रकार वादी शंकाकरताहै] विद्वान्‌को कर्मके त्यागबिषेभी प्रयोजनके अभावकी तुल्यताहै, क्योंकि "नाकृतेनेहकश्चनेति" तिसका यहांकर्मसेअर्थ नहीं है, अरु कर्मके अभावसेकोई भी अर्थनहीं है, इसगीतास्मृतिकेप्रमाणसे । अरु "यस्मात्पूर्वे विदित्वाब्रह्म व्युत्थानमेवमेव कुर्य्यादिति" ब्रह्मको जानके संन्यासकोही करना, ऐसा

जो कहते हैं तिनकोभी यहप्रयोजनका अभावरूपदोष तुल्यहीहै,। सो बनेनहीं[कर्मकेत्यागको व्यापाररूप होने से,अरु व्यापार को क्लेशरूपहोनेसे तिनकाअनुष्ठान प्रयोजनसे अपेक्षित।प्रयोजनकी अपेक्षावाला। होवेगा। परन्तु यह नहीं है,किन्तु क्रियाका अभावमात्र उदासीनता रूपहै, अरु तिसको स्वरूपस्थ होनेकरके स्वरूपसेही प्रयोजनता होने करके अन्य प्रयोजन का अपेक्षावान्पना नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहार करता है] क्योंकि संन्यासको केवल अक्रियमात्र रूपता है ताते। अरु अविद्यारूप निमित्तका कियाही प्रयोजन का भावहै वस्तुका धर्म नहीं, क्योंकि सर्व प्राणधारियोंके मध्य तिस।प्रयोजनको। देखतेहैं ताते। अरु प्रयोजन की तृष्णासे प्रेरणा को प्राप्त हुये पुरुषके ,वाणी, मन, शरीर प्रवृत्ति देखते हैं। ।अर्थात् पुरुषोंकी जो कर्मादिकों बिषे प्रवृत्ति है सो अविद्याजन्य प्रयोजन की प्रेरणासे है। अरु "सो ऽकामयत जाया मे स्यात्" सो मुझको जाया (स्त्री) होवे, इसप्रकार कामना करताहुआ,। अरु इनसे आदिले "उभेह्येते एषणेति" यह दोनों। साध्यसाधनरूप एषणाही है,। इस वाक्य से पुत्र अरु वित्तादिक है सो पांक्तरूप काम्यकर्म ही है। इसप्रकार वाजसनेयि (बृहदारण्य) ब्राह्मबिषे निश्चय कियाहै ताते। [इसप्रकार क्रिया के हेतुको देखायके तिसके अभावसे ही विद्वान् को क्रियाका अभाव विनाही यत्नके स्वतः ही सिद्धहै ऐसा कहतेहैं। यहां यह अर्थ है कि ,स्त्री, पुत्र, दैववित्त, मनुष्यवित्त, अरु कर्म, इन पांच करके साधतेहैं, ऐसीजो।यज्ञादिरूप। वैदिक प्रवृत्ति। ।अर्थात् यज्ञादि कर्मके उक्त पांच मुख्यकारक अरु यज्ञद्वारा स्वर्गादिलोक साधक। ।तिनको पांक्तलक्षण कहते हैं। अर्थात् उक्त पांचों करके जो साध्यहोवे तिसको पांक्तलक्षण कहते हैं। । सो पांचकी संख्याके सम्बन्धसे गौणी वृत्तिकरके पंक्तिछन्द के आरोपसे, अरु "पंचाक्षरापंक्तिपांक्तो यज्ञ इति श्रुतेः" पांच अक्षरवाला पंक्ति छन्दहै, अरु पांक्त।अर्थात् पंक्ति छन्दके सदृश

पांच संख्यावाला। यज्ञहै, इस श्रुतिसे] विद्वान्‌को अविद्यादिक दोषके अभाव से, अविद्या काममय दोषरूप निमित्तवाली पांक्त रूप ,वाणी, मन, अरु शरीर, इनकी प्रवृत्तिका असंभव है, अरु तिसके अभावसे तिस (विद्वान्) का अक्रियामात्ररूप संन्यास विनाही यत्नके सिद्धहै, परन्तु सो यागादिकोंवत् अनुष्ठेय भाव-रूप नहीं है, किन्तु [ऐसे उदासीनतारूप क्रियाके अभाव को पुरुषका स्वभावरूप होने करके अयत्नसे सिद्धताके हुये तिसको प्रयोजन की अपेक्षा नहीं, इसप्रकार कहते हैं] सो विद्यावत् पुरुषका धर्म कहिये स्वभाव है, ताते तिसबिषे प्रयोजन खोजने को योग्य नहीं (अर्थात् प्रयोजन की अपेक्षा नहीं। अरु [अज्ञान के कार्य की, अज्ञानकी निवृत्तिके हुये अयत्नसे ही निवृत्ति होती है, इस अर्थ विषे दृष्टान्त को कहते हैं] जैसे अन्धकार बिषे प्र-वृत्त हुये पुरुषको प्रकाशके उदयहुये जो गर्त्तकादवकंटकादिकों विषे पतनहै सो "किस प्रयोजनवाला होवेगा" (अर्थात् मनुष्य को जो गर्त्तादिकों में पतनहै तिसका निमित्त अन्धकारहै, तिसके अभावसे पुनः अहेतुक पतन होवे नहीं, तैसेही अज्ञान अरु त-ज्जन्य प्रयोजनरूप अन्धकार के अभावहुये विद्वान्‌का अहेतुक कर्मरूप गर्त्तादि बिषे पतन संभवे नहीं) । इस प्रश्नके योग्यनहीं है। अरु जो ऐसा कहे, तब व्युत्थान कहिये संन्यास सो अर्थ से प्राप्त होनेकरके विधिरूप अर्थवाला नहीं है। इसप्रकार होने से जब गृहस्थाश्रम बिषे परब्रह्म का विज्ञानहुआ तब संन्यासके न करनेवाले तिस ज्ञानीकी तहांही स्थिति होवे, ताते अन्यठकाने गमन (अर्थात् संन्यासपूर्वक विचरना नहीं होवेगा सो बने नहीं, क्योंकि गृहस्थाश्रम है सो कामना का कियाहै "एतावान् वैकाम इति" इतनाही निश्चय करके कामहै, एतदर्थ यह दोनों एषणाही हैं, इस निश्चयसे [इसप्रकार संन्यासरूप लिंगबिषे भी अभिमान के अभावसे तिसकी भी असिद्धिहै, यह नहीं कहा चाहिये, अरु सर्वसे अभिमानरहित होने करके सर्वके सम्बन्ध

से रहित होनाही परमहंस नामक संन्यास का लक्षण है, लिंग (चिह्न) का धारण करना। संन्यासका। लक्षण नहीं, क्योंकि " न लिंगं धर्मकारणम् " लिंग (चिह्न) धर्मका कारण नहीं, । यह स्मृतिका प्रमाण है। ताते लिंग विषयक अभिमान से भी रहित विद्वान् को संन्यास सिद्धही है, ऐसा कहते हैं] कामनारूप निमित्तसे हुये वित्त अरु पुत्रादिक तिनके सम्बन्धके नियमका अभावमात्रही संन्यास कहते हैं। ताते अन्य ठिकाने गमन।। अर्थात् आश्रमान्तरका वा लिंगका धारण करना।। संन्यास कहते नहीं। याते संन्यासको न करनेवाले अरु विद्याकी उत्पत्तिवाले पुरुष की गृहस्थाश्रम बिषेही स्थितिनहीं है। [तब विद्वान् को गुरुसेवादिकों बिषे भी अभिमान नहीं होवेगा, यह आशंकाकरके, यह हमको इष्टापत्तिहै, ऐसा कहते हैं।] इस कथन करके विद्वान्को गुरु शुश्रूषा अरु तपका असंभव सिद्धहुआ [ननु, तुम्हारे मतबिषे पुत्रादिकोंके सम्बन्धके नियमसे रहित अरु देह धारणके अर्थी संन्यासीको भी परिग्रह (संग्रह)की निवृत्तिके अर्थ भिक्षाटनादिकही है, ऐसा नियम अंगीकारहोताहै। तैसे अभिमानसे शून्य गृहस्थको भी देह धारणार्थ गृहबिषेही स्थितरहो, संन्यासीपने के विशेष से नहीं। इसप्रकार वादी कहे है] यहां कईएक गृहस्थ भिक्षाटनादिकों के भयसे अरु तिरस्कारसे भयभीतहुये अपनी सूक्ष्मदृष्टिवान्ताको देखावतेहुये उत्तर कहते हैं। देहधारणमात्रार्थ जो संन्यासीहै तिसको भिक्षाटनादिकके नियम के देखनेसे साध्य अरु साधनसम्बन्धी दोनों एषणासे रहित अरु देहमात्रकेधारणार्थभोजन अरु आच्छादनमात्रकेअर्थउपजीविका करनेवाले गृहस्थकी भी गृहबिषे स्थितिहोवो, सो बनेनहीं [तहां सिद्धान्ती आय, तिस इसप्रकारके हुये गृहस्थ विद्वान्को स्त्रीका परिग्रहहै वा नहीं, इसप्रकार दो विकल्पकरके प्रथम पहिले विकल्पबिषे दूषण देखावे हैं] क्योंकि अपने गृहविशेषके परिग्रहका नियम कामनाका कियाहै ताते, इसप्रकार इसका उत्तर कहाहै।

अरु [द्वितीयपक्ष भी बनेनहीं , क्योंकि स्त्रीके परिग्रहवाले को-ही धनसंग्रह करने का अधिकार है, अरु स्त्री के अभावहुये अर्थ (प्रयोजन) से द्रव्यके संग्रहकी निवृत्तिसे तिस द्रव्य संग्रह करने के अभाव हुये अन्य प्रकारसे जीवनकी असिद्धिहोने से, अर्थ से (अर्थात् उदरपूर्णादि प्रयोजनसे) । भिक्षाटनादि करनेका नियमही सिद्ध होताहै , ऐसा कहते हैं । यहां पुत्रादिकोंकरके संग्रह किये द्रव्यसे जीवनहोहु, (आप द्रव्योपार्जनादि मतकरो) यह शंका करनेको योग्यनहीं, क्योंकि उन पुत्रादिकोंकरके भी अपने अपने भावसे मानेहुये द्रव्यविषे सम्बन्धका अभावहोनेसे अपने द्रव्यको भी परके द्रव्यकी तुल्यतासे,तहां भी भिक्षुकपनेके नियमसे। यह अर्थहै] अपने गृहविशेषके परिग्रह (स्त्री) के अभावहुये शरीर धारणमात्र के किये भोजनाच्छादनार्थी गृहस्थका अपने परिग्रह विशेष (स्त्री) के अभावहुये संन्यासीपनाहीहै । अरु जो ऐसाकहे [अन्य तो संन्यासीको भी भिक्षाटनादिकों विषे " भिक्षाटनादौ सप्तागारान सङ्कल्पितान् " असंकल्पित सात गृहोंविषे जावे, । (अर्थात् जो संन्यासी (सर्वसंकल्प त्यागी) है सो भिक्षार्थ जाने से पूर्व यह संकल्पनकरे कि भिक्षार्थ अमुक २ के गृह जावेंगे, निःसंकल्प हुआ सात गृहमें जावे तिनमें जो भिक्षा न मिले तिसमें ही संतोषमान तिस दिवस निर्वाहकरे अरु जो कदापि दैवयोगसे उन सातगृहोंमेंसे अल्पही अन्न प्राप्तहोयतो वा न होयतो सातसे अधिकगृहोंमें न जावे, अनुद्विग्नमन हुआ आत्मविचार समाधि में स्थितहोय) । इत्यादिक नियम अरु शौचादिकविषे (गृहस्थसे) चतुर्गुण अधिकका नियम पापके निवीहणार्थ जैसे अंगीकार करते हैं तैसे " यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहुयात् " यावत् जीवता रहै तावत् अग्निहोत्रकी आहुति करतारहै,। इत्यादिक श्रुति वाक्यके वलसे पापके निवारणार्थ निष्काम गृहस्थ विद्वान्‌की भी नित्य कर्मविषे नियमसे प्रवृत्ति होनीचाहिये । जो इसप्रकार कहतेहैं तिन के मतका अनुवाद करते हैं] जैसे संन्यासीको शरीरके धारणरूप

प्रयोजनवाली भिक्षाटनादिक में प्रवृत्ति बिषे अरु शौचादिकों बिषे नियम है तैसे [पूर्व मतबिषे संन्यासको न करनेवाले विद्वान् की गृहबिषे ही स्थिति की शंकाकिया, अरु इसमत बिषेतो अग्निहोत्रादिकोंका अनुष्ठानभी विद्वान्को कर्त्तव्यहै, इस प्रकार पूर्ववादी शंका करेहैं] निष्कामगृहस्थ विद्वान्कोभी पापके क्षयार्थ नित्य कर्मोंबिषे नियमसे प्रवृत्तिहोहु, क्योंकि "यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र को करे, इत्यादि श्रुतिकरके कर्मोंबिषे प्रेरणा है ताते,यह [पूर्व संग्रहकी निवृत्ति के अर्थ भिक्षाटनादिकों को विषय करनेवाला, अरु शरीर के धारणरूपदृष्ट (इसलोकसम्बन्धी) प्रयोजनवाला नियमदृष्टांत करके कहा। अरु यहां तो सो भिक्षाटनादिक मत ममगृहपने आदिकको विषय करनेवाला अरु अदृष्ट (परलोकसम्बन्धी) अर्थ वाला नियम दृष्टान्तपने करके कहा। इसभेदको अब सिद्धान्ती दूषण देताहै] कथन विद्वान्को प्रेरणाका अविषय होने करके। अरु[तिस विद्वान् को सर्व का नियामक ईश्वररूप होनेसे नियम का विषयपना नहीं है, इत्यादिरूप उत्तर पूर्व कहा है, ऐसाकहते हैं] प्रेरणा की विषयताके अशक्य होनेसे पूर्व कहा है। अरुजो कहे कि इसप्रकार होनेसे "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र करे, । इत्यादिक नित्य कर्मकी विधिकी व्यर्थता होवेगी, सो कहनाबने नहीं, [अविद्वान् को वो । नित्य कर्मके । नियम की विषयता है । अर्थात् अविद्वान्के अर्थ नित्य कर्म करनेकी प्रेरणा विधिहै, विद्वान्के अर्थ नहीं । ताते नित्य कर्मकी नियामक श्रुति व्यर्थ नहीं। इसप्रकार कहतेहैं] क्योंकि तिस विधिको अविद्वान् परत्व होनेकरके अर्थवान्पनाहै। अरु जो पूर्व[तिस पूर्वोक्त प्रतिबन्धके निवारणार्थ सिद्धान्ती तिस का अनुवाद करके दूषण देतेहैं । तहां यह अर्थ है कि आचमन की विधिसे आचमन करने में प्रवृत्तहुये पुरुष को वांछित जो तृषा का विनाश सो होताहै, तिसको तिस प्रवृत्तिकरके अन्य प्रयोजन

से अर्थवान्पना (प्रयोजन) नहीं, अर्थात् तिस अर्थवान्पना प्रयोजनहै, आचमन विषे प्रवृत्तिकी कारणता नहीं है। तद्वत् जीवनार्थ भिक्षाटनादिक विषे प्रवृत्तहुये पुरुषकोजो तहां नियमहै सो भिक्षादिकों विषे प्रवृत्ति का कारण नहीं, किन्तु तिस जीवनरूप प्रयोजनका कारणहै] शरीर धारणमात्रविषे प्रवर्त्तहुये संन्यासी की प्रवृत्तिका नियमितपना कहाथा सो प्रवृत्ति का कारण नहीं, आचमनरूप कर्मविषे प्रवर्त्तहुये पुरुषकी तृषाकी निवृत्तिवत्, तिस का अन्य प्रयोजनार्थ होना नहीं, ऐसा जानते हैं। [अर्थात् "आचामेति" आचमनकरो ,। यह श्रुतिअन्तर शुद्धि आदि प्रयोजनको लखावती कर्म्मोंको फलवाद कहती आचमनरूप क्रिया को नियमकरे है, अरु उस आचमनके करने से तृषाकी निवृत्तिरूप दृष्ट फल को प्रत्यक्ष देख तिस प्रयोजनसे आचमनरूप क्रियाविषे प्रवृत्तहुये पुरुष को उस नियमित विधि वाक्यविषे प्रवृत्त होनेसे तिसको तिसके अन्य अदृष्ट फलवान्पना न होनेसे केवल तृषाकी निवृत्तिरूप प्रयोजनरूप अर्थवान्पना है, तैसे ही "भिक्षाचर्यञ्चरन्ति" वा "भिक्षाटनादौ सप्तागारानसङ्कृप्तान्" इत्यादि नियमित विधि वाक्य है अरु तिनके फलवाक्य भीहैं परन्तु भिक्षान्नसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्ति पूर्वक देहधारणमात्र प्रयोजनवान् अरु उसके अन्य दृश्य वा अदृश्य फलकी तृष्णा से निवृत्त अप्रयोजनवान् संन्यासी की जो उन भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्तिहै, सो प्रवृत्ति के प्रयोजन से नहीं, किन्तु उस विद्वान् संन्यासीकी शरीर धारणमात्रप्रयोजन सेहैं, अरु "केवलं शारीरंकर्म्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्" इत्यादि स्मृति प्रमाणसे, उस शरीर धारणमात्र प्रयोजनसे, अरु सो भी "पश्यत्यन्यशरीरवत्" इत्यादि प्रमाणसे, अन्य शरीरोंकी यात्रादि के द्रष्टापनेसे स्वशरीर की यात्राको भी निरभिमानता से देखतसन्ते, जो भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्ति है सो किल्विष (प्रवृत्ति) का कारण होवे नहीं

ताते उस विद्वान्की जो शरीर धारणमात्र प्रवृत्ति भासे है सो उसबिषे प्रयोजनवान् अरु अर्थवान्पने का हेतु (कारण) होवे नहीं॥ अरु [प्रवृत्ति जब अन्य हेतुसे सिद्ध है तब प्रेरणासे क्या प्रयोजन है, इसहीसे दर्श अरु पौर्णमासकी प्रेरणासेही अवहनन (तण्डुल)(धान्य) के कूटने) बिषे नियमसे प्रवृत्तिका सिद्धिके हुये, तहां भिन्न प्रेरणका अंगीकार नहीं किया है, अरु तिस प्रेरणके अभाव से प्रेरणाके योग्यताकी अपेक्षानहीं। अरु ब्रह्मवेत्ताको योग्यताकी अपेक्षाके अभावहुये भी नियम विधि का असंभव नहीं है। अरु अग्निहोत्रादिकोंबिषे प्रवृत्तिको तो अन्य से सिद्ध होनेकरके तिसकी विधिसे ही तहां प्रवृत्ति के कहने की योग्यतासे तिसकी सिद्धिके अर्थ प्रेरणाके कहेहुये तिस प्रेरणाको तहां अपने विषयकी अपेक्षाहै। इसप्रकार विषयताको कहते हैं] तैसे अग्निहोत्रादिकोंको अर्थसे प्राप्तहुये प्रवृत्तिके नियमितपनेका असंभव नहीं है। [अर्थात् अग्निहोत्रादिकोंको स्वर्गादिकोंकीप्राप्ति के अर्थ होनेसे उनविषयक प्रवृत्तिके नियम होनेका असंभवनहीं॥ अरु जो [नियम विधिबिषे प्रेरणाके विषयकी अपेक्षा के अभाव हुये भी तिस विधिको क्लेशरूप होनेसे प्रयोजनकी अपेक्षा कहने को योग्यहै, तिस प्रयोजनके अभावसे नियम सिद्ध होतानहीं। इसप्रकार वादी शंका करे है] अर्थसे प्राप्त प्रवृत्तिका नियम भी प्रयोजनके अभावहुये अघटितही होवेगा, सो बनेनहीं, [तिसके नियमकोभी पूर्ववासना के वशसेही प्राप्तहोने से तहांभी नियम विधिका अवकाशनहीं, तिसकरके विद्वान्को प्रयोजनकी अपेक्षा होवेगी, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहारकरेहै। यहां यह अर्थहै कि, यद्यपिनियमित वा अनियमित भिक्षाटनादिकसे जीवनसिद्धहोताहै,तथापि विद्याकी उत्पत्तिसे पूर्वविद्याकी सिद्ध्यर्थ नियमको अनुष्ठान क्रियाहोनेसे, तिसकी वासनाकी प्रबलतासे विद्याकी उत्पत्तिके अन्तरभी विद्वान् नियमबिषेही प्रवृत्तहोवे है अनियम बिषे नहीं क्योंकि तिस अनियमकी बासना नियमकी वासनाक-

रके अत्यन्त पराभवको प्राप्तहोतीहै ताते, पुनः उसको जगावने को यत्नकरके साध्यहोनेसे । अतएव तहां 'अनियमविषे विद्वान् प्रवृत्तहोतानहीं, ताते विद्वान्का नियमभी अर्थसे सिद्धहै] क्योंकि तिसका नियम पूर्वकी प्रवृत्तिकरके सिद्धहै ताते, तिसके उल्लंघन में प्रयत्नकी गौरवता कहिये अधिकताहै ताते। अरु [इस कथन करके नियमके अनुष्ठानको पापकी निवृत्तिरूप अर्थवान्पनाभी निषेधकिया, क्योंकि तिस विद्वान्को पापकी अप्राप्ति है ताते। इसप्रकार उक्तरीतिकरके संन्यासको विधिविना स्वभावके प्राप्त हुये तिसकी कर्त्तव्यताकी विधिकोभी जानके विद्वान् "तीनोंएषणाका त्यागकरके भिक्षाटनको करतेहैं" इत्यादिक वाक्योंकोअनुमोदन करतेहैं । इसप्रकार कहाहै] अर्थसे प्राप्त संन्यासके पुनः कथनसे विद्वान्को तिसकी कर्त्तव्यताका संभवहै । [अरु विधिको प्रयोजनके अभावविषे प्रवर्त्तकहोनेसे तैसेनकहाचहिये , क्योंकि प्रेपमन्त्रके उच्चारण अरु सर्वभूतोंको अभयदानादिक मुख्यविधिकी प्राप्तिरूप अर्थवाला होनेकरके विधिको अर्थवान्पनाहै ताते । अरु तिस नियमकीभी व्यर्थता शंकाकरनेयोग्य नहीं है, क्योंकि परमहंस विद्वान्विषे लोकसंग्रहरूप अर्थके होनेसे, अरु तिस लोकसंग्रहको तो पूर्वाभ्यासकरके मैत्रि करुणादिक वासनासे प्राप्तहोनेकरके ब्रह्मविद्याके उपदेशादिकोंकी नाईं प्रयोजनकी अपेक्षासे रहितहोनेसे, यद्वा प्रारब्धकर्मसे प्राप्तहुये देहेन्द्रियादिकोंके प्रतिभाससे अविचारित " यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति " यावत्जीवे तावत् अग्निहोत्रकोकरे,। इत्यादि श्रुतिजन्यकर्म की कर्त्तव्यताकी भ्रान्तिकेहुये सोकर्म निवृत्तहोवे है वानहीं,ताते विद्वान्को संन्यासके विधिकीअर्थवान्ताका संभवहै। ऐसे विद्वान् को संन्यासके साधनेकरके विद्याकी अकर्मी (संन्यासी) विषे स्थिति सिद्धकिया। अरु तिसहीहेतुसे तिसविद्याका कर्मसे असम्बन्धभी अर्थसे सिद्धकिया । अब जिज्ञासुकेभी संन्यासको साधतेहुये विद्याका कर्मीविषे स्थितपना अरु कर्मसे सम्बन्धीपना

दूरसेनिषेधकिया, इसप्रकार कहतेहैं] अरुअविद्वान् मुमुक्षुकोभी संन्यास कर्त्तव्यहीहै। तैसे [तहां श्रुतिको कहते हैं, यहां यह भावहै कि "उपरत तितिक्षु समाहितोभूत्वा" उपराम तितिक्षु, समाहितचित्तहोयके "आत्मन्येवात्मानंपश्यति" आत्मा (बुद्धि) बिषेही आत्माको देखै,। यह श्रुतिका शेष है, तहां उपरतिशब्दकरके संन्यास कहा है] "शांतोदान्तः" इत्यादि श्रुतिका वचन है, अरु आत्मज्ञानके साधन शम दमादिकनके अन्य आश्रम बिषे असंभवहोने से। अरु "अत्याश्रमिभ्यःपरमं पवित्रं प्रोवाचसम्यगृषिसंघजुष्टमिति" अति आश्रमी के अर्थ ऋषियों के समूहकरके सेवनकिये परमपवित्रको कहताहुआ,। इसप्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् बिषे कहाहुआ जानते हैं। अरु "न कर्म्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुरिति" न कर्मसे न प्रजासे न धनसे, अमृतहोताहै, कईएक महात्मा (उक्त तीनोंके) त्याग (संन्यास) से अमरणभावको पावतेहुये,। इसप्रकार कैवल्य उपनिषद् बिषे कहाहै। अरु "ज्ञात्वानैष्कर्म्यमाचरेत्" ज्ञानके संन्यासको करै,। अरु "ब्रह्माश्रमपदेवसेत्" ब्रह्मके आश्रमरूप स्थानविषे निवासकरना,। इत्यादिक स्मृति प्रमाणसे। अरु विद्या के ब्रह्मचर्य्यादिक साधनों की सम्पूर्णता करके अत्याश्रमि (परमहंस) योंविषे सम्भवसे अरु गृहस्थाश्रम बिषे तिनके असम्भवसे, ज्ञानोत्पत्तिके पीछे वा ज्ञानार्थ संन्यास की विधि है॥ (अर्थात् गृहस्थाश्रम में ज्ञानहुये पश्चात् का जो संन्यास है सो विद्वत् संन्यास है, अरु ज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ जो संन्यास है सो विविदिशा संन्यास है, अरु गृहस्थाश्रम में ज्ञान होने पश्चात् भी संन्यासकरनेका कथनहै सो संन्यासकी स्तुति वा महिमा देखने के अर्थ, वा आग्रहवश है, क्योंकि आत्मा के परोक्षज्ञानसेही देहादिक अनात्माओं से अपनेको पृथक् उनका साक्षीमात्रहों ऐसा मानता है अरु देहादिकों से अपने को पृथक् जाननेसे देहादिक अनात्माश्रित अविद्यारचित वर्णाश्रम अरु

तिनकेधर्ममें प्रवृत्तहोना सम्भवेनहीं, अरु जब अपनेआप आत्मा का साक्षात् अपरोक्ष सम्यक् ज्ञानहुये पश्चात् देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्ममें अहंकारपूर्वक प्रवृत्तिहोना अत्यन्त असंभवहै, अरु उस यथार्थ साक्षात् आत्मानुभवि पुरुषका जो निर्धन किसिभी आश्रममें स्थितिहै सो लोकदृष्टिमात्र उसकी आश्रम में स्थितिभासे है नतु वो अपनी दृष्टिमें तो अपने स्वरूपाश्रममेंही सुशोभित है, अरु जिन देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्मकर्म से,परोक्षज्ञानावस्थाही में पृथक् हुआ अपनेबिषे तिनका अभाव देखताहै, तब साक्षात् अपरोक्ष ज्ञानहुये पश्चात् उस विद्वान् का अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्म में प्रवृत्तहोना किसीप्रकार भी बनेनहीं, अरु जबतक देहादि अनात्मामें आत्मभाव अहंबुद्धि होवेनहीं तावत् तदाश्रित वर्णाश्रमधर्म में प्रवृत्तिबनेनहीं अरु साक्षात् आत्मदर्शी विद्वान् को अनात्म देहादिकोंमें आत्मभाव का सकारण अभावहै, ताते साक्षात् सम्यक् आत्मज्ञानहोनेके पश्चात् उस विद्वान्की अनात्माश्रितधर्म में प्रवृत्ति कदापि बनेनहीं । अरु सम्यक् ज्ञानोत्तरकालमें उसविद्वान्को यहभावनहीं, कि मैं गृहस्थहौं अब मुझको सम्यक्ज्ञानहुआहै ताते मैं ज्ञानी हौं अब मुझ ज्ञानीको संन्यास लेना योग्य है । अरु उस विद्वान्को उसगृह अरु पुत्रादिकों में ममत्व बुद्धिनहीं कि यहमेरेहैं, क्योंकि देहादि अनात्माओंमें अहमत्व अरु तत्संबान्धियोंमें ममत्वभावका जो होनाहै सो अविद्या करके होताहै सो अविद्या उस विद्वान्की अशेष अभावहुई है ताते उस आत्मदर्शी विद्वानको आत्म साक्षात्कारहोनेसे अविद्याके अभावहुये देहादि अनात्म अरु तत्सम्बन्धी पुत्रादि अरु आश्रमादिक अरु तदाश्रित कर्तृत्वादिकोंविषे अहंमम भावनहीं, उसको अहंमम रागद्वेषादि सर्वके अभावहोनेसे सर्वत्र उदासीनता लक्षणवान् समभावहुआहै, अरु उसको केवल शरीर यात्रामात्र भिक्षान्नकाग्रहण भोजन है सो सर्वत्र, स्वपरग्राह्य अग्राह्य

विधिनिषेधादिकों की दृष्टि के अभावपूर्वक केवल शरीरधारणमात्रही हैं सो जो कदापि उस विद्वान्‌की शरीर यात्रा लोकदृष्टि से स्वगृहमेंही है तोभी उस विद्वान्‌की दृष्टि में सकारण स्वपर भावके अभावसे वहांकीभी शरीरयात्रा उसको किल्बिषकाकारण होतीनहीं " शुद्धमपापविद्धम् " " असंगोह्ययंपुरुषः " "न लिप्यते कर्मणापापकेनेति" अरु आत्माभ्यासी सर्वकाल समाधिवान् पुरुषको शरीरयात्रा भी उसरीतिसे करनीचाहिये कि जिस से निदिध्यासन समाधि में विक्षेप न होय, अरु शरीरयात्राविषे जो समाधि से उत्थान है सोई विक्षेप है तिस विक्षेपकी जिस प्रकार अतिशीघ्र निवृत्तिहोय सो कर्त्तव्य है, तहां जो विद्वान्‌का भिक्षाकेअर्थ सातगृहजाने का नियम विधि शास्त्र ने कहाहै सो अस्तु, परन्तु सातगृहमें भ्रमणकरने में समयकाव्यय अरु तदाश्रित विक्षेप अधिकहै, तिसही अपेक्षा अहंमम भावसे रहितहोय विद्वान्‌का जो स्वगृहमेंहीं क्षुधारूप रोगकी निवृत्ति पूर्वक शरीर धारणार्थ निर्थल सुखेन भिक्षान्नका ग्रहणहै सो अति अल्पकाल विक्षेपहै, अतएव अभिप्राय यहहैकि अपरोक्ष आत्मदर्शी विद्वान्‌को शरीरयात्रामात्रकीभी प्रवृत्तिस्वपरभावसे रहित इसप्रकार करनी चाहिये कि जिसमें आत्मअभ्यास समाधिमें अतिअल्प विक्षेपहोय क्योंकि संन्यासादिकोंका करनाएकान्तवनादिकोंमेंरहना, इत्यादि सर्व विक्षेपकी निवृत्तिके अर्थहै, तातें वर्ण आश्रम गृह वन इत्यादि सर्वके आग्रहको त्यागके जिस वर्ण आश्रम स्थानादिकोंमें समाधि विचार अभ्यासमें विक्षेप न होय तहांहीरहे॥ अरु जिस वर्ण आश्रम स्थानदेश आदिकों में रहनेसे आत्म साक्षात्कार होय सोई सर्वोत्तमहै, उससे अधिक उत्तम न कोई वर्ण है न आश्रम है न जाति है न स्थानहै न देशहै, क्योंकि जिस वर्णाश्रमजाति स्थान देशविषे यह अति अल्पज्ञ पापी पुण्यीकर्त्ता भोक्ता स्वर्गी नरकी सुखी दुःखी , इत्यादि धर्म लक्षणवान् त्वं पदका वाच्य जीव सो " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " आत्मविदाप्नोति परम " इ-

त्यादि प्रमाणसे ब्रह्मआत्माके सम्यक् अभेदज्ञानहोनेसे ब्रह्मभाव को प्राप्तहुआ है, तिस ब्रह्मभूत विद्वान्को उससे अधिक उत्तम अरु पवित्र कौन है किन्तु कोई भी नहीं । तातें जिस वर्णाश्रम स्थान जातिमें इसपुरुषको आत्मा साक्षात्होवे तिसही में सर्व वर्णाश्रमजाति स्थानादिक अनात्मा अरु तदाश्रित धर्मकर्म सर्व से अहंमम भावको त्याग तहांही शरीरयात्रा करतसंते निर्वाण होवे । अरु जो कदापि गृहस्थाश्रम जो विक्षेपालयहै तिसमें विक्षेपकी बाहुल्यतासे श्रवण मननादि साधनपूर्वक आत्म साक्षात्कार न होय तो शीघ्रही उस आश्रमसे उठ (उसको त्याग) संन्यासले सर्वकर्मरूप विक्षेपसे रहित होय संग्रहके त्यागपूर्वक भिक्षान्नमात्रसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्तिसे शरीर धारण करता अपने आप आत्माका श्रवण मनननिदिध्यासकर महावाक्य के अर्थज्ञानसे आत्म साक्षात्कारसे ब्रह्म आत्माके अभेद अनुभवनिश्चयसे ब्रह्मभूत विद्वान् शरीरको प्रारब्धभोगाय शरीरप्रारब्धके क्षयहुये आप अपनेनिर्विशेष निरुपाधिस्वरूपमें निर्वाणस्थिति को प्राप्तहोवे॥हे सौम्य इससर्व कहनेका अभिप्राय यहहै कि जिस वर्णाश्रम स्थानमें विक्षेप थोडादेखे तहांही स्थितहोय श्रवण मननादि साधनपूर्वक आत्मा साक्षात्कार रूप परमश्रेयार्थ पुरुषार्थ करे क्योंकि तहाँकाकिया पुरुषार्थ सुखेन आत्मसाक्षात्कारका प्रापकहोताहै आगे "यथेच्छसितथाकुरु" जो इच्छाहोय तैसाकरो॥ [ननु गृहस्थकोभी ।' "ब्रह्मचर्यमेवयद्रात्रौ रत्यासंयुज्यंते" इत्यादि प्रमाणसे ,। ऋतुकाल। आदिक नियमित।कालमात्रविषे ।भार्या। गमनरूप ब्रह्मचर्य अरु कदाचित् ध्यानकाल विषे एककीपना ।वा चित्तकी एकाग्रतापना। संभवहै, यह आशंकाकरके तिसको अपूर्ण अरु तिससे ज्ञानकी असिद्धि, होनेसे, अरु ध्यानकालविषे पत्नी के सम्बन्धकी अप्राप्ति होने से तिसकी विधिकी व्यर्थता है तातें, यहकथन बनेनहीं,ऐसा कहते हैं,यहां यह अर्थ है कि, इस करके आत्मज्ञानको कर्म विषे स्थितपना अरु कर्मसम्बन्धीपना

नहींहै] अरु इसप्रकार सम्पूर्ण न हुआ जो साधन सो किसीभी अर्थके साधनेनिमित्त परिपूर्ण (समर्थ) होतानहीं । अरु जो ["यत्तु कर्म बृहतीसहस्रलक्षणं प्रस्तुत्यात्मज्ञानं प्रारभ्यत" बृहतीसहस्ररूप कर्मको प्रसंगबिषे प्राप्तकरके आत्मज्ञानका आरंभ करियेहै, इत्यादिक वाक्योंसे आत्मज्ञानको कर्मकासम्बन्धीपना कहाहै, । तहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, तैसे पूर्वोक्त कर्मका सम्बन्धी जो ज्ञान सो संसाररूप फलवाला अन्यही है, अरु सो पूर्वही मुमुक्षुने समाप्तकिया है, ताते सो परमात्मज्ञान नहीं] विज्ञान बिषे उपयोगी गृहस्थाश्रमके कर्म हैं तिनका देवता (वा देवभावकी) प्राप्तिरूप संसारको विषय करनेवालाही परमफल समाप्तकियाहै । [ननु, पूर्वोक्तही जो परमात्माका ज्ञानहै, सो कर्मका सम्बन्धीही है, यह आशंका करके, तिसकर्म सम्बन्धी ज्ञानको क्रियाकारक रूप फलवाला होनेकरके तिसकी समाप्तिसे, अरु परमात्म ज्ञानको मोक्षरूप फलवाला होनेकरके सो (कर्म सम्बन्धी ज्ञान) परमात्मज्ञान नहीं है,ऐसा कहतेहैं]अरु जो कर्मीकोही परमात्माका ज्ञानहोवे,तो संसारकोही बिषयकरने वालेफलकी समाप्ति न होवेगी (अर्थात् कर्मसम्बन्धी ज्ञानकाजो देवतादि भावकी प्राप्तिरूप फलहै सो नामरूपक्रियात्मक होने से अपनेको संसारान्तरही लखावेहै, ताते उसको संसारको बिषय करने वाला फल कहते हैं तिसकी समाप्ति कर्म सम्बन्धी ज्ञानसे होवे नहीं) अरुजोकहे कि सोसंसार परमात्मज्ञानके साधनरूप पृथिवी अरु अग्निआदि देवताकी उपासनारूप ज्ञानका फलहै, अंगीरूप परमात्मज्ञान का फलनहीं, एतदर्थ तिस परमात्मज्ञान को मुक्तिरूप फलवान् पनेका विरोध नहीं है,सो बनेनहीं क्योंकि परमात्मज्ञानको तिस संसाररूप फलके विरोधी आत्मवस्तुको विषय करनेवाला ज्ञान अमृत भावका साधन है । अरु जिसकरके गुणरूप फलके सम्बन्ध हुये ज्ञानको सर्व विशेष रहित आत्मवस्तुको विषय करनेपना प्राप्त होतानहीं, सो अनिष्टहै, क्योंकि

वाजसनेयी ब्राह्मण बिषे " यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् " जहां तो इसको सर्व आत्माही होताहुआ, । इसप्रकार अधिकार करके विद्वान् को क्रिया कारक फलादिक सर्व व्यवहारके निषेध से । अरु तिसके बिपरीत अविद्वान् को " यत्रहिद्वैतमिवभवति तदितर इतरम्पश्यति " जहां द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यको । अन्यको अन्य । देखताहै, । इसप्रकार कहके क्रिया कारक फलरूप संसार कोही देखाया होने से । तैसे यहांभी हिरण्यगर्भादि देवतारूप भावकी प्राप्तिरूप संसारको विषय करनेवाला जो क्षुधादि धर्मवान् वस्तुरूप फलहै, तिस फलको समाप्त करके केवल सर्वात्म वस्तुको विषय करनेवाले ज्ञानको अमृतभावके अर्थ कहताहौं, इसप्रकार प्रवृत्त होते हैं । अरु ऋणरूप जो प्रतिबन्ध है सो अविद्वान्के अर्थही है, क्योंकि " सोऽयंमनुष्यलोकः पुत्रेणैवजैयो " सो यह मनुष्यलोक पुत्रकरकेही जय (प्राप्त, सम्पादन) करने योग्यहै, इत्यादिरूप तीनलोककी । प्राप्तिके । साधनके नियमकी श्रुतिसे । [ऐसे ज्ञानको कर्मका सम्बन्धीपना कहते हैं " यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति " यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्रको करे, इत्यादि श्रुतिके । बिधिवाक्य । प्रमाण करके कर्मका त्याग संभवे नहीं, इसप्रकार जो पूर्ववादी ने कहाथा, तहां इस उक्त श्रुतिका अविद्वान् को विषय करने पना कहा । अर्थात् उक्त कर्म बिषे प्रेरक जे श्रुतिवाक्य हैं सो अनात्माभिमानी अविद्वान् के अर्थ हैं ।] । अब ऋणत्रयी की श्रुतिकी गतिको कहे हैं । यहां यह अर्थ है कि, नहीं दूरकिये ऋणको मनुष्यादि लोकोंकी प्राप्तिके प्रति प्रतिबन्धक होनेसे उनलोकों के अर्थी अविद्वान्कोही ऋणका दूरकरना कर्तव्यहै अर्थात् जोसकामी मनुष्यादि लोककीप्राप्तिकी कामना वालेपुरुषहैं सो जो कदापि ऋणमोचक कर्मोंकोकरके अपने ऋण से छूटते नहीं तिनको वो अपने ऋणही अभीष्टलोक की प्राप्ति में प्रतिबंधक (विघ्न करनेवाले) होते हैं, ताते ऋणत्रय के दूर करनेकी आज्ञाकरनेवाली श्रुतिकी सकामी लोकार्थी अविद्वानों

प्रति ऋण दूरकरनेकी आज्ञाहै, अरु जिस अकामी पुरुषकी लोकादि सर्व एषणाअशेष निर्मूल हुई हैं तिस विद्वान् । मुमुक्षुके अर्थ नहीं, क्योंकि उन ऋणों को मोक्षके प्रति अप्रतिबन्धकता है ताते] । अर्थात् उक्त ऋण मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक नहीं, क्योंकि जो अपने आपस्वस्वरूप का सम्यक् ज्ञान है सोई मोक्ष है अरु अपनेआप नित्य प्राप्तरूप आत्माकी बिस्मृतिरूप अप्राप्ति है ,कंठगत मणिकी बिस्मृतिवत्, अरु तिसका यथार्थ साक्षात्कार है सोई उसकी प्राप्तिहै ,कंठगत मणि की सम्यक् स्मृतिवत् , ताते अपनेआप आत्माकी जो सम्यक् ज्ञानसे यथार्थ साक्षात्कार रूपा प्राप्ति है सोई उसकी प्राप्ति है, कुछ अपने से भिन्न देशकालके परिच्छेदवाली बस्तुकी प्राप्तिवत् अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं क्योंकि अपनेआप आत्मा होने से नित्य प्राप्त है, ताते जो अन्य सर्व लोकादि कामना के अशेष अभावसे आत्म साक्षात्कार की कामना है सो अन्य कामनावत् कामना नहीं क्योंकि लोकादि अन्य कामनाका विषय अविद्यात्मक संसार है ताते सो कामना बन्धका हेतुहै, अरु तिससे विपरीत सकारण संसारके बिरोधी आत्मा विषयक कामनाहै तिसका विषय आत्म साक्षात्काररूपहै ताते सो कामना मोक्षकाहेतुहैताते। अरु आत्मा की जो प्राप्तिहै सो देशकालसे परिच्छेदको पाइ आत्मासे अन्यअनात्मरूप अप्राप्तकर्म साध्य बस्तुकी प्राप्तिवत् , प्राप्तिनहीं क्योंकि सर्वका अपने आपआत्माहोने से नित्य प्राप्तही है। अतएव अविद्वान् सकामी पुरुषके अभीष्ट लोकादिकोंकी प्राप्तिमें ऋणत्रय का न दूरकरना प्रतिबंधकहै ताते उनको अपने इष्ट लोकादिकोंकीप्राप्ति में प्रतिबंधक जे ऋणत्रय तिसके दूरकरने के अर्थ श्रुति उक्त उपाय करना योग्यहै , अरु उन अविद्वानों के अर्थही ऋण दूरकरने की वेदकी विधिरूप प्रेरणाहै आत्मकामी मुमुक्षुके अर्थ नहीं, ॥ अरु "किंप्रजया करिष्याम "प्रजासे हम क्या करेंगे; । इत्यादिरूप श्रुति वाक्य करके आत्मारूप लोकके अर्थी विद्वान् के अर्थ ऋणरूप

प्रतिबंधका अभाव देखायाहै " तथैतद्धस्मवै तद्विद्वांस आहुर्ऋषयः कावषेया इत्यादि " " एतद्धस्मवै तत् पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवाञ्चक्रुरिति, कौषीतकीनाम् " इसप्रसिद्ध तिसबस्तुको विद्वान् जो कावषेय नामवाला ऋषिहै सो, किस प्रयोजनार्थ हम अध्ययनकोकरें, इत्यादि। अरु। यह ब्रह्महीहै इसकेजाननेवाले पूर्व केविद्वान् अग्निहोत्रकोनहीं होमतेहुये, यह कौषितकी उपनिषद्का वाक्य है, सो विद्वान् के ऋणरूप प्रतिबंधके अभावमें प्रमाणहै। अरु जो कहे कि, जब ऐसेहीहै तब अविद्वान्कोऋणके न अभाव किये संन्यासका असंभव होवेगा, सो बनेनहीं [गृहस्थकोही ऋण की प्रतिबन्धकताहै, क्योंकि तिस। गृहस्थ। हीको तिस। ऋण। के निराकरणकरनेके अधिकार होनेसे, तातें गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रम बिषेही मुमुक्षुहुये पुरुषको संन्यास संभवे है, इसप्रकार सिद्धान्ती। वादी के विकल्पका। परिहार करे है। यद्यपि यज्ञोपवीत। संस्कारसे। धारणके अनन्तरही ऋणके निवारण बिषे उसको अधिकार संभवे है, एतदर्थ " गृहस्थाश्रम से पूर्व" इसप्रकार कहाहै, तथापि विविदिषा संन्यासबिषे अधीतवेद कोही अधिकारहै, तातें अधीतवेदको "गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व, यह कहा ऐसे जानना] क्योंकि गृहस्थाश्रमकी प्राप्तिसे पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रमविषेही मुमुक्षुको ऋणी होनेके असंभवसे संन्यास संभवे है। [ननु जन्मको पाया हुआ ब्राह्मण तीनसे ऋणवान् होताहै। ब्रह्मचर्य्यसे ऋषिनके अर्थ, यज्ञसे देवनके अर्थ, प्रजासे पितरोंके अर्थ, इस वाक्यकरके उत्पन्नहुये मात्रको ऋणवान्पना प्रतीत होताहै, यह आशंकाकरके ऋणवान्पने की उक्तिका साक्षात् कुछभी प्रयोजन नहीं है, किन्तु ब्रह्मचर्य्यादिकोंकी कर्त्तव्यता का प्रकट करना प्रयोजनहै। अरु अधिकारके अर्थ अनारूढहुआ पुरुष, सो। ऋणका निवारण, करनेको समर्थ होवेनहीं, क्योंकि अन्यको प्राप्तहुये मात्रको तिसका सामर्थ्यनहीं तातें। किंवा उक्त वाक्यविषे ब्राह्मणके ग्रहणसे क्षत्रियादिकोंको ऋणके अभावका

प्रसंग प्राप्तहोताहै। ब्राह्मणपदको द्विजाति (त्रिवर्ण) की उपलक्षणताकेहुये अधिकारपने की उपलक्षणताही योग्य है। याते , जायमान, उत्पन्नहुआ, । यह जो पदहै सो अधिकारको लखावता है। इसप्रकार उत्पन्न हुआ अधिकारी सम्पादित होता है। [अर्थात् ब्राह्मण जो है सो ऋण त्रयके देनेका मुख्य अधिकारी है, अरु अधिकारीसे अपनाऋण पायके , ऋषि, पितृ, देवता,यह तीनों सन्तुष्ट होते हैं,जैसे लोकबिषे अपने ऋणीसे ऋणकोपाय सन्तुष्ट होते हैं तैसे, । परन्तु यद्यपि यज्ञोपवीत संस्कार होनेसे वो ब्राह्मण ब्राह्मणभावको पाय ऋणदेने के अधिकारी ब्रह्मचर्य गृहस्थ इन आश्रममें स्थितहोय ऋण निवारण करताहै, तथापि उस ऋणदाता अधिकारी की उत्पत्तिमात्रसे ही अपने ऋण के प्राप्तहोनेकी सत्य आशापूर्वक जो ऋषि पितृ देवता इनके तुष्टहर्ष को ,, जायमान ,, उत्पन्नहुआ, । यह पद वा शब्द प्रकट करेहै,॥ यह तिस वाक्यका अर्थ है। एतदर्थ तिस अधिकारसे पूर्व ऋण का सम्बन्धहैनहीं] अरु जब अधिकारबिषे अनारूढ हुआभी पुरुष ऋणीहोवे, तब सर्वको ही ऋणीपना होनाचाहिये, यह अनिष्ट प्राप्तहोवेगा। [यहां अनिष्ट शब्दका अर्थ यहहै कि ब्रह्मचारी को भी ऋणीभावके हुये ब्रह्मचर्य बिषेही मृतकहुये नैष्ठिक ब्रह्मचारी को परलोक की प्राप्तिका प्रतिबन्धक होवेगा , यह अनिष्ट है क्योंकि " अष्टाशीतिसहस्र " अठासिहजार, । यहांसे आरंभ करके " तदेवगुरुवासिनामित्यादि " सोई गुरु कुलवासीको होता है, । इत्यादि वाक्यसे पुराणोंबिषे लोंक प्राप्तिका कथनहै ताते] गृहस्थाश्रमको [केवल गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही संन्यासकी सिद्धिहै ऐसा नहीं,किन्तु विधिके बलसे गृहस्थको भी सो है, ऐसा कहते हैं, यहां यह भावहै कि ऋणकी श्रुतिसे संन्यासकी विधिका विरोधनहीं , क्योंकि तिस श्रुतिको शुभकर्म के अर्थवाद (स्तुति) परत्वमात्र होनेकरके स्वार्थबिषेतात्पर्यका अभावहै ताते। अन्यथा सो शुभकर्मोंसेही शुद्ध करियेहै,ताते तिसकेवादोंकोशुभकर्मरूपता

है, ऐसे शुभकर्ममात्रके निषेधके कथनसे ब्रह्मचर्यादिकों के भी अनुष्ठानके अभावका प्रसंग होताहै ताते] प्राप्तहुये पुरुषको भी " गृहाद्वनीभूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वेति" गृहसे वानप्रस्थ होयके गमनकरे, वा जब अन्य प्रकार (तीव्र वैराग्य) होय तब ब्रह्मचर्यसेही गमनकरे, गृहसे वा वनसे गमनकरे । । अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंमेंसे जिस किसी आश्रममें तीव्र वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता उदयहोवे तिसही आश्रम से संन्यासपूर्वक आत्म अभ्यास समाधिके अर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य समीप वा विविक्त (एकान्त) देश वनको गमनकरे, मुमुक्षुता उदय होने के पश्चात् क्रमसाध्य आश्रमान्तर करके पश्चात् गमन न करे क्योंकि मुमुक्षुता उदयहोने के पश्चात् जो क्रमशः आश्रमान्तर है सो उस मुमुक्षुको ब्रह्मआत्मा की अभेद एकतारूप से आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासनादिकों में विघ्न विक्षेपकारी प्रतिबन्धकहै ताते।अरु जो वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता न प्रकटहोय तो मुख्यकरके ब्राह्मणको ब्रह्मचर्य से प्रारभ्य संन्यास पर्यन्त क्रमसाध्य आश्रमोंको प्राप्तहोय चतुर्थाश्रममें श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्यार्थसे आत्माको श्रवण कर पुनः भृगुवत् एकान्तमेंजाय विचारयुक्ति शास्त्र इनकरके संशय समाधानपूर्वक आत्माका मननकरे पश्चात् उस श्रवणमननकिये आत्मामें निर्विकल्पादि आत्म लक्षणको धारणकर निर्विकल्प समाधिरूप निदिध्यासनकरे, इसप्रकार निदिध्यासनकी दृढता से आत्मसाक्षात्कार स्थितिपाय आश्रमातीतहोय यावत् शरीर प्रारब्ध अवशेषरहे तावत् आप अपने साक्षिरूपसे द्रष्टाहुआ शरीरको प्रारब्ध भोगाय तिनदोनोंको पर्यवसान (समाप्ति) को प्रायहुये आप अपने स्वरूपमें जैसा दृश्यदर्शन द्रष्टाआदि त्रिपुटीरूपादि सर्वउपाधि विशेष विशेषण विशेष्य आदि भावसे रहित जैसा निर्विशेष अस्तिमात्र सत्तासामान्य अचैत्यचिन्मात्रहै सोईहै। ॥ इसप्रकार आत्मज्ञानप्राप्तिके उपाय श्रवणादि साधनों

का साधक वा साधन होने से। सर्व एषणाका अभावरूप लक्षणवाला। संन्यास अंगीकार करते हैं। अरु "यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्रको करे,।इत्यादि श्रुतियों की अविद्वान् अरु अमुमुक्षु। अरु सकाम। पुरुष बिषे कृतार्थता है। अरु छांदोग्यउपनिषद् बिषे केतनीक शाखावालोंको द्वादशरात्र अग्निहोत्रको हवनकरके तिसके पश्चात् तिसका परित्याग करना सुनते हैं। [ननु, संन्यासकी श्रुति भी अनधिकारी बिषे संकोचको प्राप्तहुई है, इसप्रकार वादी कहता है] अरु जो कहे अनधिकारीके अर्थ संन्यास कहाहै, सो कथन बनेनहीं, क्योंकि तिनकी विधिके "पृथगेवोत्सन्नाग्निर्निरग्निको,। इत्यादि" नष्टअग्निवाला वा अग्निके ग्रहणसे रहित (निरग्निः), इत्यादि श्रुतिबिषे, अरु सब स्मृतियोंबिषे भिन्न श्रवणसे, तिनको अविशेषकरके आश्रमका भेद अरु समुच्चय प्रसिद्धहै। अरु [इस प्रकार विविदिषा संन्यासको साधके अबपूर्व सिद्धकिये विद्वत्संन्यासबिषे जो शंकाहै तिसका अनुवाद करते हैं। यहां यह निकर्ष है। कि पूर्व विद्वान्की गृहबिषेही स्थितिहो,इसशंकाका निषेध किया, अरु यहां तो गृहबिषे वा बनबिषे स्थितिहोउ, इसप्रकार की अनियमित शंकाका निषेधकरनेको सो शंका अधिक यथेष्टाचरणके निवारणार्थ पुनः अनुवाद करते हैं] जो कहै विद्वान्को अर्थसे प्राप्त संन्यास है, एतदर्थ शास्त्रके अर्थके अभावकेहुये गृह बिषे वा बनबिषे स्थितहोनेवाले विद्वान् को विशेष नहीं है। [यद्यपि अर्थसे प्राप्त संन्यासकेभी पुनः कथनसे यहां विद्वान्के संन्यासको भी शास्त्रार्थ करके युक्तपना कहाही है तथापि तिस के उक्त अशास्त्रार्थ करके युक्तपने को अंगीकार करकेभी कहते हैं] सो कथन असत्यहै, क्योंकि संन्यासकोही अर्थसे प्राप्तहोने करके विद्वान् की अन्य ठिकाने (गृहस्थाश्रम बिषे) स्थिति न होवेगी, अरु अन्य ठिकाने जो स्थिती है तिसको कामना अरु कर्मकी करीहुई कहते हैं, अरु तिन कामादिकोंका अभावमात्र

ही संन्यास है, इसप्रकार पूर्व कथनकिया होने से तिस संन्यास को अनुष्ठेयपना नहीं है, एतदर्थ सो संन्यास कामादिकों का कियाभी नहीं है । अरु यथेष्टाचरण तो विद्वान्‌को अत्यन्त अप्राप्यहै, क्योंकि तिस । यथेष्टाचरण । को अत्यन्त मूढका विषय करके जानते हैं ताते । अर्थात् शास्त्र मर्य्यादारहित जो यथेष्टाचरण है सो केवल अत्यन्त मूढ पुरुषोंबिषे ही पाया जाता है । अरु जिस करके आत्मवेत्ता पुरुषको शास्त्रविहित कर्म्माचरण भी अत्यन्त क्लेशकारी देखते हैं । अर्थात् उस आत्मवेत्ता आत्माभ्यासी समाधिवाले पुरुषको अन्तःकरणकी वृत्तिका 'बाह्य व्यवहारके सम्मुख होना अतिही अनिष्ट है क्योंकि स्वरूपाकार वृत्तिका जो बाह्य विषय विषय है जिनकाऐसा जो क्रियात्मक व्यवहार तदाकारके परिणामहोना सोई संसारका कारण होनेसे उस विद्वान् को वो पातकरूप अरु बन्धनरूप प्रतिबन्ध का कारण है "पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्तिवित तस्यपाशम् " अतएव जिस आत्मनिष्ठ विद्वान्‌को शास्त्रविहितकर्म्माचरण भी अति अनिष्ट क्लेशरूप हैं,तिस विद्वान्‌का शास्त्र अविहित यथेष्टाचरणमें प्रवृत्तहोना कदापि संभवे नहीं । अरु तिसही करके उसको अप्राप्त है । अर्थात् । " तस्यकार्य्यं न विद्यते " इत्यादि स्मृति प्रमाणसे साक्षात् आत्मनिष्ठ पुरुष को क्रियामें प्रवृत्त होनेकी विधिप्रेरणा प्राप्तनहीं, तब अत्यन्त अविवेकरूप निमित्तसे होनहारजे यथेष्टाचरण(शास्त्र मर्य्यादासे बाह्य इच्छाके अनुसारआचरण (वर्त्तना) अति अनिष्टहुआ अप्राप्तहोय , तिसमें क्या कहना है , किन्तु कुछभी नहीं । अरु उन्माद अरु तिमिर दृष्टि करके । जैसे रज्जु सर्पाकारसे । जिस प्रकार की जानी जो वस्तु , सो तिस उन्माद अरु तिमिर दृष्टिके दूरहोने से तैसी ही होती भासती नहीं, क्योंकि तिस वस्तुविषे उन्माद अरु तिमिर दृष्टिरूप निमित्त का किया अन्यथापना होताहै स्वरूपसेही नहीं । ताते । सम्यक् । आत्म-

वेत्ताको संन्याससे । एषणात्रयके सम्यक् प्रकार त्यागसे । भिन्न यथेष्टाचरण नहीं । हे भगवन् यहां कहा है कि आत्मवेत्ता को संन्याससेभिन्न यथेष्टाचरण नहीं , सो इस कहने के ध्वन्यर्थ से सिद्धहोता है कि उस विद्वान् का संन्यासमात्र यथेष्टाचरण है तिससे भिन्न नहीं , हे प्रियदर्शन यह तुमको भ्रान्तिसे अर्थ का अनर्थ भासता है, विद्वान् का जो संन्यास है सो अनेकश्रुति शास्त्रादिकों करके प्रतिपाद्य है " प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति " । " तेहस्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्य्यञ्चरन्ति " इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से आत्मवेत्ता विद्वान् का संन्यास स्वप्न में भी यथेष्टाचरणरूप विचारणीय नहीं , वो सर्वथा श्रुति स्मृतियोंके प्रमाण विधि वाक्योंसे प्रकाशित है, अरु जो किसी कोई अवधूत परमहंसों में यथेष्टाचरण भासता भी है तो सो भी । " इतिते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरंमया , विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथाकुरु" इत्यादि स्मृतियोंके प्रमाणसेशास्त्रोक्तही है, अरु तिसकरके वो ब्रह्मभूत आत्मानुभवी विद्वान् लेप को पावतानहीं, परन्तु सो भी क्वचित्है । तातें विद्वान् स्वतन्त्र आत्मवेत्ता संन्यासी को संन्यासमें भी , कि जिसमें उसके अर्थ विधिनिषेध नहीं, यथेष्टाचरणका अभावहै । ॥ अरु । अपनेआप अक्रिय आत्मस्वरूपके यथार्थ साक्षात्कारके हुये । अन्य कर्त्तव्य भी नहीं, यह सिद्धहुआ ॥ अरु जो कहा कि विद्या अरु अविद्या को जो पुरुष साथही अनुष्ठान करनेयोग्य जानताहै, इसवचन करके विद्या अरु अविद्याके समुच्चयके श्रवण से विद्वान् को भी तिस कारणसे कामादिक होवेंगे, अरु तिस निमित्तवाली इच्छा के अनुसार चेष्टाहोवेगी, तहां कहते हैं, इस वचनका विद्वान्को विद्याके साथही अविद्या भी वर्त्तती है,यह अर्थ नहीं,किन्तु काल के भेदसे स्थितहुई भी विद्या अरु अविद्या एकही पुरुष विषे सम्बन्धको पावे है, यह अर्थ है । जैसे शुक्तिका (सीपि) विषे एकही

पुरुषकोरजत अरु सीपिका ज्ञानहोवे है तैसे।अरु जिसकरके "दूर-मेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञात्वा, इति" दूर वर्त्तमान येविपरीत भिन्न प्रयोजनवाली है।जो अविद्याहै सो विद्या है यह जानके, । इसप्रकार कठवल्ली बिषे कहा है । ताते विद्याके होते अविद्याका संभव भी नहीं है "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" तपकरके ब्रह्मके जानने की जिज्ञासा (इच्छा) कर, । इत्यादि श्रुतियोंसे तपादिक विद्याकी उत्पत्तिका साधन अरु गुरुकी उपासनादिक जो कर्म हैं सो अविद्यारूप होनेकरके अविद्या कहतेहैं। तिस कर्मकरके विद्याको उत्पन्नकरके कामनारूप मृत्युको तरता है, ताते निष्कामहुआ । पुरुष । ब्रह्मविद्या करके अमृत भावको पावताहै,इस अर्थको लखावतीहुई श्रुति "अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" अविद्यासे मृत्युको तरके विद्याकरके अमृत को पावताहै,।इसप्रकार कहती हैं ॥ अरु जो कहा कि "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः" यहांकर्म को करताहुआ सौ१००वर्ष पर्यन्त जीवे वा जीवनेकी इच्छाकरे,।इत्यादि श्रुति करके पुरुषका आयु सर्व कर्मसे ही व्याप्तहै,सो अविद्वान्का विषय होनेकरके समाधान किया, अन्यथा असंभव है ताते ॥ [यहां असंभव शब्दका विरोधसे विद्याके साथही असंभव से वा कथन करि श्रुति स्मृतिके असंभवसे । यह अर्थ है] अरु जो कहा कि, पूर्वोक्त प्रमाणको भी तुल्यहोनेसे कर्म से अविरुद्ध आत्मज्ञानहै, सो सविशेष अरु निर्विशेष होनेकरके निषेध कियाहै ।[यहां यह अर्थहै कि निर्विशेष आत्माके ज्ञानको कर्त्ता आदिक कारकों का उपमर्दन (नाश) होनेसे विरुद्धहै ताते ।।अर्थात् निर्विशेष आत्मा के सम्यक् ज्ञानसे अविद्या अरु तिसका कार्य अहंकारादि कारक अरु कर्म इन सर्व का नाशहोताहै ताते सम्यक् आत्मज्ञान अरु अहं आदि कारकोंका तेजतिमिरवत् परस्परमें विरोध है । । अरु "उपमर्दं" उपमर्दके हुये, । इस सूत्रकरके अविरोधपना निषिद्ध कियाहै] सो अग्रिम इसके व्याख्यानाबिषे देखावेंगे । [ताते अ-

ग्रिम कहनेकी विद्याका अकर्मोंबिषे स्थितहोनेपना, कर्मसे असम्बन्धीपना, अरु केवल आत्माको विषय करनेपना,। सिद्धहुआ। इसप्रकार पूर्वोक्त कर्म से अरु उपासना से शुद्ध चित्तवाले, अरु तिसही करके साधन चतुष्टय सम्पन्नहुये मुमुक्षुको केवल आत्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकी सिद्धिके अर्थ केवल आत्माविद्याका आरंभकरतेहैं।इसप्रकार अवतरणिकारूप प्रसंग समाप्तकरतेहैं॥] एतदर्थ केवल निष्क्रिय ब्रह्म अरु आत्माकी एकताकी एकता रूप विद्याके। वा एकता प्रतिपादक विद्याके। देखावने के अर्थ अग्रिम प्रसंग प्रारंभ करते हैं ॥ हे सौम्य, "आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीत्" 'प्रसिद्ध यह एक आत्माही होताहुआ,' अर्थात् प्रसिद्ध यह, जो कथन किया नामरूप क्रियाके भेदसे पृथक् जगत् है।अर्थात् नामरूप क्रियारूप भेदवाला जो जगत् है। सो जगत् की उत्पत्तिसे पूर्व व्याप्तहोने से वा भक्षण करनेसे वा निरन्तर रहने से, सर्व से पर (उत्कृष्ट) सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् क्षुधा पिपासादि सर्व संसारके धर्मसेरहित नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाला, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत, अभय, अद्वैतरूप, एक आत्माही होताहुआ ॥ क्या अबभी जगत्की उत्पत्तिके अनन्तर सोई एक नहीं है। तहां कहते हैं कि, अब भी सोई एक नहीं है ॥ तब कैसे होताहुआ, तहां कहते हैं। [यद्यपि जगत् का तीनकाल बिषे भी आत्मासे भिन्न करके अभाव है, तथापि तैसा बोधन करनेसे शिष्यको प्रत्यक्षादि प्रमाण के विरोध की आशंका से उक्त आत्मतत्त्व।ज्योंकात्यों। बुद्धि बिषे आरूढ होवेगा नहीं, एतदर्थ उत्पत्तिसे पूर्वथा, इसप्रकार शिष्य के चित्तको अनुसरके कहते हैं। सो भी जगत्के नामरूपकी प्रकटताके अभाव की अपेक्षा करकेही कहते हैं, परन्तु अबहीं।सृष्टिकालबिषे। आत्माके केवल भावके अभावके प्रसंगसे नहीं। इसप्रकार उत्तर कहते हैं] यद्यपि अब भी सोई एकहै, तथापि तहां विशेष कहिये विलक्षणताहै। उत्पत्तिसे पूर्व प्रकट नामरूप

के भेदवाला आत्मरूप "आत्मैकआसीत्" एक आत्माही था, ,इस,शब्द अरु ,वृत्तिका , विषय जगत् था औ अबभी प्रकट नाम रूपके भेदवालाहोने से अनेकशब्द अरु वृत्तिकाविषय, अरु एक आत्माथा,इस शब्दका अरुवृत्तिका अविषय जगत्है,यह विशेष भेद)है। [उक्त अर्थको दृष्टान्तसे स्पष्ट करतेहैं, यहां आत्मा शब्दकी व्युत्पत्तिके बलसे सर्वज्ञादिक शब्द करके लखाया ,सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप अखंड एकरस आत्मा सिद्ध किया। तिसही अर्थकी दृढता के अर्थ ,एक, इत्यादिक पदहैं। तहां ,एक, शब्दसे अन्य आत्माका (सजातीय भेदका) अभाव कहाहै।अर्थात् एक इस शब्द करके आत्माविषे सजातीय भेदका अभाव देखाया। अरु ,एव, इस शब्द करके वृक्षादिकों विषे स्वरूपसे एकता के हुयेभी शाखादिकों से नानारूपवत् एकआत्माकी नानारूपताका (स्वगत भेदका) अभाव कहते हैं । अर्थात् जैसे एकही वृक्ष वा शरीरविषे शाखा आदिकोंका वा हस्तपादादिकों का किया स्वगतभेदहै, तैसे एक निराकार निरावयव आत्मा विषे स्वगतभेद भी नहीं ॥ जैसे जलसे भिन्न ,फेन, वा ,झाग, नामरूपकी प्रकटतावाले होवे हैं। तहां जब जल इस एकशब्द अरु वृत्तिका विषयही सो फेन जब जलसे भिन्न नामरूपके भेद से प्रकट होवे है, तब जल अरु फेन ऐसे अनेक शब्द अरु वृत्तियोंका विषय होताहै, तहां एक शब्द अरु वृत्तिकाविषय जल ही होताहै, फेन नहीं। अर्थात् जल जो एकहै तिस विषे जब लहर झाग बुद्बुदादि होतेहैं तब वो जलसे भिन्न अनेक शब्द अरु अनेकवृत्तियोंकाविषय अनेक नामरूपवाले अल्पक्षणस्थायी पने आदिक धर्मो करके युक्त अपनेकारण जलके नामरूप गुण धर्मसे पृथक्ही नामरूप गुण धर्मवाले होतेहैं, परन्तु वास्तव करके उन तरंग झाग बुद्बुद आदिकों की जलसे भिन्न पृथक् सत्ताका अभाव होनेसे उन लहर झाग बुद्बुदादि विशेषविषेभी एकजलही है जल सत्तासे इतर लहर झाग बुद्बुद नहीं, अर्थात्

एकजलही लहर झाग बुदबुदादि विशेष नामरूपगुण धर्मसे सुशोभित होताहै तद्वत् । "नान्यत्किञ्चन मिषत्, सईक्षत" (अन्य कुछ भी विशेष न था, ईक्षण को करताहुआ) अर्थात् यहसर्व एक अद्वैत आत्माही था जिससे इतर [सजातीय अरु स्वगत इनदोनों भेदके निराकरण रूप अर्थवाले होनेकरके, एक, अरु , एव , ये दोनों पद हैं, इस अभिप्रायसे अब विजातीय भेदके निराकरणरूप अर्थवाला होनेकरके "नान्यत्किञ्चन" अन्य कुछ भी न था। इस पदका व्याख्यान करते हैं] व्यापारवाला [जड प्रपंचकी कारणरूप जडमाया वर्त्तती है,तब विजातीयभेदका निषेध कैसे संभवे, इस शंकापर यहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि मायाके विद्यमानहुयेभी सृष्टिकेपूर्व व्यापारके अभावसे व्यापार वाली अन्यवस्तुका अभाव संभवे है।]औ व्यापाररहित[ननु,व्यापाररहित तिसमायारूप अन्य वस्तुकेभी होते आत्म शब्दकरके उक्त तिसआत्माकी अखंड एकरस रूपता कैसे सिद्धहोवेगी, इस शंकापर कहते हैं] । अर्थात् सृष्टिसे पूर्व एक अद्वैत अखंड एकरस आत्मासे इतर व्यापारवाला (कार्य) अरु व्यापार रहित (कारण) अन्य कुछभी । नथा जैसे सांख्यवादियों के मतमें आत्मा का पक्षपाती स्वतन्त्र प्रधानहै, अरु जैसे वैशेषिक मतबादियों के मतमें परमाणुहैं, तैसे यहां हमारे मतविषे आत्मासे इतर रंचकमात्र कुछभी बस्तु नहीं है, किन्तु एक आत्माही था, यह अभिप्रायहै । सो आत्मा सर्वत्र अपने सद्भावके होनेसे एकरूप हुआ ईक्षण करताहुआ । अर्थात् ईक्षण कहिये अवलोकन करताहुआ । ननुजगत्की उत्पत्तिसे पूर्व तिसको अकार्य कारणरूप होने से कैसे वा क्या ईक्षण करताहुआ।अर्थात् जगदुत्पत्तिकेपूर्व जब आत्मासे इतर कार्य कारण रंचकमात्रभी नथा तब वो निराकार निरवयव आत्मा कैसे अरु क्या अवलोकन करताहुआ, किन्तु तिस कालमें उसका अवलोकन करना अघटित है । तहां यह दोष नहीं है, क्योंकि वो आत्मा सर्वज्ञ स्वभाववाला है ताते अरु अ-

पाणिपादो जवनो गृहीता, इत्यादि" हस्तपादसे रहितहुआ चलताहै अरु ग्रहण करताहै, । इत्यादिरूप मन्त्रका प्रमाण है ॥ अर्थात् वो सर्वभेदरहित एक अद्वैत सर्वशक्तिमान् आत्मा जो अपने विषे गमनरूप क्रियाका साधन पादरूप अवयवको न रखताहुआ विनाही पादरूप करणके गमन करताहै, अरु तैसेही विना हस्तरूप करण अवयव के ग्रहण करता है, तैसेही वो बिनाही चक्षुरूप बाह्य करण अरु मनरूप अन्तःकरणके, ईक्षण, कहिये अवलोकन वा इच्छा करता है । अरु वो आत्मा अविनाशी है अतएव उसकी सर्वशक्तिभी अविनाशी है, सुषुप्ति अवस्थामें चक्षु मनआदि सर्व करण अपने कारण अविद्या में लय होते हैं तब तहां उन करणोंके अभावको अरु एक कारण अविद्याकेभाव को विनाही करणोंके देखनेवाला सर्वका द्रष्टा आत्मा, घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः,, इसन्याय प्रमाण दृश्यरूप सुषुप्तिसे भिन्नही है । ऐसा जो अलुप्त सर्वशक्तिमान् एक अद्वैत आत्मा सो नामरूप कार्य कारणात्मक सर्व जगदुत्पत्तिके पूर्व अपनी अचिन्त्य अलुप्त सर्व शक्तिमत्ताको देखताहुआ, इसप्रकार उस आत्माविषे ईक्षण शब्द के उभय अर्थ, अवलोकन करना, अरु इच्छा करना युक्त अरु निर्दोषही है। ॥ सो किस अभिप्रायसे ईक्षण (अवलोकन) करता हुआ तहां कहते हैं, मैं प्राणियोंके कर्मफलके उपभोग स्थानापन्न जलादिक। भोग्य सामग्रीको सृजों "लोकानुसृजा इति," । ‹ लोकों को निश्चयकरके सृजों ऐसे ; अर्थात् इस समस्तनाम रूप क्रियात्मक जगत्से पूर्व जो सर्वका कारण एक अद्वैत आत्माथा सो, मैं इन सर्व प्राणियोंके पाप पुण्यरूप संचित कर्मोंकेफल भोगार्थ प्रथम उपभोगके स्थानरूप जलादिकलोकोंको सृजों, इसप्रकार विचारके "स इमाँल्लोकानसृजत" ‹ सो इन लोकों को सृजताहुआ ; अर्थात् सो परमात्मा उक्तप्रकार ईक्षण करके प्राणियों के कर्म भोगार्थ इन अग्रिम कहने के लोकों को सृजताहुआ,॥। हे सौम्य यह अन्तका श्रुतिवाक्य अग्रिम कहने के मन्त्रके आदि

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेणादिवंद्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आपः॥

में है, परन्तु इस उक्तमन्त्र के अन्तका जो "सईक्षत लोकानु सृजा इति" यह वाक्यहै तिसके साथ उसका सम्बन्ध है, एतदर्थ उस वाक्यकी इस मन्त्रके साथ व्याख्या किया है १॥

हे सौम्य, [यहां ईक्षणपूर्वक सृष्टिके कथनका प्रयोजन सृष्टिकर्त्ता के चैतन्यभाव की सिद्धिही है, इस अभिप्रायसे तिसप्रकार के तक्षा (शिल्पि आदिक) चेतनभावके उदाहरण करके कहते हैं] जैसे यहां बुद्धिमान् शिल्पि आदिक, इसप्रकार के गृहादिकनको मैं सृजों ऐसे ईक्षणको करके तिस ईक्षण के अनन्तरगृहादिकन को सृजताहै तैसे॥ ननु पाषाणादिक उपादान सहित जो शिल्पि आदिक होते हैं सो गृहादिकन को सृजता है, परन्तु उपादानसे रहित जो आत्मा सो कैसे लोकनको सृजता है, तहां यह दोष नहीं है, क्योंकि जलस्थानी अरूप अरु आत्मा एक था, इस शब्द के वाच्य उपादान रूप अव्याकृति विषे प्रकटहुये फेन स्थानी जगत् का संभव है, ताते आत्मभूत नामरूप का उपादानहुआ सर्वज्ञ आत्मा जगत्को रचताहुआ यहविरुद्ध नहींहै अथवा जैसे विज्ञानवाला मायावी आपते भिन्न उपादान से रहितहुआ आपकोही आपके भीतर होने करके आकाशविषे चलतेहुयेवत् रचताहै, तैसे सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् महामायावालादेव अपनेकोही अपनेभीतर होनेकरके जगत्रूपसे रचताहै यह अत्यन्तयुक्तहै। अरुइसप्रकार होनेसे कार्य अरु कारण दोनोंके असद्वादादि पक्ष प्राप्तहोतेनहीं, अरु वोजो कदापि प्राप्तहुयेहोवें तो भी निषेधकिये जाते हैं॥ प्र०॥ सो आत्मा किन लोकोंको सृजता हुआ, तहां कहते हैं। "अम्भो मरीचीर्मरमापो ऽ दोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठा ऽन्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरोयाअध-

स्तात्ता आपः ॥ २ ॥ ।" ' अंभमरीचीयांमर अरु आप इनको;' अर्थात् सो आत्मा अंभ मरीचीयांमर अरु आप इनको सृजता हुआ अर्थात् [लोकनको भौतिक होनेसे अरु ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ती होनेसे भूतोंकीसृष्टि अरु तिनके पंचीकरणद्वारा ब्रह्मांडकी सृष्टिके सृजनेके अनन्तर तिन (पंचभूतोंके कार्यरूप) लोकनकी सृष्टि है (तिनके अनन्तर उनलोकों परकी प्रजारूपा सृष्टिहै । इसप्रकार गुणोपसंहार न्यायको आश्रयकरके कहते हैं । अरु भिन्नशाखागत अर्थोंका जो एक ठेकाने कथन, तिसको गुणोपसंहार न्यायकहते हैं ।] आकाशादिकों के क्रमसे ब्रह्मांडको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजताहुआ । तहां जलादिकों को आपही श्रुति व्याख्यान करेहै, यह जोजल शब्दका वाच्यलोक है सो ' स्वर्ग लोकसे पर अरु आश्रय स्वर्ग लोकरूपहै, अन्तरिक्ष मरीचियां, पृथिवी सो मर है, जो अधः सो आप कहिये है ', अर्थात् स्वर्ग लोकसे पर जो महर् आदिलोकहैं, अरु जो तिस जलरूप लोकका आश्रय स्वर्ग लोकरूप है, क्योंकि तिनमहरादि लोकोंविषेवृष्टि जलकेविद्यमानहोनेसे। अर्थात् इस पृथिवीलोकमेंवृष्टि होनेवाला जल महर्लोकादिकोंमेंरहताहै वहांसे पृथिवीपर वृष्टिहोतीहै ऐसा नहीं समझना क्योंकि पृथिवीपर वर्षा होनेवाला पृथिवीपरका जलसूर्यकी किरणोंकरकेआकर्षितहुआ ऊर्ध्वकोजाताहै परन्तु वो जल पृथिवीके विशेष आकर्षणमें होनेकरके पृथिवीसे एकयोजन की अवधि पर्यन्त ऊर्ध्वको जाताहै पुनः वृष्टिरूपसे पृथिवीपर आवता ताते, । अरु जो यहां कहा है कि महरादि लोकोंविषे वृष्टिजल विद्यमान होनेसे स्वर्ग लोकसे पर है तिसको इस प्रकार जानना कि जैसे पृथिवीपर वर्षा होती है अरु तिसकरके यथेष्ट वहुअन्न होनेसे प्रजा प्रसन्नतासे जीवती है, ताते पृथिवी लोकसे पर (श्रेष्ठ) जलहै । तैसे महरादि लोकोंविषे भी जलको परत्व जानना । ॥ अरु जो स्वर्गलोक से नीचे अन्तरिक्ष है । अर्थात् सूर्याख्य स्वर्गलोक से नीचे अरु पृथिवी के ऊपरमध्य

का जो आकाश है तिस को अन्तरिक्ष कहते हैं। सो मरीचियां है। यहां सूर्यके किरणोंके वाची मरीची शब्दसे लखाया जो अन्तरिक्ष सो एकहुआ भी अनेक स्थानों के भेदवाला होने से बहुवचनका भागी है। वा सूर्यके किरणरूप अनेक मरीचियोंके सम्बन्धसे सो अन्तरिक्ष लोक बहुवचन का भागीहै॥ (अथवा सूर्य अरु पृथिवी इनके मध्यमें चन्द्र गोलादिव बहुतसे गोल है तिनपर प्रजाके होनेसे अरु सूर्य पृथिवी के अन्तरिक्षमें होनेसे उनको अन्तरिक्षलोक बहुवचन से कहते हैं।॥ अरु जिसबिषे भूत (प्राणी) मरते हैं ऐसी जो पृथिवी सोमरहे। अरु जो पृथिवी के नीचे लोकहैं वे आप नामसे कहेजाते हैं। [ननु, उक्त लोकनको पंचभूतों से सम्बन्धकी तुल्यताके होने से अन्यभूतनसे पृथिवी आदिकों के ऊपर के लोक देखते हैं। अरु (उक्त) अन्तरिक्ष (आकाश) को मरीचि (सूर्य के किरण) से भिन्न अन्य मेघादिरूप पदार्थों से भी सम्बन्धसे, तिससे पृथिवीको। अरु तिससे नीचे के लोकनको, मरणकी प्राप्तिसे भिन्न गमनादिक अन्यक्रियाकेही सम्बन्धसे सो अधोलोक जाननेको योग्यहैं इसप्रकार वादी शंका करे है] यद्यपि इनलोकन को पंचमहाभूतोंका सम्बन्धीपना है, तथापि [तिन लोकोंबिषे जलादिकों कीही बाहुल्यताहै ताते तिन जलादिकनसेही वे लोक जाननेके योग्यहैं "प्राचुर्येण व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात्" बाहुल्यता करके तिनके नामसे कथनहोते हैं,। इसन्यायसे॥ (अर्थात् जिस लोकबिषे जिस तत्त्व वा पदार्थकी बाहुल्यता होती है सो उसही नामसे कहाजाता है। इसप्रकार परिहार करते हैं] तिनमें जलादिकों की बाहुल्यता से वे जलादिक नामसेही "अम्भोमरीचीमरमापो" अंभ मरीचि मर अरु जल,। ऐसे कहते हैं २॥

हेसौम्य, [यहां "आत्मा वा इदमग्र आसीत्" आगे आत्माही था, इस वाक्य करके उक्त आत्माके ज्ञानसे संसारी (पुरुष जो है, सो मुक्तकरनेकोयोग्य होनेकरके (तिनकेअर्थ) कहनेको इच्छित

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नुसृजा इति । सो-ऽद्भ्य एवपुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ३ ॥

है ताते,अरु असंसारीको मोक्षका असंभवहै तातेअरु संसारजो है सो संसारके आश्रयलोक अरु तिसके उपाधिभूत लिंग शरीर अरु तिनके अभिमानी देव अरु तिनके अधिष्ठान स्थूल शरीर, अरु संसाररूप क्षुधादि धर्म अरु तिस संसारके अभिमानी तिनके भोक्ता बिना नहीं संभवे है, एतदर्थ तिसकी सृष्टिको "अयमावसथ" यह आवसथ (स्थान) है, यहां पर्यन्त जे ग्रंथ हैं, तिस करके क्रमसे कहतेहुये संसारके अधिष्ठानरूप लोकनकी सृष्टिको करके, लोकपाल देवाओं की सृष्टिके ईक्षणद्वारा समष्टि स्थूल शरीरकी,अरु समष्टि लिंगशरीरकी अरु तिनके अभिमानी देवताओंकी सृष्टि के कहनेका आरंभ करते हैं।] सर्व प्राणियोंके कर्म फल अरु तिसके उपादान अरु साधनरूप पूर्वोक्त चारो लोकों को सृजके" सईक्षते मेनुलोका लोकपालान्नुसृजा इति" (सो यह तो लोक,लोकपालोंको निश्चय करके सृजो इसप्रकार ईक्षण करताहुआ) अर्थात् सो ईश्वर पुनःही यहतो जलादिक मुझकरके रचेहुये लोक अपने पालनकरता से रहित हुये नाश को प्राप्त होवेंगे, अतएव इनके रक्षणार्थ मैं लोकपालों को निश्चय करके सृजूं इसप्रकार ईक्षण करताहुआ।[समष्टि लिंग शरीर अरु तिन लोकपालनके अभिमानियों को, विराट् के अवयवपने से जन्य होनेते तिनकी सृष्टि के अर्थ बिराट्की सृष्टि को कहते हैं। यहां यहभाव है कि, यद्यपि" अण्डमुत्पाद्याम्भः प्रभृतीन् लोकानसृजतेति" ब्रह्मांडको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजताहुआ, इस वाक्य करके भाष्यकार स्वामी ने लोकनकी उत्पत्ति से पूर्वही ब्रह्माण्डोत्पत्ति कही है, तथापि तिसही उत्पत्ति का लोकपालनकी सृष्टिके अर्थ यहां अनुवाद करते हैं याते विरोध नहीं] इसप्रकार ईक्षणकु करके "। सोऽद्भ्य

तमभ्यपत्तस्याभितप्तस्यमुखंनिरभिद्यतयथाऽण्डम्। मुखाद्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतांनासिकाभ्यांप्राणः प्रणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां। अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौनिरभिद्येतां। कर्णाभ्यांश्रोत्रं। श्रोत्रादिशस्त्वङ्निरभिद्यत। त्वचोलोमानि। लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो। हृदयं निरभिद्यत। हृदयान्मनो। मनसश्चन्द्रमा। नाभिर्निरभिद्यत। नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नं निरभिद्यत। शिश्नाद्रेतोरेतसःआपः ४॥

इति प्रथमखण्डः॥

एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत्" (सो जल से पुरुष को ग्रहण करके मूर्च्छित करताहुआ ; अर्थात् सो जल उपलक्षण करके जलप्रधान पंचभूतों से उक्त जलादिक चार लोकन को सृजताहुआ। तिनलोकोंसेही पुरुषके आकारकरकेयुक्त शिर हस्त पाद आदिक अवयवोंवाले (विराट् (नामवाले (पुरुषको ग्रहण करके, पृथिवी से ग्रहणकिये मृत्तिकाके पिण्डको कुलालवत् मूर्च्छित करताहुआ (अर्थात् भूतों के अवयवों से अपने अवयवों की योजना कर मिश्रित करताहुआ (३ ॥

हे सौम्य [उक्तप्रकार विराट्की उत्पत्तिको कहके अब तिसके अवयवों से लोकपालोंकी उत्पत्ति को कहते हैं] " तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम्" (तिसकेअर्थ सर्व ओरसे तपताहुआ, तिस सर्वओरसे तप्तका मुख भेदको प्राप्त हुआ, जैसे अण्ड ; अर्थात् तिस पुरुषाकारवाले पिंडके अर्थ उद्देश करके (अर्थात् प्रथम जब परमात्माने पांचों तत्त्वों का पुरुषाकार एक बिराट्नामक मृत्तिकाकी प्रतिमावत् एक कलबूत बनाया तिससमय उस विराट्नाम पिंडका आकार पुरुषाकारवत् शिर हस्त पादादि आकारवाला था परन्तु उससमय उसके

मुखादिक इन्द्रियोंके गोलकरूप छिद्र नथे तिनकी रचनाके उद्देशसे। वो परमात्मा सर्वओरसे तपको तपताहुआ, अर्थात् तिससे संकल्प वा ।विचार। वा ज्ञान,को करताहुआ "तस्य ज्ञानमयंतप" तिसका ज्ञानमय तपहै, । तिस रूप तपसे सर्वओरसे तप्त (ज्ञान को प्राप्त) ये पिंडका मुख ।मुखाकारवाला छिद्र। भेदको पावता हुआ कहिये होताहुआ,जैसे पक्षीका अंडा भेदको पावता है तैसे इसप्रकार तिस भेदको प्राप्तहुये "मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां । नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां । अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौनिरभिद्येतां । कर्णाभ्यां श्रोत्रं । श्रोत्राद्दिशस्त्वंनिरभिद्यत । त्वचोलोमानि । लोमभ्य ओषधि वनस्पतयो । हृदयंनिरभिद्यत हृदयान्मनो । मनसश्चन्द्रमा । नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः । शिश्नंनिरभिद्यत । शिश्नाद्रेतो रेतसः आपः" (मुखसे वाक् वाक्से अग्नि दोनासिका भेद को प्राप्तहोतीहुई, तिस नासिकासे प्राण प्राणसे वायुहोता हुआ । दोनोंनेत्र भेदको पावतेहुये नेत्रसे चक्षु चक्षुसे सूर्य होता हुआ । दो कर्ण भेदको पावतेहुये कर्णोंसे श्रोत्र श्रोत्रसे दिशा होती हुई । त्वचा भेद को पावतीहुई त्वचा से लोम लोम से ओषधि वनस्पति होतीहुईं । हृदय भेदको पावताहुआ हृदयसे मन मन से चन्द्रमा होताहुआ । नाभि भेदको पावतीहुई नाभिसे अपान अपानसे मृत्यु होताहुआ । शिश्न भेदको पावताहुआ शिश्न से रेत रेतसे जल होताहुआ ? अर्थात् मुखसे वाक् इन्द्रियरूप करण होताहुआ,अरु तिस वाक्से वाक्का अधिष्ठान अग्नि लोकपाल रूप देवता होताहुआ, तैसेही दोनों नासिकाके छिद्र भेदको पावतेहुये तिस नासिकारूपसे प्राण गोलकरूप । वा गंधविषय का ग्राहकरूप । करण होताहुआ । । यहां प्राण शब्दकरके प्राणवृत्ति सहित घ्राणेन्द्रिय को जानना । । तैसेही तिस प्राणसे वायुरूप देवता होताहुआ। तैसे दोनोंनेत्रके छिद्ररूप गोल भेदको पावता हुआ तिस नेत्रसे चक्षुरूप करण होताहुआ तिस चक्षुसे सूर्यरूप

अथ द्वितीयः खंडः ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्त मशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् । ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठता अन्नमदामेति १।५॥

देवता होताहुआ । तैसेही दोनों कर्णरूप छिद्र भेदको पावतेहुये तिन कर्णोंसे श्रोत्रेन्द्रिय रूप करण शब्द विषयका ग्राहक होता हुआ तिस श्रोत्रसे दिशारूप देवता होतीहुई । तैसेही त्वचारूप गोलक भेद को पावताहुआ तिस त्वचासे रोम होतेहुये रोम से ओषधि अरु वनस्पतियां होतीहुई । (यहां ओषधि अरु वनस्पति शब्दकरके तिनका अधिष्ठाता देवता कहते हैं) । तैसेही हृदय कमलरूप मांसपिंडि विशेष गोलक भेदको पावताहुआ तिस हृदय से मनरूप अन्तःकरण होताहुआ, तिस मनसे चन्द्रमारूप देवता होताहुआ । तैसेही सर्व प्राणों के रहने का स्थान नाभी भेद को पावताहुआ तिस नाभिसे अपान (पायु, गुद, इन्द्रिय) होता हुआ तिस अपानसे मृत्युरूप देवता होताहुआ । तैसेही शिश्न (उपस्थ इन्द्रियकागोलकस्थान) भेदको पावताहुआ तिस शिश्न से रेत (उपस्थ इन्द्रिय) होताहुआ । (यहां रेत शब्दकरके शिश्नेन्द्रिय स्थानवाला रेतका सम्बन्धी उपस्थ इन्द्रिय कहते हैं । तिसको रेतके त्यागरूप अर्थवाला होने से रेतका सम्बन्धीपना है) तिस रेतसे जल (अर्थात् प्रजापतिरूप देवता) होताहुआ ४॥

इति प्रथमाध्यायगत प्रथमखंड भाषाभाष्य समाप्तः ॥

अथप्रथमाध्यायगतद्वितीयखंडभाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इसप्रकार समष्टि इन्द्रियोंकी अरु तिनके अभिमानी देवताओं की उत्पत्ति कहके, अब तिन देवताओं के भोगनेके योग्य अल्पव्यष्टि देहकी सृष्टिको अरु तिन विषेदेवता के भोगार्थ व्यष्टिरूपसे प्रवेशको कहने को इच्छाकरतेहुये तिनकी उपोद्घातरूप होनेकरके क्षुधा तृषाकी सृष्टि को देखावते हैं]

"ता एता देवताः सृष्टा" सो "यह अग्न्यादि देवता सृजेहुये" अर्थात् सोयह अग्निआदिक देवता लोकपालपने करके कल्पना कर ईश्वर करके सृजेहुये [क्षुधा आदिककी सृष्टिविषे उपयोगी होनेकरके इन देवतोंके स्वरूपके अज्ञान पूर्वक जो ब्रह्मांडरूप संसारविषे पतनहै अरु आसक्तपनाहै अरु तन्मात्रापनेके । तिस रूपताके । अभिमानसे बद्धपना है तिसको कहते हैं] अविद्या काम अरु कर्म करके उत्पन्न हुये दुःख की आधिकतावाले अरु तीव्ररोग जरा अरु मृत्युरूप ग्राहवाले अरु अनादि अनन्त अपार निराश्रय अरु विषय अरु इन्द्रियनके सम्बन्ध से जनित सुखके लेशरूप विश्रामवाले अरु पंच इन्द्रियनके विषय अरु विषयों की तृष्णारूप वायुके किये क्षोभते उठी उँची उँचा सहस्रसः अनर्थरूपा लहरियोंवाले, अरु महा रौरवादिक अनेक नरकगत हाहा आदिक शब्दों के पुकारसे प्रकट हुये महाशब्दवाले, अरु सत्य आर्जव दान दया अहिंसा दम शम धैर्य आदिक दैविसम्पदा आत्माके गुणरूप मार्गके भोजनसेपूर्ण ज्ञान रूप नौकावाले, अरु सत्संग अरु संन्यासरूप ज्ञानमय नौकाकी प्रवृत्तिके हेतु मार्गवाले, अरु मोक्षरूपपार तीरवाले, ऐसे "अस्मिन्महत्यर्णवेप्रापतं" "इस बड़े समुद्रविषे पतनहोतेहुये" अर्थात् इस उक्तप्रकारके संसाररूप महासागरमें गिरते हुये । ताते अग्न्यादि देवताओं की प्राप्तिरूप वी जो ज्ञानकर्म के समुच्चय के अनुष्ठानकी फलरूप गति व्याख्यानकिया सो भी संसारके दुःख के निवृत्ति के अर्थ परिपूर्ण नहीं है । यह यहां कहने को इच्छित अर्थहै । अरु जिसकरके ऐसेहै तिसही से इसप्रकार जानके सर्व संसार दुःख की निवृत्तिके अर्थ अपना अरु सर्वभूतों का आत्मा जो अग्रिम कहनेके विशेषणवाला, "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" "उत्पत्तिसे पूर्व यह एकही आत्माथा" इत्यादिक वाक्य करके जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारका हेतु होनेकरके प्रसंगविषे प्रसह्आहै, सो परब्रह्म जानने को योग्यहै । [ननु, " यह (ज्ञान) मार्ग है, यह कर्म है, यह ब्रह्म

है, यह सत्य है,, इसप्रकार आरंभ करके ,,उक्थ (प्राण) ऐसे प्रसिद्ध है,, इत्यादि वाक्यसे कर्मसम्बन्धी सगुण ब्रह्म आत्माके ज्ञानकोही कथन कियाहै ताते तिसही को मोक्षकी साधनताहै, उक्त केवल आत्मज्ञानमात्र को नहीं। यह आशंका करके " एष पन्था " यह (ज्ञान) मार्ग है, । ब्रह्मात्माका ज्ञानही कहा है, कर्म समुच्चित ज्ञाननहीं, क्योंकि तिस कर्मसमुच्चित ज्ञानको उक्त वाक्यकरके संसारकी हेतुताके जाननेसे सत्यता के असंभव से ऐसे कहते हैं] जिसकरके कर्मसहित प्राणके ज्ञानको संसाररूप फलवान्पनाहै ताते "एष पन्था" यह (ज्ञान) मार्ग है, । यह कर्म है, यह ब्रह्महै, यह सत्यहै,, इस श्रुति बिषे "एष" यह, । पदकरके जो यह परब्रह्म औ आत्माका ज्ञानहै सोई कहाहै, क्योंकि [" तमेवविदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय " तिसही को जानके मृत्युको लंघताहै, मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहीं, । इस वाक्यसे भी केवल आत्माके ज्ञानसे अन्य मार्ग के निषेध से भी उक्त ज्ञानरूपही मार्ग है, इसप्रकार कहते हैं । यहां यह भावहै कि " एष पन्था " यह मार्ग है, । इसप्रकार ब्रह्मात्माके ज्ञानका आरंभकरके मध्याबिषे प्राणकी उपासनाका कथन तो प्राणकी उपासनासे चित्तकी एकाग्रताकेहुये अरु तिसकेफल(विवेकरूप दोष दृष्टि) से वैराग्यकेहुये " एष पन्था " यह मार्ग है, । ऐसे प्रारंभ किया मुख्य ज्ञान कहने को शक्यहै, इस अभिप्रायसेहै । यद्यपि इस वाक्यसे व्याख्यानके अवसराबिषे कर्म मार्ग भी मार्ग शब्द का अर्थ होनेकरके कहा है, तथापि सो कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग का उपाय होनेकरके कहाहै, प्रधानतासे नहींकहा, यह अभिप्रायहै] " नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय " मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहीं, । इस मंत्रवर्णसे ॥ तिस स्थान करण अरु देवताकी उत्पत्तिके बीजरूप प्रथम उत्पन्नकिये विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको " तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत् । ताएनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति " तिसको क्षुधा तृषा

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोयमलमिति । ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति २ । ६ ॥

करके योजना करताहुआ, इसकेताईं कहतेहुये हमारेअर्थ स्थान को निर्माणकरो जिस बिषे समर्थहुये हम अन्नको भक्षण करें ; अर्थात् तिस विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको क्षुधा तृषाकरके योजना करताहुआ, तिस कारण रूप विराट् पुरुषको क्षुधादिक दोषयुक्त होनेसे तिसके कार्यरूप देवताको क्षुधादिक दोषवान्पना है, ताते वे देवता क्षुधा तृषाकरके पिंडितहुये इस सृजनेवाले परमेश्वर रूप पितामह के अर्थ कहतेहुये कि हमारे अर्थ स्थान (शरीर)को निर्माणकरो कि जिस स्थानबिषे समर्थहुये हम अन्न को भक्षणकरें १ । ५ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब तिन देवताओंने कहा तब ईश्वर "ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नो ऽयमलमिति" तिन के अर्थ गौ(ल्यावता) वा देखावताहुआ , वे कहतेहुये यह हमारे अर्थ पूर्ण नहीं है ; अर्थात् तिन देवताओंके अर्थ गौ(गौकी आकृति करके युक्त पिंड)को तिनजल (आदितत्त्वों)से ही पिंडविषे ग्रहण करके(मूर्छितदृढ)होनेकरके परस्पर अवयवोंकीयोजना से सृजिके ल्यावता वा देखावताहुआ । तब वो देवता पुनः तिस गौकी आकृतिवाले पिंडको देखके कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्न भक्षणको निश्चय करके पूर्ण कहिये (योग्य वा समर्थ) नहीं, क्योंकि इसगौ शरीरमें ऊपरके दंतका अभाव होनेसे दूर्वादि तृणके मूलको उखाड़नेबिषे असमर्थताहै ताते॥गौकेनिषेध कियेहुये । अर्थात् देवताओंनेगौका शरीर ग्रहण करनेविषे निषेधकिया । तब तैसे ही"ताभ्योऽश्वमानयत्ता, अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति" तिनके अर्थ अश्वको ल्यावता वा देखावताहुआ, वे कहतेहुये कि हमारे अर्थ निश्चय करके पूर्ण नहीं है ; अर्थात् जब देवताओंने गौ का निषेध किया तब तिनके अर्थ

ताभ्यः पुरुषमानयत्। ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ३।७॥

उभय ओर दन्तवाला होनेकरके उक्त दोषके अभावसे अश्वको ल्यावता कहिये देखावताहुआ। तब वो। देवता। कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्नके भक्षणको निश्चय करके पूर्णनहीं है। इसप्रकार [यहां गौ अरु अश्वके ग्रहणको सर्व तिर्यक् देहके उपलक्षक होनेसे इस अभिप्रायसे सर्वपदकहा है। यह अर्थहै] सर्वके निषेधकियेहुये २।६॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार जब देवताओंने सर्वका निषेधकिया तब "ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन् सुकृतंवतेति" (तिनके अर्थ पुरुषको ल्यावता वा देखावताहुआ, वो निश्चय करकेसुकृतहै ऐसे कहतेहुये) अर्थात् तिनदेवताके अर्थ स्वयोनिरूप। विराट् पुरुषके देहके सजातीय। पुरुष। रूपपिंडाको देखावता हुआ, वो देवता अपनी योनिरूप पुरुषको देखके खेदसे रहितहुये यह शरीर निश्चय करके सुकृत है इसप्रकार कहते हुये "पुरुषो वावसुकृतम्,ता अब्रवीद्यथा ऽऽयतनंप्रविशतेति" (पुरुषही सुकृत है, तिनको कहताहुआ यथा योग्य स्थानविषे प्रवेशकरो) अर्थात् तिस करके पुरुषही सर्व पुण्यकर्म रूप सुकृत का हेतुहोनेसे यह सुकृत है, वा परमेश्वरने अपनेही स्वरूपसे अपनी मायाकरके कियाहोनेसे तिस। पुरुष शरीर को सुकृत कहते हैं, पश्चात् ईश्वर जिस करके [इसप्रकार व्यष्टि देहकी सृष्टिको कहके, अब तिनविषे करणोंके अरुदेवतों के व्यष्टिरूपसे प्रवेशको कहते हैं] सर्व अपनी योनिरूप शरीरोंविषे रुचिकरते हैं,एतदर्थ यह शरीर देवताओं को प्रिय है, ऐसा मानके उन: देवताओं से कहताहुआ कि यथायोग्य स्थानविषे,अर्थात् जिसका जो वचनादि क्रिया योग्य स्थान है तिसविषे प्रवशकरो ३।७॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशःश्रोत्रंभूत्वा कर्णौप्राविशन्नोषधिवनस्पतयोलोमानि भूत्वा त्वचंप्राविशंश्चन्द्रमामनोभूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापोरेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशत् ४॥ ८

हे सौम्य, जैसे राजाकी आज्ञा पायके तथाऽस्तु इस प्रकार कहके सेनापति आदिक नगरबिषे प्रवेश करते हैं, तैसे ईश्वर की आज्ञापायके "। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणोभूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौप्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमामनोभूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानोभूत्वानाभिं प्राविशदापोरेतो भूत्वा शिश्नंप्राविशत् "। (अग्नि वाक्रूपहोके मुख बिषे प्रवेश करताहुआ, वायुप्राण होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ , आदित्य चक्षु होयके नेत्र बिषे प्रवेश करता हुआ, दिशा श्रोत्र होयके कर्णों बिषे प्रवेश करतीहुई , ओषधि अरु वनस्पति रोम होयके त्वचा बिषे प्रवेश करतेहुये , चन्द्रमा मनरूप होयके हृदय बिषे प्रवेश करता हुआ , मृत्यु अपान होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ , जल रेत होयके शिश्न बिषे प्रवेश करताहुआ) अर्थात् वाक्का अभिमानी जो अग्नि सो वाक् [यद्यपि वाक्का अभिमानी अग्निहै, वाक्ही नहीं है तथापि तिस अग्निकी वाक्बिना प्रत्यक्ष अप्रतीति से, अरु तिस वाचाके भी देवताबिना अपने विषयके ग्रहणमें सामर्थ्य के अभावसे तिनके अकेली तादात्म्य करिके अभेदका कथनहै, इसप्रकार कहते हैं।] यद्यपि देवताका ईश्वरने वा श्रुति ने प्रवेश कहाहै तथापि करणों के बिना तिन देवताके साक्षात् भक्षणादि भोगके असंभवसे तिन करणोंका भी प्रवेश अर्थ से

तमशनाया पिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति। सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवता स्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति। तस्माद्यस्यैकस्यैचदेवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ५॥ १॥

इति द्वितीयखंडः ॥

कहाही है। ताते तिनकाभी प्रवेश कहा जानना॥ [अर्थात् " अग्निर्वाग्भूत्वामुखंप्राविशत्" इत्यादि कहने से स्पष्ट बिदित होताहै कि अग्नि आदिक देवताओं ने वागादिक करणोंका रूप धारके मुखादि गोलकों बिषे प्रवेशकिया है स्वयं अपने स्वरूपसे नहीं परन्तु ऐसा जाननाचाहिये कि देवताओं ने अपना २ भोग्यरूप अन्न वा केवल अन्नके भोगने के अर्थ परमात्मासे प्रार्थना कर मनुष्य शरीररूप पिंडपाया तब तिस विभोग भोगनेकी सामग्री करणोंका अभावदेख भोग भोगार्थ अपने बिषे एक करणका स्वरूप धार तिससहित मुखादि स्थानों बिषे प्रवेश कियाहै। ॥] रूपही होके अपनीयोनि (उत्पत्तिस्थान) मुखबिषे प्रवेशकरता हुआ, तैसेही बायु प्राण (घ्राण) रूप होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही सूर्य चक्षु होयके नेत्ररूप स्थानबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही दिशा श्रोत्र होयके कर्णों बिषे प्रवेश करता हुआ , तैसेही ओषधि अरु बनस्पतियां रोमरूप होके त्वचा बिषे प्रवेश करतीहुई, तैसेही चन्द्रमा मनरूप होयके हृदयबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही मृत्युअपान (गुदा) रूप होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही जल वीर्यरूप होयके शिश्न (उपस्थ) बिषे प्रवेश करताहुआ ४। ८॥

हे सौम्य , " तमशनापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति, सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवतास्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति " (क्षुधा अरु तृषा तिसको कहतीहुई हमारे अर्थ चिंतनकरो, सो तिनके अर्थ कहताहुआ देवताविषेही तुम दोनोंको

अथ तृतीय खंडः ॥

सईक्षतेमेनुल्लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति १ । १० ॥

अनुग्रह करताहौं इनबिषे भागवालियां करताहौं ; अर्थात् इस प्रकार देवताओंको स्थानाबिषे प्राप्तहुये, स्थान रहितहुईं जो क्षुधा अरु तृषा सो दोनों तिस ईश्वरसे प्रार्थना करतीहुई कि । हे भगवन् । हमारे अर्थ स्थानको चिन्तन (निर्माण) करो, इसप्रकार जब । उन क्षुधा तृषाने । कहा, तब सो ईश्वर तिन क्षुधा अरु तृषाके अर्थ कहताहुआ कि जिसकरके तुमको भाव (धर्म) रूप होनेसे अरु चेतनावाली वस्तुके आश्रय रहितहोनेसे भोक्तापना नहीं संभवेहै, अतएव इन अध्यात्म (व्यष्टि देहगत) अरु अधिदैव (समष्टि देहगत) रूप अग्निआदिक देवताओंके बिषेही तुम दोनोंको वृत्तिके विभागसे अनुग्रहकरताहौं । अरु इन देवताबिषे तुमको भागवाली करताहौं, अर्थात् जिस देवताका जो हवी आदिक भागहै तिस देवताके तिसही भागसे तुमको भागवालियां करताहौं । अरु जिसकरके सृष्टिकी आदिबिषे ईश्वर इसप्रकार करताहुआ "तस्माद्यस्यैकस्यैचदेवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासेभवतः" । (तातें जिसी अरु किसी देवतार्थ हविग्रहणकरते हैं इसीबिषे ये क्षुधा अरु तृषा दोनों भाग वालियांहीहोती हैं; अर्थात् ताते अबभी जिसीअरु किसीदेवताके अर्थ चरु अरु पुरोडासादिरूप हविग्रहण करते हैं, इसही देवता बिषे यह क्षुधा अरु तृषा दोनों भागवालियां ।अर्थात् भागीदार वा हिस्सेदार । ही होती हैं ५ । ९ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगत द्वितीयखंडभाषाभाष्यसमाप्तः ॥

अथ प्रथमाध्यायगत तृतीयखंड भाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इसप्रकार भोगके साधनकी सृष्टिको कहके अब भोग्यकी सृष्टिके कहने का आरंभ करते हैं] "। सईक्षतेमेनु लो-

सोऽपोऽभ्यतपत्। ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्त्तिरजायत। यावैसामूर्त्तिरजायतान्नंवैतत्॥ २॥ ११॥

काश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्य सृजा इति "। (सो ईक्षण करता हुआ यह प्रसिद्ध लोक अरु लोकपालके अर्थ अन्नको सृजो इस प्रकार ; अर्थात् सो ईश्वर इसप्रकार ईक्षण करताहुआ, कैसे कि यह प्रसिद्धलोक अरु लोकपाल मैंने सृजे हैं, अरु सो क्षुधा अरु तृषाकरके योजना कियेहुये हैं, एतदर्थ इन की स्थिति अन्नबिना होगीनहीं, ताते इन लोकपालनके अर्थ अन्नको सृजो, इसप्रकार ईक्षण (विचार) करताहुआ, ऐसेही लोकबिषे ईश्वरोंका (अर्थात् सामर्थ्यवालोंका) अपने सेवक किंकरादिकों में अनुग्रहविषे अरु निग्रह (दंड) बिषे स्वतन्त्रपना देखतेहैं। तैसे महेश्वरकोभी सर्व का ईश्वरहोनेसे सर्वकेप्रति निग्रह अरु अनुग्रहकरनेके विषयमें स्वतन्त्रपनाहीहै १॥ १०॥

हे सौम्य, "सोऽपोऽभ्यतपत्, ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजायत यावैसामूर्त्तिरजायतान्नंवैतत्" (सो जलोंके अर्थही तपकोकरता हुआ, तिस तपको प्राप्तहुये मूर्त्ति उत्पन्नहुई, जो प्रसिद्ध सोमूर्त्ति उत्पन्नहुई सो निश्चयकरके अन्न है; अर्थात् सो ईश्वर अन्नको सृजनेको इच्छाकरताहुआ तिन पूर्वोक्त जल उपलक्षणसे जलादि पंचभूतनके अर्थही उद्देशकरके तप [यहां यह अर्थहै, इन भूतोंके अर्थ मनुष्यादिकनके अन्नरूप तंदुल यवादि उत्पन्नहोहु। अरु मार्जारि (बिल्ली) आदिकनके अन्नरूप मूषकादि उत्पन्नहोहु। इसप्रकार अवलोकनरूप संकल्पको करताहुआ] संकल्प, को करताहुआ। तिन तप (ईश्वरके संकल्प) को प्राप्तहुये उपादान रूप जलोंसे घन (काठिन) रूप अरु शरीरधारणके समर्थ चर अचररूप मूर्त्ति उत्पन्नहुई, जो प्रसिद्ध सो मूर्त्ति उत्पन्नहुई सोनिश्चयकरके अन्नहै, अर्थात् जो उत्पन्नहुआ अन्नहै सो मूर्त्तिरूपहै। अरु जो सोमूर्त्ति उत्पन्नहुई सो यह अन्नहै॥ २॥ ११॥

तदेतदभिसृष्टंनदत । पराङ्त्यजिघांसत । तद्वाचा जिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुम् । सयद्धैनद्वाचाऽग्रहै-ष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ३ । १२ ॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् । स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ४ । १२

हेसौम्य, "तदेतदभिसृष्टंनदत" 'सो यह छोडाहुआ' अर्थात् सो यह अन्न लोकपालों के सन्मुख छोडाहुआ 'जैसे मूषक (चूहा) आदिक मार्जार (बिल्ली) आदिकोंके दृष्टिके सन्मुख छोडाहुआ यह मेरा "भक्षणकरनेवाला" मृत्यु अन्नाद (भोक्ता) है ऐसे मानिके पीछेजाताहै, तैसे "पराङ्त्यजिघांसत" 'पराङ्मुख हुआ उल्लंघनकरनेको इच्छताहुआ' अर्थात् पराङ्मुखहुआ अपने भोक्ताको उल्लंघनकरनेको इच्छाकरताहुआ, अर्थात् अपनीपालना (रक्षा)करनेको प्रारंभकरताहुआ, तिस अन्नके अभिप्रायको मानिके सो लोक अरु लोकपालोंके संघातोंसे कार्य कारणरूप पिंड (विराट्) प्रथम उत्पन्नहुआ होनेसे अन्योंको अन्नादवत् तिस अन्नको पचनक्रियारूप "तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुम्" 'तिसको वाणी से ग्रहण को इच्छता हुआ, तिस को वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ' अर्थात् अन्न को पचन क्रियारूप वाणी से ग्रहण (भक्षण) करने को इच्छता हुआ, परन्तु तिसको वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ "स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत्" 'सो जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ ताते भी अन्नको कथन करकेही तृप्त होताहुआ' अर्थात् सो प्रथम उत्पन्नहुए शरीरवाला विराट्, जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी तिसका कार्य होनेसे अन्नको वाचक शब्द से कथनकरकेही तृप्तहोताहुआ ३ । १२ ॥

हे सौम्य, "तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेनग्रहीतुम्"

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम् । स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत्दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ५ । १४ ॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम् । स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ६ । १५ ॥

ऽ तिसको प्राणसे ग्रहणकरनेकी इच्छा करताहुआ, तिसको प्राण से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ ऽ अर्थात् तिस । अन्न । का प्राण कहिये घ्राणसों ग्रहण करने की इच्छा करताहुआ, परन्तु तिस । अन्न । को प्राण (घ्राण) से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ " स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत् " ऽ सो इसको प्राणसे ग्रहण करताहुआ ताते भी इस अन्नको सूँघिके तृप्त होताहुआ ऽ अर्थात् जिस करके सो इसको प्राण (घ्राण) से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी इस अन्नको सूंघिकेही तृप्त होताहुआ ४ । १३ ॥

हे सौम्य, " तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम् " ऽ तिसको चक्षुसे ग्रहणकरने की इच्छा करताहुआ, तिसको चक्षुसे ग्रहणकरने को समर्थ न हुआ ऽ अर्थात् । सो विराट् पुरुष । तिस । अन्न । को चक्षु से ग्रहणकरने को इच्छताहुआ, । परन्तु । तिस । अन्न । को चक्षु से ग्रहणकरने के विषयमें समर्थ न हुआ, " स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " ऽ जाते सो इसको चक्षु से ग्रहण करताहुआ अन्नको देखकेही तृप्त होताहुआ ऽ अर्थात् जिसकरके सो । विराट् पुरुष । तिस । अन्न । को चक्षु । दृष्टि । से ग्रहण करताहुआ, तिस करके सर्व लोक भी इस अन्नको देखकेही तृप्त होताहुआ ५ । १४ ॥

हे सौम्य, "तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेणग्रहीतुम्" ऽ तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ ऽ अर्थात् तिस । अन्न । को श्रोत्रसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु श्रोत्र से तिस । अन्न ।

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत् त्वचा ग्रहीतुम् । स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ७ । १६ ॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुम् । स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ८ । १७

को ग्रहण विषे समर्थ न हुआ, " । स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " । (सो । विराट् । इसको श्रोत्र से ग्रहणकरताहुआ, ताते भी अन्नको श्रवण करकेही तृप्तहोताहुआ ? अर्थात् सो इस । अन्नको । श्रोत्र से ग्रहण करताहुआ, ताते । उसका कार्य । सर्व लोक भी अन्नको श्रवणकरके तृप्तहोताहुआ ६ । १५ ॥

हे सौम्य, " । तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत् त्वचाग्रहीतुम् " । (तिसको त्वचासे ग्रहणकरनेको इच्छताहुआ, तिसको त्वचासे ग्रहणकरनेको समर्थ न हुआ " । स यद्धैनत् त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " । (सो इसकोत्वचासे ग्रहणकरताहुआ ताते सर्व अन्नको स्पर्शकरके तृप्त होतेहुए ? अर्थात् सो । विराट् पुरुष । इस । अन्न । को त्वचासे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोकभी इस । अन्न । को स्पर्श करके तृप्त होतेहुये ७ । १६ ॥

हे सौम्य, " । तन्मनसाऽ जिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसाग्रहीतुम् " । (तिसको मनसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ ? अर्थात् तिस । अन्न । को मनसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ, " । स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " । (सो इसको मनसे ग्रहण करताहुआ ताते अन्नको चिन्तन करकेही तृप्त होतेहुये ? अर्थात् सो । बिराट् । इस अन्नको । मनसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोक भी अन्नको ध्यान करके तृप्त होतेहुये ८ । १७ ॥

हे सौम्य, " । तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम् " । (तिस । अन्नको । शिश्नसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ,

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम्। स-
यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यादिसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ९ । १८
तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् । सएषोऽन्नस्यग्रहोय
द्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः १० । १९ ॥
स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति । स ईक्षत कत-
रेण प्रपद्या इति । स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं । य-
दि प्राणेनाभिप्राणितं । यदि चक्षुषा दृष्टं । यदि श्रोत्रेण
श्रुतं । यदि त्वचा स्पृष्टं । यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेना
भ्यपानितं। यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोहमिति ११ । २० ॥

परन्तु । तिसको शिश्नसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ; "स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यादिसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत" । (जाते सो इसको शिश्नसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी इस अन्नको त्यागकेही तृप्त होताहुआ ९ । १८ ॥

हे सौम्य, "तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत्" । (तिसको अपान से ग्रहण करनेको इच्छताहुआ, तब भक्षण करताहुआ; अर्थात् पश्चात् तिस अन्नको अपानवायु (मुखछिद्र)से ग्रहण करनेको इच्छा करताहुआ,तब तिस अन्नको भक्षण करताहुआ, "सएषोऽन्नस्यग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः" । (सो यह अन्न का ग्राहकहै जो वायु, अन्नसे जीवनवाला प्रसिद्ध है सो यह जो वायु है १० । १९ ॥

हे सौम्य, "सईक्षत" । (सो ईक्षणको करताहुआ; अर्थात् सो [इसप्रकार भोगके अधिकरणरूप लोकों की, अरु भोगके आयतन समष्टि व्यष्टि शरीरों की, अरु भोगके साधन वागादिकों की, अरु समष्टि शरीरविषे लोकपालों करिके अरु व्यष्टि शरीर विषे करणों के अधिष्ठाता करके स्थितहुये देवताओं की, अरु भोगविषे प्रेरक क्षुधा तृषाकी, अरु तिसके किये करणों विषे स्थित

शब्दादि विषयोंकेग्रहणरूपभोगकीभी, अरु अन्नरूपवृत्तिवाले प्राण विषे स्थित अन्नपानके ग्रहणरूप भोगकी आत्माके संसारीपने की सिद्ध्यर्थ सृष्टिको कहके अबसंसारियों के भोक्ताको देखावनेअर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके बिचारअंशके देखावने को "स ईक्षत" सो ईक्षणको करताहुआ, । इस वाक्यका व्याख्यान करते हैं] इस प्रकारके पुर अरु पुरके निवासी जन अरु तिनके पालक राजभृत्यों की स्थिति के तुल्य अन्नरूप निमित्तवाली लोक अरु लोकपालों के संघातकी स्थितिको करके पुर के स्वामीवत् ईक्षण (अवलोकन) को कर्त्ताहुआ, क्योंकि कार्य कारणका संघातरूप अग्रिमकहनेकाकार्य है सो परके [इदं शब्दार्थका "परार्थेसदिति" यह विशेषण हेतु गर्भित है । इस संघातको परके अर्थ होनेसे, इस हेतुरूप गर्भवाला यहविशेषणहै । परके अर्थहोनेवाले पदार्थों की स्थिति वा चेष्टा मुझविना कैसेहोवेगी, इसही अर्थके "कथं" कैसे, । इस अर्थकरके सूचनकिये व्यतिरेकको कहतेहैं] अर्थहुआ स्वामी विना पुरवत् "(कथं त्विदं मदृते स्यादिति । सईक्षत कतरेणप्रपद्याइति, सईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं, यदि प्राणेनाभिप्राणितं । यदि चक्षुषादृष्टं, यदि श्रोत्रेणश्रुतं, यदि त्वचा स्पृष्टं, यदि मनसाध्यातं, यद्यपानेनाभ्यपानितं । यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति " (मुझबिना निश्चयकरके किसप्रकारसे होवेगा, जब वाणीसे कथन कियाहोवे, जब प्राण (घ्राण) से सूंघा होवे, जब चक्षु से देखाहोवे, जब श्रोत्रसे श्रवण कियाहोवे, जब त्वचासे स्पर्शकियाहोवे, जब मनसे ध्यानकियाहोवे, जब अपान से भक्षणकियाहोवे, जब शिश्नसे त्यागकियाहोवे, तब मैं कौनहों, इसप्रकार ईक्षण करताहुआ) अर्थात् (जैसे पुरके स्वामी राजा विना प्रजाका व्यापार सिद्धहोवेनहीं, तैसे इस शरीररूप पुरके स्वामी (मुझबिना निश्चयकरके किसप्रकार होवेगा । अरु पुनः [इसप्रकार वाणीके व्यवहारादिक कार्यकी सिद्धिकेअर्थ मुझको प्रवेशकरना योग्य है, इसप्रकार कहके अब आत्मस्वरूप के बो-

धार्थ मुझको प्रवेशकरना योग्यहै, यह कहनेके अर्थ "स ईक्षत" सो ईक्षणकरताहुआ, । "यदि वाचाभिव्याहृतं" जब वाणीसे कथनकिया, । इत्यादिसेले "कोऽहमिति" अब, मैं कौनहौं, । यहां पर्यन्त जो वाक्यहै, तिसको तिस । परमेश्वर । के प्रवेश के प्रयोजन के कथनरूप होनेवाला करके "कथं न्विदं मदृते स्यादिति" यह मुझबिना कैसे होवेगा, । इसवाक्यके तुल्य होनेसे "स ईक्षत" सो ईक्षणकरताहुआ, । "कतरेण प्रपद्या" किस मार्गसेप्रवेशकरों, । इसवाक्यसे अन्तरायवाले वाक्यकोभी यहांही न्यायके व्याख्यानकरे है । इसवाक्यका यहअर्थहै कि संघातरूप वागादिक कार्यका परोपकार रूप वदनादिक क्रियाके कर्त्तापने रूप जो परके अर्थहोनाहै सो उपकार के भागी परके अर्थीबिना जब होवे तब] जब वाणीसे कहा, घ्राणसे सूंघा, चक्षु से देखा, श्रोत्रसे सुना, त्वचासे स्पर्शकिया, मनसे ध्यानकिया, अपान से भक्षणकिया ॥ । हेसौम्य यहां अपानवायुकरके भक्षणकिया ऐसा कहाहै अरु यहनिकटही कहआयेहैं कि मृत्यु अपानकही ये गुदा रूप से नाभिबिषे प्रवेश करताहुआ, अन्य बहुत से स्थानों विषे अपानवायुको मल मूत्रके त्यागरूप क्रियाका करता अधोगामी कहाहै, । "पायूपस्थेऽपानं" । यह प्रश्नोपनिषद्का प्रमाण है कि पायु (गुदा) अरु उपस्थ (शिश्न) इन दोनों इन्द्रियों में स्थितहोयके अपाननामवाला वायु मल मूत्रका त्यागरूप क्रिया करेहै, । अरु यहां अपानवायुकरके भक्षण किया, ऐसा कहा है, ताते परस्पर विरुद्ध प्रतीत होवेहै, अतएव यहां ऐसा विचार है कि जैसे गुदस्थ अपान अधोगामीहै तैसेही मुख नासिकाके मार्ग से बाह्यरूप ऊर्ध्वको जानेवाला प्राणहै सो जब बाह्यरूप ऊर्ध्वसे लौटके अन्तर अधोको आवताहै तब उसकोभी अपानसंज्ञाहोती है क्योंकि अन्तर अरु अधोगमनकी अधोगमनमें एकताहै ताते, अतएव यहां मुख नासिका के मार्गसे अन्तर आवनेवाला प्राण अपानसंज्ञक जानना अरु सोई मुखमें पाये अन्न जलादिकों को

कण्ठके नीचे उतार उदर में प्राप्तकरता है, ताते मुखके मार्गसे अन्तर आवनेवाले " यद्यपानेनाभ्यपानितं " जब अपानवायु करके भक्षण कियाहोवेहै, इसप्रकार जानना । ॥ शिश्नसे त्याग किया, इसप्रकारहोवे, तबमैं कौनहौं। इसप्रकार ईक्षण (विचार) करताहुआ, इस [उक्त वाक्यके अर्थको स्पष्टकरतेहैं] वाक्यका यहअर्थ है कि केवलही भोक्तारहित वाणीआदिकोंसे उच्चारणादिक जो है, सो व्यर्थ होनेसे किसीप्रकार भी होवेनहीं क्योंकि सर्व प्रवृत्तियों का प्रयोजनके अर्थ होनाहै ताते । अरु जैसे पुरके निवासी अरु बंदीजनादिकों करके योजना किया जो बलिदान (कर) अरु स्तुतिआदिक सो स्वामीके अर्थहोते हैं,स्वामीविना व्यर्थहै,तद्वत् । अतएव पुरके अधिष्ठाता राजावत्, संघातसे अन्य मुझ स्वामी अधिष्ठाता अरु कृताकृतके फलके साक्षीरूप भोक्ता करके तहां । शरीरादि संघातविषे प्रवेशकरना योग्यहै। अरु जब यह संघातरूप कार्यका जो दूसरे के अर्थ होना है सो स्वामी के विना पुर अरु पुरवासियोंवत् पररूप अर्थी चेतन विनाहोवे, तब मैं किस स्वरूपवालाहौं, वा किसका ईश (स्वामी) हौं अर्थात् जब मैं कार्य कारणके संघातविषे प्रवेश करके अधिकारी पुरुषों के कृताकृत के देखने को राजावत् वागादिकों के उच्चारणादिक फलको न जानों तब कोईभीपुरुष मुझको यहआत्माहै अरु यह इसरूपवाला है इसप्रकार न बिचारेगा। अरु विपर्य्यय के । प्रवेश करके उच्चारणादिक के अनुभव के । हुये तो जो [ज्ञानरूपताको प्रतिपादन करते हैं । यहां यह जो वागादिकों के वदनादिक क्रियाको जानता है सो ज्ञानरूप है, इसप्रकार जानने को योग्य होवेगा, यह अन्वय है । अरु जाननेवाले का ज्ञानरूप पना कैसे है,इसप्रकारकहनेको योग्यनहीं,क्योंकिज्ञाताकोअचेतन रूपताके होनेसे तिसको अन्य ज्ञानकी विषयता कहनी होवेगी । अर्थात् जब ज्ञाता अचेतन हुआ तब , ज्ञाता अन्यज्ञान करके जानाजाता है, इसप्रकार कहनाहोवेगा । । अरु तिस ज्ञानविषे

जब ज्ञाताही कर्त्ता है, तब एकही ज्ञाताबिषे ज्ञानका कर्त्तापना अरु ज्ञानका बिषयपना यह बिरोध प्राप्त होवेगा, । अरु जब अन्य ज्ञाता कर्त्ता है तब तिसका भी अन्यज्ञाता होवेगा, तातें अनवस्था दोष प्राप्त होवेगा। इसप्रकार ज्ञाताकी ज्ञानरूपता सिद्धहोती है। इसही से अन्यश्रुतिबिषे "यो वेदेदं जिघ्राणीति" जो जानताहै इसको मैं सूंघताहौं सो आत्मा है, इसप्रकार घ्राता घ्रेय अरु घ्राणरूप त्रिपुटी के ज्ञानको आत्मरूपता कही है। यह भावहै] यह वागादिकों के उच्चारणादिकों को जानता है सो सत् है, अरु सोसंवेदन (ज्ञान) रूपहै, इसप्रकार मैं जाननेयोग्य होवोंगा। अरु जिसके अर्थ यह संघातरूप वागादिकों का उच्चारणादिकहै, सो वागादिकनसे अन्य अरु अमिलितहै, इसप्रकार जानने को योग्य है। [संघातरूप हुये पदार्थों के संघातसे भिन्नपरके अर्थ होनेबिषे दृष्टान्त कहते हैं।यहां यहअनुमान कथनकियाहोताहै कि वागादिकों का संभाषणादिक जो है सो अपने से अमिलित अन्यके अर्थ होनेको योग्यहै। अर्थात् वागादिकों का जो वक्तृत्वादि व्यापार है सो वागादिकों के अर्थ न होयके वागादिकों से पृथक् किसी अन्यके अर्थ है। क्योंकि संघातरूपहैं तातें, भित्ति (दिवार) अरु गृहादिकोंवत्] जैसे गृहबिषे मिलित हुये स्तंभ भित्तिकपाटआदिकोंका अपने अवयवनसे अमिलितहुये अन्यके अर्थही होनाहै तद्वत्। अर्थात् गृहमें ईंट पाषाण स्तंभ छज्जे टोडे गोखे तिखालादिक जो होते हैं सो अपने २ अर्थ वा अपने अवयवों सें एक दूसरे के अर्थ नहीं, अर्थात् स्तंभका होना स्तंभ के अर्थ वा भित्तिके अर्थ नहीं क्यों कि वो स्तंभ भित्तिआदिक जड होनेसे प्रयोजन रहित है, तातें उनका होना उनसे भिन्न उनका जाननेवाला स्वामी अन्यही है, तैसेही शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात जो काष्ठभास्वत् जड हैं तिनका जो द्रष्टृत्व श्रोतृत्व वक्तृत्वादि व्यापारहै सो स्वस्वके अर्थ किंवा एककादूसरे के अर्थ नहीं क्यों कि यह करणरूप होनेसे ज्ञानशून्य परतन्त्र है

स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत।सैषा विद्दतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनं। तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथो ऽयमावसथोऽयमावसथ १२।२१॥

ताते इनका सर्व व्यापार इनसे अमिश्रित अन्य किसी ज्ञाते चैतन्यके अर्थ है ।। इसप्रकार सो ईक्षण (विचार) करताहुआ। इसरीति से ईक्षण करके "। सईक्षत कतरेण प्रपद्या " (सो ईक्षण करताहुआ किससे प्राप्तहोवो ? अर्थात् । उक्तप्रकार बिचार के सो परमात्मा पुनः। ईक्षण (बिचार) करताहुआ कि, [अब " सईक्षत " सो ईक्षण करताहुआ कि " कतरेण प्रपद्या " किस मार्ग से प्रवेशकरों, इस वाक्य का व्याख्यान करते हैं। यहां यह अर्थ है कि, जिस करके प्रवेशकी, वागादिकों के व्यवहारकी सिद्धि अरु मेरे स्वरूप का बोध, इन दोनों प्रयोजनकी सिद्धि के अर्थ कर्तव्य है याते] किस द्वारसे इस संघात बिषे प्राप्तहो अर्थात् इस संघातविषे प्रवेशके मार्गपादकाअग्रभाग ।वा नीचेकाभाग । अरु मस्तकहै, इनदोनों बिषे किसमार्गसे इस कार्य कारणात्मक संघातरूप पुरबिषे प्रवेशकरों "इति, सईक्षत । (इसप्रकार सो ईक्षणकरताहुआ;अर्थात् इसप्रकारसो।परमात्मा ईक्षण ।बिचार। करताहुआ, इसरीतिसे ईक्षण करके [किंकरके प्रवेशके मार्ग से स्वामी का प्रवेश अनुचित है, एतदर्थ इसही मार्ग से प्रवेशकरों इसप्रकार निश्चय करताहुआ, ऐसा कहते हैं] प्रथम मेरे सर्व अर्थ बिषे अधिकारी मेरे भृत्यरूप प्राणके प्रवेश के मार्गरूप दोनों पादों के अग्रनसे नीचे नहीं प्राप्तहोवोंगा, किन्तु परिशेषसे इस पिंड (शरीर) के मस्तकको बिदीर्ण करके । इसविषे । प्राप्तहोवोंगा । इसप्रकार निश्चयकरके ११ । २० ॥

हे सौम्य, "। स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत"। (सो इसही सीमाको विदीर्णकरके तिसद्वारा प्रवेशकरताहुआ ; अर्थात् लोकवत् ईक्षणकर्त्ता जो स्रष्टा ईश्वरहै, सो यह जो केश

के विभागपर्यंत मस्तककी मध्यसीमाहै ।। अर्थात् दक्षिणकर्णके ऊपरसेलेके वाम कर्णके ऊपरपर्यन्त मस्तकपर आडीरेखाकरिये अरु नासिकासेलेके पीछे के मेरुदंडपर्यन्त खडी रेखाकरिये तब जहां दोनों रेखामिलें व खडीरेखा आडीरेखाको काटे तिस मस्तक की मध्य सीमाको,।विदीर्णकरके अर्थात् मस्तककेमध्य छिद्रकरके तिस द्वारसे (मार्गसे) इस कार्यकारणके संघातरूप लोकोंवा पुरी बिषे प्रबेशकरताहुआ ।। । अर्थात् बालकों के मस्तकके मध्य में अतिमृदु त्वचासे आच्छादित छिद्रहोताहै अरु सो बालकके मस्तकपर स्पर्शकरनेसे प्रतीतहोताहै तिसछिद्रको निर्माणकर,अर्थात् मस्तकके तिस स्थानको विदीर्ण (छिद्र) कर परमात्मा ने प्रबेशकियाहै अरु वो छिद्र परमात्माके प्रबेशका द्वारहोनेसे,ब्रह्मरंध्र इसनामसेप्रख्यातहै ।।।"सैषाविद्दतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनं"। सो यह विद्दतिनामवाला प्रसिद्धद्वारहै सो यह नान्दनद्वारहै ; अर्थात् सो यह [ननु,पुरुषबिषे नवप्राण (द्वार)है,तहां सप्त मस्तक के अरु दोनीचेके इसप्रकार नव हैं "नवद्वारे पुरेदेही" नवद्वार वालेपुरबिषे देही,। इत्यादि प्रमाणवाक्यकरके शरीररूपपुरके नव द्वारप्रसिद्धहैं,परन्तु मस्तकबिषे अन्यद्वार नहीं, यह आशंकाकरके प्रत्यक्षसे अरु "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" तिस (सुषुम्णानाम नाडी)से ऊर्ध्वको जाताहुआ अमरण भावको पावताहै , । इस श्रुतिवाक्यसे, तिस मस्तकगत अन्य द्वारकी प्रसिद्धिसे तिसका निषेध बनेनहीं,इसप्रकार कहनेको " सो यह " इस रीतिकावाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं ।] द्वार,मस्तकका छिद्र, मस्तक बिषे तैलादिकको धारणकालमें तिसके रसआदिकोंके जाननेसे प्रसिद्धहै । सो यह विदीर्णहुआहोने से विद्दतिनामवाला प्रसिद्ध द्वार है । अरु अन्य श्रोत्रादिद्वारतो राजा के किंकरादिस्थानीय देवताओंके प्रबेशके साधारण मार्गरूप होनेसे समृद्धिवाले आनन्दकेहेतु । नहीं, यह द्वारतो केवल परमेश्वरकाही है,तातें सो यह द्वारनान्दन (आनन्दका हेतु)है । अरु जिस द्वारसे जायकेपर-

ब्रह्मको पावताहै तिस द्वारको नान्दन कहतेहैं। [इसप्रकार ईश्वरके प्रवेशको कहके, अब तिसके पूर्वोक्त कार्य कारणरूप संघातमय उपाधिकेकिये संसारको कहतेहैं] "। तस्य त्रयआवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति "। (तिस के तीन स्थानहैं, स्वप्नहै, यह स्थानहै, यह स्थान है, यह स्थान है; अर्थात् तिसही सृजके अपने पुरकेअर्थ राजावत् जीवरूपपरमेश्वरके तीनस्थानहैं । तहां जाग्रत्कालविषे दक्षिणचक्षु (चक्षुरूप गोलक) रूप स्थानहै। स्वप्नकालविषे अन्तरका मन (मनकाआश्रय कंठ) स्थानहै । अरु सुषुप्तिकालबिषे यह हृदयाकाश (हृदय करके अविच्छिन्न भूताकाश) स्थानहै। अथवा यह अग्रिमकहने के तीनस्थान , पिताके शरीर , माताके गर्भके आशय (अर्थात् गर्भाशय, गर्भस्थान) अरु अपना शरीर, यह तीनरूप स्थान है । इनमें तीन जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, नामवाली अवस्था स्वप्न (भ्रमरूप) है ननु जाग्रत् अवस्था प्रबोधरूप होनेसे स्वप्न नहीं है, सो ऐसे नहीं,किन्तु सो स्वप्नही है। कैसे, [अविवेकियोंको तैसे प्रसिद्धके अभावहुयेभी विवेकियोंको तिन(स्वप्नादि) के लक्षणके ज्ञातवाले होनेसे, तैसे (स्वप्नवत्) प्रसिद्ध है,यह कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि वस्तुके स्वरूपके तिरोधानसे असत् वस्तुकी जो प्रतीति, सो स्वप्न कहते हैं, यह स्वप्न का लक्षण है । अरु जाग्रत् भी तिस प्रकार का ही है, क्योंकि ब्रह्म स्वरूपके तिरोधानहुये अरु अविद्यमान जगत् की प्रतीतिके हुये (जाग्रत्भी स्वप्न है)] तहां परमार्थस्वरूपके प्रबोधके अभावसे, अरु विवेकी पुरुषों करके स्वप्नवत् इसकी असद्रूपताके देखेहुये। यहही दक्षिण चक्षुरूप स्थान प्रथमहै । यह स्थान भीतरका मनरूप द्वितीय है, अरु यह हृदयाकाशरूप स्थान तीसरा है, । यह " अयमावसथ " यह स्थान ऐसा जो उच्चारण है सो उक्त अर्थकाही अनुवाद है १२ । २१ ॥

—०—

स जातो भूतान्यभिवैक्षत । किमिहान्यं वावदिषदिति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यादिदमदर्शमिति १३ । २२ ॥

हे सौम्य, [ननु, गृह विशेषके वाची ,आवसथ, शब्दका नेत्रादिकों बिषे व्यवहार कैसे बनेगा, यह आशंका करके गृहवत् इन नेत्रादिकों बिषे स्थित पुरुषको दीर्घनिद्रा के देखनेसे अरु तिन नेत्रादिकों बिषे गृहमें सुखसे सोयेहुयेवत्, सोये पुरुष को तत्काल जागरण के देखनेसे गौणी वृत्ति करके नेत्रादिकन के आवसथ (गृह) पने को कहे हैं] जिसकरके यह आत्मा उन स्थानों बिषे क्रमकरके आत्मभाव से बर्त्तमान होयके स्वाभाविक अविद्यासे दीर्घकाल पर्यन्त गाढ़ निद्राको पायाहुआ प्रबोध को प्राप्तहोतानहीं,अरु वारंवार मरणकेअनुभवसे अनेक शत सहस्र अनर्थोंकीप्राप्तिसे जन्य दुःखोंको अनुभव करे है,एतदर्थ यह चक्षुरादिकों को स्थान (गृह) करके कहते हैं ॥ [ननु, जागरणादिक जो है सो कार्य कारणके संघातरूप भूतोंके कार्यका धर्म है, आत्माका नहीं, ताते भिन्न आत्माको भी तिसबिषे तादात्म्य अभिमानसे तिस धर्मकरके युक्तपनाहै, इसप्रकार कहने को "स जातो" सो होताहुआ,।यह वाक्यहै,तिसका व्याख्यान करते हैं] "। स जातो भूतान्यभिवैक्षत "। (सो प्रकटहुआ भूतोंकोही जानताहुआ ; अर्थात् सो परमात्मा प्रकटहुआही भूतों को "अहं मनुष्यः, अहं काणः, अहं सुखी " मैं मनुष्य हौं, मैं काणाहौं, मैं सुखी हौं,।इत्यादि। अनेक। प्रकारसे। अनात्म संघातबिषे। तादात्म्य करके स्पष्ट जानताहुआ, अरु। मानताहुआ, अरु कहताहुआ,। "। किमिहान्यं वावदिष्यादिति "। (इसबिषे अन्यको क्या कहताहुआ ; अर्थात् इस शरीरबिषे भिन्न आत्माको क्या कहताहुआ,नहीं कहताहुआ,अरु नहीं जानताहुआ। अरु जिसकरके ऐसे हैं। अर्थात् अपनेआप आत्माको नहीं जानता कहता। तिसही

करके भूतों को । आत्मा करके । स्पष्ट जानताहुआ । अथवा सो प्रकटहुआ भूतोंको चिन्तन करनेलगा, अर्थात् । भूतों को बिचारताहुआ । कि क्या इनकी स्वरूप से सत्ता है वा नहीं । अरु बिचार करके किस अन्य (आत्मासेभिन्न) सत्तावालेको कहौं ॥ किसीको भी आत्मासे भिन्न । सत्तावाला । कहनेको समर्थ नहीं हौं, इसप्रकार निश्चय करताहुआ ॥ इसप्रकारके पदार्थ के शोधनवाले पुरुषको वाक्यार्थ का ज्ञान कहते हैं "। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्शमिति ।" ; सो इसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताहुआ, इसको देखताहौं ऐसे ; अर्थात् सो कदाचित परमदयालु आचार्य करके आत्मज्ञान के प्रबोधके कारक । महावाक्यार्थरूप । शब्दों को करनेवाली जे वेदान्त शास्त्ररूप । अलौकिक । महाभेरि तिसको । शिष्यके । कर्णमूलबिषे । श्रोत्रके छिद्रपर । ताडनकिये (बजायेहुये) सो इसही सृष्टि आदिकों के कर्त्तापने करके प्रसंगबिषे प्राप्तहुये शरीररूप पुरबिषे रहनेवाले आत्मारूप पुरुषको आकाशवत् परिपूर्ण ब्रह्मरूपसे देखताहुआ । कैसे कि अहो इस परब्रह्मरूप सुभस्वस्वरूप को देखताहौं । । अर्थात् "। अहं ब्रह्मास्मिभाव से साक्षात् यथार्थ अनुभव करता हौं यह महान् आश्चर्य है । । ऐसे । अरु जिसकरके "। इदं "। ,यह, इस शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष आवान्तर ब्रह्म है । अर्थात् ,यह, शब्द अंगुली निर्देशहुआ साक्षात् प्रत्यक्षका विषय होताहै, तहां अभिप्राय यह है कि ब्रह्मवेत्ता आचार्य से तत्त्वमस्यादि, महावाक्यार्थ के श्रवण ज्ञान से जो प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय अरु सर्वका प्रकाशक द्रष्टा चैतन्य आत्मा सो इदं शब्दके विषय घटवत् प्रत्यक्ष न होयके इदं प्रत्यय को सविषयके प्रकाशक द्रष्टा आत्माको "प्रतिबोधविदितं" अपनेआप आत्मत्वपने से असंदिग्ध अनुभव करे हैं । । तिसको अपरोक्ष से देखताहुआ १३ । २२ ॥

—०—

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवै नाम। तमिदन्द्रंसन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इवहिदेवाः परोक्षप्रियाइवहि देवाः १४। २३॥

इतितृतीयखण्डः॥

हे सौम्य, जिस करके सर्वान्तर ब्रह्मको यह। अपरोक्ष चक्षुरादि सर्वका द्रष्टा, प्रत्यगात्मा। इसप्रकार। अंगुली निर्देश के विषय घटवत्। देखाहुआ, [तिसके इन्द्रनामकी प्रसिद्धिसे भी तिसके ज्ञानको अपरोक्षपना है, इसप्रकार कहने को "। तस्मादिदन्द्रोनाम" तातेइदन्द्रनामहै, । यहवाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं] ताते "। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवैनाम "। (इदन्द्र नामवाला होताहुआ,इदन्द्र नामवाला प्रसिद्ध है ; अर्थात् परमात्मा इदन्द्र नामवाला होताहुआ, अरु लोकबिषे सो ईश्वर इदन्द्र नामवाला प्रसिद्धही है "। तमिदन्द्रं सन्तमिंद्रमित्याचक्षते परोक्षेण "। (तिस इदन्द्रहुये सतेको परोक्ष करके इन्द्र ऐसाकहते हैं ; अर्थात् तिस इस प्रकार इदन्द्रहुये परमात्माको यहब्रह्मवेत्ता। प्रत्यक्ष ब्रह्मको आत्मभावसे जाननेवाले। तिस को अत्यन्त पूज्य होनेसे अरु तिसके प्रत्यक्ष नाम ग्रहणके भयसे सम्यक् व्यवहारार्थ परोक्षनामसे इन्द्र ऐसा कहते हैं॥ [पूज्य पुरुषों का नाम परोक्षपने करके ही कहनेको योग्य है, इसअर्थ बिषे प्रमाण कहते हैं। यहां यह भावहै कि, इसही से लोकबिषे आचार्य जो हैं सो , उपाध्याय, इस नामके कहनेसे ही प्रीति को करते हैं, परन्तु विष्णुमित्रादि नामके ग्रहणबिषे नहीं॥ अर्थात् कोई एक , विष्णुमित्र , इस प्रख्यात नामसे प्रसिद्ध है, अरु विद्यार्थियोंको अध्ययन करावता है उस आचार्य पुरुष को , उपाध्याय, इस गुणविशिष्ट नामसे बोलाइये तब वो विशेष प्रीति करता है, अरु जो कदापि उसको ,विष्णुमित्र, इस सामान्य नामसे बोलायो तो उत्तर तो देताहै परन्तु प्रीतिसे नहीं॥

अथ द्वितीयाध्याय ॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भोभवति । यदेतद्रेतस्तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजःसम्भृतमात्मन्येवात्मानंबिभर्ति । तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति । तदास्य प्रथमं जन्म १ । १४ ॥

यथार्थ नामका अन्यरूपके करनेसे स्वरूप का आच्छादन होता है सोई नामका परोक्षपना है, इस प्रकार कहते हैं] तैसेही देखावते हैं " परोक्षप्रिया इवहि देवाः परोक्षप्रिया इवहिदेवाः " (जाते देव परोक्ष प्रियवत् है २) अर्थात् जबदेवता परोक्षप्रिय (अर्थात् परोक्षनामसे प्रीतिवाले) वत् हैं , देव परोक्षप्रियवत् हैं, तब सर्व देवताओं का भी परमदेव (ताते महादेव) सो परोक्षप्रिय (अर्थात् परोक्ष नामके ग्रहणसे प्रीतिवाला) है तिस में क्या कहना है, किन्तु कुछभी नहीं । यहां जो द्विवारकथन है सो इस अध्यायकी परिसमाप्त्यर्थ है १४ । २३ ॥

इतिश्री प्रथमाध्यायगत तृतीयखण्डभाषाभाष्य

इतिश्रीऐतरेयोपनिषद् गतप्रथमाध्यायभाषाभाष्यसमाप्तम् ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गत द्वितीयाध्याय भाषाभाष्य प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इस प्रथमाध्यायविषे आत्मा की एकता , अरु लोकपालों की सृष्टि,अरु क्षुधा तृषाकी योजना, इत्यादिकबहुत अर्थोंको कथन किये हैं ताते, अरु सर्वके भी कहने को इच्छित की शंकाके निवारणार्थ कहनेको इच्छित (अर्थात् जिस अर्थके कहनेकी इच्छा है) कहते हैं । यहां सर्व शरीरोंविषे भी एकही आत्मा है, सोई परमेश्वर है,इस प्रकारका जो अग्रिम कहनेका अर्थ सो "एतत्" यह,। इस शब्दका अर्थ है]॥ इस अध्यायविषे अग्रिम कहनेकाअर्थ कहनको इच्छित है [प्र० । यहही अर्थ कहनेको कैसे इच्छित है (क्या अन्य अर्थ नहीं ॥ यह शंकाकरके

पूर्व ग्रन्थकी रचनाको विचारकरके देखनेसे यह ही। जो आगे कहेंगे। कहनेको इच्छितहै, इसप्रकार कहतेहैं। यहां यहअर्थ है कि यद्यपि लोकादिक की सृष्टिसे अरु अन्यकी सृष्टिसे उत्पत्ति अरु स्थिति ही कही, तथापि उत्पत्ति अरु स्थितिके कथनकरके अर्थ से प्रलयभी कथनकिया। अरु प्रलयका कर्त्ता, इसप्रकार कहे हुये लोकपालादिकों केही भोक्तापने के कथन से सो असंसारी है, इसप्रकार कहा॥ सामान्य से सर्वको जानता हैं ताते सर्वज्ञ है। अरु विशेष करके सर्वप्रकार से भी सर्व का वेत्ता (जाननेवाला) होने से सर्ववित् है]। जिसकरके जगत्की, उत्पत्ति, स्थिति, अरु लय, का कर्त्ता असंसारी सर्वज्ञ, सर्ववित्, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर, इस जगत्को स्वरूप से भिन्न अन्य वस्तुको न ग्रहण करकेही आकाशादिकों के क्रमसे सृजके। तिनके कार्यकी सिद्धिके अर्थ। अरु स्वस्वरूपके प्रबोधार्थ प्राणादिक सर्वकलावाले शरीरों बिषे आप प्रवेश करताहुआ। अरु प्रवेश करके अपने आत्माको "यथाभूतमिदं ब्रह्मास्मीति" यथाभूत यह ब्रह्ममैं हौं,। इसप्रकार साक्षात् जानताहुआ।[जिस करके सर्व शरीरों बिषे एकहीका प्रवेश कहाहै, अरु जिस करके प्रवेशसे प्राप्तहुयेका ब्रह्मभावसे ज्ञान कहाहै, ताते सर्व शरीरों बिषे एकही आत्माहै, अरु सो सर्वज्ञ ईश्वर है अन्य नहीं। यह वाक्यार्थ कहनेको इच्छित है, इसप्रकार पूर्व से सम्बन्ध है] ताते सोई आत्मा सर्व शरीरों बिषे एकही है, अन्य नहीं। अरु अन्य वाक्यभी "सम आत्मा ब्रह्मास्मीति" सो मेरा आत्माहै, । ऐसे जानना, "मैं ब्रह्महौं" इसप्रकार जानना,। अरु "आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीत्" "ब्रह्मततमामिति" यह आगे निश्चय करके एक आत्माहीथा, परिपूर्ण ब्रह्मको देखताहुआ, । इसप्रकार कहा। अरु [,,सो मेरा आत्मा है ऐसे जानना,, यह संहितारूप उपनिषद्गत वाक्यका शेषभी इसही अर्थको कहताहै, इसप्रकार कहते हैं] अन्य वाक्योंबिषे भी यहही अर्थ कहाहै॥ ननु [प्रवेश

के वाक्यसे जो आत्माकी एकता कही सो अयुक्तहै, क्योंकि, उस वाक्यकोही असंगत अर्थवान्‌पना है, इसप्रकार वादी शंका करे हैं। यहां यह अर्थ है कि आत्माको अशरीर होनेसे मस्तक के विदीर्ण करनेरूप ,करतापना, अरु सर्वगत होनेसे ,प्रवेश, संभवे नहीं] सर्वगत सर्वात्मा के प्रवेशसे रहित केशाग्रमात्रभी वस्तु नहीं है, एतदर्थ सो छिद्रके ताईं पिपीलिकावत् सीमाको विदीर्ण करके कैसे प्रवेश करताहुआ, तहां। [यहां क्या प्रतीयमान अर्थविषे असंगतपना है, अथवा कहनेके अर्थविषे असंगतपनाहै, यह दो बिकल्प हैं। तिनमें प्रथम पक्ष वा बिकल्पबिषे सर्व वेदको भी असंगत अर्थवाला होनेकरके सर्वको भी अप्रमाणपना होवेगा, अरु वेदको सो अप्रमाणपना युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है। यहां यह अर्थ है कि चक्षुरादिक करणों से ईक्षण प्रसिद्ध है। अरु मृत्तिका आदिक उपादानवाले कोही स्रष्टापनाहै। अरु दोनों हाथोंसेही ग्रहणकरना अरु अपने अवयवों से जोड़ना। (अर्थात् वस्त्र भूषणादिकों का धारणकरना आदिक) होताहै, सो अशरीरीको असंगत है। अरु शस्त्रादिक मूर्त्तसे विदारण होता है अमूर्त्त से नहीं। अरु मुखादिकनसे अग्न्यादिकों की उत्पत्ति के हुये तिन मुखादिकोंका दाहादिक होवेगा। जैसे काष्ठ से अग्निकी उत्पत्तिहुये काष्ठका तैसे। अरु मूर्त्तरूप वस्तु काही अन्यसे संयोग करनेको शक्यहै, क्षुधादिक अमूर्त्तका नहीं अरु शरीरकी सृष्टिकी उत्पत्ति के पूर्व अग्नि आदिकों करके प्रार्थना करनी असंभव है। अरु तिसकालविषे गौआदिक शरीरोंके अभावसे,अरु अपनेको अशरीरीहोनेसे तिसके गौ आदिकोंकेल्यावनेकाभी असंभवहै। अरु उन देवताओंको अशरीरहोने करके अमूर्त्तरूपहोनेसे तिनकेप्रवेशकाभी असंभवहै। अरुअचेतनरूपअन्नकोपलायन होनेका असंभवहै। अरु वागादिकोंको हस्तादिकोंवत् वस्तुकेग्रहणविषयक असामर्थ्यसे तिनकरके ग्रहणकरनेकी इच्छा होनेका असंभवहै॥ इसप्रकार समस्त प्रकरण असंगत अर्थवाला

होवेगा] तहां सिद्धान्ती कहे है, हे वादी यह तैंने अत्यन्त अल्प प्रश्नकिया, अरु यहां बहुत से प्रश्न करने को योग्य है । करण रहितहुआ ईक्षण को करताहुआ । कुछभी । अन्य। बस्तुके ग्रहण किये बिनाही लोकनको सृजताहुआ । अरु जलादिकोंसे पुरुषको ग्रहण करके तिसको अपने अवयवों से । जो स्वरूपसे निरवयव है । योजना करताहुआ । तिसके चिन्तन । मात्रसेही । सेही मुखादिक भेदको पावतेहुये । अरु मुखादिकनसे अग्नि आदिक लोकपालहुये । अरुतिनके मध्य क्षुधादिकोंकी योजनाहुई । अरु तिन ।अशरीरी । देवताओंने स्थानार्थ प्रार्थनाकिया। अरुतिनके अर्थ गौ आदिक शरीरों का देखावना । अरु तिन । देवताओं । का यथायोग्य स्थानों बिषे प्रवेश । अरु उत्पन्न किये अन्नका पलायन होना । अरु वाणी आदिकों को तिस अन्नके भक्षण करनेकी इच्छा होनी ॥ यह सर्व सीमाके विदारण अरु प्रवेश इनके तुल्यही है ॥ ननु,[तब सर्व अप्रमाण होओ, इस प्रकार कोई एक वादी शंका करैहै] तब यह सर्व अघटित (होनेसे) अप्रमाण होवो, [अरु कहनेको इच्छित अर्थबिषे असंगति नहीं इसप्रकार द्वितीय पक्षको दूषण देतेहैं । यहांयह अर्थहै कि,लोकों बिषे आपही द्वारको करके अनेक गृहबिषे स्थितहुये देवदत्तकी एकताके देखनेसे, तैसेही यहां आत्मा की एकताहै, इस प्रकार बोधन करनेको विदारण अरु प्रवेश कहते हैं, परन्तु सो अर्थ कहनेको इच्छित नहीं, क्योंकि तिस । सिद्धान्ती । को कहने को इच्छित जो आत्मा की एकता तिसके बोधका द्वार होने करके कथनकिये होनेसे । अर्थात् सीमाका विदारण अरु प्रवेश का कथन आत्माकी अभेदताका बोधकद्वारहै तातें।तातेंउत्तमता रूप अर्थ का द्वार होनेकरके, यज्ञ प्रकरणबिषे उक्तवपा (पशु के अंगका भाग विशेष) के भक्षण आदिकवत् अर्थवादरूप है] सो कथनबने नहीं, क्योंकि यहां आत्माके बोधरूप अर्थमात्र कोही कहना इच्छित है , तातें यह सर्व अर्थवाद है, यातेदोष

नहीं। अथवा [असत् ही प्रवेशादिकों का यहां कथन है, इस प्रकार अंगीकार करके वपा के भक्षणादिकों के वाक्यवत् तिन प्रवेपादिकोंके गुणार्थ वादपने को कहके अब ,, अग्निर्हिम का औषधहै,, इस वाक्यवत् तिसके भूतार्थ वादपनेको अंगीकार करकेकहते हैं। यहां यह अर्थ है कि मायासे अघटित भी सर्व घटता है,क्योंकि तिसको अघटित अर्थकी घटावनेवाली पनाहै ताते । इस कथन करके सृष्टि आदिकों को अघटित अर्थरूप होनेसे गंधर्व नगरादिवत् मिथ्याहीहै, इसप्रकार स्पष्ट करनेको अघटित सृष्टि आदिक अर्थभी श्रुतिने देखायाहै। इस प्रकार कहतेहैं] मायावीवत् महा मायावी सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् देव आख्यायिकादिक प्रपंच विषे लौकिकवत् सुखसे वक्ताको प्रतिपादन करनेके अर्थ अरु श्रोत्राके निश्चयार्थ सर्व इस चराचरको रचताहुआ यहपक्ष अत्यन्त युक्तहै। [ननु,लोकनकीसृष्टि आदिकनको अन्य प्रमाण के अगोचर होनेकरके अपूर्व होनेसे यहां कथनकरी जो आख्यायिका है तिसको तिस सृष्टि आदिकरूपअर्थकी परायणता होवे, यह आशंका करके, तिसको अपूर्वताके हुये भी तिस के निश्चय करके फलके अभावसे, अरु फलवान् औ अज्ञात । अपूर्व । अर्थविषे श्रुति के तात्पर्य के नियमसे। अन्यथा रुद्रके रोदनादिकों को भी अपूर्व होनेकरके, तहांभी तात्पर्य की प्राप्ति से सृष्टि आदिकविषे श्रुतिका तात्पर्य नहीं, इस प्रकार कहतेहैं] अरु सृष्टिकी आख्यायिकादिकों के ज्ञानसे कुछ भी फल अंगीकार करते नहीं, अरु [आत्माके निश्चय विषे तो फलको देखते हैं, अरु तिसविषे ही श्रुतिकी परायणता युक्त है इस प्रकार कहते हैं,यहां यह अर्थ है कि। " एतावदरेखल्वमृतत्वं " " तमेवं विद्वानमृतइह भवति " । " विद्वान्मृतसमभवत् " इत्यादि अन्य श्रुतियोंके प्रमाणसे , अरे इतनाही निश्चय करके अमृतभावहै,तिसको इसप्रकार जाननेवाला यहां अमृत(मोक्ष) होता है , विद्वानअमृत होताहुआ । इत्यादि अनेक श्रुतियोंविषे

ज्ञानसे अमृत भाव (मोक्षरूप फल) प्रसिद्ध है] एक आत्मस्वरूपके ज्ञानसे तो अमरण भावरूप फल सर्वउपनिषदोंबिषे प्रसिद्ध है। अरु " समंसर्वेषुभूतेषु तिष्ठन्तंपरमेश्वरमिति " सर्व भूतोंबिषे समानतासे स्थित परमेश्वरहै,तिसको, इत्यादिक गीता स्मृतिके वाक्यबिषेभी प्रसिद्ध है ननु [आत्माकी एकताही इस अध्याय का अर्थ है, इस प्रकार कहके अब इसही को स्थिर करनेको वादीशंकाकरता है] जीव ईश्वर अरु निरुपाधिकब्रह्म, इसभेदसे आत्मा तीनहैं। तिनमें कर्त्ता भोक्ता (सुखी दुःखी) संसारीजीव एक आत्मा है, सो सर्वलोक अरु शास्त्र बिषे प्रसिद्ध है। अरु अनेक प्राणियोंके कर्म फलके उपभोगके योग्य अनेकन स्थानवाले जो लोक अरु देह तिनके रचनेरूप शास्त्रानुसार पूर्व (इसके प्रथम वाक्यबिषे) कथनकिये लिंग (चिह्न) करके,पुर अरु अट्टालिका आदिकोंकी रचनारूप लिंगसे तिसकी कुशलताके ज्ञानवाले तिनकेकर्त्ता तक्ष (शिल्पी) आदिकवत् जानने में आवताहै.ऐसा सर्व जगत्काकर्त्ता अद्वितीय चेतनरूप जो ईश्वरहै सो दूसराआत्मा जानते हैं। अरु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" जिनसे वाणियां निवृत्तहोती हैं अरु "नेतिनेति" इत्यादि वाक्यकरके शास्त्रोंबिषे विख्यात, अरु उपनिषदोंकरके प्रतिपाद्य (जो सर्व निषेधोंकी अवधि अर्थात् जहां सर्वनिषेधोंका परिअवसान है, अरु प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय) जो शुद्ध ब्रह्म रूप परमपुरुष है, सो तृतीय आत्माहै। इसप्रकार यह तीनों आत्मा परस्परमें बिलक्षण हैं। तहां एकही अद्वितीय असंसारी आत्माहै,यह किसप्रकार जाननेको शक्यहै, तहां [जीवकी जो कर्त्ता भोक्तापना आदिरूप विलक्षणता कहीसोअसिद्ध है,क्योंकि तिसजीवको अन्यप्रमाणका अविषय होने करके तिस धर्मवान् पने करके प्रमाज्ञानका बिषय करनेको अशक्य है ताते। इस हेतु करके जीव अरु परमात्मा का भेद है नहीं, इस अभिप्राय से सिद्धान्ती समाधान करता है। यहां यह अर्थ है कि तिस जीव

को ज्ञेयताके अभावहुये । अर्थात् जीव चैतन्य होनेसे किसीकाभी ज्ञेय ,किसीकरके जाननेयोग्य, नहींतिसहेतु से । कर्त्तापने आदिक धर्म । जो उसविषे वास्तव करके स्वरूपसेही नहीं । तिन करके युक्तहुआभी सो । बुद्ध्यादिकों करके । जाननेको शक्य नहीं] सिद्धान्ती कहे है, तिन तीनों आत्माविषे प्रथम जीवही प्रमाणोंका अविषय होनेकरके कर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्त कैसे जाननेमें आवेगा । अर्थात् जब जीव प्रमाणका अविषय है तबकर्त्ता भोक्तापने रूपधर्मकरके युक्तभी, वाजीवकर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्तहै इसप्रकार, कैसे जाननेमें आवेगा । किन्तु किसीप्रकारभी जाननेमें आवेनहीं ॥ ननु,, श्रोताहै, मन्ताहै, द्रष्टा है, आदेष्टा । वर्णरूप शब्दका वक्ता । है, अघोष्टा । ध्वनिरूपशब्द का कर्त्ता । है, विज्ञाता है, प्रज्ञाता है, इसप्रकार जानते हैं, तहां [पूर्ववाक्यविषे "स एषोऽश्रुतोऽमतोऽविज्ञात" सो यह अश्रुतहै, अमत है, अविज्ञात है, । इसप्रकार तिसकी ज्ञेयताका निषेध होनेसे तिसविषे ज्ञेयपना विरूप है, इसप्रकार कहते हैं] सिद्धान्ती कहे है, जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता होनेकरके जानते हैं । । अर्थात् जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता ऐसा जानते हैं परन्तु इदं प्रत्ययके विषय अंगुली निर्देश घटवत् ,यह श्रोता है, इस प्रकार अपने जाननेवाले ज्ञातारूप से पृथक् करके ज्ञेयवत् जानतेनहीं, किन्तु अहंप्रत्ययका लक्ष्य अहं श्रोता है हम्मन्ता हैं, इत्यादि प्रकार अपने ज्ञातास्वरूपसे अभिन्नकरके उस श्रवणादि कर्त्ता धर्मवान् जीवको जानते हैं , ताते । सोई " अमतो मन्ता विज्ञातो विज्ञाता, इत्यादि " अमतहुआ मन्ता है, अविज्ञातहुआ विज्ञाताहै, । अर्थात् मनका अविषयहुआ माननेवाला अरु बुद्धि आदिकों करके अविज्ञात हुआ सर्वका जाननेवाला है । क्योंकि "यद्वाचानभ्युदितं येनवागभ्युद्यते,यन्मनसानमनुते येनाहुरमनो मतं " वाग् अरु मन आदिक बाह्यकरण अरु अन्तःकरण जो सर्व के जानने करने आदिकों विषे सामग्री है सो उसको नहीं

जानती अरु वो उनसामग्रियों का ज्ञाता प्रकाशकहै, तातेही उस बिषे ज्ञेयपनेका अभावहै। इसप्रकार अन्यश्रुतियोंने भी। उसबिषे ज्ञेयत्वका। निषेध कियाहै। अरु "नमतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञाते विज्ञातारं विजानीयात्, इत्यादि" मतिके मन्ताको मनन करना नहीं। अर्थात् मतिके मन्ताको मनन न करोगे क्योंकि वो मनका विषय नहीं। विज्ञातिके विज्ञाताको जानना नहीं। अर्थात् विज्ञातिके (बुद्धिके जाननेपनेके) विज्ञाता (जाननेवाला) को न जानोगे, क्योंकि वो बुद्धिके ज्ञानका विषयनहीं। इत्यादि रूप यह अन्यश्रुति है॥ ननु [दोनों श्रुतियोंकी प्रमाणता की तुल्यता से निषेधके असंभवसे प्रत्यक्ष प्रमाण करके अज्ञेयपना अरु अनुमानसे भी अज्ञेयपना कहो] जब आत्मा सुखादिवत् प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाननेविषे आवे तब तिसका श्रुतिबिषेनिषेध करना सत्यहै। यहां सत्यहै, यहकथन आक्षेपकहै ताते इसका पर्याय असत्य है ऐसा जानना, क्योंकि वादीका कथनहै। अरु "नमतेर्मन्तारं मन्वीथा" मतिके मन्ताको मननकरना नहीं, इत्यादि वाक्यसे प्रत्यक्ष ज्ञानका निवारण करते हैं, परन्तु श्रवणादिरूप लिंग से आत्माको जानते हैं, तहां किसकरके निषेध होवेगा, तहां [आत्माविषे एककालमें दोनों ज्ञानके असंभव से, श्रवणादिकालमें मनन अरु विज्ञानके असंभव से, श्रवणादिकरके मनन अरु विज्ञानरूप आत्मा को विषयकरनेवाला, वा अन्य को विषय करने वाला अनुमति ज्ञान संभवे नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै, यहां यह अर्थ है कि, श्रवणादि क्रिया के साथही वर्त्तमान होने से श्रवणादि क्रियारूप आधारवाले होनेसे आत्माबिषे वा अन्यबिषे तिसकी मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया संभवे नहीं। इस प्रकरण बिषे मनन अरु विज्ञान शब्द करके अनुमति ज्ञान कहते हैं, क्योंकि यहां आत्माको तिस अनुमतिके विषयता की शंकावादीने कियाहै ताते [सिद्धान्ती कहेहै, श्रवणादिरूप लिंगसेभी आत्मा को किसप्रकार जानते हैं

किन्तु किसीप्रकारभी नहीं यावत् जब आत्मा श्रवण करने को योग्यहै,ऐसा शब्द सुनते हैं,तब तिसको श्रवणादि क्रियाकरकेही सहित वर्त्तमान होनेसे [अर्थात् श्रवणादि क्रियाका आश्रयहोनेसे] तिसको आपविषे वा पर विषे मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया (अनुमति प्रमाण) संभवे नहीं , [तब श्रवणों के एककाल विषे असंभवहुये अन्यको विषय करनेवाली मननक्रियासे आत्मा माननेको योग्य है , यह आशंका करके ,विजातीय दोनों क्रिया-वत् सजातीय भी दोनों क्रिया संभवे नहीं , इस प्रकार कहते हैं [तैसे अन्य ठिकाने भी मननादिक क्रिया बिषे अन्यमन-नादिक क्रिया भी संभवे नहीं । अरु श्रवणादि क्रिया जो हैं सो अपने विषयोंबिषे ही हैं, अर्थात् अपने विषयकोही विषय करने-वालियां हैं , परन्तु अपने आश्रय को विषय करनेवालियां हैं नहीं । [किंवा " नमतेर्मन्तारं मन्वीथा " मति के मंताको मनन करनाही । इस प्रकार आत्माको मननकी विषयता का निषेध है ताते, मननकर्त्ता आत्माबिषे मननक्रिया संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिसकरके मनन करनेयोग्य वस्तुसे अन्य ठिकाने (मननका आधार आत्माबिषे) मनन कर्त्ताकी मनन क्रिया संभवे नहीं, क्योंकि 'जैसे कुठारादिकों के [काष्ठछेदनादि रूप] क्रियाका काष्ठसे इतर स्थानबिषे अदर्शन है । ताते मनन के अविषय अरु मनन कर्त्ता आत्माबिषे मननक्रिया संभवे नहीं ननु ,[" मनसः सर्वमेवमन्तव्यम् " मनके आधीन यह सर्व होताहुआ [इस श्रुति करके सर्वको मनकी विषयता होने से आत्मा विषेभी मननकी विषयताहै इसप्रकार वादी शंकाकरताहै] मनको सर्वही मनन करनेयोग्य है , एतदर्थ आत्माविषे भी मननकी विषयता होवेगी तहां[ऐसेहुयेभी मनको करणत्वहोनेसे, अरु क्रियाका कर्त्ताविनाअसंभवहै ताते,मनसे भिन्नमननकाकर्त्ता अवश्य अंगीकार करनेको योग्यहै, इस प्रकार सिद्धान्ती कहता है] कहते हैं कि ' सत्य ऐसेही है । तथापि सर्व भी मननका

विषय मननकर्त्ता बिना मन करनेको शक्य नहीं। जब, [मनन कर्त्ताकी आवश्यकता होउ,तिस करके सिद्ध क्या होताहै, इस प्रकार वादी शंका करेहै] ऐसेहै तबतिस करकेसिद्ध क्याहोताहै? तहां सिद्धान्ती कहेहै,यहां यह सिद्धहोवेहै किजोयह सर्वकामनन कर्त्ता है सोमननकर्त्ता अर्थात्मननक्रियाका आश्रयही है,मननका विषयनहीं होवेगा अरुमननकर्त्ताका दूसरा मननकर्त्ता कोईनहीं, अरुजबसो मननकर्त्ता आत्मा अन्यचेतन करकेही मननकरनेको योग्यहै, तबजिसचेतन आत्माकरके मननकरनेको योग्यहै, अरु जोमनन करनेयोग्यहै, सोदोनों परस्परभिन्न हैं,। अर्थात् मनन करताआत्मा जबअन्यआत्मा करके मननकरने योग्यहै तब एक आत्मा मननकर्त्ता अरु एकमनन करनेयोग्य इसप्रकार परस्पर में दो भिन्न आत्माहुये। इस करके एकही शरीरबिषे दोनों आ-त्मा प्राप्तहोवेंगे। अरु एकही आत्मा मनन कर्त्ता अरु मनन करने योग्य होने करके वंश आदिकोंवत् उभय प्रकारसे खंडित होवेगा, ताते दोनों प्रकार असंभवही है। जैसे दोनों दीपकके परस्पर प्रकाश अरु प्रकाशक भावका असंभव है, क्योंकि दोनों तुल्य हैं। अर्थात् एकस्थानमें दो दीपकहैं परन्तु तिनमें परस्पर प्रकाश प्रकाशक भावनहीं क्योंकि दोनों प्रकाश रूप हैं, अरु जो प्रकाशरूप है सो प्रकाशक है अरु जो अप्रकाशी है वो प्रकाश्य है ताते जहां एक प्रकाशवान् अरु एक अप्रकाशी होता है, तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव होताहै, अरु जहां दोनों समान प्रकाशधर्मा होते हैं तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव संभवे नहीं तैसेही एक शरीरमें दो आत्माके होनेसे भी एक मननकरने योग्य अरु एकमननकर्त्ता मानिये तो सो बनेनहीं, क्योंकिदोनों आत्मा समान चैतन्य हैं, अरु मनन करने योग्य वस्तु जड़ होती है अरु मननकर्त्ता चैतन्यहोताहै, अरु आत्मादोनों चैतन्य हैं ताते एक शरीरबिषे दो आत्मा माननेसे भी परस्परमें मनन करता अरु मननकरने योग यह भावबने नहीं। अरु मननकर्त्ता

के मनन करने योग्य वस्तुबिषे आत्माके मननार्थ मननरूप व्यापारसे रहितकाल नहीं।अरुजब मननकर्त्ताभी लिंगसे आत्मा को मनन करताहै तबभी पूर्ववत् लिंगसे मननकरनेयोग्य आत्मा, अरु जो तिसका मननकर्त्ता, वे दोनों एकही शरीरबिषे प्राप्त होवेंगे, ताते यहां भी " एक एव वा द्विधेति " सो एकही है वा दो प्रकारका है, । यह पूर्वोक्त दोष होवेगा । ननु, [ऐसे " अमतो अविज्ञात " अमतहै अविज्ञातहै, । इस युक्तिसहित श्रुति करके सर्वप्रकारसे आत्माकी ज्ञेयताके अभाव से, ऐसे सिद्धहुआ, तहां पूर्ववादी शंका करताहै] जब आत्मा प्रत्यक्षप्रमाण से नहीं जाना जाताहै,अरुअनुमानसे भी नहीं जाना जाताहै तब "समआत्मेति" सो मेरा आत्माहै, ऐसे जानना, । यह कैसे कहतेहो, वा " श्रोता मन्तेत्यादि " श्रोता है मन्ता है, इत्यादि वाक्य कैसे कहतेहो, । तहां [तहां " विद्यादिति " इस श्रुतिबिषे अन्य के निषेध हुये स्वप्रकाशपने करके आत्माका स्वरूपसे स्फुरणाही कहते हैं,परन्तु विषय होनेकरके वेद्यता नहीं, इसप्रकार हम समाधानको कहते हैं । इस अभिप्राय से आत्माके श्रोतापने आदिककी श्रुतिबिषे सिद्धान्ती समाधान कहे है] कहे है, आत्मा श्रोतापने आदिक धर्मवाला नहीं, क्योंकि आत्माका अश्रोतापनादिक श्रुतिबिषे प्रसिद्धहै, तहां [ऐसे हुयेआत्मा श्रोता है मंताहै, अरु श्रोतानहीं मन्तानहीं, इसरीतिसे दोनोंप्रकारकरके श्रवणहुये श्रोतापने धर्म वालाही है इसप्रकार पश्चात् विपरीत ग्रहण तुझको युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहता है] क्यों बिषम देखता है , हे वादी [ननु , लोक प्रसिद्धिके बलसे अनात्मधर्मताके निश्चयसे बिषमता नहीं यहआशंका करकेसिद्धान्ती निषेधकरेहै] यद्यपि तुझको विषमनहीं है परन्तु मुझको बिषम भासता है । कैसे कि जब यह आत्मा श्रोताहै तब मन्ता न होवेगा, अरु जब मन्ताहै तब श्रोता न होवेगा। तहां ऐसेहुये एकपक्षबिषे श्रोता वा मन्ताहै अरु द्वितीय पक्ष बिषे आत्माश्रोता भीनहीं अरु मन्ता नहीं । तैसे अन्यठिकाने

(द्रष्टापने अरु विज्ञातापने आदिकों बिषे) भी कदाचित् होनेपनाहै। जब ऐसे है तब श्रोतापने आदिक धर्मवाला अरु अश्रोता आदिक धर्मवाला आत्मा है, इस संशयके ठिकाने कैसे तुमको बिषमता नहीं भासती,किन्तु भासनी चाहिये' जैसे जब देवदत्त चलता है तब स्थितनहीं किन्तु गंताही है,अरु जब बैठा है तब सो गंता नहीं किन्तु स्थितही है। जब ऐसे व्यवस्था है, तब तिसको पक्षबिषे (क्रमसे) गंतापना अरु स्थितपना है, परन्तु गंतापना वा स्थितपना नित्य नहीं। तद्वत् आत्मा का श्रोतापनादिकभी नित्य नहीं। [इसके मध्य अभिप्रायके न जाननेवाले जो वैशेषिकादि हैं सो आत्माका श्रोतापना अरु अश्रोतापनादिक दोनों भी कदाचित्क (अनित्य)ही होवो, इसप्रकार कहते हैं, सोई कहते हैं, यहां वैशेषिकादिवादी भी तैसेही देखते हैं। पक्षके प्राप्तहुये श्रोतापने आदिक करके, आत्मा श्रोता अरु मन्ता इत्यादिक कहते नहीं। जिस करके ज्ञानको संयोग से जन्यपना अरु एक कालबिषे न होनेपना कहते हैं। अरु मैं अन्याठिकाने [ज्ञानके कदाचित्पने बिषे अरु एक कालमें न होनेबिषे क्रमके अनुसार वे वैशेषिकादि प्रमाण कहते हैं,। तहां यह अर्थ है कि जब मन न होवे चक्षुरादि इन्द्रियन के एक कालबिषेही रूपादिकन से सम्बन्धकेहुये एक कालबिषेही सर्व इन्द्रियों से सर्व विषयों का ज्ञान होवेगा, क्योंकि इन्द्रिय अरु विषयों के सम्बन्धरूप सामग्री का सद्भाव है ताते, अरु तैसे एक कालबिषे सर्व विषयों का ज्ञान नहीं होवे है, एतदर्थ क्रमकरके तिस तिस इन्द्रियसे संयोगीमन अंगीकार करनेयोग्य है। तैसेहुये एककाल बिषेसर्व इन्द्रियोंसे मनके संयोगके अभावसे, एक कालबिषे सर्व विषयों का ज्ञान नहीं होताहै। एतदर्थ एककाल बिषे रूपादिसर्व विषयों के ज्ञानके असंभवरूप लिंगसे, मन है ऐसा कहतेहुये वैशेषिकादि एककालबिषे सर्वके ज्ञानोंका असंभव है। इसप्रकार कहतेहैं।] मनवाला होताहुआ (अर्थात् मेरामन अपने ठिकाने

न रहा । ताते नहीं देखताहुआ । अर्थात् मेरा मन और ठिकाने था ताते मैंने देखा नहीं । इत्यादिक एककालविषे ज्ञानका जो असंभव है सो मनका लिंगहै, इस अर्थको योग्य देखते हैं ।[वैशेषिकादिकके मतके सिद्धान्तीकरके देखायेहुये तब वैशेषिकादिकों की रीतिसे दोनों श्रुतियोंके संभवसे अरु आत्माके श्रोतापने आदिक धर्मकी सिद्धि से तैसेही होय, इस प्रकार पूर्वपक्षी वा तटस्थी, सिद्धान्ती के प्रतिशंका करते हैं । यहां यह अर्थहै कि, जब इस प्रकार युक्त होय तब ऐसेही होय , क्या तुमको इष्ट नहीं] जब ऐसे योग्य होय तब ऐसे ही होय , क्या तुमको इष्ट नहीं , यहां सिद्धान्ती कहे हैं कि ऐसे जब [आत्माके कदाचित्कज्ञानसे श्रोतापने आदिक धर्मवान्पने को श्रुतिकरके असम्मत होनेसे, सो योग्य नहीं है, इस प्रकार सिद्धान्ती तिस पक्षको खंडन करते हैं] तुमको इष्ट है तो होवो, परन्तु श्रुति का अर्थ तो । तुमारे कथन प्रमाण । संभवे नहीं ॥ क्या ? श्रोता है, मन्ताहै, इत्यादिरूप श्रुतिका अर्थ नहीं है ? तहां [" न श्रोता न मन्तेत्यादि " श्रोता नहीं मन्ता नहीं , इसश्रुति करकेविशेष से तीनों कालोंविषे भी श्रोतापने आदिक धर्मकी रहितता के ।अर्थात् आत्मा कालत्रयमें भी श्रोतामंतापने आदि धर्मवान् स्वरूप करके नहीं, इस प्रकार श्रोतापने आदिक धर्मकी रहित ताके । प्रतिपादनसे, तिन श्रोतादि धर्म करके युक्तपना असम्मतही है, इस प्रकार सिद्धान्ती उत्तर कहेहैं] कहते हैं, " न श्रोता मन्तेति " न श्रोता है न मन्ता है, इत्यादि श्रुति वचन से आत्मा को श्रोतापने आदिक धर्म करके रहितपना है ॥ ननु [,,जब यह श्रोता है,,इत्यादि वाक्य करके श्रोतापने आदिकके पक्षविषे प्राप्तहोने को तुमोंकरके कथनकिया है ताते, अरु वैशेषिकके मतको देखावने की बेलाविषे कदाचित्क ज्ञानसे तिसके प्रतिपादनसे पक्षविषे प्राप्त श्रोतापने आदिक अरुतिसके अभाव की विषय होनेकरके दोनोंश्रुतियोंके सम्बन्धको वादी शंकाकरता

है] पक्ष कहिये विकल्पबिषे प्राप्तहोने करके तुमने निषेधकिया सो [पक्ष । उभयरूपता । के असम्बन्धी श्रोतापने अरु तिसके अभावकी श्रुतियों करके अपनीप्रीतिसे प्रतीतिसे पक्षके सम्बन्धी होनेकरके तिसका संकोचयुक्त नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती अपने अभिप्रायको वर्णन करतेहुये कहते हैं] बने नहीं, क्योंकि आत्मा का जो अश्रोतापनादिक है सो नित्य है, क्योंकि । "नहिश्रोतुश्रुतेर्विपरिलोपो विद्यते" । श्रोताके श्रवणका विनाश नहीं है, इत्यादि श्रुति करके कहे तिसके अंगीकारसे ॥ अरु जब ऐसे है तब श्रोतापनादिक नित्यही है, इसप्रकार अंगीकारहुये प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध एक कालबिषे ज्ञानका असंभव अरु आत्माके अज्ञान का अभाव कल्पित होवेगा, अरु सो । होना । अनिष्टहै, तहां [यहांसे सिद्धान्ती, उक्त पूर्वपक्ष का समाधान करता है । यहां यह अर्थ है कि एक कालबिषे ज्ञानका संभव अरु अज्ञान का सद्भाव इन दोनों दोषोंका संभव नहीं] सिद्धान्ती कहे है कि दोनों दोषोंका संभव नहीं, क्योंकि आत्माको श्रवणादिक अरु श्रोतापने आदिक धर्मवान् पनेकी श्रुतिसे। अरु अनित्य, मूर्त्तरूप अरु संयोग बियोगरूप अर्थवाले चक्षुरादिकनकी दृष्टि आदिकों को अनित्य पनाही है। जैसे अग्नि आदिकों का जो जलावना है सो तृणादिकों के संयोगसे जन्यहोनेकरके अनित्य है, तद्वत्। अरु नित्य अमूर्त्तरूप अरु संयोग, विभागरूप धर्मसे रहित आत्माको संयोग से जन्य दृष्टि आदिकरूप अनित्यधर्मवान् पना नहीं संभवताहै। जैसे "नहि दृष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यते" । द्रष्टाकी दृष्टिका लोपनहीं । इत्यादिरूप श्रुतिहै। अरु जब [नित्य अरु अनित्य भेदसे, दोनों दृष्टिके अंगीकारबिषे वादी गौरवदोष की शंकाकरेहै] ऐसे है तब दृष्टिदोहैं, तिनमें चक्षुकी दृष्टि अनित्य है अरु आत्माकी दृष्टि नित्य है। अरु तैसे श्रुति (श्रवण) भी दो हैं तिसमें श्रोत्रकी श्रुति अनित्य है, अरु आत्मस्वरूप की श्रुति नित्य है। तैसे मति (विज्ञाति) भी बाह्य

अरु अबाह्य है । [श्रुतिकी प्रमाणता से उभय प्रकारकी दृष्टि के अंगीकार विषे गौरव प्रमाण करके सिद्ध (अकिंचित्कर) है इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै] ऐसेहुयेही "दृष्टेर्द्रष्टाश्रुतेश्रोता" दृष्टिका द्रष्टा है, श्रुतिका श्रोताहै , इत्यादिरूप यह श्रुति घटित होवेहै । अरु लोकविषे भी चक्षुके तिमिरके आवने अरु जानेविषे दृष्टिनाशहुई, अरु दृष्टि उत्पन्नहुई इसप्रकारचक्षुकीदृष्टिका अनित्यपनाप्रसिद्धहै।तैसे श्रुति अरु मति आदिकोंका भी है।अरु आत्मा की दृष्टिका नित्यपनाही प्रसिद्धहै ।अर्थात् जिस अन्तर दृष्टिकरके वाह्य दृष्टिकी मन्दता तीव्रता भावाभाव जानाजाताहै,सो नित्य अविनाशी आत्म दृष्टिहै । अरु लोकविषे निमीलित नेत्रवाला पुरुष कहताहै कि आजमैंने स्वप्नविषे अपना भ्राता देखा, तैसेही वधिर भावको प्राप्तहुआ पुरुष कहताहै कि आज मैंने स्वप्न विषे मन्त्र । वा सुन्दर गायन श्रवणकिया । इत्यादि प्रसिद्धहै । अरु जब चक्षुके संयोगसे जन्यही आत्मा की नित्य दृष्टि होवे, अरु तिस चक्षु संयोगके नाशहुये नाशहोवे, तब निमीलित नेत्र वालापुरुष स्वप्नविषे नीलपीतादि पदार्थोंको न देखेगा।अरु "नहि द्रष्टुर्दृष्टे र्विपरिलोपोविद्यते " द्रष्टाकी दृष्टिकालोप होतानहीं , । इत्यादिरूप यहश्रुति अघटित होवेगी । अरु "तच्चक्षुः पुरुषे येन स्वप्नंपश्यतीति"जिसकरके स्वप्नको देखताहै सोचक्षु पुरुषविषे है, इत्यादिरूप यह श्रुति नित्य आत्मदृष्टिकी अरु अनित्य वाह्य दृष्टिकी ग्राहकहै । अरु वाह्य दृष्टि को उत्पत्ति विनाशादिक अनित्य धर्मवाली होनेसे तिसकी ग्राहक आत्मदृष्टिको तद्वत् प्रकाशकपना अरु अनित्यपनादिक जो लोकको प्रतीत होते हैं सो भ्रान्तिरूप निमित्त करके हैं, यह युक्त है । अरु जैसे भ्रमणादि धर्मवाले अलातादिकोंको विषयकरनेवाली दृष्टिभी भ्रमतेहुयेवत् होती है, तद्वतही लोककी दृष्टिहै । अरु तैसे "ध्यायतीव लेलायतीव " ध्यानकरतेवत् लीला करतेवत् होवे है, यह श्रुति स्पष्ट कहती है । तिसकरके आत्मदृष्टिको नित्य होने से एककालविषे

होना अरु एक कालबिषे न होना ऐसा नहीं। बाह्य अनित्यदृष्टि-रूप उपाधि के बशसे लोकों को अरु तार्किकनको, वेदके संप्र-दायकरके रहित होनेसे " अनित्यात्मनो दृष्टिरिति " आत्माकी दृष्टि अनित्यहै, यह भ्रान्ति घटितही है। अरु जीव ईश्वर अरु परमात्माके भेदकी कल्पनाभी इसही भ्रान्तिरूप निमित्तवाली-ही है। अरु जितने [किम्वा " आत्मनैवायं ज्योतिषाऽऽस्ते " " अयमात्मा ब्रह्म" "सर्वानुभूः प्रज्ञानघन एव" आत्मरूप ज्योति सेही यह सर्व है, यह आत्मा ब्रह्महै, सर्व का अनुभवरूप प्रज्ञान घनही है, इत्यादि श्रुतियों से आत्माको नित्य दृष्टिरूप होने से, अरु"सर्वाः प्रजा यत्रैकं भवन्तीति" जहां सर्व प्रजा एक होती है, इत्यादि श्रुतिकरके सर्व कल्पना के तन्मात्रपने करके, अरु तातै भिन्नकरके अभावका कथन होनेसे, अरु आत्माको निर्विशेषरूप होनेसे, तिस आत्मरूप नित्य दृष्टिबिषे ,है वा नहीं है, इत्यादि सर्व कल्पना भ्रान्तिरूप निमित्तसेही है। इसप्रकार कहते हैं,] बाणी के नाममय अरु मनके रूप । वा संकल्प । अथभेद जहां (जिस आत्माबिषे एक होते हैं, तिसको विषय करनेवाली (तिसकी स्वरूपभूत) इसही से नित्य निर्विशेष । अर्थात् सर्वभेद रहित । दृष्टिकी ,, है ,, ऐसी कल्पना आस्तिकनको है, अरु ,, नहीं है ,, ऐसी कल्पना , नास्तिकन को है , अरु " है 'नहीं है" ऐसी कल्पना दिगंबरमतवाले को है , अरु अन्योंको भी सा-वयव भावादिकों की कल्पना है सो सर्वही भ्रान्तिरूप निमि-त्तवाली है । [ननु , वेतार्किक आत्माके अस्तिपने आदिकों को युक्तिरूप तर्क से साधते हैं, एतदर्थ उनको भ्रान्तिरूप निमित्त करके युक्तपना नहीं, यह आशंकाकरके श्रुति बिरुद्ध होनेसे, अरु आत्माबिषे असंभव से अरु तिन कल्पना के सद्भाव हुये मोक्षका असंभव होनेसे, तिन तार्किकों की कल्पना प्रमाणके मार्गपर आरूढ होती नहीं, ऐसा कहते हैं,] कईएक बादियों के मतबिषे आत्मा है ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतबिषे नहीं है, ऐसी

कल्पना है, अरु किसी के मतविषे है औ नहीं है, ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतविषे अनेक गुणवाला है, अरु किसी के मतविषे गुणरहित है, अरु किसी के मतबिषे जानता है, अरु नहीं जानता है, अरु किन्हीं के मतबिषे क्रियावाला है, किसी के मतविषे क्रिया रहितहै, अरु कोई के मतबिषे फलवालाहै, किसी के मतविषे फल रहित है, अरु किसी के मतबिषे कर्म अरु वासनारूप बीजवाला है, अरु किन्हीं के मतबिषे बीज रहित है, अरु किसी के मतबिषे सुखरूप है, किसी के मतबिषे दुःखरूपहै, किसी के मतबिषे मध्यम है (देहतुल्य आकारवाला है) अरु किसी के मतविषे अमध्यम (अणु वा विभु) है, अरु किसी के मतविषे शून्य है, अरु किसी के मतबिषे अशून्य है, अरु किसी के मतविषे यह अन्य है, मैं अन्य हौं, ऐसी कल्पना है ॥ सो ऐसी कल्पना को मन बाणी से अगोचर आत्माबिषे कल्पना करनेको इच्छताहै सो निश्चयकरके आकाशको भी चर्मवत् वेष्टन करनेको । [अर्थात् आकाशको चर्म से वेष्टित (मढ़नेको) करने को वा वेष्टन मृगचर्मादि वा चटाईवत् वेष्टन (लपेटनेको) करने को] । इच्छताहै, अरु जलबिषे जलचरन के (खोज) पादचिह्नों को अरु आकाशबिषे आकाशचारियों के खोज (पादचिह्नों) को देखने को इच्छते हैं ॥ " नेति नेति " अरु " यतोवाचो निवर्त्तन्ते " जहां से बाणी निवृत्त होती है, । इत्यादि श्रुतियों से, अरु " कोऽद्धावेदेत्यादि " कौन साक्षात् जाने, इसमन्त्रके वाक्य से, आत्मा को मन बाणी की अविषयता सिद्ध है ॥ ननु,[आत्मा कोवाणी अरु मनकी अविषयताकेहुये श्रवणअरुमननकेअसम्भव से आत्माका ज्ञान [होना] संभवे नहीं इस प्रकार वादी शंका करेहै] तब तिस आत्मा का "तमहंसम आत्मेति विद्यास् " सो मेरा आत्मा है , इस प्रकार का ज्ञान कैसे होवेगा, जो " सम आत्मेति " सो मेरा आत्मा है, तिसको मैं किस प्रकार जानों ॥ तातें सो प्रकारकहो [कि जिस करके मनबाणी आदिकों का

अविषय आत्मा अपना आप जाना जाय ।॥ यहां ["नेतिनेति" ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, इत्यादि श्रुतिके उदाहरण करकेही अन्यके निषेधसेही तिस स्वप्रकाशका बोध होताहै, इसप्रकार आत्मज्ञान के । होनेके । प्रकारको कथन कियाहै ताते अरु यहां अन्यप्रकार के अभावसे इसही प्रकारसे अविषय होनेकरके भी आत्मा जाननेको योग्य है । अर्थात् बुद्ध्यादिकों का अविषय अरु सर्वका प्रकाशक साक्षी आत्मा श्रुतिके निषेधमुख वाक्य करके जानने योग्यहै । इसप्रकार मानिके सिद्धान्ती उपहास सहित उत्तर कहताहै,] सिद्धान्ती आख्यायिका कहताहै, कोईएक प्रसिद्ध मूढ मनुष्यथा, तिसको किसीभी अपराधके होनेसे कईएक पुरुषों ने " तुझको धिक्कार है, तू मनुष्य नहीं, इसप्रकार कहा । तब सो पुरुष मूढ होनेकरके, अपने मनुष्यपनेकी प्रतीति करनेको किसी अन्यपुरुष के पास जायके प्रश्न करताहुआ कि हे साधो मैं, कौनहौं सो तुम कहो, तब वो उसकी मूढताको जानके । कि यह मूढहै । कहताहुआ कि तुझको क्रमसे बोध करौंगा ॥ पछि स्थावरादि स्वरूपभाव को निषेध करके तू अमनुष्य नहीं है, इसप्रकार कहके उपराम होताहुआ । पश्चात् वो मूढपुरुष उस बोध कर्त्ता के प्रति कहताहुआ कि, आप मुझको बोध करनेको प्रवर्त्त हुये, अरु चुप्प होतेहुये, सो बोध क्यों नहीं करते, तब पुनः उसने कहा कि तू अमनुष्यहीहै, इसप्रकार तिसके भावसे तैसेही वाक्य कहतेहुये, जो अपने मनुष्यपनेको जानता नहीं सो मनुष्यहै, इसप्रकार कहनेसे भी अपने मनुष्यपने को कैसे जानेगा ताते शास्त्रके अनुसार उपदेशही आत्मा के बोधका प्रकारहै अन्य नहीं । एतदर्थ अग्निसे जलावनेयोग्य जो तृणादि सो अन्यकिसी से भी जलावने को शक्य नहीं । इसही करके शास्त्र जो है सो आत्मस्वरूप को बोधन करनेको प्रवृत्तहुआ अमनुष्यपने के निषेधवत्, " नेति नेति " ऐसा कहके उपराम होता है । तैसे पुनः " अग्राह्य " यह सर्वका अनुभवरूप आत्मा ब्रह्महै, "एतावदनु-

शासनम् ” एतनाही अनुशासन (उपदेश) है, “तत्त्वमसि” सो तूहै, “यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकं पश्येत्” जहां तो इसको सर्व आत्माही होताभया तहां किसकरके किसको देखेगा, इत्यादि श्रुति शास्त्रभी आत्मा के वेद्यपने को निषेधही करताहै। अरु यावत् यह पुरुष ऐसे उक्तप्रकारके इस। अपनेआप। आत्मा को जानता नहीं तावत् यह बाह्य अनित्य दृष्टिरूप उपाधि को आत्मापने करके जानके अविद्या से उपाधि के धर्म को अपने धर्मकरके मानताहुआ, ब्रह्मासे आदि लेके देवतिर्यक् अरु नरक योनिरूप स्थानों विषे बारम्बार आवृत्ति (संसृति, भ्रमणको) प्राप्त होताहुआ, अविद्या काम अरु कर्म के वशसे संसारको प्राप्त होता है। सो इसप्रकार संसार को पावताहुआ। ग्रहण किये देह अरु इन्द्रिय के संघात को त्यागता है पुनः अन्य संघात को ग्रहण करता है। बारम्बार ऐसेही नदीके प्रबाहवत् जन्म मरण-रूप बन्ध के अनाशकरके युक्त बर्त्तमानहुआ किन अवस्था करके युक्त वर्त्तता है, इसही अर्थ को। [यहां यह भाव है कि जीवकी अवस्थारूप तीन जन्मको अत्यन्त ग्लानिरूप होनेसे तिसके बि-चारनेसे वैराग्य होता है,] वैराग्यके अर्थ देखावतीहुई श्रुति कहै है, कि [“पुरुषेहवा अयमादितो गर्भो भवति” पुरुषबिषे यह आदिसे गर्भहोताहै,इस वाक्यबिषे,इदं, शब्दके अर्थको कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जो मस्तकको विदीर्ण करके तहां प्रवेशकरके स्थित है सो ,,यह,, इसप्रकार कहते हैं] यहही। कि जिसने मस्तकके द्वार से प्रवेश कियाहै।। अविद्या काम अरु कर्मवान् जीव, यज्ञादि कर्मोंको करके इस मृत्युलोक में धूमादिकके क्रम से चन्द्रमसि (स्वर्ग वा पितृलोक) को पायके। कर्म्मोंका फल भोगके। कर्म्मों के क्षयवाला हुआ वृष्टि आदि क्रमसे इस भू-लोकविषे आयके अन्नरूप हुआ पुरुष कहिये पितारूप अग्निबिषे आहुति हुआ है। [“तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति” इस श्रुति के प्रमाण से। “। पुरुषेह वा अयमादितो गर्भो

भवति ” (पुरुष बिषे प्रसिद्ध यह प्रथम गर्भ होता है ; अर्थात् तिस पुरुष बिषे प्रसिद्ध यह संसारी रसादिक धातुके क्रमसे प्रथम वीर्यरूपसे गर्भ होता है । अर्थात् यह जीव स्वर्ग बिषे अपने पुण्य कर्म का फल भोग पुण्य के क्षयहुये वृष्टि के मार्ग से पृथिवी बिषे आय अन्नरूपसे प्रकट होता है पुनः किंचित् पुण्य कर्म के शेष से कर्मानुसार इसको जिस वर्णजाति में जन्म पावना होताहै तिस वर्णजातिके पुरुषके उदरबिषे आय वीर्यरूपसे वह प्रकट होताहै, इस प्रकार का सुकृतीजीव का जो अपने कर्मानुसार पुरुषके उदरबिषे आवनाहै सो उसका प्रथम गर्भवास है , ॥ तिसको कहते हैं “ यदेतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भृतात्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति तद्यथा स्त्रियांसिञ्चत्यथैतज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ” । (जो यह रेतहै सो यह सर्व अंगोंसे तेज उपजा है, आत्मा को आत्माबिषे धारता है तिसको जब स्त्री बिषे सिंचन करता है तब इसको जन्म देता है सो इसका प्रथम जन्म है ; अर्थात् जो यह पुरुषबिषे रेत कहिये वीर्य है तिसरूपसे । सो प्रकट । होताहै, अरु सो यह रेत अन्नमय पिंडके रसादि धातुरूप सर्व अंगोंसे शरीर का साररूप तेज उपजता है सो पुरुष का आत्मारूप होनेसे आत्माहै । अर्थात् अन्नमय पुरुष का सारभूत होनेसे रेत उसका आत्मा है । तिस रेतरूपसे गर्भरूप हुये आत्माको । अर्थात् जो जीव अपने कर्मानुसार अन्नरूपसे पुरुषके उदरबिषे आय वीर्यरूपसे प्रकट हुआ है वा वीर्यविशिष्ट हुआहै तिसआत्माको । आत्मा(शरीर) बिषे धारता है । तिस रेतको जब,जिस कालमें अपनी भार्य्या (स्त्री) ऋतुमती होय तब तिस कालमें । अर्थात् स्त्री के रजस्वला होनेके चतुर्थदिवस उपरांत पंचमदिवससे सोलवेंदिवस पर्यन्त स्त्री ऋतुमती रहती है सो ऋतुकालमें स्त्रीसे भोगकरना तिसमेंभी सप्तदिवस अर्थात् चौथा छठा आठवां दशवां बारहवां चौदहवां सोलहवां यहत्याज्यहैं।तिस स्त्रीरूपा अग्निबिषे स्त्रीगमन

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भवति २ । २५ ॥

करतसन्ते सिंचनकरे । अर्थात् स्त्री में अग्निकी भावना अरु वीर्यमें हवीकी भावनाकर स्त्रीके बिषे वीर्य को स्थापनकरे इस प्रकार करने से सर्वोत्तम गुण विशिष्ट पुत्र प्रकट होता है । तब पिता तिस इस अपने गर्भरूप रेतको जन्मदेताहै, इससंसारी जीवका । जो पुरुषके वीर्यरूप गर्भमें आयाहै । वीर्य के सेचन कालविषे जो तिस पुरुषके स्थानसे निकलनाहै सोप्रथम जन्म । प्रथमावस्थाका प्रकटपना । है १ । २४ ॥

हे सौम्य, " तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति " । सो स्त्री के स्वरूपसे अभिन्नता को पावता है ; अर्थात् भार्याबिषे रेतको सिञ्चन करताहै इसअर्थबिषे " असावात्माऽमुमात्मानमिति " यह आत्मा (पुरुष) इस आत्माको (अपनेरेतरूप आत्माको) इस (भार्यारूप) आत्माके अर्थ देताहै,। यह वाक्य प्रमाण है । सो [ननुस्त्रीके शरीरबिषे प्रवेशको पाया पुरुष का वीर्य स्त्रीको शरीरबिषे लगेबाणवत् उपद्रव करनेवाला होवेगा,यह आशंका चित्तबिषे ल्यायके " तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छाति " सोवीर्यस्त्री के आत्मभावको पावता है,। इत्यादिरूप यहवाक्य कहाहै,तिस का व्याख्यान करते हैं] रेतजिस स्त्री बिषे सिंचनाकियाहै तिस स्त्री के स्वरूपसे अभिन्नताको प्राप्तहोता है, जैसे पूर्व पिताके स्वरूपसे अभिन्नता को पाया तैसे , । अरु " यथास्वमंगं तथा । तस्मादेनां नहिनस्ति " । जैसे अपना अंग, तिस इसको नाश करता नहीं ; अर्थात् जैसे अपना (स्त्री का) स्तनादिरूप अंग अपने स्वरूपसे अभिन्नताको पाया है तैसेही अभिन्नताकोपावता है । तिस हेतुसे सो गर्भ इस माताको , पिटकादि शरीरबिषे उत्पन्नहुये व्रण (फोड़ा) रूप ग्रंथीविशेष) वत नाश (पीड़ा)

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्रीगर्भं बिभर्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ३ । २६ ॥

करता नहीं; तातें स्तनादि अपने अंगोंवत् आत्मभावको पाया है, तातें सो रेत माताको बाधाकरता नहीं । अरु "। साऽस्यैतमात्मानमत्रगतंभवति"। (सो इसके इस आत्माको यहां प्रवेश को जानके पालन करैहै) अर्थात् सो गर्भिणी ऐसे इस अन्नरूप भर्त्ताके इस (वीर्यरूप) आत्माको यहां उदर बिषे प्रवेशको पाया जानके पालन करैहै । अर्थात् गर्भ से विरुद्ध भोजनादिकों के परित्याग को अरु गर्भ के अनुकूल भोजनादिकों के उपयोगको करे है ॥ "गर्भइव सुभृतो गर्भिणीभिः" ॥ २ । २५ ॥

हे सौम्य,।"सा भावयित्री भावयितव्या भवति"। (सो पालन करनेवाली रक्षाकरनेको योग्य होती है) अर्थात् सो [सो गर्भिणी तिस गर्भरूप भर्त्ताका भी रक्षण करती है तातें सो भर्त्ता करके रक्षाकरने योग्यहै, इसप्रकार कहते हैं] गर्भरूप भर्त्ता के स्वरूपकी पालन करनेवाली गार्भिणी भर्त्ताकरके रक्षाकरनेयोग्य होती है । अरु जिसकरके लोकबिषे उपकारके प्रतिउपकार किये बिना किसीका किसीसेभी सम्बन्ध संभवे नहीं तिसकरके सो गार्भिणी भर्त्ताकरके रक्षण करनेयोग्य है ।"तं स्त्री गर्भं बिभर्ति"। (तिस गर्भको स्त्री धारण करैहै) अर्थात् । अरु तिस गर्भको स्त्री जन्मसे पूर्व उक्त गर्भधारण के बिधानसे धारण करे है । अरु "।सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति"। (सो जन्मसे पूर्वही कुमारको अरु जन्म से पीछे कुमारको पालनकरैहै) अर्थात् सो पिता जन्मसेपूर्वही उत्पन्नहोनहार बालकको पालनकरैहै। अरु "।स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति, आत्मानमेव तद्भाव-

सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्म्मेभ्यः प्रतिधीयते। अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते। तदस्य तृतीयं जन्म। तदुक्तमृषिणा ४। २७॥

यति"। (सो जिस कुमारकी जन्मसे पूर्व रक्षा करे है अरु जन्मसे पीछे उत्पन्नहुये कुमारको जातकर्मादिकों से पालन करे है सो अपनेआपकोही पालनकरे है; अर्थात् पिताका आत्मा (शरीर) ही पुत्ररूपसे जन्मताहै। अरु तैसे "पतिर्जाया प्रविशति इत्यादि" पिता जो है सो गर्भरूप होयके जायारूप माताबिषे प्रवेशकरता है तिस जायाबिषे पुनः नवीन होयके दशम मासबिषे जन्मताहै,। यह वाक्यकहाहै। प्र०। किसअर्थ अपनेको पुत्ररूपसे उपजायके पालनकरे है,। तहां कहते हैं "। एषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तताहीमे लोकास्तदस्यद्वितीयं जन्म"। (इन लोकोंकी सन्तति के अर्थ (पालन करे है) जाते यह लोक प्रबन्धरूप करके वर्त्तते हैं, सो इसका द्वितीय जन्महै; अर्थात् इन पुत्रपौत्रादिरूप लोकोंकी सन्तति (अविच्छेद) केअर्थ पालनकरेहै। अरु जो पुत्रके उत्पादनादिकों को न करे तो यह लोक विच्छेदको पावेंगे अरु। जिस करके वे ये लोक पुत्रके उत्पत्त्यादि कर्म करके अविच्छेदसेही प्रबन्ध। अर्थात् पुत्रादिकों की उत्पत्त्यादि कर्मबिषे बिच्छेद न होय तिस संकेत। रूप करके वर्त्तते हैं, ताते तिनके अविच्छेदार्थ पुत्रकी उत्पत्त्यादि कर्म कर्त्तव्य है, मोक्षार्थ नहीं। अरु कुमाररूप से माता के उदरसे जो निकसना है सो रेतरूप की अपेक्षा से इस संसारी पुरुषका द्वितीय जन्म (द्वितीय अवस्था की प्रकटता) प्रसिद्ध है ३। २६॥

हेसौम्य, "। सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्म्मेभ्यः प्रतिधीयते"। (इसका सो यह आत्मा पुण्यकर्म के अर्थ स्थापनकियाहै; अर्थात् इसपिताका सो यह पुत्ररूप आत्मा शास्त्रोक्त पुण्यकर्म के अर्थ

(कर्म्मों के सम्पादनार्थ) स्थापनकियाहै, अर्थात् पिताकोजो कर्म कर्त्तव्यहैं तिनके करनेके अर्थ पिताके स्थानापन्न। पुत्रको। स्थापन करनाहै। तैसेही बृहदारण्यक उपनिषद्विषे सम्पत्तिनाम कर्मविद्या के प्रकरणविषे "। पित्रानुशिष्टोऽहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं इत्यादि "। पिताकरके शिक्षितहुआ, मैं ब्रह्माहूं, मैं यज्ञहूं, इत्यादि रूपको पावता है। इसप्रकार कहा है॥। "अथाऽस्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्योवयोगतःप्रैति"। (पश्चात् इसका यह अन्यआत्मा कृतकृत्यहुआ मरताहै ? अर्थात्, पश्चात् पुत्रविषे भारको स्थापन करके इसपुत्रका यह जो पितारूप अन्यआत्माहै सो कृतकृत्यहुआ (तीनों ऋणरूप कर्त्तव्यसे मुक्तहुआ) अरु आयुके पूर्णहुये मरताहै"सइतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयंजन्म, तदुक्तमृषिणा "। (सो इससे शरीरको परित्याग करताहुआही पुनःजन्मता है सो इसका तृतीय जन्महै, सो ब्राह्मण भाग कहेहैं ? अर्थात् सो इसलोकसे शरीरको परित्याग करताहुआही तृण जलौका (जोंक) वत् कर्म्मों करके रचित अन्यदेहको ग्रहण करताहुआ पुनः जन्मता है। मरणको पायके जो। कर्मानुसार। प्राप्तहोने योग्यहै सो इसपुरुषका तृतीयजन्म। तृतीयावस्थाकी प्रकटता। है॥ ननु, संसार को करनेवाले पिता से रेतरूप करके प्रथम जन्म कहा। तिसहीका माताके उदरसे कुमार रूपकरके प्रकट होना, द्वितीय जन्मकहा। अरु तिसहीके तृतीय जन्मके कहने को योग्यहुये मरणको प्राप्तहुये पिता का जो जन्म सो तृतीय जन्म है, ऐसा कैसे कहते हो। तहां सिद्धान्ती कहताहै कि यह दोष नहीं क्योंकि पिता अरु पुत्रकी एकताको कहनी इच्छित है ताते, सो पुत्रभी अपने पुत्रविषे अपना भार स्थापित करके यहांसे देहको त्यागताहुआही पितावत् पुनः जन्मको पावता है ताते पुत्रका ही तृतीयजन्म कहा है ऐसेजानना, अन्य (पिता के) ठिकाने कथनकिया सोजन्म अन्य (पुत्रके) विषयमेंकथन किया होताहै, इस प्रकारसे श्रुति माननी है, क्योंकि पिता अरु

गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवानाजनिमानिविश्वाः। शतंमापुरआयसीर रक्षन्नधःश्येनोजवसानिरदीयमिति गर्भएवैतच्छयानोवामदेवएवमुवाच ५ । २८॥

पुत्रकी एकता है ताते। इस प्रकार तीनअवस्था की प्रकटता करके संसारको पावताहुआ (जन्ममरणरूप बन्धनविषे आरूढ गाढ़बंधपाया) सर्वलोक संसार समुद्रबिषे पतनको पायाहै। सो किसी प्रकारसेभी येनकेन अवस्थाबिषे श्रुतिकरके प्रतिपादित आत्मा को जानता है तबही संसारके सर्व बंधनोंसे मुक्तहुआ कृतकृत्य होवैहै। सो यह बस्तुका तत्त्व मन्त्रबिषे भी कहाहै। इसप्रकार अग्रिम वाक्य बिषे यह ब्राह्मभाग कहताहै ४।२७॥

हे सौम्य ,। [यहां यह अर्थ है कि वाक् अरु अग्न्यादिकन के शरीर ग्रहणरूप जन्म कहे, तिस करके उपलक्षित सर्व संसार भी वाकादिक करण अरुतिनके अधिष्ठाता देवतादिकोंके संघात रूप लिंग शरीरकोही है,परन्तु असंग अरु निःपाप मुझको नहीं। इस करके पदार्थके विवेकपूर्वक आत्मा का ज्ञानकहा। यद्वा सर्वज्ञ आत्मासेही इनके जन्म हैं, इसप्रकार इनके जन्मकेहेतुरूप मूलकारण आत्माको मैं जानताहौं। यहां यह भावहै कि यद्यपि गर्भबिषे श्रवणादिरूप ज्ञानकी सामग्री नहीं, तथापि पूर्व जन्मबिषे किये श्रवणादिरूप सामग्रीके बशसे ही प्रतिबन्ध की निवृत्तिकेहुये भी गर्भबिषे ज्ञानकी उत्पत्ति संभवैहै] " गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवाना जनिमानि विश्वाः " । " गर्भस्थानबिषेही हुआ मैं इनदेवताओंके सर्व जन्मोंको अहोजानताहौं ; अर्थात् माताके गर्भस्थानविषेही स्थितहुआ, अनेक जन्मान्तरकी (परमशुद्ध शुभ भावनाके पर्यायके वशते (अर्थात् अनेक जन्मोंमें किये किंचित किंचित् आत्मविचारके संस्कारएकत्रहोय दृढ़ता अरु वृद्धिको पावतेहैं अरु तिनके प्रभावसे कर्मादिकोंके संस्कार प्रतिहत पुरुषार्थ होतेहैं, तब उस निर्विक्षेपहुये अन्तःकरणमें

जन्म जन्मान्तरोंके कियेआत्माके श्रवणादिकिये ज्ञानके संस्कारोंकी तीव्रसंवेदनके होनेसे गर्भादि अवस्थाबिषे स्वतःही ज्ञानस्फुरणहो आवताहै। अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततोयातिपरांगतिम् "। इत्यादि प्रमाणसे । , जैसे सोयेहुये पुरुषके स्वप्नमें चलने के संस्कारोंके तीव्र संवेग होनेसे वो निद्रामेंही उठके चलदेता है तैसेही अनेक जन्मोंमेंकिये आत्माके श्रवणादि ज्ञानके संस्कार एकत्रहोय । तीव्रसंवेग(उत्थान)कोपावतेहैं तबगर्भादिस्थानावस्थामें स्वतःज्ञानका स्फुरणहो आवताहै।अरु स्वप्नवालेपुरुषका जो निद्रामें गमनहै सो अज्ञानजन्यहै ताते उसको अपनी गमन क्रियाका ज्ञाननहीं, अरु यहां गर्भस्थ विद्वान्को जो आत्मस्वरूप ज्ञानका स्फुरणहै सो श्रवणादि ज्ञानके संस्कारजन्य है ताते सर्व अवस्थाबिषे यथार्थही है। ॥ मैं इनवाक् अरु अग्न्यादिदेवताओंके जन्मोंको जानताहौं यह आश्चर्य्यहै, जो । देवताओंके जन्मकीभी मुझको ज्ञातहै,"शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवासा निरदीयमिति"।मुझको अनेक लोहमयीपुरिया रक्षाकरतीहुई,अधो श्येनपक्षिवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्यसे निकला है ; अर्थात् मुझको अनेक लोहमयीवत् भेदनकरनेको अयोग्य शरीररूपी पुरिया रक्षाकरतीहुई । , अर्थात् जैसे पक्षीको लोहमयी पींजरा बन्धनकरताहै। तैसे विनाआयुके पूर्णहुये किसीप्रकारसेभी नाश को प्राप्तहोवे नहीं ताते लोहमयी यह शरीररूपी पुरिया मुझको बन्धन करतीहुई , । मैं संसारपाश (जाल) से निकसनेकरके अधोमुख (अन्तरमुख) देखताहुआ श्येन (शिकरा वा बाज पक्षिविशेष) पक्षीवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्य से । अविद्यात्मक संसार वा अनात्म अभिमानरूपा । जालको भेदनकरके निकलाहुआहौं ॥ । यह गर्भस्थविद्वान् का विचार कथनहै कि मैं जालको भेदनकरके निकलाहौं ताते यह निश्चय है कि शरीरके त्यागसे संसारकीनिवृत्ति न होके सम्यक् आत्मज्ञान होनेके समकालही संसारपाशकी सकारण अशेषनिवृत्तिहै। "। गर्भे एवैतच्छ-

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् ६ । २९ ॥ इति चतुर्थखंडः ॥

इति ऐतरेयोपनिषद्गत द्वितीयोध्यायः ॐतत्सत्॥

यानो बामदेव एवमुवाच "। [गर्भविषेही स्थितहुआ बामदेवऋषि यह इसप्रकार कहताहुआ ; अर्थात् इसरीतिसे यहो(आश्चर्य है) जो गर्भविषेही सोया (स्थितहुआ) बामदेवऋषि यह उक्तप्रकार का अनुभव प्रकटकरताहुआ॥-॥यहआत्मज्ञानकी अचिंत्य अपार महिमाहै जो गर्भस्थादि किसीअवस्थामेंभी सम्यक् ज्ञानहोतेही , बाम , कहिये तत्पदके वाच्य ईश्वरसे विपरीत त्वंपदकावाच्य, अरु , देव , कहिये बुद्धिआदिक सर्वकाप्रकाशक, ऐसा जो शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात विशिष्ट चैतन्यरूप बामदेव ऋषि सो अपने लक्ष्यसाक्षीआत्मा के सम्यक् अनुभवसे गर्भमें ही संसाररूप जालका भेदन करताहै॥-॥५ । २८ ॥

हेसौम्य, "। सएवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् "। [सो ऐसे जानताहुआ इस शरीरके भेदसे निकलके इस स्वर्ग लोकविषे सर्वकामों को पायके अमृत होताहुआ, अमृत, होता हुआ ; अर्थात् सो, [ज्ञानको अव्यभिचारी होनेकरके फलवान्ता- के जनावनेकेअर्थ बामदेवने फलपाया, इसप्रकार कहनेको "स- एवं विद्वान् " सो इसप्रकार जाननेवाला, । यहवाक्यहै, तिसका व्याख्यान करते हैं] बामदेवऋषि उक्त आत्माको उक्तप्रकार जानताहुआ इस शरीरके भेदसे, अर्थात् अविद्याकरके कल्पित । ताते भ्रान्तिमात्र । अरु लोहके पिंजरेवत् । दृढ । अरु भेदन करनेको अयोग्य, अरु जन्म मरणादि सहस्त्रावधि अनर्थोंकरके व्याप्त शरीररूप बन्धन के, परमात्माके ज्ञानरूप अमृत के योग से जनित सामर्थ्यके किये भेदसे । । अर्थात् शरीरोत्पत्तिके बीज

अविद्याके विनाशते शरीरके विनाशहुये, अर्थात् अविद्याके अशेष नाशहुये शरीर के रहतेही विद्वान्की दृष्टिमें शरीरका अभाव है क्योंकि स्वप्नशरीरवत् भ्रान्तिमात्र है ताते ।। ऊर्द्ध परमार्थरूप हुआ, अधोभावरूप संसारसे निकसाहुआ, ज्ञानकरके प्रकाशित निर्मल शुद्ध सर्वात्मभावको प्राप्तहुआ इस उक्तप्रकार के अजर अमर अमृत [इस स्वर्गबिषे मनुष्य देहादिक के भावको छोडि के स्वरूपभावसेही स्थित होताहुआ, इसप्रकार कहतेहैं] अभय सर्वज्ञ अपूर्व (अकारण) अनपर (अकार्य)। अर्थात् , परावर, कारणकार्य भावरहित । अनन्त अबाह्य प्रज्ञान अमृत एकरस स्वस्वरूप भूत स्वर्गलोक बिषे , निर्वाणको प्राप्तहुये दीपकवत्, प्राप्तहोताहुआ । । अर्थात् सामान्य उष्मालक्षणवाला जो सर्वत्र व्याप्तअग्निहै सो तेलबत्तीआदिक उपाधिके सम्बन्धसे विशेष दीपकभावसे प्रकटहोताहै अरु जब तेलबत्तीरूप उपाधिको भस्म करके निर्वाणहोताहै तबविशेषभावको त्यागके अपने सामान्यरूपको प्राप्तहोताहै,तैसेही सामान्यज्ञानस्वरूप सर्वव्यापि चैतन्य परमात्मा प्राण अन्तःकरण इन्द्रियों के संघातरूपलिंग शरीररूप उपाधि साथमिल विशेष जीवभावको प्राप्तहुआहै सो जब अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्यस्वरूपकोजानताहै तब लिंगरूपबत्ती अरु कर्म संस्काररूप तेलको " ज्ञानाग्निसर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा " इत्यादि प्रमाणसे, भस्मकर अनहुई उपाधिसे मुक्तहुआ , अर्थात् आकाशादि भूत भौतिक कार्यरूप उपाधिहै तिनसर्वका कारण एक अद्वैत आत्माहीहै, अरु कारणसे कार्यकी पृथक् सत्ता के अभावसे कार्य कारणरूपही है ताते अविद्याकरके कल्पितजो आत्माबिषे उपाधिसो वास्तव विचारसे न होनेकरके अनहुईहीहै, तिस उपाधिसे मुक्तहुआ अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्य भावको प्राप्तहोताहै ॥ आत्मज्ञानकरके पूर्व प्राप्तकामवालाहोनेसे जीवत हुआही सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ। अर्थात् सर्वका कारण सर्वरूपआत्मा तिसकी सम्यक्प्राप्तिसे सर्वकीप्राप्तिहोतीहै

अथ ऐतरेय उपनिषद्गत तृतीयोध्याय

हरिःॐ ॥ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरः स आत्मा । येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति । येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ । ३० ॥

ताते आत्मज्ञानी विद्वान्को प्राप्तकामकहतेहैं, अर्थात् "इहैव सर्वे प्रविलीयन्तिकामाः" इत्यादिप्रमाणसे पुरुषकोसर्वात्मभावकी प्राप्तिसेही सर्वकामना अभावहोतीहै, अरु कामनाके अभावहुए जीवतेही अमृतहोताहै "यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः, अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते" इत्यादि प्रमाणसे अमृत होता हुआ, यहां दो वार जो कथनहै सो फल सहित अरु वामदेव के उदाहरण सहित आत्मज्ञानकी परि समाप्तिके दर्शनार्थहै ॥ – ॥ अर्थात् वामदेवके उदाहरणसे सिद्धहुआ कि आत्मविषयक किया श्रवणादिककेसंस्कार निष्फलनहोयके जन्मान्तरमें भी मोक्षकरनेवालेहोतेहैं, ताते विवेकी मुमुक्षुपुरुष करके आत्मविषयक श्रवणादि अवश्यकरनेयोग्यहैं ॥६ । २९ ॥

इतिश्रीऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायभाषाभाष्य समाप्तम् ॥

अथऐतरेयोपनिषद्गत तृतीयाध्याय भाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [पूर्व के द्वितीयाध्यायविषे ज्ञानोत्पत्तिके अर्थ तीन जन्मके निरूपणसे बैराग्यको निरूपणकिया । अरु पदार्थके शोधन विना केवल बैराग्यमात्रसेही ज्ञानोत्पत्तिहोवेनहीं, याते पदार्थके शोधन पूर्वक वाक्यार्थके कहनेको तृतीय अध्यायहै । इसअभिप्रायसे पदार्थके शोधनविषे अधिकारीको देखावतेहुयेवाक्यको प्रकटकरतेहैं,] वामदेवादिक आचार्योंकी परम्परासे श्रुतिकरके प्रकाशितहुई, अरु ब्रह्मवेत्ताओंकी सभाविषे अति प्रसिद्ध ब्रह्मविद्यारूप साधनके किये सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्तिको जानते

हुए आधुनिक ब्राह्मणरूप मुमुक्षु ब्रह्मकी जिज्ञासावाले, अरु जीवभावपर्यन्त अनित्यसाधनरूप संसारसे निकसनेकी इच्छावाले होयके विचारकरतसंते परस्पर प्रश्नकरतेहुए। प्र०। किसप्रकार पूछतेहुए, [विचारके प्रकारकोही वाक्यके अन्वयसे स्पष्ट करने को पूछताहै] तहां कहते हैं, "कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा"। "यह आत्माहै,हम उपासनाकरें कौन सो आत्माहै, कौन प्रसिद्ध सो आत्माहै? अर्थात् जिस आत्माको ,,यह आत्मा है,, इसप्रकार साक्षात् हम उपासनाकरें कौन सो आत्माहै? ऐसे अरु जिस आत्माको यह आत्माहै, इसप्रकार साक्षात् उपासना करताहुआ वामदेवऋषि अमृत होताहुआ। तिसही आत्मा को हम भी उपासनाकरें। कौन प्रसिद्ध सो आत्मा है। इसप्रकार परस्पर प्रश्न करतेहुये। इस रीतिसे [ननु, भूतोंके मध्य प्रकटता के अर्थ जो प्रवेशको पायाहै सो आत्माहै, इस निर्द्धारके संभव से विचारका असंभवहै, यह आशंकाकरके,ऐसे हुये भी प्राण अरु आत्मा दोनोंको प्रविष्ट होनेकरके स्मरण किये होनेसे। (अर्थात् प्राण अरु आत्मा दोनों के प्रवेशका स्मरण होने से) । तिनका निर्द्धारणनहीं है, इसप्रकार कहनेको दोनोंका प्रविष्टपना स्मरण किया,ऐसे कहते हैं] जिज्ञासापूर्वक परस्पर प्रश्न करनेवाले उन ब्राह्मणों को पूर्व कथन किये जो देहविषे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राण अरु आत्मा तिनको विषय करनेवाली श्रवणसे जनित अनुभव से जन्य संस्कारसे उदयहुई स्मृति उपजतीहुई "तं प्रपादाभ्यां प्रापद्यत ब्रह्मेमं पुरुषं स एतमेवसीमानं विदार्य्य तयाद्वारा प्रापद्यत एतमेव पुरुषं," तिस इसपुरुष शरीरके अर्थ दोनोंपादोंके अग्रोंसे ब्रह्मा (ब्रह्मरूप प्राण) प्रवेशको पायाहै, सो इसही मस्तककी सीमाको विदीर्ण करके तिस द्वारसे प्राप्त होताहुआ,। इस श्रुति करके इसही पुरुष के अर्थ दोनों ब्रह्म परस्परकी प्रतिकूलता करके प्रवेश करतेहुये, इसप्रकार की स्मृति होती हुई। अरु वो प्राण अरु परब्रह्म इसपिंडके आत्मरूपहैं। [तिन

इसप्रकार विचारविषे अपेक्षित दोनों आत्माकी स्मृतिको कहके अब विचारको कहते हैं] दोनोंविषे एकआत्मा उपासना करने के योग्य उचित है । जो यहां उपासना करनेको योग्यहै सो निश्चय करके कौन आत्माहै, इसप्रकार विशेष निर्द्धारणार्थ पुनः विचारकरते परस्परमें प्रश्न करतेहुये । पुनः[ऐसेविचारके कियेहुये अतिशय शुद्ध अन्तःकरणवाले होनेसे, तिनको पादके अग्रसे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणविषे करणपने करके अनात्माका निश्चय होताहुआ, अरु मस्तकसे प्रवेशको प्राप्तहुये आत्माविषे उपलब्धापनेकरके आत्मताका निश्चय होताहुआ, ऐसाकहाहै, इसका अर्थ यहहै कि तिनको विचारके स्थान प्राण अरुआत्मा इनदोनों को विषय करनेवाली ,एकविषे करणपनेरूप अरुदूसरे विषे उपलब्धा पनेरूप प्रकारसे विशेष (विलक्षण) रूप बुद्धि- होतीहुई,] उन विचार करनेवालों को विशेष विचारके आश्रय को विषय करनेवाली बुद्धिहोतीहुई । कैसे होतीहुई कि, इस पिंडविषे अनेक भेद करके भिन्न करणसे दोनों वस्तु प्रतीतहोवे हैं । अरु जिस करके प्रतीत होवेहैं, अरु जो एक अन्य करणों करके जानेहुये विषयों की स्मृतिके संघातसे प्रतीत होवे है तहां प्रथम जिस करके प्रतीत होवेहै सो आत्मा होनेको योग्य नहीं । किस करके [इसप्रकार वर्णन करके तिस अर्थको श्रुति- योंके अक्षरोंसे आरूढ (दृढ) करनेको वादी प्रश्न करता है] प्रतीत होता है? । [तहां अब सिद्धान्ती प्रश्नकिये अर्थको श्रुति करके दृढ करताहै] कहते हैं "। येन वा रूपं पश्यति,येनवाशब्दं शृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति, येनवाचंव्याकरोति, येन वा स्वादु चास्वादुच विजानाति" । (जिस चक्षु करके प्रसिद्धरूपको देखता है, जिस श्रोत्रकरके शब्दको श्रवण करता है, जिसघ्राण करके गन्धोंको सूंघताहै, जिस वाणीरूप करण करके नामरूपा- दिकों को कहता है, जिस (रसनेंद्रिय) करकेस्वादु अरु अस्वादु को जानता है? । १ ॥ ३० ॥

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं । विज्ञानं । प्रज्ञानं । मेधा । दृष्टिर्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा । ज्यूतिः । स्मृतिः । संकल्पः । क्रतुरसुः । कामोवशइति । सर्व्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानिभवन्ति २ । ३१ ॥

हे सौम्य, सो [ननु चक्षुरादि करणोंको करणपनेके होनेसे भी पादके अग्रद्वारा प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणकी करणरूपता के बिषे क्या आया, इसप्रकार वादीशंका करता है [एक करण अनेक प्रकारके भेदको क्योंपाया है । [तहां प्राणकीही करणता को कहने को प्रथम हृदय अरु मन शब्दके वाच्य की चक्षुरादिकोंके भेदसे भिन्नता को कहतेहैं [तहां कहतेहैं, कि "। प्रजानांरेतो हृदयं हृदयस्थंरेतोमनो मनसा सृष्टा आपश्चवरुणश्च । हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा तदेवैतद्धृदयं मनश्चऐकमेतदनेकधा " प्रजाका रेतकहिये सारभूत वीर्य, हृदयहै, अरु हृदय बिषेस्थित रेत (सारभूतकार्य) मनहै, अरुमनकरके जलअरुवरुण सृजेहैं, हृदयसे मन अरु मनसे चन्द्रमा होतेहैं । इत्यादि प्रकार श्रुतिबिषे "। यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् "। (जो यह हृदय अरुयहमन अर्थात् जो यह पूर्व कथनकिया हृदय अरु मनरूप करण सोई यह तुमकरके प्रश्न कियाहुआ करण एकहुआ चक्षुरादिकोंके भेद करके अनेक प्रकारसे भेदको पायाहै । इस एकही चक्षुरूप हुये अन्तःकरण करके रूपको देखताहै, श्रोत्ररूपहुये अन्तःकरणकरके शब्दको श्रवण करताहै, घ्राणरूपहुये अन्तःकरणकरके गंधलेता है । अरु वाक्‌रूपहुये अन्तःकरणकरके बोलताहै । अरु जिह्वा वा रसनारूपहुये अन्तःकरणकरके स्वादों को लेताहै । आपही विकल्परूप मनकरके विकल्प करताहै । बुद्धिरूपकरके निश्चयको करताहै ॥ तातें सर्वकरण अरु विषयरूप व्यापारवाला एक यह करण उपलब्धाको सर्व उपलब्धिके अर्थ होताहै । तैसेही कौशीतकि उपनिषद्‌बिषे " प्रज्ञयावाचं समारुह्य वाचा सर्व्वाणि

नामान्याप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्व्वाणि रूपाण्याप्नोति , इत्यादि ” प्रज्ञा (बुद्धि) से वाचाकेविषे आरूढ होयके वाचासे सर्व नामों को पावता है , प्रज्ञासे चक्षु के विषे आरूढ होयके चक्षुकरके सर्वरूपों को पावता है ,। इत्यादि वाक्योंकरके कहाहै। अरु बृहदारण्यउपनिषद् विषे, , मनसा ह्येव पश्यति मनसाश्रृणोति हृदयेन हि रूपाणि जानाति, इत्यादि ,, मनसेही देखताहै,मनसे श्रवणकरताहै,हृदयसेही रूपकोजानता है,।इत्यादि वाक्यों से कहाहै। तातें हृदय अरु मनशब्दके वाच्यको सर्व उपलब्धि (ज्ञान) का कारणपना प्रसिद्धहै।अरुतिस हृदयरूप प्राणहै।तहां,,यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वै प्रज्ञा स प्राण इति ब्राह्मणम्,,जो प्रसिद्धप्राणहै सो प्रज्ञाहै,जो प्रसिद्धप्रज्ञाहै सो प्राणहै,। यह ब्राह्मण प्रमाण है। अरु “ करण संहतिरूपश्च प्राण इति वोचाम ” करणोंका समूहरूप प्राण है, ऐसा हम कहते हैं, । यह प्राण संवादादिकविषे स्थित वाक्यके बलसे प्राणकी करण समूह रूपता जानिये है। अतएव जो पादके अग्रभागसे शरीरविषे प्रवेशको पाया प्राणादिक करणहैं, यह उपलब्धिका कारण होने करके ब्रह्महै । इसप्रकार कहते हैं। परन्तु यह करणका समूह रूप वस्तु गुणरूप होनेसे ब्रह्मभावसे उपासना करनेयोग्य (जाननेयोग्य) आत्मा होनेको योग्य नहीं। [तब तैसे (ब्रह्मकरके [जाननेयोग्य कौनहै,। तहां कहतेहैं।] परिशेषसे जिस उपलब्धा की उपलब्ध्यर्थ इसहृदय अरु मनरूप करणकी अग्रिमकहनेकी वृत्तियां हैं, सो उपलब्धा उपासना करनेयोग्य। अर्थात् जाननेके योग्य। हमाराआत्मा होनेको योग्यहै,इसप्रकार वो मुमुक्षुनिश्चय करतेहुये। प्रज्ञानरूप [“ येन वै पश्यति ” जिसकरके देखताहै, इत्यादि लेके “ मनश्चैतत् ” यह मन, यहां पर्यन्त प्राणके करणपने करके अनात्मतारूप अर्थको कहके “संज्ञानं” संज्ञान,। इत्यादि लेके “ वश ” यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं सो अन्तःकरण की वृत्तिद्वारा तिससे भिन्न उपलब्धाके लखावने के अर्थ इसप्र-

कार कहते हैं] तिस अन्तःकरणरूप उपाधिविषे स्थित उपल-ब्धास्वरूप ब्रह्मकी उपलब्धि (ज्ञान) के अर्थ जो बाहर भीतर वर्त्तमान विषयनको विषयकरनेवाली अन्तःकरणकी वृत्तियां हैं सो यह वृत्तियां कहिये हैं "। संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं मेधा, दृष्टि धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा, ज्यूतिः, स्मृतिः, सङ्कल्पः क्रतुरसुः, कामो, वश इति। सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति "। (संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, ज्यूति, स्मृति, सङ्कल्प, क्रतु, असु, काम, वश, यह सर्वही प्रज्ञानके नाम होते हैं ; अर्थात् ,संज्ञान, सम्यक् ज्ञप्तिरूप चैतन्यभाव । ,आज्ञान, सर्वओरसे ज्ञप्तिरूप ईश्वरभाव। ,विज्ञान, चौंसठ ६४ कलादिकों से जन्य-लौकिक ज्ञान। ,प्रज्ञान, तत्कालीनभावरूप प्रज्ञा। ,मेधा, ग्रंथधारणविषे शक्ति। ,दृष्टि, इन्द्रियोंद्वारा सर्वविषयों का ज्ञान। ,धृति, शिथिलहुये देहेन्द्रियोंका पुनः सावधानहोना जिसकरके होय, अर्थात् जिसकरके धृतिसे शरीर वहन (चलना फिरनादि) करे हैं, ऐसा कहते हैं, तिसही करके ऐसा जो धारण सो धृति। ,मति, मनन। ,मनीषा, मननजन्य स्वतन्त्रता, वा मनका नियामकपना। ,ज्यूति, चित्तका रोगादि निमित्तसे दुःखित होनेपना। ,स्मृति, स्मरण। ,सङ्कल्प, रूपादिकोंका शुक्ल, कृष्णादि भावसे कल्पना करना। ,क्रतु, निश्चय। ,असु, प्राणनादि जी-वन क्रियाके निमित्तवाली वृत्ति। ,काम, असमीपस्थ विषयों की इच्छारूपा तृष्णा। ,वश, स्त्रीसंगादिकों की इच्छा। वा मनका स्वबश न रहना। ॥ इत्यादिक [इत्यादि वृत्तियां सर्व प्रज्ञान के नाम होते हैं, इसप्रकार अग्रिमवाक्यसे अन्वय है] यह अन्तः-करण की वृत्तियां हैं, सो चैतन्यमात्र रूप उपलब्धा की उप-लब्धिके अर्थ होनेसे शुद्ध प्रज्ञानरूप अरु नामरूपसे रहित ब्रह्म, की जिसकरके उपाधिरूप है, एतदर्थ तिस उपाधिसे जनित गौणनाममय संज्ञादिक यह सर्व प्रज्ञप्तिमात्र प्रज्ञानके नाम होते हैं। साक्षात्स्वरूपसेही नहीं। तैसे "प्राणन्नेव प्राणोनाम भवति"

प्राणको करताहुआही प्राणनाम होताहै ।[यहां यह कथन किया होताहै कि संज्ञानादिक जो शब्द हैं सो प्रकाशरूप बस्तुके बाची हैं, अरु जडरूप अन्तःकरणकी वृत्तियों को साक्षात् प्रकाशरूपता संभवे नहीं,एतदर्थ प्रकाशरूप बस्तुबिषे अध्याससेही इन वृत्तियों की प्रकाशरूपताहै, इसप्रकार कहतेहुये अधिष्ठानरूप भिन्नप्रकाश को जनावते सन्ते तात्पर्य से प्रकाशरूप प्रज्ञानकेही नाम होतेहैं यहां संज्ञानादिक जड वृत्तियों को अनित्य होने करके प्रकाशरूप वस्तुके बाचक संज्ञानादिक नामवान्पने के असंभवसे तिनसे भिन्न कोईएक प्रकाशरूप है, इसप्रकार कहा । तैसे संज्ञानादिक शब्दोंकीवाच्यताके कथनसेसो प्रज्ञानविज्ञानरूप चैतन्य है,यहांही प्राज्ञतारूप वृत्ति होती नहीं, इसप्रकार कहा , क्योंकि तिसकी अनेक रूपता करके तिस तिस वृत्तिगत तिस तिस नामवान्ता करके सर्वनामवान्ता के असंभव होने से । अरु ,, प्रज्ञान के ,, इस एक बचनका असंभव होनेसे । याते " येन वा पश्यति " जिस करके प्रसिद्ध देखता है, इत्यादि लेके " प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति " प्रज्ञानके नाम होते हैं, यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं तिनकरके सर्व करण अरु तिनकी वृत्तियों से भिन्न स्वप्रकाशरूप सर्वका साक्षी । सर्व से पृथक् । सर्व वृत्तियों बिषे । जलकी सर्व तरंगों में सूर्य्यके प्रकाशवत् । अनुगत, । सर्व के धर्म कर्मादिकों से असंग । एक आत्मा शोधन किया] इत्यादि रूप वाक्य प्रमाण हैं २ । ३१ ॥

हे सौम्य, " एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानिच पञ्चमहाभूतानि " " यह ब्रह्म है , यहइन्द्र है , यह प्रजापति है , यह सर्वदेव , अरु पञ्च महाभूत हैं , " अर्थात् , सो [इसप्रकार शोधन किये आत्मा के शरीर शरीर के प्रति नानाभाव के निवारणार्थ " एष ब्रह्म " यह ब्रह्महै, । इत्यादिरूप वाक्य है तिनका व्याख्यान करते हैं] यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है । मुख्य ब्रह्मभावको आगे कथन किया है ताते यहां ब्रह्म

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि । पृथिवी वायुराकाशआपोज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि। चेतराणि चाण्डजानि च । जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि। चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो। यत् किञ्चेदं प्राणिजंगमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् । सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञानेत्रो लोकः। प्रज्ञा प्रतिष्ठिता प्रज्ञानं ब्रह्म ३। ३२॥

शब्द करके सर्व शरीरविषे स्थित प्राण अरु प्रज्ञारूप आत्मा, जलभेदगत सूर्यके प्रतिबिंबवत् अन्तःकरणरूप उपाधिविषे प्रवेश को पाया समष्टि लिंग शरीरोंका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप प्राण प्रज्ञानात्मारूप अपरब्रह्मको कहते हैं) अरु यह ही इन्द्रहै,क्योंकि ,,इसको देखताहुआ,, इस श्रुतिउक्त गुणका योगहै ताते, वा देवताओंका राजाहै ताते। अरु यह प्रजापतिहै।जो प्रथम उत्पन्न हुआ शरीरवालाहै अरु जिसकेमुखादि भेदोंद्वारा अग्न्यादिलोकपाल उपजे हैं, सो प्रजापति, वा प्रजासहित सर्वका नायक प्रजापति। अरु यह अग्न्यादि सर्व देवता यही है। अरु पञ्च महाभूतभी यही है॥ तहां "पृथिवी वायुराकाश आपोज्योतींषीत्येतानीमानिचक्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि"। (पृथिवी वायु आकाश जल तेज, यह अल्पजन्तुओं करके मिश्रित, अरु बीज अरु इतर ; अर्थात् यह सर्व शरीरों के उपादानरूप ,पृथिवी, वायु , आकाश, जल, तेज, रूप यह अन्न अरु अन्नादि भावरूप पंचमहाभूत यहही है । अरु अल्प जन्तुओंकरके मिश्रित सर्पादिक भी यही है। अरु बीज (कारण) अरु इतर (कार्य) रूप भी यही है।अरु "चेतराणि चाण्डजानि च,जरायुजानि च,स्वेदजानिचोद्भिज्जानि, चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो, यत्किञ्चेदं प्राणि

जंगमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम्" (अरु इतर, अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, अश्व, गऊ, मनुष्य, हस्ति अरु जो कुछ भी इन प्राणियोंकासमूह जंगम, पक्षी, स्थावर है ? अर्थात् अन्य स्थावर जंगम भेदसे कथन किये अंडज (पक्षी आदिक) अरु जरायुज (मनुष्यादिक) अरु स्वेदज (जूंआं आदिक) अरु उद्भिज (वृक्षादिक) अश्व गौ मनुष्य हस्ति अरु अन्य जो यह कुछ भी प्राणियोंका समूह जो दोनों पादों से चलताहै ऐसा जंगम अरु जो आकाशमें उडनेवाले पक्षी पतत्रि, अरु जो स्थावर(वृक्षादिअचल) है"सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्, प्रज्ञानेत्रोलोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठिता, प्रज्ञानं ब्रह्म " (सो सर्व प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, [प्रज्ञा नाम प्रज्ञप्तिकाहै,सो ब्रह्महो है तिसकरके जो सत्ताको प्राप्तहोता है सो नेत्रकहिये है, अर्थात् प्रज्ञारूपहै नेत्र जिनका ऐसा जो जगत् सो प्रज्ञानेत्र कहते हैं]प्रज्ञानविषेस्थितहै,प्रज्ञानरूप नेत्रवालालोक है,प्रज्ञा प्रतिष्ठाहै,प्रज्ञानब्रह्महै ? अर्थात् सोसर्वओरसे प्रज्ञारूपनेत्रवालाहै, अरु प्रज्ञानरूप ब्रह्मविषे, उत्पत्ति, स्थिति, अरु लय, तीनोंकालविषे स्थितहै (प्रज्ञाके आश्रितहै) ताते प्रज्ञारूपनेत्रवाला लोकहै,वा प्रज्ञानरूप चक्षुवाला सर्वलोकहै ।एतदर्थ प्रज्ञा(ब्रह्म) सर्वलोककी (जगत्की) प्रतिष्ठा (आश्रय) है । ताते [इस प्रकार होनेसे प्रज्ञानरूप प्रत्यगात्मा का निर्विशेषपना आदिक प्रसिद्ध है,इसप्रकार कहते हैं । प्रज्ञानकोही अवशेषरूप होनेसे, अरु परमार्थसे सत्य होनेसे, यहां यह अर्थ बनता है] प्रज्ञान (प्रत्यगात्मा) ब्रह्महै । सो [अब ब्रह्मशब्दके अर्थकोकहते हैं] ब्रह्म सर्व उपाधिके भेदसे रहित, सत्, निरंजन, निर्मल , निष्क्रिय, शान्त,एक,अद्वैत, अरु " नेतिनेति " इस श्रुति प्रमाण सर्व विशेषके अभावपूर्वक जाननेयोग्य , सर्वशब्द अरु वृत्तियों का अविषय है । सो अत्यन्त शुद्ध प्रज्ञा (माया) रूप उपाधि के सम्बन्धसे सर्वज्ञ ईश्वर नामसे कहाजाताहै, अरु सर्व को साधारण अव्याकृतरूप जगत्के बीजका प्रवर्त्तक नियन्ता होने

स एतेनप्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गेलोके सर्वान्कामानाऽऽप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् इत्योम् ४। ३३॥

इति ऐतरेयारण्यके षष्ठोध्यायः॥

उपनिषत्सुतृतीयोध्यायः समाप्तः ॐतत्सत्॥

से अन्तर्यामी नामसे कहा जाताहै। अरु सोई जगत्की बीजरूप समष्टि बुद्धिबिषे आत्मापने के अभिमानरूप उपाधिवाला हुआ हिरण्यगर्भ नामसे कहाजाता है। अरु सोई ब्रह्मांडरूप उपाधिवालाहुआ विराट् नामवाला होताहै। अरु तिस विराट् के भीतर प्रकटहुये प्रथम शरीररूप उपाधि वालाहुआ प्रजापतिनामसे कहाजाता है। अरु तिस ब्रह्मांडसे उत्पन्नहुये अग्नि आदिक उपाधि वालाहुआ अग्न्यादि देवताओंके नामसे कहाजाता है। अरु तैसेही विशेष (व्यष्टि) शरीररूप उपाधिबिषे तिसतिस नामसे ही कहाजाता है कि जिसजिस उपाधिवाला होता है। इसप्रकार ब्रह्मासे आदि लेके स्तंभपर्यन्त सर्व भूतों बिषे तिस तिस नामरूपका लाभ होताहै। सोई एक ब्रह्म सर्व उपाधिके भेदसे भिन्नहुआ, सर्व प्राणियों करके अरु तार्किकों करके सर्व प्रकारसे जानते हैं, अरु अनेक प्रकारसे विकल्पों का विषय करते हैं। इस अर्थबिषे "एतमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतमित्याद्या स्मृतिः" इस आत्माको कईएक अग्नि कहतेहैं,कई एकमनुष्य कहतेहैं,कईएक प्रजापति कहते हैं, कईएक मनु कहते हैं, कई एक इन्द्र, कई एक प्राण, कईएक ब्रह्म, कईएक नित्य शाश्वत कहतेहैं, इत्यादि यह स्मृति प्रमाणहै ३। ३२॥

हे सौम्य, [अब इस प्रकारके ब्रह्मआत्माके। अभेद ज्ञाता के अर्थ फलको कहनेको "स एतेनेत्यादि" सोइसकरके,। इत्यादि रूप श्रुतिवाक्यहै,तहां एकवचनांत,,स"इसशब्दसे प्रसंग

विषे प्राप्तहुये "कोऽयमात्मेति" कौन यहआत्माहै,। इसप्रकार विचारनेवाले बहुत मुमुक्षुओंके स्मरण की अयोग्यतासे । अरु आधुनिक विद्वानके "स" इस भूतकालके वाची शब्दकरके स्मरणकी अयोग्यतासे पूर्वाध्यायविषे उक्तवामदेव स्मरण करतेहैं, इसप्रकार कहतेहैं] जिसही प्रज्ञानरूप से ब्रह्मके जाननेवाले पूर्व अमृत होतेहुये, अरु तिसही प्रज्ञानरूपसे उक्त प्रकारके ब्रह्मको जाननेवाला वामदेव वा अन्य विद्वान् सोअमृत होताहुआ "। स एतेन प्रज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन स्वर्गेलोके सर्वान् कामनाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् इत्योम्"। ८ सो इस ही प्रज्ञानरूपसे इसलोकसे उत्क्रमणकरके उस स्वर्गलोकविषे सर्वकामोंको प्राप्तहोकेअमृतहोताहुआ, होताहुआ ऐसे ॐ हैं; अर्थात् वामदेवादि उक्त प्रकारब्रह्मको जाननेवाला विद्वान् सो अमृत होताहुआ । तैसे यह आधुनिक विद्वान् भी इसही प्रज्ञानरूपसे ब्रह्मको जानके इसलोकसे उत्क्रमण करके (देहात्मभावको त्यागकरके) उस ब्रह्मरूप स्वर्ग लोकविषे सर्व कामोंको पायके अमृत होताहुआ, इसप्रकार [उक्त आत्मतत्त्वको अंगीकाररूप अर्थके वाचीॐकारसे अपने अनुभवके प्रकट करनेकरके।अरु "ओंकारश्चाथशब्दश्चद्वावेतौ ब्रह्मणःपुरा । कंठं भित्त्वा विनिर्य्यातौ तस्मान्मांगलिकाभुवाविति" ओंकार अरु अथ यह दोनों शब्द पूर्व ब्रह्माके कंठको भेदनकरके प्रकटहुये हैं एतदर्थ यह दोनों मांगलिक हैं,। इस स्मृतिके प्रमाणसे , ओंकार से ब्रह्मात्माके स्मरणरूप मंगलके करनेके अर्थ अन्तविषे "ॐ" इसप्रकार कथन कियाहै ४।-३३॥

इतिश्रीऐतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्यायभाषाभाष्यसमाप्तम्शुभम्॥

इति श्री स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती जी का अतिअल्पज्ञ
शिष्य यमुनाशंकरनाम्ना नागरब्राह्मणविरचित
यह ऐतरेयउपनिषद्का भाषाभाष्य समाप्तम्॥
हरिः ॐ तत्सत ब्रह्मार्पणमस्तु शुभम् भवतु ॥

कठवल्ली उपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषी-वरकेपुत्र श्रीउद्दालक ऋषिनेजिसप्रकारसे विश्वजित्नामायज्ञ ो और उसीयज्ञकेदक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपरिमित न व गौओंको दानदिया और उसी यज्ञमें अपने परम प्रिय पुत्र ानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्युके अर्थ दानदिया और नचि-ता यमालयमें गया और मृत्युने सावधान पूजन किया और रस्पर वार्त्तालाप हुआ वह सब वृत्त संवित मंत्रों में बर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् ॥

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदता ा निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य न चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने ाग्य है ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् ॥

यहउपनिषद् यजुर्वेद सम्बन्धीहै—इसउपनिषद्मेंश्रीसच्चिदा-न्द घन परब्रह्म परमेश्वर निराकारके साकार रूप होने का तिपादन है ॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

जिसे बाजसनेयीसंहिताभी कहतेहैं—इस उपनिषद्में यावत् ाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशही में घटित कियाहै ॥

केनोपनिषद् ॥

अब इसबार अत्यन्त शुद्धतापूर्वक सरलभाषा तिलक से ाकमुद्रित कीजातीहै—इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापतिद्वारा र्णन किया गयाहै ॥

छांदोग्यउपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में इन्द्रियादिकों के संघात बिषे स्थित प्राणों ा ज्येष्ठताका व श्रेष्ठताकाएक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन है-त्रों के नीचे सरल देशभाषामें सुन्दर तिलक कियागया है ॥

मनुस्मृतिसटीकका विज्ञापनपत्र ॥

इसपुस्तकको श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) ने वहुतसीद्रव्य व्ययकरके धर्मशास्त्राग्रगण्य सकलगुणिगण मण्डलीमण्डन महामहोपाध्याय श्रीपण्डित मिहिरचन्दजी से अन्यधर्मशास्त्र ग्रंथों के तात्पर्य्यों से संबलित व सारोंसे मिश्रित और सकलटीकाओं के रहस्योंसे युक्त उक्तग्रंथका पदच्छेद अन्वय तात्पर्य्य व भावार्थसे भूषित अच्छेप्रकार देशभाषामें विवरणकराय मन्वर्थभास्करनाम तिलक मूलश्लोकों सहित लक्ष्मणपुरस्थ स्वयंत्रालयमें मुद्रितकर प्रकाशितकियाहै—संसार में यावत् कर्म धर्म चतुर्वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, व चतुराश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ व संन्यासादि के हैं सविस्तार इसमें वर्णन कियेगये हैं—इसके सिवाय और भी सारे जगत् का वृत्त अर्थात् जगदुत्पत्ति स्वर्ग भूम्यादि सृष्टि वर्णन देवगणादिकों की सृष्टि धर्माधर्म विवेक मनुजी की उत्पत्ति व यक्षगंधर्वादिकों की उत्पत्ति व मेघ,पशु,पक्षी,कृमि,कीट,जरायुज, अण्डज, स्वेदज उद्भिज,वनस्पति,गुल्मलता वृक्षादिकोंकी उत्पत्ति,दिनरात्रि प्रमाण व युगोंका प्रमाण व्रतादिकों के करनेका नियम व फल देशोंका कथन मनुष्यों के जातकर्म व नामकरण व चूडाकरण यज्ञोपवीतादि की क्रिया कथन वेदके अध्ययन करनेका ढंग व नियम व इन्द्रियों के संयमों के उपायोंका कथन आचार्य उपाध्याय व गुरु आदिका वर्णन पितृकर्म में श्राद्धादि करनेका नियम भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओंके भोजनकरने का नियम निषेध व प्रायश्चित्त ऋणलेने देने के नियम व दायभागादि दीवानी फ़ौजदारी के मुक़द्दमों का यथाविधि निपटारा करना यह सब वार्त्तायें अच्छे प्रकारसे इसमें दर्शाईगई हैं जिनसे प्रत्येक मनुष्योंके कार्यहोते चले आते हैं और भी वहुतसी राज्यनीति सम्बन्धी वार्तायें जो कि राजाओं को करना योग्य है वह सब इसमें उत्तम रीति से सविस्तर वर्णनकीगई है—आशाहै कि जो विद्वज्जनदेखेंगे प्रसन्नतासे इसे ग्रहणकरेंगे ॥

——०——

छान्दोग्योपनिषद्

भाषाटीका सहित ॥

जिसमें

प्रणव प्राणादिकों की उपासनासे सगुण ब्रह्मोपासना अरु तिसका फल पुनरावृत्ति से रहित ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप उत्तरगतिका वर्णन, इन्द्रियादिकों के संघातमें स्थित प्राणकी सबसे ज्येष्ठता श्रेष्ठता का एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन और नारद सनत्कुमारके संवादरूप आख्यायिका द्वारा भूमा विद्याकी रीतिसे आत्मोपासनका वर्णन इत्यादि अच्छे प्रकार से वर्णितहै ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्यसम्पन्न श्रीमुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) ने भारतवर्षीयजनों के उपकारार्थ बहुत सा धनव्यय करके कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणसे सरल देशभाषामें उलथाकराय अपने यंत्रालयमें मुद्रित कराय प्रकाशित किया ॥

पहलीबार

लखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी
नवम्बर सन् १८९५ ई० ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्री मद्भगवद्गीता सकल निगम पुराणस्मृति सांख्यादिसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रकासर्वविद्या निधान सौशील्यविनयौदार्य्य सत्यसंगरशौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरावतारमहानुभावअर्जुनको परमअधिकारीजानके हृदयजनितमोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसारनिस्तारक भगवद्भक्तिमार्गदृष्टिगोचरकरायाहै वहीउक्तभगवद्गीतावज्रवत्वेदांत वयोगशास्त्रांतर्गत जिसको अच्छे२शास्त्रवेत्तारअपनीबुद्धिसे पारनहींपासक्ते तबमंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठनकरनेकी सामर्थ्य है वहकब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्तेहैं-और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसीपुस्तक अथवा किसीबस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिले इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्ज रसिक जनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्मधुरीण सकल कलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमन्मुंशीनवलकिशोर जी (सी, आई, ई) ने बहुतसा धन व्ययकर फ़र्रुख़ाबादनिवासि स्वर्गवासि पण्डित उमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्री शंकराचार्य्यनिर्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यह बिचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थ की भाष्यमें अधिकतर उत्तमता उस समयपरहोगी कि इस शंकराचार्य्यकृत भाष्य भाषाकेसाथ और इसग्रन्थके टीकाकारोंकीटीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उनटीकाकारों के अभिप्रायकाभीबोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्यजीकी शंकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूलश्लोकों सहित इसपुस्तकमें उपस्थितहै ॥

ॐ

अथ सामवेदीय

छान्दोग्योपनिषद्

उत्तरार्द्ध का भाषाभाष्य प्रारभ्यते

भूमिका

हे सौम्य इस उपनिषद् के प्रपाठक (अध्याय) चतुष्टयात्मक पूर्व्वार्द्धकरके प्रणव प्राणादिकों की उपासना से सगुण ब्रह्मोपासना अरु तिसका फल पुनरावृत्ति से रहित ब्रह्मलोक प्राप्ति रूप उत्तरगति कहा ॥ अब इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद् के पंचम प्रपाठकः (अध्याय) करके प्रथम इन इन्द्रियादिकों के संघात विषे स्थित जो प्राण तिसकी सर्व से ज्येष्ठता श्रेष्ठताको एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन करेंगे ॥ पश्चात् जे ऊर्द्ध्वरेत्ताहैं औ पंचाग्नि विद्या के ज्ञाता , अर्थात् जे पंचाग्नि विद्या की ज्ञात से उपासना पूर्वक अग्निहोत्रादि करने वाले हैं; परम श्रद्धालू पुरुषों की सर्वोत्तम उत्तर गति । अरु तिनसे अन्य जे दक्षिणदिक् सम्बन्धिनी धूमादि लक्षणवाली पुनरावृत्तिरूपा तृतीयागति । औ तिसके अनन्तर अतिकष्टतरा संसारगति कि जिसके जानने से मुमुक्षु पुरुष को इस दुःखमय संसारसे वैराग्य होवे, कहेंगे ॥ तिसके पश्चात् एक आख्यायिका द्वारा वैश्वानर विद्या कि जिसकी ज्ञात बिना अग्निहोत्र भस्म में आहुति देनेवत् व्यर्थ होता है, प्रकाशित करेंगे । अर्थात् प्रथम प्राणकी ज्येष्ठ श्रेष्ठता अरु तिसकी प्राप्तिकी कामनावाले के अर्थ मन्थाख्यकर्म्म अरु द्वितीय पंचाग्नि की उपासना से उत्तरायण अर्चि-

रादि क्रमसे अग्नि के उपासक की सर्वोत्तम उत्तर गति, अरु केवल कर्मीयों की दक्षिणायन धूमादि क्रम से पुनरावृत्तिरूपा तृतीया गति औ दोनों मार्गों से रहित पुरुषों की अतिकष्टतरा बारम्बार जन्म मरण रूप संसारगति । अरु तृतीय वैश्वानर विद्याकी श्रेष्ठता औ तिसके ज्ञाता के भोजन से जगत् की तृप्ति । इन तीन प्रसंगात्मक इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद् के पंचम प्रपाठकको कहेंगे ॥ पश्चात् इस उत्तरार्द्ध के द्वितीय अरु उपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक (अध्याय) करके एक पिता पुत्र के संवाद रूप आख्यायिका द्वारा श्रुति करके प्रकाशित किया जो एक अद्वैत आत्मतत्त्व अरु महावाक्य से तिसका उपदेश, सो कहेंगे ॥ तदनन्तर इस उत्तरार्द्ध के तृतीय औ उपनिषद् के सप्तम प्रपाठक (अध्याय) करके नारद सनत्कुमार के सम्बाद रूप आख्यायिका द्वारा भूमाविद्या की रीति से आत्मोपासन कहेंगे ॥ औ इस उत्तरार्द्ध के चतुर्थ अरु उपनिषद् के अष्टम प्रपाठक (अध्याय) करके दहर विद्यापूर्वक इन्द्र, विरोचन, अरु ब्रह्मा के उपदेशरूप आख्यायिका द्वारा श्रुतिने कहा जो आत्मोपदेश, सो सर्व इस मध्यदेशीय भाषा में निरूपण करेंगे । तहां अब प्रथम इस उत्तरार्द्ध का प्रथम औ उपनिषद्का पंचम प्रपाठकः (अध्याय) प्रारम्भ करते हैं ॥

ॐ सहनाववतुसहनौभुनक्तुसहवीर्य्यंकरवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

ॐ ब्रह्मानन्दंपरमसुखदं केवलंज्ञानमूर्त्तिम् ।
द्वंद्वातीतंगगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकंनित्यंविमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुंतन्नमामि ॥

अथ उत्तरार्द्धस्य प्रथम, उपनिषद् सुपंचम प्रपाठकः॥

ॐ यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च १॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्धही ज्येष्ठको श्रेष्ठको जानताहै सो प्रसिद्धही ज्येष्ठ श्रेष्ठ होताहै। प्राणही ज्येष्ठ श्रेष्ठ है १॥

भावार्थ

श्रीगुरुरुवाच॥ हे शिष्य इस उपनिषद् के अध्याय चतुष्ठ-यात्मक पूर्वार्द्ध करके सगुण ब्रह्मविद्या करके [अर्थात् पंचाग्नि विद्या से अतिरिक्त सगुण ब्रह्मविद्या करके तिन विद्या विषे नि-ष्ठावान् उपासकों की] उत्तरा गति कहा। अब इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद्के पंचम अध्याय विषे पंचाग्निविद्या के ज्ञा-ता गृहस्थ की अरु ऊर्द्ध्वरेतापुरुषों की जो कि विद्या विषे शील (स्वभाव) वाले परम श्रद्धालुओं की गति कहके, पश्चात् तिस से अन्य जे दक्षिणायन सम्बन्धी केवल कर्मियोंका धूमादि ल-क्षणवाली पुनरावृत्तिरूपा द्वितीया गति। तिसके अनन्तरविद्या (उपासना) अरु कर्म (इष्टापूर्तादि) इन दोनों से रहित पुरुषों की अति दुःख रूप संसारगतिको कहते हैं [ननुक्रम से मुक्तिका संभव होने से सगुण ब्रह्मविद्यारूपा उत्तरागति कहा सो अस्तु, परन्तु पुनरावृत्तिरूपा दक्षिणायन गति अरु बारम्बार जन्म मरण रूपा संसारगति, जो कि अति निकृष्ट हैं, क्यों उपदेश करते हो] समाधान। उक्त दोनों गति अतिही कष्टरूपा हैं ताते तिनसे मुमुक्षुको सम्यक् प्रकार वैराग्य होय एतदर्थ इस पंचम प्रपाठक की भाषा टीका का प्रारम्भ करते हैं॥ तहां। "प्राणोवाव संवर्ग इत्यादि"। प्राणही संवर्गहै, इत्यादि इस उपनिषद्के पूर्वार्द्ध विषे कहाहै, अतएव तिस प्राणके उपासकके अर्थ वागादिसर्व इंद्रिया दिकोंसे प्राणकी ज्येष्ठता औ श्रेष्ठताको प्रथम निरूपण करते हैं।

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वा व वसिष्ठः २ ॥

जो स्पष्टही इस प्रथम बय करके सर्व से ज्येष्ठको औ सर्व से अधिक गुणवान होने से सर्व से श्रेष्ठको जानता है सो स्पष्टही ज्येष्ठ अरु श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार श्रुति फलवाद प्रथम श्रवण कराय (फलका लाभ देखाय) पुरुकी बृत्तिको अपने सम्मुख कर कहती है।" प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।" [प्राणही ज्येष्ठ श्रेष्ठहै] अर्थात् वागादि सर्व इन्द्रियों से प्रथम उत्पन्न होने से यह प्राणही सर्वसे ज्येष्ठ है, क्योंकि गर्भस्थ पुरुषको बागादि इन्द्रिय वृत्ति के लाभ से पूर्वही प्राण वृत्तिका लाभ अर्थात् प्राण वृत्ति लब्धात्मिका होतीहै। औ जैसे जैसे गर्भ (गर्भस्थशरीर) वृद्धि को प्राप्त होताहै तैसे तैसेही चक्षुरादि स्थान (गोलक) रूप अवयवों करके निष्पन्न होताहै तब तिसके पश्चात् वागादि इन्द्रिय वृत्ति का लाभ होताहै। औ गर्भ विषे जो शरीरकी वृद्धि औ चक्षुरादि स्थानों की प्राप्ति होतीहै सो सामान्य प्राण वृत्ति के आश्रय होतीहै प्राणवृत्ति के पूर्वलाभ बिना गर्भ में शरीर की वृद्धि होवे नहीं, अतएव गर्भ में वागादि इन्द्रिय वृत्ति के लाभ से पूर्व प्राण वृत्ति का लाभ होनेसे प्राण सर्व में वय करके ज्येष्ठ है।' अथवा।' एतस्माज्जायतेप्राणो '।' प्राणमसृजत '। इत्यादि श्रुति प्रमाणकरके प्राणकी सर्व से प्रथम उत्पत्ति होनेसे भी प्राण अन्य सर्व से ज्येष्ठ है ;। अरु उसकी श्रेष्ठता तो अग्रिम ।" सु हय "। इत्यादि वाक्यों के देखने से स्पष्टहै सो प्राणकी गुणों करके जो वागादि सर्व में श्रेष्ठता है सो कहते हैं १ ॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्ध ही वसिष्ठको जानताहै सो प्रसिद्धही अपने विषे वसिष्ट होताहै, वागही वसिष्ठ है २ ॥

योह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिंश्च लोके ऽमुष्मिंश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ३॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का

हे सौम्य, ।" योह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति"। [जो स्पष्टही वसिष्ठ को जानता है सो अपने में वसिष्ठही होताहै] अर्थात् जो इस प्रसिद्धही सर्व को आच्छादित करने वाला धनवान् वायु वसिष्ठको जानता है सो अपनी ज्ञाति के मध्य वायुवत् धनवान् प्रसिद्धही वसिष्ठ होताहै। प्रश्न। तर्हि वसिष्ठ कौन है। उ०॥" वाग्वाव वसिष्ठः"। [वाणीही वसिष्ठ है] अर्थात् जो वेद शास्त्रकी विद्या करके सम्पन्न प्रखर वाणी वाला पुरुषहै सो सभाविषे अन्य पण्डितों को तथा धनवानोंको पराभव करता है:—अर्थात् जो वाणीरूप प्राणकी उपासना करताहै सो वाणीमान् औ धनवान्हुआ सर्वको पराजय करनेवाला अपनी ज्ञाति विषे वायुवत् उक्तप्रकारका वसिष्ठही होताहै २॥

अक्षरार्थ

जो स्पष्टही प्रतिष्ठाको जानता है सो इसलोक परलोक में स्पष्ट प्रतिष्ठित होताहै। चक्षुही प्रतिष्ठा है॥ ३॥

भावार्थ

हे सौम्य, ।" यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा"। [जो प्रसिद्धही प्रतिष्ठा को जानताहै सो इस लोक परलोक में प्रतिष्ठाको पावता है] अर्थात् जो पुरुष इस प्रसिद्ध प्रतिष्ठाको (चक्षुविशिष्ट प्राणको) जानताहै सो जीवते इसलोक में औ मरणोत्तर परलोक में प्रतिष्ठा (उत्तम स्थान) को प्राप्त होताहै। प्रश्न। प्रतिष्ठा क्या है। उत्तर।" चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा"। [चक्षुही प्रतिष्ठाहै] अर्थात् यह पुरुष सम शुद्ध धरातल विषे वा ऊंचे नीचे दुर्गम स्थल विषे चक्षु से सम्यक् प्रकार देखके उत्तम स्थान विषे स्थित होताहै, एतदर्थ चक्षुही प्रतिष्ठा है ३॥

योहवै सम्पदं वेद सछंहास्मैकामः पद्यन्ते देवाश्च मनुष्याश्च श्रोत्रं वाव सम्पत् ४ यो ह वा आयतनं वेदायतनछं ह स्वानांभवति मनो ह वा आयतनम् ५ ॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्ध ही सम्पदा को जानता है तिसको देवता औ मनुष्य सर्व काम प्राप्त करते हैं श्रोत्रही सम्पत् है ४ जो प्रसिद्धही आयतन (स्थान) को जानता है सो अपने का प्रसिद्ध आयतन होताहै । मन प्रसिद्धही आयतन है ५ ॥

भावार्थ

हे सौम्य ।" यो ह वै सम्पदं वेद सछंहास्मैः कामाः पद्यन्ते देवाश्च मानुषाश्च"। [जो प्रसिद्धही सम्पदा को जानताहै तिस को देवता अरु मनुष्य सर्व कामों को प्राप्त करते हैं] अर्थात् हे प्रियदर्शन जो पुरुष सम्पदाको जानके तिसकी उपासना करता है तिसको देवता और मनुष्य सर्वकामोंको प्राप्त करतेहैं। प्रश्न। तर्हि सम्पदा क्या है । उत्तर ॥" श्रोत्रं वाव सम्पत्"। [श्रोत्रही सम्पत् है] अर्थात् श्रोत्र करके ही वेदों के मंत्रों को ग्रहण करते हैं पश्चात् तिसके अर्थ को जानके तिसके अनन्तर तिसके अनुसार कर्मों को करते हैं तदनन्तर कामों को प्राप्त होतेहैं। अतएव काम सम्पत्ति की प्राप्ति का हेतु होने से सम्पत् श्रोत्रही है ४ ॥ हे सौम्य, ।" यो ह वा आयतनं वेदायतन छं ह स्वानां भवति" [जो प्रसिद्धही आयतन (स्थान) को जानता है सो अपने का आयतन होताहै] अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण किये भोगार्थ विषयों का औ तिनकी प्रत्ययों का मन आयतन कहिये आश्रय है। एतदर्थ ।" मनो ह वा आयतनम्"। [मनही प्रसिद्ध आयतन है] ॥ :—हे सौम्य वाग् चक्षु श्रोत्र औ मन इनको क्रम से जो वसिष्ठत्व प्रतिष्ठत्व सम्पतत्व औ आयतनत्व पना कहा है सो तत्तद्विशिष्ट प्राण का जानना ५ ॥

अथ ह प्राणा अहछं श्रेयसि व्युदिरेऽह छं श्रेयान स्म्यहछं श्रेयानस्मीति ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्यो चुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति ६ ॥

अक्षरार्थ

अथ प्रसिद्ध सर्व प्राणा (इन्द्रियां) हम श्रेय हैं (ऐसा विचार के) विवाद करते हम श्रेय हैं हमाराही श्रेयत्वहै (ऐसा मानके) अपने पिता प्रजापति के समीप जाय प्रश्न करते हुए कि हम सर्व में श्रेष्ठ कौन है ६ ॥

भावार्थ

हे सौम्य, " अथ ह प्राण अहथ्ं श्रयसि व्यदिरेऽहथ्ं श्रेयान-स्म्यहथ्ं श्रेयानस्मीति"। [सो प्रसिद्ध इन्द्रियां हम श्रेय (श्रेष्ठ)हैं 'ऐसा विचार ' परस्पर विरुद्ध होय विवाद करते कहते हुए हम श्रेष्ठहैं हमश्रेष्ठहैं]। हे सौम्य अब इन्द्रियों के परस्पर विवाद औ तिनकी अश्रेष्ठता पूर्वक प्राणकी श्रेष्ठताको श्रवणकरो। हेशिष्य कहे प्रकार वागादि इन्द्रियां यथोक्त गुणों करके युक्त होते संते भी हम श्रेष्ठ हैं हम श्रेष्ठ हैं, इस प्रकार विचार के अपनी२ श्रे-ष्ठता के हेतु परस्पर में नाना विरुद्ध कहते हुए।:-अर्थात् एक दूसरे की श्रेष्ठता का खंडनकर अपनी २ श्रेष्ठताको प्रकट करते हुए, परन्तु विरुद्ध विवाद युक्त होने से श्रेष्ठता का निर्णय न हुआ-:। तब सो प्रसिद्ध इन्द्रियां विवाद करते हुए अपने विष-यक श्रेष्ठत्व के जानने के अर्थ अपने उत्पादक पिता प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप जाय प्रणामकर कहते हुए कि हे भगवन् हमारे सर्व के मध्य श्रेष्ठ 'अर्थात् गुणों करके अधिक, कौन है सो आप कृपा करके कहिये। क्योंकि आप वृद्धपुरुषके कहे बिना हम अज्ञातों का परस्पर का विवाद मिटना नहीं ६ ॥

तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतर मिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ७॥

अक्षरार्थ

तिन इन्द्रियोंके प्रति स्पष्ट कहता हुआ जिसके निकसजाने से शरीर पापिष्ठतर ऐसा दृष्ट आवे सो वो श्रेष्ठ है ७॥

भावार्थ

हे सौम्य उक्त प्रकार जब अपनी २ श्रेष्ठता के विज्ञानार्थ वागादि इन्द्रियोंने परस्पर विवादकर तिसके निर्णयार्थ अपने पिता प्रजापति के निकट जाय प्रश्न किया। तब तिसको श्रवण कर सो प्रजापति उन इन्द्रियों प्रति कहता हुआ।:—अर्थात् वागादि इन्द्रियों ने अपनी२ श्रेष्ठताके अर्थ परस्पर में विवाद कर अपने सर्व के मध्य कौन श्रेष्ठ है ऐसा विचार तिसके विज्ञानार्थ अपने पिता प्रजापति के समीप जाय प्रश्न किया तब उस प्रजापति ने विचार किया कि जो इनमें श्रेष्ठ है तिसको न जानके ये सर्व अपने विषे श्रेष्ठताका मिथ्या अभिमान कर अपने सर्व के मध्य कौन श्रेष्ठ है तिसके निर्णयार्थ यहां आयेहैं, अतएव अब इनको ऐसा कहिये जो यह अपने मध्य श्रेष्ठको आपही सम्यक् प्रकार जानलेवें। ऐसा विचार वो प्रजापति कहता हुआ—:। हे वागादिको तुम्हारे सर्व के मध्य जिसके निकसजाने से यह शरीर 'जो जीवते भी अतिशय करके पापिष्ठ (अपवित्र) ऐसाहै, सो विशेष करके पापिष्ठतर।:—अर्थात् यह शरीर अस्थिमांसादि अति अपवित्र वस्तुओं से निर्मित औ मल मूत्रादि अपवित्र पदार्थों का आयतन होनेसे जीवतेही यह पापिष्ठ ऐसा (पापोंका कार्य) है, औ तिसके अनन्तर जिसके निकसजाने से यह शरीर अतिशयकरके पापिष्ठतर (महा अपवित्र)—:। दृष्ट आवे, अर्थात् गत प्राण स्पर्श करने की योग्यता से रहित ...

साह वागुच्चक्राम सासंवत्सरं प्रोष्यपर्य्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्ता प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषाशृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमितिप्रविवेशह वाक् ८ ॥

सोई तुम्हारे सर्व के मध्य श्रेष्ठ है। अर्थात् जिसके न रहने से यह शरीर अतिशय करके अपवित्र होय तिसही को तुम अपने सर्व के मध्य श्रेष्ठ जानो ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

सोप्रसिद्ध वाग् निकसती हुई सो एक वर्ष पर्य्यन्तअपनेव्यापार से निवृत्त होय पुनः आय कहती हुई मेरे बिना तुम जीवने को कैसे समर्थ हुए जैसे मूक (गूँगा) पुरुष न बोलता हुआ प्राणकरके जीवता है, चक्षुकरके देखता है श्रोत्रकरके श्रवण करताहै मनकरके ही ध्यान करता है। इसप्रकार जब (अन्यों ने कहा) तब वो प्रसिद्ध वाक् अपने स्थान में प्रवेश करती हुई ८ ॥

भावार्थ मंत्र आठवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार जब प्रजापतिने वागादि इन्द्रियों से कहा [शंका। ननु सर्वज्ञ प्रजापति ने वागादि इन्द्रियों को यह क्यों न कहा कि तुम्ह सर्व में एक मुख्य प्राणही श्रेष्ठहै] समाधान। जो प्रजापति उनको प्रथमही कहता कि तुम्हारे सर्व के मध्य एक मुख्य प्राणही श्रेष्ठहै, तो वो वागादि सर्व दुःखित होते। :—क्योंकि जब अपनी श्रेष्ठता वा नेष्टता अपने यथार्थ अनुभव से सम्यक् प्रकार जानी जातीहै तब दुःख नहींहोता—:। अतएव उनको दुःख न होने के कारण सर्वज्ञ प्रजापति ने उनके प्रति प्राणको श्रेष्ठ न कहके ऐसाकहा कि वो अपना निर्णय आप ही करलेवें। हे सौम्य उक्त प्रकार जब प्रजापति ने कहा तब वागेन्द्रिय अपने स्थानसे निकल एक संवत्सर पर्यंत अपने व्यापार

चक्षुर्होच्चक्रामतत्संवत्सरं प्रोष्यपर्य्येत्योवाचकथमशकतर्त्तेमज्जीवितुमिति । यथाऽन्धाअपश्यन्तःप्राणन्तः प्राणेन वदन्तोवाचाश्रृण्वन्तःश्रोत्रेणध्यायन्तोमनसैवमिति प्रविवेशहचक्षुः ६ ॥

शरीर के निकट आय अन्य शरीरादिकों से पूश्न करती हुई, हे शरीरादिको तुम सर्व मुझबिना अपने जीवन के धारण करनेविषे किसपूकार समर्थ हुये । इस पूकार अपनी श्रेष्ठता के अभिमान वश वागेन्द्रियने पूश्न किया तब वो सर्व कहते हुये कि जैसे मूक (गूँगा) पुरुष लोकविषे वाणी बिनाका हुआ पूाणकरके जीवता है, चक्षुकरके देखता है, श्रोत्रकरके श्रवण करता है, मनकरके ध्यान करता है । अर्थात् एक मुख्य प्राणके आश्रय सर्व करण (इंद्रियादिक) अपने २ व्यापारों को करते हैं । इसपूकार एक तुझ विना मूक पुरुषवत् जीवते हैं । इसपूकार जब शरीरादिकों ने वाक् से कहा तब वो वाक् अपनी अश्रेष्ठता समुझ श्रेष्ठता का अभिमान त्याग स्वस्थान में स्थितहोय अपने व्यापार में प्रवृत्त होताहुआ ८ ॥

अक्षरार्थ ॥

चक्षु निकलता हुआ एक वर्ष पर्यन्त बाहरह अपने व्यापार से रहितहो पुनः निकटजाय कहता हुआ तुम मुझ बिना अपने जीवनके धारने विषे कैसे समर्थ हुए । जैसे अन्धा विनाही देखे प्राणकरके जीवता है वाणीसे बोलता है श्रोत्रसे सुनता है मन करके ध्यान करता है । इसप्रकार सुनके चक्षु अपने स्थान में स्थित हुआ ६ ॥

भावार्थमन्त्रनववेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब वागेन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठताको यथार्थ अनुभवकर लज्जितहो अपने स्थानविषे स्थितहोय अपने व्यापार में प्रवृत्त हुई । तदनन्तर चक्षु इन्द्रिय अपने विषे श्रेष्ठ

श्रोत्रᳩं होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेशह श्रोत्रम् १० ॥

ता का अभिमान धार शरीर से निकल एक संवत्सर पर्य्यन्त बाह्यरह अपने व्यापारसे उपराम हो पुनः शरीरादिकोंके समीप आय प्रश्न करती हुई कि तुम सर्व मुझ बिना अपने जीवन के धारण करने विषे कैसे समर्थ हुए । इसप्रकार जब चक्षुने प्रश्न किया तब शरीरादिक कहतेहुए कि, जैसे लोकविषे अन्धा बिनाही देखे प्राण करके जीवता है, बाणीकरके बोलता है, श्रोत्र करके श्रवणकरताहै, मनकरके ध्यान करताहै। इसप्रकार अन्ध पुरुषवत् तुझ बिना हम सर्व अपने २ व्यापारों को करत सन्ते प्राण करके जीवते हैं। इसप्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब अपनी अश्रेष्ठता को अनुभवकर श्रेष्ठताके अभिमान के अभाव पूर्वक अपनेस्थान में प्रवेशकर स्वव्यापार में प्रवृत्तहोतीहुई ९ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्रोत्रेन्द्रिय निकलतीहुई सो एक वर्ष पर्य्यन्त बाह्यरह पुनः आयके कहतीहुई की तुम सर्व मुझबिना अपने जीवन के धारण करने में कैसे समर्थहुए। जैसे बधिर बिना ही श्रवणकिये प्राण करके जीवता है वाणी करके बोलताहै चक्षुकरके देखताहै मन करके ध्यान करताहै। इस प्रकार श्रवण करके श्रोत्र स्वस्थान में स्थित हुआ १० ॥

भावार्थ मन्त्र दशवेंका ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार जब चक्षु इन्द्रिय भी अपनी अश्रेष्ठता को अनुभवकर लज्जितहो अपने स्थान में स्थितहुई तिसके अनन्तर श्रोत्र इन्द्रिय शरीरसे निकल बाह्यजाय अपने व्यापारसे उपरामहो एक संवत्सरके उपरान्त पुनः आय शरीरादिकों से

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तोवाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेशह मनः ११॥

प्रश्न करती हुई कि मुझ बिना तुम सर्व अपने जीवनके धारण करने के विषयमें कैसे समर्थहुये। इस प्रकार जब श्रोत्रेन्द्रियने अभिमान पूर्वक प्रश्न किया तब शरीरादिक कहतेहुए कि जैसे बधिर (बहिरा) पुरुष बिनाही श्रवणकिये प्राणकरके जीवताहै, वाणी करके बोलता है, चक्षुकरके देखता है, मनकरके ध्यान करताहै। ताते श्रवणेन्द्रिय बिनाके बधिरपुरुष के जीवन व्यापारवत् हमारे सर्व का जीवन व्यापार होताहै, अतएव अब तुझको जहां की इच्छा होय तहां जा। इस प्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब तिसको श्रवणकर अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमानको त्याग अति लज्जित होय श्रोत्रेन्द्रिय अपने स्थान में पुनः स्थित होय अपने व्यापार में प्रवृत्त होतीहुई १०॥

अक्षरार्थ

मन निकलता हुआ सो एक संवत्सर पर्य्यन्त बाह्यरह पुनः आय कहता हुआ कि मुझबिना तुमसर्व अपने जीवनके धारण करने विषे कैसे समर्थहुए। जैसे बालक मन बिनाका प्राणकरके जीवताहै वाचाकरके बोलता है चक्षुकरके देखताहै श्रोत्रकरके ही श्रवण करताहै। ऐसा श्रवणकर स्पष्टमन पुनः स्वस्थान में प्रवेश करता हुआ ११॥

भावार्थमन्त्र ग्यारहवें का॥

हे सौम्य उक्त प्रकार वागादि सर्व इन्द्रियां अपने २ विषे श्रेष्ठत्वपनेका अभिमान धार शरीरका जीवन अपने आश्रय जान तिसकी परिक्षाके अर्थ एक एक बाह्य निकल एकएक बर्ष पर्य्यन्त अपने अपने व्यापार से उपरामहोय पुनः आय अपने बिना

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिष्यन्त्स यथासुहयः पड्वीश शंकून् सङ्खिदेदेवमितरान् प्राणान् समखिदत्त छंहाभि समेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वन्नः श्रेष्ठः ऽसिमोत्क्रमीरिति १२॥

सर्वका जीवना देख लज्जित होय अपने २ स्थान में स्थितहोय अपने अपने व्यापार में प्रवृत्त हुई। तदनन्तर सर्व इन्द्रियों के नायक मनने बिचार किया कि हमको इन सर्वका नायक होनेसे इन सर्वका जीवन व्यापार हमारे आधीनहै ऐसा अभिमानकर मन निकसताहुआ सो एक संवत्सर पर्यन्त वाह्यरह अपने व्यापारसे उपरामहो पुनः शरीरादिकों के निकट आय प्रश्न करता हुआ कि मुझबिना तुम सर्व अपने जीवनके धारणविषे कैसे समर्थहुए। तब शरीरादिकों ने कहा कि जैसे वालक मनबिना प्राण करके जीवताहै वाणीकरके बोलताहै चक्षुकरके देखता है श्रोत्रकरकेही श्रवण करता है। एतदर्थ मनबिनाके बालक के जीवन व्यापारवत् तुझबिना हमारा जीवन व्यापार होताहै। इसप्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब तिसको श्रवणकर अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्याग लज्जा पूर्वक अपने स्थान में स्थित होय अपने व्यापार में प्रवृत्त होता हुआ ११॥

अक्षरार्थ॥

अब प्रसिद्ध मुख्य प्राण निकसने की इच्छा करता हुआ सो जैसे श्रेष्ठ अश्व अपने पाद बन्धन कीलोंको उखाड़ताहै तैसे इतर प्राणों (इन्द्रियों) को उखाड़ताहुआ तब सो प्राण समीप आय कहते हुये हे भगवन् आप हम सर्व के मध्य ज्येष्ठ श्रेष्ठ हो आप उत्क्रमण मतकरो १२॥

भावार्थ मंत्र बारहवें का॥

हे सौम्य।:—उक्त प्रकार वागेन्द्रियादि लेके मन पर्यन्त सर्व अपने २ विषे श्रेष्ठत्वपने का अभिमान धार शरीर का जीवन अपने आधीनजान जिसके निश्चयार्थ शरीर से एक एक नि:

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठाऽस्मित्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्य
थ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठाऽस्मित्वं तत्प्रतिष्ठा १३ ॥

कल एक एक वर्ष पर्यंत अपने २ व्यापार से उपरामहो बाह्यरह पुनः शरीर के निकट आय अपने बिना अन्यों का जीवन देख आप अपने २ मिथ्या अभिमान से लज्जितहो स्वस्वस्थान में स्थितहोय अपने २ व्यापार में प्रवृत्त हुये तब मुख्य प्राणने कहा कि अब हम यहां से जाते हैं—: ॥ तदनन्तर मुख्य प्राण शरीर से निकसने की इच्छा करता हुआ । प्रश्न । सो इच्छा करके क्या करता हुआ । उ० । जैसे अति श्रेष्ठ अश्वकी परीक्षाके अर्थ परीक्षक उसपर आरूढ होय कोड़े से ताड़ना करता है तब सो अश्व भागने की इच्छा से अपने पैर बन्धन के कीलाओं (मेखों) को उखाड़ता है । तैसेही प्राण ने । :—इन्द्रियों से अपने विषे अनादर रूप ताड़ना पाय अपने निकलने की इच्छाकर । —: अपने अंश अपानादि वा वागादि इन्द्रिय विशिष्ट रूप इतरप्राणोंको उनके उनके स्थान से उखाड़ा । तब वो इन्द्रिय रूप इतरप्राण चलायमान हुये सन्ते अपने स्थान में स्थितहोने को न सहसके (न समर्थ हुये) तब सर्व दुःखितहोय प्राणके समीप आय नम्रता पूर्वक कहते हुये । हे भगवन् (हे पूजा नमस्कार करने योग्य) जैसे वैश्य राजा से धन उपार्जन करके पुनः वो धन राजा के अर्थ वलि (कर) दान में देते हैं, तैसे हम सर्व आपको आप काही धन अर्पण करते हैं क्योंकि आप हम सर्व के स्वामी हौ । अतएव आप अपना करले इसदेहसे मत निकलो, क्योंकि आपके निकलने से हम सर्वही नाशको प्राप्तहोते हैं १२ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ प्रसिद्ध प्राणको वाग् कहती हुई जो मैं वसिष्ठहौं सो तुम वसिष्ठहौ । तदनन्तर उस प्राणको चक्षु कहताहुआ जो मैं प्रतिष्ठाहौं सो तुम प्रतिष्ठाहौ १३ ॥

अथ हैनछं श्रोत्रमुवाच यदह छंसम्पदस्मित्वं तत्सम् पदसीत्यथ हैनंमनउवाच यदहमायतनमस्मित्वं तदायतनमसीति १४॥ नवै वाचो न चक्षु छंषि न श्रोत्राणिन मना छंसीत्याचक्षते। प्राण इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानिसर्व्वाणि भवन्ति ॥ १५ ॥ इति प्रथमखंडः ॥ १ ॥

भावार्थ मन्त्र तेरहवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार कहके पुनः वागेन्द्रिय कहती हुई कि जो हम वसिष्ठहैं सो तुम वसिष्ठहो। अर्थात् यहां जोयत् (जो) शब्द है सो क्रियाविशेषणहै अतएव जो वसिष्ठत्व गुण मैं हों सो वसिष्ठत्व गुणकरे आप वसिष्ठहो। अथवा यहां जो तत् (सो) शब्द है सो भी क्रिया विशेषण है एतदर्थ आपका किया जो वसिष्ठत्व गुण सो आपकाही है, परंतु अज्ञान करके उस आपके गुण को मैंने अपना मानके अभिमानकिया है तथापि जो मुझमें वसिष्ठत्व गुणहै सो आपकाही है। इस प्रकार वागेन्द्रिय के कहे उपरांत मुख्य प्राणसे चक्षु कहता हुआ कि हे भगवन् जो प्रतिष्ठा मैं हौं सो प्रतिष्ठा आपहो अर्थात् जो प्रतिष्ठत्व गुण मुझविषे है सो आपही काहै परंतु तिसको न जानके आपके उस गुणविषे मैंने अपना अभिमान किया तथापि मुझमें जो प्रतिष्ठत्व गुणहै सो आपही का है ॥ १३ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ मुख्य प्राणको श्रोत्र कहताहुआ जो मैं सम्पत् हौं सो आप सम्पत्हो। तदनन्तर मुख्य प्राणको मन कहताहुआ जो मैं आयतनहौं सो आप आयतनहो १४॥ निश्चय करके न वाक्है न चक्षुहै न श्रोत्र है न मनहै, ऐसा कहते हैं प्राणही है जो यह सर्वहुआ है ऐसा कहते हैं ॥ १५ ॥ इति प्रथमखंडः ॥ १ ॥

भावार्थ मंत्र चौदहवें का ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब मुख्य प्राण से वाक् अरु चक्षु ये

दोनों कहचुके तदनन्तर श्रोत्र अरु मन ये दोनों उस मुख्य प्राण से कहते हुये । तहां प्रथम श्रोत्र कहता हुआ कि हे भगवन् (हे नमस्कार करने के योग्य मैं जो सम्पदा हौं सो आपसम्पदा हौ। अर्थात् मुझमें जो सम्पदत्व रूप गुणहै सो आपहीका गुणहै, परंतु तिसके अज्ञान से मैंने आपके सम्पदत्वरूप गुणको अपनामान के अभिमान किया तथापि सो गुण आपका किन्तु आपहीहौ ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब श्रोत्र कहरहा तिसके उपरान्त उस मुख्य प्राण से मन कहता हुआ कि हे भगवन् हे पूजाकरने के योग्य मैं जो आयतन हौं सो आपही आयतनहौ । अर्थात् मुझ में जो आयतनपनारूप गुण है सो आपका ही है, परंतु तैसे जाने बिना आपके उस आयतनपने रूप गुण में मैंने अपना अभिमान किया कि यह आयतनत्वरूप गुण मेरा है परंतु सो मेरा नहीं किंतु सो गुण आपका है वा आपही हौ ॥ १४ ॥ हे सौम्य श्रुति का यह कथन युक्तही है जो वागादि इन्द्रियों करके एक मुख्य प्राणही सर्व से श्रेष्ठ है । जिसकरके ही लोक विषे नवाचाहै, न चक्षुहै, न श्रोत्र है, न मनहै । इस प्रकार वागादि करणों को साधारण लौकिक पुरुष वा शास्त्र के जानने वाले पुरुष कहते हैं । प्रश्न । तब क्या है । उत्तर । प्राणही कहते हैं [अर्थात् वागादि इन्द्रियों को प्राणकी परतन्त्रता है] जिस करके प्राणही इन सर्व वागादि करणजात (करण रूप)हुआ है। वागादि इन्द्रियों से प्रति अनुरूप एक मुख्य प्राणही हुआ है वा कहा है ॥ शंका ॥ ननु जैसे चेतनावान् पुरुष परस्पर विवाद करतेहुये स्पर्द्धा करते हैं, तैसेही अचेतनवान् वागादि इन्द्रियोंका अपनी अपनी श्रेष्ठता के प्रख्यायनार्थ परस्पर में विवाद पूर्वक स्पर्द्धा करना ऐसा जो कथन सो उन अचेतनों के अर्थ युक्त नहीं, क्योंकि अचेतनों विषे स्पर्द्धादिकोंका अदर्शन है । अरु वाणी से अतिरिक्त चक्षुरादि इन्द्रियोंका जो परस्पर में सम्बादका कथन सो भी अनुचितही है, क्योंकि कथनको वाणीका व्यापारपना है सो चक्षु-

रादिकोंको नहीं। अरु तैसेही वागादि इन्द्रियों को अचेतन होने से उनका शरीरसे निकलना प्रजापति के पास जाना पुनः शरीर में प्रवेश करना।:— औ पुनः शरीर से निकलना एक संवत्सर पर्यन्त बाह्य रहना स्वव्यापार से उपरामहोना पुनः समीप आवना अपने बिना सर्वको जीवता देख लज्जितहो स्वस्थान में स्थितहोने पूर्वक स्वव्यापार में प्रवृत्तहोना—:। इत्यादि कुछ भी सम्भवे नहीं॥ समाधान॥ अग्नि आदिक चेतनावान् देवताओं को उन वागादि इन्द्रियोंका अधिष्ठाता होनेसे उन वागादि इन्द्रियोंको चेतनवान्पनां आगम (वेद) करके अनादि सिद्धहै। अर्थात् [अग्नि आदिक जे चेतनावान् देवता हैं तिन्होंकरके अधिष्ठितहोने से इन्द्रिय अरु तिनके अधिष्ठाता देवताओं का तादात्म्यरूप अभिप्राय से वागादि इन्द्रियों को चेतनावान्पने का सम्भव है, अतएव उन बिषे वचनादि सर्व व्यापार सम्भवे है। तथाच। " अग्निवाग् भूत्वा मुखं प्राविषदिति॥ शंका॥ ननु एक देहको अनेक चेतन करके युक्त होना युक्त नहीं, क्योंकि ईश्वर के निमित्त कारणपने का अग्रहण होने से॥ समाधान॥ [वादी के मतकरके जैसे एक देहको चेतन जीवकरके अधिष्ठितपना है तैसे चेतन ईश्वरकरके भी अधिष्ठितपना मानते हैं, तब एक शरीरको अनेक चेतन करके अधिष्ठितपना संभवेनहीं ऐसी जो ईश्वर वादियों की शंका सो युक्त नहीं]।:- हे सौम्य यह जो विद्वानों ने अन्वय व्यतिरेक करके वागादि इन्द्रियों का औ प्राणका परस्पर में संवाद रूप उक्त आख्यायिका कही है सो सर्व्वमें एक प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके निर्द्धारणार्थ अध्यारोपमात्र है। जैसे लोकविषे बहुतसे पुरुष अपनी २ श्रेष्ठताके प्रकट करनेके अर्थ परस्पर में विवाद करत सन्ते किसी एक गुणविशेष के जानने वाले गुणज्ञ पुरुषके निकट जाय प्रश्न करते हुये कि हे भाई हम सर्व में गुणों करके अधिक कौन है। तब उसने उत्तर दिया कि जिस एक एक गुण (कार्य्य करने)

का तुम अपने २ विषे अभिमान मानतेहौ उन सर्व कार्य्य के क-रनेमें जो एक समर्थ होय तिसही को तुम अपने मध्यगुणों करके अधिक मानो। तैसेही इनवागादिकों का विवाद औ निर्णयरूप आख्यायिका श्रुतिने कल्पना कियाहै। क्योंकि श्रुतिका तात्पर्य आख्यायिकाके कथन विषे न होके प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताकेनि-र्द्धार विषयकहै। क्योंकि उक्त अध्यारोपका अपवाद एक प्राणकी महिमा विषे है। अरु [अध्यात्म अधिदैव अधिभूतादि रूप सर्व देवतादिकोंका एक मुख्य प्राणरूप देवताविषे समासहै। तथाच। "कतम एको देव इति, प्राण इति"। यह बृहदारण्यक उपनिषद्के तृतीयाध्यायके शाकल्य ब्राह्मणविषे शाकल्यनाम ऋषिसे याज्ञ वल्क्य ऋषिका वाक्यहै। अर्थात् उक्त ऋषियों के संवाद द्वारा अध्यात्म आदि सर्व देवताओंका एक मुख्य प्राणरूप देवता विषे समास निर्णय हुआहै]।:—अतएव अध्यात्म आदि सर्व देवता-दिकोंका जीवन एक मुख्य प्राणको होने से एक प्राणही सर्व में श्रेष्ठहै। अथवा प्राणको अपरब्रह्मत्व औ प्रत्यक्ष ब्रह्मत्व होने से भी प्राणही श्रेष्ठहै—:। औ वागादि एक एक इन्द्रियों के अभावहुए भी शरीरका जीवन देखते हैं न तु प्राणके। अर्थात् मुख्य प्राणके अभावहुए किसी का भी जीवन देखते नहीं। अतएव एक मुख्य प्राणही सर्व में श्रेष्ठताको प्राप्त होता है, इस विषय में कौशीतकी उपनिषद्की श्रुति भी प्रमाण है। तथाच। "जीवति वागपेतो मूकान् हि पश्यामो जीवति चक्षुरपतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्हिपश्यामो जीवति मनोपेतो बालान्हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्नः"। इत्यादि १५॥ इतिप्रथमखंड १॥

———

अथ द्वितीयखंड प्रारभ्यते २॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमा श्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किञ्चनानन्नं भवतीति १॥

अक्षरार्थ

सो प्राण स्पष्ट कहता हुआ क्या मेरा अन्न होगा वागादिको-वाच, जो कुछ यह सहित अश्व के औ सहित शकुनी के भक्षण किया जाताहै सो तुम्हाराही अन्न है। यह अन (प्राण) काही अन्न है, तातें स्पष्टही प्राणका प्रत्यक्ष नाम अन है, जो स्पष्टही उक्त प्रकारके प्राणको जानताहै तिसका सर्व अन्न नहीं ऐसानहीं १॥

अथ द्वितीयखंडः। भावार्थमन्त्रपहिले का॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्राणके उत्क्रमण (निकलने) से वागादि इन्द्रियोंने इस शरीरमें अपनी स्थिति किसी प्रकार भी न देखा तब व्याकुल होय प्राणके स्थित रहनेमें उसकी प्रार्थना किया अरु अपने अपने विषे जो जो गुण विशेषहैं सो तुम्हारेही हैं ऐसा कहके अपने २ विषे जे प्राणके वशिष्ठत्वादि गुण सो 'जैसे राजाको वैश्य तैसे प्राणरूप अपने राजाको बलि अर्पण किया, तब शरीरमें स्वस्थ होय प्राण उन वागादिकों के प्रति प्रश्न करता हु-आ-:। अर्थात् मुख्य प्राणको प्रश्नकरने वालेवत् अरु वागादिकों को उत्तर दातावत् कल्पनाकर श्रुति कहती हुई॥ सोप्राण जो सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठहै वागादि इन्द्रियोंसे प्रश्नकरताहुआ कि मेराअन्न क्या होगा। इसप्रकार जब मुख्य प्राणने प्रश्नकिया तब वागादि इन्द्रियां कहती हुईं कि हे भगवन् जो इसलोक विषे यावत् अन्न (भक्षण करने योग्य पदार्थ) प्रसिद्धहैं, अरु जो सहित अश्वकर-के अरु सहित शकुनी (पक्षी) करके भक्षण कियाजाता है:-

अर्थात् अश्व उपलक्षण करके समस्त जे रजजातिके जीव अरु शकुनी उपलक्षण करके अंडज जातिके समस्त जीव जो अन्न तृणादिकों के भक्षक हैं तिन्हों करके—ः। वा सामान्यरीत्या सर्व प्राणियों का जो अन्नहै, अर्थात् सर्व प्राणधारी जीव मात्रका जो अन्नहै सो तुम्हाराही अन्नहै। प्राणकाही सर्व अन्नहै, क्यों कि "प्राणोऽत्ता सर्व स्यान्नस्येति"। ऐसा प्रतिपाद्यहै। इसप्रकार इन्द्रिय अरु प्राणकेपरस्पर सम्वादरूप कल्पित आख्यायिकारूप श्रुतिको समाप्त वा पृथक् करके अब स्वयंश्रुति कहती है। सोई यह लोक विषे किंचिन्मात्रभी जो प्राणियों करके अन्न भोजन कियाजाता है सो सर्व 'अन' नामवाले प्राणकाही अन्न होता है। अर्थ यह जो प्राणकरके ही सो अन्न भक्षणकिया होताहै। अरु सर्व प्रकार चेष्टा व्याप्ति गुण प्रदर्शनार्थ 'अन' यह प्राणका प्रत्यक्षनामहै। अथवा तैसे सर्व अन्नोंका अत्ता (भोक्ता) इस नामके ग्रहणार्थ प्राणका यह प्रत्यक्षनाम 'अन' है॥ अरु सर्व अन्नका भोक्तापना प्राणका सर्वको प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव स्पष्टही जो उक्त प्रकार के भोक्तारूप प्राणका जाननेवाला (अहमग्र उपासनाकरनेवाला) अर्थात् जो सर्व भूतोंविषे स्थितहोयके सर्व अन्नका भोक्ता जो प्राणहै सो प्राणमैं हों मुझसे इतर भोक्ता प्राण कोई नहीं। इसप्रकार का जो अहमग्र उपासना करनेवाला जो कोई विद्वान् पुरुष है तिसकरके जो 'किंचिन्मात्र भी सर्व प्राणियों करके भोजन किया होता है सो सर्व उस विद्वान करके भोजन किया न होता होवे ऐसा नहीं। अर्थात् सर्व प्राणिमात्रों करके जो कुछ भोजन किया होताहै सो सर्व उस प्राणके उपासक विद्वान् करकेही किया होता है। क्योंकि वो विद्वान् अहमग्र उपासना द्वारा प्राणभूत (प्राणसाथ अभेद) हुआहै ताते। तथाच। "प्राणाद्वाएष उदेति प्राणोऽस्तमेति"। "त्युपक्रम्यएवंविदो हवा उदेति सूर्य्य एवंविद्यस्तमेतीति। श्रुत्यन्तरात् १॥

सहोवाचाकिं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्त स्माद्वाएतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्चाद्भिः परिदधाति लम्भुको हवासो भवत्यनग्नो ह भवति २ ॥

अक्षरार्थ

सो प्राण कहताहुआ कि मेरा वस्त्र क्या होगा वागादिक कहते हुये जल आपका वस्त्र है, तस्मात् यह जो विद्वान् भोजनकरताहै तिसके पूर्व औ पश्चात् जल करके परिधान करता है सो लाभ हुआ होताहै तब स्पष्ट अनग्न होताहै ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका

हे सौम्य पूर्ववत् पुनः श्रुति आख्यायिकाकी कल्पना करके कहे है।:—उक्त प्रकार जब वागादि इन्द्रियों ने मुख्य प्राण के अर्थ सर्व्व प्राणियों करके भक्षणकिया जो अन्न सो आपकाही होताहै, ऐसा प्राण के प्रश्न के उत्तर में कहा तब पुनः। सो प्राण प्रश्न करताहुआ कि मेरा वस्त्र क्या होगा, तब वागादि इन्द्रियों ने पुनः उत्तरदिया कि जल आपका वस्त्र होगा। अर्थात् प्राणका वस्त्र जल होने करके यह जो यथोक्त प्राण विद्याका जाननेवाला विद्वान् ब्राह्मण जो सर्व जीवोंका एक प्राणरूपहुआ सर्वत्र सब अन्नका भोक्ता है सो भोजनकरने के पूर्व औ पश्चात् जलपान वा जलका आचमन रूप परिधान करता है तब औ जल मुख्य प्राण को लाभहुआ वस्त्र होताहै, अर्थ यह जो वो जल प्राणको वस्त्र प्राप्तहुयेवत्ही होताहै। तब वो प्राण अनग्न होता है ॥:—अर्थात् वस्त्र से रहितका नाम नग्न होताहै अरु वस्त्र वालेका नाम अनग्न है (नग्नतासे रहित का नाम अनग्न है) सो प्राण विद्याको यथार्थ ज्ञानके तिसकी अहमग्रे उपासना करनेवाले विद्वान्का जो भोजनके पूर्व औ उत्तर जल पान वा आचमन है सो मुख्य प्राणका वस्त्र स्थानापन्न होनेसे वो प्राण अनग्न होताहै—:। अर्थात् वस्त्रवान् होताहै। अरु भोजन करने

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायो क्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवा स्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ३ ॥

वाले विद्वान् ब्राह्मण के अर्थ भोजन से पूर्वोत्तर जो आचमन विधि है सो शुद्धि के अर्थ जानी गई है तिस विधि विषे जो प्राण का वस्त्र होताहै सो केवल दर्शन (देखावने) मात्र है । अर्थात् जैसे कहा है कि लौकिक प्राणीमात्रकरके भोजनकिया जो अन्नहै सो सर्व प्राणकाही है, ऐसा देखावने के अर्थ कहा है । तैसेही सर्व प्राणियोंकरके पानकिया जल सामान्यरीत्या प्राणका वस्त्र होता है, क्योंकि जैसे प्राणने कहा कि मेरा अन्नक्याहोगा, तैसेही पुनः कहा कि मेरा वस्त्र क्याहोगा, इसके उत्तरमें इन्द्रियोंने कहा कि सर्व प्राणियोंकरके भक्षण किया जो अन्न सो तुम्हाराही होगा, तैसे भोजन के पूर्वोत्तरमें जो जलपान है सो तुम्हारावस्त्र होगा ऐसा देखायाहै, क्योंकि दोनों प्रश्नोत्तरोंकी समानताहै । :—अरु विशेषकरके प्राणविद्याजाननेवाले विद्वान् के अर्थ भोजनके पूर्वोत्तरमें आचमनकरनेकी विधिभीहै । अरु सो विद्वान् करके किये जे भोजनके पूर्वोत्तरमें आचमन सो प्राणके बिछावने ओढ़ने के वस्त्र स्थानापन्न होते हैं ॥ २ ॥

अक्षरार्थ

सो स्पष्ट यह (प्राणविद्या) सत्यकामो जाबाल नामवाला ऋषि गोश्रुत वैयाघ्रपद्य ऋषि के अर्थ कहताहुआ, यद्यपि जिस करके शुष्क स्थाणुप्रति कहे तो उसविषे नवीन शाखा पत्र पुष्पादिक प्रकट हो आवते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थमन्त्रतीसरेका

हे सौम्य अब श्रुति जो है सो प्राणविद्याकी स्तुति करतीहै। प्रश्न-कैसीवो स्तुतिहै । उत्तर। सोई प्राणविद्या जो पूर्वस्पष्टकहीहै तिसकी महिमा सत्यकामजाबाल नामवालाऋषिगोश्रुत वैयाघ्रपद्य

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याᳫंरात्रौ सर्व्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वामन्थे सम्पातमवनयेत् ४ ॥

नामवाले ऋषिके प्रतिकहताहुआ । अर्थात् व्याघ्रपदनामवाले के पुत्र को वैयाघ्रपद्यनामसे कहते हैं, ताते व्याघ्रपद नामवालेकेपुत्र वैयाघ्रपद्यगोश्रुत नामवाले ऋषिके प्रति सत्यकाम जाबालनाम वाला ऋषीश्वर जो प्राणविद्याका सम्यक् प्रकार ज्ञाताहै सो कहता हुआ कि हे गोश्रुत जो कदापि प्राणविद्याके जाननेवाला प्राण का उपासक यह प्राणविद्या शुष्क (सूखे) काष्ठकेठूठ प्रतिकहै तो उस सूखे ठूठ विषे नवीन शाखा औ पत्र पुष्पादिक प्रकट (उत्पन्न) होते हैं । तो यदि यह प्राणविद्या साधनसम्पन्न शुद्ध जिज्ञासुप्रति सम्यक् प्राणोपासक करके उपदेश कियाजाय अरु उस जिज्ञासुके अज्ञात अन्तःकरण रूप शुष्क स्थाणुविषे श्रद्धारूपा शाखा अरु प्राणविद्याके मन्त्रोंकी धारणारूप पत्र अरु प्राण की अहमग्र उपासनारूप पुष्प अरु सूत्र आत्माके पदकी प्राप्ति रूपफल,प्राप्तहोवे तो क्या आश्चर्यहै किन्तु कुछ भी नहीं ॥ ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर यदि महत्त्वकी इच्छाहोय तो अमावास्याको दीक्षावान् होय पूर्णमासीकी रात्रिको सर्व ओषधियोंका मन्थनकर दधिमधुमिलाय, ज्येष्ठाय श्रेष्ठायस्वाहा, इस मन्त्रसे अग्नि विषे घृतकी आहुतिकरे (जो श्रुवामें लगारहे तिसको) मन्थमें डाले४॥

भावार्थ मन्त्र ४ से खण्ड समाप्ति पर्यन्त

हे सौम्य उक्त प्राणविद्याके जानने वाला जो उपासकहै तिसके अर्थ इस मन्थ नामवाले कर्म्मके कहनेका आरंभकरते हैं। तिसके अनन्तर ।:—अर्थात् वागादि सर्वमें प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके जाननेके अनन्तर—:। जो कदापि उस विद्वानको सर्व में

महत्त्वपनेके प्राप्तहोनेकी इच्छाहोय तो तिसके अर्थ यह कर्मविधि कहते हैं । अर्थात् बहुतसे धनादि प्राप्तिवालेको यह कर्मानुष्ठान है क्योंकि धनकरके यज्ञादिक होते हैं अरु तिसकरके पुनः देवयान को औ पितृयानको वा अन्यमार्गोंको प्राप्तहोता है, अतएव उक्त मार्गोंकी प्राप्ति रूप प्रयोजनको एकत्र करनेकी इच्छावालेके अर्थ यह कर्म्म है, विषय भोगोंकी कामनावालेके अर्थ नहीं । :—अर्थात् यह जो प्राण विद्याकी ज्ञातवाले प्राणोपासक के अर्थ महत्त्व प्राप्तिकी इच्छा से मन्थाख्य कर्महै सो मुख्यकरके प्राणोपासना द्वारा सूत्रात्मा के पदकी प्राप्तिरूप महत्त्व, अरु देवयानमार्ग से प्राप्त जो ब्रह्मलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व, अरु पितृयान मार्ग से प्राप्त जो पितृलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व, वा अन्याविद्याके मार्ग से अन्य देवभावकी प्राप्तिरूप महत्त्व, तिन महत्त्वों के अर्थ जानना । अरु इस लोकके महत्त्व का प्राप्ति इस कर्मका मुख्य अरु आवान्तर फलहै ऐसा जानना । तात्पर्य यह है जो इस मन्थाख्यकर्म का फल विशेष धनकी प्राप्तिहै सो इस कर्म से जो धनप्राप्तहोवे तो तिस धनसे वो विद्वान् अपनेविषे उत्तरायण आदि मार्ग से प्राप्त जो ब्रह्मलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व तिसको सम्पादन करे । इस कर्मसे प्राप्तहुआ जो धन तिसको विषय भोगमें व्यय न करे क्योंकि विषय भोगमें व्ययकिया धन अनर्थ का हेतुहोता है । ताते हय जो अग्रिम कहने का मन्थाख्य कर्म्म है सो विषय भोगकी कामनावालों के अर्थ नहीं—: । हे सौम्य अब इस अग्रिम कहने के मन्थाख्य कर्म के करने के कालादि विधिको कहतेहैं ।:— हे प्रियदर्शन सूल श्रुतिने औ भाष्यकार स्वामी ने अयन विधि कही नहीं कि अमुक अयनके सूर्य्य में यह कर्म करना, परंतु मैं अपनी अल्प बुद्धिके विचारानुसार अनुमान करके कहता हौं कि इस कर्म के करने में प्रथम उत्तरायण का सूर्य्य होय तो अति उत्तम है—: । अमावास्या के दिवस दीक्षावान् होय, अर्थात् यज्ञादिकों की दीक्षाको प्राप्तहुये यजमानवत् भूमि शयनादि नियमों

को करे जो तपरूप है, तहां सत्यभाषण करना ब्रह्मचर्य्य विधि से रहना अर्थात् स्त्री संगका त्यागकरना क्षौर अभ्यंगादि न करावना किसी से स्पर्श न करना त्रिकाल स्नानादिक करके पवित्र रहना, भूमिपर कम्बल चटाई वा धौत वस्त्र बिछायके शयनकरना इन्द्रियों को बिषयों से रोकना समाहित चित्तसे प्राणके ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्वादि गुणोंको श्रुतियों के वाक्यानुसार विचारते रहना अन्न भक्षण न करना, उपसद्व्रति होना "उपसद्व्रतीति" श्रुत्यन्तरात्। अर्थात् पय (दूध) मात्रका आहार करना (दूधमात्रका आहारकरकेजो तपाचरणकरते हैं तिनको उपसद्व्रति कहते हैं) इस प्रकार शुद्धिके कारण तपको करना। इस प्रकार अमावास्यासे दीक्षित होय तपाचरण करतसन्ते जब पूर्णमासीका दिवस आय प्राप्त होवें तब तिसकी रात्रिमें कर्मका प्रारंभकरना, तहां ग्राममें अरु अरण्यमें प्राप्तहोने वाली सर्व ओषधियोंको अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा थोड़ा एकट्ठा करना।:—यहां जो शक्तिके अनुसार थोड़ा थोड़ा लेनेको कहाहै तिसका तात्पर्य यह है कि अग्रिम कहनेका सर्व ओषधियोंका मन्थ अन्तमें यजमानको भक्षण करनापड़ताहै अतएव अपने भक्षण करनेकी शक्तिके अनुसार ग्रहण करे क्योंकि वो फेंकानहीं जाता—:। और श्रवणकरो हे सौम्य।:— वृहदारण्यक उपनिषद्के अष्टमाध्याय विषे भी इस प्राणविद्या पूर्वक मन्थाख्य कर्मकी विधि कहीहै, तहां अमावास्यासे प्रारंभ पौर्णिमा पर्य्यन्तका नियमकिया नहीं, वहां शुक्लपक्ष अरु द्वादश दिवसका नियमकियाहै। अरु ग्रामकी सर्वौषधिमें व्रीहि यवादि सर्व अन्नके ग्रहणकरनेका नियमहै। अरु अरण्यकी ओषधियोंमें उस समय जितने ऋतुफल होयँ तिनको भी यथाशक्ति लेना कहा है। अरु कर्म्ममें विधानकिये जे श्रुवादि पात्र सो सर्वगूलर के काष्ठके होनेचाहिये ऐसा कहाहै। अरु इस छान्दोग्य उपनिषद्में कहेकी अपेक्षा वृहदारण्यमें विधि विशेषभी है—:। हे सौम्य पूर्व कही जो ग्रामकी सर्व अन्नरूपा ओषधि अरु अरण्यकी सर्व

ऋतुफल रूपा ओषधि ।:—अरण्यकी सर्व ओषधियों का रात्रिमें प्राप्तहोना प्रायः कठिनहै अतएव उसको दिवसमेंही संग्रह करना—ः। तिन सर्वके छिकुले आदि पृथक् कर उनको शुद्ध स्वच्छ करना, पश्चात् सहित दधि मधुके उनसर्व ओषधियोंको पीसना पश्चात्। "औदुम्बरे कंसाकारे चमसाकारे पात्रे"। इस मन्त्र (बृहदारण्यकी) श्रुतिके प्रमाणसे गूलरके काष्ठका चमसके आकार पात्र में उन पिसीहुई सर्वोषधियों को रखके अपने अग्रभाग में रखना।:— हे सौम्य जिस स्थानमें हवनकरे वहांकी भूमिको प्रथम झड़वाय लिपवायके शुद्ध करे पश्चात् उस भूमिके मध्य एकहाथ लम्बी अरु एकहाथ चौड़ी चार अंगुल ऊंची शुद्ध मृत्तिका की वेदी निर्माण करे, पुनः। "परिसमूह्य परिलिप्य अग्निमुपसमाधाय"। इत्यादि श्रुति स्मृतिके कहे प्रमाण उस वेदी को संस्कार करके शुद्धकरे तहां प्रथम तीन कुशासे उस वेदीको तीनबार झाड़े पश्चात् अपने अंगुष्ठ औ अनामिका अंगुली इनकी चुटकीसे तीनबार उस वेदीमें से मृत्तिका बाहिर डाले, पश्चात् तीनबार उस वेदी पर पानी का छींटादे उपलेपनकरे। इस प्रकार उस वेदीको शुद्धकर पश्चात् उस वेदीपर धूम रहित अंगार अग्निको स्थापितकर उसपर गूलर वा पलाश काष्ठका समिध रख उस अग्निको प्रज्वलितकर उसपर एकपात्रमें गौके घृतको तपावे, पश्चात् उस घृतकी। "अग्नयेस्वाहा"। इत्यादि मन्त्रसे तीन तीन आहुतिकरे अर्थात् प्रथम कुशकंडिकाकर अग्निके संस्कारकरे पश्चात् मन्थाख्य कर्म की आहुति करे—। पश्चात्। "ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा"। इस मन्त्रसे घृतकी आहुतिकरे औ स्रुवामें रहा जो आहुति का शेष घृत सो उस मन्थमें डाले ४॥

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पात मवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्यहुत्वा मन्थे सम्पा तमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थेसम्पा तमवनयेदायतनायस्वाहेत्यग्नावाज्यस्यहुत्वामन्थेसम्पा तमवनयेत् ५ अथप्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्य मो नामास्यमा हि ते सर्वमिदछं सहिज्येष्ठः श्रेष्ठोराजाधि पतिः समाज्यैष्ठ्यछं श्रैष्ठ्यछं राज्यमाधिपत्यंगमयत्वह मवेदछं सर्वमसानीति ६ अथ खल्वेतयर्चापच्छ आ चामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयंदेवस्य

हे सौम्य, । इसप्रकार । "वशिष्ठाय स्वाहा" । इस मन्त्रसे अग्निमें घृतकी आहुति करे औ श्रुवामें रहे आहुतिके शेष घृतको उसमंथमेंडाले । ऐसेही । "प्रतिष्ठायै स्वाहा" । "सम्पदेस्वाहा" "आयतनाय स्वाहा" । इन मंत्रों करके भी अग्निमें घृतकी आ- हुति करे औ पूर्ववत्ही प्रति आहुति के श्रुवामें रहे शेष घृतको उस मंथमें डालताजावे ५ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार आहुतिकरके पश्चात् अपने दोनों हाथों की अंजली में उस मंथको लेके इस मन्त्रसे उस मंथकी स्तुति करे । मंत्र । "अमोनामास्यमाहितेसर्वमिदछंसहिज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यछं श्रैष्ठ्यछं राज्यमाधिपत्यंगमय- त्वहमवेदछं सर्वमसानीति" । अर्थ । अम यह प्राणका नामहै अन्न करकेही प्राण शरीरमें रहताहै, एतदर्थ मंथरूप द्रव्य प्राणका अन्न (आश्रय) होने से उस मन्थकी प्राणरूप से स्तुति करतेहैं किंतु अम नामवाला है, जो तू प्राणके साथ एकहै इस करके तुझ इस प्राणभूतका यह समस्तजगत् होनेसे अम नामवालाहै । सो निश्चयकरके प्राणभूत मंथ ज्येष्ठ श्रेष्ठहै । एतदर्थही सर्व का राजा दीप्तिमान् सर्वका अधिपति (अधिष्ठाता) होने से सर्व

भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति तुरंभगस्य धीमहीति सर्वं पिबति ७ निर्णिज्यकꣳसंचमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्म्मणि वा स्थण्डिले वा वाचोयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत् समृद्धं कर्मेति विद्यात् ८ तदेषश्लोको"यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषुपश्यतिसमृद्धितत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ९ ॥ २ ॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिपञ्चमप्रपाठकेप्राणविद्यासमाप्ता॥

का तू पालयिताहै। सो तू मुझको भी प्राणात्मभूत प्राणकेज्येष्ठत्वादि गुणोंको प्राप्तकर कि जिसकरके मैंभी प्राणवत् गुणवान्होवों इति। शब्दमंत्रकी समाप्तिके अर्थ है॥ तिसके अनन्तर कहने के मंत्रके एक एक पादकरके मंथमें से एक एक ग्रास भक्षण करे। तहां। "तत्सवितुर्वृणीमहे"। इस प्रथम पादसे प्रथमग्रास भक्षण करे। "वयंदेवस्यभोजनं"। इस द्वितीयपादसे द्वितीयग्रासभक्षण करें। "श्रेष्ठꣳ सर्वधातमं"। इस तृतीयपादसे तृतीयग्रास भक्षणकरे पश्चात्। "तुरंभगस्य धीमहि"। इस चतुर्थपादसे सर्व पानकरे अर्थात् उस मंथके पात्रको कि जिस चमसाकार पात्रविषे मंथ स्थापित कियारहा उसको धोयके उस जलकोपान करे। पश्चात् वाणीका बोलनेसे संयमकर अफुरचित्तहो अर्थात् सर्वअशुभ व्यावहारिक चिंतवनाको त्यागकरे कि जिसके संस्कारसे स्वप्न में अनिष्ट दर्शन न होय, ऐसा समाहित चित्तहोय के अग्नि की ओर मस्तककर अर्थात् वो अग्नि कि जिस विषे हवनकियाहै अपने मस्तकके निकट पूर्वदिशामें होय ऐसे स्थानमें अजिन (मृगचर्म) पर वा केवल भूमिपर शयनकरे। इस प्रकार कर्म समाप्तकरके वहां सोयाहुआ यजमान यदि स्वप्नमें स्त्रीको देखेतो यह निश्चयकरे कि मेरा यह कर्म यथार्थ हुआ औ मुझको समृद्धि (लक्ष्मी) प्राप्तहोगी ८ इस अर्थविषे वेदका मन्त्र भी प्रमाणहै।

अथ पंचम प्रपाठके पंचाग्नि विद्याप्रारभ्यते ॥

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ ह प्रवाहणो जैबलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पिता इत्यनु हि भगव इति १ ॥

यदि (धनकी) कामना से क्रिया जो कर्म तिसकी समाप्तिहुए स्वप्नमें जो (अपूर्व) स्त्रीको देखे तो यह जाने कि मुझको समृद्धि प्राप्तहोगी क्योंकि मैंने स्वप्नमें स्त्रीको देखाहै। दोबार जो कथन है सो कर्म्म समाप्ति के सूचनार्थ है ९ इतिद्वितीय खंडः२॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठकविषयकप्राणविद्या समाप्ता ॥

अक्षरार्थ

श्वेतकेतु नाम प्रसिद्ध आरुणेय पंचालदेशके राजाकी सभा में प्राप्तहोताहुआ तब तिससे प्रवाहण नाम जैवली राजा प्रश्न करता हुआ हे कुमार तुझको पिताने विद्यापढ़ायाहै, उसने कहा हां भगवन् पढ़ायाहै १ ॥

भावार्थ मन्त्र पहिलेका ॥

श्री गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य अब मुमुक्षु पुरुषजो मोक्षकी दृढ इच्छावालाहै तिसको इस नामरूप क्रियात्मक अतिदुःखमय असत् संसारसे, जो दृढ बन्धनका हेतुहै, दृढ वैराग्यहोनेके अर्थ ब्रह्मासे आदिलेके स्तम्बपर्यन्त संसारगतिका कहना योग्य जानके परम उपकार करनेवाली श्रुति भगवती एक आख्यायिकाद्वारा संसार गतिको देखावे है॥:—तहां एक उद्दालकनाम ऋषिऔ प्रवाहण नाम राजाका सम्बादहै, तहां उक्त राजानेउक्त ऋषीश्वरको संसार गति देखावने के अर्थ पंचाग्नि विद्या उपदेश करीहै। हे सौम्य

यह जो पंचमाध्याय सम्बन्धी कथा है अर्थात् आख्यायिका है सो षष्ठ अध्यायकी आख्यायिकाके पश्चात् की है, क्योंकि उद्दालकऋषिने अपने श्वेतकेतुनाम पुत्रको षष्ठ अध्यायमें उपदेश कियाहै तिसके पूर्व उद्दालकने आप उस श्वेतकेतुको विद्या अध्ययनकराया नहीं अन्यआचार्यके यहां भेजकेउसको विद्याअध्ययन करवाया । अरु इस पंचमाध्यायकी आख्यायिकामें उक्त राजाने श्वेतकेतुसे प्रश्न कियाहै कि हे कुमार तुझको तेरे पिताने सर्व विद्या उपदेश किया है तब श्वेतकेतुने कहा कि हां मुझको पिताने सर्वविद्या उपदेश कियाहै । अतएव जाननाचाहियेजो षष्ठ अध्यायकी कथाके पश्चात्की यह कथाहै । अरु वो श्वेतकेतुको राजा करके किये पांचों प्रश्नों में से किसीका भी उत्तर न आया तब वो अति लज्जितहो अपने पिता समीपजाय सर्व वृत्तान्त कह कहताहुआ कि हे भगवन् आपने मुझसे कहाथा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययनकराया है परन्तु मुझसे राजा करके प्रश्नकरीगई जो विद्या सो आपने नहीं पढ़ाया ॥ हे सौम्य इन सर्व प्रसङ्गों से प्रतीत होताहै जो यह पंचमाध्याय सम्बन्धी श्वेतकेतुकीकथा षष्ठ अध्याय के पश्चात्की है । परन्तु षष्ठ अध्याय में जो कथा है सो औ सप्तम अष्टम अध्याय में जो कथा है सो सर्व आत्मविद्या महावाक्य औ आत्मोपासनाका उपदेश है, अतएव इस षष्ठ अध्यायकी आख्यायिका कथा से पश्चात् होनेवाली आख्यायिका कथा को उपासना सम्बन्धिनी होनेसे इस पंचमाध्याय में कि जिसमें अन्य भी उपासनविद्याहै कहाहै—॥

हे सौम्य, एकसमय श्वेतकेतु नाम वाला प्रसिद्ध अरुण नाम वाले ऋषिका पौत्र अरु आरुणिनामवाले ऋषिका पुत्र आरुणेय सो पांचालदेश के राजाकी सभा में आय प्राप्तहुआ, तब तिसको अपनी सभा में आया देख, प्रसिद्ध जो प्रवाहण नामवाला औ जिवलिनामवाले राजाका पुत्र तातै जैवली नामवाला राजा सो उस श्वेतकेतुको कहताहुआ कि हे कुमार तुझको पिताने विद्या

शिक्षा कियाहै, अर्थात् तू अपने पिता से विद्या शिक्षापाय अनुशिष्ठ (सर्व विद्या सम्पन्न) हुआ है। इसप्रकार जब उस प्रवाहण नाम जैवलि राजाने श्वेतकेतु से प्रश्न किया तब वो कहताहुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं अनुशिष्ठहौं॥:—हे सौम्य वो श्वेतकेतु अपनी बाल्यावस्थामें मातापिताको अधिक प्यारा औ चंचल स्वभाव होनेसे शिक्षाको न ग्रहणकर मूर्खबालकोंवत् खेलताही रहा, तब उसके पिताने उसके स्वभावको देख अनुमानकिया कि यह यहां विद्या अध्ययनकरनेका नहीं, अतएव इसका किसी अन्य आचार्यकेयहां विद्या अध्ययनकरनेकोभेजनाचाहिये। ऐसाविचार उसका यज्ञोपवीत संस्कारकर आचार्यकेयहां विद्याअध्ययनकरनेके अर्थ भेजा, तब वो किसी अन्य कुलीन आचार्य के यहां विद्या अध्ययनार्थ गया, उस समय उस श्वेतकेतुकी द्वादशवर्ष की अवस्थाथी औ तीव्र बुद्धिहोने के कारण वो चौबीस वर्षकी अवस्था होने पर्यंत उसने छहो अंग अरु अर्थ सहित ऋगादि चारों वेद अध्ययन करलिया, औ अन्य सर्व विद्यार्थियों में अधिक विद्वान् होने से उसको यह अभिमान हुआ कि इस समय मुझसमान विद्वान् अन्य कोई नहीं। इसप्रकार अहंकारी अप्रणतस्वभाव हुआ वो श्वेतकेतु देश देशान्तरमेंजाय अन्य ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त करता घूमता अपने पिताके निकट आय प्राप्तहुआ, परंतु अपने को विद्वान् अधिक समझने के कारण पिताको भी प्रणाम न किया, तब उसके पिता उद्दालकने अपने पुत्र उस श्वेतकेतु को महा अभिमानी अप्रणत स्वभाव रूप दोषकरके युक्त होने से उसको अपने शुद्ध कुलमें कलंकरूपहुआ जान उसके दोषकी निवृत्ति करना विचार प्रश्नकिया कि हे पुत्र तू जो इस प्रकार अहंकारी अप्रणत स्वभावहुआ है सो अन्य विद्वान् ब्राह्मणों से तुझमें क्या विशेष है, जो तू अपने विषे विद्याका इतना अभिमान करता है सो उस विद्याको भी जानता है या नहीं कि जिस एक के जानने से सर्व जाना जाताहै तब उसने कहा कि उस

"वेत्थयदितोऽधिप्रजाः प्रयन्तीति" "नभगवइ ति" "वेत्थयथापुनरावर्त्तन्ता ३ इति" "नभगव इति" "वेत्थपथोर्देवयानस्य पितृयाणस्यच व्यावर्त्तना३ इति" "नभगवइति २ ॥

विद्याको मैं नहीं जानता औ आचार्यने भी मुझको वो विद्यानहीं कही। अतएव हे भगवन् आप उस विद्याको मेरे प्रति कहिये। इस प्रकार जब श्वेतकेतु ने कहा तब उसके पिताने दृष्टान्त पूर्वक एक अद्वैत आत्मविद्या उपदेशकिया। तब वो श्वेतकेतु अपने विषे परा अपरा उभय विद्याप्राय सर्व विद्याका अहंकारी हुआ किसी एक समय पांचाल देशके राजाकी सभामें आय प्राप्तहुआ। अरु उस राजाने पूर्व श्रवण भी किया रहा कि एक ऋषिका पुत्र विद्या में अपने को सर्व से अधिकमान जहां तहां ब्राह्मणों से विवादकरता फिरताहै। सो उसको अपनीसभामें देखके उक्तराजा ने उसकुमारसे प्रश्नकिया कि हेकुमार तू अपनेपितासे विद्याप्राय शिक्षितहुआ है तब उसनेकहा कि हां मैं पिताकरके शिक्षित अनु शिष्टहों-:॥ १ ॥

अक्षरार्थ

जानताहै जिसप्रकार अधोसे प्रजा ऊर्ध्वको जातीहै, नहीं भगवन्, जानताहै जिसप्रकार फिरके आवतीहै, नहीं भगवन, जानताहै मार्ग देवयानका पितृयानका अरु जहां से इनका भेदहोता है, नहीं भगवन् इति २ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब उसकुमारावस्थावाले श्वेतकेतुने अपनेको पिताकरके शिक्षित अनुशिष्ठ सूचितकिया, तब उसजैवलीनाम राजाने कहा कि यदि तू अनुशिष्ठहै तो तू जानताहै जिस प्रकार इस लोकसे प्रजा मरके ऊर्ध्वलोकको जाती है। इस प्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब सो श्वेतकेतु कहताहुआ कि हे भगवन् मैं उस प्रकारको जानता नहीं ॥ तब पुनःराजाने

वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्य्यता ३ इति नभ गव इति वेत्थ यथ" पञ्चम्यामाहुता वापः पुरुषवच सो भवन्तीति नैव भगव इति ३ ॥

प्रश्नकिया कि जिसप्रकारसे वो प्रजा पुनः इसलोक में आवती है तिसको तू जानता है। इसप्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब सो श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् मैं सो भी जानता नहीं ॥ तब पुनः राजाने प्रश्नकिया कि हेकुमार जिसप्रकार देवयान अरु पितृयान इन दोनों मार्गोंका कि जिस मार्गसेगये एक तो फिरके आवते हैं अरु एक पुनरावृत्तिको नहीं प्राप्तहोते वो दो मार्ग जहां से पृथक् २ होते हैं सो तू जानताहै। इसप्रकार जब उस राजाने प्रश्नकिया तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता २ ॥

अक्षरार्थ

जैसे स्वर्गलोक नहीं पूर्णहोता सो तू जानता है। नहीं भगवन् जानता है जैसे पांचवीं आहुति में आयके जल पुरुष नामवाला होता है। नहीं भगवन् ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ३ ॥

हे सौम्य, उसराजा जैवली के किये तीन प्रश्नों के उत्तर में उस श्वेतकेतुने यही उत्तर दिया कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता ॥ तब पुनः राजाने प्रश्नकिया कि पितृलोक सम्बन्धी स्वर्गलोक कि जिसको प्राप्तहोयके पुनरावृत्तिको पावते हैं औ तिस विषे बहुतसे केवल कर्म्मके करनेवालेचले भी जाते हैं तोभी जिस कारणसे वोलोक भर नहीं जाता तिसको तू जानताहै। तब श्वेत-केतुनेकहा कि हे भगवन् उसको मैं नहीं जानता। तब पुनः उस राजाने उससे प्रश्न किया कि हे कुमार जिस क्रमकरके पांच संख्यावाली जे आहुति हवनकरी अरु आहुतिका साधनजे जल 'अर्थात् श्रद्धाशब्दका वाच्यजे जल सो जिसप्रकार पांच अग्नि विषे आहुतिकिया षष्ठ परिणामसे पुरुषनामवालीषष्ठ आहुति

अथनु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात् कथ छं सोऽनुशिष्टो ब्रवीतेति सहायस्तः पितुरर्द्ध मेयाय तछंहोवाचा ऽननुशिष्य वावकिल मा भगवान ब्रवीदनु त्वाशिषमिति ॥ ४ ॥

भूतको 'अर्थात् क्रमकरके आहुति किया जल षष्ठ आहुतिरूप पुरुष नामको, प्राप्तहोताहै, तिसको तू जानता है इसप्रकार जब उस जैवलिनामराजा ने प्रश्नकिया तब वो श्वेतकेतु पुनः वोही उत्तरकहताहुआ कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता । अर्थात् आपकरके किये जे प्रश्न तिनमेंसे एकको भी मैं जानता नहीं ३॥

अक्षरार्थ ॥

जब नहीं जानता तब कैसे कहता है मैं अनुशिष्टहौं, जो निश्चयकरके उनप्रश्नों को न जानता होगा सो कैसे कहेगा मैं अनुशिष्टहौं। सो श्वेतकेतु लज्जितहो पिता के स्थानपर आय तिस पितासे कहताहुआ मुझको स्पष्ट अनुशासन किये बिनाही आपने कहा कि तुझ को सर्व विद्या शिक्षाकियाहै ४॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ४ ॥

हेसौम्य उक्तप्रकार जब उस श्वेतकेतुने निरुत्तरहोय के कहा तब वो राजा कहताहुआ कि हे कुमार जो तू इसप्रकारका अज्ञ है कि मेरे किये प्रश्नोंमें से जब एकका भी उत्तर नहीं जानता तब अपने को मैं अनुशिष्टहौं ऐसा क्यों कहा । जो प्रसिद्ध इन मुझ करके पूछे प्रश्नों के अर्थोंको (उत्तरोंको) न जानता होवे सो विद्वानों विषे कैसे कहेगा कि मैं अनुशिष्टहौं, किन्तु कदापि न कहेगा । इस प्रकार जब उस राजाने किंचित् निरादर पूर्वक उस श्वेतकेतु से कहा तब वो अति लज्जितहो उस सभासे निकल अपने पिताके स्थानपर जाताहुआ । औ अपने पिता के निकट प्राप्तहो कहताहुआ कि हे पिताजी आपने मुझको अनुशासन किये विना (अर्थात् सर्व विद्या उपदेश किये बिना) ही मुझको स-

पंचमा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्चना
शकंविवक्तुमिति सहोवाच यथा मा त्वंतदैतानवदोयथाह
षां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथंतेनावक्ष्य
मेति ५॥

ावर्त्तनके समय (अर्थात् ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याऽध्ययनकी स-
ाप्तिके समय) आपने कहा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययन
करायाहै अब कोई विद्या तेरे अध्ययनकरनेयोग्य अवशिष्ट नहीं,
तो आपने मिथ्याही कहा ४॥

अक्षरार्थ

हे भगवन् राजा है बन्धु जिसके तिस राजा मुझसे पांच प्रश्नों
को पूछताहुआ तिनमें से एक का उत्तर कहने को मैं समर्थ न
हुआ। पिता कहता हुआ जैसे तू नहीं जानता है तैसे मुझको
भी जान मैं भी उन प्रश्नों के उत्तरको जानता नहीं जो कदापि मैं
उनको जानता होता तो तुझको क्यों न कहता ५॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ५॥

हे सौम्य, पुनः वो श्वेतकेतु कहताहुआ कि। हे भगवन् इस
कारणसे सर्व राजा हैं बन्धु जिसके ऐसा जो पांचाल देशका प्र-
वाहण नामवाला जैवालि राजा सो बड़ा विद्वान् है।:—उस राजा
की सभामें मैं गया तब उस राजाने मुझको देख प्रश्न किया कि
तुझको पिताने सर्व विद्या अध्ययन कराय अनुशिष्ट कियाहै औ
तू अनुशिष्ट हुआहै, तब मैंने कहा हांमैं अनुशिष्टहौं आपको जो
प्रश्न करनाहोय सो करिये। तब उस राजाने मुझसे पांच प्रश्न
किये तहां। प्रश्न। जिसप्रकार इसलोकसे सर्वप्रजा ऊर्द्ध्वको
जातीहै तिसको तू जानता है १ अरु ऊर्द्ध्वको गई प्रजा जिस
प्रकार फिरके आवती है तिसको तू जानताहै २ अरु जहां से देव-
यान अरु पितृयान यह दो मार्ग पृथक् २ होते हैं तिसको तू जा-
नताहै ३ अरु जिसप्रकार पितृलोक सम्बन्धी स्वर्गलोक प्रजाकर

के पूर्ण नहींहोता तिसको तू जानताहै ४ अरु जिसप्रकार जल पांच आहुत भावको प्राप्तहोके पुरुषनामवाला षष्ठ आहुतिरूप होता है तिसको तू जानता है ५ । —: ॥ उसने मुझसे उक्त पांच प्रश्न किये परन्तु उन पांच प्रश्नोंमेंसे एकका भी उत्तरदे तिसका निर्णयकरने के अर्थमें मैं समर्थ न होताहुआ । अतएव जो आप ने मुझसे समावर्त्तनकालमें कहा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययनकरायाहै, सो आपने असत्यही कहाहै। इसप्रकार जब श्वेतकेतुने अपने पितासे कहा तब वो उद्दालक अपने असत्यवादीपनेके निवारणार्थ अपने श्वेतकेतुनाम पुत्र से कहता हुआ कि हे वत्स जैसे राजाकरके किये प्रश्नों मेंसे एकके भी उत्तर कहने को तू समर्थ न हुआ तैसेही तू मुझको भी जान मैं भी उन प्रश्नों के उत्तरको जानता नहीं , अर्थात् हे पुत्र तेरेअज्ञानरूप लिंगकरके मेरे भी उसविद्या विषयक अज्ञानको अनुमानकरके जानले । हे पुत्र जैसे मैं उन प्रश्नों में से एकका उत्तर भी नहीं जानता तैसे 'मुझकरके शिक्षित' तू भी नहीं जानता । अरु जिस करके तू नहीं जानता तिसही कारण से मैं भी उन प्रश्नों के उत्तरको नहीं जानता ।:—अर्थात् जिस विद्याको शिष्य नहीं जानता तिस शिष्यके अज्ञानरूप लिंगसे उसके अध्यापक विषे भी उस विद्याविषयक अज्ञान सिद्ध होताहै । अरु जिस विद्याको अध्यापक नहीं जानता तब उसकरके शिक्षित शिष्य उसको कैसे जानेगा अतएव गुरु शिष्यमें से एकके अज्ञानरूप लिंगकरके दूसरेके विषे अनुमानकरके अज्ञानकी सिद्धिहै—:। अतएव हे पुत्र मेरे ऊपर असत्यवादीपने का आरोपकर क्रोधकरना तुझको योग्य नहीं अतएव मुझपर क्रोध मतकरे । हे सौम्य उक्तप्रकार कहके पुनः वो उद्दालक कहताहुआ कि हे पुत्र जो मैं इन तेरेप्रति राजाकरके किये प्रश्नों के उत्तरोंको यदि जानताहोता तो कैसे मैं तुझ प्रिय पुत्रके अर्थ पूर्व समावर्त्तन कालविषे न कहता 'किन्तु अवश्यही कहता। :— जो यह विद्या तुझको अध्ययन करने योग्य

स ह गौतमो राज्ञोऽर्द्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हांञ्च कारस ह प्रातः सभाग उदेयायतछं होवाचमानुषस्य भगवन्। गौतम। वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैवराजन् मानुषं वित्तं, यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथारस्तामेव मे ब्रूहीति ६ ॥

अवशिष्टहै, अर्थात् मैं जानता होता तो वो विद्या तुझको अवश्य ही कहता परन्तु मैं जानता नहीं अतएव असत्यवादी नहीं ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध गौतम (उद्दालक) राजाके स्थानपर जाताहुआ तिस प्रसिद्ध अपने यहां प्राप्तहुए गौतमका राजाने सम्यक् प्रकार आतिथ्यादि सत्कारकिया तदनन्तर दूसरे दिवस प्रातःकालके समय गौतम राजाकी सभामें जाताहुआ, तब राजा कहताहुआ हे पूजाके योग्य गौतम इस मनुष्य लोक सम्बन्धी वित्तादिकों की इच्छाहोय तो मांगिये। ऐसे राजाने कहा तब गौतम कहताहुआ हे राजन् यह जो आपका मनुष्य लोक सम्बन्धी वित्तादिकहै सो आपके आपको ही रहो। जो आपने मेरे पुत्रसे पांच प्रश्नकहे हैं सो मेरे प्रतिकहो ६ ॥

भावार्थ मन्त्रछठवें का ६ ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार गौतम गोत्रवाला उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहकर उस विद्याको, कि जिसविद्या सम्बन्धी पांच प्रश्न राजाने श्वेतकेतु प्रति कियेरहे औ जिनका उत्तर श्वेतकेतुको न आयारहा, जिज्ञासाधारके पांचाल देशके जैवलिनाम राजाके स्थानपर आवताहुआ। तब तिस लोक प्रसिद्ध गौतमको अपने स्थानपर प्राप्तहुआ जानके राजा उसके समीपजाय कुशल प्रश्न पूर्वक अर्घ पाद्यादि आतिथ्य सत्कारकर उसको सुख विश्राम करावताहुआ। तब वो गौतम उसदिन रात्रिको वहां निवासकर दूसरे दिन प्रातःकालके होते।—अपने स्नान संध्यादि

स ह कृच्छ्री वभूवतछंहाचिरंवसेत्याज्ञापयाञ्चकारत छंहोवाच यथा मात्वं गौतमाऽवदोयथेयत्रप्राक्त्वत्तः पुरा विद्याब्राह्मणान्गच्छति तस्मादुसर्वेषुलोकेषुक्षत्रस्यैवप्र शासनमभूदिति तस्मै होवाच ७ ॥ ३ ॥

नित्यकर्म से निवृत्त होय राजाकी सभामें जाताहुआ, तब पुनः उस राजाने उस गौतमका पूजादि सत्कारकिया । अथवा । "सभागः" । अन्योंकरके पूज्यमान जो लोक प्रसिद्ध विद्वान् स्वयं गौतम सो राजाकी सभामें प्राप्तहोताहुआ । तब तिस गौतमके प्रति हाथजोड़ विनय पूर्वक राजा कहताहुआ, हे पूजाके योग्य गौतम मनुष्य लोक सम्बन्धी धन ग्राम रत्न रथादि पदार्थों में से आप अपनी कामनाके अनुसार मांगलीजिये ।:—जिस पदार्थकी आपको इच्छाहोगी सोई मैं आपके अर्थ अर्पणकरोंगा—:। इसप्रकार जब राजाने कहा तब सो प्रसिद्ध गौतम कहताहुआ कि आपका मनुष्यलोक सम्बन्धी वित्तादि सर्व आपके पासही रहो उनकी मुझको कामना नहीं । इस प्रकार जब गौतमने कहा तब पुनः राजा कहताहुआ कि [हे भगवन् जब आपको वित्तादिकों की कामना नहीं तब कृतकृत्य जो आप तिसका यहां आगमन कैसे हुआहै, इसप्रकार जब राजाने उनके आगमनमें शंका पूर्वक प्रश्न किया तब पुनः गौतम कहताहुआ] हेराजन् जो आपने मेरेपुत्रके समीप पांच प्रश्न किये हैं ' अरु जिसका उत्तर उससे न आया, मैंभी उसको जानता नहीं, अतएव सो पांच प्रश्न लक्षणवाली विद्या आप मेरे प्रति कहिये ६ ॥

अक्षरार्थ

सो प्रसिद्ध राजा दुःखीहोताहुआ, तिसको प्रसिद्ध चिरकाल वसनेकी आज्ञा करताहुआ, तिसके अर्थ सो राजा कहताहुआ हे गौतम तुमने मुझसे विद्याकहनेको कहा सो यह विद्या तुमसेपूर्व ब्राह्मणोंविषे गई नहीं, तिसही करके सर्व लोकविषे क्षत्रियोंकाही

प्रशासन होताहुआ है। इतना कह तिसके प्रति राजा कहता हुआ ॥ ७ ॥ इति तृतीय खंडः ३ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार जब गौतम ने मनुष्यलोक सम्बन्धीवित्तादिकों की याचना न करके विद्या की याचना किया ॥ तब तिसको श्रवण करके वो राजा अपने चित्तमें दुःखितहोय विचारनेलगा कि। :—यह विद्या आजपर्यन्त क्षत्रियोंमेंही रही है तिसको आज यह ब्राह्मण मांगताहै—:। ब्राह्मण सर्व प्रकार मान्य करने योग्य हैं, अरु तिसमें भी यह गौतम साधारण ब्राह्मणोंवत् नहीं यह सर्वोत्तमब्राह्मण है परन्तु न्यायकरके विद्या कहने योग्य है। :—अर्थात् यह गौतम ब्रह्मचर्य्यादि सर्व साधनों करके सम्पन्न अति उत्तम अधिकारीहै ताते इसको विद्या कहनीयोग्यहीहै तथापि जिज्ञासुकी परीक्षा पूर्वक विद्यादेनेकी सनातनीय आम्नाय है अतएव इससे ब्रह्मचर्यादि करवावनाभी योग्य है—:। ऐसा अपने चित्तमें विचार वो राजाकहताहुआ कि हे गौतम आपयहां दीर्घकाल (एकवर्ष) निवास करो पश्चात् मैं विद्याकहोंगा, इसप्रकार आज्ञा करताहुआ। जो पूर्व तो राजाने प्रश्न करके विद्याकहा अरु पश्चात् दीर्घकाल बसने की आज्ञाकिया तिस निमित्त के अपराध को ब्राह्मण क्षमाकरे, अरु जिस निमित्त चिरकाल बसनेकी आज्ञा किया तिसके हेतु को कहता हों ॥ राजोवाच ॥ हे गौतम आप सर्व विद्याकरके सम्पन्न होने से अरु जाति में सर्वोत्तम ब्राह्मण होने से सर्वप्रकार श्रेष्ठहौ, तथापि हे गौतम आपने मुझसेकहा कि जो आपने मेरे पुत्र से प्रश्नकिये तिन प्रश्न लक्षणवाली विद्याको आप मेरे प्रतिकहो, सो आपने उस विद्या सम्बन्धी अपने अज्ञानकरके ही कहा। ताते मुझकरके तुम्हारे प्रति विद्या कहनी है। हे गौतम जिस करके यह (अग्रिम कहनेकी) विद्या तुमसे पूर्व ब्राह्मणों विषे गई नहीं। :—अर्थात् हे गौतम जिस विद्याकी आपयाचना करते हौ सो विद्या जब मैं आपके प्रति कहोंगा तिस

अथपंचमप्रपाठकेचतुर्थखण्डप्रारभ्यते ॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समि द्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फु लिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धांजुह्वति त स्या आहुते सोमो राजा सम्भवति २ इतिचतुर्थ खण्डः ४ ॥

काल से ब्राह्मण जातिमें जायगी इससे पूर्व ब्राह्मण जातिमें यह विद्या गई नहीं—ः । इस विद्याकरके ब्राह्मण अनुशासित नहीं हैं यह सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है । ः—अर्थात् जो यह विद्या ब्राह्मणों विषे होती तो आप इस विद्याके अर्थ यहां क्यों आवते किन्तु न आवते–ः । अरु इस विद्याकरके ब्राह्मण अनुशासितवन्त (शिक्षित) नहीं । तथा यह लोकविषे प्रसिद्ध एतदर्थ पूर्व सर्व लोकविषे क्षत्रिय जातिही इस विद्याका शिष्यों प्रति उपदेश करनेवाले हुये हैं । अरु क्षत्रियों में ही यह विद्या परम्पराकरके अद्यावधि चली आवती है । तथापि मैं इन विद्याओं को जब तुम्हारे प्रति कहौंगा तिसके पश्चात् तुम्हारे द्वारा यह विद्या अन्य ब्राह्मणों विषे जावेगी । अतएव मैंने जो आपसे कहा कि आप यहां चिरकाल निवास करके ब्रह्मचर्य्यादि करो तिसके पश्चात् मैं विद्या कहौंगा, सो आप क्षमा करनेके योग्यहो, इतना कहके तिसगौतमके प्रति राजा जैवलि विद्या कहता हुआ ७ ॥

इति पंचम प्रपाठके तृतीयखंडः ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम स्वर्गलोक प्रसिद्ध अग्निहै तिसका आदित्यही समितहै, किरण धूमहै, दिवस ज्वालाहै, चन्द्रमा अंगारहै, नक्षत्र तिसके विस्फुलिंग (चिनगारियां) हैं १ तिस इस अग्निविषे देवता श्रद्धा (जल) की आहुति करते हैं तिस आहुतिसे सोम राजा उत्पन्न होताहै २ ॥ इतिचतुर्थखंडः ४ ॥

अथ पंचमप्रपाठके चतुर्थखंडभावार्थ ४ ॥

हे सौम्य, अब पूर्व जो राजाजैबलिने श्वेतकेतु प्रति जो पंचम प्रश्न कियारहा कि जिस प्रकार पांचवीं आहुति में आयके जल पुरुष नामवाला होताहै, तिस प्रश्नका निर्णय प्रथम कहते हैं क्योंकि इस प्रश्न के निर्णय के आवान्तर अन्य प्रश्नोंका निर्णय कहना सुगम होगा ताते। हे सौम्य अग्निहोत्रकी आहुतियां जो कार्यका आरंभ करती हैं सो वाजसनेयि वृहदारण्य उपनिषदविषेकहाहै तहां आहुतिका उत्क्रामण गति प्रतिष्ठा तृप्ति पुनरावृत्ति मरुप्रत्युत्थान (पुनःजाना) इन सर्वका निर्णय तहांही कियाहै॥ सो इतनी अग्निहोत्रकी आहुति कीहुई यहां से उत्क्रमण होयके (उठके) अन्तरिक्षविषे प्रवेशको पावती है, अर्थात् सो आहुति अन्तरिक्ष रूप आहवनीय अग्निविषे आहुति की होतीहै, कैसाहै वो अन्तरिक्ष रूपअग्नि वायु जिसका समित्है, अरु सूर्यकी किरणाही शुद्ध आहुतिहैं तिस आहुतिसे वो अन्तरिक्ष तृप्तहोता है। ते आहुति वहांसे उत्क्रमणहोती है, इत्यादि ॥ अरु इस प्रकारही अन्तरिक्षसे ऊर्ध्वको उत्थानहुई आहुति स्वर्गलोक को तृप्तकरती है।:—उक्तप्रकार आहुति के साथ भावना करके तादात्म्यता को प्राप्तहुआ यजमान भी आहुति करके आकर्षित हुआ उक्त प्रकार स्वर्गको प्राप्तहोताहै। अर्थात् जिसप्रकार अग्निहोत्रकी आहुति अन्तरिक्षादिक्रमसे स्वर्गको प्राप्तहोती है सो यजमानके सहितही होतीहै अरु सो आहुति स्वर्गस्थ अपने कर्त्ता यजमानको फलदानसे तृप्त करतीहै सो यजमान अपनेकर्म के क्षयहुए जल रूपहुई आहुतिसे साथ हुआ (तादात्म्यकोपाया)—:। प्रथम द्युलोकमें पुनः अन्तरिक्षमें इस क्रमसे—:। पृथिवी में प्रवेश पावताहै तहां तृप्तहोके व्रीहादि अन्नरूपहोय पुनः पुरुष विषे प्रवेश कर वहां वीर्यरूप परिणामको पाय तदनन्तर स्त्रीविषे प्रवेशको पाय वहांसे पुरुषाकार शरीररूप परिणामको पाय लोकविषे प्रकट

होताहै । इस प्रकार अग्निहोत्रकी आहुति अपने कार्यकी आरंभकहोतीहै ऐसाकहते हैं ॥

हे सौम्य इसलोकमें तो सो कार्य्यारंभ अग्निहोत्र अपूर्व परिणाम लक्षणको पांचप्रकार विभाग करके तिसविषे अग्निकी भावनासे उपासनाको उत्तरमार्गकी प्राप्तिका साधन विधि करते कहते हैं ॥:—हे सौम्य उक्त प्रकार राजा जैबलिके कहे प्रमाण वो गौतम उद्दालक एकवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करके पुनः उस राजाके समीपगया तब उस उद्दालकके प्रति राजा कहताहुआ—: । जो स्वर्गलोकही अग्निहै इत्यादिक ॥ हे गौतम स्वर्गलोकही प्रसिद्ध अग्निहै । जैसे अग्निहोत्रका अधिकरण आहवनीयहै । तैसे यहां तिस स्वर्गलोकाख्य अग्निका आदित्यही समित्‌है, क्योंकि तिस आदित्यरूप समिधाकरकेही स्वर्गलोक दीप्यमान होताहै अतएव स्वर्गलोकको दीप्यमान करनेसे सूर्य उसका समित् है । अरु सूर्य्यकी जो किरणाहै सोई उसका धूमहै क्योंकि समित्‌सेही धूम उत्थान होताहै । अरु दिवसही उस अग्निकी ज्वाला है क्योंकि दिवसकी अरु ज्वालाकी प्रकाशरूपतामें समताहै । अथवा दिवसको आदित्यका कार्यपनाहै, तैसे ज्वालाको अग्निका, ताते । अरु उस स्वर्गाख्य अग्निका चन्द्रमाही अंगारहै क्योंकि दिवसके शान्त हुए चन्द्रमा प्रकट होता है, जैसे ज्वालाके शान्तहुए अंगार । अरु उसस्वर्गाख्य आग्निके नक्षत्रगणही चिनगारियां हैं, क्योंकि चन्द्रमासे अवयववत् अरु चन्द्रमासे निकसेवत् नक्षत्र हैं, जैसे अंगारके अवयव अरु अंगारसे निकसेवत् विस्फुलिंग (चिनगार) होते हैं, ताते नक्षत्र अरु चिनगारकी उत्थानविषे समता है ताते ॥ तिस इस यथोक्त लक्षणवाले स्वर्गाख्य अग्निविषे देवता जलरूप श्रद्धाकी आहुति करते हैं । अर्थात् यजमानकी प्राणादि इन्द्रियां, जो स्वर्गलोकविषे अग्निआदिक अधिदैवभावकोपाय देवतारूप हुए हैं सो श्रद्धाको, अर्थात् यह अग्निहोत्रकी जो पय आदि आहुतिहैं सो अपने परिणाम अवस्थारूपसे सूक्ष्म जलभूत तिसको श्रद्धा

करके भावितहोनेसे उस जलको श्रद्धारूपसे कहते हैं। क्योंकि पांचवीं आहुति से हवन किया जलपुरुष नामसे प्रकटहोताहै, ऐसा आहुति रूपसे जलको पूर्व श्वेतकेतु प्रति राजाके पृश्नकरके श्रवण हुआहै ताते ॥ तिस जलरूप श्रद्धाको देवता उस उक्त स्वर्गाख्य अग्निविषे आहुति करते हैं, तब तिस आहुतिसे सोमराजा, अर्थात् श्रद्धा शब्दका वाच्य जल जो स्वर्गलोकरूप अग्निमें देवताकरके आहुतिहुआहै तिसका परिणामरूप सोम राजा 'जो ब्राह्मणों काहै, उत्पन्न होताहै ॥:-हे सौम्य यहां जो श्रुतिविषे कहाहै कि देवता श्रद्धाकी आहुति करतेहैं, तिसका बिचार करना योग्य है जो कौन वो देवताहैं औ किस प्रकार आहुति करतेहैं अरु कौन सा वो श्रद्धानामवाला हवि (हवनकरनेयोग्यद्रव्य) है। इसका बिचार किंचित् वृहदारण्य विषे कहे प्रकार अरु अपनी युक्तिसे कहते हैं। हे प्रियदर्शन यह जो अग्निहोत्रकी आहवनीयनाम अग्निहै औ हवनकरनेका दुग्ध घृतादि हविहै तिसविषे अपनी दृढ भावना करके भावितहुआ यजमान वेदोक्त मन्त्रोंसे श्रद्धाकरके समन्वितहुआ उभयकाल उस अग्निविषे उक्त हविकी आहुति करताहै, तब सो आहुति प्रथम अन्तरिक्षरूप आहवनीय अग्निमें कि जिसका समित् वायु है परिणाम को पाय सूक्ष्म रूप से प्राप्त होती है अरु वो अग्नि सूर्यकी किरणों करके व्याप्त है, तब उस अन्तरिक्ष रूप आहवनीय अग्नि बिषे सूक्ष्म परिणाम रूप से प्राप्तहुई जे दुग्धादि हविकी आहुति सो वहांसे उत्क्रमणहोय के (उठके) सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे स्वर्गलोक रूप आहवनीय बिषे कि जिसका समित् सूर्य है आहुतिहुई होती है तब वहां अति सूक्ष्म परिणाम को पाय श्रद्धा से समन्वित हुआ श्रद्धाशब्दका बाच्य होताहै। अरु यहां श्रद्धा अग्नि औ हवि, इन विषे अपनी भावनाकरके भावितहुआ यजमान जब मृत्युको पावताहै तब उसको ग्रामसेबाह्य लेजाय के उसकी अग्निहोत्रकी अग्निविषे उसके शरीरकी आहुतिकरतेहैं, तब उस यजमानका

कर्म उसको यहांसे ऊर्ध्वको आकर्षण करताहै अरु उसका उपास्य अग्नि उसको ऊर्ध्वको प्राप्त करताहै तब वो आहुतिके क्रमसे अन्तरिक्षमें प्राप्तहो तिसलोक सम्बन्धी शरीरको पावताहै पुनः वहां से उत्क्रमणकोपाय आहुतिके क्रमसे स्वर्गलोकमें प्रवेशको पाय तिसलोक सम्बन्धीदेव शरीरकोपाय वहां अपने कर्मानुसार दिव्य भोगोंको भोगताहै । अरु जब उसके कर्म समाप्त होनेपर आवते हैं तब वो वहां रहने पावता नहीं, तब उन कर्म फलमें आसक्त हुआ उन भोगोंके भोगार्थ इस कर्म लोक में आय कर्म करने के अर्थ पूर्वकी की आहुति जो उसको वहां श्रद्धाशब्दका वाच्यहुई सूक्ष्म जल रूपसे प्राप्तहै तिसको वो आप देवरूपहुआ उस स्वर्ग लोकाख्य अग्निविषे कि जिसका समित् सूर्य है आहुति करताहै अरु उस आहुति विषे अपनी भावनासे भावित तन्मयहुआ आप भी उस आहुति के साथ हुतहुआ सोमरूप से परिणामको पाय प्रकट होताहै, अर्थात् सोमलोक सम्बन्धी शरीरको पावताहै, तब वहांके भोग्य भोगके कर्मके क्षयहुए अपने सोम सम्बन्धी देवरूप से अपने सोमत्वपनेरूपकी पूर्ववत् पर्जन्य रूप अग्निमें आहुति कर वहां से वर्षारूप परिणामको पाय पुनः पृथिवी रूप अग्नि विषे आवता है वहां अन्न रूप परिणाम को पाय पुरुष रूप अग्निविषे आवताहै वहां वीर्यरूप परिणामको पाय स्त्री रूपा अग्निविषे आवताहै, वहां गर्भरूप परिणाम को पाय नव वा दशमास वहां रह पुरुषनाम से प्रकटहो पुनः इसलोकविषे कर्म्मों को करता है । इस प्रकार देवता हवन अरु हविका बिचार जानना—: । अर्थात् जैसे ऋग्वेदादि पुष्पों के रस ऋगादिरूप मधुकर करके ग्रहण किया वा प्राप्तकिया आदित्य के विषे यशआदि रूप कार्य्य को औ लोहितादिरूप लक्षण को आरंभ करते हैं, यह मधु विद्याविषे कहाहै । तैसे यह अग्निहोत्रकी आहुति समवायवाला श्रद्धा शब्दकावाच्य सूक्ष्म जल द्युलोकमें प्रवेशकर चंद्र रूप कार्य्य को आरंभकरे है, सो अग्निहोत्रकी आहुति का फल

अथ पंचमप्रपाठके पंचमखंडः प्रारभ्यते ॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रंधूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादुनयो विस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमछं राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षछं सम्भवति २ ॥ इतिपंचमखंडः ५ ॥

रूपहै। अरु आहुतिकी भावना करके भावित आहुतिमयहुआ अग्नि होत्रके कर्त्ता यजमानोंको जो आहुति की भावनाकरके भावित श्रद्धा शब्दकेवाच्य जल से समवायको पाया आहुतिरूप कर्म करके आकर्षित हुआ वा तिसके बशहुआ द्युलोक में प्रवेश कर सोमरूप हुआ होता है [अर्थात् सोमसम्बन्धी सोमसमीपस्थ शरीर को पावता है] अरु तिसकरके अग्निहोत्र हुतहोता है अरु आहुति का परिणाम पंचाग्नि के सम्बन्ध क्रमसे प्रधानता (मुख्यता) करके उपासना के अर्थही विवक्षितहै यजमानों की गतिके अर्थ नहीं। अरु तिस (पंचाग्नि उपासना को) न जानने वाले को धूमादि क्रमसे गति कही है, अरु उन उपासना विद्या के जाननेवाले विद्वान् के विद्याकृत अर्चिरादि क्रमसे उत्तरागति कही है ॥ इति पंचम प्रपाठ के चतुर्थखण्डः ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पर्जन्य ही अग्निहै तिसका वायुही समित् है अभ्र धूमहै, बिजली ज्वालाहै बिजली का चमत्कार अंगारहै, गर्जना विस्फुलिंगहै १ ॥ तिस इस अग्निविषे देवता सोमराजा को भाहुति करते हैं तिस आहुति से वर्षा उत्पन्नहोती है २ ॥

इति पंचमप्रपाठके पंचमखंडः ५ ॥

अथ पंचम प्रपाठ के पंचमखण्ड प्रारंभ ॥

हे सौम्य, अब द्वितीय होम पर्य्यायको कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, राजा जैबलि कहता है कि । हे गौतम पर्जन्यही

अग्निहै। अर्थात् पर्जन्यनाम वृष्टि उपकरणके अभिमानी देवता विशेषकाहै। तिसपर्जन्याख्य अग्निका वायुही समित्है, क्योंकि वायुकरके ही पर्जन्यरूप अग्नि वर्द्धमान प्रकाशित होताहै, पूर्व दिशाके वायुके अधिक चलने से वृष्टिहोती देखते हैं ताते। औ उस पर्जन्याख्य अग्निका अभ्र धूमहै, जैसे अग्निका कार्य भूत धूमहोताहै, तद्वत् होनेसे, अथवा धूमवत् अभ्र दृष्टमें आवताहै ताते। औ उस पर्जन्याख्य अग्निकी विद्युत (बिजली) अर्चीं (ज्वाला) है क्योंकि ज्वाला अरु विद्युतकी प्रकाशरूपतामें समताहै। अरु उस पर्जन्याख्य अग्निका विद्युतका चमकनाही अंगारहै, क्योंकि अंगारकी औ बिजली के चमकने वा 'गिरने' की काठिन्यतामें वा विद्युत अरु अग्निके कार्य्य होने में समता है। अरु उस पर्जन्याख्य अग्निका जो गर्जना शब्द विशेष है सोई उस अग्निकी चिनगारियाँ हैं, क्योंकि गर्जना होनेसे चिनगारियोंवत् मेघ प्रायः सर्व ओरको बिखर जाते हैं १॥ तिसही इस अग्निविषे देवता पूर्ववत् सोमराजाकी आहुति देते हैं, तब तिस आहुति से वर्षा उत्पन्नहोतीहै। अर्थात् पूर्व जो श्रद्धा शब्दका वाच्य जल कहाहै सो प्रथम द्युलोकाख्य अग्निविषे हवनकिया सोमरूप परिणामसे उत्पन्नहोताहै, पुनः वो सोम पर्जन्यरूप अग्निविषे आहुतिहुआ वर्षारूप परिणामसे उत्पन्न होताहै २॥

इति पंचमप्रपाठके पंचमखंडः ५॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा आवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः १ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्याहुतेरन्नछं सम्भवति ॥ २ ॥ इतिषष्ठखंडः ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पृथिवी ही अग्नि है, तिसका संवत्सरही समित् है, आकाश धूम है, रात्रि ज्वाला है, दिशा अंगार हैं, आवान्तर दिशा चिनगारियाँ हैं १ ॥ तिस इस अग्नि विषे देवता वर्षाकी आहुति करते हैं तिस आहुति से अन्न उत्पन्न होता है २ ॥

इतिषष्ठखंडः ६ ॥

भावार्थ खंड छठवें का ६ ॥

हे सौम्य, अब तृयीय हवनपर्यायको श्रवणकरो। राजाजैवलि कहताहै कि हे गौतम यह पृथिवी ही प्रसिद्ध अग्नि है, अरु तिस पृथिवी रूप अग्निका संवत्सर ही समित् है, क्योंकि संवत्सर के अवयव भूतकालकरकेही ब्रीहादि अन्न रूप से पृथिवी निष्पन्न वर्द्धमान होतीहै। अरु तिस पृथिवी रूपा अग्निका आकाश धूम है, क्योंकि जैसे अग्नि से धूम उठता है तैसेही पृथिवी से उत्थानहुयेवत् आकाश भासता है ताते। अरु तिस पृथिवीरूप अग्निका पूर्वादि दिशायें अंगार हैं, क्योंकि अंगारकी भौ दिशाओं की उपशान्तता में समानपना है ताते। अरु तिस पृथिवी रूप अग्निकी आवान्तर ईशानादि दिशायें चिनगारियांहैं १ तिस इस पृथिवी रूप अग्नि विषे देवता वर्षाकी आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से ब्रीहि यवादि अन्न उत्पन्न होता है २ ॥ इतिपंचम प्रपाठके षष्ठखंडः ६ ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रंविस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुतेरेतः सम्भवति २ ॥ इतिसप्तमखण्डः ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पुरुषही अग्नि है, तिसका वाणी ही समित्है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वालाहै, चक्षुः अंगारहैं, श्रोत्र चिनगारियां हैं, १ तिस इस अग्निविषे देवता अन्नकी आहुति करतेहैं, तिस आहुति से रेत (वीर्य) उत्पन्न होता है २ ॥ इतिसप्तमखण्डः ७ ॥

अथ भावार्थ सप्तमखंडका ७ ॥

हे सौम्य, अब चतुर्थ होम पर्य्याय को श्रवणकरो । राजा जैबलि कहताहुआ कि हे गौतम यह पुरुष प्रसिद्ध अग्नि है, तिस पुरुष रूप अग्निका बाणी ही समित् है, क्योंकि मुख रूप द्वारकरके बाणीही प्रकाशित होती है कि यह पुरुष बोलता है, गूंगाप्रकाशतानहीं । अरु तिस पुरुषरूप अग्नि का प्राणही धूमहै, क्योंकि जैसे अग्नि से धूमका उत्थान होताहै, तैसे मुखसे धूमवत् प्राणउत्थान होता है ताते । अरु तिस पुरुषरूप अग्नि का जिह्वा ज्वाला है, क्योंकि ज्वालाकी अरु जिह्वाकी अरुणताविषे समताहै ताते । अरु तिस पुरुषरूप अग्निका चक्षुअंगारहै भासका आश्रयपना होने से । अरु तिस पुरुषरूप अग्निका श्रोत्र चिनगारियां हैं, क्योंकि इनकी विखरने में समताहै १ तिसही इस अग्निविषे देवता ब्रीहि यवादि संस्कृत (सिद्धकिये) अन्नकी आहुति करतेहैं, तब तिस आहुति से रेत (वीर्य) रूप फल उत्पन्न होता है २ ॥ इति सप्तमखण्डः ७ ॥

———

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति २ ॥

इति अष्टमखंडः ८ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम स्त्रीही अग्नि है, तिसका उपस्थ समित्है, तिसका उपमन्त्रण धूमहै, योनि ज्वालाहै, भोगकरना अंगारहै, आनन्द चिन्गारियां हैं, १ तिस इस अग्निविषे देवता वीर्यकी आहुति करते हैं तिस आहुति से गर्भउत्पन्न होता है २ ॥

इतिअष्टमखण्डः ८ ॥

अथ भावार्थ अष्टमखंडका ॥

हे सौम्य, अब पंचम होमपर्यायको श्रवणकरो, राजा जैवलि कहताहै कि। हे गौतम यह स्त्री ही प्रसिद्ध अग्निहै, अरु तिस अग्निका 'पुरुषका' उपस्थ (लिंग) ही समित् है, क्योंकि तिस उपस्थ रूप समित् करके ही सो स्त्री पुत्रादि उत्पन्न करने के अर्थ बर्द्धमान होती है। अरु उस स्त्रीरूप अग्निका उपमन्त्रण (निकट होना वा निकट बोलावना) धूमहै। अरु उस स्त्रीरूप अग्निकी योनि ज्वालाहै, क्योंकि योनि अरु ज्वालाकी अरुणतामें समताहै। अरु स्त्रीरूप अग्निका जो भोगकरनाहै सोई उसका अंगारवत् अंगारहै। अरु स्त्री रूप अग्निका जो विषयजन्य अभिनन्द (आनन्द) है सोई उसकी चिन्गारियां हैं, क्योंकि विषयजन्य सुखकी औ चिन्गारियों की क्षुद्रताबिषे समताहै ताते १ ॥ तिस इस अग्निबिषे देवता वीर्यकी आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से गर्भरूप फल उत्पन्न होताहै २ ॥

इति पंचमप्रपाठके अष्टमखंडः ८ ॥

हे सौम्य, इसप्रकार ।:—अग्निहोत्रकी आहुति का अन्तिम परिणाम जो द्युलोक संबन्धी—:। जल सो श्रद्धा सोम पर्जन्य वर्षा अन्न रेत, हवन पर्यायकरके गर्भी भूतहोता है । :—अर्थात् श्रद्धा शब्द का वाच्य जल द्युलोकादि उक्त अग्नियोंविषे हवन क्रमकरके , श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, रेत, इत्यादि परिणाम को पावता हुआ स्त्री रूप अग्निबिषे गर्भरूप परिणाम को प्राप्त होता है—:। तहां जलको याहुति समवाई होनेसे प्राधान्य करके विवक्षित है। सो आपः " पंचम्यामाहुतौपुरुषवचसो भवतीति " इस श्रुतिसे है। परन्तु केवल जलही सोमादि कार्य को करता नहीं, क्योंकि केवल जल त्रिवृत्स्कृतनहीं है। शंका। सर्वका त्रिवृत्करण होनेसे जलकाही विशेष कथन कैसे देखते हैं। समाधान। सर्वको त्रिवृत्स्कृत होने से भी विशेष संज्ञाकालाभ देखते हैं। यह पृथिवी है यह जल है यह अग्निहै, बाहुल्यताके निमित्त से ॥:—अर्थात् यह जो अग्नि जल पृथिवी है सो सर्व त्रिवृत्स्कृत हैं, अर्थात् एक पृथिवी तत्त्व में अर्द्धभाग पृथिवीका है अरु अर्द्ध भागमें जल औ अग्नि है, अतएव उसबिषे पृथिवीका अर्द्धभाग मुख्य होनेसे सो पृथिवीही कहीं जाती है, तैसेही जल में जलका भाग मुख्य होनेसे सो जलही कहाजाता है—:। अतएव बाहुल्यता होनेसे अरु कर्मसे समवाय होनेसे जल सोमादि कार्य्यका आरंभकहोता है ऐसा कहते हैं। अरु उन जलके कार्य्य 'सोम' वृष्टि अन्न,रेत,देह, इन बिषे जलके धर्म्म द्रवताकी बाहुल्यता देखते हैं, शरीर में वहुत द्रवता है। यद्यपि शरीर पार्थिव (पृथिवीका विकार) है, तथापि पांचवीं आहुति करके स्त्रीरूप अग्नि में वीर्यरूपसे हवन हुआ जल गर्भीभूत होता है ॥ इति ॥

अथ पंचम प्रपाठके नवम खंड प्रारभ्यते ॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापःपुरुषवचसो भवन्तीति सउल्बावृतो गर्भो दशवा मासानन्तःशयित्वा यावद्वा थजायते १ ॥

अक्षरार्थ ॥

इसप्रकार तो पांचवीं आहुति करके हवन किया जल पुरुष नामवाला होता है। सो गर्भ जरायु (झिल्ली) करके वेष्टितहुआ दश वा नव मास पर्य्यन्त यावत् नैमितकाल है तावत् माता के गर्भस्थान में शयन करके पुनः उत्पन्न होताहै १ ॥

अथ भावार्थ नवम खंड मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, इस प्रकार तो ।:– उस जैबलि नाम राजाने श्वेतकेतुसे जो पंचम प्रश्न कियारहा कि–:। जिसप्रकार पांचवीं आहुति करके हवनकिया जल पुरुषनामवाला होताहै सो तू जानताहै तिस एकप्रश्नका व्याख्यान (राजाने गौतमप्रति) कहा॥ अबपूर्वोत्तर प्रश्नकी संगति देखावते कहते हैं। उस राजाने श्वेतकेतु से जो प्रथम प्रश्नकिया रहा कि " वेत्थयदितोऽधिप्रजाःप्रयन्तीति" तू जानताहै जो यहां से यह सर्व प्रजा जिसप्रकार ऊर्द्ध्वको जाती है। तिस प्रश्नका यह उपक्रमहै। सो गर्भ जो जलका पंचम परिणाम विशेष है, अरु श्रद्धा शब्दका वाच्य आहुतिरूप कर्म्मसे समवायको पायाहै, सो जरायु (झिल्ली) करके आवृत कहिये वेष्टितआहुआ दश वा नव वा तिससे न्यून अधिक मास पर्य्यन्त माताकी कोख (गर्भस्थान) बिषे शयन (निवास) करके कर्म्मानुसार जब प्रकट होनेका समय प्राप्त होताहै तब गर्भ से बाह्य उत्पन्न होताहै ॥

हे सौम्य, " उल्वावृतः " इत्यादि जो श्रुतिका कथनहै सो शरीरादि संसारसे केवल वैराग्यकेही हेतुहै। ' हे प्रियदर्शन ' देखो यह बड़ाही कष्टहै जो माताकी कुक्षमें शयन (निवास)है क्योंकि वो माताकी कुक्ष (गर्भस्थान) कैसाहै ' मूत्र ' विष्ठा, बात, पित्त,

कफ, रुधिर, पीव, इत्यादि अति अपवित्र वस्तुओं करके पूर्ण है। औ तिसकरके वो जरायु अति लिप्त अतिही अपवित्रहै। अरु देहका जो कारण स्त्रीका शोणित (मासधर्मका रुधिर) अरु पुरुषका वीर्य रूप बीज सो भी अतिही अपवित्रहै ।:—अर्थात् अति अपवित्र कि जिसके स्पर्शमात्रसे पुरुष सचिल स्नानादिक प्रायश्चित्तका अधिकारी अशुचि होताहै ऐसे, शुक्र शोणितका परिणाम कार्य शरीर सो पुनः वो उक्तप्रकारकी जरायुमें वेष्टित अरु उक्तप्रकारके गर्भाशयमें स्थित ताते यह महान् कष्टदशावाला—:। अरु तिसपर भी माताकरके भोजनकिये अन्नादिक तिसका परिणाम रस तिसकरके वर्द्धमान होनेवाले का महान कष्टहै ।:— अर्थात् गर्भस्थान 'जो अति अल्प सकुचित स्थानहै' तिसबिषे अन्नके विकार शुक्र शोणितके मिश्रितहुये उपजनेवाला गर्भ सो माता करके भक्षणकिये अन्न जलादिकों के सूक्ष्मरसको नाल नाम्नी नाड़ी विशेष द्वारा पायके जब उस स्थानमें वर्द्धमान होता है तब उसस्थानको अति अल्पहोनेके कारण तहां गठरीमें बँधेवत् फसा हुआ, अपनेअंगों के पसारनेको स्थान न पायके अतिही दुःखित होताहै—:। अरु तिस दशापर भी अपने कर्मों के अनुसार जो वो गर्भमेंही नष्ट न होके जब उसके जन्म होनेका समय आय प्राप्त होताहै तब अपान वायु करके ढकेला हुआ योनिद्वार से जब बाहर आवताहै तब ।:— जैसे सुबर्णकार लोहकी जन्तीनामक शस्त्र विशेषमें तारको खींचता है तैसे योनिद्वारसे खींचा हुआ—वो अत्यन्त क्लेश पावता है अरु तिस कारण से मूर्च्छित होताहै, अरु जब उस मूर्च्छा से जागताहै तब उस तात्कालीय अनुभव किये महान् क्लेशकी स्मृतिकर प्रथम रुदन करताहै—:। इस प्रकार जो उस अति क्लेशितके कष्टतर जन्मका कथनहै सो केवल वैराग्यकोही ग्रहण करावता है ॥ हेप्रियदर्शन जिसस्थान के निवास को मनुष्य एक क्षणमात्रको भी असह्य मानता है तिस स्थानमें दश वा कुछ न्यूनाधिक्य एतने दीर्घकाल पर्यन्त

स जातोयावदायुषं जीवति तं प्रेतंदिष्टमितोऽग्नयएव हरन्तियतएवेतोयतःसम्भूतोभवति २॥ ९ ॥

माताकी उक्त प्रकारकी कुक्ष (गर्भस्थान) में निवास तो अत्यन्तही दुःखतरहै। उसस्थान अरु तज्जनित दुःखको कहने को बाणी समर्थ नहीं १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो (गर्भस्थ) जन्मको पाय यावत् आयुष तावत् जीवताहै सो मरता है अग्नि बिषे दाह करनेको लेजातेहैं, क्योंकि द्युलोकादि अग्निक्रमसे यहां उत्पन्न हुआहै तिसहीसे अग्नि में दाह करनेके अर्थ कहआये हैं २ ॥ इति पंचम प्रपाठके नवमखंडः९ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका २ ॥

हे सौम्य, ।ः—यह जो श्रद्धाख्य जलको द्युलोकादि अग्निबिषे देवतारूपहुआ हवनकर्त्ता यजमान, जो यहांसे अग्निहोत्रकीआहुतिके साथ अपनीभावनाकरके भावित तन्मयहुआ आहुतिके क्रम से परिणामको पावतेसन्ते अन्तरिक्षके मार्गसे स्वर्गलोकमें जाय देवभावको प्राप्त हुआहै, सोई उस श्रद्धाशब्द के वाच्य जलरूप आहुति साथ अपनी भावना से तन्मय हुआ द्युलोकादि रूप अग्निबिषे आहुति हुआ क्रमसे परिणामको पावता हुआ पंचम रेतरूप परिणाम को पाय स्त्रीरूप अग्निमें आहुति हुआ देहके साथ तादात्म्य को पाया गर्भबिषे देहाकार परिणाम को पाय विशेषरूपसे प्रकटहो गर्भमें निवास करनेकी अवधिके पूर्ण हुए जन्म पावता है–ः ॥ सो (अग्निहोत्रका कर्त्ता यजमान) कथित प्रकार जन्मको पाय यावत् आयुष्य जीवताहै तावत् पुनः घड़ी यन्त्रवत् अपने गमनागमन के अर्थ कर्म्म करताही रहताहै ।ः— अर्थात् घटीयन्त्र रहटको कहते हैं, जैसे रहटकी हांड़ियां एक रस्सी साथ बँधीहुई कूपके भीतर अरु बाहर अधो ऊर्द्ध्व को भ्रमती हैं। तैसेही केवल अग्निहोत्रादि कर्म के कर्त्ता यजमान

रूप हांडियां अपने कर्म्मरूप रज्जुमें बँधे अन्तर्यामी की सत्ता के आश्रय अज्ञानरूप बैलके भ्रमाये इस संसाररूप महा अन्ध कूपविषे इस लोकरूप अधो से स्वर्गलोकरूप ऊर्द्ध्व को अरु स्वर्गलोक रूप ऊर्द्ध्व से इसलोकरूप अधो को उक्त प्रकार आवते जातेही रहते हैं । अरु जैसे रहटकी हांडियां भरीहुई ऊपर आवती हैं औ खाली हुई नीचे को जाती हैं । तैसे ही कर्म्मी अपने कर्मों करके संयुक्त स्वर्ग को जाते हैं वहां अपने कर्म्मोंके फल भोग के खालीहुए अधो इस लोक बिषे आवते हैं—: ॥ अथवा कुलालके चक्रवत् तिर्य्यग् भ्रमण के अर्थ ।:— अर्थात् घटीयन्त्र के दृष्टान्तसे जो ऊर्द्ध्व अधो गमनागमनरूपा गति कही है सो अग्निहोत्रादि कर्म्मके कर्त्ता कर्मीयोंके अर्थ जानना, अरु जो कर्म्म से रहितहै सो कुलालके चक्रवत् तिर्य्यग् भ्रमण कहिये ऊर्द्ध्व गमनसे रहितहुए इसही लोकविषे अनेक योनियों में भ्रमण करते हैं—: । यावत् कर्म्म करके प्राप्त किया शरीर का आयुष्य तावत् जीवता है । अरु सो इस प्रकार जीवता हुआ अपने आयुष्य के क्षीण हुए मरके अपने कर्म्मानुसार प्राप्त किया जो अपने अर्थ परलोक (अन्यशरीर) तिसके प्रति प्राप्त होताहै [अर्थात् " जातस्यहिध्रुवोमृत्यु ध्रुवंजन्ममृतस्यच " इस गीता स्मृति के प्रमाण से सम्यक् आत्मज्ञान विना जन्म मरण से रहिततारूप स्वस्ति (शान्ति) प्राप्त होतीनहीं] अरु जो कदापि जीवते वेदोक्त कर्म्म वा उपासना बिषे अधिकारीहुआ कर्म उपासना करत सन्ते मरणको पाया तब उसको अग्नि में अन्तेष्टिकर्म (दाह) करने के अर्थ इस ग्रामसे बाह्य अरण्य श्मशानमें ऋत्विज वा पुत्र लेजाते हैं ।:— अर्थात् राजा जब मृतक होताहै तब उसके शरीरके अन्तेष्टि संस्कारके अर्थ ऋत्विज अरु सामान्य गृहस्थको उसही निमित्त उसके पुत्रादि श्मशानपर्य्यन्त लेजाते हैं—: । हे सौम्य ऐसेही अग्निके सकाशसे श्रद्धादि आहुति क्रम करके यहां आवता है । अरु जिस करके पांचो अग्निविषे

आहुति हुआ परिणामको पाया उत्पन्न होताहै, इसही से मरता है तब अग्नि बिषे दाह करते हैं। अर्थात् वो कर्मी यजमान अपनीयोनि) उत्पत्तिका स्थान) जो अग्नि तिसको अपने बिषे प्राप्तकरताहै। अर्थात् वो यजमान अग्निभावको प्राप्तहोताहै ॥

हे सौम्य इस अग्निहोत्रके कर्त्ता यजमानकी अन्तेष्टिका प्रकार वृहदारण्य उपनिषद्के अष्टमाध्याय बिषे इस प्रकार कहाहै कि "। अथैनमग्नयेहरन्ति तस्याग्निरेवाग्निर्भवति समित्समिद्धूमोधूमोऽर्चिरर्चिरंगारा अंगारा विस्फुलिंगा विस्फुलिंगा तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पुरुषं जुह्वति तस्याआहुत्यै पुरुषो भास्वरवर्णः सम्भवति" ॥ अर्थ, जब यह अग्नि होत्रका कर्त्ता यजमान मरणको प्राप्तहोता है तब उसको अग्निमें आहुति करने के अर्थ ऋत्विजादि नगरसे बाह्यलेजाते हैं (अर्थात् अग्निहोत्रि के मरे पश्चात् उसके शरीरका दाह उस अग्निहोत्रकी अग्नि विषेहोता है अरु उसके शरीरके साथ उसकी अग्नि होत्रकी अग्निको भी बाहर लेजाते हैं) अरु तिस आहुति भूत शरीरके हवन करने की जो यह प्रसिद्ध अग्नि है सोई अग्नि है। :— हे प्रियदर्शन जैसे अग्निहोत्रकाकर्त्ता यजमान द्युलोकसे श्रद्धाख्य जलरूप आहुतिबिषे अपनी भावनाकर भावित तन्मयहुआ आहुति के क्रम से सोमादि रूप परिणामको पावता स्त्रीरूप अग्निबिषे वीर्यरूप से आहुतिहुआ गर्भरूपसे प्रकटहोय जन्मताहै, अरु यावत् आयुष तावत् जीवता अग्निहोत्र करताहै, अरु जैसे पूर्वकी आहुतियोंमें अपनी भावनाकर भावित तन्मयहुआ होताहै तैसेही इस शरीररूप आहुति ' जो पंचम आहुतिका परिणाम षष्ठ आहुति है, तिस साथ तन्मयहुआ मरणोत्तर ऋत्विजादि द्वारा वेदोक्त मन्त्रकरके अपने अग्निहोत्रकी इस प्रत्यक्ष अग्निबिषे आहुति हवनहुआ होताहै—।जो हवनका अधिकरण अग्निहै सो उसके शरीरकी आहुतिहोनेका द्युलोकादिवत् परिकल्पित अग्नि नहीं। अरु यह जो प्रसिद्ध पलाशादि काष्टरूप समित्है सोई उस प्र-

अथ पञ्चम प्रपाठके दशमखंडः ॥

तद्यइत्थंविदुःयचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासतेतेऽर्चि षमभिसम्भवत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्य्यमाणपक्षमापूर्य्यमा णपक्षाद्यान् षडुदंङतिमासाछंस्तान् १ ॥

सिद्ध अग्निका समित्है । अरु जो प्रसिद्ध धूमहै सोई धूमहै । अरु जो प्रसिद्ध अर्चि (ज्वाला) है सोई उस प्रसिद्ध अग्निकी ज्वालाहै । अरु जो प्रसिद्ध अंगारहै सोई उसका अंगारहै । अरु जो प्रसिद्ध चिनगारियांहैं सोई उस अग्निकी चिनगारियां हैं ऐसी जो प्रसिद्ध अग्नि तिसही इस अग्निविषे (ऋत्विजादि रूप) देवता पुरुषनाम शरीर रूप हविकी अन्तिम आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से पुरुष (यजमान) भास्वरवर्ण (अतिशय प्रकाशवान्) होताहै ॥ः—हे सौम्य उक्तप्रकार द्युलोकादि अग्नि विषे जलादि रूपसे आहुति हुआ यजमान इसलोकविषे आवता है, अरु यहां यावत् आयुष तावत् अग्निहोत्र कर्मद्वारा अग्निकी आराधना उपासना करताहै । अरु जब मरताहै तब अपने उपास्य अग्निविषे ऋत्विजादि द्वारा आहुति हुआ उस अग्निकरके प्रथम अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्तहो पुनः स्वर्गलोकमें जाय अतिशय प्रकाशवान् देवतारूप होताहै । इस प्रकार अग्निहोत्र के कर्त्ता यजमानका आवागमन जानना ॥ २ ॥ इतिनवमखंडः ९ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो सो इस (विद्या) को जानते हैं, औ जो अरण्यमें श्रद्धा तपको उपासते हैं सो अर्चिषको प्राप्तहोते हैं अर्चिषसे दिवसको दिवस से शुक्लपक्ष को शुक्लपक्ष से छः उत्तरायण के मासों को तिन (मासों से) १ ॥

अथ पंचम प्रपाठकेदशमखंडः १० ॥

भावार्थ मन्त्र प्रथम का ॥

हेसौम्य, पूर्व जो राजा जैवलिने श्वेतकेतु प्रति प्रथम प्रश्न

किया रहा कि "। वेत्थ यदितोऽधिप्रजाः प्रयन्ति"। तू जानता है जिस प्रकार यह सर्वप्रजा मरके ऊर्द्ध्वको जाती है। यह प्रश्न अब निर्णय करने को उपस्थित है। तहां लोकविषे जो अधिकृत (यथा समय सर्व संस्कारको प्राप्त हुआ अधिकारी गृहस्थ गृहमेधी) (न्यायसे कुटुम्ब का पोषण कर्त्ता) अग्निहोत्रि गृहस्थ के अर्थ यह यथोक्त पंचाग्नि विद्याको कि हम द्युलोकादि पांच अग्निसे क्रमकरके उत्पन्नहुये हैं।:- अर्थात् अग्निके अरु आहुति के साथ अपनी भावनाकरके भावित तन्मय अग्निरूप हुये हम प्रथम श्रद्धाख्य जलविषे अपनी भावनासे भावितहुये द्युलोकाख्य अग्निविषे आहुतिहुये सोमरूपसे, अरु तिस अपने सोमरूपकी पर्जन्याख्य अग्निविषे आहुतिहुये वर्षारूपसे, अरु तिस अपने वर्षारूपकी पृथिवीरूपा अग्निविषे आहुतिहुये अन्नरूप से, तिस अपने अन्नरूपकी पुरुषाग्नि विषे आहुतिहुये वीर्यरूपसे, अरु तिस अपने वीर्यरूपकी स्त्री रूप अग्नि विषे आहुति हुये इस पुरुषनामक शरीररूपसे हम प्रकटहुये हैं। इसप्रकार द्युलोकादि पांचअग्नि के क्रम से हम उत्पन्नहुये हैं -:॥ अतएव हम अग्निरूप हैं। इस प्रकार जो जानता है (सो उत्तर मार्गको प्राप्तहोता है)॥ प्रश्न ॥ "तद्य इत्थं विदुः"। सो जो इसको जानताहैं, ऐसा जो श्रुतिका कथन है सो किसके अर्थहै॥ उत्तर यह कथन गृहस्थ के अर्थ है अन्यके अर्थ नहीं। गृहस्थों के मध्य जो उक्त विद्याको न जानके केवल इष्टा पूर्त्त दत्तके परायणहो-रहे॥:-अर्थात् इष्टा कहते हैं अग्निहोत्रादि वैदिक नित्यकर्मादिकोंको, अरु पूर्त्ता कहते हैं वापि,कूप, तलाव, बाग, धर्मशाला आदिक अन्योंके सुखार्थ स्मृति उक्त प्रमाणानुसार करने को, अरु दान कहते हैं 'अन्न गौ धन ग्रामादि, यथाधिकारसे दान करना-:॥ तिन केवल कर्म्मी गृहस्थोंके अर्थ धूमादि क्रम से (दक्षिणायनमार्गसे) चन्द्र लोकको जाते हैं, ऐसा कहाहै॥ अरु जे अरण्योपलक्षित।:-अर्थात्। "ये चेमेऽरण्ये"। इस वाक्य करके अ-

रण्योपलक्षित (अरण्यके निवासी) बानप्रस्थ अरु संन्यासी श्रद्धा तपकी उपासना करनेवाले (हिरण्यगर्भादि सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाले) तिनको अर्चिरादिमार्ग से (उत्तरायणमार्गसे) गमन कहाहै ॥:— अर्थात् अरण्यके निवासी बानप्रस्थ अरु आत्मज्ञानसे रहित त्रिदंडि आदिकों को श्रद्धा तप पूर्वक हिरण्यगर्भ वा प्रणवादि सगुण ब्रह्मकी उपासना से अर्चिरादिमार्ग करके उत्तरायणगतिकी प्राप्ति कहिहै । अतएव उनके अर्थ "इत्थं विदुः" पंचाग्निका जानना उत्तरमार्गकी प्राप्तिके अर्थ मुख्यनहीं —:॥ अतएव उनसे परिशेष (अवशेष) रहनेसे अरु अग्निहोत्र की आहुति के सम्बन्धसे केवल गृहस्थही के अर्थ "इत्थंविदुः" इस वाक्यका कथन है ॥

हे सौम्य ।:— अब गृहस्थ के अर्थ कहा जो पारिशेष तिसविषे वादी आक्षेप करता है—:॥ शंका ॥ ननु ग्रामश्रुति करके अरु अरण्य श्रुति करके ।:— अर्थात् "येचेमेऽरण्ये" अरु "अथ य इमे ग्रामा" इन दोनों श्रुति करके अरण्य उपलक्षण करके बानप्रस्थ अरु संन्यासी का अरु ग्राम उपलक्षण करके गृहस्थों का, ग्रहण है —:। बानप्रस्थ संन्यासी औ गृहस्थ इनका ग्रहण है । तैसे उभय स्थान में ब्रह्मचारी का भी ग्रहण है तब गृहस्थको ही "इत्थं विदुः" पंचाग्निकी विद्या के जानने के अर्थ कैसे पारिशेष कहते हो । :—अर्थात् अरण्योपलक्षित वानप्रस्थ अरु संन्यासी को उत्तर मार्गकी प्राप्तिके अर्थ पंचाग्नि विद्या का ज्ञान न होके हिरण्यगर्भादि सगुण ब्रह्मकी उपासनाहै, अतएव अरण्योपलक्षितों से इतर ग्रामोपलक्षित गृहस्थको ही पारिशेष मानके उसको उत्तर मार्गकी प्राप्ति के अर्थ पंचाग्नि विद्याका ज्ञान कहा सो युक्त नहीं, क्योंकि जैसे अरण्योपलक्षितों से गृहस्थको पारिशेष माना, तैसे दोनों उपलक्षणों करके लक्षितों में ब्रह्मचारी भी पारिशेष ग्रहण होता है । अतएव ब्रह्मचारीको उत्तरमार्ग की प्राप्ति के अर्थ "इत्थं विदुः" इस श्रुतिसे पंचाग्नि विद्याका ज्ञान

कहना युतहै–:। [हे वादी तैंने जो "। तद्य इत्थं विदुः" 'सोजो इस (पंचाग्नि विद्या) को जानता है, इस श्रुतिको ब्रह्मचारी के अर्थ कहा–:। क्या नैष्टिक ब्रह्मचारीके अर्थ ग्रहण किया वा उपकुर्वाण ब्रह्मचारी के अर्थ कहा (ग्रहण किया) तहां प्रथम आदि विकल्पको दुषण कहते हैं] ॥ उत्तर ॥ हे वादी तूनेकहासो दोष नहीं, क्योंकि ऊर्द्ध्वरेता नैष्टिक ब्रह्मचारी के अर्थ पुराण स्मृतियों के प्रमाणसे उत्तर मार्गकी गति प्रसिद्ध है, अतएव सो भी अरण्योपलक्षित वानप्रस्थ संन्यासियों के साथ उत्तरगतिको जाताहै। अरु जो उपकुर्वाण संज्ञक ब्रह्मचारी है सो वेदाध्ययन करने पर्य्यन्तही है अतएव इसका विशेष करके ग्रहण नहीं ॥:– अर्थात् जो यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् आजन्म पर्य्यन्त बिवाह न करके ब्रह्मचर्यसे गुरुकुलमें बास करते हैं अरु जिनका वीर्यपात होता नहीं तिनको ऊर्द्ध्वरेता नैष्टिकब्रह्मचारी कहते हैं तिनको अपने ब्रह्मचर्य्य धर्म्मके प्रभावसे उत्तरायणमार्ग प्राप्त होताहै। अरु जो यज्ञोपवीत संस्कारके उत्तर वेदाध्ययन करने पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य करके पश्चात् गृहस्थाश्रमको ग्रहण करते हैं तिनको उपकुर्वाण ब्रह्मचारीकहतेहैं। तातें नैष्टिकब्रह्मचारीका अरण्योपलक्षितोंके साथग्रहणाहै, अरु उपकुर्वाण ब्रह्मचारीका ग्रामोपलक्षित गृहस्थके साथ ग्रहण है। तातें उभय प्रकारके ब्रह्मचारियों का पृथक् ग्रहण नहीं–:॥ शंका। ननु यदि ऊर्द्ध्वरेतत्व उत्तर मार्गकी प्राप्तिका कारण पुराण स्मृतियों के प्रमाण होने से इच्छितहै तो "। इत्थं वित्व "। पंचाग्नि विद्याके जाननेपने को (अर्थात् ज्ञान को) अनर्थताकी प्राप्तिहोती है ॥ समाधान ॥ सो नहीं, क्योंकि "। इत्थंवित्व "। को अर्थात् पंचाग्नि विद्याके जाननेपनेको गृहस्थोंके अर्थहोने से, सो अनर्थक (निष्प्रयोजन) नहीं। अरु जो गृहस्थ लोक इस पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले अग्निहोत्रके कर्त्ता केवल कर्म्मी हैं तिसके अर्थ स्वभावसेही धूमादि लक्षणवान् दक्षिण मार्ग (गति) प्रसिद्धहै। तिन केवल कर्म्मी गृहस्थों

हीके मध्य जे कोई कहे प्रकारसे इस पंचाग्नि विद्याको जानता है, अर्थात् पंचाग्नि विद्याकरके वा अन्य प्रकारसे सगुण ब्रह्मको जानता (उपासताहै) सो देवयान उत्तरायणमार्गकरके (ब्रह्मलोक) को जाताहै ॥" अथ यदुचैवास्मिन् शव्यंकुर्वन्ति यदिच नार्च्चिषमेवेतिलिंगादुत्तरेण ते गच्छन्ति "॥ शंका ॥ ननु ऊर्द्ध्वरेतोंका अरु गृहस्थोंका आश्रमित्वपने में समानता होने से ऊर्द्ध्वरेताही उत्तरायण मार्गसे जाताहै गृहस्थ नहीं ऐसा कथन युक्त नहीं। क्योंकि गृहस्थको अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मकी बाहुल्यता होने से (फल बाहुल्यता भी युक्तहै) [ऊर्द्ध्वरेता अरु गृहस्थको आश्रमित्वपने विषे समता कही तहां गृहस्थको विशेषता देखावते हैं, गृहस्थको अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म्मोंकी बाहुल्यताहै तिस बाहुल्यता के होते सन्ते भी अविद्वान् (पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले) ऊर्द्ध्वरेताओंकोही देवयान मार्गकरके गमन है गृहस्थोंका नहीं, ऐसा कथन योग्य नहीं। क्योंकि अग्निहोत्रादि साधनोंकी बाहुल्यतासे फलकी बाहुल्यता न होनी यह न्यायसे विरुद्धहै]॥ समाधान ॥ यह दोष नहीं [ऊर्द्ध्वरेता अरु गृहस्थके आश्रमित्वपने में अविशेषताके हुएभी उनके परस्परके धर्म्मकी विशेषतासे विशुद्धिकी तारतम्यताहोने से इनकी एकरूपता नहीं इसप्रकार उक्त शंकाका परिहार करतेहैं]॥:—अर्थात् वादी शंका करताहै कि पंचाग्नि विद्याके जाननेवाले अविद्वान् ऊर्द्ध्वरेताको उनके धर्म्मानुसार उनको उत्तर मार्गकी गति पुराण स्मृतियोंके प्रमाण से कही, अरु अविद्वान् (पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले) गृहस्थ के अर्थ न कही सो युक्त नहीं, क्योंकि उस अविद्वान् ऊर्द्ध्वरेताकी अपेक्षा उस अविद्वान् गृहस्थ के अग्निहोत्रादि वैदिक धर्म्म की विशेषताहै, अतएव उसके अर्थ उत्तरायण गति रूप फलकी विशेषता न होनी यह न्याय करके विरुद्धहै, इस प्रकार की जो वादीकी शंका तिसका समाधान करते हैं—:॥ हे वादी तूने कहा सो यह दोष नहीं, क्योंकि जो अपूत (अशुचि)

ही है ताते ॥ शंका ॥ पंचाग्नि विद्यासे हीन अग्निहोत्रादि बहुत से धर्म्मवान् को भी अशुचिता कैसेहै ॥ समाधान ॥ तिस अग्निहोत्रादि धर्म्म की बाहुल्यता वाले अविद्वान् कर्म्मी गृहस्थ को शत्रु मित्रके संयोग निमित्तों सेही रागद्वेष है। तैसेही हिंसा अनुग्रह के निमित्त के किये धर्म्म अधर्म्म भी हैं ॥:-अर्थात् गृहस्थ को पुत्रादि कुटम्बवान् होने से उसके शत्रु मित्रका होना संभव है। अरु शत्रु मित्रके होनेसे रागद्वेष का भी संभव है। अरु रागद्वेष होनेसे शत्रुके निमित्त की अशुभ चितवना रूपा हिंसा अरु मित्रके निमित्तका शुभ चितवन रूप अनुग्रहका संभवहै, अरु सोई धर्म्म अधर्म का निमित्त है-:॥ अरु हिंसा मिथ्याभाषण कपट अब्रह्मचर्य्य परिग्रहादि पुनः अन्य भी। अरु तिसके बहुतसे शुद्धिके कारण भी हैं तथापि उक्त अपूतत्व का परिहार (निवारण वा प्रायश्चित्त) नहीं, अतएव वो अपूत (अशुचि वा अपवित्र) हीहै ॥ शंका ॥ तुल्य ऊर्द्ध्वरेताको भी अशुद्धिके हेतुकी बाहुल्यता होनेसेउसकोभी अपूतत्वहै॥समाधान॥:-उसऊर्द्ध्वरेताकोतमोगुणके कार्य-:॥हिंसा(निर्दयता)मिथ्याभाषण कपट अब्रह्मचर्य्य (स्त्री लम्पटता)आदिकोंका परिहार होनेसे उस शुद्धात्माको (शुद्ध अन्तःकरण वालेको) ही इतर शत्रु मित्र रागद्वेषादिको(रजोगुण के कार्यों) का परिहारहोने से सो विरज ।:-अर्थात् वो उक्त दोषों के परिहारसे रज तमके कार्य्य से रहित विरज शुद्ध अन्तःकरण वाला है-:। तिसको उत्तर मार्ग युक्त है ॥ तहां पौराणिक कहते हैं । तथाच "। येप्रजामीषिरेऽधीरास्तेश्मशानानिभेजिरे । ये प्रजानेषिरेधीरास्तेऽमृतत्वांहिभेजिरे, इत्याहुः "। शंका ॥ पंचाग्नि विद्याके जानने वाले गृहस्थों को अरु अरण्यवासी वानप्रस्थ संन्यासियों को समान मार्ग करके अमृतत्वरूप फलकी प्राप्ति से अरण्यवासियों को विद्या अनर्थकी प्रापक है अरु तैसेही श्रुति से भी विरोध है। तथाच "। न तत्र दक्षिणायन्ति ना विद्वांसस्तपस्विन इति "। "। स एवमविदितो नभुनक्तीति "। यह विरोध

है ॥ समाधान ॥ सो नहीं "। आभूत संप्लवस्थान "। का अमृतत्व करके कथन है ताते । तहां पौराणिक ही कहते हैं "। आभूत संप्लवंस्थानममृतत्वंहिभाष्यत इति "। जो कि आत्यन्तिक अमृतत्व मोक्ष है तिसकी अपेक्षा करके "। न तत्र दक्षिणा यन्ति, स एनम विदितो न भुनक्तीत्याद्याः श्रुतयः "। तहां दक्षिण मार्गवाला नहीं जाता, सो इसको न जानने वाला नहीं भोक्ता (नहीं प्राप्तहोता) इत्यादि श्रुतियोंका बिरोध नहीं ।:—अर्थात् ऊर्द्ध्वरेताको जो उत्तरमार्ग से ब्रह्मलोकप्राप्ति सम्बन्धी अमृतत्व प्राप्तिहै सो पंचाग्नि विद्याके न जानने वाले अविद्वान् गृहस्थ जो दक्षिणमार्ग से पितृलोक के अधिकारी हैं तिनकी अपेक्षावाला होने से सापेक्षिक है, वा आत्यन्तिक मोक्ष की अपेक्षा ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अमृतत्व गौण है, क्योंकि उत्तरायण मार्ग से वा सुषुम्णा नाड़ीद्वारा ब्रह्मरंध्रको भेदनकरके उक्तनाड़ी के मार्ग से जानेवाले की है ताते । अरु ब्रह्मलोक रूप अमृतत्व पावने वाला पुनः इस कल्पमें इसलोकमें पुनरावृत्ति न पायके वहांही रहता है परन्तु कल्पान्तरमें पुनः आवताहै । अतएव ब्रह्मलोककी प्राप्ति से आवागमन से रहितरूप जो मोक्षहै सो आत्यन्तिकी मोक्षकी अपेक्षा गौणहै ॥ अरु "। सदेक मेवाद्वितीयम् "। एकही अद्वितीय सत् में हों इसप्रकारकी प्रत्ययवाला (साक्षात् अनुभवनिश्चयवाला) ।:— अर्थात् "। एतदात्म्यमिद ꣳसर्वंतत्सत्य ꣳ सआत्मातत्त्वमसि"। इत्यादि प्रकार तत्त्वमस्यादि महावाक्य के श्रवण से जिस को अपने आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अपने आप आत्मा का, संशय विपर्ययादि सर्व व्यवधान से रहित सम्यक् साक्षात्कार अनुभव निश्चय हुआ है तिस आत्मज्ञानी का मस्तक विदीर्ण करके सुषुम्णा नाड़ीद्वारा वा अर्चिरादि मार्गद्वारा उसका लोकान्तर में गमन नहीं, उसका जो स्व स्वरूप का यथार्थ ज्ञान से ब्रह्म आत्माका अभेदरूप मोक्ष है सो यहां जीवतेही होताहै, आत्मज्ञान के निमित्त वाला होने से । तथाच "। ब्रह्मैवसन् ब्रह्मा

प्येति "। "तस्मात्सर्वमभवत्"। "न तस्यप्राणा उत्क्रामन्ति"। "अत्रैव समवलीयन्ते"। इत्यादि श्रुतिशतेभ्यः ॥ इत्यादि सैकड़ों श्रुतियों के प्रमाण से ॥ शंका ॥ हे वादी जो तू ऐसी कल्पनाकरे कि यह जो "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति"। श्रुति है तिसका अर्थ यह है कि जीवसे पृथक् होके प्राण उत्क्रमण होते नहीं किन्तु जीवके साथही जाते हैं, तो सो नहीं। क्योंकि जो उक्त अर्थ को अंगीकार करेंगे तो "अत्रैव समवलीयन्ते" यह श्रुतिने जो कहाहै यहांही सम्यक् प्रकार लय होताहै, सो यह विशेषण अनर्थक होने से, अतएव आत्मज्ञानीके प्राणके उत्क्रमणकी शंकाही करनीयोग्य नहीं। अरु यद्यपि मोक्ष हुए को संसारगति की विलक्षणता होने से प्राणोंका जीव के साथ आगमन की शंका न होवे एतदर्थ "तस्मान्नोत्क्रामन्ति" उत्क्रमण नहीं होते, ऐसा श्रुति का कहना है। अरु जो जीव करके सहित प्राणोंके उत्क्रमणकी शंका होवेगी तो यह जो श्रुतिने विशेषण कहाहै कि "अत्रैव समविलीयन्ते" सो अनर्थक होताहै ताते। अतएव प्राण से पृथक् हुएको शरीरसे बाह्य निकलके लोकान्तरकी गति प्राप्त नहीं ॥:—अर्थात् जिसके प्राण आत्मज्ञानके न होने से अधिष्ठान चैतन्यमें लीन होते नहीं तिसका प्राणके साथ शरीरसे उत्क्रमण होय लोकान्तर वा शरीरान्तरको गमनहै। अरु जिसके प्राण सम्यक् आत्मज्ञान द्वारा अपने अधिष्ठान में लीन होताहै तिस ज्ञानवान के प्राण शरीर से उत्क्रमण होते नहीं वो जिस आत्मअधिष्ठान से फुरे हैं तिसही में लयहोते हैं—: ॥ ["कस्मिन्नहमुत्क्रांतउत्क्रान्तोभविष्यामि। कस्मिन्वाप्रतिष्ठितेप्रतिष्ठास्यामीति ॥ स प्राणमसृजत"॥ अर्थ, सो परमात्मा प्रथम इच्छा करता हुआ कि मुझ निराकार निर्विशेष का किसके उत्क्रमण (निकलने) से उत्क्रमण होगा, औ किसके रहने से रहनाहोगा। :—क्योंकि मुझ अक्रिय निराकार विषे गमन अरु स्थित होने रूप व्यापार बनेनहीं, अरु गमनादि व्यापार सर्व सिद्धहुआ चाहिये—:। ऐसा विचार वो

परमात्मा अपने गमनागमन वा स्थिति के अर्थ प्रथम प्राणको सृजता हुआ]। :—अतएव उक्त श्रुति के प्रमाण से एक अद्वैत सत् निराकार निर्विशेष आत्माके जो जीवत्वपने की प्राप्ति अरु आवागमनकी प्राप्तिहै सो प्राणरूप उपाधि के सम्बन्धसे ही है, प्राणसे पृथक् हुएकी गमनागमन रूपागति उपपद्य नहीं-:। अरु [एक अद्वैत चिदात्माको प्राणसे पृथक् हुए जीवपनेकी भी प्राप्त नहीं, क्योंकि उस एक अद्वैत चिदात्माको जो जीवशब्दका वाच्यपनाहै सो प्राणरूप उपाधि का किया है] ॥ एक अद्वैत चैतन्यको सर्वात्मा अरु निरावयव होने से प्राणके सम्बन्ध मात्र से ही अग्नि से विस्फुलिंग (चिनगारी) वत् जीवत्वपने अरु भेद की प्राप्ति का कारण है । अतएव तिस प्राणरूप उपाधि के वियोग (अभाव) हुए सामान्य सर्व्वात्मा निराकार निरावयव चैतन्यविषे जीवपने अरु गमनागमन गतिकी कल्पना करने को कोई भी समर्थ नहीं ॥ :—अर्थात् जैसे इंधन युक्तविशेष प्रज्वलित अग्नि से इंधनरूप उपाधि के सम्बन्ध से अल्पचिन्गारियां उत्थान होती हैं तब उस उपाधि के सम्बन्ध से उस अग्नि विषे चिन्गारीपना अरु उस महत् अग्नि से पृथक्पना अल्पपना प्राप्त होता है, अरु जब वो चिन्गारी विशिष्ट अग्नि चिन्गारी को त्याग निर्विशेष सामान्य अग्नि साथ अभेद होताहै तब उस विषे उस सामान्य अग्नि से भिन्न अल्परूप चिन्गारी है ऐसी कल्पना करनेको कोई भी समर्थ नहीं । तैसेही समान सर्वात्मा निराकार परमात्मा से उसकी इच्छानुसार, अर्थात् इच्छारूपा माया विशिष्ट चैतन्य से प्राणके स्फुरणहुए प्राण विशिष्ट चैतन्यकी प्राणके सम्बन्धसे जीवसंज्ञा अरु गमनागमनवान् ब्रह्म से भिन्नपना भासे है । अरु जब सम्यक् आत्मज्ञानकरके प्राणरूप उपाधि चैतन्य सत्तासे पृथक् होतीहै वा प्राण अपने अधिष्ठानमें लयहोताहै तबउस प्राण रूपा उपाधिसे रहित शुद्ध सामान्य निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान चैतन्य विषे जीवपने की अरु गमना-

गमनकी अरु ब्रह्म से पृथक् पनेकी कल्पना करने को कोई भी समर्थ नहीं—: । ताते सर्वात्मा शुद्ध निर्विशेष निरावयव निर्विकार निराकार सत् चैतन्यविषे अणुभाव जीवत्व अरु ब्रह्मरन्ध्र में छिद्र करके' ब्रह्मलोकको वा अन्य नाड़ियों के मार्ग से अन्य लोकान्तरको' जाताहै। इसप्रकारकी कल्पना करनेको कोई भी समर्थ नहीं ॥ एतदर्थ । "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" । यह जो नाड़ी द्वारा उत्क्रमण होय अमृतत्वकी प्राप्तिहै सो सगुण ब्रह्मकी उपासनावाले उपासककोहै अरु सोऽमृतत्वकी प्राप्ति नाड़ीके मार्गकी अपेक्षा करनेवाली होने से सो (ब्रह्मलोक सम्बन्धी) सापेक्षक अमृतत्वहै। वो साक्षात् मोक्षनहीं। तथाच "तदपराजितापूस्तदैरं मदीयंसर तदश्वत्थः सोमसवन" इत्यादि श्रुतिने कहा है। अरु "तेषामेवैषब्रह्मलोक" इत्यादि विशेषणों से। एतदर्थ, पंचाग्निविदो, गृहस्थकोही कहाहै।:—अर्थात् तात्पर्य यहहै कि "तद्य इत्थं विदुः" इस श्रुतिने जो कहाहै कि इस पंचाग्नि विद्याका जाननेवाला उत्तरायण मार्गकी गतिको प्राप्तहोता है, सो केवल गृहस्थके अर्थही कहाहै अन्यके अर्थनहीं, क्योंकि गृहस्थ से इतर जे' नैष्टिक ब्रह्मचारी' वानप्रस्थ, अरु संन्यासी, ये अपने२ आश्रम धर्म्म करके अरु हिरण्यगर्भादि सगुणब्रह्म की उपासना करके उत्तरायण मार्गकी गतिको प्राप्त होते हैं। अरु गृहस्थको अग्निहोत्रादि इष्टा, अरु वापी कूप आरामादि पूर्त्त अरु दान, इन कर्मोंका अधिकार विशेषहै क्योंकि इसके न करनेसे उसकोप्रत्यवायहै, अरु हिरण्यगर्भादिकोंकी उपासना न करनेसे उसकोप्रत्यवाय नहीं। तैसेही नैष्टिक ब्रह्मचारी अरु वानप्रस्थ अरु संन्यासी तिनमें संन्यासी को छोड़के उक्त दोनों को हिरण्यगर्भ की उपासना मुख्य है और गौण है। अरु संन्यासी को एक प्रणवरूप सगुण ब्रह्मकीही उपासना कर्त्तव्य है और नहीं। अतएव इन तीनों को उक्त सगुण ब्रह्मोपासना उत्तरमार्ग प्राप्ति का कारणहै, ताते इनके अर्थ पंचाग्नि विद्याका ज्ञान उत्क्रगति की प्राप्ति में

हुआ न हुआ तुल्य है । अरु गृहस्थ को उत्तरमार्ग की गति की प्राप्तिमें एक पंचाग्नि विद्याका उक्तप्रकार का ज्ञानही मुख्य कारणहै और नहीं । अतएव "तद्यइत्थं विदुः" यह जो श्रुतिका कथन है सो केवल गृहस्थ के अर्थही है अन्यके अर्थ नहीं ॥ अरु अरण्योपलक्षित जे वानप्रस्थ संन्यासी नैष्टिक ब्रह्मचारी करके सहित श्रद्धा सम्पन्न हुए तपाचरण के करनेवाले सगुण ब्रह्मके उपासक । अर्थात् "श्रद्धातपइत्युपासत" इस श्रुति में जो उपासन शब्द है सो तात्पर्य्य वाची है, जैसे गृहस्थ के अर्थ "इष्टापूर्त्तेदत्तमित्युपासते" इस श्रुति में उपासन शब्द तात्पर्य्य वाची है तैसे ॥ श्रुत्यन्तर प्रमाण "येचसत्यं ब्रह्महिरण्यगर्भाख्यमुपासते तेसर्वेऽर्च्चिषं" अर्च्चिरभिमानीन्देवतामभिसंविशयति, प्रतिपद्यन्ते" ताते जे अरण्य निवासी वानप्रस्थ संन्यासी अरु नैष्टिक ब्रह्मचारी, श्रद्धासम्पन्न तपाचरण उपासनाके करनेवाले हैं सो देह त्यागोत्तर अर्च्चिके अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं । तिस अर्च्चिअभिमानी देवता से आगे दिवसके अभिमानी देवता को प्राप्तहोते हैं । तिस दिवसाभिमानी देवतासे आगे शुक्लपक्षाभिमानी देवता को प्राप्तहोते हैं । तिस शुक्लपक्षाभिमानी देवता से आगे उत्तरायण के षट्मासाभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं, तिन (मासों से) ॥ १ ॥–॥ अथवा पंचाग्नि विद्याकी सम्यक् ज्ञातपूर्वक इष्टापूर्त्तादत्त (दान) का करनेवाला गृहस्थ अरु नैष्टिक ब्रह्मचारी अरु वानप्रस्थ यहतीनों कि जिनके मरणोत्तर शरीरका दाह अग्निविषे होताहै सो अरु चतुर्थ त्रिदंडी आदिक गौण संन्यासी जिनके शरीरका दाह अग्निबिषे होता नहीं सो, इसप्रकार उक्त चारो अपने सत्यधर्म्माचरण विद्याकेप्रभावसे शरीर त्यागोत्तर प्रथम अर्च्चि अभिमानी देवता को प्राप्तहोता है, वहांसे उसको दिवसका अभिमानी देवता लेजाताहै दिवस के अभिमानी देवतासे उसको शुक्लपक्षका अभिमानी देवताले जाताहै । पुनः वहां से उसको उत्तरायणका षट्मासाभिमानीदेवताले जाताहैतिन॥१॥

मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो मानवः सएनां ब्रह्मगमयत्येष देवयानः पन्था इति २ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन, मासोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युतको। तिस विद्युतको प्राप्त हुएको ब्रह्माका मानसपुरुष ब्रह्मलोक लेजाताहै, यह देवयान मार्गहै २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका २ ॥

हे सौम्य, राजा जैबलि उद्दालक से कहताहै कि हे गौतम, उक्त प्रकार के चारो आश्रम के विद्वान् उपासक पुरुष देह त्यागोत्तर उत्तरायण के षट्मासाभिमानी को प्राप्तहोते हैं, तब उन षट्मासाभिमानी देवता से आगे संवत्सराभिमानी देवताको प्राप्तहोता है, तिस संवत्सराभिमानी देवता से आगे आदित्याभिमानी देवताको प्राप्तहोता है। तिस आदित्याभिमानी देवता से आगे वो चन्द्राभिमानी देवता को प्राप्तहोता है। पुनः तिस चन्द्राभिमानी देवता से आगे वो विद्युताभिमानी देवता को प्राप्तहोता है। इस प्रकार जब वो विद्वान् उपासक विद्युताभिमानी देवताको प्राप्तहोते हैं तब वहां से उनको ब्रह्माके मानस सृष्टिका ब्रह्मलोक निवासी ब्राह्मणोंमेंसे कोईएक सत्यलोकनाम वाले ब्रह्माके ब्रह्मलोकको प्राप्तकरता है।:- अथवा उक्त प्रकार जब वो विद्वान् उपासक उत्तरायण के षड्मासाभिमानी देवता करके तहां प्राप्तकिया होता है तब वहां से उसको संवत्सरका अभिमानी देवता ले जाताहै। तब उस संवत्सर के अभिमानी देवता से आगे उनको चन्द्राभिमानी देवता लेजाताहै। तहां से उनको विद्युतका अभिमानी देवता लेजाता है। इसप्रकार जब वो विद्युताभिमानी देवताको प्राप्त होताहै तब वहां से उस

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्त्ते दत्तमित्युपासते तेधूममभि
सम्भवन्ति धूमाद्रात्रिछंरात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्द
क्षिणैतिमासाछंस्तान्नैतेसंवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ३ ॥

को ब्रह्मलोक से ब्रह्माकी मानस सृष्टिका पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है ॥ इसप्रकार करके चारों आश्रम के विद्वान् तपस्वी उपासक ब्रह्मलोक सम्बन्धी पुरुष करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं, तब वहांदेवतारूप हुए सर्ब्बोत्तम सर्वसे उत्कृष्ट भावको पाय वहां अनेकदिव्यवर्ष पर्य्यन्त अर्थात् यावत् पर्य्यन्त ब्रह्मा ब्रह्मलोक में निवासकरता है तावत् पर्य्यन्त वो भी वहां निवास करता है। वो ब्रह्मलोकको प्राप्तहुए पुनः इस संसार में पुनरावृत्तिको पावते नहीं, यही उनको अमृतत्वकी प्राप्ति है । परन्तु ब्रह्माके मुख्य मोक्षहुए वो प्रकृति लक्षणरूप मोक्षकोपाय पुनः सृष्टिकाल में उनका आगमन होताहै । ताते ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मोक्ष सापेक्षिक होने से गौणहै २ ॥

अक्षरार्थ

जो यह ग्रामनिवासी गृहस्थ इष्टा पूर्त्त दान करते हैं सोधूम को प्राप्तहोते हैं, धूमसे रात्रिको, रात्रिसे कृष्णपक्षको, कृष्णपक्ष से दक्षिणायनके षड् मासों को, तिनमासोंसे संवत्सरको प्राप्त होता है ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ३ ॥

हे सौम्य, चतुर्थ गतिके व्याख्यान करके [उत्तरायण मार्गके व्याख्यान का उपसंहार करतेहैं] यह देवयान मार्गका कि जिस का सुषुम्णा नाड़ीके मार्ग बाह्य गमन से ब्रह्मलोक पर्य्यवसान (परम फल वा परमगति) है व्याख्यान किया । अंग । :— राजा जैवलिने श्वेतकेतु के प्रति प्रथम यह प्रश्नकिया रहा कि "वेत्थयदितोऽधिप्रजाः प्रयन्तीति " तू जानता है जैसे अधो से प्रजा ऊर्द्ध्व को जाती है । तिस प्रश्न का उत्तर उस राजानेही

इस उत्तरायण मार्ग के व्याख्यान से गौतम गोत्रवाले उद्दालक के प्रति कहा ॥ अरु कोई एक कहते हैं कि उक्तनाड़ी द्वारा निकल उत्तरायण देवयान मार्ग से जातेहैं सो ब्रह्मांड को भेदनकर तिसके बाह्य ब्रह्मको प्राप्तहोते हैं, तिसका निराकरण करते तिनके प्रति कहते हैं] " यदन्तरापितरंमातरञ्चेति, मन्त्रवर्णात् "। [पितर द्युलोकहै मातर पृथिवी है तिन माता पिताके मध्यही कर्म्म अरु उपासना के अधिकारी कर्म्मी उपासकों की गति है अंड से बाह्य गति नहीं] । :—क्योंकि कर्म उपासना का फल अरु तिस फल के प्राप्त होने के मार्ग ब्रह्मांडान्तरही है—: ॥ अब अर्थान्तर प्रस्तावना करके दक्षिणायन गतिको कहते हैं ॥ हे सौम्य राजा जैवलि उद्दालक प्रति कहता है कि हे गौतम । यहजो ग्रामउपलक्षण करके लक्षित जे गृहस्थहैं । अर्थात् यहां जे गृहस्थ के अर्थ 'ग्राम' यह जो असाधारण बिशेषण है सो अरण्यवासी वानप्रस्थादिकों से पृथक् करने के अर्थहै । जैसे वानप्रस्थ संन्यासियों को गृहस्थ से पृथक् करने के अर्थ अरण्य विशेषण है तैसे । सो ग्रामोपलक्षित गृहस्थ इष्टापूर्त्त दान को उपासता (कर्त्ता) है । तहां इष्टा कहिये अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्म्म, अरु पूर्त्त कहिये वापि (बावली) कूप आराम (बाग) धर्म्मशालादिक , कि जिससे मार्ग के चलनेवाले यात्री वा साधु संतोंको निवासादिक के अर्थ स्थानादिकों की प्राप्तिरूप सुखहोवे, तिनका बनवावना । अरु दान कहिये निर्द्धनादि यथाधिकारियों को धन अन्नादिकों का देना।:—अर्थात् सामान्य साधारण रीतिसे अन्न बस्त्रादिकों से रहित दीन पुरुषों के अर्थ अन्न वस्त्रका यथा शक्तिदेना । अरु विशेष रीति से जो किसी प्रकारके उद्देश से वा वार पर्वणी आदिकों में वा तीर्थोंमें दान करना सो अधिकारी विद्वान् ब्राह्मणों के अर्थ दान देना । अरु सर्वोत्तम दान वोहै कि जो कोई तीनों आश्रम के मनुष्य अपने २ धर्म्म में तत्पर होय ईश्वरोपासन आराधन करते हैं तिन्होंके अन्न वस्त्रकी अप्राप्तिरूप

निमित्त के किये विक्षेपको, जो उनके व्यवधानसे रहित निरन्तर धर्म्मानुष्ठान ईश्वर प्रणिधान में विक्षेपकारीहै; अन्न वस्त्र धनादिकोंके दान से अभाव करना, इससे अधिक उत्तम दान कोई नहीं—:॥ अरु [अपने गुरू माता पिता, ज्येष्ठ श्रेष्ठोंकी सुश्रूषा सेवाकरनी अरु शरण आयेकी रक्षकरनी ।:—अरु अग्निहोत्र से इतर संध्या गायत्री नित्यश्राद्ध तर्पण बलिवैश्यदेव स्वाध्याय अतिथिसेवनादि नित्यकर्म्म — :।] इन सर्वको यथा बिधिउपासतेहैं, अरु पंचाग्निविद्याको जानते नहीं सो तिस न जानने के हेतु से मरणोत्तर अग्निविषे दाहहुए प्रथम धूमको अर्थात् धूम शब्दकरके धूमाभिमानी देवताको प्राप्तहोताहै। पश्चात् तिसधूम से आगे रात्रिको (रात्रिके अभिमानी देवताको) प्राप्तहोते हैं। तिससे आगे कृष्णपक्ष के अभिमानी देवताको प्राप्तहोताहै। पश्चात् तिस कृष्णापक्षाभिमानी देवता से आगे दक्षिणायनके षड् छ मास कि जिन छ मासों (संक्रान्तियों) में सूर्य दक्षिणायन होताहै ।:—अर्थात् कर्क संक्रान्तिसे लेके धन संक्रान्ति पर्य्यन्त छ संक्रान्तिमें सूर्य दक्षिणायन रहता है—:। तिन षड्मासके अभिमानी देवताको प्राप्त होता है। तिन दक्षिणायन के छ मासों के अभिमानी देवतासे आगे संवत्सरके अभिमानी देवताको प्राप्त होतेहैं ॥ शंका॥ उसको संवत्सरके अभिमानी देवताकी प्राप्ति कैसे कही है, क्योंकि "मासेभ्यः पितृलोकं" ऐसा आगे श्रुतिने कहा है ताते —:॥ समाधान ॥ उसको संवत्सराभिमानी की प्राप्ति है, क्योंकि एक संवत्सरके ही उत्तरायण अरु दक्षिणायन दो अवयवहैं। तहां अर्चिरादि मार्ग से प्रवृत्तहुये को उत्तरायणके छ मास रूप अवयवों की प्राप्तिसे अवयवी संवत्सरकी प्राप्ति कही है। एतदर्थ यहां भी तिस संवत्सर अवयव भूत दक्षिणायन सम्बन्धी छ मासों की प्राप्ति श्रवण करके तिन अवयवों के अवयवी संवत्सरकी भी पूर्ववत् प्राप्ति प्राप्तहै, अतएव तिसका प्रतिषेध नहीं। अर्थात् संवत्सरकी प्राप्तिका निषेध नहीं। इसप्रकार

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमोराजा तद्देवानामन्नंतंदेवा भक्षयन्ति ४ ॥

अवयवके सम्बन्धसे अवयवी रूप संवत्सरकी प्राप्तिजाननी ३ ॥

अक्षरार्थ

तिन मासोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको, आकाशसे चन्द्रमाको, कि जो यह (ब्राह्मणों का) राजा सोमहै, सो देवताओं का अन्नहै तिसको देवता भक्षणकरते हैं ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ४ ॥

हे सौम्य वो राजा जैबलि गौतम (उद्दालक) प्रति कहता हुआ कि हे गौतम तिन दक्षिणायनके षड् मासाभिमानी देवता से आगे ' वो केवल कर्म्मी गृहस्थ पितृलोक को प्राप्तहोताहै, पुनः पितृलोकसे आगे आकाशको अर्थात् आकाशाभिमानी देवता को, प्राप्तहोताहै। पुनः आकाशके आगे चन्द्रमा को प्राप्त होताहै ॥ प्रश्न ॥ कौन सा वो चन्द्रमाहै।—कि जिसको वो केवल कर्म का करनेवाला गृहस्थ प्राप्तहोताहै ॥ उत्तर ॥ जो यह सोमनामवाला ब्राह्मणोंका राजा अन्तरिक्षमें प्रत्यक्ष दृश्य आवताहै, तिसको वो प्राप्तहोताहै। सो देवताओंका अन्नहै तिसको इन्द्रादिदेवताभक्षणकरतेहैं॥ अतः तिस धूमादि लक्षणवान् दक्षिणमार्ग करके गये चन्द्ररूप हुए कर्मीयों को देवता भक्षण करते हैं (अर्थात् वो चन्द्रलोकको प्राप्त हुआ यजमान देवताओं करके भक्षण किया होता है) ॥ शंका ॥ ननु यह इष्टादिक वैदिक कर्म्मोंका करना अनर्थ रूपही है, कि जिसके करने से अन्नरूप हुआ यजमान देवताओं करके भक्षण किया जाता है ॥ समाधान ॥ यह दोष नहीं ॥ क्यों कि यह जो अन्नका कथन है उपकरणमात्रही विवक्षित है ताते। उसको ग्रास करनेवत् देवता भक्षण करते नहीं ॥ प्रश्न ॥ कैसे वो देवताओं का उपकरण मात्रहोता है ॥ उत्तर ॥ वो स्त्री पशु भृत्यादिवत् भोग्यसामग्रीका उपकरण होता है,

तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते तमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमोभवति धूमोभूत्वाऽभ्रं भवति ५ ॥

अतएव उसको अन्नशब्द करके कहते हैं ॥ तथाच "॥ स्त्रियोऽन्न पशवोऽन्नं विशोऽन्नं राज्ञामिति" ॥:—अर्थात् राजाका 'स्त्री, पशु, वैश्य, भृत्यादि सर्व भोग्यसामग्रीके प्राप्त कर्त्ता उपकरण होने से उनको अन्नकरके कहते हैं—:॥ पुनः तिन स्त्रियादिकों को पुरुष का उपभोग होने से भी उनको उपभोग नहीं ऐसा नहीं ।:—अर्थात् स्त्री पशु भृत्यादि राजाको उपभोग होते हैं तथापि उन भृत्यादिकों को भी खान पानादि बिषयोंका उपभोग सुख होता है —:॥ एतदर्थ केवल कर्म्म के कर्त्ता कर्म्मियों को देवताओं का उपभोग्यहोतेसन्ते भी सुखीहुये देवता के साथ क्रीड़ा करते हैं । अरु तिन कर्म्मियों को सुख के उपभोग योग्य चन्द्र मंडलमें शरीरका आरंभहोता है । सो पूर्व कहा है श्रद्धा शब्दका वाच्य जल द्युलोकाख्य अग्निबिषे हवनकिया सोम राजा रूप से उत्पन्नहोता है । अर्थात् चन्द्रलोक सम्बन्धी शरीररूप से उत्पन्नहोता है । सो जल कर्म्म से समवायको प्राप्तहुआ प्रथम द्युलोक को प्राप्तहोके पश्चात् चन्द्रत्व सम्पन्नहोय इष्टादिकों के कर्त्ता उपासकों के अर्थ शरीरादिकों का आरंभकहोता है।:--ताते चन्द्रलोक को प्राप्तहुए केवल इष्टादि कर्म के कर्त्ता कर्म्मी देवताओं के भोग्यों के उपकरण होते हैं, एतदर्थ कहा है कि उनको देवता भक्षणकरते हैं—: ॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

(यावत् कर्म्म का क्षय नहीं) तावत् तिस चन्द्र मंडल विषे भोग्य भोगके तिसके अनन्तर उसही मार्ग से पुनः इसलोक विषे आवता है, जैसे यह कहा (तिससे अन्य प्रकार भी कहते हैं) आकाशमें आवताहै, आकाशसे वायुमें आवताहै, वायुहोके धूमहोता है, धूमहोके अभ्रहोताहै ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ॥

हे सौम्य, त्रो राजा जैबलि उद्दालक प्रति कहताहै कि, हे गौतम शरीरपातके अन्त में शरीर रूप आहुति को (जो षष्ठ आहुति है) अग्नि विषे हवनहुए अग्नि करके दह्यमान शरीरविषे जो सूक्ष्म जलहै तिसविषे यजमान को वेष्टन करके ।:—अर्थात् केवल कर्म्मीके मरणोत्तर शरीरका अग्निविषे दाह होताहै तब उस दह्यमान शरीरविषे जो यजमानकी श्रद्धानाम जलहै कि जिसविषे वो कर्त्ता यजमान अपनी भावना करके भावित तन्मय हुआ है, तिस यजमानको वो जल अपनेविषे वेष्टन करके--:। धूमके साथ मिल चन्द्रमंडल को प्राप्तहो कुश मृत्तिकास्थानीया बाह्य शरीरका आरंभ करनेवाला होता है । तिस आरंभ किये, अर्थात् चन्द्रमंडल में प्राप्तहुए शरीर करके इष्टादि कर्म्मके फल का भोक्ता होता है । सो यावत् उस चन्द्रमंडल के उपभोगोंका निमित्त जो कर्म्म तिनका क्षय नहीं होता, अर्थात् वहां से सम्यक् पतनके हेतु कर्म्मोंका क्षय नहीं है । क्यों कि सम्यक् पात होवे जिस करके सो कहिये "सम्पातः,, सो कर्म्मोंका क्षय सम्पात है । ताते यावत् कर्म्मोंका क्षय नहीं होता तावत् वो चन्द्रमंडल विषे निवास भोग करके तिसके अनन्तर इसही कहे हुए मार्गसे, कि जिस क्रम मार्गसे गया है, पुनः वहां से आवता है । यहां पुनः वहां से आवता है, इस कहनेसे सिद्ध होता है कि पूर्व अनेकबार चंद्रमण्डल को प्राप्त हो वहांसे फिर आया है ॥ एतदर्थ इस लोकविषे इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मों के करनेवाले यहां कर्म करके पुनः मरणोत्तर चंद्रलोक को जाते हैं वहां अपने कर्म्मों के फलोंको भोगने से कर्म्म के क्षयहुये वहां एक क्षणमात्र भी रहने को समर्थ होते नहीं, क्योंकि वहां की स्थितिका निमित्त जे कर्म्म तिसका क्षयहोताहै ताते । जैसे तेल के क्षीण हुए दीपक क्षणमात्र भी रहता नहीं तैसे ॥ प्रश्न ॥ क्या तहां जिन कर्म्मों से चंद्रलोक को प्राप्तहुआ है तिनके अरु तिन-

से जो व्यति रिक्तहैं तिन सर्व कर्म्मों के क्षयहुये तिस लोक से पुनरावृत्ति पावता है, किम्बा कुछ कर्म्मों के अवशेषरहे, पुनरावृत्तिहोती है । इसप्रकार के प्रश्न के हुए उत्तर कहतेहैं ॥ उत्तर॥ जो कदापि वहां हीं सर्व कर्म भोगदेके क्षयहोवे तो वहांही मोक्ष होना चाहिये, अतएव कुछ अवशेष रहे कर्म्मों के यहां आवताहै। अरु ऐसा न मानने से तहांसे आये हुएको शरीरोत्पत्ति अरु उपभोग संभवे नहीं (सर्व कर्म्मोंका उपभोगसे क्षयहोने से) "। ततः शेषेणेत्यादि "। स्मृतियों से बिरोध होता है [चन्द्रलोकमें ही जिन कर्म्मोंको भोक्तव्यहैं तिनका भोगकरके क्षयहुये पश्चात् अवशेष रहे जे अभुक्त (बिना भोगे) कर्म्म तिनकरके यहां जन्म को पावता है । इत्यादि स्मृतिसे सर्व कर्म्मोंके क्षयहुए आगमन का पक्ष बिरोध को पावताहै ॥ :—अर्थात् जिन कर्म्मों के फल भोगार्थ कर्म्मी यजमान चन्द्रलोकमेंगया है तिनके अवशेष रहे यहां का आवना अरु उन अवशेष रहे कर्म्मों का यहां उपभोग होना संभवे नहीं क्योंकि इष्टा पूर्त्तादि कर्म्म चन्द्रमंडल के ही उपभोग का निमित्त है इस लोकका नहीं । ताते इष्टादि कर्म्म से व्यतिरिक्त भी मनुष्य लोक के शरीर अरु उपभोगके निमित्त वाले अनेक कर्म्मों का संभव है, औ तिन कर्म्मों का चंद्रमंडल उपभोग नहीं । अतएव जो चंद्रमंडल के उपभोग निमित्तरू कर्म हैं तिन सर्व के उपभोग से क्षयहुये अरु तिनसे व्यतिरिक्त कि जिनका फल इसही लोकमें भोक्तव्य हैं, अवशेषरहे वो कर्म्मी पुनः इसलोक बिषे आवता है । इसमें स्मृति से विरुद्ध नहीं । अरु चन्द्रलोक के उपभोग निमित्तक सर्व कर्म्म के क्षयहुए वहांही मोक्ष होगा उसका इस लोक में आवना बने नहीं, यह दोष भी अभाव होवेगा—: ॥ अरु इष्टादि कर्म्मों से विरुद्ध अनेक योनियों में अपने फलका उपभोग देनेवाले अनेक कर्म ऐसेहैं जो वो स्थावर जंगमरूप अनेक योनियों में जन्मके आरम्भक हैं ॥:--अर्थात् उस केवल

कर्म्मों गृहस्थ के आश्रम के सम्बंध से व्यावहारिक बहुतसे ऐसे कर्म्म हैंकि जिसकरके यह अशुचिही रहताहै,यह पूर्वकह भी आये हैं। अरु वो कर्म्म प्रायः ऐसेहैं कि एक एक कर्म्म अनेक२जन्मों में अपना फल भोगवाते हैं। अरु उनके फलका उपभोग इसही लोक सम्बन्धी अनेक योनियों में होतेहैं--: ॥ पुनः एकहीजन्म में सर्व कर्म्मोंका उपभोग होयके क्षय होना उपपद्य नहीं। जैसे ब्रह्महत्यादि एक एक कर्म्मों का अनेक २ जन्मों का आरम्भकरना शास्त्रों करके जाना जाता है। तस्मात् एकही जन्म में सर्व कर्म्मों के फलका उपभोग बने नहीं ॥ अरु कोई एकवादी ऐसा कहते हैं कि कर्मादिकों का आश्रय जो शरीरादि संघात तिसके नष्ट हुए कर्म्म (अरु व्यतीत हुए अनुभव अभ्यास संस्कार बासनादि सर्व) नष्टहोतेहैं ॥ सो बने नहीं, जैसे पूर्व अनुभवकिये मनुष्य, मयूर, मर्कट, आदि जन्म पाय तिन शरीरादिकोंके धर्म कर्म्मादि अरु तिनकी परस्परमें अनेक विरुद्ध बासनाके संस्कार सो इन जीवोंके अन्तःकरणमें संस्काररूपसे रहते हैं, सो मरकट जन्म के प्रापक (देनेवाले) जे कर्म्म तिन करके मर्कट जन्मके आरम्भकिये नष्ट होते नहीं। तैसेही मर्कटादि जन्म प्राप्तिके निमित्त जे कर्म्म सो भी स्वाश्रय शरीर के नष्ट हुए नष्ट होते नहीं ।:—अर्थात् यह जीव अपने कर्म्मों के अनुसार स्थावर जंगमादि शरीर धारण करताहै तिन सर्व शरीरों के अनुभव किये जे धर्म्म कर्म्मादि सो सर्व संस्कार रूपसे इनकी बुद्धिमें रहते हैं, तैसेही मर्कटादि अनेक जन्मके देनेवाले जे कर्म्म सो भी भविष्यत जन्मों के बीजरूपसे इनके अन्तःकरण में रहते हैं, तिन कर्म्म संस्कारों में से जो कर्म्म इन जीवोंको अपना फल भोगावने के अर्थ सम्मुख होय अपने अनुसार जन्मका आरंभ करते हैं, तब उस शरीरके धर्म कर्मों के संस्कार बिशेषतासे स्मृतिमें आय स्फुरण होय विनाही अन्यके सिखाये उस जीवसे उस शरीरके धर्म कर्म्म करावते हैं। ताते शरीरके नाशहुये 'व्यतीतहुये शरीरों के अनु-

भवकिये धर्म कर्मके संस्कारोंका अरु भविष्यत जन्मोंके आरंभक कर्म्मोंका नाशहोता नहीं—॥यदि निश्चयकरके पूर्व जन्मोंकी अनुभव वासना सर्वही नष्ट होतीहोवे तो मर्कटादि जन्मके निमित्तक जे कर्म्म तिन कर्म्मोंकरके मर्कट जन्मविषे होते जे मर्कट के जन्ममात्रसेही माताके उदरकी संलग्नता अर्थात् जब उसकी माता मर्कटी (बानरी) एक शाखासे दूसरी शाखापर उछलके गमन करती है तिस समय उस अल्पकालके उत्पन्न हुये मर्कटी के बालक का जो अपनी माता के उदर से संलग्नहोने आदिक विषे जे उसकी कुशलता सो उसको न प्राप्तहोनी चाहिये। क्योंकि इस जन्म में उसको अपनी माता के उदर को सम्यक् प्रकार ग्रहण करने का अभ्यास है नहीं। :—अर्थात् इन जीवोंने अनादि कालसे जो जो जन्म धारणकिये हैं अरु उन असंख्य जन्मों के धर्म्म कर्मादिकों को अनुभव किये हैं, तिन सर्व के संस्कार सूक्ष्मरूप से इसकी बुद्धिमें रहते हैं, जब यह जीव अपने कर्म्मानुसार जिस जातिमें जन्म पावताहै तब पूर्वानुभूतहोने से उस शरीर के सर्व धर्म्म कर्म इसको स्फुरण होआवते हैं—:॥अतएव इस कहे प्रकार के अनुभव विचार से उस मर्कट का जन्म पावने वाले जीवात्मा के व्यतीतहुये जन्मों में उसका वानर का जन्म नहीं हुआ ऐसा कहने को कोई भी समर्थ नहीं। तथाच "तं विद्याकर्मणीसमन्वारभेते पूर्वप्रज्ञाच" इत्यादि श्रुति। तातेवासना सहित अशेषकर्मोंका नाश होवेनहीं । अतएव कर्मोंका शेष रहना संभव है । जब ऐसे है तिसही करके कहा है कि कर्मोंके शेष रहने से जीवोंको संसार (जन्म) की प्राप्ति है। इस विषय में श्रुतिकरके स्मृति करके युक्तिकरके लौकिक प्रत्यक्ष करके किसी प्रकारभी विरुद्ध नहीं ॥प्रश्न॥ कौनसा वो मार्ग है कि जिस मार्ग से यह (क्षीणकर्म) चन्द्रलोक से इसलोक विषे आवता है ॥ उत्तर ॥ जैसे गया है तैसे आवता है ॥ शंका ॥ ननु " मासेभ्य पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमिति " मासों से

पितृलोकको पितृलोक से आकाश को आकाश से चन्द्रमाको, इस क्रममार्ग से गया है, ऐसा श्रुतिने कहा है, परन्तु तैसे निवृत्ति (आगमन) कहा नहीं। अरु जो तैसेही आगमन है तो "यथेतमाकाशमाकाशाद्वायु इत्यादिक्रम कैसे कहा है ॥ समाधान ॥ हे वादी तूने कहा सो दोष नहीं। आकाशकी प्राप्ति से पृथिवी की प्राप्ति तुल्य होने से ॥ यहां "यथेतमेवेति" यह जो श्रुतिने कहा है इसही प्रकार चन्द्रलोक से इसलोकमें आवताहै इस प्रकार मार्गका नियम नहीं, किन्तु येन केन मार्ग से पुनः आवता है इसका तो नियम है। एतदर्थ पूर्व श्रुतिने जो यह कहाहै कि "यथैतमध्वानं" सो केवल उपलक्षणमात्रही कहा है ॥:—अर्थात् इस पांचवें मन्त्रमें प्रथम तो यह कहाहै कि "यथैतमध्वानं" जिस मार्ग से चन्द्रलोक में जाताहै उसहीक्रममार्ग से वहां से यहां आवता है। अरु पुनः कहाहै कि "यथेतमाकाशं" चन्द्रमंडल से आकाश बिषे आवता है। इन दोनों वाक्योंसे उस क्षीणकर्म्मा कर्मी यजमान के इसलोक बिषे आवने बिषयक क्रम मार्ग के नियमका अभाव देखायाहै। क्योंकि इसलोक से चन्द्रमण्डलको प्राप्त होनेका निमित्त जो इष्टा पूर्त्तादि कर्म्म सो सर्व गृहस्थोंका धर्म्म होने से सर्व कर्मीयों का धूमादि क्रम से मार्ग एक है। अरु वो कर्म्म चन्द्रलोक बिषे अपना फल देके आप अभाव होते हैं, क्यों कि उन कर्म्मों के फल भोगार्थही यजमानका चन्द्रलोक में गमन है, उन कर्म्मोंका फल भोग इस लोक बिषे बने नहीं, ताते वो इष्टा पूर्त्तादिकर्म अपने कर्त्ता को चंद्रमण्डल में अपना फल भोगाय आप अशेष अभाव होते हैं, पश्चात् रहगये जे उन कर्मीयों के अन्य जन्मके अरु इस जन्म के अनभोगे अनेक बिचित्र शुभाशुभ कर्म सो सर्वके सम न होके सम विषम होने से अरु उनमें तारतम्यता होने से जिसके जो कर्म्म इस लोकमें प्राप्त करनेवाले होतेहैं वो अपने अनुकूल मार्ग से उस कर्मी को इसलोक में प्राप्त करते हैं। अतएव श्रुतिने

एक मार्गका नियम न करके वहांसे आवनेका नियमकियाहै—:॥ एतदर्थ वो क्षीणकर्मी यजमान चन्द्रलोक से (बर्फवत् पिघल के) प्रथम तावत् भौतिक आकाश को प्राप्तहोता है । जो उन कर्मियों को चन्द्रमंडल बिषे शरीर के आरंभक जल सो तिनको चन्द्रलोक बिषे उपभोग के निमित्त जे कर्म्म तिनके क्षयहुए वो विलीन होता है । जैसे अग्निके संयोग से घृतका पिंड अपनी काठिन्यता को त्याग के द्रवीभूत होता है तैसे, तिस आकाश विषे विलीनहुए जलके साथ वेष्ठित वो कर्म्मी यजमान सो प्रथम अन्तरिक्षस्थ भूताकाश बिषे सूक्ष्महुए विलीन होते हैं (यहां जो आकाश को भूताकाशका विशेषण कहा है सो चिदाकाश से पृथक् करने के अर्थ कहाहै) पुनः वो क्षीणकर्मा यजमान अन्तरिक्षरूप आकाशसे वायु रूप हुआ वायुके बिषे लीन होता है।:— अर्थात् आकाश से वायु कुछ स्थूल होता है, तैसेही प्रथम वो कर्म्मी चन्द्रलोक से घृतवत् पिघल आकाशवत् अति सूक्ष्म जल रूपहुए अन्तरिक्षाकाश बिषे लीनहोते हैं, तिसके पश्चात् आकाश से वायुवत् कुछ स्थूलहुए वो क्षीण कर्म्मी यजमान वायुरूप हुए वायुबिषे लीन हुएवत् होते हैं, अर्थात् वायुभूतहुए होते हैं । वायुहोके तिन करके सहित ही धूमहोता है।:—अर्थात् अग्नि का काष्ठादिकों से संयोगबिना धूमहोता नहीं, अरु यहां कहा है कि वायुहोके धूम होता है, तहां वायु वृष्टिका हेतु होनेसे वायु से सूक्ष्म परमाणु रूप भाफ होता हुआ, ऐसा मानना युक्त है, अरु जैसे आकाश से वायु स्थूल है तैसे वायु से भाफ कुछ स्थूल है ताते वो क्षीणकर्मा यजमान वायु से स्थूल धूम शब्दका वाच्य भाफ होता है—:। धूम से अभ्रहोता है (भाफका विशेषरूप अभ्रहै) कि जिसके देखने से मेघ अरु वर्षा होने का अनुमान होता है ५ ॥

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह ब्रीहि यवा ओषधि वनस्पतयस्तिल माषा इति जायन्ते ऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

अभ्र होयके मेघ होता है, मेघ होयके प्रकर्ष वर्षा होतीहै (वर्षताहै) तब यहां ब्रीहि (धान्य) यव ओषधि बनस्पतियां तिल उड़द इत्यादि अन्नरूपसे उत्पन्न होते हैं, अतएव निश्चय करके अतिदुःखसे निकलते हैं जो जो अन्न खातेहैं जो रेतको (स्त्रीविषे) सिञ्चन करते हैं तब सो तिसके सदृसही होता है ६ ॥

भावार्थ मन्त्र छठें का ६ ॥

हे सौम्य राजा जैबालि कहता है कि हे गौतम। अभ्रहोय के तिसके अनन्तर सेचनकरने की सामर्थवाला मेघ होय उन्नत (ऊंचे) प्रदेश विषे प्रकर्ष करके वर्षताहै। अर्थात् चन्द्रमंडल से उक्त क्रम करके आये जे शेषकर्मा यजमान सो वर्षा की धारारूप हुए अर्थात् जलधारा बिषे अनुगतहुए पृथिवीपर गिरते हैं। तब यहां पृथिवी बिषे, ब्रीहि (धान्य) यव, ओषधि, बनस्पतियां, तिल माष (उड़द) अरु इनसे इतर मूँग, मसूर ,गेंहू, बाजरा, ज्वार, इत्यादि अनेक अन्नरूपसे, वो क्षीणकर्म्मा उत्पन्न होते हैं। यहां जो बहुबचनसे निर्देश है सो उन क्षीणकर्म्माओंको अनेक होनेसे है। अरु पूर्व जो मेघादिकोंको एक बचनसे कहाहै सो उनके उनके एकरूप होनेसे कहाहै। अरु जिसकरके उन सहस्रावधि जलधाराओं में अनुगतहुये जे क्षीणकर्म्मा यजमान सो उनजलधाराओंके सहितहुए पर्वत, तट, दुर्ग, नदी, समुद्र, अरण्य, मरुदेश, आदि स्थानोंमें। गिरे तिनबिषे प्रवेशको पावते हैं। तिस हेतु से निश्चय करके उनका दुःखसे भी दुःखतर निकलनाहै। जिसक-

रके पर्वतके ऊपर नीचे निकटसे वो वर्षाका जल प्रथम अनेक छोटे छोटे श्रोत होय पश्चात् परस्परमें मिल नदी भावको प्राप्त होते हैं तिसके अनन्तर वो नदी समुद्रको प्राप्तहोती है, तिसके अनन्तर उस जलको मकरादि भक्षण करते हैं, तब तिसजलके भक्षण करनेके साथ उस जलमें अनुगत हुए क्षीणकर्म्मा सो भी मकरादि करके भक्षण किये होते हैं, सो मकरादि अन्यों करके भक्षण किये होते हैं ।:- अर्थात् बर्षाकी धाराके सम्बन्धसे नदी समुद्रादि जलाशयों में पतन हुए क्षीणकर्मा मकरादि रूपसे प्रकटहोते हैं वा उनको मीन मकरादि भक्षण करते हैं, तब उनके उदरमें जाय उनके वीर्यरूपसे प्रकट हो मकरादि रूप जन्मको पावते हैं । वा उन मकरादि कों के उदरमें जाय उनके किसी प्रकार अभावहुए पुनः उस जलमें जलरूपहुए रहते हैं -:। तब पुनः जब उस समुद्रादिकों के जलको मेघ वा सूर्य्य आकर्षण करते हैं तब वो क्षीणकर्म्मा भी जलके साथ आकर्षित हुये पुनः उन बर्षाकी धाराओं करके सहित हुये मरुदेशबिषे वा सिलातटबिषे, वा किसी अगमदेश बिषे गिरके वहींरहते हैं, वहां उन जल रूपहुये को जो कदापि उनके कर्मानुसार मृगादि पशु पानकरते हैं तो उन करके भक्षण किये क्षीणकर्म्मा ।:—उनके उदरमें वीर्यरूप होय मृगादिरूप पशुओं के जन्म पावते हैं-:। वा वो जिन मृगादिकों करके भक्षण किये होते हैं तिन मृगादिकों को अन्य किसी सिंहादिकों ने भक्षण किया तो उसके उदरमें जाय वीर्य भावको पाय सिंहादिकों का जन्म पावते हैं । इसप्रकार शुभकर्म जिनका क्षीणहुआ है ऐसे जे क्षीणकर्मा यजमान सो अपने अवशेपरहे अशुभ कर्म्मों के अनुसार उक्त प्रकार से परिवर्त्तनको पावतेही रहते हैं ॥ अरु जो कदापि अभक्षण करनेवाले स्थावरों विषे प्राप्तहुये तो वहांही सूखगये।:—अर्थात् जो कदापि वो क्षीणकर्म्मा यजमान अपने कर्मानुसार वृक्षादि स्थावर योनिको प्राप्त हुआ अरु कर्मानुसार उसही जातिके वृक्षके दो चार जन्म

पावते हैं तो उस वृक्षके बीजमें आय पुनः पृथिवी जल के संयोग को पाय पुनः उस वृक्षाकार से प्रकट हुए, अरु जो कदाचित् वृक्षकी योनिसे पशुआदि जंगम योनिके प्रापक कर्म उदय हुए तो उन्होंने जिस जातिके पशुओं में प्राप्त करना है उसके उदरमें प्राप्तकिया तब वहां उसके वीर्यरूपसे प्रकटहो पुनः उस पशु जातिके जन्मको पाया, वा उसही वृक्षमें सूख सूर्यकी कीरणों द्वारा मेघ भावको प्राप्त होय पुनः जहां कहीं कर्म्मोंको प्राप्त करना है तहां वर्षाद्वारा पुनः पतनको पावता है—: ॥ हे सौम्य स्थावर योनिसे जिन योनियोंमें रेत होके स्त्रीमें सिंचन हुए जन्म पावना है सो दुर्लभ है। :—अर्थात् स्थावर योनिसे जंगम योनि की प्राप्ति किंचित् पुराय कर्म्म वाली होनेसे दुर्लभ है, तिनमें भी वीर्य से अर्थात् माता पिता के संयोगसे वीर्य करके प्राप्त होने वाला जन्म दुर्लभ है, (स्वेदादिकों से उत्पन्न होने वाले जंगम जन्मों से पशु आदिक जे रज जन्म दुर्लभ है। अरु जैसे ब्रीहि आदिक अन्नादि भावकी प्राप्ति से निकलना अतिही दुस्तर है, तैसेही जंगम भावसे निकलना अति दुस्तर है। अरु अन्नादिकों के साथ पुरुषके उदरमें जाना यह भी अतिही दुःख रूप दुःखका हेतुहै, क्योंकि जो कदापि वो क्षीण कर्म्मा यजमान अपने अशुभ कर्मोंका प्रेरया अन्नद्वारा होयके जो कदापि, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के वा बालकके वा नपुंसक के वा संन्यासीके वा बिधवा स्त्री के, इत्यादि, मनुष्यों के भक्षणा किये अन्नद्वारा उनके उदरमें आय वीर्यरूप से उत्पन्न भी हुआ उनके अन्तरही नष्ट होगये, क्योंकि उन विषे वीर्यरूप हुए भी स्त्री संगके अभाव से शरीरोत्पत्ति का अभावहै ताते। अरु जो कदाचित् कोई शुभ कर्म्मों का प्रेरया यदि रेतके सिंचन करने के अधिकारवाले गृहस्थ के भक्षण किये अन्नद्वारा उसके उदरमें जायरेत भावको प्राप्त होनेवाले उस क्षीणकर्म्मा यजमानको कर्मकरनेकी वृत्तिका लाभहोताहै।:—अर्थात् गृहस्थ (स्त्रीवाले पुरुष) के भक्षण किये

अन्न के साथ अपने कर्म्मानुसार उसके उदरमें प्राप्तहुआ जो चन्द्र मंडल से आया क्षीणकर्म्मा यजमान सो प्रथम वीर्य्य रूपसे प्रकट होता है—:पश्चात् , वो गृहस्थ पुरुष ,कि जिसके वीर्य्य में क्षीण कर्म्मा प्राप्तहुआ है, यथाविधि ऋतुकाल के समय अपनी स्त्री में उस वीर्य्य को स्थापित करताहै तब तिसहीके आकार ।:— अर्थात् मनुष्यकरके सिंचन किये वीर्य्य से स्त्रीके गर्भमें मनुष्याकारही प्रकटहोता है—:। रेतसे रेतके सिंचन करने वालेके आकार से प्रकट होताहै । तथाच " सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमितिहि, श्रुत्यन्तरात्" अर्थ यह जो सर्व अंगोंका सारभूत रेत सर्व अंगों से एकत्रहोय उपस्थद्वारा स्त्री के गर्भ में जाय जिस के सर्व अंगों से एकत्रहोय आया है तिस रेत सिंचन कर्त्ता के आकार से प्रकट होता है ॥:—अथवा ऋतुकाल में जब पुरुष स्त्री संग करता है अरु ईश्वर इच्छा से जब उसके वीर्य्य से भगांशय में गर्भ रहने को होता है तब तिस दिन उस पुरुष के नेत्रद्वार से उस स्त्री के मुखकी छाया वीर्य्य के स्खलित समय वीर्य में पड़ती है तब उस छायाको ग्रहणकरके वीर्य स्त्री के गर्भाशय में स्थित होय तिस छाया के अनुसार आकृतिका आरंभक होता है । ताते जो मनुष्य उत्पन्न होताहै सो प्रायः अपनी माताकी मुखाकृतिसे मिलीहुई मुखाकृति वाला होता है । सो लोक विषे भी कहते हैं " मापतपूत " अरु जो कदापि वीर्य्य के स्खलित होने के समय विषयानन्द के तीव्र संवेग करके परस्पर के दृढ आलिंगनके हुएदोनों की दृष्टि न मिली तो मैथुनके (वीर्य्यस्खलितहुएके) अर्थात् वीर्य के गर्भाशयमें जाने के, पश्चात् अपने पति से इतर जिसका मुख वो स्त्री प्रथम अवलोकन करे कि तिसके मुख की छाया नेत्रद्वारा गर्भाशय के वीर्य्य में पड़ेगी तिसकी मुखाकृति के समान आकृति वाला गर्भ प्रकटहोवेगा, इत्यादि प्रकार कल्पित विचार है—: ॥ एतदर्थही पुरुष से पुरुष उत्पन्न होता है, गौ से गौकी आकृतिवाला प्रकट होता है, जात्यान्तर आकृति

उत्पन्न होवे नहीं । :—अर्थात् मनुष्य से गौ अरु गौसे गज इस प्रकार अन्य जातिसे अन्य जातिकी उत्पत्ति होवे नहीं—: । एतदर्थ ही श्रुतिने कहाहै कि " तद्रूयएवभवति " अरु जे अन्य कर्मी " अनुशयि " चंद्रमंडल से स्खलित अतिघोर पाप कर्म्मों करके ब्रीहि यवादि भावको प्राप्त होते हैं सो यावत् उनके घोर पापों का क्षयहोता नहीं तावत् वो उसही में पड़े रहते हैं, वा उसही में घुन नामककीट बिशेष होय अभाव होजाते हैं । जब उनके घोर पाप निवृत्त होते हैं तब वो मनुष्यादि भावको प्राप्त होतेहैं। ताते उनको ब्रीहि यवादि भावसे निकलना अति कठिन से भी कठिन होता है । क्योंकि कर्म्मों करके ही तिन्होंने अपने बिषे ब्रीहि आदि भाव प्राप्त किया है, ताते ब्रीहिआदि भावरूप उपभोग के निमित्त जे कर्म्म तिनके क्षयहुये ब्रीहि तृणादि जड़ रूप देहके बिनाशहुये जैसे जैसे कर्म्मों करके तिनके संस्कार रूप बीज से देहको ग्रहण किया है तैसे तैसे नये नये देहान्तर को तृण जलूकावत् ग्रहण करता चलता है, सो बिज्ञान (बुद्धि) युक्तही चलताहै। तथाच "सविज्ञानोभवति विज्ञानमेवान्ववक्रामति, इति श्रुत्यन्तरात् " तिसबिषे में वृहदारण्यकी श्रुतिप्रमाण है। यद्यपि चक्षुरादि कारणों से रहित हुआही एक देहको त्याग देहांतर को जाता है । तथापि जैसे स्वप्नके देहकी प्राप्ति के निमित्त कर्म्मों करके उद्भावित बासना के ज्ञान से सहित बिज्ञान के ही देहांतर को जाता है क्योंकि इस बिषयमें वृहदारण्य की उक्त श्रुतिही प्रमाण है, तैसेही पूर्व कर्म्मों के अरु अनुभूत देहोंके बिज्ञान बासना के संस्कार करके युक्तही अर्चिरादि मार्ग अरु धूमादि मार्ग से जानेवालों की गतिहै । जैसे स्वप्नमें पूर्व बासना संस्कार बश उद्भूत बिज्ञान करके कर्म निमित्त करके वृत्तिके लाभ से व्यापार है तैसे देहांतर को प्राप्त होनेवाले को कर्म के निमित्त से बिज्ञान वृत्तिका लाभ है, क्योंकि गर्भमें बिज्ञान वृत्ति के लाभ से पूर्वानुभूतका स्मरण अनुभव होता है, तैसे जो जीव ब्रीहादि

भावसे उत्पन्न होते हैं तिनको बिज्ञान वृत्तिका लाभ नहीं । :— अर्थात् जैसे जाग्रत् के कर्म्म अनुभव के संस्कार के स्वप्नमें तिन संस्कारों के आश्रय बिज्ञान का उद्भूत होताहै, तैसेही अर्चिरादि अरु धूमादि मार्ग से सत्यलोक अरु चंद्रलोक के जानेवालों के यहां के किये शुभकर्म अरु अनुभव तिनके संस्कार से कर्म्मों के निमित्त से अरु पूर्व के अनुभूत के बिज्ञान करके गमनकी वृत्ति का लाभ है । तैसे चंद्रलोक से आवनेवाले कर्मीको कि ब्रीहि आदि जड़ भावसे उत्पन्न होते हैं तिनको कर्म्मों के क्षयके निमित्त से बिज्ञान वृत्तिका लाभ नहीं । ब्रीहि आदिकों के काटने छाटने पीसने आदिक बिषे सबिज्ञानों की स्थिति है नहीं । पुनः सबिज्ञानकोही वीर्यका जब स्त्रीके देहसे सम्बन्ध होता है तबहीं उत्पन्न होता है ॥ शंका ॥ ननुतृणसे तृणान्तर प्रति जलूकाके गमनवत् चंद्रमंडल से गिरनेवाले का देहसे देहांतर प्रति गमन को तुल्यता होनेसे सबिज्ञानसेही होना उक्तहै । उ० । तैसा होने से घोर नरक का अनुभव होगा । :—अर्थात् सामान्य दुःखका अनुभव होता है अतिघोर का नहीं, क्योंकि अतिघोर दुःख से मूर्च्छाहोती है मूर्च्छा से बिज्ञान नष्टहोता है तिसके नष्टहुये अनुभव होवे नहीं, अरु ब्रीहि यवादि भावकी प्राप्तिवाले को लवन पेषणादि करके अति घोर दुःख के हुये सबिज्ञानता रहे नहीं अतएव घोरनरक के दुःखका अनुभव भी बने नहीं—: ॥ शंका ॥ इष्टापूर्त्तादि करनेवाले को चंद्रमण्डलकी प्राप्तिसे आरंभ यावत् ब्राह्मणादि जन्म अस्तु । परंतु तैसाहोने से, अर्थात् [इष्टा पूर्त्तादि कर्म करनेवालों को अन्त में नरक का अनुभवहै तो तैसा होने से इष्टा पूर्त्तादि उपासन केवल अनर्थ के अर्थही हुआ, अरु इष्टापूर्त्तादि कर्म्म को बिहितहोने से श्रेयसाधक बिषयता है, ऐसी जे कर्म्मकाण्ड की श्रुति तिससे बिरोध आवता है] श्रुति को अप्रामाण्यता प्राप्त होती है क्योंकि वैदिक कर्मको अनर्थका हेतु होने से, इसप्रकार की शंका के हुये कहते हैं । समाधान ।

हे वादी जो तू कहताहै सो नहीं। वृक्षपर चढ़के पतन होनेवत् बिशेषता का सम्भव है ताते। [जैसे बुद्धि पूर्वक वृक्षपर चढ़ने वालेको सविज्ञानता जानी जातीहै, तैसेही चन्द्रमंडलपर आरोहण करनेवालेको सविज्ञानता होते संतेभी तहां से गिरनेवालेको सो विज्ञानत्व है नहीं क्योंकि उस विषे विज्ञानत्वके उद्भूत होनेके कर्म्मोंका अभाव है] देहसे देहान्तरकी प्राप्तिवाले को कर्म करबे वृत्तिका लाभहै ताते। एतदर्थ कर्मों करके उद्भूत हुए विज्ञान से सविज्ञानत्व युक्त है। जैसे वृक्ष के अग्रभाग में लगे फल की इच्छावाले को सविज्ञानत्व है। तैसे अर्च्चिरादि मार्गसे जानेवालेको, अरु धूमादिमार्ग से जानेवालेको सविज्ञानत्व होताहै ।:— अर्थात् अर्च्चिरादि अरु धूमादि मार्गसे जानेवाले को विज्ञान के उद्भूतक कर्म्मोंका भावहोने से उनको सविज्ञानत्व है—:। तिसप्रकार चन्द्रमंडल से पतन होनेवाले को सविज्ञानत्व नहीं, सचेतनत्व है (क्योंकि विज्ञानके उद्भूत होनेके कर्म्मोंका अभाव है ताते। जैसे वृक्षके अग्रभागसे पतन होनेवाले को सचेतनत्व है सविज्ञानत्व नहीं) दृष्टान्त जैसे मुद्गरादिकों के घातसे सम्यक् ताडित हुएको तिन मुद्गरादिकों की घातसे हुई जे अतिवेदना तिसके निमित्त से मूर्च्छितहुए करणों के (इन्द्रियोंके) प्रतिबन्ध से स्वदेह करकेही एक देशसे दूसरे देशको प्राप्तकिये को विज्ञान की शून्यताही देखी है। तैसे चन्द्रमंडल से देहान्तर प्रति गिरने वालेको स्वर्ग भोग निमित्तिक कर्मों के क्षयहोने से मृग जल देहके कारणोंका। ताते सो अपरित्याग किये देहके बीज भूत कर्म्मों करके जलरूप से मूर्च्छित हुए आकाशादि क्रमकरके आए हुए कर्म निमित्तक स्थावर जाति के देहसे संश्लिष्ट (तन्मय) होते हैं। ताते प्रतिबन्ध करणों करके (करणों के प्रतिबन्धकरके) अनुद्भूत विज्ञानहीं होते हैं। ताते व्रीहि आदिकों के काटने छांटने पीसने आदि संस्कार करके भक्षण किये का रक्तादि रसादिकों का परिणाम रेत तिसको स्त्री विषे सिंचन

करने काल पर्य्यन्त मूर्च्छितहोता है, देहान्तरके आरंभक कर्मों की अलब्ध वृत्तिहोनेसे ॥ शंका ॥ [जबचन्द्रमंडल से आवने वाले कर्म्मीयों को विज्ञान शून्य होनेसे पुनः श्रुतिने कैसे कहाहै कि "। तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तंगत्वाऽन्यमाक्रममा क्रम्यात्मन मुपस ँ हरति" इत्यादि, जलूकाके दृष्टान्त से सचेतना के उपपादन कियाहैं। तहां कहते हैं] समाधान । देहका बीज भूत जे आप तिसके सम्बन्ध के अपारित्याग सेही सर्व अवस्था विषे वर्त्तताहै ॥ः—अर्थात देहोत्पत्तिका कारण जे उक्त जल तिस के सम्बन्धके न त्यागने करके ही वो क्षीणकर्मा ब्रीहि यवादिकों से संश्लेषको पायेसन्ते उनब्रीहि आदिकों की लवन कंडन पेषणादि सर्व अवस्था विषे वर्त्तता है—ः॥ अरु जलूकावत् चेतनता विरोधको पावती नहीं, अर्थात् [जलूका के दृष्टान्त से चेतनपना विवक्षितनहीं किन्तु संसरण मात्रही विवक्षितहै ॥ः—ताते उस क्षीणकर्म्मा का ब्रीहि आदि भावको प्राप्तहुए चेतनता के अभाव से जलूका के दृष्टान्त से चेतनता का विरोध नहीं क्योंकि यहां केवल संसरण मात्रका ग्रहणहै ताते—ः॥] अरु अन्तरालविषे तो मूर्च्छितवत् अविज्ञातता दोषहै [जो ऐसकहो कि, तो इष्टादि कर्म्मों को हिंसा अनुग्रहात्मक होने से स्थावर भावकी प्राप्ति भी तिसका फलही है, अरु तैसाहोने से वैदिक कर्म्मोंको अनर्थानु बन्धित्वहोनेसे अप्रामाण्यता प्राप्तहोतीहै। ऐसी शंकाके हुए कहतेहैं] वैदिक कर्मोंको अर्थ अरु अनर्थ (परस्पर विरोधी होने से) उभयहेतत्व अनुमान करने को शक्यनहीं "। अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः इतिश्रुतेः" शास्त्रकरके कही हिंसा तिसको अनर्थका हेतुपना अंगीकार होता नहीं। अरु जो कदापि उसको अनर्थका हेतुपना अंगीकारहो तोभी मन्त्रों करके विषआदिकोंके दोषके अभाववत् (वेदोक्तमन्त्रसेतिसअधर्मका) अभावहोताहै वा युक्तहै। [जैसे स्वरूप करके बिष अरुदधि आदिक मरणरूप अनर्थ के आरंभकहैं ॥ः—अर्थात् संखिया आदिक

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्यासो ह यत्ते रमणीयां योनि मापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्य योनिं वा थ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योविमापद्येरन् श्वयोनिंवा शुकरयोनिं वा चाण्डाल योनिं वा ७ ॥

साधारण अरु सर्पादिकों का असाधरण बिष, अरु ज्वरमें भोजनक्रिया दधि मरणरूप अनर्थ के उपजावनेवाले हैं—। सो तैसे होतसन्ते भी मन्त्रकरके विष अरु शर्करा करके युक्त होने से दधि मरणरूप अनर्थ के आरंभक होते नहीं] वेदोक्त कर्म्मों को दुःखरूप कार्य्य के आरंभ करनेपनेकी उपपत्ति नहीं। मन्त्रकरके ही बिष भक्षण का इति [पूर्वोक्त दृष्टान्तको स्पष्टकरते हैं, तिस (मन्त्र) करके ।:— वा अन्य अनूपान युक्तिकरके —ःयुक्त भक्षण किये विषका अनर्थ का अहेतु पनाकरके पुष्टिका हेतुपना है, तैसे वैदिककर्म बिषे जो प्रविष्ट हिंसाहै तिस हिंसाकरके पुरुषार्थ ही सिद्धहै] ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

तहां जो इसलोक बिषे शुभाचरणका अभ्यास वाला है सो प्रसिद्ध शुभ योनियों को प्राप्तहोता है, ब्राह्मण योनिको वा क्षत्रिय योनिको वा वैश्ययोनिको। अथवा जो इसलोकविषे अशुभाचरणके अभ्यासवालाहै सो अशुभयोनिको प्राप्तहोता है तहां श्वानयोनिको वा शूकर योनिको वा चाण्डलयोनिको ७ ॥

भावार्थमन्त्रसातवेंका ॥

हे सौम्य, ["तद्भूयएवभवति" इस श्रुतिवाक्य से यह प्रसंग करके प्राप्तहुई प्रासंगिक कथा तिसको परिसमाप्त करके अरु जिसके कहने का आरंभकियाहै तिस प्रकृत श्रुतिका व्याख्यान करते हैं] तिन क्षीण कर्म्मोंओं के मध्य ।:— जो चन्द्रलोक से पतन पाय ब्रीहि आदि भावको प्राप्त हुये हैं—ः जो इस

लोक विषे रमणीय चरणा हैं। अर्थात् शुभ कर्मों के करनेका सुन्दर स्वभाव है जिनका तिनको कहिये रमणीय चरणा। तिस रमणीय चरण करके उपलक्षित जे शोभन क्षीणकर्माको पुण्यकर्म हैं जिनके तिनको रमणीय चरणा कहते हैं। अर्थात् क्रूरता असत्य भाषण कपट इत्यादि (आसुरी सम्पदा करके) बर्जित (रहित) को ही रमणीय चरणपनेका उपलक्षणत्व युक्त है। अर्थात् उक्त प्रकार के पुरुष को ही रमणीय चरणत्वपना रूप उपलक्षणत्व होने को शक्य है।:—अर्थात् चन्द्रमंडल की प्राप्ति होने से पूर्व इसलोक बिषे इष्टा पूर्त्तादि विहिता चरण से इतर जे सत्यदया आर्जवता आदि दैवी सम्पदा रूप शुभाचरण करने के अभ्यास वाले, रमणीय चरणा हैं—:। सो अपने इष्टादि पुण्य कर्म्मों करके चन्द्रमंडके ऊपर अपने इष्टादि कर्म्मोंका फल भोग तिनके क्षय हुए अरु इसलोक में किये दैवी सम्पदा शुभाचरण रूप कर्म्मोंके अवशेष रहे तिनके पूर्वाभ्यास बल प्रभावसे चन्द्रमंडल से पतन होय यथाक्रम ब्रीहि आदि भाव को पाय रेतरूप हुए क्रौर्यादि बर्जित रमणीय योनिको प्राप्तहोते हैं॥:—॥प्रश्न॥ कौन वो रमणीय योनि हैं॥ उ०॥—:। ब्राह्मण योनिको वा क्षत्रिय योनिको वा वैश्य योनिको, अपने अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं।:—अर्थात् चन्द्रलोक को प्राप्तहोनेवाले कर्मियोंको इस लोक विषे इष्टा पूर्त्तादि विहित कर्मों से इतर भी अभ्यास द्वारा स्वभाव भूतहुए, सत्य दया आर्जव अकुटिलतादि दैवी सम्पदा के लक्षण रूप सत्वगुणात्मक अति उत्तम कर्म्म हैं सो चन्द्रलोक से उक्त मार्गके क्रम करके इसलोकमें आय ब्राह्मण योनि को प्राप्तहोते हैं, अरु जिनके उक्त कर्म मध्यमहोते हैं सो क्षात्रिय योनिको प्राप्तहोते हैं, अरु जिनके उक्त कर्म निकृष्ट होते हैं सो वैश्ययोनिको प्राप्तहोते हैं—:॥ पुनः तिन उक्त प्रकार के रमणीय चरणा अभ्यासियों से बिपरीत जे कपूय चरण करके उपलक्षित अशुभ कर्म्मों के करने के अभ्यास वाले अशुभ कर्मी हैं

।:—अर्थात् जिन पुरुषों को इसलोक बिषे इष्टा पूर्त्तादि विहित कर्म से इतर रजतमात्मक आसुरी सम्पदा लक्षणरूप कर्म्मों का अभ्यास है—:। सो पुरुष अपने कर्म्मानुसार योनियों को जो कर्म सम्बन्ध से वर्ज्जित (रहित) केवल अधम योनि हैं तिनहीं को प्राप्त होते हैं।:—अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादि विहित कर्म करत सन्ते अशुभ कर्म्मोंके अभ्यास वाले हैं सो चन्द्रलोक में अपने इष्टादि विहित कर्म्मोंका फल भोग तिनके क्षयहुए क्षीण कर्म्मा होय अपने पूर्वके अशुभ कर्म्मों के संस्कारों के अवशेष रहे चन्द्रलोक से पतनको पाय उक्त क्रमसे ब्रीहि आदि भावसे उत्पन्न हुए पश्चात् अपने २ अशुभ कर्म्मोंके अनुसार श्वानादि अशुभ पशुओं करके भक्षण किये उन के उदरमें जाय बीर्यभाव को पाय अति अधमयोनि को प्राप्त होते हैं।—:। प्रश्न। कौन सी वो अधमयोनियां हैं कि जिनको उक्त प्रकारके अशुभ कर्माभ्यासी प्राप्त होते हैं॥ उत्तर। वो पुरुष श्वानयोनि को वा शूकर योनि को वा चाण्डाल योनिको प्राप्तहोतेहैं॥:—यहां जो श्वान योनि अरु शूकरयोनि कही है तिनको उपलक्षण मात्र ग्रहण करके अति अशुभ कर्माभ्यासियों को श्वानादि अति अशुभ योनि की प्राप्ति जाननी, अरु जिनको तिनसे कुछ न्यून अशुभ कर्मों का पूर्वला अभ्यास संस्कार है तिनको अश्वादि पशुयोनि की प्राप्ति जाननी। अरु जिनको पूर्वके साधारण अशुभ कर्मों के संस्कार हैं सो अपने कर्म संस्कारबश मनुष्यों में अति अधम चाण्डालादि योनियों को प्राप्त होतेहैं। इस प्रकार अशुभ कर्म्मोंके अभ्यासी पुरुष अपने इष्टादि विहित कर्म्मों का फल चन्द्रलोकमें भोग तिनके क्षयहुए इसलोक में आय अपने अशुभ कर्म्मों की सामान्य विशेषतारूप तारतम्यताके आश्रय हुए उक्त प्रकारकी अशुभ योनियों को प्राप्त होते हैं॥ अर्थात् शुभ कर्म्म करने से द्विजाति जे वरणत्रयिके पुरुष सो अपने इष्टादि कर्मों करके धूमादिमार्गसे चंद्रलोक को अरु चंद्रलोक से इसलोक में

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्य सकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयंस्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्य्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ८ ॥

आवतेजातेही रहतेहैं घटीयंत्रवत् उनका आवागमन मिटतानहीं अरु जो कदापि वो पंचाग्नि विद्याको प्राप्तहोते हैं तो वो अर्चिरादि मार्ग से सत्यलोक को जाते हैं उनकाइस कल्पमें पुनराग मन न होयके वो कल्पान्तर में आवते हैं ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ यह जो कहे दोमार्ग न जायके अन्यतरमार्ग करकेहीजाते हैं तिनको यह (उक्त प्रकारकी योनि) न प्राप्तहोके अतिक्षुद्र (तुच्छ) कीट मशकादि योनि अनेकबार प्राप्त होती है अरु वो जन्मते मरते रहते हैं । ताते यह तृतीयस्थान (गति) है । तिस करके स्वर्गलोक पूर्ण होता नहीं । ताते घृणा करते हैं, तहां श्लोक (मन्त्र) प्रमाण है ८ ॥

भावार्थ मंत्र आठवें का ॥

हे सौम्य ' राजा जैवलि कहताहै कि हे गौतम ' जो कदापि वर्ण त्रयिमेंका पुरुष न तो पंचाग्नि विद्याको सेवताहै न इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मको सेवताहै ।:——अर्थात् जो पुरुष न तो इष्टापूर्त्तादि कर्मानुष्ठान पूर्वक पंचाग्निकी उक्तप्रकार विद्यारूपसे उपासना करताहै जो अर्चिरादि मार्ग क्रमसे सत्यलोककी प्राप्तिरूप अमृतत्व प्राप्तिका हेतुहै । अरु न केवल इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मोंकोही यथाशास्त्र बिधि करताहै ' जो धूमादि मार्ग क्रमसे चन्द्रलोक रूप स्वर्ग प्राप्तिका कारणहै —:॥ सो तिसकरके ' अर्थात् उक्त प्रकारके कर्म्म उपासना न करने करके ' कहे जे अर्चि धूमादि लक्षणवाले दो मार्ग तिनको अन्य किसी प्रकारसे भी पावते नहीं तव जिसकरके इन कीट पतंग मच्छर जूआं खटमल आादि अति

अल्प जीव भावको पाय अति अल्पकाल स्थितहोय असंख्यवार उपजते मरतेही रहते हैं—:। ताते जो उक्त उभय मार्ग से परिभ्रष्ट हैं सोई बारम्बार कीट पतंगादि भावसे जन्मते मरतेही रहते हैं। :—अर्थात् जे कर्म्म उपासना से रहित यथेष्ट पापाचरण करनेवाले हैं तिनको मनुष्याकृति कीटपतंगादि अतितुच्छ जीवही जानने—:। तिन उभय मार्ग से भ्रष्टों को निरंतर जन्म मरण होने यह अनुकरण कहते हैं " जायस्वाम्रियस्वेति " इस श्रुतिवाक्यकरके ईश्वर निमित्त की चेष्टा कहते हैं [जो कि (सर्व का नियन्ता) सर्वेश्वरहै सो मनुष्यों को। :—जोकि उन के कल्याणार्थ आपही ने अपनी वेदरूपा आज्ञासे प्रकाशितकिये हैं तिन—:। मार्गद्वयसे ' अर्थात् उत्तरायण अरु दक्षिणायन इन मार्ग दोनों से भ्रष्टदेखताहै, तब (तिन पर कुपित होय) बारम्बार कीटादि भाव से जन्मों अरु मरों, इस प्रकार की प्रेरणा करताहै सो यहां कहतेहैं] जन्म मरणरूप लक्षण करकेही काल का जानना होताहै नतु शोभनकर्मों विषे वा भोगों बिषे कालका अस्तित्व जाना जाताहै यह अर्थ है। यह कीटादि क्षुद्र जंतु लक्षण रूप तृतीय ' जो पूर्वोक्त दोनों मार्गों की अपेक्षा से, स्थान है सो उक्तदोमार्गों से भ्रष्ट पापाचरण करने वाले संसृतों का स्थान है॥ जिस करके इस प्रकार दक्षिण मार्ग से जाने वाले भी पुनः उक्त क्रमसे इस लोक विषे आवते हैं। अरु जो विद्या कर्म से अनधिकृत हैं।:—अर्थात् जिन मनुष्यों को उक्त प्रकारके कर्म उपासना का अधिकार नहीं—:। सो दक्षिण मार्ग से चन्द्रमंडल रूप स्वर्गलोकको जाते नहीं, ताते "तेनासौ लोको न सम्पूर्यते" तिस करके स्वर्गलोक पूर्णहोता नहीं, अर्थात् भरता नहीं। इस कहने से पंचाग्नि करके पंचम प्रश्नका व्याख्यान किया॥:—अर्थात् पूर्व राजा जैवलिने श्वेतकेतु के प्रति पांच प्रश्न कियेरहे तिनमें चतुर्थ प्रश्न यह रहाकि " वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्यता ३ इति " तू जानता है कि जिसप्रकार स्वर्गलोक पूर्ण

होता नहीं, तब उस प्रश्न का उत्तर श्वेतकेतुको न आया । तिस प्रश्न का उत्तर राजाने उद्दालक प्रति कहा—:। अरु प्रथम प्रश्नका उत्तर दक्षिणायन उत्तरायण मार्ग करके निर्णय किया ।:--अर्थात् पूर्व राजाने श्वेतकेतु से प्रथम "। यदितो ऽधिप्रजाः प्रयन्तीति " यह प्रश्न किया रहा कि जिस प्रकार यह सर्व प्रजा नीचे से ऊपरको जाती है तिसको तू जानता है । तिस प्रश्नका उत्तर राजाने उद्दालक प्रतिकहा--:।। अरु दक्षिणायन उत्तरायण मार्गोंका व्यावर्त्तन (पृथक् २) होना भी कहा।:--अर्थात् उक्त दो मार्गों के सेवियों का मरणोत्तर अग्नि में दाह होना समान है । तिसके अन्तर उनका पृथक् होना होता है, तहां उत्तरायण वाले अर्चिरादि मार्ग से, इतर, दक्षिणायन मार्ग वाले, धूमादि मार्ग से जाते हैं । पुनः उत्तर दक्षिण अयन करके षण्मासको प्राप्तहोय, एक संवत्सर के अवयव बिषे दोनों मिलते हैं । पुनः वहां से पृथक् होय अपने अपने मार्गों को जाते हैं तहां उत्तरायण वाला उत्तरायण के षण्मासंसे आगे संवत्सर को 'संवत्सरसे आदित्य को' इस प्रकार प्राप्तहोता जाताहै । अरु दक्षिणायन वाला दक्षिणायन के षण्मास के आगे पितृलोकको प्राप्तहोताहै, सो व्याख्यान किया ।:——अर्थात् पूर्व राजा जैवलिने श्वेतकेतुसे तीसरा प्रश्न यह कियारहा कि "। वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयानस्यच व्यावर्त्तना "। तू जानता है ।कि देवयानका अरु पितृयानके मार्ग जहांसे भिन्न २ होते हैं । तिसका उत्तर राजाने उद्दालक से उक्त प्रकार करके कहा--:। अरु क्षीणकर्माओंका पुनरावर्त्तन जिसप्रकार चन्द्रलोक से आकाशादि क्रमकरके होताहै सो भी कहा ॥:-- अर्थात् राजा जैवलि ने पूर्व श्वेतकेतु से द्वितीय प्रश्न यह किया रहा कि "।वेत्थ यथा पुनरावर्त्तन्ता"। तू जानताहै जिस प्रकारफेर आवतेहैं । तिसका उत्तर भी राजा ने उद्दालक से कहा--:। अरु स्वर्ग लोककी अपूर्णताको स्व शब्द करके कहा कि "।तेनासौ लोको न सम्पूर्य्यत इति "। तिसकरके स्वर्गलोक पूर्ण नहीं होता

जिस करके ऐसाहै तिस करके संसार गति अति कष्टतरा है, तिस हेतुसे इस संसारगति से घृणा कहिये ग्लानि करते हैं। अरु जिस करके बारम्बारके जन्म मरण से उत्पन्न हुई जो वेदना तिसको अनुभव करके तिनको क्षणमात्र भी अन्यत्र (सुख) नहीं॥--अर्थात् देवयान पितृयानकी कर्मगति से भ्रष्ट कीट पतंगादि क्षुद्रजीव भावकी प्राप्ति रूप तृतीयस्थान वालेको निरन्तर जन्म मरणहोने से सर्व क्षण अति दुःखही है--ः। अरु कीटादि क्षुद्र जन्तु (जीव) जन्ममरण लक्षण रूप अतिदुःखमय अति अपार महाघोर दुस्तर समुद्रविषे प्रवेशको पाये निकसने की आशासे रहित निरालम्ब अत्यन्त दुःखी हैं जैसेकोईनको करके रहित महा अगाध अपार दुस्तर समुद्र में निमग्न निकलने की आशासे रहित अतिदुःखित होताहे तैसे। तिसहेतु से इस प्रकार की अति घोर कष्टतर संसारगति देख विवेकी उक्त प्रकार की संसार गतिसे मुक्त होनेकी इच्छा वाले इस उक्त प्रकारकी संसार गति को देख तिससे दोष दर्शनपूर्वक अति ग्लानि करते कहते हैं कि इस प्रकारके महाघोर संसार रूप महा समुद्र विषे हमारा पात कहिये गिरना कदापि मतहो॥ः--अर्थात् जैसे तृतीय स्थान रूप कीटपतंगादि जन्म मरणको पावते हैं तैसे इष्टा पूर्त्तादिकों के करने वाले जन्म मरणको पावते हैं, ताते जन्ममरण लक्षण रूप दुःखमय संसारकी प्राप्ति दोनोंकोही तुल्य है। ऐसा अनुभव कर मुमुक्षु पुरुष उक्त प्रकारकी संसारगति से मुक्त होने के अर्थ ईश्वर सद्गुरु से प्रार्थना करता है कि उक्त प्रकारके संसार सागरमें मेरा पात न हो। अरु कीट पतंगादि अतिही अल्पायु अरु क्षुद्र जीव भावकी अरु बारम्बार के जन्म मरण भावकी प्राप्ति महापातकोंसे होती है, तिसकी निवृत्ति पंचाग्नि विद्याके सम्यक् ज्ञान से होतीहै--ः तिस इस अर्थ विषे अरु पंचाग्नि विद्या की स्तुति विषे अग्रिम कहने का श्लोक (मन्त्र) प्रमाण है ८॥

स्तेनो हिरण्यस्य सुरांपिबश्छंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महाचैतेपतन्ति चत्वारः पञ्चमाश्चाचरश्छंस्तैरिति ९॥

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्निन् वेद न सहस्तैरथाचरन् पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवंवेद य एवंवेद ॥ १० ॥ इति दशम खण्डः १० ॥

इति छान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके पंचाग्निविद्यासमाप्ता ॥

अक्षरार्थ ॥

सुवर्णका चुरावने वाला, ब्राह्मण मद्यपान कर्त्ता, गुरुकी स्त्री से भोग करने वाला, ब्राह्मण का बधकरने वाला, यह चार महापातकी गिरते हैं, पंचम जो उक्त पतितों के साथ आचरताहै (सो भी उनवत् हुआ गिरताहै) ९ ॥

भावार्थमन्त्र नवमे का ९ ॥

हे सौम्य, राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम चार प्रकार के महापातकी हैं। तहां प्रथम ब्राह्मण के सुवर्ण का चुरावने वाला, अरु द्वितीय ब्राह्मण होय के मद्यपान करने वाला। अरु तृतीय अपने गुरुपत्नि (गुरुकी स्त्री) के साथ विषय भोग करने वाला। अरु चतुर्थ ब्राह्मण का बधकरने वाला। यह इतने चार (उक्त प्रकारके तृतीय स्थान रूप अपार समुद्र विषे) गिरते हैं। अरु पांचवां जो उक्त महापातकियों के साथ आचरता है ॥ :--अर्थात् उक्त प्रकार महापातकियों के साथ जो पुरुष संसर्ग करता है अर्थात् खान पान भाषण सहवासादि करता है सो पंचम भी तद्वत् हुआ गिरताहै——: ९ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ पुनः जो प्रसिद्ध इतने इन पाँचअग्नियों को जानता है सो प्रसिद्ध तिनके साथ आचरण करने जन्य पापों से लिपायमान न होयके शुद्ध पवित्र पुण्यलोक होता है, जो इस प्रकार

अथ छान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके वैश्वानरविद्या ॥

प्राचीनशाल औपमन्यवः स यज्ञ पौलुषिरिन्द्रद्यु म्नो भालवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्वि स्ते है ते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमा छंसा ञ्चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ १ ॥

जानता है जो इस प्रकार जानता है ॥ १० ॥ इति दशमखंडः १०

भावार्थ मन्त्र दशवेंका १० ॥

हे सौम्य, राजा जैबलि उद्दालक प्रति कहता हुआ कि हे गौतम। पुनः जो प्रसिद्ध यथोक्त प्रकार के पांचों अग्नियोंको सम्यक् प्रकार जानता है सो तिन महापातकियों करके सहित उन के साथ आचरण (सहवासादि) करताहुआ भी तज्जन्यपापों से लिपायमान न होके सदा शुद्ध ही होती है। अरु तिस पंचाग्नि के दर्शन (ज्ञानकरके रक्षितहै तातेपरम पवित्रहै। अरु तिसकरके पुण्य लोकहै। अर्थात् प्राजापत्यादि (वा ब्रह्मलोकादि) पुण्य लोककी प्राप्तिहै जिसको सो कहिये। पुण्य लोको। ताते पंचाग्नि विद्याका जानने वाला पुण्यलोक होताहै। जो पांचों प्रश्नोंकरके प्रश्न किये यथोक्त समस्त प्रश्नों के उत्तर अर्थ जातको जानता है (सो पुण्यलोक होताहै) यहां जो "य एवंवेद यएवंवेद" इस प्रकार दोवार कहाहै सो समस्त प्रश्नोंके निर्णय के दर्शनार्थ अरु पंचाग्नि विद्याकी समाप्ति के अर्थ है ॥ १० ॥ इति दशमखंडः १० ॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके पञ्चाग्नि विद्या ॥

अक्षरार्थ ॥

प्राचीन शाल नामवाला उपमन्युका पुत्र ताते औपमन्यवः अरु सत्ययज्ञ नाम वाला पुलुषका पुत्र ताते पौलुषिः। अरु तैसे इन्द्रद्युम्न नाम वाला भल्लवका पुत्र भाल्लवि तिसका पुत्र ता-

ते भाल्लवेयः । अरु जन नाम वाला शर्कराक्ष्य का पुत्र ताते शार्कराक्ष्यः । अरु बुडिल नाम वाला अश्वतराश्वका पुत्र ताते आश्वतराश्विः । सो यह प्रसिद्ध पाँच बड़े घर वाले बड़े श्रोत्रिय एकत्रहोके विचार करतेहुए कौन इसमें आत्मा है क्या ब्रह्म है १

अथ वैश्वानर विद्या ॥

भावार्थ मन्त्रपहिलेका ॥ १ ॥

हे सौम्य, । पूर्व " तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति " इस श्रुति करके दक्षिणायन मार्ग से चन्द्रलोक को प्राप्तहोने वाले को अन्न भावकी प्राप्ति कही है, अरु क्षुद्र जन्तु लक्षण करके अति कष्टतरा संसार गति कही है । तिन उभय दोषकी निवृत्ति के अर्थ वैश्वानर विद्यासे त्रिभावकी प्राप्तिके अर्थ उत्तर ग्रन्थका आरंभ करते हैं " अत्स्यन्नं पश्यति प्रियं " इत्यादि लिंगसे सुख से जानने के अर्थ अरु विद्या सम्प्रदान न्यायके देखावने के अर्थ आख्यायिका कहते हैं ।

हे सौम्य (किसी एकसमय) प्राचीनशाल यह नाम वाला, उपमन्यु का पुत्र ताते औपमन्यवः इस अपत्य नाम वाला अर्थात् पिता के नाम से औपमन्यव नाम वाला । अरु सत्य यज्ञ नाम वाला पुलुषका पुत्र पौलुषि । अरु तैसेही इन्द्रद्युम्न नाम वाला भल्लवका पौत्र अरु भल्लविका पुत्र भालवेय इस द्वितीय नाम वाला । अरु जन नाम वाला शर्कराक्ष्यका पुत्र ताते शार्कराक्ष्य । अरु बुडिल नाम वाला अश्वतराश्वका पुत्र आश्वतराश्विः ॥:—यहां जो एक एक ऋषि के दो दो नाम कहे हैं तहां प्रथम का तो उनका है, अरु द्वितीय नाम पिता के सम्बन्ध से है, सो उसही नाम के दूसरे से पृथक् करने के अर्थ जानने । अर्थात् एक नामके बहुत से मनुष्य होवें तिनमें से जिसको पृथक् करके कहनाहोय तहां कहते हैं कि अमुकाऽमुके का पुत्र तैसे जानना—:॥ सो यह उक्त पाँचोंऋषि महा शाला कहिये बड़े घरानेके बड़े गृहस्थ सन्तति सम्पत्ति वाले अरु नि-

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानर मध्येति त छं हन्ताभ्यागच्छामेति त छं हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

वास के अति दीर्घ आयतन वाले। अरु महा श्रोत्रिय कहिये बहुतसे वेद शास्त्रादि पढ़े अरु श्रवणकिये, ऐसे पाँचों एकत्रहोय विचार करने लगे ॥:—अर्थात् किसी एक महत् पूर्व में किसी गंगादि तीर्थ पर उक्त पाँचोंऋषि अकस्मात् काकतालीय न्यायवत् एकत्रहोय परस्पर के परिचय बिनाही स्नानोत्तर पाँचों ही वैश्वानर विद्याका पाठ करने लगे, परन्तु वैश्वानरके एक एक अंगके ज्ञाताहोने से उनका परस्पर का पाठ मिले नहीं तब पाँचोंही परस्परमें परिचय कर वैश्वानर आत्मा निमित्तका विचार करते हुए—:॥ प्र०। क्या विचार करते हुए। उ०। हमारा आत्मा कौन है, क्या ब्रह्म आत्मा है, क्या ब्रह्म अरु आत्मा इन दोनों शब्दोंका विशेष्य विशेषण भाव है। क्या अध्यात्मोपाधि परिच्छिन्न होने से ब्रह्मही आत्मा कहा जाता है, अरु उक्त उपाधि के अभाव से आत्माही ब्रह्म कहा जाता है, क्या आत्मा से अतिरिक्त करके ब्रह्म अरु तिसके उपासकत्व का निवारण करते हैं। क्या अभेद करके "। अयमात्मा ब्रह्म, नातः परमस्ति "। "। तत्त्वमसि "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म आत्मा का अभेद करके—:। आत्माही ब्रह्महै। इस प्रकार सर्वात्मा वैश्वानर ब्रह्म सोई आत्मा है। इसप्रकार विचार सिद्ध करते हुए ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध पाँचों अन्यों करके पूज्यहोते सन्ते भी वैश्वानर के उपदेष्टाको शोचते वा विचारते हुए, यह अरुणका पुत्र आरुणिः उद्दालक इस प्रसिद्ध नाम वाला ऋषि सम्यक् प्रकार वैश्वानर आत्मा को जानता है, अतएव अपने उसके पास चलो ऐसा विचार तिसके पास जाते हुए ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य प्राचीन शालादिक पाँचों ऋषि जो अन्यों करके पूजनीय महाशाला महा श्रोत्रिया सो परस्पर में वैश्वानर आत्मा विषयक विचार करत सन्तेभी निश्चयको न प्राप्तहोके वैश्वानर आत्माकेउपदेष्टाको चित्तसे विचारते वा अन्वेषण करतेहुए ॥:— अर्थात् उक्त पाँचोंऋषि अकस्मात् किसी एक तीर्थ में स्नानार्थ प्राप्तहो सर्व समकालमें एकही स्थानपर स्नानकर अपनी २ ज्ञातके अनुसार वैश्वानर विद्याका पाठ करनेलगे ' अर्थात् वो पाँचोंऋषि सर्वांग समस्त वैश्वानरको न जानके एक एक पृथक् २ अंगके ज्ञाता उपासकथे , परन्तु उक्त हेतुसे पांचोंके पाठ भिन्न २ होवें तथापि करें सर्व वैश्वानर विद्याका पाठ, अरु यह न जानें कि हम वैश्वानरके एक एक अंगके ज्ञाता होयके पूर्ण सर्वांग वैश्वानर विद्याका अहंकार अपने बिषे क्यों करते हैं । अरु जब उनके परस्पर का पाठ एक दूसरे के पाठसे न मिला तब किसी एक स्थानपर पांचों एकत्रहो उक्त प्रकार विचार करतेहुए, तथापि पाठान्तरके भेद होनेसे सम्यक् एक निश्चयको न प्राप्तहो वैश्वानर विद्याके सम्यक् जाननेवाले को विचारते हुए कि जो कोईऋषि सम्यक् प्रकार वैश्वानर विद्याको जानता होय तिसके समीप चलके विद्या अध्ययन करनी वा जाननी चाहिये —:॥ तव उनमें से किसी ने कहा कि हे पूजावन्तो जिसकरके जिसका प्रसिद्धनाम उद्दालकहै सो अरुणका पुत्र आरुणिः इस द्वितीय नामवाला ऋषि यहां आयाहै अरु वो वैश्वानर विद्याको कि जो हमको अभीष्टहै , सम्यक् प्रकार जानताहै , अतएव अपने सर्व उसके पास चलो । इस प्रकार वो सर्व ऋषि परस्पर में सम्मत निश्चयकर उस उद्दालकके आश्रमपर जातेहुए २ ॥

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्तिमामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्व्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ३ तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानंवैश्वानरमध्येति तथ्ठंहन्ताभ्यागच्छामेतितथ्ठंहाभ्याजग्मुः ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो उद्दालक प्रसिद्ध उन पांचोंको अपने आश्रमपर आवते देख विचारता हुआ कि यह पांचों महाशाला महाश्रोत्रिया मेरे समीप आयके वैश्वानर विद्याको पूछेंगे अरु मैं सो विद्या सम्पूर्ण जानता नहीं, ताते अन्य किसी जाननेवाले के पास इनको भेजें (अरु हमभी जावें) ॥ ३ ॥ ऐसा विचार उनके प्रति कहताहुआ कि हे भगवन्तः केकयदेशके केकयनाम राजाका पुत्र अश्वपतिनाम प्रसिद्ध राजाहै वो वैश्वानरविद्याको सम्यक् प्रकार जानता है उसके समीप आपजावो (मैंभी चलताहौं) सो तिसके पास जातेहुए ४ ॥

भावार्थ मन्त्रतीसरेचौथेका ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार प्राचीन शाल आदिक पांचोंऋषि वैश्वानर विद्याको सम्यक् प्रकार जानने के अर्थ तिसका ज्ञाता उद्दालक मुनिको जानके तिसके आश्रमपर चले। तब उस उद्दालक मुनिने उन पांचों को अपने आश्रमपर दूरसेही आवते देख उनके आगमन का हेतु जान विचारने लगा। प्र०। क्या विचारने लगा। उ०। यह विचारने लगा कि यह पांचों ऋषि यहां आय जिस वैश्वानर विद्याको मुझसे पूछेंगे तिसको मैं समस्त जानता नहीं, अरु ये सर्व बड़े घरके बड़े कुलवाले बड़े विद्वान् बहुश्रुत हैं अतएव इन करके प्रश्न कियेहुएका सर्व उत्तर कहनेको मैं समर्थ नहीं। अतएव अब इनको अन्य किसी सम्यक् वैश्वानर विद्या के जाननेवाले के पास भेजें अरु मैं भी

तेभ्योहप्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार सह प्रातः साञ्जिहान उवाच नमे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ५ ॥

इनके साथ जावों । इस प्रकार उद्दालक अपने चित्त में विचारताही है कि उसही समय वो पांचों ऋषि उसके आश्रमपर आयप्राप्तहुए, तब उनके आवतेही प्रश्नकरने से पूर्वही वो उद्दालक कहता हुआ कि जिस वैश्वानर विद्याके जाननेके अर्थ आपसर्व मेरे पास आयेहौ तिसको मैं सम्यक् प्रकार जानता नहीं जो तुम्हारे प्रतिकहौं । हे पूजाकरनेके योग्यो अश्वपति नामवाला यह केकय देशके केकयनाम राजा का पुत्र है सो कैकेयः इसद्वितीय नामवाला है सो इस वैश्वानर नामक आत्मविद्याको , कि जिसका जानना आपको अभीष्ट है, सम्यक् प्रकार जानता है । अतएव तिसकी प्राप्ति के अर्थ आप उसके पास जाइये (मैं भी तुम्हारे साथ चलताहौं) ऐसा कह उद्दालक सहित छओं ऋषि वैश्वानर विद्या की प्राप्ति की दृढ कामना धार उस राजा अश्वपति के पास केकय देश को जाते हुए ३ ॥ ४ ॥

अक्षरार्थ

तिन अपने यहां प्राप्तहुए के अर्थ पृथक् पृथक् उनका आतिथ्यादि सत्कार करावता हुआ अरु सो प्रसिद्ध राजा प्रातःकाल उनके समीप जाय कहता हुआ मेरे राज्य में चोर नहीं, कृपण नहीं, मद्यपेयी नहीं, अग्निहोत्र न करता होय ऐसा नहीं, अविद्वान् नहीं, परस्त्रीगामी पुरुष नहीं, पर पुरुषगामी स्त्री नहीं, तुम ने कहीं भी मेरे राज्य में देखाहै । हे पूजाके योग्य मैं इन अपने

एक एक ऋत्विजों को जेतना जेतना धन दूँगा तेतना तेतना आप लोगों को भी दूँगा, हे भगवन्त आप यहां निवास करिये, इति ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पञ्चमका

हे सौम्य, उक्त छओं ऋषि जब वैश्वानर विद्याकी जिज्ञासा धार उस राजा अश्वपति के नगर में जाय प्राप्त हुए अरु उन ऋषियों का अपने यहां आगमन राजाने श्रवणकिया—: ॥ तब तिन अपने यहां प्राप्तहुए ऋषियों का सुख वासादि आतिथ्य सत्कार वो राजा अपने पुरोहित अरु भृत्यादि द्वारा करावताहुआ, क्योंकि उस समय राजा आप दीक्षित यजमान हुआ अपने यज्ञकार्य में स्थित था ताते दूसरे दिवस वो राजा प्रातःकाल के समय उन ऋषियों के पास जाय प्रणामकर विनय पूर्वक कहता हुआ कि हे भगवन् यह एतना धन मुझ करके दियाहुआ आप ग्रहण करिये। तब उन ऋषियोंने कहा हम धनार्थी नहीं। तब वो राजा अपने चित्तमें विचारताहुआ कि यह सर्व ऋषि निश्चयकरके मेरे बिषे दोष देखते हैं एतदर्थ मेरे दिये धनको ग्रहण करतेनहीं। ऐसा विचार अपनी सद्वृत्ति (धर्मनीति) को प्रकट करत सन्ते कहता हुआ। राजोवाच। हे पूजा करने योग्य ब्राह्मणो मेरे राज्य में पराये धनके हरणकर्त्ता तस्कार चोर, कोई नहीं, अरु तैसेही मेरेराज्य में कृपण भी कोई नहीं किन्तु सर्व ही स्वशक्त्यनुसार दाता हैं। अरु मेरे राज्य में सामान्यरीत्या मद्यपान करनेवाला कोई नहीं, अरु विशेष करके ब्राह्मण होयके मद्यकापानकर्त्ता तो स्वप्नमें भी नहीं। अरु तैसेही मेरे राज्य में ऐसाकोई नहीं जो अग्निहोत्र न करताहो 'अर्थात् जिनको वेदोक्त कर्म का अधिकार है सो सर्वही अग्निहोत्र के कर्त्ता हैं। अरु अविद्वान् भी कोई नहीं ।:— अर्थात् चारों वर्णके मनुष्य अपने २ अधिकारानुसार विद्या के अध्ययन कर्त्ता हैं ॥:— हे सौम्य ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंके मनुष्यों को वेदाध्ययनकरने का अधिकार

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳहैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ सम्प्रत्यध्येषि तमेवनो ब्रूहीति ६ ॥

है । अरु शूद्रको पुराण अध्ययन का अधिकार जानना क्योंकि भारतादि ग्रन्थों में शूद्रके अर्थ पुराणोक्त मन्त्र से कर्म करना कहाहै। अरु ऐसा भी कहाहै कि जो कदापि ब्राह्मण शूद्रके यहां कर्म्म करावे तो पुराणोक्त मन्त्रों से करावे । अरु याज्ञवल्क्यादि स्मृतियोंमें शूद्र के अर्थ आचमनादि करनेकी विधि कही है अरु उनके धर्म्म भी कहे हैं, एतदर्थ शूद्रके अर्थ वेदाध्ययनका अधिकार न होके पुराण अध्ययनका अधिकार सिद्ध होता है–ः।अरु तैसेही मेरे राज्य में परस्त्री से गमन (भोग) करनेवाला पुरुष कोई नहीं (सर्वही यथाशास्त्र स्वस्त्री में ऋतुदान के कर्त्ता हैं परस्त्रीगामी कोई नहीं) अरु जिसकरके मेरे राज्यमें परस्त्रीगामी पुरुष नहीं तिसही कारण से परपुरुषगामी व्यभिचारिणी स्त्री सो कहां किंतु दुष्टाचारिणी स्त्री तो स्वप्न में भी नहीं । आपने मेरी प्रजाको उक्त प्रकारसे विपरीताचरण वाली कहीं देखा होय तो कहो ।ः—अतएव जिस प्रजा का धन मेरे कोशमें आवत है सो सर्व धर्मात्मा होने से अरु मेरे न्यायनीति प्रमाण ग्रहण क[illegible] से मेरा धन अन्य साधारण राजाओं के धनवत् आप सर[illegible] ब्राह्मणों करके अग्रहण करने योग्य नहीं –ः । अरु आपने कहा कि हम इस धनके अर्थी नहीं ताते हम इस धनको ग्रहण न करेंगे, सो क्या इस धनको अल्प मानके आप ग्रहण नहीं करते। हे पूजा करने के योग्य ब्राह्मणो मैं अपने एक एक ऋत्विजों को जेतना जेतना धन यज्ञकी दक्षिणामें दानकरोंगा तेतना२ प्रत्येक आपलोगों को भी दूँगा । अतएव आपसर्व यहां निवासकर मेरे यज्ञको देखिये ५ ॥

अक्षरार्थ

(उक्त प्रकार जब राजा ने कहा तब) सो ब्राह्मण कहते हुए

तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रति चक्रमिरे तान् हानुपनीयैवैतदुवाच ७। ११॥

यह पुरुष जिस प्रयोजन के अर्थ जिसके पास जाय प्रथम उस प्रयोजन को सिद्ध करलेवे, हमारा यही प्रयोजन है कि आप वैश्वानर आत्माको सम्यक् प्रकार जानतेहो सो हम सर्व के प्रति उपदेश करो ६॥

भावार्थ मन्त्र षष्ठका

हे सौम्य, ।:–उक्त प्रकार जब राजा अश्वपतिने अपने यहां प्राप्त हुए उपमन्यु आदि छओं ऋषियों के समक्ष अपनी प्रजा का स्वधर्म पूर्वक आचरण अरु अपने धनकी निर्दोषता कही तब तिसको श्रवण कर –:। सो ब्राह्मण कहते हुए कि हे राजन् पुरुषों को उचित है कि जिस प्रयोजन के अर्थ जिसके समीप जाय उससे प्रथम उस प्रयोजनको सिद्धकरले ॥:— अरु उसके सिद्धकिये विना अन्य कार्य्य में प्रवृत्तहोताहै तो वो पूर्वका कार्य्य उसको शापदेताहै कि तू मेरे अर्थ प्रवृत्तहोके प्रथम मेरे सिद्धकिये बिना अन्य कार्य्य में प्रवृत्तहुआ अतएव अहं तुझको सिद्ध होने के नहीं अरु अन्य कार्य्य भी सिद्ध होने का नहीं—:॥ ताते हम जिस प्रयोजन के अर्थ आपके निकट आये हैं सो जब सिद्धहोलेगा तब और करेंगे। हे राजन् हम सर्व धनार्थी न होके वैश्वानर के ज्ञानार्थी आपके समीप आयेहैं, अरु आप इसआत्मा वैश्वानर को सम्यक् प्रकार जानते हो, ताते आपसो वैश्वानर विद्या हम सर्वके प्रति उपदेश करिये ६॥

अक्षरार्थ

तिनकेप्रति राजा कहताहुआ प्रातःकाल (कल्ह) तुम्हारे प्रति उत्तर मैं देवोंगा (एतना कह राजा अपने गृहको गया) तब वो प्रसिद्ध छओं ऋषि समिधा हाथमेंले दूसरे दिवस प्रातःकाल

राजाके समीप जातेहुए तब तिन प्रसिद्ध अपने यहां प्राप्तहुए को (विनाही शिष्यकिये कहताहुआ ७ ॥ इतिप्रथमखंडः १।११ ॥

भावार्थ मन्त्रसातवेंका ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार जब प्राचीन शाल आदि ऋषियों ने राजा अश्वपति से कहा कि हे राजन् हम आपके यहां धनके प्रयोजनार्थ आये नहीं किन्तु वैश्वानर विद्याके प्रयोजनार्थ आये हैं अतएव आप हम सर्वको वैश्वानर विद्या कहिये, तब —: तिन ऋषियों प्रति राजा कहताहुआ कि मैं कल्ह प्रातःकाल को (यज्ञसे निवृत्तहोके) तुम्हारे प्रति उत्तर देवोंगा (एतना कह वो राजा उन ऋषियों के स्थानसे अपने भवनको पगधारता हुआ) तब उस राजा के वाक्यके अभिप्राय के जाननेवाले ऋषि ॥:—अर्थात् राजाने जो उनसे कहा कि मैं तुमको कल्ह प्रातः कालको उत्तर कहोंगा, तिसका तात्पर्य यह है कि जब तुम शास्त्र रीति प्रमाण समित्पाणिहोय जिज्ञासापूर्वक नम्र भाव से मेरे निकट आवोगे तब मैं तुमको कहोंगा, तिस तात्पर्य के जानने वाले वो छओं महाशाला महाश्रोत्रिया ऋषि—:॥ समित्का भार अपने हाथमें ग्रहणकर दूसरेदिवस पूर्वाह्णको राजा के समीप जाते हुए। जब इस प्रकार वो छओं ऋषि अपने महाशालत्वपने अरु महाश्रोत्रियत्वपने आदिकों के अभिमान को त्याग समित्का भार अपने हाथमें ग्रहणकर अपने से जाति में हीन जो क्षत्रिय राजा तिसके पास विद्यार्थी हो नम्र भाव पूर्वक प्राप्तहुए। तैसेही अन्य विद्या उपार्जित करने वाले को भी करना चाहिये ॥:—अर्थात् जैसे प्राचीन शाल आदि ऋषि अपने सर्व प्रकार के महत्त्वपने आदिकों के अभिमान को त्याग समित्का भार अपने हाथ में ले अति नम्र भाव पूर्वक अपने से जातिमें हीन जो क्षत्रिय तिसके पास विद्या प्राप्त करने के अर्थ गये अरु तिसका दिया धन न अंगीकार करके अपने प्रयोजन में दृढ़ रहे। तैसे अन्य विद्यार्थियों ने भी अपने सर्व अभिमान को त्याग

अथ वैश्वानर विद्याका द्वितीय खंड प्रारभ्यते २ ॥

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भाग वो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वान रोऽयं त्वमात्मनामुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

शास्त्ररीत्या समित्पाणि होय आचार्य के पास जाय विद्या उपार्जन करना अरु जो वो आचार्य जाति में अपने से हीन भी होय तो भी उसकी हीनता को न बिचार उसमें आचार्यत्व भाव मानना—:॥ तब राजा ने बिचार किया कि इन ऋषियों के अर्थ विद्या देनी चाहिये (क्योंकि यह उत्तम ब्राह्मणहोके अपने सर्व अहंकार को त्याग समित्पाणिहोय चित्तमें शिष्य भाव धार विद्यार्थियोंवत् मेरे यहां अति दूरसे आये हैं, इस प्रकार बिचार के) अपनयन (शिष्य) न करके केवल उनके प्रणिपातादि भावको देख केही तिन यथा योग्योंके अर्थ विद्या देताहुआ। तैसे अन्यों ने भी विद्या देनी चाहिये ॥:—अर्थात् जो कोई जिस विद्या को जानता होवे अरु उसविद्या अर्थी जिज्ञासु श्रद्धा बिनय सम्पन्न होय अपने सर्व अहंकार त्याग शास्त्ररीत्या समित्पाणि होय उसके समीप प्राप्तहोय तो उसके अर्थ विद्या कहनी चाहिये-:॥ यह इस आख्यायिकाका तात्पर्यहै॥ १॥ इति वैश्वानर विद्याका प्रथमप्रपाठकका ११ वां खंडः १। ११ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे औपमन्यु किस आत्माको तू उपासता है। हे पूजा के योग्य राजन् मैं द्युलोकको उपासता हौं। राजा कहता हुआ यह ही सुतेजानाम आत्मा वैश्वानरहै, इस आत्माको तू उपासता है तिसके प्रभावसे तेरेकुल में सुत प्रसुत आसुत दृश्य आवतेहैं१

अथ भावार्थ खंड २ मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, (उक्तप्रकार जब छओं ऋषि राजा अश्वपति के पास वैश्वानरविद्याके अर्थसमित्पाणि होय विधिवत् प्राप्तहुए तब विद्या उपदेश करने से पूर्व राजा उन प्रत्येकसे भिन्न भिन्न प्रश्न करताहुआ ॥ प्रश्न ॥ वो राजा क्या प्रश्न करताहुआ ॥ उत्तर ॥ वो राजा अश्वपति प्रश्नकरताहुआ कि हे औपमन्यु किस आत्माको तू वैश्वानर जानके उपासताहै । यह राजाने प्रश्नकिया ॥ शंका ॥ ननु, आप आचार्यहो के शिष्यसे प्रश्न करना यह अन्याय है ॥उत्तर॥ यह दोष नहीं, क्योंकि "यद्वेत्थ ते न मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति " यह श्रुति वाक्यरूप न्यायके देखने से ॥:- अर्थात् यह नारद सनत्कुमार सम्बादकी श्रुति न्याय प्रमाणहै । जब नारदऋषि आत्मजिज्ञासाधार के सनत्कुमारके पास जाय विनय पूर्वक कहताहुआ कि आप मुझको आत्मविद्या उपदेश करो, तब सनत्कुमारने कहा कि जो तू जानता है सो प्रथममेरे आगेकह मैं प्रथम तिसको जानलूं तब तिसके परचात् जोकुछकहना होगा सो कहोंगा-: ॥ अरु अन्यत्र भी शिष्यके प्रति आचार्य्य का प्रश्न देखते हैं "क्वैषतदाऽभूत्कुत एतदागादिति " यह वृहदारण्यक के चतुर्थाध्यायमें राजा अजातशत्रुने गार्गनाम ब्राह्मण से, जो उसका शिष्यहुआ प्रश्न किया है—: ॥ ताते आचार्य का शिष्यसे प्रश्न करना अन्यायनहीं ॥तब वो औपमन्यु कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं द्युलोक कोही वैश्वानरजान के उपासता हों । तब राजा कहताहुआ कि यह ही सुतेजा है, अर्थात् शोभन दिव्य तेजहै जिसका सो यह द्युलोक सुतेजा यह प्रसिद्ध वैश्वानर आत्मा है । अरु यह सुतेज द्युलोक वैश्वानरका अवयव भूतहोने से, जिसको तू पूर्ण वैश्वानर मानके उपासता है सो उसको एकदेश उपासता है । अरु उस वैश्वानरका एक अवयव जो सुतेजा नाम है तिसकी उपासना के प्रभाव से तेरे पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि अति तेजस्वी दृष्ट आवते हैं, अर्थात् तेरे

अत्स्यन्नं पश्यति प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्य स्य ब्रह्मवर्चसं कुलेय एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्द्धात्वेष आत्मन इति होवाच मूर्द्धाते विपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति २ ॥ १२ ॥

इति वैश्वानर विद्यायांद्वितीयखंडः २ ॥ १२ ॥

कुल के पुरुष अतिही कर्म्मीष्ठ (वेदोक्त कर्म्म के कर्त्ता) हैं १॥

अक्षरार्थ ॥

और भी जो कोई अन्नको देखताहै (वैश्वानरको उपासताहै) तिसका प्रियहोता है, तिसके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते है, जो कोई इस सुतेजानाम वैश्वानरको उपासता है, यह द्युलोक वैश्वानरका मस्तक है। एतना कह पुनः राजा कहता हुआ कि मस्तक तेरा गिरपड़ता जो तू मेरे निकट न आवता२॥ इति द्वितीयखण्डः २ ॥ १२ ॥

अथ भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, [यह जो वैश्वानरके मस्तक द्युलोककी उपासना का फल कहाहै सो केवल प्राचीनशालकेही अर्थहोय ऐसा नहीं किन्तु अन्य भी जो कोई उक्त उपासना को करता है तिसको भी सो फल प्राप्तहोता है] सो कहते हैं, पुनः श्रुति कहतीहै कि जो कोई सर्व अन्न के भोक्ता वैश्वानरके द्युलोकरूप सुतेजा नाम मस्तकरूप अवयवकी उपासना करताहै तिसका सर्व प्रिय होताहै अरु उसके कुलमें पुत्र पौत्रादि सर्व तत्त्ववेत्ता सब कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो कोई यथोक्त वैश्वानरकी उपासना करता है, अरु सो सुतेजानामद्युलोकजो वैश्वानरका मस्तक रूप एक अवयवहै, सो समस्त वैश्वानर नहीं॥ः—यद्यपि इस वैश्वानर के एक अवयव मस्तककी उपासनाका धन सन्तति की प्राप्ति रूप फल है, तथापि समस्त वैश्वानरके अभेद ज्ञानवान् उपा-

अथ वैश्वानर विद्यायां तृतीय प्रपाठके त्रयोदशमंखंडः ३ ॥ १३ ॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्व मात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवा चैष वैविश्वरूप आत्मा वैश्वानरोऽयं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तवबहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

सककी दृष्टिमें सो अज्ञानही है—:॥ पुनः राजा कहता हुआ कि हे प्राचीन शाल एतदर्थ अर्थात् वैश्वानर के मस्तक रूप एक अवयवको समस्त वैश्वानरका रूप जानके उपासना करने के प्रभाव से तेरा मस्तक गिरपड़ता, जो तू मेरे निकट न आवता, अभिप्राय यह है कि जो तू वैश्वानर विद्या के ज्ञानार्थ मेरे निकट आया सो अति श्रेष्ठ किया ॥२ ॥ इतिद्वितीय अरु द्वादश खण्डः ॥ २ ॥ १२ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा सत्ययज्ञ पौलुषिको पूछताहुआ कि हे प्राचीन योग्य तू किस आत्माको उपासता है इति, हे पूजाके योग्य राजन् आदित्यकोही ,उपासताहौं, राजा कहताहुआ यह ही विश्वरूप (आदित्य) आत्मा वैश्वानर है, इस आत्माको तू उपासताहै तिसकरके बहुत विश्वरूपकोतेरे कुलमें देखते हैं १ ॥

भावार्थ खण्डः ३ मन्त्र प्रथमका ॥

हे सौम्य, [यहां जो अथ शब्द है सो प्राचीन शालके तूष्णीं होनेके अनन्तरका बोधकहै] उपमन्युकेपुत्र प्राचीनशालके तूष्णीं होने के अनन्तर राजा अश्वपति पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञसे कहता (प्रश्नकरता) हुआ कि हे प्राचीन योग्य तू किस आत्मा(वैश्वानर) को उपासता है, इसप्रकार जब राजाने प्रश्न किया, तब सत्ययज्ञ कहता हुआ कि हे पूजा करने के योग्य हे राजन् मैं आदित्यकोही वैश्वानर आत्मा मानके उपासना करताहौं, इस

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नंपश्यासि प्रिय मत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्च्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वे तदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति तृतीय खण्डः ३ ॥ १२ ॥

प्रकार जब सत्ययज्ञने कहा तब पुनः राजा अश्वपति कहताहुआ कि यह आदित्य विश्वरूपहै, अर्थात् आदित्य के शुक्ल रक्त कृष्णादि रूपहोने से विश्वरूप कहते हैं, अथवा आदित्य को सर्व रूप होने से विश्वरूप कहते हैं। अर्थात् त्वष्टा जो सूर्य्य तिसके ही सर्वरूप हैं याते, एतदर्थ। तिस विश्वरूप आदित्य की उपासना के प्रभाव से तुझको बहुत विश्वरूप है, अर्थात् इस लोक परलोक के भोगार्थ बहुत से उपकरण तेरे कुलमें देखते हैं १ ॥

अक्षरार्थ ॥

प्रवृत्त है अश्वतरी युक्तरथ अरु दासी दासादि तुझको। और कोई भी जो अन्न (वैश्वानर) को देखता (उपासता) है सो अति प्रिय अन्नको देखता है, उसका प्रिय होताहै, तिसके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मिष्ठहोते हैं, जो कोई इस आदित्य वैश्वानर को उपासता है, यह आदित्य वैश्वानरका चक्षुहै, राजा कहता हुआ कि तू अन्धाहोजाता जो मेरे निकट न आवता ॥ २॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य,(पुनः वो राजा कहताहुआ कि हे सत्ययज्ञ) किंच तुझको जो अश्वतरी (खच्चर) युक्त रथ वा अश्वतरी रथ कहने से अश्वतरी उपलक्षणकरके ,अश्वतरी, अश्व, रथ, हस्ती, उष्ट्रादि यान वाहन अरु अनेक दास दासी आदि भृत्य सेवक बहुत हैं ॥ :—अर्थात् विश्व भोगके उपकरण सामग्री यावत् हैं सो

अथ वैश्वानर विद्यायांचतुर्थखंडः ॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति १ ॥

सर्व तुम्हको प्राप्त हैं—: ॥ अरु सो सर्व इस आदित्यरूप वैश्वानर आत्माकी उपासना फल प्रभाव है (सो यह तुम्हही को प्राप्त होय ऐसा नहीं) किन्तु अन्यकोई भी जो इस सर्व अन्नके भोक्ता आदित्य रूप वैश्वानर आत्माको देखता कहिये उपासता है सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता है अरु उसका अति प्रिय होताहै । तिसके कुलमेंसर्व तत्त्ववेत्ता अरुकर्म्मीष्ट होतेहैं । जो इस ही आदित्यरूप आत्मा वैश्वानरको उपासता है । यह आदित्य वैश्वानर आत्माकाचक्षुहै, समस्त वैश्वानरनहीं । पुनःराजाकहता हुआ कि जो तू मेरेपास न आवता तो चक्षुबिनाका अन्धाहोजाता ॥:—अर्थात् तूने वैश्वानर के सर्व अंगों से उसके चक्षुरूप अवयवको उससे पृथक् कर उसमें समस्त वैश्वानरकी भावना से उपासना किया तिस दोषकर के तेरा चक्षु तुझसे पृथक् होजाता अर्थात् तू चक्षुहीन अन्धाहोजाता जो कदापि मेरेपास न आवता । अभिप्राय यह जो तूमेरे निकट आयासो अति श्रेष्ठ किया२॥ इति वैश्वानर विद्यायां तृतीय खंडः ॥ ३ ॥ १३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा इन्द्रद्युम्नको पूछताहुआ तू किस आत्मा वैश्वानर को उपासताहै, इति । हे पूजाके योग्य राजन् मैं वायु को ही (वैश्वानर जानके उपासताहौं) इति । राजाने कहा यहही नाना भेदवाला आत्मा वैश्वानरहै कि जिसको तू आत्मा जानके उपासताहै, तिसकरके तुझको नानाजाति के अन्न वस्त्रादि भाय प्राप्तहोतेहैं अरु रथोंकी श्रेणीभी तुझको प्राप्तहोतीहै १॥

अत्स्यन्नंपश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियंभवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्तेप्राण स्त्वेषआत्मानइति होवाच प्राणस्तउदक्रमिष्यद्यन्मां ना गमिष्यइति २ ॥ इति चतुर्थखंडः ४ ॥ १४ ॥

अर्थ भावार्थ खंड चतुर्थ मन्त्र प्रथमका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार सत्ययज्ञनाम ऋषि से कहके पुनः वो राजा अश्वपति इन्द्रद्युम्न नामवाला भल्लवीका पुत्र भाल्लवेय तिसके प्रति कहता हुआ कि हे वैयाघ्रपद्य तू किस आत्मावैश्वानरको उपासता है। इस प्रकार जब राजाने प्रश्न किया तब वो इन्द्रद्युम्न कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं वायु को वैश्वानर आत्मा जानके उपासताहौं। इस प्रकार जब इन्द्रद्युम्नने कहा तब पुनः वो राजा अश्वपति कहते हुआ यह नाना गतिवाला वायु वैश्वानर आत्मा है जिसको तू आत्मा मानके उपासता है। अर्थात् जिसवायुको तू उपासता है सो " पृथग्वर्त्माऽऽत्मा " इस नाम से कहाजाता है, अर्थात् आवह उद्वहादि नाना गति भेद वर्त्तमान हैं जिसमें वा नाना दिशाओं से चलने वाला होने से नाना गति भेद वर्त्तमान हैं जिसमें, ऐसा यह वायुहै। तिस वायुरूप वैश्वानर आत्माको तू उपासताहै तिस करके तेरेपास नाना दिशा देश देशान्तरके अन्न वस्त्रादि लक्षण रूप बलय (भोग्य) आय प्राप्तहोते हैं, अरु नानाप्रकारके (वायुवंत् शीघ्रगामी) रथोंकी पंगतियां भी तेरेको प्राप्तहोती हैं (यह सर्व वायुरूप वैश्वानर आत्माकी उपासनाका फलहै) १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो इस अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासता है सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता है (पावता है) तिसका प्रिय होता है। इसके कुलमें तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है यहवायु तो वैश्वानर आत्माका

अथ वैश्वानर विद्यायां पंचम खण्डः ॥

अथ होवाच जनछं शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैषवै बहुल आत्मा वैश्वानरोऽयं त्वमात्मान मुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोसि प्रजयाच धनेन च ॥ १ ॥

प्राणहै इति । राजा कहताहुआ तेरा प्राण निकसजाता जो तू मेरे पास न आवता २ इतिचतुर्थ खंडः ४ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति कहताहुआ कि हे इन्द्रद्युम्न जैसे वायुरूप वैश्वानरकी उपासनासे तुझको नानाजाति के अन्न वस्त्रादि अरु नानाजाति के रथ पंक्ति आदि तुझको प्राप्तहैं तैसे) अन्यभी जो कोई सर्व अन्न (भोग्य सामग्री) के भोक्ता वायुरूप वैश्वानरको उपासताहै वो अति प्रिय अन्नको देखताहै ' अर्थात् तिसको अतिप्रिय भोग्य सामग्री प्राप्तहोती है, अरु उसका प्रियहोताहै॥ः—अर्थात् उसका सर्व अभीष्ट सिद्धहोताहै—ः॥ अरु जो इसही वायुरूप आत्मा वैश्वानरकी उपासनाकरतेहैं तिसके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होतेहैं। अरु यह वायु तो वैश्वानरका प्राणहै, यह समस्त वैश्वानर नहीं। एतना कह पुनः राजा कहता हुआ कि हे इन्द्रद्युम्न जो तू मेरेनिकट न आवता तो तेरेप्राण निकसजाते ॥ः—अर्थात् समस्त वैश्वानरको न जानके तिसके प्राणरूप वायु एक अवयवको उससे पृथक्कर तिसको समस्त वैश्वानरकारूप जानके तैंने उपासना किया, ताते जैसे तैंने वैश्वानरके प्राण वायुको समस्त वैश्वानरसे पृथक् किया तैसे तेरा प्राण भी तेरे शरीरसे पृथक् होजाता जो तू वैश्वानर विद्या के अर्थ मेरे निकट न आवता—ः ॥ अतएव यह तूने अति श्रेष्ठ किया जो तू मेरे निकट आया ॥ २ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां चतुर्थ खंडः ४ । १४ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यतिप्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले यएत मेवमात्मानं वैश्वानर मुपास्तेसन्देहस्त्वेष आत्मन इति हो वाच सन्देहस्ते व्यशीर्य्यद्यन्मां नागमिष्य इति २।५॥

अक्षरार्थ॥

तिसके अनन्तर राजा कहता हुआ कि हे जन शार्कराक्ष्य तू किस आत्मा वैश्वानरको उपासताहै इति, हे पूजाकेयोग्य राजन् आकाशको ही उपासता हौं इति, राजाने कहा यहही बहुल नाम आत्मा वैश्वानर है जिसको तू आत्मा जानके उपासता है, तिस कारण से तू प्रजा अरु धन करके बहुल है॥१॥

अथ भावार्थ खंड ५ मन्त्र प्रथमका॥

हे सौम्य, इन्द्रद्युम्नसे कहने के अनन्तर राजा अश्वपति शर्कराक्षके पुत्रजन नामवाले ऋषि से प्रश्न करता हुआ कि हे जन तूकिसआत्मा वैश्वानरको उपासताहै। इसप्रकार जब राजा ने प्रश्नकिया तब वो जन नामवाला ऋषीश्वर कहता हुआ कि हेपूजाकेयोग्य राजन् मैं आकाशकोही वैश्वानर जानके उपासता हौं इस प्रकार जब उस जन नाम ऋषि ने कहा तब पुनः राजा कहता हुआ कि हे जन यहही बहुल नाम वाला आत्मा वैश्वानर है कि जिसको तू आत्मा वैश्वानर जानके उपासता है। अरु तिस उपासना के ही प्रभाव करके तू प्रजा अरु धनादि करके बहुल है॥१॥

अक्षरार्थ॥

जो इस भोक्ता वैश्वानरको उपासता है सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता (पावता) है तिसका प्रिय होता है इस के कुलमें तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है। यह आकाशतो वैश्वानर आत्मा का मध्य

अथ वैश्वानरविद्यायांषष्ठवांप्रपाठकेषु १६ वां खण्डः ॥

अथ होवाचबुडिलमाश्वतराश्विं वैय्याघ्रपद्य कं त्व त्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वैरयिरात्मा वैश्वानरोऽय त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्व छं रयिमान् पुष्टिमानसि ॥ १ ॥

का शरीर है। पुनः राजा कहता हुआ तेरा मध्य शरीर विखर वा फट जाता जो तू मेरे पास न आवता ॥ २ ॥ इति पंचम खंडः ॥ ५ ॥

भावार्थमन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, पुनः वो राजा कहता हुआ कि हे जन (उक्त वैश्वानरकी उपासना से जो फल तुझको प्राप्त है सो तेरे ही अर्थ होय ऐसा नहीं किन्तु) जो कोई इस सर्व अन्नके भोक्ता आत्मा वैश्वानरको देखता कहिये उपासताहै सो अति प्रिय भोग्य सामग्रीको पावता है अरु उसका सर्व प्रिय होता है, अरु उसके कुल में सर्वही तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं,जो इसही आकाश वैश्वानर आत्मा को उपासते हैं। यह आकाश तो वैश्वानर आत्माका मध्य (कंठसे नीचे कटि से ऊपर) का शरीरहै। पुनः राजा कहता हुआ कि मध्यका शरीर तेरा विखर वा फट जाता जो तू मेरे पास न आवता अतएव यह तैंने बहुत श्रेष्ठ किया जो तू मेरे निकट आया ॥ २ ॥ इति पंचमखंडः ॥ ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा अश्वतरा के पुत्र बुडिलनामवाले ऋषि से प्रश्न करता हुआ कि हे व्याघ्रपद्य तू किस आत्मा को उपासता है इति, हे पूजाके योग्य राजन् जल ही को (आत्मा वैश्वानर मान के उपासताहौं) इति, राजा कहता हुआ सो रयि (धन) नामवाला आत्मा वैश्वानरहै, जिस आत्मा वैश्वा-

अत्स्यन्नं पश्यासि प्रियमत्यन्नं पश्यति। प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते व स्तिस्त्वेष आत्मन इतिहोवाच वस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति २॥ इति षष्ठ खंडः ६॥ १६॥

नरको तू उपासता है, तिसके प्रभाव से तू धनवान् अरु शरीर से पुष्टिमानहै ॥ १ ॥

भावार्थ खंड ६ मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य, जन नाम ऋषीश्वरसे कहनेके अनन्तर राजाअश्वपति अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलनाम वाले ऋषिसे कहता हुआ किहे व्याघ्रपद्य तू किस आत्मा वैश्वानरको उपासताहै। इसप्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब वो, बुडिल कहता हुआ कि हे पूजा के योग्य राजन् मैं जलकोआत्मा वैश्वानर जानके उपासताहौं। इस प्रकार जबउस बुडिलने कहा तबपुनः राजा कहताहुआ कि। यह जलजोहै सोरयि नामवाला आत्मा वैश्वानर है। रयिनाम धनकाहै अर्थात् जलसे अन्न होता है अन्नसे धनहोता है ॥ :—हे सौम्य जल शब्दका पर्य्याय द्रव्य भीहै अरु द्रव्यका पर्य्याय धनहै अरु धनका नाम रयिहै अतएव यहां जलको धननामसे कहा है, अरु जल जो है सो वैश्वानर आत्माका मूत्रस्थानरूप अवयव विशेष है ऐसा आगे कहेंगे—: ॥ एतदर्थ जिसकी तू उपासना करता है सो रयिनाम आत्मा वैश्वानरहै, तिसकी उपासना के प्रभाव से तू धनवान् अरु शरीर करके पुष्टिमान है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो इस अन्न के भोक्ता वैश्वानर को उपासताहै सो अति प्रिय अन्न (भोग्य)को देखता (पावता) है, उसका प्रियहोता है इसके कुलमें तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानर को उपासता है, इस आत्मा का जल मूत्र संग्रहस्थान

अथ वैश्वानर विद्यायां ७ प्रपाठकेषु १७ खंडः ॥

अथ होवाचौद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मान मुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरोऽ य त्वमात्मानमुपासे तस्मात्त्वं प्र तिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च १ ॥

है इति । पुनः राजा कहता हुआ तेरा मूत्रसंग्रहका स्थान भिन्न हो जाता वा फट जाता जो तू मेरे निकट न आवता २ ॥ इति षष्ठ खराडः ६ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति उस बुडिलनाम ऋषि से कहता हुआ कि हे बुडिल जलरूप वैश्वानर की उपासना से तू ही धनवान् पुष्टिमान होवे ऐसा नहीं किन्तु) जो अन्यकोई भी सर्व अन्न के भोक्ता वैश्वानर को उपासताहै सो भी धना-दिक अति प्रिय अन्न (भोग्यपदार्थों) को पावताहै, अरु उसका सर्व प्रिय (अभीष्ट सिद्ध) होताहै, अरु उसके कुलमें सर्व ही तत्त्ववेत्ता परम कर्मिष्ठ होतेहैं, जो इसही जलरूप आत्मा वैश्वा-नरको उपासताहै यह जो जलहै सो वैश्वानर आत्माका मूत्रसंग्रह कास्थान (उपस्थ) है एतनाकह पुनः राजा कहताहुआ कि हे बुडिल जो तू मेरे निकट न आवता तो तेरा मूत्रसंग्रहका स्थान भेदको पावता अर्थात् फटजाता, क्योंकि जिसको तू उपासताहै सो समस्त वैश्वानर नहीं किन्तु समस्त वैश्वानरके स्वरूपसे उसके जिस अवयवको पृथक् करके तू उपासना करता है सो अवयव तेरा तुझसे पृथक् होजाता । अतएव यह तैंने अति श्रेष्ठ किया जो तू मेरेपास आया २ ॥ इतिषष्ठखंडः ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा कहताहुआ कि हे अरुणके पुत्र उद्दा-

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुलेय एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मा नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति सप्तमखण्डः ॥ ७ ॥

लक गौतम किस आत्माको तू उपासताहै इति, हे पूजाके योग्य राजन् मैं पृथिवी को आत्मा वैश्वानर मानके उपासताहौं इति, राजाने कहा यह ही प्रतिष्ठा आत्मा वैश्वानरहै, इसको तू उपासताहै, तिसकेप्रभावसे तू प्रजा अरु पशु करके प्रतिष्ठितहै १ ॥

भावार्थ खंडसातवां मन्त्रपहिला ॥

हे सौम्य ' बुडिलऋषिसे कहने के अनन्तर वो राजा अश्वपति अरुणके पुत्र उद्दालक नाम ऋषिसे कहताहुआ कि हे गौतम गोत्रवाले उद्दालक तू किस आत्मा वैश्वानर को उपासता है। इसप्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब वो उद्दालक कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं पृथिवी को वैश्वानर जानके उपासता हौं। इसप्रकार जब उद्दालकने कहा तब पुनः राजा कहताहुआ कि यह पृथिवी ही प्रतिष्ठा (पाद) हैं वैश्वानर आत्माके, इस आत्मा वैश्वानर को तू उपासता है, तिस उपासना के ही प्रभावसे तू इसलोक विषे पुत्रादि अरु पशु आदिकों करके प्रतिष्ठित है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो इस अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासता है सो अति प्रिय अन्न (भोज्य) को देखता (पावता) है, उसका प्रिय होता है, इसके कुल में तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है यह पृथिवी पाद है आत्मा वैश्वानरको इति, पुनः राजा कहता हुआ पाद तेरे शिथिल होजाते तू मेरे निकट न आवता ॥ २ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां सप्तम खंडः ७

अथ वैश्वानर विद्यायां ८ वां प्रपाठकेषु १८ वां खंडः ॥

तान् होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानंवैश्वानरंविद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, वो राजा अश्वपति उद्दालक से पुनः कहता हुआ कि इस पृथिवी रूप वैश्वानरकी उपासनासे तू ही प्रजा अरु पशु करके प्रतिष्ठित होवे ऐसा नहीं किन्तु) और भी जो कोई इस सर्व अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासता है सो भी अति प्रिय अन्न (भोग्य पदार्थों) को देखता कहिये प्राप्तहोता है। अरु उसका सर्व प्रिय (अभीष्ट सिद्ध) होता है। अरु इसके कुल में सर्व तत्त्ववेत्ता परम कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो इसही पृथिवी रूप आत्मा वैश्वानर को उपासता है, अरु यह पृथिवी तो आत्मा वैश्वानरके पाद हैं। एतना कहके पुनः राजा कहता हुआ कि हे गौतम यह तेरे पाद शिथिल हो जाते जो तू मेरे पास न आवता ॥ अर्थात् यह पृथिवी समस्त वैश्वानर नहीं किन्तु वैश्वानर के पाद रूप अवयव है तिसको तैंने समस्त वैश्वानर से पृथक् कर उस एक पाद रूप अवयव को समस्त वैश्वानर का रूप जान उपासना किया है ताते तैंने समस्त वैश्वानरके एक अंग को पृथक् कर उपासना किया तिस अज्ञान करके तेरा पाद रूप अंग नष्ट होजाता जो मेरे निकट न आवता ताते तैंने अति श्रेष्ठ किया जो मेरे निकट आया ॥ २ ॥

इति वैश्वानर विद्यायां सप्तम खण्डः ॥ ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन सर्व ऋषियों प्रति राजा कहता हुआ एते तुम सर्वही निश्चय करके पृथक् इव आत्मा वैश्वानरको(जो अपृथक् है)

परिच्छिन्न बुद्धिसे उपासते हो। अरु इस उक्त प्रकार अवयवों युक्त एक प्रादेशमात्र (सर्व अवयवोंमें एक अवयवी) अपने से अभिन्नजान के आत्मा वैश्वानरको जो उपासताहै सो सर्वलोकों बिषे सर्व भूतों विषे सर्व आत्मों विषे अन्नको भोक्ताहै॥ १॥

भावार्थ खंड आठवें मन्त्र पहिलेका ॥

हे सौम्य॥:—उक्त प्रकार राजा जैवली ने प्राचीनशाल आदि छओं ऋषि ' जो वैश्वानर आत्माके सम्यक् ज्ञानार्थ उक्त राजा के समीप विधिवत् प्राप्तहुए हैं, तिनसे एक एक करके क्रम साध्य वैश्वानरकी उपासना सम्बन्धी उनकी परीक्षाके अर्थ प्रश्नकिये, तब उन प्रत्येक के उत्तरसे उनको वैश्वानर के पृथक् २ एकएक अंगके उपासकजान उनकी उपासना के अनुसार उनको प्राप्त फल देखाया, अरु उन सर्वको समस्त वैश्वानरके स्वरूपकाज्ञान न होनेसे अरु वैश्वानरके एकएक अंगको समस्त वैश्वानरजान-के उपासना करने से। अर्थात् समस्त वैश्वानर के स्वरूपको न जानके उसके जिस जिस अवयवों को पृथक् २ करके जिस जिसने उनउन अवयवको समस्त वैश्वानर मान के उपासना किया तिसके तिसके उस उस अवयवका अभाव होना, अपने समीप न आवने से कहा—:॥ अब उन छओं ऋषियों से जो उक्त प्रकार के वैश्वानर के उपासक हैं अरु वैश्वानर के सम्यक् ज्ञानार्थ राजा के निकट प्राप्तहुए हैं, तिनके प्रति प्रसिद्ध वो वैश्वानरका सम्यक् उपासकराजा कहता हुआ कि यह जो तुम्हारे सर्वकी उपासना है सो निश्चय करके (मिथ्या ज्ञान-वत् होने से) अनर्थकारी है (क्योंकि तुमने समस्त वैश्वानरके स्वरूप को न जानके उसके एक एक अवयवको उस से पृथक्कर उसही को समस्त वैश्वानर मानके उपासना किया है, अतएव तिस अज्ञानके प्रभावसे तुम्हारा सोई सो अवयव, कि वैश्वानरके जिस जिस अवयवको जिसने २ पृथक्कर उपासना किया है, नष्ट होजाता, जो समस्त वैश्वानर के सम्यक्

ज्ञानार्थ मेरे निकट न आवते–: ॥ क्योंकि तुम सर्व ने वैश्वानर को अपृथक् होते सन्ते भी पृथक् मानके उपासना कियाहै सो (अविद्वानोंवत्) वैश्वानरमें परिच्छिन्न बुद्धिसे किया है ताते, जैसे जन्मके अन्धे पुरुष एक अपरिच्छिन्न हस्तिविषे परिच्छिन्न बुद्धिकरके उसके एक एक अवयवको समस्त हस्तिमाने तैसे ॥:–अर्थात् एक किसी ग्राम में बहुतसे जन्मके अन्ध पुरुष रहते रहैं तिस ग्राम में एक हस्ति आय प्राप्तहुआ तब उस हस्ति को देखने को सर्व अन्ध पुरुष एकत्र होय उसके समीपजाय अपने नेत्रों के अभावसे अपने हाथों से उसको स्पर्शकर उस हस्तिको अयथार्थ अनुभव करतेहुए, तहां जिसने उसकी सूंडको स्पर्श करके देखा तिसने कहा यह हस्ति तो दीर्घ मूसल के समान है, अरु जिसने उसके पैरको स्पर्श करके देखा तिसने कहा हस्ति स्थम्भके आकारहै, जिसने उसके मध्यशरीरको स्पर्शकरके देखा तिसने कहा यह हस्ति भीत वा पर्वतके आकारहै, जिसने उसकी पुच्छको स्पर्श करके देखा तिसने कहा हस्ति पुष्ट रज्जुरूपहै, जिसने उसके कानको स्पर्शकरके देखा तिसने कहा यह हस्ति तो सूपके आकारवालाहै । इसप्रकार एक अभिन्न हस्ति को अन्धोंने अपनी २ कल्पनाके अनुसार अनेक रूपसे भिन्न भिन्न जाना अरु उसके एक एक अवयवको पूर्ण हस्ति करके माना ॥ तैसेही तुम सर्वने ज्ञानरूप चक्षु के अभाव से एक अभिन्न परिपूर्ण वैश्वानर आत्मा के एक एक अवयवको समस्त वैश्वानरका स्वरूपमान के पृथक् २ उपासनाकियाहै–:॥ अरु यह वैश्वानर आत्मा तो यथोक्त द्युलोकादि रूप मूर्द्धादि अवयव विशिष्ट एक प्रादेशमात्रहै, अर्थात् द्युलोक मूर्द्धादि लेके पृथिवीरूप पादपर्यन्त आत्मरूपसे जो जानेगा जानाजाय तिसको प्रादेशमात्र कहते हैं । अथवा मुखादि करणों विषे वा करणोंसे अकर्ता रूपसे जानाजाय वा अनुभव कियाजाय सो प्रादेशमात्रहै । अथवा द्युलोक से पृथिवी पर्यन्त प्रदेश परिमाण जो व्याप्त होवेसो कहिये प्रादेशमात्र । अथवाजो

प्रकर्षकरके शास्त्रद्वारा आदेश किया जो द्युलोकादि तावत् परिमाण जो होय सो कहिये प्रादेशमात्र॥ः—अर्थात् द्युलोककहिये ब्रह्मलोकसे पृथिवी वा पाताल पर्यन्त सर्व विराट्रूप शरीरके अन्तर आकाशवत् पूर्णतासे व्याप्त जो विराट्का चैतन्यआत्मा सोई वैश्वानर आत्मा है। अरु तिसको समस्त विराट्रूप बपुमें व्याप्त होने से अरु वेद करके प्रतिपाद्यहोनेसे प्रादेशमात्र कहते हैं—ः॥ अरु शाखान्तर में "मूर्द्धादि चिबुक प्रतिष्ठ" मस्तकके अग्रभागसे चिबुक (ठोड़ी) पर्यन्त को प्रादेशमात्र कहते हैं, सो अस्तु, परन्तु यहां सो ग्रहण नहीं, क्योंकि आगे "तस्य हवा एतस्य आत्मनः" इस वाक्यसे उपसंहारहै ताते। अरु (उसविराट्विशिष्ट चैतन्य वैश्वानर आत्माको) प्रत्यगात्मा करके जानना। इसको अविभिमान। कहतेहैं ॥ः— अर्थात् जो द्युलोकसे पाताल पर्यन्त समस्त विराट्रूप समष्टि शरीरमें एक भोक्ता वैश्वानर आत्माहै, सो आत्मा वैश्वानर मैंहूं इसप्रकार—ः॥ तिस इस आत्मा वैश्वानरको। अर्थात् विश्वके समस्त नरों (जीवों) को उनके पुण्य पापरूप कर्म्मोंके अनुसारगतिको प्राप्तकरे तिसको कहिये वैश्वानर। यह सर्वात्मा ईश्वर वैश्वानरहै। अथवा सर्वात्मत्व होने से वैश्वानरहै। अथवाजो आत्मरूप करके समस्त विश्व के नरों (जीवों)वाविभागकर तिनकाप्रत्यगात्मरूपसे स्थितहोवे सोकहिये वैश्वानर। ऐसे समस्त विश्वके एक अभिन्न प्रत्य गात्मा वैश्वानरको अभेद भाव से कि सो वैश्वानर आत्मा मैंहों। इस प्रकार अहमग्रे भावसे जो उपासना करताहै सो द्युलोकादि सर्व लोकों विषे अरु चराचर सर्व भूतोंविषे अरु शरीर इन्द्रियमन बुद्धिआदिक आत्मोंविषे, अर्थात् ॥ :—शरीर प्राण इन्द्रिय मन बुद्धिआदिक संघात को पांच विभागसे पांच कोशकरके जहां वर्णन किया है तहां उनको शोकों आत्माकरकेही कहाहै क्योंकि जो जिसके अन्तर है सो तिसका आत्माहै, तहां वाह्य गृहके अन्तर अरु धारकहोने से गृहका आत्मा शरीरहै, शरीर के अन्तर प्राण है ताते

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजा श्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेवरयिः पृथिव्येव पादौ, उदरएव वेदिर्लोमानिबर्हि र्हृदयंगार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्य्यपचन आस्यमाहवनीयः २ ॥ इतिअष्टमखंडः ॥ ८ ॥ १८ ॥

सो शरीर का आत्माहै, प्राण के अन्तर मनहै ताते सो प्राणका आत्मा है, मनके अन्तर बुद्धिहै ताते सो मनका आत्माहै, इस प्रकार शरीर से बुद्धि पर्य्यन्त सर्वको आत्मत्व कहा—: ॥ इस प्रकार एक सर्वात्मा वैश्वानर का अभेद उपासक सर्वात्माहुआ सर्वमें स्थितहोय सर्व अन्नका भोक्ताहै। अर्थात् द्युलोकसे पाताल पर्य्यन्तके प्राणीमात्र जो अन्न भोक्तेहैं, सो एक वैश्वानर आत्मा का अभेद उपासकही सर्व्वात्माहुआ भोक्ताहै। अरु जो सर्वात्मा वैश्वानरके न जाननेवाला अज्ञ केवल शरीरमात्रकाही परिच्छिन्न अभिमानी है सो नहीं १ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिस प्रसिद्ध वा इस प्रकृत आत्मा वैश्वानरका सुतेजा (द्युलोक) मस्तकही है, आदित्य चक्षुहै, वायु प्राणहै, आकाश मध्य का शरीर है, जल मूत्रका स्थानहै, पृथिवी पादहै (ऐसे वैश्वानरके अभेद उपासकका भोजन कालका अन्तर अग्निहोत्रकहते हैं, तहां) उसका उदर वेदीहै उदरके रोम दर्भ (कुशा) हैं हृदय गार्हपत्य अग्नि है मन दक्षिणाग्नि है, मुख आहवनीय अग्नि है ॥ २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य ॥ :—पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीन शालआदिक ऋषियों प्रति समस्त वैश्वानर का स्वरूप कहता हुआ कि जिस की जिज्ञासासे वो ऋषि विधिवत् उसकेपास प्राप्तहुए हैं——: ॥

हे ब्राह्मणो तिस प्रसिद्ध सर्वात्मा वैश्वानरका सुतेजानाम वाला द्युलोक (सत्यलोक) मस्तकही है, अरु विश्वरूप नामवाला आदित्य उसका चक्षुहै, अरु 'पृथग्वर्त्मात्मा' इसनामवाला वायु उसका प्राणहै, अरु बहुल नामवाला आकाश उसका मध्यका शरीर है, अरु रयिः नामवाला जल उसका मूत्रसंग्रहका स्थान (उपस्थ)है, अरु पृथिवी उसके पादहैं॥इसप्रकार विराट्रूपशरीर के छओंअंगोंमें व्याप्त जो एकचैतन्यआत्मा तिसकी। उसकी उपासनाकेअर्थउपासकोंप्रति विधिके अर्थही राजाका यहवचनहै[अर्थात् राजा ने उन ऋषियों प्रति प्रधान वैश्वानर विद्या कही, अब आगे तिसका अंगभूत प्राणाग्निहोत्र विद्या विधि, अरु तिस का फल, देखावनेकी कामनासे भूमिका करते (कहते) हैं]॥:- अर्थात् जो समष्टि विराट् शरीर के उक्त सर्व अवयवों में व्याप्त जो एक चैतन्य आत्मा वैश्वानर है। सोई व्यष्टि शरीरके मस्तकादि पादपर्यन्त व्याप्त भी सोई चैतन्य आत्मा वैश्वानर है,ताते व्यष्टि समष्टि उभय उपाधि में व्याप्त एक चैतन्य आत्मा है, ताते वैश्वानरके उपासक को अभेद उपासना कर्त्तव्य है, कि जिसको अहमग्रे उपासना कहते हैं। अर्थात् जैसे वैश्वानर आत्मा समष्टि विराट्का है सोई मैं व्यष्टि विराट्का आत्मा मैं हौं, इसप्रकार के अभेद अनन्य उपासकके अर्थ प्राणाग्निहोत्र विधि कहते हैं—॥ राजा अश्वपति उन ऋषियों प्रति कहता हुआ कि उक्त प्रकारके वैश्वानर के भोजन काल में प्राणाग्निहोत्रकी विधि श्रवण करो। उक्त प्रकारके उपासकका जो उदर है सोई वेदी है आकारकी सामान्यता होनेसे अरु उदर के ऊपर के जो रोम हैं सोई बर्हि (कुशा) हैं, जैसे वेदी (हवन की सामग्री के रखने का स्थान) ऊपर कुशास्तरण (बिछौ) होती है तैसे, अरु उस उपासकका हृदय गार्हपत्य अग्नि है, अरु मन प्रजापति नामवाला वा दक्षिणाग्नि नामवाला अग्निहै ॥:— अर्थात् "गार्हपत्यात्प्रणीयते" इस श्रुतिके प्रमाणसे दक्षिणाग्नि

अथ वैश्वानर विद्यायां नवम प्रपाठकेषु १६ वां खंडः ॥

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति १ ॥ प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवितृप्यतां यत्किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिंतृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २।६ ॥

जो है सो गार्हपत्याग्निसे निकसा होता है । तैसेही मनरूप दक्षिणाग्नि हृदयरूप गार्हपत्याग्निसे निकसा होने से मन दक्षिणाग्नि है—:॥ अरु उस उपासक का मुख आहवनीय अग्निहै । आहवनीय उसको कहते हैं कि जिसविषे हवन किया जाय (अग्निहोत्रादि हवनकी आहवनीय अग्निहै २॥ इतिअष्टमखंडः ८॥

भावार्थ खंड ६ वां मन्त्र १—२ का ॥

हे सौम्य (अब राजा अश्वपति प्राचीन शालादि ऋषियोंप्रति उक्त प्रकारके वैश्वानर विद्याके उपासकों के अर्थ भोजनकाल में प्राणाग्निहोत्र कहताहै) हे ब्राह्मणो तहां इस (उक्त) प्रकार होने से जो उस विद्वानके भोजनकाल में भोजनार्थ भोजनपात्र में प्रथम प्राप्तहोवे सो होमके अर्थ है ॥ :--अर्थात् सामान्यरीति से वर्ण त्रयिके पुरुषों के अरु अर्थ विशेष करके अग्निहोत्रके कर्त्ता वैश्वानर के उपासकके अर्थ उनके भोजनकाल में भोजन के पात्र में प्रथम वो अन्न आवना चाहिये जिसमें लवणका योग संस्कार न होय, तहां विशेषकरके प्रायः घृत युक्त ओदन (भात) भोजन पात्रमें प्रथम आवना चाहिये क्योंकि सो हवन का मुख्य द्रव्य है --: ॥ तिसका हवनकरना । यह जो कथनहै सो अग्निहोत्र सम्पन्नके अर्थ विवक्षित होने से अग्निहोत्राङ्ग

अथ वैश्वानर विद्यायां दशमप्रपाठकेषु २०वांखंडः ॥

अथयांद्वितीयांजुहुयात्तांजुहुयाद्व्यानाय स्वाहेतिव्या नस्तृप्यति १ ॥ व्यानेतृप्यतिश्रोत्रंतृप्यति श्रोत्रेतृप्यति चन्द्रमास्तृप्यतिचन्द्रमसितृप्यतिदिशस्तृप्यति दिक्षुतृप्यतिषु यत्किञ्चदिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यतितस्यानुतृप्तिं तृप्यतिप्रजया पशुभिरन्नाद्येनतेजसाब्रह्मवर्चसेनेति २ ॥ इति दशमखण्डः १० ॥

विषे कर्त्तव्यता की प्राप्ति नहीं। इस भोजनकाल में प्रथम प्राप्त हुए अन्नको सो भोक्ता इस प्रथम आहुतिको हवन करे प्र० ॥ तिस आहुतिको कैसे हवन करे ॥ उ० ।" प्राणायस्वाहा" इस मन्त्र करके आहुति करे। अर्थ यह जो आहुति शब्द करके अब दानमात्र अन्नको मुखमें डाले ॥:—अर्थात् वो विद्वान् भोजनार्थ प्रथम प्राप्त हुए उक्तप्रकार के अन्नको, अंगुष्ठ मध्यमा अरु अनामिका, इन तीन अंगुली की पूर्ण चुटकीसे ग्रासमात्र ग्रहण कर उक्त मन्त्रपढ़ मुखमें डाले, अरु उसको दांतोंसे चबाये बिना कंठमें उतारलेवे—: ॥ तब तिस आहुति से प्राण तृप्तहोताहै १ ॥ प्राणके तृप्तहुए चक्षुतृप्त होताहै। चक्षुके तृप्तहोने से आदित्य तृप्त होता है, आदित्यके तृप्तहुए द्युलोक तृप्त होताहै। द्युलोकके तृप्त हुए जो कुछ द्यौ अरु आदित्य बिषे तिसके अधिष्ठातादि अधिष्ठित हैं सो तृप्त होते हैं तिनके तृप्त होने से तिस हवनकर्त्ता की (वाधितानुवृत्ति प्रमाण) अनुतृप्ति होती है, इसप्रकार प्रत्यक्ष है। प्रजा करके पशु करके अन्नादि पुनः शारीरक तेजकरके अरु अपने वेदशाखा के स्वाध्याय करने से बुद्धिके तेज करके (इस उक्त प्रकारके प्राणाग्निहोत्रके कर्त्ताकी तृप्ति होती है २ ॥ इति नवमखंडः ९ ॥ १९ ॥

अथ वैश्वानर विद्यायां ११ वां प्रपाठकेषु २१ वां खंडः ॥

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्य पानस्तृप्यति १ अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्य न्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यत्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधि तिष्ठतस्त तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन ते जसाब्रह्मवर्चसे नेति ॥ २ ॥ ११ ॥

भावार्थ खंड दशवां मन्त्र १ ॥ २ ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति कहताहुआ हेब्राह्मणो) तिसप्रथम आहुतिके अनन्तर द्वितीयआहुतिकोहवनकरे ॥प्रश्न॥ कैसे आहुतिकरे ॥ उ० "व्यानायस्वाहा" इसमन्त्रसे आहुतिकरे तिस आहुति से व्यान नाम प्राण तृप्तहोता है ॥ १ ॥ व्यान के तृप्तहुए श्रोत्र तृप्तहोता है, श्रोत्रके तृप्तहुए चन्द्रमा तृप्तहोता है, चन्द्रमा के तृप्तहुए दिशायें तृप्तहोती हैं ॥:—अथार्थ व्यान के तृप्त हुए श्रोत्र तृप्तहोता है श्रोत्रके तृप्तहुए तदभिमानी दिशायें तृप्त होती हैं, दिशाओं के तृप्तहुए तत्संबन्धी चन्द्रमा तृप्तहोता है—॥ दिशाओं के तृप्तहोने से जो कुछ दिशाओं विषे अरु चन्द्रमा विषे उनके स्वामित्व भावसे (अरु प्रजा से) अधिष्ठित हैं तिनकी तृप्ति होती है। तिनकी तृप्ति से (बाधितानु वृत्ति प्रमाण) उस भोक्ता विद्वान् की तृप्ति होतीहै। प्रजा करके पशु करके अन्नादि भोग्य पदार्थों करके, अरु शारीरक तेज करके अरु अपने वेद शाखा के स्वाध्याय निमित्तिक बुद्धि के प्रकाश करके (उस विद्वान्की तृप्ति होती है) ॥ २ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां दशम खंडः १० । २० ॥

भावार्थ खंड एकादशवां मन्त्र ॥ १—२ ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीन शालादि ऋषि-

अथ वैश्वानर विद्यायां १२ वां प्रपाठकेषु २२ वां खंडः॥

अथयां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात समानायस्वाहेति समानस्तृप्यति १ समानेतृप्यतिमनस्तृप्यति, मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति, पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यतिविद्युति तृप्यतां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिंतृप्यति,प्रजयापशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २ ॥ इति द्वादशमं खंडः १२ ॥ २२ ॥

यों प्रति कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) द्वितीय आहुति के अनन्तर, इस तृतीय आहुतिको हवनकरे ॥ प्र० ॥ किस प्रकार हवन करे ॥उ०॥ "अपानाय स्वाहा" इस मन्त्र करके आहुति करे, तिस आहुति से अपान नाम प्राण तृप्तहोता है ॥ १ ॥ अपान के तृप्त हुए वाक् तृप्तहोती है, वाक्के तृप्तहुए अग्नि तृप्तहोता है, अग्नि के तृप्तहुए पृथिवी तृप्तहोती है, । पृथिवी के तृप्तहुए जो कुछ पृथिवी अरु अग्निविषे अधिष्ठातादि रूप से अधिष्ठित है सो तृप्त होता है । तिनके अनुतृप्त होने से (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) वो भोक्ता विद्वान् तृप्त होताहै, प्रजाकरके पशुकरके अन्नादि भोग्य पदार्थों करके अरु शारीरक तेज करके अरु अपने वेदशाखा के स्वाध्याय निमित्तिक विद्याके तेजकरके (वो विद्वान्) तृप्तहोता है २ ॥ इति ११ वां खंडः ११ । २१ ॥

भावार्थ खंड १२ वां मन्त्र १—२ ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीन शालादि ऋषियों प्रति कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) तृतीय आहुति के अनन्तर इस चतुर्थ आहुतिको हवनकरे ॥ प्र० ॥ तिसको कैसे हवनकरे॥ उ० "समानाय स्वाहा" इस मन्त्रसे आहुति करे, तिस करके समान नामवाला प्राण तृप्तहोताहै ॥ १ ॥ तिस समान के तृप्तहुए मन तृप्तहोताहै, मनके तृप्तहुए पर्जन्य तृप्तहोताहै, पर्जन्य के तृप्त

अथ वैश्वानरविद्यायां १३वां प्रपाठकेषु २३ खंडः ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्यु दानस्तृप्यति १ ॥ उदाने तृप्यति वायुस्तृप्यति, वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २ ॥ इति १३ वां खण्डः १३ ॥

हुए विद्युत्तृप्तहोताहै, विद्युत्के तृप्तहुए जो कुछ पर्जन्य अरु विद्युत् विषेस्वामित्व अरु प्रजाभावसे अधिष्ठितहै सोतृप्तहोताहै, तिनकी अनुतृप्तिसे वो भोक्ता विद्वान् तृप्तहोताहै, प्रजाकरके पशुकरके अन्नादि भोग्य पदार्थों करके अरु शारीरक तेज करके अरु अपने वेद शाखाके स्वाध्याय करनेके प्रभाव से तज्जन्य अर्थ प्रकाश करके (वो विद्वान् तृप्तहोताहै ॥ २ ॥ इति१२ वांखंडः॥१२।२२॥

भावार्थ खंड १३ वें मन्त्र १–२ का ॥

हे सौम्य (उक्त प्रकार कहके पुनः वो राजा अश्वपति उन प्राचीन शालादि ऋषियोंसे कहता हुआकि हे ब्राह्मणो) चतुर्थी आहुति के अनन्तर पांचवीं आहुति को हवनकरे ॥ प्र० ॥ कैसे हवनकरे उ० ।" उदानाय स्वाहा" इस मन्त्र करके आहुति करे तिस आहुतिसे उदान तृप्त होताहै १ ॥ उदान के तृप्त हुए वायु तृप्त होता है, वायु के तृप्तहुए आकाश तृप्त होता है, आकाश के तृप्तहुए जो कुछ आकाश अरु वायुविषे अधिष्ठाता अरु प्रजारूप से अधिष्ठित हैं सो सर्व तृप्तहोते हैं, अरु तिसकी अनुतृप्तिसे वो प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता सर्वत्र अन्नका भोक्ता विद्वान् तृप्तहोताहै प्र० ॥ किस करके तृप्तहोताहै॥उ०॥ पुत्रादि प्रजाकरके, गौ आदि पशुओं करके अन्न अरु सुवर्णादि द्रव्य भोग्य पदार्थों करके अरु नीरोगतादि निमित्तिक शारीरक तेजकरके अरु अपने वेदशाखा

सयइदमाविद्वानाग्निहोत्रं जुहोति यथांगारानपोह्यभ स्मनि जुहुयात्तादृक् तत्स्यात् १ ॥

के स्वाध्यायजन्य वैश्वानरादि विद्याके सम्यक् ज्ञान निमित्तिक बुद्धिके तेजकरके (वो उक्तप्रकार वैश्वानर आत्माके सम्यक्ज्ञान पूर्वक प्राणाग्निहोत्रका कर्त्ता विद्वान् तृप्तहोताहै २ ॥ इतिवैश्वानर विद्यायां त्रयोदशमंखंडः १३ ॥ २३ ॥

अक्षरार्थ खंड १४ मन्त्र १ का

सो जो इस वैश्वानर विद्या वा प्राणाग्निहोत्र का न जानने वाला अग्निहोत्र को करता है सो जैसे आहुति करने के योग्य अंगार तिनको त्यागके राखमें आहुति करता होय तादृश तिस का होता है १ ॥

भावार्थ खंड १४ वें मन्त्र १ का

हेसौम्य, (पुनःवोवैश्वानर विद्याका सम्यक्ज्ञाता राजा अश्वपति उन प्राचीनशालादि ऋषि, जो वैश्वानर विद्याकी सत्य जिज्ञासा धारके उस राजा के समीप प्राप्तहुए, तिनके प्रति कहताहुआ कि हे ब्राह्मणो) सो जो कोई इस उक्त प्रकारकी वैश्वानर विद्या की अभेद ज्ञात पूर्वक प्राणाग्निहोत्रको न जानताहुआ इस केवल कर्म्म रूप अग्निहोत्रको करता है, सो जैसे आहुति करने के योग्य प्रज्वलित अंगार तिनको त्याग के भस्म में आहुति करनेवत् उसका सो अग्निहोत्रहोता है ॥ः—अर्थात् वैश्वानर विद्याके सम्यक् ज्ञान विनाका अरु उक्त प्रकारके प्राणाग्निहोत्रके किये विनाका जो केवल प्रसिद्ध अग्निहोत्रहै सो राख में आहुति करनेवत् निष्फल है, अरु इसन्याय करके यह सिद्ध हुआ कि जो पुरुष इस प्रसिद्ध अग्निहोत्र को न करके वैश्वानर विद्याके ज्ञान पूर्वक प्राणाग्निहोत्र को उक्त प्रकार करता है तिसको प्रसिद्ध अग्निहोत्र ' कि जिसके न करने में प्रत्यवाय है, न करनेका प्रत्यवाय न होके फलकी प्राप्ति सिद्ध है—ः॥यहां जो

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्व्वे
षुलोकेषु सर्व्वेषुभूतेषु सर्व्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २॥

प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी निंदा कियाहै सो वैश्वानर विद्याके जान-
नेवाले विद्वान् के अग्निहोत्रकी अपेक्षा से है ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो उक्त प्रकार के अविद्वान् से इतर, इस उक्त प्रकार वि-
द्वान् अग्निहोत्रको हवन करता है तिसका सर्व लोक विषे सर्व
भूतों विषे सर्व आत्मों बिषे हवनकिया होता है ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार कह के पुनः राजा अश्वपति वैश्वानर
विद्याके ज्ञाता विद्वान् के प्राणाग्निहोत्रकी प्रशंसा करता है कि हे
ब्राह्मणो, इस वैश्वानर विद्याके न जाननेवाले अविद्वान्से इतर
जो उक्त प्रकार वैश्वानर विद्याके सम्यक्ज्ञानपूर्वक प्राणाग्निहोत्र
के करनेवालेका सर्वलोकोंविषे सर्वभूतोंविषे सर्वआत्मोंविषे हवन
किया होता है ॥ :—अर्थात् उक्त प्रकार का जो वैश्वानर आत्मा
का अभेद उपासक है सो सर्वात्मा होने से सत्यादि सर्व लोकों
विषे ब्रह्मादि सर्व भूतोंविषे अर्थात् प्राणधारियों विषे अरु शरीर
इन्द्रिय मन बुद्ध्यादि (अनात्मरूप) आत्मोंविषे। अर्थात् अधिदैव
अधिभूत अध्यात्म,तीनोंप्रकारका जगत् जहां पर्यन्त सूत्रात्माविषे
प्रोतहै वा जिन जिनविषे प्राणरूप सूत्रात्माकी व्याप्तिहै, तिन तिन
विषे वो सर्वत्र हवन करनेवाला होने से सर्वत्र उसही का किया
हवन होता है ॥ :—अर्थात् यावत् नामरूप क्रियात्मक जगत् है
सो सर्व प्राणरूप सूत्र आत्मामें मालाको मणियोंवत् परोयाहुआ
है अरु तिस सूत्र विशिष्ट चैतन्य साक्षी आत्मा सर्व का भोक्ता
वैश्वानर नामसे व्याप्तहै तिसका जो सम्यक् अभेद उपासक है
तिसको सर्वात्मा होने से वो सर्वत्र प्राणाग्निहोत्रका कर्त्ता अरु
सर्वत्र सर्व अन्न का भोक्ता होता है ॥ अरु इस वैश्वानर विद्या

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवछं हास्य सर्व्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानाग्निहोत्रं जुहोति३॥

को कृष्ण भगवान् ने भी प्रकाशित कियाहै, "अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रिता प्राणापानसमायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" इसवाक्य से। अरु राजा युधिष्ठिर के वनवास में साठ हजार ऋषियों सहित दुर्वासा के भोजनार्थ आगमन समय श्रीकृष्ण ने शाक का एकपत्र भोजनकर उक्त सर्व ऋषियों को पूर्णता से तृप्तकिये, सो अपना ईश्वरपना औ प्राणाग्निहोत्रकी महिमा देखाया है २॥

अक्षरार्थ॥

सो जैसे इषीका (सेठ) रुई अग्नि के डालने से अति शीघ्र भस्महोती है तैसेही जो विद्वान् इस उक्त प्रकार अग्निहोत्रको करता है तिसके सर्व पाप अति शीघ्र भस्महोते हैं ३॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का॥

हे सौम्य (उक्तप्रकार वैश्वानर विद्याके सम्यक् ज्ञाताविद्वान् के प्राणाग्निहोत्र की प्रशंसा स्तुति कह पुनः वो राजा कहताहुआ किहे ब्राह्मणो) सोजैसे इषीका कहिये, सिरकीवा सेंठा वासर-कंड़ा, नामक तृणविशेषकी रुई (अर्थात् सिरकी नाम तृणविशेष शरदऋतु में जब फूलताहै सो उसका पुष्प रुई के सदृशहोता है) तिसविषे जब अग्नि लगावते हैं तब वो अति ही शीघ्र भस्म होजाताहै। तैसेही इस सर्व्वात्मभावको प्राप्तहुए उक्तप्रकार वै-श्वानर आत्मा के सम्यक् उपासक विद्वान्के जो उक्तप्रकार के प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता सर्वत्र सर्व अन्नका भोक्ताहै, तिसके अनेक जन्मों के संचित धर्म्माधर्म्म लक्षणरूप निर्विशेष पाप, अरु पुनः इसजन्म में ज्ञानोत्पत्ति से पूर्व इस शरीर से किये जे धर्म्माधर्म्म लक्षण रूप कर्म्म, अरु पुनः ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् ज्ञानके सहित होनेवाले कर्म्म, सो सर्व कथित दृष्टान्त प्रमाण

तस्मादु हैवंविद्यपि चाण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदा त्मनिहैवास्य तद्वैश्वानरेहुतꣳस्यादितितदेशश्लोकः४॥

वैश्वानर आत्माके सम्यक् ज्ञानहोने मात्रसेही अति शीघ्र भस्म होजाते हैं "। ज्ञानाग्नि दग्ध कर्म्माणि भस्मसात्कुरुते तथा "। परन्तु जिन कर्मोंने इस वर्त्तमान शरीरका आरंभ कियाहै अरु जिन कर्म्मों ने इस वर्त्तमान शरीरसे अपना फल भोग देनाहै सो कर्म्म भस्महोते नहीं, वो अपना फल देके निवृत्त होते हैं॥:– अर्थात् उक्तप्रकार सम्यक् सर्वात्म भावको प्राप्तहुए ज्ञानी के अनेक जन्मोंकेकिये अरु ज्ञानोत्पत्तिसे पूर्व इस जन्मके किये सर्व संचित कर्म्मोंका नाश उक्त ज्ञान उत्पन्न होने मात्रसेही नष्ट होते हैं। अरु सम्यक् ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् कर्त्तव्य अवशेष रहे नहीं, अरु यावत् शरीर तावत् जे ज्ञानोत्पत्ति के उत्तर कर्म होते हैं सो अभिमान से अरु फलकी इच्छासे रहित होनेसे वो कर्म न हुएवत् होते हैं। अरु विद्वान्के प्रारब्ध कर्म्म अपना फल भो-गाय समाप्तहोते हैं। अतएव ज्ञानी के जन्मारंभक संचितादि सर्व कर्मों के भस्महुए वो पुनः जन्म पावता नहीं –:॥ ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसकारणसेही प्रसिद्ध इसप्रकारका विद्वान् यद्यपि (नहीं है उच्छिष्ट देनेके योग्य चांडाल) तिस चाण्डालको उच्छिष्ट देता है सो प्रसिद्धही इसका आत्मा वैश्वानर बिषे हवनकिया होताहै इति तहां यह श्लोक, मंत्र, प्रमाणहै ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य, (वो राजा अश्वपति उक्तप्रकार सर्व कहके पुनः उक्तप्रकार के विद्वान्के उस उक्त अग्निहोत्र का असाधारण माहात्म्य कहताहुआ) हेब्राह्मणो जो इस कथितप्रकार वैश्वानर विद्याका ज्ञाता विद्वान् उक्तप्रकार प्राणाग्निहोत्र करता है, अ-र्थात् उक्तप्रकार अन्नको भोक्ताहै, सो, जो कदापि चाण्डालको

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्य्युपासत एवꣳसर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

इति वैश्वानर विद्यायां चतुर्दशमं खंडः ॥ १४ ॥ प्रपाठकेषु २४
इति छान्दोग्य उपनिषदि पंचम प्रपाठकः ॥ ५ ॥

,जो कि उस विद्वान्‌के उच्छिष्टका अधिकारी नहीं, यदि तिसको भी वो विद्वान् अपना उच्छिष्ट देवे ,जो कि उस चाण्डालको देना प्रतिसिद्ध है, तो भी उस विद्वान् करकेदिया उच्छिष्ट अन्न सो प्रसिद्धही इस चाण्डाल देहस्थ आत्मा वैश्वानरबिषे सो अन्न आहुति किया होता है, अधर्म का निमित्त होतानहीं ॥:—अर्थात् कर्म्मीष्ठ ब्राह्मण का उच्छिष्ट अन्न चाण्डालको देना दोषहै परंतु उक्त वैश्वानर विद्याका ज्ञाता प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता विद्वान् जो कदापि अपना उच्छिष्ट अन्न अनधिकारी चाण्डालको देवे तो वो उसका दिया अन्न अधर्म का निमित्त न होके चाण्डाल देहस्थ वैश्वानर बिषे आहुति किया होताहै—: ॥ यह श्रुति का कथन वैश्वानर विद्याकी स्तुति के अर्थहै । अरु इसस्तुति वाक्य बिषे अग्रिम कहनेका मन्त्र प्रमाणहै ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

जैसे इस लोक बिषे क्षुधावन्त बालक अपनी माताको उपासते हैं । तैसेही इस प्रकार सर्व्व भूत (प्राण धारी) अग्निहोत्र को उपासते हैं ॥ यहां जो दोबार कथन है सो विद्याकी वा प्रपाठक (अध्याय) की समाप्ति के अर्थ है ॥ ५ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां चतुर्दशमं प्रपाठकेषु चतुर्विंशतितमं खंडः १४।२४ इति

भावार्थ मन्त्रपाँचवें का ॥

हेसौम्य (उक्तप्रकार राजा अश्वपति प्राचीन शाल आदि छओं ऋषियों प्रति समस्त वैश्वानरविद्या ,कि जिसके ज्ञानार्थ उक्त

ऋषि उस राजाके समीप प्राप्तहुए, अरु प्राणाग्निहोत्र, कि जिसके करने से समस्त जगत् की तृप्ति होती है, तिसकी स्तुति कह के पुनः कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) जैसे इस लोक बिषे क्षुधित (भूखे) बालक अपनी माता की उपासना करते हैं कि कब हम सबकी माता हमको भोजनार्थ अन्न देवेगी । इसही प्रकार सर्व प्राणधारी, अपने को अन्नके देने वाले उक्त प्रकार के विद्वान् के अग्निहोत्र को अर्थात् उक्त प्रकार के वैश्वानरके उपासक ज्ञानवान् के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजनको, उपासते हैं कि किस समय वो विद्वान् भोजन करेगा कि जिस करके हम तृप्तहोवेंगे । अर्थ यह है कि समस्त वैश्वानर आत्मा के ज्ञान पूर्वक अभेद उपासक के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजन से समस्त जगत् तृप्तहोता है ॥ अरु यहां जो द्विवार कथन है सो विद्या अरु प्रपाठक की समाप्तिका बोधक है ॥ ५ ॥ इति चतुर्दशमं खंडः ॥ प्रपाठक का २४ वांखंडः ॥ इति वैश्वानर विद्या समाप्ता ॥

इतिश्री छान्दोग्य उपनिषद्का पंचम, उत्तरार्द्ध का प्रथम प्रपाठक समाप्तम् । हरिः ॐ तत्सत् ॥

अथ छान्दोग्यउपनिषदिषष्ठ, उत्तरार्द्धेद्वितीय, प्रपाठकप्रारभ्यते॥

ॐ॥ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तछं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्य्यं न वै सोम्याऽस्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिवभवतीति॥ १॥

अक्षरार्थ

श्वेतकेतु इस प्रसिद्ध नामवाला अरु आरुणिका पुत्र अरु अरुणका पौत्र ताते आरुणेय इस द्वितीय नामवाला होताभया। तिसके प्रति आरुणि पिता कहता हुआ, हे श्वेतकेतो यज्ञोपवीत धारण कर ब्रह्मचर्य्यधार विद्या अध्ययनको नहीं गया, हे सौम्य निश्चयकर के हमारे कुलमें 'अननूच्य, विद्या अध्ययन न करनेवाला कोई भी हुआनहीं क्योंकि जो विद्याऽध्ययन नहीं करता सो ब्राह्मणों में नीचवत् होताहै॥ १॥

भावार्थ खंड १ मन्त्र १ का॥

श्रीगुरुरुवाच॥ हे शिष्य इस छान्दोग्यउपनिषद् के पंचम अरु उत्तरार्द्ध के प्रथम प्रपाठक के श्रवण करने के अनन्तर अब उक्त उपनिषद् के षष्ठ अरु उत्तरार्द्ध के द्वितीय प्रपाठक को श्रवणकरो॥ हे शिष्य पूर्व इस उपनिषद्के पूर्वार्द्ध तृतीय प्रपाठक के चतुर्दशवें खंडके प्रथम मन्त्रकरके कहाहै कि "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति" यह सर्व निश्चयकरके ब्रह्महो है, क्योंकि ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है अरु ब्रह्म मेंही लय होताहै ताते। अरु इसही उपनिषद्के पंचम प्रपाठक की वैश्वानर विद्या बिषे ऐसा कहाहै कि वैश्वानर विद्या के जाननेवाले एक विद्वान् के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजन करने से समस्त जगत् तृप्त होताहै, सो ऐसा कहने से सर्व भूतों बिषे सत् आत्मा एकही उपपद्य होता है, क्योंकि आत्मा के भेद होनेसे एकके भोजन से सर्वकी तृप्ति बने नहीं ताते सो सत् आत्मा एकही है। परन्तु इन सर्वकापूर्व

सम्यक् प्रकार निर्णय हुआनहीं । अतएव उक्त दोनों श्रुति वाक्यों के सम्यक् निर्णयार्थ इस षष्ठ प्रपाठक (अध्याय) का आरंभ करतेहैं॥ अरुइस षष्ठ अध्यायमें जो पितापुत्रके सम्बादरूप आख्यायिकाहै सो विद्याकी सर्व्वोत्तमताके प्रदर्शनार्थ है ॥ इति प्रस्तावना ॥

हे सौम्य पूर्व एकअरुण नाम ऋषीश्वरका पुत्र आरुणि तिसका प्रसिद्धनाम उद्दालकथा तिस उद्दालक ऋषिका पुत्र अरुअरुण का पौत्र आरुणेय सो श्वेतकेतु इसप्रसिद्ध नामवाला होता हुआ, सो अपनीबाल्यावस्थामें सुन्दर अरु चंचल स्वभाव होनेके कारण अपने माता पिताको अति प्याराथा, अरु उस श्वेतकेतुमें उसके माता पिताका स्नेह अधिक होनेसे वो अशिक्षितरहा। अर्थात् उसके माता पिता उसबालक श्वेतकेतु के मोह बशहुए उसको शिक्षा कुछ भी न करते थे। इसप्रकार वो अशिक्षित श्वेतकेतु द्वादशवर्ष की अवस्था को प्राप्तहुआ तब उसके पिताने उसका यज्ञोपवीत धारण पूर्वक विद्याऽध्ययन करने का कालव्यतीतहोता देख एक दिवस उसका पिता उद्दालक कहताहुआ कि हे श्वेतकेतु तू अपने अनुरूप (तुल्य) गुरुके गृहको विद्या अध्ययनार्थ नहीं गया [यहां जो गुरुकुलको अनुरूप बिशेषण कहाहै सो श्रेष्ठ कुलके विद्वान् पुरुषकोही गुरुपनाहै, अधम कुलके पुरुषको नहीं, इस वार्त्ता के लखावने के अर्थहै] अब तू यज्ञोपवीतधार ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्या अध्ययनकर । हे सौम्य हमारे कुलमें उत्पन्नहोय ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याका अध्ययन न करना योग्य नहीं, क्योंकि जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याऽध्ययन नहीं करता सो ब्रह्मबन्धुवत् होताहै। अर्थात् बिना विधिवत् विद्या के अध्ययनकिये किसी अनाचारी निकृष्ट ब्राह्मणवत् तू मेरे कुलबिषे अनउत्पन्नहुएवत् प्रतीतहोता है । हे श्वेतकेतु पूर्व हमारे कुलबिषे ऐसाकोई भी नहीं हुआ कि जिसने ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्या अध्ययन न किया होय, हमारे कुल के सर्वही पुरुष विद्या अध्ययनकर ब्राह्मणभावको प्राप्तहुएहैं। अत-

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंश्छं शतिवर्षः सर्व्वान् वेदानधीत्य महामनाऽनूचानमानी स्तब्ध एयाय त छं हि पितोवाच ॥ २ ॥

एव हे पुत्र अब तू किसी कुलवान आचार्य्य के गृहजाय ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या अध्ययनकर अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठोंवत् ब्राह्मण भावको प्राप्तहोवो। हमारे कुल में उत्पन्नहोय विद्या न अध्ययन करके उक्तप्रकार के ब्रह्म बन्धुवत् होना योग्य नहीं १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध श्वेतकेतु द्वादशवर्ष की अवस्था होने के उपरान्त आचार्य्य के गृह जाय यावत् चौबीस वर्ष की अवस्थाको प्राप्त हुआ तावत् सर्व वेदोंको अध्ययनकर महा अहंकारी अपने को अनुच्य (सर्व से अधिक विद्वान) मान स्तब्ध (अप्रणत स्वभाव हो पिताके गृह आवता हुआ तिसको पिता कहता हुआ२ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार वो उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहके तिसके अनन्तर उसका प्रवास होना (आचार्य्य के गृह जाना) अनुमान करता हुआ वा निश्चयकरता हुआ ॥ प्रश्न ॥ हे गुरो वो उद्दालक आप सर्व विद्या सम्पन्न परम गुणवान् होय के भी जो उसने अपने पुत्रको आप विद्या न अध्ययनकराय के अन्य आचार्य्य के यहां विद्या अध्ययनार्थ क्यों भेजा ॥ उत्तर ॥ :—हे सौम्य उस उद्दालक ऋषिका अपने पुत्र श्वेतकेतुके साथ स्नेह अधिक था अरु जिसपर स्नेह अधिक होताहै तिसको ताडना की जाती नहीं अरु बालकको स्नेहवान् माता पिताका भय होता नहीं। ऐसा विचार उस उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु को अन्य आचार्य्य के पास जाय विद्या अध्ययनकरने की आज्ञा किया—:॥ तब वो प्रसिद्ध श्वेतकेतु अपनी द्वादशवर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत धारणकर किसी उत्तम कुलमें विद्वान् आचार्य्य

के गृह जाय ब्रह्मचर्य्य धारणकर यथाविधि विद्या अध्ययन करने लगा सो जबतक चौवीस वर्ष की अवस्थाको प्राप्त हुआ तबतक चारोंवेद अरु तिनके छओं अंग । अर्थात् 'ऋग्, यजु, साम, अथर्वण, यह चार वेद अरु शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, यह छः वेदके अंग । इन सर्वको अध्ययनकर तिनके अर्थ को सम्यक् प्रकार जान महामना होता हुआ। ' अर्थात् महत् गम्भीर है मन जिसका सो कहिये " महामना " अथवा अन्यों से अपने को श्रेष्ठ मानने के स्वभाव वाला है मन जिसका सो कहिये " महा मना " " अनूचान मानी " अपने आपको अनूच्य (सर्व विद्या सम्पन्न) स्वभाव हो वे जिसका तिसको कहिये अनूचान मानी । अर्थात् वो श्वेतकेतु आचार्य्य से वेद वेदांग को पढ़ तिसके अर्थ को सम्यक् प्रकार जानके महा मना हुआ अपने को सर्व विद्या सम्पन्न अद्वितीय मान अरु अपनी अपेक्षा अन्योंको तुच्छ अल्प विद्वान् जान बड़ा अहंकारी ,स्तब्ध, अप्रणत स्वभाव होय ॥:—सर्व दिशा देश देशान्तर में भ्रमण करता अन्य ब्राह्मणों से विवाद शास्त्रार्थ पूर्वक सर्व को जय करता—:। अपने गृहको आवता हुआ । अरु अपने को विद्यामें सर्व से श्रेष्ठ मान महा महंकारी होने से अपने पिताको भी प्रणाम न करके सूखे काष्ठवत् स्तब्ध हुआ खड़ा विचारने लगा ॥:—पिता मुझसे अधिक विद्वान् नहीं क्यों कि जो यह पिता आप सम्यक् विद्वान् होता तो मुझको अन्य आचार्य्य के यहां विद्या अध्ययन करने को न भेजता । अरु ब्राह्मणों में कोई वृद्ध होता है जो विद्यामें अधिक होता है, सो मैं उक्त हेतु करके पिता से अधिक विद्वान्हूं । अरु जो कदापि कोई ऐसा कहे कि पिता से पुत्र अधिक विद्वान् होवे नहीं सो नियम नहीं क्योंकि देवगुरु वृहस्पति का अज वा शंयु नाम पुत्र अपने पिता से अधिक विद्वान् हुआ है, यह वार्त्ता यजुर्वेद के शत पथ ब्राह्मण अरु मनुस्मृतिमें विख्यात है । ऐसी ऐसी तर्कों को विचार वो

श्वेतकेतो यन्नु सौम्येदं महामना ऽअनूचानमानीस्त ब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतᳬ श्रुतं भवत्यम तं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथंनु भगवः स आदेशो भवतीति ३ ॥

महा मना अनूचान मानी अप्रणत स्वभाव महा अहंकारी श्वेत-केतु अपने पिता को, जो "पितृ देवो भव" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से देवतावत् माननीय पूजनीय है, प्रणाम दण्डवत् न करके उनके आगे सूखे काष्ठवत् खड़ा रहा—:॥ तिस अपने पुत्र श्वेतकेतुको द्वादश वर्ष उपरान्त गुरुके गृहसे विद्या अध्ययन-नकर महा अहंकारी अप्रणत स्वभाव हुआ आया अपने सन्मुख खड़ा देख॥:—वो उद्दालक प्रथमअपनेचित्तमें खेदितहो बिचारता हुआ कि यह श्वेतकेतु विद्या अध्ययन कर ऐसा अहंकारी हुआ है कि अपने पूज्य ज्येष्ठों के आगे भी नम्रभावसे प्रणाम करता नहीं, अरु ऐसे अहंकारी पुरुषका हमारे कुलमें होना श्रेष्ठ नहीं, यह एक प्रकारका अपने कुलको कलंकहै, अतएव इसके अहंकार से अपने कुलमें होता जो कलंक अब तिसको निवृत्त करनाही उचितहै ऐसा विचार निश्चयकर उसकी परीक्षा अरु अहंकारकी निवृत्ति के अर्थ—॥ वो पिता उद्दालक कहताहुआ २॥

अक्षरार्थ

हे श्वेतकेतु हे प्रिय दर्शन जिसकरके तू इसप्रकार अपने को महामना अनूचानमानी (सर्व विद्यासम्पन्न) मानके सूखे का-ष्ठवत् अप्रणत स्वभावहुआ है सो उस विद्याको भी आचार्य से पूछाहै वा नहीं कि जिसके श्रवणसे अश्रुतभी श्रुतहोताहै अ-मननकिया भी मननकिया होताहै अरु जिसके जानने से अज्ञा-न्याभी ज्ञान्याहोताहै। हे भगवन् सो आदेश कैसे होताहै इति ३॥

भावार्थ मन्त्रतीसरेका॥

उद्दालक उवाच॥ हे श्वेतकेतुहे प्रियदर्शन तू जो इसप्र-

कारका महामनाहुआ अपने को अनूचान, (सर्व विद्यासम्पन्न) मान महा अहंकारी अप्रणत स्वभावहुआ किसी के भी आगे नम्र होय नमस्कार करता नहीं, इसप्रकारका महा अहंकारी हुआहै सो तैंने अपने आचार्य्यसे अपने विषे क्या अतिशय प्राप्तकियाहै। हे पुत्र तैंने अपने आचार्य से सो आदेश 'अर्थात् जिस उपदेशसे सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म साक्षात् जानाजाय सो कहिये आदेश, (विद्या) तैंने प्रश्नकिया है वा उस तेरे आचार्य ने तुझसे कहाहै कि जिस आदेशके श्रवणकरने से अश्रुत पदार्थभी श्रवणकिया होताहै, अरु जिस आदेशके मननकरने से अमननकियाभी मननकिया होताहै अरु जिस आदेश के जानने से अविज्ञात बस्तु भी बिज्ञातहोता है, अर्थात् जो बस्तु निश्चयनहीं की जातीहै सो भी उस आदेश के जानने से निश्चित किया होताहै ॥ :-हे सौम्य जिन विद्याओं करके श्रोत्रादि बुद्धि पर्यन्त सर्व करणों का अविषय अरु सर्व में अनुगत विद्यमान जो परमात्मा सो नहीं जानाजाता तिनहीं विद्याओं को तू पढ़ाहै वा जिस विद्याके श्रवण मननआदि करने से सर्व करणोंका अविषय जे परमात्मा सो भी श्रवण मननादि किया होता है-: ॥ सो आदेश तूने अपने आचार्य्य से प्रश्नकिया वा उसने तुझको कहा है या नहीं। हे पुत्र जो तू उक्तप्रकार के आदेश (विद्या) के जाने बिनाही अपनेबिषे विद्वान्पने का अहंकार करता है तो व्यर्थही करता है। देखो जिस असत्य विद्या को पढ़के तूने एतना अहंकार कियाहै, कि ज्येष्ठ श्रेष्ठों के आगे नमता भी नहीं, सो विद्या तो तेरा गुरू आचार्य्य भी पढ़ाहै अरु मैं भी पढ़ाहौं अरु अन्य ब्राह्मण भी पढ़े हैं परन्तु तेरे ऐसा अभिमान तो किसीने भी किया नहीं। हे पुत्र जिस विद्याके जानेबिना ही तू अपनेविषे विद्वत्पनेका एतना अभिमान करताहै सो विद्या तबही प्राप्तहोती है जब सर्व अहंकार का अभाव होताहै "। विद्या गताहंकृतिनः प्रसिद्धति "। अतएव जो तू उस विद्याके जाने बिना ही अपनेविषे विद्वान्पनेका अहंकार धारताहै सो व्यर्थहै। हे सौम्य

यह तेरा असत्य अहंकारही लखावताहै जो, तू उस विद्यासे अ-
ज्ञात मूर्ख है क्योंकि वो विद्या अहंकारियों को प्राप्तहोती नहीं।
अरु जिन पुरुषों को वो विद्या प्राप्तहोती है तिनका अहंकार रहता
नहीं, अतएव हम जानते है जो उस विद्याके अज्ञान वशहुआही
तू यह असत्य अहंकारकरताहै। हे पुत्र इस हमारे निष्कलंक कुल
में असत्य अभिमानी होय कलंकरूपहोना तुझको योग्यनहीं, ताते
अपने इस निर्दोष निष्कलंकरूप कुलको विचार इस अपनेअसत्य
अहंकाररूप कलंकका त्यागकरो-: ॥ हे सौम्य यहां भाष्यकार
स्वामी प्रकटकरतेहैं कि जो कदापि सर्ववेद अरु वेदांगको अध्ययन
कर पुनः तिसकरके अन्य सर्व जानने योग्यजान्याभी परन्तु यह
मुझ करके प्रश्नकी आत्मविद्या अरु तिसकरके जानने योग्य
आत्मतत्त्व कि जिसके जाननेसे सर्व जानाजाताहै, न जान्या तो
उस पुरुषने कुछ भी न जान्या। अर्थात् जो पुरुष यावत् पर्यन्त
आत्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार जानता नहीं तावत् पर्यन्त सो
कृतार्थ भी होतानहीं। एतदर्थ आत्मतत्त्व के ज्ञानार्थ यह श्रुति
आख्यायिकाका आरंभ करे है॥ हे सौम्य, इसप्रकार जब उद्दाल-
क ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतुके असत्य अभिमानके निवारणा-
र्थ प्रश्न किया तब सो इस अद्भुतवाक्य को श्रवणकर विचारने
लगा कि यह जो पिता कहता है कि अन्य एकके विज्ञानसे अन्य
सर्व अप्रसिद्धोंका विज्ञान होताहै सो कैसे होताहै इसको सम्यक्
प्रकार जानना चाहिये, क्योंकि यह विद्यातो आचार्य्यने भी मु-
झसे कही नहीं। इसप्रकार अपने चित्त में विचार वो श्वेतकेतु
अपने पिता उद्दालक से प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् हे सर्व
करके नमस्कार करने योग्य निश्चयकरके वो आदेश क्याहै। कि
जिस एकके श्रवण मनन निश्चित होनेकरके अन्य भी सर्व श्र-
वण मनन निश्चित किया होताहै सो आप कृपाकरके कहिये ३॥

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्॥४॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे एक मृत्पिण्डके जानने से उस मृत्पिण्ड से हुए जेघट शरावादि सर्व कार्य्य जानाजाता है जो मृत्तिकासे उत्पन्नहुआ जेघट शरावादी कार्य्यरूप विकार सो वाणी से आरंभकिया कहनेमात्र हीहै किन्तु उनघट शरावादिकों बिषे एक मृत्तिकाही सत्यहै ॥ ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब उद्दालक ऋषिने अपने श्वेतकेतुनाम अहंकारी पुत्रके असत्य अहंकाररूप कलंकको' जो उस श्वेतकेतु को अश्वेतकेतुकरनेवालाथा, दूरकरनेके अर्थ प्रश्न किया कि हे प्रियदर्शन तू सर्व विद्या तो पढ़ाहै परन्तु वो बिद्याभी जानताहै या नहीं कि जिस एकके श्रवण करनेसे अश्रुत भी श्रुत होताहै, अरु जिस एकके मनन करनेसे सर्व का मनन किया होता है, अरु जिस एकके निश्चयसे सर्वका निश्चय होता है । अरु जो तिस विद्याके जाने बिनाही तू अपनेको अन्य विद्याओंके आश्रय विद्वान्मानके अहंकार करता है तो केवल अविद्याकाही अभिमान करता है । इसप्रकार जब उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु से प्रश्न किया तब तिसको श्रवणकरके वो श्वेतकेतु अपने पिता करके प्रश्नकरी हुई विद्याका अपनेबिषे अभाव देख तिसकी जिज्ञासाधार पितासे प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् जिस विद्या विषयक आप मुझसे प्रश्न करते हो तिस विद्याको मैं जानता नहीं अतएव उस विद्याको आप कृपाकर कहिये ॥:—हे शिष्य यह आत्मवेत्ता महात्माओं के वाक्य का प्रभाव है कि जिसके श्रोत्रद्वारा हृद्गत होतेहैं तिसके अहंकारादि दोषों का अभावकरतेहैं, देखो पूर्व श्वेतकेतु के अन्तःकरण में एतना बड़ा अहंकार

था कि उसने अपने पिताको भी नमस्कार न किया, अरु उस श्वेतकेतुके श्रोत्रद्वारसे उसके पिताके उपदेशात्मक प्रश्नरूप वाक्यों ने जब प्रवेशकिया तब उस वाक्यके प्रभावसे उसके अन्तःकरण से अहंकार दूर हुआ, तबही उसने अपने उसही पिताको (कि जिसको अविद्वान्समान के नमस्कार भी न कियाथा) भगवन् ,पूजाकरनेके योग्य, इस विशेषण पूर्वक प्रश्नकिया। अतएव अभिप्राय यह है कि आत्मवेत्ता सन्तमहात्मा पुरुषों के वाक्य श्रवण करनेसे अहंकारादि सर्व दोषोंकी निवृत्ति होती है—:॥ हेसौम्य उक्तप्रकार जब श्वेतकेतु ने अपने असत्य अभिमानको त्याग , भगवन् , इस विशेषणपूर्वक अपने पितासे प्रश्न किया तब वो उद्दालक ऋषि कहताहुआ कि हे पुत्र जिसप्रकार वोआदेश होता है तिसको दृष्टांत पूर्वक श्रवणकरो । हे प्रियदर्शन जैसे लोकविषे घट शरावादि कार्य्योंके कारण भूत एक मृत्पिण्ड के जानने से तिस मृत्पिण्डसे उत्पन्न हुआ घट शरावादि मृण्मय विकार जाना जाता है, अरु जैसे कारणरूप मृत्पिण्डके जानने से तिसका घटादि सर्व कार्य्य जाना जाता है, तैसेही अन्य कारण के जानने से तिससे उत्पन्न हुआ कार्य्य रूप विकार भी जाना जाता है जो यह अपने कारण से पृथक् नहीं॥ प्रश्न॥ एक कारण रूप मृत्पिण्डके जानने से अन्य कार्य्य भूत कैसे जाना जाता है ॥ उत्तर॥ यह दोष नहीं, क्योंकि कारण से कार्यकी पृथक् सत्ताका अभाव है ताते ॥ प्रश्न॥ हे भगवन् लोक बिषे ऐसा प्रसिद्धहै कि अन्य के जाननेसे अन्य नहीं जाना जाता, तब एकके जानने से सर्व जाना जाता, है यह कहना कैसे बनेगा॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन यह जो तूने कहा सो सत्यही है क्योंकि अन्य कारण के जानने से अन्य का कार्य्य जाना जाता नहीं। जैसे कारण रूप मृत्तिका के जानने से सुवर्ण का कार्य्य कटक कुंडलादि जाना जावे नहीं। परन्तु यहां तो कारण से कार्य्य पृथक् नहीं । जैसे मृत्पिण्डरूप कारण से (तिसका घटादि

कार्य्य पृथक् नहीं तैसे ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जब ऐसा ही है तब लोकविषे यह कैसे प्रसिद्ध है जो यह कारण है यह कार्य है, ऐसा भेद न होना चाहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य अब इसको भी श्रवण करो ,लोक विषे जो यह कारण है यह कार्य्य है ऐसा भेद भाव कथनहै सो केवल वाचारंभण मात्रही है। अर्थात् वाणीसे आरंभ (उच्चार) किया बाचालंभण मात्रही होताहै ॥ प्रश्न ॥ ऐसा वाचारंभणमात्र विकार क्याहै ॥ उत्तर ॥ नामही वाणीसे आरंभ किया विकार है (जैसे मृत्तिका बिषे घटसो मृत्तिका से इतर करके केवल कहने मात्रही है, उसघट बिषे मृत्तिकासे इतर घट सत्ता रंचक मात्रभी नहीं) अन्य कुछ भी नहीं क्योंकि कारण से कार्य्य की पृथक् सत्ता का अभावहोता है ताते। एतदर्थ नाम ही वाणीसे आरंभ किया विकार केवल कहने मात्रही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् घटादि कार्यों बिषे कार्य्य तो घटादि विकार नाम मात्रही है तब परमार्थ से सत्य क्या है ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन उनघट शरावादि कार्य्यों बिषे परमार्थ से एक कारण रूप मृत्तिकाही सत्यहै ॥:—हेगुरो इस श्रुतिमें पूर्वतो यह कहाहै कि एक मृत्पिण्डके जाननेसेसर्व मृण्मय जानाजाताहै अरुअंतमें कहा कि मृत्तिकाही सत्यहै, सो इन आदि अन्तके वाक्यों में सविकारता अरु निर्विकारता होने से उपक्रम उपसंहार में विरुद्ध होताहै सो न होनाचाहिये, ताते इस मेरे संशयको आप कृपा करके निवारण करिये ॥उत्तर ॥ हे सौम्य जो कार्य्यारंभके अन्त में कार्य्यविषे अनुगत पाइये सो उपादान कारण सत्य जानिये, ताते श्रुति ने कहाहै कि घटादि कार्य्यों विषे मृत्तिकाही सत्यहै। हे सौम्य मृत्तिकाका चूर्णत्व भाव, जल, दंड, चक्र, कुलालका संकल्प, अरु हस्त पादादि अवयव, इत्यादि सर्व घटकी उत्पत्ति में निमित्तकार है ताते मृच्चूर्णादि वा मृत्पिण्डादि घटादिरूप कार्य्य में अनुगत नहीं, क्योंकि मृत्पिंड परिणामहोके घटादि कार्य्यरूप होताहै, अरु शुद्ध जो मृत्तिकाहै सो चूर्णत्व भावसेले के

घटादि कार्य्य भाव पर्य्यन्त अपरिणामी सर्व कार्यकारण भावमें अनुगत एक सत्यरूपहै । ताते मृत्तिका का चूर्णभाव वा मृत्पिंड ये घटादि कार्य्यों में अनुगत नहोयके एक शुद्ध मृत्तिकाही अनुगत है, ताते सोई सत्यरूपहै, एतदर्थ इस श्रुतिके आदि अन्त वाक्यों में यदि कुछ अन्तर प्रतीत भी होताहै तथापि उभय स्थानमें एक शुद्ध मृत्तिका कोही सत्यरूप निश्चयकर उपक्रम उपसंहार में भासमान जे अन्तर तिसनिमित्तके संशयको त्यागकरो ४ ॥

हे सौम्य उक्त श्रुत्यर्थको अन्यप्रकारसे भी श्रवणकरो क्योंकि दृष्टान्तका सम्यक् प्रकार निर्णय होनेसे द्राष्टान्त भूत वस्तुका अति सुगमतासे निर्णयहोताहै ॥ हे सौम्य अरुणका पुत्र उद्दाल अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति , सर्व ठिकाने कारणसे भिन्नरूप करके जो कार्यका असत्यपना सोई तिसकारण के अद्वैत पनेका साधकहै । अर्थात् कारणसे जो कार्य्य की पृथक् सत्ताका अभाव सोई कारणके अद्वैतपने को सिद्धकरता है इस तात्पर्य्य के स्पष्टकरने के अर्थ अग्रिम कहने की युक्तिको, कहताहुआ कि हे प्रियदर्शन यह घट शरावादिक कार्य्य केवल वाणी (कहने) मात्रकरके ही प्रतीतहोताहै कहने विना वास्तव वा स्वरूपसेही प्रतीतहोवैनहीं । एतदर्थ सो घट शरावादि कार्य्य ' यह घट, यह शरावा, इसप्रकार नाम मात्रही हैं । तिनघट शराव आदि नामोंसे भिन्न उनघट शरावादि कार्य्योंका वास्तव स्वरूप कुछभी है नहीं, अरुसो घट शरावादिक मृत्तिका मात्रही एतदर्थ तिस मृत्तिका ने इनघट शरावादिकों का आरंभकियाहै इस प्रकारका कथनभी बने नहीं क्योंकि मृत्तिका मृत्तिका का आरंभकरे नहीं; आरंभजो होताहै सो कार्य्य कारण के भेदको अंगीकार करके ही होताहै । अरु एक मृत्तिका में कार्य्य कारण का भेद होतानहीं । जैसे नैयायिक कपाल रूप कारण से भिन्न उन कपालोंकरके आरब्ध वा आरंभकिया घट को अंगीकार करते हैं । अर्थ यह है कि घट शरावादिक कार्य्यों बिषे मृत्तिकादिक कारणोंसे भेद प्रतीत होता है सो वास्तवसे है

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणंविकारोनामधेयंलोहमित्येवसत्यम् ५ ॥

नहीं, किन्तु घट शराव इत्यादि नाम विशिष्ट उन घटादि कार्य्यों विषे मृत्तिकाका भेद प्रतीत होताहै, अरु विशिष्टपदार्थों बिषे प्रतीत हुआजो धर्म सो जो कदापि विशेष्य पदार्थों बिषे संभवतानहीं, तो सो धर्म केवल विशेषण विषेही प्राप्त होताहै, इस प्रकार का सर्व शास्त्रकारों का नियम है। तैसे यहां 'घट, शरावा, इत्यादि नामविशिष्ट घट शरावादिक कार्य्यों विषे प्रतीत हुआ जो मृत्तिकारूप कारण का भेद सो घट शरावादिक विशेष्य पदार्थों विषे तो संभवे नहीं । एतदर्थ परिशेष ते सो मृत्तिकाका भेद 'घट, शरावा, इत्यादि नामरूप विशेषणों विषेही प्राप्तहोवेगा। हे सौम्य यहरीति सर्व कार्य्य कारण भाव बिषे जानलेनी। हे प्रियदर्शन अब उक्त अर्थको दृष्टान्त से स्पष्टकरते हैं। हे सौम्य जैसे इस लोक विषे पट (वस्त्र) भावको प्राप्तहुए जे तन्तु तिन तन्तुओंको उस पटसे पृथक् करके पुनः उस पटरूप कार्य को कोई विवेकी पुरुष देखनेकी इच्छा करे तो वो किसी प्रकार भी देखने को समर्थ होवे नहीं। तैसेही 'घट, कुंडलादि भावको प्राप्त हुए जे मृत्तिका, सुवर्णादि रूप कारण तिन कारणों को उक्तकार्य्य से पृथक् करके पुनः उन घट कुंडलादि कार्य्यों के देखने की यदि कोई इच्छाकरे तोवो उनको देखनेको किसी प्रकारभी समर्थ होवे नहीं। हे श्वेतकेतु एतदर्थही इसलोकविषे मृत्तिकादि कारण ही सत्यहैं, अरु घटादिक कार्य्य तो वाणी से आरंभ किया बिकार कहने मात्रही है, स्वरूप से तो नहीं ॥ यह आत्मपुराण सम्बन्धी अर्थ है ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे एक सुवर्ण मणिके जानने से यावत् उसका कटक कुण्डलादि कार्य्य है सो सर्व जानाजाता है। अरु तिस

यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्व्वं कार्ष्णायसं विज्ञातछं स्याद्वाचारम्भणंविकारो नाम धेयं कार्ष्णायस मित्येवसत्यं, एतछं सौम्य स आदेशो भवतीति ६ ॥

सुवर्ण से उत्पन्नहुए कुंडलादि कार्य्य रूप बिकारहैं सो वाणी से आरंभ किये नाममात्रही हैं उनसर्वविषे एक सुवर्णही सत्यहै ५॥

भावार्थ मंत्र पांचवें का ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से एक के जाननेसे सर्व जानाजाता है इस आदेश के कहने के पूर्व तिस विषयक एकमृत्तिपिंडका दृष्टान्त कहके अब द्वितीय सुवर्ण का दृष्टान्त कहता है ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन हे श्वेत-केतु, जैसे एक सुवर्णके जानेहुए तिस सुवर्ण के यावत् किरीट कुं-डल कटककुंडलादि कार्य्यहैं सो सर्व जानेजातेहैं जो यह कटक कुंडलादि सर्व सुवर्ण के हैं। अरु उसकारणरूप सुवर्णविषे कटक कुंडलादि कार्य्यों की पृथक् सत्ताके अभावसे वो कटक कुंडलादि वाणी से उच्चारकिया विकार केवल नाममात्र कहिये कहने मात्र ही है। अर्थात् उनसुवर्ण के कार्य्य कटक कुंडलादिकों से कारण रूप सुवर्ण को पृथक् करके देखिये तो वो कटक कंकणादिक रंचक मात्र भी नहीं, अतएव उनकारण भूत सुवर्णविषे कटक कुंडलादि केवल कल्पित होने से कहने मात्रही हैं। परमार्थ से उनवाचा-रंभण मात्र कटककुंडलादिकों विषे एक सुवर्ण ही सत्यहै ॥ घट शरावादिकों में मृत्तिकावत् ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य एक नखनिकृन्तन करके उपलक्षित लोह पिण्डके जानेहुए तिसका खड्गादि यावत् कार्य्य रूप विकारहै सो सर्व जानाजाताहै जो यह सर्व लोहके हैं। तिस कारण भूत लोहविषे खड्गादि विकार केवल कहने मात्रही हैं अरु उन नाममात्र वि-कारों विषे एक लोहही सत्यहै ६ ॥

भावार्थ मंत्र षष्ठ का ६ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार उद्दालक ऋषि उक्तआदेशके कहनेके विषय में द्वितीय दृष्टान्त सुवर्ण का कहके अब तिसकी दृढ दृढताके अर्थ तृतीय लोहमणि का दृष्टान्त कहताहै ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु और श्रवणकरो हे पुत्र जैसे एक नखनिकृन्तन (नख काटनेका नहर्नी नामक शस्त्रविशेष) उपलक्षण करके लक्षित लोह पिण्डको जानना । तिस एक कारण भूत लोहपिण्डके जानेहुए तिसके खड्गादि यावत् कार्य्य हैं सो सर्व जाने जाते हैं जो यह सर्व लोहके हैं, अरु उस कारण भूत लोहविषे जो खड्गादिक कार्य्य रूप विकारहैं तिनकी कारणरूप लोहसे पृथक् सत्ताके अभावसे सो सर्व वाणी से उच्चार किया विकार नाममात्र कहिये कहने मात्रही है, अरु उन नाममात्र खड्गादि कार्य्यरूप विकारों विषे परमार्थ से एक कारण भूत लोहही सत्यहै ॥ हेप्रियदर्शन इन उक्त तीनों दृष्टान्तों से एक उपादान कारण सत्यके जानने से तिसका सर्व कार्य्य जाना जाताहै, अरु यह जो तुझको तीन दृष्टान्त कहे हैं सो दार्ष्टान्त विषे तेरी दृढ प्रतीतके होनेके अर्थ कहे हैं । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त कहे हैं तैसेही सो आदेश (जो मैंने तेरे प्रतिकहाहै कि जिस एकके जानने से सर्व जाना जाताहै तिस आदेशको तू जानताहै या नहीं) होताहै ६ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार उद्दालक ऋषिने, एकके जानने से सर्व जानाजाताहै, इस आदेशके कहने के पूर्व तिसके समझने अरु दृढताके अर्थ तीन दृष्टान्तकहे तब तिसकोश्रवणकर तिसके यथार्थ निश्चयके अर्थ सो श्वेतकेतु अन्य वादियोंके मतको आश्रयकर विकल्प करत सन्ते कहता हुआ ॥ हे भगवन् आपने आज्ञाकिया कि "येन अविज्ञातं विज्ञातं भवति" जिस एकके जाननेसे अविज्ञा भी सर्व विज्ञात होताहै । इसप्रकार कहनेवाली श्रुति के अर्थविषे वैशेषकादि भेदवादी पुरुष स्थालीपुलाकन्यायको अंगीकार करके उस श्रुति विषे गौणता मानते हैं ॥ अर्थात् जिस पात्र विशेषमें

चावल रांधते (पकावते) हैं तिसका नाम स्थाली है अरु तिस बिषे रँधते चावल का नाम पुलाकहै। तहां अग्नि के ऊपर जल युक्त स्थाली में पकते जे चावल सो जब पकने पर आवते हैं तब उनको पचावने वाला पाचक पुरुष उस पात्रमें से एकदाना चावलका निकालके देखता है तहां जो वो उस एक दाने को रँधा देखताहै तो अन्य सर्वको रँधगये जानताहै अरु जो वो एक दाना काचा देखता है तो अन्य सर्व चावलों को काचा जानता है। इसप्रकार तंदुलोंके काचे पाकेकी परीक्षाका नाम स्थाली पुलाकन्याय कहते हैं हे भगवन् इस प्रकार स्थाली पुलाक न्याय को अंगीकार करके वो भेदवादी पुरुष एक आत्माके ज्ञान से सर्वका ज्ञान कहते मानते हैं ॥ इसप्रकार जब उसश्वेत-केतु ने भेदवादियों के न्यायको लेके विकल्प किया तब वो उ-द्दालक पिता कहता हुआ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन उन भेदवादियों का कथन समीचीन नहीं, क्योंकि वो एक दाना चावलका ,कि जिसको वो पाचक देखताहै सो, अन्य सर्व चा-वलों का कारण नहीं, अरु जो उस तंदुल के एकदाने का काचा पाकापना है सो भी अन्य तंदुलोंके काचे पाकेपने का कारण नहीं। अरु श्रुति का कहना एक कारण के जाननेसे सर्वका कार्य जाना जाताहै उक्त दृष्टान्तोंवत्, ताते जो उन भेदवादियों का उक्त न्याय प्रमाण का कथन जो केवल स्वबुद्धिकी कल्पना के आश्रय है सो समीचीन नहीं, श्रुतिबाह्य होनेसे ॥ हे सौम्य उन श्रुतिबाह्य कहनेवाले भेदवादियों से श्रुति प्रमाण अद्वैतवादियों ने इसप्रकार प्रश्न करना चाहिये कि हे भेदवादियो "येन यवि-ज्ञातं विज्ञातं भवति" इसप्रकार कहनेवाली इस एक सत्परमा-त्मा के जानने से सर्व जगत् जाना जाताहै, श्रुति के अर्थ बिषे तुमने जोस्थाली पुलाकन्याय प्रमाणकी कल्पनाकियाहै सोकेवल अपनी बुद्धि करकेही कियाहै, किंवा श्रुतिप्रमाण जन्य बुद्धिकरके किया है, अथवा ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुरुषों की परम्परा रूप सम्प्रदायसे

के किया है ॥ हे सौम्य इस प्रकार प्रश्न करने से जो कदापि वादी कहे कि उस श्रुत्यर्थ बिषे हमने अपनी बुद्धि से उक्त न्याय की कल्पना प्रमाण से कहा है, तो उसके प्रति कहना चाहिये कि यह तेरा प्रथम पक्ष असंभव है क्योंकि श्रुतिप्रमाण से रहित जो केवल पुरुषकी बुद्धि है सो बहुत से स्थलों बिषे अपने अर्थ से व्यभिचारको देखती है, अर्थात् अन्य बस्तु बिषे अन्य की कल्पना करती है, जैसे रज्जुबिषे सर्प बुद्धि वा सीपी बिषे रजत बुद्धि, इस प्रकार आप करके कल्पित सर्प रजत रूप अर्थ बिषे व्यभिचारको ही देखती है । अर्थात् जो प्रमाण से रहित केवल पुरुष बुद्धि है सो रज्जु सीपी बिषे अपनी कल्पना से सर्प रजत अर्थ को करती हैं परन्तु परिणाम में जब प्रमाणवती होती है तब अपने कल्पित अर्थ बिषे व्यभिचारको ही देखती है । एतदर्थ वेदवेत्ता पुरुष केवल पुरुष बुद्धिको किसी भी अर्थ की सिद्धि बिषे प्रमाण रूपता करके मानते नहीं ॥ हे सौम्य सर्व भेदवादी तार्किकों बिषे, कपिल, बौद्ध, कणाद, गौतम, इत्यादि महान् पुरुष हुए हैं, सो भी श्रुति प्रमाण से रहित जिस जिस केवल अपनी बुद्धि करके जिस जिस अर्थकी सिद्धि करते हैं सो सो उनकी बुद्धियां अपने कल्पित अर्थ सहित अप्रमाणताको ही प्राप्तहोती हैं । तिसबिषे हेतु यह है कि वो कपिलादिक भेदवादी श्रुति वाक्य प्रमाणसे विरुद्ध केवल स्वबुद्धि की कल्पनासे ही जगत् के कारण को तथा आत्माके स्वरूपको तथा बन्ध मोक्षको भिन्न भिन्न रीति से कथन करते हैं । अर्थात् कपिलादिक भेदवादी श्रुति प्रमाण से बाध्य स्वबुद्धिकी कल्पनासे जो जो कुछ कहते हैं सो सो परस्पर में विरुद्ध पृथक्२ ही कहते हैं, अतएव उन पुरुषों की युक्तियां परस्परमें खंडनको पावती हैं। हे सौम्य जब कि कपिलकणाद आदिक महत् बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धियों के बिषे भी स्वतन्त्र प्रमाणपना सिद्ध नहीं तब इतर अल्प पुरुषोंकी बुद्धियों बिषे स्वतन्त्र प्रमाणपना न होवे तिसमें क्या आश्चर्य है किन्तु कुछभी नहीं । एतदर्थ

श्रुतिवाक्य प्रमाण से रहित केवल पुरुषकी बुद्धि बिषे प्रमाणत्व-पना संभवे नहीं। हे सौम्य इस प्रकार भेदवादियोंका प्रथम पक्ष जो उक्त श्रुति के अर्थ विषे 'स्थाली पुलाकन्याय प्रमाण हम स्व-बुद्धिकी कल्पना से अर्थ सिद्धकरते हैं, तिसका निराकरण हुआ जानना॥ हे सौम्य जो कदापि वो भेदवादी ऐसा कहै कि उक्त श्रुतिके अर्थ बिषे हम श्रुति प्रमाण जन्य बुद्धिके बलसे स्थाली पुलाक न्यायकी कल्पना करते हैं। इस प्रकार जोवो भेदवादी इस द्वितीय पक्षको अंगीकार करे तो ऐसा कहना कि तुम्हारा यहभी पक्षबने नहीं' क्योंकि श्रुति वाक्य प्रमाण बिषे अविश्वा-सके करनेवाले जे तुम भेदवादी हौ तिन तुमको तिस श्रुति प्र-माण जन्य बुद्धि करके तुम्हारे तिस वांछित अर्थकी सिद्धि होनी अतिदुर्घट है, ताते तुमवादियों का द्वितीय पक्षभी संभवे नहीं हे सौम्य जो कदापि वो वादी ऐसा कहे कि हम तिस उक्त श्रुति के अर्थ विषे ज्येष्ठ श्रेष्ठों की सम्प्रदायरूप बलकरके तिस स्था-लीपुलाक न्यायकी कल्पना करते हैं। इसप्रकार यह तीसरा प-क्षवादी अंगीकार करे तो सो भी संभवे नहीं, तहां इसप्रकार विचार है कि उन 'कापिल, बौध, कणाद, आदिक भेदवादी म-हान् पुरुषोंके शिष्योंने अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठ आचार्य्योंकी सम्प्रदा-यको अंगीकार करके भी श्रुत्यर्थ के निर्णय बिषे किसी भी नि-मित्तको पायानहीं। इस हेतु करके यह सिद्ध होताहै कि अपने श्रेष्ठ वृद्धोंकी सम्प्रदाय के अंगीकार करने से भी केवल पुरुष की बुद्धिही अंगीकार होतीहै तिस पुरुषकी बुद्धिसे इतर कोई भी श्रुतिका प्रमाण अंगीकार होता नहीं, क्योंकि वो कपिला-दिक सम्प्रदायी पुरुष जो कदाचित् तिस श्रुति के अर्थ बिषे, अर्थात् उक्त श्रुति के स्वकल्पित अर्थ बिषे उपयोगी अन्यश्रुति के प्रमाण को प्राप्त होते तो उस श्रुत्यर्थ बिषे परस्पर विवाद न करते ' क्योंकि श्रुति प्रमाण अर्थ बिषे बिवाद होवे नहीं, अरु श्रुति के अर्थ बिषे उन्होंका परस्परमें बिवाद प्रत्यक्ष देखने

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुयद्धेतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवांछं स्त्वेवमेतद्ब्रवीत्विति तथा सौम्येति होवाच ७ ॥ इतिषष्ठे प्रथमखंडः १ ॥

विषे आवता है, क्योंकि वो सर्व भेद बादी परस्पर में एककी युक्तिको दूसरा, दूसरे की युक्तिको तीसरा, तीसरे की युक्तिको चौथा, इसप्रकार परस्पर की युक्तियों को परस्पर में खंडन करते हैं । अरु केवल ज्येष्ठ श्रेष्ठों की सम्प्रदाय के अंगीकार करने से भी केवल पुरुषकी बुद्धिही अंगीकार होती हैं ॥ हे सौम्य एतदर्थ कल्पितादिक भेदवादी जे उक्त श्रुतिका अर्थ स्थाली पुलाकन्याय प्रमाण सिद्ध करतेहैं सो श्रुति प्रमाण से रहित होने से अप्रमाणही है । अरु तिसही कारण से सम्प्रदायिकों का मत श्रुति बाह्यहोने से प्रमाण करने को योग्य नहीं । अरु उन भेद-वादियों करके उक्त श्रुतिका अर्थ स्थालीपुलाकन्याय प्रमाण करने से वो अपना २ मत इसप्रकार सिद्ध करते हैं कि जैसे वो तंदुल का पचावने वाला पाचक उस पात्रमें से तंदुल का एक दाना निकाल तिसको काचा पाकादेख अन्योंको भी काचा पाका जान लेताहै, इस न्यायप्रमाण जब एक ब्रह्मको सत्य जानलिया तब , प्रकृति को, वा मायाको, वा द्रव्यादि परमाणुओं को आदि लेके (कि जिस जिस मतवादियों ने जगत्की उत्पत्तिमें ब्रह्मके सहकारी माने हैं) तिनको भी सो सत्य मानते हैं । इसप्रकार वो सर्व भेदवादी अद्वैत प्रतिपादक उक्त श्रुति आदिक श्रुतियों का अर्थ उक्त न्याय प्रमाण स्वबुद्धिकी कल्पना से कर अपने मतको सिद्ध करते हैं । परन्तु उनके कल्पित अर्थ विषे कोई भी श्रुति प्रमाण न होने से उनकरके कल्पित अर्थ मानने योग्य नहीं ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे भगवन् निश्चय करके जो मेरा गुरुहै सो , यह जो आपने आदेश कहा सो जानता नहीं, यदि इस आदेशको जानताहोता

तो क्यों न कहता, हे भगवन् आपही मुझको सो आदेश कहिये, इसप्रकार जब पुत्रने कहा तब पिता कहताहुआ हे सौम्य तथास्तु, मैं हीं कहताहौं ७ ॥ इति षष्ठ प्रपाठके प्रथमखंडः १ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति एकके जानने से सर्व जाना जाता है, इस आदेशके सम्यक् प्रकार समझावने के अर्थ मृत्तिकादि उपादान के जानने से घटादि कार्य्य सर्व मृत्तिकादि रूप ही जाना जाता है, इस प्रकार के तीन दृष्टान्त कहे, अरु उक्त श्रुतिके अर्थ बिषे भेद बादियोंका पक्ष निराकरण किया। तब तिसको श्रवण करके वो श्वेतकेतु कहता हुआ कि। हे भगवन् निश्चय करके जो मेरा गुरु है, कि जिस से मैंने विद्याध्ययन किया है, सो यह जो आपने कहा कि जिस एकके जानने से सर्व जाना जाता है तिसको तू जानता है या नहीं, तिस बस्तुको जानता नहीं यह मुझको निश्चय हुआ है, क्योंकि यदि वो उस वस्तुको जानता होता तो वो मुझ गुरु-भक्त गुणवान् शिष्यको क्यों न कहता जो वो जानता होता तो अवश्य कहता ॥ः—हे भगवन् विद्याध्ययनकी समाप्ति समावर्तन कालमें मुझ से यह कहा कि जेतनी विद्या मैं जानताहौं सो सर्व मैंने तुझको अध्ययन कराया अब तेरे अध्ययन करने योग्य अन्य अवशेष विद्या कोई नहीं, अतएव भी निश्चय होता है वो मेरा गुरु आप करके लखाये आदेश को जानता नहीं—ः॥ इस प्रकार जब श्वेतकेतुने अपने गुरुकी अज्ञता निश्चय कर कहा तब वो उद्दालक पुनः कहता हुआ कि हे पुत्र जो कदापि तेरे गुरुने तुझको सुझ करके कही विद्या नहीं कही, तदापि गुरु के बिषे अज्ञता का भावल्याय उसकी निंदा न करनी गुरुकी निंदा करने से पाप होता है ॥ः—इस प्रकार जब उद्दालक ने कहा तब पुनः श्वेतकेतु कहता हुआ कि हे भगवन् मैंने सत्य कहा है, ताते मुझको पाप न होगा क्योंकि सत्य कहने से पाप होता

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके द्वितीय खंडः प्रारभ्यते ॥

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम् तद्धैक आहुरस देवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत् १ ॥

नहीं, तब पुनः उद्दालकने कहा कि हे पुत्र सत्य भाषण से पाप नहीं सो सत्य परन्तु निंदात्मक सत्य भाषण से गुरु निंदाका पाप बलवान् है ताते यदि गुरु कोई एक विद्याको न भी जानताहोय तथापि उसको अज्ञ कहना नहीं, अरु गुरु तेरा इस विद्याको जानताहै परन्तु तुझको अहंकारी देख उस विद्याका अनधिकारी जान उसने कहा नहीं—॥ इसप्रकार जब उद्दालकने कहा तब वो श्वेतकेतु पुनः अपनेको मतकही पिता गुरुके गृह भेजे, इस भयसे पितासे कहताहुआ कि हे भगवन् वो वस्तु कि जिस एकके जानने से सर्वज्ञता प्राप्तहोती है (अरु जिस विषयमें आपने तीन दृष्टान्त कहे हैं) तिस वस्तुको मेरे प्रति आप कृपाकर कहिये । इसप्रकार जब सत्य जिज्ञासा पूर्वक श्वेतकेतु ने अपने पितासे विनय पूर्वक कहा तब वो पिता उद्दालक कहताहुआ कि हे सौम्य तैसेही हो उस वस्तुको मैं तेरे प्रति कहता हों सावधानहो के श्रवणकर ७ ॥ इति प्रथमखंडः १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य यह ' जगत्, पूर्व एक अद्वितीय सतही था । तहां प्रसिद्ध कोई एक (वैनाशिक मत वादी) कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत् ही था सो एक अद्वैत ही था तिस असत्से सत् होता हुआ १ ॥

अथ द्वितीयखंडे प्रथममन्त्रः १ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार अपने पुत्र श्वेतकेतु से कह उसकी उस वस्तु के ' कि जिस एकके जानने से सर्व जाना जाताहै, जानने

वेषयक दृढ जिज्ञासा देख वो उद्दालक ऋषि पुनः कहताहुआ, हे प्रियदर्शन जो केवल अस्तिमात्र अतिसूक्ष्म निर्विशेष सर्वगत एक निरंजन निरवयव निराकार विज्ञान घन जो वेदान्त (उपनिषदों) के महा वाक्यार्थ के ज्ञानसे साक्षात् अनुभव कियाजाताहै ऐसा जो सत् शब्दका सामान्य विषय तिसको सत्, कहते हैं [अर्थात् सत् शब्दका सामान्य विषय अस्तिमात्र सत्तासमान वस्तुको पृथिव्यादि अग्नि पर्यंत मूर्त्त भूतों से विशेष देखावने के अर्थ 'सूक्ष्म, इस विशेषणसे कहा है। अरु वायु आकाश इन दोनों अमूर्त्त भूतों से विशेष देखावने के अर्थ 'निर्विशेष, कहा है। अरु अन्य विशेषकी व्यावृत्ति के अर्थ उसको ,सर्वगत, इस विशेषणसे कहाहै। अरु तिसकी तटस्थताकी व्यावृत्ति के अर्थ इस विशेषण से कहा है, अरु तिसको प्रत्यग् से अभिन्न होने से उसका संसारित्वपना निवारण करने के अर्थ उसको ,निरंजन, इस विशेषण से कहाहै। अरु वो निष्क्रियत्व से कूटस्थ है ऐसा लखावने के अर्थ ,निरवयव, इस विशेषणसे कहाहै। अरु यथोक्त वस्तु के अवश्य होनेके विषयमें , अवगम्यत, जाना जाता है इस विशेषण से कहाहै] अरु निश्चय आत्मक जो एव शब्दहै सो उसके ,अवधारणार्थ है, अर्थात् वोही है, इसप्रकारके निश्चयके धारणार्थ है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इस आपके कहने से क्या जानना चाहिये, जहां इसप्रकार का प्रश्नहै तहां कहते हैं उत्तर ॥ हे सौम्य यह जानो जो यह नामरूप क्रियात्मक कार्य्य रूप जगत् जो तुम्हारे देखने सुनने बिषे आवता है सो सर्वसत् ही है (क्योंकि वो सतही अपनी इच्छासे यह नानानाम रूपात्मक जगत्रूप से सुशोभित हुआ है, इसप्रकार आसीत् शब्द करके सम्बन्ध होता है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह जगत् कब सत् था, तहां कहते हैं ॥ उत्तर ॥ यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व एक सतही था ॥

हे सौम्य अब बिशेषणके अनुसार शंका करते हैं ॥ शंका ॥ हे

भगवन् आपने आज्ञाकिया कि यह नामरूपात्मक जगत् उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय महासूक्ष्म निर्विशेष सत्ही था, हे भगवन् सो क्या इस वर्त्तमान दशा बिषे असत् हुआ जगत् नहीं है जो , अग्रे, इस शब्दार्थ से विशेषणदिया है, वा विशेष किया है ॥ समाधान ॥ हे सौम्य शंका करके कहा कि जो यह उत्पत्तिसे पूर्व सत्ही था तो क्या वर्त्तमान दशा बिषे नहीं है जो जिस करके आगे सत्था । हे सौम्य तब सो क्या इस वर्त्तमान दशाबिषे विशेषण सामर्थ्य होनेसे जगतको असत् कहतेहौ वा विशेष्य का अर्थवत्वत्व पूछतेहौ । तहां जो प्रथम पक्षकहो कि विशेषणके सामर्थ्य से असत् है (अर्थात् इस जगत् को । "सदेवेदमग्र आसीत् " आगे सत् था इस प्रकार , अग्रे , इस बिशेषणयुक्त कहाहै, परन्तु यह जगत् वर्तमान दशा बिषे सत्ही है ऐसा बिशेषण नहीं, अतएव 'अग्रे, इस बिशेषण के होने के सामर्थ्य से यह जगत् वर्त्तमान में असत् है, तो सो बने नहीं, क्योंकि यह वर्त्तमानदशाबिषे भी यह जगत् सत्ही है, जो इस वर्त्तमान दशा बिषे जगत्को असत् कहोगे तो प्रत्यक्ष विरोध होवेगा, जो वस्तु प्रत्यक्ष होवे सो असत् कैसे होवेगा । एतदर्थ जो कदापि वर्त्तमान काल में यह जगत् एकसत्ही है ऐसा बिशेषण नहीं तथापि वर्त्तमानदशा बिषे भी प्रत्यक्ष प्रमाण के बलसे सत्य हीहै । किन्तु नामरूप बिशेषणवत् इदं शब्द अरु इदं बुद्धिका विषय होने से 'इदं, ऐसा विशेषण होता है । हे सौम्य इस बिचारसे जगत्त्व की असिद्धिही हुई ॥ अरु द्वितीय पक्ष जो बिशेषणका अर्थवत्वत्वपना पूछतेहौ तो श्रवण करो, तहां कहते हैं । हे सौम्य (यह नामरूपात्मक जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व इदं प्रत्ययका विषय होवे नहीं, हे सौम्य जो यह नामरूपात्मक जगत् देखते हौ सो इदं शब्द अरु इदं बुद्धिका विषय भाव से स्थितहुआ वर्त्तमान में 'इदं, ऐसे व्यवहारको प्राप्तहुआ है । सोई जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व केवल सत्शब्द अरु सत्बुद्धिमात्र

ही होता है ताते "सदेवेदमग्रआसीत्" इसप्रकार अवधारणकरते हैं। क्योंकि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व नामरूपवान् (जैसाकि वर्त्तमान में है) इदं प्रत्ययका विषयवत् ग्रहण करने को शक्य नहीं। सुषुप्तिकालवत् [अर्थात् जैसे सुषुप्ति काल में सत् शब्दका वाच्य आत्म वस्तु निर्विशेष होनेसे इदं शब्द अरु इदं बुद्धिका विषय होवेनहीं तैसेही उत्पत्ति से पूर्व सत्रूप हुआ जगत् निर्विशेषहोनेसे नाम रूपवान्हुआ इदं प्रत्ययका अरु इदं बुद्धि का विषयहुआ श्रवण कथन के व्यापारमें आवे नहीं, क्योंकि सुषुप्तिमें अरु जगदुत्पत्तिके पूर्व बुद्ध्यादि करणों की उपसंहारता तुल्यही है] ताते यह जगत् जैसे पूर्व सत्था तैसाही वर्त्तमान में भी सत्ही है। परन्तु पूर्व नामरूपकी विशेषता से रहित होने से इदं शब्दका विषय न था, अरु वर्त्तमान में नामरूपात्मक हुआ इदं प्रत्ययका विषय है ताते वर्त्तमानमें इस इदं शब्दके विषयको पूर्व सत् था ऐसा कहाहै। ताते जैसा यह पूर्व सत् था तैसाही वर्त्तमानमें भी सत्ही है, परन्तु वर्त्तमान में इसको नामरूप की विशेषता होने से इदं प्रत्यय से ग्रहणकरके कहाहै कि यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व एक सत्ही था परन्तु वास्तवकरके सर्वकाल सत्ही है॥प्रश्न॥

हे भगवन् यह नामरूप क्रियात्मक सर्व जगत् उस एक अद्वितीय सत्से कैसेहुआ है॥ उत्तर॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त कहते हैं सो श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन जैसे लोकविषे कोई एक पुरुष प्रातःकालको अपने ग्रामसे ग्रामान्तरको जातारहा तिसने ग्रामकेनिकट द्वारपर घटशरावादिक रचनेकी इच्छावालेकुलाल ने एक मृत्तिका का पिण्ड रचाथा, तिसको देखताहुआ वो पुरुष ग्रामान्तरको जाताहुआ, तिसके गयेपश्चात् उस कुलालने उस मृत्पिण्डके अनेक घट शरावादि कार्य्यकोरचके फैलायदिया, अरु वो ग्रामान्तर को गया पुरुष सायंकालको जब अपने ग्रामके द्वार पर आया तब उसही कुलालके द्वारपर अनेक घट शरावादि भिन्न

भिन्न नाना नाम रूपवाले कार्य्यों को देख आश्चर्यको प्राप्तहुआ, तब उससे कुलालने कहा कि हे भाई तुम इन सर्वको क्या देखते हो यह सर्व भिन्न भिन्न नाम रूपात्मक कार्य्य अपनी उत्पत्तिसे पूर्व केवल एक मृत्पिण्डही रहा, सोई यह सर्वहुआहै । हे सौम्य इस दृष्टान्त प्रमाणही यहां कहाहै कि " सदेवेदमग्रआसीदिति " यह सर्व नाना नामरूपात्मक जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व एक सत्‌ही था सो एकही था ' सो कुलालवत् दंड चक्रादि सामग्री सहित एक न था, किन्तु दंड चक्रादिवत् अन्य निमित्त सामग्री के अशेष अभावसे एक अद्वितीय था अर्थात् जैसे मृत्तिका को घटादि आकारसे परिणामहोनेमें मृत्तिकासे भिन्न कुलाल दंड चक्रादि निमित्त सामग्री देखते हैं, तैसे एक सत्‌से व्यतिरिक्त (भिन्न) करके उस सत्‌का सहकारी अन्य द्वितीय निमित्त कारणकी प्राप्ति के निषेधार्थ उस सत्‌को अद्वितीय विशेषण से कहा है । अर्थात् जिससे अन्य कोई भी वस्तु विद्यमान न होवे सो कहिये अद्वितीय ॥:–" आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसी न्नान्यत्किञ्चित् " इति श्रुत्यन्तरे ॥ अथवा हे सौम्य वो सत् कैसा एकहै कि एक संख्यातीतहै अर्थात् दो संख्या की आपेक्षक जो एक संख्या तिस आपेक्षिक एकसंख्या से रहित संख्यातीतहै, अर्थात् उस वचनातीत सत्‌विषे एक कहना भी वास्तवसे बनेनहीं क्योंकि संख्यादि सर्व विशेषता से रहित निर्विशेष है वा संख्याबद्ध नहीं ताते । तिस निर्विशेष अस्तिमात्र बस्तु का जिज्ञासुप्रति उपदेश रूप व्यवहार साधने के अर्थ सत् शब्द अरु एकसंख्या करके कहा है, अरु तिससे इतर बस्तुका अत्यन्ता भाव लखावने के अर्थ उसको अद्वितीय विशेषण से कहाहै, न तु वास्तव से उसवचनातीत केवल अस्तिमात्र सत्तासमानविषे , सत् असत् , एक, दो, इत्यादि कुछ भी कहना बने नहीं । हे सौम्य सोई सत् ईक्षण पूर्वक यह इदं प्रत्यय का विषय नामरूप क्रियात्मक जगदाकार से आपही सुशोभित है–: ॥

शंका ॥ ननु, हे भगवन् वैशेषिक मतवादियों के पक्षकरके भी सत् को सर्वका सामानाधिकरण करके प्रतिपादन कियाहै "सद् द्रव्यं,सन्गुणः सत्कर्मेति" इत्यादि देखने से ॥समाधान॥हे सौम्य इसवर्त्तमान कालविषे (अर्थात् जगदुत्पत्तिके पश्चात्) जैसा वो कहतेहैं सो सत्यहीहै,परंतु जगत्की उत्पत्ति से पूर्व इस कार्य्यको सत् रूपही है ऐसा ग्रहण करते वा होतानहीं, क्योंकि जगदुत्पत्ति से पूर्व नामरूप कुछ भी न था अरु द्रव्य गुण कर्म्मादिक सर्व नाम रूपात्मकहै ताते) अरु वैशेषिक मतवादियों करके उत्पत्ति से पूर्व कार्य्यका असत्पना अंगीकार किया नहीं (क्योंकि वैशेषिक मतवादी आठ किंवा नव द्रव्यों को नित्य मानते हैं ताते) अरु पुनः जगत् की उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय सत्को इच्छते नहीं। एतदर्थ हे सौम्य वैशेषिक मतवादियोंकरके परिकल्पित जे द्रव्यादिक सत् तिनसे यह श्रुति प्रतिपादित जगत् का कारण सत् अन्यही है ॥ :—हे सौम्य वैशेषिकादि परमाणुवादि आठ वा नव द्रव्यों को परमाणुरूप से नित्य मानते हैं अरु परमाणु का लक्षण इसप्रकारकरतेहैं कि झरोखादि रंध्रके मार्गसे सूर्यकाप्रकाश जब ग्रहादिकोंमेंआवताहै तब तिसप्रकाशमें बहुतसेरज कण उड़ते भासते हैं तिन प्रत्येकका नाम त्रसरेणुहै तिस एक त्रसरेणुके षष्ठ भागको परमाणु मानते कहते हैं अरु ऐसे अनन्त परमाणुरूपसे सर्व द्रव्य नित्य रहते हैं तिस परमाणुओं से ईश्वरकी इच्छानुसार यह पृथिव्यादि कार्य्यरूप जगत् होताहै। हेसौम्य अब उन परमाणुवादियों करके परिकल्पित परमाणुओं का विचार श्रवण करो, हेसौम्य परमाणु अति सूक्ष्म होने से नेत्र का विषय नहीं परन्तु एक साकार वस्तुका भाग (खंड) होनेसे वो भी साकार है अरु यावत् वो परमाणु निराकार स्थितिको प्राप्त होवे नहीं तावत् उसका साकारत्वपना दूरहोवे नहीं अरु यावत् उसका साकारत्वपना मिटे नहीं तावत् उसका भी खंड होना मिटेनहीं यदि वो परमाणु सूक्ष्म अरु नेत्रका अविषय होनेसे उसका बाह्य

खड्गादि करणों से उसका बिभाग होना असंभव है तथापि उस को बुद्धि का विषय होने से बुद्धिरूप करण से उसका खंडहोना संभव है आकारवान् होनेसे, अरु जो बस्तु आकारवान् होती है सो आकृति परिमेयता नाम अरु रूप इन चार धर्म्म, लक्षण करके युक्तही होती है अरु यही चार कार्य्य के धर्म्म लक्षण हैं, अरु साकार त्रसरेणुका षष्ठ भाग परमाणुओं के मानने वाले परमाणु में से उक्त चार गुण जो कार्य्य के साधारण गुण हैं, दूर करने को कदापि समर्थ होवें नहीं। ताते हे सौम्य परमाणु वादी कहते हैं कि परमाणु नित्य अरु कारणही है कार्य्य किसी का भी नहीं सो उनका कथन अयुक्त है अरु उनके कथनमें कोई भी श्रुति का प्रमाण नहीं ताते अप्रमाण है हे सौम्य वो परमाणु सूक्ष्म होनेसे यदि पृथिव्यादि स्थूल कार्य्यों का कारणहो तो अस्तु परन्तु वो कारणही हैं वो कार्य्य किसी का भी नहीं सो कहना बने नहीं क्योंकि परमाणुओं को कार्य्य के उक्तचार लक्षण वा गुण वा धर्म्म करके युक्त होनेसे ॥ ताते परमाणुवादियों का कथन युक्त नहीं, अरु उनके स्वबुद्धि कल्पितमतमें कोई भी श्रुति प्रमाण नहीं ताते उनका मत आदर करने के योग्य भी नहीं, हे सौम्य उक्त हेतुओं करके वैशेषिकादि परमाणुवादियों करके परिकल्पित सत् से इतरही यह श्रुति प्रतिपादित सर्व जगत् का कारण महासूक्ष्म एक अद्वैत द्रव्यके धर्मों से रहित निर्विशेष अस्तिमात्र सत्है ॥

शंका॥ ननु, हेभगवन् मृदादि दृष्टांतोंसे वैशेषिक मतवादियों का पक्ष असंभव होनेसे भी, तहां इस जगत्की उत्पत्तिसे पूर्ववस्तु निरूपण करने के बिषयमें कोई एक वैनाशिक मतवादी वस्तु निरूपण करत सन्ते ऐसा कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व अभाव मात्रही एक अद्वैतथा, तिस असत् से सत् उत्पन्न होता हुआ ॥ अरु बौद्ध मतवादी सत् शब्द से भाव मात्रको ही अंगीकारकरके कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व

भाव मात्रही तत्त्वथा, ऐसी कल्पना करते हैं वो सत् शब्द करके सत् प्रति द्वन्द्वि वस्त्वन्तरको इच्छते नहीं ॥ः—हे भगवन् इत्यादि प्रकार अनेक मतवादी अपनी कल्पना से कहते हैं सो उनके कहने को कैसा जानना चाहिये ॥ हे सौम्य वो सर्व वेद से बाह्य स्वबुद्धिकी कल्पना से कहते हैं क्योंकि उनके वाक्यों में कोई भी श्रुतिका प्रमाण नहीं, अरु वो सर्व वादी परस्पर में एक दूसरे के मतको खंडन करते हैं ताते भी उनके वाक्य आस्था करने योग्य नहीं ॥ हे सौम्य वैनाशिक मतवादी इस जगत्को उत्पत्ति से पूर्व अभाव मात्र ही मानते हैं, तब यह उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वैत असत् ही रहा ऐसा कथन बने नहीं, क्योंकि अभाव असत् का अस्तित्व अरु काल से औ संख्या से सम्बन्ध अरु अद्वितीयत्व उन असत् वादियों करके कहना बने नहीं, क्योंकि जो केवल अभावही है तिसको, एक अद्वितीय, आगेरहा ऐसा कथन असंगत है। अरु पुनः कहते हैं कि तिस असत् से सत् होता हुआ सो अत्यन्त ही विरुद्ध असंभव अप्रमाण है। हे सौम्य जैसे शशेके शृंग अद्यावधि सिद्ध हुए नहीं क्योंकि वो अभाव रूप हैं तिस अभाव रूप शशशृंग से भाव रूप धनुष कैसे सिद्धहोगा किन्तु कदापि न होगा, क्योंकि वो अभाव आप असत् रूप हैं तिस असत्रूप अभाव से सत्रूप भाव कदापि सिद्ध होना नहीं, ताते उन अभाव वादी वैनाशिकों का वाक्य अत्यन्त बिनाशकारी असंगत अप्रमाण होने से किसी भी प्रकार से मन्तव्य नहीं ॥ हे सौम्य केवल भाव मात्र से ही जगदुत्पत्ति के मानने वाले जे बौद्ध सो ऐसा कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष जैसा पदार्थ देखता है तैसी ही तिसकी प्रतिमा (नकल) उतार लेता है तैसेही परम्परा भावद्वारा सृष्टि चली आवती है। हे सौम्य सो यह बौध का कहना भी समीचीन नहीं क्योंकि जो भाव रूप बस्तु है सो एकरोज अभाव भी होती है अरु जो अभाव होती है सो वस्तु सत् न होके असत् होती है। ताते बौद्धों करके परिकल्पित

जे भाव सो असत् अभावरूप सिद्ध होताहै, अतएव तिस भावनात्मक असत् अभावसे सत्रूप भावका होना असंभवहै । ताते भाववादी आचार्य्योंका कहना भी अप्रमाण होनेसे मन्तव्य नहीं ॥

हे सौम्य अब श्रुति प्रमाण से रहित बोलनेवाले जे भावबादी तथा अभाव वादी आदिक भेदवादी हैं तिनके मतका निराकरण सम्यक् प्रकार सविस्तर श्रवणकरो । हे प्रियदर्शन अभावादिक कारणों के अभाव से यह संसार बंध्यासुतवत् तुच्छ (कहनेमात्र) ही है यह वेदान्त उपनिषद् श्रुतिका सिद्धान्त है । ताते सम्यक् प्रकार सावधान होय श्रवणकर अपने चित्तमें निश्चय धारणकरो । हे सौम्य यह जगत् अकारणीक है वा सकारणीकहै, इसका विचार करना मुख्यहै, तहां कारण बिनाही जिसकी उत्पत्ति होवे सो कहिये अकारणीक, अरु कारण से जिसकी उत्पत्ति होवे सो कहिये सकारणीक । हे प्रियदर्शन अब इसका बिचार सावधान होके श्रवण करो) हे सौम्य उक्त दोनों पक्षों में प्रथम पक्ष जो ,अकारणीक संसार है सो बने नहीं, क्योंकि तन्तु आदिक कारणों बिना पटादि कार्य्योत्पत्ति के असंभववत् कारण बिना संसाररूप कार्य्यका होनाभी संभवे नहीं ताते । अरु तैसेही कारण बिना कार्य्य होवे नहीं, इस न्यायसे भी विरोध होनेसे प्रथम पक्ष समीचीन नहीं ॥ अरु द्वितीय , सकारणीक संसार , पक्ष है, तिसमें भी बिचार कर्तव्य है कि अभावकारणीक संसार है वा भावकारणीक संसार है । हे सौम्य तहां जो वैनाशिक मतवादी तुमसेकहते हैं कि (" असदेवेदमग्रऽआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतःसज्जायेत " अभावकारणीक संसार है, तहां उनसे प्रश्न करना चाहिये कि, हे वादी तुमजो अभावकारणीक संसार कहते हो तो, क्या , प्रागभाव कारणीक संसारहै , १ । वाप्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है २ । वा अत्यन्ताभावकारणीक संसार है ३ । वा अन्योन्याभाव कारणीक संसार है ४ । (इन अभाव चतुष्टयमें से किस अभावको तुम जगत्का कारण

मानते हौ। तहां जो कदापि वादी कहे कि हम प्रथम पक्ष प्रागभाव कारणीक संसार को मानतेहैं, तो तहां भी उससे पृष्टव्य है कि, कारण का प्रागभाव जगत् का कारण है, वा कार्य्य का प्रागभाव जगत् का कारण है, वा उभय का प्रागभाव जगत् का कारण है (हे सौम्य इसप्राग भावान्तर तीनोंपक्षोंमें से यदिवादी कहे कि) कारण का प्रागभाव संसार का कारण है, तहां उससे पुनः पृष्टव्य है कि कारण का प्रागभाव बिनाशी है वा अविनाशी है, तहां जो वादी कहै कि कारण का प्रागभाव विनाशी है, तो पुनः उससे पृष्टव्य है कि कार्य्योत्पत्ति के पूर्वही प्रागभाव नाश होवे है वा कार्य्योत्पत्तिके अन्तर तिसका नाशहोवे है। तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्षकहै कि कार्य्योत्पत्ति के पूर्वही कारण के प्रागभाव का नाशहोवे है, तो अकारणीक संसार पक्षमें कहे जे दोष तिन दोषों का इसमें सद्भावहोने से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहै कि कार्य्योत्पत्ति के अनन्तर कारण के प्रागभाव का नाशहोवे है, तो तिस पक्षमें भी पृष्टव्य है कि कारण का प्रागभाव एक है वा नानाहै, तहां जो वादी कहे कि कारण का प्रागभाव एक है, तो इसपक्षमें भी पुनः पृष्टव्य है कि अब कारणके प्रागभावका नाशहुआ है या नहीं,। हे सौम्य तहां नाश पक्ष तो नष्ट तन्तुआदिक कारणों से पटादिक कार्य्य की उत्पत्तिवत् नष्ट प्रागभाव रूप कारण से जगत् रूप कार्यकी उत्पत्ति का असंभवहोने से सो बने नहीं। अरु नाशाभाव द्वितीय पक्षमें भी पुनः पृष्टव्य है कि जब प्रागभावका नाशहोगा तिसके अनन्तर कार्य्य होगा वा नहीं, तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै कि प्रागभाव के नाशके अनन्तर कार्य्य होवेगा। तो तिस पक्षमें भी अकारण जगत् वाद की प्राप्ति होने से अयुक्तहै। अरु जो द्वितीय पक्ष कहै कि प्रागभाव के नाश होनेके अनन्तर कार्य्योत्पत्ति होवे नहीं, तो इसपक्ष करके सर्व जीवोंको अनायासते मोक्ष प्राप्ति का संभवहोने से बने नहीं, क्योंकि रागद्वेषादिक संसारही बंध है अरु

प्रागभाव रूप कारण का अभाव होने से कारण विना रागद्वेषआदिक संसार की अनुत्पत्ति के हुए जीवोंको संसारका अभावरूप मोक्ष अतिही स्पष्टहै। हे सौम्य इसरीतिसे कारण का प्रागभाव विनाशी अरु एकहै इसपक्षका खंडनहुआ॥—॥हेसौम्य अबकारण का प्रागभाव विनाशी अरु नानाहै,इसपक्षमें भी वादीसे प्रष्टव्यहै कि प्रागभावों का स्वरूप स्वरूपसेही भेदहै वा प्रतियोगी के भेद से भेद है तहां जो कदापि वादी ऐसा कहै कि उन विनाशी नाना प्रागभावों का स्वरूप स्वरूपसेही भेदहै, तो सो पक्ष सम्भवे नहीं, क्योंकि घटपटादिकनको प्रतियोगी निरपेक्ष होनेसे तिनका परस्पर स्वरूप से भेदहै, तैसे प्रागभावभी प्रतियोगी निरपेक्ष होवे तो तिनका स्वरूप से भेद सम्भवे,परन्तु प्रतियोगी निरपेक्ष प्रागभावहै नहीं ताते स्वरूपसेही तिनका भेद संभवे नहीं, अरु स्वरूपसे प्रागभावों का भेद किसी ग्रन्थकारने माना भी नहीं ॥ हे सौम्य जो कदापि वादी कहै कि प्रागभावों का प्रतियोगी भेद से भेदहै, तो इस द्वितीयपक्षमें भी वादी से प्रष्टव्य है कि प्रागभावत्वरूप से प्रागभाव संसारका कारण है वा स्ववृत्ति प्रतियोगिता निरूपकता सम्बन्धद्वारा प्रतियोगी विशिष्टरूप से प्रागभाव संसारका कारण है, तहां वादी प्रथमपक्ष कहै तो तन्तुओंमें घट की औ कपालमें पटकी उत्पत्ति के असम्भव से अनादरणीयहै। अरु जो कदापि वादी द्वियीयपक्ष कहै तो तहां भी यह प्रष्टव्यहै कि असिद्ध प्रतियोगी विशेषण है वा सिद्ध प्रतियोगी विशेषणहै तहां जो वादी प्रथमपक्ष कहै तो असिद्ध दंड विशिष्ट कुलालमें घटकारणताके असंभववत् असिद्ध प्रतियोगी विशिष्ट प्रागभावमें संसारकी कारणताका असंभव होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी सिद्ध प्रतियोगी विशेषण है यह द्वितीयपक्ष कहै तो भी प्रतियोगीकी सत्ताकालमें प्रागभावका अरु प्रागभावकालमें प्रतियोगी की सत्ताका अभाव होने से प्रतियोगी विशिष्टप्रागभाव के असम्भवसे समीचीन नहीं। हे सौम्य इसरीति से कारणका प्राग

भाव विनाशी अरु नाना है यह पक्षभी वादी का असंगत है ॥ हे सौम्य अब द्वितीयपक्ष कारण का प्रागभाव अविनाशी अरु संसार का कारणहै, यह पक्षतो प्रागभावके असम्भवसे तथा प्रध्वंसाभावादिकरूपकी प्राप्तिसे संभवे नहीं ॥ अर्थात् अनादि शान्त जो अभाव सो कहिये प्रागभाव यह प्रागभावका लक्षण है॥ ताते प्रागभावको अविनाशी मानेतो लक्षणको लक्षणमात्रमें वृत्तित्वा भावरूप असंभव दोष युक्तहोने से प्रागभावकी साधकता तिसमें संभवे नहीं, अरु प्रागभावके लक्षणान्तरका संभव नहीं, कि जिससे प्रागभाव सिद्धहोवे। अरु प्रागभावको सादि अनन्तमाने तो प्रध्वंसाभावका नामान्तर प्रागभाव होवेगा, अरु जो प्रागभाव को अनादि अनन्त माने तो अत्यन्ताभाव तथा अन्योऽन्याभावके रूपमें प्रागभावका अन्तर भावहोनेसे तिनसे भिन्न प्रागभाव अलीक होवेगा। हे सौम्य इसरीतिसे कारणका प्रागभाव अविनाशी अरु संसारका कारण है, यहपक्षभी समीचीन नहीं ॥ हे प्रियदर्शन कारण का प्रागभावकार्य्यकाजनकहै, वा कारणका जनकहै यह वादीसे प्रष्टव्यहै तहां जो वादी प्रथम पक्षकहै कि कारण का प्रागभाव कार्य्यका जनकहै तो सो संभवे नहीं क्योंकि कार्य्य का प्रागभाव कार्य्यका जनकहै अरु कारण का प्रागभाव कारण का जनकहै, यह नियम है, ताते कारण के प्रागभाव को कार्य्य का जनकमाने तो कारण के प्रागभावसे संसार रूप कार्य्यकी उत्पत्तिवत् कपाल वृत्ति घटके प्रागभाव से पटकी अरु तन्तु वृत्ति पटके प्रागभावसे घटकी उत्पत्ति होनीचाहिये सो होवे नहीं ॥:—अथवा कारणके प्रागभाव को कार्य्य का जनकमाने तो कारण के प्रागभाव से संसार रूप कार्य्य की उत्पत्तिवत् कपालवृत्ति के प्रागभावसे घटकी अरु तन्तु वृत्तिपट के प्रागभाव से पटकी उत्पत्तिहोनीचाहिये सो होवेनहीं —:॥ताते कारण का प्रागभाव कार्य्यका हेतुनहीं। अरुजो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहै कि कारणका प्रागभाव कारणका जनकहै, तो इस द्वितीय पक्षमें भी प्रष्टव्यहै कि हे वादीतेरे यहां कारण

पदसे ब्रह्मका ग्रहणहै वा अज्ञान का ग्रहणहै वा संसार का ग्रहण है, तहां जो कदापि वादी प्रथम अरु द्वितीय दोनों पक्षकहै तो अनादि परमाणु आदिकों के प्रागभाव के असंभववत् अनादि स्वभाव ब्रह्म अरु अज्ञान के प्रागभाव के असंभवहाने से मानने योग्य नहीं, क्योंकि ब्रह्म अरु अज्ञान की श्रुति स्मृति तथा युक्तियों से प्रसिद्ध तहां "अजामेकां" "अजोह्येको" यह श्रुति अरु "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादिवुभावपि" यह स्मृति, अरु युक्ति आगे कहैंगे ॥ हे सौम्य तैसेही कारण पद से संसार कारण ग्रहण रूप तृतीय पक्ष वादी कहै तो सो भी कार्य्यरूप संसार में कारण पद प्रयोग के असंभव से तथा कारण का प्रागभाव कार्य्य का हेतु है इस प्रतिज्ञाकी हानि से भी बने नहीं । हे सौम्य इसरीति से कारण का प्रागभाव कार्य्य का जनक है इस पक्ष का खंडन हुआ ॥–॥ हे सौम्य तैसे कार्य का प्राग भाव कार्यका हेतु है, यह प्रागभाव कारणीक संसार पक्षान्तर द्वितीय पक्ष है, तिसमें भी वादी से यह प्रष्टव्य अरु बिचारणीय है कि कार्य का प्रागभाव कार्य का उपादान कारण है वा निमित्त कारण है, तहां जो वादी कार्य के प्रागभावको कार्य का उपादान कारण कहै तो यह प्रथम पक्षभी संभवे नहीं, क्योंकि जिसके स्वरूपमें कार्यकी स्थिति होवे तिसको उपादान कारण कहते हैं, अरु कार्य के प्रागभाव में कार्य्यकी स्थितिके असंभव से अरु कार्य्य में सद्बुद्धिते कार्य में उपादानताकी उक्ति अयुक्त है । अरु कार्य्य का प्रागभाव कार्य का निमित्त कारण है, यह द्वितीय पक्ष जो वादी कहै तो तिस विषेभी उसे प्रष्टव्य है कि कार्यका प्रागभाग, सादि है वा अनादि है, । तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्ष कहे कि कार्य का प्रागभाव सादि है तो तहां भी पुनः प्रष्टव्य है कि कार्य के प्रागभावका कारण प्रागभावहै वा प्रतियोगी है । तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहे तो सो आत्माश्रय दोषते संभवे नहीं, अरु द्वितीय पक्ष भी कार्य्य के प्रागभाव अरु प्रति योगी को परस्पर सापेक्ष रूप

होनेसे अन्योऽन्याश्रय दोषते संभवे नहीं, अरु प्रागभावके लक्षण का असंभव होने से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्ष कहै कि कार्य्य का प्रागाभाव अनादि है, तो इस पक्षमें भी पृष्टव्य है कि (कायका प्रागभाव जो अनादिहै) सो निराश्रय है वा साश्रयहै,। तहां जो कदापि वादी कार्यका प्रागभाव अनादि निराश्रयहै यह प्रथम पक्ष है, तो सो धर्मी निर्पेक्ष प्रागभाव के स्वरूपकी असिद्धि होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी कहे कि कार्य का प्रागभाव अनादि साश्रय है तो इस द्वितीयपक्षमें भी पृष्टव्य है कि कार्य के प्रागभाव अनादि साश्रयका अधिकरण प्रतियोगी है १। वा ब्रह्म है २। वा अज्ञानहै ३। तहांजो वादी प्रथम पक्षको अंगीकार करे तो सोबने नहीं, क्योंकि परस्पर में विरोधी प्रकाश अरु तमका आधाराधेयभाव के असंभववत् विरोधी प्रतियोगीमें प्रागभाव की अधिकरणता का अभाव होने से असंगत है। अरु द्वितीय पक्षभी असंगस्वभाव ब्रह्म अधिकरणिक प्रागभाव के असंभव से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी तृतीयपक्ष कहे तो यद्यपि अज्ञान अधिकारणिक प्रागभाव संभवे है तथापि अज्ञान को अचिन्त्य शक्ति रूपहोने से अरु दुर्घट कार्य्य कारित्व स्वभाव से तिसमें कार्य्य निर्वाहार्थ प्रागभाव की अधिकरणता का कल्पना व्यर्थ है, अरु अन्यकोई पदार्थ कार्य्य मात्र प्रतियोगिक प्रागभाव का आश्रय संभवे नहीं। इसरीति से आश्रय पक्षको असंगत होनेसे कार्य्य का प्रागभाव कार्यका हेतु है यह पक्षभी अयुक्तहै। अरु कार्य कारण उभय के प्रागभाव को संसारकाकारण पक्ष जो उभय पक्षगत उक्तदोषनके सद्भावसे बने नहीं। हे सौम्य इस प्रकार प्रागभाव कारणीक संसार है, वादी के इस प्रथम पक्षका खंडनहुआ जानना॥ १॥

हे सौम्य, अब अभाव वादीका द्वितीय पक्ष जो प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है तिसका विचार श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन उस वादीसे पूछना चाहिये कि हे वादीतेरा प्रथम पक्ष 'प्रागभाव

कारणीक संसारहै, सो तो उक्तप्रकार बनैनहीं। अरुजो तू अपना द्वितीय पक्षकहै कि प्रध्वंसाभावकारणकि संसारहै, तहां हम तुमसे यह पूछते हैं कि कारणका प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है वा कार्य्य का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है, वा उभयका प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है ॥ तहां जो कदापि प्रथम पक्ष कहै कि कारण का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है, तो सो नष्टकपाल कुलालादिकन से घटरूप कार्य की उत्पत्ति के असंभववत् नष्टहुएकारण से संसार रूप कार्य की उत्पत्ति का असंभव होने से अयुक्त है (हे सौम्य सूक्ष्म विचारसे तो कारण का प्रध्वंसाभावही अलीक है) हे वादी तूने जो कारण का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण कहा तहां कारण शब्द करके अज्ञानका ग्रहण है वा ब्रह्मका ग्रहण है । हे सौम्य इसप्रकार प्रश्न करने से वादी (अज्ञान का ग्रहण रूप) प्रथमपक्ष कहै, तो तहां यह प्रष्टव्य है कि ध्वंसाभावका अपर पर्य्याय जो अज्ञान का नाश सो अधिष्ठान के ज्ञानसे होवे है १ वा क्रिया से होवे है २ वा कारण के नाश से होवे है ३ वा कार्य के नाशतेहोवे है ४ वा आश्रय के नाशतेहोवे है ५ । तहां इनपांचों पक्षोंमें प्रथम पक्ष कहै कि अधिष्ठान के ज्ञानसे कारण का नाशहोवे है, तो जैसे अध्यस्त सर्पकी अधिष्ठान रज्जुके साक्षात्कारकेहुए बाधात्मक निवृत्ति बिना ध्वंसरूप निवृत्ति संभवे नहीं, तैसेही अध्यस्त अज्ञानकी अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार से बाधात्मक निवृत्तिबिना ध्वंसरूप निवृत्ति के असंभव से संभवे नहीं १ अरु जो द्वितीयपक्ष कहै कि क्रिया से अज्ञान रूप कारण का नाशहोवे है, तो सो भी दंडादिकनकी घातरूप क्रिया से घटकी निवृत्तिवत् अध्यस्त सर्प की निवृत्ति नहीं (अर्थात् रज्जुबिषे अध्यस्त सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुके ज्ञानबिना दंडादिकन की घातजन्य क्रियासे कदापि संभवेनहीं) तैसेही शरीरादिकोंकी क्रियासे पुण्यकर्मजन्य पाप की निवृत्ति के सम अध्यस्त अज्ञानकी निवृत्ति का अभाव होने

से संभवे नहीं २। अरु जो तृतीय पक्षकहै कि कारण के नाशते अज्ञान कारणका नाशहोवे है, तो सो भी "अजामेकां" इसअज्ञान की अनादिता प्रतिपादक श्रुतिवाक्य से विरोध के कारण बने नहीं ३। अरु जो चतुर्थ पक्षकहै कि कार्य के नाशते कारण अज्ञान का नाशहोवे है तो सो भी बने नहीं क्योंकि जैसे घटरूप कार्य के नाशते घटके उपादान मृत्तिका का नाशहोवे नहीं, तैसेही संसार रूप कार्य के नाशसे जगत् के उपादान अज्ञानका नाश संभवे नहीं, अन्यथा (अर्थात् संसार रूप कार्य के नाशते कारण अज्ञान का नाशहोवे तो) उपादान कारण अज्ञातके अभावसे कल्पान्तरमें संसारकी उत्पत्ति न हुई चाहिये, अरु जो तथास्तु (अर्थात् ऐसाकहै कि कल्पांतरमें संसारकी उत्पत्ति मतहो) तो सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियोंसे विरोधहोवेगा। ताते चतुर्थ पक्ष भी संभवे नहीं ४। अरु जो कदापि पंचम पक्षकहै कि आश्रय के नाशते कारण अज्ञानका नाशहोवेहै। तो तहां हम यह पूछते हैं कि अज्ञानका आश्रय संसारहै, वा अज्ञान है, वा ब्रह्म है, तहां अज्ञानका आश्रय संसार है यहप्रथम पक्षतो, अज्ञानके अन्तर भावी संसारमें अज्ञानकी आश्रयताके असंभवते बने नहीं। अरु जो कदापि द्वितीय पक्षकहै कि अज्ञानका आश्रय अज्ञान है तोसो अनवस्थादि दोष करके युक्त होनेसे बने नहीं। अरु जो तृतीय पक्षकहे कि अज्ञानका आश्रय ब्रह्म है तिसके नाशते कारण अज्ञान का नाश होवेहै, तो अज्ञान के अधिष्ठान अविनाशीस्वरूप ब्रह्म के नाशका असंभव होनेसे अनादरणीयहै॥ (हे वादी तैंने कारण अज्ञान का ध्वंस जगत्काकारण कहाहै तहां हम पूछते हैं कि) कार्यके आकार परिणत अज्ञानकी अवस्थाका नाम (अर्थात् कारण अज्ञानकाकार्य रूपपरिणाम होनेरूप अवस्थाकानाम) ध्वंस है, वा अज्ञान के अभावका नामध्वंस है, तहां जो प्रथम पक्षक है तो कार्य्यात्मक अवस्था को कार्य्य की हेतुता होनेसे आत्माश्रय दोष होवेगा, अरु द्वितीय पक्षमें अज्ञान के नाशको अनादि माने तो प्राग-

भावादिकन के नामान्तर की प्राप्ति होवेगी, अरु जो अज्ञान के नाशको सादिमानके कार्य्य मात्रकी कारणता बांछित होवे तो कार्य मात्रके अन्तः पाति ध्वंसको अपनेमें अपनी कारणता होने से आत्माश्रय दोष, तथा कार्य में असद्बुद्धिकी प्राप्ति होवेगी, अरु कार्य्य विशेष में ध्वंसको कारण कहै तो कारणका ध्वंसभाव कार्यमात्रका हेतु है इस प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी। इसरीति से अज्ञानके ध्वंसका असंभवहोनेसे कारण पदवाच्य अज्ञानका ध्वंस संसारका कारण है यह पक्ष असंगतहै॥ (हे सौम्य पूर्व प्रश्नके उत्तर में वादीने कहा कि कारणपदवाच्य अज्ञानका प्रध्वंसाभाव जगत् का कारण है तिस पक्षका निराकरण हुआ) हे प्रियदर्शन (जो कदापि वादी ऐसा कहै कि कारणपद बाच्य ब्रह्म का प्रध्वंसाभाव जगत्का कारणहै, तो अज्ञानके प्रध्वंसाभाववत् ब्रह्म का प्रध्वंसाभावभी संभवे नहीं, क्योंकि जैसे व्यापकअरुनिरवयव आकाशका दंडादिकनके घातरूप कर्म्मों से नाश संभवे नहीं तैसे ही "महतो महीयान्" "निष्कलं" इत्यादि श्रुति प्रमाण से (अरु यथार्थ अनुभव युक्ति से) व्यापक अरु निरवयव निराकार ब्रह्मका शस्त्रादिकन के घातरूप कर्म्म से नाशसंभवे नहीं, "नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि" किंच उपादान कारण के नाशते वा निमित्त कारण के नाशते कार्य्य द्रव्यका नाश होवे है। जैसे तंतु वा तंतु के संयोग के नाशते पटका नाश होवे है। अरु अनादि स्वभाव ब्रह्मका उभयप्रकार के कारण के असम्भव से, प्रध्वंसाभाव बने नहीं। हे सौम्य जो कदापि कोई वादी ब्रह्मको कार्य्य कहै तो तिससे यह प्रष्टव्य है कि ब्रह्मका कारण अज्ञान है वा ब्रह्म है, तहां जो वादी प्रथमपक्षकहै कि ब्रह्मका कारण अज्ञानहै, तो सर्प के अधिष्ठान रज्जुकी सर्पसे जनिता (उत्पत्ति) के असंभववत् अज्ञान के अधिष्ठान ब्रह्मकी अपने में अध्यस्त अज्ञानसे उत्पत्ति का अभाव होनेसे समीचीन नहीं॥ किंच वादी से यहभी प्रष्टव्य है, कि अज्ञान स्वतन्त्र है वा परतन्त्रहै, तहां जो वादी प्रथमपक्ष

कहै कि अज्ञान स्वतन्त्र है, तो उससे पुनः पृष्टव्यहै कि अज्ञान में स्वतन्त्रत्व आश्रय विषय निर्पेक्षत्वरूप है वा कार्य्यजन्य कर्तृत्वरूपहै, वा चेतन स्वरूप प्रकाशकत्वहै। तहां जो वादी प्रथमपक्ष कहै तो "कस्य कुत्राज्ञानं" किस पुरुषको किसविषयमें अज्ञानहै इसप्रतीति विरोध ते संभवे नहीं। अरु जो वादी द्वितीयपक्ष कहै कार्यजन्य कर्तृत्वरूप स्वतन्त्रता है, तो सो भी वक्ष्यमाण अज्ञान कारणीक संसारके निराकरणका साधक युक्तिसमुदायरूपदोषों ते संभवे नहीं। अरु कदापि वादी तृतीयपक्ष कहे, कि अज्ञान चेतनस्वरूप प्रकाशकत्वरूप स्वतन्त्र है, तो सो भी जड़स्वभाव अज्ञान में स्वप्रकाशयुक्तिके बिरोधसे बनेनहीं। अरु जो अज्ञान को चेतनमाने तो अज्ञान के स्वरूपकी क्षिती ते वा ब्रह्मरूप की प्राप्ति ते संभवेनहीं॥ अरु जो कदापिवादी अज्ञानको परतन्त्रमाने तो सो पक्ष भी ब्रह्मसत्ता के आधीन सत्ताके (सत्तावाले) ज्ञान में स्वसत्ता प्रदाता ब्रह्मकी जनकताका असंभवहोनेसे समीचीन नहीं॥ अरु ब्रह्मका कारण ब्रह्महै, ऐसा कहै तो इसपक्षविषे अन्योन्याश्रय दोष होनेते सो बने नहीं। हे सौम्य इस प्रकार ब्रह्मकी सामग्री का अभाव होनेसे ब्रह्मप्रतियोगिक प्रध्वंसाभावबने नहीं। ताते कारण शब्दसे अज्ञान वा ब्रह्मके ग्रहणका अभाव होनेसे उभय प्रति योगिक ध्वंसाभाव अलीकहै। ताते कारणका प्रध्वंसाभाव कारणीकसंसारहै यह पक्ष असंगतहै॥ हे सौम्य प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है इस प्रकार के वादीके पक्षके आवान्तर प्रध्वंसाभाव करणीक संसार द्वितीय पक्षहै तिसके अवान्तर तीन पक्षहैं तिनमें प्रथम पक्ष कारणका प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है इस पक्षका निराकरण हुआ॥ अरु द्वितीय पक्ष जो कार्य का प्रध्वंसाभाव जगत् का कारण है, सो इस पक्षका भी निराकरण श्रवणकरो। हे सौम्य जो कदापि वादी ऐसाकहै कि कार्यका प्रध्वंसाभाव जगत्का कारणहै तो सो अन्योन्याश्रय दोष युक्त होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी तृतीय पक्षकहै कि कारण

अरु कार्य दोनोंका प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है, तो इस पक्षविषे भी उभय पक्षोंगत दोषोंके सद्भाव से यह तृतीय पक्षभी बने नहीं ॥ अरु प्रागभाव पक्षविषे कहे जे शेष दोष सो तो इस प्रध्वंसाभाव पक्ष विषे भी अनुगत है ताते यहां लिखे नहीं ॥ हे सौम्य उक्त रीति प्रमाण से वादी के अभावकारणीक संसारपक्ष के आवान्तर प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है, इस द्वितीयपक्षका भी खंडनहुआ ॥ २ ॥

हे प्रियदर्शन अभाव बादीके अभावकारणीक संसारपक्ष के अन्तर्गत पूर्व चारपक्ष कहे हैं तिनमें से प्रागभाव कारणीक संसारपक्ष अरु प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार पक्षइन दोनों पक्षों का खंडन हुआ । अब अब शेषरहे दोनों पक्षोंमेंसे अत्यंताभाव कारणीक संसार पक्षका खंडन श्रवण करो ॥ हे सौम्य, हे प्रियदर्शन, अभाववादी अपने उक्त दोनों पक्षों के खंडनको श्रवण यदि अपना तृतीय पक्षकहे कि अत्यन्ताभाव कारणीक संसार है, तो तिसपक्ष बिषे भी उससे प्रष्टव्य है कि हे बादी कारणका अत्यताभाव संसारका कारण है वा कार्य का अत्यन्ताभाव संसार का कारण है, वा उभयका अत्यन्ताभाव संसार का कारण है, । अरु कारण पक्ष में भी प्रष्टव्य है कि हे वादी कारण शब्द करके तेरे यहां ब्रह्म का ग्रहणहै वा अज्ञानका ग्रहण है तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्ष कहै कि कारण शब्दसे ब्रह्म का ग्रहणहै तो अबाध्यस्वभाव ब्रह्म प्रतिपादक "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों से बिरोध होने से अथवा निरधिष्ठान संसार के अभाव से बनेनहीं । अरु जो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहै कारण पक्ष से अज्ञान का ग्रहण है तो कल्पित अज्ञान का ब्रह्मज्ञान से निवृत्ति रूप अत्यन्ताभावको , कल्पित सर्प के अत्यन्ताभावको रज्जुरूप की प्राप्तिवत्; ब्रह्मरूप होने से ब्रह्मकारणीक संसारवादकी आपत्ति से संभवे नहीं । हे सौम्य इसप्रकार वादी के कारण शब्द से ग्रहीत जे प्रथम ब्रह्मपक्ष अरु द्वितीय

अज्ञान पक्ष तिन दोनोंका निराकरण हुआ अरु तैसेही बादी के अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्षके अवान्तर तीन पक्षहैं तहां प्रथम कारणका अत्यन्ताभाव संसारका कारण है, वा कार्य का अन्यताभाव संसारका कारण है, वा दोनों का अत्यन्ताभाव संसारका कारण है, सो तीनोंपक्ष बनेनहीं, तहां आद्य द्वितीय पक्ष भी तन्तुवृत्ति घटके अत्यन्ताभाव में घट जनकताके असंभववत् ब्रह्मवृत्ति संसारके अत्यन्ताभाव में संसारकारणता के अभाव से असंगत है। अरु उभय पक्षोंगत दोषोंके सद्भावसेही प्रथम द्वितीयपक्ष संभवेनहीं॥ किंच बादीसे यह प्रष्टव्यहै कि, अत्यन्ताभाव शक्ति सहित कारण है वा अशक्ति कारण है, तहां जो बादी प्रथम पक्ष कहै तो शक्ति रहित वंध्यासुतकुलाल से घटोत्पत्ति के असंभववत् शक्ति शून्य अत्यन्ताभाव से संसारोत्पत्ति का अभाव होनेसे संभवे नहीं। अथवा अत्यन्ताभाव को केवल अन्वयि होनेसे सर्वत्र तिसका लाभ संभवे है, ताते कारण रूप अत्यन्ताभाव से भिन्न घट पटादिकों के अर्थ पुरुषोंका अकारण कपाल तन्तु आदिकों के ग्रहण में प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये, सो होवेहै, एतदर्थ उन पुरुषोंकी घट पटादि कार्य्य के निमित्त कपाल तन्तु आदिक कारणके ग्रहणमें प्रवृत्तिहोती है सोई अत्यन्ताभाव में संसार कारणताके अभाव बोधनद्वारा भावकारणीक संसारको बोधन करे है। एतदर्थ शक्ति रहित अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्ष असंगतहै॥ अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्ष शक्ति सहित अत्यंताभाव को जगत् का कारण अंगीकार करे तो तहां भी प्रष्टव्यहै कि सो शक्ति असत् है वा सत्है, तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्षकहै कि शक्ति असत्है तो समान स्वभाव उभय प्रकाशों का धर्म धर्मी भावके असंभववत् समान स्वभाव असत् शक्ति अरु अत्यन्ता भाव के धर्म धर्मी भाव के असंभव से बने नहीं, अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्षक है कि शक्तिसत् है तो भी बने नहीं क्योंकि सत्य जे गंधादिक सो असत्य जो खपुष्प

तिनका धर्म्म होवे नहीं, तैसेही सत् शक्ति में अत्यन्ताभाव की धर्मताके अभावसे समीचीन नहीं ॥ अरु प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव इन दोनों पक्षों में कहे जे शेष दोष सो इस अत्यन्ताभाव में भी व्यापक (अनुगत) है एकदर्थ यहां लिखे नहीं ॥ अरुइस अत्यन्ताभाव के खंडन का विस्तार आत्मपुराण के अष्टमाध्याय विषे प्रसिद्ध है, एतदर्थ यहां खंडन की रीति मात्रलखायी है ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार अभाव वादीके तृतीय अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्षका खंडन हुआ जानना ३ ॥

हे सौम्य, अभाव वादी के अभाव कारणीक संसार पक्ष के अन्तर्गत प्रागभावादि चार अभाव पक्षहैं तिनमेंसे तीन पक्षों का अखंडन कहा। अब चतुर्थ अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्षके खंडन को श्रवण करो। हे सौम्य जो कदापि वादी अपने तीनों पक्षोंका खंडन श्रवणकर अपना चतुर्थ पक्षकहै कि हम अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्ष मानते कहते हैं, तो तिस पक्ष में भी पूर्ववत् उससे प्रष्टव्यहै कि हे वादी तू जो अयोन्याभावकारणीक संसार मानता है, तहां कारण का अन्योन्याभाव कारणीक संसार मानता है वा कार्य का अन्योन्याभाव कारणीक संसार मानताहै वा उभयका अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्षमानताहै। अरु तिसके साथयह भी प्रष्टव्यहै कि कारण शब्दसे ब्रह्मका ग्रहणहै वा अज्ञान का ग्रहणहै ॥ हे सौम्य, इस प्रकार प्रश्न कियेजो कदापि वादीकहै कि कारण शब्द से ब्रह्मका ग्रहण है, तो अधिष्ठान रूप ब्रह्मसे भिन्न असत्स्वभाव पदार्थों में ब्रह्म प्रतियोगिक भेद के अधिकरणता के असंभव से अरु निर्धर्मक भेद अलीक होने से ब्रह्म प्रतियोगिक भेद कारणीक संसार पक्ष संभवे नहीं। हे सौम्य तैसेही कारण शब्दसे अज्ञान के ग्रहण रूप द्वितीय पक्षमें भी पुनः वादी से प्रष्टव्य है कि अज्ञान प्रतियोगिक भेदका धर्म्मी ब्रह्म है वा अज्ञान है वा संसार है। तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै तो असंगरूप ब्रह्ममें अज्ञान

प्रतियोगिक भेद धर्मीताके अभाव से समीचीन नहीं अन्यथा "। असंगोह्ययं पुरुषः"। इत्यादि, ब्रह्मकी असंगता प्रतिपादक श्रुतियों से विरोध होवेगा। अरु तैसेही द्वितीय पक्ष भी अभाव अरु प्रतियोगीका परस्पर विरोध होने से भेद अरु अज्ञान का धर्म धर्मी भावके अभाव से असंगत है, अन्यथा अभाव अरु प्रतियोगीका विरोध न होगा। अरु तृतीय पक्ष भी परिणामी उपादान कारण दुग्धसे भिन्न असत् दधिमें दुग्ध प्रतियोगिकभेदकी अधिकरणता जैसे संभवे नहीं, तैसे परिणामी उपादान कारण अज्ञान से भिन्न असत् संसार में अज्ञान प्रतियोगिक भेद अधिकरणता के असंभव से बने नहीं। तैसेही आद्य द्वितीय पक्षभी घटके भेद में घट जनकता के अभाववत् संसार के भेदमें संसारकी हेतुताका अभाव होने से अनादरणीय है॥ अरु वादी के अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्षके अन्तर कारण अरु कार्य इनदोनों का अन्योन्याभाव संसारका कारण है, यह तृतीय पक्ष है तिस तृतीय पक्षको जो कदापि वादी कहै तो उभयपक्ष गत उक्त प्रकार के दोषों के सद्भाव से सो भी अयुक्त है॥ किंच हे सौम्य जो कदापि अन्योन्याभावको संसार का कारण मानैं तो एक एक पदार्थ में समस्त पदार्थकी उत्पत्ति होनी चाहिये, क्योंकि भेद को ही अन्योन्याभाव कहते हैं। हे प्रियदर्शन एक घट में अपने से भिन्न समस्त पदार्थों का भेद होने से घट से समस्त पदार्थों की उत्पत्ति होनी चाहिये, अरु जो तथास्तु कहै तो समस्त लौकिक तथा वैदिक व्यवहार का अभाव होवेगा, क्योंकि अग्नि शीतकानिवारकहै जल शीतका निवारक नहीं,तैसेही जलतापका निवारक है अग्नितापका निवारक नहीं। एतदर्थ शीतके नाशार्थ पुरुषकी अग्निके ग्रहण में प्रवृत्ति होवे है, जल के ग्रहणमें प्रवृत्ति नहीं, अरु तापके वा दाहके नाश निमित्त पुरुषकी जलके ग्रहण में प्रवृत्ति होवे, अग्निके ग्रहणमें प्रवृत्ति होवे नहीं। यह लौकिक व्यवहार है, तिसका एक अग्निमें वा जलमें अपने से भिन्न

समस्त प्रतियोगिक अरु समस्त कार्य के जनक अन्योन्याभाव के सद्भाव से, अभाव होवेगा । हेसौम्य तैसेही स्वर्गसाधक यज्ञादि धर्म्म हिंसादि पाप नहीं, अरु नरक साधक हिंसादि पाप है यज्ञादिक धर्म्म नहीं, इस कारण से स्वर्गार्थी पुरुष यज्ञादिकधर्म करेहै हिंसादिक पापकरे नहीं, अरु अधर्म्मी पुरुष नरक का साधन हिंसादि पापकरे है यज्ञादिक धर्म्म करे नहीं, यह वैदिक व्यवहार है, तिसका भी, एक धर्म्म में वा पापमें अपनेसे भिन्न समस्त प्रतियोगिक अरु समस्त कार्य्यका जनक अन्योन्याभाव के सद्भाव से, अभाव होवेगा । हे सौम्य इसरीति से लौकिक अरु वैदिक समस्त व्यवहार का बिरोध एक पदार्थ में समस्त पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु जो अन्योन्याभाव कारणीक संसार वाद सो असंगत है ॥ अरु प्रागभावादि पक्षमें कहे जे शेषदोष सो इसपक्षमें भी अनुगत है अतएव यहां लिखे नहीं ॥ ४ ॥ हे प्रियदर्शन उक्त रीति से अभाव कारणीक संसारपक्ष के मानने वाले (अर्थात् आगे एक असत् था तिस असत्से यह सत्जगत् होता हुआ ऐसे माननेवाले) जे वैनाशिकादिक अभाव वादी तिनका मत चारों प्रकारके अभाववाद सहित खंडन हुआ ॥ हे सौम्य अब भाव से जगत्की उत्पत्ति माननेवाले जे भाववादी तिन भाववादियों ने परस्पर में खंडन किया है, तिसको भी सावधान होय संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥ इति अभावकारणीक संसारवाद खंडनम् ॥

अथ भाववाद कारणीक संसारपक्ष खंडनम् ॥

हेसौम्य, जैसे अभाव कारणीक संसारवाद पक्ष, असंगत, असंभव, अप्रमाणहै, तैसेही भाववादकारणीक संसारपक्ष भी संभवे नहीं, क्योंकि इसभाववादमें नानामतहै । तहां कोई तो कालको संसारका कारणमानेहै, कोई स्वभावको संसारका कारणमाने है कोई नियतिको संसारका कारणमाने है, कोई इच्छाको संसारका कारण मानेहै, कोई पंचभूतों को संसारका कारण माने है, कोई

अज्ञानको संसारका कारण माने है, कोई ब्रह्मको संसारकाकारण मानेहै॥ इसप्रकार भावकारणीक संसारपक्षमें अनेकवादहैं, तिनमें प्रथम कालबादीका यह कथन है कि प्रथम स्त्रीके गर्भ स्थान में शुक्र शोणितका संयोग होताहै, तिसके अनन्तर कलिलादिक्रमसे गर्भ पुष्ट होताहै, तिसके अनन्तर पुत्रादि उत्पन्न होते हैं, तिसके अनन्तर (पूर्वकृत) धर्म अधर्म के निमित्तसे होनेवाले सुख दुःख भोग पूर्वक बाल तरुण यौवन, आदि अवस्था कालके आधीन होती है। और विशेष क्या कहिये देखो समस्त संसारकी उत्पत्ति तथा स्थिति तथा विनाश, यह सर्व भूत, बर्त्तमान, अरु भविष्यत, कालमेंही होवे है (अर्थात् कालसे बाह्य कुछभी होतानहीं, अतएव काल के आधीन संसारहै॥ १॥

हे सौम्य, इस कालवादीके मतमें स्वभाववादी दूषण कहे हैं, सो कालवादी से यह कहे है कि हे कालबादी तेराकाल 'स्वभाव निर्पेक्षहै वा स्वभाव सापेक्ष है, तहां जो प्रथम पक्ष कहै तो अनियत स्वभाव कालजन्य संसारको भी अनियत स्वभाव होनेसे वीर्यविनागर्भ, चक्षुविना रूप दर्शन, तथा वाणीविना भाषण, इत्यादि हुआ चाहिये, परन्तु बीर्यादिक बिना गर्भादिक होते नहीं। अरु जो द्वितीय पक्षकहै तो दोष नहीं क्योंकि वीर्यका गर्भजनक, चक्षुका रूप दर्शन, बाणीका शब्दालाप, स्वभाव हैं। एतदर्थ अनियत स्वभाव संसार होवे नहीं॥ इसरीति से कालके जनक स्वभावको संसारका कारण होनेसे कालकारणीक संसारपक्ष असंगत है॥ इसप्रकार स्वभावबादी कालवादीके मतका खंडन करे है॥ ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार के स्वभाववादी के मतविषे नियतीवादी दोषकहेहै, सो इसप्रकार कहेहै कि हे स्वभाववादी तेरास्वभाव नियती निर्पेक्षहै, वा नियती सापेक्षहै, तहां जो तू प्रथमपक्षकहै तो स्वभावकोअदृष्ट निर्पेक्षहोनेसे पुण्यकरताकोदुःख अरु पापकारीको सुख हुआ चाहिये, सो होवे नहीं, किन्तु, पुण्यकारी पुरुष

वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" यह श्रुतिवाक्य प्रमाणहै। तिस वाक्यसे विरोधहोवेगा ताते सो बनेनहीं॥ अर्थात् उक्त श्रुति का अर्थ इसप्रकारहै "एतस्मात्" कहिये ("ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" यहश्रुति "वा" सूत्र, करके प्रतिपाद्य ब्रह्मात्मा अरु पुनः "एतस्मात् आत्मनः" कहिये "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस मन्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्मात्मा, से "आकाशः संभूतः" आकाश उपजताहै। यह श्रुत्यर्थ है॥ हे वादी जो तू द्वितीय पक्ष कहै कि पञ्चभूत कार्य हैं, तो तिस पक्षमेंभी कार्य रूप पञ्चभूतों में समस्त वस्तुकी जनकता का अभाव होने से, अरु भूतोंका जनक अज्ञान को होनेसे पंचभूत का कारणीक संसार पक्ष भी असंगत है॥ ६॥

हे सौम्य उक्त प्रकार अज्ञान वादीने पंचभूत वादी का मत खंडन किया, तब ब्रह्मवादी उसको यह कहता हुआ कि उक्त श्रुतितो उक्त अर्थ प्रमाण ब्रह्म आत्मा को पंचभूतों का कारण कहे है अज्ञान में पंचभूतन की कारणता कहे नहीं, ताते अज्ञान कारणीक संसार पक्ष संभवे नहीं॥ हे सौम्य यद्यपि वेदान्त शास्त्रमें अज्ञान को जगत् का कारण मान्या हैं सो अज्ञात जिज्ञासु की दृष्टि से मान्या है वास्तव से नहीं। इस प्रकार ब्रह्म कारणीक संसार वादी अज्ञान वादी का खंडन करे है॥ ७॥

हे सौम्य इन कालादिक भाव वादियों के पक्षमें ब्रह्म कारणीक संसार वाद सप्तम पक्ष है सो सर्व श्रुतियों के प्रमाण से है। परन्तु उन सर्व श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टि के कहने का नहीं, किन्तु सर्व श्रुतियोंका अद्वैत पर तात्पर्य है, जो कदापि श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके कहने पर होता तो श्रुतियां भिन्न भिन्न रीति से न कहतीं, क्योंकि जो श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टि क्रममें होता तो सर्व की एक वाक्यता होती सो नहीं। देखो वृहदारण्यक उपनिषद विषे "अव्याकृत वा इदमग्र आसीत्" इस श्रुति करके अव्याकृत पद वाच्य ब्रह्म से, अरु छान्दोग्य उपनिषद् विषे "सदेव सौम्येदमग्रआसीत्" इस श्रुति करके सत् पद वाच्य

ब्रह्म से। अरु तैतरेय उपनिषद् विषे "एतस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" इस श्रुति करके आत्म पद वाची ब्रह्म से। अरु एतरेय उपनिषद् विषे "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" इस श्रुति करके आत्म पद वाची ब्रह्म से अरु मुंडक उपनिषद् विषे "तथा ऽक्षरात् संभवतीह विश्वं" इसश्रुतिकरके अक्षरपदवाची ब्रह्मसे अरु श्वेताश्वतर उपनिषद्विषे इसश्रुतिकरके मायि पदवाच्य से, इत्यादि प्रकार अनेक उपनिषदों की श्रुतियोंने अनेकनामोंसे नामी एक ब्रह्मसेही जगदुत्पत्ति भिन्नभिन्न रीतिसे कहीहै। सोऽउन सर्व श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके कथनपर नहीं किन्तु नैयायिक आदि भेद वादियों करके परिकल्पित परमाणु प्रधानादिक कारण वादके निराकरण पूर्वक घटादि कार्य अरु मृत्तिकादि कारण के दृष्टान्त से ब्रह्म जगत् की अभेदताके लखावने में सर्व श्रुतियों का तात्पर्यहै, सृष्टिके कहने में तात्पर्य नहीं। अरु जो कदापि आग्रहसे उक्त श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके बोधन मेंही मानोगे तो "नेहनानास्ति किञ्चन" इत्यादि अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों से बिरोध आवेगा। अरु "सर्व्वंखल्विदंब्रह्म" इत्यादि एक ब्रह्म बोधक श्रुतियों से भी बिरोध आवेगा एतदर्थ सर्व सृष्टि वाद की श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टि के कथन में न होके एक अद्वैत ब्रह्म आदिक पदवाच्य सत्तासमान के बोधन परत्वहै। अरु यही पक्ष निर्दोष समीचीन है॥ अरु अन्य श्रुतियों ने ब्रह्म को जगत् कारणत्वका निषेधभी कियाहै, ताते ब्रह्म जगत् का उपादान कारण नहीं अरु निमित्त कारण भी नहीं। अरु जो मान्याहै तो अधिष्ठान मान्या है सो भी सृष्टिभासके उत्तर जिज्ञासु की भ्रान्ति निवर्त्तकरने पूर्वक एक अद्वैत सत्ता उपदेशकरने को अध्यारोप मात्रकहाहै। सृष्टि भासकेपूर्व कल्पक कल्पना कल्पित के अभाव से एक अद्वैत निराकार निर्विशेष परिपूर्ण शुद्ध बुद्ध सत्ता समान बिषे जगत् अध्यारोपमात्रभी नहीं, ताते भाव बादान्तर ब्रह्म कारणीक संसार पक्षभी समीचीन नहीं॥ हे सौम्य

उक्त प्रकार सिद्धान्त विचार से संसार का कारण न प्रागभावहै, न प्रध्वंसाभाव है, न अत्यन्ताभाव है न अन्योन्याभाव है। अर्थात् उन चारों पक्षों सहित अभाव कारणीक भी संसार नहीं। अरु भाववाद विषे जगत् का कारण न कालहै, न स्वभावहै, न नियतिहै, न इच्छाहै, न पंचभूत हैं, न अज्ञानहै न ब्रह्म है। ताते कारण विना का समस्तद्वैत प्रपंच वंध्याके सुतसमान केवल वाचारंभण मात्र होनेसे अतिही तुच्छहै ॥ हे सौम्य यह जो भाव वाद विषे काल वादादिक कहे हैं सो यहां उन की रीति देखावने मात्र संक्षेप से कहा है ॥

प्रकारान्तर अर्थ

हे सौम्य उक्तप्रकार जबउद्दालकने अपनेपुत्रश्वेतकेतुप्रति इस समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत्का कारण एक अद्वैतसत्यरूप आत्मा कहा, तब तिसको श्रवणकर वो श्वेतकेतु कहताहुआ ॥ हे भगवन् सो कोई एक वैनाशिक असत्वादी ऐसा कहते हैं कि यह सर्व अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत्ही था तिस असत् से सत् उत्पन्न होताहुआ ॥ ताते तिस सत्रूप आत्मा विषे कार्य्यपना है, इसप्रकार जब श्वेतकेतु ने अपने पिता उद्दालकसे असत् वादी का पक्ष कहा तब वो उद्दालक कहताहुआ कि हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ऐसा कहां प्रमाणहै अरु कौन दृष्टान्तहै जो इसप्रकार असत्से सत्की उत्पत्तिहोती है, हे सौम्य असत्से सत्की उत्पत्ति कैसे होवेगी किन्तु कदापि होवे नहीं, जैसे अभाव असत् रूप शशशृंग तिससे भावरूप सत् धनुष कैसे उत्पन्नहोवेगा किन्तु कदापि होवे नहीं ॥ हे सौम्य इसलोकविषे सत्यरूप करके प्रसिद्ध जे घट पटादि कार्य्य सो मृत्तिका तन्तु आदिक सत्यरूप कारणों सेही उत्पन्न होताहै, असत्से तो सत्की उत्पत्ति कहीं भी देखने विषे आई नहीं, तिसविषे दृष्टान्त भी कोई नहीं। अरु यह आत्मदेव सर्व लोकोंके अनुभव करके तथा श्रुति स्मृति आदिक शास्त्रकरके सत्यरूप करके ही प्रतीतहोवेहै अतएव तिस सत्यरूप

आत्माकी असत्रूप कारणसे उत्पत्तिहोवे नहीं। अरु जो कदापि सत्रूप आत्माकी असत्यरूप कारण से उत्पत्तिमान तो सो आत्माभी करणवत् असत्ही होवेगा, सो आत्मा को असत् कहना श्रुति अरु विद्वानों के अनुभवसे अत्यन्तही विरुद्धहै ॥ अथवा ॥ "इस आत्माका कारण असत्रूपहै" इस वाक्य विषे स्थित जो असत् शब्दहै तिस शब्दका अर्थ सत् वस्तुका अभाव प्रतीत करावताहै, अरु इसलोकविषे जो जो अभावहोताहै सो सो अपने ज्ञानविषे प्रतियोगी की अपेक्षा अवश्य करताहै क्योंकि प्रतियोगी ज्ञानसे विना अभावका ज्ञानहोवे नहीं। एतदर्थ तिस सत्का अभाव रूप असत्भी अपनी सिद्धिके अर्थ सत्रूप प्रतियोगी की अपेक्षा अवश्यही करेगा, एतदर्थ तिस सत् वस्तु विषेही आत्मा की कारणता संभवहोने योग्यहै, तिस सत् वस्तुके अभावविषे आत्माकी कारणता माननी असंभव अरु निष्फलहै ॥ अथवा ॥ इसलोक विषे कोई भी अभाव किसी भी कार्य्य के प्रति कारण होनेको शक्य नहीं। ताते सत् आत्माका कारण असत् है यह कहना किसीप्रकार भी योग्य नहीं, क्योंकि इस विषयमें कोई भी श्रुतिका प्रमाण नहीं अरु दृष्टांतभी नहीं ॥ हे सौम्य हेप्रियदर्शन जो कोई वादी ऐसा कहै कि आत्मा का कारण असत् न होके तिस आत्माका कारण सत्यहै। तो तिस वादी से पृष्टव्य है कि सो जो आत्माका सत्यरूप कारण है सो परिच्छिन्न है, वा अपरिच्छिन्नहै, तहां जो कदापि वादी प्रथमपक्ष को अंगीकार करके कहै कि सो आत्माका कारण परिच्छिन्न है सो सम्भवे नहीं, क्योंकि इसलोक बिषे जो जो पदार्थ परिच्छिन्न होता है सो सो पदार्थ जड़ही होताहै, अरु जो जो पदार्थ जड़ होताहै सो सो पदार्थ कार्य्य रूपही होता है, अरु जो पदार्थ कार्य्य रूप होता है सो पदार्थ अपनी उत्पत्ति विषे अन्य कारण की अपेक्षा वाला ही होता है। ताते सो आत्मा का सत्यरूप कारण भी परिच्छिन्न होने से जड़ रूप होवेगा, जैसे घटादिक पदार्थ परिच्छिन्न होने

से जड़रूप हैं, अरु जड़ होने से कार्य रूप हैं, अरु कार्य होने से कारण की अपेक्षा वाले हैं। तैसेही आत्मा का सत्‌रूप कारण भी परिच्छिन्न होने से जड़रूप होगा अरु जड़रूप होने से कार्य्य रूप भी होवेगा, अरु जब कार्य्य रूप होवेगा तो अपनी उत्पत्ति के अर्थ अन्यकिसी कारण की अवश्य अपेक्षा वाला होवेगा॥ अरु सो कारण भी अपनी उत्पत्ति विषे अन्य किसी कारण की अपेक्षा वाला होवेगा, इस प्रकार कारणों की परम्परा मानने विषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवेगी, तब तिस अनवस्था दोषके निवारणार्थ सो आत्मा का सत्यरूप कारण चैतन्य रूप तथा अ-परिच्छिन्न है यह द्वितीय पक्षही वादीने अंगीकार करना होगा। अरु तिस द्वितीय पक्ष विषे भी पृष्टव्य है कि सो आत्मा का चै-तन्य सत्तारूप अपरिच्छिन्न कारण आत्मा से भिन्न है वा अभिन्न है। तहां जो वादी यदि प्रथम पक्ष कहै तो सो बने नहीं, क्योंकि इसलोक विषे जो जो पदार्थ आत्मा से भिन्न होता है सो सो सर्व अनात्मा होने से जड़ही होता है, अरु जो जो पदार्थ जड़ होता है सो सो अनात्मा जड़होने से कार्य रूप होता है, अरु जो पदार्थ कार्य्य रूप होता है सो किसी कारण करके जन्य हो-ता है। अतएव सो आत्मा का कारण चैतन्य सत्ता आत्मा से भिन्न होने करके पूर्वोक्त परम्परा से कार्य रूपभी अवश्यहोवेगा अरु कार्य्य रूप होनेसे किसी कारण करके जन्य भी अवश्य होवेगा, अरु वो जिसकारण करके जन्य होगा सो कारण भी किसी अन्य कारण करके जन्यहोगा। क्योंकि जो पदार्थ चैतन्य आत्मासे भिन्नहोगा सो 'अनात्मता, जड़ता, साकारता, परि-च्छिन्नता, इत्यादि कार्य्यों के धर्म्म लक्षण करके युक्तहोने से सो किसी कारण का कार्य्य अवश्यहोगा, कार्य्य के लक्षण युक्त होनेसे। अरु जो कदापि वो नैयायिकों के मत प्रमाण परमाणु-ओंवत् अन्यवस्तुका कारणभी होवेगा 'जैसे परमाणु पृथिव्यादि-कों के, तथापि वो कारण चैतन्य आत्मा से पृथक् हुआ अनात्म

तादि उक्त लक्षणों करके जो कार्य्य के हैं,युक्त होनेसे अपनीसि-द्धिके अर्थ चैतन्यरूप कारणकी अपेक्षा अवश्यही करेगा। ताते चैतन्य आत्मासे भिन्न जो आत्माका कारण मान्याजायगा सो अनात्मा जड़ होनेसे उक्त कार्य्य के लक्षण करके युक्तहुआ किसी कारण करके जन्यही होगा। इसप्रकार कारणों की परम्परामा-नने बिषे पुनः पूर्ववत् अनवस्था दोष आवेगा, तिस अनवस्था दोषकी निवृत्ति के अर्थ तिस आत्माके सत्तारूप कारणको वादीने आत्मचैतन्य रूप करकेही मानना होगा॥ 'अर्थात् आत्मासे पृ-थक् आत्माका कारण जिस सत्ताको बादीने मान्या है सो सत्ता आत्मासे भिन्न अनात्मा होनेसे 'क्योंकि जो चैतन्य आत्मा से भिन्न होगा सो जड़ अनात्मा अवश्यही होगा, उक्त कार्य्यके ल-क्षण करके युक्तहुआ वो अपनी सिद्धिके अर्थ अपनेसे इतर किसी चैतन्य आत्मरूप कारण की अपेक्षा वाला अवश्यही होवेगा॥ अरु जो अनात्मासे इतर चैतन्य आत्मा होगा सो अनात्मा के जड़त्व, साकारत्व, परिच्छिन्नत्वादि धर्मोंसे बिपरीत 'चैतनत्व, निराकारत्व, अपरिच्छिन्नत्व आदि आत्माके लक्षण करके युक्त ही होगा, अरु जो आत्मा सत्यत्व, चैतन्यत्व, आनन्दत्व, अद्वि-तीयत्व, आदि स्वरूप लक्षणों करके युक्त होगा सो कारण से रहितही होवेगा, क्योंकि जो कारण की अपेक्षावाला होगा सो सत्य कदापि न होगा। ताते हे सौम्य वादीने जो आत्माकाका-रण कोई सत्तामानी है सो तिस सत्ताको आत्मा से भिन्न अनात्मा होने से प्राप्त हुई जो जड़तादि धर्मवान् कार्य्यता, अरु अनवस्थादि दोष तिसकी निवृत्तिके अर्थ उस सत्ताको चैतन्य आत्मरूपही माननाहोगा, आनन्द रूपमानना होगा, सर्व भेद भावसे रहित अपरिच्छिन्नही मानना होगा, अरु कारण से रहित अकारण माननाहोगा॥ हे सौम्य "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुति प्रमाण अरु उक्त युक्तियोंके प्रमाण से जबही उस वादी ने आत्मरूप सत्ताको आत्माका कारण मान्या तबही तिस

आत्मसत्ता रूप कारण से भिन्न किसी भी कार्य्य विषे तो आत्मरूपता संभवे नहीं । एतदर्थ वादीने आत्माका कारण जिस सत्ता रूपको अंगीकार किया है, तिस सत्तारूप कारणकोही हम वेद सिद्धान्त के मानने वाले वेदान्ती आत्मरूप करकेही मानते हैं । एतदर्थ यहां यह अर्थ सिद्धहुआ जो यह आत्मदेव सत् वा असत्, भाव वा अभाव, किसी भी कारण करके उत्पन्न होता नहीं, एतदर्थ ही कार्य्य भावको कदापि पावता नहीं, अरु जब ऐसा है तब ही वेद की श्रुतियां "अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो" इत्यादि वाक्यों से, अज अविनाशी नित्य शाश्वत एकरस, अग्निआदि सर्व करणों का अधिष्ठानरूप महा कारण सर्वका प्रकाशक ज्ञान स्वरूप सर्व भेदसे रहित एक अद्वितीय कहतीहै । अरु इस आत्मदेव को इस छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति "सदेव" सत्ही, कहके प्रति पादन करे है । अतएवं हे सौम्य हे प्रियदर्शन जो मतवादी कहते हैं कि असत् से सत् उत्पन्नहोता है तिनको उक्त प्रकार असत् वादीही जानने वो भाव अभाववादी वेद से वाह्य स्वबुद्धि की कल्पना से कहते हैं, ताते उनसर्व असत् वादियों के वाक्य तुमसारिखे वेद मतावलम्बियों को मानने योग्यनहीं ॥ इतिसिद्धम् ॥

इति आत्मकार्यता निराकरणम् ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार कहने करके वेदसे वाह्य बोलने वाले जे वैशेषिकादि परमाणुवादीअरु वैनाशिकादि अभाववादी अरुकालादिकोंको कारण माननेवाले भाववादी, इत्यादि वादियों के मतका निराकरण हुआ जानना, अरु उनके वाक्योंको न मानना ॥ हे सौम्य वैनाशिक जे अभाव कारणीक संसार मानते हैं तिनसे पूछ्यहै कि तुम जो कहते हो कि असत्से सत्होताहै तिस तुम्हारे कहने विषे ऐसा कहां प्रमाणहै अरु कौन दृष्टान्तहै कि इस प्रमाण से अरु इसप्रकार असत्से सत् उत्पन्न होताहै । अर्थात् उन असत् वादियोंके वाक्यविषे कोई भी श्रुतिका प्रमाण वा दृष्टान्त नहीं ॥

श्वेतकेतुउवाच॥ हे भगवन् वो वादी अपने मतको प्रमाण होने के विषयमें वीजांकुर का दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे वीजके अभाव हुए अंकुर उपजताहै तैसेही अभाव कारणसे भावरूप यह जगत् उपजताहै॥उद्दालकउवाच॥ हे सौम्य यह उनका दृष्टान्त कथन बने नहीं क्योंकि अंकुरकी उत्पत्तिमें वीजका कोई भी अवयव वा अंशका अभाव होता नहीं किन्तु वीजके सर्व अवयवों के होतेही अंकुर उपजताहै, यह सर्वको प्रत्यक्षहै, अतएव उक्त दृष्टान्त भी अभाव वादी के मतमें अयुक्तही है। अरु इन अभाव वादी अरु भाव बादियोंके वाक्योंका निराकरण पूर्व सम्यक् प्रकार कहचुके हैं अतएव यहांविशेष कहा नहीं। अरु वीजके अभावहुए अंकुर उपजताहै सो उक्तप्रकार युक्त नहीं, अरु पूर्व जहां प्रध्वंसाभाव कारणीक संसारपक्षका खंडनहुआ है तिसके अन्तरगत इसका भी खंडनहुआ जानलेना॥ हे शिष्य उक्तप्रकार असत् बादी आदिक वेद वाह्य मतवादियों के मतका सम्यक् प्रकार निराकरण कर पुनः वो उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे "सत्वेव सौम्येद मग्रआसीत् एकमेवाद्वितीयम्" हे सौम्य यह आगे एक अद्वितीय सत्‌ही था, यह कहके वेदपक्षही सिद्ध करताहुआ॥

शंका॥ श्वेतकेतुउवाच॥ हे भगवन् बादी कहता है कि जैसे असत्‌बादीके मतविषे कोई दृष्टान्त नहीं, तैसे सत्‌बादी के पक्ष विषे भी सत्‌से सत्‌की उत्पत्ति होती है ऐसा कोई भी दृष्टान्तहै नहीं, क्योंकि घटसे घटान्तरकी उत्पत्ति देखते नहीं॥समाधान॥ हे सौम्य यह तू सत्यकहताहैसत्‌से सदन्तर 'अर्थात् एकसत्‌से दूसरा सत्, उत्पन्नहोता नहीं॥प्रश्न॥ तब क्याहै॥उत्तर॥ हेसौम्यसत्‌ही संस्थानान्तर से सुशोभित है। जैसे सर्प कुंडली के आकार होताहै व वक्राकार होता है वा सरलाकार होताहै, तहां जिस आकार से होता है तिस आकार से एक सर्पही होताहै, अर्थात् सर्प का जो कुण्डली के आकार से वक्राकार होना है सो कुछ उस वक्राकार से सर्प का उपजना नहीं, किन्तु जिस आकारसे

है एक सर्पही है । अथवा जैसे , चूर्ण, पिंड, कपाल, घट, शराव आदिक आकार भेद से एक मृत्तिकाही है ॥ शंका ॥ हे भगवन् यदि ऐसाही है कि एक सत्ही सर्व प्रकारसे अवस्थित है, तो ऐसा क्यों कहाहै कि यह अपनी उत्पत्ति से पूर्व सत्था उत्तर॥ हे सौम्य तुमने सुना नहीं यहजो कहाहै कि यह अपनी उत्पत्ति से पूर्व सत्ही था, सो इस इदंशब्द के वाच्य कार्य्यको (जो असत्वत् प्रतीत होता है) यह सत्ही है इस निश्चयके अर्थ कहाहै ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् तब यह कारणही है इदंशब्द का वाच कार्य्य नहीं, कार्य्य जो उत्पत्ति से पूर्व न था अब उत्पन्न हुआ कार्य्य असत् है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जो तुम कहतेहो सो नहीं यह जो इदंप्रत्यय का विषय नाम रूपात्मक जगत् है सो एक सत्ही इस प्रकारसे सुशोभित है, जैसे एक मृत्तिकाही इदं शब्दका वाच्य पिंड घट शरावादि इदंबुद्धिका विषय होके सुशोभितहै तैसे ॥

शंका ॥ हे भगवन् यद्यपि जैसे मृद्वस्तुही पिण्ड घटादि आकार है, तथापि सद्बुद्धि से विलक्षण बुद्धिका विषय होने से कार्य्य को कारण से भेदके साधक होनेमें सद्बुद्धिसे विलक्षण जो कार्यको विषय करनेवाली बुद्धि सोई दृष्टान्त है । तैसेही सद्बुद्धिसे विलक्षण जे इदंबुद्धि तिस बुद्धिका विषय होनेसे इस इदं बुद्धिके विषय कार्य्य का ,सत्से अन्यवस्त्वन्तरहै । इसप्रकार कार्य्य जातका सत्से भेद सिद्ध होताहै, जैसे अश्वसे गौ का ॥ समाधान ॥ हे सौम्य जैसा तू कहताहै तैसा नहीं,पिंड घट शराव आदिकों का अन्योन्य व्यभिचार है । अर्थात् जो घट पिंड शब्द का विषय है सो घट शब्दका विषय नहीं अरु जो शब्दका विषय है सो शराव शब्दका विषय नहीं अरु जो शराव शब्दका विषय है सो घट शब्दका विषय नहीं अरु जो घट शब्दका विषय है सो पिण्ड शब्द का विषय नहीं । इस प्रकार पिण्ड घटादि कार्य्यों विषे परस्पर में व्यभिचार है, तथापि उन घट शरावादि

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज एक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत ॥ तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

सर्व में मृत्तिका का अव्यभिचार होने से कारण रूप एक मृत्तिका विषे उनका व्यभिचार नहीं क्योंकि उन सर्व का कारण अव्यभिचारी मृत्तिका एक है ताते। हे सौम्य यद्यपि, पिण्ड, घट, आदि नाम रूपका व्यभिचार है कि यह पिण्ड है यह घट है, परन्तु उन पिण्ड घटादिकों से मृत्तिका का व्यभिचार नहीं, ताते एक अव्यभिचारी मृत्तिका ही घट शरावादि व्यभिचारी रूप से सुशोभित है। अरु एक कारण रूप सत्य मृत्तिका विषे पिण्ड घट शराव आदि व्यभिचार भासे है सो उन सर्व की मृत्तिका से पृथक् सत्ताके अभाव से वो केवल वाचारंभण मात्रही है। ताते हे प्रियदर्शन घट शरावादि वा कटक कुंडलादि वा खड्गादि, सर्व मृत्तिका वा सुवर्ण वा लोहमात्रही है। तैसेही यह सर्व नाम रूप क्रियात्मक जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व केवल सत् संस्थान मात्रही है। सोई " सदेव इदमग्र आसीत् " यह श्रुतिका कथन है। अरु इस कार्य्य रूप विकार को वाचारंभणमात्र होने से इस वर्त्तमान कालमें भी सत्ही है॥:—हे प्रियदर्शन यहां पर्यन्त चतुर्थ प्रपाठक की " सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म " इस श्रुतिका संक्षेप मात्र निर्णय हुआ जानना ॥

हे सौम्य अब आगे सृष्टि क्रम का अध्यारोप करके सत् के अन्वय द्वारा इस कार्य कारणात्मक समस्त प्रपंचको ब्रह्म रूपत्व लखावती श्रुति कहती है—:॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो देखता (वा इच्छता) हुआ मैं बहुत रूपसे उत्पन्न होवों इसप्रकार इच्छाकरके प्रथम तेजको सृजताहुआ, पुनः सो तेज

देखता वा इच्छताहुआ जो मैं बहुतरूप होवों तिस इच्छासे जलको सृजताहुआ, तस्मात् यहां क्या शोचताहै जब पुरुष को उष्ण (गरमी) अधिक होताहै तब तिस तेजसे स्वेदरूप जल प्रकट होताहै, तैसे तेजसे जल होताहै ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका

हे सौम्य हे प्रिय दर्शन, " वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्ति केत्येव सत्यम् " घट शराव आदिक वाणी से कहा विकार (कार्य्य) केवल कहने मात्रही है वास्तव से तो एक मृत्तिकाही सत्य है। इस दृष्टान्त प्रमाण " सदेव सत्यम् " यह नाम रूप क्रियात्मक जगत्रूप विकार (कार्य) उस सत् कारण अधिष्ठान विषे केवल वाचारंभण मात्रही है, वास्तव से तो एक अद्वितीय सत्ही है ॥ हे सौम्य सो सत् देखता वा इच्छता हुआ अर्थात् देखता वा इच्छा करता हुआ। हे सौम्य इस ईक्षणकी श्रुति करके सांख्यवादियों करके परिकल्पित जे जगत् का कारण प्रधान तिस प्रधानवादका निराकरण हुआ जानना क्योंकि सांख्यवादियोंने जगत् के कारण प्रधानको अचेतन (जड़) अंगीकार किया है ताते' अर्थात् सत् चेतनसे इतर प्रधानको जड़ होनेसे तिस विषे „ईक्षण„ देखना वा इच्छा करना बने नहीं, अरु श्रुतिने "तदैक्षत" इसप्रकार ईक्षण पूर्वक सृष्टि कहीहै अतएव सांख्यमत श्रुति बाह्य होनेसे समीचीन नहीं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् वो सत् चेतन क्या इच्छा करता हुआ ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य वो सत्चेतन परमात्मा यह इच्छा करता हुआ कि मैं प्रकर्षकरके बहुत रूप होवों जैसे मृत्तिका घट शरावादि आकार से वा जैसे रज्जु सर्पके आकार से वा जैसे शुक्ति रजतके आकार से, प्रकट होते हैं तैसे प्रकट होवों। अर्थात् जैसे रज्जु आदिकों विषे सर्पादिक केवल बुद्धि करके कल्पित हैं वास्तव से नहीं, तैसेही एक अद्वैत परिपूर्ण सत् परमात्मा विषे यह नामरूप क्रियात्मक सर्व जगत् बुद्धि करके परिकल्पित है वास्तवसे नहीं॥

शंका ॥ हे भगवन् जो ऐसाही है तो जैसे सर्पादिकों के आकार से रज्जुआदिकोंका ग्रहण असत् है तैसेही सत् चैतन्यदेव का नामरूपादि आकार से ग्रहण असत् हुआ अरु आपका कहना यह है कि यह नामरूप क्रियात्मक समस्त जगत् सर्वकाल सत्ही है, अब यहां क्या जानना चाहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य मेरा कथन यथार्थही है। हे प्रियदर्शन अविद्या करके द्वैत भेद से अन्यथा ग्रहणहुए भी सत्ही है असत् तो क्वचित् कदाचित् भी है नहीं, जैसे भ्रान्तिकरके रज्जुको सर्परूप से ग्रहण कियेसन्ते भी सर्प सत्ताके अभाव से केवल रज्जुकाही ग्रहण है इतर का ग्रहण तौ क्वचित् कदाचित् भी होवे नहीं द्वैत के अभाव से ॥

हे सौम्य जैसे नैयायिक सत् से इतर वस्त्वन्तर की कल्पना करके पुनः तिसहीको उत्पत्ति से पूर्व पुनःप्रध्वंस से ऊर्द्ध्व (उपरान्त) असत् कहते हैं, तैसे हम वेदवादियोंकर करके कदाचित् क्वचित्भी सत् से इतर अभिधान अभिधेय वा वस्तु करके परिकल्पना करते नहीं, सत्ही तो सर्व अभिधान को कहते हैं। अरु जैसे लोकविषे जो अन्यबुद्धि करके, जैसे कि रज्जुही सर्प बुद्धि करके कि यह सर्प है ऐसा कहते हैं, अथवा जैसे, पिण्ड, घट, शराव, आदि बुद्धिकरके एक मृत्तिका कोही कहते हैं वा ग्रहण करते हैं कि यह मृत्पिण्डहै यह घटहै यह शरावाहै। अर्थात् लोक विषे रज्जु मृत्तिका के अविवेक से रज्जु मृत्तिकाकोही सर्प घटादि बुद्धि से ग्रहण करके कहते हैं कि यह सर्प है यह घटहै यह शराव है, सो केवल रज्जु मृत्तिकाकोही कहते हैं। अरु जैसे रज्जु मृत्तिकाकेविवेक दर्शीकोतो सर्पादि अभिधान(कथन) बुद्धिनिवृत्तहोती है पुनः मृत् विवेक बुद्धिवालेको घटादि शब्दके विषय करने वाली बुद्धि निवृत्त होती है ॥ :—अर्थात् जिन पुरुषोंको रज्जु मृत्तिका का यथार्थ विवेक ज्ञानहोताहै तिनकी घट सर्पादिक विषयक, जो केवल कहनेमात्रहीहैं, सत्बुद्धि निवृत्त होती है, अर्थात् उनाविवेकीपुरुषों की; उस अज्ञात बुद्धिकरके कल्पित जे घटादिक तिनकी पृथक्

सत्तात्मक वुद्धि सो तिन सर्प घटादिकोंके अधिष्ठान रज्जु मृत्तिका के यथार्थ विवेक ज्ञानसे, निवृत्तहोती है । तैसेही सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यके यथार्थ विवेक ज्ञानवान् पुरुष की सत्से इतर यह नाम रूप क्रियात्मक जगत् कुछ है यह अबिबेकात्मक बुद्धि नित्यहोती है "। यतोवाचो निवर्त्तन्तेऽप्राप्यमनसासह "। "। अनिरुक्तेऽनिलयन "। इत्यादि श्रुतियों करके —: ॥ हे सौम्य इसप्रकार इच्छा करके सो सत् परमात्मा प्रथम तेजको सृजताहुआ ॥:—। प्रश्न ॥ हे भगवन् इच्छाकरना तो अन्तःकरण वा मन आदिकों का धर्म्म है सो अन्तःकरणादिक शुद्ध सत् चैतन्य देवविषे है नहीं तब उस सत् चैतन्य देवने इच्छा कैसे किया सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य अब इसपर एक दृष्टान्त कहते हैं तिसको श्रवण करो हे सौम्य जैसे चिदाभास अंधकारको पायके सोवनेकी इच्छा करताहै तब इस जाग्रत्के प्रपंचको त्याग सोयाहुआ स्वप्नमें देहादिकसे लेके सर्व प्रपंचको रचलेताहै तिसविषे मन बुद्धि इन्द्रियादिकसर्व रचलेताहै सो किसी अन्य मनबुद्धि आदिकों करके नहीं रचता किंतु अपने चैतन्य स्वभाव करके रचताहै क्योंकि स्वप्न सृष्टिके रचने विषे चिदाभास स्वतन्त्रहै वहां किसी की भी सहायताके आश्रय रचता नहीं । हे सौम्य जैसे पृथिवी का स्वभाव कठोरहै, जलका स्वभाव द्रवताहै, अग्निका स्वभाव उष्णताहै वायुका स्वभाव स्पंदताहै, आकाशका स्वभाव अवकाशताहै । तैसेही सत् परमात्माका चैतन्य स्वभाव है । हे प्रियदर्शन जैसे पृथिवी कठोर स्वभाव होके सर्वको धारती है तैसेही सत् परमात्मा चैतन्य स्वभाव करके इच्छा करताहुआ । हे सौम्य जैसे पृथिवी को सृष्टिके धारणेविषे किसी की भी सहायता चाहिये नहीं, अरु जो उसको जडहोने से सहायता आपेक्षिकहै तो सो सर्व शक्तिमान् चैतन्यकी हीहै । परन्तु उस चैतन्य देवको इच्छा के करने विषे किसी की भी सहायता आपेक्षिक नहीं वो सर्व शक्तिमान् सदा स्वतन्त्रहै ॥ हे प्रियदर्शन तुमने कहा जो इच्छा

करना तो अन्तःकरण का धर्म है सो अस्तु परन्तु इच्छादिक करने में अन्तःकरण स्वतन्त्र नहीं क्योंकि अन्तःकरण अविद्याका कार्य जड़है, अरु जड़में ईक्षण बने नहीं। अरु इसही हेतुसे जड़ प्रधानमें ईक्षणके असंभवसे तिसविषे ईक्षणके माननेवाले सांख्यमतका वेदवादी (वेदान्ती) खंडनकरतेहैं। हे सौम्यजिससत् चेतनके आभासकी चेतनतारूप सहायता पाय के अन्तःकरण वा मन बुद्धि आदिक चेतनवत् हुए अपनेअपने व्यापारमें प्रवृत्त होते हैं, तिस स्वयं सत् चैतन्य देवको बुद्धि आदिक जड़ों की सहायता कैसे आपेक्षिक होवेगी किन्तु किसी प्रकार भी होवे नहीं। वो शुद्धसत् चैतन्यदेव अन्तःकरणादि सर्व उपाधि अरु तिनके धर्मरूप अंजन (श्यामता) से रहित निरंजनहै उसविषे अन्तःकरणादि कुछ भी नहीं वो सर्व से विलक्षण चैतन्य स्वभाव होनेसे बिनाही अन्तःकरणादि करणोंकी अपेक्षाके स्वतंत्र ईक्षण करता हुआ॥ प्रश्न॥ हे भगवन् जो कोई इच्छा करता है सो किसी न किसी कामना को धारकेही करताहै, ताते उस सत् चैतन्यदेव ने जो बहुत होनेकी इच्छा किया सो किस कामनाको लेके किया सो भी आप कृपा करके कहिये॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन यह जो श्रुति ने कहाहै कि "तदैक्षत" वो सत् देखता वा बिचारता वा इच्छता हुआ, सो इस कहने से मुमुक्षु को एक अद्वैत सत् आत्मदेव का सम्यक् अनुभव करावना है एतदर्थ सो अध्यारोपमात्रही कहाहै क्योंकि सर्व श्रुतियों का तात्पर्य एक अद्वैत परिपूर्ण सत् विज्ञानघन के प्रतिपादन परत्व है, अरु जो कदापि आग्रह से श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके प्रतिपादन परत्वही मानोगे तो "नेति नेति" इत्यादिक निषेधप्रतिपादक श्रुतियां निरर्थक होवेंगी, सो पूर्व सम्यक् प्रकार कहआये हैं। हे सौम्य वास्तव करके तो सत् चैतन्यदेव ने भी ईक्षण किया नहीं क्योंकि "आप्तकामस्यकुतोस्पृहा" वो पूर्णकाम है उसको किसी प्रकारकी कोई भी कामना नहीं कामना जो

होती है सो अपने से इतर अप्राप्यवस्तुकी होती है अरु आत्म-देवको अपनेसे इतर वस्तुका अभाव है अरु उसको सर्व अपना आप होने से अप्राप्य वस्तु कोई नहीं, अतएव उस एक अद्वैत परिपूर्ण सर्वात्मा सत् चैतन्यदेवको कामनाके अभावसे वास्तव करके ईक्षणादिकों का करना सम्भवे नहीं। अरु अध्यारोपमात्र निः प्रयोजन भी ईक्षण के कहने से श्रुतिने उसकी स्वतन्त्रता देखाई है, अरु अब निष्प्रयोजनइच्छाके ऊपर एक दृष्टान्त कहता हौं तिसकोभी श्रवणकरो । हे प्रियदर्शन कोई एक चक्रवर्ती राजा अपने स्वभाव करके मृगयाकी इच्छाकर वनमें प्रवेशकर नानाप्रकारकी मृगयाकर तिसके निमित्तसे अपनी स्वभाव भूत सामान्य बलवत्ता, साहसता, लाघवता, आदि शक्तियों को विशेष प्रकट कर तिनको आपही अवलोकन अनुभव करताहै । तिस मृगया की प्रवृत्ति में उस राजाको मांसादिकों की कामना नहीं क्योंकि मांसतो राजाके भृत्योंको भी प्राप्तहोता है, तब तिसकी कामना से उस राजाका मृगया में प्रवृत्त होना संभवे नहीं । हे सौम्य तैसेही शुद्ध चैतन्य परमात्मदेव ने भी अपनी स्वभाव भूत सामान्य सर्व शक्तिमत्ता को प्रकट देखने के अर्थ बहुत होने की इच्छाकर एक एक शक्तिको पृथक् २ प्रकट करने के ऊपर एक एक आकृति धार तिसद्वारा अपनी एक एक शक्तिको पृथक् २ प्रकटकर पुनः तिनविषे आपही अंतर्यामी रूपसे प्रवेशकर उन अपनी प्रत्येक शक्तियों को आपही अनुभव करताहै । एतदर्थ उस सत् परम देवको ईक्षण के करने विषे कामना कोई नहीं । हे सौम्य वो सत् चैतन्य देवस्वयं सदा स्वतन्त्रहै ताते उसका ईक्षण अहेतुकहै, अरु जिसका ईक्षण सहेतुक होताहै सो हेतुके परतन्त्र होताहै, जैसे सोपाधि चिदाभासका ईक्षण सहेतुकहोता है ताते सो परतन्त्र है तैसे शुद्ध सत् चैतन्य देव किसी हेतुके परतन्त्र नहीं वो सदा सर्वदा स्वतन्त्र है, एतदर्थ उसका ईक्षण अहेतुक है किसी कामना को लेके नहीं ॥ हे प्रियदर्शन तुमने जो उस

सत् चैतन्य देवको प्राप्तहोनाहै सो इस शरीररूप वनबिषेही प्राप्त होनाहै क्योंकि इस बिषेही उसने प्रवेश कियाहै, अरु यह शरीरही उसकी प्राप्तिका स्थानहै जो कोई उस सत् चैतन्य देवको प्राप्त हुआ है सो इसही स्थली बिषे हुआहै। हे सौम्य जो पुरुष उस सत् चैतन्य देवको जानता वा पावता है सो इस सत् शब्द अरु सद्बुद्धि द्वाराही जानता पावताहै क्योंकि यह सत् शब्द अरु सद्बुद्धि उससत् चैतन्य देवको लखावते हैं। हेसौम्य कोईदोपुरुष साथही उठके किसी अन्य ग्रामान्तरको चले तिनमें एकतो मार्गसे अरु ग्रामसे सज्ञातथा अरु दूसरा अज्ञातथा, तहां मार्ग चलते चलते अज्ञातने सज्ञातसे प्रश्न किया कि हे भाई मार्ग तो बहुत आये परन्तु अभी ग्रामदृष्ट आवता नहीं, तब उस सज्ञातने कहा कि हे भाई अब ग्राम निकट है देखो यह जो सर्व वृक्षोंके मध्य ऊँचा वृक्ष दृष्टआवताहै सो उस ग्रामके मध्य तुम्हारे गृहके आगेका वृक्ष है उस बृक्षके निकटही तुम्हारागृह है॥ हे सौम्य तैसेही यह सतबुद्धिरूप जो सर्व इदं बुद्धिरूप वृक्षोंसे ऊँचा बृक्षहै सो शुद्ध सत् चैतन्य देवरूप धामके निकट काहै, यह सत् बुद्धि रूपबड़ा वृक्ष तटस्थलक्षणवत् दूरसेही 'ग्रामके ऊँचे वृक्षवत्, शुद्ध सत् चैतन्य रूप धामको लखावता है कि जिस धाम के गये मुमुक्षु पुनः इस इदं बुद्धिके विषय रूप दुस्तर अरण्य में आवतेनहीं अतएव हे सौम्य अब तुमको जो उस धामके प्राप्त होनेकी इच्छा है तो तुम अपनी सर्व वृत्तियों को निरोधकर किसी श्रोत्रियब्रह्मनिष्ट आचार्यके समीपजाय उस सत् चैतन्य देवकी प्राप्ति विषयक प्रश्नकरो तब वो आचार्य्य तुमको प्रथम सत् बुद्धिरूपी वृक्ष देखावेगा तब तुमको भी उसपर अपनी दृढ श्रद्धा करनी होगी तिस करके तुम भी अपने उस शुद्ध सत् चैतन्यरूप धाम को पायके पुनरावृत्तिसे रहित परम सुखमय होवोगे॥

हे सौम्य उक्त प्रकार सत् चैतन्य परमात्मा ईक्षणकर प्रथम तेज तत्त्वको सृजता हुआ॥ शंका॥ ननु हे भगवन् "तस्माद्वाए-

तस्मादात्मनः आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्नेः" यह तैतरीयकी श्रुति,आत्मा से प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से वायु वायुसे तब सो तृतीय तेज उत्पन्न हुआ, ऐसा कहती है तव यहां कैसे कहाहै कि सो सत् प्रथमही तेजको सृजताहुआ, ऐसा कहने से उक्त श्रुति से विरोध आवता है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य यहां भी उक्त तैतरीयकीश्रुति प्रमाणही आकाश वायुकी उत्पत्ति के पश्चात्‌ही " तत्तेजोऽसृजत " सो तेजको सृजता हुआ इस कल्पना की उपपत्ति (प्राप्ति) है । अथवा यह जो श्रुति है तिसका सृष्टिक्रम कहने का तात्पर्य नहीं किन्तु सर्व श्रुतियों का एक अद्वैत सत् चैतन्य परमात्मा के कहनेपर तात्पर्यहै कि मृत्तिका आदिकों के दृष्टान्त से यह नामरूप क्रियात्मक समस्त कार्य्य कारण रूप जगत् एक अद्वितीय सत्‌हीहै सत्‌से इतर करके सर्व वाचारंभणमात्रहोने से अत्यन्त असत् है " सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "नेहनानास्ति किंचन " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे ॥ अथवा आगे इस श्रुति में त्रिवृत्त करण का कथनहै ताते, क्योंकि नाम रूप यह दोनों तीनतत्त्वों में ही घटैहै, आकाश अरु वायु यह दो अमूर्त्त सूक्ष्म तत्त्वहैं ताते इनविषे नाम अरु रूप यह दोनों घटै नहीं, अरु लोक विषे तेज जो है सो यह दाहक प्रकाशक लोहितादि गुणवान् अग्नि वा तेजहै इसप्रकार प्रसिद्धहै । ऐसा जो नामरूपादि गुणवान् तेज सो सत् चैतन्यदेव प्रथम सृजताहुआ । हे सौम्य उक्त प्रकार सत् चैतन्य देवकरके सृज्यमान जो तेजसो तेज इच्छा करताहुआ जो मैं वहुत रूपसे प्रकटहोवों । तिस इच्छा द्वारा सो जलको सृजताहुआ ॥

हे सौम्य ॥ः—उक्त प्रकार जब तेज तत्त्वसे ईक्षण द्वारा जल सत्‌की उत्पत्ति उद्दालक मुनि ने अपने पुत्रसे कहा तब तिसको श्रवणकर वो श्वेतकेतु शोचनेलगा कि जल तो तेजका विघातक है सो तेज (अग्नि) से कैसे उत्पन्नहुआ । इसप्रकार शोचता सो श्वेतकेतु तिसको किञ्चित शोचवश जानके उद्दालकने पुनः

कहा कि—॥ हे प्रियदर्शन यहां क्या शोचताहै, जैसे कोई पुरुष किसी देशकालमें जब बडेवेगसे दौड़ताहै वा बड़े भारको उठावताहै तब तेजकी गरमी पायके उसके शरीर से स्वेद (पसीना) रूपजल स्रवताहै, तैसेही तेज सत्से ईक्षणद्वारा जल सत् होता हुआ। सो कैसाहै जल कि द्रवता अरु स्वच्छता जिसका धर्म्म है अरु श्वेतता जिसकागुण (रंग) है अरु नीचेको चलना जिसका स्वभावहै, ऐसा जो जलसत्है सो तेजसत्से प्रगटहोता हुआ॥

प्रश्न॥ हे भगवन् सत् चैतन्य देवने ईक्षणकर तेजतत्त्वको उत्पन्न किया सो अस्तु परन्तु तेजतत्त्वतो जड़है जड़में ईक्षणबने नहींतबतिसतेजतत्त्वनेईक्षणकर जलतत्त्वको कैसे सृजा।हेभगवन सांख्य मतवादी जड प्रधान में ईक्षण के संभवके विषय में उक्त श्रुतिका दृष्टान्त कहते हैं जैसे जड़ तेजने ईक्षण कर जल तत्त्व को सृजा तैसेही जड़ प्रधानने भी ईक्षण पूर्वक महत्तत्त्वादि कार्यको सृजा। हे भगवन् उक्त श्रुतिके दृष्टान्त से देखिये तो सांख्या वादियोंका कथन असमीचीन नहीं। अब इस विषयक जैसा विचारहो तैसा कहिये॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन तुम सम्यक् प्रकार समझे नहीं यहां जो कहा है कि सो तेज ईक्षण करता हुआ सो तेज नामवाला सत्ही है, सत्से इतर करके तो तेजादि सर्व वाचारंभण मात्रही है ताते तेजनाम रूपकरके एक सत्ही का ग्रहण होने से तेजद्वारा सत्ही ईक्षण करताहुआ। अरु सांख्यवादी वास्तव करके प्रधान को सत् चैतन्न्य से इतर जड़मान के कहते हैं कि ईक्षण पूर्वक सृष्टिका कारण प्रधान है, सो उनका कथन वेदवाह्य होनेसे समीचीन नहीं। अरु उनके मतको विचार के देखिये तो अज्ञान कारणीक संसार वाद के अन्तरगत उनका कथनहै, ताते भी सांख्यमत समीचीन नहीं। अरु यहां तो कहा है कि "तत्तेजऐक्षत" सो तेज नाम से सत्ही ईक्षण करता हुआ ऐसा ग्रहण है सत्से पृथक् करके तेजका ग्रहणनहीं। अथवा "जीवेनात्मनानुप्राविश्य" "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" इत्यादि

ताआप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

श्रुतियोंके प्रमाण से सो सत् चैतन्य देव आप ईक्षण पूर्वक तेज तत्त्वको सृज पुनः उसमें आपही आभास रूपसे प्रवेशकर आगे ईक्षण करताहुआ। इत्यादि विचार प्रकारसे तेज तत्त्वद्वारा भी सत् चैतन्य देवने ही ईक्षण पूर्वक जलतत्त्व को सृजा है, सत् चेतन से इतर सत्तावान् तेजादिक कुछ भी नहीं। अरु सांख्य-वादी सत्से इतर प्रधान सत्ता को जड़ अंगीकार कर तिससे ईक्षण पूर्वक सृष्टि कहते हैं सो सत् चैतन्य से इतर जड़में ईक्षण के असंभव से उनका कथन समीचीन नहीं ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जल ईक्षण (विचार) करता हुआ मैं बहुत प्रकार से उत्पन्न होवों तिस विचार से सर्व अन्नकी समष्टता पृथिवी लक्षण अन्न को सृजता हुआ, एतदर्थ जहां कहीं वर्षा होती है तहां बहुत अन्न उपजता है ताते जिस जल सत् से अन्न सत् होता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ मन्त्रचौथेका ॥

हे सौम्य, हे प्रिय दर्शन, उक्तप्रकार सत् चैतन्य परमात्मा आप ईक्षण पूर्वक प्रथम अपने विषे तेज तत्त्वकारूप धारता हुआ पुनः तिस अपने तेज रूप से ईक्षण पूर्वक जल तत्त्वका रूप अपने विषे धारता हुआ। पुनः तिस जलतत्त्व द्वारा सो सत् चैतन्य देव विचारता हुआ जो मैं बहुत रूप से प्रकट होवों वा उत्पन्न होवों, तब तिस ईक्षण द्वारा अपने विषे सर्व अन्नकी समष्टता रूप पृथिवी लक्षण अन्नको सृजता हुआ, अन्न जो है सो पार्थिव (पृथिवी) रूप है। अरु जिस करके जलका कार्य्य अन्न है तिसही करके जिस किसी देश विषे सम्यक् वर्षा होती है तहांही

अथ छान्दोग्यउपनिषत्सु षष्ठप्रपाठकेतृतीयखंडः ॥ ३ ॥

तेषां खल्वेषां भूतानांत्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति १ ॥

अधिकतर अन्न उत्पन्न होता है। एतदर्थ ही कहा है जल से ही अन्न अधिक होता है ॥ हे सौम्य पूर्व ऐसा कहा है कि सो पृथिवी लक्षण अन्नको सृजता हुआ तहां, अद्, धातु विशेषण करके जो भक्षण किया जाय तिसको अन्न कहते हैं ताते अन्न शब्द करके ब्रीहि यवादिकों को कहते हैं ॥:—हे सौम्य ब्रीहि यवादि सर्व अन्नकी समष्टता पृथिवी है, जब पृथिवीपर वर्षा अधिक होती है तब तृण वनस्पति ओषधि अन्नादिक सर्व पृथिवी से प्रकट होते हैं—:॥ सो पृथिवी रूप अन्न कैसा है, भारी है कठोर है, स्थिर है, अरु सर्वको धारण करे है, अरु अपने रूप करके कृष्णवर्ण प्रसिद्ध है ॥ हे सौम्य यहांकी शंका अरु तिसका समाधान पूर्व कह आये हैं ॥ ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीय खंडः ॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

निश्चयकरके तिन इन चराचर भूतोंका (जीवों वा देहोंका) तीनही बीज (कारण) होताहुआ । तहां अंडज जेरज उद्भिज इन तीन जातिके जीव (शरीर) होतेहुए १ ॥

भावार्थ खंड तीसरे मन्त्र पहिले का ॥

हे सौम्य, हेप्रिय दर्शन ॥:—वो सत् चैतन्यदेव पुनः पृथिवी द्वारा होयके इच्छा करता हुआ जो मैं बहुत रू होवों तब तिस इच्छासे अण्डज, जरायुज, अरु उद्भिज, यह तीन खानि के शरीररूप से प्रकट होता हुआ—: ॥ हेप्रियदर्शन "तेषां" तिन्हों का [अर्थात् पूर्व पंचम प्रपाठक की पंचाग्नि विद्याबिषे जिन जीवोंके अर्थ बारम्बार आवागमनरूप तृतीयस्थान कहाहै तिन्हों का] अरु निश्चय शब्द तिनके प्रसिद्ध द्योतनार्थहै, ॥:—अर्थात्

"तेषां" शब्द करके पंचम प्रपाठक बिषे कहेजे उत्तरायण दाक्षिणायन उभयमार्गगति तिनसे भृष्ट जे बारम्बार पशु आदि योनियों में आवागमन पावते हैं निश्चय करके प्रसिद्ध तिनको—: ॥ अरु "एषां" यह शब्द करके इन्हों पशु पक्षी आदिक भूतों का तीनही वीज कहिये कारण हैं तिनसे अतिरिक्त नहीं ॥शंका॥ हे भगवन् भूत शब्द करके यहां पशुपक्षी आदिकों का ग्रहण है सो अस्तु, परन्तु भूत शब्दरूढ़ी रीति से तेजादि तत्त्व प्रभृतियों बिषे भी ग्रहण होताहै सो यहां क्यों नहीं करते ॥ समाधान ॥ हेसौम्य तेजादि तत्त्वोंका आगे तृवृत्करण कहाहै अतएव यहांउन अत्रिवृत्कृत तत्त्व बिषयक भूत शब्दका अर्थ ग्रहण होवे नहीं क्योंकि यहां "एषां" इन्होंका, ऐसा शब्दहै सो प्रत्यक्षको विषय करताहै अरु उन अत्रिवृत्कृत तेजादिकोंको प्रत्यक्षपना है नहीं ताते । अथवा "इमास्तिस्रो देवता इति" तेजः प्रभृतियों को (तेजादि तत्त्वों को) देवता शब्दका प्रयोग होनेसे वा देवता शब्द करके कहने से, उन विषे प्रत्यक्षका बोधक । "एषां" इस प्रत्यक्ष निर्देश की अनुपपत्ति (अप्राप्ति) है ताते उन बिषे "एषां भूतानां" ऐसा कथनबने नहीं । अतएव निश्चयकरके "तेषां" तिन्होंका, इस पदसे पंचम प्रपाठक में कहे तृतीय स्थानाधिकारी जीवोंका, अरु "एषां भूतानां" इन भूतोंका, इस वाक्य वा पद करके पशुपक्षी स्थावरादिकों के तीनही वीज कहिये कारण होते हुएहैं, तिनसे इतर नहीं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् सर्व चराचर भूतों (शरीरों) के वो वीज संज्ञक कारण कौन कौन हैं सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ,एक जरायुज, दूसरा अण्डज, तीसरा उद्भिज, यह तीन वीज संज्ञक कारण हैं, तहां जेर (झिल्ली) से उत्पन्न होनेवाले जे 'मनुष्य, गौ, अश्वादिक, तिनको, जरायुज कहते हैं 'जेर से प्रकट होनेसे, अरु 'पक्षी, सर्प, मच्छादिक, तिनको अण्डज कहते हैं, क्योंकि उनको अण्डसे प्रकट होते देखतेहैं ताते, अरु तिस कर के पक्षीही पक्षियोंका वीज है, सर्प

सर्पोंका बीज है, मच्छादिक मच्छादिकोंका बीज हैं, तैसेही अन्य भी जे अण्डे से उत्पन्न होते हैं सो तिन अण्डसे उपजनेवालोंके बीजहैं ॥ः–हे सौम्य जिन जीवोंके कर्णगोलक प्रत्यक्ष नहीं भासते तिन सबको अण्डज जानने–ः॥

शंका ॥ हे भगवन् जो अण्डसे उत्पन्न होताहे तिसको अण्डज कहते हैं, एतदर्थ अण्डजोंका बीज अण्डहै ऐसा कहना युक्त है, तब अण्डजोंका अण्डज बीजहै, ऐसा अयुक्त क्यों कहनाचाहिये ॥ [यहां इस शंकासे श्रुतिको पौरुषेय (मनुष्यकृत) पने की व्युत्पत्ति बाधित होतीहै तिसका परिहार (खंडन) करतसन्ते कहते हैं] ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुम कहतेहो सो सत्य है परन्तु श्रुति जोहै सो उस सत् चैतन्य देवके स्वतन्त्रवाक्यहैं एतदर्थ श्रुति भी सत्वत् स्वतन्त्र है, अपौरुषेय होनेसे, एतदर्थ श्रुतिका ऐसाही कहना है कि अण्डजही अण्डजों का बीज है। हे सौम्य पुनः केवल श्रुतिकीही उक्त प्रकार की व्यवस्थाहै ताते ऐसा कहाहै सो नहीं किन्तु अण्डज के अभावसे तज्जातीय सन्ततिका भी अभाव प्रत्यक्ष देखते हैं, अण्ड के अभाव से तज्जातीय सन्ततिका अभाव नहीं। एतदर्थ अण्डज जाति जीवों का बीज अण्डजही है अण्ड नहीं ॥ हे प्रियदर्शन तैसेही जीवसे उत्पन्नहुआ जीव है, अर्थात् जरायुज जे मनुष्य तथा गऊ अश्वादिक जो जेर (झिल्ली) से वेष्टित वा जेरके साथ अर्थात् जिन जीवों के जन्मके साथही माताकी उदर से जेर निकलती है तिनको जरायुज कहते हैं तिन जरायुजों का बीज जरायुज है। अरु उद्भिज कहिये वृक्षादिक जो पृथिवी को फोडके उपजते हैं तिन स्थावर वृक्षादिक उद्भिजों का बीज उद्भिज है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् एतरेय उपनिषद् के तृतीयाध्याय में " अण्डजानिच जारुजानिच स्वेदजानि चोद्भिज्जानि " इस प्रकार चार खानि के जीव कहे हैं अरु यहां आप तीन खानि के कहते हो, सो इसीका विचार जैसा होय तैसा

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेनजीवेनात्मना ऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥

आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य एतरेय उपनिषद् विषे चतुर्थ खानि स्वेदजकी कही है तिसका यहां उद्भिज अण्डजमें अन्तर भाव जानना क्योंकि स्वेदज जुँआँ खटमल आदिकों की स्वेद (पसीना) मैलादिकों से उद्भिज अण्डजवत् उत्पत्ति होती है ताते ॥ इति सिद्धम् ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह सत् नाम वाला चैतन्य देव विचारता हुआ जो मैं इन तेज, जल, पृथिवी, इन तीनों देवता विषे जीव (आभास) रूपसे अपना प्रवेश कर नाम रूपको प्रकट करौं ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

हे सौम्य, हे प्रियदर्शन [जीव करके अविशिष्ट भूतों का सत् चैतन्य का कार्य्यपना प्रकरण प्रामाएय होने से कहा । अब जीवोंका विशिष्ट रूपत्व करके ब्रह्मका कार्य्य होते संते भी उनको स्वरूप करके कार्य्यता नहीं किन्तु उपाधि विशिष्ट भी ब्रह्मही है। क्योंकि जीवका व्यवहारास्पद से अंगीकार है ताते ॥:—अर्थात् जीवपना व्यावहारिक सत्तासे अंगीकार है नतु परमार्थ सत्ता से—:॥ तथाच " ब्रह्मणि विज्ञाते जीव विज्ञातं सेत्स्यति " ब्रह्म के जानने से जीवका जानना होता है । इस प्रमाण से ॥ अरु जो भूतोंका भौतिक कार्य है सो जीवोंके भोगका स्थान है, तिन भोगके आयतनों के नामरूपकी उत्पत्ति के कहने के अभिप्राय से उत्तर ग्रन्थ कहते हैं] हे सौम्य सो यह प्रकृति सत् नाम वाला देव जिस प्रकार पूर्व " बहुस्यां प्रजायेयेति " मैं बहुतरूप से प्रकट होवों, इस प्रकार विचार के तेज जल अन्न इनतीन कारण रूपसे आप बहुत रूपहुआ सो कहा । तैसेही पुनः बहुत होने का विचार करता हुआ ॥ शंका ॥ हे भगवन् पूर्व सत् चै-

तन्य देवने एक्षण (विचार) कर तेजादि रूप से बहुतहुआ सो अस्तु पुनः निष्प्रयोजन बहुत होने का विचार क्यों करताहुआ॥ उत्तर ॥] हे सौम्य तिसका सो बहुत होने का प्रयोजन अद्यापि निवृत्त हुआ नहीं ॥ :—हे सौम्य अद्यावधि वो सत् चैतन्य देव अपने आभास (जीव) रूपसे सर्वत्र बहुत होनेकोही देखता विचारता इच्छता है—: ॥ एतदर्थ सो सत्नाम्नी चिन्मात्र सत्ता पुनः इच्छाकरती हुई ॥ प्रश्न ॥ सो सत्ता क्या विचारती हुई उत्तर ॥ यह विचारती हुई कि मैं अब तेज, जल, पृथिवी, तीन (सूक्ष्मकारण) रूप देवता, कि जिनका रूप मैंने अपनेविषेधारण किया है तिनविषे इस जीवरूपसे प्रवेशकर। अर्थात् स्वबुद्धिस्थ पूर्वानुभूत सृष्टिको प्राणधारण करता आत्मा (अपने आभास वा प्रतिविम्ब जो अपनाही रूपहै) को स्मरणकर विचारताहुआ कि प्राणधारी जीवाख्य अपने रूपसे "। प्राणधारणकर्त्ता आत्मनेति "। इस वचन प्रमाणसे। अपने आपसे अपृथक् अविशिष्ट रूपसे प्रवेशकरों ऐसा विचारताहुआ ॥ :—अर्थात् हे सौम्य सत् चैतन्य देवने आभास वा प्रतिविम्ब रूपसे प्रवेशकियाहै परन्तु विम्ब प्रतिविम्ब दोनोंकी चैतन्य स्वरूपताविषे समता होने से शुद्ध चैतन्यकाही प्रवेश जानना। अरु विम्ब प्रतिविम्ब का जो परस्पर भेद भासताहै सो उपाधिका कियाहै वास्तव से नहीं एतदर्थही आगे "तत्त्वमसि "। इस वाक्यकरके दोनों की अभेद एकता कहेंगे—:॥

हे सौम्य [निर्विशेष निर्विकल्प चिन्मात्र सत्ता समानरूप देवता अपनी इच्छारूपा मायासे मिल तेजादि वा आकाशादि महाभूतों को सृज पुनः विचारताहुआ जो जब मैं इन सृजेहुए महाभूत देवताओं में प्रवेशकर तिन आरंभकिये भूतों से ' सूत्र हिरण्यगर्भ विराट् समष्टि व्यष्टि देहोंविषे प्रवेशकरके तिन तिन देहाभिमानीरूप से देवदत्तादि नाम अरु शुक्ल कृष्णादि रूपको मिश्रितकर पिंडको प्रकटकरो, ऐसा विचारताहुआ यह कहते हैं] हे सौम्य, सो सत् चैतन्य देव बिचारताहुआ कि इन तेजादि

(अतृवृत्कृत सूक्ष्म) महा भूतों के सूक्ष्म कार्य लिंग में प्रवेशकर तिसके संसर्ग से विशेष विज्ञान पाय पुनः नाम अरु रूपको प्रकट करों । अर्थात् लिंगमें प्रवेशकर पश्चात् देवदत्तादि नाम अरु रक्त शुक्ल कृष्णादिरूपको स्पष्टकरके, कि यह नामहै यहरूप इसप्रकार नामरूपको प्रकट करों ॥ः—हे सौम्य पूर्व वेदने कहाहै कि एक अद्वितीय सत् चैतन्य देवहै, अरु तिस सत्ने यह भी कहा था कि यह जीव मेरा आत्मा (अपना आपस्वरूप) है । हे सौम्य इसही हेतुसे पूर्व उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति यही प्रश्न किया था कि हे पुत्र जिस एकके जानने से सर्व जाना जाताहै तिसको तू जानताहै या नहीं । सो यही एक शुद्ध चैतन्य देवहै, इस ही एक सत् चैतन्यके जानने से सर्व नाना जीवाख्य चैतन्य जाने जाते हैं, क्योंकि सत् चैतन्य रूप विम्ब सर्व जीवों (आभासो वा प्रतिविम्बों का एक है । सो उस ही सत् चैतन्य देवने यह इच्छा किया कि इन तेजादिकों विषे हम प्रवेश करके नाम रूपको प्रकट करे, क्योंकि जब हम इनविषे प्रवेश करेंगे तव यह सर्व ठाठ राशि आवेगा अरु लीला भी तबही बनेगी । हे सौम्य जैसे कुलाल प्रथम मृत्पिण्डको रचिके पश्चात् घटादि अनेक कार्य रचता है उन घटादिकों विषे यावत् अग्नि प्रवेश करता नहीं तावत् वो कामके होते नहीं ॥ हे सौम्य इसका विचार इस प्रकारहै कि तीन तत्त्वों की रीति से अग्नि का कार्य्य जल अरु जलका कार्य्य पृथिवी है तहां पृथिवी कहिये मृत्तिका अरु जल यह दोनों मिल मृत्पिण्ड होय घटादि कार्य होते हैं, परन्तु सर्वके पूर्वका शुद्ध अग्नि यावत् उन घटादि को विषे प्रवेश नहीं करता तावत् वो किसी भी काममें आवते नहीं । तैसेही परमात्माकी इच्छारूपा माया ने अपने विषे सत् चैतन्य देवकी सत्ताको पाय अनेक प्रकार के ब्रह्मांडों को खड़ा किया परन्तु उनसे कार्यकी सिद्धि न हुई, तव तिसको अवलोकन कर उससत् चैतन्य देवने विचार किया कि यावत् हम इनमें

प्रवेश न करैंगे तावत् ये किसी भी काम आवने के नहीं क्योंकि यह इच्छा आदि सर्व स्वरूप करके जड़हैं अरु इनको स्वसत्ताके अभाव से पराधीनता है, अतएव हम इनबिषे प्रवेशकर इन सर्व के नाम रूपको पृथक् २ प्रकट करें, और किसी का काम नहीं क्योंकि ये सर्व जड़हैं अरु चैतन्यके प्रवेश बिना नामरूपकी पृथक् २ स्पष्ट प्रकटता होवे नहीं, अरु मुझसे इतर अन्य कोई चैतन्य नहीं, एतदर्थ इन बिषे हमाराही प्रवेश बनता है॥ प्रश्न॥ हे भगवन् उससत् चैतन्य देवका जो प्रवेश होताहै सो लिंगादि बिषे होताहै सो लिंगादिक अभिहुए नहीं तब उसने प्रवेश किस बिषे किया सो आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार उस सत् चैतन्य देवने अपने बिषे बिचार कियाहै जो इन तेजादि कारण भूतों विषे प्रवेश करके सर्व के नामरूपों को पृथक् २ प्रकट करें, ऐसा बिचार कियाहै अभी प्रवेश किया नहीं॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त कहते हैं तिसको श्रवण करो। हे सौम्य जैसे कोई एक बणिक पुरुष जो औषधी आदिक बहुत पदार्थोंकी दूकान करताहै सो सायंकाल के समय अपनी दूकान बन्दकर गृहजाय सुख से शयन करता है जब प्रातःकालको जागताहै तब अपनी दूकान खोलने की चिंतवनाकर विचारता है कि अब हम अपनी दूकान परजाय उसमें धरे पदार्थों को प्रकटकर बाहर फैलायदेवें। हे सौम्य इस प्रकार वो वणिक प्रथम विचार के पश्चात् दूकान पर आय उसमें के पदार्थों को प्रकट करताहै॥ हेसौम्य तैसेही सत् चैतन्यदेव अपनी पूर्वकी सृष्टिको इच्छारूप मायारूपा दूकान में रख पुनः उसको अपने अधिष्ठानत्वपने में लयकर आप निर्विकल्पता रूप शयन करता है। अरु जब अपनी स्वतन्त्रता सर्वज्ञता रूप जाग्रत् में आय सविकल्प विशेष होताहै तब अपनी इच्छारूप दूकान में रक्खी जे पूर्वानुभूत सृष्टि के नामरूपात्मक संस्कार रूप सामग्री तिसको पूर्ववत् प्रकट करने की चिंतवनाकर पश्चात् उसको

प्रकट करता है। अतएव अबही उस सत् चैतन्य देवने प्रवेश न करके प्रवेश करने की चिंतवना किया है—:॥ शंका॥ ननु, हे भगवन् जो सर्व संसार अरु तिसके धर्मादिकों से रहित असंसारी सर्वज्ञ सत् चैतन्यदेव तिसका बुद्धि पूर्वक (जान बूझ के) अनेक शत सहस्र अनर्थों का आश्रय जो देह तिसविषे प्रवेश करके मैं दुःखको अनुभव करों ऐसा संकल्प, अरु सर्वज्ञ स्वतन्त्र होय के प्रवेश करना युक्त नहीं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य जो तू कहताहै सो सत्यही है, यदि वो सत् चैतन्य सर्वज्ञ देव अपने अविकृतरूप से परमदुःखास्पद देहादिकोंविषे प्रवेश करके दुःखों का अनुभवकरे यह युक्त नहीं परन्तु तैसा किया नहीं ॥ शंका ॥ हे भगवन् उसने कैसे नहीं प्रवेश किया स्वयं श्रुति कहती है कि "अनेनजीवेनात्मनानुप्रविश्येति" इसजीवरूपसे आत्माने प्रवेश कियाहै ॥ समाधान ॥ हे सौम्य उक्तश्रुति ने जीवरूपसे उस सत् चैतन्य देवका प्रवेश कहाहै उसका साक्षात् प्रवेशकहा नहीं, अरु जीवनाम आभास वा प्रतिविम्बकाहै "जीवाभासेनकरोति" इत्यादि अन्यश्रुतियों के प्रमाणसे ॥:--हेसौम्य तुमने कहा कि उस सत् चैतन्य सर्वज्ञदेवका जानबूझ के परम दुःखास्पद अनेक दुःखों का आश्रय जे देह वा संसार तिस बिषे प्रवेश करके दुःखका अनुभव करना युक्त नहीं, सो सत्यही है, परन्तु वो अपने स्वरूपकरके शुद्ध केवल ज्ञप्तिमात्र आनन्द घनहै तिस अपने स्वाभाविक सामान्य स्वरूपानन्दको विशेषतासे अनुभव करनेकी इच्छा से उस सर्वज्ञ स्वतन्त्र देवने नामरूपात्मक दुःखास्पद द्वंदको खड़ाकर तिस बिषे अपने आभास वा प्रतिविम्बरूप से, जो कि वास्तव करके उससे अपृथक् है, प्रवेशकर दुःखके अनुभवके निमित्तसे आप अपने आनन्दरूपत्व को अनुभव करता है ॥ हे सौम्य जो कदापि तू ऐसाकहै कि वो सत् देव तो सर्वज्ञ चैतन्य ज्ञानस्वरूप है तव वो द्वंद्व दुःखकी विशेषता के निमित्त विनाही अपने आप आनन्दरूपत्वको क्यों अनुभवकरता नहीं उसको

उक्त विशेषताके अभाव से अपने आनन्दस्वरूपताका अनुभव करना चाहिये, सो बने नहीं क्योंकि जो वस्तुजानी जाती है वा अनुभव कीजाती है सो जड़ होती है अरु जाननेवाला चैतन्य होता है अरु ज्ञेय अरु ज्ञाता परस्पर में जड़ चैतन्य होने से विरुद्ध धर्म्मा होते हैं सो उभय विरुद्ध धर्म्मा एकही वस्तुको आश्रय करे नहीं, अरु वो शुद्ध चैतन्य ज्ञानस्वरूप है ताते उसको एक अद्वितीय होनेसे उसमें सर्व, इस शब्दके अर्थका अभाव है, अरु उसको ज्ञानस्वरूप होनेसे उस विषे ज्ञेयत्वपनेका अभाव है, ताते उस सत् चैतन्य देवकी आनन्दरूपता उसका ज्ञेय होवेनहीं। अतएव हे सौम्य उस सत्चैतन्य देवने अपने आनन्दस्व रूपको विशेष अनुभव करने के अर्थ दुःखास्पद द्वंद्वको खड़ाकर अपने स्वरूपानन्द को अनुभव करता है। हे सौम्य कोई एक बुद्धिमान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि वो चैतन्य देव ज्ञानस्वरूप होनेसे अपने आपको ज्ञेयरूपकरके जानता नहीं ताते वो अज्ञानी है अज्ञान का आश्रय होनेसे अपने आपको जानता नहीं, सो उनका कथन अनुभवसे रहित अविचारितहै, क्योंकि जो वो अज्ञानके आश्रय हुआ अपने आपको नहीं जानता तो कदापि अज्ञान की निवृत्ति बने नहीं, अरु वो उक्त प्रकार होने से परतन्त्रतादि दोष करके युक्त होता है तिसकी भी निवृत्ति बने नहीं क्योंकि ब्रह्मके दोषों का निवर्त्तक अन्य कोई भी है नहीं, अन्यों को अब्रह्मता होने से॥ हे सौम्य उक्त सत् चैतन्य ज्ञानस्वरूप देवको अपने आपके न जानने विषे अज्ञान हेतु नहीं किन्तु उस विषे ज्ञेयत्वादिपने का अभाव हेतु है। ताते वो सत् चैतन्यदेव अपने आनन्द स्वरूपता को विशेषता से अनुभव करने की इच्छा से दुःखास्पद द्वंद्वको खड़ा कर तिस विषे अपने आभास रूप से प्रवेशकर दुःखानुभवके निमित्त से अपने आप स्वरूपानन्दको साक्षात् यथार्थ अनुभव करता है॥ अरु बुद्धि आदि उपाधि अरु तिनके कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्म अरु तद्विशिष्ट अपने आभास रूप जीव

को साक्षी हुआ प्रकाशता है अरु आप अपने स्वरूप करके उन सर्व से पृथक् सदा निर्विकार शुद्ध ज्योंका त्यों है, अतएव उस सत् चैतन्य देवने अपने स्वरूप भूत सामान्य आनन्द को विशेषता से अनुभव करने की इच्छा से इस वाचारंभण मात्र नाम रूपात्मक द्वंद्वको खड़ा कर तिस विषे अपने आभास आत्मरूप से प्रवेश किया है। क्योंकि दुःख रूप द्वंद्वविना अपने आप अद्वैत सुख रूपता का विशेष अनुभव होवे नहीं ॥ हे सौम्य इस पर एक दृष्टान्त कहते हैं तिस को सम्यक् श्रवण करो, हे प्रिय दर्शन कोई एक चक्रवर्त्ती राजाका बालक पुत्र था उसको बालपन से पिताके अभाव से चक्रवर्त्ती राज्यका सर्व सुख प्राप्त था अतएव उसको दुःखका अनुभव कुछ भी न था, अरु तिस के अभाव से अपने चक्रवर्तृत्व राज्य पद के सामान्य सुख का भी विशेष अनुभव न था, अरु उस राजकुमार की अन्य प्रजा दुःखादि करके युक्त थी सो अपने दुःखकी निवृत्ति पूर्वक सुखकी प्राप्तिको इच्छती सती कहतीथी कि हमको सुख कब प्राप्तहोगा। इस प्रकारके अपनी प्रजाके वाक्य श्रवणकर वो राजकुमार अपने बुद्धिमान् मंत्रीसे प्रश्न करताहुआ कि हे मंत्री यह सर्व प्रजा जो रात्र दिन २ अपने को सुखीहोना इच्छतीहै सो वो सुख क्या वस्तु अरु कैसा होताहै, हे सौम्य इसप्रकार के उस राजकुमार के वचन को श्रवणकर उस मंत्रीने विचारकिया कि यह राजकुमार अपने को दुःखकी प्राप्तिके अभावसे अपने चक्रवर्त्तित्वपने के सुख से भूमाहुआ है इसको अपने राजकीय सामान्य स्वाभाविक सुखका अनुभव नहीं, परंतु अब इसको सुखके जानने की जिज्ञासाहुई है अतएव अब इसको अपने सुखका अनुभवकराय इसके प्रश्न का उत्तर देना चाहिये परंतु समयपायके । ऐसा विचार उस मंत्रीने कहा कि हे राजन् इसका उत्तर फेर देवेंगे। हे सौम्य तिसके कोईकाल उपरान्त उसराजकुमारने अकस्मात् एक दिन मृगयाकी इच्छाकर उस मंत्री से कहा कि हम मृगया

को जावेंगे तब उस मंत्रीने तथास्तु कहके विचार किया कि अब इस राजकुमार को मृगया के निमित्त से दुःखका स्वरूप देखाय सुख का अनुभव करावना चाहिये जिसकरके यह अपने प्रश्नका उत्तर आपही समझलेवे। हे सौम्य इसप्रकार विचार के उस बुद्धिमान् मन्त्री ने अन्य सेनापति आदिकों को आज्ञा किया कि यह राजकुमार महाराज मृगया की इच्छा करते हैं, अतएव मृगया की सर्व सामग्री तैयार करो, परन्तु खान पानकी सामग्री कुछ भी साथ न लेनी क्योंकि महाराज बहुत शीघ्रही लौटके यहां गृहको आवेंगे। इस प्रकार जब मन्त्रीने कहा तब तिसकी आज्ञा श्रवण कर सेनापति ने सैना, अन्य भृत्यादिकों ने गज अश्व श्वान वाज शस्त्र आदिक मृगयामें उपयोगी सर्व सामग्री तैयार कर मन्त्रीसे निवेदन किया कि हे राजन् आपकी आज्ञानुसार सर्व सामग्री तैयारहै, तब मन्त्रीने राजकुमारसे कहा कि हे महाराज आपकी इच्छानुसार मृगया की सर्व सामग्री सिद्ध है, तब वो राजकुमार तिसको श्रवण कर मन्त्री आदिकों को साथले अश्वारूढ होय मृगया को जाता हुआ, जब अरण्य में प्राप्त हुआ तब उस राजकुमार ने सर्वको आज्ञा किया कि जिसकी दृष्टिके आगे मृग आवे सोई उस मृगके पीछे जाय। हे सौम्य इतनेहीमें अकस्मात् काकतालीयन्यायवत् उस राजकुमार कीही दृष्टिके आगे मृग आवता हुआ अर्थात् उस राजकुमार कीही दृष्टिगोचर मृग होता हुआ, तब उस राजकुमार ने अपना अश्व उस मृगके पीछे डाला अरु अरण्यमें चला, अरु उसकी आज्ञानुसार सेना आदि कोई भी उसके पीछे न गया परन्तु एक मन्त्री जो राजा का रक्षक है सो अपने अश्वारूढहोय उस राजकुमार के पीछे दूरदूर जाता हुआ। अरु जबवो राजकुमार उस मृगके पीछे अरण्य में प्रवेश करगया तब वो मृग उसको देखके पलायनहोता अन्तर्द्धान होगया, अरु वो राजकुमार अति गह्वर जल फलादिकों से रहित करौं जुआके वनवत् कंटकमय महा अरण्य में

जाय प्राप्त हुआ, अरु उस मृगके पीछे दौड़ने के औ तापवातादिकों के अति श्रमखेद करके अरु क्षुधा पिपासा करके व्याकुल होय अश्वसे उतर अश्वकी डोर हाथ में ग्रहणकर उस अरण्य में अकेला धीरे धीरे विचरने लगा अरु अपने श्रमकी निवृत्तिके अर्थ अनेक प्रकार के उपायों को शोचने लगा। हे सौम्य एतने ही में वो बुद्धिमान् मन्त्री भी उस राजकुमारके समीप जाय प्राप्त हुआ, तब उसको देख राजकुमार ने कहा कि हे मन्त्री मैं इस अरण्य में भ्रमण के श्रम अरु क्षुधा पिपासा के खेद करके अति व्याकुल हुआहौं, अरु यहां जलफलादि सुखका सामान कुछ भी दृष्ट आवता नहीं, ताते अब तुम मुझको जल फलादि प्राप्तकरके मेरे इस श्रमको निवृत्त करो। हे सौम्य उक्त प्रकार के राजकुमार के वचनोंको श्रवणकर उसके क्लेशकी निवृत्ति के अर्थ वो मन्त्री जल फलादिकों के अन्वेषणार्थ गया अरु बहुत अन्वेषण करते २ किसी एकगर्त्त में अति अल्प मलीन मृगों के मूत्रों करके युक्त जल अरु पक्षियों के कुछ भक्षण किये पृथिवी पर गिरे कच्चे पक्के फलोंको देख विचारने लगा जो अपने उस राजकुमारको उसके स्वभाव भूत राजसुखका, कि जिससे वो भूलेहुएवत् है, साक्षात् अनुभव करावना है अतएव इन जल फलादिकों को उसके पास न लेचलके उसको यहां लेआय प्रथम यह जल फलादिक देखावना चाहिये जब वो इनको देखके अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ इनका खान पान करेगा अरु श्रमकी निवृत्तिके अर्थ इस कंटकमय पृथिवीपर विश्राम करेगा तब उसको अपने चक्रवर्त्ती राज्य पदके भोग्य सामग्री जन्य सुखका अनुभव होवेगा। हे सौम्य इस प्रकार बिचार उस मन्त्री ने जल फल आदिकों को न लेके आप उस राजकुमारके पास आय उन जल फल का सर्व वृत्तान्त कह कहताहुआ कि हे महाराज आप चलके उन जल फलादिकों को देखिये पश्चात् आपकी इच्छा होय तो उनको खान पान करना वो यहां

लेआवने योग्य नहीं। हे सौम्य उस मन्त्रीने इतना कह उस राजकुमारको अपने साथले उस स्थानपर प्राप्तकर उसको वो जल फलादिक देखाय पुनः कहा कि हे महाराज इन जल फलादिकों को सम्यक् प्रकार अवलोकन कीजिये, तब उस राजकुमारने उन जल फल स्थानको देखके कहा कि हे मन्त्री यह जल मलीन अरु शूकरादि मृगोंकरके आवृत होने से पानकरने के योग्य नहीं अरु यह बदरीआदि फल पक्षियों के उच्छिष्टहोने से भक्षण करने के योग्य नहीं, अरु यह पृथिवी कंटकादिकों करके युक्त होने से विश्रामके योग्य नहीं, अब क्या करिये। हेसौम्य इस प्रकार जब उन जल फलादिकों को अवलोकनकर उस राजकुमारने अपने मन्त्री से कहा तब तिसको श्रवणकर वो मन्त्री हँसताहुआ कहने लगा कि हे महाराज यहां तो यही जल फलादिक हैं जो आपको अपने प्राणकी रक्षा करनी है तो इनको खान पानकर प्राणको राखिये आगे जो आपकी इच्छा हे सौम्य इस प्रकार जब उस विवेकवान मन्त्री ने उस राजकुमारसे कहा तब वो क्षुधा तृषाकरके अति व्याकुल राजकुमार उस महामलीन जलको अरु पक्षियों के उच्छिष्ट फलको खान पान करत सन्ते अपने चक्रवर्त्ती राजापने के खान पानके स्वाद सुख का अनुभव कर आपही आप कहने लगा कि देखो कहां यह मृगों के मूत्रादि करके मिश्रित महामलीन जलअरु कहां वो सुवर्ण के पात्रमेंभरे सुगंध करके मिश्रित मधुर शीतल गंगाजल अरु कहां यह पक्षियों के काटे उच्छिष्ट कच्चे खट्टे फल अरु कहां वो मधुर २ आम्रादि फल अरु सुन्दर घृत मिश्री करके बनाये दिव्य पकवान, अरु कहां इस कंकर कंटकमय पृथिवी ऊपर का बिश्राम अरु कहां उस सुन्दर सुवर्ण के रत्नजटित शय्या सिंहासनके अति कोमल चिक्कण पाटमय बिछवनोंपर का बिश्राम, अरु कहां यह कंटकमय महा भयंकर अरण्य में प्रवेश करने जन्य क्लेश अरु कहां वो अपने गृह राज्य पदपर शान्तता से बिश्राम

करने जन्य सुख । हेसौम्य इस प्रकार वो राजकुमार उक्तप्रकार के अरण्यके जल फलादिकोंको अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ अनिच्छता से खानपानके निमित्त से अपने गृहके उत्तम खानपानके स्वाद सुखका अरु वनमें प्रवेशकर दुख भोगके निमित्त से अपने गृह निवास राज्य सुखका अनुभवकर उस मन्त्री से कहनेलगा कि हे मन्त्री आज पर्यंत मुझको अपने स्वाभाविक राजपदका सुख स्वभाव भूतहोनेसे विशेष करके अनुभव न था कि राजपद सुख ऐसा होताहै परन्तु अब इस अरण्यमें प्रवेश करने से दुःख पाया तब उस अपने स्वाभाविक राजसुख का सम्यक् प्रकार अनुभव हुआ है । तब मन्त्री ने कहा कि हे महाराज पूर्व आप ने मुझसे प्रश्न किया था कि यह सर्व प्रजा जिस सुखको इच्छती है सो सुख क्या वस्तु है, हे महाराज तिस सुखके प्रत्यक्ष आपको अनुभव करावने के अर्थ मैं इस अरण्य में आवने के समय आपके अर्थ खानपान की सामग्री गृह से कुछ भी न लाया तिस कारण से आपने इन जल फलादिकों के खानपान करने से खेद पाया ताते मुझकृत अपराध को आपक्षमाकरिये ॥ हे सौम्य इस उदाहरण कहने का अभिप्राय यह है कि यह जीव यावत् दुःखको जानता नहीं तावत् उसको सुखका यथार्थ अनुभव होता नहीं यह नीति है, ताते वो सत् चैतन्य देव अपने स्वरूप भूत स्वाभाविक सामान्य आनन्दको विशेषता से अनुभवकरने की इच्छा से अपने विषे नामरूपकी विशेषतारूप द्वंद्वको (जो कि वाचारंभणमात्र है) खड़ाकर पुनः तिस विषे आप अपने आभासरूप से प्रवेशकर तिसविषे दुःखभोग के हुए निमित्त से अपने स्वरूप भूत सामान्य आनन्दको विशेषतासे यथार्थ साक्षात् अनुभव करता है । अतएव उस सत् चैतन्य सर्वज्ञ देव ने अपने स्वरूपानन्द को विशेषता से अनुभव करने के अर्थ जानबूझके इस दुःखास्पद प्रपंच में प्रवेश करने की इच्छा किया है-: ॥ हे सौम्य इस चिदाभास जीवको जो

कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि है सो तेजादि महाभूतों के सूक्ष्म कार्य बुद्धि आदिको संसर्ग जनित है, जैसे आदर्शबिषे पुरुषका अरु जलादि बिषे सूर्य्य का प्रतिबिम्ब होता है तिनबिषे जो मलिनत्व वक्रत्व कम्पत्व आदि धर्म क्रिया भासते हैं सो दर्पण जलादिकों के संसर्ग से भासते हैं स्वरूप से नहीं, अरु उस सत् चैतन्यका आभास (चिदाभास) बुद्धि आदि को साथ मिलने करके अपने वास्तविक बिम्बरूप सत्य स्वरूपके अविवेकरूप निमित्तसे अपने बिषे जीवकी वाच्यताको पायके मैं सुखी दुःखी कर्त्ता भोक्ता पापी पुण्यी स्वर्गी नारकी मूढ पंडित, इत्यादि प्रकारमान के अहंकार करताहै। अथवा उक्त निमित्तसे अपने वास्तविक स्वरूपके यथार्थ ज्ञानविषयक अविवेकता करके यह सत् चैतन्य देवका आभास जहां जिस उपाधि साथ मिलाहै तहां तिस उपाधि के धर्म कर्म अपनेविषे मानके सोई सो अहंकार करता है अर्थात् ईश्वरकी उपाधि साथमिलके ईश्वरका अहंकार करता है, हिरण्यगर्भकी उपाधि साथमिलके हिरण्यगर्भका विराट्की उपाधि साथमिलके विराड्का अहंकार करताहै, अरु तैसेही विश्व तैजस प्राज्ञकी उपाधि साथ मिलके विश्व तैजस प्राज्ञका अहंकार करताहै। अरु तैसेही पशु पक्षी सिंह सर्प श्वान शूकर सृगाल वृक चूहा चेंटी चाण्डाल मशक कीट पतंग वृक्ष पाषाण आदि स्थावर जंगम जिसजिस उपाधि साथ चिदाभासमिला तिस तिसके धर्म कर्म अपने विषे मान तिसका अहंकार करताहुआ कि यह मैं हौं यह मेरा धर्म कर्म है। इसप्रकार उस सत् चैतन्य देवका प्रतिविम्ब चिदाभास प्रपंच साथ मिलके अपने विषे अनेक प्रकारके अहंकारको धारता है ॥ सो भी केवल छायामात्र जीवरूपसे प्रवेश करने से है नतु उस सत् चैतन्य देवको स्वरूपसे, वास्तवकरके तो उस सत् चैतन्य देवको देहादिक अरु तिनके धर्मकर्मादिक तिन सर्व के संसर्ग संबन्ध रंचक मात्रभी नहीं। वो तो सदा सर्वदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्व से असंग नित्य निर्विकारही

है । जैसे पुरुष सूर्य्यादि दर्पण जलादि विषे अपनी छायामात्रसे प्रवेशपावने करके दर्पण ; जलादिकों के मलिनत्व कम्पत्वादि विकारों से संसर्ग सम्बंधको पावते नहीं । तैसेही सत् चैतन्य देवभी अपनी छायामात्रसे बुद्ध्यादि उपाधियों विषे प्रवेश करने से आप उनके धर्म कर्मादिकों से रंचकमात्र भी संसर्ग संबंधको पावता नहीं ॥ तथाच ।" सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यतेचाक्षुषै र्बाह्यदोषैरेकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दुःखेन बाह्य "।"आकाशवत् सर्व गतश्च नित्य, इति काठके "।" ध्यायतीवलेलायतीव "। इत्यादि वाजसनेयके ॥ः— हे सौम्य अब इसको और प्रकारसे भी श्रवणकरो । उस सत् चैतन्य देवने अपने स्वाभाविक सामान्य स्वरूपानन्दको बिशेषतासे अनुभव करनेकी कामनारूप हेतुसे अपने बहुतहोनेकी इच्छाकर इस दुःखास्पद नामरूपात्मक द्वंद्व को जो केवल वाचारंभणमात्रही है, रचके तिसविषे अपने आभास आत्मारूप से प्रवेश करता हुआ क्योंकि दुःख के अनुभवरूप निमित्त बिना सुखका यथार्थ अनुभव होवे नहीं । अरु प्रवेश करके शरीर प्राण इन्द्रिय बुद्ध्यादिरूप वस्त्र भूषण पहिर अर्थात् तिन करके आवृत्तहोय जीवका वाच्यरूप स्वांग धारणकर जीवस्वरूपा विद्या के अनुसार ' धन पुत्र स्त्री जीवन कर्म्म उपासना ज्ञानलोक परलोक पाप पुण्य स्वर्ग नरक सुख दुःख क्षुधा पिपासा रागद्वेष मान अपमान हर्ष शोक आदिकोंकी चिंतवनाकर तिनकी दृढ़ इच्छा वा कामनासे इस संसाररूप मंडप बिषे नृत्य करनेलगा, अरु उक्त मंडप विषे नृत्यकरते करते थकके जब दुःखितहुआ अरु वारम्बार के गर्भवास जन्म जरा मरणके अचिंत्य अपार दुःखोंका भानहुआ तब तिस दुःखकी अशेष निवृत्ति पूर्वक सुख प्राप्तकी इच्छाधार अज्ञानी वहिर्मुख पुरुषोंके बाक्य प्रमाण किसी जगह अग्निहोत्रादि कर्म करनेलगा किसीस्थानमें उपासना करनेलगा कहीं समाधि करके सुख माननेलगा, कहीं वेदाध्ययन से सुख

माननेलगा, किसी जगह तीर्थयात्रा वा तीर्थ में निवासकर सुख माननेलगा, कहीं देवी देवताके जप पाठ पूजनादिकरने से सुख मानने लगा, कहीं तन्त्रोक्त उपासना मद्यपानादि करके सुख माननेलगा, कहीं भूत प्रेतादिकोंकी उपासनाकर सुख मानने लगा, कहीं वर्णाश्रमकी धर्म मर्य्यादापालने करके सुख मानने लगा, कहीं तिसके त्यागने से सुख माननेलगा। हे सौम्य इत्यादि प्रकार सत् चैतन्य देवका आभासरूप जीव बुद्ध्यादि उपाधियों के संसर्ग जनित अपने स्वरूपानन्द सम्बन्धी अविवेकता करके दुःखितहोय दुःखकी निवृत्ति अरु सुखकी प्राप्ति के अर्थ कर्मपने आदिक अनेक स्वांगोंकाधार कर्मादि अनेक उपायों के करने रूप नृत्य करताहुआ परन्तु दुःखकी निवृत्ति पूर्वक इच्छित सुख प्राप्त न हुआ क्योंकि उक्त सर्व उपाय अविद्या के कार्य बहिर्मुख कर्त्तव्यता रूपहोने से संसार प्रापकही हैं ताते॥ हे सौम्य समूल दुःख की निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति केवल एक स्वस्वरूप के यथार्थ अनुभव ज्ञानसेही होती है अन्य कोई प्रकार से भी नहीं अरु तिसका परम उपाय तत्त्वमस्यादि, महावाक्योंका यथार्थ ज्ञानही है। "नान्यःपन्थाअयनाय"। "नान्यः पन्था विमुक्तये।"॥ शंका॥ हे भगवन् पूर्व आपने कर्तृत्व भोक्तृत्वादि सर्व चिदाभास विषे कहे हैं, अरु उसके बिम्बरूप सत् चैतन्यदेव को कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादिकों से रहित सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव कहाहै, परंतु हे भगवन् जैसे प्रतिबिम्ब की क्रिया पुरुष विषे जाती है तैसेही चिदाभास की क्रिया भी उस सत् चैतन्य देवविषे जाती होवेगी क्योंकि इस जाग्रत् के शरीर की छाया जो स्वप्न शरीर तिसको स्वप्नविषे जब सिंह सर्पादिकों का भयहोता है तब उस शरीर में भयजनित कम्पत्वादिकों के तीव्र संवेग होने से इस जाग्रत् के शरीरविषे भी कम्पत्वादि होते देखते हैं। तैसेही चिदाभासविषे हुए जे कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि सो भी उससत् चैतन्यदेवविषे अवश्य जाते होवेंगे॥ समाधान॥ हे सौम्य स्वप्न

शरीर है सो इस शरीर की छायाहोवे ऐसा प्रमाण अरु नियम नहीं क्योंकि स्वप्न में यह पुरुष कभी आपको मनुष्य कभी पशु कभी पक्षी इत्यादि देखताहै ताते, अरु स्वप्न शरीर बासना के अनुसार होता है ताते भी इसकी छाया नहीं । हे सौम्य स्वप्न शरीर का विशेष विचार तहां होगा जहां कहीं स्वप्नका निर्णय होवेगा क्योंकि यहां प्रसंग दूसरा है ॥ हे सौम्य अब सावधान होके श्रवण करो । हे प्रियदर्शन तुम जिस चिदाभासकी क्रिया सत् चैतन्यदेव विषे प्राप्तहोती मानते हो सो चिदाभासभी अक्रिय सत् चैतन्यदेवका प्रतिविम्ब होने से स्वरूप करके विम्बवत् अक्रिय निर्विकारही है क्योंकि बास्तव करके प्रतिविम्ब विम्ब के धर्म वालाही होता है ताते अरु जो अन्यथा भासताहै सो उपाधि के संसर्ग सम्बन्ध से भासताहै । हे सौम्य जैसे कड़ाह में भरे हुए अग्नि करके तपायमान अति उष्ण तेलविषे पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ताहै, परन्तु तहां भी बिचार करके देखिये तो वास्तव करके उस तेलके जलने घटने से प्रतिबिम्ब जलता घटता नहीं क्योंकि तेल तो जलने से घटताहै परन्तु तिसके साथ प्रतिविम्ब का कोई भी अवयव वा अंश घटता नहीं किन्तु आदि से अन्त पर्यन्त ज्योंका त्यों एक रसही रहताहै । अरु जो कदापि उस तेलके जलनेके साथ वो प्रतिबिम्ब भी जलता होवे तो तेलके अंश घटनेवत् प्रतिबिम्बके अंश भी घटने चाहिये परंतु सो घटता नहीं एतदर्थ वो जलता भी नहीं अरु जिस करके वो तेलके जलने घटने के साथ जलता घटता नहीं तिसही करके तेलके संसर्ग सम्बन्ध वाला भी नहीं, हे सौम्य जब वो प्रतिबिम्बही अपनी उपाधि अरु तिनके धर्म्म से सम्बन्ध वाला नहीं, अर्थात् जब उपाधि के धर्म्म क्रिया उपाधि विशिष्ट प्रतिबिम्ब विषेही वास्तव करके जाती नहीं तब तिसका बिम्ब विषे जाना तो किसी प्रकारसे भी संभवे नहीं । हे सौम्य उक्त दृष्टान्त प्रमाणही बुद्ध्यादि उपाधि विशिष्ट जो सत् चैतन्यका प्रतिबिम्ब

चिदाभास तिसविषे बुद्ध्यादिकों के जे कर्तृत्व भोक्तृत्व पापपुण्य राग द्वेष सुख दुःख शोक मोह क्षुधापिपासा जन्म मरण आदि धर्म्म सो वास्तव करके जाते नहीं गयेवत् भासतेहैं सो भ्रांतिहै, क्योंकि सो चिदाभासतो सत्यत्व चैतन्यत्व आनन्दत्व अक्रियत्व अविकारित्वआदि बिम्बधर्माहै ताते। हेसौम्य उक्तबिचार प्रमाण जब उपाधि विशिष्ट चिदाभासही अपनी उपाधि के धर्म्म कर्म संसर्ग सम्बन्ध से अलंगहै, अरु "। असंगोह्ययंपुरुषः" "। नलिप्यते कर्म्मणापापकेनेति"। "। नैनंछिंदंति शस्त्राणि"। इत्यादि श्रुति स्मृति भी तैसाही कहती है, तब उपाधि से पृथक् अविशिष्ट बिम्बरूप शुद्धसत् चैतन्य अक्रिय देवबिषे उपाधिके धर्म कर्मादिकों के संसर्ग सम्बन्धादिकों की प्राप्ति माननी अरु कहती केवल अविचारितहीहै। हेसौम्य जो कदापि सत् चैतन्यदेवका आभास जीव वास्तवकरके विकारीहोता तो उसकी सत्चैतन्यदेवकेसाथ अभेद एकता श्रुति कदापि न कहती सो तो आगेश्रुतिने "। तत्त्वमसि"। वाक्य करके आभास रूप जीवकी अरु विम्ब रूप सत्चैतन्य देवकी एकता कही है एतदर्थ भी वास्तव करके यह चिदाभास निर्विकारही है ॥ शंका ॥ हे भगवन् आप जिस सत्चैतन्य देवको निर्विकार अक्रिय कहते हो तिस विषे भी हमको क्रिया दृष्ट आवती है क्योंकि अहंकार विना क्रिया होती नहीं अरु अहंकार चैतन्य विना होता नहीं अरु सत्चैतन्यदेवसे इतर चैतन्य कोई है नहीं, अतएव समस्त ब्रह्मांडकी पाप पुण्यादि रूप क्रिया उस सत्चैतन्य देव विषेही प्राप्त होती है, अरु जीवतो क्रिया का स्वरूपही है। ताते आप उस सत्चैतन्य देव अरु तिसके आभास को अक्रिय निर्विकार कैसे कहते हो सो कृपा करके फेर कहो ॥ समाधान ॥ हे सौम्य वो सत्चैतन्य देव सदा निर्विकार अक्रिय ही है वो न कुछ आप करता है न उस विषे किसी की क्रिया जाती है। हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त और कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, हे प्रिय दर्शन जैसे कोई एक पुरुष अपने भोज-

नार्थ वटलोई आदि पात्रमें जलभर तंदुल आदि अन्न डाल अ-ग्नि पर चढ़ाय उसको पचावता वा रांधता है तहां जब वो अन्न अति उष्ण होय उबलता है तिस समय जो वो पुरुष उसको केवल अपने हाथही करके हिलावे तो उसका हाथ जले अरु न हिलावे तो पाक सिद्ध न होय अरु अब ऐसा होय तब वो पुरुष भूखा ही रहै। अतएव उस पुरुषने प्रथम विचार के अपने हाथ के बचावने अरु पाक क्रिया के सिद्ध होने के अर्थ मध्यमें एक कड़छुल (चम्मच) को रक्खा तब तिसके होने से उस पुरुषका हाथ भी न जला अरु क्रिया भी सर्व सिद्धहुई। हे सौम्य तैसेही उस सत्चैतन्य देवने अपने महत्त्व स्वरूपानन्द के विशेष अनु-भव करने की इच्छा किया तब प्रथम अपनी इच्छा रूपा माया साथ मिल विचार किया कि सृष्टि की रचनादिक क्रिया मुझ निर्विकार अक्रिय स्वभाव विषेतो बनती नहीं अरु न केवल इस इच्छा रूपा माया बिषे बनतीहै क्योंकि यह जड़ पराधीन है, औ संकल्प हमारा अपने महत्त्व स्वरूपानन्दको विशेषता से अनुभव करने का है सो नामरूप क्रियात्मक द्वंद्वरूप प्रपंच के खड़े किये विना होवे नहीं क्योंकि प्रतियोगी द्वंद्वरूप विशेषता के निमित्त विना निर्विशेष वस्तुका विशेषता से अनुभव होवे नहीं। अतएव अब ऐसा करना चाहिये कि जिसकरके अपना संकल्प भी सिद्धहोवे अरु लीला भी देखी जावे अरु अपने ज्योंके त्यों निर्विकारभी रहैं। हे सौम्य इसप्रकार विचारके उस चैतन्यदेवने क्रियाकी सिद्धिवास्ते अपने अरु मायाके मध्य कड़छुलवत् चिदा-भास संज्ञक अपने आभास को खड़ाकर पुनः उसको अपनी इच्छारूपा माया विषे डाल उस माया से नामरूप क्रियात्मक सर्व प्रपंच खड़ाकराया अरु तिसकी विचित्र लीला को आप साक्षीवत् देखता हुआ, अरु आप उस सर्व से पृथक् निर्विकार अक्रिय भी रहा, अरु तिस वाचारंभण मात्र अति तुच्छ नामरूप क्रियात्मक अति दुःखास्पद द्वंद्वरूप प्रपंचकी निमित्तता से चिदा-

भासद्वाराही तिस द्वंद्वप्रपंच से विपरीत अपने अद्वय सत् चैतन्य आनन्दघन निर्विशेष स्वरूपको अहं ब्रह्मास्मि भावरूप विशेषता से अनुभव कर अपने आप अलौकिक सर्वसे विलक्षण महत्त्वको देखता (अनुभव कर्त्ता) हुआ ॥ हे सौम्य वो सत् चैतन्य देव सदा निर्विकार अक्रियही है वो क्रियावान् विकारी कदापि होता नहीं। अरु अहंकारादि अन्तःकरणके धर्म्म हैं शुद्ध आत्मा के नहीं अरु अन्तःकरण अविद्या का कार्य होनेसे स्वरूप करके जड़ है जबउसबिषे चैतन्य आत्माका अभासप्रवेश करताहै, तब साभास हुआ अन्तःकरण अहंकारादि वृत्ति पूर्वक इन्द्रियों साथ मिल कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि क्रिया बिषे प्रवृत्तहोताहै, तिन सर्वको अन्तः-करण विशिष्ट चेतन (चिदाभास) अपने बिषे मानता है ताते शुद्ध सत् चैतन्य देव अपने स्वरूप करके अहंकारादि विकार उपाधि से रहित सदा शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव आनन्द घनही है॥ शंका॥ हे भगवन् जैसे जब बालक फेरी (चक्कर) देके भ्रमता है तब उसको ग्रहादि सर्वही भ्रमता भासता है, अरु कहता है कि यह सर्व भ्रमता है, परन्तु भ्रमता तो वो आप है अरु जिसको वो भ्रमता मानता है सो नहीं भ्रमता। हे प्रभो तैसेही सत्चैतन्य देव सर्व क्रिया विषे आपही है तब आप उसको अक्रिय निर्विकार कैसे कहते हो सो कृपा करके पुनः कहिये॥ समाधान॥ हे सौम्य अब इसको भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन उस बालक के भ्रमने से उसका अन्तःकरण वा चक्षु भ्रमता है अरु जब वो बालक भ्रमने से रहित होता है तब तिसके सम कालही उसके अन्तःकरण वा दृष्टिके स्थिर न होने से उसको सर्व भ्रमताहै भासता परन्तु उस कालमेंभी जो अन्तःकरण वा दृष्टिके भ्रमणका प्रकाशक साक्षी आत्माहै सो भ्रमता नहीं क्योंकि जो वो भी भ्रमता होय तो अन्तःकरण वा चक्षुके भ्रमणको अरु तिसके निमित्तसे भ्रमते भासमान जे अन्य ग्रहादिक तिसके भ्रमण को साक्षी होय के प्रकाशे कौन क्योंकि जो भ्रमणा-

दिक क्रियावान् होगा तिसको साक्षित्व बने नहीं । ताते हे सौम्य बालक के भ्रमण कालमें भी उसके अन्तःकरण चक्षुरादिकों के भ्रमण अरु अभ्रमण (स्थिरता) का जो साक्षी आत्मा है सो कदापि भ्रमता नहीं "। अचलोयं सनातन "। उस विषे जो भ्रमण भासता है सो भ्रम करके भासता है, तैसेही सर्वके प्रकाशक निर्विकार अक्रिय आत्मा विषे जो अहंकारादि क्रिया भासती है सो भ्रम करके भासती है वास्तव से वो अक्रिय ही है—: ॥ शंका ॥ हे भगवन् जैसे वाचारंभणमात्रत्व करके जीवको असत्यता की प्राप्ति है, तब तैसेही यहलोक परलोकादिक सर्व ही मिथ्या हुआ, तब श्रुति शास्त्र ऐसा क्यों कहते हैं कि इस जीवको इस कर्म्म से स्वर्गलोक की अरु इस कर्म से नरक लोक की अरु अमुक कर्म्म से इस लोक की प्राप्ति होती है ॥ समाधान ॥ हेसौम्य यह दोष नहीं क्योंकि सत्चैतन्य सर्वाधिष्ठान आत्माकी सत्यताका अंगीकार है ताते । हे सौम्य सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य देवकी सत्यता से तिस बिषे अध्यस्त समस्त नामरूप क्रियात्मक यहलोक परलोक जीवादि सर्व सत्यही है, अरु उन अध्यस्थोंकी पृथक् सत्ताके अभाव से आभासादि सर्व विकार प्रपंच "वाचारंभणं विकारो नामधेयं" इस श्रुतिवाक्य करके असत्ही है ॥ अर्थात् अधिष्ठानकी सत्यतासेसर्व अध्यस्त प्रपंच सत्यहै तो आभास भी सत्यहै, अरु जो अध्यस्त प्रपंचकी पृथक् सत्ताके अभाव से सर्व प्रपंच वाचारंभणमात्रहीहै तो आभास (जीव) भी वाचारंभण मात्रहीहै॥:— हे भगवन् कोई एक आचार्य इस जीवको लोक परलोकके आश्रय कहते हैं अरु लोक परलोकको जीव के आश्रय कहते हैं, अर्थात् लोक परलोक को अरु जीवको अन्योन्य आश्रय कहते हैं,अरु आपजीव को सत् चैतन्य के आश्रय कहतेहो, अरु आपने सत् चैतन्य अरु तिसका आभास जीव इनदोनों को वास्तव करके निर्विकार ही कहाहै । हे प्रभो जब यह ऐसेही हैं तब यह लोक परलोक

वेदशास्त्र आचार्य जीव ईश्वर गुरु शिष्य कर्म्म उपासना पाप पुण्य स्वर्ग नरक आदि सर्वही मिथ्याहुए, ॥समाधान॥ हे सौम्य जिस समय यह पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ट आचार्य से तत्त्वमस्यादि महावाक्यों को क्यों श्रवणकर अपने वास्तविक सच्चिदानन्द अद्वयस्वरूपको यथार्थ अनुभव दृष्टिसे देखताहै तिस समय अपने वास्तविक सत् चैतन्य सर्वाधिष्ठान स्वरूप बिषे अध्यस्तजे आभासत्वादि लोक परलोक वेदशास्त्र जीव ईश्वर गुरु शिष्य कर्म उपासना पाप पुण्य आदि सर्व असत्ही होता है। तथाच "अत्र पिताऽपिताभवति माताऽमाता लोका ऽलोका देवाऽदेवा वेदा ऽवेदाः। इत्यादि" अन्य श्रुतियोंके प्रमाणसे। अरु जब यहजीव अपने जीवत्व भाव से प्रपंचकी ओर दृष्टि करताहै तब तिस समय इसको लोक परलोक वेद शास्त्र जीव ईश्वर गुरु शिष्य कर्म्म उपासना आदि पृथक् २ नाना प्रपंच सत्य है। हे सौम्य जैसे यावत् यह पुरुष स्वप्न में होताहै तावत् उसको स्वप्नका शुभाशुभ सर्व प्रपंच सत्यही होताहै तिस अवस्था में यह नहीं जानता जो मैं यह स्वप्न देखताहौं यह सर्व असत्य है, अरु जब जाग्रदवस्था को प्राप्त होता है तब अपने स्वप्नके देह सहित स्वप्न के सर्व प्रपंच को मिथ्या देखत सन्ते एक अपने आपको स्वप्नादिकों का साक्षी सत्यरूप देखता है। हे सौम्य तैसेही यह जीव यावत् अपने वास्तविक सत् चैतन्य स्वरूप बिषे यथार्थ अनुभव रूपसे जागता नहीं तावत् अविद्या दोषकरके उसको लोक परलोकादि सर्वप्रपंच सत्यही है। अरु जब स्वरूपकी ओर आचार्य द्वारा वेद बाक्यों का जगाया जागता है, तब लोक परलोकादि सर्व नामरूप क्रियात्मक प्रपंच स्वप्नवत् मिथ्याही देखताहै। हे सौम्य यहसर्व इसकी वृत्तिके आश्रयहै जहां जैसी वृत्तिसे देखताहै तहां तैसाही भासताहै। अरु जब अपनी सर्व वृत्तिको आपबिषे लय करता है तब सत् असत् जड़ चैतन्य भाव अभाव इत्यादि सर्व के अभावसे अस्तिमात्र अनिर्वाच्य अपना आप ज्यों कात्यों है—: २॥

तासां त्रिवृतंत्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयंदेवते मास्तिस्रोदेवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन तीनों देवताओं (तत्त्वों) के तीन तीन विभागकरके एक एकका त्रिवृतकरण करना चाहिये । इसप्रकार बिचारके सो सत्चैतन्य देव इनतीनों देवताविषे यथोक्त जीवरूपसे आप प्रवेशकर नामरूपको प्रकट करताहुआ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हेसौम्य, तिसके अनन्तर शब्दात्मक सर्वव्यवहार विकारोंका सत् चैतन्य सर्व्वाधिष्ठान के सत्यत्व से सत्यपना, अरु सत्य अधिष्ठान से इतर अध्यस्तपने करके मिथ्यापना युक्तही है, इस में कोई भी दोष नहीं । यहां तार्किकलोग कुछ भी कहने को शक्य नहीं । हे सौम्य [यह जो तार्किक कहतेहैं कि (हे वेदान्ती जो तुम) प्रपंच को मिथ्या मानोगे तो तुम्हारी सौगत मतमें अनुमति होवेगी अरु जो तुम प्रपंच को सत्यमानोगे तो तुम्हारे अद्वैत मतकी हानिहोवेगी । सो उक्तप्रकार के न्यायकरके उनका कथन मिथ्याही है] क्योंकि उनका जो कथन है सो श्रुति प्रमाण से रहित स्वबुद्धि की कल्पना काहै, अतएव हम उनको अतत्त्वनिष्ठ कहने को शक्य हैं ॥ हे सौम्य सो चैतन्यदेव उक्तप्रकार विचार करके पुनः विचार करताहुआ कि तिन तीनों देवताओंका एक एक का त्रिवृत त्रिवृत (तीन तीन विभागकरके) त्रिवृत करणकरो, क्योंकि इनके अत्रिवृत करणविषे सर्व नामरूप छिपे हुए हैं, सो त्रिवृत करण होनेसे पृथक् २ प्रकट होवेंगे, अरु इन तीनों देवताओंका अमिश्रित पृथक् २ त्रिवृत करण होनेसे रज्जुवत् एक सम त्रिवृत करण होवेगा, अर्थात् रज्जुविषे एक मुंज नामक वस्तुकाही त्रिवृत् करण त्रिवल्ली है, तैसे होनेसे एक एक

वस्तुविषे तीनों तत्त्वोंका पृथक् २ नामरूप प्रकट न होवेगा, ताते प्रथम तीनों तत्त्वोंका तीन तीन विभाग करके पश्चात् तिनका मिश्रित त्रिवृत करण करना चाहिये ॥ :—अर्थात् एक तत्त्वका मुख्य भागलेके तिसमें अन्य दो तत्त्वोंका थोड़ा थोड़ा भाग मिलाय तीनोंका पृथक् २ त्रिवृत करण होनेसे सर्व के नामरूप पृथक् २ प्रकट होवेंगे कि यह मुख्य तेजतत्त्व के त्रिवृत करणका नामरूप कार्य्यहै, यह मुख्य जल तत्त्वके त्रिवृत करण का नाम रूप कार्य है, यह अन्न (पृथिवी) तत्त्व के त्रिवृत करण का नाम रूप कार्य है, अरु ऐसा होने से एक एक वस्तुविषे तीनों तत्त्वोंका नामरूप प्रकट होवेगा—: ॥ हे सौम्य इसप्रकार वो सत् चैतन्यदेव विचार केइन तेज जल अन्न (पृथिवी) तिन देवता विषे इसही अपने आभास जीवरूपसे सूर्य्य के प्रतिबिम्बवत् अन्तः प्रवेश करके प्रथम विराड् सम्बन्धी देवता पिण्डविषे (अर्थात् विराड् देहके अवयवरूप प्रकाशवान् देवताविषे) प्रवेश करके जैसा अपना पूर्वका संकल्पहै कि मैं सर्व के नामरूपको पृथक् २ प्रगट करों तैसाही करताहुआ॥:— हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार इच्छाकरके पुनः वो सत् चैतन्य देव बिचारताहुआ कि अब इन तीनों तत्त्व रूप देवताओं को प्रथम पृथक् २ त्रिधाकरना चाहिये पश्चात् इन तीनों का त्रिवृत करण करना चहिये क्योंकि इन तीनों तत्त्वोंके अत्रिवृत करणविषे सर्व के नामरूप छिपेहुए हैं जब इन तीनों का पृथक् २ त्रिवृत करण होवेगा तब सर्व के नामरूप पृथक् २ प्रकट होवेंगे। जैसे बटके महा सूक्ष्म वीजविषे वृक्षका नामरूप छिपाहोता है तैसेही इन सूक्ष्म भूतों के अत्रिवृतकरण विषे सर्व ब्रह्माण्डका नामरूप छिपाहुआहै। अतएव इन तीनों के त्रिवृत करण (मिश्रित) हुए विना सर्व ब्रह्माण्डका नामरूप पृथक् २ प्रकट होनेका नहीं। इस प्रकार विचारके वो सत् चैतन्य देव अपने आप आभास रूपसे उक्त तीनों देवताओं विषे प्रवेश करताहुआ —:॥ ३ ॥

तासां त्रिवितं त्रिवितमेकैकामकरोद्यथा तु खलु सौ म्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्तिवृदेकैका भवति तन्मेविजा नीहीति ४ ॥ इतितृतीयखण्डः ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन देवताओं का त्रिवृत त्रिवृत (तीन तीन विभाग) एक एकका करताहुआ। हे सौम्य जैसे तो निश्चय करके तीनों देवता का एक एक त्रिवृत त्रिवृत हुएहैं तिनको मेरे कहे प्रमाण विस्पष्ट जानो ४ ॥ इति तृतीयखण्डः ३ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य, वो सत् चैतन्य देव उक्तप्रकार बिचार पश्चात् तेज जल पृथिवी इन तीनों अत्रिवृत कृत देवता बिषे प्रवेश करता हुआ। पश्चात् उन तीनों तत्त्वोंके तीन तीन विभाग करता हुआ तहां प्रथम एक एक तत्त्वके दो दो विभाग किये, तदनन्तर उन दो दो भागोंमें से एक एक भागको जुदारख एक एक के दो दो भाग करता हुआ। अर्थात् प्रथम तेज तत्त्व के दो विभाग किये तिनमें से एक अर्द्ध भागको पृथक् रख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दो विभाग किये। तैसेही जल तत्त्व के प्रथम दो विभाग किये तिनमें से एक अर्द्ध भागको जुदारख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दो विभाग किये। तैसेही पृथिवी तत्त्व के प्रथम दो विभाग किये तिनमें से एकको पृथक् रख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दो विभाग किये। इस प्रकार सत् चैतन्य देवने तेजादि तीनों तत्त्वों विषे अपने आभास रूपने प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार उन तीनों तत्त्वोंके उक्त प्रकार तीनतीन विभागकिये, तिसके पश्चात् उनका त्रिवृत करण करता हुआ, तहां तेज तत्त्व का जो अर्द्ध भाग है तिसमें जल तत्त्व अरु पृथिवी तत्त्व के अर्द्धभाग के दो दो भागों में से एक एक भाग मिलावता हुआ। पश्चात् जल तत्त्व के अर्द्ध भाग को मुख्यकर तिसमें तेज तत्त्व के अरु पृथिवी

अथ षष्ठप्रपाठके चतुर्थ खंडः ॥

यदग्ने रोहितछं रूपंतेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णंतदन्नस्यापागादग्ने अग्नित्वं वाचारम्भणं विकारोनामधेयं त्रीणिरूपाणीतिसत्यम् ॥ १ ॥ यदादित्यस्य रोहितछंरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादित्यसादित्यत्वं वाचारम्भणंविकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीति सत्यम् ॥ २ ॥ यच्चन्द्रमसोरोहितछंरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चंद्रत्वं वाचारम्भणंविकारोनामधेयंत्रीणि रूपाणीति सत्यम् ॥ ३ ॥ यद्विद्युतोरोहितछंरूपंतेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्वं वाचारम्भणंविकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीति सत्यम् ॥ ४ ॥

तत्त्व के अर्द्ध भाग के दोदो भागोंमें से एक एक भाग मिलावता हुआ पश्चात् पृथिवी तत्त्व के अर्द्ध भागको मुख्यकर तिसमें तेज तत्त्व अरु जल तत्त्व के अर्द्ध अर्द्ध भागों के दो दो भागों मेंसे एक एक भाग मिलावता हुआ ॥ हे सौम्य इस प्रकार सत् चैतन्य परादेव अपनी इच्छानुसार सर्व नाम रूपको पृथक् २ प्रकट करने के अर्थ उक्त तीनों तत्त्वों का पृथक् पृथक् त्रिवृत करण करता हुआ, देवतादि पिण्डों का नाम रूपकरके व्याकृतों का (प्रकट हुओंका) तेज जल पृथिवीमयत्व करके त्रिधात्व जिस प्रकार तो निश्चय करके इस शरीर से वाह्य तीनों तत्त्व एक एकका त्रिवृत २ करण जिस प्रकार हुआ है तिसको मेरे कहे प्रमाण (कि जैसे मैं अग्रिम कहता हौं) उदाहरण से विस्पष्ट जान लेवो वा जानोगे॥ ४ ॥ इतितृतीयखंडः ॥ ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो अग्नि विषे रोहित (रक्त वा लाल) रूप (रंग) है सो तेजका रूपहै, जो शुक्ल (श्वेत) ताहै सो जलका रूपहै, जो कृष्ण (श्याम) ताहै सो अन्न (पृथिवी) कारूप है । इन तीनों को पृथक् करने से अग्नि बिषे अग्नित्व वाचा से आरंभकिया विकार कहने मात्रहीहै (अर्थात् उक्त तीनों रूपोंको 'जो क्रमशः तीनों तत्त्वोंके हैं, पृथक् करने से अग्नि बिषे अग्नित्व बिकार केवल कहने मात्रही है । अरु उक्त तीनोंरूप हैं सोई सत्य हैं (सत् चैतन्य देवका कार्य होनेसे) । इस प्रकारही 'आदित्य, चन्द्रमा, अरु विद्युत, इन तीनों बिषे भी, अरु अन्य सर्व नामरूपात्मक कार्य विषे भी, जानलेना १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ भावार्थ खंड चौथेके मन्त्र चारका ॥

हे सौम्य, तहां यह कहते हैं । हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु जो इस लोक प्रसिद्ध अग्निविषे अरुणतारूप (रूप उसको कहते हैं जो केवल चक्षु इन्द्रियों का विषयहोय, रंग) है सो अत्रिवृत्कृत तेज का रूपहै, ऐसाजानो । अरु तैसे पुनः उक्त अग्निविषे जो श्वेततारूप है सो अत्रिवृत्कृत जलका रूपहै, ऐसाजानो । अरु जो उक्त अग्निविषे कृष्णतारूपहै सो अत्रिवृत्कृत अन्न (पृथिवी) का रूपहै, ऐसाजानो । हे सौम्य जब ऐसाहै तब अग्नि से तीनों रूपोंको पृथक् होने करके उक्त तीनों रूपोंसे व्यतिरेक (जुदा) करके जिस अग्निको तू मानताहै तिस अग्निका अग्नित्व जाता रहता है । अर्थात् उक्त रूपत्रयके विवेक होने से पूर्व जो तेज विषे अग्नि बुद्धिरही सो रूपत्रयके विवेकहोने पश्चात् अभाव होजाती है । जैसे रक्त उपधान वा लालरंग करके युक्त दृश्यमान स्फटिकमणि यह पद्मराग (माणिकनामवाला रत्न) है इस शब्द बुद्धिकरके ग्रहण होताहै, सो लालरंगके उपधान (अर्थात् उपधान नाम विछवनेकाहै परंतु यहां उपधान शब्दकरके उस रक्तवर्ण के ढंकका ग्रहणहै कि जिसके श्वेतरंगके नगी ने

के नीचे लगाने से श्वेतनगीना रक्तवर्ण का प्रतीत होता है) अरु स्फटिकमणिके यथार्थ विवेकहोने से पूर्व होताहै। अरु रक्त उपधान अरु शुद्ध स्फटिकमणि के यथार्थ विवेक होनेसे तो, यह पद्मरागहै, यह शब्द (कहना) अरु बुद्धि (जानना) निवृत्तहोता है। अर्थात् रक्त उपधान अरु अरु स्फटिकमणि के सम्यक् विवेक होने से, यह पद्मराग है, ऐसा जो अविवेक जन्य कहना अरु मानना सो निवृत्तहोजाताहै। तैसेही अग्निविषे प्रत्यक्षभासमान रूपत्रय तिनके अविवेक से, यह अग्निहै, ऐसा जो कहना अरु मानना सो रूपत्रयकेयथार्थविवेककेहुएनिवृत्तहोजाताहै॥ शंका॥ ननु, यहां जो बुद्धिशब्दकी कल्पनाकरतेहौ सोतिसकरकेक्याकरता है, ऐसा क्योंनहीं कहते कि रूपत्रयके विवेकहोनेसे पूर्व अग्निहीहै तिस अग्निका अग्नित्व लोपितादि रूपत्रय के विवेक होने से निवृत्त होजाताहै, अर्थात् अग्निसे रूपत्रयके पृथक् होने से अग्नि के अग्नित्वका अभाव होजाता है जैसे पट से तन्तुओं के पृथक् करने से पटका अभाव होजाता है तैसे। इसप्रकार कहना युक्त है॥ समाधान॥ ऐसा नहीं किंतु बुद्धि शब्दमात्रही अग्नि है (अर्थात् रूपत्रय के अविवेक से ही अग्नि कहने जाननेमात्रहै) ऐसा श्रुतिका कहना है सो कहते हैं। अग्नि नाम वाला जो विकार है सो विकार वाणी से आरम्भ किया कहने मात्रही है वास्तव से नहीं, अतएव अग्नि बुद्धि भी मिथ्याही है। प्रश्न॥ हे भगवन् जब अग्निबिषे अग्नित्व केवल वाचारम्भण मात्रही है तब तहां सत्य क्याहै॥ उत्तर॥ हे सौम्य तहां रक्तादि तीनों रूपही सत्यहैं (सत् चैतन्यका अन्वयकार्य होनेसे) उक्ततीनोंरूपों से पृथक् करके एक अणुमात्र भी सत्य नहीं, केवल वाचारंभण मात्रही होनेसे, ऐसा निश्चय धारनेके अर्थ मूलसे इति, शब्द है॥ हे सौम्य जैसे यह अग्नि के अग्निपनेका बिचार कहा है तैसाही 'आदित्यके आदित्यत्वका, चन्द्रमाके चन्द्रत्व का, विद्युत् के विद्युत्त्व का, बिचार जानलेना क्योंकि अग्नि आदि चारोंके बिषे श्रुति

का कहना समानहीं है । शंका ॥ हे भगवन् " यथानुखलु सौम्ये मास्तिस्रो देवतात्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति " आपने जैसे तो निश्चय करके तीनों देवता एक एकका त्रिवृत हुआ है तिसको मेरे कहे प्रमाण जानो, ऐसा कहाहै । परन्तु उक्त अग्नि आदिकोंके चारों उदाहरणों करके जो आपने त्रिवृत करण देखाया तिसमें एक तेजहीके रूप विषयको देखाया अथवा उक्त तीनोंका त्रिवृत करण केवल तेजोमयमें ही नहीं देखाया परन्तु जल पृथिवी का जो रस, गंध, विषय है सो आपने उक्त त्रिवृत करण बिषे वा उक्त प्रकार त्रिवृत करण जल अन्न बिषे नहीं देखाये ॥ समाधान ॥ [जो वापी कूपादि बिषे अरुणता है सो तेजकी है जो शुक्लता है सो जलकी है, जो कृष्णता है सो अन्न (पृथिवी) की है । तैसेही ब्रीहि यवादिकों बिषे जो रक्तता है सो तेजकी है, अरु जो श्वेतता है सो जल की है, अरु जो कृष्णता है सो पृथिवी की है इत्यादि उदाहरणों का संभव होने से उक्त उदाहरणों विषे कुछ भी न्यूनता नहीं, इस प्रकार वादी की शंका का परिहार करते हैं] हे वादी यह दोष नहीं हे सौम्य (तेज तत्त्व के गुण रूपके साथ) जल अरु अन्नके गुणों का भी उदाहरण हुआ ऐसाही जानना चाहिये, इसप्रकार श्रुति मानती (कहती है) अरु अग्नि आदिक तेजवानों का जो उदाहरण कहा है सो उपलक्षण मात्र है परन्तु सर्वत्र जानना चाहिये । अरु तेज तत्त्वका गुण (तनमात्रा) जो रूप तिसका स्पष्ट ग्रहण होता है, नेत्रका विषय होने से, अतएव अग्न्यादिकों के उदाहरणों विषे तीनों तत्त्वों के एक रूपके उदाहरण होने से एक तेज तत्त्व के गुण वा विषय का ही उदाहरण स्पष्ट है, गंध, रसका अन्न उदाहरण है, तीनों के उदाहरण के असंभव से । क्योंकि तेजके गुण, रस, गंध, होते नहीं ॥ः—अर्थात् तेज तत्त्व का गुण रूप है, रस, गंध, नहीं, अरु तेज तत्त्व का कार्य्य जल है तिसमें शुक्लतारूप कारण तेज का है अरु रस स्वयं जल

का गुण है। अरु जल पृथिवी का कारण है तिस विषे अपने कार्य का गुण गंध नहीं, अरु जलके कार्य्य पृथिवी विषे रस गुण अपने कारण जल का है अरु गंध गुण स्वयं पृथिवी का है सो उसके कारण जलमें नहीं। अर्थात् जो कारण का गुण होता है सो उसके कार्य विषे भी होता है, अरु जो स्वयं कार्यका गुण होता है सो कारण विषे होवे नहीं॥ अरु जो तेज तत्त्वका गुण रूप है सो नेत्रों का विषय होने से स्पष्ट भान होता है, तैसे जल पृथिवी के जे विशेष गुण, रस, गंध, सो नेत्रों के विषय न होने से स्पष्ट इदं करके भान होवे नहीं, परन्तु उनके कारण तेज तत्त्वके गुण रूप के ग्रहणके साथ उन कार्यों के स्पष्ट गुणों का भी ग्रहण होता है (हे सौम्य यहां जो, रस, गंध को स्पष्टता कही है सो केवल उनको नेत्रों का विषयत्व न होने मात्र जाननी नतु रसना घ्राणकरके तो सोभी स्पष्टही है) हे सौम्य अभिप्राय यहहै कि अग्नि आदि तेजवानों विषे तीनों तत्त्वों के रूपों काही स्पष्ट उदाहरण होने से एक तेज तत्त्वकेही गुणका उदाहरण हुआ स्पष्ट भासे है, परन्तु श्रुतिने श्वेतता जलकी अरु कृष्णता पृथिवी की कही है, ताते जल पृथिवी की श्वेतता श्यामताके (जो कि उनके कारण तेजके गुणहैं) ग्रहण के साथही उनके स्वयं रस गंध गुणोंका भी ग्रहण होताहै, मंचाकर्षति न्यायवत्, ताते उक्त उदाहरणों विषे जल पृथिवी के रूपके कथनके साथ उनके रस गंध गुणोंका भी कथनहुआ जानना—॥ हे प्रियदर्शन उक्त अग्नि आदिकों विषे, शब्द, स्पर्श, जो आकाश अरु वायुके गुणहैं, तिनका भी अन उदाहरणही है, क्योंकि उन विषेरूपके अभावहै 'यह शब्दकारूपहै, यह स्पर्शका रूपहै, इसप्रकारके विभागको देखावने की अशक्यता है ताते॥:— अर्थात् त्रिवृत्कृत अग्नि आदिकोंविषे तेज जल पृथिवीके, रक्त, श्वेत, श्याम यह तीन रूप उदाहृत हैं, तैसे आकाश वायुके रूप उदाहृत नहीं, उनको अरूप होनेसे। परन्तु त्रिवृत्कृत जे अग्नि आदिकहैं सो शब्द स्पर्श

करके युक्तहैं, अतएव उन अग्नि आदिकों विषे एक रूपगुणके उदाहरण रूप उपलक्षण करके पाँचों तत्त्वोंके गुणोंका उदाहरण हुआ जानना। अरु अग्नि आदिक तेजवानों विषे जो एक रूप गुणकाही उदाहरण है सो उस रूप गुणको चक्षुका विषयत्व होने से स्पष्टताहै एतदर्थ उस स्पष्ट गुणको उपलक्षण मात्रसे विशेष ग्रहणकरके सर्व तत्त्वोंका अरु तत्त्वों के गुणोंका उदाहरण हुआ जानना ॥—: ॥

शंका ॥ हे भगवन् जैसे अग्नि आदि त्रिवृत्कृत हैं, तैसे सर्व जगत् त्रिवृत्कृत है, अरु जैसे अग्निसे तीनों रूपों को पृथक् करने से अग्नि के अग्नित्व के अभाववत् समस्त जगत् से उक्त तीनों रूपों (तत्त्वों) के पृथक् करने से जगत् के जगत्त्व का अभावहोता है, सो अस्तु, परन्तु तीनों रूपतो सत्यहैं। तब कैसे अणुमात्र भी अवशेष नहीं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य जैसे तीनों रूपों का कार्य जे नाम रूपात्मक जगत् तिससे जब कारण भूत तीनों तत्त्वों को पृथक् करिये तब कार्य की पृथक् सत्ता के अभाव से जगत् के जगत्त्व के अभाव होनेवत्, अन्न को भी जलका अंकुर (कार्य) होने से (अर्थात् प्रसंग रूपों का चलाहै ताते अन्न शब्द करके तिसके कृष्ण रूपको जल के शुक्ल रूपका अंकुर (कार्य) होनेसे शुक्लपनाही सत्य है, कृष्ण रूप का कृष्णत्व वाचारंभण मात्रही है) अन्न का अन्नत्व वाचारंभण मात्रहोने से जलही सत्य है। तैसेही जलको भी तेजका अंकुर (कार्य) होनेसे जल के जलत्वको वाचारंभण मात्रपनेके हुए तहां तेजही सत्य है (अर्थात् जल शब्द करके जल के शुक्लरूप को तेजके रक्त रूपकी कार्य होने से शुक्लता को वाचारंभण मात्रता के हुए रक्त रूपही सत्य है) तैसेही तेजको भी सत् चैतन्य का अंकुर (कार्य) होने से उसको वाचारंभण मात्रता के हुए तहां एक सत् चैतन्यही सत्य है (अर्थात् तेज शब्द करके लक्षित रक्त रूपको सत् चैतन्य का अंकुर (कार्य) होने से अरु

कारण से कार्य्य की पृथक् सत्ताको अभाव रूपता नियमित निश्चय के हुए उस रक्तरूप वा तिस करके लक्षित तेज तत्त्वको केवल वाचारंभण मात्रता के हुए एक सर्व का परा कारण सत् चैतन्यही सत्यहै। इस प्रकार यह श्रुत्यर्थ विवक्षित है॥ हे सौम्य उक्तप्रकार होने से सत् चैतन्य से भिन्न करके एक अणुमात्र भी सत्य नहीं "नात्र काचन भिदास्ति" इस प्रकार के निश्चय को धारण करो॥

प्रश्न॥ हे भगवन् अन्य श्रुत्याचार्य्योंने इसब्रह्मांडकी उत्पत्ति पांच तत्त्वों के पंचीकारण से कही है अरु आप इसको तीन तत्त्वों के त्रिवृत करण से कहते हो। हे भगवन् पूर्व आपने मृत्तिका सुवर्ण अरु लोह, इन तीनों के दृष्टान्तसे यह प्रतिज्ञा कहाहै कि एकके जानने से सर्व जानाजाताहै। परन्तु त्रिवृतकरणकी रीतिसे अरु अग्नि आदिकों के उदाहरण से एक सत् के जानने से तीन तत्त्व अरु तिनका सर्व कार्य्य जानाजाताहै सो अस्तु परन्तु जिन आकाश वायुका त्रिवृत करण कहा नहीं अरु अग्नि आदिकोंके उदाहरण विषे जिनका रूप देखाया नहीं अरु जिनको सत्यकरके कहा नहीं तिन आकाश वायुका जानना तो अवशेषरहा तब उक्त प्रतिज्ञा कैसे बनेगी कि एकके जानने से सर्व जानाजाताहै। अवएव हे भगवन् यहां जैसा जाननाचाहिये तैसा आप कृपाकरके कहिये॥ उत्तर॥ हे सौम्य तैत्तरेय अरु एतरेय उपनिषदों विषे सत् चैतन्य आत्मासे आकाशादि पांचों तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्ति कहीहै पश्चात् उन पांचोंतत्त्वोंके पंचीकरणसे समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् की उत्पत्ति कही है। अरु भगवान् व्यासदेवजी ने भी अपने ब्रह्म सूत्र (वेदान्त शास्त्र) विषे जहां सृष्टिक्रम कहाहै तहां तैत्तरेय उपनिषद् प्रमाण पंचभूतों से ही कहाहै। अरु यह जो श्रुतिने तीनतत्त्वों के त्रिधाकरण वा त्रिवृत्करण द्वारा नामरूपकी उत्पत्ति कही है। अतएव सृष्टिक्रम में परस्पर भेद होने से यह प्रतीत होताहै कि इन सर्व

श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टिक्रमके कहनेपर न होके एक अद्वैत के कहनेपरहै, क्योंकि जहां जिस श्रुतिने सृष्टि कही है तहां तिसने 'सत्, आत्मा, अक्षर, इत्यादि नाम भेदसे एकही कारण से कही है अरु तिस कहने से सर्व ने एक अद्वैतही लक्ष कराया है क्योंकि सर्व के अद्वैत बोधकत्व में भेद नहीं ताते त्रिधाकरण वा पंचीकरण के कथनपर श्रुतिका तात्पर्य नहीं किन्तु सर्व श्रुतियों का जो एक अद्वैत के लक्षण करावने पर तात्पर्य है तिस विषय में रंचकमात्र भी विरुद्ध नहीं । हे सौम्य यहां जो श्रुतिने त्रिधाकरण कहाहै सो सत् चैतन्य देवका संकल्प जो नाम रूप दोनों के प्रकट करने का है तिसके अनुसार कहाहै क्योंकि नाम अरु रूप यह दोनों 'तेज, जल, पृथिवी, इनतीनों तत्त्वों मेंही घटित है । अरु, आकाश, वायु, इन दोनों तत्त्वों विषे रूपके असंभवसे नाम अरु रूप दोनों संभवे नहीं । अरु वृहदारण्यक उपनिषद् विषे आकाश अरु वायु इन दोनों तत्त्वोंको अमूर्त्त कहाहै, अरु जो अमूर्त्त होताहै सो अरूप भी होताहै, एतदर्थ भी उन आकाश वायु दोनों विषे रूप संभवे नहीं क्योंकि रूपका आश्रय मूर्त्त द्रव्यहीहै, जैसे नील पीतादि रूपोंका आश्रय घट, अरु 'तेज, जल, पृथिवी, इन तीनों तत्त्वोंको मूर्त्त करके कहाहै ताते इन मूर्त्त तत्त्वों विषे नाम अरु रूप दोनोंका संभवहै । अतएव तात्पर्य यह है जो इस श्रुतिने नामरूप दोनों देखावना है एतदर्थ तीनों तत्त्वोंके त्रिवृतकरण से सर्व जगत् के नामरूप की सिद्धि देखाई है ॥ हे सौम्य जैसे त्रिवृतकरण की रीति से तीनों तत्त्वोंके पृथक् हुए समस्त जगत् वाचारंभणमात्रही होता है, अरु तीनों तत्त्व सत् चैतन्यका कार्य होनेसे सत्यरूपहै परन्तु उनकी भी सत् चैतन्य से पृथक् सत्ताके अभाव से सत् चैतन्य से पृथक् करके सोभी वाचारंभणमात्रही है, ताते सबका पराकरण सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यही सत्यहै अरु तिस सर्वाधिष्ठान की सत्यताके आश्रय अध्यस्त जगत् भी सत्यहै । हे सौम्य तैसेही

पंचीकरण की रीति प्रमाण पंच तत्त्वात्मक जगत् से पाचों तत्त्वों के पृथक् हुए जगत् केवल कहने मात्रहीहै वो पांचों तत्त्व ही सत्यहैं, परन्तु तिनकी भी सत् कारण से पृथक् सत्ताके अभाव से उनको भी वाचारंभणमात्रताके हुए एक सत् चैतन्यही सत्यहै, तिस एक सत् के जानने से तदाश्रितकार्य सर्वसत् जाना जाताहै। जैसे एक मृत्तिका के जाननेसे घटादिक सर्व जानेजाते हैं तैसे। अतएव त्रिवृत्करण की रीतिसे वा पंचीकरणकी रीति से कार्य्य कारणात्मक सर्व नामरूप प्रपंच वाचारंभणमात्रहुआ एकसत् चैतन्य सर्वाधिष्ठान देवही सत्य है। इति सिद्धमेव भवति" हे सौम्य वेद भगवान्ने जिज्ञासियों को अद्वैत 'जो अभयत्व प्रापिका परमहेतु है, निश्चय करावना है, अतएव वेद जिस क्रमसे जिज्ञासुओंको अद्वैत निष्ठामें प्राप्तहोते जानेहैं तिसही क्रमसे ब्रह्मवित् आचार्य्य द्वारा होके साक्षात् वेद वा ब्रह्म अद्वैत तत्त्वका निश्चय करावैहै, क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" इत्यादि प्रमाण से ब्रह्मवेत्ताही ब्रह्महै-:॥

हे सौम्य, पूर्व हमारे कुल बिषे जो सर्वज्ञ हुए हैं सो उक्त प्रकार बिचार के एक सर्व कारणों के महाकारण सत् चैतन्य को सम्यक् प्रकार जानके हुए हैं। इन मूर्खोंवत् हमारे कुल बिषे सर्वज्ञ नहींहुए, ताते तुमने इन अज्ञानी मूर्ख सर्वज्ञोंका संगकरके इनवत् नहीं होना॥ प्रश्न॥ हे भगवन् ऐसे वो मूर्ख सर्वज्ञ कौनहैं कि जिनके संगसे अन्य भी तद्वत्होते हैं॥ उत्तर॥ हे सौम्य जैसे तूनेपूर्व एक सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यके जाने बिना सर्वज्ञपनेका अहंकार कियाथा तब तू मूर्खथा, तैसेही जो पुरुष उस सर्वाधिष्ठान सत् कारण को यथार्थ जाने बिना आपको तत्त्ववेत्ता सर्वज्ञ मानते हैं सो मूर्खहैं उनहीके संगसे अन्यभी मूर्ख होतेहैं। हे सौम्य जो यह सिद्धियों के लालच से योगके करनेवाले हैं सो अति अल्प दूर दर्शण दूर श्रवणादि तुच्छ सिद्धि पाय दूरदेशके पदार्थोंको देखते शब्द (वार्त्ता) को सुनते अन्यों

को कहते हैं मेरु आदि अति दूरके स्थानों बिषे अमुक २ देवता वा ऋषि बैठे परस्परमें संबाद कररहे हैं, इन सिद्धियों के आश्रय अपनेको सर्वज्ञ सिद्धमानते हैं तिनको भी मूर्ख सर्वज्ञों बिषे जानने। हे सौम्य सर्वज्ञ सिद्ध सोईहै जो सदा सिद्ध सर्बाधिष्ठान सत् चैतन्य देवको यथार्थ जानके तदाश्रित अध्यस्त सर्व प्रपंचको जैसे का तैसा जानता है। हे सौम्य कोई पुरुष प्रेतादिकों की उपासनाके बलसे ऐसा कहते हैं कि हम सर्व के मनकी औ गृहकी वार्त्ता वस्तु सर्व जानते हैं, बिनाही प्रश्न कर्त्ता के प्रश्न किये उसके प्रश्न अरु तिसके उत्तर को जो आगे भविष्यत्है ज्योंका त्यों कहते हैं ताते हम सर्वज्ञ हैं हम से किसी का कुछ भी छिपा नहीं। हे सौम्य इसप्रकार अपने को सर्वज्ञ मानने कहने वालों को तुमने महा मूर्ख अल्पज्ञ जानने, ये सर्व अल्प अल्प पदार्थों को जानके सर्वज्ञताका अहंकार करते हैं सो महा मूर्ख अल्पज्ञहैं,ऐसे मूर्खोंका संग तुमको कदापि करना नहीं। हे सौम्य जो संसार के नामरूपात्मक पदार्थोंको जो केवल कहने मात्रही हैं, सत्यमानके तिनके जानने का अभिमान करते हैं औ कहते हैं कि हम संसार के सर्व पदार्थों को जानते हैं, सो संसारी अज्ञानी असत् पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञों को महा अल्पज्ञ मूर्ख जानने। हे सौम्य जो पुरुष कारण माया अरु तिसके कार्य नामरूपात्मक जगत् इनदोनों के अधिष्ठान सत्ता सत् चैतन्यको जानके तिसके आश्रय कल्पक सुद्धा अध्यस्त कार्य्य कारणात्मक जगत् को तिनकी पृथक् सत्ताके अभाव से एक सत् अधिष्ठान रूपही जानता है सोई विद्वान् सर्वज्ञ हैं, ताते उन विद्वान् सर्वज्ञों के सत्संग से तुमको भी तैसाही सर्वज्ञहोना उचितहै। हे सौम्य अब जिसप्रकार के पूर्व हमारे कुलके विद्वान् हुए हैं तिनकी सर्वज्ञताको श्रवणकरो ९॥

एतद्धस्मवै तद्विद्वा छंस आहुः पूर्व्वे महा शाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चना श्रुत ममत्तम विज्ञात मुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥ यद्दुरोहित मिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः यद्दुशु क्लमिवाभूदित्यपाछं रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यद्दुकृष्णमि वाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

पूर्व बड़े गृहवाले बड़े श्रोत्रिय उक्त सत्के जाननेवाले हमारे वृद्ध पुरुष स्पष्ट निर्णय करने के अर्थ कोई एक असुनी अमनन करी अविज्ञात वस्तुको अपने मध्यरख कहते हुए कि जो कोई इस वस्तुको जानता होय सो कहै यह क्याहै ॥ ५ ॥ जो इसविषे अरुणता ऐसी है सो तेजका रूप है ऐसा जानो, जो इस विषे शुक्ल ऐसा है सो जलका रूप है ऐसा मानो, अरु जो इस विषे कृष्ण ऐसा है सो अन्न का रूप हैं ऐसा जानो, इस प्रकार तिस त्रिवृत्कृत् सत्के जानने वाले विचार के कहते हुए ॥ ६ ॥

भावार्थ मंत्र पंचम षष्ठका ॥

हे सौम्य, एक के जानने से सर्व जाना जाताहै, ऐसापूर्वकहा है सो त्रिवृत् कृतकेहोते भी एक के जानने से सर्व जाना जाता है इस बात के दृढ करने के अर्थ सत् चैतन्य के ज्ञातपूर्वक त्रिवृत्कृत के ज्ञाता ज्येष्ठ श्रेष्ठ वृद्ध विद्वानों का एक उदाहरण श्रुति पुनः प्रारंभकरे हैं ॥ हे सौम्य हे श्वेतकेतु पूर्व बड़े गृहवाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हमारे कुलके वृद्ध (गौतमगोत्रि) एक समय एकस्थानमें एकत्रहोय निश्चयकर कहतेहुए ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् पूर्व वो ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वान् क्या कहते हुए॥ उत्तर ॥ हे सौम्य पूर्व वो वृद्ध सत्यके स्पष्ट निर्णय के अर्थ कोई एक असुनी अदेखी अविचारी ऐसी दुर्लक्ष्य वस्तु अपने सर्व के मध्य

यद्वविज्ञातमिवाभूदित्ये ताषामेव देवतानाꣳसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नुखलु सौम्येमास्त्रिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ७ ॥ इति चतुर्थखण्डः ४ ॥

रख के परस्परमें प्रश्न करते हुए कि अपने सर्व के मध्य जो सर्वज्ञ होय सो इस वस्तुका रूपक है यह क्या है ॥ ५ ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार हमारे कुलके विद्वान् वृद्धोंने स्पष्ट निर्णय के अर्थ अपने सर्व के मध्य अति दुर्लक्ष्य दुर्विज्ञेय वस्तु कि जिसको पूर्व देखी सुनी जानी नहीं, रखके परस्परमें प्रश्न करते हुए कि हे भाई अपने सर्वके मध्य सर्वज्ञ तत्त्ववेत्ता होय सो इस वस्तु का स्वरूपकहै जो यह क्या वस्तु है ॥ हे सौम्य तब उन सर्व त्रिवृत्कृत् के ज्ञाताओं में से एक किसीने वा सर्व ने मिलके एक एक ने कहा कि हे भाई इस वस्तु विषे जो अरुणता ऐसी है, सो तेज का रूप है ऐसा जानो, अरु इस बस्तु में जो श्वेतता ऐसा है सो जलका रूप है ऐसा जानो, अरु इस विषे जो कृष्णता ऐसाहै सो पृथिवी का रूपहै ऐसा जानो ॥ः—अरु उक्ततीनों रूपों को इस बस्तुमें से पृथक् करिये तो यह बस्तु केवल कहने मात्रही है । अरु उक्त तीनोंवर्णात्मक तत्त्व सत् चैतन्यका कार्य होनेसे सत्यरूप हैं ऐसा जानो, उक्त तीनों तत्त्वों से बाह्य एक अणुमात्र भी नहीं, ताते वास्तवकरके सर्वरूपसे एक सत्चैतन्य देवही सुशोभितहै ऐसा जानो—ः ॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो अविज्ञात ऐसा होवे तो सो भी उन तीन तत्त्वरूप देवताओं का समुदाय (मिश्रित) है ऐसा जानो इस प्रकार वो तत्त्ववेत्ता वृद्ध कहते हुए। हे सौम्य । जिसप्रकार तो निश्चयकरके तीनों देवता पुरुष (शरीर) को पाय एक एक त्रिवृत् त्रिवृत्होते हैं तिसको मेरे कहे प्रमाणजानो ७ ॥ ४ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके पञ्चमखण्डः ५ ॥

अन्नमाशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातुस्तत् पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा़ंसं योऽणिष्ठस्तन्मनः १ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार कहके वो वृद्ध पुनः कहते हुए। कि हे भाई जोवस्तु अत्यन्त दुर्विज्ञेय होवे अरु जिसको कधी देखी सुनी जानी भी होवे सो यदि आयप्राप्त होवे तो तिसको भी तेज जल अन्न इन तीनों देवताओं का समास कहिये समुदाय, अर्थात् त्रिवृत्कृत भूतोंका कार्य्य, हैं ऐसा निश्चय करिये ॥:— हे सौम्य रक्तादि तीनों रूपों के पृथक् २ अनुभव विचार से बस्तुके अभाव हुए तीनों तत्त्वों को ही सत्य जानिये औ तद्व्यतिरेक बस्तु को केवल वाचारम्भण मात्रही जानिये क्योंकि तेजादिक तीनों देवता सत् चैतन्य का कार्य्य होने से सोई रूप हैं, इस प्रकार निश्चय कर सर्वको एक सत् चेतन सत्ता समान रूपही अनुभव निश्चय करिये ॥ हे सौम्य यह तुमको उभय उपाख्यान करके बाह्यका त्रिवृत्कृत निश्चय कराया है। अब जिस प्रकार अन्तर का त्रिधाकरण हुआ है तिसको भी श्रवण करो। हे प्रियदर्शन जैसे तो निश्चय करके 'तेज, जल, अन्न, यह तीनों तत्त्वरूप देवता कारण कार्य के संघात शिर हस्त पादादि लक्षणवान् पुरुष नामक शरीर को पाय (शरीरके अन्तरजाय) एक एक तत्त्वका त्रिवृत् त्रिवृत् (स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, तीन तीन विभाग) होता है तिसको भी मेरे अग्रिमकहे प्रमाण, श्रवण करके स्पष्ट जानो (निश्चय अनुभव करो) ७ ॥

इति चतुर्थ खंडः ॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

अन्न भोजन किया तीन प्रकार विभाग को पावता है तहां

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठोधातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः २ ॥

जो उसका स्थूलभाग है सो विष्ठा होताहै, जो मध्यम भाग है सो मांस होताहै, जो सूक्ष्म भाग है तिसका मन होता है १ ॥

भावार्थ खंडपञ्चम मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार बाह्यका त्रिवृत्कृत सर्व नामरूप तुम को श्रवण मनन कराया, अब इस शरीर के अन्तर का त्रिवा-करण श्रवण करो । हे सौम्य हे श्वेतकेतु जब यह अन्न भोजन किया जाता है तब उदर विषे जठराग्नि प्राणसाथ मिलके उस अन्न को पुनः पचावता (पकावता) है ॥ —अ-र्थात् बाह्यका पाक हुआ अन्न कंठ के मार्ग से उदर विषे सुख पूर्वक प्राप्तहोता है, परन्तु उदरके भीतर उन अन्नको यावत् जठराग्नि पचावता नहीं तावत् वो किसी भी कामआवता नहीं, ताते वो उदरविषे गया अन्न वहां पुनः पकताहै —:॥ हे सौम्य सो जठराग्नि करके उदरविषे पाकहुए अन्न के वो अग्नि तीन विभाग करताहै, तहां तिस तीनविभागको प्राप्तहुए अन्नका जो अति स्थूलतर भागहै सो पुरीष होताहै । अरु जो उस भोजन किये अन्नका मध्यम भाग होता है सो रसादि क्रमसे मांस हो-ताहै, अरु उस अन्नका अति सूक्ष्म धातु (रस वा अंश) होता है सो पाकाशय स्थान से ऊर्ध्व हृदय वा कंठ देशको प्राप्तहोय वहां अति सूक्ष्म हिता नाम्नी नाड़ी विषे प्रविष्ट होय वागादि करण संघातों का प्रवर्त्तक मन होताहै ॥ हे सौम्य इस श्रुति प्रमाण से मनको अन्नका अति सूक्ष्म परिणाम भावहोने से भौ-तिक पनाही सिद्धहै १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जल पान कियाहुआ उदरविषे तीन प्रकार का होताहै ति-

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातु स्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ३ अन्नमयछं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्ते जोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ४॥५॥

सका जो स्थूल धातु (मोटा अंश) है सो मूत्र होताहै, अरु जो मध्यमांश है सो रुधिर होताहै, अरु जो उसका सूक्ष्मांशहै सो प्राणहोताहै २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका॥

हे सौम्य, जैसे भोजनकिया अन्न उदरविषे जायके ' स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, तीन विभाग होय ,पुरीष, मांस, मन, इनतीन भावको प्राप्तहोता है। तैसेही जल पानकिया हुआ उदर विषे जायके जठराग्नि करके तीन प्रकारका होताहै, तहां जल का जो स्थूल भाग है सो मूत्र होता है, जो मध्यम भागहै सो रक्त (रुधिर) होताहै। अरु जलका जो सूक्ष्मांश भागहै सो प्राणहोता है। सोई आगे कहाहै " आपोमयः प्राणो न पिवतो विच्छेत्स्यत इति " प्राण जलमयहै क्योंकि जल न पानकरने से प्राण रहता नहीं २॥

अक्षरार्थ॥

तैसे, तेज (घृत तैल) भोजन किया उदरविषे जाय त्रिधा होता है, तहां तिसका जो स्थूल भागहै सो अस्थिहोताहै, मध्यम भाग मज्जा होताहै, अरु जो सूक्ष्म भागहै सो वाणीहोती है ३ हे सौम्य अन्नमयही मन है, जलमयही प्राणहै, अरु तेजोमयही वाक्है, ऐसाजानो। हे भगवन् पुनःही मुझको विज्ञापन करिये, हे सौम्य तथास्तु ऐसे पिता कहता हुआ ४ इति षष्ठप्रपाठ के पंचम खंडः ५॥

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठोधातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः २ ॥

जो उसका स्थूलभाग है सो विष्ठा होताहै, जो मध्यम भाग है सो मांस होताहै, जो सूक्ष्म भाग है तिसका मन होता है १ ॥

भावार्थ खंडपञ्चम मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार बाह्यका त्रिवृत्कृत सर्व नामरूप तुम को श्रवण मनन कराया, अब इस शरीर के अन्तर का त्रिधाकरण श्रवण करो । हे सौम्य हे श्वेतकेतु जब यह अन्न भोजन किया जाता है तब उदर बिषे जठराग्नि प्राणसाथ मिलके उस अन्न को पुनः पचावता (पकावता) है ॥ —अर्थात् बाह्यका पाक हुआ अन्न कंठ के मार्ग से उदर बिषे सुख पूर्वक प्राप्तहोता है, परन्तु उदरके भीतर उन अन्नको यावत् जठराग्नि पचावता नहीं तावत् वो किसी भी कामआवता नहीं, ताते वो उदरविषे गया अन्न वहां पुनः पकताहै —॥ हे सौम्य सो जठराग्नि करके उदरविषे पाकहुए अन्न के वो अग्नि तीन विभाग करताहै, तहां तिस तीनविभागको प्राप्तहुए अन्नका जो अति स्थूलतर भागहै सो पुरीष होताहै । अरु जो उस भोजन किये अन्नका मध्यम भाग होता है सो रसादि क्रमसे मांस होताहै, अरु उस अन्नका अति सूक्ष्म धातु (रस वा अंश) होता है सो पाकाशय स्थान से ऊर्द्ध्व हृदय वा कंठ देशको प्राप्तहोय वहां अति सूक्ष्म हिता नाम्नी नाड़ी विषे प्रविष्ट होय वागादि करण संघातों का प्रवर्त्तक मन होताहै ॥ हे सौम्य इस श्रुति प्रमाण से मनको अन्नका अति सूक्ष्म परिणाम भावहोने से भौतिक पनाही सिद्धहै १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जल पान कियाहुआ उदरविषे तीन प्रकार का होताहै ति-

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातु स्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ३ अन्नमयछं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्ते जोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ४ ॥ ५ ॥

सका जो स्थूल धातु (मोटा अंश) है सो मूत्र होताहै, अरु जो मध्यमांश है सो रुधिर होताहै, अरु जो उसका सूक्ष्मांशहै सो प्राणहोताहै २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, जैसे भोजनकिया अन्न उदरविषे जायके ' स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, तीन विभाग होय ,पुरीष, मांस, मन, इनतीन भावको प्राप्तहोता है। तैसेही जल पानकिया हुआ उदर विषे जायके जठराग्नि करके तीन प्रकारका होताहै, तहां जल का जो स्थूल भाग है सो मूत्र होता है, जो मध्यम भागहै सो रक्त (रुधिर) होताहै। अरु जलका जो सूक्ष्मांश भागहै सो प्राणहोता है। सोई आगे कहाहै " ह्यापोमयः प्राणो न पिवतो विच्छेत्स्यत इति " प्राण जलमयहै क्योंकि जल न पानकरने से प्राण रहता नहीं २॥

अक्षरार्थ ॥

तैसे, तेज (घृत तैल) भोजन किया उदरविषे जाय त्रिधा होता है, तहां तिसका जो स्थूल भागहै सो अस्थिहोताहै, मध्यम भाग मज्जा होताहै, अरु जो सूक्ष्म भागहै सो वाणीहोती है ३ हे सौम्य अन्नमयही मन है, जलमयही प्राणहै, अरु तेजोमयही वाक्है, ऐसाजानो। हे भगवन् पुनःही मुझको विज्ञापन करिये, हे सौम्य तथास्तु ऐसे पिता कहता हुआ ४ इति षष्ठप्रपाठ के पंचम खंडः ५॥

भावार्थ मंत्र तीसरे चौथे का ॥

हे सौम्य तैसेही तैल घृतादि भोजनकिया हुआ उदरविषे जाय जठराग्नि के संयोगसे तीन विभागको पावताहै तहां जो उस तेजका स्थूलांशहै सो अस्थिहोताहै, अरु जो उसका मध्यमांशहै सो मज्जा होता है, अरु उस तेजके सूक्ष्मांशकी वाणी होती है ॥ क्योंकि तैल घृतादिकोंके भक्षणसेही वाणी भाषण करनेमें समर्थ होती है यह लोकमें प्रसिद्धहै ३ हे सौम्य उक्त प्रकार होनेसे अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राणहै, अरु तेज (तैल घृतादि) मयही वाक्है। ऐसा निश्चयकरो ॥ शंका ॥ हे भगवन् जब उक्त प्रकार ही है तब केवल अन्नमात्रके ही भक्षण कर्त्ता जे मूषक (चूहा) प्रभृति कादिक तिन विषे वाणी अरु प्राण न होना चाहिये एक मनही होना चाहिये, परन्तु उनविषे, वाणी, प्राण भी प्रत्यक्ष देखते हैं। अरु तैसेही जे केवल जलमात्र के ही भक्षण करने वाले समुद्रादिकों के मीनादि जन्तु तिन विषे केवल प्राणही होना चाहिये, मन वाणी न होना चाहिये परन्तु उनविषे मन वाणी भी देखते हैं। अरु तैसेही जो घृत तैलादिकों के भक्षण करने वाले जीवहोंगे तिन विषे केवल वाणी मात्रही होनी चाहिये मन प्राण न होना चाहिये परन्तु उक्त मूषक मीनादिकों के लिंग अनुमान से उनविषे मन प्राण भी अवश्य होंगे। अतएव केवल अन्नमय ही मन है, जलमयही प्राण है, तेजमयी ही वाक् है ऐसा कैसे बनेगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुमने कहा सो दोष नहीं क्योंकि सर्व को त्रिवृत्कृत् होने से सर्वत्र सर्व की उपपत्ति (प्राप्ति) है, कोई भी अत्रिवृत्कृत अन्न खाता नहीं, अत्रिवृत्कृत् जल पान करता नहीं, अत्रिवृत्कृत् घृतादि कोई भी भक्षण करता नहीं। अतएव केवल अन्न केही भक्षण करने वाले मूषकादिकों विषे, तेज, जल, अन्न, तीनोंका कार्य, वाक् प्राण, मन, पाये जाते है ॥ः-हे सौम्य अन्न के त्रिवृत्कृत् कार्य देहों में वा जीवोंमें मनकी विशेषता, अरु जलके त्रिवृत्कृत् कार्य्य जीवों

अथ षष्ठप्रपाठके षष्ठखंडः प्रारभ्यते ॥

दध्नःसौम्य मथ्यमानस्य योऽणिमास ऊर्द्ध्वःसमुदीषति तत्सर्पिर्भवति १ ॥ एवमेव खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमास ऊर्द्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

में प्राण की आधिक्यता, अरु तेज के त्रिवृत्कृत् जीवोंमें वाणी की विशेषता, इस प्रकार जानना, परन्तु अन्नादि सर्व को त्रिवृत्कृत् होने से सर्व शरीरों विषे मन प्राण वाणी जान लेना —:॥ तातें अन्नमय मन जलमय प्राण तेजोमय वाग् यह कथन अविरुद्ध ही है ॥ हे सौम्य इस प्रकार जब उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु की शंका का समाधान किया तब भी असन्तुष्टवान् हुआ श्वेतकेतु अपने पिता से कहता हुआ कि हे भगवन् आपने जो अन्नमय मन,जलमय प्राण,तेजमयी वाक् कहा तिसको अति सूक्ष्म होने से मैं यथार्थ समझा नहीं अतएव आप तिसको दृष्टांत पूर्वक मुझको पुनः कृपाकरके कहिये, क्योंकि इस आप करके कहेहुए अर्थ बिषे मुझको सम्यक् प्रकार निश्चयहुआ नहीं । इस प्रकार जब श्वेतकेतु ने कहा तब तिस का पिता उद्दालक कहता हुआ, हे सौम्य जो तैंने पूछा है सो अब पुनः भी श्रवणकर मैं भी तुझको दृष्टान्त पूर्वक कहता हौं ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठके पंचमखंडः ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य मन्थन किये हुए दधिका जो सूक्ष्मांशहै सो ऊर्द्ध्व को जाताहै सो घृत होताहै १ ॥ हे सौम्य तैसेही निश्चयकरके भोजन किये हुए अन्न का जो सूक्ष्म भाग है सो ऊर्द्ध्व जाताहै सो मन होताहै २ ॥

अपाछं सौम्य पीयमानानां योऽणिमास ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणोभवति ॥ ३ ॥ तेजसः सौम्याश्य मानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीष्यति सावाग्भवति॥ ४॥ अन्नमयछं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव माभगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके षष्ठखंडः १ । २ ॥

हे सौम्य जैसे दधिको मटकी बिषे डालके मथनियां (मंथन करने का करण विशेष) साथ मन्थन करते हैं तब उस दधि का स्थूलांश होता है सो अधोको जाता है अरु जो उसका मध्यमांश होताहै मध्यमें रहताहै अरु जो उस दधिका सूक्ष्मांश होता है सो ऊर्द्ध्वको जाय घृतसंज्ञाको प्राप्त होताहै । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही निश्चय करके, ओदनादि भोजन किये अन्नको उदरस्थ अग्नि वायु करके सहित हुआ उसको मन्थन करता है (पचावता है) तब उसका सूक्ष्मांश ऊपर को जाय के 'अर्थात् हितानाम्नी नाड़ी को प्राप्त होके, मन होताहै ॥:-हे सौम्य जैसे उक्त दृष्टान्त है तैसेही इस शरीर रूप मटकी विषे जब बाह्यका पाक किया ओदनादि अन्नरूप दधि पड़ता है तब उसको उदर विषे जठराग्नि रूप पुरुष प्राणरूप रयि (मन्थन करनेका कारण विशेष) करके मंथन करता है तब उस अन्नरूप दधिका जो सारभूत सूक्ष्मांश है सो प्राणवायु करके पाकाशय से ऊपर हृदय वा कंठ देशमें प्राप्त होय मन संज्ञाको पावता है-॥ १ । २ ॥

अक्षरार्थ

हे सौम्य पान किये हुए जलों का जो सूक्ष्मांश होताहै सो ऊर्ध्व को जाताहै सो प्राणहोताहै ॥ ३ ॥ हे सौम्य घृतादि भक्षण

किये हुएका जो सूक्ष्मांशहोता है सो ऊर्ध्व को जाताहै सो वाक् होती है ॥ ४ ॥ हे सौम्य अन्नमय ही मनहै जलमय प्राण है तेजमयी वाक् है ऐसा जानो । हे भगवन् पुनः मुझको कहिये, तब पिता हे सौम्य तथास्तु कहता हुआ ॥ ५ ॥ इति ॥ ६ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे चौथे पांचवें का ॥

हे सौम्य पान किये हुए जलों का उदरविषे अग्नि करके किये तीन विभाग होते हैं, तिनमें जो सूक्ष्मभाग है सो ऊपर को जाता है सो प्राणहोताहै (अरु मध्यमभागका रुधिर होता है अरु उस जल के स्थूलभाग का मूत्र होता है) ३ ॥ हे सौम्य तैसेहीजल प्रमाण जे घृत तैलादि रूप तेज है सो भी भोजनकिया उदरविषे जायके उक्त प्रकारके तीन विभागको पावता है, तहां उसके सूक्ष्म भागकी वाक् (वाणी) होती है, मध्यांशकी मज्जाहोती है, अरु उसके स्थूल भागका अस्थिहोताहै ४ ॥ ताते हे सौम्य अन्नमयही मनहै जलमयी ही, प्राणहै अरु तेजमयी ही वाक्है ॥ अभिप्राय यहहै कि यावत् स्थूल सूक्ष्म शरीरादि संघातहै सो सर्व अन्न जल तेजमयीही विकारहै ॥:—सो विकार भी केवल कथन मात्रही है क्योंकि जो इस शरीरसे अन्न जल तेज, के स्थूल मध्यम सूक्ष्म अंशोंको पृथक् करिये तो शरीरादि सर्व विकार कहने मात्रही होताहै अरु अन्न जल तेज यह तीनों परम्परा करके सत् चैतन्य का कार्य होनेसे सत्ही है, ताते बाह्य अन्तर स्थूल सूक्ष्म सर्व ही सत् है —:॥ श्वेतकेतुरुवाच ॥ हे भगवन् आपने दृष्टान्त पूर्वक मनको अन्नमयत्वपना कहा सो मुझको सम्यक् निश्चयहुआ नहीं, ताते आप उसको अन्य दृष्टान्त से अनुभव कराइये ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे सौम्य अब तेरे निश्चयार्थ दृष्टान्त पूर्वक कहताहौं तिसको श्रवणकर ५ ॥

इति षष्ठखंडः ६ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके सप्तमखंडः ७ ॥

षोड़शकलः सौम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपःपिबापोमयःप्राणोनपिबतो विच्छेत्स्यतइति १॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य षोडशकला वाला पुरुष मन है, जो इसको प्रत्यक्ष करने की कामना होय तो पन्द्रह दिवस भोजन मतकरे जल पानकर जलमय प्राणहै जल न पीने से प्राण विच्छेत् होवेगा (न रहेगा) १ ॥

भावार्थ खंडसातवें मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, भोजन किये अन्नकी जो सूक्ष्म धातु होती है सो मनकी शक्ति है, अर्थात् एक दिवस भोजन किये अन्नका जो सूक्ष्मांश धातु होती है सो मनकी एक कला शक्ति होती है, तैसेही जब यह पुरुष षोड़श दिवस भोजन करता है तब तिसके सूक्ष्मांश धातु करके युक्त हुआ मन षोड़श कला वाला हुआ व्यापार विषे पूर्णता से वर्त्तता है । अरु तिस षोड़श दिवस भोजन किये अन्नके सूक्ष्मांश शक्ति करके युक्त, द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञाता, इत्यादि सर्व क्रिया में समर्थ पुरुष होता है । अरु जब अन्नके सूक्ष्मांश की हानि होती है तब तिसके सामर्थ्य की भी हानि होती है । तहां कहते हैं " अन्नस्यापि दृष्टेत्यादि " सर्व कार्य्य कारणों के संघात शरीरका जो सामर्थ्य है सो सर्व मनका किया है । अरु लोक विषे जो बलवान् दृष्ट आवते हैं सो सर्व मनके बल करके ही बली दृष्ट आवते हैं ॥:— अर्थात् कोई पुरुष शरीर से पुष्ट बली दृष्ट आवते हैं औ मनमें उनके शूरत्व बल नहीं तो वो रण से पलायन होते हैं, अरु कोई एक पुरुष शरीर से कृश निर्बल दृष्ट आवते हैं औ मनमें उनके शूरत्व बल होता है तो वो रण सन्मुख निःशंक युद्ध करते हैं,

सह्वपंचदशाहानि नासाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृच सौम्य यजुᳪषि सामानीति न वै मा प्रतिभांति भो इति २॥

ताते जो जिस विषय का बली होता है सो मनके बल से ही होता है—: ॥ हे सौम्य केचित् ऐसा कहते हैं कि ध्यानाहारादिक भी अन्नके सामर्थ्य से ही है क्योंकि देहादि मन पर्यन्त सर्व अन्न का परिणाम विकार है ताते। अतएव मनका जो सामर्थ्य है सो अन्नका किया है ॥ हे सौम्य जिस पुरुष की षोड़शकला होवें सो कहिये षोड़शकलः पुरुषः। हे सौम्य जो तू इस अन्नकी षोड़श कलात्मक (शक्तिवाले) मनको प्रत्यक्ष करने को इच्छता होवे तो पंचदश १५ दिवस पर्यन्त भोजन मत करे एक जल मात्रको पान करता रहे जो जल पान करेगा नहीं तो प्राण रहैगा नहीं इसही से मैंने पूर्व कहा है कि जल का विकार प्राण है। ताते जो तुझको मनका अन्नमयत्व प्रत्यक्ष करने की इच्छा होय तो पंद्रह दिवस कुछ भोजन मतकरे जलपान करता रहियो १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो श्वेतकेतु स्पष्ट (पिताका वाक्य श्रवणकर) पंद्रह दिवस भोजन न करता हुआ, तदनन्तर पिताके समीप आय कहता हुआ हे पिताजी अब मैं क्या कहों, पिताने कहा हे सौम्य तुझ को ऋग्, यजु, साम, तीनों वेद कंठथे सो अब स्मृति में हैं वा नहीं, सो श्वेतकेतु कहता हुआ मुझको कुछ भी भासता नहीं मैं क्या कहौं २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु से मनका अन्नमयत्वपना कहा, तब तिस विषे निश्चय को न प्राप्त हुआ श्वेतकेतु मनका अन्नमयत्वपना प्रत्यक्ष करने की इच्छा से अपने आश्रय पर जाय पंद्रह दिवस पर्य्यन्त कुछ भी

तछं होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेनततोऽपि न बहु दहेदेव छंसौम्य ते षोड़शानां कलानामेकाकला तिशिष्टा स्यात्त यैतर्हिवेदान्नानुभवस्यशान ॥ ३ ॥

भोजन न करता हुआ, प्राणकी रक्षाके अर्थ केवल जलपानमात्र करता रहा ॥ :—हे सौम्य जिस श्वेतकेतु को चार वेद अरु छः तिनके अंग सहित अर्थों के कंठ था सो पंद्रह दिन भोजन न करने से मनसे सर्व विस्मरण होगया मानो कुछ पढ़ाही न था, केवल एक प्राणमात्र अवशेष रहा, अरु तिसही की ज्ञातमात्र रही जो अब मेरे प्राणमात्र अवशेष हैं, और सर्व अन्तके समयवत् होता हुआ—:॥ हे सौम्य वो श्वेतकेतु पंद्रह दिवस भोजन न करने के पश्चात् अपने को अन्यों से खाट वा डोली पर उठवाय पिता के समीप आय कहताहुआ कि हे पिताजी मैं अब क्या कहों मुझको ऋगादि वेदोंमेंसे कुछ भी भासता नहीं। इसप्रकार जब श्वेतकेतुने कहा तब उद्दालक ने कहा कि हे पुत्र अब मैं कहता हों सो श्रवण कर ॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो ,उद्दालक, स्पष्ट कहता हुआ हे सौम्य जैसे महत् इन्धन करके युक्त अग्निका अंगार एक खद्योत (चिनगारे) प्रमाण अवशेष रहताहै तब तिस अंगार करके बहुत दहन होता नहीं। तैसे हे सौम्य तेरी षोड़श कलाओंके मध्य एक कला अवशेष है तिस करके तुझको वेदोंका अनुभव (स्मरण) होता नहीं, अबतू अन्न भोजनकर ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य,(उक्त प्रकार जब श्वेतकेतुने पन्द्रह दिवस भोजनत्याग षोड़शवें दिवस पुनः अपने पिताके पास आय कहा कि

अथमे विज्ञास्यसीति स हाशाथ हैनमुपससाद त छं ह यत्किञ्च प्रपच्छ सर्वं छं ह प्रतिपेदे तछं होवाच ४॥

हे पिताजी अब मुझको कुछ भी स्मृति नहीं जो मैं चारों वेदादिक पढ़ारहा तिनमें से अब मुझको कुछ भी अपने बिषे भासता नहीं, अब अन्तके समयवत् दशा होरहीहै एक प्राणमात्र अवशेष है। इस प्रकारजब श्वेतकेतु ने कहा तब उद्दालक कहता हुआ) हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु तुझको जो ऋगादि वेद नहीं भासते (स्मृति होते) तिसका कारण मैं दृष्टान्त पूर्वक कहताहौं तिसको तू श्रवणकर ॥ हे सौम्य जैसे लोक विषे बहुत से इन्धन करके युक्त प्रज्वलित अग्नि के इन्धन के समाप्त (दहन) हुए एक अंगार खद्योतमात्र (चिनगार प्रमाण) अवशेष रहताहै तबतिस चिनगारमात्र अग्निकरके उसको अनित्व होते सन्ते भी वो बहुतसे इन्धनादिकों को दहन करने को समर्थ होता नहीं, हे सौम्य तैसेही तुझको पंद्रह दिवस अन्न (भोजन) के त्यागनेसे अब तेरा मन चिनगारवत् एक कलामात्र अवशेष रहाहै अतएव मनके अभावसे तुझको ऋगादि वेद कुछ भी भासते नहीं, ताते मेरा वाक्य श्रवण कर अब पंद्रह दिवस भोजन कर पश्चात् मेरे निकट आवना तब मैं कहोंगा ॥ः— हे सौम्य जैसे चिनगारमात्र अग्निपर प्रथम सूक्ष्म शुष्कतृण रखके उसको कुछ विशेष करते हैं पश्चात् उसमें कुछ पुष्ट इन्धन देके वर्द्धमान करते हैं तब वो महत् परिमाण इन्धन को दहन करने में समर्थ होताहै—ः॥ अतएव हे सौम्य अब तू अपने आश्रमपर जाय शनैःशनैः अन्न को भोजनकर जब पंद्रह दिवस भोजन करले तब षोड़शवेंदिवस मेरे पास आवना तब जो कुछ कहना होगा सो मैं तुझको कहोंगा, अब तेरेमनकी एक कला अवशेष रहने से मन व्याकुल है ताते अब भोजन करनेका शीघ्र यत्नकर ३॥

यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत् । तेन ततोऽपि बहु दहेत ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर मैं तुझसे कहोंगा ॥ सो श्वेतकेतु पंद्रह दिवस भोजनकर पुनः पिताके समीप आवता हुआ, तब तिसको पिता वेदादि विषयक थोड़ासा प्रश्न करताहुआ, तब उसने सर्व पढ़ सुनाया, तब वो पिता पुनः कहताहुआ ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हेसौम्य तिसके अनन्तर मैं तुझसे कहोंगा (एतना पूर्व के तीसरे मन्त्रसे अन्वय सम्बन्धहै) सो (मनके अन्न मयत्व को प्रत्यक्ष करने की इच्छावाला) श्वेतकेतु पिताकी आज्ञा प्रमाण पन्द्रह दिवस भोजन करके सोलहवें दिवस पुनः पिताके समीप आय प्रणामकर स्थितहुआ, जब उसके पिता उद्दालकने उस अपने श्वेतकेतु नाम पुत्रको अपने निकट आया सावधान चित्त देखा तब उससे ऋगादि वेद सम्बन्धी किञ्चित् प्रश्नकिया, जब पिताने प्रश्नकिया तब तिसको सुनते ही वो श्वेतकेतु ऋगादि वेद मन्त्र भाग अरु तिसका अर्थ वेद ब्राह्मण भाग, सर्व अपने पिताको श्रवण करावताहुआ। जब पुत्रके मुखसे ऋगादिवेद को यथार्थ श्रवणकिया तब वो पिता उद्दालक पुनःकहताहुआ ४॥

मन्त्रार्थ ॥

हे सौम्य जैसे बहुतसे इन्धन के शान्तहुए एक अंगार चिनगारमात्र अवशेष रहे हैं तिसको सूक्ष्म तृणके चूर्णसे विशेष प्रज्वलित करते हैं तब तिस अग्निके वर्द्धमान होने के अनन्तर पुनः भी पूर्ववत् बहुतसे इन्धनको भस्म करताहै ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पांचवेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब श्वेतकेतु अपनेपिताकी आज्ञानुसार

एवछं सौम्य ते षोड़शानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत्साऽन्नेनोप समाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि, वेदाननुभवस्यमयछं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजिज्ञाविति विजिज्ञाविति ६ ॥ इति सप्तमखंड: ७ ॥

पन्द्रह दिवस भोजनकर सोलहवें दिवस पिता के समीप आय प्रणाम कर सम्मुख निकट बैठा, तब उसको प्रसन्न सावधान चित्त देख पिताने वेद विद्या विषयक प्रश्न किया तब उस श्वेतकेतु ने अपने पिताको सहित अर्थ के ऋगादि सर्व वेद श्रवण कराया, तब प्रसन्न चित्त उद्दालक कहता हुआ, उद्दालक उवाच ॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन श्रवणकर, जैसे लोकविषे महत् परिमाण इन्धनके भस्महुए एक खद्योत (चिनगार) मात्र अंगार अवशेष रहताहै तब उसको वर्द्धमान करने के अर्थ प्रथम सूक्ष्म अरु शुष्क तृण के चूर्णसे उस चिनगारमात्र अंगारको प्रज्वलित (वर्द्धमान) करते हैं वा होताहै तब तिस एक चिनगारमात्र अंगार से पुनः भी पूर्वपरिमाणसे भी अधिक दहन करता है ५ ॥ अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य ऐसेकहे दृष्टान्त प्रमाण तिसमनकी सोलह कलाओं के मध्य एक कला अवशेष रही सो अन्न के सूक्ष्मरसकरके समाहित हुई पुनः प्रज्वलित हुई तब तिसकरके तैंने वेदों का अनुभव किया। हे सौम्य अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राण है, तेजमयी ही वाक् है (इति सिद्धं) इसप्रकार पिता के कहने से वो श्वेतकेतु, मन, प्राण, वाक्, का, अन्न, जल, तेज मयत्वपना निश्चयकरके जानताहुआ ६ ॥ इति सप्तमखंडः ७ ॥ इति त्रिवृत्करणम् ॥

भावार्थ मंत्र षष्ठ का ॥

हे सौम्य, उक्त दृष्टान्त प्रमाणही अन्नकी सूक्ष्म सोलह-

ओं कलाओं के मध्य (जो मनका सामर्थरूपाहै) एक कला तुझ को अवशेष रही, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमा की एक एक कला घटते २ पन्द्रह दिवसमें एक कला अवशेष रहती है सो पुनः शुक्ल पक्ष को पाय एक एक दिवस में एक एक कला वर्द्धमानहोते होते पुनः षोड़शकला सम्पन्न होता है, हे सौम्य तैसेही तेरे पन्द्रह दिवस पर्यन्त अन्नके त्यागने से एकएक दिवस प्रति एक एक कला घटते २ तेरा मनरूप चन्द्रमाहै सो क्षीणहो एक कलामात्र अवशेष रहा तब तुझको ऋगादि वेदों में से कुछ भी न भासा, अरु जब तूने पन्द्रह दिवस भोजन किया तब एक एक दिवस भोजन किये अन्नकी सूक्ष्मांशरूप कला वर्द्धमानहोते होते पन्द्रह दिवसमें पुनः मन पूर्ण होआया, तब तिस करकेही अब तुझको ऋगादिवेदवेदांग सर्व अर्थ सहित भासिआये, अर्थात् स्फुरण हो आये ॥ हे सौम्य इसप्रकार व्यावृत्तिको अनुवृत्ति करके मनका अन्नमयत्वपना सिद्ध है, इसप्रकार उपसंहार करत संते कहते हैं। हे सौम्य अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राण है, तेजमयीही वाक् है। अर्थात् हे सौम्य जैसे मनका अन्नमयत्व पना अन्नके त्यागने से तुझको स्पष्ट अनुभव सिद्ध निश्चयहुआ है, तैसेही प्राणका जलमयत्वपना अरु वाक् का तेजमयत्व पनाभी सिद्धहुआही जानना, इत्याभिप्रायः। हे सौम्य इसप्रकार जब उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को मनका अन्नमयत्वपना स्पष्ट अनुभव निश्चयकराया तब वो श्वेतकेतु पिता करके उपदेशकी विद्याको यथार्थ जानताहुआ, यहां जो मूल श्रुतिके अन्तमें " विजिज्ञाविति " यह दोवार कहाहै सो त्रिवृत्करणके प्रकरणकी, अरु इस षष्ठ परिपाठकके पूर्वार्द्धकी, समाप्ति के सूचनार्थ जानना ॥ ६ ॥

इति छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके सप्तमखण्डः ॥ ७ ॥

इति छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठ प्रपाठके
पूर्वार्द्ध समाप्तम्

अथ छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके उत्तरार्द्धे अष्टम खण्डः ॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाचस्वप्नान्तं मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुष स्वपिति नाम सता सौम्य तदा सम्पनो भवति स्वमपीतो भवतितस्मादेनछं स्वपितीत्याचक्षतेस्वछंह्यपीतोभवति १ ॥

अक्षरार्थ

उद्दालक इस प्रसिद्ध नामवाला अरुणका पुत्र ताते आरुणि इस द्वितीय नाम वाला, सो अपने श्वेतकेतु नाम पुत्रको कहता हुआ, हे सौम्य मेरे कहे प्रमाण स्वप्न के अन्त (सुषुप्ति) को जानो जिसकालमें इस पुरुषका सोवताहै ऐसा नाम होता है तिस काल में सत् सम्पन्न होता है, अपने आप विषे गयाहोता है, एतदर्थ इसको सोया है ऐसा कहतेहैं, आप अपने अधिष्ठान आत्मा विषे गया होता है १ ॥

भावार्थ खण्ड ८ मन्त्र प्रथम का ॥

॥:-हे सौम्य उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेत केतुको जिस एक अद्वैत अचेत्य चिन्मात्र सत् नाम्नी सत्ता समान के जानने से तिसका तिसबिषेही अध्यस्त कार्यता रूपही जानाजाता है, इस आदेश के स्पष्ट लखावने के अर्थ , मृत्तिका का, सुवर्ण का, अरु लोहका, यह तीन दृष्टान्त कहके कहा कि "सदेव सौम्येद मग्र आसीदेकमेवा द्वितीयम्" हे सौम्य यह समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व एक अद्वितीय सत्ही था, सोसत् अपनी इच्छासे ,तेज, जल, पृथिवी, इन तीन कारण तत्त्व होयके पश्चात् उन तीनों के तृवृत्करणद्वारा बाह्य भीतर का स्थूल सूक्ष्म समस्त जगत् रूप होता हुआ,सो सर्व सविस्तर तुम्हारे प्रति मैंने कहा। अब सो उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुको समस्त जगत् का मूल सत्चैतन्य का दृढनिश्चय

करावता हुआ, तहां, सुषुप्ति, क्षुधापिपासा, अरु मरण, इन तीन द्वार से सर्व जीवों को अपने आप बिम्ब रूप सत् चैतन्य स्वरूप की अभेद प्राप्ति देखाय पश्चात् उपदेश करता हुआ कि हे श्वेतकेतु सो महासूक्ष्म सत् आत्मा तुही है। तिसको भी मैं तेरे प्रति कहताहौं तिसको सावधान होके श्रवण करो—:॥ उद्दालक उवाच, हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु जैसे आदर्श (दर्पण) विषे पुरुष, अरु जलादिकों विषे सूर्य्यादिक प्रतिबिम्ब रूपसे प्रवेश करते हैं, तैसेही जिस मनविषे सत् चैतन्य परादेव ने (सर्व के नामरूप को प्रकट करने के अर्थ) अपने आभास रूपसे प्रवेश कियाहै, सो मन अन्नमय, प्राण जलमय, वाणी तेजमय, (अर्थात् यहां ,मन ,प्राण ,वाणी, इन तीनों के मिश्रित होने को लिंगका रूप जानना, इन तीनों का जो निर्णय हुआहै सो लिंगका निर्णय जानना) इनके संसर्ग संगसे चिदाभास जीव संज्ञाको पाया है अरु जिस मन वा लिंगमें स्थितहो चिदाभास जीव दर्शण श्रवण मननादि व्यापार में प्रवृत्त हुआ भासता है ॥:—अर्थात् स्थिरनिष्क्रिय आदि लक्षणवान् वस्तुके प्रतिविम्ब विषे जो कम्पत्वादि क्रिया धर्म भासते हैं सो उपाधि के संसर्ग सम्बन्ध से भासेहैं, वास्तव से नहीं, प्रतिबिम्बको बिम्बके लक्षण धर्म्मवान् होने से। अथवा जैसे शुद्ध स्फटिकमणि रक्त पीतादि रंगवाले पदार्थों विषे स्थित हुआ तिनके संसर्ग सम्बन्ध से तन्मय हुआ भासे है परन्तु स्वरूप करके तैसा होता नहीं तैसेही मन इन्द्रिय आदिकों विषे आभासरूपसे प्रवेशपाया शुद्ध सत् चैतन्यदेव मन आदिकों के संसर्ग सम्बन्ध से तन्मयहुआ जीव संज्ञाको पाया सता दर्शन श्रवण मनन आदि क्रिया का कर्त्ता कहाजाता है, परन्तु अपने स्वरूप करके किसी भी क्रिया का कर्त्ता नहीं—: ॥ तिन मन आदिकों के उपशम हुए अपने आप सत् चैतन्य देवरूप को प्राप्त होताहै। सो श्रुत्यन्तरमें कहा भी है। तथाच"ध्यायतीव लेलायतीव सधीः स्वप्नोभूत्वेमं लोक

माति क्रामति स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय इत्यादि। स्वप्नेन शारीरमित्यादि। प्राणन्नेव प्राणो नाम भवतीत्यादि "। अतएव तिस इस मनविशिष्ट चैतन्यका कि जो (स्फटिक मणि के उक्त दृष्टान्त प्रमाण) मनके साथ तन्मयता को पावने से मन संज्ञा को प्राप्त हुआ है, अरु मनके उपशम होने रूपद्वार से विषयों से इन्द्रियां जिसकी निवृत्त हुई हैं॥:—अर्थात् जिसका मन उपशम भावको (मनत्व के अभावको) प्राप्त होता है तिसकी इन्द्रियां विषयों से निवृत्त होती हैं। अरु तिस करके चिदाभास अपने बिम्ब सत्चैतन्य देव विषे आत्मभूत (अभेद एक) हुएका जो अवस्थान कहिये अधिष्ठान, तिस सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य देवका अपने पुत्र को साक्षात् यथार्थ अनुभव करावने की इच्छा वाला उद्दालक ऋषि जो अरुण नाम ऋषिका पुत्र होने से ,आरुणि, इस नाम करके प्रसिद्ध कहाजाता है। सो निश्चय करके अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति कहताहुआ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो (उस सर्वाधिष्ठान जगत् के मूल शुद्ध सत्चैतन्य निर्विशेष परादेव को) स्वप्नके अन्त सुषुप्ति को विस्पष्टजानो (यथार्थ सम्यक् अनुभवकरो) अर्थात् स्वप्नान्त कहिये स्वप्नका मध्य, अर्थात् यह स्वप्न है इसप्रकार स्वप्न दर्शन वृत्ति करके जो स्वप्नका कारण सुषुप्ति कि जहां कार्य्य रूप जाग्रत् स्वप्न दोनों नहीं, तिस कारण सुषुप्ति विषे अपने आप सत् चैतन्य देवको विस्पष्ट जानो॥:—हे सौम्य यहां जो कहा है कि स्वप्नके अन्त सुषुप्तिको जानो तिसका तात्पर्य सुषुप्ति के जानने पर नहीं, किन्तु जो चैतन्य देव सुषुप्ति के साथ तादात्म्य पाया सरीखा होने से सुषुप्ति नाम करके कहा जाता है, कि यह पुरुष सोया है, तिसको सुषुप्ति रूप निरुपाधि अवस्था विषे सुषुप्ति से पृथक् सुषुप्ति के प्रकाशक सत् चैतन्य निर्विशेष अपने आप आत्मस्वरूप के यथार्थ अनुभव करने पर है—:॥ "स्वमपीतो भव-

ति" इस वचन प्रमाण से। अरु सुषुप्ति से अन्यत्र जीवका अपने आप बिम्बरूप आत्मा विषे तद्वत् अभेद होना ब्रह्मवेत्ता इच्छते नहीं, क्योंकि तिस सुषुप्ति विषेही जैसे आदर्श (दर्पण) अभाव हुए पुरुषका जो दर्पणगत प्रतिबिम्ब है सो अपने पुरुषरूप बिम्ब विषे अभेदतासे प्राप्त होताहै, तैसेही दर्पणस्थानीय मन आदिकों के अभाव हुए तद्गत चैतन्य, कि जिसने नामरूप के प्रकट करने के अर्थ अपनी इच्छासे मन विषे प्रतिबिम्बरूप से प्रवेश किया है, सो मन नामवाले अपने जीवपनेको त्यागके अपने आप बिम्बरूप सत् चैतन्य परादेव विषे अभेदतासे प्राप्त होताहै। अतएव स्वप्नान्त शब्दका वाच्य सुषुप्तिही ग्रहण होताहै। अरु जहां तो सोया हुआ स्वप्नोंको देखताहै तिनको सुख दुःख करके संयुक्त होनेसे सो पुण्य पापका कार्य है (सुख दुःखको पुण्य पाप जन्य प्रसिद्ध होनेसे)। अरु पुण्यपाप दोनोंको अविद्या जन्य कामना के आश्रय होनेसे सुख दुःखमय स्वप्नका दर्शन पुण्य पापरूप कर्म्मोंकरके ही जनित है, अर्थात् अविद्या जो संसारका हेतु है तिस अविद्या के कामकर्म्मादिकों करके युक्तही स्वप्न है, एतदर्थ अविद्याके काम कर्म अरु तज्जनित सुख दुःखमय स्वप्नमें जीवका अपने सत् चैतन्य देव रूप बिम्बके साथ अभेदता से एक होना बने नहीं॥ तथाच "अनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णोहि तदा सर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति तद्वाऽस्यै तदतिच्छन्दा एष परम आनन्द" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से, यह चिदाभास (जीव) अपने जीवत्व भावको त्याग के अपने आप सत् चैतन्य देव रूपताको अभेदतासे प्राप्तहोताहै। इस सिद्धान्त वार्त्ता को उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को, अरु श्रीशंकराचार्य्य अपने शिष्य मुमुक्षुओं को स्पष्ट देखावते हैं॥

हे सौम्य हेप्रियदर्शन श्वेतकेतो मेरे कहे प्रमाण स्वप्नके अन्तको सम्यक् प्रकार जानो, अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करो॥ प्रश्न॥ हे भगवन् किस काल में स्वप्नका अन्त होता है

उत्तर ॥ हे सौम्य जिस कालविषे पुरुषका यह नाम लोक विषे प्रसिद्धहोताहै कि यह पुरुष सोवताहै शंका ॥ हे भगवन् यह नाम तो गौणहै समाधान ॥:– हे सौम्य यहां केवल वस्तु मात्रको लखावना है एतदर्थ यहां मुख्य नामकाही प्रयोजन होवे ऐसा नियम नहीं, अरु जिसअवस्थामें वस्तु लखाईजाय तिसही अवस्थाके सम्बन्धी नामका उपयोगवस्तुके लखावनेविषे होताहै–:॥ हे प्रियदर्शन जिस कालमें सर्व कोई इसको कहते हैं कि यह पुरुष सोवताहै तिस कालमें सत् शब्दके वाच्य अपने आप बिम्बरूप सत् चैतन्य आत्माविषे सम्पन्न (एकी भूत) होताहै। अर्थात् मनविषे प्रवेशकरने से मनआदिकों के संसर्ग से चिदाभासको प्राप्तहुआ जो जीवपना तिसको परित्याग करके (अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें मन आदि उपाधिके अभावहोने से चिदाभासके जीवपने (आभासपने) का अभाव होताहै) आप चिदाभास अपने सत् रूपको जो परमार्थ से सत् रूप ही है तिसविषे प्राप्तहुआ होताहै, तिसकरके उस पुरुषको ,सोवताहै, इस नामसे लौकिक पुरुष कहते हैं शंका ॥ हे भगवन् सोयेहुए पुरुषका यह स्वप्न देखताहै वा सुषुप्ति में है इसविषयक जाग्रत् पुरुषको एक निश्चय होवे नहीं,तब ,सोवताहै, इसनामकरके सुषुप्तिकोही कैसे निश्चयकरिये समाधान ॥ हेसौम्य तुम सत्य कहते हो परन्तु जो जाग्रत् विषेही जो कामना करके पुण्य पापरूप कर्मों के करने से अरु तिनके फल सुख दुःखादिकों के भोगने से अति श्रमित होते हैं, तब उन श्रमितहुए पुरुषों के मन बुद्धि इन्द्रियादि सर्व अन्तर वाह्यके करण श्रमित होनेसे अपने २ व्यापार से उपराम होतेहैं, तब स्वप्नको न प्राप्तहोके सुषुप्तिको ही प्राप्तहोते हैं। अरु इस वार्त्ताका लोकविषे पुरुषों को प्रत्यक्ष अनुभव है, एतदर्थ ही लौकिक पुरुष सोवनेवाले को „ स्वपिति „ सोवताहै अर्थात् सुषुप्ति को प्राप्तहुआ इस नामसे कहते हैं। तथाच।" श्राम्यत्वेन वाक् श्राम्यति चक्षुरिति " इत्यादि प्रमाण प्रकार से।"तथाच"॥

गृहीत वाक् गृहीतश्चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मन ”।। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ॥ शंका ॥ हे भगवन् सुषुप्ति अवस्थाविषे अन्तर बाह्यके करणों के अभाववत् प्राणका भी अभावहोता होगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य यह शंका करने योग्य नहीं, क्योंकि जो वहां प्राणका भी अभाव होताहोवे तो उस सुषुप्ति पुरुषविषे लोकोंको मरण की भ्रान्तिहोवे, ताते प्राणकरके ग्रसित करणों के अभावहुए शरीररूपी स्थानविषे (चौकीदारवत्) एक प्राण जागता है, ताते तिस समय कि जिस समय अन्तर बाह्य के सर्व करण मिश्रित होय के अपने २ व्यापार से उपराम हो कारण अविद्यामें लय होते हैं, यह जीव कर्तृत्व भोक्तृत्वादि सर्व श्रम से रहित अपने आप सत्चैतन्य देव आत्मा को अभेदता से प्राप्तहोता है। सुषुप्ति से अन्यत्र इस जीवको श्रमके अभाव पूर्वक स्वस्वरूपावस्थान को प्राप्तहोने का स्थान नहीं । एतदर्थ लौकिक पुरुषों का जो प्रसिद्ध यह कथन है कि यह पुरुष सुषुप्ति विषे अपने आप सत्य स्वरूप को प्राप्त होता है सो युक्तही है ॥ः—अर्थात् मन इंद्रियादि सर्व विशेष उपाधि का अभावही परमानन्दकी प्राप्ति है, उपाधि के अभाव हुए पश्चात् परमानन्दकी प्राप्तिके अर्थ कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं—ः॥ हे सौम्य जैसे लोकविषे देखते हैं कि जो ज्वरादि रोगकरके ग्रस्त पुरुष है तिसको ज्वरादि रोग की निवृत्ति सेही शरीरकी स्वस्थता प्राप्त होती है, ज्वरादि रोगकी निवृत्तिके पश्चात् उस पुरुषको शरीरकी स्वस्थता (नीरोगता) के अर्थ कुछ भी उपाय कर्तव्य शेष रहता नहीं। तैसेही यहां भी मन आदि उपाधि के अभावहुए पश्चात् अपनेआप परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति के अर्थ कुछ भी कर्तव्यशेष रहे नहीं, एतदर्थ पूर्व वृद्ध विद्वानों ने भी उपाधि के अभावसेही परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति कहीहै, अरु जो परमानन्दको प्राप्त हुए हैं सो भी सर्व उपाधि को त्यागकेही हुएहैं । अतएव हे शिष्य जो तुम परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति इच्छते हो तो सर्व उपाधि का

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं प्रति
त्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवो पश्रयत एवमेव
खलु सौम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायत
नमलब्ध्वा प्राणमेवो पश्रयते प्राणबन्धन छं हि सौ
म्य इति २॥

अभाव करो क्योंकि सर्व उपाधि के अभाव से परमानन्द रूप तुमहीं हो ॥ तथाच॥ तद्यथा श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्त इत्यादि श्रुतिः॥ १॥

अक्षरार्थ॥

सो जैसे शकुनि पक्षी सूत्रकरके बाँधा हुआ दिशा दिशा में गिरके अन्यत्र आयतन (आश्रय) न पायके बन्धनको ही आश्रय करता है। हे सौम्य ऐसेही निश्चय करके सो मन (मन विशिष्ट चैतन्य जाग्रत् स्वप्नरूप) दिशा दिशामें गिरके (सत् चैतन्य से) अन्यत्र आश्रयको न पायके प्राणोपलक्षित चैतन्यको ही आश्रय करताहै, अतएव हे सौम्य प्राणोपलक्षित चैतन्यही मनोपलक्षित जीवका बन्धनोपलक्षित आश्रयहै २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका॥

उद्दालक उवाच॥ हे सौम्य हेप्रियदर्शन श्वेतकेतो जो अर्थ तुझ से कहा तिसपर एक दृष्टान्त श्रवण कर। हे सौम्य सो शकुनि नाम वाला पक्षी (जिसको लोक बिषे शिकरा वा बाज कहते हैं) अरु जिसको पक्षी की शिकार करने वाले पुरुष उस की पेटीसे सूत्रबांधके अपने हाथपर बैठावते हैं, सो उस पक्षी घातक पुरुष के हस्तगत सूत्रमें प्रबद्ध हुआ अपने बन्धनसे छूटने की (वा पक्षियों के शिकार) की कामना से सर्व दिशाओं में उड़ता उछलता गिरता है, परन्तु विगत श्रम होने के अर्थ, उस बन्धनोपलक्षित हाथसे अन्यत्र आश्रय को पावता नहीं तब उस बन्धनोपलक्षित हस्तको ही आश्रय पायके विश्रांत

(विगतश्रम) होता है । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही सो मन जो पूर्व अन्नकी सूक्ष्म सोलह कला का निर्धारकियाहै, तिस मन विशिष्ट चैतन्य जो मन रूप उपाधि के सम्बन्ध से मन वा जीव संज्ञाको पायाहै । अर्थात् मनोपलक्षित चिदाभास जीव ,मञ्चाक्रोशति, इसन्याय प्रमाण । अर्थात् ,मञ्च पुकारता है, इस वाक्यकरके मञ्चस्थ पुरुष पुकारता है यह अर्थ ग्रहण होताहै तैसेही यहां मन शब्दसे मनोपलक्षित चिदाभास (जीव) का ग्रहण है, ताते सो मन नाम उपाधिवाला जीव सो अविद्या के काम कर्म्मकरके (मनरूप उपाधिके धर्मकरके) उपविष्टहुआ (विषयादि भोगों की वा बन्धन निवृत्तिकी कामना से) जाग्रत् स्वप्न रूप दिशा दिशा में गिरता है ॥:-अर्थात् यह मनविशिष्ट चैतन्य जीव अविद्या के काम कर्मों के, जो उपाधि के धर्म हैं, वश हुआ विषयों की कामना से जाग्रत् रूप दिशामें कामना के वश हुआ अनेक शुभाशुभ कर्मों को करता हुआ थकता है तब वहां श्रमकी निवृत्ति के अर्थ आश्रय को अन्वेषण करता है, परन्तु वहां शान्ति के अर्थ आश्रय को पावता नहीं तब तिसके अर्थ स्वप्न रूप दिशामें जाता है अरु वहां जायके भी कामना केवश पुण्य पाप रूप क्रिया को करता हुआ श्रमित होता है-:॥ परन्तु सत् नाम वाले अपने आत्मा चैतन्य देव से अन्यत्र आयतन कहिये विश्राम को आश्रय सो पावता नहीं, तब सर्व कार्य्य कारणों का आश्रय जो प्राण शब्द करके उपलक्षित सत्चैतन्य परादेव, अर्थात् "प्राणस्य प्राणं, प्राणशरीरी भारूप" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से सत्चैतन्य परादेव को प्राण नाम से कहते हैं, अतएव यहां प्राण शब्द करके प्राणोपलक्षित सत्चैतन्य देव का ग्रहण है तिस प्राण शब्द के वाच्य सत् चैतन्य देव को सुषुप्ति में आश्रय कर (तद्गत एक होय) यह मन नाम वाला जीव विगत श्रम परमानन्दित होता है । अतएव हे सौम्य मन शब्द का वाच्य मनोपलक्षित चिदाभास जीवका परम

आश्रय (परमानन्दका स्थान) प्राण शब्द का वाच्य प्राणोपलक्षित सत् चैतन्य परादेवही है अन्य नहीं ।:–हे सौम्य जब यह जीव पुण्य पापके कार्य्य सुख दुःखादिमय जाग्रत् स्वप्नमें खेदित (श्रमित) होय मन आदि रूप उपाधिको त्याग सुषुप्ति में जाय अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य परादेवको अभेदतासे पाय परम आनन्दित होताहै अन्यत्र नहीं । एतदर्थही कहा है कि सर्व जीव सुषुप्तिमें जायके अपने आप सत् चैतन्य देवको अभेदता से सम्प्राप्त होते हैं ॥ शिष्यउवाच॥ हे भगवन् श्रुतिने अरु आपने आज्ञा किया कि सुषुप्ति में सर्व जीव अपने सत् चैतन्य आत्मरूपको सम्प्राप्तहोते हैं । सो अस्तु परन्तु सत् आत्माको प्राप्तहो के भी पुनःवहांसे निकस आवते हैं तिसकाहेतु क्याहै सोभी आपकृपाकरके कहिये ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य यह सर्व जीव सुषुप्ति अवस्थामें मन इन्द्रिय आदिकों के संघातरूप लिंगको अविद्यामें त्यागके । अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें कारण अविद्याविषे लिंगके लय होनेसे लिंगविशिष्ट चिदाभास (जीव), दर्पणके अभावसे प्रतिबिम्बवत्, अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य परादेवविषे एकताको पावता है, परन्तु अविद्या करके काम्यकर्मादिकों के संस्कार अपने साथ लेजाते हैं सोई काम्यकर्मादिकों के संस्कार सत् चैतन्य देवको प्राप्तहुए भी जीवोंको वहां से निकास लिंग साथ मिलाय जाग्रत् स्वप्नमें डालदेते हैं । अरु जो यहां जाग्रत्विषे ही आचार्य्य द्वारा वेदके महावाक्यार्थ का ज्ञानपाय सर्व काम कर्म्मों के संस्कारों को त्याग अपने आप सत् चैतन्य आत्मदेव प्राप्त होते हैं सो एक बार सत् विषे गयेहुए पुनः जीव भाव विषे आवते नहीं ॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त श्रवणकरो । हे प्रियदर्शन जैसे जलसे भरे हुए काचके शीशे को धूपविषे रखने से वो शीशा तपजाता है अरु तिसके सम्बन्धसे शीशेका जल भी तप जाता है । अरु जब उस तपेहुए शीशेको जल विषे डुबोइये तब वो शीशे का जल शीतलहोता है, पुनः बाहर निकलने से तप्त

अरु जलमें जाने से शीतल होता रहताहै । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्तहै तैसेही यहां अविद्याके काम कर्मोंके संस्काररूपी शीशाहै तिसविषे जीवरूप जलहै अरु जाग्रत् स्वप्न रूप सूर्यका पाप पुण्य सुख दुःख रागद्वेषादि रूप धूपहै तिस धूपविषे रहा वो शीशेका जल सो त्रिविध तापों करके तपता ही रहताहै । अरु जब वो शीशेके जलवत् सुषुप्तिरूप नदीविषे जाताहै तब सत् चैतन्य देवरूप जलविषे गया परमानन्दरूप शीतलताको पाय परम शीतल शान्त सुखी होताहै । परन्तु जैसे शीशेके जलको नदी के जलसे वाह्य आवने का हेतु शीशाहै, तैसे ही सुषुप्तिविषे सत् चैतन्य आत्मदेवको प्राप्तहुए जीवोंको भी वहांसे निकलने का हेतु अविद्या काम कर्मों के संस्कारही है । अतएव हे सौम्य तिस चैतन्य देवकी प्राप्तिविषे चिदाभासको मनआदिक उपाधियोंका अभाव कारणहै तैसेही अविद्या काम कर्म्मोंके संस्कारों का भी अभाव कारणहै । अतएव जिस पुरुषको पुनरावृत्ति से रहित सत् चैतन्य अपने आप आत्मदेवकी प्राप्ति इच्छितहै तिस पुरुषने श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल महावाक्यार्थ का सम्यक् ज्ञानपाय अविद्या काम कर्म्मों के संस्कारों को , जो पुनरावृत्ति होनेका हेतुहै, अभाव करताही उचितहै ॥ हे सौम्य यावत् वो काचका शीशा फूटता नहीं तावत् वो शीशा विशिष्ट जल नदी के जलविषे गयाहुआ भी पुनरावृत्ति से रहित नदी के जल साथ एक होता नहीं । तैसेही यावत् इन जीवों की मन आदिकों का संघात लिंग अरु तिनके धर्म कर्म्मादिकों के संस्कार रूप उपाधि अशेष अभाव होती नहीं तावत् इन जीवोंको पुनरावृत्ति से रहित सत् चैतन्य देवकी अभेद प्राप्ति होती नहीं। ताते मोक्षार्थियों को मोक्षके अर्थ उक्त उपाधि के अभावार्थ पुरुषार्थ करना योग्य है । वास्तव करके शीशे नदी के जलमें भेद नहीं जलविषे दोनों की एकताही है, परन्तु शीशेरूप उपाधि के होते उपाधिकी की हुई अल्पता परिच्छिन्नता के अ-

भाव पूर्वक वो शीशे का जल नदी के महान् गंभीर जल साथ अभेदतासे एक होता नहीं। तातें उक्त उपाधिके अभावार्थ श्रवण मननादि पुरुषार्थ की आवश्यकताहै॥ हेसौम्य अब उक्तदृष्टान्त द्राष्टान्त की समता को श्रवण करो, हे प्रियदर्शन जलरूप सत्का कार्य्यनामरूप पृथिवी है तिस पृथिवीका कार्य्य शुद्ध भागकाच है तिस काचका कार्य्य नामरूप शीशाहै। इस प्रकार कार्या कारण की परम्परासे शीशे पर्य्यन्त सर्व जल है, तहां सर्वका पराकारण सत्जल अपनेही कार्य्यरूपी शीशे में प्रवेश पायके अल्पता परिच्छिन्नताको प्राप्त होताहै अरु सूर्य्यके धूप करके अतितप्त होताहै अरु अपने वास्तविक नदीके महान् गंभीर परम शीतल जलमें जाय आपभी तद्वत् शीतल शान्त होताहै। परन्तु अपनेही कार्य्य शीशेरूपी नामरूप उपाधि करके युक्तहुआ अपने परम शीतल महान् गंभीर जल रूपी आत्मा बिषे गया हुआ भी वहांसे निकल सूर्य्य के धूपमें अत्यन्ततापको प्राप्त होताहै। अरु जब वो शीशा अपने पराकारण जल बिषे जाय के फूटजाता है तब वो शीशेका जल पुनरावृत्ति से रहित हुआ अपने महान् गंभीर परम शीतल जलरूप सत् आत्माके साथ अभेद एकहुआ न वहांसे बाह्य आवताहै न धूप करके तपायमान होता है॥ हे सौम्य इसदृष्टान्त प्रमाणही इन सर्व नामरूपात्मक जगत् के पूर्व सर्वका पराकारण एक अद्वैत सत्हीथा तिसको जलस्थानी जानो, अरु उस सत्की इच्छा करके हुए जे, तेज, जल पृथिवी, इन तीनों तत्त्वोंको पृथिवी स्थानी जानो, अरु इन तीनों तत्त्वोंके सूक्ष्म अंशोंसे हुए जे, मन, प्राण, वाणी, इन तीनों के संघातरूप लिंगको शीशेकेस्थानापन्न जानो, अरु तिस लिंगविशिष्ट चैतन्य(चिदाभासजीव)को शीशेकेजल स्थानापन्न जानो। हे प्रियदर्शन सर्वका पराकरण सर्वाधिष्ठान जो सत् चैतन्य परादेव सो अपने आभास रूप से लिंग बिषे प्रवेश करनेसे परिच्छिन्न अल्पभावको प्राप्त हुआहै, अरु तिस करके अल्पज्ञ तुच्छ

अशनापिपासे मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाय एवतदशितंनयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्ग मुत्पतितछं सौम्य विजानीहीति नेदममूलं भविष्यतीति ३ ॥

पापी अपराधी जीव कहा जाताहै, अरु जाग्रत् स्वप्नरूप सूर्य्यके पाप पुण्य सुख दुःख रागद्वेषादिरूप किरणोंके त्रिविधताप करके तप्त दुःखितही रहताहै, तिस दशामें जो कदापि दैववशात् सुषुप्तिको प्राप्त होताहै तब अपनी उक्त उपाधिको त्याग तिसके सूक्ष्म संस्कार साथले अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य देव विषे प्राप्त हो कुछ शीतल सुखी आनन्दित होताहै। परन्तु अपनेही वास्तविक सत् चैतन्य सर्वके पराकारण देव स्वरूप के कार्य लिंगरूप उपाधि के धर्म्म कर्मादिकों के संस्कार युक्तजाने से अपने वास्तविक परमार्थरूप सत् चैतन्य देव बिषे गयाहुआ भी पुनःनिकस आवता है। ताते उक्त उपाधियोंका त्यागनाही अनिवार्य्य परमानन्द अपने आपकी प्राप्तिका कारण है। हे सौम्य जो पुरुष वेदके महावाक्यार्थ का सम्यक् बोधरूप दंड लेके लिंगरूप शीशेको 'जो वाचारंभण मात्रही है, फोड़ कारण अविद्या रूपा पृथिवीमें मिलाय पुनः तिस अविद्याको अपने आप सर्वाधिष्ठान रूप सत् चैतन्य आत्मसत्ता विषे तिसकी पृथक् सत्ताके अभाव से अध्यस्त जान तिस अविद्याका बाधरूप अभाव निश्चयकर अपने यथार्थ साक्षात् अनुभवद्वारा अपने आप सत् चैतन्य सर्वाधिष्ठान सर्वात्मदेव भावको प्राप्तहुआ है सो पुरुष उस सत् चैतन्य देव विषे गयाहुआ फेरके आवतानहीं, वो सत् बिषे गया हुआ सतही होताहै ॥ तथाच ॥ "यथानद्यस्पन्दमाना समुद्रे अस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान्नामरूपा द्विमुक्त परात्पर पुरुष मुपैति दिव्यम् ॥ इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे॥—:२॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य मेरे कहे प्रमाण भोजनकी अरु जलपान की इच्छा के द्वारसे भी (उस जगत् के मूल सत्चैतन्य को सम्यक् प्रकार जानो जिस कालमें इस पुरुष का नाम भोजन की इच्छावाला होताहै, भोजनकिये अन्नको जलद्रवी भूत करताहै, जैसे गोपाल गोओं को अश्वपाल अश्वों को पुरुषपाल (राजा) पुरुषों को पालताहै, इसप्रकार जलको कहते हैं, भोजन की इच्छा से (अन्न रूप बीजसे) देहरूप अंकुर (कार्य्य) उपजताहै ऐसा जानो, ताते यह शरीर निर्मूल नहीं ३ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे प्रियदर्शन „स्वपिति„ यह पुरुष सोवताहै इस नामद्वारा अर्थात् जिसप्रकार सुषुप्ति के द्वारा सर्व जीवों को जगत् के मूल सत्चैतन्यदेवकी प्राप्ति होती है, सो अपने पुत्र श्वेतकेतु को अनुभव कराय, पुनः उद्दालक पिता अन्नादि कार्य्याकारण की परम्परा से जगत् के मूल उस सत्चैतन्य के लखावने की इच्छा वाला अपने पुत्रको कहता हुआ ॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु मेरे कहे प्रमाण क्षुधा पिपासा की इच्छाके द्वार से भी उस सत् चैतन्यदेवको विस्पष्ट जानो। अर्थात् भोजन की इच्छाको कहिये अशना (यहां, अशनाया, ऐसा पदहोना चाहिये परंतु यहां अशना, ऐसा पदहै सो छान्दस आर्ष प्रयोगहै, अतएव यहां अशुद्धताकी भ्रान्ति करनी नहीं। अरु पिपासा कहिये जलपान की इच्छा, ताते, अशना, पिपासा, इनदोनों से सो तत्त्व जो जगत् का मूल है तिसको विस्पष्ट जानो। जिस कालमें यह पुरुष अशन पिपासा की इच्छावाला होताहै ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह पुरुष भोजन जलपान की इच्छा क्यों करताहै, अरु तिस काल में किस निमित्त से तिस पुरुषका नाम होताहै ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य उस पुरुष करके भोजनकिया अन्न उदरविषे जाय जठराग्नि करके पकायाहुआ कठिन पिंडवत् होताहै तब इस पुरुष

तस्यक्व मूल छं स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सौम्या न्नेन शुंगे नापो मूलमन्विच्छद्भिः सौम्य शुंगेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुंगेनसन्मूल मन्विच्छ स न्मूलाः सौम्येमाःसर्व्वाःप्रजाःसदायतनाःसत्प्रतिष्ठाः४॥

को तृषा लगती है, तब तिस तृषा के समय जलपान करता है, जब जलपान करता है तब वो जल उदर में जाय उस अन्नके पिंडको द्रवीभूत करताहै, तब वो अन्न रसादि क्रमसे परिणाम को पावताहै, तब वो भोजनकिया अन्नजीर्ण भावको प्राप्त होता है (पचजाताहै) तब वो पुरुष पुनः भोजन की इच्छा करताहै, इस गुण सम्बन्धी गौण नाम से उस पुरुषका भोजन की इच्छा वाला नाम होताहै । हे सौम्य जैसे गौओंको पालनेवाला गोपाल गौओंकी, अरु अश्वोंको पालनेवाला अश्वपाल अश्वोंकी, अरु पुरुषों का पालनेवाला राजा वा सेनापति पुरुषोंकी पालना करते हैं । तैसेही जल उदरविषे जाय उस भोजनकिये अन्नको द्रवीभूत करता है तब अग्नि उस अन्नका अनेकप्रकार रसकरके सर्व नाड़ियों में पहुंचाय शरीर का पालन करता है । ताते यह शरीर अन्न रसकरके निष्पादित (रचित) है । जैसे बट के सूक्ष्म वीजसे अंकुरोत्पत्ति होतीहै, तैसेही अन्न के सूक्ष्म रसकी परम्परा से इस शरीर की उत्पत्तिहै, एतदर्थ शरीर की उत्पत्ति का मूल अन्नहै ऐसा विस्पष्ट जानो ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् शरीर का मूल अन्न है इसविषय में क्या जाननाहै ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन श्रवणकरो यह शरीर अंकुरवत् कार्य्यहोनेसे मूल बिनाका होने को योग्य नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्वेतकेतु उवाच । तिसका क्या मूल है । उद्दालक उवाच । हे सौम्य अन्नसे इतर इसका मूल क्या है (अन्नही इसकामूलहै)

ऐसाही हे सौम्य अन्नरूप शुंगकरके तिसका मूल जलको निश्चय करो, हे सौम्य जलरूप अंकुर करके तिसका मूल तेजको जानो तेजरूप अंकुर करके हे सौम्य सत् चैतन्य रूप मूल को निश्चय करो, हे सौम्य यह सर्वप्रजा सन्मूलवाली है, सत्आयतनवाली है, अरु सत्प्रतिष्ठावाली है ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हेसौम्य उक्तप्रकार जब उद्दालक पिताने कहा कि यहशरीर मूल विनाका होनेको योग नहीं, तब श्वेतकेतु नाम पुत्र प्रश्न करता हुआ ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यदि आपके कहे प्रमाण यह शरीर अंकुरवत् समूल है तो इसका मूल क्या है सो आप कृपा करके कहिये। इसप्रकार जब पुत्रने प्रश्न किया तब उद्दालक पिता उत्तर कहता हुआ ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य तैंने प्रश्न किया कि तिस शरीर का (जो अंकुरवत् कार्य्य है) तिसका मूल क्या है सो अन्नसे इतर इसका क्या मूल है, अर्थात् इसका मूल अन्नही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इस शरीरका मूल अन्न कैसेहै सो आप कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जब यह पुरुष भोजन करता है तब उस भोजन किये अन्नको पिया हुआ जल उदरविषे द्रवीभूत (कोमल, ढीला) करता है, तब उदरविषे जठराग्नि करके पचाया हुआ अन्न रसादि क्रम से परिणाम को पावता है। पुनः उस रससे रुधिर होताहै, रुधिर से मांस, मांससे मेद, मेद से अस्थि, अस्थिसे मज्जा मज्जासेशुक्र (वीर्य) होताहै। हे सौम्य इसप्रकार पुरुषके उदरविषे अन्न रसादि क्रमसे परिणामको पावता है। अरु तैसेही स्त्री करके भोजन किया अन्न रसादि क्रमसे ही परिणाम पाय अन्त शोणित होताहै, तब उन अन्नके कार्य्य शुक्र शोणित एकत्र हुए का (गर्भविषे) देह उत्पन्न होताहै, अरु अन्न रस करकेही वहां वर्द्धमान होता है, अरु नित्य नित्य अन्न भोजन सेही शरीरकी स्थिति होती है। एतदर्थ उक्त प्रकार अन्न रसका परिणाम होनेसे इस देहरूप अंकुरका मूल अन्नही है॥:—

अर्थात् इस शरीरकी अन्न करके उत्पत्ति वृद्धि स्थिति अरु अन्न विना अभाव होना देखने से इसका मूल अन्नही निश्चय होता है ॥प्रश्न॥ हे भगवन् जो तो देहरूप अंकुरका मूल अन्न आपने निर्देश किया सो अस्तु, तथापि तिस अन्न को देहवत् उत्पत्ति विनाशवान् होने से उसकी सतचैतन्य मूलसे उत्पत्ति कैसे संभवेगी (अर्थात् अन्नको उत्पत्ति विनाशवान् होने से उसकी उत्पत्ति सतचैतन्य मूलसे संभवे नहीं) तब सो शुंग (अंकुर) ही है ऐसा क्यों कहतेहौ ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जैसे देहरूप अंकुर का मूल अन्न है, तैसेही हे सौम्य अन्नरूप अंकुर (कार्य्य) करके अन्नरूप अंकुर का मूल जलको प्रतिपादन करतेहैं, अरु अन्नवत् जल को भी उत्पत्ति विनाशवान्पना होने से अंकुरपना है, ताते हे सौम्य जलरूप अंकुर कहिये कार्य्य करके तिसका मूल (कारण) तेजको निश्चयकरो । अरु तैसेही तेजको भी उत्पत्ति विनाशवान् होनेसे अंकुरपना है, ताते तिस तेजरूप अंकुरका मूल सतचैत्तन्यको जानो, कैसाहै वो सतचैतन्य एकही अद्वितीय है (अरु वास्तवसे उत्पत्ति विनाश रहित अज अविनाशी) सत् है, जिस बिषे यह सर्व तेजादि कार्य्य कारणात्मक स्थूल सूक्ष्म सर्व प्रपंच रूप विकार (कार्य्य) केवल नाम मात्रही है । हे सौम्य जैसे, रज्जु बिषे सर्प, शुक्ति बिषे रूपा, स्थाणु बिषे पुरुष, मरुस्थल बिषे जल, इत्यादि सर्व अध्यस्त होनेसे अपनी सत्ताके अभाव से कहने मात्रही हैं । तैसेही सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य परादेव विषे यह नाम रूपात्मक स्थूल सूक्ष्म सर्व जगत् अविद्या करके अध्यस्त होनेसे अपनी पृथक् सत्ताके अभाव करके केवल वाचारंभण (कहने मात्र) ही है । ताते सोई सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य इस समस्त नाम रूपात्मक जगत् का मूल है । अतएव हे सौम्य यह सर्व स्थावर जंगम लक्षण वाली प्रजा सत् चैतन्य मूल (कारण) वाली है । सो सत्चैतन्यसे उत्पन्नहोनेकरके केवल सत् मूल वाली ही है ऐसा नहीं किन्तु इस स्थिति काल विषे

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एवतत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितछं सौम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ५ ॥

सत् चैतन्य के आश्रय होने से सत् आयतन (आश्रय) वालीहै॥ सो भी एतना ही नहीं कि सत् मूल अरु सत् आयतन वालीही होवे किन्तु यह सर्व्व स्थावर जंगम नामरूप लक्षण वाली समस्त प्रजा अन्तमें सत् प्रतिष्ठावाली होती है। अर्थात् अन्त में सर्व्वाधिष्ठान सत् चैतन्य बिषेही परिअवसान पावती है। अर्थात् जैसे मृत्तिका का कार्य्य घटादिक मृत्तिका से उपजते हैं, मृत्तिका के आश्रय वर्त्तते हैं, अरु परिणाम मृत्तिका बिषेही लय होते हैं॥:- अर्थात् जो वस्तु जिसबिषे कल्पित होती है, मृत्तिका बिषे घटादिवत् सो अपनी स्थितिकालमें उसहीके आश्रय वर्त्तती है, उसका उपादानसे इतर आश्रय कोईभी होवे नहीं, जैसे घटके नाम रूपका आश्रय मृत्तिकाहै तैसे, अरु वो वस्तु अन्तमें अपने उपादान मेंहीं परिअवसान (समाप्ति) पावे है, जैसे घटफूटके मृत्तिका बिषेही परिणाम पावे है, अथवा जैसे घटका नाम रूप कल्पित होनेसे सो घट बिषे मृत्तिका मेंही परिअवसान पावे है तैसे-:॥ अथवा जैसे रज्जु बिषे अध्यस्त सर्प रज्जु सेही उपजता है रज्जुके आश्रय वर्त्तता है परिणाम रज्जु बिषेहीलय होता है। ताते वो सर्प रज्जु रूप है इतर नहीं, तैसेही यह नाम रूपात्मक सर्व प्रजा चैतन्य देवरूप मूलवाली है, अरु तिसही के आश्रय वर्त्तती है, अरु परिणाम विचार दशाबिषे रज्जु में सर्पवत् लय होती है। ताते यह सर्व प्रजा, सत् मूला, सत् आयतना, सत् प्रतिष्ठा, वालीहै ॥:-इस उपनिषद् के तृतीय प्रपाठकबिषे "सर्व्व खल्विदं ब्रह्म", निश्चय करके सर्व ब्रह्महीहै, ऐसा

कहा है तिसका सविस्तर निर्णय इस षष्ठ प्रपाठक में यहां पर्य्यंत हुआ जानना—:॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ (अब जलरूप अंकुर के द्वार से सत् मूल को श्रवण करो जिस काल विषे इस पुरुषका नाम यह जलपानकी इच्छा वाला होता है तिस समय पानाकिये जलको तेजही पालन वा परिणाम को प्राप्त करता है जैसे गोपाल गौओंको अश्वपाल अश्वोंको पुरुषपाल पुरुषों को । तैसे तिस तेजको कहते हैं जो तेज उदकको यथा स्थान प्राप्त करता है, तहां यह शरीरही जल रूप मूलका अंकुर है हेसौम्य ऐसा जानो, यह शरीर निर्मूल होने को योग्य नहीं ५ ॥

भावार्थ मंत्र पांचवें ॥

हे सौम्य, अब जलरूप अंकुर के द्वारसे सत् मूलका उद्दालक ऋषिने अपने पुत्रको लक्ष्य करायाहै सो भी श्रवण करो । उद्दालक उवाच ॥ हे श्वेतकेतु जिस कालमें इसपुरुषका नाम जलपान की इच्छावाला होता है, सो यह नाम भी भोजन की इच्छावाला, इस नामवत् गुण के सम्बध से गौणहोता है । हे सौम्य भोजनकिये अन्नको पानकिया जल ढीला करता है, अरु तिस अन्नको ढीलाहोनेसे तिसका कार्य्य देहरूप अंकुर सो भी जलकी बाहुल्यता से शिथिल होजावे जो तेज करके वो जल शोषण न कियाजाय । ताते पानकिया जल निरन्तर तेज करके शोषण किया जल भी अन्नवत् देहभावरूप परिणाम को पावताहै । अतएव जब उदरविषे जलको तेज शोषण करताहै, तब पुरुष को जलपान की इच्छा होती है, तब उस पुरुष का नाम जलपानकी इच्छा वाला होताहै (लोक कहते हैं) ताते सो तेजही पानकियेहुए जलादिकों को देहके अन्तर रुधिर प्राणादि भावसे परिणाम को प्राप्त करताहै ॥ :—अर्थात् पूर्वकहा हुआ है कि पानकियाहुआ जल उदरविषे तीनप्रकार का होताहै, तहां

उसके स्थूल भागका मूत्र, मध्यम भाग रुधिर अरु सूक्ष्म भाग का प्राण होताहै। इस प्रकार जो उदरविषे तीन भावआदि परिणाम होते हैं सो तेजके किये होते हैं—:॥ अरु उस जलके परिणाम रुधिरादि रसको यथा स्थान यथा योग्य प्राप्त करता है। जैसे गौओं को गोपाल अरु अश्वों को अश्वपाल, अपने २ गौ अश्वों को यथा स्थान प्राप्तकर यथायोग्य तृणादि देतेहैं, अरु जैसे पुरुषपाल (राजा वा सेनापति) प्रजाको वा सेनाको यथायोग्य अधिकार प्रतिस्थापनकर उनका पालन करताहै। तैसेही तेज अपने जलरूप अंकुर (कार्य्य) को रुधिरादि भावसे परिणामकर शरीर के यथायोग्य स्थान (नाड़ियों) को प्राप्त करता है॥ ताते तिस तेजको लौकिक पुरुष कहतेहैं कि उदकको तेज परिणाम को प्राप्त करता है। यहां मूल श्रुतिमें "उदन्येति" ऐसा पदहै सो छान्दस होनेसे अशुद्ध नहीं परन्तु "उदकंनयति" ऐसा पद होताहै॥ तहां भी जैसे पूर्व अन्नका अंकुर देह कहाहै तैसेही जलका भी यह शरीर नामवाला अंकुरहै अन्यका नहीं॥:-- अर्थात् "अयंपुरुषः अन्न रसमयः" इस अन्य श्रुतिके वाक्यप्रमाण भी यह शरीर रूप अंकुर अन्न जलरूप मूलवाला है—:॥ अरु सामर्थ्य करके तेजका भी यहही शरीर नामवाला अंकुर है॥ अर्थात् यह स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणों का संघातरूप शरीर परम्परा करके तीन तत्त्वरूप मूलवाला है अरु तीन तत्त्व सत् चैतन्य मूलवाले हैं—:॥ अतएव जल के अंकुर देहकरके तिसका मूल जलही जाना जाताहै। अरु जलरूप अंकुर करके तिसका मूल तेज जानाजाताहै। अरु तेजरूप अंकुर करके तिसका मूल सत् चैतन्यदेव जाना जाताहै। पूर्ववत्। हे सौम्य उक्त प्रकारही तेज, जल, अन्न, मयशरीर रूप अंकुर जो केवल वाचारंभण मात्रही है तिसका अन्नआदि परम्परा करके परमार्थ से सत् चैतन्य मूलवाला होनेसे सो भी सत् मूलवाला सत्ही है अविद्यादि मूलवाला नहीं।: अरु जो इसको अविद्यादि मूलवाला

तस्य क्व मूलछंस्यादन्यत्राद्भ्योऽभिः सौम्यशुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूल मन्विच्छ सन्मूलाःसौम्येमाः सर्वाःप्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा तु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परमा देवतायां स य एषोऽणिमा॥६॥

कहाहै सो इसके नामरूप को कल्पित होनेसे कहा है नतु वस्तु करके तो यह तेजादिकों की परम्परा से सत् चैतन्य मूलवाला ही--: ॥ हे सौम्य इस प्रकार उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को हे सौम्य सुखपूर्वक सत् नामवाले सर्व के मूलको जानो, ऐसा कहके , भोजन की इच्छावाला, अरु जलपान की इच्छा वाला, इन दो प्रसिद्ध द्वारसे देहरूप अंकुर को अन्नादिकों की परम्परासे परमार्थकरके सत् चैतन्य मूलवाला लक्षकराय तिसके निमित्त से सर्वजगत् का पराकारण सत् चैतन्य आत्मदेवकाही लक्षकराया ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्वेतकेतुरुवाच ॥ तिसका क्या मूल है ॥ उद्दालकउवाच ॥ तिसका जल से इतर क्या मूलहै । अर्थात् जलही उसका मूल है। हे सौम्य जलरूप अंकुरकरके तिसके तेजरूप मूलकोजानो, अरु तेजरूप अंकुरकरके हे सौम्य तिसके सत् चैतन्य रूप मूलको देखो। हे सौम्य यह सर्व प्रजा सत्रूप मूलवालीहै, अरु सत्रूप आयतन वाली है, अरु सत्रूप प्रतिष्ठावाली है॥ हे सौम्य जैसे तो निश्चय करके यह , तेज, जल, अन्न, । तीनों देवता पुरुष (चिदाभास) को पाय एक एक तीन तीन प्रकार होते हैं सो पूर्वही कहाहै, होते हैं (तहां भोजन किया अन्न तीन

प्रकारका होताहै) सो हे सौम्य इस पुरुष (जीव) के मरण समय वाणी मनबिषे जाती है, मन प्राण बिषे जाताहै, प्राणतेज बिषे जाताहै, अरु तेज सत् चैतन्य परम देवबिषे जाता है॥ सो जो सत् नामवाला यहही महा सूक्ष्म (आत्मा) है॥ ६॥

भावार्थ मन्त्र षष्ठ का॥

हे सौम्य इस षष्ठ मन्त्र का भावार्थ इसके पूर्व के चतुर्थ मन्त्र की व्याख्या बिषे सविस्तर कहा है, अरु वह मन्त्रार्द्ध है, अतएव यहां अक्षरार्थ मात्रही लिखाहै॥ हे सौम्य॥:—अब, अन्न जल, तेज, इन तीनों तत्वों के त्रिवृत्करण के कार्य देहके अभाव (मरण) समय जिस प्रकार यह पुरुष नामवाला चिदाभास मन आदिकोंकी लयकी परम्परा से अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य देवको प्राप्त होताहै तिसको भी श्रवण करो—॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो जिसप्रकार यह, तेज, जल, अन्न, नामवाले तीनों देवता पुरुषको (सत् चैतन्य के आभास जीवको) प्राप्तहोके त्रिवृत्करण होय पुनः उनका उदर बिषेजाय एक एकका त्रिधा त्रिधा भाग होताहै सो तुझसे पूर्वही कहाहै। तहां ऐसे होताहै कि॥ "अन्नमशितं त्रेधा विधीयत" इत्यादि। अरु तहांही यह कहा है कि भोजन किये अन्नादिकोंकी जो मध्यम धातुयें होती हैं, तहां सात धातुओं करके निष्पन्न यह शरीर होताहै (सात धातुओं करके रचित यह शरीर कहाहै) तहां मांस होताहै रुधिर होताहै मज्जाहोती है अस्थि होताहै। अरु जो उन अन्नादिकोंके उदर बिषे सूक्ष्म भाग होते हैं तिनके क्रमसे, मन, प्राण, वाणी, इन तीनोंका संघात देहके अन्तर उत्पन्न होता है। सो कहाभी है "तन्मनो भवति" सो मन होताहै, "स प्राणो भवति" सो प्राण होताहै, "सावाग् भवति" सो वाणी होती है। अर्थात् अन्न के सूक्ष्मांशका मन होता है, जलके सूक्ष्मांशका प्राण होता है, अरु तेज (घृततैलादि) के सूक्ष्मांशसे वाणी होती है, सो यह मन प्राण वाणी का संघात रूप लिंग॥:—अर्थात् मन उपलक्षण

करके अन्तःकरण चतुष्टय जानना, अरु प्राण उपलक्षण करके प्राणादि पाँच प्राण जानने, अरु वाणी उपलक्षण करके वागादि पाँच ज्ञानेन्द्रियां जाननीं, अरु इन सर्वका संघात कहने से लिंग को जानना—:॥ सो इस स्थूल देहके विशीर्ण (अभाव) होने से जीवके आश्रय हुआ, अथवा जीव है अधिष्ठाता जिसका सो लिंग जिस प्रकार पूर्वदेह से (अर्थात् वर्त्तमान शरीर से) उठ (निकल) के देहान्तरको प्राप्तहोता है, अरु तिस मरणके समय जिस प्रकार सर्व जीव सत्चैतन्य को समान प्राप्तहोते हैं—:॥ सो श्रवण करो । हे सौम्य श्वेतकेतु इस पुरुष के मरण के समय उसकी वाणी मनविषे जाती है, क्योंकि मन पूर्वक ही वागादि इन्द्रियोंका व्यापार है ॥ तथाच "। यद्वै मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, इति श्रुत्यन्तरे ॥ अर्थात् जो कहने को मन इच्छता है सो वाणी कहती है, ताते वागादि इन्द्रियोंका व्यापार मनके आधीन है, सो मन मरण समय अति व्याकुल होता है तब वागादि इन्द्रियां अपने २ व्यापारको त्याग मनविषे प्राप्तहोती हैं । तब उस पुरुष के निकटवर्त्ती सम्बन्धी वा ज्ञाति के लोक परस्परमें कहते हैं कि हे भाई अबतो यह बोलता नहीं ॥:—अर्थात् जब इस पुरुष का मरण समय निकट आवता है तब रोगादिकों की वृद्धि से उसका अन्न छूटजाता तब अशक्तता के कारण उसकी वागादि इन्द्रियां मनविषे जाय एकत्र होती हैं (अरु उनके अधिष्ठाता देवांश अपने २ समष्टि देवता विषे प्राप्तहोते हैं, तिस समय उस मुमुर्षु की वाणी बन्द होजाती है, तब तिस समय उसके निकटवर्त्ती सम्बन्धी वा ज्ञातिके लोक परस्पर में कहते हैं कि हे भाइयो अब इसकी माँदगी असाध्य है क्योंकि अब यह बोलावने से भी बोलता नहीं ताते अब इसका जीवना कठिन है, ऐसा कहत सन्ते उसकी स्त्री आदिक रुदन करते हैं, तब वो सम्बन्धियों को रुदन करते देख अपने जीवने की आशा त्याग बोलने से [illegible]

दोनों खेद पावते हैं। हे सौम्य इतनेही में रोग की आधिक्यता से उस मुमुर्षु पुरुषके चक्षुरादि करण भी मनविषे जाय प्राप्तहोते हैं—:॥ तब वो केवल मनके मनन रूप व्यापार से ही वर्त्तता है, अरु शीत आदि रोगोंकी अधिक वृद्धि होती है तब वो मन भी अति व्याकुल होय प्राण विषे प्राप्तहोता है ॥—:अर्थात् वागादि इन्द्रियां जब रोग करके व्याकुल हुई मनविषे जाती हैं तब वो मन बिचारता है कि बाह्य कोई महत् उपद्रव उठा है जो यह सर्व भागके यहां आवते हैं, अतएव अब अपने को भी यहां से पलायन होना योग्य है, ऐसा बिचार अपनी सर्व वृत्तियां अरु इन्द्रियां रूप अपना कुटुम्ब साथले आप मन प्राण विषे सम्पन्न होता है (जाता है)—:॥ सुषुप्ति कालवत् ॥ तब उसके निकटवर्त्ती जे सम्बन्धी ज्ञातिके लोग हैं सो परस्परमें कहते हैं कि अब यह कुछ भी जानता नहीं हे सौम्य उक्त प्रकार जब मन व्याकुल होय के प्राण विषे जाता है तब प्राण ऊर्ध्व श्वास हो के अति शीघ्र२ चलता है अरु वो मुमुर्षु प्राणान्त खेदको पाय अपने हाथ पैर पटकता है, उस समय की बेकली उसको कल लेने देती नहीं। तिस समय उस प्राणने भी अपने अपानादि कुटुम्बको अपने पास बोलाय उन सर्व सहित हुआ आप प्राण तेजविषे जाता है, तब प्राणकरके त्यागेहुए सर्व अवयव शुष्ककाष्ठवत् जहांके तहां पड़े रहते हैं, तब तिसको देख ज्ञातिके लोकपरस्परमें कहते हैं कि हे भाई अब इसकी नाड़ीभी चलतीनहीं,जानें यह मरा वा जीवता है, ऐसा कह उसकी विचिकित्सा करते उसके शरीरको जहां तहां स्पर्श करते उसके वक्षस्थलपर हाथ रख कहतेहैं कि हे भाई अभी इसकी छाती उष्णहै, अतएव अभी यह मरा नहीं जीवता है, परन्तु अब इसका मरण अति निकट है। अरु उस समय उसके वक्षस्थल की उष्णतारूप लिंग से तेज का अनुमान कर कहते हैं कि अभी इसका वक्षस्थल उष्ण होने से इसमें तेज है। हे सौम्य तदनन्तर वो तेज भी अपने मूल

कारण सत् चैतन्य विषे सम्यक् प्रकार प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य उक्त प्रकारक्रम करके जब मनको परम्परा करके अपने मूलको प्राप्तहुए अर्थात् जब मन प्राणसाथ मिलके तेज विषे अरु वो तेज अपने मूल कारण सत् चैतन्य परदेव विषे प्राप्त होता है, तब मन विशिष्ट चैतन्य (चिदाभास जीव) अपने विषे आभासपने की निमित्त उपाधि के उपसंहार हुए आप भी उपसंहार होता है । अर्थात् मन आदि रूप उपाधि का अपने सत् मूलमें उपसंहार हुए, मनस्थ चैतन्य (चिदाभास) सो भी अपने बिम्बरूप सत् चैतन्यविषे एकताको पावेहै सुषुप्ति कालवत् । जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से जलोत्पन्न कर तिस विषे आपही प्रतिबिम्बित होता है, अरु आपही अपनी किरणों द्वारा जलको शोषण करता है तब जलगत सूर्य्यका प्रतिबिम्ब भी अपनी उपाधि के अभाव से सूर्य्य साथ एक होता है, तैसे ॥ अरु तहां जो कदापि आचार्य से महावाक्यार्थ का सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप सत् चैतन्य सर्वात्म देवको यथार्थ साक्षात् अनुभव करके जो सत् विषे जाता है सो पुरुष सुषुप्ति से जाग्रत् में आवनेवत् देहान्तर में जाता नहीं वो सत् आत्मा विषे गयाहुआ सत् सर्वात्माही होताहै । सोई यह महा सूक्ष्म आत्मा है कि जिस विषे गयाहुआ ज्ञानवान् फेरके आवता नहीं अरु अज्ञानी जिस विषे गये हुए ज्योंके त्यों निकस आवते हैं, ॥ :—प्रश्न ॥ हे भगवन् जो अज्ञानी पुरुष मरण के समय सत् विषे जाते हैं सो पुनः वहां से निकस किस मार्ग से लोकान्तर, देहान्तर को प्राप्त होते हैं सो भी आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य इन सर्व जीवों के मरणोत्तर शरीर से निकलने वा जानेके मार्गों का नियम नहीं क्योंकि इनके रस्ते इनकी कर्म्म उपासनाके अनुसार है । हे सौम्य जो पुरुष प्रणव पंचाग्नि के उपासक है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी है वानप्रस्थ है आत्म आनंदसे रहित संन्यासी है वा समाधि के करने वाले योगी हैं, ये सर्व अपनी यथार्थ उपासना

अरु आश्रम धर्म्म के करनेवाले हैं, ये सर्व सुषुम्णा नाम्नी नाडी द्वारा मस्तकके ब्रह्मरंध्र के मार्ग से निकल ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्मा के साथ वा ब्रह्मा से सम्यक् आत्मज्ञान पाय ब्रह्मासे प्रथमही मोक्ष होते हैं। वो उत्तम उपासक "न स पुनरावर्त्तन्ते" पुनः जन्म मरण लक्षणवान् संसार बिषे आवते नहीं। अरु जो पुरुष यज्ञादि कर्म्मों को करते हैं वा विद्या से रहित केवल इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मों को ही करते हैं सो स्वर्ग अरु पितृलोकमें प्राप्तहो वहां अपने कर्म्मों का फल भोग पुनः इसलोक में जन्म पावते हैं। अरु जे शिव विष्णु सूर्य्य देवी आदि देवतों की उपासना करते हैं सो अपनी उपासना के अनुसार उन देवताओंके लोक को प्राप्त होते हैं। अरु जो पुरुष सर्व प्रकार कर्म्म उपासना से भ्रष्ट हैं तिनको व्यावहारिक शुभाशुभ जैसे कर्म्मोंका अभ्यास अरु जिस बिषे चित्तकी आशक्तता होती है तिसके अनुसार मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंगादि योनि को प्राप्त होते हैं॥ अतएव हे सौम्य इन जीवों को मरणोत्तर शरीर से निकलने के रास्तों का नियम नहीं अरु जिस पुरुष (जीव) ने अपने कर्म्म, उपासना, अभ्यास, आशक्ति, के निमित्त से मरणोत्तर जिस लोक वा शरीरको प्राप्तहोना होताहै सो तिस नाड़ी रूप द्वारसे निकसता है। अर्थात् जिसने कर्म उपासनाके अनुसार जिस लोक वा शरीरको प्राप्तहोना होताहै तिसलोककी प्रापक नाडीका द्वार उस समय खुल जाता है और सर्व नाड़ीरूप मार्ग बन्द होजाताहै, अरु उस खुलीहुई नाड़ीके द्वारपर उसके कर्म्म उपासना के संस्कार अपने अनुसार प्रकाश करते हैं, तब उस नाड़ीके मार्ग से निकल अपने शुभाशुभ कर्म्मों के प्रकाश के आश्रय जहां कर्म लेजाते हैं तहां ही प्राप्तहोताहै। अतएव हे सौम्य इन जीवों के शरीरसे निकलने के मार्ग अनेक होने से तिनका नियम नहीं तथाच। "योनि मन्ये प्रपद्यन्ते शरीर त्वाय देहिनः स्थाणु मन्येन संयन्ति यथा कर्म यथाश्रुतं" "तद्य इह

स य एषोऽणिमा ॥ ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ७ ॥ इति अष्टमखंडः ८ ॥

रमणीय चरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण योनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनि मापद्येरन श्वयोनिं वा शुकरयोनिं वा चराडाल योनिं वा " " तेन प्रद्योततेन निष्क्रामति मूर्द्धो वा चक्षुपो वा अन्येभ्यः शरीर देशेभ्यो " " विद्यया देवलोकः कर्म्मणा पितृलोकः " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे ॥ हे सौम्य जो आत्मानुभवी ज्ञानवान् पुरुष हैं कि जिसने आचार्य से वेदके महावाक्यार्थका सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप सत् चैतन्य आत्माका यथार्थ अनुभवकर तिसविषे अभ्यास द्वारा दृढ स्थिति पाय तादात्मताको प्राप्तहुआहै सो पुरुष अपने आप सत् स्वरूपविषे समुद्रमें नदीवत् गयाहै सो फेरके आवता नहीं। वो सर्व मार्गों से रहितहै उसका प्राण (जीवात्मा) शरीरसे न निकलके तहांही अपने विम्बरूप सत् चैतन्य ब्रह्म में अभेदतासे प्राप्तहोताहै " न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे—:॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, सो यह (सत् नामवाला) जिसको महासूक्ष्म कहाहै ॥ सो यह सदात्म्यहै जिन सर्वका सो सर्व्व इसका आत्मा (अपना आप) है। (अर्थात् जिस आत्मा करके यह सर्व्व जगत् आत्मवत् सत्यहै) सोई सत्य है हे श्वेतकेतो सो आत्मा तू है। इसप्रकार जब पिताने उपदेश किया तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाइये, इस प्रकार जब श्वेतकेतुने विनयकिया तब पिताने कहा हे सौम्य तथास्तु (कह-

ताहैं) ७॥ इतिछान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके अष्टमखंडः ८ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य, जैसे लोकविषे सभय देशमें वर्त्तमान पुरुष जो कदापि अभयदेशको प्राप्तहोवे तो वो पुनः सभय देशको प्राप्त होने की इच्छा करता नहीं। हे सौम्य तैसेही जिसने श्रवणादि करके अभय देशरूप सत् चैतन्य आत्माको सम्यक् प्रकार जाना है अरु जानके उस विषे सोहमस्मि, भाव से सम्यक् प्राप्तहुआ-है, सो इस जन्म मरण लक्षणवान् संसाररूप सभय देशमें आवता नहीं। अरु आत्मज्ञानी से इतर अनात्मज्ञ पुरुष हैं सो उसही सर्व के मूल महा अभय देश सत् चैतन्य विषे प्राप्तहो के भी, सुषुप्ति से जाग्रत् में आवनेवत् सत्से उत्थान हो मृत्युको पाय पुनः देह जालमें प्रवेश करताहै (जैसे पक्षी बधिक की जालमें तैसे)॥ हे सौम्य जिस सत् नामवाले मूलसे उत्थान होय यह अज्ञानी जीव देहमें प्रवेश करताहै ॥ सो यह सत् नाम वाला यह कहा जो महा सूक्ष्म जगत्का मूल सोई यह सदात्मा जिन सर्वोंका है सो यही आत्मा है, तिसका जो भाव सो कहिये, एतदात्म्यम्, (अर्थात् जिसविषे प्राप्तहोके ज्ञानवान् फेरके नहीं आवते अरु अज्ञानी वहांसे ज्यों के त्यों निकल आवते हैं। अरु जो नाम रूपात्मक समस्त जगत्का नामरूपसे रहित महा सूक्ष्म सत् मूल कहा है सोई सर्वाधिष्ठान होने से सर्व का आत्माहै, अरु इस तिस सदात्मा करके, यह सर्व वाचारंभण-मात्र जगत् आत्मवत् सत् होरहा है। अर्थात् जो सर्वाधिष्ठान सदात्मा जगत्का मूलहै सोई अपनेविषे अध्यस्त जगत् में अधिष्ठानरूपसे प्रवेशकर रहाहै। ताते सोई सर्वात्माहै। हेसौम्य इस सदात्मासे इतर संसारी आत्मा कोई नहीं तथाच ॥ "नान्यदतोऽस्ति दृष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोत्रः, इत्यादि श्रुत्यन्तरे ॥ हे सौम्य जिस आत्मासे आत्मवत् यह सर्व जगत् है सोई सत् नामवाला जगत् का मूल (कारण) है ताते सत् मूलवाला

अथ छान्दोग्य उपनिषदि षष्ठप्रपाठके नवमखंडः ॥

यथा सौम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳरसान् समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति १ ॥

होने से समस्त जगत् परमार्थ करके सतही है । ताते सोई आत्मा जगत्का प्रत्यक् स्वरूप सोई तत्व होने से वोही सर्वात्माहै । हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म आत्मा तू ही है ॥ इस प्रकार जब उद्दालक पिताने (सर्वनाम रूपात्मक जगत्के मूल सत् चैतन्यको लक्ष्य कराय पुनः कहा कि सो सदात्मा तू है)। तब तिसको श्रवणकर श्वेतकेतु कहता हुआ कि हे भगवन् हे पिताजी पुनः भी आप मुझको समझाय के कहिये । आपने जो कहा सो संदिग्ध होने से तिस विषयक मुझको संशयहै, हेभगवन् आपने आज्ञा किया कि सुषुप्ति में जायके सर्वप्रजा सत्को समान प्राप्त होती है सो अस्तु, परन्तु रोज रोज यह सर्व प्रजा सत्को प्राप्त होती है, परन्तु वहां यह कोईभी नहीं जानता जो हम अब सत्को प्राप्त हुएहें । हे भगवन् जिसकारण से सत्को प्राप्तहोके भी नहीं जानते कि हम सत्को प्राप्तहुए हैं, सो आप मुझको दृष्टान्त पूर्वक समझायके कहिये । इसप्रकार जब श्वेतकेतु ने संशययुक्त प्रश्नकिया तब उद्दालक पिताने कहा कि हे सौम्य तथास्तु (जैसे तुम ने प्रश्न किया तैसेही मैं दृष्टान्तपूर्वक उत्तर कहताहौं सो तुम श्रवण करो ७ ॥

इति छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके अष्टमखंडः ८ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे लोकविषे मधुको मधुकर (सहत की मक्खी) एकत्र करे है तहां नाना जाति के, देशान्तर के वृक्षों के रसों को हरण करके उन रसोंको एक मधुभावको प्राप्त करे है १ ॥

ते तथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्यरसोऽस्मीत्येवमेव खलु सौम्येमाः सर्व्वाःप्रजाः सति सम्पद्यन विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥ २ ॥

भावार्थ खंडनवम मंत्र पहिले का ॥

हे सौम्य, हे श्वेतकेतो तूने जो प्रश्नकिया कि यह सर्व प्रजा नित्य नित्य सत्को प्राप्त होके भी नहीं जानती जो हम सत्को प्राप्त हुए हैं सो किस कारण से नहीं जानती। हे सौम्य इसके उत्तरमें प्रथम दृष्टान्तको श्रवणकर पश्चात्दार्ष्टान्तको श्रवणकरो हे सौम्य जैसे लोकबिषे मधुकृत, अर्थात् जो मधुको सम्पादन करे सो कहिये मधुकृत ऐसी जे मधुकर मक्षिका (सहतकी मक्खी) सो मधुको निष्पादन करने में तत्पर रहती है प्रश्न ॥ कैसे मधुको निष्पादन करे है ॥ उत्तर ॥ नाना दिशाओंके नाना गति (जाति) के वृक्षों के रसों को सम्यक् प्रकार हरण करके उन सर्व्व एक मधुत्व भाव बिषे प्राप्त करतीहै १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे (एकत्रहुएमनुष्य विवेकको पावते हैं तैसे) मधुभाव बिषे बिबेकको प्राप्तहोते नहीं कि हम अमुक वृक्षके, हम अमुक वृक्षके रसहैं। हे सौम्य तैसेही निश्चय करके यह सर्व प्रजा सत्को प्राप्त होयके भी यह नहीं जानती जो हम सत् को प्राप्त हुएहैं ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य वो सर्व रस जो समान मधुत्व भावको प्राप्त हुएहैं सो अपने मधुत्व भाव बिषे विवेकको प्राप्त होते नहीं ॥ प्रश्न ॥ उनको कैसा विवेक नहीं होता ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य मधुत्वको प्राप्त हुए रसोंको यह विवेक नहीं होता जो हम अमुक अमुक वृक्षके रस हैं ॥ हे सौम्य जैसे लोक बिषे बहुत से चेतनावान् प्राणी एक स्थान में एकट्ठे हुओंको विवेकका लाभ होताहै वा रहता है कि

हम अमुकके पुत्रहैं अमुक हमारा गोत्रहै अमुक हमारी जाति है अमुक हमारा नामहै अमुक स्थानमें हमारा गृहहै, हम सर्व यहां एकत्र होयके पंच संज्ञाको प्राप्तहुए हैं। हे सौम्य तैसे यहां उन रसोंको जो एक समान मधु भावको प्राप्त होते हैं तिनको यह विवेक होता नहीं जो हम अमुक वृक्षके रसहैं मधुरादि अमुक हमारा स्वाद है अमुक दिशा में हमारा स्थान है हमको मक्षिका ने यहां मधुभाव को प्राप्त किया है। हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही निश्चय करके (ईश्वर से पिपीलिका मशकादि पर्यंत सर्व प्रजा (जीव) नित्य नित्य सुषुप्ति काल विषे, मरण काल विषे, प्रलयकाल विषे, सत्चैतन्य देवको प्राप्तहोके भी यह नहीं जानते जो अब हम सत् भावको प्राप्त हुए हैं (अर्थात् हेसौम्य यह सर्व प्राणधारी मात्र प्रजा, सुषुप्ति में, मरणकाल में,प्रलय काल में, सत् चैतन्य विज्ञानघन भावको प्राप्त होती है। जैसे सर्व जातिके वृक्षों के पृथक् २ स्वाद युक्त रस मधुकर मक्षिका के उदरमें समान मधुभाव को प्राप्त होते हैं तैसे ॥ हे सौम्य जिस कारण से यहां (जाग्रतविषे) अपने आप सतरूप आत्मा को यथार्थ जाने बिनाही सत् बिषे प्राप्त हुए हैं। अरु इसलोक विषे अपने पूर्व के जिन जिन कर्म्मों के निमित्त से जिस जिस जाति (योनि) को प्राप्त हुए हैं, अरु उन उन जातियोंके अहंकाररूप रंगों करके रंगगये हैं, अरु उन रंगोंके आश्रय किसी ने अपने को व्याघ्र माना है, किसी ने अपने को सिंह माना है, किसी ने अपने को मूषक (चूहा) माना है। इसप्रकार सर्व प्राणी अपने २ पूर्व कर्म्मानुसार जिस जिस जातिको प्राप्त हुए हैं, अरु तिनके अहंकाररूप दृढ रंगोंसे रंग रहे हैं, अरु तिन तिन जाति के कर्म्म ज्ञान स्वभावादिकों की वासना करके अंकितहुए ही सर्व उक्त तीनों स्थानों विषे सत् चैतन्य विज्ञान घनको प्राप्त होते हैं, परन्तु जिस जिस भावको अपने अपने विषे लेके प्राप्त हुए हैं तिसही तिस अपने अपने अनात्मभाव करकेही जाने से

त इह व्याघ्रो वा सिᳫंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दᳫंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति ॥ ३ ॥

सत्चैतन्य बिषे प्राप्तहुएभी पुनः वहांसे निकल उसही उस अपने २ पूर्वके भावको प्राप्तहोते हैं २ ॥

अक्षरार्थ ॥

ते (पुनः सत्से) इसलोक (जाग्रत्) विषे आयके अपनेको व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा डाँस वा मच्छर वा अन्य, इत्यादि प्रकार पूर्व अपने को जो जो मानके सत्विषे जाते हैं सोई सो सत् से निकल के भी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे सौम्य, जो जीव अज्ञान करके कर्म्मोंके निमित्त से प्राप्त हुए अनात्म देहादिक तिनके अहंकार अरु तिनके धर्म्म कर्म्मादिकों के संस्कार अरु विषयादिकोंकी बासना, इन करके अंकित हुए सन्ते सत्चैतन्य में प्रवेश पायके भी पुनः वहां सों निकल इस जाग्रत् में आय अपने पूर्व के अभ्यास बश अपने को व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा मच्छर वा अन्य। अथवा, कोई व्याघ्र, कोई सिंह, कोई वृक, कोई वराह, कोई कीट, कोई पतंग, कोई डांस कोई मच्छर, ॥:—कोई मनुष्य ब्राह्मण वा क्षत्रिय, वा वैश्य, वा शूद्र, वा पण्डित, वा मूर्ख,—:॥ इत्यादि प्रकार जो जो जीव जिस जिस शरीर जाति वर्ण आश्रम नाम रूप आदिकों को अपना मान तिस विषे दृढ अहंकार कर तिनकी दृढ वासना करके वासितहुए सत् विषे जाते हैं सोई सो वासना संस्कार उनको सत् से निकाल लावे हैं तब वो सर्व जीव इस जाग्रत् जगत्में आय अपने पूर्व के अभ्यास संस्कारों के वशहुए अपनी विषे पूर्व भाव कोही मानते हैं (अर्थात् जिस भावके संस्कार अपने विषे लेके

सत्को प्राप्तहोते हैं तिसही तिस भाव को सत् से निकल के भी अपने विषे मान सोई सो होते हैं)॥:—हे सौम्य जैसे जो पुरुष जिस कार्य को करता हुआ सो जाता है सो पुरुष उस कार्य के अरु तिसके कर्त्तापने के संस्कार अपने विषे लेके ही सोवता है अरु सोया हुआ सुषुप्तिमें सत्चैतन्य विज्ञान घन आत्मामें अभेदतासे प्राप्तहोता है, अरु अपने पूर्वके काम कर्म्मादिकोंके संस्कारों केवशहुआ सत् से निकल जाग्रत्विषे आवताहै तब पुनःउसही कार्य्यको करता है कि जिसको पूर्व जाग्रतविषे करता हुआ सो जाताहै, अरु तिसही का कर्त्ता अपने को मानता है॥ अरु जो पुरुष इस जाग्रत्विषेही श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल श्रुति के महावाक्यार्थ के ज्ञानको पाय तिसका सम्यक् प्रकार मनन अभ्यासकर निःसंशयहोय अपने आप सत् चैतन्य आत्मस्वरूप को साक्षात्कार करताहै, अरु बुद्धि आदि उपाधि अरु तिनके धर्म्म कर्म्मादिकों से असंग सर्व का द्रष्टा साक्षी अपने आपको यथार्थ अनुभव करता है सो विद्वान् पुरुष एकवार सत् विषे गये सत्यस्वरूपही होतेहैं, वो पुनः इस जीव भावविषे आवते नहीं क्योंकि जाग्रत् मेंही सत् चैतन्य अपने आप आत्माको सम्यक् प्रकार जानके तिसविषे "सोहमास्मि" भावसे प्राप्त होते हैं। अतएव हे सौम्य जो तुमको पुनरावृत्ति से रहित अपने आप निरुपाधि निर्विशेष सत् चैतन्य विज्ञानघन आत्मदेवकी अभेद प्राप्ति इच्छितहोय तो तुम भी इस जाग्रत् विषेही वैराग्यादि साधन सम्पन्नहोय किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल तिनसे तत्त्वमस्यादि महावाक्य श्रवणकर तिसका मनन अभ्यास कर सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप वास्तविक सत् आत्मस्वरूप का साक्षात्कारकर सोई रूपहोवो आगे जो तुम्हारी इच्छा—:॥ हे सौम्य यावत् इन जीवोंको सम्यक् आत्मज्ञान होता नहीं तावत् सहस्रकोटि युग पर्य्यन्त भी पूर्वकी भावित वासना निवृत्त होती नहीं ।" यथाप्रज्ञं हि संभवा, इतिश्रुत्यन्तरे "। अरु यावत्

सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूयएव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ४ ॥ इति नवम खण्डः ९ ॥

वासना नाशहोती नहीं तावत् सत्को प्राप्त होनेसेभी पुनरावृत्ति निवृत्त होती नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सो यह सत् आत्माहै जिन सर्व का सो सर्व इसका अपना आप है, सोई सत्यहै हे श्वेत-केतो सोई सत् आत्मा तू है। इस प्रकार जब पिताने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समुझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु (कहताहौं) ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठ-के नवमखंडः ९ ॥

भावार्थ मंत्र चौथे का ॥

हे सौम्य, हे श्वेतकेतु उक्त प्रकारकी सो (अज्ञान युक्त) सर्व प्रजा जिसविषे प्रवेशपाय पुनः प्रकट होती है। अरु तिन प्रजासे अन्य ज्ञानवान् सत्याभिसन्ध (सत् आत्मामें अभिस-न्धान करनेवाले) जिस महासूक्ष्म सत् चैतन्य विषे एकवार प्रवेशपायके सोई रूपहुए पुनः इस संसारी जीव भावविषे आवते नहीं, सोई यह महा सूक्ष्म सर्वका आत्माहै, अरु जिसका यह नामरूपात्मक सर्व जगत् अपना आप है ॥ :—जैसे मृत्तिका घट शरावादिकों का आत्माहै अरु घट शरावादिक मृत्तिकाका अपना आपहै तैसे—: ॥ सोई सत् आत्माहै। हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत्आत्मा तूही है। इसप्रकार जब उद्दालक पिता ने उपदेशकिया तब श्वेतकेतु पुत्र कहताहुआ कि हे भगवन् सोई सत् आत्मा मैंहौं सो अस्तु परंतु हे पिताजी जैसे लोकविषे अपने

अथ छान्दोग्यउपनिषदिषष्ठप्रपाठके दशम खंडः ॥

इमाः सौम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्पन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापि यन्ति समुद्रएव भवन्ति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥

गृहमें सोआहुआ पुरुष उठके ग्रामान्तरको जाताहै तहां वोपुरुष जानताहै जो मैं अपनेगृहसे उठके यहांआयाहौं । तैसेही इनजीवों को जोसत्‌मेंप्राप्त होय पुनः वहांसे आवतेहैं तब वो पुरुष अपनेको क्यों नहीं जानते जो हम सत्‌को प्राप्तहोके यहांआयेहैं । हे पिताजी आपने मधुका दृष्टान्त कहा सो अस्तु परन्तु वो सर्व वृक्षोंकेरस तो जड़हैं उनको अपने रसपनेका ज्ञान नहीं जो हम अमुक वृक्षके रसहैं, अरु उनको अपने मधुभाव का भी ज्ञान नहीं जो अब हम मधुभाव को प्राप्तहुए हैं । हे पिताजी यह सर्व जीव तो चैतन्यहैं तातें इनको सत्‌की प्राप्तिमें ज्ञान होना चाहिये जो हम जाग्रत् विषे अमुकथे अब सत्‌को प्राप्तहुएहैं, अरु सत् से आवने का भी ज्ञान होना चाहिये जो हम सत्‌से आयके अमुक भावको प्राप्तहुए हैं, परन्तु सो ज्ञान इन जीवोंको होता नहीं । तातें हे भगवन् इसको भी मुझे समुझायके कहिये, इस प्रकार जब पुत्रने प्रश्न किया तब पिताने कहा तथास्तु (कहताहौं श्रवणकर ४ ॥ इतिछांदोग्यउपनिषदिषष्ठप्रपाठके नवमखंडः ॥ ९ ॥

भाषार्थ ॥

हे सौम्य जैसे यह गंगाआदि नदियां प्रथम पूर्व दिशासों स्रव के पूर्वको जाती हैं, पश्चात् पश्चिमदिशा प्रति सिन्धुआदि नदियां जातीहैं, सो सर्व नदियां समुद्रसे मेघों द्वारा निकलती हैं, पुनः समुद्रको प्राप्तहोके समुद्रही होतीहैं, सो नदियां नहीं जानतीं जो हम प्रथम गंगा यमुनादि नामों से कही जाती थीं, अब समुद्र हुई हैं ॥ १ ॥

एवमेव खलु सौम्येमाः सर्व्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इतित इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतंगो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति॥ २॥

भावार्थ खंड दशम मन्त्र प्रथमका॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु अब अपने प्रश्नके उत्तर को दृष्टान्त पूर्वक श्रवण कर। हे सौम्य यह जो गंगा यमुना सिन्धु आदि नदियांहैं सो प्रथम समुद्रसे निकलीहैं, तहां प्रथम मेघ समुद्र से जलको आकर्षण करते हैं पश्चात् उस जलको पर्वतादि ऊपर वृष्टिद्वारा डालते हैं तब वो समुद्रकाजल स्रोतादि द्वारसे निकल पृथक् २ प्रवाहित हो पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण आदि दिशाओंमें धाराबाहक भ्रमणकर कोई गंगा कोई यमुना कोई सरस्वती कोई नर्मदा कोई गोदावरी कोई कावेरी कोई व्यासा कोई शतद्रू कोई सिंधु आदि नामोंसे कही जातीहैं, अरु वो सर्व नदियां सर्व दिशाओं में घूमके अन्त समुद्रको प्राप्त होय समुद्रही होती हैं। हे सौम्य उन नदियोंको नदीभाव बिषे यह ज्ञान नहीं होता जो हमारा वास्तव में महान् गंभीर अथाह समुद्ररूपहै हम तिस समुद्रसे निकसी हैं अब यहां अल्प भावको प्राप्त होय गंगा यमुना आदिनामोंसे कही जातीहैं, अरु जब वो नदियां सर्व दिशाओंमें भ्रमके समुद्रको प्राप्तहोय समुद्रही होती हैं, तबभी वो सर्व नदियां यह नहीं जानतीं जो हम पूर्व नदी भावको प्राप्त होके गंगा यमुना सिन्धु आदि नामों से कहावती सर्व दिशा में भ्रमतीथीं अब हम अपने पूर्व के वास्तविक महान् गंभीर समुद्र को प्राप्त होय समुद्रही हुई हैं॥ १॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य निश्चय करके उक्त दृष्टान्त प्रमाणही यह सर्व प्रजा सत् से आयके यह नहीं जानती जो हम सत् से आये हैं, इसही

से सो सर्व इसलोक विषे अपने को, व्याघ्र, वा सिंह, वा वृक, वा वराह, वा कीट, वा पतंग, वा डांस, वा मच्छर, वा इत्यादि होते हैं (अर्थात् यह सर्व प्रजा अपने विषे जिन जिन भावों को लेके सत् विषे प्राप्तहोती है सोई सो सत् से आय के भी होती है) ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो ऐसेही (कि जैसे दृष्टान्त कहा है) यह सर्व प्राणधारी प्रजा जिसकारण से सत्को प्राप्तहोके नहीं जानती जो हम सत्को प्राप्तहुए हैं, तिसही कारणसे सत् से आय करके भी नहीं जानती जो हम सत्से आये हैं अरु हमारा सत्य स्वरूपहै, अरु तिसहीसे यहां जाग्रत् स्वप्नरूपी लोक बिषे सत्की प्राप्ति से पूर्व जोजो भाव अपने बिषे मानती हैं सोई सोभाव सत् से आयकेभी मानती है, तहां कोई तो अपनेको व्याघ्र कोई सिंह कोई वृक कोई वराह कोई कीट कोई पतंग कोई दंश कोई मशक वा मनुष्यादि होते हैं ॥:-हे सौम्य जैसे गंगा आदि नदियां समुद्र से आयके अपने समुद्र रूप को जानती नहीं, तैसेही यह सर्व प्रजा (जीव) सत्रूप समुद्र से बहिर्मुख निकल जाग्रत् स्वप्नरूपी देशमें आय अपने वास्तविक सत्चैतन्य स्वरूपके अज्ञान से वासना बश हुई नाना नामरूपों के अहंकार रूप रंगों करके रंगीगई हैं तिसही हेतु से यहां इस जाग्रत् रूप देश विषे कोई तो अपने को ईश्वर कोई देवता कोई यक्ष गंधर्वादि कोई मनुष्य ब्राह्मणादि, अथवा कोई व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा दंश वा मशक वा अन्य गो अश्व पिपीलिकादि जिन जिन नामरूप उपाधि के संस्कार अपने विषे दृढ़ता से लेरही है सोई सो सत् से आयके भी होती है अतएव इन सर्व जीवों को यहां यह ज्ञान नहीं होता जो हमारा वास्तव में सत् स्वरूप है, अरु हम सत् से आयके शरीरादि नामरूप उपाधि साथ मिलके यहां ब्राह्मण क्षत्रियादि वा व्याघ्र सिंहादि क-

स य एषो ऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एवमा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥ १० ॥

होवते हैं॥ अतएव हे सौम्य यह सर्व जीव परमार्थ बिबेक से रहित होने करके मधु नदियोंवत् जड़ हैं, नतो इनको अपने सतरूप समुद्र की ज्ञात है न अपने जीव भावकी खबर है जो हम कौन हैं अरु हमको क्या कर्त्तव्य है अरु हम क्या करते हैं। हे सौम्य यह सर्व अपने सत्य स्वरूप से बहिर्मुख होने का प्रभाव है॥ २॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महा सूक्ष्म कहा है सो यह सत् आत्मा है जिन सर्व्वोंका सो सर्व इसका अपना आप है। सोई सत्य है हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत् आत्मा तू है। इस प्रकार जब पिता ने कहा तब पुत्रने कहा कि हे भगवन् पुनः भी मुझको स-मुझाय के कहिये, पिता ने कहा तथास्तु ॥ ३ ॥ १०॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका

हे सौम्य, हे श्वेतकेतु (जैसे नदियां मेघों द्वारा समुद्र से निकल के अरु पुनः समुद्र को प्राप्तहोके भी यह नहीं जानतीं जो हम समुद्र से आई हैं अरु समुद्रको प्राप्तहुई हैं) तैसेही यह सर्व प्रजा मधुवत् सतको प्राप्तहोके अरु नदियोंवत् सत् से निकल के भी यह नहीं जानतीं जो हम सतको प्राप्तहुए हैं अरु सत् से आये हैं, सो जिस सतको प्राप्तहोके अरु निकल के अपने सत्य स्वरूपको नहीं जानती सोई यह महासूक्ष्म सर्व का आत्मा है सोई सत् है, हे श्वेतकेतो सोई अणुवत् महा सूक्ष्म सर्व का सत् आत्मा तूही है। इस प्रकार पिता उद्दा-लक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मोपदेश किया तब श्वे-तकेतु ने संशय युक्त होय कहा कि हे भगवन् मुझको फेरही

समुझाय के कहिये, तब पिता ने कहा तथास्तु (कहता हों) ॥ ३ ॥ :-प्रश्न हे भगवन् आपने मुझको सत् चैतन्य स्वरूप कहा सो अस्तु, परन्तु हे भगवन् जब यह जीव सत्चैतन्य हीहै तब यह सुषुप्तिमें अपने सत्य स्वरूपको प्राप्त होके भी यह नहीं जानता जो हम पूर्व जाग्रत्बिषे देहादि उपाधि साथ मिल के अल्प जीव पापी अपराधी ब्राह्मण क्षत्रिय कहावते थे अरु अब यहां सुषुप्ति बिषे उन सर्व उपाधियों के अभाव से अपने आप सत् चैतन्य स्वरूप को प्राप्तहुआ हौं, सो क्यों नहीं जानता । अरु हे भगवन् जब यह जीव सत् से आवता है तब भी यह नहींजानता जो हम पूर्व सुषुप्तिमें सत्को प्राप्तहुए थे अब सत् से आयके इस जाग्रत् स्वप्नबिषे जीव पापी अपराधी अल्पज्ञ ब्राह्मण क्षत्रियादि कहावताहौं, सो क्यों नहीं जानता । हे भगवन् जिस करके यह जीव सत्को प्राप्त होके भी अरु सत्से आयके भी अपने आप वास्तविक सत्स्वरूप को नहीं जानते इसही करके प्रतीत होताहै जो यह जीव जड़ है क्योंकि दोनों ओर इसको ज्ञातका अभाव है ताते । अरु जो यह सत्चैतन्यही है तो इनको सर्वदा सर्व अवस्था में ज्ञान होना चाहिये । अरु आपके कहने से यह जानागया कि जब यह जीव सुषुप्ति बिषे जाता है तब अपने जाग्रत्के वर्णाश्रमादिकों को अरु सुषुप्तिमें सत्की प्राप्ति को नहीं जानता मधुवत्, अरु जब सत्से जाग्रत् विषे आवता है तब भी यह नहीं जानता जो हम सत्से आये हैं । नदियोंवत् । ताते हेभगवन् उभय प्रकार इसको अपने सत् चैतन्य स्वरूप की अज्ञात से यह जीव जड़ प्रतीत होताहै । हे भगवन् आपने जो मधु अरु नदियों का दृष्टान्त कहा सो अस्तु परन्तु वो तो जड़है, जड़ों को ज्ञान होता नहीं, परन्तु इस जीव को तो आपने सत् चैतन्य कहाहै, तब यह अपने आप सत्य स्वरूप को प्राप्त होके अरु वहां से निकलके क्यों नहीं जानता जो हम सत्को प्राप्त हुए थे अब हम वहां से निकसके यहां

आये हैं। इसको भी आप कृपाकरके कहिये ॥ उद्दालक उवाच हे सौम्य पूर्व भी तुमने यही प्रश्न कियारहा अरु अब भी सोई प्रश्न किया अब इसका उत्तर सुनिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य यह सर्व जीव (जो सत् चैतन्यका आभास वा प्रतिबिम्बहै) सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इनतीनों स्थानों बिषे सत् चैतन्य को समान प्राप्त होते हैं, सो अपनी मन आदि उपाधि के अरु काम कर्म्मों के संस्कारों को अपने बिषे लेके होते हैं ताते सो उपाधि काम कर्म्मों के संस्कारही इन जीवों को सतसे निकाल उपाधिसाथ मिलाय काम कर्म्मों बिषे जोड़ देते हैं। ताते सत् चैतन्य को प्राप्त हुए जीवोंको भी वहां से निकलने का कारण जाग्रत् के काम कर्म्मों के संस्कारही हैं ताते काम कर्म्मों के संस्कार सहित सत् में जानेसे सत्को प्राप्त हुए भी इस जाग्रत् स्वप्नरूप जगत्में पुनः आवते हैं, ताते काम कर्मों के संस्कार सहित सत्को प्राप्त होनाही पुनः सत्से निकल संसार प्राप्ति का हेतुहै ॥ अरु सत् को प्राप्त होके भी जो यह जीव नहीं जानते कि अब हम सत् को प्राप्त हुए हैं, तिसका कारण यह है कि विशेष ज्ञातकी उपाधि जो बुद्धिहै सो वहां निर्विशेष सत् चैतन्य बिषे है नहीं, अरु उस निर्विशेष सत् चैतन्य को ज्ञान स्वरूप होने से उस बिषे ज्ञेयत्व का अभाव है क्योंकि "यतज्ज्ञेयंतज्जडं" इत्यादि न्याय प्रमाण जो वस्तुज्ञेय (जानने योग्य) होती है सो जड़ होती है अरु जो ज्ञान स्वरूप है सो चैतन्य है, ताते जड़ धर्म्मज्ञेयत्व अरु चेतन धर्म्म ज्ञान स्वरूपता यह दोनों परस्पर बिरोधी होने से एक बस्तु को आश्रय करें नहीं, ताते हे सौम्य जिस ज्ञानस्वरूप चैतन्य को यह जीव सुषुप्ति में प्राप्तहोते हैं तिसबिषे ज्ञेयपने का अरु ज्ञानरूप क्रियाके कर्त्तापनेका अरु ज्ञान के विषय पनेका अभाव होनेसे अरु वहां यह जीव उससे अपृथक् होनेसे अपने आपको जानते नहीं जो हम यहां सत्य स्वरूपहुए हैं, परन्तु तिस न जानने से जड़ नहीं किन्तु वास्तव में ज्ञान

क्रियासे रहित ज्ञान स्वरूप होनेसे सत् चैतन्यही है ॥ हे सौम्य यह सर्व जीव सत् को प्राप्तहोके ज्ञेयत्वके अभावसे केवल ज्ञान स्वरूप होने करके वहां अपने आपको बिशेष करके जानते नहीं जो हम यहां सत्य स्वरूपहुए हैं, अरु जिन अविद्यात्मक काम कर्म्मों के सूक्ष्म संस्कारों को अपने विषे लेके यह जीव सुषुप्ति विषे सत् को प्राप्तहोते हैं सो संस्कारही इनको सत्से निकाल अपने वश सत्से बहिर्मुख कर पुनः अविद्यात्मक काम कर्म्मों विषेही जोड़ते हैं, ताते यह जीव बासना बश सत् से बहिर्मुख होने के कारण सत्से निकलके भी अपने को नहीं जानते जो हम सत्से आये हैं। अतएव हे सौम्य उक्त हेतुओं करके यह जीव सत्को प्राप्तहो के अरु सत्से आयके अपने आपको नहीं जानते परन्तु सो न जानने से जड़ नहीं, क्योंकि आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञान पाय यह अपने आप वास्तविक स्वरूप को जानते हैं ताते। अरु मधु अरु नदियों को जड़ तो हम भी जानते हैं परन्तु मधु अरु नदियों का जो दृष्टांत कहाहै सो न जानने के अंशमें ग्रहण है जड़ता के अंशमें नहीं॥ हे सौम्य जो जीव इस जाग्रत् विषे अपने आप सत्यस्वरूप को यथार्थ जाने विना मन आदि उपाधियों के काम कर्म्मों के संस्कार सहित होने से सुषुप्ति विषे जिस सत्को प्राप्तहोके पुनः निकल आवते हैं, अरु जो जीव इस जाग्रत् विषे आचार्य्य साथ मिलके श्रुति के महावाक्यार्थ का यथार्थ ज्ञानपाय मनआदि सर्व उपाधियों से पृथक् सर्व के धर्म्म कर्म्मादि अरु तिनके संस्कारों से असंग सर्व का प्रकाशक साक्षी सत् चैतन्य अपने आपको यथार्थ अनुभवकरके जाग्रत् विषे ही निर्विकल्प समाधिरूप सुषुप्ति में एक वार अपने आप सत् चैतन्य स्वरूपको सम्यक् प्रकार प्राप्तहोय पुनः इन जाग्रदादि तीनों अवस्था जो बुद्धिकी हैं तिनके वर्त्तत सन्ते भी जिस अपने सत् चैतन्य स्वरूप से बहिर्मुख उत्थान नहीं पावते, सोई यह अणुवत् महासूक्ष्म सर्व्वात्मा है सोई सत्

आत्मा हे श्वेतकेतु तू है। इसप्रकार जब उद्दालक पिताने अपने श्वेतकेतु नाम पुत्रको सम्यक् प्रकार सत् चैतन्य अपने आप आत्म स्वरूपका उपदेश किया, तब वो श्वेतकेतु पुनः संशयको लेके कहताहुआ–॥ हे भगवन् जो नदियों का जल समुद्रविषे जाताहै सोई पुनः नहीं आवता और नवा जल आवताहै। अरु हे भगवन् लोकविषे देखने में आवताहै जो जलविषे बीची तरंग फेन बुद्बुदादि उठके पुनः विनाशको पावते हैं, अरु यह जीव तो सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इन तीनों स्थानों विषे अपने कारण सत् भावको नित्य नित्य प्राप्तहोके विनाशको पावते नहीं॥ :— अर्थात् हे भगवन् जैसे जो जल नदियों का समुद्रविषे जाताहै सोई वहांसे हटके आवता नहीं और नवा जल आवता है। अरु आपने पूर्व यह कहा है कि सुषुप्ति विषे अरु मरणविषे अरु ब्रह्मा की प्रलय विषे इन तीनों स्थानों विषे सर्व प्रजा सत्को प्राप्तहो सत्रूप होतीहै नदियोंवत्। अरु जो जीव सत्विषे जाते हैं सोई पुनः आवते हैं, यह आपका कथन है, अरु आप सत्यबादी हो अतएव जो कहोगे सत्यही कहोगे॥ हे भगवन् कोई एक आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि जो मृतकहुआ सोई मोक्षहुआ, जैसे जलविषे लहर बुद्बुदादि जो उठते हैं सो उसही विषे लय होते हैं वो पुनः उपजते नहीं और नवे लहर बुद्बुदादि उपजते हैं, तैसेही जो जीव मृतक होते हैं सो मोक्षहोते हैं वो पुनः आवते नहीं और नवे जीव आवते हैं॥ अरु आपका कहना ऐसा भी है जो एक बार सत्को प्राप्तहोते हैं सो पुनः आवते नहीं॥ हे भगवन् अन्य शास्त्रवादी ऐसा भी कहते हैं जो अमुक शुभकर्म करोगे तो स्वर्गको प्राप्तहोवोगे अरु अमुक अशुभ कर्म करोगे तो नरकको प्राप्तहोवोगे, हे प्रभो अब हमारी दृष्टिविषे भी ऐसाही आवताहै जो जैसा कोई कर्म करताहै सो तिसके अनुसार ही फल पावताहै। अतएव हे भगवन् हमारे इस संशयको भी आप निवारण करिये जो जीव सत्विषे जाते हैं सोई फेरके

आवते हैं वा नवे आवते हैं उत्तर ॥ हे सौम्य मैंने तुझको पूर्व यह कहाहै कि उक्त तीनों स्थानों विषे जो जीव सत्रूप समुद्र को प्राप्तहोते हैं सो वहां सत्रूपही होते हैं नदी समुद्रवत्, परन्तु यह नहीं कहाहै कि जो जीव सत्विषे जाते हैं सो फेरके नहीं आवते और नवे आवते हैं । अरु मैंने जो नदी समुद्रका दृष्टान्त कहाहै सो सुषुप्ति विषे सर्व जीवों को समान सत्की प्राप्तिहोती है अरु सत्को प्राप्तहोके भी वहां अपने आपको जानते नहीं जो हम सत्को प्राप्तहुए हैं, इसको लखावने के अर्थ कहाहै, अरु हे सौम्य दृष्टान्तका एक देश ग्रहण होताहै सर्व देश नहीं, ताते नदी समुद्र का दृष्टान्त उक्त अंश विषे जानो। अरु जैसे नदियां समुद्र बिषे गईं फेरके आवती नहीं इस अंशविषे उक्त दृष्टान्त सर्व जीवों के अर्थ नहीं ॥ हे सौम्य पूर्व हम तुम को यह कहआये हैं कि जो जीव अविद्या कामकर्मों के संस्कार रूपाउपाधिको अपने साथले वासना बशहुए उक्त तीनों स्थानों में सत्कोप्राप्तहोतेहैं सो सत्विषेगयेहुए भी फेरआवते हैं उनको काम कर्म्मोंकेसंस्कार अरुविषयादिकों की वासना (जिनको कि वो साथ लेजातेहैं) वो वहां ठहरने पाते नहीं। अरु जो जीव जाग्रत् विषेही आचार्य्यसे महावाक्यार्थका सम्यक् ज्ञानपाय अविद्याकाम कर्मोंके संस्कार अरु विषयादिकोंकी बासना त्यागके निर्विकल्प समाधि रूप सज्ञात सुषुप्ति में सत्को प्राप्त होते हैं सो एकबार सत्बिषे गये हुए पुनरावृत्ति से रहित सत्रूपही होते हैं वो पुनः जीवभाव बिषे आवते नहीं ॥ हे सौम्य अब इसही प्रसंगको तेरी दृढ़ताके अर्थ अन्यदृष्टान्त करके पुनः कहताहौं तिसको श्रवणकरो । हे सौम्य जैसे तेल वातीरूप उपाधि युक्त दीपकको सूर्य्य के स्पष्ट प्रकाश विषे राखिये तो वो दीपक का प्रकाश सूर्य्य के प्रकाश से पृथक् होके प्रकाशता नहीं किन्तु सूर्य्य के प्रकाश साथ अभेद एक होता है क्योंकि निरुपाधि सामान्य प्रकाश की एकताहै ताते, परन्तु सूर्यके प्रकाश में जाने से उस दीपकके प्रकाशका अभाव नहीं

होता। अरु जब उस दीपकको सूर्य्य के प्रकाश से हटायके छाया में लेआइये तब वो दीपकका प्रकाश सूर्य्य के प्रकाश से भिन्न होके प्रकाशता है। हे सौम्य तैसेही यहां मनआदि वा तिनके संस्काररूप उपाधिरूप दीवला है प्रारब्धरूप तेलहै बासनारूपा बाती है अरु चिदाभास (जीव) रूप प्रकाश है, ऐसा दीपक जब सुषुप्ति बिषे जाताहै तब सत्‌रूप प्रकाश साथ मिलके समान प्रकाशता है वहां सत्‌रूप प्रकाश से पृथक् रहता नहीं, परन्तु उस को वहां सत्‌रूप प्रकाश के साथ अभेद होनेसे भी उस सोपाधि जीव रूप प्रकाश का अभावहोता नहीं। अरु जब यह जीवरूप प्रकाश सोपाधि होनेसे पुनः जाग्रतरूप छायापर आवताहै तब सत्‌के प्रकाश से पृथक् हुएवत् होके प्रकाशताहै, परन्तु उस अवस्था में भी विचार दृष्टि से देखिये तो जीव रूप प्रकाश सत् रूप प्रकाश से वास्तव करके पृथक् नहीं, उपाधि के अभाव से प्रकाश की एकता होने से ॥ अतएव हे सौम्य जो उक्त उपाधि साथ मिलके सुषुप्ति आदि स्थानों में सत्‌को प्राप्तहोते हैं सो सत्‌विषे गयेहुए भी फेर आवते हैं, सोपाधि दीपक के प्रकाशवत्, हे सौम्य इस जीवरूप प्रकाश का नाशहोता नहीं क्योंकि वास्तव में अविनाशी सत् चैतन्य का प्रकाशहै ताते। हे सौम्य अब जिसप्रकार सत्‌विषे गयेहुए जीव फेरके नहीं आवते तिनको भी दीपक के दृष्टान्त द्वारा श्रवणकरो। हे सौम्य जैसे दीपकविषे यावत् तेलबाती होताहै तावत् अग्नि उससाथ मिल के विशेष प्रकाशताहै, अरु जब वो तेल बाती समाप्तहोते हैं तब वो विशेष प्रकाश निर्वाणहो अग्नि के सामान्य प्रकाश साथ एक होताहै। हे सौम्य तैसेही लिंग शरीररूप दीवलाहै तिसविषे मन रूप बातीहै अरु प्रारब्धरूप तेलहै, तिस तेलकी पूर्त्ति क्रियमाण कर्म्म हैं, क्योंकि यावत् क्रियमाण कर्म्महोताहै तावत् प्रारब्धरूप तेलकी पूर्त्तिहोतीही रहती है। अरु यावत् उक्त तेलकी पूर्त्ति होती रहती हैं तावत् न तो वो बाती समाप्त होती है न उस

दीपक का विशेष प्रकाश निर्वाणहोताहै ॥ हे सौम्य यह जो ज्ञानवान् आत्मनिष्ठ पुरुष हैं सो प्रथम मुमुक्षु अवस्था विषेही क्रियमाणादि सर्व क्रियाको समाप्तकर केवल आत्मकामाहोय आचार्य के समीप जाताहै, अतएव ज्ञानीरूप दीपकविषे प्रारब्ध रूप तेलकी पूर्त्ति करनेवाला क्रियमाण कर्म्म रहता नहीं, ताते ज्ञानी के शरीरका जितना प्रारब्धहै तितनाही है आगे को तिस की वृद्धि नहीं, अरु सो प्रारब्ध भी अपना भोग देके क्षीणहोता जाताहै, दीपकके तेलवत्, अतएव यावत् ज्ञानवान् के शरीरका प्रारब्ध शेषहै तावत् ज्ञानीरूप दीपक लिंगरूपा बातीपर चढ़के विशेष प्रकाशता है, अरु ज्ञानी के शरीरका प्रारब्ध अपना भोग देके, दीपकके तेलवत् नष्टहोता है तब निदिध्यासनरूप पवनकी सहायता से लिंगरूप बाती को भस्मकर ज्ञानीरूप विशेषप्रकाश सत्रूप प्रकाशें साथ अभेद एक हुआ फेरके आवतानहीं, क्योंकि प्रारब्धरूप तेल अरु लिंगरूपा बाती, जो उस निर्बाण हुए दीपक को पुनः जगावने की उपाधि है, तिनको प्रथमही भस्म करगया है। ताते हेसौम्य इस प्रकार ज्ञानीरूप दीपक सत्रूप प्रकाशमें निर्वाण हुआ सत् चैतन्य विज्ञान घन स्वयंज्योतिः ही होताहै ॥ "ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति, ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" ॥ सो फेरके आवता नहीं ॥ अरु अज्ञानी सत्विषे गयेहुए फेरके आवते हैं, जैसे सूर्य्य के प्रकाश में गया हुआ सोपाधि दीपक पुनः छायापर आवता है तैसे, क्योंकि उसको पुनः आवने की उपाधि अविद्या काम कर्म्मों के संस्कार अरु विषयादिकों की वासना विद्यमान है ताते, हे सौम्य जो जीव सुषुप्ति बिषे वा मरण समय वा प्रलय बिषे वासनादिरूपा उपाधिको अपने साथ लेके सत्विषे जाते हैं सोई फेरके आवते हैं, नवे आवते नहीं। हे सौम्य इस जीव का नाश होता नहीं क्योंकि वास्तव करके यह जीव क्रिया से रहित अक्रिय अविनाशी एक रसज्ञान स्वरूप है ताते। अब जिसका नाश होता है तिसको भी एक

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके एकादशोखंडः ॥ ११ ॥

अस्य सौम्य महतो वृक्षस्ययो मूले ऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्ये ऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो ऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

दृष्टान्त द्वारा कहता हौं सावधान होके श्रवण करो—॥ इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके दशमखंडः १० ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस प्रसरित शाखावाले बड़े वृक्षके मूलमें जो कोई कुठार आदिकों का प्रहार करे तो एक प्रहार से शुष्क होता नहीं, वृक्षविशिष्ट जीव उस घावको रसश्रवके भरलेता है, तैसेही उस वृक्षके मध्यमें वा अग्रमें एक प्रहार करने से वो सूखता नहीं किन्तु वृक्षविशिष्ट जीव उस घावको भरलेता है, ताते यह वृक्ष जीव रूप आत्मा करके अनुव्याप्त है अतएव भूमि से जलपान करके आनन्दित रहता ॥ १ ॥

भावार्थ खंड ११ मन्त्र पहिले का ॥

हे सौम्य (जैसे यह जीव विनाश से रहित अविनाशी है तिसको भी) दृष्टान्त पूर्वक श्रवणकरो। हे सौम्य यह जो अपने आश्रम के अग्रभागमें अनेक शाखाओंके विस्तार युक्त बड़ा वृक्ष है तिसको प्रथम देखो, हे सौम्य जो कदापि कोई पुरुष इस वृत्तके मूल बिषे वा मध्य बिषे वा अग्र विषे जहां कहीं कुठार आदि शस्त्रों का प्रहार करे तो तिस घावको यह वृत्त विशिष्ट जीव प्राणद्वारा रस पहुँचाय के भरलेता है, ताते सो यह वृक्ष जीव रूप आत्मा (सतचैतन्य के आभास) करके अनुव्याप्त है, अरु भूमि से मूल द्वारा जलपान कर तिस जलको प्राणद्वारा

यस्य यदेकाᳪं शाखा जीवो जहात्यथ साशुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वं शुष्यत्येवमेव खलु सौम्य विद्धीति होवाच २ ॥

स्कंध शाखा उपशाखा पत्र पुष्प फलादि पर्य्यन्त सर्वको पहुंचाय हर्ष को पाय तिष्ठित है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस वृक्षकी यदि एक शाखाको अथवा द्वितीय शाखाको अथवा तृतीय शाखाको अथवा सर्व्व वृक्षको यह जीव त्याग देवे तो सर्व शुष्क होजावे, ऐसेही हेसौम्य जानो ऐसे कहता हुआ २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य तिस वृक्षकी यदि एक शाखा जो रोग करके ग्रस्त वा टूटी हुई को त्यागदेवे (अर्थात् उस शाखा बिषे प्रसरित अपनी आत्मसत्ता वा प्राणको खींच लेवे) तब वो शाखा सूख जाती है । अर्थात् वाक् मन प्राणादिक करण ग्राम करके अनुप्रविष्ट (प्रवेशपाया) ही जीव है ॥:-अर्थात् सप्तदश तत्त्वात्मक साभास लिंगका नाम जीव है-:॥ अरु प्राणादियुक्त जीवकरके भोजन पान किया रस भावको प्राप्त हुआ जीववत् शरीर वा वृक्ष वृद्धि को पावते हैं, ताते शरीर बिषे वा वृक्ष विषे खान पान किया अन्न जल रसभावको प्राप्तहोय शरीर वृक्षादिकों की वृद्धि का हेतु होताहै। ताते जीवके सद्भाव अनुमान प्रमाण विषे रसरूप से शरीर वृक्षादिकों की वृद्धिही लिंग है । हे सौम्य भोजन पान करनेसेही शरीर विषे जीव रहता है, अरु ते भोजन पान जीवके कर्म्मानुसार हैं । अर्थात् शरीर के वा वृक्षके वैकल्य (विनाश) का निमित्त कर्म्मआय उपस्थित होताहै तब उस शाखाका रस जीव छेंकलेता है अथवा उसको

त्याग देताहै (अर्थात् उस शाखा वा अंगसे अपने प्राणरूप अंश को खींचलेताहै) तब वो शाखा सूख जाती है। इसहीप्रकार जो यह जीव दूसरी शाखाको त्याग देवे तो सो सूखजावे अथवा तीसरी को त्याग देवे तो सो सूखजावे अथवा जो यह जीव सर्व वृक्षको त्यागदेवे तो सर्व वृक्ष सूखजावे वा सूखजाताहै। अतएव हे सौम्य वृक्षका रस सूखना अरु सूखना इन चिह्नों (लिंगों) से जीवत्वपना (जीव सहित पना) जाना जाता है, उक्त दृष्टान्त करके, अरु अन्य श्रुति भी प्रमाण है। तथाच "। चेतनावन्तः स्थावरा, इति श्रुत्यंतरे" अरु बौद्ध कणादके मतमें स्थावरोंको अचेतन मानके उनका असारपना देखायाहै। ताते उक्त दृष्टान्त, श्रुतिके प्रमाण से श्रुतिबाह्य होनेसे बौद्ध कणादका मतही असार जानना॥:— अर्थात् हे सौम्य इस वृक्षविशिष्ट वा शरीर विशिष्ट चैतन्य इस वृक्षके आदि, मध्य अन्तके जिस अंगको त्यागदेताहै तब सो शाखादि अंग सूखजाता है, जो कदापि सर्व वृक्षको त्यागदेता है तो सर्व सूख जाता है, अरु यह जीव जिस अंगका भोग शेष देखताहै तब उसका त्याग न करके तिस बिषे प्राणद्वारा रस पहुंचाय उस अंगको जिवावता है तब वो जीवताहै। अर्थात् जिस अंगका भोग होचुकताहै तिसहीका वो जीव त्याग करताहै, अरु तिसही का मरण होताहै। अरु जिस अंगका भोग शेष देखताहै तिसका त्याग नहीं करता तब उस अंगका जीवन होता है। हे सौम्य जिस समय इस वृक्षविशिष्ट जीवको पुराने पत्र त्यागने का समय आवताहै तब त्यागदेताहै तब उन पुराने पत्रोंकामरण होताहै, अरु जब नयेपत्र आवनेका समय आवताहै तब नयेपत्र और निकल आवते हैं तब उन पत्रोंका जन्म होताहै। हे सौम्य इस वृक्षके ग्रहणत्याग द्वारा यह जाना गया जो इस ब्रह्मांड रूप वृक्षका त्याग ग्रहण इस जीवके आश्रय है। हे सौम्य इस वृक्षका कोई नायक (स्वामी) है कि जिसकी प्रेरणा से इतना ठाट चलताहै अरु जिसके त्यागनेसे यह सर्वठाट अभाव होजा-

ताहै, क्योंकि इन वृक्षोंका त्याग ग्रहण भी सर्व जीवोंको लखा-वता है ॥ हे सौम्य इस वृक्षके दृष्टान्त प्रमाणही इस शरीररूप वृक्ष विषे भी जब खड्गादिकों के प्रहार से घाव होताहै तब यह पुरुष भी घृत शर्करादि पदार्थ खायके उस घावको भरलेता है, अरु जिस इन्द्रियादि अंगोंका प्रारब्ध होचुकताहै तब यह जीव उस अंगका रस प्राणद्वारा खींचलेताहै तब उसका मरण होता है, अरु जिस अंगका प्रारब्ध शेष देखता है तब प्राणद्वारा उस विषे रस पहुँचावताहै तब वो जीवताहै। अरु जब सर्व अंगोंका प्रारब्ध भोग होचुकताहै तब यह जीव देहको भी त्याग देता है तब शरीरका मरण होताहै। हे सौम्य यहजीव जिस समय लोक परलोक देवता पितृ मित्र शत्रु पाप पुण्य अरु अपने अंगादि प-दार्थोंमें से किसी एकका वा सर्वका त्याग करताहै तब तिसही समय उनका मरण होता है, अरु आप यह जीव बिनाश से र-हित अविनाशी है। अरु जिस वस्तु का यह जीव ग्रहण करताहै तिसका जीवन होताहै क्योंकि स्थूल सूक्ष्म स्वर्ग नरक पाप पुण्य आदि सर्व इस जीवके रचेहुए हैं। अरु पुनः यह जीव इन सर्व को जानके जिन अंगोंका जैसा धर्म्म होता है तैसाही उनके प्रा-रब्धके अनुसार दुःख सुखादि भोग भोगावत सन्ते आप उनसर्व से जुदाहो सर्वका तमाशा देखता है। हे सौम्य जब इन्द्रिय श-रीरादिकों का प्रारब्ध भोग होचुकताहै तब यह अपनी प्रारब्ध भोगके चलेजाते हैं, अरु यह जीव आप इन सर्वसे असंगहुआ इनके आने जाने का तमाशा देखताहै, आप न आवे है न जावे है न करेहै न भोगे है क्योंकि वास्तव करके यह जीव सत् चैतन्य विज्ञान घन परमानन्द स्वरूप है ताते ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् कोई एक कणाद बौद्ध मतबादी आचार्य ऐसाभी कहते हैं कि इन वृक्ष पाषाणादि स्थावरों विषे जीव नहीं, अरु आप इस जीवको सर्व विषे एकरस समान कहते हो, अब हम इस-को कैसा जानें, ताते इसको आप मेरे अर्थ पुनः कहिये ॥ उत्तर ॥

हे सौम्य इन वृक्ष पाषाण रत्नादिकों से लेके सर्व बिषे जीव है, जो कदापि इन बिषे जीव न होवे तो इन वृक्षों की टांसों बिषे रस कौन पहुंचावे, जो मूल बिषे दियाहुआ जल ऊपर के फूल फल पर्य्यन्त सर्व बिषे रस पहुंचता है सो जीव करके ही पहुंचता है। अरु शरदकाल के सूखे वृक्षको बसन्त ऋतु में अरु बसन्त कालके सूखे वृक्षको शरदऋतु में हरे कौन करताहै। अरु जब इन वृक्षों को लगावते हैं तब सूक्ष्म बीज होताहै तिस बीजसेही अंकुर पत्र स्कंध शाखा उपशाखा टांस फूल फल आदि निकलके अति बिस्तारको पावते हैं सो किसकी सत्तासे होताहै अरु यह वृक्ष आधे सूखे आधे हरे होतेहैं सो किसकी सत्ता से होते हैं, चैतन्य जीवकी सत्तासे होतेहैं॥ हे सौम्य यह पर्वत भी छोटे से बड़े होते हैं अरु पृथिवी के नीचेके जलको आकर्षणकर के अपने ऊपरके वृक्षों के फूल फल पर्यन्त उस रसको पहुंचावते हैं सो किसी चेतन की सत्ता पायकेही पहुंचावते हैं। हेसौम्य इन जड़ रत्नादिकों बिषे जो बहुमौल्यपनेकी शक्ति है सो किसकी है उस शक्तिको इन जड़ोंबिषे प्रकट कौन करताहै, जो इन जड़ों बिषे विचित्र २ शक्तिको जनावता है सोई सर्व जीवोंका जीवहै। हे सौम्य तैसेही इन शरीर प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकों का भी कोई द्रष्टा प्रेरक नायक है जो इन सर्वको अपने२ धर्म्म व्यापारों बिषे जोड़ता है अरु अपनी आज्ञा बिषे सर्वको चलावताहै सोई सर्व का सत् आत्मा जीव है॥ हे सौम्य जो कदापि इन वृक्ष पाषाणादिकों बिषे चैतन्यजीव कला न होती तो यह जड़ व्यापार कैसे सिद्ध होता किन्तु कदापि न होता। एतदर्थ हे सौम्य जो आचार्य्य तुमको ऐसा कहते हैं कि इन वृक्षादि जड़ों बिषे जीव नहीं उनको तुम असत्यवादी जानना अरु उनका संग त्याग करना-:॥

जीवापेतं वावकिलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवन् विज्ञापयत्वितितथा सौम्येति होवाच ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य निश्चय स्पष्ट जीव करके त्याग किया यह शरीर मरता है जीव मरता नहीं । सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सो यह सर्व्व का आत्माहै, यह सर्व अपना आपहै सोई सत्आत्माहै हे श्वेतकेतु सोई सत्आत्मा तू है, इसप्रकार पिताने कहा, तव श्वेतकेतुने कहा हेभगवन् पुनः भी मुझको समुझायके कहिये, पिताने कहा तथाऽस्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य ऐसेही निश्चय करके जानो इतना कह पिता पुनः कहता हुआ कि हे सौम्य निश्चय करके जीव करके विमुक्त (त्याग) हुआ यह शरीर मरता है जीव मरता नहीं ॥:— हे सौम्य पूर्व तुमने यह शंका कियारहा कि जो जीव सत् विषे जाते हैं सो तो फेरके न आवते होंगे और नये जीव आवते होंगे। सो अव इसका भी उत्तर श्रवण करो—: ॥ हे सौम्य इस जाग्रत् विषे पुरुष जिस कार्य्यको करताहै तिसको करते २ थकके सोजाता है तव सुषुप्तिमें सत्को प्राप्त होता है, अरु वो पुरुष जव पुनः जाग्रत् विषे आवताहै तव उस कार्य्यको (जिसको कि पूर्व जाग्रत् विषे करतारहा) देखके कहताहै कि मैं इस कार्य्यको समाप्त किये विनाही सो गया, इसप्रकार अपने पूर्व के जाग्रत्के असमाप्त किये कार्य्यको स्मरणकर पुनः उस कार्य को करता है, ताते हे सौम्य जो जीव सुषुप्ति विषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई पुनः वहां से आवते हैं नये नहीं आवते, जो नये आवते होवें तो उनको दूसरे के जाग्रत्के व्यापारकी स्मृति न

होनी चाहिये, सो तो होती है ताते जो जीव सत् बिषे जाते हैं सोई पुनः आवते हैं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो जीव सुषुप्ति बिषे सत्को प्राप्त होतेहैं सोई पुनःआवते हैं यह सत्य है क्योंकि यह व्यापार का अनुभव सर्वको प्रकटहै। परन्तु हेपिताजी जो जीव मरण कालमें सत्बिषे जाते हैं सो तो फेरके न आवते होंगे और नयेही आवते होवेंगे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जो कि नये जीव उत्पन्न होतेहोवें तो उनको जन्ममात्र होने से ही उसही काल स्तनपान मलत्याग रुदनादि व्यापारमें प्रवृत्ति न होनी चाहिये क्योंकि उसको पूर्वका अभ्यास अनुभव है नहीं अरु यहां किसी ने सिखाया नहीं। अरु यहां जन्म पावतेही जीवों की स्तनपान रुदनादि व्यापार में स्मृतिपूर्वक प्रवृत्ति देखते हैं, अरु सो प्रवृत्तिही उनके पूर्वके स्तनपानादिकों के अभ्यास को अरु दुःखादिकोंके अनुभवको प्रकट निश्चय करावेहै, एतदर्थ जो जीव अपने मरण काल बिषे सत्को प्राप्त होतेहैं सोई फेरके आवते हैं, नये आवते नहीं। अरु जो कदापि मरण कालबिषे सत्को प्राप्त हुए फेरके न आवते होवें वा सत्से उत्थान न होते होवें, तो वेद करके प्रतिपाद्य जे अग्निहोत्रादि कर्म्म तिनको अर्थवाद की प्राप्ति होवेगी, एतदर्थ भी जो कर्मी उपासक आदि जीव अपने मरण कालबिषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई अपने कर्म्म उपासना के अनुसार पुनः आवते हैं "।यथा कर्म्म यथा श्रुतम्" । नये आवते नहीं। अतएव हे सौम्य जीव मरता नहीं (अर्थात् सत् को प्राप्तहोके जीवका नाशहोता नहीं ॥ :—प्रश्न। हे भगवन् आपने आज्ञा किया कि जो जीव सुषुप्ति में अरु मरण कालमें सत्बिषे जातेहैं सोई फेरके आवते हैं सो अस्तु, परंतु हे भगवन् ब्रह्माकी प्रलयबिषे सर्वजीव सत्बिषे जायके अभाव होतेहोंगे, तिसके पश्चात् पुनः सृष्टि कालबिषे तो सर्व जीव नये ही आवते होंगे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ब्रह्माकी प्रलयके उपरान्त जो सर्व जीव नयेही आवतेहोवें तो इन आकाशादि पंचभूतों का अरु सूर्य

चन्द्रादिकों का जो पृथक् २ व्यापार प्रवृत्तहोरहा है सो न होना चाहिये क्योंकि नये जीवोंको अभावहुए प्राचीन जीवों के कार्य्य में विना पूर्वाभ्यास के प्रवृत्तहोना बने नहीं, अरु जो ऐसा कहो कि उस सत् चैतन्यकी आज्ञासे वो अपने २ कार्य्य में प्रवृत्तहोते हैं, सो अस्तु परन्तु आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने का अभ्यास न होय तो सो कार्य्य होवे नहीं। ताते जो जीव ब्रह्माकी प्रलय विषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई पुनः आवतेहैं, नये आवते नहीं॥ पुत्र उवाच॥ हे पिताजी आपके उपदेशानुसार मैंने अनुभव कर देखा कि जो जीव अविद्या काम कर्म्मों के संस्कार अभ्यास अपने साथ ले सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इन तीनों स्थानों विषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई फेर आवते हैं। अरु जो जीव जाग्रत् विषे वैराग्यादि साधन सम्पन्न होय आचार्य्य समीप जाय उन से महावाक्यार्थका सम्यक् ज्ञान पाय तिस विषे निदिध्यासन द्वारा दृढ़ स्थितिपाय अविद्या काम कर्म्मोंको सहित उनके संस्कार अभ्यास के सम्यक् त्यागपूर्वक जाग्रत विषेही साक्षात् सत्को प्राप्त होते हैं सो सत्विषे गयेहुए पुनः आवते नहीं, अरु उनका विनाशभी होता नहीं क्योंकि जिसका परिणाम अविनाशी सत्रूपहै तिसका विनाश कैसे कहिये॥ पिता उवाच॥ हे सौम्य जिस सत्चैतन्यविषे उक्त तीनों स्थानों में यह सर्वजीव समान प्राप्तहोते हैं तहां ज्ञानी उस विषे प्राप्त हुए फेर के आवते नहीं किन्तु सोई रूपहोते हैं। अरु अज्ञानी उसको प्राप्तहोके भी पुनः जैसेके तैसे निकस आवते हैं, सो सत् आत्मा अणुवत् महा सूक्ष्म सर्व्वात्माहै सोई सत् आत्मा हे श्वेतकेतो "तत्त्वमसि" तुही है॥ श्वेतकेतो वाच॥ हे प्रभो सोई महासूक्ष्म सर्व्वात्मा सत् चैतन्य मैंहीहों अस्तु, हे भगवन् पुनः मुझको एक संशय हुआ है जो सुषुप्ति आदि उक्त स्थानों विषे आपने सत् चैतन्य की प्राप्ति सर्व जीवों को समान कही, अरु उस सत्को मधु अरु नदियों के दृष्टान्त द्वारा विशेष ज्ञातसे रहित ज्ञान स्वरूप कहा,

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके द्वादशो खंडः १२ ॥

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगवइति भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमत्रपश्यसीत्यरायव्य इवेमाधाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति किञ्चन न भगव इति १ ॥

अरु तिस विषयक जो विनाशत्वका संशय रहा सो आपने उक्त वृत्त के दृष्टान्त द्वारा निवारण किया, अरु उस सत् चैतन्य सर्व्वात्माको ज्ञानस्वरूप अविनाशी सिद्ध किया सो सर्व यथार्थ हुआ । परन्तु हे भगवन् आपने ऐसे निर्विशेष परमसूक्ष्म सत् चैतन्य से इस नाम रूपात्मक समस्त जगत्का होना कहा है सो संभवे नहीं, क्योंकि साकार से साकार अरु स्थूल से स्थूल होता है, जैसे स्थूल साकार कारण मृत्तिका से स्थूल साकार घटादि कार्य्य होते हैं, परन्तु आकार विकार से रहित महा-सूक्ष्म सत्तामात्र कारण से इस साकार विकार सहित इस महा-स्थूल जगत् का होना संभवे नहीं अतएव हे भगवन् इसको भी आप मुझेपुनः समुझायके कहिये । इस प्रकार जब श्वेतकेतु पुत्रने कहा तब उद्दालक पिता कहता हुआ कि हे पुत्र अब तुम को कह सुनावें या प्रत्यक्ष देखादेवें जो जिसप्रकार महासूक्ष्म से महास्थूल होताहै । तब श्वेतकेतुने कहा कि जो आप प्रत्यक्ष दे-खावते हौ तो यह सर्वसे श्रेष्ठहै । उद्दालकने कहा अब उसको भी एक वृक्षके दृष्टान्त द्वारा कहताहौंसावधान होके श्रवणकरो ३ ॥

इतिछान्दोग्येषष्ठप्रपाठके एकादशो खंडः ११ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस वटके वृक्षका एक फल लेआवो, इस प्रकार जब पिताने कहा तब पुत्र फल लेआयके कहता हुआ, हे भगवन् यह फल लेआया, ऐसे पुत्रने कहा तब पिताने कहा इसफलको

तोड़ो, तब वो तोड़के कहता हुआ हे भगवन् तोड़दिया, पुनः पिताने कहा इस विषे क्या देखता है, पुत्रने कहा हे भगवन् इस विषे महा सूक्ष्म बीजोंको देखता हौं, पिताने कहा इसमें से एक बीजको तोड़ो, तब पुत्र उसको तोड़के कहता हुआ हे भगवन् तोड़ा, पुनः पिताने प्रश्नकिया अब इसबिषे क्या देखताहै, पुत्रने कहा हे भगवन् इसविषे मैं कुछ भी देखता नहीं १ ॥

भावार्थ खंड बारहवां मन्त्रपहिलेका ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो यदि तू उस जगत् के मूल महासूक्ष्म सत् चैतन्य को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करताहै तो इस अपने आश्रम के आगे जो बड़ा बटका वृक्षहै तिसका एक फल तोड़ लेआव, इसप्रकार जब पिताने आज्ञा किया तब वो श्वेतकेतु उस बटवृक्ष के फलको लेआय के कहता हुआ कि हे भगवन् यह फल मैं तोड़ लेआया, तब पुनः पिता ने कहा हे पुत्र अब इस फलको तोड़डालो, तब पुत्रने उस फलको तोड़ के कहा कि हे पिताजी मैंने इस फलको तोड़ दिया, इसप्रकार जब पुत्रने कहा तब पुनः पिता कहता हुआ कि हे पुत्र अब इस टूटेहुए फल विषे तू क्या देखताहै सो कह, इसप्रकार जब पिता ने प्रश्न किया तब पुत्र कहता हुआ हे भगवन् मैं इस विषे महासूक्ष्म छोटे छोटे बहुतसे बीजोंको देखताहौं । इसप्रकार जब पुत्रने उन सूक्ष्म बीजोंको देखके कहा तब पिताने पुनः आज्ञा किया कि हे सौम्य इन बहुतसे बीजों में से एक बीज को लेके तोड़ो तब पुत्र उस टूटे फलमें से एक बीजले उसको तोड़ पुनः कहताहुआ कि हे भगवन् इस एक बीजको भी तोड़दिया, पुनः पिताने प्रश्न किया कि हे पुत्र यदि तूने बीजको तोड़दिया तो इस टूटे हुए बीज में अब तू क्या देखता है । इस प्रकार जब पिताने प्रश्न किया तब पुनः पुत्र कहता हुआ कि हे भगवन् अब इस बीजविषे तो मैं कुछ भी देखता नहीं ॥:— अर्थात् उस बट वृक्षके महासूक्ष्म बीजको तोड़के श्वेतकेतुने कहा कि हे पिताजी

तच्छं होवाचयं वै सौम्येत मणिमानं ननिभालयस एत स्य वै सौम्येषो ऽणिम्न एवं महान्यग्रोध तिष्ठति ॥ २ ॥

मैंने आपकी आज्ञानुसार इसबट वृक्षके महासूक्ष्म बीजको तोड़ दिया, तब पुनः पिताने प्रश्नकिया कि हे पुत्र अब इस टूटेहुए बीजबिषे तू क्या देखता है पुत्रने कहा हे भगवन् सिवाय दो दालों के और कुछ भी देखता नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो पिता कहता हुआ हे सौम्य इस टूटेहुये बीज विषे इस वृक्षकी कारण भूत महासूक्ष्म बीज सत्ताको तू नहीं देखता तथापि हे सौम्य इस तिस महासूक्ष्म सत्ताका ही यह महान् बड़ा वटका वृक्ष तिष्ठित है ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

सो उद्दालक पिता अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति कहता हुआ कि इस बट वृक्ष के तोड़े हुए बीज विषे जो बट वृक्ष होनेका कारण बीज है कि हे सौम्य जिस महासूक्ष्म कारण बीज को तू नहीं देखता, तथापि तिस अदृश्यमान महासूक्ष्म बीज सत्ताका यह कार्य्यभूत महान्यग्रोध (बड़ा बटका वृक्ष) तिष्ठित है सो कैसा है अनेक स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र फूल फल करके सम्पन्न महा स्थूल महा विस्तारवान् है ॥:—हे सौम्य बट वृक्ष के महासूक्ष्म बीजको तोड़ के जिन दो दालों को तू देखता है तिनहीं दो दालों के मध्य महासूक्ष्म अरूप सत्ता अंश है सो तुझको दृष्ट आवता नहीं। तथापि हे सौम्य तिस महासूक्ष्म अरूप अंशकाही यह महान् वृक्ष अपने अनेक स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र फूल फल आदि अंग अवयवों सहित फैला हुआ तिष्ठित है। हे सौम्य वो अंश जो तुझको भासता नहीं सो नामरूप से रहित महासूक्ष्म है तिस अंश से हुआ यह बट वृक्ष सो नामरूप सहित महास्थूल है ॥:—हे सौम्य यदि तू ऐसा कहे कि

नाम रूप सहित जो दृश्यमान बीजहै तिसका यह वृक्ष होताहै, तो सो संभवे नहीं क्योंकि जब बीजको बोवते हैं तब उस बीज की सर्व अवययों सहित विद्यमानता मेंही बीजान्तर से अंकुर पत्रादि निकलते हैं अरु जब उनकी वृद्धि होती है तब बीजके दो कपाल पृथक् २ हो पृथिवी में गिर गलजाते हैं, ताते दृश्यमान बीज का परिणाम वृक्ष नहीं, अरु बीजके गलगये पश्चात् उस नूतन वृक्षसे और नवीन पत्रटांस निकल के बड़े विस्तारको पाय स्थित रहताहै, ताते हे सौम्य जो दृश्यमान बीजही वृक्षका कारण होय तो बीजके गलके अभावहुए पश्चात् उस नूतन वृक्ष विषे और नवीन पत्र टांसादिकों का बिस्तार न होना चाहिये, परन्तु सो होताहै, अतएव हे सौम्य निश्चयकरके बीजसे पृथक् नामरूपसे रहित बीजान्तर कोई महासूक्ष्म अविनाशी सत्ताहै। हे सौम्य सोई सत्ता यह महान् बिस्तारवान नामरूप सहित अनेक भेद युक्त महास्थूल वृक्षाकारसे सुशोभित है। अरु सोई जीवसत्ताहै॥ हेप्रियदर्शन देखो उस दृश्यमान बीजान्तर जो बीज (कारण) रूप महा सूक्ष्म सत्ताहै सो इस वृक्षका कारण महा सूक्ष्म है, तिसका कार्य्य यह वृक्ष महा स्थूलहै, वो सत्ता नामरूपसे रहित चक्षु आदि करणों का अविषयहै, यह वृक्षनाम रूप सहित चक्षुरादि करणोंका विषय है, वो सत्तासर्व भेद भाव से रहित एकरस है, यह वृक्ष स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र आदि अनेक भेदभाव युक्त नाना है, वो सत्ता नामरूप से रहित महासूक्ष्म निरवयक निराकार होने से अविनाशी है, यह वृक्ष नामरूप सहित महास्थूल साकार होने से नाशवान् है। हे सौम्य इस प्रकार उस कारण भूत महासूक्ष्म सत्ता से अरु इस कार्य्य भूत महास्थूल वृक्ष से बड़ा भेद है। अरु जो वास्तव परमार्थ दृष्टि से देखिये तो वो अरूप महासूक्ष्म सत्ताही इस महान वृक्षाकार से सुशोभित है तिस विषे इस वृक्ष का नामरूप केवल वाचारंभण मात्रही है वास्तव से कुछ नहीं॥

हे सौम्य इस दृष्टान्त प्रमाणही द्राष्टान्तभूत इस विराट्रूप वृक्षको भी श्रवण करो। हे सौम्य असंभूतिनामा जे प्रकृति सो इस विराट्रूप वृक्षका कारण बीज है तिस बीजान्तर एक "अणोरणियान्" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे नानारूप से रहित चक्षुरादि करणोंका अविषय अति सूक्ष्म सत् चैतन्य सत्ताहै कि जिस सत्ताके आश्रय प्रकृति सर्व कार्य्योंको करे है। सो सत्ता प्रथम प्रकृतिद्वारा हिरण्यगर्भ नामवाले अंकुररूपसे प्रकट हुई अरु सो अंकुर क्रियाशक्ति अरु ज्ञानशक्ति यह दो शक्तिरूप प्रथम के दो दल (पत्ते) वालाहै, तिस अंकुरसे पंचमहाभूतरूपस्कंधहुए, पश्चात् पंचभूतों का कार्य चतुर्दश भुवनरूपा शाखाहुई, अरु तिस वृक्षके वेदमन्त्ररूप पत्तेहुए, अरु यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म्मरूप पुष्पहुए अरु चतुर्दश भुवनाश्रित जे जीवोंके शरीर सो सर्व उस विराट्रूप वृक्षके फलहुए तिन फलों बिषे हृदयरूप वा अन्तःकरणरूप महा सूक्ष्म बीजहुआ तिस बीज बिषे वोही नामरूपसे रहित महा सूक्ष्म सत् चैतन्य सत्ताहै कि जो प्रकृति को निमित्त करके इस विराट्रूप वृक्षाकार से सुशोभित है। हे सौम्य देखो उस महासूक्ष्म अरूप निरवयव निराकार सत् चैतन्य सत्तासे हुआ विराट्रूप वृक्ष सो अतिस्थूल सावयव साकार नामरूपवान् असत् जड़है, वो सत्ता अविनाशी नित्यहै, यह विराट्रूप वृक्ष नाशवान् अनित्यहै वो सत्ता देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहितहै, अरु यह विराट्रूप वृक्ष देश काल वस्तुके परिच्छेद सहित है, वोसत्ता उत्पत्ति विनाश रहित एक रसहै, यह विराट्रूप वृक्ष उत्पत्ति विनाश सहित नानारूपहै। हे सौम्य व्यवहार दृष्टि से देखिये तो उसकारण सत्तासे अरु इस कार्य्य विराट्रूप वृक्षसे महान् अन्तर है, अरु परमार्थ दृष्टिसे देखिये तो वो ही एक सत् सत्ता इस विराट्के नामरूप आकारसे सुशोभित है, अरु तिस सत्ताबिषे यह नामरूप क्रियात्मक विराट् केवल वाचारम्भण (कहने मात्रही है। हे सौम्य समष्टि विराट्रूपसे अरु तदनन्तर व्यष्टि

श्रद्धत्स्व सौम्येति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिद छं सर्व्वं तत्सत्यछं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतोइति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्वितितथा सौम्येति हो वाच ३ ॥ खण्डः १२ ॥

विराट्रूप से अरु तिन दोनों चिदाभास जीवरूप से वो ही एक सत् नाम्नी परमसूक्ष्म परमार्थ सत्ताही सुशोभितहै और रंचक मात्र भी नहीं । एतदर्थही श्रुतियों ने भी सोई आज्ञा कियाहै " सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म " "सद्धिदं सर्व्वं" " चिद्धिदं सर्व्वं" " पुरुष येवेदं सर्व्वं " " ब्रह्मैवेदं सर्व्वं " —: ॥ अतएव हे सौम्य श्रद्धा करो २ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य (मेरे वाक्यमें) श्रद्धाकरो, सो जो यह महासूक्ष्म है सो यह सत् आत्मा है जिन सर्वों का सो सर्व इसका अपना आपहै सो सत्यहै हे श्वेतकेतो सोई अणुवत् महासूक्ष्म सत्आत्मा तूही है । इसप्रकार जब पिताने कहा श्वेतकेतु कहताहुआ हे भगवन् पुनःभी मुझको समुझायकेकहिये पिताने कहा तथास्तु ३ ॥ इतिद्वादशोखंडः १२ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे सौम्य इस जगत् का कारण जो सत्है सो अणुतर महा सूक्ष्म होनेसे चक्षु मनआदि अन्तर वाह्यके करणों का बिषय नहीं, तिस महा सूक्ष्म सत्तासे यह महास्थूल नामरूप क्रियात्मक जगत्रूप कार्य्य उत्पन्न हुआहै। यदि न्यायशास्त्र बिषे सूक्ष्म सत्का अर्थ निर्द्धार कियाहै सो तहां अंगीकार है, तथापि वेदवादियों के, अतिसूक्ष्म अर्थविषे ,वाह्य विषयोंविषे स्वभावहीसे प्रवृत्त है मन जिनका अरु असत् पदार्थों में ही श्रद्धा अधिक है जिनको उनको महासूक्ष्म सत् सत्ताविषे गुरुतर श्रद्धाका होना अति कठिन है, अतएव हे सौम्य मैं कहताहौं जो मेरे इस सत्य

वाक्यमें श्रद्धा करो ॥:—हे सौम्य यह सर्व प्रपंच अपनी उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय सत्ही था, उस महासूक्ष्म मन आदिकों का अविषय सत्चैतन्य सत्तासे यह समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् हुआहै, ताते इस जगत्के अधिष्ठान कारण सत्बिषे, कि जिसको प्राप्त होके भी अज्ञानी ज्योंके त्यों निकल आवते हैं, अरु ज्ञानवान् जिसबिषे पूर्वोक्त प्रकार गयेहुए फेरके आवते नहीं,उस अविनाशी सत्बिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो प्रश्न ॥ हे पिताजी जिस महासूक्ष्म सत्चैतन्य से यह सर्व नामरूप क्रियात्मक जगत्हुआ आप कहतेहो सो तो दृष्ट आवता नहीं तब कैसे जानिये जो वो है, अरु जब जिसके अस्तित्वका निश्चय होवे नहीं तब तिसबिषे श्रद्धा कैसे होवे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य वो सत् सर्व आकार विकार से रहित महासूक्ष्म है एतदर्थ उसबिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो ॥ हे पिताजी प्रत्या भी तब दृढ़ कीजाती है, जब आगे कोई बस्तु दृष्ट आवे जो बस्तु मनादिकों काभी विषय होवे नहीं तब तिसबिषे प्रत्या (श्रद्धा) दृढ़ कैसे होवे ॥ हे पुत्र तुमने पूर्व यह कहाहै कि हमारी दृष्टिमें ऐसा आवताहै जो जो पुरुष अग्निहोत्रादि शुभ कर्म्म करते हैं सो स्वर्गादि उत्तम लोक को प्राप्त होते हैं, अरु जो हिंसादि अशुभ कर्म्मों को करतेहैं सो नरकादि अधम लोकों को प्राप्त होते हैं। हे सौम्य यहां हम तुमसे प्रश्न करते हैं कि यह जो तुमने कर्म्मी पुरुषोंके अविद्यात्मक असत् वाक्योंको मान लियाहै कि अग्निहोत्र के कर्त्ता उत्तरायण मार्गवाले देहत्यागान्तर स्वर्ग सत्यलोक को जातेहैं, अरु दक्षिणायन मार्गके सेवनेवाले पितृलोक को जाते हैं, इत्यादि जो तुमने मान लिया है सो उन कर्मियों के स्वर्गलोक पितृलोक जाते प्रत्यक्ष देखके मानाहै वा किसी के वाक्य श्रवण करके माना है सो कहो ॥ हे भगवन् यह कर्मशास्त्र के वाक्य आचार्यद्वारा श्रवण करके माने हैं जाते आते किसीको देखानहीं हे सौम्य मैंने तुमको श्रुति शिरोमणि वाक्य युक्ति अनुभव पू-

दिक कहाहै अरु दृष्टान्तोंद्वारा अनुभव करायाभी है तिस वाक्य को तुम क्यों नहीं मानते, अरु वो वाक्य तुमने मान लियेहैं जो अग्निहोत्रादिकों के करनेवाले इस प्रकार स्वर्गादिकों को जाते हैं इस प्रकार पुनः लौटके आवतेहैं । अरु हे पुत्र तुझको किसी ने कहा कि तुमवडे पुण्यवान्हो तबतूने अपने को पुण्यवान् मानलिया अरु किसीने तुझसे कहा तुम बड़े पापी हो तब तूने अपनेको वड़ा पापी मान लिया, यदि तुझको किसीने कहा तुम सूतकीहो तव तूने अपने को सूतकी मानालिया । हे सौम्य यह जो सर्व तूने मानालियाहै सो सर्व प्रत्यक्ष देखके मान लिया है कि केवल श्रवण करकेही मानालियाहै ॥ हे पिताजी यह सर्व देखानहीं केवल श्रवण करकेहीमान लियाहै ॥ हे सौम्य जो वेद की अपराविद्याके अविद्यात्मक वाक्य हैं तिनको तो तुमने सत्य करके माने हैं, अरु जो वेदकी पराविद्यात्मक सत्य वाक्य है अरु जिन वाक्यों से वेद सत् चैतन्य अपने आप आत्माका साक्षात् यथार्थ अनुभव करावता है, अरु सोई वाक्य हम तुमको कहते हैं सो वाक्य तुम क्यों नहीं मानते तुमको मानना योग्यहै क्योंकि तुमको उस परमानन्द की प्राप्ति इन वाक्योंसेही होनीहै सो केवल श्रद्धाके आश्रय होनीहै अतएव मेरेकहे वाक्यों विषे श्रद्धा करो । हे भगवन् उस अतिसूक्ष्म अरूप अविषय सत चैतन्य विषे श्रद्धा कैसे होवे ॥ हे प्रियदर्शन यह वाक्य तुमने यथार्थ कहा, हेसौम्य उस विषे श्रद्धा तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होताहै सो अन्तःकरण तब शुद्ध होता है जब निष्काम विहित कर्म्मोंको करता है, ताते विहित निष्काम कर्म्मों करके जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है तिन पुरुषों को मेरे इस सत्य परमार्थ बोधक वाक्य विषे श्रद्धा आवती है ॥ हे पिताजी अब श्रद्धा किसवास्ते चाहिये यहतो सर्व पुरुष आपही जानते हैं जो सुषुप्ति से यह सर्व ब्रह्मांड उदय होता है अरु पुनः तिसही विषे लय होता है सो यह सर्व प्राणी अपने अन्तर नित्य देखते हैं तब श्रद्धा करने का

क्या प्रयोजन है किन्तु कुछ भी नहीं ॥ हे पुत्र जैसा तू कहता है तैसाही होता होवे तो ठीक परन्तु तैसा होता नहीं जो तैसा होता होवे तो सर्व जीव मोक्षहुए चाहिये, परन्तु यहतो सर्व अद्यावधि भ्रमते हैं। हे सौम्य जिस मुमुक्षु को सत् विषे श्रद्धा है तिस पुरुष को आचार्य्य करके कहा हुआ एक वाक्य उसके शुद्ध अन्तःकरण विषे सूर्य की किरणोंवत् पसरके अनन्त गुणा होता है। हे पुत्र वो कैसा वाक्य है जो सत्परब्रह्म उसही को लखावता है। जब ब्रह्मवेत्ता आचार्य ऐसे वाक्य उस मुमुक्षु को कहता है तब वो वाक्य उसके शुद्ध अन्तःकरण के भीतर अनन्त गुणा होके मोक्ष करने वाला होता है, परन्तु सो वाक्य किनको मोक्ष करता है कि जिनको इस वाक्यविषे श्रद्धा है। हे पुत्र जिन पुरुषोंको इस वाक्यबिषे श्रद्धा नहीं तिन पुरुषोंको आचार्य किंवा स्वयं ब्रह्मा अनेक श्रुतियोंके वाक्य उपदेश करे तथापि वो वाक्य उन श्रद्धा हीन पुरुषोंके हृदयबिषे ठहरते नहीं (विरोचनवत्) अथवा वो श्रद्धा हीन पुरुष आप सर्वदा वेदान्तों को बिचारता भी रहता है अरु अन्यों को कहता भी रहता है तथापि उस पुरुषको वेदान्त के कहे ते सुननेका कुछ भी फल नहीं ॥ अतएव हे सौम्य जो तुझको सत् चैतन्य अविनाशीके प्राप्तहोनेकी इच्छाहै तो अब तुम उसविषे अपनी श्रद्धाको दृढकरो उसविषयक श्रद्धाका त्याग मत करो। हे पुत्र उस परमानन्द की प्राप्ति के अर्थ तुमको और कुछ कर्त्तव्य नहीं यहां एक श्रद्धाही का कामहै। हे सौम्य स्वार्थ वा परमार्थ इन दोनों की सिद्धिविषे एक श्रद्धा चाहिये जिसविषे श्रद्धा होगी सोई सिद्ध होगा। अतएव हे सौम्य तुम आपने को परमानन्द की प्राप्तिके अर्थ मुझकरके अनुभव कराये सत्विषे अपनी श्रद्धाको दृढ करो ॥ हे सौम्य ऐसा जो अणुवत् सर्व्वात्मा है सो महासूक्ष्म सर्व्वात्मा है सोई सत् है हे श्वेतकेतो सोई सत् आत्माहै तू है ॥ प्रश्न ॥ हे पिताजी सोई अणुवत् महासूक्ष्म सत् आत्मा मैंहों, अच्छा। हे प्रभो इस विषे मुझको पुनः एक

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके त्रयोदशो खंडः १३ ॥

लवणमेतदुदकेऽवधायाथा मा प्रातरुपसीदथाइति स ह तथा चकार तछं होवाच तद्दोषा लवण उदके अव धा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद यथा विली न मेवाङ्ग १ ॥

संशयहुआ है जो आपनेबट बीजके अन्तरअरूप महासूक्ष्म सत्ता कही अरु तिससूक्ष्म सत्तासेहुआ यह स्थूल वृक्षकहा अरु इसही दृष्टान्त करके महासूक्ष्म सत् चैतन्य आत्मा से यह नामरूप क्रियात्मक ब्रह्मांडका उत्पन्न होना कहा सो अस्तु । परन्तु हे भगवन् यह कार्य रूप ब्रह्माण्ड तो दृश्य आवताहै परन्तु इसका कारण जो महासूक्ष्म सत्ताहै सो तो दृष्ट आवती नहीं तब हम उस महासूक्ष्म सत्ताको कैसे अनुभव करके निश्चय करें जो वो है । हे प्रभो अब हम जिस प्रकार उस सत् चैतन्य आत्मा को साक्षात् यथार्थ अनुभव करें सोई प्रकार पुनः कृपाकर मुझको समुझाय के कहिये ॥ उत्तर ॥ हे पुत्र अब हम तुझे उस सत् चैतन्य को घटवत् प्रत्यक्ष देखावते हैं सोभी कैसा जो घटसे अति समीप, सो समीप भी कैसा जो विद्यमान अपना आप, सो विद्यमान भी कैसा जो न तो पकड़ा जावे न देखाजावे न सुना जावेगा अरु होवेगा प्रत्यक्ष विद्यमान अपना आप, हे पुत्र ऐसे सत् चैतन्य आत्माको अब हम तुझे एक दृष्टान्त द्वारा देखावते हैं । हे सौम्य जैसे यह दुःख अरु सुखहैं सो न तो देखे जाते हैं न पकड़े जातेहैं, परन्तु हैं दोनों प्रकट विद्यमान हे सौम्य तैसेही वो सत् आत्मा न देखाजावेगा न पकड़ा जावेगा परन्तु होवेगा विद्यमान अपना आप । हे सौम्य अब हम तुमको एक दृष्टान्त द्वारा कहते हैं तिसको सावधान होके श्रवण करो ॥ २ ॥ इति द्वादशो खंडः १२ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस लवण के खंडको घटमें जलभरके उसमें डालो कल्ह प्रातःकालको मेरे पास ले आइयो, इसप्रकार जब पिताने कहा तब सो श्वेतकेतु तैसेहीकरता हुआ, सोपिता कहताहुआ जो लवण रात्रिको जल बिषे रक्खाहै तिसको निकालो तब वो जल बिषे लवणको देखता हुआ परन्तु उसको न जानता हुआ पिताने कहा जैसे लवण विद्यमान था तैसे हे अंग विलीन हुआ है १ ॥

भावार्थ खंड त्रयोदशो मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य, यदि विद्यमान वस्तु भी उपलभ्य न होती होवे तो प्रकारान्तर करके तो उपलभ्य होती है, तहां दृष्टान्त को श्रवण कर । हे सौम्य यदि मेरे कहे अर्थ को प्रत्यक्ष करने को इच्छता होवे तो इस पिंड (खंड वा ढेला) रूप लवण को एक घट में पानी भर उसमें डाल (उसका मुँह बंदकर अपने आश्रम पर लेजावो प्रातःकाल उसको लेके मेरे पास आवना, इस प्रकार जब पिताने आज्ञा किया तब वो अपने पिताकरके कहे अर्थको प्रत्यक्ष करने की इच्छावाला श्वेतकेतु सोई करता हुआ जो पिताने आज्ञा किया ॥:—अर्थात् उस महासूक्ष्म सत्चैतन्य आत्माको प्रत्यक्ष करने की इच्छा वाला जो श्वेतकेतु तिसको सत् चैतन्य का यथार्थ अनुभव करावनेकी इच्छावाला उद्दालक कहता हुआ कि हे पुत्र यदि तुझको सूक्ष्म करके कही वस्तुको प्रत्यक्ष करने की इच्छा है तो प्रथम एक घट पानीसे भरलेआवो, तब वो श्वेतकेतु एक घट पानीका भरलेआया। तब पुनः उसको पिताने कहा कि अब एक ढेला लवणका लेआवो, तबवो सोभी ले आया। पिताने प्रश्न किया कि हे पुत्र अब तू इस लवण के के नाम रूपको जानता है, पुत्रने उत्तरदिया कि हे पिताजी जानता हौं। हे सौम्य अब तू इस लवणखंड को इस जलसे भरे घटबिषे धरदे प्रातःकाल यह लवण तुझको उपदेश करेगा, अब तू इस घटको अपने आश्रम परलेजा इसके पास कोई आवे

अस्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादा चामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभि प्राशैनदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्त्तते तछं होवाच वाव किल सत्सौ म्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति २ ॥

नहीं रात्रिको इसपर जागता रहियो, प्रातःकाल इस घटको मेरे पास ले आवना। इस प्रकार जब उद्दालक ने कहा तब सो श्वेतकेतु सोई करता हुआ, दूसरे दिवस प्रातःकाल उस घटको पिताके समीप लेआया अरु कहता हुआ कि हे पिताजी आपकी आज्ञानुसार यह घट मैं ले आयाहौं—:॥ उद्दालक कहता हुआ हे वत्स जो लवण कल्ल रात्रको तूने इस घट बिषे धराहै तिसको निकालो, तब वो श्वेतकेतु उस लवण को घटबिषे ढूंढने लगा परन्तु वो लवण न मिला तब सर्व ओर देखके पिता से कहता हुआ कि हे पिताजी वो लवण तो घट बिषे मिलता नहीं ॥:—हे पुत्र उस लवण को इसमें से किसीने निकाल तो नहीं लिया। हे पिताजी रात्रिको इसके निकट कोई भी आया नहीं मैं इस के पास जागता रहा हौं। हे पुत्र जिस लवण को कल्ल सायंकाल को तूने देखा पकडा था अरु इस घटविषे धराथा सो लवण कहीं गया नहीं इस घटविषे ही है, यथा लवण विद्यमान होतेसन्तेभी जलविषे बिलीन होने से जाना जाता नहीं, तथापि सो लवण चक्षुकरके हस्त करके पिंड रूपसे अगृह्यमान भी विद्यमानहै। इसप्रकार जलविषे विलीन हुआ लवण उपायान्तर करके ग्रहण होवेगा, इस प्रकार विचार के अपने पुत्रको लवणके दृष्टान्त मिस सत् के प्रत्यक्ष करावने की इच्छावाला उद्दालक कहताहुआ १॥

अक्षरार्थ ॥

इस जलके ऊपरसे थोड़ा जल लेके आचमन करो, कहो

क्याहै, लवणहै, मध्यसे आचमनकरो, क्या है, लवणहै, अन्त (नीचे) से आचमनकरोकहो क्याहै लवणहै, यदि इसप्रकार अभिप्रायहै तो यह उदक परित्यागकर मुझ समीप आओ, इस प्रकार जब पिताने कहा तब वो तैसेही करके पिता समीप आय कहताहुआ सो लवण तिस जलविषे नित्य वर्त्तताहै। ऐसे जब पुत्रने कहा तब पिता करताहुआ हे सौम्य तैसेही वो सत् यहां (शरीरविषे) ही है परन्तु देखा जाता नहीं २ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरे का ॥

हे सौम्य अब इस घटके ऊपरसे थोड़ा जल लेके आचमन करो (चीखो) इस प्रकार जब पिताने कहा तब सो श्वेतकेतु उसघटके ऊपरसे थोड़ा जलले चीखताहुआ, तब पिताने पूछा हे पुत्र क्या है, पुत्र ने कहा हे पिताजी लवण है, लवण का स्वाद है। तब पुनः पिताने कहा कि हे पुत्र अब इस घटके मध्य से जललेके आचमन करो, तबश्वेतकेतु सोई करताहुआ तब पिताने पुनः प्रश्न किया कि हे पुत्र कहो क्या है, पुत्रने कहा हे पिताजी लवण है, पुनः पिताने कहा हे पुत्र अब घटके नीचे से जललेके आचमन करो, तबसो श्वेतकेतु पुनः सोई करता हुआ, पुनः पिताने प्रश्न किया हे पुत्र क्या है, पुत्रने कहा हे पिताजी लवण का स्वाद आवता है, ताते लवण है। पुनः पिताने कहा हेसौम्य यदि इस प्रकारके अभिप्राय का परित्याग कर अर्थात् इस प्रकार अभिप्राय है तो उदक के आचमन को परित्याग कर मेरे समीप आओ। इस प्रकार पिताने कहा तब वो श्वेतकेतु उस लवणोदकयुक्त घटको परित्याग करके पिता समीप आय यह वचन कहता हुआ हे पिताजी सो लवण जो मैंने कल्हरात्रि को जिस जल विषे डालारहा सो उसही जल विषे सम्यक् विलीन हुआ विद्यमान है। इस प्रकार जब श्वेतकेतु पुत्रने कहा तब तिसको श्रवण कर उद्दालक पिता कहता हुआ, हे सौम्य जैसे लवण जलमें डालने से पूर्व दर्शन स्पर्श

करके गृहीतथा पश्चात् वो जलमें डालने से जलविषे विलीन होगया, सो जलविषे विलीन होने से तिन चक्षु हस्त करके प्रगृह्यमान हुआ भी विद्यमान है, ऐसेही उपायान्तर करके प्राप्त है, जिह्वा से उपलभ्यमान होनेसे (अर्थात् जो लवण उदकविषे डालने से पूर्वचक्षु हस्त करके उपलभ्यथा सो जलमें विलीन होने से चक्षु हस्त करके उपलब्ध न हुआ, परन्तु उपायान्तर करके जिह्वा से चीखने करके उपलभ्यमान हुआ) हे सौम्य तैसेही यहांही इस तेज जल अन्नके कार्य शरीर विषे निश्चय करके आचार्य के उपदेश से स्मरण प्रदर्शन होता है (जाना जाता है) हे सौम्य तेज जल अन्नरूप अंकुर (कार्य्य) का कारण सो सत् वटके सूक्ष्म बीज विषे विद्यमान हुआ सताभी भासता नहीं अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण होता नहीं, जैसे यहांही जल विषे दर्शन स्पर्श करके अनुपलभ्यमान लवण जिह्वा करके यहां उदक विषेही विद्यमान तुझको उपलब्ध हुआ ॥:—हे सौम्य तैसेही वो सत्चैतन्य न तो आकारों द्वारा देखा जावेगा न पकड़ा जावेगा एक लवणवत् अनुभव किया जावेगा। हे सौम्य यह शरीर रूप घट है बुद्धि किंवा लिंग रूप तिस विषे जल है, तिस विषे सत् चैतन्य रूप लवण है सो उक्त जल साथमिलके तद्रूप होरहा है। अर्थात् मनसाथ मिलके मनरूप हो रहा है, बुद्धिसाथ मिलके बुद्धिरूप, चक्षुसाथ मिलके चक्षुरूप, वाणी साथ मिलके वाणीरूप, इस प्रकार वो सत् जिस जिसके साथ मिला है तिस तिसके आकार हो रहा है। हे सौम्य जैसे जलमें रखने से पूर्व तुमने लवण को नामरूप सहित देखा था तैसे यह उस सत् चेतन्य को बुद्धि आदिकों से पृथक् सुषुप्ति विषे देखो॥ श्वेतकेतुरुवाच॥ हे पिताजी उस सत्को मैंने न देखा न स्पर्श किया है पिताजी अब वो सत् साक्षात् प्रतीतमें कैसे आवे, पूर्व आपने यह कहा था जो हम तुझको सत् देखायके पकड़ाय देवेंगे॥ हे सौम्य तुम अपने चक्षुकी श्रेष्ठता नेष्ठता को देखते (जानते)

हौं हेपिताजी मैं अपने चक्षु आदि करणों की श्रेष्ठता नेष्ठता को भली प्रकार देखता हौं ॥ हे सौम्य तुम अपने मन बुद्धि आदि अन्तःकरण की चपलता स्थिरता पण्डितता मूर्खता आदिकों को देखते हौ । हे पिताजी सो भी भली प्रकार जानता हौं । हे सौम्य "घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः" इस न्याय प्रमाण जो जिसको जानता है सो तिस जानने योग्य वस्तु से जुदा होता है, ताते तुम जिन अन्तर बाह्य के करणादिकों को जानते हौ तिन सर्व से जुदे हौ । अरु हे सौम्य जो वस्तु जानने योग्य होती है सो जड़ होती है, अरु जानने वाला चैतन्य होता है, इस न्याय प्रमाण जिन बुद्धि आदिकों को तुम जानते हौ सो सर्व जड़ हैं, अरु जानने वाले तुम चैतन्य हौ । हे सौम्य इस ही न्याय प्रमाण तुम विचार कर देखो कि जिन चक्षुरादिकों को तुम देखते हौ वो जड होनेसे तुम्हें देखने को समर्थ नहीं । इस ही प्रकार जिन बुद्धि आदिकों को तुम जानते हौ सो तुमको जानने को समर्थ नहीं । हे सौम्य इसप्रकार तुम बुद्धिमन आदिकों के अविषय हुए हुए भी सर्व के द्रष्टा जानने वाले सर्व में मिले अरु सर्व से पृथक् सर्वदा विद्यमान सत् हौ तुम अपने आपको अनुभव करो तुम्हारा जानने वाला और सत् कोई नहीं, तुमहीं सर्व के द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता सत् चैतन्य हौ, तुमको यह जड़ मन इन्द्रियादि जानने को समर्थ नहीं । जैसे प्रकाशरूप दीपक जिन अप्रकाशी पदार्थों को प्रकाशताहै सो अप्रकाशी पदार्थ प्रकाशरूप दीपकको प्रकाशने विषे समर्थ होवे नहीं हे सौम्य तैसेही स्वयं प्रकाश सत् चैतन्य स्वरूप जो तुम तिनको विषय करने के अर्थ मन आदि कोई भी समर्थ नहीं । हे सौम्य अपने आप अद्वितीय चैतन्य स्वरूप का देखना अरु ग्रहण करना बने नहीं क्योंकि जो देखा अरु ग्रहण कियाजाता है सो जड़ होताहै । ताते तुम जलमें बिलीन हुए लवणवत् अपने आप सत् चैतन्य स्वरूप को सम्यक् यथार्थ अनुभव करो,

सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इतिभूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥

उस सत् चैतन्य अपने आप आत्माके अनुभव करने का स्थान यह शरीरही है परन्तु वो जलमें विलीनहुए लवणवत् इस शरीर इन्द्रिय मन प्राणादिकों में प्रवेशकर तिन विषे विलीन हुआ तारूपसे ही स्थित है ताते निश्चयकर उस सत् चैतन्य अपने आपको अनुभव करो २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सोई इन सर्व्वका आत्माहै अरु यह सर्व्व जिसका अपना आपहै, सोई सत् आत्माहै हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत् सर्व्वात्मा तू है, इसप्रकार जब पिताने कहा तब श्वेतकेतुने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझायके कहिये, पिताने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्रतीसरेका ॥

हे सौम्य जो सत् चैतन्य चक्षुद्वारा सर्वका द्रष्टा है श्रोत्रद्वारा सर्वका श्रोताहै जिह्वाद्वारा सर्वका रसयिता है मनद्वारा सर्वका मनन करनेवाला है, बुद्धिद्वारा सर्व का विज्ञाता है, हस्तद्वारा सर्व का गृहीता है चरणोंद्वारा गंताहै । अरु सुषुप्तिविषे चक्षु कर्ण जिह्वा घ्राण मन बुद्धि आदिक अन्तर बाह्यके करणों के अभाव हुए न द्रष्टाहै न श्रोताहै न घ्राताहै न रसयिताहै, न गृहीताहै न गंताहै न मन्ताहै न बोद्धाहै, सर्व विशेषतासे रहित निर्विशेष केवल विज्ञान घन सर्व अनुभवों का अनुभवी अनुभव रूप महा सूक्ष्म सर्व का सत् आत्माहै —:॥ हे सौम्य ऐसा जो अणुसे भी महा सूक्ष्म सर्व का अपना आप आत्माहै हे श्वेतकेतो ऐसा जो महा सूक्ष्म सत् चैतन्य सर्व्वात्माहै सो महासूक्ष्म सत् चैतन्य सर्व्वात्मा तू है इसप्रकार जब उद्दालक पिताने अपने पुत्र श्वेत-

अथ छान्दोग्यषष्ठप्रपाठके चतुर्दशोखंडः॥ १४॥

यथासौम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वा उदङ्वाऽधरा ङ्वा प्रध्मायिताभिनद्धाक्षआनीतोऽभिनद्धाक्षोविसृष्टः १

केतुको उक्त लवणके दृष्टान्तसे आत्मोपदेश किया तब तिसको श्रवणकर श्वेतकेतु कहताहुआ। श्वेतकेतुरुवाच॥हेपिताजी यदि इसप्रकार लवणवत् सो सत् इन्द्रियों करके अनउपलभ्यमान भी जगत्का मूलसत् उपायान्तर करके प्राप्त होनेको शक्य है, अरु तिसकी प्राप्तिसे कृतार्थताहै अरु उसकी अप्राप्ति से अकृतार्थताहै। ताते हे भगवन् उसकी प्राप्तिका क्या उपायहै। अरु ऐसे निर्विशेष आनन्दघन सत् चैतन्यने ऐसे दुःखमय संसारबिषे क्यों प्रवेश कियाहै, सो आप पुनः मुझको दृष्टान्त द्वारा समुझायके कहिये। इस प्रकार जब श्वेतकेतुने कहा तब पिताकहताहुआ तथास्तु कहताहौं श्रवणकर॥ ३॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके त्रयोदशोखंडः॥ १३॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य जैसे किसी पुरुष (बालक) कोगंधारदेशसे आँख बांध तस्करोंने लेआयके तिस चक्षुबद्धको अतिविगतजन अरण्य में छोड़दिया, तब सो बद्धनेत्र जैसे उस अरण्यमें कभी पूर्व कभी पश्चिम कभी उत्तर दक्षिणको जाता गिरता पुकारता है मैं बद्धचक्षुहौं मेरी आँखबाँध तस्कर यहां ले आये हैं इसप्रकार पुकारने लगा॥ १॥

अथ भावार्थखंड चतुर्दशोमन्त्रप्रथम॥

हे सौम्य जैसे इसलोक बिषे किसी राजकुमार बालक पुरुष को गंधारदेशसे तस्करोंने (अर्थात् गंधारदेशके किसी राजकुमार को चोरोंने) हरणकर पश्चात् उसकी आँखपर पट्टीबांध उसके हाथबाँध अति जनरहित महाभयानक कंटकों के अरण्यबिषे ले

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसम्पद्येतैवमेवेहाचार्य्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति॥२॥

आयके छोड़दिया, तब वो बालक राजकुमार उस अति भयानक जनरहित कंकर कंटकमय अरण्य में अपने नेत्र हस्त बद्ध होने के कारण जैसे दिग्भ्रमको प्राप्तहुआ पुरुष तैसे, कभी पूर्वदिशाको कभी पश्चिम दिशाको कभी दक्षिण उत्तर दिशाकोभ्रमता फिरता गर्त कंटक पाषाणों में गिरता उच्चस्वर से पुकारता रोवता कहताहै हा दैव देखो बड़ा कष्टहै मुझको तस्करोंने गंधार देशसे हरणकर मेरे नेत्र हस्त बाँध इस कंटकमय विगतजन अति घोर अरण्यमें त्याग दिया है अब मैं क्याकरों मेरेनेत्र बद्ध होनेसे कुछ भी सूझता नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसका जैसे बन्धन छोड़ायके किसी करुणावान् पुरुष ने कहा इस दिशा विषे तेरा गंधारदेशहै तू इस दिशाको जा तब वो ग्रामसेग्रामको पूछता पंडित मेधावी हुआ गन्धार देश को प्राप्तहुआ (हे सौम्य) ऐसेही आचार्यवान् पुरुष जानता है तिसका यावत् प्राक्तन (प्रारब्ध) कर्म्म भोग के समाप्त होतानहीं तावत्ही जीवता है पश्चात् तहांही सत्को प्राप्तहोताहै इति २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य प्रियदर्शन श्वेतकेतो, तिसका (जिस राजकुमार को तस्कर गन्धार देशसे नेत्र हस्त बाँध भूषण हरणकर महाविजन अरण्यमें छोडगये) किसी परम करुणावान् दयालु पुरुषने उसका रुदन श्रवणकर उसके समीप आय उसके नेत्र हाथ के बन्धनखोल सावधानकर कहा कि इस उत्तर दिशामें तेरा गंधार देशहै तूइस दिशाको जा (आगे एकग्राम आवेगा उसग्रामसेअपने

ग्रामको पूछके पंडित ,उपदेशवान, मेधावी ,अर्थात् दूसरेने उप-देश किये ग्राम के मार्ग में प्रवेश करनेकी सामर्थ्य वाला, हुआ अपने गंधार देशको प्राप्त होता है। हे सौम्य इसप्रकार आचार्य्य-वान् पुरुष अपने सत् स्वरूप देशको प्राप्तहोताहै। इस से इतर (अनाचार्य्यवान्) जे मूढ बुद्धि पुरुष हैं कि जो देशसे देशान्तर अर्थात् लोकसे लोकान्तर के जाने वाले अविवेकवान् हैं सो अपने उक्त देशको प्राप्तहोते नहीं। हे श्वेतकेतु जैसे तुम्हारे प्रति यह दृष्टान्त वर्णन कियाहै तैसेही अब दार्ष्टांतको भी श्रवणकरो, हेसौम्य जैसे स्वविषय रूपगंधार देशसेपुरुष तस्करोंकरके वद्धनेत्र अविवेकी क्षुधा तृषावान् व्याघ्र तस्करादि अनेक भय अनर्थ व्रात युत अरण्यमें प्रवेशको पाय दुःख करके अति आर्त पुकारनेलगा, मैं इस बन्धन से छूटनेकी इच्छा वाला हौं, इस प्रकार उस दुःखितकी पुकारको किसी एक दयालु पुरुषने श्रवणकर उसके निकट आय बन्धन छोड़ाय उसको स्वदेशका मार्ग बताया तब वो उस मार्ग से चल अपने गंधार देशको प्राप्तहो सर्व बन्धनों से निवृत्त परम सुखी होता हुआ॥ हे सौम्य इस दृष्टान्त प्रमाणही जगत् के आत्मा सत् चैतन्य स्वरूप रूप गंधारदेश से चिदाभास जीवको हरणकर तेज जल अन्नादिमय देहरूप अरण्य में जो कि वात पित्त कफ रुधिर मेद मांस अस्थि मज्जा शुक्र कृमि मूत्र पुरीष, इत्यादि कंकर कंटक गर्त पाषाण सिंह सर्प वृश्चिकादि बिषधरों करके पूर्ण महादुःखका स्थान, अरु शीत उष्णादि अनेक द्वंद्वरूप उपदुःख करके युक्त है, तिस देहारण्यमें पुण्य पाप रूप तस्करों ने उसके विवेक रूप चक्षुपर मोहरूप वस्त्रकी पट्टीबांध पुनः भार्य्या पुत्र पशु बान्धव धनादि दृष्टादृष्ट अनेक विषयों की तृष्णा रूपा पाश से उसके हाथ बांध डालदियाहै। तब वो उक्त अरण्य में प्रवेश पाय पुकारता है कि मैं अमुकेका पुत्रहौं मेरे एतने बांधव हैं मैं कुटुम्बीहौं सुखीहौं दुःखीहौं मूढहौं पंडित हौं धार्मिकहौं, जन्माहौं मरताहौं जीर्णहौं पुत्र मेरामरगया धन

मेरा नष्ट होगया हा मैं माराजाता हौं मैं अब कैसे जीवौंगा क्या मेरी गति होगी कौन मेरा रक्षक है। हे सौम्य इस प्रकार अनेक शत सहस्र अनर्थ रूप जाल में फँसा हुआ ,पक्षीवत्, चिल्लाता पुकारता रोवता फिरता है। हे पुत्र इसप्रकार यहजीव देहरूप अति दुर्गम अरण्य में प्रवेशकर उक्त दुःखोंकरके दुःखित होय पुकारता फिरताहै तब कोई एक इसके पुण्य अतिशयकरके कोई एक दयालु पुरुष जो सत्ब्रह्म आत्मा का जानने वाला सर्व बन्धनों से मुक्त ब्रह्मनिष्ठ है सो उसके दीनतामय रुदन को श्रवण कर उसके समीप आय धीरज देताहुआ तब उसब्रह्मवेत्ताकी दयाकरके देखाये संसार विषय दोष दर्शन मार्ग तब संसार विषय से विरक्त हुआ ,अर्थात् गुरु कृपासे जब संसार के विषयों को परिणामी दुःखरूप जाना तब तिनसे विरक्तहो कर्म्म उपासनादि सर्व ओर के भ्रमणे से निवृत्त हुआ, अब उसको परम दयालु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य ने कहा कि हे पुत्र तू संसारी पुत्रत्वादि धर्म्मवान् नहीं॥प्रश्न॥ तब मैं कौन हौं। हे पुत्र जोसत् चैतन्य सर्वात्माहै सो तू है। इसप्रकार आचार्य्य से उपदेश पाय अविद्यात्मक मोहपाशसे मुक्त हो गंधार देशके पुरुषवत् अपने सत् चैतन्य आत्माको प्राप्तहो अनिर्वाच्य सुखको प्राप्त होताहुआ॥:—

हे भगवन् अब इस दार्ष्टान्तको प्रकारान्तर करके सविस्तर कहिये कि जिसकरके मुझ अल्पज्ञकी समझमें सम्यक् प्रकार आवे तब मैं अपने सत् आत्मपद को साक्षात् पाय निर्भय होवों॥ उत्तर॥ हेसौम्य अब मैं तेरेकहे प्रमाण इस दार्ष्टान्तको प्रकारान्तर से सविस्तरकहताहौं जो यहनगर राजा बालक चोर बन दयालु आदि कौन कौन हैं सो सर्व सावधानहोके श्रवणकरो। हे सौम्य यह सर्व तेरे निकटही रहते हैं। हे पुत्र यह शरीररूप गंधार देश है तिसविषे सुषुप्तिरूप नगर है तिस नगरविषे सत् चैतन्य देव राजा है तिसका तू चिदाभासरूप बालक है अरु पाप पुण्य रूप वा संस्कार अभ्यासरूप दो तस्करहैं, सो सुषुप्तिरूप नगर

बिषे अन्तर्धान हुए रहते हैं । हे सौम्य जैसे नगरके बाह्य कुछ अवकाश (मैदान) होताहै तिसके पश्चात् वन होताहै, तैसेही यहां सुषुप्तिरूप नगरके बाह्य स्वप्नरूप अवकाश है तिसके आगे जाग्रत्रूप बड़ा भयानक वन है तिस वन बिषे कोई एक ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य निर्भय हुआ रहताहै, अरु चिदाभासरूप बालक की आंखपर अज्ञानरूप पट्टी बँधी है, अरु अहंब्रह्मास्मि, भावना रूप भूषण है, नाना प्रकार के विषयों की तृष्णारूपा रज्जु है तिस करके उस बालकके हस्त दृढ़ बँध रहे हैं। हे सौम्य अब श्रवण करो। हेपुत्र पाप पुण्यरूप वा संस्कार अभ्यासरूप चोरों ने तमोगुणरूप अन्धकारको पाय सुषुप्तिरूप नगरसे चिदाभास रूप राजकुमार बालकको हरण कर लिया है, अरु उक्त चोरों ने उस बालकके विवेकरूप चक्षुपर को हम भावनारूप लक्षणवान् अज्ञान रूपा पट्टी बांध दियाहै, अरु स्वर्ग स्त्री पुत्र धन पशु ग्राम आदिकों की दृढ़ कामनारूपा रज्जु करके इस बालक की मुश्कें बांधलिया है जिस करके वो बालक अपने नेत्रों पर की अज्ञानरूपा पट्टी खोल सक्ता नहीं। इसप्रकार उक्त चोरों ने इस बालकको बाँध फेर इसके अहंब्रह्मास्मि भावनारूप भूषण उतार लके इस बालकको जाग्रत्रूप महाघोर अरण्यमें ले आयके छोड़दिया है ॥ हे सौम्य सो यह जाग्रत्रूप बन कैसाहै कि जिस बिषे सहस्रावधि प्रकारके अनेक वृक्षहैं। हेसौम्य शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध कर्म्म उपासना स्त्री पुत्र मित्र धन पशु ग्राम आदि यह सर्व इस जाग्रत्रूप अरण्यके उत्तम सुखदायक वृक्षहैं, सो एक एक जाति के असंख्य असंख्य वृक्षहैं, सो सर्व फलदायक छायावान् वृक्षहैं, तथापि वो रागद्वेषरूप कराटकों करके युक्त हैं। अरु काम क्रोध लोभ मोह मत्सरता आदि जो आसुरी संपदा लक्षणरूप वृक्षहैं सो कीकर करोंजुआ कटहरी करील आदिकों के केवल कटकमय वृक्षवत् महा दुःखदायी वृक्षहैं, हे सौम्य यह जाग्रत्रूप अरण्य उक्त वृक्षोंकी बाहुल्यताकरके अति

ही सघन गह्वर होरहा है इसका पारावार पायाजाता नहीं । अरु इस अरण्य विषे अनेक प्रकारके तूलाहंकाररूप बड़े बड़े पाषाण पड़ेहुए हैं अरु अनेक कामनारूप गर्त्त हैं तिनविषे अनेक प्रकारकी चिंतवनारूप बिषधर जन्तु पड़ेहुए हैं, तीनों गुणरूप तीन नदियां हैं। हे सौम्य इस अरण्यबिषे मूलाहंकाररूप बड़े मत्त गजराज फिरते हैं, मृत्युरूप सिंह गर्जता है, अरु मनुष्यके रुधिरको पान करने वाले चिन्तारूप भालु फिरते हैं, खांसीरूप वानर उछलते हैं ज्वर प्रलापरूप गीदड़ बोलते हैं तरुणतारूप भील पुण्योंको लूटते हैं, जरारूप पिशाचिनी फिरती मुंहफाड़ के सन्मुख दौड़ती आवतीहै। हेसौम्य उक्त प्रकारके वृक्ष कंटक पाषाण जीव जन्तुओं करके यह बन पूर्ण होरहाहै इनबिना इस का कोई कोना खाली नहीं, यह बन श्रावण भादोंकी नदियों-वत् पूर्ण होरहाहै। हे सौम्य इस बन बिषे, जो अनेक प्रकारके कर्म्म उपासना के भेद हैं सोई छोटे बड़े अनेक मार्ग हैं तिन मार्गों विषे अनेक प्रकारके विधि निषेध कर्त्तृत्व अकर्त्तृत्वादि कांटे पड़ेहैं चलनेवालों को चुभते हैं। ऐसा जो यह जाग्रत्‌रूप महा भयानक बन है तिसविषे इस अतिसुकुमार राजकुमार चिदाभा-सरूप बालककी विवेकरूपा आँखोंपर अज्ञानरूपा पट्टीबाँध पाप पुण्य रूप तस्करों ने डालदिया है, सो वो राजकुमार बालक इस जाग्रत्‌रूप घोर अति भयानक अरण्य विषे अपने नेत्र अरु हस्त बद्धहोने के कारण अतिही खेदको प्राप्त हुआ है। हे सौम्य उक्त अरण्य विषे बद्धनेत्र जो बालक सो जिधर को जाता है तिधरही उसको उक्त कंटक चुभते हैं उन कंटकों से अपने को बचाय सक्ता नहीं नेत्रबद्ध होने के कारण कभी शब्दों के वृक्षपर गिरता है कभी स्पर्शों के कभी रूपों के कभी रसों के कभी गंधों के वृक्षोंपर गिरता है तब वहां उसको रागद्वेषरूप कांटे चुभते हैं तब कुछ क्लेशित होता है। अरु उनकी सुखरूप छाया फलको पाय किंचित् हर्षित भी होता है, अरु वहां से जब दुःखितहोय

चलता है तब कभी कामरूप करोंजुयेपर कभी क्रोधरूप कीकर पर कभी लोभरूप करीलपर कभी मोहरूप कटहरीपर, इस प्रकार सुख रूप फल छाया से रहित केवल कंटकमय महा दुःखदायी वृक्षोंपर गिरता है तब अति पीड़ाको पाय पुकारके रोवता है हा दैव अब क्या करैं किधर जावें इस दुःख से कैसे बचें। इत्यादि पुकारता है। हे सौम्य उक्त कंटकों जन्य पीड़ाके आगे इन जीवों को न तो इसलोक का सुख है न परलोक का सुख है (अरु जो यह सुख मानते हैं सो इनका अविवेक है क्योंकि नाशवान् वस्तु बिषे वास्तव करके सुख कदापि होवे नहीं) जहां जाता है तहांही खेदको पावता है। हे सौम्य पुनः वो बालक उक्त अरण्य में जब आगे को बढ़ता है तब नेत्र बद्ध के कारण अहंकाररूप पाषाणोंपर गिरता है उनकी चोटों से मस्तक फूटता है तब और भी पुकारके रोवता है, फेर आगेको चलता है तब कभी तृष्णारूप गर्तमें गिरता है तब वहां उसको धन पुत्र स्त्री क्षेत्र आदिकों की अनेक चिन्तारूप विषधर जीव काटते हैं तब तिस करके उसके अन्तर बड़ी जलन अरु पीड़ा उत्पन्न होती है बड़ाही दुःख पावता है। अरु जिनके अर्थ यह चिन्ता करता दुःखित होताहै, तिनसे जब वियोग पावताहै तब अतिक्लेशित होय उच्चस्वरसे रोवता हाय हाय करताहै, उस अरण्यमें नेत्र बद्धहोनेके कारण किसीको देखताहै नहीं जिधर जाताहै तिधर क्लेशही पावताहै॥ हेसौम्य ऐसे क्लेशके समय काकतालीय न्यायवत् अकस्मात् ईश्वर कृपा से वा उसके महान् पुण्यों की सहायतासे कोई एक परमदयालु ब्रह्मवेत्ता आचार्य उस अरण्य में आय निकलता है सो आचार्य्य कैसा होता है जिसके नेत्र खुले हैं सर्व बन्धनों से मुक्तहुआहै। हे सौम्य जब वो आचार्य उस बालकका दीनतामयरुदन श्रवण करता है तब उस बालकको अपने निकट बोलाय वा आप उसके पासजाय उसको धैर्य्यदेके कहताहै कि हे बालक अबतू भय मतकरै। हे सौम्य इस प्रकार

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यं सऽआत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥

वो आचार्य्य प्रथम उस बालकको धैर्यदे अपने निकट बैठाय पश्चात् उसकी आँखों से पट्टी खोलताहै अरु उसके और बंधन भी खोलता है तब प्रथम उस बालक को उक्त अरण्य के सर्व क्लेशस्पष्ट भानहोते हैं तब वो उनसे दृढ़ वैराग्यवान्होताहै तदनन्तर वो आचार्य उस राजकुमार को श्रवण रूप मार्ग देखाय कहताहै कि हे प्रियदर्शन अब तुम अपने मननरूप चरणोंकरके धीरे धीरे इस मार्ग से चले जावो इसमार्ग को छोड़ना नहीं हे पुत्र जब तुम आगे चलोगे तब तुमको एक निदिध्यासन रूप ग्राम मिलेगा तहां तुम कुछ काल विश्राम करना वहां से तुमको अपने सत्चैतन्य रूप पिता राजाका ग्राम देखाई देगा फेर तू निदिध्यासन रूप ग्राम से आगे बढ़ अपने साक्षात्कार रूप नगर को प्राप्तहो अपने पिता के सोहमस्मि भावरूप राजसिंहासन पर बैठ इन्द्रादि सर्व राजाओं का महाराज होय सर्व को अपनी आज्ञा बिषे चलावना–:॥ हे सौम्य वो आचार्यवान् पुरुष कि जिसके नेत्रादिकों के बन्धन आचार्य ने सम्यक् प्रकार खोल श्रवण रूप मार्ग पर चलाय निदिध्यासन रूप ग्राममें ठहराय पश्चात् उसको उसके सत्चैतन्य रूप पिता के पास पहुंचाय निर्भय किया है । तिसका जिन कर्म्मों ने शरीररचके अपना भोगदेना है उन कर्म्मों को अपना फल देके समाप्तहोने पर्यन्त जीवनमुक्तहुआ जीवता है, प्रारब्ध के क्षीणहुये शरीरसे उत्क्रमण न होके "तत्रैवसमवलीयन्ते" जहां हैं तहांही अपने बिम्बरूप सत् आत्मामें अभेद एक विदेह मुक्त होताहै २ ॥

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके पंचदशो खंडः ॥ १५ ॥

पुरुषᳬं सौम्ये तो पतापिनं ज्ञातयः पर्य्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजासे तेजः परस्यांदेवता यां तावज्जानाति १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह महा सूक्ष्म है सोई यह सर्वका आत्मा है अरु यह सर्व जिसका अपना आपहै सोई सत्आत्माहै, हे श्वेतकेतो सोई सत्आत्मा तू है, इस प्रकार पिताने कहा तब श्वेतकेतुने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिता ने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य जिस महा सूक्ष्म सत् चैतन्य का यह सर्वअपना आपहै अरु जो इन सर्व का सत् आत्मा है, अरु आचार्य्यवान् पुरुष जिसको पाय पुनरावृत्ति से रहित सोई रूपहोते हैं, अरु अज्ञानी जिसको प्राप्तहोके भी पुनः इस संसाररूप अरण्यको प्राप्त होतेहैं, हेश्वेतकेतो सो सत्आत्मा तू है। इसप्रकार जब पिता ने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा हे भगवन् आचार्यवान्पुरुष जिस क्रम से उस सत् चैतन्य को प्राप्तहोते हैं सो मुझको पुनः भी दृष्टान्त द्वारा समझाय के कहिये, पिताने कहा कहताहौं श्रवणकर ३ ॥

इतिछान्दोग्येषष्ठप्रपाठकेचतुर्दशोखंडः १४ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य पुरुष जब ज्वरादि रोग करके तपायमान होता है तब उसकी ज्ञातिके बाँधवलोक उससे पूछते हैं तू हमको जानता है तू हमको जानता है (वो कहताहै मैं जानताहौं सो तब

अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राण स्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति २ ॥

तक कहता है) यावत् उसकी वाणी मनविषे प्राप्त होती नहीं, मन प्राण विषे प्राप्त होता नहीं, प्राण तेजविषे प्राप्तहोता नहीं, तेज सत्‌रूप पर देवता प्राप्त होता नहीं तावत् वो जानताहै १ ॥

भावार्थ खंड पंचदशम मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य जब इस पुरुष का मरणकाल निकट आवता है तब उसके शरीर विषे ज्वरादि सर्व रोग एकत्र होय उसको तपावते (व्याकुल करते) हैं तब उसकी ज्ञाति के वा पिता पुत्रादि परिवार उसके निकट आय पूछते हैं कि हे भाई तू हमको जानताहै हमतेरे कौन हैं, तब वो कहता है हां मैं तुमको जानताहौं तुम हमारे अमुक २ हो । हे सौम्य इस प्रकार वो मरणशील मुमुर्षुपुरुषकव कहताहै कि यावत् उसकी वागादि इन्द्रियांमनविषे नहीं प्राप्तहोतीं, अरु मन प्राणविषे नहीं प्राप्तहोता, अरु प्राण तेजविषे नहीं प्राप्त होता अरु तेज सत्‌पर देवता विषे नहीं प्राप्त होता तावत् जानता है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, जब उस मुमुर्षु पुरुषकी वाग् मनविषे प्राप्तहोती है मन प्राणविषे प्राण तेजविषे तेज पर देवताविषे प्राप्तहोताहै तब जानता नहीं २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो संसारी जीवों का मरण क्रम है सोई विद्वानों का भी सत्सम्पत्ति क्रम है, तब अविद्वान् संसारियों से विद्वान्‌विषे विशेषता कुछ न हुई ॥ उत्तर ॥ हेसौम्य मरणसमय विद्वान् अविद्वान् दोनोंकी सत् पर्य्यन्त गति समान है, परन्तु जो अज्ञानी संसारी पुरुषहैं सो मरणकाल समय सत् को प्राप्तहुए भी वहां से उठके अपने पूर्व के संस्कार अभ्यास

बश व्याघ्र सिंह वृकादि भाव वा देव मनुष्यादि भाव वा कीट पतंगादि भावको प्राप्त होते हैं। अरु विद्वान् तो वेदवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ शास्त्राचार्य्य के उपदेश जन्यज्ञानरूप दीपक करके प्रकाशित सत् चैतन्य ब्रह्म आत्माविषे प्रवेश पाय पुनः वहांसे फिरते नहीं। इसप्रकारका सत्सम्पत्ति क्रमहै॥ः— हे सौम्य जैसे मरण समय अज्ञानी की वागादि इन्द्रियां मनविषे जाती हैं, तैसेही ज्ञानीकी भी वागादि इन्द्रियां मनविषे जाती हैं। अरु जैसे अज्ञानियों का मन प्राणविषे जाताहै, तैसेही ज्ञानी का भी मन प्राणविषे जाताहै। अरु जैसे मरणके समय अज्ञानी का प्राण तेजविषे जाताहै, तैसेही ज्ञानीका भी प्राण तेजविषे जाताहै। अरु जैसे अज्ञानी का तेज सत्विषे जाताहै, तैसेही ज्ञानीका भी तेज सत्विषे जाताहै॥ हे सौम्य इसप्रकार मरण समय अज्ञानी ज्ञानीकी गति सत् पर्य्यन्त समान है। परन्तु हेसौम्य ज्ञानी अज्ञानी का यह भेदहै जो ज्ञानी पुरुष ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य से उपदेशपाय सत् असत्को विचार असत्यको त्याग सत्याभिसन्धी हुआ यावत् प्रारब्ध तावत् जीवताहै पश्चात् देहत्यागान्तर वो सत्को प्राप्तहोताहै सो ज्ञानी सत्विषे गयाहुआ फेरके आवता नहीं॥ अरु यह अज्ञानी पुरुष आचार्य के उपदेश अरु सत्यासत्य के विचारसे रहितहै, अतएव वो असत् काम कर्म्मोंके संस्कार अपने साथले सत्विषे जाताहै सो उसके असत् काम कर्म्मोंके संस्कारही सत्विषे प्राप्तहुएको भी खींच लेआवते हैं। अरु इस अज्ञानी पुरुषोंके रज्जुवत् कंठका बन्धनहोय पशुवत् लोक परलोक विषे भ्रमावे है। हे सौम्य यह अज्ञानी पुरुष व्याघ्र सिंहादि जैसे शरीरोंके अहंकार अभ्यासको अपने साथ ले जाते हैं सो अहंकार अभ्यासरूप उपाधिही उनको सत् से फेर ले आय अपने अनुसारही पुनः व्याघ्र सिंहादि वा देव मनुष्यादि वा कीट पतंगादि शरीराभिमान साथ जोड़ उन शरीरों के अनुसार क्रिया करावे हैं॥ हे सौम्य जैसे दो डुली लवणकी तिनमें एक घृतसाथ मिली

चिकनी होवे अरु दूसरी रूखी होवे, उन दोनों डलियों का जल विषे डालिये तहां जो घृतसाथ चिकनी हुई है सो तो ज्यों की त्यों निकस आवती है, अरु जो रूखीहोती है सो जल विषेगयी जल रूपहोती है । हे सौम्य सो लवणकी दोनों डली जलका समान कार्य्य हैं परन्तु जो घृतादि चिकनाई साथ मिलके चिकनी हुई है सो अपने कारण जल विषे गईहुई भी ज्यों की त्यों निकल आवती है क्योंकि वो चिकनाई उसको कारणसाथ एकहोने देती नहीं । अरु जो लवणकी डली रूखी होती है सो चिकनाई रूप उपाधिके धर्म से रहित हुई जल विषे गई जलरूपही होती है ॥ हे सौम्य तैसेही यह ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीव सत् चैतन्य का आभासरूप समान कार्य्य हैं, परन्तु जो आभास से बुद्धि रूप उपाधिके धर्म्म काम कर्म्मादि रूप चिकनाई को अपने विषेले अपने सत्रूप कारण विषे जाते भी हैं, तथापि वो उक्त चिकनाई करके युक्त होनेसे अपने कारण विषे गयेहुए भी फेर निकस आवते हैं । अरु जो पुरुष आचार्य्यसे उपदेश पाय विचार रूप अग्निकरके नाना कामनारूप चिकनाई को अशेष अभाव करके अपने कारण सत् विषे जाते हैं सो पुरुष एकबार सत् विषे गये हुए फेरकेआवते नहीं । हे सौम्य इसप्रकार सत्सम्पत्ति का क्रम है ॥ हे सौम्य यहां जो श्रुतिने कहा है कि "अथ न जानाति" सत् चैतन्य को प्राप्तहोके जानता नहीं, तिस करके सत् चैतन्य देव को ज्ञानरूप क्रियासे रहित केवल चिन्मात्र ज्ञानस्वरूपही लखाया है । उक्त श्रुतिके श्रवण से सत् विषे जड़त्वकी भ्रान्ति करनी नहीं क्योंकि उक्त भ्रांतिका अविचारित संभव होता है, जो यह जीव सत्को प्राप्तहोके भी कुछ जानता नहीं ताते प्रतीत होता है जो सत् जड़है । परन्तु हे सौम्य वास्तव करके सत् चैतन्यमें ज्ञानरूप क्रियाके कारण जे मन बुद्धि आदिक तिनका अभाव है ताते सुषुप्ति आदि उक्त तीनों स्थानों विषे उक्त करणोंके अभाव हुए शुद्ध निर्विशेष सत् चैतन्य परदेवको ज्ञानरूप क्रियाके कर्तृत्व

का, अरु ज्ञानके विषयत्वपनेका असंभवहै। एतदर्थ शुद्ध अद्वितीय सत् चैतन्य केवल ज्ञानरूप अस्तिमात्र तत्त्वहै। इसप्रकार विचार निश्चय अभ्यास अनुभव करो--॥ शंका ॥ हे भगवन् कोई एक पुरुष श्रुति प्रमाण ऐसाभी कहते हैं जो "शतश्चैकाच हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" मस्तककी सुषुम्णा नाम्नीनाड़ीद्वारा जो शरीरसे उत्क्रमणकरते (जाते वा निकलते) हैं सो सत्को प्राप्तहोते हैं, अरु आप मरण समय सर्व जीवोंको सत्की प्राप्ति समान कहतेहो, अतएव अब यहां जैसा होवे तैसा कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य वो पुरुष असत्य कहते हैं। हे सौम्य उक्त नाड़ी के मार्ग से योगी प्रणव के उपासक समाधि के करने वाले शरीर त्याग सत्यलोक को प्राप्तहोते हैं वहां ब्रह्माके मुखसे ज्ञानोपदेश पाय मोक्ष होते हैं। उनका जो सत्यलोक रूप फलहै सो देशकाल के निमित्त वालाहै उन योगियोंने अपने अर्थ देश कालके निमित्त से प्राप्त होने वाला सत्यलोकरूप फल अभिसन्धान किया है, अतएव वो अपने उक्त नाड़ी रूप मार्गसे जानेवाले हैं, जो वस्तु देशकालके व्यवधान वाली होती हैं सो असत्होती हैं तिनका अनुसन्धान करनेवाले असत्याभिसन्ध होते हैं। अरुजो सत्आत्मानुसन्ध ब्रह्म आत्माके अभेददर्शी हैं तिनको जो स्वस्वरूप की प्राप्ति रूप फल सो देशकालके व्यवधानसे रहितहै ताते ज्ञानवान् का शरीर से उत्क्रमण बने नहीं। क्योंकि उत्क्रमण का निमित्त जे अविद्या काम कर्म सो उसने ज्ञानाग्नि करके निःशेष भस्म किया है, ताते उसको शरीरसे उत्क्रमण होने की अप्राप्ति है। वो ज्ञानवान् गमनकी सर्व उपाधि के अभाव से जहां है तहां सत्रूपही होताहै। वो अविद्या काम कर्मादि सर्वको ज्ञानाग्निसे भस्मकरने वाला विद्वान् नदी समुद्रवत् सत्रूप समुद्रको प्राप्तहो सत्रूपही होता है। तथाच। "यथा नद्यःसमुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय [illegible] परात्परंपुरुषमुपैति दिव्यम्" २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एवमा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहा है सोई यह सर्वका आत्मा है अरु यह सर्व जिसका अपना आपहै सोई सत्यहै सो आत्मा है हेश्वेतकेतो सोई सत् सर्वात्मा तू है, इसप्रकार पिताने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार मरण के समय महासूक्ष्म सत् चैतन्य पर्य्यन्त सर्व जीवोंकी गति समानहै, परन्तु जिस सत्विषे गया हुआ अज्ञानी ज्योंका त्यों निकल आवताहै अरु ज्ञानी जिसविषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत् चैतन्य विज्ञानघनही होता है, सोई अणुवत् महासूक्ष्म सर्वका सत् आत्माहै हेश्वेतकेतु सोई सत् सर्व्वात्मा तू है । इसप्रकार जब पितानेकहा तब श्वेतकेतुने कहा । हेभगवन् सो महासूक्ष्म सत् आत्मा मैं हीं हौं, अस्तु । परंतु हे भगवन् मुझको पुनः एक संशयहुआ है कि उस महासूक्ष्म सत् चैतन्यविषे यह ज्ञानी अज्ञानी सर्वजीव समान प्राप्त होते हैं तहां ज्ञानी पुरुष तो उस सत्विषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत् रूपही होताहै । अरु अज्ञानी पुरुष उसको प्राप्तहोकेभी पुनः वहां से निकस इससंसारके भ्रमविषे भ्रमते हैं तिसके कारणको जानना मैं इच्छताहौं, अतएव मेरे इससंशयकीनिवृत्ति के अर्थ पुनः भी आप दृष्टान्त द्वारामुझको समझायके कहिये । इसप्रकार जब श्वेतकेतुने प्रश्न किया तब उद्दालकने कहा तथास्तु, हे सौम्य तेरे संशयकी निवृत्तिके अर्थपुनः कहताहौं सावधानहोके श्रवणकर३॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके पंचदशोखंडः ॥ १५ ॥

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके षोडशोखंडः ॥ १६ ॥

पुरुषꣳ सौम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्त्ता भवति तत एवानृतमात्मानम् कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्द्धाय परशुं तप्तं प्रति गृह्णाति सदाह्यतेऽथ हन्यन्ते ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, चौर्य्यकर्म के कर्त्ता पुरुष को 'राजकीय पुरुष (सिपाही), हाथ पकड़के लेजाता है (तब वो कहताहै मुझकोक्यों लेजातेहौ, तब वो कहते हैं) तैंने इसकी चोरी कियाहै, वो कहता है मैंने चोरी नहीं किया, तब उसकी परीक्षा के अर्थ परशु (लोहमयपिंड) को तपावते हैं, यदि वो उस चौर्य्य कर्मका कर्त्ता होताहै तब वो अपने आत्माको असत् करताहै, तब वो अनृताभिसन्ध चोर पुरुष अनृतकरके अपने आत्माको अन्तर्द्धाय उस तप्त लोह पिण्डको ग्रहण करताहै तब वो जलताहै तब राज पुरुष उसको मारते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ खंडषोड़शवें मन्त्र पहिले का ॥

हे सौम्य, किसी एक धनवान् पुरुषके यहां तस्करने चोरी किया परन्तु उस धनी पुरुषने उसको चोरी करते देखानहीं तथापि चोरके भ्रमसे उस धनीने वा राजकीय पुरुष (सिपाही) ने उन दोनों पुरुषों के हाथ बाँध राजाके पास लेचलने को उद्यतहो उनसे कहने लगे कि जो तुमने इसका धन चोराया है सो देदेवो तब उन दोनोंने कहा हे भाई हमने इसका कुछ भी चोराया नहीं। तुम इसके कहनेसे हमको बन्धन में क्यों करते हौ, तब पुनः राजपुरुषोंने कहा कि तुमने चोरी कियाहै हे

सोम्य उन दोनों पुरुषों के मध्य (कि जिनको चोरके भ्रमसे पकरलिया) एक चोर था अरु दूसरा अचोर (सत्य) था परन्तु चोरके भ्रमसे पकड़ दोनोंको लिये, तब पुनः राजकीय पुरुषने कहा कि यदि तुमने चोरी नहीं किया तथापि हम तुमको तुम्हारी परीक्षाके अर्थ राजाके पास लेजावेंगे जो तुम उस परीक्षा में सत्य ठहरोगे तो बन्धनसे मुक्त होवोगे अरु जो चोर ठहरोगे तो ताड़ना अरु दंड पावोगे। ऐसा कह राजकीय पुरुष उन दोनोंको राजाके पास लेगये अरु उनके साथ वो धनी पुरुष भी गया, उन राजपुरुषों ने उन सर्व को राजा के समक्ष खड़े करदिये तब उस धनी पुरुषने कि जिसका धन चोरोंने हरण किया था राजासे विनय किया कि हे राजन् इन पुरुषों ने हमाराधन हरणकियाहै परन्तु पूछने से हमको यह बतावते नहीं अतएव आप इनसों पूछिये। तब राजाने उन दोनोंमें से एकको प्रथम पूछा कि तूने इसका धन चोराया होय तो हमारे समक्ष सत्य सत्य कहदे, तब उसने कहा हेराजन् मैंने इसका कुछ भी चोराया नहीं अरु हम जानते भी नहीं जो चोरी क्या होती है, तब उससे राजाने पुनः कहा कि अब तू सत्य क्यों नहीं कहता जो सत्य सत्य न कहेगा तो तुझको दंडहोगा, ताते जैसा होय तैसा कहदे, तब पुनः भी उसने वोही उत्तर दिया परन्तु था वो चोर राजाके समक्ष अपने चौर्य्य कर्म को छिपावता था। तब राजाने अपने भृत्यों को आज्ञा किया कि हे भृत्यो यह चोर है इसप्रकार कहने का इनका स्वभाव ही होताहै अतएव अब इसके हाथपर रखने के अर्थ एक लोहमय पिंडको तपावो जब वो लोह पिंड इसके हाथपर रक्खा जावेगा तब यह चोर वा सत्य जैसा होगा तैसा आपही प्रकट हो आवेगा, इस प्रकार जब राजाने कहा तब राजाकी आज्ञासे भृत्य लोग लोह पिंड तपावने लगे अरु पुनः भी उन राजपुरुषों ने उस चोर से कहा कि अब भी तू अपने किये चौर्य्य कर्म्म को राजा के समक्ष कह दे न तु राजा तुझको

अथ यदि तस्याकर्त्ता भवति तत एव सत्यमात्म
कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्द्धाय पर
तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दाह्यतेऽथ मुच्यते २ ॥

दंड देवेगा, तब उस चौर्य्यकर्म्म के कर्त्ता चोर पुरुष ने क
कि जो तुमको राजा की आज्ञा होय सोई करो हमने तो चो
त्रिकाल में भी किया नहीं। हे सौम्य इस प्रकार कहके
चोर पुरुष अपने अन्तर विचारने लगा कि जो यह सर्व
मुझको धमकावते हैं सो इसलिये धमकावते हैं जो यह कि
प्रकार कहदेवे सो इनका स्वभावही होता है, अरु यह जो मे
अर्थ लोह पिण्ड तपावते हैं सो मेरे हाथपर धरेंगे नहीं क्यों
कोई कोई राजा दयालु भी होते हैं, ऐसा विचार वो चोर पुरु
अपने मनमें कहता हुआ। हे सौम्य जो पुरुष सत्य होता है
अपने मनमें उक्त प्रकार का विचार कर अनृताभिसन्ध हो
नहीं वो अपने सत्यके आश्रय निर्भय रहता है। हे सौम्य ज
उस चोर पुरुषने चोरीको स्वीकार (कबूल) न किया तब उ
राजा ने लोहका पिण्ड अग्नि बिषे सम्यक् प्रकार तपवाय उ
चोरके हाथ में तृणरखवाय सहित मन्त्रके वो गोला रखवा
तब वो अग्नि करके तप्त लोह पिण्ड उस अनृताभिसन्ध चो
पुरुष के हाथ को जलाय आप पृथिवी पर गिरपड़ा, तब उ
राजा ने चोर के हाथ जले देख उसको चोर निश्चयकर औ
भी ताड़ना करवाय कारागार में डाल उसका गृहधनादि स
लूटलिया, अरु अन्य लौकिक पुरुषों ने भी उस अनृताभिसन
चोर पुरुष के निन्दित कर्म्मको देख बहुत से धिक्कारी के वच
कहे ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हुआ सत्य करके अपने आत्मा में अन्तर्द्धाय तप्त लोह पिण्ड को ग्रहण करता है तब सो जलता नहीं तब उसको छोड़ देते हैं २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

हे सौम्य जो सत्य पुरुष है, कि जिसको चोर के भ्रम से पकड़ लिया है, अरु जो चौर्य कर्म्मका कर्त्ता होता नहीं तिसको भी वो राजा चोरवत् धमकाय के पूछता है कि जो तैंने इस धनीका धन चोराया होय तो हमारे समक्ष सत्य सत्य कह दे नतु तेरे हाथमें भी लोहपिंड तपायके रक्खा जावेगा। तब वो सत्यपुरुष कहता है कि मैंने तो चोरी किया नहीं अरु मैं जानता भी नहीं जो चोरी किसको कहते हैं। इसप्रकार जब वो सत्यपुरुष कहता है तब उसकी परीक्षाके अर्थ वो राजा लोहमयं पिंडको अग्निविषे सम्यक् प्रकार तपायके उसके हाथपर रखवावता है। हे सौम्य वो राजा जब उस सत्यपुरुष के हाथ पर रखनेके अर्थ लोह पिंडको तपवावताहै तब वो सत्याभिसंध (सत्यको अनुसंधान करनेवाला) पुरुष अपने चित्तविषे बिचारता है कि यह राजा एक तो क्या किन्तु शतलोह पिंड तपाय के भी मेरे हाथमें धरेगा तो भी यह अग्निदेव मुझको जलावने का नहीं क्योंकि मैं सत्यहौं मैंने चोरी किया नहीं। इसप्रकार वो सत्यपुरुष सत्याभिसन्ध हुआ अपने आपको सत्य करता है, अरु वो राजा उसके हाथपर भी चोरवत् तप्तलोह पिंड धरवावता है, तब वो सत्यधर्म्मा अग्निदेव उस सत्य पुरुषको जलावतानहीं, अर्थात् वो सत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोह पिंडकरके जलता नहीं, तव उस सत्य पुरुषको राजा छोड़देता है। अरु अन्य पुरुष भी उस सत्याभिसन्ध पुरुषकी प्रशंसा करतेहैं। हे सौम्य उसतप्त लोह पिंडका उन सत्याभिसन्ध अरु असत्याभिसन्ध दोनों पुरुषों के हस्ततल (हथेली) को समान स्पर्श होते सन्ते भी उस चौर्य कर्म के कर्त्ता असत्याभिसन्ध पुरुषका हाथ जलताहै

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्स
त्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्यवि
जज्ञाविति विजज्ञाविति ३ ॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके षोड़शो खंडः १६ ॥
इतिछान्दोग्योपनिषादिषष्ठप्रपाठकः ६ ॥

नतु सत्याभिसन्ध को ' अर्थात् उस सत्याभिसन्ध पुरुषका हाथ अग्निदेव जलावता नहीं २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जैसे नहीं जलता, सोई महासूक्ष्म सर्वका आत्मा जिस का यह सर्व अपना आप है सोई सत् है सोई सत् आत्मा है श्वेतकेतु तू है, इसप्रकार जब पिताने उपदेश किया तब पुत्र श्वेतकेतु ने कहा सो स्पष्ट मैंने जाना है, द्विवचन अध्याय समाप्त्यर्थ है ॥ ३ ॥ इति षोडशो खंडः ॥ १६ ॥

इति छान्दोग्योपनिषदिषष्ठप्रपाठकंसमाप्तम् ६ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे सौम्य सो जैसे सत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोहपिंडके ग्रहण करने करके जलता नहीं अरु तिससे इतर असत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोहपिंडके ग्रहण रूप क्रिया करके जलता है। तैसेही सत् ब्रह्मको सत्याभिसन्ध करनेवाला अरु तिससे इतर असत्य संसाराभिसन्ध करनेवाला यह दोनों पुरुष अपने शरीर पात (मरणकाल) समय सत् चैतन्यको समान प्राप्त होते हैं, परन्तु जो अपने आप आत्मा को यथार्थ अनुभव करनेवाला सत्याभिसन्ध है सो सत्चैतन्य ब्रह्मको प्राप्त होके पुनः व्याघ्रादि भाव वा देव मनुष्यादि भावको प्राप्त होता नहीं, वो सत् विषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत्ही होता है, अरु जो यथार्थ आत्मानुभव से रहित अविद्वान् असत्य देहादि अनात्म विकाराभिसन्ध पु-

रुपहैं सो सत् विषे गयेहुए भी पुनः सत्से निकल व्याघ्रादिभाव वा देव मनुष्यादि भाव "यथा कर्म्म यथा श्रुतं" कोही प्राप्त होते हैं ॥ हे सौम्य जो सर्व वन्धनोंसे मुक्त आचार्य्यवान् सत्याभिसंध, समस्त जगत्का मूल (कारण, अधिष्ठान) आयतन (आश्रय) अरु प्रतिष्ठा (लयस्थान) है अरु जो सर्व प्रजाका आत्मा अपना आप है अरु सर्व प्रजा जिसका आत्मभूत अपना आप है अरु जो यह अमृत अभय है अरु जो अद्वितीय शिव (आनन्दघन) है सोई सत् है, हे श्वेतकेतो सोई सत् आत्मा है सोई सत्आत्मा तूहै । इस प्रकार उद्दालक पिताने अपने पुत्र श्वेतकेतु को दृष्टान्त युक्तिपूर्वक नवबार सत् आत्माका उपदेश किया तव वो श्वेतकेतु सर्व संशय विपर्य्ययसे रहित अपने आपको सत्चैतन्य यथार्थ अनुभवकर कहता हुआ कि हे भगवन् अव मैंने आपकी कृपासे अपने आप सत्य स्वरूपको ज्यों का त्यों स्पष्ट जानाहै सो सर्वात्मा सत् मैंहीहौं ॥ ३ ॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठकेषोडशो खंडः ॥ १६ ॥

शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् यह आपने दृष्टान्त कहा है अब इसका दार्ष्टान्तभूत सिद्धान्त कृपाकरके कहिये जो यहां चोर कौन है अरु सत्यपुरुष कौन है वस्तुक्या है राजाकौनहै, इत्यादि सर्व समझाय के कहिये ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन अब उक्त दृष्टान्तका दार्ष्टान्तभूत सिद्धान्त को भी सावधानहोके श्रवण करो । हे शिष्य जो पुरुष अन्तर से नानाप्रकार की कामनाओंको ले रहेहैं अरुबाहर लोकविषे अपनेको विरक्त कहावतेहैं। अथवा जो पुरुष संस्कृत वा भाषाके दो एक ग्रन्थ देखके लोकविषे वेदान्ती ज्ञानी अपने को विख्यात करतेहैं अरु यथार्थ आत्मानुभव से शून्य हैं, अरु अन्तर विषे नानाप्रकार की वासनाओं को लेरहे हैं सो पुरुष उस सत्राजाके दरबारके चोरहैं ऐसाजानो । अथवा जो पुरुष अपने अन्तःकरण विषे त्रिगुणात्मक विषयोंकी वासना अरु कर्त्तृत्व भोक्तृत्वभाव छिपायके लेरहे हैं अरु वाह्य लोक दृष्टि

मात्र अपनी विरक्तता को प्रकटकर साधु कहावते हैं तिन पुरुषों को तुम चोर जानने । अथवा जो पुरुष अपने अन्तर पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा इन तीनों एषणा को छिपायके लेरहे हैं अरु वाह्य संन्यासियों का स्वांग धारणकिये फिरते हैं कहते कुछ और हैं करते कुछ और हैं अन्तर में कुछ और है, ऐसे पुरुषों को भी तुमने उस सत् राजाके दरबारके चोर जानने। हे सौम्य ऐसे चोर पुरुष जब सत् राजाके दरवार में पकड़ेजाते हैं तब वो सत् राजा इनसे पूछताहै जो तुम वहांसे छिपायके कुछ लेआये हो, वा सर्वको त्यागके खाली आये हो, अब यहां सत्य सत्य कहदेवो, तब वो पुरुष ऐसा कहते हैं जो हम वहांसे छिपाय के कुछ भी नहीं लेआये खाली आये हैं । हे सौम्य इसप्रकार ये चोर पुरुष जब सत् राजाके दरबार में असत्य बोलते हैं तब उन पुरुषों की मनोवृत्ति जो अन्तके समय अनेक काम कर्म विषय बासना के संस्कारों को अपने बिषे लेके प्राण बिषे लयहुई है सो वहां सत् राजाके दरबार बिषे प्रकटहोय के कहती है जो हे राजन् यह पुरुष असत्य कहताहै तातें जब आप इसको दंड दीजियेगा तब इसका सत्य असत्य आपही प्रकट हो आवेगा दंडदिये बिना ये सत्य सत्य कहने का नहीं। हे सौम्य इसप्रकार जब उक्त मनो वृत्ति सत् राजाके दरबार में प्रकट होके कहती है तब तिसको श्रवण कर वो सत् राजा भी तीनों गुणों की साम्यता मायारूपा लोह पिंड आध्यात्मिकादि त्रिविधतापरूप अग्नि बिषे तपायके इन चोर पुरुषों के हाथपर रखवावताहै। हे सौम्य जिस काल में वो मायारूपा तप्त लोह पिंड इन पुरुषों के हाथपर धरागया तिसही काल अध्यात्मिकादि तापोंने इनको जलाया तब तिस ही माया के कार्य जे पञ्चविषयात्मक नाना नामरूप तिनकी जो कामना कि जिसको यहां से चोरायके लेगये हैं सोई वहां स्वप्नवत् स्फुरण हो प्रकट हो आवती हैं, तब वहां भोगों की वासनात्मक वृत्ति सत् राजा की आज्ञानुसार उन पुरुषों को अन्य

देहकी प्राप्तिरूप जगत् में फेंक गर्भवास रूप कारागार में डाल देती है, तव जिस अग्नि बिषे तपाहुआ मायारूपी लोह पिण्ड सत् राजा के दरबारमें इनों ने उठाया है सोई अग्नि इस असत्यवादी चोरों को अद्यावधि रात्रि दिन जलावताही रहता है, अरु उनचोर जीवों की संसार बिषे निंदाही होती रहती है जो देखो इसने पूर्वजन्म बिषे कोई बड़े भारी पापकिये हैं सो अब तिन पापोंका फल भोगता है अरु यह इसहीं योग्य है, इत्यादि प्रकार लोक बिषे परस्परमें एक दूसरे की निन्दा करते हैं। हे सौम्य उस सत् राजा का बड़ा भय अरु प्रताप शासन है, देखो सत्के दरबार बिषे असत्य बोलने के अर्थात् सत्के त्यागने के अपराध से इनजीवों को त्रिबिध तापरूप अग्नि बिषे जलतेहुए कल्प कल्पान्तर व्यतीत होगये आज पर्य्यन्त भी इनको शान्ति की प्राप्तिहुई नहीं ॥ हे सौम्य माया अरु तिसका कार्य्य आकाशादि पञ्च महाभूत सूर्य्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र यम कुबेर देव मनुष्य पशु पक्षी पिपीलिकादि जीवों में से जो कोई किसी प्रकार की कामना को अपने अन्तर चोराय के सत् राजा के दरबार बिषे जाते हैं सो सर्व उक्त प्रकार वहां से फेंके जाते हैं। अतएव ब्रह्मादि सर्व देवता उस सत् राजा की आज्ञानुसार अपने सत्य धर्म्म पर खड़ेहुए हैं अरु उसही के भय से अपने अपने कार्य्य में प्रवृत्त होरहे हैं। तथाच ।" भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः "। " भिषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदयति सूर्य्यः "।" एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन् अव उन चोरोंको यहां कैसे जानिये जो यह सत्राजा के दरबार के चोर हैं ॥ श्री गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य यह जो तुमको स्थावर जंगम जीव दृष्ट आवते हैं सो सर्वही उस सत् राजा के दरबार के चोरहैं, क्योंकि यहसर्व सत् राजाके दरबार से निकासे हुए इस जाग्रत रूप जगत् विषे आये हैं, हे सौम्य अब इनको

ऐसे जानो जो पुरुष जिस कामना को अपने बिषे लेके उसही के कर्म में प्रवृत्त रहते हैं सो पुरुष उसही कामनाके संस्कार पूर्व शरीर में अपने बिषे लेके सत् राजाके दरबार बिषे गये हैं सोई कामना इनको सत् राजाके दरबार में इनको चोर ठहराय वहां से निकाल इस जाग्रतरूप जगत् में ले आय त्रिबिध तापरूप अग्नि करके जलावती ही रहती है। हे सौम्य जैसे यह जीव जिन काम कर्म्मोंके संस्कार अपने बिषे लेके सुषुप्ति बिषे जाते हैं सो जाग के पुनः उसही काम कर्म्मों को करते हैं। तैसेही इस त्रिगुणात्मक जगत् बिषे जो जीव जिन काम कर्म्मों के संस्कार अपने बिषे लेके मरण समय उक्त क्रम से सत् बिषे जाते हैं सो अपने उनहीं संस्कारों को लेके पुनः इसजाग्रत जगत् बिषे आय उनहीं के अनुसार कर्म्मों को करते हैं। अतएव हे सौम्य अपने पूर्व संस्कारों करके स्वभावही से जिन काम कर्मोंबिषे लगेहुये हैं सो पुरुष पूर्व जन्म बिषे उनही काम कर्म्मों के संस्कारों को चोरावनेवाले चोर हैं, सो चाहे सात्विकी के होवें चाहे राजसी के होवें चाहे तामसी के होवें इस बिषय में नियम नहीं। ताते यह सर्वही जीव चोरहै, इसही करके यह त्रिविधताप रूप अग्नि करके जलतेही रहतेहैं अरु लोक लोकान्तर में इन की निरादरीही होती है किसी भी स्थान बिषे इनको शान्ति की प्राप्ति होती नहीं। जैसे वायु तृण को अधो ऊर्ध्व सर्वत्र भ्रमावता है कहीं भी ठहरने देता नहीं, तैसेही नाना कामना रूप वायु इन जीवरूप तृणोंको स्वर्ग नरकादि अधो ऊर्ध्व को भ्रमावताही रहताहै कहीं भी बिश्राम लेने देता नहीं॥ हे सौम्य इस ब्रह्मांडबिषे सत्यपुरुष तो एक ब्रह्मवेत्ताहै अन्य नहीं क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से वो ब्रह्म-वेत्ता सत् चैतन्य ब्रह्मस्वरूप होता है, सो पुरुष जहां जाता है सत्कार, प्रतिष्ठा, पूजा, आदर को पावता है "ब्रह्मलोकेमहीय ते" इत्यादि प्रमाण से, क्योंकि वो मोक्षादि सर्व कामना से

रहित निष्कास हुआहै, ऐसे पुरुष सत्‌बिषे गयेहुए फेरके आवते नहीं। वो नदी समुद्रवत् सत् साथ मिलके सत्‌रूपही होते हैं ॥ शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् वो ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य भी अन्य पुरुषों वत् इस संसार विषेही पायेजातेहैं ताते वोभी पूर्व जन्म के चोर होवेंगे आप उनको सत् कैसे कहतेहो ॥ श्री गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य यह जो ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य तुमको दृष्ट आवते हैं कि जिनकी निष्ठा व्यवधान से रहित सर्वदा अपने सत्‌स्वरूप बिषेही रहती है अरु वो जो बोलते हैं सत्यही बोलतेहैं, ऐसे जे सत्‌निष्ठ सत्य-वादी आत्मवेत्ता पुरुष हैं सो पूर्वजन्म बिषे अपने आप सत् आ-त्मस्वरूप की प्राप्तिकी कामना से आत्मकामा हुए विवेकादि साधन सम्पन्न होय आत्माका श्रवण मनन करते हैं अरु तहां उनको आत्म साक्षात्कार हुए बिनाही उनका देहपात होताहै तब वो आत्म प्राप्तिकी कामना के संस्कार अपने बिषे लेके उक्त क्रमसे सत् राजा के दरबार बिषे जाते हैं सो उसही कामनाको लेके पुनः यहां आवते हैं, अरु उसही कामना के आश्रय यहां श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथमिल तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का यथार्थ ज्ञानपाय सम्यक् आत्मसाक्षात्कार स्थिति पाय यहांही सत्‌चैतन्य विज्ञानघन सर्व्वात्माहोते हैं, अरु यावत् उनके देहका प्रारब्ध अपना भोगदेकेनाशनहीं होता तावत् जीवन्मुक्तहुये इस संसारविषे पद्मपत्र वा आकाशवत् सर्व से असंगहुए विचरते हैं, अरु देह प्रारब्ध भोगके आवान्तर जो कोई मुमुक्षु पुरुष उनकी शरण आय प्राप्तहो अपने सर्व दुःखों को स्पष्ट कहताहै तब वो परमदयालु आचार्य्य उसको दुःखीदेख प्रथम उसके विवेकरूप चक्षु से अज्ञानरूप पट्टीखोल पश्चात् उसको नानाप्रकार की कामना रूप अन्य बन्धनों से छोड़ाय आत्माके श्रवण मननरूप मार्गपर चलावते हैं, तब वो मुमुक्षु उस मार्गपर चलता हुआ प्रथम निदिध्यासनरूप ग्राममें निवासकर पश्चात् अपने आप सत्‌आत्माके साक्षात्काररूप नगरकोप्राप्तहो, अहं ब्रह्मास्मि, भाव

रूप राजसिंहासन परबैठ आवागमन से रहित शान्तआत्मा होताहै। हे सौम्य ऐसे जीवनमुक्त ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य देह प्रारब्ध भोगाय बिदेहमुक्तहो सत् बिषे गये सत्रूपही होते हैं वो पुरुष सत् विषे गये फेरके आवते नहीं॥ हे सौम्य जिसको वेदने "अणोरणीयान्" इत्यादि स्ववाक्यसे अणुसे भी अणुतर महासूक्ष्म सत्आत्मा कहाहै सोई परब्रह्म सत्रूप सर्व्वात्माकहाहै हे सौम्य सोई महासूक्ष्म सत् सर्वात्मा तुही है, तुझसे इतर तेरा सत् आत्मा अन्य कोई नहीं॥ शिष्यउवाच॥ हे भगवन् सो सत् आत्मा मैंही हौं अब मैंने आपकी कृपा उपदेशसे अपने आप सत् आत्मस्वरूप को यथार्थ साक्षात् ज्योंका त्यों अनुभव किया है ताते जो आपने अरु वेदने कहाहै सो, सत्यं, सत्यं, सत्यं, सत्यही है॥ हे भगवन् यह जो नामरूपात्मक लीला रचीहुई है सो सर्व मेरी सत्ताकी रचीहुई है अरु यह वर्त्तती भी मेरी सत्ताके आश्रय है, अरु परिणाममें लयभी मेरी सत्ताबिषेही होती है। हे प्रभो अब मेरी सत्ताको मैंने यथार्थ अनुभव किया है क्योंकि इस सर्व नामरूपात्मक लीला का अधिष्ठान प्रकाशक साक्षी आत्मा मैंही हौं मुझसे इतर इसका अधिष्ठान प्रकाशक साक्षी अन्य कोई नहीं, ताते यह सर्व नामरूपात्मक जगत् मेरे बिषे कहनेमात्र है मैंहीं अपनी इच्छासे इस प्रकार सुशोभित हुआहौं अतएव सर्व सत्तोंका सत्एक अद्वितीय आत्मा मैंहीहौं, सत्हौं, सत्हौं, सत्हौं,॥

हे भगवन् पूर्व श्वेतकेतु अपनेको क्या मानके पिताके समीप आयाथा अरु अब पिताके उपदेशसे अपने आप को क्या मानताहुआ, सो भी आप कृपाकरके कहिये॥ श्रीगुरुरुवाच॥ हे सौम्य पूर्व श्वेतकेतु अपने को यह मानके आयाथा कि मैं श्वेतकेतुहौं उद्दालकका पुत्रहौं मैं चारोवेद पढ़ सर्व दिशाकाजय करके आयाहौं मेरे समान बिद्या बिषे और कोई नहीं अतएव अब मैं किसके आगे नमस्कार करोंगा किन्तु किसीके भी आगे नहीं।

हे सौम्य इस प्रकार असत्य अनात्म अहंकार को अपने बिषे धार नम्रभावसे रहित हुआ वो श्वेतकेतु शुष्ककाष्ठवत् अपने पिताके समक्ष आयखड़ा हुआ । तब उसके पिताने उसको नम्र-भाव से रहित शुष्ककाष्ठवत् महा अहंकारी देख उसको अपने शुद्ध कुल विपे कलंकरूपजान उसके अनात्म असत्य अहंकारको दूरकरने के अर्थ उससे प्रश्न किया कि हे पुत्र तू उस विद्याको पढ़ाहै वा नहीं कि जिस एकके श्रवणसे अश्रवण किया भी श्र-वण किया होताहै अरु जिस एकके मननकरनेसे अमनन किया भी मननकिया होताहै अरु जिस एकके जाननेसे अविज्ञात भी जाना जाताहै । तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् उस बिद्याको मैं नहीं पढ़ा आप उसको कृपाकरके कहिये । तब उद्दालक ने पूर्वोक्त तेज जल अन्न इनतीनों तत्वों के स्थूल सूक्ष्म कार्य का-रणात्मक सर्व संघात को कहके कहा कि हे सौम्य इस नामरूपा-त्मक लीलाको प्रकट करनेकी इच्छासे जिस सत्चैतन्यने आदर्श बिपे पुरुपके अरु जलादिकोंबिषे सूर्य्यादिकोंके प्रतिबिम्बवत् प्रवेश कियाहै,ऐसाकहपश्चात् उसश्वेतकेतुशब्दकेवाच्यसंघात विशिष्ट चैतन्यको स्थूल सूक्ष्मसर्व उपाधिसे पृथक् करकेकहा कि हेश्वेत-केतो जिस सत्चैतन्य आत्माने इसनामरूपात्मक लीलाकेप्रकट करने के अर्थ इस संघात को प्रकटकर प्रवेश किया है सो महा-सूक्ष्म सत्चैतन्य सर्वात्मा तूही है ॥ इस प्रकार जब उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहा तब तिसके श्रवण से वो श्वेतकेतु प्रथम तो उस सर्वात्मा को न जानके कहता हुआ कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समझायके कहिये, तब पिताने उसके संशय विकल्पकी निवृत्तिके अर्थ अरु सत्स्वरूप की प्राप्ति के अर्थ दृष्टा-न्त युक्तिपूर्वक नव वार सत् आत्मा का उपदेश किया कि हे श्वेतकेतो जो महासूक्ष्म सत्चैतन्य सर्वात्मा है सोई सत्चैतन्य सर्वात्मा तू है ॥ हे शिष्य इसप्रकार जब उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु को नव वार उपदेशकिया तब वो श्वेतकेतु अपने आप

सत् आत्मा को यथार्थ अनुभव कर पिता से कहता हुआ कि हे भगवन् अब मैंने अपने आप सत् स्वरूप को सम्यक् प्रकार ज्यों का त्यों जाना है मैं ही सत् आत्मा हौं मुझसे इतर मेरा सत् आत्मा और कोई नहीं, सत्यं, सत्यं, सत्यं, ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन् श्वेतकेतु को सत्की प्राप्ति बिषे क्या लाभ होता हुआ ॥ श्री गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य उस श्वेतकेतु को सत्की प्राप्ति बिषे यह लाभ होता हुआ जो त्वंपद के वाच्य जीवत्व भावका अभाव अरु तत् पदके वाच्य सत्चैतन्य सर्वात्म भाव की प्राप्ति, उस तत्पद के वाच्य सत् बिषे त्वं आरोपमात्र था तिस आरोपका अभाव होके जो अवशेष तत्रहा सोई तत् सत् श्वेतकेतु ज्योंका त्यों होता हुआ। हे सौम्य जो सत्मन बाणीका बिषय नहीं सो सत्आत्मा श्वेतकेतु आपही था सो पिता रूप आचार्य के उपदेश द्वारा अपने आप को आपही श्रवण करता हुआ, अपने आपको आपही मननकरताहुआ, अरु अपने आपको आपही साक्षात् विस्पष्ट जानताहुआ, इस प्रकार श्वेतकेतु अपने आपविषे द्वैतके अभावपूर्वक अपने आपको सत्चैतन्य सर्वात्मा अनुभव करताहुआ ॥ शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् जब वो श्वेतकेतु आपही सत्स्वरूपथा तब पितासे बारम्बार क्यों प्रश्नकरता हुआ, अरु उस सत्का स्वरूप कैसाहै सोभी आप कृपाकरके कहिये ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य वो श्वेतकेतु प्रथम से सत्स्वरूप तो थाही परन्तु उसको अज्ञानकृत अनात्माबिषे अहंभाव होनेसे वो अपने आपको भूलाथा, अरु तिसकरके अपने को अहंकर्त्ता अहंभोक्ता अहंजीव इत्यादि मानताथा, सोई उसके आगे अनात्म अहंकार रूप परदाथा ताते वो विवेकशून्यथा, अतएव उसके पिताने उसके उक्त आचरणको गिरायके 'कि जिसके प्रतिभाससे अनात्म बिषे आत्मप्रतीतिथी, आप उद्दालक तूष्णीं हो रहा क्योंकि वो श्वेतकेतु सत्स्वरूप तो आगेही सिद्धथा, उसके पिताने उससे यह नहीं कहा कि हे श्वेतकेतु वो सत् किसी अन्य स्थान में है

तिसको तुम अन्वेषणकरो । उसके पिताने तो उसके सर्व बिकल्पोंको गिरायके यही उपदेश किया कि हे श्वेतकेतो सो सत् आत्मा तू है, तब उसने भी अन्त विषे यही कहा कि सो सत् आत्मा मैंहीहौं अब मैंने अपने आपको अनुभव कियाहै ॥ शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् जब वो श्वेतकेतु सत्स्वरूपहीथा तब वो अपने आप सत्स्वरूपको भूलाकैसे सोभी आप कृपाकरके कहिये ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य अब इसको हम एक दृष्टान्तद्वारा कहतेहैं तिसको भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन जैसे यह जीव अपने को जीवमानते संतेभी अपने जीव भावसे भूलेहुए हैं क्योंकि यह जीव साक्षात् अपने देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों से पृथक् होके ऐसा कहते हैं कि हे भाई अब हमारा शरीर दुर्बल अशक्त वृद्ध होगयाहै, हमारी सर्व इन्द्रियां शिथिल होगई हैं, प्राण व्याकुल होरहाहै, हमारा मन अमुक बस्तु को इच्छताहै, इस अवस्थामें हमारी बुद्धि विवेक शून्य जड़वत् होरहीहै कुछ भी समझ विषे आवता नहीं । इत्यादि प्रकार सर्व जीव बुद्धिआदिकों से आपको पृथक् भी कहते हैं तथापि अपने जीव भावको जानते नहीं । हे शिष्य तैसेही यह मलिन अन्तःकरण अनात्माभिमानी अज्ञ पुरुष उपनिषदादि सत्शास्त्रको श्रवण बिचार करके भी अपने आप वास्तविक सत्यस्वरूपको जानते नहीं तिसका कारण यह भी है कि मन इन्द्रियों के साथ मिल अनादि कालसे बिषयादिकोंके सम्मुख बहिरमुख होरहे हैं, जब यह आत्माकी ओर अन्तरमुख होवें तब अपने सत्यस्वरूपको यथार्थ ज्योंका त्यों अनुभव करके जाने, परन्तु इनको अन्तरमुखहोना दुर्लभ है क्योंकि इनका वहिरमुख स्वभाव अनादिकाल से हो रहाहै । हे सौम्य यह सर्व पुरुष अपने आपको अनादिकालसे जानबूझ के भूलेहुए हैं, क्योंकि सज्ञात सत्पुरुष अरु सत्शास्त्रद्वारा अपने सत्चेतन्य आत्मस्वरूपको श्रवण करते हैं अरु तिस श्रवण के अनुसार विचारते भीहैं तथापि मानते नहीं जब इनके पूर्व

जन्मों के अति उत्तम मोक्ष करनेहारे पुण्य कर्म्म एकत्रहोय अपना फल देनेके अर्थ सम्मुख होते हैं तब इनके अन्तःकरणबिषे असाधारण वैराग्यपूर्वक आत्म जिज्ञासा उत्पन्न कर इनको ब्रह्म वेत्ता आचार्य्य के समीप प्राप्त करतेहैं, तब उस परमदयालु आचार्य्य की कृपाकरके यह जीव अपने सत् चैतन्य आत्मस्वरूपको यथार्थ साक्षात् अनुभवकर परमनिर्वाण ब्रह्मानन्द शान्तिको प्राप्तहोते हैं। अतएव हे सौम्य अब तुमभी ब्रह्म निष्ठ आचार्य्य साथ मिल अपने सत्यस्वरूपको प्राप्तहोवो॥ अलम्॥

इति छान्दोग्यउपनिषदे षष्ठप्रपाठकं समाप्तम् शुभम्॥

हरिः ॐ तत्सत्॥

अथ सामवेदीय छान्दोग्यउपनिषद्का सप्तम अरु उत्तरार्द्धका तृतीय प्रपाठक की भाषाटीका प्रारभ्यते

इस प्रपाठकमें भगवान् योगेश्वर सनत्कुमार अरु देव ऋषी नारदके सम्बादरूप आख्यायिकाद्वारा मध्यम अधिकारी के परमश्रेयार्थ भूमाख्य आत्मविद्या अरु तिसकी सर्वोत्तमता प्रकाशित है। अरु इसबिषे भगवान सनत्कुमारने नारद के प्रति सोपानारोहण क्रम करके आत्मोपदेश कियाहै। अर्थात् जैसे कोई पुरुष ऊंचे स्थानपर चढ़ताहै तब नसेनी (सीढ़ी वा जीने) के नीचेके पादरखने के दंडेसे क्रमसाध्य चढ़ताहुआ ऊपरके स्थानको प्राप्त होता है। तैसेही परमाचार्य्य योगेश्वर भगवान् सनत्कुमारने नारदको नामसे लेके प्राणपर्य्यन्त पंचदश उपासनाकहके पूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर को अधिकतरदेखाय प्राणसे पूर्व पूर्वोंकी अपेक्षा प्राणको सबका आश्रय होनेसे उसकी सबसे अधिकता देखाय पश्चात् भूमाका उपदेश किया है॥

इति

अथ छान्दोग्य उपनिषदे सप्तम प्रपाठके प्रथमखंडः ॥

ॐ ॥ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्त ँ होवाच यद्वेत्थतेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सनत्कुमार से नारदने कहा कि हे भगवन् मुझको उपदेश करिये, सनत्कुमार ने कहा जो तू जानता है सो मुझसे कह तिसको श्रवण किये पश्चात् मैं कहोंगा ॥ १ ॥

भावार्थ खंड प्रथम मन्त्र पहिलेका ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य एक समय देवऋषि नारद जो सर्वविद्या सम्पन्न था सो आत्म विद्या की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) अपने चित्त विषे धार बिचारता हुआ कि मैं वेदादि सर्व विद्या पढ़ा हों परन्तु चित्त विषे शान्ति नहीं अतएव अब आत्म विद्या अध्ययन करनी चाहिये वो शान्तिका कारण है तिसबिना शान्ति होने की नहीं, परन्तु वो विद्या किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आत्मानुभवी आचार्य्य से अध्ययन करनी योग्य है, सो उक्त प्रकार के आचार्य्य भगवान् सनत्कुमार हैं, अरु वो मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी हैं अतएव जैसा वो उपदेश करेंगे तैसा और कोई भी करने का नहीं, ऐसा बिचार वो नारद अपने ज्येष्ठ भ्राता योगेश्वर ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमारके समीप प्राप्तहोय प्रणामकर विनयपूर्वक यह कहता हुआ कि हे भगवन् आप आत्मविद्या जानते हो सो मुझको अध्ययन कराइये, अर्थात् आत्मविद्या मुझको उपदेश करिये । हे सौम्य उक्त प्रकार जब सर्व विद्या सम्पन्न सो सर्व विद्या के अहंकार को त्याग नम्रभावपूर्वक आत्मविद्या का जिज्ञासु होय यथान्याय (समिधादि ग्रहणकर) अपने निकट आय प्राप्त हुआ जो देवऋषि नारद तिसको सनत्कुमार कहते-

स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदछं सामवेद मा थर्व्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यछं राशिं दैवं निधिं वाको वाक्य मेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याछं सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

हुए कि हे नारद जो कुछ तुम्हने अध्ययन कियाहै सो सर्व प्रथम मुझको कह सुनाव तिसको मैं भली प्रकार जानलेवोंगा तब तिसके उपरान्त जो कुछ मुझको कहना होगा सो सर्व तेरेप्रति कहोंगा ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो नारद स्पष्ट कहताहुआ हे भगवन् ऋग्वेद मैंने अध्ययन कियाहै, यजुर्वेदसामवेद चौथा अथर्बणवेद पञ्चम इतिहासपुराण (भारत) वेदोंका वेद (व्याकरण) श्राद्धकल्प गणितशास्त्र दैवी उत्पात शास्त्र निधिशास्त्र तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र निरुक्त वेदों का ब्राह्मण भाग वा शिक्षा कल्पादि वेदांग भूततन्त्र धनुर्वेद ज्योतिष शास्त्र गारुड़ी विद्या गन्धर्वविद्या शिल्पविद्या। हे भगवन् यह सर्व मैंने अध्ययन किया है ॥ २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य। उक्त प्रकार जब भगवान् योगेश्वर सनत्कुमारने देवऋषि नारदसेकहा कि जो कुछ तुम्हने अध्ययन किया होय सो सर्व प्रथम मुझको कह सुनाव तिसके श्रवण किये पश्चात् जो कुछ मुझे कहना होगा तुम्हारे प्रति कहोंगा। इसप्रकार जब योगेश्वर ब्रह्मवेत्ता सनत्कुमार ने कहा तब वो देवऋषि नारद कहता हुआ कि हे भगवन् मैंने ऋग्वेद अध्ययन किया है सो सर्व मुझको अर्थ सहित याद है, तैसेही यजुर्वेद भी मैं पढ़ाहौं सो भी मुझको स्मरण है, सामवेद भी मुझको स्म-

सोऽहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित् श्रुतछंह्येव मे भगवद्दृश्येभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्यपारं तारयत्विति होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठानामैवैतत् ३ ॥

रण है, अरु चतुर्थ अथर्वण वेदभी मैं पढ़ाहौं सो स्मरण है, हे भगवन् सर्व वेदोंका समुच्चय जो पंचम प्राचीन इतिहास भारतहै सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु जिसकरके पदविभागसे वेदादिक सर्व के अर्थ जाने जातेहैं ऐसा जो वेदोंका वेद व्याकरण सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु पित्रियों के अर्थ श्राद्धादिकों का बोधक जो श्राद्धकल्प सो भी मैं पढ़ाहौं, हे भगवन् गणितशास्त्र कि जिसकरके सूर्यादिकों की गति अरु ग्रहोंका वेध ग्रहण आदिक जाने जातेहैं सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु जिस शास्त्रसे दैवी उत्पात दुर्भिक्षादि जाने जाते हैं सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु महाकालादि निधि शास्त्रभी मैं पढ़ाहौं, अरु वाकोवाक्य कहिये तर्कशास्त्र सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु एकायन कहिये नीतिशास्त्र सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु देवविद्या जो निरुक्त सो भी मैं जानताहौं, अरु ब्रह्मविद्या जो ऋग् यजु साम इन वेदत्रयीका ब्राह्मण भाग वा शिक्षाकल्पादि वेदांग सो भी मैं जानताहौं, अरु भूतविद्या कहिये भूततन्त्र (तन्त्रविद्या) सो भी मैं पढ़ा जानता हौं, अरु क्षत्रविद्या कहिये धनुर्विद्या जिस करके अस्त्र (समन्त्र) शस्त्र (अमन्त्र) बाणादि शस्त्र चलावने की क्षत्रियों की विद्या सो भी मैं पढ़ा जानताहौं, अरु नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्र जिसकरके जीवोंका भविष्यत् शुभाशुभ जाना जाताहै सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु सर्प देवजन विद्या कहिये सर्पादिकों के विष उतारने की गारुड़ी विद्या, अरु नृत्यगायन आदि गन्धर्व विद्या, अरु गृहादि रचने की शिल्पविद्या मैं जानता हौं। हे भगवन् इत्यादि सर्व विद्या मैंने अध्ययन किया है अरु सर्वही मुझको स्मरण है (तथापि शान्तिनहीं) २ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे भगवन् सो मैं मंत्रवेत्ताही हौं आत्मवेत्ता नहीं, हे भगवन् मैंने आप सारिखे आत्मवेत्तासे ही श्रवण किया है कि आत्माका जाननेवाला शोक से तरजाताहै, हे भगवन् सो मैं शोकको प्राप्त हुआ जो मैं तिस मुझको हे भगवन् आप शोकके पारको प्राप्त करो । इस प्रकार जब नारद ने कहा तब सो सनत्कुमार कहते हुए कि जो कुछ तुमने अध्ययन किया है सो सर्व यह नाममात्रही है ॥ ३ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

नारदउवाच ॥ हे सौम्य, नारद कहता हुआ कि हे भगवन् सो मैं कि जिसने उक्त सर्वविद्या अध्ययन किया है तिन सर्व विद्या के जानते सन्ते भी मैं केवल मन्त्रवेत्ताही हौं अर्थात् उक्त सर्व विद्याओं का केवल शब्दार्थमात्र जाननेवाला मैं हौं । अरु सर्वही शब्द अभिधान (नाम) मात्रही है सो सर्व मंत्रके अंतर होताहै ताते मैं मन्त्रवेत्ताहौं अर्थात् मन्त्रवेत्ता कहने से केवल कर्म्म वेत्ताही हौं । तथाच ॥ मन्त्रेषु कर्म्माणीति "। मैं आत्मवेत्ता (आत्मानुभवी) नहीं ॥ शंका ॥ ननु आत्मा भी तो मंत्र करके प्रकाशित (प्रतिपाद्य) है तब कैसे सो नारद मन्त्रवेत्ताही है आत्मवेत्ता नहीं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुमने जो शंकाकिया सो नहीं क्योंकि नाम नामीका वा प्रतिपाद्य प्रतिपादक का जो भेद है तिसको बिकारी होने से, अरु शुद्ध आत्मा विषे उक्त बिकार कोई नहीं ॥ शंका ॥ ननु जिसको तुम निर्बिकार आत्मा कहते हौ सो भी ,आत्मा, इस शब्द करके कहा जाता है । समाधान ॥ यह भी शंका बने नहीं क्योंकि ।" यतो बाचो निवर्त्तन्ते " "यत्र नान्यत्पश्यतीति "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से आत्माको वाणी आदिकों का विषय न होनेसे आत्माबिषे अभिधेय अभिधान नहीं ॥ शंका ॥ जो ऐसेही है तो कैसे ।" आत्मा वै अधस्तात् स आत्मेति "। इत्यादि श्रुतियां शब्द करके अर्थात्

नामकरके आत्माको कहती हैं ॥ समाधान ॥ हे बादी यह जो तैंने कहा सो दोष नहीं क्योंकि देह युक्त प्रत्यगात्माको भेदका विषय होनेसे आत्मा शब्दकी प्रवृत्ती है ॥:– अर्थात् अनात्म देह विषे व्याप्त जे प्रत्यगात्मा तिसको देहरूप अनात्माके सम्बन्धसे पृथक् करके लखावने के अर्थ आत्मा शब्द से कहते हैं बास्तव करके उस अशब्दविषे आत्माआदि शब्दों की प्रवृत्ति बने नहीं–:॥ जैसे अदृश्य मान राजाके दृश्यमान जे छत्र ध्वज पताकादि तिनके देखने से अदृश्यमान राजाके बिषे यह राजा दृश्य आवता है इस शब्दकी प्रवृत्ति होती है, तहां इस शब्दका प्रयोग होताहै कि ,यह कौन राजा है, दृश्यमान जे राजाके विशेष छत्र ध्वज पताकादि तिनके निरूपण करके अदृश्यमान जे राजा तिसविषे यह कोई राजाहै इसप्रकारकी प्रतीति होवे है । तैसेही देहादिक जे अनात्मा आत्म शब्दका वाच्य तिसविषे शब्दकी प्रवृत्ति होती है, अशब्द आत्मा निर्विशेष चैतन्यबिषे नहीं, अरु अनात्मा जड़ देहादिकों के सर्व व्यापारमें प्रवृत्त देखने से यह कथन होताहै कि इन जड देहादिकों की स्वस्व व्यापार में प्रवृत्तिहै सो किस सत्ताकी कीहुईहै, इनकी प्रवर्त्तक कोई चैतन्य सत्ताहै । इसप्रकार शब्दादिकों का विषय जे देहादिक तिनविषे शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे तद्विशिष्ट आत्मा में भी शब्दकी प्रवृत्ति है, स्वयंशुद्ध आत्माविषे शब्दादिकों की प्रवृत्ति नहीं । अतएव नारद केवल वेदादिकों के मन्त्रके शब्दार्थ अरु तिनमन्त्रों का जिनकर्म्मों बिषे विनियोग है तिनही का ज्ञाताहै आत्मवेत्ता नहीं –:॥ एतदर्थही नारदने कहा कि हे भगवन् मैं केवल मन्त्रकरके लक्षित जे कर्म्म तिनही का जाननेवाला हौं । अर्थात् मन्त्रकरके लक्षित जे कर्म्म तिनही का कार्य्यरूप विकार यह समस्त प्रपंचहै, अरु मैं कर्म्मोंका वेत्ता हौं तातें मैं विकारवित् (जाननेवाला) हौं, मैं आत्मवेत्ता नहीं, अर्थात् मैं अपने आप आत्मस्वरूप को जाननेवाला आत्मज्ञ नहीं । हे भगवन् मैंने आप सारिखे वेदवेत्ता आचार्य्यों से इस

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाको वाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्याक्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पजनदेवविद्या नामैवैतन्नामोपास्वेति ४ ॥

प्रकारके श्रुति वाक्य श्रवण किये हैं कि।" यतोवाचो निवर्त्तन्ते "। जहांसे वागादि इन्द्रियां निवृत्त होती हैं (फिर आवती हैं) अर्थात् जो आत्मतत्त्व मन इन्द्रिय आदिकों का विषय नहीं, तिस आत्मतत्त्व को।" आचार्य्यवान् पुरुषो वेद "। आचार्य्यवान् पुरुष सम्यक् प्रकार जानताहै। अरु आत्मवित् पुरुष सर्व शोकोंसे तर जाताहै। हे भगवन् सो मैं (जो केवल विकारवेत्ता हौं) सो अकृतार्थ बुद्धिकरके सर्वदा अन्तरसे तपायमानही रहताहौं, हे भगवन् तिस शोकाविष्ट मुझको आप आत्मविद्या उपदेश करके इस दुस्तर शोकसागर से पारकरिये, अर्थात् मुझको कृतार्थ बुद्धि उपजाय अभय पदको प्राप्तकरिये, अब मेरे परम आचार्य्य आपही हो ॥ हे सौम्य इस प्रकार देवऋषि नारदने अपनेको कृतार्थ बुद्धिकी प्राप्ति पूर्वक अति दुस्तर शोकसागर से पार अभय पद प्राप्तिके अर्थ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगेश्वर भगवान् सनत्कुमार आचार्य्य से प्रार्थनाकिया तब तिसको श्रवणकर भगवान् सनत्कुमार कहतेहुए कि हे नारद जो किंचित् तैंने अध्ययन किया है अरु जिसका तुझको अर्थज्ञानहै सो सर्व नाममात्रही है —॥ अर्थात् ऋग्वेदादि विद्या अध्ययन करके जो तैंने जानाहै सो सर्व नाममात्रही जानाहै, अरु।" वाचारंभणं विकारो नाम धेयम् "। इत्यादि श्रुति प्रमाण से नामजो है सो केवल वाचारंभण मात्रही है ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद

चतुर्थ अथर्वणवेद पंचम प्राचीन इतिहास (भारत) व्याकरण श्राद्धकल्प गणित विद्या दैवी उत्पात विद्या निधिविद्या तर्कविद्या नीति विद्या निरुक्त ब्राह्मण भाग वा शिक्षा कल्पादि वेदांग भूत तन्त्र विद्या धनुर्विद्या ज्योतिषविद्या गारुड़ीविद्या गन्धर्वविद्या शिल्पविद्या । यह सर्व नामही है यह नाम उपास्य (उपासना करने योग्य) है ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब नारदजी ने अपनी अध्ययन करी ऋग्वेदादि सर्व विद्या भगवान् सनत्कुमार को कहसुनायी तब ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ सनत्कुमारों ने विचार किया कि यह नारद अनेक प्रकार की विद्या पढ़ा है अरु उन विद्याओं बिषे कहे जे नाना सिद्धान्त सो सर्व संस्काररूप से इसके अन्तःकरण बिषे स्थित हैं ताते तिनके अनुसार इसके अन्तःकरण बिषे अनेक प्रकार के संशय विकल्प स्थितहैं, यावत् उन सर्वका अभावहोगा नहीं तावत् इसको आत्मसाक्षात्कार भी होने का नहीं । अरु यह नारद अन्य सर्व आचार्य्य को त्याग के श्रद्धापूर्वक समित्पाणि हुआ मेरे निकट आया है ताते इसको आत्मोपदेश करके शोकसागर से पार भी अवश्य करना है, अतएव इसको वाह्य स्थूल नामोपासना से लेके अन्तर सूक्ष्म प्राणोपासना पर्य्यन्त देखाय उन सर्वको गिराय इसके सर्व संशयादि दूरकर पश्चात् इसको सर्व का आश्रय महासूक्ष्म भूमाख्य सत् चैतन्य आत्मा का उपदेश करें । हे सौम्य इस प्रकार विचार भगवान् योगेश्वर सनत्कुमार नामब्रह्म की उपासनासे प्रारभ्य प्राण ब्रह्म की उपासना पर्य्यन्त कहेंगे तहां पूर्व पूर्व उपासना को कह तिसका फल देखाय पश्चात् उसको उत्तरोत्तर उपासना से गिराय पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर की विशेषता देखाय नारद के सर्व संशय दूरकर प्राणोपासना की मुख्यता देखाय तिसके पश्चात् सर्वाधिष्ठान भूमाख्य सत् आत्मोपदेश कर उस नारदको अ-

स यो नामब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्ययथा कामचारो भवति यो नामब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ५ इति प्रथम खंडः १ ॥

कृतार्थता बुद्धिरूपा शोक सागर से पारकरेंगे, तहां प्रथम नामोपासना कहतेहैं—:॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद ऋग्वेद आदि यावत् विद्या तू पढ़ाहै सो सर्व नामही है, अरु नाम जो है सो ब्रह्मबुद्धि करके उपास्य है, अर्थात् जैसे शालिग्रामादि प्रतिमा विष्णुआदि देवता बुद्धि करके उपासनीय हैं, तैसे नाम भी ब्रह्म बुद्धि करके उपासनीय है ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जो नामब्रह्मकी उपासना करता है यावन्नाम का विषय है तिस बिषे जैसी कामना होती है सोई उसको प्राप्त होता है जो नाम ब्रह्मको उपासता है, हे भगवन् यह नामही ब्रह्म है वा इसका कोई और ब्रह्महै, हां नामका भी कोई और ब्रह्म है, हे भगवन् तिसको भी आप मेरेप्रति कहिये ५ ॥

भावार्थ मंत्र पांचवें का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई नाम ब्रह्मकी उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवण कर यावत् नामका विषय है तहां तिस नाम के विषय बिषे जैसी कामना होती है, अर्थात् नाम के विषय बिषे जिस वस्तु की कामना होती है, सोई उसको प्राप्तहोता है। जो नाम ब्रह्म की उपासना करता है। हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह नामही ब्रह्म है किंवा इस नामका भी कोई और ब्रह्म है। इस प्रकार जब नारद ने प्रश्न किया तब पुनः सनत्कुमारने कहा हां नाम का भी कोई और अधिकतर ब्रह्म है, तब पुनः नारद ने कहे

अथछान्दोग्यउपनिषदि सप्तमप्रपाठकेद्वितीयखंडः ॥

वाग्वा नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदछं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्रिछंराशिं दैवं निधिं वाक्योवाक्य मेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्राविद्या नक्षत्र विद्या सर्प देवजन विद्या, देवाछंश्च मनुष्याछंश्च पशुछंश्च वयाछंसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीट पतङ्ग पिपीकंधर्म्मंचाधर्म्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञञ्चाहृदयज्ञञ्च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्म्मोनाधर्मो व्यज्ञापिष्यन्न सत्यंनानृतं न साधुनासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्व्वं विज्ञापयति वाच मुपास्येति १ ॥

हे भगवन् जो नामका भी कोई अधिकतर ब्रह्महै तो हेभगवन् सो भी आप मुझको कहिये ५ ॥

इतिछान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके प्रथम खंडः १ ॥

अथ अक्षरार्थ भावार्थ खंडदूसरे मन्त्र पहिलेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद वागेन्द्रिय नामका भूय (अधिकतर) ब्रह्महै । अर्थात् नाभिका हृदय कंठ जिह्वा तालु आदि छः स्थानों विषे स्थित होत समस्त स्वर व्यंजनादि अक्षरों की अभिव्यंजक (प्रकाश करनेवाली) है तिसको वागेन्द्रिय कहते हैं, औरुनाम जोहै सो वर्णात्मकही है, अतएव वागको नामका भूमा कहते हैं । क्योंकि लोकविषे कार्य्यका भूमा कारणकोही देखते हैं । जैसे पुत्रसे पिता अधिकतर होताहै तैसे ॥ प्रश्न ॥ हेभगवन् कैसे वाणी नामका भूमाहै ॥ उत्तर ॥ हे नारद वाणी करकेही ऋग्वेद जाना जाताहै कि यह ऋग्वेद है॥:—अर्थात् ऋग्वेद का अध्ययन

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचोगतं तत्रास्ययथा कामचारो भवति योवाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्तिभगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीतितन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥ इति द्वितीयखंडः २ ॥

करता पुरुष जब वाणी करके ऋग्वेद का उच्चारण करता है तब जाना जाता है जो यह ऋग्वेद है—: ॥ हे नारद तैसेही यजुर्वेद सामवेद आदि सर्व वेदशास्त्र इतिहास पुराणादि वाणी करकेही जानाजाताहै ,अर्थात् यावत् वाणीका विवर्त शब्दमात्रहै सो सर्व वाणीसे उच्चार हुआही जाना जाता है, अरु हृदय का विषय अर्थात् जिस वार्त्ता के कहनेकी हृदय में इच्छा होती है, तिस को जब वाणी करके प्रकट कहता है तबही वो स्पष्ट जाना जाता है। अरु तैसेही तिससे विपरीत अहृदयज्ञं इत्यादि सर्व वाणी करकेही जाना जाना है ॥ हे नारद जो कदापि वाणी न होवे तो अध्ययनका अभाव होवे अध्ययन के अभाव से अर्थ के श्रवण का अभावहोवे तिस अर्थ श्रवणके अभावसे न धर्म्म जाना जाय न अधर्मजाना जाय न सत्यजानाजाय न असत्यजानाजाय न साधु (श्रेष्ठ) जाना जाय न असाधु (अश्रेष्ठ) जानाजाय न हृदयज्ञजानाजाय न अहृदयज्ञ जानाजाय। एकवाणी करकेही यहसर्व जानाजाताहै, अर्थात् यावत् नामोंकेविषयहैं सो सर्वनाम करकेही जानाजाता है अरु सो नाम वाणी करकेही प्रकट होता है, अतएव यावत् नामकाविषयहै सो सर्वनामसहित वाणीकरके ही जाना जाताहै। ताते हे नारद यह वाणी ब्रह्म बुद्धिकरके उपासना करने योग्य है। जैसे प्रतिमादेव बुद्धिकरके १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई (।" वाग्वै ब्रह्मेति "।) इस श्रुत्यन्तरके प्रमाण से भी, वाणी ब्रह्मकी अर्थात्

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके तृतीयखंडः ॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वेवाकोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचञ्चनाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयेत्यथाधीते कर्म्माणि कुर्व्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छेयेत्य थेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोका मनो हि ब्रह्ममन उपास्येति १ ॥

होताहै सो श्रवण करो हे नारद यावत् वाणी का विषय है तहां जिस विषयविषे जैसी कामना होती है सोई उसको प्राप्तहोता है जो वाणी ब्रह्मको उपासता है । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह वाणीही ब्रह्म है अथवा इस वाणीका भी कोई अधिकतर ब्रह्महै । तब पुनः सनत्कुमारने कहा कि हे नारद इसवाणी का भी कोई और ब्रह्म है, इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब पुनः नारदने कहा कि हे भगवन् जो वाणी का भी कोई अधिकतर ब्रह्महै तो हे भगवन् सो भी मुझको कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके द्वितीयखंडः २ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके तृतीयखंड प्रारंभ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद मन जो अन्तःकरण है सो वाणी का भूमा (अधिकतर) है क्योंकि मनही वाणी को वक्तृत्व व्यापारविषे प्रेरणाकरे है, अरु मनको वाणी विषे व्याप्त होने से मन वाणी का भूमाहोता है जैसेही लोकविषे किसी पुरुषकी मुष्टिके अन्तर (भीतर) दो आंवलेके फल अथवा दो वदरी (वेर) के फल होवें अथवा दो भिलावे के फल होवें तिनविषे मुष्टि व्यापी होती है, अर्थात् सो मुष्टिकेही अन्तर

सयो मनोब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतंतत्रास्य यथा कामचारो भवतियो मनोब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनोभूय इतिमनसो वावभूयो ऽस्तीति तन्मेभगवान् ब्रवीत्विति॥ २ ॥ इति तृतीय खंडः॥ ३ ॥

होते हैं। हे नारद इसही प्रकार वाणी अरु नाम इन दोनों को आमलादि फलोंवत् मन अनुभव करताहै ॥:— अर्थात् मनके आधीन वाणी अरु वाणी के आधीन नामहै ताते इन दोनों का प्रवर्त्तक अनुभव कर्त्ता मनको होनेसे मन इनका भूय (अधिकतर) है—:॥ हेनारद तिस कालमें पुरुष अन्तःकरण करके अर्थात् मनोपलक्षित विवक्षा बुद्धिकरके प्रथम विचार करता है कि किस प्रकार मन्त्रको अध्ययन करों (वेदअध्ययन करना चाहिये) इस प्रकार प्रथम विवक्षा करके पश्चात् अध्ययन करताहै। तैसेहीं प्रथम कर्म्मकरने को विचारके पश्चात् कर्म्म करताहै। अरु जो पुत्र पशु आदिकों की इच्छाहोती है तब प्रथम इच्छा करता है कि अपने को पुत्र पशु आदि होना चाहिये पश्चात् तिनके अर्थ कर्म्म करके उनको प्राप्तहोता है। तैसेही इसलोक परलोक की इच्छासे प्रथम उनकी प्राप्तिके उपायको विवक्षा करलेता है तब उस उपाय से यथेष्ट लोक को प्राप्तहोता है। हे नारद आत्माको जो कर्तृत्व भोक्तृत्व है सो मन करकेही है अन्यथा नहीं, मनको आत्मा कहते हैं मनही लोक है, सत्य ऐसाही है मनविषे लोक होता है क्योंकि जिस लोकको मन इच्छता है तिसकी प्राप्तिके उपाय को अनुष्ठान करने से मन तिसलोक को प्राप्त होता है ॥:—अर्थात् मनके आधीन वाणी है वाणी के आधीन मन्त्र हैं मन्त्रके आधीन कर्म है कर्म्माधीन लोक है, अतएव लोककी प्राप्ति परम्परा करके मनके आधीनहीं है—:॥ ताते मनही ब्रह्म है जिस करके ऐसा है तिसही करके मन उपासना करने के योग्य है ॥ १ ॥

अथ छान्दोग्य उपनिषदि सप्तम प्रपाठके चतुर्थ खंडः ॥

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथवाचमीरयति तामु नाम्नीरयतिनाम्नि मन्त्रा एकं भवति मन्त्रेषु कर्म्माणि १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई (" मनोब्रह्मेत्युपासीत् " इत्यादि अन्य श्रुतियों के प्रमाण से भी) मनको ब्रह्म जानके, अर्थात् मनविषयक ब्रह्म बुद्धिकरके, मनकी उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवण कर, हे नारद यावत् मनका विषय है तहां जिस विषय विषे जैसी कामना होती है सोई उसको प्राप्तहोताहै, जो मनकी उपासना करता है (तिस को) हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह मनही ब्रह्म है अथवा मनका भी कोई और ब्रह्महै। तब सनत्कुमारनेकहा हे नारद इस मनका भी अधिकतर इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद पुनः कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस मनका भी कोई अधिकतर (ब्रह्म) है तो हे भगवन् सो भी मेरे प्रति कहिये २ ॥

इतिछान्दोग्येसप्तमप्रपाठकेतृतीय खंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थखंड चौथे मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद संकल्प मनसे अधिकतर है (अर्थात् संकल्प जो कर्तृत्व सम्बन्धी अन्तःकरण की वृत्ति कि अब कर्म करना चाहिये) इस संकल्प से पश्चात् मनकरके विचारता है कि अब यह कर्म्म करना युक्त है, ताते प्रथम संकल्प होता है पश्चात् मनके विचार विषे आवता है जो अब अध्ययनकरें, तिसके अनन्तर वाणी समर्थ होती है मन्त्रादिकों के उच्चार करने विषे तब उसका नामहोता नाम से सम्पूर्ण वेद

तानि ह वैतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशश्च समकल्पतामापश्च तेजश्च तेषा छं संक्लृप्तौ वर्ष छं संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्तौ प्राणाः संकल्पन्ते प्राणाना छं संक्लृप्तौ मन्त्राः संकल्पते मन्त्राणा छं संक्लृप्त्यै कर्म्माणि संकल्पन्ते कर्म्माणि संक्लृप्त्यौ लोकाः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्व्वं छं संकल्पतेसएष संकल्पः संकल्पमुपास्येति २॥

है सो वेद नाम विषे एकहोते हैं (अर्थात् सामान्य नाम के बिषे सम्पूर्ण वेदहै सो वेद मन्त्र अन्तरगत होता है। अर्थात् सामान्य के अन्तर्गत विशेष होता है) वेदमें सर्व कर्म्म एक होता है (अर्थात् एक सामान्य वेदके अन्तर विशेष मन्त्रहै अरु सामान्य मंत्र केअनन्तर सर्व कर्म्म होते हैं) १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मंत्र दूसरे का॥

सनत्कुमारउवाच॥ हे नारद तिन प्रसिद्ध इन मन्त्रादिकों का संकल्प आयन (स्थान वा आश्रय) वाले होने से संकल्पायन कहते हैं, अर्थात् संकल्प में जिनका गमन कहिये लय होय तिनको कहिये संकल्प एकायन अरु नामादि सर्वको संकल्पात्मक होनेसे सर्वका उत्पत्ति स्थान भी संकल्पही है। अरु संकल्पही उनका स्थितिकालमें आश्रय है (अर्थात् नामादि सर्वका एक संकल्पही कारणहै, संकल्पही आश्रयहै अरु संकल्पही लयका स्थानहै) सर्व संकल्पसे ही है। द्यौ (स्वर्ग लोक) अरु पृथिवी को संकल्पही करताहै, तैसे वायु अरु इस भूताकाशको संकल्पही करता है, तैसे वायु आकाश के संकल्पसे जल अरु तेजको संकल्पही करता है, तिनका संकल्प करके वर्षा को संकल्पकरता है, वर्षाका संकल्प करके अन्नको संकल्प करता

स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते संक्लृप्तान् वैस लोकान् ध्रुवान् ध्रुवःप्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानामव्य थमानोऽभिसिध्यति यावत्सङ्कल्पस्यगतंतत्रास्य यथाका मचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संक ल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्र वीत्विति ३ ॥ इति चतुर्थ खंडः ॥

है, अन्नके संकल्प से प्राणको संकल्प करता है, क्योंकि अन्नमयही प्राण है । प्राणको संकल्प कर तिससे मन्त्रों को संकल्प करता है (क्योंकि प्राण करकेही मन्त्रादिकों के उच्चार करने में समर्थ होता है, अप्राणवान् से मन्त्र शब्दके वाच्य वेदादिकों के अध्ययनका संकल्प बने नहीं) मन्त्रों का संकल्प करके अग्निहोत्रादि कर्म्मों को संकल्प करता है, (अर्थात् वेद करके प्रकाशित अनुष्ठान करने के योग्य अग्निहोत्रादि कर्म्मों को संकल्प करता है) तिन कर्म्मों को संकल्प के तिनके फल स्वर्गादि लोकोंको संकल्प करता है, लोकों को संकल्प के सर्व जगत् को संकल्पकरताहै, ताते हेनारद सो यह द्युलोकसेलेकर तृणपर्य्यन्त समस्त जगत् संकल्पही है संकल्प से इतर कुछ नहीं, ताते संकल्प ब्रह्मबुद्धिसे उपास्य है ॥ २ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद सो जो कोई संकल्प को ब्रह्म बुद्धिसे उपासता है तिसको जो फल प्राप्तहोताहै सो श्रवणकर । हे नारद संकल्प ब्रह्मके उपासक को संकल्पकरके रचित ध्रुवप्रतिष्ठित लोककी प्राप्तिहोतीहै अरु वो भी वहां अपने संकल्प पर्य्यन्त ध्रुव प्रतिष्ठित होता है, अरु उनलोकोंकी प्रजाभी अचल है अरु वो भी सर्व व्यथा (दुःख) सेरहित अव्यथमान होताहै, अरु यावत् संकल्प से रचित संकल्पका विषय है तिन विषे इसकी

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचमखंड प्रारभ्यते

चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयो यदावै चेतयतेऽथसङ्कल्पयते
ऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि
मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्म्माणि ॥ १ ॥

जैसी कामना होती है सोई इसको प्राप्तहोता है, जो संकल्प
ब्रह्मकी उपासना करता है। इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा
तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह संकल्पही ब्रह्म है
अथवा इस संकल्पका कोई और भी अधिकतर है। तब सनत्कु-
मार ने कहा हे नारद संकल्प का भी कोई अधिकतर है
इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद पुनः कहताहुआ
कि हे भगवन् जो इस संकल्पका भी कोई और अधिकतरहै तो
हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कहिये ॥ ३ ॥

इतिछान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके चतुर्थ खंडः ॥

अथ अक्षरार्थ भावार्थ खंडपंचम मन्त्रप्रथमका ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद चित्त संकल्पका भूय (अधि-
कतर) है जब चित्तचेतताहै तब संकल्प होता है। अर्थात् यह
वस्तुमुझको प्राप्तहै, इसप्रकार प्राप्तिकालमें वस्तुका अनुसंधान
अन्तःकरण की जिस वृत्तिकरके होनाहै तिसको चित्त कहते हैं।
सो चित्त जब चेतता (वस्तुके अनुसंधान के सम्मुख होता) है
तब संकल्प होता है जब संकल्प होता है तब तिसके अनन्तर
मनमें विचार होताहै, जब विचार होताहै तब पश्चात् वाणी प्र-
कट होती है, तब तिसके अनन्तर वचनका नाम होता है, तिस
नाम बिषे मन्त्र शब्दके वाच्य ऋगादि वेद एक होते हैं ॥:—अ-
र्थात् सामान्य नामके अन्तरगत विशेष वेदहोते हैं अरु सामान्य
वेदके अन्तर विशेष मन्त्रहोते हैं—:॥ अरु मन्त्र बिषे कर्म्म होते
हैं। अर्थात् सामान्य मन्त्र बिषे विशेष कर्म्म एक होते हैं ॥ १ ॥

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तोभवति नायमस्तीत्येवैनामाहुर्यदयं वेद यद्वाऽयंविद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳ ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तेप्रतिष्ठिता चित्तमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद तिन प्रसिद्ध इन संकल्पसेलेके नामपर्य्यन्तका चित्त एक आयन है । अर्थात् चित्त में जिनका गमन कहिये परिअवसान (लय) होय तिनको कहिये "चित्तैकायनानि" अरु नामादि संकल्पपर्य्यन्त सर्वको चित्तात्मक (चित्तसे रचित) होने से सर्वका उत्पत्तिस्थान भी चित्तही है, अरु चित्तही के आश्रय हैं । अर्थात् नामसे लेके संकल्पपर्य्यन्त सर्व चित्तहीसे उत्पन्न होते हैं चित्तहीके आश्रय वर्त्तते हैं, अरु चित्तही में लयहोते हैं ताते सर्व चित्तही है । हे नारद अब चित्तका माहात्म्य श्रवणकर, जिस करके चित्त संकल्पादिकोंका मूलहै तिसही करके बहुतसे शास्त्र अरु तिनके अर्थ का परिज्ञाता होतसन्ते भी जो चित्त विनाकाहोय, अर्थात् प्राप्तादि चेतायितृत्व रहित ॥:— अर्थात् प्राप्तकरने योग्य वस्तुके अनुसंधान सामर्थ्यसे रहित—:॥ होय तो तिसके अर्थ ,जो चित्तवान् निपुण लोकहैं सो ऐसा कहते हैं कि यह चित्तविनाका पुरुष विद्यमान होतसन्ते भी है नहीं यह असद्वत् है । अरु जो कोई थोड़ेशास्त्र का जाननेवाला होके भी अनुसंधान लक्षणवान् चित्त करके युक्तहोय तो निपुण लोक उसको अचित्त पुरुषसे श्रेष्ठ जानके उसके वचनोंको श्रवण करते हैं अरु उसके वचनोंको मानके प्रशंसा करते हैं । हे नारद तिनहीं करके यह चित्त संकल्पादिकों का एकायन (लयस्थान) है, अरु चित्तही उनका उत्पत्तिस्थान है, अरु चित्तही संकल्पादि-

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकानध्रुवान्
ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभि
सिद्ध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भव
ति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इतिचित्ता
द्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति पञ्चम खंडः ॥ ५ ॥

कोंकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है। ताते चित्त उपासना करने योग्य है चित्तकी उपासना करो ॥ २ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद सो जो कोई चित्तब्रह्मकी उपासना करता है तिस चित्तके उपासकको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवणकर। हे नारद चित्तब्रह्मके उपासक को चित्तकरके रचित व्यथासे रहित ध्रुवलोककी प्राप्ति होतीहै अरु उन लोकोंकी प्रजाभी व्यथासे रहित ध्रुव होतीहै, अरु वो उपासक उनलोकोंको प्राप्तहो व्यथा से रहित ध्रुव होता है, अरु यावत् चित्त करके रचित चित्तका विषय है तिनबिषे इसकी जैसी जिस बस्तु की कामना होती है सोई उसको प्राप्तहोता है, जो चित्तको ब्रह्मजानकर उपासना करताहै 'तिसको'। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह चित्तही ब्रह्म है अथवा इसका भी कोई अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने कहा हे नारद इस चित्तका भी कोई अधिकतर है। तब नारद ने पुनः कहा कि हे भगवन् जो इस चित्तका भी कोई अधिकतर है तो सोभी आप मुझको कहिये ॥ ३ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचम खंडः ॥ ५ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षष्ठ खंडः ६ ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौ ध्यायतीवापो ध्यायतीव पर्व्वता ध्यायतीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यान मुपास्स्वेति १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडषष्ठ मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद ध्यान चित्तका भूय कहिये अधिकतर है, अर्थात् शास्त्रोक्त देवताओं के स्वरूप के आलम्बन करके तिनके स्वरूपाकार चित्त जिस उपाय से होवे तिसको ध्यान कहते हैं, ॥ः—अर्थात् देवतादिकों के ध्यान से चित्त एकाग्र अचलहोता है तब अनुसंधानात्मक होय आगे संकल्पको करता है, ताते ध्यान चित्तका अधिकतर है—ः॥ हे नारद ध्यानका माहात्म्य लोक विषे प्रकट देखते हैं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् लोक विषे ध्यानका माहात्म्य प्रकट क्या देखते हैं ॥ उत्तर ॥ हे नारद जिसकाल में योगी ध्याननिष्ठ होता है तिसकाल में ध्यानका फल जो चित्त की निश्चलता तिसको प्राप्तहोता है ॥ः— अरु निश्चल चित्तहोने के प्रभाव से सिद्धियोंको भी देखता है—ः॥ हे नारद जब इसप्रकार है तब ध्यान करके ही यह पृथिवी निश्चल दृष्ट आवती है, ध्यान करकेही अन्तरिक्ष निश्चलहै, ध्यानकरके ही द्युलोक (स्वर्ग) निश्चल है, ध्यानकरके ही जल निश्चल है ध्यान करकेही पर्व्वत निश्चल हुए हैं, ध्यानकरकेही देव मनुष्य हैं, अर्थात् देवता अरु मनुष्य ध्यान करके ही निश्चल चित्तहैं । अथवा शम आदिक दैवी सम्पदा लक्षणरूप स्वभाव ग्रहण करके सम्पन्न मनुष्य देवभावको प्राप्तहोता है सो ध्यानबल करके

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं तत्रा स्य यथा कामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इतिध्यानाद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भग वान् ब्रवीत्विति २॥ ६॥

निश्चल हुआ अपने स्वभाव रूप देवभावको त्यागता नहीं। हे नारद जब देवविशिष्ट ध्यान है तब तिसही करके इस लोक विषे मनुष्योंके मध्यजो धन करके विद्याकरके गुणकरके महत्त्व (श्रेष्ठपने) को प्राप्तहोते हैं सो ध्यान ही का फल है। हे नारद ध्यानकी बहुतसी पाद कला अंश हैं तिनमें से जो कदापि ध्यान की एक कलाको भी प्राप्तहोताहै तो सो मनुष्योंके मध्य महत्त्व-पनेको पावता है॥ हे नारद मनुष्यों के मध्य जो कोई ध्यानकी एक कलासे भी रहित है (ध्यानका कर्त्ता नहीं) सो ,, कल-हिनः,, कलहके स्वभाव वाला, अरु ,, पिशुनः ,, पराये दोषों को देखने वाला, अरु ,,उपवादिनः,, अर्थात् दूसरे के दोषोंको उस के समक्षही कहने के स्वभाव होवे जिसका तिसको उपवादी कहते हैं॥ :—अर्थात् जो ध्यानकलासे रहित होता है तिसका चित्त स्थिर न होनेसे वो पुरुष उक्त दोषों करके युक्त होता है—:॥ अरु जो धनादिकों के निमित्त से महत्त्वको प्राप्तहुएहैं सो अन्यों के अर्थ विद्यादान के आचार्य्य अरु ईश्वरवत् पूजनीय होते हैं। अतएव ध्यानका माहात्म्य प्रकट दृष्ट आवताहै जो चित्तसे अधि-कतर है ताते ध्यान उपासना करने के योग्य है (ध्यान की उपासना करो) १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का॥

सनत्कुमारउवाच॥ हे नारद सो जो कोई ध्यानको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवणकरो। हेनारद ध्यानके उपासकको जो कुछ ध्यानका विषय है अर्थात् ध्यान करके साध्य है) सो सर्व प्राप्त होता है,

अथ छान्दोग्य सप्तमप्रपाठके सप्तमखंडः ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यांदिवंच पृथिवींचवायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च वयाꣳसिच तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्या कीट पतंग पिपीलकं धर्म्मञ्चाधर्म्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधुचासाधुच हृदयज्ञञ्चाहृदयज्ञञ्चान्नञ्च रसञ्चेमञ्च लोकममुञ्च विज्ञानेनैवविजानाति विज्ञानमुपास्येति १ ॥

॥ः–अर्थात् ध्यान ब्रह्म की उपासना करने से चित्तकी एकाग्र निश्चलता अरु तिस करके धन विद्या प्रतिष्ठा पूजनीयता आसि सिद्धि फल ध्यानब्रह्म के उपासक को प्राप्तहोता है–ः॥ ध्यान के विषय विषे जिस उपासक को जिसकी कामना होती है तिसको सोई प्राप्तहोता है, यह ध्यानब्रह्म की उपासना का फल है । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा जब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह ध्यानही ब्रह्म है अथवा इस ध्यान का भी कोई अधिकतर है । तब सनत्कुमार कहते हुए कि हे नारद इस ध्यानका भी कोई अधिकतर है । इसप्रकार जब सनत्कुमार ने उत्तर कहा तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस ध्यानका भी कोई अधिकतर है तो उसको भी आप मेरे अर्थ कृपाकरके कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके षष्ठ खंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड सप्तम मन्त्र प्रथम का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद विज्ञान ध्यानकाभूय, कहिये

अधिकतर है॥ अर्थात् शास्त्रों के अर्थ विषयक ज्ञानको विज्ञान कहते हैं, अरु शास्त्रों के अर्थ विषयक यथार्थ ज्ञानही ध्यानका कारण है क्योंकि ध्यान करने की रीति शास्त्र के अर्थ ज्ञान से ही होती है ताते विज्ञान ध्यान का अधिकतर है॥ प्रश्न॥ सो विज्ञान ध्यान का अधिकतर कैसे है॥ उत्तर॥ हे नारद विज्ञान करके ही ऋग्वेद जाना जाताहै जो यह ऋग्वेद है, इस प्रकार ऋग्वेदके लक्षण क्रमको जानने से तिसके अर्थ क्रमका ज्ञानहोताहै, तैसेही यजुर्वेद, सामवेद, अरु चतुर्थ अथर्वणवेद, यह चार वेद अर्थ सहित एक विज्ञानकरके ही जाना जाताहै। अरु तैसेही, इतिहास पुराण (भारत) जिसको पंचमवेद कहते हैं सो अरु वेदोंका वेद (व्याकरण), पित्र्यꣳ, श्राद्ध कल्प, राशिं, गणितशास्त्र, दैवं, दैवी उत्पात ज्ञानशास्त्र, अरु निधिं, महा कालादि निधिशास्त्र। अरु वाकोवाक्यं, न्याय शास्त्र। अरु एकायनं, नीतिशास्त्र। देवविद्या, निरुक्त। ब्रह्मविद्या, ब्राह्मण भाग वा शिक्षा कल्पादि वेदांग। अरु भूतविद्यां, भूततन्त्रशास्त्र। क्षत्रविद्यां, धनुर्वेद। नक्षत्रविद्याꣳ, ज्योतिष शास्त्र। अरु सर्प देवजन विद्यां, गारुडीविद्या, गंधर्वविद्या, शिल्प विद्या। यह सर्वविद्या उक्त लक्षणवान् विज्ञानकरके ही जानी जाती है॥ हे नारद स्वर्गलोक, पृथिवीलोक, वायु, आकाश, जल तेज, यह सर्व विज्ञान करके ही जाना जाता है। अरु देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, तृण, वनस्पति, भ्रमर, कीट, पतंग पिपीलिका आदि सर्व स्थावर जंगम प्रजासो भी एक विज्ञान करके ही जाना जाताहै। हे नारद तैसेही, धर्म्म, (शास्त्रविहित कर्म्म) अधर्म्म, (शास्त्र निषिद्ध कर्म्म) सत्य, (सत्य भाषण वा वस्तुका यथार्थ ज्ञान) असत्य, (सत्यसे विपरीत) अरु साधु, (सत्यादि धर्म्मका साधनेवाला) असाधु, (धर्म्मादि साधन रहित) हृदयज्ञ, अरु अहृदयज्ञ, अरु सर्व का आश्रय 'अन्न' अरु 'रस' यह लोक, परलोक, आदि जो कुछ यथार्थ जान

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वैसलोकान् ज्ञानवतोऽभिसिद्ध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इतिविज्ञानाद्वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥ इति सप्तमखंडः ७ ॥

जाताहै सो सर्व एक विज्ञान करके ही जाना जाताहै । अतएव हे नारद विज्ञान उपासना करने योग्यहै, ताते विज्ञानकी उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई जिज्ञासु पुरुष विज्ञानको ब्रह्मजानकर उपासना करताहै तिसको जो फल प्राप्तहोताहै सो श्रवणकर । हे नारद जो विज्ञानको ब्रह्मबुद्धिसे उपासताहै सो उन लोकों को प्राप्तहोताहै कि जहां सम्पूर्ण बुद्धिमान् विज्ञानी रहते हैं । अरु उसको भी उस स्थान में सर्व विज्ञान प्राप्तहोताहै । हे नारद उस उपासकको यावत् विज्ञान के अन्तर पदार्थ है ,अर्थात् यावत् विज्ञान का विषय है, तिन सर्व में से जिसकी कामना करताहै सो उसको प्राप्त होता है (अथवा यावत् विज्ञानका विषयहै तिन सर्वका वो अधिष्ठाता होताहै) इस प्रकार जब योगेश्वर सनत्कुमारने कहा तब तिसको श्रवण नारद प्रश्न करताहुआ ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह विज्ञान ही ब्रह्महै अथवा इस विज्ञानका भी कोई और अधिकतर है ॥ उत्तर ॥ सनत्कुमारने कहा हे नारद इस विज्ञानकाभी कोई अधिकतरहै । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस विज्ञानका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मुझको कहिये ॥ २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके सप्तमखंडः ॥ ७ ॥

अथ छान्दोग्येसप्तमप्रपाठके अष्टम खंडः॥

बलंवाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बलीभवत्यथोत्थाता भवत्यु त्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसी दन्द्रष्टा भवति श्रोताभवति मन्ताभवति बोद्धाभवति कर्त्ताभवति विज्ञाता भवति बलेनवै पृथिवीतिष्ठति बले नान्तरिक्षं बलेन द्यौ बलेन पर्व्वता बलेन देव मनुष्या बलेन पशवश्च वयांछं सी च तृणवनस्पतयःश्वापदा न्या कीटपतंग पिपीलकं बलेन लोकास्तिष्ठति बलमु पास्येति॥ १॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड अष्टम मन्त्र प्रथमका॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद बल विज्ञान का अधिकतर है, अर्थात् बल जो है सामर्थ्य सो विज्ञानका अधिकतर है, हे नारद हे सौम्य अन्नके भोजन करने से उत्पन्न होताहै जो मन अरु शरीर का सामर्थ्य तिसको बल कहते हैं, भोजनके न करने से मन वागादिकों के निर्बल होनेसे वेदादिक कुछ भी स्मरण होवे नहीं॥ "नवैमा प्रतिभाति भो, इतिश्रुत्यन्तरे"॥ ताते हेना- रद यह लोकविषे प्रकटहै कि एक बलवान् पुरुष सौविज्ञानवान् को कम्पायमान (अपने वश) करता है, जैसे एक सिंह बहुत से हाथियों को अरु जब शरीरविषे बल होताहै तब आचार्य्यकी सेवाशुश्रूषा होतीहै अरु जब आचार्य्य की सेवाशुश्रूषा करताहै तब सो सेवक आचार्य्य को प्रिय होताहै, अरु जब आचार्य्यको प्रिय होताहै तब आचार्य्यके निकटवर्त्ती होताहै। अर्थात् आचार्य उस अपने प्रिय सेवकको अपने निकटवर्त्ती करता है, अरु जब आचार्य्यके निकट होताहै तब उसको सूक्ष्मदृष्टि होतीहै। अर्थात्

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारोभवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्तिभगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ इति अष्टमखंडः ८ ॥

सूक्ष्म वस्तुके जानने की सामर्थ्य वाला होताहै, अरु जब सूक्ष्म दृष्टि होती है तब आचार्य्य के उपदेश के श्रवण करनेका अधिकारी होताहै, अरु जब आचार्य्य के उपदेश को श्रवण करने का अधिकारी होताहै तब निश्चयका अधिपति होताहै, अरु जब आचार्य्य के वाक्योंमें दृढ़ प्रतीतिवाला होता है, तब (वेदादिकों का) ज्ञाता होताहै, जब जाननेवाला होताहै तब कर्मों का कर्त्ता होताहै, अरु जब कर्म्मों का कर्त्ता होता है तब कर्म्मों के फल स्वर्गादि लोकोंका अधिपति (जय करने वा पावनेवाला) होताहै ॥ हे नारद बल जो है सामर्थ्य तिस करकेही पृथिवी स्थित है, बलही से अन्तरिक्ष स्थितहै, बलही से द्यौ (स्वर्ग) स्थित है, बलकरकेही पर्व्वत स्थितहैं, अरु बलकरकेही देवता अरु मनुष्य स्थित हैं, अरु बलकरकेही पशु, पक्षी, तृण, बनस्पतियां स्थितहैं, बलकरकेही, भ्रमर, कीट,पतंग,पिपीलिका आदि जन्तु स्थित हैं, अरु बलकरकेही सर्वलोक स्थित हैं, (अर्थात् लोक परलोक अरु तदाश्रित स्थावर जंगम सर्वप्रजा स्थितहै) अतएव हे नारद बल उपास्य है (बलकी उपासनाकरो) १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हेनारद सो जो कोई बलको ब्रह्मजान कर उपासना करताहै तिस उपासकको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो । हे नारद जो पुरुष बलविषे ब्रह्मबुद्धिकरके तिसकी उपासना करता है तिसको यावत् बलका विषय (बलकरके साध्यवस्तु) है तिनमें से जिस वस्तुकी जैसी कामना वो उपा-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके नवम खंडः ॥

अन्नंवाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्री नाश्नि याद्यद्युह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्त्ताऽविज्ञाता भवत्यथाऽन्नस्याये द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवत्य न्न मुपास्येति १ ॥

सक करता है सोई उसको उपासनाके प्रभावसे प्राप्त होता है, जो बलको ब्रह्म जानकर उपासना करताहै, तिसको, ॥ हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह बलही ब्रह्महै अथवा इस बलका भी कोई और अधिकतर है। इसप्रकार जब नारदने प्रश्नकिया तब सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद इस बलका भी कोई अधिकतरहै। तब पुनः नारदने कहा कि हे भगवन् जो इस बलका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कहिये २ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके अष्टम खंडः ८ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडनवम मन्त्र प्रथमका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद अन्न बलका भूय, कहिये अधिकतर है, अन्न को बलका हेतु होने से ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् अन्नको बलका हेतुपना कैसे है, इस प्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए ॥ उत्तर ॥ हे नारद जिस करके बलका कारण अन्न है तिसही करके अन्न बलका अधिकतर है, यद्यपि कोई पुरुष दश दिवस भोजन न करे तब अन्न भोजन करने के उपयोग से होता जो बल तिस बलके अभाव हुए सो पुरुष मरजावे अरु जो कदापि जीवता भी रहे तथापि वो बलके अभाव से इन्द्रियादिकों के अशक्त हुए ,अद्रष्टा,

सयोऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽन्नवतो वैस लोकान् पानवतो ऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगवो अन्नाद्भूय इत्य न्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके नवम खंडः ९ ॥

अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्त्ता, अविज्ञाता, होता है ॥ अर्थात् अन्न भोजन किये विना बलहीन हुआ पुरुष जो कदापि जीवता भी है तो इन्द्रियादिकों के अशक्त हुए न तो यथार्थ देखता है न यथार्थ सुनता है न यथार्थ मनन करता है न यथार्थ स्मृती होती है न यथार्थ उससे कर्म होता है न वो यथार्थ कुछ जानता है, मृतकप्रायः हुआ जीवता है, उसका सर्व व्यापार पूर्व से विपरीत होताहै । अरु जब बहुत दिवस पर्य्यन्त अन्न भोजन करता है तब पूर्ववत् द्रष्टाहोता है श्रोता होता है मन्ता होता है ज्ञाता होता है कर्त्ता होता है विज्ञाता होता है । ताते हे नारद अन्नको बलका हेतु होने से उसको ब्रह्म जानकर उपासना करो ॥ १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष अन्नको ब्रह्मभाव से उपासता है तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवणकर । हे नारद जो पुरुष अन्नको बलका हेतु होने से ब्रह्म जानकर उपासना करता है सो पुरुष उसलोक को प्राप्तहोता है कि जहां अन्न जलके दान करता पुरुष प्राप्त होते हैं । अरु यावत् अन्नके अन्तरगत (अन्न का विषय) वस्तु है तिस सर्व को अथवा तिनमें से जिसकी जैसी कामना करताहै तिस अपनी कामना के अनुसार प्राप्तहोता है, जो अन्नको ब्रह्म जानकर उपासना करता है । हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा

अथ छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके दशमखंडः॥

आपोवाअन्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्या. धीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृ ष्टिर्भवत्या नन्दिनः प्राणा भवंत्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्त्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्व्वता य द्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयांछंसिच तृणवनस्पतयः श्वापदान्या कीट पतंग पिपीलकमाप एवेमा मूर्त्ता अ य उपास्स्वेति॥ १॥

तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह अन्नही ब्रह्म है अ- थवा इस अन्न का भी कोई अधिकतर है। तब सनत्कुमार ने उत्तर कहा कि हे नारद इस अन्न का भी कोई अधिकतर है। इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने पुनः कहा कि हे भगवन् यदि इस अन्न का भी कोई अन्य अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मुझको कृपा करके कहिये॥ २॥

इति छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके नवम खंड समाप्तम्॥ ९॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड दशम मन्त्र प्रथमका॥

सनत्कुमार उवाच॥ जल अन्न का अधिकतर है क्योंकि जल अन्न का कारण है ताते। हे नारद जिस करके इस प्रकार है तिसही करके जिस कालमें अन्नकी हितकारी सुन्दर (यथेष्ट) वृष्टि नहीं होती तब तिस काल में सर्व प्राण (सर्व प्राणधारी जीव) अति दुःखित होते हैं॥ प्रश्न॥ किस निमित्त से सर्व प्राणधारी दुःखित होते हैं॥ उत्तर॥ हे नारद जब जिस संव- त्सर विषे यथेष्ट वृष्टि नहीं होती तब थोड़े अन्न के होने से वा थोड़े भी अन्नके होने की आशा के न होने से (दुर्भिक्ष के त्राससे) सर्व प्राणी अन्नका अभाव अनुमानकर (जो सर्व

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्ते आप्नोति सर्व्वान् कामांश्च स्तृप्तिमान् भवति यावदपां गतं तत्रास्ययथा कामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्योभूय इत्य द्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

का जीवन है) अति दुःखित होते हैं ॥ हे नारद जिसकाल में अन्नकी हितकारी सुन्दर यथेष्ट वृष्टि होती है तिसकाल में सर्व प्राणी अति प्रसन्न सुखी होते हैं, क्योंकि धान्यादि अन्नकी हितकारी यथेष्ट वृष्टि होने से उनको बहुत से अन्नहोने की आशा अरु दुर्भिक्षके भयकी निवृत्ति होती है, ताते सुवृष्टिको देख सर्व प्राणी प्रसन्नचित्त होते हैं ॥ हे नारद यह जो जल से संभव हुए मूर्त्तहैं (अर्थात् जलही भेदाकार मूर्त्त परिणामको पायाहोनेसे , यह पृथिवी, यह अन्तरिक्ष, यह द्यौ, जो पर्वतहैं जो देवता हैं जो मनुष्य हैं, अरु जो पशुपक्षी तृण वनस्पति है, अरु जो चतुष्पादहै अन्य सर्पादि कीट पतंग पिपीलिकादि जो मूर्तहै सो जलही इनमूर्त्ताकार से सुशोभितहै । ताते हे नारद यह जल उपासना करने योग्यहै इसकी उपासनाकरो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच । हे नारद जो कोई पुरुष इस जलको ब्रह्म जानकर उपासना करताहै तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवण करो । हे नारद जो कोई पुरुष जलको ब्रह्मबुद्धि से उपासता है तिस उपासक के सर्व मनोरथ सिद्धहोते हैं अरु जो कुछ मध्य जल के है, अर्थात् यावत् जलका विषय है सो सर्व उसको प्राप्तहोता है । अथवा यावत् जलका विषय (कार्य्य) है तिन में से जिस वस्तुकी जैसी यह कामना करता है तिसके अनुसार इसको प्राप्त होताहै जो जल को ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिसको हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकादशो खण्डः॥

तेजो वा अद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमुपगृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेजएव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापस्सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च विद्युद्भिरह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेजउपास्स्वेति १॥

जल ब्रह्मकी उपासना कही तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् हे नमस्कार करनेके योग्य यह जलही ब्रह्महै अथवा इस जलका भी कोई और अधिकतरहै। तब पुनः सनत्कुमार ने कहा हे नारद इस जलका भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारदने कहा हे भगवन् जो इस जलका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कृपाकरके कहिये॥२॥ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके दशमोखंडः १०॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड एकादश मन्त्र प्रथमका॥

सनत्कुमारउवाच॥ हे नारद तेज जलका अधिकतर है क्योंकि तेज जलका कारण है ताते, अरु जिसकरके जल कीयोनि (उत्पत्ति स्थान) तेज है तिसही करके यह तेज बायुको रोकके अपने को निश्चलकर वायुको आकाशमें व्याप्त करता है॥ अर्थात् तेज (अग्नि) वायुको आकाशमें अवरोध कर अपनी ऊष्माको प्रकट करताहै॥ तिस काल में लौकिक पुरुष कहते हैं कि हे भाई इस समय वायुका अवरोध है अरु ऊष्मा (उमस) अधिक है अतएव प्रतीत होताहै जो अब वर्षा होवेगी। हे नारद यह लोक बिषे प्रसिद्ध ही है जो कारण के अभ्युदय देखने से कार्य्य का अनुमान (विज्ञान होता है। ताते

सयस्तेजोब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै सतेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽपहतत्तमस्का नभिसिद्ध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्तिभगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २॥ इति एकादशोखंडः ११॥

तेजही वर्षासे पूर्व अपने उष्मारूप आत्माको (अपने उष्मारूप स्वरूपको) प्रकट देखायके तिसके अनन्तर जलको प्रकट करता है ॥ अर्थात् हे नारद वायु के अवरोधपूर्वक उष्मा के अधिक होनेसे अरु मेघको दृष्टिगोचर न होके अन्य देशमें होने से उस मेघकी गर्जनाअरु विद्युतका बारंबार चमकनादूर से देखके लौकिक पुरुष परस्पर में ऐसा कहते हैं कि हे भाई मेघकी गर्जना श्रवण होती है अरु यह बिजुली भी अति शीघ्र शीघ्र बारम्बार चमकती है, ताते अवश्य बर्षा होवेगी। अरु यह अग्नि ही है जिसने प्रथम अपनेको ऊष्मा अरु विद्युत रूप से प्रकट देखाया है। अरु यह अग्नि जलका कारण होनेसे प्रथम अपने कारण रूपको देखाय तदनन्तर अपने कार्य्य जलको प्रकट करता है। ताते हे नारद अग्नि जलका अधिकतर (कारण) होने से उपासना करने योग्य है अग्नि को ब्रह्मजानकर उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष तेजको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिस उपासक को जो फल प्राप्त होता है सो श्रवण करो । हे नारद जो तेज को ब्रह्म जानकर उपासता है सो आप निश्चय करके तेजवान् होता है अरु तेजवान् लोक को पावता है । अर्थात् जो सूर्य्यादिवत् स्वयं प्रकाश लोक है कि जहां तमका अभाव है तिस लोक को प्राप्तहोता है। अर्थात तेज ब्रह्म के उपासक का अन्तर वाह्य

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्य्या चन्द्रमसा वुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेनशृणोत्याकाशेनप्रतिशृणोत्याकाशेरमत आकाशेन रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति १ ॥

का अन्धकार दूरहोता है अरु वो स्वयंप्रकाश तमवर्जित दिव्य लोक को पावता है। हे नारद जो तेज के अन्तर्गत (तेजका विषय वा तेज करके प्रकाशित) वस्तु हैं तिनमें से जिनकी जैसी कामना करता है सो उसको कामना के अनुसार प्राप्त होता है, जो तेज को ब्रह्म जानकर उपासता है। हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने तेज ब्रह्म की उपासना सहित फल के कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह तेजही ब्रह्म है वा इस तेज का भी कोई और अधिकतर है। तब सनत्कुमारने कहा हे नारद इस तेज का भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस तेज का भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरेको कृपा करके कहिये ॥ २ ॥ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकादशोखंडः ११ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड बारहवें मन्त्र पहिलेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद आकाश तेजका अधिकतर है, क्योंकि वायु करके सहित तेजका कारण आकाश को होने से॥:- अर्थात् पूर्व जो तेजको जल का अधिकतर कहा है तहां वायु सहित तेजको जानना क्योंकि तेजका अधिकतर (कारण) वायु है। तिसको यहां न कहके तेजका अधिकतर आकाश को कहा है अतएव यहां ऐसा जानना कि वायु करके सहितही तेज का अधिकतर आकाश है-:॥ जैसे घटादिकों से मृत्तिका तैसे वायु करके सहित तेजका कारण आकाश है ॥:-अर्थात् तेजका कारण वायु है, तिस अपने वायु रूप कारण करके सहित जो

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वैसलो कान् प्रकाशवतोऽसम्बाधानुरगायवतोऽभिसिद्ध्यति या वदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाश भूय इत्य काशाद्वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

इति द्वादशो खंडः ॥

तेज है तिस तेजका अधिकतर आकाश है—:॥ अतएव तेजका कारण जो वायु तिससे भी अधिकतर आकाश तेजका अधिकतर है ॥ प्रश्न ॥ कैसे आकाश तेजका अधिकतर है ॥ उत्तर ॥ हे नारद आकाश विषेही सूर्य्य चन्द्रमा दोनों तेजरूप अरु विद्युत नक्षत्रगण अरु अग्नि, यह सर्व तेजरूप हुए आकाश के ही आश्रय आकाश के ही अन्तर्गत होते हैं । अर्थात् जो बस्तु जिसके अन्तर्गत होता है सो उस बस्तुका अधिकतर होता है (आश्रय होने से) ताते सूर्य्य चन्द्रादिक यावत् आकाश के अन्तर्गत बस्तु हैं तिन सर्वका अधिकतर आकाश है ॥ हे नारद आकाशही से एक दूसरे को शब्द करता (पुकारता) है अरु आकाशही से दूसरा श्रवण करता है ॥:—अर्थात् बाह्याकाश के आश्रय शब्द होता है, अरु श्रोत्रान्तर अन्तर आकाश से श्रवण होताहै, अरु उभय आकाश की एकता से एक आकाशहीमें शब्द अरु श्रवण होताहै—: ॥ अरु आकाश विषेही अन्योन्य रमणकरते हैं, अरु बाँधवादि वा स्त्री आदिके बियोगसे आकाश बिषेही रमण नहीं भी करते। अरु आकाशमें ही उत्पन्न होताहै अवकाश विना कुछ भी होता नहीं, ताते विशेष करके अंकुरादि आकाशकेही आश्रय उपजते हैं ॥ :— अर्थात् संयोग वियोग उत्पत्ति लय आदिक यावत् व्यवहार होताहै सो सर्व आकाश केही आश्रय आकाशही में होताहै अन्यत्र नहीं—: ॥ ताते हे नारद यह आ-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोदशो खंडः ॥

स्मरो वा आकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीर न्नस्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन् स्म–रेणवैपुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मर मुपास्स्वेति ॥ १ ॥

काश उपासना करने योग्य है, आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो। हे नारद जो पुरुष आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करताहै सो उन लोकों को जो आकाशवत् हैं। अर्थात् आकाशका अरु प्रकाशका नित्य सम्बन्ध होनेसे अवकाश प्रकाश अरु अपाररूप लोकों को प्राप्त होता है, अरु अभय अरोग होताहै। जैसे आकाश अभय अरु अरोग है तैसेही वो उपासक होता है। हे नारद जो कुछ आकाशके अन्तर्गत है तिनमें जिसकी जैसी कामना वो उपासक करताहै तिसको सो कामना के अनुसार प्राप्त होताहै, जो आकाशको ब्रह्मजानकर उपासना करता है, तिसको, हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने नारद से कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह आकाशही ब्रह्म है वा इसका भी कोई और अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने उत्तर दिया कि हे नारद इस आकाशका भी कोई और अधिकतरहै। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद पुनः कहता हुआ कि हेभगवन् जो इस आकाशकाभी कोई और अधि-

कतरहैतो हे भगवन् सोभी आपमेरे प्रति कृपाकरके कहिये ॥२॥

इति द्वादशोखंडः ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद स्मरण (स्मृति) आकाशका अधिकतर है । अर्थात् स्मरण अन्तःकरणका धर्म्म है, जिसकरके आचार्यादिकों से श्रवण किया बचन सदा अन्तःकरण बिषे रहे ऐसा जो स्मरण वा स्मृति सो आकाशका अधिकतर है, हे नारद जो स्मृतिहै तो आकाशादि सबं हैं अरु जो स्मृति नहीं आकाशादि कुछ भी नहीं, क्योंकि आचार्य से श्रवण किया आकाशादिवस्तु अरु तिनके स्वरूप धर्म्म गुण लक्षण आदि सो जो स्मरणमों हैं तो आकाशादि सर्व हैं अरु जो कदापि श्रवण किये उन आकाशादिकों का स्मरण नहीं तो आकाशादिकों के विद्यमान होते सन्ते भी उसलेखे आकाशादि कुछ भी नहीं । अतएव हे नारद आकाशका अधिकतर स्मरण है । हे नारद इस लोक विषे स्मरण का अधिकतरपना प्रकट ही दृश्य आवता है जिसकरके तिस करकेही यद्यपि बहुत से पुरुषों का समूह एक स्थान विषे स्थित होवे अरु वो अन्योन्य में भाषणकरे अरु उनकेभाषण किये बचनोंका स्मरण न होवे तो मानों उस पुरुषने किंचिन्मात्र कुछ भी शब्द श्रवण किया नहीं अरु तैसेही जो स्मृति नहीं तो प्रतीत भी उनको नहीं क्योंकि स्मरणसेही प्रतीत होती है तिसके अभाव से नहीं अरु स्मरणके अभावसे जानता भी नहीं अरु हे नारद जिसकालमें यथार्थ स्मरण होताहै तिस काल में श्रवण करता होता है, प्रतीतका कर्त्ता होताहै, जाननेवाला होता है । अर्थात् पूर्वकालमें श्रवणादि किया विस्मरण होजावे सो पुनः जिसकालमों स्मरणमों आवे तिसकाल मेंही वो श्रवणादिकिया होता है । हे नारद स्मरण से पुत्र पशुओंको पावता है॥:—अर्थात् किसी पुरुषके पुत्रादिक चिरकाल से प्रदेशमें होवें अरु उस पुरुषको उन पुत्रादिकों का स्मरण होवे तो उन पुत्रादिकों को प्रदेशमें होतेसन्ते भी वो उस पुरुषको प्राप्त है, अरु जो

सयः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति त्रयोदशोखंडः ॥

उस पुरुषको अपने पुत्रादिकों का स्मरणनहीं अरु उसके पुत्रादि प्रदेश से आयप्राप्तहुए भी होवें तोभी उसको स्मरणके अभाव से प्राप्तहुए भी पुत्रादिक अप्राप्तही हैं—॥ ताते हे नारद जो आकाशका भी अधिकतर स्मरण को जानके स्मरणकी उपासना करो ॥ १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जो कोई पुरुष स्मरणको ब्रह्म जानकर तिसकी उपासना करता है तिस उपासकको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो। हे नारद जो पुरुष स्मरणको जो आकाशका अधिकतर है, ब्रह्मजानकर उपासना करता है तिस को यावत् स्मरणके अन्तर्गत है सो सर्व प्राप्त होता है। अथवा यावत् स्मरणके अन्तर्गत (स्मरणका विषय) है तिनमें से जिसकी जैसी कामना वो उपासक करता है तिसकामनाके अनुसार प्राप्त होताहै। जो कोई स्मरण को ब्रह्मजानकर उपासना करता है, तिसको,। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह स्मरण ही ब्रह्म है अथवा इसका कोई और अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने कहा हां इस स्मरण का भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारद ने कहा हे भगवन् जो इस स्मरणका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कृपाकरके कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोदशोखंडः १३ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठकेचतुर्दशोखंडः ॥

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वैस्मरोमन्त्रानधीते कर्म्माणि कुरुते पुत्रछंश्च पशूछंश्चेच्छत इमंञ्चलोक मसुञ्चेच्छत आशामुपास्येति १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड चौदहवांमन्त्रपहिला ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद आशा स्मरण का अधिकतर है । अर्थात् अप्राप्त वस्तुकी जो आकांक्षा तिसको आशा कहते हैं । ताते , आशा, तृष्णा, कामना, यह सर्व एकही के पर्याय नाम कहते हैं । अतएव आशा स्मरणका अधिकतरहै, क्योंकि जिस वस्तुकी आशा होती है तिसही का स्मरण होताहै, ताते अन्तः करण विषे जब फलकी आशा होती है तब कर्म्मोंका स्मरणहोताहै तब तिन कर्म्मोंके करने के अर्थ प्रथम ऋग यजु साम अरु अथर्व इन चारो वेदोंका सहित अंगोंके अध्ययन करताहै (क्योंकि वेदके अंगोंके अध्ययन किये विना कर्म्मोंकी विधि यथार्थ जानने में आवे नहीं) पश्चात् उसकर्म्मकी आशाके अनुसार कर्म्मोंको करताहै, तब तिन कर्म्मोंके आश्रय पुत्र पौत्रादिकों को अरु गोअश्वादि पशुओं को , अर्थात् इसलोक परलोकके विषय पदार्थोंको अपनी आशाके अनुसार इच्छताहै (तब तिसके अनुसार कर्म्मकरके तिसको प्राप्तहोताहै । अतएव हे नारद यह आशा स्मरणका भी अधिकतर होनेसे उपासना करने योग्यहै ताते आशाकी उपासना करो १ ॥

स य आशा ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्यसर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा ह्यस्याशिषो भवन्ति यावदाशायागतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आशा ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष आशा ब्रह्मकी उपासना करताहै तिसको जो फल प्राप्तहोताहै, सो श्रवण करो। हे नारद जो आशाको स्मरणसे भी अधिकतर ब्रह्म जानकर उपासना करताहै उसकी यावत् कामनाहै सो सर्व पूर्ण होती है 'अर्थात् वो उपासक धनादि जिस वस्तुकी प्रार्थना (इच्छा) करताहै सो आशाकरकेही पावताहै॥:–नामसे स्मरण पर्य्यन्तपूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर जो अधिकतरहै सो सर्व एक आशाकरकेही सिद्ध होताहै अन्यथा नहीं –:॥ हे नारद आशा ब्रह्मके उपासकको यावत् आशाके अन्तरगत पदार्थ (आशाका विषय, आशासे प्राप्त होने योग्य) है तिनमें से जिसकी कामना करताहै सो उसको कामनाके अनुसार प्राप्तहोताहै, जो आशाको ब्रह्मबुद्धि से उपासताहै' तिसको, हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह आशाही ब्रह्महै अथवा इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने उत्तरदिया कि हे नारद हां इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै। इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब तिसको श्रवण कर पुनः नारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै तो हे भगवन् सो आप मेरे प्रति कहिये २ ॥

इतिछान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके चतुर्दशोखंडः ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके पंचदशोखंडः ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्व्वंछं समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणोह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्य्यः प्राण ब्राह्मणः १ ॥

अक्षरार्थ ॥

प्राण आशाका अधिकतर है जैसे अरानाम काष्ठ (रथचक्र की) नाभि बिषे अर्पित होते हैं, तैसे प्राण बिषे (इन्द्रियादि) सर्व अर्पित हैं, प्राण जो है सो प्राणकरके आवता है प्राणजो है सो प्राणको देताहै प्राणके अर्थ देताहै प्राणही प्रसिद्ध पिताहै प्राण माता है प्राणभ्राताहै प्राणस्वसा है प्राण आचार्य्य है प्राण ब्राह्मणहै १ ॥

भावार्थ खंड पन्द्रहवें मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद प्राण आशाका अधिकतर है । क्योंकि नामसे लेके आशापर्य्यन्त कार्य कारणता करके वा निमित्त नैमित्तिकता करके उत्तरोत्तर अधिकतरत्व करके स्थित है ॥:— अर्थात् पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर कारण वा निमित्तहै, अर्थात् कर्मका कारण मन्त्रका कारण नाम नाम उच्चारणका कारण वा निमित्त वाणी वाणी के प्रवृत्त होनेका निमित्त कारण मन । इसप्रकार पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर जो जिसका कारण वा निमित्त है सोई उसका अधिकतर है —:॥ सो नामसे आशा पर्य्यन्त सर्व जैसे सूत्रविषे मणिगण तैसे प्राणविषे परोये हुए प्राणके आश्रय स्थित है ॥:— वागादि इन्द्रियों का सर्व व्यापार प्राण के आश्रय होताहै प्राणविना किसी का भी व्यापार बने नहीं जैसे सूत्रसे पृथक हुए मणिगण बिखर जाते हैं तैसेही प्राण

बिना वागादि सर्व इन्द्रियां बिखर जाती हैं किसी भी कार्य में समर्थ होवे नहीं, ताते इन्द्रियादि सर्व प्राण बिषे ग्रथित (परोये) हुए स्थित हैं-: ॥ ताते हे नारदजी ऐसा जो प्राणहै सोई आशाका अधिकतर है प्रश्न ॥ हे भगवन् इस प्राणको आशाका अधिकतरपना कैसे है सो आप कृपाकरके आज्ञा करिये ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहतेहुए ॥ उत्तर ॥ हे नारद अबहम तुमको प्राण का अधिकतरपना एक दृष्टान्त द्वारा कहताहौं तिसको श्रवण कर। हे नारद जैसे लोकबिषे निश्चय करके रथके चक्र (पहिये) के अरानाम काष्ठदंड रथचक्र की नाभि (मध्यके काष्ठ) बिषे समर्पित कहिये सम्यक् प्रकार प्रवेशको पाय स्थित होते हैं हे नारद तैसेही इस लिंग संघात प्राणबिषे कि जो देह बिषे मुख्य है, अरु जिसबिषे सत्चैतन्य परादेव ने इस नामरूप के प्रकट करने की इच्छासे , जैसे आदर्श बिषे पुरुषका अरु जलादिकों विषे सूर्य्यादिकों का प्रवेश होताहै तैसे अपने आभास जीवरूप से आपही प्रवेश करताहै। अरु जैसे किसी महाराजाका तैसे सर्वाधिकारी ईश्वरका ॥ :-अर्थात् जैसे किसी महाराजाधिराज चक्रवर्त्ती राजाका सर्वाधिकार सम्पन्न मुख्य प्रधान होताहै-:॥ तैसेही ॥ "कस्मिन्न्वह उत्क्रांतउत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत इति" ॥ यह प्रश्न उपनिषद्की श्रुतिप्रमाण सर्वके प्रथमके एक अद्वैत सत् परमात्माने विचार किया कि किसके उत्क्रमण (निकलने) से मेरा उत्क्रमणहो अरु किसके स्थिर होनेसे मेरा स्थित रहनाहो (अर्थात् गति स्थिति से रहित सर्व विक्रिया बर्जित जो मैं तिसमेरी किसके निमित्त से गति स्थितिहो, ऐसा बिचार अपनी गति स्थितिके अर्थ अरु अन्य दर्शण श्रवणादि व्यापार की सिद्धि के अर्थ प्रथम अपना मुख्य प्रधान स्थानापन्न प्राणको सृजताहुआ जो चैतन्य परमात्माकी छायावत् है। अथवा जिस प्राण बिषे

अपनी छाया (आभास) रूपसे प्रवेश कियाहै । वा जो राजाके प्रधानवत् परमात्माकी छाया इन्द्रियादि सर्व संघातका ईश्वर है ॥ हे नारद सो जैसे रथके चक्र (पहिये) के अरानाम काष्ठ विषे नेमि (पहिये के ऊपरका काष्ठ चक्र जो मार्ग से स्पर्श करता घूमता चलताहै) अर्पित होताहै, अरु वो अराचक्र के मध्य की नाभिविषे अर्पित होते हैं । हे नारद तैसेही एतनी भूतमात्रा (शब्दादि तन्मात्रा अरु पृथिव्यादि महाभूत विषे) अरु प्रज्ञा मात्रा (शब्दादि विषय अरु बुद्धि विषे अरु तिनकी जनक इन्द्रियों विषे प्राण प्रवेशितहै । अथवा प्राणरूप सूत्रविषे उक्त भूतमात्रा अरु प्रज्ञामात्रा (समष्टि व्यष्टिसर्व) अर्पित हैं ॥ तथाच ॥ "प्रज्ञामात्रा प्राणे अर्पिता स एव प्राणएव प्रज्ञात्मेति । कौशीतकी उपनिषद् विषे" ॥:—अर्थात् जैसे रथचक्र की नाभि के आश्रय अरा अरु अराओं के आश्रय चक्रकी नेमि होती है तहां जो चक्रके मध्यकी नाभि टूटजाय तो तदाश्रित अरा अरु अराश्रित नेमि यह सर्व छिन्न भिन्न होजावे, तैसेही हे सौम्य प्राण रूप नाभिके आश्रय मन इन्द्रियादि अरा अरु तदाश्रित शरीर रूपा नेमि अपने २ व्यापार में चलते हैं, अरु जो कदापि उन से प्राणरूप नाभि पृथक् होजावे तो यह सर्व अरा नेमि छिन्न भिन्न होके अभाव होजाय, अतएव यह सर्व प्राणही के आश्रय है—: ॥ अतएव हे सौम्य जिस यह प्राण विषे सर्व समर्पितहैं तो यह प्राण अपरतन्त्रहै (परतन्त्र नहीं) प्राण अपनी स्वशक्ति करकेही जो जो आवता है प्राण विषे जो गमनादि क्रियाहै सो अन्य किसीकी भी करीहुई नहीं किन्तु प्राण अपनीही सामर्थ्य से गमनादि क्रिया करता है । अरु सर्व क्रिया कारक फल इन का जो भेदहै सो प्राणही है अर्थात् प्राणसे बाहिर्मुख कुछ भी नहीं, यह इस प्रकरणका अर्थहै ॥ अतएव हे नारद प्राण जो है सो प्राणको (अपने आत्मभूतको) देता है, अर्थात् प्राण जो देता है अपने से उद्भूतहुए वा प्राणधारी को देताहै । अरु जिसके अर्थ

सयदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्य्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्य्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसि २ ॥

देता है सो भी प्राणही है, एतदर्थ प्राणही पिताहै प्राणही माता है प्राणही भ्राता है प्राणही स्वसाहै प्राणही आचार्य्य है प्राणही ब्राह्मण है, ॥ः—अर्थात् माता पिता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण, यह सर्व जो धनादि देनेके पात्रहैं सो भी सर्व प्राणही है अरु इनके अर्थ जो कुछ दियाजाता है सो भी प्राणही है, अरु जो देताहै सो भी प्राणही है, प्राण बिना कुछ भी नहीं ॥ प्रश्न ॥ नारदउवाच, हे भगवन् पिता आदि शब्दों का प्रसिद्ध अर्थ का विषय जे देह तिस बिषे प्राण शब्दका विषयपना कैसे है सो आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हेनारद जिन शरीरों बिषे पिता आदि शब्दों का प्रयोग है सो प्राणके होते संतेहीहै प्राणके उत्क्रमण हुए शरीरों बिषे पिता आदि शब्दों का प्रयोग अघटित है ॥ः—अर्थात् यावत् शरीर में प्राण रहताहै तावत् वो शरीर पिता आदि नामों से कहाजाताहै, अरु जब शरीर से प्राण निकल गया अरु शरीर विद्यमान भी रहा तथापि उस शरीर विषे पिता आदि शब्दोंका प्रयोग बने नहीं, अरु यदि उस शरीर को पिता आदि शब्दों से कहते भी हैं तो भी मेरा पिता मरगया इसप्रकार मृतक विशेषण युक्तही पिता शब्दका प्रयोग मृतक शरीर बिषे होता है, ताते पिता आदि शब्दोंका बिषयत्व मुख्यता करके प्राणबिषे ही घटित है—ः॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यदि पिताको वा माता को वा भ्राता को वा स्वसा को

वा आचार्य को वा ब्राह्मण को किंचित् निन्दाके वाक्य कहै तब उसको विवेकी पुरुष धिक्कार कहते हैं तू निश्चय करके पिता माता भ्राता स्वसा आचार्य्य अरु ब्राह्मण इनका हनन करताहै २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

नारद उवाच ॥ हे भगवन् पितादि शब्दका बिषयपना प्राण को कैसे है ॥ उत्तर सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद अब इसको भी श्रवणकरो, जो कोई पुरुष अपने पिता माता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण (जो पूजने योग्य हैं तिनको अनकहना बचन (मर्मभेदी वाक्य) कहै कि जिस करके श्रोताके अन्तःकरण विषे अति खेद उपजे, तब उस वक्ताके निकटवर्त्ती विवेकी पुरुष (जो उसको मार्गभेदी कठोर वाक्य कहने के जानने वाले हैं) सो उसको कहतेहैं कि तूने यह अति निन्दित कर्म किया है ताते तुझको धिक्कार है, मानो अपने पिता आदिकों का हनन कर्त्ता तुही है, माताका हनन कर्त्ता तुही है, भ्राताका हनन कर्त्ता तुहीहै, स्वसाका हनन कर्त्ता तुहीहै, आचार्य्य का हनन कर्त्ता तुहीहै ब्राह्मण का हनन कर्त्ता तुहीहै । अर्थात् जिन प्राणधारियों को दुर्वचन कहके तू उनके अन्तःकरण बिषे खेद उपजावताहै तिनका मानो तू हनन करने वालाहै, अतएव तुझको धिक्कार है। हे नारद इस प्रकार प्राण के माहात्म्यको जानने वाले जे विवेकी पुरुष हैं सो उस निन्दक अविवेकी पुरुष के प्रति कहते हैं। हे सौम्य इस श्रुति के कहने का तात्पर्य्य यहहै जो कोई पुरुष अपने माता पिता आदि ज्येष्ठ श्रेष्ठों को न कहने योग्य दुर्वाक्यकहके उनके प्राणको दुःख देताहै सो अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठों के हनन रूप पाप कर्मों का कर्त्ता होताहै तिसही करके वो प्राण के वेत्ता विवेकी पुरुषों करके धिक्कार करने योग्य होताहै।अतएव अपने माता पिता आदि ज्येष्ठ श्रेष्ठ पूजनीय पुरुषों को, अरु साधारण सर्व प्राणधारियों को दुर्वाक्य कहके उनके चित्तको खेद कदापि उपजावना (देना) नहीं २॥

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाच्छूलेन समासं व्यति सन्दहेन्नैवेनं ब्रूयुः पितृहासीति नमातृहासीतिनभ्रातृहासीतिनानास्वसाहासीति नाचार्य्यहासीति न ब्राह्मणहासीति ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे नारद यद्यपि पितृ आदि अन्य शूल (व्यथा) करके शरीरको त्यागते हैं तब उनके मृतक शरीरों को वोही पुरुष दग्ध (भस्म) करताहै अरु प्राण उस मृतक शरीर बिषे नहीं होते तब उसको कोई भी ऐसा नहीं कहता जो तू पितादिकों का हनन करने वाला है ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हेनारद जब उस निन्दक पुरुषके कि जो अपने मातापिता आदिकों को दुर्वाक्य कहके मर्मबेधी क्लेशका देने वालाहै, पिता आदिक जब शरीर को त्यागते हैं तब वोही पुरुष उनके शरीरों को दाह भस्म करने रूप अति क्रूर कर्म्म को करता है तथापि उन मृतक हुए शरीरों में प्राण के न होने से उस पुरुष को कोई भी विवेकी पुरुष ऐसा नहीं कहता जो तूने यह अपने पिता आदिकों के शरीर दाह करने रूप निकृष्ट कर्म्म कियाहै तू अपने पिता माता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण आदिकों का हनन कर्त्ता है ॥ अतएव हे नारद पिता माता भ्राता स्वसा आचार्य्य ब्राह्मण आदि सर्व प्राणही है, शरीर नहीं ॥:—हे सौम्य उक्त श्रुति के कहने से यह जानना जो किसी भी प्राणधारी को किसी भी प्रकार का खेद देना नहीं, अरु किसी भी अपने ज्येष्ठ श्रेठों को दुर्वाक्य कहके उनके प्राणको क्लेशदेना नहीं क्योंकि दुर्वाक्य कहके जो अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठों को क्लेश पहुंचावना है सोई उनका हनन करना है ताते किसी भी प्राण धारी

प्राणोह्येवैतानि सर्वाणिभवति सवा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नति वादी भवति तञ्चेद् ब्रूयुरति वाद्यसीत्यति वाद्यस्मीति ब्रूयान्ना पह्नुवीत ॥ ४ ॥
इति पंचदशो खंडः ॥

को कायिक वाचिक मानसिक अर्थात् काया वाचा मनसा, करके खेद देना नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ

सो जो कोई इस प्रकार इस प्राणको श्रेष्ठ जाने जो प्राणही यह सर्व होता है ऐसा देखे ऐसा मनन करे ऐसा जानके कहै सो अतिवादी होता है । अरु जो कोई उसको कहै जो तू अति वादी है, तब वो इच्छता है जो इसको अंगीकार कर कहो जो मैं अति वादी हों ४ ॥ इति पञ्चदशो खंडः ॥

भावार्थ मन्त्र चतुर्थका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई निश्चय करके सम्यक् प्रकार प्राणका जानने वाला है जो प्राणही यह सर्व हुआ है ऐसे जैसा श्रुतिने कहा है तैसे प्राण विद्याके फल को प्रत्यक्ष देखता है अरु प्राण की उपपत्ति (समीप प्राप्ति से मनन करता है, अरु प्राण की उपपत्ति से संयोज करके यह ऐसेही है इसप्रकार निश्चय मनन विचारसे प्राणको जानता है; क्योंकि सम्यक् मनन विचार से ही उत्पन्न हुए विज्ञान करके ही शास्त्र का अर्थ निश्चित देखा होता है, अथवा मनन विज्ञान दोनों करके ही सम्यक् प्रकार शास्त्रका अर्थ निश्चय अरु देखा (अनुभवकिया) होता है । अतएव इस कहे प्रकार प्राण के माहात्म्यका यथार्थ अनुभवि अति वादी होता है अर्थात् नामसे आदि लेके आशान्त पर्यन्त जो पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर अधिकतर हैं तिन सर्वको उल्लंघन करके सर्वसे अधिकतर प्राणके माहात्म्यको

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षोड़शो खंडः ॥

एषतु अति वदति यःसत्ये नाति वदति सोऽहं भगवःसत्ये नाति वदानीति सत्यन्त्येव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति षोड़शोखंडः ॥ १६ ॥

कहने के स्वभाव वाला होता है। अरु जो कोई विवेकी पुरुष उसको ऐसा कहे कि तू अतिवादी है, अर्थात् सर्वदा सर्व करके प्राण जो सर्व्वात्मा सर्व्व से ज्येष्ठ श्रेष्ठ है तिसके कहने के स्वभाव वाला होने से तू अतिवादी है, क्योंकि नाम से आशा पर्य्यन्त सर्व से पृथक् सर्व्वका अधिकतर वर्त्तमान प्राण को ही कहता है तातें। हे सौम्य इस कहे प्रकार प्राणके देखने का स्वभाव है जिसका तिसको लोक अतिवादी कहते हैं, कि तू अतिवादी है। तब वो उक्त प्रकार का प्राणवित् पुरुष ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त समस्त जगत्का आत्मा प्राण मैं हूं, इस प्रकार कहता है कि मैं अतिवादी हौं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् ऐसा वो क्यों कहता है ॥ उत्तर ॥ हे नारद यथोक्त प्रकार प्राणको यथार्थ जानके अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त समस्त जगत्के ईश्वर प्राण को अपना आप आत्मा जानता है तातें अपने आप को अतिवादी कहता है ॥ ४ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचदशो खंडः १५ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे नारद यह तो सत्य को जाने तिसको अतिवादी कहते हैं ॥ नारद उवाच ॥ हे भगवन् सो मैं उस सत्को जानने की इच्छा करता हौं ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वो सत्य भाषण अरु सत्यके विज्ञान से जानने योग्य है ॥ नारद उवाच ॥ हे भगवन् मैं विज्ञानके जानने को इच्छता हौं ॥ १ ॥ इति षोड़शो खंडः ॥

भावार्थ खंड षोड़शवें का ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब सनत्कुमारने नारदकेप्रति प्राणका सर्व्व से अधिकतरपना सहित प्राण विद्या के माहात्म्यके वर्णन किया तब सो यह नारद (जो सनत्कुमार के पास आत्मविद्याके अर्थ जिज्ञासापूर्वक आयाहै) सो अपने उपास्य प्राणात्माको सर्व से अधिकतर श्रवणकर उसको सर्व से अधिकतर जान उससे अधिकतर अन्य कोई नहीं ऐसा निश्चयकर आगे प्रश्नकरने से उपराम तूष्णींहोताहुआ ॥:—अर्थात् नारद पूर्वप्राण कोही सर्वसे अधिकतर परमश्रेयजानता मानताथा परन्तुतिसके जानने मानने से अपने को कृतकृत्यशान्तात्मा न मानताथा प्राण को चंचल अरु जड़ अनात्म धर्म्मवान् होनेसे, ताते सनत्कुमार के पास प्राप्तहो आत्मज्ञानार्थ प्रश्न करताहुआ, तब सनत्कुमार ने सोपानक्रम से प्रथम नामादिकों को ब्रह्मजानके उपासना कर्त्तव्य कहा अरु जिसको जिसको सनत्कुमारने ब्रह्मभाव से उपास्य कहा तहांही तहां नारदने प्रश्नकिया कि हे भगवन् यही अधिकतर है वा इसका भी कोई और अधिकतरहै जो होय तो सो भी आप मेरे प्रति कहिये। अरु जब सनत्कुमारने प्राणको अरु तिसके माहात्म्यको नामादि सर्वसे अधिकतरसर्व्वात्माकहा तब तिसको श्रवणकर अपने उपास्य प्राणात्माको सर्व से श्रेष्ठ जान इससेपरे और कोई नहीं ऐसा निश्चयकर आगे को प्रश्न करने से उपराम तूष्णीं होताहुआ, ताते नारद पूर्व से प्राणको ही सर्व्वात्मा ब्रह्म जानकर उपासना करनेवाला प्राणका उपासक था—॥ प्राणके माहात्म्यको श्रवणकर पुनः यह प्रश्न नारद ने पूर्ववत् न किया कि हे भगवन् इसप्राणसेभी कोई और अधिकतर है जो होय तो सो भी आप मेरे प्रति कहो) प्रश्न करनेसे उपराम तूष्णीं होता हुआ ॥ तब नारदको प्रश्न करनेसे उपरामहुआ देख सनत्कुमारने विचारकिया कि यह नारद विकारभूत अनृत (मिथ्या) ब्रह्मके विज्ञानसे सन्तुष्टहो तूष्णींहुआहै। परन्तु यह प्राणके

विज्ञानसे अपनेको कृतार्थ मानके तूष्णींहुआ है अतएव यह वास्तवसे कृतार्थहुआ नहीं, अरु यह कृतार्थ होनेके अर्थ मेरे निकट आयाहै, अरु कृतार्थ तो सो होता जो परमार्थ सत्यको जानके तिसके कहने के स्वभाववाला अतिवादी होताहै ताते इसनारदके प्रश्न किये विनाही भूमाख्य परमतत्त्वका उपदेशकर इसको वास्तवसे कृतार्थ करनाचाहिये, अरु अतिवादी तो सो होताहै जो मैं आगे कहोंगा तिसको सम्यक् प्रकार जानके कहने के स्वभाववाला होताहै क्योंकि वो वस्तु प्राणादि सर्वसे अतिशय अधिकतरहै, ताते परमार्थ करके प्राणहीको जानके तिसके कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होता नहीं, अरु मैंने जो प्राणके ज्ञाताको अतिवादी करके कहाहै सो नामादि आशा पर्य्यन्तके जाननेवाले की अपेक्षासे कहाहै वास्तवसे नहीं, जो भूमानामवाले परमार्थ तत्त्वको सम्यक् प्रकार जानके जो अन्य जिज्ञासुओं प्रति कहताहै सो अतिवादी होताहै ॥:— अर्थात् जो भूमानामवाला परमार्थ तत्त्व शास्त्रों के संस्काररहित साधारण पुरुषों की वाणी आदिकों का विषय नहीं, अथवा ।" यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे जिसके प्रतिपादन करने में असमर्थ वाणी जहांसे लौट आवती है तिस तत्त्वको आचार्य्य द्वारा श्रवण मनन द्वारा यथार्थ अनुभव करके जो अन्य जिज्ञासुप्रति कहताहै तिसको अतिवादी कहते हैं —:॥ हे सौम्य इस प्रकार विचार योगेश्वर परमब्रह्म निष्ठ भगवान् सनत्कुमार नारद प्रति कहते हुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद यह तो सो पुरुष अतिवादी होता है जो सत्य भाषणादि साधन सम्पन्न हुआ परमार्थ सत्य वस्तुका सम्यक् विज्ञानवान् हुआ सत्य को कहता है हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब तिसको श्रवणकर नारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो परमार्थसत्य बस्तुके विज्ञानकरके कहताहै सो परमार्थ से अतिवादी होता है तो सो मैं जो अपने को कृतकृत्यता के अर्थ आपकी शरण को

अथ छान्दोग्येसप्तमप्रपाठके सप्तदशो खंडः ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदती नाविजानन् सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विजानन्त्येव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ इति सप्तदशो खंडः १७ ॥

प्राप्त हुआहौं सो परमार्थ सत्यकरके परमार्थ से अतिवादी होना इच्छताहौं, ताते जिस प्रकार मैं परमार्थसे सत्यके कहनेके स्वभाव वाला अतिवादी होवों सो आप मुझको उपदेश करिये। हे सौम्य इसप्रकार जब नारदने कहा तब पुनःसनत्कुमार कहते हुए ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जो तू इसप्रकार सत्य करके अतिवादित्वपने को इच्छता है तो तहां प्रथम परमार्थ सत्यही जानना योग्यहै जो परमार्थ सत्य क्याहै । इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब वो नारद पुनः कहताहुआ कि हे भगवन् जो आप आज्ञाकरतेहो सो सत्यही है, हे भगवन् मैं विशेष करके सत्यको जानने की इच्छा करताहौं (ताते आप मुझको सत्य जनाइये १ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षोड़शो खंडः ॥

अक्षरार्थ ॥

जवही सत्यको जानताहै तब सत्य कहताहै सत्यको न जानके भी सत्यकहताहै सो परमार्थसे सत्यको नहीं कहता ताते सत्यको जानके कहता है सोई सत्यका कहताहै । ताते विज्ञानही जाननेयोग्य है । हे भगवन् मैं विज्ञानको जानना इच्छताहौं॥१॥ इति सप्तदशो खंडः ॥ १७ ॥

भावार्थ खंड सप्तदशवें का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जब यह जिज्ञासु पुरुष परमार्थ सत्यको विशेषकरके जानताहै कि यह परमार्थसे सत्य है

तब मिथ्या जो विकारजात वाचारम्भणमात्र (तेजादि) तिस को त्यागके तिस नामरूप विकार बिषेही स्थित वा विकारका आश्रय परमार्थ से एकही सत् सत्य है ॥:-अर्थात् जैसे नाम रूपात्मक घटरूप उपाधिका आश्रय सत्य एक मृत्तिकाही है, तिस परमार्थ सत्यरूप मृत्तिका बिषे नामरूपात्मक घटरूप उपाधि जो केवल वाचारंभणमात्रही है तिसको त्याग के तिस उपाधि बिषेही स्थित अरु तिस उपाधि का आश्रय जो परमार्थ से सत्य एक मृत्तिका तिसको यथार्थ जानके कहता है सोई सत्य कहताहै -:॥ शंका ॥ ननु ॥"प्राणावै सत्यं तेषामेष सत्य मिति"॥ इस अन्य श्रुतिकरके प्राणादि विकारको भी सत्य कहा है ताते जो प्राणको सत्य कहताहै सो सत्यबादी क्यों नहीं ॥ समाधान॥ तू सत्य कहताहै परन्तु श्रुत्यन्तरमें प्राणादि विकार को सत्य करके कहा है सो परमार्थ से सत्यनहीं कहा (उत्पत्ति बिनाशवान्होनेसे)॥ प्रश्न ॥ तब उसको सत्य कैसे कहाहै ॥ उत्तर ॥ विकारजात नामरूप कार्य्यको वा प्राणादिकोंकोसत्यता है सो उनके सत्य अधिष्ठानकी सत्यता से है परमार्थ से नहीं। हे सौम्य विज्ञान उसको कहते हैं कि जो वास्तव में सत्य है तिसको सत्य अरुजो असत्यहै तिसको असत्य यथार्थ जानना। अर्थात् उपनिषदोंके सूक्ष्म रहस्यों को यथार्थ जानने से वास्तव करके सत्यहै सो सत्य अरु असत्यहै सो असत्य भासता है, अतएव उपनिषदोंके यथार्थज्ञानको विज्ञान कहते है। ताते हे नारद विज्ञानही प्रथम जानने योग्य है। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने नारदसे कहा तब नारदने कहा कि हे भगवन् जो ऐसेही हैं तो मैं विज्ञानका ज्ञाता होना इच्छता हौं, ताते मैं विज्ञानको जानोंगा ॥ हेसौम्य इसप्रकार सत्यादि पूर्वपूर्वके उत्तरोत्तर हेतुहै। अर्थात् परमार्थ सत्यके जानने के विषय में विज्ञान हेतुहै, विज्ञानकी प्राप्तिके विषय में मनन हेतुहै ॥ इस प्रकारजानना ॥ १ ॥ इति सप्तदशो खंडः १७॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके अष्टादशोखंडः ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ इतिअष्टादशोखंडः १८ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकोनविंश व विंशोखंडः ॥

यदा वै श्रद्दधत्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दध देव मनुते श्रद्धत्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ १९ ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठंश्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेवश्रद्दधाति निष्ठित्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति १॥२० ॥ इति१९—२० खंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड अष्टादश का १८ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जबही यह जिज्ञासु पुरुष मनन करता है तबहीं विज्ञानको प्राप्त होता है, न मननकरने से विज्ञान को पावता नहीं । अरु मनन उसको कहते हैं जो आचार्य्यसे श्रवण कियाहै तिसको सहित बिचार के अरु तर्कके अरु उक्तियोंके दृढ करना, अतएव मननकरकेही विज्ञानको प्राप्तहोताहै । नारद उवाच हे भगवन् मैं मननको जाननेकी इच्छा करताहौं मैं मनन करोंगा इति अष्टादशोखंडः १८ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड उन्नीस व बीस का

सनत्कुमार उवाच । हे नारद जबही यह जिज्ञासुपुरुष श्रद्धा (अपने आचार्य्य के वाक्यपर दृढ विश्वास) करता है तब मननको प्राप्त होताहै, अरु आचार्य्य का वाक्य उपदेश, वोही

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकविंश व द्वाविंशो खंडः ॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति २१ ॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखंलब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखंत्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति २२ ॥

होताहै जो वेदोक्त होताहै। अरु जो आचार्यों के वाक्यमें विश्वास नहींकरता तो मननकोभी नहीं पावता। अतएव हे नारद श्रद्धाही से मननको प्राप्त होताहै। अतएव श्रद्धाको जानना योग्य है। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहता हुआ कि हे भगवन् मैं श्रद्धाको जानना इच्छताहौं अर्थात् मैं श्रद्धा करोंगा १। १६ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जब यह जिज्ञासुपुरुष निष्ठा को करता है तब श्रद्धाको प्राप्त होताहै अरु जो निष्ठाको नहीं करता तो पारमार्थिक श्रद्धाको पावतानहीं। तहां निष्ठा उसको कहते हैं आचार्य्य (गुरु) की शुश्रूषा (सेवा) अरु गुरुके कहे प्रमाण ब्रह्मचर्य्यादि साधन पूर्वक मनन विचारका दृढ अभ्यास करना। जब उक्तप्रकारकी निष्ठाको करताहै तब पारमार्थिक श्रद्धाको पावता है, अतएव हे नारद निष्ठाही जानने योग्यहै। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहताहुआ कि हे भगवन् मैं निष्ठाको जानना इच्छताहौं, मैं निष्ठाकरौंगा १। २०

इति एकोनविंश व विंशो खंडसमाप्तः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड इक्कीस व बाईस का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो कोई जिज्ञासु पुरुष जबही

कृतिको करता है तबही निष्ठादिकों को प्राप्त होताहै । अर्थात् कृति कहिये इन्द्रियों का संयम (दमन वा इन्द्रियों को बिषयों से रोकना) अरु चित्तकी एकाग्रता करनी, इसका नाम कृतिहै, सो यह कृति निष्ठाआदिकोंका कारण है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इन उत्तरोत्तरों को पूर्व पूर्वका कारणपना कैसेहै, सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे नारद पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर को जो कारण-पना है सो सत्यही है क्योंकि उत्तरोत्तर बिषे निष्ठा आदिक जो कहे हैं तिनका संभवहै ताते । अरु जो उक्त कृतिको नहीं करता अरु निष्ठा करता है सो निष्ठा पारमार्थिकी होती नहीं, ताते उक्त कृतिसेही निष्ठा होती है, अतएव कृतिको जानना योग्य है । हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने कहा कि हे भगवन् मैं कृतिको जानना इच्छताहौं मैं कृतिको जानोंगा (करोंगा) २१ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो उक्त प्रकार की कृतिभी तब होतीहै जब सुखका लाभ होताहै, अर्थात् जब यह पुरुष निरतिशय सुख (परमानन्द) प्राप्ति की इच्छा करता है कि मुझको निरतिशय आत्मानन्द सुख की प्राप्ति होय, तब कृतिको, अर्थात् अपनी इन्द्रियों का निग्रह अरु चित्तकी एकाग्रता को, करता है । जैसे लोकबिषे दृष्ट फल की सुख की प्राप्ति की जब दृढ इच्छा होती है तब तिसके उद्देश से तिसकी प्राप्ति के उपाय में प्रवृत्त होता है । अरु सुखके प्राप्तिकी इच्छा विना करता है सो कृति निरतिशय सुख को साधक होती नहीं। अथवा जो विना सुख लाभ की इच्छा के उक्त कृति को करता है तो वो भविष्यत् फल लाभके उद्देश से उक्त कृतिमें प्रवृत्त होना प्राप्तहोता है ॥ हे सौम्य सत्से कृति पर्यन्त उत्तरोत्तर बिषे सत्य जो है सो स्वयं आपही प्रकाशता है तिसके विज्ञानार्थ उक्त साधनों से इतर कुछ भी प्रयत्न कर्तव्य नहीं । अर्थात् परमार्थ सत्यके जानने वाला अतिवादी होता है (प्राणके जानने वाला

नहीं) तिस परमार्थ सत्यके जानने का साधन (कारण) सत्य का विज्ञान है, तिस विज्ञान का साधन मनन है क्योंकि जब श्रवण करीहुई बस्तु का मनन होता है तब तिसका यथार्थ ज्ञान होता है, ताते विज्ञानका कारण मनन है। अरु मननका कारण श्रद्धा (विश्वास) है क्योंकि जब आचार्य के वाक्यमें विश्वास होता है तब गुरुके कहे वाक्य का मनन होता है। अरु श्रद्धा का कारण निष्ठा है अर्थात् जब गुरुके बिषे निष्ठा होती है तब विश्वास (श्रद्धा) होता है, अरु निष्ठा तब होती है जब उक्त प्रकार की कृति होती है अर्थात् जब इन्द्रियों का संयम अरु चित्तकी एकाग्रता रूप कृति को करता है तब निष्ठा होती है, जब निष्ठा होती है तब श्रद्धा होती है, जब श्रद्धा होती है तब मनन होता है, जब मनन होता है तब विज्ञान होता है जब विज्ञान होताहै तब परमार्थ सत्यको जानताहै तब उस परमार्थ सत्यको जानके तिसको कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होताहै। ताते सत्यादि पूर्व पूर्वकी प्राप्तिका कारण उत्तरोत्तरको जानना। अरु इनही साधनों बिषे परमार्थ से सत्य जो भूमानाम वाला अपना आप आत्म सुख (परमानन्द) है सो स्वयं अपने आप को आपही प्रकाशता है, उसके प्रकाशनार्थ उक्त साधनों से अतिरिक्त कुछ भी प्रयत्न कर्त्तव्य नहीं। एतदर्थ यहां कहते हैं कि वास्तविक परमार्थ सत्य सुखही जानने योग्य है॥ हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब तिसको श्रवणकर नारद कहताहुआ कि हे भगवन् हे पूजाके योग्य मैं सुखके जानने की इच्छा करताहौं मैं पारमार्थिक सुखको जानोंगा॥ हे सौम्य उक्त प्रकार भगवन् योगेश्वर परम ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमारने अपने उपदेशात्मक वाक्योंसे उस नारद को 'जो कि कृतार्थ होने के अर्थ अपने बिषे आत्मजिज्ञासा धार सनत्कुमार के समीप आयाहै, पारमार्थिक परमानन्द निरतिशय सुखके जानने की दृढ जिज्ञासा उपजाय अपने वाक्यके सम्मुख किया, अरु सो नारद पारमा-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोविंशोखंडः ॥

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखंभूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इतित्रयोविंशोखंडः ॥

र्थिक अतिशय सुखके जानने के अर्थ एकाग्र चित्तसे सम्मुख हुआ तब सो सनत्कुमार कहताहुआ ॥:— हे सौम्य जैसे वस्त्रके सीवनेवाला दरजी जब अपनी सुई में डोरा परोवने को होताहै तब प्रथम उस सुई के नक्के (छिद्र) को अपने नेत्रके सम्मुख करलेताहै तब उस सुईके छिद्रमें डोरा शीघ्र प्रवेश करताहै । तैसेही आत्मोपदेष्टा गुरु अपनी युक्ति प्रमाण वाक्यसे प्रथम जिज्ञासुके श्रोत्रेन्द्रियको अपने उपदेशात्मक वाक्यके सम्मुख करलेताहै तब उसको उपदेश करताहै तब वो आचार्य्यका किया उपदेश जिज्ञासुके अन्तः करण में शीघ्रही प्रवेशको पाय उसके कल्याणका करता होताहै --:॥ १ ॥ इतिद्वाविंशोखंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड तेईसवें का ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार सत्यसे कृति पर्य्यन्त पूर्व पूर्वकी प्राप्तिका उत्तरोत्तरको कारण कहके सनत्कुमार ने नारदकी चित्तवृत्तिको अपने वाक्यके सम्मुख एकाग्रकर कहतेहुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद निश्चयकरके जो भूमाहै कि जिससे अतिशय और कुछ भी नहीं सोई सर्व से श्रेष्ठ निरतिशय परमानन्द सुख है, तिससे जो अन्य (नीचे) सातिशय है सो अल्प तुच्छहै अतएव तिस तुच्छ अल्पमें सुख नहीं, क्योंकि अल्पकी हेतु अधिक तृष्णाहै, अरु तृष्णा जो है सो दुःखका वीजहै ॥:— अर्थात् जो सुख स्वरूप भूमानामवाले आत्मासे इतरहै सो सर्व असत्य अल्पहै अरु जो अल्पहै सो सर्व तृष्णा का विषय होनेसे परिणाम में दुःखरूपहै क्योंकि तृष्णारूप वीजसे परिणाम दुःखरूपही फल

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यंछं स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

उपजताहै। जैसे लोकविषे ज्वरादि रोग दुःखका हेतु होनेसे उनसे दुःखही उपजताहै, तैसे तृष्णाको दुःखका बीजहोनेसे जिनका हेतु तृष्णाहै तिनसे दुःखही उपजताहै, एतदर्थहीकहाहै कि अल्पमेंसुख नहीं अल्पको नाशवान् होनेसे—॥ अतएव हे नारद निश्चयकरके भूमाही सुख है और नहीं क्योंकि अपने आप सुखस्वरूप भूमाख्य आत्माविषे तृष्णादि दुःखके बीजोंका असंभव है ताते। हे नारद भूमाही तो जानने योग्य है। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो सर्व से अधिकतर निरतिशय भूमाख्य सुखहै तिसके जाननेकी मैं इच्छा करताहौं, मैं उस भूमाको जानोंगा ॥ १ ॥ इति सप्तमप्रपाठके त्रयोविंशो खंडः ॥ २३ ॥

अक्षरार्थ ॥

जहां अन्यको देखता नहीं अन्यको सुनतानहीं अन्यको जानतानहीं सो भूमाहै, अरु जहां अन्यको देखताहै अन्यको सुनता है अन्यको जानता है, सो अल्पहै जोही भूमाहै सो अमरहै अरु जो अल्पहै सो नाशवान है। हे भगवन् वो भूमा किसबिषे रहता है। हे नारद वो कहीं नहीं रहता यदि रहता है तो अपनी महीमाविषे रहताहै ॥ १ ॥

भावार्थ खंड चौबीस मन्त्र प्रथमका

हे सौम्य उक्तप्रकार जब सनत्कुमारने नारदको निरतिशय भूमाख्य सुख कहा तब तिसके जानने की इच्छावाला नारद स-

नत्कुमार से कहताहुआ कि हे भगवन् उस भूमाका लक्षण क्या है सो आपकहिये। इस प्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जहां अन्यको देखता नहीं (सो भूमाहै) अर्थात् जिस भूमानामवाले तत्त्व विषे चक्षुरादि बाह्यकरण अरु मनआदि अन्तःकरण कर के देखने जानने योग्य अन्यवस्तु कुछ भी नहीं, क्योंकि जो दृष्टिसे देखाजाता है सो दृश्य अन्यही होताहै। अर्थात् उस भूमानाम वाले अद्वैत तत्त्व बिषे दृश्य दर्शन दृष्टि इत्यादि अन्य विशेषभावनहीं। हे नारद तैसेही उस भूमाख्य तत्त्व विषे अन्यको सुनत नहीं, क्योंकि उस बिषे अन्य श्रुतवस्तुका अभाव है। अर्थात् उस भूमानाम वाले एक अद्वैत तत्त्व बिषे दृश्य अरु श्रुतआदि विषय अरु चक्षुकर्णादि करणोंका अभाव होनेसे न अन्यको देखताहै न अन्यको सुनताहै। तैसेही उस बिषे मननकरने योग्य वस्तुके अभाव से मनन भी होतानहीं, अथवा उसको मनका अविषयहोने से मनन होतानहीं। तैसेही अन्यको जानता नहीं, उस बिषे अन्यज्ञेयवस्तुके अभाव से अथवा उसको बुद्धिका अविषयहोने से अर्थात् प्रायशः विज्ञानको मनन पूर्वक होनेसे उस भूमाख्य तत्त्व बिषे मननके अभाव से विज्ञानका भी अभाव है अर्थात् उस बिषे मननकरनेयोग्य अन्यवस्तु के अभावसे मनन के अभावहुए मननपूर्वक होनहार विज्ञानकाभी अभावहै ॥:—हे सौम्य उसएक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य आत्मतत्त्वबिषे देखने सुनने मननकरने अरु जाननेयोग्य अन्य वस्तु के अभावसे न अन्यको देखताहै न अन्यको श्रवणकरताहै न अन्यको मननकरताहै नअन्यकोजानता है—:॥ हे नारद उस एकअद्वैत भूमानामवाले आत्मतत्त्वबिषे अन्य अन्यकोदेखता नहीं, अन्यको अन्य सुनता नहीं, अन्यको अन्य मननकरता नहीं, अन्यको अन्य जानता नहीं, क्योंकि उस बिषे द्वैतका अभाव है। हे नारद इसप्रकारका लक्षण है जिसका सो कहिये भूमा ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह लोक प्रसिद्ध दर्शनादि

बिषयपने के अभाव मात्रको भूमा का लक्षणपना कैसे है ॥ उत्तर ॥ हे नारद उस भूमातत्त्व बिषे दर्शनादिकों का अभाव कहने से उसको स्वबिषय (अपने आप को विषय करने) पने का अभाव जानना क्योंकि भूमाख्य आत्मा ज्ञानस्वरूप है वो ज्ञानक्रिया का करता अरु ज्ञान का विषय नहीं, अतएव उस विषे ज्ञेयपनेका अभाव है, ज्ञेयत्व अरु ज्ञातत्व को परस्पर में जड़ चेतन धर्म्मपना होने करके परस्पर में विरोधी होने से सो दोनों एकही बस्तुको आश्रय करें नहीं । अरु जो कदापि उस एक अद्वैत भूमाख्य तत्त्वविषे दर्शनादि मानोगे तो क्रिया कारक फल भेद की प्राप्ति होवेगी ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यदि उस भूमा बिषे दर्शनादि व्यापार होने से क्रिया कारक फल भेद की प्राप्ति होवेगी तो तिस करके क्या दोष होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद यदि उस भूमाविषे दर्शनादि व्यवहार से क्रिया कारक फल भेद की सिद्धि मानोगे तो संसार की अनिवृत्तिरूप महान् दोषकी प्राप्ति होवेगी, अरु दर्शनादि व्यवहार क्रिया कारक फल का भेदही संसार है, अरु तिस संसार की भूमाख्य आत्मतत्त्व बिषे अनिवृत्ति हुई तब मोक्ष का अभाव आया । अतएव हे नारद उस निर्विशेष अद्वैत भूमा तत्त्व बिषे अन्य को देखता नहीं, अन्य को सुनता नहीं, अन्य को मनन करता नहीं, अन्य को जानता नहीं । जैसे शून्य गृह में प्रवेश को पाया पुरुष अन्य को देखता सुनता मनन करता जानता नहीं तैसेही एक भूमा नामवाला तत्त्व अपने निर्विशेष स्वरूप बिषे अन्य को देखता सुनता जानता नहीं ॥ शंका ॥ हे भगवन् जैसे शून्य गृह में प्रवेशको पाया हुआ पुरुष स्तंभादिकों से अन्यको देखता सुनता जानता नहीं तैसे भूमा अपने आपबिषे अनात्मा को न देखता सुनता जानता होगा, परन्तु अपने आपको तो देखता सुनता जानता होगा ॥ समाधान ॥ सो बने नहीं क्योंकि उस एक अद्वैत निर्विशेष भूमातत्त्व बिषे दृग् दर्शन दृश्य आदि भेद

विशेषता नहीं क्योंकि ॥ "सदेकमेवाद्वितीयं तत्सत्यं" ॥ इसप्रकारएक अद्वैत निर्विशेष सत्यचैतन्य आत्मतत्त्वको निर्धारकिया है ॥ तथाच ॥ " अदृश्येऽनात्मे, न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य, विज्ञातारमरेकेन विजानीयात्" ॥ इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से उस एक अद्वैत भूमा नामवाले तत्त्वबिषे दर्शन दृश्य श्रवणश्रुत इत्यादि व्यापारकी अनुपपत्ति (अप्राप्ति) है । अतएव हे नारद दर्शनादि संसार व्यवहार उस निर्विशेष भूमा तत्त्वबिषे है नहीं, यह सर्व कथनका सिद्धान्त जानना ॥ सोई निर्विशेष भूमानाम वाला तत्त्व आत्माहै उस बिषे सर्व विशेषताके अभावसे वोसुख स्वरूप है ॥ हे नारद जहां अन्यको देखताहै जहां अन्यको सुनता है जहां अन्यको मनन करताहै जहां अन्यको जानता है सो अल्प नाशवान् होताहै, अर्थात् उस एक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य आत्मतत्त्व बिषे कि जिसबिषे नेत्रगोलक, चक्षुइन्द्रिय, दर्शनादि क्रिया अरु दृश्य पदार्थ, अरु तिस करके आया जो द्रष्टा विशेषण सो कुछ भी नहीं । अरु तैसेही श्रोत्रादि इन्द्रियों का अरु मन आदि अन्तःकरण का कुछ भी व्यापार नहीं । हे नारद जहां तिस सर्वाधिष्ठान भूमाख्यतत्त्व बिषे तिससे पृथक् करके नामरूपादि प्रपंच को देखते हैं सुनते हैं मननकरते हैं जानते हैं सो नाशमानहैं अथवा जो उस एक अद्वैत भूमातत्त्व विषे नानात्वको देखता सुनता मानता जानताहै सो अति अल्प अज्ञानी नाशवान् (बारंबार मरण से भी मरण को पावनेवाला) है । तथाच ।" मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइहनानेव पश्यति "।:— अथवा हे सौम्य ।" यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं शृणोति "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से जहां एक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य सत् चैतन्य आत्मतत्त्व विषयक अविद्या होतीहै तहां और का और देखताहै और का और सुनताहै, और का और मनन करता है और का और जानता है, सो नाशवान् अल्प असत्वहै ,अपने कारण अविद्याको अल्प असत्य नाशवान्

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दास भार्य्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति ह होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति २ ॥

इति चतुर्विंशो खंडः ॥

होने से—: ॥ हे नारद जो वस्तु अविद्या काल भावीहोती है सो अल्प नाशवान् होती है जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत्होने के पूर्व कालबिषेही भासतेहैं जाग्रत्हुए अभाव होजातेहैं। तैसे भूमाख्य आत्मतत्त्व के यथार्थ सम्यक् ज्ञानहोने के पूर्व अविद्या कालविषे यह नामरूप क्रियात्मक प्रपंच जो केवल वाचारंभण मात्रहै सो आत्मासे इतरवत् देखा सुना जाना जाता है, आत्मज्ञान होनेके पश्चात् नहीं.ताते सो नाशवान् है अरु जो नामरूप क्रियात्मक प्रपंच से विपरीत सर्व का प्रकाशक, अधिष्ठान साक्षी भूमाहै सो अमृत अविनाशीहै ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब भगवान् योगेश्वर सनत्कुमारने नारद के प्रति सुखस्वरूप परमानन्द भूमाख्य आत्मतत्त्व का उपदेश किया तब तिसको श्रवण करके नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् वो भूमा किसबिषे रहताहै, इसप्रकार जब नारद ने प्रश्नकिया तब भगवान् सनत्कुमार कहतेहुए कि हे नारद वो भूमा वास्तवकरके एक अद्वैत परिपूर्ण सर्वाधिष्ठान है अतएव वो कहीं नहीं रहता जो रहताहै सो उस सर्वाधिष्ठान भूमासत्ता बिषे रहताहै उसको सर्वका आश्रय सर्वाधिष्ठान होने से। अरु जो वो सोपाधिहुआ रहता है तो अपनी महिमा बिषे रहताहै, महिमा कहिये अपने आप माहात्म्यबिषे वा विभूतिविषे रहताहै। सोभी जो तू उसके रहनेको इच्छतापूछताहै तो, अरु जो वास्तव से पूछे तो भूमा अन्याश्रित नहीं (अन्यके आश्रय विना) है अतएव वो कहीं भी नहीं रहता। जो अन्य के आश्रय रहताहै सो अल्प परिच्छिन्न नाशवान् होताहै ताते भूमा अन्यके आश्रय विना अपने आप बिषे आपही रहताहै ॥ हे भगवन् यदि वो

भूमा अपनी महिमा बिषे रहता है तो सो महिमा क्याहै सो आप कृपाकर के कहिये १ ॥

अक्षरार्थ

यह गो अश्व हस्ति हिरण्य (सुवर्ण) दास भार्य्या क्षेत्र गृह इत्यादि महिमाहै तिसविषे रहताहै सो हम ऐसा नहीं कहते क्योंकि अन्य अन्य विषे प्रतिष्ठितहोता है अरु भूमासे इतर कोई है नहीं, तब क्यों ऐसा कहते हो, तेरे प्रश्न के उत्तर के अर्थ व्यवहार सत्तासे कहते हैं २ ॥ इति चतुर्बिंशो खंडः ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब नारद ने सनत्कुमार से प्रश्न किया कि वो सुख स्वरूप भूमा किस बिषे रहताहै, तब सनत्कुमारने उसके उत्तरके अर्थ व्यवहार सत्ताको स्वीकारकरके कहा कि हे नारद वो भूमा अपनी महिमा बिषे रहताहै। तब तिसको श्रवणकर पुनः नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यदि वो भूमा अपनी महिमा बिषे रहता है तो उसकी महिमा क्याहै सो आप कहिये, तब सनत्कुमार पुनः उत्तर देतेहुए ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद यह जो लोक विषे गो अश्व हस्ति रथादि पशुयान, अरु सुवर्ण रत्नादि धन, अरु क्षेत्र उपलक्षण करके भूमि ग्राम राज्यादिक, अरु आयतन (गृह) आराम (बाग) आदिक, अरु दास दासी सेवकादिक, अरु भार्या उपलक्षण करके स्त्री पुत्र पौत्र आदि कुटुम्ब, इन सर्व को महिमा (विभूति) कहते हैं ॥ तिस अपनी महिमा बिषे वो भूमा रहता है ॥:—अर्थात् हे सौम्य पूर्व षष्ठ अध्याय बिषे भूमाख्य सत् चैतन्य परमात्म देवने अपने विषे बहुत रूप होने की इच्छाकर तेजादि तीन तत्त्वों को प्रथम उत्पन्न किया, पश्चात् सर्वके नाम रूप पृथक्पृथक् प्रकट करने की इच्छासे तीनों तत्त्वोंमें आभासरूप से प्रवेशकर उनका त्रिधाकरण कर उनके पृथक् पृथक् त्रिवृत्त करण से सर्वके नाम रूपको पृथक् पृथक् प्रकट कर तिन सर्व बिषे अपने आभासरूपसे प्रवेश

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचविंशोखंडः॥

स एवाधस्तात् स उपरिष्ठात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳसर्वं मित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्ठादहंपश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳसर्वमिति॥ १॥

कर सर्व के नामरूप का सिद्ध कर्ता सर्वात्मा हुआ स्थितहै, ऐसा कहाहै। अतएव व्यवहार सत्तासे जीवरूप करके भूमाही अपनी नाम रूपात्मक उक्त महिमा विषे प्रतिष्ठितहै—:॥ हे नारद परमार्थ दृष्टिसे वो भूमा कहीं भी रहता नहीं क्योंकि जो अन्य के आश्रय रहता है सो अल्प परिच्छिन्न विकारी नाशवान् होताहै, अतएव भूमा किसी विषे किसीके आश्रय रहता नहीं न किसी महिमा विभूति करके प्रतिष्ठित होता है ताते भूमा अविनाशी अमृतरूप अपने बिषे आपस्थितहै। अरु जो रहताहै सो सर्वाधिष्ठान भूमा विषे भूमाके आश्रय रहता है अरु भूमा करके प्रतिष्ठित होताहै, ताते अन्यके आश्रय रहने वाला नामरूप क्रियात्मक जगत् सो वाचारम्भणमात्र होने से अल्प नाशवान् है २॥ इति चतुर्विंशो खंडः॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड पच्चीसवां मन्त्र प्रथम का॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब भगवान् सनत्कुमारने नारद से कहा कि हे नारद वास्तव परमार्थ दृष्टि करके वो भूमा कहीं भी रहता नहीं, तब नारदने प्रश्न किया कि हेभगवन् भूम के कहीं भी न रहने का हेतु क्याहै सो आप कृपाकरके कहिये, तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए॥ सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद निश्चय करके जिस कारणसे भूमा नीचेहै तिससे इतर नीचे कुछ भी नहीं कि जिसबिषे भूमा रहै वा होवे, अर्थात् जिस

विषे वो भूमा रहे ऐसा उससे इतर कुछ भी है नहीं अत-एव नीचे भूमाही है । प्रश्न ॥ हे भगवन् तो वो भूमा ऊपर किसीविषे रहता होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद ऊपर भी भूमाही है उससे इतर कुछ नहीं कि जिसबिषे वो रहै । हे नारद तैसेही पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर वो भूमाही है तिससे व्यतिरेक कुछ भी नहीं कि जहां वा जिसबिषे वो भूमारहै ताते सर्व ओर भू-माही है प्रश्न ॥ हेभगवन् जिस वस्तुके नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर अन्य स्थान नहीं कि जिसविषे वो भूमारहै परन्तु उस वस्तु विषे तो वो भूमा रहता होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद उस भूमासे इतर कुछ भी बस्तु नहीं कि जिसबिषे वो रहै, अर्थात् यह जो नामरूप क्रियात्मक जगत् भासताहै सो वो एक अद्वैत भूमाही इसप्रकार से सुशोभित हो भासताहै वास्तवकर-के उस भूमासे इतर कुछ भी नहीं । अतएव हे नारद नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर अरु तिनके मध्य जो है सो एक अद्वैत भूमाख्य तत्त्वही है ॥ हे सौम्य इसप्रकार उस एक अद्वैत परिपूर्ण भूमाख्य तत्त्वका नारदके प्रति परोक्षतासे उपदे-शकर पुनः वो सनत्कुमार विचार करतेहुए कि इस मेरे परोक्ष-ता से भूमाके बोधक उपदेशको श्रवणकर इस नारदको यह शंका होवेगी कि इस जीवतत्त्व से इतर कोई भूमानाम वाला तत्त्व सर्वओर सर्वरूपसे रहता होवेगा, सो ऐसी शंका किसीको भी न हो ऐसा विचार ॥ तिसके अनन्तर भगवान् सनत्कुमार अहंकारादेश (अहंपूर्वक उपदेश) करतेहुए ॥ :—अर्थात् अहं शब्दका विषय चैतन्य आत्मतत्त्वका उपदेश करते हुए कि जिस करके किसी भी मुमुक्षु की बुद्धिविषे द्वैतकी भ्रान्ति न होवे ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद मैं ही नीचे हौं मैं ही ऊपरहौं मैं ही पूर्वहौं मैं ही पश्चिमहौं मैंही दक्षिणहौं मैंही उत्तरहौं । हेना-रद विशेष क्या कहौं ऊपर नीचे आगे पीछे दायें बायें जो कुछ यह सर्वशब्दका विषयहै सो सर्व एक मैंहीहौं मुझसे इतर नीचे

अथात आत्मादेश एव आत्मैवाधस्तादात्मो परिष्ठा दात्मा पश्चादात्म पुरस्तादात्मादक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेद छं सर्व्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवंविजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्मामिथुनआत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्व्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्य राजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषा छं सर्व्वेषु लोकेष्व कामचारो भवति २॥२५॥

ऊपर आगे पीछे दायें बायें कहीं भी और कुछ भी नहीं, (इस प्रकार तू अपने आपको अनुभवकर) १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे नारद अथ तिसके अनन्तर आत्मआदेश को श्रवण करो। निश्चयकरके आत्माही नीचे है आत्माही ऊपर है आत्माही पश्चिमहै आत्माही पूर्व है आत्माही दक्षिण है आत्माही उत्तरहै, आत्माही यह सर्व्व है सो विद्वान् इसप्रकार देखताहुआ मनन करताहुआ जानताहुआ आत्मरति आत्मक्रीड आत्मामिथुन आत्मानन्द होताहै सो स्वराड् होताहै तिसका सर्व्व लोकबिषे काम पूर्ण वा प्राप्त होता है अरु जो उक्त प्रकार से अन्यथा जानताहै सो अन्य राजा वाला होताहै अरु क्षयलोक वाला होताहै तिस को सर्व लोकबिषे अकाम होताहै (उसकी कहीं भी कामना सिद्ध नहीं होती) २॥ २५॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार भगवन् सनत्कुमार नारद को अहंकारादेश करके भूमाख्य तत्त्व का उपदेश कर पुनः बिचारते हुए कि जो पुरुष यथार्थ आत्मानुभव से शून्य बहिर्बुद्धि अविवेकी हैं तिनको अहंकार का बिषय देहादि अनात्म भासता है अतएव इस अहंकारादेशकरके देहादि संघात उपदेश किया होगा इस

प्रकारकी शंका किसीको भी मतहो, ऐसा विचारके तिसके अनन्तर केवल एक शुद्ध सत्य स्वरूपकरके सर्वत्र एक आत्मादेश (आत्मोपदेश) कहतेहुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो सजातीय, विजातीय, स्वगत, भेद रहित एक अद्वितीय अविद्यादि मलरहित परम शुद्ध निर्विशेष सत् चैतन्य परमानन्द स्वरूप आत्माहै सो आत्माही नीचे है, आत्माही ऊपरहै, आत्माही पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तरहै, अर्थात् सर्व्वत्र सर्व्व जो है सो एक अद्वैत अज अविनाशी अखंड आकाशवत् परिपूर्ण अरु अजड़ शून्यतारहित होनेसे आकाशसे विलक्षण महासूक्ष्म चैतन्यआत्मा है तिससे इतर रंचकमात्रभी कुछ नहीं, इसप्रकारके अपनेआपको जो देखता है, अर्थात् आत्मवेत्ता आचारसे श्रवण करताहै, पुनः तिसको मनन करताहै, पुनः तिस श्रवण मनन कियेहुए अपने आत्माको सम्यक् प्रकार जानता (अनुभवकरता) है । सो आत्मविद्विद्वान् आत्मरति आत्मक्रीड़ होता है, अर्थात् आत्माही विषे है रमण जिसका सो कहिये आत्मरति, अरु तैसेही आत्माके साथही है क्रीड़ा नतु स्त्री आदिकों के साथ सो कहिये आत्मक्रीड़ । अथवा आत्माविषे ही है चित्तका अनुसन्धान सर्वदा जिसका तिसको कहिये आत्मरति, अरु जैसे लोकविषे जिन पुरुषों को स्त्रियों के साथ विहार करते देखते हैं तिनको स्त्रीक्रीड़ कहते हैं, तैसेही सविकल्प समाधिरूपा स्त्रीके साथ विहार वा क्रीड़ा है जिसकी तिसको कहिये आत्मक्रीड़ ॥ हे नारद जैसे लोकविषे पुरुष विषय सुखके अर्थ स्त्री आदिकों में रति अरु क्रीड़ा करते हैं, तैसेही परमानन्द सुखकी प्राप्तिके अर्थ आत्मवेत्ता विद्वान्‌की अपनी आप आत्म सत्ताके साथ सविकल्प वा निर्विकल्प समाधिरूप एकान्त स्थान विषे रति क्रीड़ा होती है । अरु मिथुन कहिये द्वंद्वजनित सुख, अर्थात् स्त्री पुरुषके संयोग निमित्तक जे सुखहैं सो दूसरेकी अपेक्षावाला होताहै अरु विद्वान्‌का जो आत्म सुखहै सो दूसरेकी अपेक्षासे रहित नित्य सुखहै, अतएव सो विद्वान् का परमा-

नन्द सुखहै ॥:— हे सौम्य जैसे स्त्री अरु पुरुष दोनों के संयोग से विषयानन्द सुख होताहै तैसे विद्वान कहिये शास्त्र संस्कार बुद्धि युक्त आभास (चिदाभास जीव) सो जब सज्ञात निर्विकल्प समाधिरूप एकान्त गृहमें वा विचार समाधिरूप एकान्त गृहमें अपनी बिम्बरूपा सामान्य चैतन्य सत्ताके साथ अभेद एकताको प्राप्तहोताहै तब उसको निर्पेक्ष अविनाशी अखंड नित्य परमानन्द सुख प्राप्तहोताहै -:॥ हे नारद शब्द स्पर्शादि विषय भोग निमित्तका जो क्षणिक सुखहै सो अल्प नाशवान्है सो अविद्वान् विषय लम्पटों का सुखहै, तैसा आत्मवेत्ता विद्वान् का सुख नहीं विद्वान्का सुख शब्दादि विषय निर्पेक्ष परमानन्द सुख है। हे नारद उक्त प्रकारके लक्षणवाला विद्वान् जीवतेही अपने स्वाराज्य पद (सर्वात्म पद) विषे राज्याभिषेक पाया होताहै, अरु सो देहके पातहुए भी स्वराट् होताहै। हे नारद जब इस प्रकार होताहै तब तिसही करके सर्व लोक सब शरीरों विषे सर्व काम पूर्ण होताहै वा सर्व कामका कर्त्ता होता है। अर्थात् उस आत्मभूत विद्वान्को सर्वत्र सर्व का आत्मा होने से सर्वही प्राप्त(अपना आप)होताहै॥ हे नारदजी, अथ, पुनः उक्त प्रकार के आत्म भूतविद्वान् से इतर अविद्वान् उक्त प्रकार के आत्म दर्शन से अन्यथा (विपरीत) भाव से आत्म तत्त्वको देखता है अर्थात् कहे प्रकार से आत्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार नहीं जानता सो अन्य राजावालाहोता है ॥: -अर्थात् पराधीन अन्य के भय युक्त होता है—:॥ अथवा अन्य कहिये दूसराहै राजा (स्वामी) जिसका तिसको कहिये अन्यराजावाला ॥:—अर्थात् जो अविद्वान् रात्मरती न होके केवल अपने देहमात्र मेंही रतिमान् होताहै, अरु आत्मक्रीड़नहोके स्त्री आदिकों में क्रीड़ावाला होताहै, अरु जो आत्मानन्द को न प्राप्तहोके विषयानन्द में ही रहताहै।सो अज्ञ अन्य स्वामीवालाहोके तिसके भयमेंही रहताहै॥ अरु जो उक्त प्रकार का आत्मदर्शी विद्वान्है सो स्वयंआपही राजा

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षड्विंशो खंडः ॥

तस्य हवा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतो कर्म्माण्यात्मत एवे दछं सर्वमिति ॥ १ ॥

होताहै उसका अन्य ईश्वरादि स्वामी कोई नहीं, वो सर्वका स्वामी सर्व करके पूजनीयसदा निर्भय पदमें स्थित रहताहै—॥ अरु वो अविद्वान् क्षयलोक वाला होता है, अर्थात् अन्त में वो नाशवान् लोक को पावता है क्योंकि भेद दर्शन का फल अल्प है, अतएव जो अल्प है सो नाशवान् है ऐसा मैंने पूर्व कहा है। हे नारद जिस करके वो अविद्वान् पुरुष भेद दर्शनके कारण क्षय (नाशवान्) लोक वाला होता है तिसही हेतु से उसका किसी भी लोक वा शरीर विषे काम पूर्ण नहीं होता (अर्थात् उस अविद्वान् की कहीं भी कामना समाप्त होही नहीं, २ । २५ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड छब्बीसवें मन्त्र प्रथम का

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद तिस प्रसिद्ध बिद्वान् का जो (अपने स्वस्वरूप रूप) स्वाराज्य पदको प्राप्त हुआ है ॥ अर्थात् जो आत्मवेत्ता विद्वान् सर्वत्र अपने आप ही को देखता है, अपने आप ही को निश्चय करता है, अपने आप ही को जानता है, अपने आपही में रत है अपने आपसेही क्रीड़ा करता है, अपने आपमें ही सदा आनन्दित रहता है, उसही विद्वान्के आत्मा से प्राण उत्पन्न हुआ है, "॥ एतस्माज्जायते प्राणो ।"

तदेश श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति नरोगं नोत दुःखताछं सर्व्वं छं ह पश्यःपश्यति सर्वमाप्नोति सर्व्वश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधाचैव पुनश्चैकादश स्मृतः शतञ्च दशचैकश्चस हस्राणिच विंछंशति राहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्व्वं ग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदित कषायाय तमसः पारंदर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तछंस्कन्दे इत्याचक्षते तछं स्कन्दइत्याचक्षते २॥

इति षड्विंशो खण्डः॥

इति छान्दोग्ये उपनिषदि सप्तमप्रपाठकः ७॥

उसही के आत्मा से आशा है, उसही के आत्मा से स्मृति होती है, उसही के आत्मा से आकाश होता है, "एतस्मादात्मन आकाशः संभूत" अरु उसही के आत्मासे तेजहोताहै "। तत्तेजमसृजत।" उसही के आत्मा से जल उसही के आत्मा से आविर्भाव तिरोभाव (उत्पत्ति प्रलय वा प्रकटहोना छिपना) होता है उसही के आत्मा से अन्न होता है, उसही के आत्मा से बल होता है, उसही के आत्मा से विज्ञान उसही के आत्मा से ध्यान होता है, उसही के आत्मा से चित्त होता है, उसही के आत्मा से सङ्कल्प उसही के आत्मा से मन होता है, उसही के आत्मा से बाणी उसही के आत्मासे नाम होता है' अरु उसही के आत्मा से वेदोंके मन्त्र अरु उसही के आत्मा से सम्पूर्ण कर्म्म होता है, हे नारदजी और बिशेष क्या कहिये उसही विद्वान् के ही आत्मा से ही यह सर्व नामरूप क्रियात्मक जगत् उत्पत्त स्थित लय होता है। क्योंकि जिस आत्म पदको वो विद्वान् प्राप्त हुआ है सो सर्व जगत् का मूल सर्वात्मा है ताते १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद तिस कही हुई उक्त विद्या के अर्थ विषे यह श्लोक (वेदका मन्त्र) भी प्रमाण होता है । उक्त प्रकारके भूमाख्य अपने आप आत्मतत्त्वका सम्यक्प्रकार यथार्थ अनुभवी विद्वान् अपने विषे मृत्युको देखता नहीं (अमरभाव को प्राप्तहुआ है ताते) अरु ज्वरादि रोग निमित्तके दुःखोंकोभी भी आपने विषे देखता नहीं (देहादि संघात अरु तिनके धर्म्मों से पृथक् हुआहै ताते) अरु सर्वको अपना आप आत्मा देखता है, अतएव सर्व्वको प्राप्त होताहै । अर्थात् सर्वात्मभूत विद्वान् को सर्वका आत्माहोने से उससे इतर उसके प्राप्त होने योग्य कुछ भी अवशेष रहता नहीं अतएव सर्व्वत्र सर्वही उसको प्राप्त है । हे नारद आत्मभूत विद्वान् सर्व सृष्टिभेदकी उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय होताहै सो एक हुआही तीन भेदको पावता है ॥ :— अर्थात् सो सत् आत्मा सृष्टिसे पूर्व एक अद्वितीय हुआ भी अपनी बहुतरूप होनेकी इच्छासे ,तेज, जल, पृथिवी, प्रथम इन तीन कारण भेदको पावता है —: ॥ हे नारद सोई आत्मा पांच प्रकारके भेदको पावताहै ॥:—अर्थात् ऐतरेय आदि उपनिषदों के प्रमाण से आकाशादि पंचभूत रूप पांच प्रकारका होता है—: ॥ अरु सोई आत्मा सात प्रकारका होताहै अर्थात् महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा इन सातप्रकार का होताहै—: ॥ अरु सोई आत्मानव प्रकारका होताहै ॥ :—अर्थात् तैतरेय उपनिषद् के प्रमाणसे आत्मासे ,आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी,औषधि, अन्न, वीर्य, पुरुष, (शरीर) इसक्रम से नव होतेहैं एतदर्थ आत्मा नव प्रकारका भी होताहै—: ॥ हे नारदजी एक अद्वैत आत्मा सृष्टिकाल विषे अपनी इच्छासे तीन वा पांच वा सात वा नव वा कारण भूतहुआ अनेक प्रकारके कार्य्य भेदसे आपही स्थित होताहै (जैसे एकमृत्तिका कार्य्यकाल विषे घटशरावआदि अनन्त भेद भाव से सुशोभित होता है तैसे) अरु सोई आत्मा

संहार (प्रलय) कालबिषे सर्वको अपनेबिषे लय करके पारमार्थिक एक रूपता कोही प्राप्त होताहै (अर्थात् वो भूमानामवाला सत् चैतन्य देव एक अद्वैत ज्ञानस्वरूप स्वतन्त्र है, अतएव वो अपनी इच्छासे सर्वकार्य्य कारणात्मक अनेक प्रकार का होत सन्ते भी वास्तवसे एकही है, तिस एक अद्वैत सर्वके मूलकारण परमात्मा बिषे कार्य्य कारणात्मक सर्व प्रपंच केवल कहने मात्रही है ,मृत्तिका बिषे घट शराव आदिकोंवत् , । हे नारदजी ऐसे अपने आप आत्मस्वरूपके अथवा उक्तविद्या सम्यक्प्रकार दर्शनके वा धारन होनेका कारण (उपाय) श्रवण करो। हे नारदजी जैसे अपने मुखको स्पष्ट देखनेके अर्थ आदर्श (दर्पण) का सम्यक् प्रकार शुद्ध होना कारणहै, तैसेही अपने आप आत्मस्वरूपके साक्षात् यथार्थ स्पष्ट अनुभव होनेके अर्थ बिषे अन्तःकरणरूप दर्पणका शुद्ध होना कारण है, सो अन्तःकरण तब शुद्ध होता है जब आहार भोजन शुद्धहोता है, सो आहार तब शुद्ध होताहै जब व्यवहार शुद्ध होताहै 'अर्थात् जिस द्रव्यसे अन्नादिक भोजन सामग्री क्रय (खरीदना) होवे सो धन धर्म्म पूर्वक न्याय कर के उपार्जित होवे, पश्चात् वो अन्न चाल पछोड़ बीनके शुद्ध संस्कृत किया होवे, पश्चात् पवित्र किये स्थान में पवित्रता से उस अन्नका पाक हुआहोवे, तिसके पश्चात् उस पक्क अन्न से वलि वैश्वदेवादि भूतयज्ञ अरु अतिथिको भोजन देनेरूप मनुयज्ञ किया होवे। इस प्रकारके शुद्ध संस्कृत अन्नके भोजनकरने से अन्तःकरण शुद्ध होता है, क्योंकि "अन्नमयꣳहिसौम्यमनः" इत्यादि इसही उपनिषद् के षष्ठ अध्यायबिषे कहाहै, तहां, मन उपलक्षण करके अन्तःकरणको अन्नका कार्य्य होनेसे आहारके शुद्ध हुए सत्त्व (अन्तःकरण शुद्ध होता है । अरु अन्तःकरणके शुद्धहुए शुभ अशुभ कर्त्तृत्व अकर्तृत्व आदिकोंका विवेक होताहै, तब तिस विवेकसे अशुभ व्यापार से मन उपराम हो शुभ व्यापार में प्रवृत्त होता है, अरु जब मन शुद्धहुआ श्रवणादि शुभमार्ग में प्रवृत्तहो-

ताहै तब इन्द्रियां विषयोंसे उपरामहुई अन्तर्मुख होती हैं । अर्थात् उस शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष को विषयादि किसी भी पदार्थ में राग द्वेष होता नहीं, अरु रागद्वेषके अभावहुए काम क्रोध लोभ मोहादि दोषोंका भी अभाव होता है। अरु इसही हेतुसे वो विद्वान् किसी भी पदार्थ में आशक्तहुआ बन्धवान् होतानहीं "लिप्यते न सपापेभ्यो पद्मपत्र मिवांभसि" गीता विषे । अतएव हे सौम्य उक्त प्रकार के साधनों से उक्त प्रकार का शुद्ध अन्तःकरण जिस पुरुषका होता है तिस शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषके प्रति आचार्य्य करके उपदेश करीहुई ब्रह्मविद्या अचलस्थिती को पावती है, अर्थात् उक्त प्रकार के शुद्धहुए अन्तःकरणवाले पुरुषको आचार्य्यकरके एकबार भी उपदेश करीहुई ब्रह्मविद्या विस्मृति को प्रवती नहीं ॥ हे सौम्य, पूर्व कहा जो सत्य से सुखेच्छा पर्यंत पूर्व पूर्वकी प्राप्ति में उत्तरोत्तर साधन तिन सर्व साधनोंकी प्राप्तिका मूल उक्त प्रकार के शुद्ध आहारका होनाहै, क्योंकि आहारके शुद्ध हुए अन्तःकरणकी शुद्धि अरु अन्तःकरणकी शुद्धि से उक्त साधनों की प्राप्ति अरु उक्त साधनोंकेहुए भूमाख्य सत् चैतन्य आनन्दघन अपने आप आत्माकी साक्षात्कार(ब्रह्मभाव) रूप प्राप्ति होतीहै, अतएव सर्व साधनों का मूल जो आहार शुद्धि सो अवश्य कर्तव्य है ॥ हे सौम्य यहां पर्यन्त भगवान् योगेश्वर परमब्रह्म निष्ठ आत्मवेत्ता सनत्कुमार ने आत्मजिज्ञासु नारदके प्रति वेदान्त (उपनिषद्) शास्त्रका तात्पर्य्यार्थ अशेष उपदेश किया, अब श्रुति भगवान् सनत्कुमार नारद के संवाद रूप आख्यायिका को समाप्त करेहै ॥ हे सौम्य जिस शुद्ध हुए अन्तःकरण वाले अधिकारी पुरुषके अर्थ यह (विद्या) होती है, अर्थात् जैसे रेह वा साबुन आदि क्षारसे प्रथम वस्त्रके मैलको सम्यक् प्रकार अशेष दूरकरके पश्चात् उस वस्त्रपर केसरका रंग देते हैं तब उस शुद्धहुए वस्त्रपर केसरका रंग अति उत्तमता से अति शीघ्र चढता है, तैसेही भगवान् सनत्कुमारने आत्मजिज्ञासुदेव-

ऋषि नारदके (जो कि अपनेको कृतार्थ होनेके अर्थ भगवान् सनत्कुमारके समीप प्राप्त हुआहै) तिसके अन्तःकरणसे राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोह आदिक अथवा संसारके प्रवर्त्तक अन्य विद्याओं के (जोकि॥ "अन्यावाचो विमुञ्चथ"॥"नानुध्याया-न् बहूञ्छब्दान् "॥ इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे मुमुक्षु करके त्यागने योग्यहै) संस्कार रूप कषाय (दोष) को प्रथम विज्ञान वैराग्य के सम्यक् अभ्यासरूप क्षारकरके भलीप्रकार प्रक्षालन कर उस नारदके अन्तःकरण विषे आत्मविद्या देने की योग्यता देख पश्चात् सत् चैतन्य परमानन्द आत्मतत्त्व के उपदेशरूप अलौकिक केसरका रंग चढ़ाय उसको संसारविषे परमशोभ-नीय देवादिकों करके पूज्य वन्दनीय किया अरु जिस अवि-द्यात्मक अकृतार्थताजन्य शोक सागरके पार आत्मतत्त्वके प्राप्त होने के अर्थ वो सर्व वेदादि विद्यासम्पन्न ब्रह्मऋषि नारद श्रो-त्रिय ब्रह्म निष्ठ योगेश्वर भगवान् सनत्कुमार की शरणको प्राप्त हुआ तिस महा शोकसागर के पार भूमाख्य परमार्थ आत्मतत्त्व को देखायप्राप्त करतेहुए। अर्थात् भगवान् सनत्कुमारशुद्ध अन्तः-करणवाले साधन सम्पन्न नारदको भूमाख्य आत्म विद्यारूपदृढ़ नौकापर दृढ़ विश्वासतारूपसे आरूपकर आत्मोपदेष्टा आचा-र्य्यरूपसे आप उस नौकाको चलावने वाले कैवर्त्तक (मल्लाह) होय उस पारकामी नारदको अविद्यात्मक अथाह अपार शोक सागरसे , कि जिस शोकसागरसे पारहोनेके अर्थ सिवाय एकब्रह्म आत्माकी अभेद बोधक विद्यारूप नौकाके अरु श्रोत्रियब्रह्म नि-ष्ठ उपदेष्टाआचार्य्यरूप कैवर्त्तकके अन्य कोई भी उपाय समर्थ नहीं। पारकरतेहुए॥ तब वो नारद भगवान् सनत्कुमारसे सो-पान आरोहणवत् नामसे लेके प्राणपर्य्यंत सर्व की उपासना अरु तिनके फलको जानके तिनको उल्लंघनकरके पश्चात् आचा-र्य्यभगवान् सनत्कुमारसे भूमाख्यअपनेआप आत्मतत्त्वकोसम्यक् प्रकारसाक्षात्सोहमस्मिभावसेअनुभवपाय अज्ञानजन्यअकृतार्थ-

तारूप महाशोक सागर से तर कृतकृत्य शान्त आत्मा निर्भ
पदको प्राप्त होय अपने आत्मोपदेष्टा भगवान् योगेश्वर सनत्
कुमार को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्तुति बन्दनाकर उन
आज्ञाले जीवन्मुक्तता को पाय ब्रह्म लोकादि लोक लोका
न्तरविषे निर्भयनिःशंक विचरता यथाधिकारियों को उपदे
करता स्वतन्त्र विचरनेलगा॥ हे सौम्य यहां जो मूल श्रु
के अन्तविषे कहाहै कि॥ "तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्क
इत्याचक्षते"॥ सो इस सप्तम प्रपाठककी परिसमाप्तिके अ
जानना २॥ इति षड्विंशो खंडः २६॥

इति छान्दोग्य उपनिषदि सप्तम प्रपाठक समाप्तम्,॥
हरिःॐतत्सत्॥

मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई,) के छापेखाने में छपा
नवम्बर सन् १८९५ ई०॥

कठवल्ली उपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषी-
वरकेपुत्र श्रीउद्दालक ऋषिनेजिसप्रकारसे विश्वजित्नामायज्ञ
ी और उसीयज्ञकेदक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपरिमित
न व गौओंको दानदिया और उसी यज्ञमें अपने परमप्रियपुत्र
ानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्युके अर्थ दानदिया और नचि-
ता यमालयमें गया और मृत्युने सावधान पूजनकिया और
स्पर वार्त्तालापहुआ वहसब वृत्त संवित मंत्रों में बर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् ॥

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदता
का निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य
इन चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने
योग्य है ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् ॥

यहउपनिषद् यजुर्वेदसम्बन्धी है—इसउपनिषद्मेंश्रीसच्चिदा-
नन्द घन परब्रह्म परमेश्वर निराकार के साकार रूप होने का
प्रतिपादन है ॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

जिसे वाजसनेयीसंहिताभी कहतेहैं—इस उपनिषद् में यावत्
नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशही में घटित कियाहै ॥

केनोपनिषद् ॥

अब इसबार अत्यन्त शुद्धतापूर्वक सरलभाषा तिलक से
युक्तमुद्रित कीजातीहै—इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापतिद्वारा
वर्णन किया गयाहै ॥

मनुस्मृतिसटीकका विज्ञापनपत्र ॥

इसपुस्तकको श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई,) ने बहुतसीद्रव्य व्ययकरके धर्मशास्त्राग्रगण्य सकलगुणिगणमण्डलीमण्डन महामहोपाध्याय श्रीपण्डित मिहिरचन्दजी से अन्यधर्मशास्त्रग्रंथों के तात्पर्य्यों से संवलित व सारों से मिश्रित और सकलटीकाओं के रहस्योंसे युक्त उक्तग्रंथका पदच्छेद अन्वय तात्पर्य्य व भावार्थसे भूषित अच्छेप्रकार देशभाषामें विवरणकराय मन्वर्थभास्करनाम तिलक मूलश्लोकों सहित लक्ष्मणपुरस्थ स्वयंत्रालयमें मुद्रितकर प्रकाशितकियाहै—संसार में यावत् कर्म धर्म चतुर्वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, व चतुराश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ व संन्यासादि के हैं सविस्तार इसमें वर्णन कियेगये हैं—इसके सिवाय और भी सारे जगत् का वृत्त अर्थात् जगदुत्पत्ति स्वर्ग भूम्यादि सृष्टि वर्णन देवगणादिकों कीसृष्टि धर्माधर्मविवेक मनुजीकीउत्पत्ति व यक्षगंधर्वादिकोंकी उत्पत्ति व मेघ, पशु,पक्षी, कृमि,कीट,जरायुज,अण्डज, स्वेदज,उद्भिज,वनस्पति, गुल्मलतावृक्षादिकोंकी उत्पत्ति,दिनरात्रिप्रमाण व युगोंका प्रमाण व्रतादिकों के करनेका नियम व फल देशोंका कथन मनुष्यों के जातकर्म व नामकरण व चूडाकरण यज्ञोपवीतादि की क्रिया कथन वेदके अध्ययन करने का ढंग व नियम व इन्द्रियोंके संयमोंके उपायोंका कथन आचार्य्य उपाध्याय व गुरु आदिका वर्णन पितृकर्ममें श्राद्धादि करने का नियम भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओंके भोजनकरनेका नियम निषेध व प्रायश्चित्त ऋणलेने देने के नियम व दायभागादि दीवानी फ़ौजदारी के मुक़द्दमों का यथाविधि निपटारा करना यहसब वार्त्तायें अच्छे प्रकारसे इसमें दर्शाईगईहैं जिनसे प्रत्येक मनुष्योंके कार्यहोते चलेआते हैं और भी बहुतसी राजनीति सम्बन्धी वार्तायें जोकि राजाओं को करना योग्यहै वह सब इसमें उत्तम रीतिसे सविस्तार वर्णनकीगई हैं—आशाहै कि जो विद्वज्जनदेखेंगे प्रसन्नतासे इसे ग्रहणकरेंगे ॥